चाँद
दिसम्बर १९२८ ई० से
अप्रैल १९२९ ई० तक

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

P. Hon
CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषय-सूची

१—गद्य

क्रमाङ्क	लेख	लेखक	पृष्ठ
१	अम्बपालिका ...	श्री० चतुरसेन जी शास्त्री ...	४८१
२	आचार्य उपगुप्त कहानी ...	,, ,, ...	६६३
३	ईसा के पवित्र नाम पर ...	,, ,, ...	७५
४	कर्त्तव्य-पालन कहानी ...	श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक	७८५
५	कला का मूल्य कहानी ...	श्री० जयशङ्कर 'प्रसाद' जी ...	६२२
६	क़ानूनीमल की बहस ...	श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०	७६
७	खुदीराम बोस ...	श्री० शारदाप्रसाद जी भण्डारी...	११२
८	गोस्वामी तुलसीदास और स्त्री-जाति ...	श्री० रजनीकान्त जी शास्त्री, बी० ए०, बी० एल्०	४६८
९	गोस्वामी तुलसीदास और स्त्री-जाति ...	श्री० शोभाराम जी 'धेनुसेवक'	८५१
१०	घरेलू दवाइयाँ ...	श्रीमती उत्तरादेवी; सौभाग्यवती हजेला; श्रीमती कलावती देवी कौल; श्रीमती वृन्दादेवी; श्रीमती उत्तराकुमारी देवी; श्रीमती पार्वतीदेवी; श्रीमती कौशलकुमारी गुप्ता, और श्रीमती विद्यावती सरीन ...	४३६-६५६-७५६-८६६
११	चतुर्वेदी जी की घासलेट-चर्चा ...	श्री० जनार्दन भट्ट, जी एम० ए०	३८५
१२	चार्ल्स का क़त्ल ...	श्री राजेन्द्रनाथ जी, बी० ए०, एल्-एल्० बी०	१६६
१३	चित्र-परिचय ...	... ...	५५६
१४	छोटके भैया कहानी ...	श्री० जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज'	५३०
१५	जल्लाद ...	श्री० 'उग्र'	२२७
१६	डॉक्टर केशवदेव शास्त्री, एम० डी० ...	श्री० जगदीशचन्द्र जी शास्त्री, काव्यतीर्थ	६१३
१७	ताऊन या मरी ...	श्रीमती हुक्मादेवी जी छात्रा ...	८७१
१८	ताँतिया भील और उसकी फाँसी ...	'एक नीमाड़ी'	३४
१९	द्वारिकापुरी ...	श्री० शीतलासहाय जी, बी० ए०	६१६
२०	दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह ...	'पागल'	४३१-४६५-६४१-७१४-८३८
२१	दिव्य प्रेमी मन्सूर ...	साहित्याचार्य पण्डित पद्मसिंह जी शर्मा	१८०
२२	दुबे जी की चिट्ठी ...	श्री० विजयानन्द (दुबे जी)	१६०-५०६-६०७-७५३-८४७
२३	देवी जोन ...	श्रीमती विद्यावती जी सहगल ...	११७
२४	दोषी कौन है? ...	श्री० केदारनाथ जी अग्रवाल, बी०ए०,एल्-एल्० बी०	५६५
२५	नेत्राञ्जन कहानी ...	प्रोफ़ेसर कन्हैयाप्रसाद सिंह जी, एम० ए०	४६१

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्रमाङ्क	लेख	लेखक	पृष्ठ
२६	पाक-शिक्षा	श्रीमती कलावती देवी; कुमारी सत्यवती झँवर; और श्रीमती वृन्दादेवी ...	४३८-६६७
२७	प्राणदण्ड	श्री० आचार्य रामदेव जी, एम० ए० ...	२८
२८	प्राणबध (छायानुवाद)	श्री० चतुरसेन जी शास्त्री	४१
२९	प्रायश्चित्त कहानी	श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक ...	८०९
३०	पिता अबराहिम लिङ्कन का बध ...	श्री० चतुरसेन जी शास्त्री	४४६
३१	फन्दा	,, ,, ...	१००
३२	फाँसी	श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक ...	१६
३३	फाँसी की सज़ा	श्री० रायसाहब हरविलास जी शारदा, एम० एल० ए०, रिटायर्ड जज.	३२
३४	फाँसी के भिन्न-भिन्न तरीक़े	श्री० रमेशप्रसाद जी, बी० एस्-सी० ...	१४२
३५	फ्रान्स की राज्य-क्रान्ति के कुछ रक्त-रञ्जित पृष्ठ ...	श्री० रघुवीरसिंह जी, बी० ए० ...	५८
३६	फ्रान्स में स्त्रियों का प्राणदण्ड ...	श्री० त्रिलोचन पन्त जी, बी० ए० ...	१६४
३७	बन्दा बहादुर का बलिदान	श्री० 'मुक्त'	२२०
३८	ब्रह्म-समाज	श्री० कन्हैयालाल जी शास्त्री, विशारद ...	७२१
३९	भारतीय दण्ड-विधान और फाँसी ...	श्री० मनोहरसिंह जी, बी० ए०, एल्-एल्० बी०	९३
४०	भारत में अङ्गरेज़ी राज्य	महात्मा सुन्दरलाल जी, भूतपूर्व सम्पादक 'कर्म-योगी' और 'भविष्य' ...	३६७-४७३-५८०
४१	भारतवर्ष में बाल-मृत्यु	डॉक्टर रामदयाल जी कपूर, एम० बी० बी० एस०	७३२
४२	भौजाई	श्री० बाबूराम जी श्रीवास्तव ...	६१०
४३	मधुर पराजय कहानी	श्री० जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज'	७३६
४४	महाराज नन्दकुमार को फाँसी ...	श्री० कल्याणसिंह जी राजवैद्य ...	२०९
४५	महाकवि शैली और भारतवर्ष ...	श्री० 'गुप्त' बी० ए०	४९१
४६	मानसिक व्यभिचार	श्री० देवकीनन्दन जी 'विभव' ...	८६५
४७	मास्टर आत्माराम कहानी... ...	श्री० सुदर्शन	६००
४८	मृत्युञ्जय-सुक़रात.	श्री० कृष्ण	२१६
४९	विचार-रश्मियाँ	प्रोफ़ेसर विश्वमोहन कुमार सिंह जी, एम्० ए०, बी० एल्०	७०४
५०	विद्रोही के चरणों पर	श्री० जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' ...	१३३
५१	विधवा-विवाह की नैतिकता	ऋषिवर श्री० रामगोपाल जी मोहता ...	४०६
५२	विनोद-वाटिका	श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०	४२५-५२६-६२६-७८२-८७९
५३	विप्लव-यज्ञ की आहुतियाँ	... ...	२४४
५४	शब्द और अर्थ	श्री० मथुरालाल जी शर्मा, एम० ए० ...	५९०
५५	शान्ति-कुटीर	श्री० लक्ष्मीप्रसाद जी द्विवेदी; श्री० बालकृष्ण जी भट्ट ...	७९५
५६	सन् ५७ में दिल्ली के लाल दिन ...	श्री० ख़्वाजा हसन निज़ामी, देहलवी ...	१०२
५७	सन् ५७ के कुछ संस्मरण ...	... ...	१४९

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्रमाङ्क	लेख	लेखक	पृष्ठ
५८	सङ्गीत-सौरभ	... सम्पादक—श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय (नीलू बाबू); शब्दकार तथा स्वर-लिपिकार—श्री० किरण-कुमार मुखोपाध्याय (नीलू बाबू); श्री० केदार-नाथ जी 'बेकल' बी० ए०, एल्-एल्० बी० ; 'अज्ञात'	४२८-५६१-६३१-७१०-८७६
५९	संस्कृत-साहित्य में प्राणबध	... श्री० जयदेव जी शर्मा, विद्यालङ्कार, मीमांसा-तीर्थ	२३४
६०	समाचार-संग्रह	... ...	४४०-५६२-७१८-६०६
६१	समाज में स्त्री का दर्जा	... श्री० हृषीकेश जी शर्मा, विशारद	८२४
६२	समाज का अग्नि-कुण्ड	... श्री० ज़हूरबख़्श जी 'हिन्दी-कोविद'	८२८
६३	सोहाग की साड़ी कहानी	... श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक	३५६
६४	सौन्दर्य	... श्री० चन्द्रगुप्त जी वार्ष्णेय, बी० एस्-सी०	७०६
६५	स्त्रियाँ बनाम पुरुष	... श्री० शिवप्रसादसिंह जी	५१३
६६	स्वेच्छाचारिता	... श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक	५७३
६७	हमारे धर्मगुरु	... श्री० वासुदेवप्रसाद जी मिश्र, बी० ए०, एल्-एल्० बी०	७२६
६८	हमारी आधुनिक शिक्षा	... श्री० रामाज्ञा जी द्विवेदी, एम० ए० (ऑनर्स)	८१५
६९	हिन्दू-लॉ में स्त्रियों के अधिकार	... श्री० भोलालाल दास जी, बी० ए०, एल्-एल्० बी०	८४१
	*	*	
	गृह-विज्ञान		
७०	गृह-प्रबन्ध	... श्री० रामावतार जी शर्मा, एम० ए०, विशारद	६२६
७१	डूबना	... सौभाग्यवती हजेला ...	४०६
७२	मोच आने पर	... ,, ,, ...	७०६
	*	*	
	चिट्ठी-पत्री		
७३	एक दुखिनी का पत्र	... (लखीमपुर की एक दुखी बहिन)	६६०
७४	एक अभागिनी की दुख-कथा	... (गाँदाँ नमसान की एक दुखी बहिन)	६६१
७५	कड़ुवा और मीठा	... श्री० बलभद्र जी चौबे ...	६६४
७६	पारिवारिक अत्याचार	... (लश्कर की एक अभागिनी बहिन)	६६३
७७	बप्पा रावल की तलवार	... श्रीमती गङ्गादेवी जी ...	६६५
७८	हिन्दुओं की नाक	... श्री० रामचन्द्र जी आर्य-मुसाफ़िर	६६७
	*	*	
	बाल-मनोरञ्जन		
७९	कैटाकूम्स अर्थात् रोम की सुरङ्ग	... श्री० हनुमानप्रसाद जी गोयल, बी० ए०, एल्-एल्० बी०	७११
८०	चीन की दीवार	... ,, ,,	७१२
८१	ताजमहल	... ,, ,,	७१२

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्रमाङ्क	लेख	लेखक	पृष्ठ
८२	दुनिया की सबसे ऊँची मीनार	श्री० हनुमानप्रसाद जी गोयल, बी० ए०,	७९२
८३	पीपे का सबसे लम्बा पुल	,, ,,	७९४
८४	बप्पा रावल	श्रीमती गङ्गादेवी जी कुलश्रेष्ठ	६३५
८५	मकड़हारा और जल-देवता	श्री० बब्बनप्रसाद सिंह जी	६३७
८६	वैटिकान	श्री० हनुमानप्रसाद जी गोयल, बी० ए०, एल्-एल्० बी०	७९२
८७	शिक्षा का प्रभाव	श्री० शिवसहाय जी चतुर्वेदी	८९४
८८	सबसे भारी पुल	श्री० हनुमानप्रसाद जी गोयल, बी० ए०, एल्-एल्० बी०	७९४
८९	संसार का सबसे बड़ा घण्टा	,, ,,	७९३
९०	संसार का सबसे लम्बा पुल	,, ,,	७९४
९१	सिकन्दर बादशाह और किसान	श्री० शिवसहाय जी चतुर्वेदी	८९३
९२	सियार और ख़रगोश	श्री० वन्शीधर जी, एम० ए०	६३८
९३	स्वतन्त्रता की मूर्ति	श्री० हनुमानप्रसाद जी गोयल, बी० ए०, एल्-एल्० बी०	७९३

* * *

रङ्ग-भूमि

(सम्पादकीय)

९४	अखिल भारतीय सामाजिक परिषद्	६७८
९५	अखिल भारतीय महिला-शिक्षा-कॉन्फ्रेन्स	६८१
९६	अखिल भारतीय क्षत्रिय-महासभा	८८५
९७	एक लाख की अपील	६६८
९८	कलकत्ते की अखिल भारतीय महिला-कॉन्फ्रेन्स	६८०
९९	कलकत्ता-कॉङ्ग्रेस की व्यायाम-प्रदर्शिनी	८९०
१००	कविता की चोरी	८९२
१०१	कॉङ्ग्रेस और समाज-सुधार	६८३
१०२	केशवचन्द्र सेन की जयन्ती	६८४
१०३	'चाँद' के आगामी जातीय विशेषाङ्क	८८१
१०४	जैन-समाज की नींद	८८९
१०५	नायक-कन्या-संरक्षण बिल	८८७
१०६	नोबल-पुरस्कार और स्त्री-लेखिकाएँ	८९१
१०७	फाँसी-अङ्क की फाँसी	६७३
१०८	बालविवाह-बिल और सरकार	८८३
१०९	बिहारी महिलाओं की जाग्रति	५५३
११०	लन्दन में स्त्रियों की विराट् सभा	८८८
१११	शैतान की विजय	६८२

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्रमाङ्क	लेख	लेखक	पृष्ठ
११२	समाज की बलि ...	... ...	... ५५१
११३	हिन्दुओं की पाखण्ड-पूजा ...	... ...	... ५४१
११४	हिन्दू-अबला-आश्रम, कलकत्ता...	... ...	... ५४४
११५	हिन्दू-उत्तराधिकार-बिल ...	... ...	... ८८५

* * *

विविध विषय

११६	अबलाओं के आँसू ...	... श्री० सन्तराम जी, बी० ए०	... ६४५
११७	कुमारी बहिन ...	... श्री० रामनरेश जी त्रिपाठी	... ६५०
११८	जर्मन स्त्रियाँ ...	... प्रोफ़ेसर चन्द्रभाल जी जौहरी, बी० ए०	... ७५८
११९	झूसी ...	... रायबहादुर हीरालाल जी, बी० ए०	... ५२०
१२०	तमादी ख़ानदान ...	... श्री० रामनिरीक्षण सिंह जी, एम० ए०, काव्यतीर्थ	... ७७८
१२१	पतनोन्मुख मैथिल-समाज ...	... श्री० चतुर्भुजराय जी मैथिल	... ६५३
१२२	पण्डिता धर्मशीला ...	... श्रीमती इन्दुमती तिवारी	... ४२१
१२३	परदा ...	... श्री० रत्नेश्वरप्रसाद जी मेवार, बी० ए०, बी० एल्०	... ४१०
१२४	पातिव्रत्य का ढोंग ...	... श्री० जी० एस० पथिक, बी० ए०, बी० (कॉम०)	५२२
१२५	पिलानी-दिग्दर्शन ...	... श्री० चाँदकरण जी शारदा, बी० ए०, एल्-एल्० बी०	... ७६७
१२६	पूरब और पश्चिम ...	... श्री० जनार्दन भट्ट जी, एम० ए०	... ७६१
१२७	प्रेम का अत्याचार ...	... श्री० शिलानाथप्रसाद सिंह जी	... ५२७
१२८	फ़ीज़ी द्वीप में कन्याओं की दुर्दशा	... बी० एल० हीरालाल जी सेठ	... ७६६
१२९	बहुविवाह-प्रथा ...	... श्री० सूर्यकुमार जी वर्मा	... ५२४
१३०	वर्तमान शिक्षा और स्त्रियाँ ...	... श्री० डी० बी० बावले	... ४१८
१३१	वेद में परदा-प्रथा ...	... श्री० गणेशदत्त जी शर्मा, विद्यावाचस्पति	... ६५१
१३२	शारदा-बिल और मिथिला ...	... श्री० कालीकुमार दास जी, मैथिली-वाचस्पति	... ७६४
१३३	सामाजिक कुरीतियों में स्त्रियों का भाग	... श्री० रामावतार जी शर्मा, एम० ए०, विशारद	... ४१३
१३४	सामाजिक रूढ़ि की आवश्यकता है या नहीं ?	श्री० विद्याधर जी शास्त्री, बी० ए०	... ७५७
१३५	सेवा-धर्म ...	... श्री० ज़हूरबख़्श जी	... ५१८
१३६	स्त्रियों की लूट ...	... श्री० शीतलासहाय जी, बी० ए०	... ७७१
१३७	स्त्री-समाज में आत्म-हत्या की प्रवृत्ति	... 'एक मुस्लिम-हृदय'	... ४१६
१३८	स्वराज्य कब मिलेगा ? ...	... श्री० हृषीकेश जी शर्मा, सम्पादक 'हिन्दी-प्रचारक'	५२६
१३९	हमारी दान-शैली ...	... श्री० शिवनारायण जी टण्डन	... ७७४
१४०	हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाएँ	... श्री० दयाशङ्कर जी दुबे, एम० ए०, एल्-एल्० बी० (परीक्षा-मन्त्री)	... ६६८

* * *

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्रमाङ्क	लेख	लेखक	पृष्ठ
	शिल्प-कुञ्ज		
१४१	क्रोशिए के काम का कुत्ता ...	... कुमारी शीरीं क़ाज़ी ...	... ४२४
१४२	मोर ...	... श्रीमती शकुन्तलादेवी जी गुप्ता 'हिन्दी-प्रभाकर'	... ६१८
	* * *		
	सम्पादकीय विचार		
१४३	अपराध का विकास ...	... ...	... ४
१४४	आत्मघात का रोग ...	... ...	... ६८६
१४५	क़ानून और उसका विकास ...	... ...	... ६
१४६	क्रान्तिवाद ...	... ...	... ८
१४७	दण्ड का निर्णय ...	... ...	... ३
१४८	देशी नरेशों की विलासिता ...	... ...	... ५६६
१४९	फाँसी ...	... ...	... १३
१५०	विजयिनी बारदोली ...	... ...	... ३२६
१५१	शीर्षक-हीन ..	... .	... ८०२
१५२	हिन्दुओं का भयङ्कर ह्रास ...	... ...	... ४४६
	* * *		
	२—पद्य		
१५३	अनुरोध ...	... श्री० रमाशङ्कर जी मिश्र 'श्रीपति'	... ५९४
१५४	अन्तिम भाव ...	... श्री० आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव	... ३३
१५५	अवलम्ब ...	... श्री० रमाशङ्कर जी मिश्र 'श्रीपति'	... ८०१
१५६	आना ...	... श्रीमती महादेवी जी वर्मा ...	... ७०८
१५७	आँसुओं की माला ...	... श्री० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय 'हरिऔध'	... ५७९
१५८	उमङ्ग ...	... श्री० 'प्रभात' कविरत्न ...	... ४६७
१५९	उसास ...	... श्री० 'श्याम' विद्यार्थी ...	... ५१२
१६०	एक तारा के प्रति ...	... श्री० प्रबोधचन्द्र जी ...	... ४९४
१६१	कौन ...	... श्री० नृसिंह जी पाठक 'अमर' विशारद	... ६१२
१६२	चन्द्र ...	... श्री० रमाशङ्कर जी मिश्र 'श्रीपति'	... ७२८
१६३	चित्र-दर्शन ...	... श्री० रमाशङ्कर जी शुक्ल, एम० ए० 'रसाल'	... ४०५
१६४	डायर ...	... श्री० 'रसिकेश' ...	... १२३
१६५	दमयन्ती-विलाप ...	... प्रोफ़ेसर मणिराम जी गुप्त ...	... ७०३
१६६	दरिद्रता ...	... श्री० गुरुसहाय जी 'विरक्त' ...	... ७४७
१६७	दुख की राह में ...	... श्री० रामलोचन जी शर्मा 'कण्टक'	... ७९४
१६८	देव ! ...	... श्रीमती महादेवी जी वर्मा, श्रीवास्तव	... ५२९
१६९	नाविक का गान ...	... श्री० हरीन्द्रनाथ जी चट्टोपाध्याय	... ७९७
१७०	निशीथ-चिन्ता ...	... श्री० रामनरेश जी त्रिपाठी ...	... ४०८
१७१	निष्ठुर ...	... श्री० कालीप्रसाद जी भटनागर 'विरही'	... ५००
१७२	पञ्चभूत ...	... ,, ,, ...	... ३६६

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्रमाङ्क	लेख		लेखक	पृष्ठ
१७३—परिवर्त्तन	...	...	श्री० चन्द्रनाथ जी मालवीय 'वारीश'	... ३२५
१७४—परिचय	...	...	श्री० 'श्रीपति'	... ४७२
१७५—प्रतिशोच	...	...	श्री० 'सरस'	... ४८०
१७६—प्रणय-बध	...	...	श्रीयुक्त ???	... ६०
१७७—प्रणयाकर्षण	...	...	श्री० सियावरशरण जी	... ८७०
१७८—प्रश्नोत्तर	...	...	श्री० 'नवीन'	... १८५
१७९—प्रस्थान	...	...	श्रीमती शकुन्तला देवी जी गुप्ता 'हिन्दी-प्रभाकर'	... ८४०
१८०—प्राण-दण्ड	...	...	श्री० रामचरित जी उपाध्याय	... १
१८१—पुतली	...	...	श्री० गङ्गाचरण जी दीक्षित, एम० ए०	... ७५५
१८२—फाँसी	...	...	श्री० 'कुमार' बी० ए०	... १५
१८३—फाँसी की डोर	...	...	प्रोफ़ेसर रामनारायण जी मिश्र, एम० एस्-सी०	... ११६
१८४—फाँसी	...	...	'एक राष्ट्रीय आत्मा'	... २२६
१८५—फाँसी के तख़्ते से	...	...	श्री० शोभाराम जी धेनुसेवक	... ३२३
१८६—भयङ्कर पाप	...	...	श्री० कन्हैयालाल जी मिश्र 'प्रभाकर' विद्यालङ्कार	१९५
१८७—भीख	..	..	श्री० रामाज्ञा जी द्विवेदी 'समीर' एम० ए० (ऑनर्स)	४६०
१८८—मदिरा-पान	...	...	श्री० सूर्यनाथ जी तकरू	... ६६६
१८९—मैना की क्षमा-पत्र-प्रतीक्षा	...	..	श्री० दुर्गादत्त जी त्रिपाठी	... १६३
१९०—मृत्यु में जीवन	...	...	श्री० विद्याभास्कर जी शुक्ल, साहित्यालङ्कार	... २७
१९१—याचना	...	...	श्रीमती पार्वती देवी जी शुक्ला	... ३८४
१९२—रज्जुके	...	...	"एक एम० एस्-सी०"	... ५७
१९३—वनिता-विनय	...	...	श्री० शोभाराम जी 'धेनुसेवक'	... ६८५
१९४—वरदान	..	...	श्रीमती महादेवी जी वर्मा	... ४४५
१९५—वृक्ष	...	...	श्री० चन्द्रशेखर जी ओझा	... ६०६
१९६—विकाश	...	...	श्री० जटाधरप्रसाद जी शर्मा 'विकल'	... ६४०
१९७—विधवा की व्यथा	...	...	श्री० 'कुमार' बी० ए०	... ५७२
१९८—शहीद	...	...	श्री० 'प्रभात'	... ९९
१९९—शृङ्गार का अन्त	...	...	श्री० 'कुमार' बी० ए०	... ४९०
२००—सजल-प्रतीक्षा	...	...	कुमारी गङ्गादेवी जी भार्गव 'छलना'	... ७३५
२०१—सन्देश	...	...	श्री० सूर्यनाथ जी तकरू	... ४०
२०२—सन्देह	...	...	श्रीमती महादेवी जी वर्मा	... ५६५
२०३—संयोग और वियोग	...	...	श्री० सोहनलाल जी द्विवेदी	... ८२७
२०४—सिन्दूर	...	...	श्री० नृसिंह जी पाठक 'अमर' विशारद	... ७८४
२०५—सुवर्णमयी कमला	...	...	श्री० 'जटा'	... ८९०
२०६—हिन्दुओ ! सावधान !!	...	...	श्री० देवीप्रसाद जी गुप्त 'कुसुमाकर' बी० ए०, एल्-एल्० बी०	... ८३७
२०७—हिन्दू-विधवा के उद्गार	...	...	" " "	... ६५८
२०८—हे करुणाकर !	...	...	श्री० चन्द्रनाथ जी मालवीय 'वारीश'	... ९९९

* *

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

३—चित्र-सूची

क्रमाङ्क चित्र

१—तिरङ्गे

१—गुरु अर्जुनदेव को गर्म तवे पर भूना जा रहा है, ऊपर से गर्म तेल डाला जा रहा है।
२—गुरु नानक और अन्य सिक्खों से चक्की पिसवाई जा रही है।
३—टीपू सुलतान
४—तरुण तपस्विनी
५—देवी जोन का अन्तिम दर्शन
६—देवी मैना का अन्त
७—प्रणय-बध
८—प्राण-दण्ड के बाद महात्मा ईसा
९—बालक गोविन्दसिंह, गुरु तेग़बहादुर का सिर दिल्ली से लाने वाले भङ्गी-सिक्ख का प्रेम से स्वागत कर रहे हैं।
१०—भविष्य-चिन्तन
११—महापुरुष ईसा के प्राण-बध का रोमाञ्चकारी दृश्य।
१२—मीर क़ासिम
१३—मेरी के क़रल का करुणापूर्ण दृश्य
१४—रानी लक्ष्मीबाई, झाँसी

२—आर्ट-पेपर पर रङ्गीन

१५—अखिल भारतवर्षीय महिला-शिक्षा-कॉन्फ्रेन्स की प्रधाना तथा कार्यकारिणी-समिति का ग्रूप
१६—अखिल भारतवर्षीय महिला-शिक्षा-कॉन्फ्रेन्स, पटना के स्वागत-समिति की कार्यकारिणी सभा की सुयोग्य सदस्याएँ।
१७—अखिल भारतवर्षीय महिला-शिक्षा-कॉन्फ्रेन्स, पटना की स्वयंसेविकाएँ।
१८—कवि गङ्ग का प्राण-दण्ड
१९—कुमारी प्राणजम ठाकोर, बी० ए०
२०—कुमारी बचुबेन लोट वाला
२१—चिन्तिता
२२—नर-पिशाच नीरो के अत्याचार का एक नमूना
२३—प्रणय-कल्पना
२४—महात्मा ईसा का सिर

क्रमाङ्क चित्र

२५—महात्मा ईसा मृत्यु-दण्ड के लिए जा रहे हैं।
२६—मुग़ल-शासन में अपराधी को धरती में गाड़ कर उसे तीरों से बींधा गया है, फिर उस पर शिकारी कुत्ते छोड़े गए हैं।
२७—राजकुमारी मैया
२८-५०—व्यङ्ग चित्रावली—२३ चित्र
५१—श्रीमती धर्मशीला जायसवाल, बी० ए०
५२—श्रीमती शारदा दीवान, एम० ए०
५३—श्रीमती हंसा मेहता, बी० ए०
५४—श्रीमती रानी ललितकुमारी साहबा, मण्डी
५५—सूली द्वारा प्राण-हरण
५६—सिंह के बच्चे जीवित दीवार में चुने जा रहे हैं
५७—स्वर्गीय राजा राममोहन राय

३—छोटे

५८-७३—अछूत-सम्बन्धी १६ चित्र
७४—अपनी पुत्री-सहित श्रीमती भेसानियाँ
७५—अभागा चार्ल्स
७६—कानपुर ज़िले में अङ्गरेज़ी सेना के सिपाही एक गाँव में आग लगा रहे हैं। ग्राम के स्त्री-पुरुष निकल कर भाग रहे हैं।
७७—'काल्याँ-दा-बुर्ज'—अजनाला
७८—'काल्याँ-दा-खूह'—अजनाला
७९—काश्मीरी वेष में कुमारी कुँज़रू
८०—किश्तियों में बैठकर इलाहाबाद से भागते हुए हिन्दोस्तानियों पर अङ्गरेज़ी सेना का गोले बरसाना
८१—किसान-स्त्रियों के मध्य में श्रीमती पेटिट
८२—कुत्ते का नमूना
८३—कुमारी मीठूबेन पेटिट
८४—कुमारी मनीबेन पटेल
८५—कुमारी एम० लूनिस
८६—कुमारी एम० ए० जे० वाचा, बी० ए० (ऑनर्स)
८७—कुमारी राधा बहिन, स्वर्गीय दलबहादुर जी गिरि की कन्या, और श्रीमती राजकिशोरी देवी
८८—कुमारी गुलाबबाई मुकुन्दराव, बी० ए० (ऑनर्स)
८९—कुमारी मन्दाकिनी पण्डित

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्रमाङ्क	चित्र
९०—	कुमारी एस० श्रीनिवास गुरु
९१—	कुमारी चन्द्रकान्ता डोशी, बी० ए०
९२—	गिरोंदिस्त क़त्ल होने के लिए जा रहा है
९३—	गोमती-द्वारिका का दृश्य
९४—	चार्ल्स पर लगाए हुए अभियोगों का ह्वाइट-हाल में मुक़दमा चल रहा है।
९५—	चौक, इलाहाबाद के सात नीम के वृक्षों में से चार, जिन पर सन् ५७ में लगभग ८०० निर्दोष नगर-निवासियों को फाँसी पर लटका दिया गया।
९६—	जनरल लॉबर्ट ई० ली का आत्म-समर्पण
९७—	जून, १८५७ में बग़ावत के सन्देह पर हिन्दोस्तानी सिपाहियों का तोप के मुँह से उड़ाया जाना।
९८—	टीपू सुलतान
९९—	टीपू सुलतान के सिंहासन के शिखर का रत्न-जटित मोर।
१००—	टीपू सुलतान की मृत्यु के बाद उसके दो पुत्रों का आत्म-समर्पण।
१०१—	डॉक्टर मिस डी० एम० सतूर, बी० ए०, एम० बी०; बी० एस०
१०२—	डॉक्टर मथुरासिंह
१०३—	डॉक्टर अरुड़सिंह
१०४—	तरुण करतारसिंह
१०५-१०६—	ताँतिया भील-सम्बन्धी २ चित्र
१०७—	दस जून सन् १८५७ को पेशावर में हिन्दोस्तानी सिपाहियों का तोप के मुँह से उड़ाया जाना।
१०८—	देहली का अन्तिम बादशाह अभागा बहादुरशाह
१०९-११०—	देवी जोन सम्बन्धी २ चित्र
१११—	दो सुप्रसिद्ध महिला-कार्यकर्त्ता
११२—	धर्मपत्नी-सहित लुई १६वाँ
११३—	नाना साहब
११४—	पाड़ पर चार्ल्स मृत्यु की प्रतीक्षा में खड़ा है, और पलटन चारों ओर से पाड़ को घेरे हुए है।
११५—	पुलिस-स्टेशन—अजनाला
११६—	प्रेज़िडेण्ट लिङ्कन नीरो डगलस से बैठने का अनुरोध कर रहे हैं।
११७—	प्रेज़िडेण्ट लिङ्कन और स्कॉट
११८—	प्रेज़िडेण्ट लिङ्कन की मृत्यु के पश्चात् लोग शोकाकुल हो रहे हैं।

क्रमाङ्क	चित्र
११९-१३२—	फाँसी के भिन्न-भिन्न तरीक़े—१४ चित्र
१३३—	बम्बई पारसी-सोसाइटी की महिलाएँ
१३४—	बादशाह-बेगम ज़ीनतमहल
१३५—	बाबा जगतसिंह—अजनाला
१३६—	बाबू हरिनामसिंह
१३७—	बारदोली--सत्याग्रह के ६ प्रतिनिधियों का डेपुटेशन, जो गवर्नर से समझौते के लिए मिला था।
१३८—	बारदोली-स्वयंसेविकाओं का एक प्रभावशाली जत्था।
१३९—	बारदोली-सत्याग्रह-आन्दोलन में भाग लेने वाली कुछ प्रतिष्ठित महिलाएँ
१४०—	बिड़ला-हाईस्कूल, पिलानी
१४१—	बिड़ला-बोर्डिङ्गहाउस, पिलानी
१४२—	मध्य-प्रान्तीय महिला-शिक्षा-सम्मेलन में सम्मिलित महिलाओं का ग्रूप।
१४३—	मण्डी की आदर्श महारानी साहबा श्रीमती ललितकुमारी देवी।
१४४—	मृत्यु-शैया पर रोबेस्पियर
१४५—	मादाम रोलाँ
१४६—	मिस बप्पू
१४७—	मिस ई० सैमुअल
१४८—	मिसेज़ एल० रमुन्नी
१४९—	मिसेज़ जे० एस० जस्टिन
१५०—	मिसेज़ ए० ईपेन
१५१-१५२—	मेरी आँत्वानेत—२ चित्र
१५३—	मेरी आँत्वानेत मृत्युदण्ड के लिए जा रही है
१५४—	मेरी को मृत्यु-दण्ड की आज्ञा देते समय रानी एलिज़ाबेथ का चित्र।
१५५—	मेरी फाँसी के लिए जा रही है।
१५६—	मैसूर के बेज़लियन मिशन-स्कूल के शिक्षक-गण
१५७—	मोर का नमूना
१५८—	रानीपरज जाति की एक किसान-महिला
१५९—	लॉर्ड कॉर्नवालिस टीपू सुलतान के दो बच्चे बतौर बन्धक ले रहा है।
१६०—	लालबाग़, श्रीरङ्गपट्टन में टीपू सुलतान के महल का बाहरी दृश्य।
१६१—	लुई १५वाँ
१६२—	लुई १६वाँ

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्रमाङ्क	चित्र
१६३	लुई १६ वाँ बधस्थल जा रहा है
१६४	विधवा जापानी महिला मिसेज़ योने सुज़ुकी
१६५-१६७	वीर-युवक खुदीराम बोस-सम्बन्धी ३ चित्र
१६८	शङ्खोद्धार तीर्थ का दृश्य
१६९	शालोति कोर्दे
१७०	शास्त्री जी की अमेरिकन धर्मपत्नी श्रीमती मिनी जेनसन।
१७१	श्रीमती शारदा मेहता, बी० ए०
१७२	श्रीमती भक्त लक्ष्मी देसाई
१७३	श्रीमती श्रीराम भागीरथी अम्मल
१७४	श्रीमती एम० सोराबजी
१७५	श्रीमती गङ्गूबाई पटवर्द्धन
१७६	श्रीमती जयावती देसाई
१७७	श्रीमती इरावती कर्वे, एम० ए०
१७८	श्रीमती सुनीति देवी मित्र
१७९	श्रीमती एम० के० रामानुजुलु
१८०	श्रीमती रङ्गनायकी अम्मल
१८१	श्रीमती दादी बा मेहता
१८२	श्रीमती सीवान जानकी अम्मल
१८३	श्रीमती विद्यालङ्कृति रङ्गूबाई
१८४	श्री० सत्येन्द्रकुमार बसु
१८५	श्री० मास्टर अमीरचन्द्र
१८६	श्री० अवधबिहारी
१८७	श्री० भाई बालमुकुन्द (विद्यार्थी-जीवन में)
१८८	श्री० भाई भागसिंह
१८९	श्री० वतनसिंह
१९०	श्री० काशीराम
१९१	श्री० रहमतअली शाह
१९२	श्री० विष्णुगणेश पिङ्गले
१९३	श्री० बलवन्तसिंह
१९४	श्री० बन्तासिंह
१९५	श्री० केहरसिंह
१९६	श्री० जीवनसिंह
१९७	श्री० सोहनलाल पाठक
१९८	श्री० भाई रामसिंह
१९९	श्री० खुशीराम
२००	श्री० बन्तासिंह धामिया
२०१	श्री० वर्यामसिंह
२०२	श्री० किशनसिंह गर्गज
२०३	श्री० नन्दसिंह
२०४	श्री० रामप्रसाद 'बिस्मिल'
२०५	श्री० राजेन्द्रप्रसाद लहरी
२०६	श्री० रोशनसिंह
२०७	श्री० अशफ़ाक़ुल्ला ख़ाँ
२०८	श्रीरङ्गपट्टन में हैदरअली और टीपू सुलतान की समाधि।
२०९	सम्राट् चार्ल्स बध के लिए जा रहा है।
२१०	सरदार जगतसिंह
२११-२१३	साईंखेड़ा के कलियुगी महन्त-सम्बन्धी ३ चित्र।
२१४	सौ० सरस्वतीबाई ओवलेकर
२१५	सौ० सी० सञ्जीवराव
२१६	स्वर्गीय डॉक्टर केशवदेव जी शास्त्री, एम० डी०
२१७	हत्यारा बूथ प्रेज़िडेण्ट लिङ्कन की हत्या करने जा रहा है।
२१८-२२१	हिन्दू-अबलाश्रम, कलकत्ता-सम्बन्धी ४ चित्र

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कमला के पत्र

छप गई !
मूल्य ३) रु०

प्रकाशित हो गई !!
मूल्य ३) रु०

[सुनहरी जिल्द, तिरङ्गा कवर]

यह पुस्तक कमला नामक एक शिक्षित मद्रासी महिला के द्वारा अपने पति के पास लिखे हुए पत्रों का हिन्दी-अनुवाद है। इन गम्भीर, विद्वत्तापूर्ण एवं अमूल्य पत्रों का मराठी, बँगला तथा कई अन्य भारतीय भाषाओं में बहुत पहले अनुवाद हो चुका है। पर आज तक हिन्दी-संसार को इन पत्रों के पढ़ने का सुअवसर नहीं मिला था। इस अभाव की पूर्ति करने के लिए ही हमने इसका हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित किया है।

इन पत्रों में कुछ पत्रों को छोड़, प्रायः सभी पत्र सामाजिक प्रथाओं एवं साधारण घरेलू चर्चाओं से परिपूर्ण हैं। उन पर साधारण चर्चाओं में भी जिस मार्मिक ढङ्ग से रमणी-हृदय का अनन्त प्रणय, उसकी विश्व-व्यापी महानता, उसका उज्ज्वल पत्नि-भाव और प्रणय-पथ में उसकी अक्षय साधना की पुनीत प्रतिमा चित्रित की गई है, उसे पढ़ते ही आँखें भर आती हैं और हृदय-वीणा के अत्यन्त कोमल तार एक अनियन्त्रित गति से बज उठते हैं। दुर्भाग्यवश रमणी-हृदय की उठती हुई सन्दिग्ध भावनाओं के कारण कमला की आशा-ज्योति अपनी सारी प्रभा छिटकाने के पहले ही सन्देह एवं निराशा के अनन्त तम में विलीन हो गई। इसका परिणाम वही हुआ जो होना चाहिए—कमला को उन्माद-रोग हो गया। उसके अन्तिम पत्र प्रणय की स्मृति और उन्माद की विस्मृति की सम्मिलित अवस्थाओं में लिखे गए हैं। जो हो, इन पत्रों में जिन भावों की प्रतिपूर्त्ति की गई है, वे विशाल और महान् हैं। अनुवाद बड़ी योग्यता के साथ किया गया है और उसमें इस बात का विशेष रूप से ध्यान रक्खा गया है कि भाषा सरल, सरस और सुबोध हो और मूल लेखिका की स्वाभाविकता किसी प्रकार नष्ट न होने पाए। पुस्तक अपने ढङ्ग की अनोखी है। काग़ज़ ४० पाउण्ड एण्टिक, पृष्ठ-संख्या ३००, छपाई-सफ़ाई दर्शनीय, मूल्य केवल ३) रु०! स्थायी ग्राहकों के लिए २।) मात्र! पुस्तक सुनहरी सजिल्द है और ऊपर तिरङ्गा Protecting Cover भी है!!

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

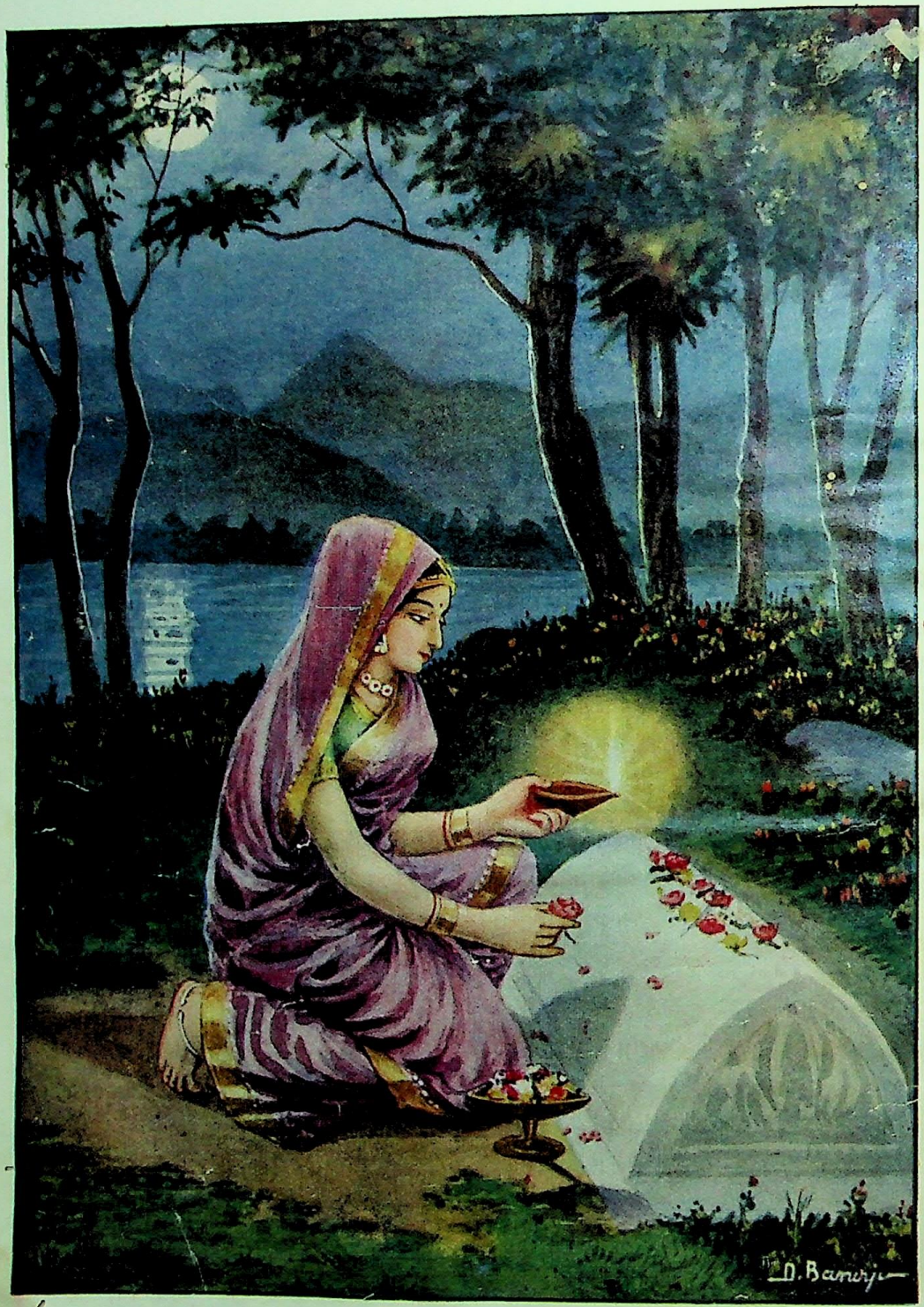

भविष्य-चिन्तन

करती हूँ मैं पूजा तेरी, किसी मृतक की स्मृति सुकुमार !
मेरे पति मेरे मरने पर, कभी बहावें आँसू चार !!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

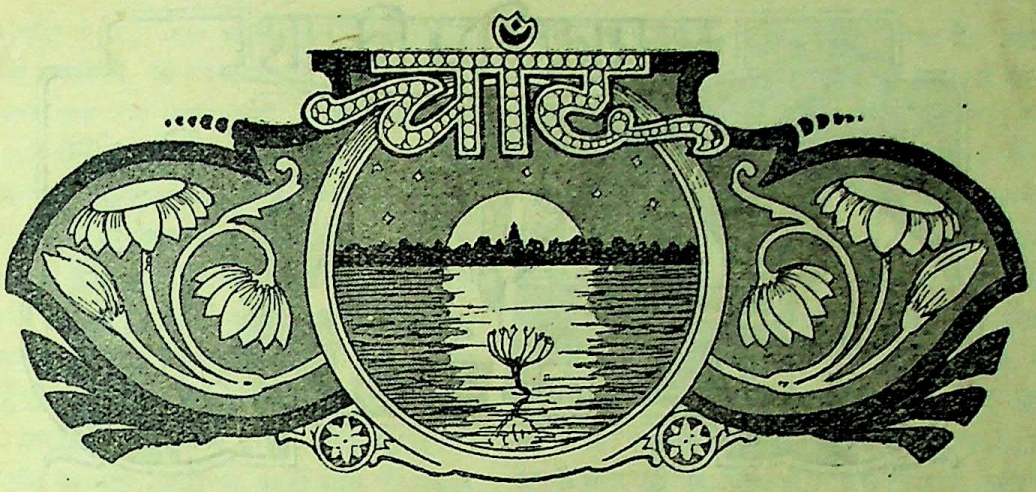

Highly appreciated and recommended for use in Schools and Libraries by Directors of Public Instruction, Punjab, Central Provinces and Berar, United Provinces and Kashmir State etc., etc.

वर्ष ७ खण्ड १ | दिसम्बर, १९२८ | संख्या २ पूर्ण संख्या ७४

ओ३म् राम स्वरूप आर्य [illegible] नौर
की स्मृति में सादर भेंट-
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

परिवर्त्तन

[रचयिता—श्री० चन्द्रनाथ जी मालवीय 'वारीश']

हम थे जगाते सदा निद्रा-मग्न मानवों को,
कुम्भकर्णी नींद में स्वयं ही आज सोते हैं।
धन दान करते थे धनहीन याचकों को,
आज याचकों से दीन-हीन हमीं होते हैं॥
हम विश्व-व्यापी विश्व-प्रेम-बीज बोते रहे,
द्वेष का विषैला बीज आज हमीं बोते हैं।
दिन-रात रोने वालों को हम हँसाते रहे,
आज हमीं ऐसे हुए, रातों-दिन रोते हैं॥

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

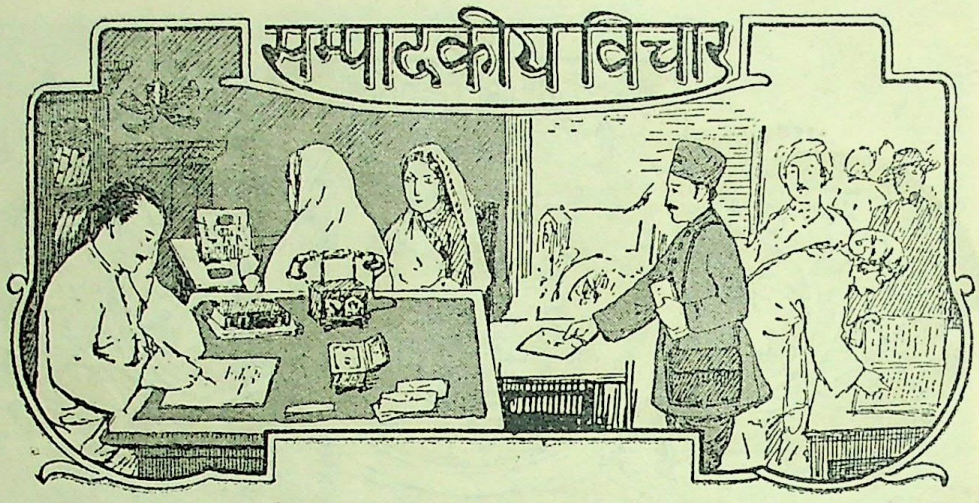
सम्पादकीय विचार

चाँद

दिसम्बर, १९२८

विजयिनी-बारदोली

रदोली की वीरतापूर्वक विजय ने समस्त ब्रिटिश-साम्राज्य का ध्यान बारदोली तालुक़े की ओर खींच लिया है। बारदोली रक्त-हीन महाभारत का कुरुक्षेत्र बन गया था और यह युद्ध उस हद तक पहुँच गया था कि यदि वह जारी रहता तो दुनिया भर में हाहाकार मच जाता।

बारदोली वह स्थान है जिस पर महात्मा गाँधी को गर्व है और उसने उस प्रतिष्ठा की रक्षा की। परन्तु ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट के सामने भी वह प्रश्न था, जिस पर वह या तो प्राण खो दे सकती है; या प्राण ले सकती थी। ऐसी ही अभूतपूर्व घटना वहाँ होते-होते रह गई, जिसके लिए संसार इस क्षुद्र प्रदेश की ओर दृष्टिपात कर आशङ्का कर रहा था।

बारदोली तालुक़ा सूरत से २० मील दूर ताप्तीघाटी रेलवे के निकट है, इसकी आबादी ८६ हज़ार है। यहाँ खेती के योग्य ज़मीन १२,६०० एकड़ है, जो १७,००० खातेदारों में बँटी है। खातेदार स्वयं अपनी ज़मीन को जोतते-बोते हैं। लगान पर मुश्किल से ३-४ हज़ार एकड़ होगी। सन् १८९७ में २० वर्ष के लिए इस तालुक़े में लगान का बन्दोबस्त हुआ था। उस समय वहाँ के किसानों पर ३४ लाख रुपया क़र्ज़ चढ़ रहा था। इस समय उन पर १ करोड़ के लगभग क़र्ज़ है। फिर भी सरकार ने ३० वर्ष के लिए २० फ़ी सदी लगान बढ़ा दिया है।

वीर-मूर्त्ति श्री० वल्लभभाई पटेल की अध्यक्षता में तालुक़े ने सरकारी लगान देने से इन्कार कर दिया था, सरकारी गुण्डों ने एक प्रकार से प्रजा को ख़ूब लूटा, सरकारी पठानों ने वहाँ की बहिन-बेटियों की आबरू लेने में कसर न छोड़ी और सरकार ने बेहया बनकर इन सबसे अन्त तक इन्कार किया। महीनों वहाँ घर-द्वार बन्द रहे और तालुक़े भर में सन्नाटा छाया रहा। वहाँ की प्रजा हिजरत करने, घर-बार छोड़ने, गोली खाने, और प्राणों पर खेलने को बिलकुल मुस्तैद बैठी थी। श्री० वल्लभभाई पटेल एक कर्मठ पुरुष और महात्मा गाँधी के चरम विश्वासी सेनापति हैं। इनके विषय में महात्मा जी ने लिखा था—"वल्लभभाई पटेल जाग्रत योद्धा हैं। उन्हें मेरी सहायता की आवश्यकता नहीं—पर वे जब मुझे बुलावेंगे, मैं पहुँचूँगा।"

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री० पटेल ने एक बार कहा था—"ऐसा मालूम होता है कि बारदोली का आन्दोलन शीघ्र समाप्त नहीं होगा। जब तक सब मरना नहीं सीखेंगे, तब तक स्वराज्य नहीं मिल सकता। क़ानून मान कर सबको चलना चाहिए," परन्तु प्रजा की सलाह के बिना माल-गुजारी बढ़ा लेने का जो नियम बना लिया गया है, वह ग़ैरक़ानूनी है। इस संग्राम में सभी विचार और सभी दल के लोग एक मत हैं, बारदोली के किसान मर-मिटेंगे, मगर अपने आप विसर्जन नहीं करेंगे। मैं सरकार को बारदोली में गोली चलाकर देख लेने की चुनौती देता हूँ। बारदोली के किसान इसके लिए तैयार हैं। मैंने उन्हें पीठ पर नहीं, छाती पर गोली खाने की सलाह दी है। गुजरात के किसान आज वे नहीं हैं जो पहले थे। आज वे चौकन्ने हैं। नहीं हैं तो मैं कर दूँगा। कोई भी सरकार केवल पशु-बल से अब शासन नहीं कर सकती। बारदोली के किसानों की माँग सिर्फ़ इतनी ही है कि बन्दोबस्त की फिर से जाँच कराई जाय। यह माँग पूरी न की गई तो वे मर-मिटना पसन्द करेंगे, पर लगान अदा न करेंगे।"

उन्होंने जो भाषण अपने किसानों के सम्मुख दिया था, वह इस प्रकार था:—

"जो तुम्हें अपनी शक्ति का पूरा ज्ञान हुआ हो, तुमने हवा साफ़ की हो, तुम्हारे दिल साफ़ हो गए हों, तो तुम्हारी ज़मीन के टुकड़े को कोई भी हाथ नहीं लगा सकता। तुम्हारे बर्तन और वस्त्र उठाने वाला भी कोई नहीं मिलेगा। इसी शक्ति की शिक्षा देने के लिए मैं यहाँ आया हूँ। जब सरकार ने अपने से लड़ाई लड़ना ही चाहा, तब हम भी उसे लड़ कर बता रहे हैं। एक समय बारदोली, आनन्द और बोरसद-सत्याग्रह के युद्ध में अपना कौशल बतलाते खेड़ा को अवसर मिला और उसने कर बताया। अब तुम्हारा अवसर आया है, तुम लड़कर बतलाओ। आज तो तुमने ऐसी लड़ाई लड़ना आरम्भ किया है कि जिससे भारत-वर्ष का नाम रहने का है। अमर तो कोई रहने का नहीं है। ज़र-ज़मीन सब पड़ा रह जाएगा, नाम बस एक रहेगा। लाख, सवा लाख रुपए का अधिक लगान देना हो तो जैसे-तैसे करके उसे भी भरो। इतना ख़र्च करते हो उतना और सही। पर यह लगान जो तुम्हें ग़लत साबित कर, तुम्हारे पास से लिया जाता है। सरकार कहती है कि तुम ज़मीन के मालिक हो। तुम्हारे घर बड़े हैं, तुम्हारे खेत आबाद हैं; और रुपया ख़र्च नहीं करना पड़ता, तुम झूठ बोलते हो। तुम्हारे नेता झूठे हैं। मैं यह कहता हूँ कि यह अपमान सहकर लगान भरने की अपेक्षा मरना अच्छा है। सरकार को हर काम में अपनी ही बात सच्ची करनी है। जब सरकार गुजरात के किसानों को झूठा कहती है, तब मुझसे यह सहन नहीं होता। जब तक सरकार के मुँह से यह भाषा दूर न हो, तब तक तुम्हारी इज़्ज़त कहाँ है? इस इज़्ज़त के लिए लड़ो, मर जाओ, सरकार से कहो कि सचाई का दावा हो तो अपनी बात पूरी कर दिखाओ। एक तुम्हारा और एक हमारा, इस प्रकार पञ्च नियुक्त कर सारी बातें उनके सामने रक्खो। हम झूठे नहीं हैं, टण्टा तो तू करती है, तेरे ही भाई-बिरादर झूठे हैं, यह हम सिद्ध कर बता देना चाहते हैं। युवाओं को यही गाँव के चौकी-दार तलासी चक्कर मारते फिरें। सन्ध्या में तो सबके साथ घूमा जा सकता है। ज्यों-ज्यों लड़ाई लड़ोगे, त्यों-त्यों तुम्हें शिक्षा मिलेगी, और कुशल बनोगे, और इस प्रकार के बन जाओगे, तभी स्वराज्य की लड़ाई सीखोगे। तुम्हें देखकर पड़ोसी भी तुम्हारा पाठ सीखेंगे। इसी में हमारे हिन्दुस्तान के किसानों की माँग समाई है। हमें सरकार सुखी कहती है। हमारे समान सुखी आदमी थोड़ा भी दुख न सह सकें तो जीना वृथा ही है। जो दलित दुखी हैं, उन्हें क्या सीखना है। मातर तालुक़ा तुम्हारी अपेक्षा एक समय सुखी था, सबसे धनवान गिना जाता था, तुम्हारे मकानों की अपेक्षा वहाँ बड़े-बड़े मकान थे। वह आज भिखारी में भिखारी है।

"मुहमदाबाद में, धन्धुका-धोलका में भी ऐसी ही अवस्था है। तुम कुछ सुखी हो तो ईश्वर की कृपा से हुए हो। इसमें तुम्हारी बुद्धि का कारण नहीं है। लोग अफ़्रीका गए, महायुद्ध हुआ, थोड़े वर्ष में रूई का भाव चढ़ गया, पर यह युद्ध हमेशा के लिए नहीं हुआ। लगान तो हमेशा के लिए है। तीस वर्ष तक, सवा लाख वार्षिक अधिक लगान भरना पड़ेगा। इसलिए पहले से ही विचार कर सरकार से कह दो कि तुम्हारा मामला झूठा है। हमसे यह नहीं दिया जा सकेगा। ईश्वर तुम्हें इतनी बुद्धि और सत्य पर क़ायम रहने की शक्ति प्रदान करे।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अमलदार ग़लती नहीं करते

"हम कुछ सरकार का राज्य पलटने के लिए नहीं निकले हैं। पर इस लगान की लड़ाई में लड़ते हुए हमें यह विदित हो जायगा कि यह राज्य एकदम पोला है, फूँक से उड़ जाय, ऐसा ही है। उसकी निर्बलता भूत की निर्बलता के समान है। भूत दीखता नहीं है, उसी प्रकार सरकार भी नज़र से दीखती नहीं है।

"ब्रिटिश-राज्य में एक क़ायदा है कि राजा कोई खोटा काम नहीं कर सकता है। इसका अर्थ यह है कि राजा चाहे जो गुनाह करे, तो भी प्रजा ने तो राजा की सारी सत्ता मर्यादित कर अपने हाथ में ले ली है। अब केवल हिन्दुस्तान में यह क़ानून लागू पड़ता है और यहाँ आगे बढ़ कर यह भी कहा जाता है कि राजा तो गुनाह करता ही नहीं है। पर उसके नौकर-चाकर भी भूल नहीं करते। रेवेन्यू-विभाग के एक लगान लगाने वाले अमलदार ग़लती कर डाले, पर वह ग़लती न गिनी जाय। वह गाँव के चौकीदार के पास से आँकड़े इकट्ठा करे। चौकीदार बेचारा यह जानता तक नहीं है कि आँकड़ों का क्या उपयोग होगा? तीन दिन में वर्षों के आँकड़े इकट्ठे कर लिए जाते हैं, और इन आँकड़ों के आधार पर लगान ढाँक कर बैठा दिया जाता है। मैंने ग़लती प्रकट कर कहा यह तो बड़ी भद्दी भूलें हैं। ऐसी भूलों से तो ग़रीब किसान मर जायँगे, तो वे हमसे कहते हैं कि हमारे अमलदार बहुत होशियार हैं और निपुण गणितज्ञ हैं।

"गाँव-गाँव फिर कर उसने रिपोर्ट तैयार की है, मैंने कहा कि यह बात बिलकुल झूठी है। उनके बन्दोबस्त के कमिश्नर की रिपोर्ट पर से उनकी ग़लती मैंने प्रकट कर दिखाई। तिसपर भी अमलदार ग़लती नहीं करते।

"इससे अब मैं किसानों को तैयार होने की शिक्षा देने के लिए आया हूँ। पर हमें इस प्रकार तैयार होना चाहिए कि संसार में कोई अपनी निन्दा न कर सकें, जिसमें सत्य हमारी ओर हो। हमारी इस लड़ाई में कोई हमारी ग़लती बतलावे, ऐसा कभी नहीं।"

अब बारदोली-लगान के गुण-दोष पर विचार करना आवश्यक है। बारदोली का नया बन्दोबस्त मिस्टर जयकर नामक एक अफ़सर ने किया। उन्होंने अपनी सिफ़ारिशें सन् १९२५ के नवम्बर महीने में पेश कीं। उन्होंने तीस सैकड़ा लगान बढ़ाने की सूचना दी। लगान के अमलदार मि० अण्डरसन मि० जयकर की सिफ़ारिशों से राज़ी नहीं हुए और उनसे जुदे विचार प्रकट कर २९ सैकड़ा लगान बढ़ाने की सिफ़ारिश की। बम्बई-सरकार ने अपने इन दोनों अफ़सरों की बात मिलती न देखकर, २२ सैकड़ा लगान बढ़ाया। इस प्रकार तहसील का लगान ५,१४,७६२ रुपए से बढ़कर ६,२१,००० बढ़ गया। इस पर बारदोली के किसानों का कहना यह है कि इस तहसील पर हद दर्जे तक लगान बढ़ाया जा चुका है, उसमें ज़्यादा लगान बढ़ाने की ज़रा भी गुञ्जाइश नहीं रही है। इस तहसील में ज़मीन रखने वालों की संख्या इस प्रकार है:—

१ से ५ एकड़	... ...	१०,३७९
६ से २५½ "	... ...	५,९३६
२६ से १०० "	... ...	८२९
१०१ से ५०० "	... ...	४०

यह प्रकट है कि २५ एकड़ से अधिक ज़मीन जिन किसानों के पास नहीं है, वे ख़ुद खेती करते हैं। अधिक ज़मीन रखने वाले ही, दूसरे किसानों से खेती कराते हैं। इस हिसाब से १६,३१५ किसान हैं, जिनकी कुल १,२७,०४५ एकड़ ज़मीन पड़ती है। (प्रत्येक किसान को ८ एकड़ ज़मीन पड़ती है) वे अपनी-अपनी ज़मीन जोतते-बोते हैं। बड़े ज़मींदार तो केवल ८६९ हैं। इतने छोटे किसानों को बड़े ज़मींदारों में रखकर लगान बढ़ाना सरासर अन्याय है। लगान तो दर-असल में ज़मीन-लगान-क़ानून की १०७ वीं क़लम के अनुसार बढ़ाना चाहिए था। १६,३१५ किसानों की ज़मीन की क़ीमत और उससे उन्हें जो नफ़ा मिलता हो उसके आधार पर लगान बढ़ाया जा सकता था। बारदोली के किसानों की दलील यह है कि तुम हमारा लाभ देखो, पर सरकारी अमलदार तो पैदावार के दाम देखते हैं। किसान कहते हैं कि डेढ़ एकड़ में ख़र्च वग़ैरह लगाकर क्या पड़ता है, उसमें कितनी पैदावार होती है, और हमें अन्त में उससे क्या बचता है; उस पर लगान लगाओ। पर बन्दोबस्त के अफ़सर तो बाज़ार में पैदावार के दाम देखकर लगान बढ़ाने की ज़िद में हैं। आठ एकड़ के किसान को इतना नफ़ा नहीं मिलता कि उस पर लगान बढ़ा दिया जाय। किसान अपनी इस दलील को साबित करने के लिए तैयार हैं, और उन्होंने यह भी घोषित कर दिया

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कि ५० सैकड़ा नफ़ा की घोषणा स्वीकार करने में आवे, तो भी लगान बढ़ाना उचित नहीं प्रकट होता। यदि नफ़ा २५ सैकड़ा पर शुमार करने में आवे तो सरकार को मौजूदा लगान में जल्दी से कमी करनी चाहिए। उनकी इस शिकायत से तहसील की अवस्था प्रकट होती है। ये किसान तो सरकारी रिपोर्ट में लगाई हुई पैदावार की क़ीमत और उसमें लिखी हुई सच्ची बातों को झूठी साबित करने के लिए तैयार हैं। यही नहीं, वे तो सरकार पर यह भी इल्ज़ाम लगाते हैं कि लगान-बन्दोबस्त के अफ़सर मि० जयकर को जैसी जाँच-पड़ताल करनी थी सो उन्होंने कुछ भी नहीं की। बहुत से थोड़े गाँवों में वे गए और लगान बढ़ाने के सवाल पर किसानों की आवाज़ सुनने का ज़रा भी मौक़ा न दिया गया। उन्होंने ग़लत रिपोर्ट तैयार की, अपने ऑफ़िस में बैठे-बैठे ही रिपोर्ट लिखी, और अपनी ३०) सैकड़ा की वृद्धि के लिए कुल पैदावार के भाव का आधार ऊँचा रक्खा। मि० जयकर की जाँच को यदि जाँच कहा जाय तो फिर भी वह जाँच इतनी ग़लत है कि उस जाँच का कोई मूल्य नहीं रहा। पर मि० अण्डरसन ने तो दूसरे ही उद्देश्य से मि० जयकर की रिपोर्ट पर अपनी सम्मति दी। मि० अण्डरसन का उद्देश्य वही है, जो कौन्सिल के प्रतिनिधियों का कौन्सिल में रहा। मि० अण्डरसन कहते हैं कि मि० जयकर ने अपनी सिफ़ारिश कुल पैदावार की क़ीमत के आधार पर की है। वह अनुचित है। उनकी इस सिफ़ारिश से मैं सहमत नहीं हूँ, उनकी किसी भी सिफ़ारिश को नहीं माना जा सकता। इस अवस्था में मि० अण्डरसन ने फिर नए सिरे से जाँच करने की सरकार से सिफ़ारिश की थी। पर बन्दोबस्त के अफ़सर की प्रेस्टिज के कारण यह सब कुछ कहकर भी अन्त में आँकड़ों के आधार पर कभी सिफ़ारिश कर दी। मि० अण्डरसन का काम अनेक सरकारी अफ़सरों ने अनुचित बतलाया। इन अफ़सरों ने कहा कि इस नई सिफ़ारिश का कोई महत्व नहीं है, क्योंकि ये आँकड़े थे ही ग़लत और बिना किसी जाँच के किताबों में लिख लिए गए हैं। मि० जयकर ने सच्ची जाँच न कर, लगान के क़ानून को पैरों तले कुचला है और मि० अण्डरसन मि० जयकर की बातें जानकर भी इस क़ानून के उल्लङ्घन करने में उससे भी एक पैर आगे बढ़ गए हैं। लगान का क़ानून साफ़ है कि जो आँकड़े इकट्ठे किए जायँ, उनका तब तक उपयोग नहीं किया जा सकता जब तक कि उनका अर्थ सब प्रकार से समाधान न हो जाय। पर यहाँ तो सच्चे आँकड़े ही न तैयार कर, भयङ्कर ग़लती की गई है। एक ओर मि० अण्डरसन मि० जयकर पर यह इल्ज़ाम लगाते हैं कि तुमने सच्चे आँकड़े मालूम करने और किसानों की ज़मीन का विस्तार जानने में ज़रा भी प्रयत्न नहीं किया। दूसरी ओर यह होते हुए भी अण्डरसन साहब ख़ुद ग़लत निर्णय पर आ जाते हैं कि कम से कम आधी ज़मीन ज़मींदारों की है, जो ख़ुद खेती नहीं करते हैं। मि० अण्डरसन की ग़लती के दो कारण हैं। एक तो उन्होंने जल्दी में सात वर्ष के आँकड़ों को ४२,९२३ एकड़ एक वर्ष के गिन लिए हैं, और दूसरे मि० जयकर के शुमार में २३,९९५ एकड़ ज़मीन अर्थात् कुल विस्तार की १८ सैकड़ा ग़ैर-किसानों के हाथ में है—इस बात की अटकल लगाई है।

इन्हीं कारणों से मि० जयकर और मिस्टर अण्डरसन दोनों की रिपोर्ट ग़लत है। और सरकार का नियत किया हुआ २२ टका का नया लगान बिना किसी आधार के मनमाना लगाया हुआ लगान है। इस अन्याय-युद्ध के सम्बन्ध में देश के प्रायः सभी महापुरुषों ने सरकारी नीति के प्रति अपना विरोध प्रकट किया था।

महात्मा गाँधी का कथन था—

"अफ़वाह गरम है कि सरकार दमन की तैयारी कर रही है और तत्काल की ज़ब्ती की कारवाई रोक दी गई है। परन्तु सत्याग्रहियों पर ऐसी अफ़वाहों का कोई असर नहीं होना चाहिए। सरकार क्या करेगी और क्या न करेगी, इस ओर उनकी उपेक्षा होनी चाहिए। पर उन्हें अपनी ओर से सजग रहना चाहिए, जिसमें सरकार उन पर असावधान दशा में वार न कर सके। सत्याग्रहियों को अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहना चाहिए।"

श्री० केलकर का कथन था—

"मालगुज़ारी बढ़ाना सरकार के लिए ज़रूरी है, इसी से उसने मालगुज़ारी बढ़ाई है, परन्तु दुख की बात है कि यह दायित्व-हीन सरकार प्रजा के मर्म-भेदी और युक्ति-सङ्गत प्रतिवाद की उपेक्षा कर रही है। इसलिए किसानों के लिए क़ानून हाथ में लेने के सिवा और कोई उपाय ही नहीं रह जाता। बारदोली के किसानों ने मालगुज़ारी की

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वृद्धि के विरुद्ध सत्याग्रह करके अपनी आत्म-निर्भयता का ही परिचय दिया है। 'टाइम्स' ने इस आन्दोलन को बोलशेविकों का आन्दोलन कहकर जो नीचता की है, उससे बढ़कर नीचता दूसरी हो ही नहीं सकती। गवर्नर की काउन्सिल के भारतीय सदस्यों और मन्त्रियों ने इस कर-वृद्धि का समर्थन करके बताया है कि देश के लोगों का कहाँ तक पतन हो गया है। ऐसे ही लोगों के बुद्धि-दोष से असहयोग की वृद्धि हो रही है। भारतीय प्रजा अनुभव करती जा रही है कि सरकार के साथ सहयोग करना सम्भव ही नहीं है। यदि सिविलियनों की यही मनोवृत्ति रही तो भारतीयों को बारदोली के किसानों को सहायता देने के सिवा कोई उपाय नहीं रह जायगा। यदि बारदोली के किसानों की पराजय हुई तो वह समस्त देश के किसानों और नेताओं की पराजय होगी; और वह देश के लिए अत्यन्त अपमान की बात होगी।"

श्री० हृदयनाथ कुँजरू का कथन था—

"बारदोली के बन्दोबस्त की कार्यवाही जिस ढङ्ग से की गई है वह अवैध है और किसी प्रकार उचित नहीं ठहराई जा सकती। बारदोली के किसानों का अद्भुत भाव और हिम्मत मैं अपनी आँखों से देख आया हूँ। यदि उनके पक्ष में न्याय न होता तो यह कदापि सम्भव न था कि हज़ारों किसान हँसते-हँसते इतनी हानि और कष्ट सहते। बारदोली-सत्याग्रह न बोलशेविकों का कार्य है और न क्रान्तिकारियों का। वह सरकारी अन्याय और ज़बरदस्ती के विरुद्ध लड़ी जाने वाली एक सीधी-सादी लड़ाई है। बारदोली के किसानों की माँग बहुत नरम माँग है। यह बात 'पायोनियर' तक को स्वीकार करनी पड़ी है। मैं आशा करता हूँ कि अब भी सरकार का विवेक जाग्रत होगा और वह इस नरम माँग को स्वीकार कर लेगी, अन्यथा सम्पूर्ण भारत राजनीतिक दल-भेद का विचार न कर, दृढ़ता से बारदोली के किसानों का साथ देगा।"

डॉक्टर सत्यपाल का कहना था—

"बारदोली के वीर आज भी अचल, वीर और कष्ट सहने को तैयार हैं। मुझे विश्वास है कि उस भूमि के प्रत्येक कृषक में त्याग, बलिदान, आत्म-विश्वास और अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहने की इतनी भावना है जितनी हममें से कइयों में आधी भी नहीं है। यदि सरकार को अपनी शान का विचार है तो उस तालुक़े के प्रत्येक सत्याग्रही को भी अपनी सम्मान-रक्षा का हठ है। मैं यह कहने के लिए तैयार हूँ कि यदि बारदोली-सत्याग्रह स्वतन्त्रता-मन्दिर का सोपान नहीं, तो कम से कम उसने हमें मुक्ति-पथ तो दिखा ही दिया है। अस्सी हज़ार शस्त्र-हीन योद्धा-एक सशस्त्र सरकार का कैसे मुक़ाबला कर सकते हैं, यह बात देखने योग्य है। वे हँसते हुए गोलियाँ खाने को तैयार हैं। औचित्य और सत्य के लिए जान देने को भी तैयार हैं। उन महात्माओं पर गोलियों और शस्त्र, जेल और ज़ब्ती का कुछ भी प्रभाव नहीं हो सकता। मेरे कान में एक महापुरुष की देव-वाणी गूँज रही है कि वह देश की सम्मान-रक्षा और प्रतिष्ठा पर अटल रहने के लिए अपने प्राण दे देगा, पर अत्याचार और पाशविक बल के आगे नत-मस्तक न होगा। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि सभी भारतीयों को ऐसे स्वाभिमानी और सत्य-प्रेमी के अनुकरण की प्रेरणा करे तथा समस्त देश से प्रार्थना करता हूँ कि धीरतापूर्वक सत्याग्रह की समाप्ति की राह देखे, जो अवश्य सन्तोषप्रद और मनोवाञ्छित प्रमाणित होगा। मेरी हार्दिक इच्छा है कि देश के कोने-कोने में इस आदर्श का अवलम्बन किया जावे। प्रत्येक देशभक्त मैदान में इस निश्चय के साथ आवे कि हम बिना किसी की सहायता के अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र करके रहेंगे। सरकार की दया, साइमन-कमीशन के सहयोग या भीख माँगने से स्वराज्य न मिलेगा। इतिहास हमें बतलाता है कि स्वतन्त्रता-प्रेमियों और ग़ुलामी की ज़ञ्जीरें तोड़ने के प्रयत्नशील योद्धाओं के पवित्र रक्त ने ही स्वतन्त्रता प्रदान की है। मैं उत्सुकता से उस पवित्र दिन के आगमन की बाट जोह रहा हूँ।"

श्रीमती सरलादेवी चौधरानी कहती थीं—

"बारदोली ने ही हमारी राजनीति को वर्षों के लिए पीछे ढकेल दिया था, और आज उसी के दृढ़ आधार पर हमारी राजनीति साँस ले रही है। भारतीय किसान और ज़मींदार कर-भार के नीचे दबे जा रहे थे, पर उन्होंने विरोध का साहस कभी नहीं किया। जिसके फल-स्वरूप उन्होंने असीम कष्ट सहे। अपराध डरपोक किसानों का भी था और अत्याचारी शासकों का भी। आज उन्होंने इस असह्य अपराध का विरोध करके, भारत की मुक्ति का द्वार खोल दिया है।"

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीमती बिसेण्ट ने कहा था—

"बम्बई की सरकार ने बारदोली के बहादुर किसानों की ज़मीनें ज़ब्त करनी शुरू कर दी हैं, क्योंकि उन्होंने बढ़े हुए लगान की वसूली के पहले बन्दोबस्त की दो बार जाँच किए जाने की माँग पेश करने का साहस किया था, पर सरकार कहती है कि ये ज़मीनें वापस न की जावेंगी, मुझे इसमें आश्चर्य नहीं है; क्योंकि अब से कुछ ही वर्ष बाद पहली स्वराज्य-सरकार इस अन्याय का प्रतिकार कर देगी। यदि इसी बीच में बारदोलियों की तादाद बढ़ती चली गई तो क्या होगा ?"

लाला लाजपतराय ने कहा था—

"सरकार के रोब का ख़ब्त आग में घी डाल रहा है। हमारी धारणा है कि सविनय अवज्ञा ग़ैर-क़ानूनी और अवैध नहीं है। अनुचित क़ानूनों और निष्क्रिय विरोध करने से जनता को रोकने के लिए कोई भी सरकार सर्व-शक्तिमान् नहीं बन सकती। इस देश की सरकार जनता की सरकार नहीं है। काउन्सिलें तक भी वस्तुतः प्रतिनिधिक नहीं हैं, उनमें सरकारी मनोनीत सदस्य ही भरे हैं। क़ानून की अवज्ञा को ग़ैर-क़ानूनी बताने का सरकार को हक़ नहीं है। हमें गवर्नर की चुनौती स्वीकार करके अपने अधिकार के वास्ते सब कुछ चुकाने को तैयार हो जाना चाहिए। बारदोली वालों को बहुत कष्ट सहने पड़ेंगे। पर यदि यह कष्ट सहना भी नहीं हो सकता तो हमें चुपचाप विदेशियों से अपनी स्वाधीनता को ख़ूब कुचलते रहने देना चाहिए। स्थिति १९२१ की सी हो रही है।"

गत १८ जुलाई, १९२८ को सूरत में बम्बई के गवर्नर से सत्याग्रह-समिति के नियुक्त ६ प्रतिनिधियों का एक डेपुटेशन इस विषय में समझौता कराने को मिला था, जिसमें (१) श्रीवल्लभभाई पटेल, (२) श्री कल्याण जी विट्ठल भाई, (३) श्री० अब्बास जी तैयब जी (४) श्रीमती शारदा सुमन्त मेहता (५) कुमारी मीठू बहिन पेटिट, (६) श्रीमती भक्ति वा गोपालदास देसाई। ये ६ व्यक्ति थे। डेपुटेशन से गवर्नर के मिलने के समय—कमिश्नर मि० स्मार्ट, कलक्टर हार्टशोर्न, रेवेन्यू-मेम्बर मि० रिड भी उपस्थित थे।

गवर्नर ने छूटते ही पूछा कि क्या यह किसानों का डेपुटेशन है ?

श्री० पटेल ने कहा—हाँ, मैं किसान हूँ, और यह किसानों का डेपुटेशन है। हम किसानों की बात स्पष्ट-रूप से रखने ही के लिए यहाँ आए हैं। सरकार और प्रजा दोनों की आबरू रहे, ऐसा ही कोई निश्चित साधन हम चाहते हैं। सरकार की इज़्ज़त में ख़लल डालना हम नहीं चाहते। तथा प्रजा पर दया दिखाकर कुछ किया जाय, यह भी हमें स्वीकार नहीं है—जो न्याय की बात है वही होनी चाहिए। सरकार जाँच कराने के लिए तैयार है तो समझ में नहीं आता कि किस क़ानून के अनुसार सरकार बढ़ाया हुआ लगान पहले माँगती है। जाँच होकर जो कुछ निश्चय हो वह दोनों पक्ष मान लें।

गवर्नर ने कहा :—

१—जाँच-कमिटी बनेगी, उसमें एक जज, एक रेवेन्यू-विभाग का अफ़सर और एक ग़ैर-सरकारी व्यक्ति रहेगा।

२—ज़ब्त किया गया माल तथा बेच दी गई चीज़ें नहीं मिलेंगी।

३—क़ैदियों का विचार करने पर यदि उचित समझा गया तो उन्हें छोड़ दिया जायगा।

४—पहले बढ़ा हुआ तमाम महसूल चुकता कर दिया जाना चाहिए।

डेपुटेशन ने निम्न शर्तें पेश कीं :—

१—कमिटी में एक जज तथा दो ग़ैर-सरकारी व्यक्ति हों।

२—सत्याग्रही क़ैदी छोड़ दिए जायँ, जिससे जाँच में ठीक न्याय मिल सके।

३—ज़ब्त ज़मीनें और माल वापस मिले।

४—टेलाटो तथा पटेल, जिन्होंने इस्तीफ़े दिए या सरकार ने नोटिसों द्वारा बर्ख़ास्त किया है, फिर से बहाल किए जायँ।

५—प्रजा जाँच-कमिटी का पूर्ण निर्णय होते ही पूरा महसूल भर दे।

उपरोक्त दोनों तरफ़ की शर्तों को देखने पर प्रकट हो जाता है कि गवर्नर की शर्तों में टाल-मटोल, अभिमान, अन्याय और बेपरवाही है, और श्री० वल्लभभाई की शर्तों में न्याय, प्रतिष्ठा, स्थिरता, गम्भीरता और सावधानता की गूँज है। इसके बाद श्री० पटेल ने अपने सब साथियों के साथ परामर्श करके जो जवाब गवर्नर को

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिया है, वह सभ्यता और शिष्टता का नमूना है। लेकिन गवर्नर ने खूँख़्वार पशु की तरह ग़ुर्रा कर काउन्सिल में जो कहा था, वह इस प्रकार है :—

"मैं समझता हूँ कि इस विषय में काउन्सिल के सामने सरकार की नीति को मैं घोषित कर दूँ। बारदोली की समस्या अखिल भारतीय रूप पकड़ चुकी है और इसका महत्व भी कई दृष्टियों से बहुत अधिक है।

"इस समय सारा झगड़ा एक ही प्रश्न पर केन्द्रित हो गया है, अर्थात् हिज़ मैजेस्टी दि किङ्ग एम्पेरर के राज्य में हिज़ मैजेस्टी का शासन माना जाना चाहिए या किसी ग़ैर-सरकारी व्यक्ति का या संस्था का? यह विषय ऐसा है जिसके निर्णय में सरकार अपनी सारी ताक़त आज़मा लेगी! बारदोली के प्रतिनिधियों को स्पष्ट बता देना चाहिए कि वे सरकार की शर्तों को स्वीकार करते हैं या अस्वीकार, ×××सरकार की ओर से मैं काउन्सिल के सामने वही शर्तें रखता हूँ, जो मैंने सूरत में किसान-प्रतिनिधियों के सामने रक्खी थीं। उन शर्तों का दुहराना व्यर्थ है। मैं यह साफ़ कह देना चाहता हूँ कि वे शर्तें केवल प्रस्ताव नहीं हैं, बल्कि सरकार का अन्तिम निर्णय है। वे न्यायपूर्ण हैं और किसी भी न्याय-प्रिय व्यक्ति के लिए स्वीकार के योग्य हैं। इससे पूर्व कि सरकार की ओर से तहक़ीक़ात का वचन दिया जाय, उन शर्तों का पूरा होना लाज़िमी है। वह अटल हैं—उनमें परिवर्त्तन की कोई गुञ्जाइश नहीं।

"काउन्सिल-सदस्यों को चाहिए कि वे १५ दिन के भीतर ही भीतर रेवेन्यू-मेम्बर के पास इस विषय का सम्वाद भेज दें कि उन्हें सरकार द्वारा प्रस्तावित शर्तें स्वीकार हैं या नहीं। ××× यद्यपि मुझे आशा नहीं कि काउन्सिल के सदस्य किसानों के हित को सामने रखते हुए उन शर्तों से इन्कार करेंगे; मगर यदि उन्होंने अस्वीकार किया तो उन्हें समझ लेना चाहिए कि सरकार तब अपने शासन और क़ानून की रक्षा के लिए प्रत्येक उपाय का आश्रय लेगी। कोई भी सरकार किसी भी व्यक्ति या संस्था द्वारा क़ानून के तिरस्कार को सहन नहीं कर सकती। ××× सत्याग्रह ग़ैर-क़ानूनी है—उसे करने वाले चाहे अपने को कितना ही न्याय पर समझते हों, पर क़ानून भङ्ग करना एक अपराध है।"

मि० नरीमैन ने इस भाषण को गिदड़-भबकी बताया है, मगर उधर पार्लिमेण्ट के हाउस आफ़ कॉमन्स में अर्ल विन्टरटन ने ललकारते हुए कहा था—"यदि बम्बई-गवर्नर की पेश की हुई शर्तें न मानी गईं तो बम्बई-सरकार को भारत-सरकार और ब्रिटिश-सरकार की ओर से पूर्ण स्वतन्त्रता है कि वह जैसे चाहे वैसे क़ानून की रक्षा के लिए राजद्रोही आन्दोलन को कुचल डाले। ××× जहाँ किसान लोग लगान अदा करने से इन्कार कर देंगे, वहाँ कोई गवर्नमेण्ट नहीं ठहर सकती। ब्रिटिश-सरकार बारदोली के राजद्रोही और ग़ैर-क़ानूनी आन्दोलन को मटियामेट कर देने के लिए बम्बई-सरकार के सब प्रयत्नों का समर्थन करती है।"

गवर्नर और भारत-मन्त्री के इस तरह ग़ुर्राने पर महात्मा गाँधी ने लिखा :—

"सत्याग्रहियों का कर्त्तव्य बिलकुल निश्चित है। उन्हें सदैव न्यायोचित समझौते के लिए तैयार रहना चाहिए। परन्तु वह यदि नहीं होता, तो उन्हें उसके लिए लड़ने को भी तत्पर रहना चाहिए। सत्याग्रही को प्रण की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बलि चढ़ा देनी चाहिए।"

उधर बारदोली के किसान, प्राणों की बलि चढ़ा देने की तैयारी कर चुके थे। अब तक ज़ब्ती और क़ुर्की तथा छोटी-छोटी बातें हो रही थीं, पर शीघ्र ही मामला बहुत गम्भीर होने वाला था। खेतों को जोतने-बोने का समय आ रहा था। बारदोली के किसानों ने यह ठान लिया था कि वे खेतों पर अपना क़ब्ज़ा बनाए रक्खेंगे, जो खेत सरकार ने नीलाम कर दिए हैं और दूसरों को बेच दिए हैं, उन पर उसी तरह क़ब्ज़ा रक्खेंगे और उन्हें जोतें और बोवेंगे। प्राण रहते वे खेतों से नहीं हटेंगे। ऐसी दशा में सरकार गोली चलाने को बाध्य होती। और यदि बारदोली के किसानों का ख़ून खेतों में गिरता तो निश्चय ही हिन्दुस्तान में वह आग लगती जो किसी के बुझाए न बुझती।

लण्डन के 'मैनचेस्टर गार्जियन' पत्र ने, जोकि मज़दूर-दल का पत्र है, लिखा था—"ऐसी आपदाओं को टालने का सबसे सुगम उपाय यही है कि प्रान्त का आर्थिक एवं कर-सम्बन्धी अधिकार मन्त्रियों ही के हाथों में दिया जाय। ××× पिछले वर्षों में रैयत को यह अच्छा हथियार मिल गया है। ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमिटी ने भी यही सिफ़ारिश की थी कि ज़मीन की मालगुज़ारी में

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आवृत्ति करने के सिद्धान्तों का व्यवस्थापिकाओं से सम्बन्ध कर देना चाहिए। पहले वे सिद्धान्त शासन-सम्बन्धी आज्ञाओं एवं क़ानूनों में ही पाए जाते थे और प्रान्तीय सरकारें भी इसे व्यवस्थापिका सभाओं से सम्बन्धित करने की सिफ़ारिश नहीं करती थीं, क्योंकि उन्हें भय था कि सदस्य ऐसा संशोधन उपस्थित करेंगे जिससे मालगुज़ारी का बढ़ाना प्रायः बन्द ही हो जायगा। × × × सरकार के विरुद्ध प्रचार करने का यह एक अच्छा साधन है और यह सब साधनों से कहीं आकर्षक है, इसलिए कि उपाय भी यही है कि ज़मीन की मालगुज़ारी और प्रान्त का आर्थिक प्रबन्ध मन्त्रियों को सौंप दिया जाय, जो व्यवस्थापिकाओं के सामने इसके लिए दायी हों। आबकारी के कर के सम्बन्ध में मन्त्रियों तथा व्यवस्थापिकाओं ने भी अच्छा प्रबन्ध किया है। अतः यह मानने के काफ़ी कारण हैं कि ज़मीन की मालगुज़ारी के सम्बन्ध में भी वे वैसा ही करेंगे। शहर स्वयं कोतवाली सिखलाता है।"

* * *

तालुक़े के मनुष्य कहाँ तक क़ुर्बानी को तैयार थे,

६ प्रतिनिधियों का डेपुटेशन, जो गवर्नर से समझौते के लिए मिला था। बीच में श्री० वल्लभभाई पटेल खड़े हैं।

इसका सम्बन्ध ख़ास किसानों से है, जो राजनीति से प्रायः विरक्त ही रहते हैं। ज़मीनों की मालगुज़ारी पर ही प्रान्तीय सरकार स्थित है। और कोई सरकार इसकी सङ्गठित चेष्टा को अस्वीकार नहीं कर सकती। साथ ही ज्यों-ज्यों किसान राजनीतिक नेताओं को नौकरशाही के विरुद्ध नेतृत्व करने के लिए निमन्त्रित करेंगे, त्यों-त्यों सरकार का अन्त निकट होता जायगा। और यदि ऐसी ही ज़िद कर हम लोग हठधर्मी पर ही क़ायम रहेंगे तो निश्चय है कि उसका अन्त भी इसी के द्वारा होगा। इसका इसका अनुमान एक किसान की बातचीत से लग जायगा।

"तुमने सरकार की अन्तिम विज्ञप्ति तो पढ़ी होगी?"

"जी हा, पढ़ी तो है। इसके तो यही माने होते हैं कि अब तक संग्राम जितना विकट हो रहा है, भविष्य में उससे बहुत विकट होगा।"

"आख़िर तुम लोग कब तक टिक सकोगे?"

"जब तक ज़रूरत पड़े, मेरा सारा गाँव पूरा सङ्गठित हो चुका है। गाँव में एक भी भस बची हुई नहीं है।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ज़ब्त करने को इस समय गाँव भर में एक फूटी कौड़ी भी नहीं मिलेगी। जब से यह संग्राम शुरू हुआ है, मैंने पीतल के बर्तनों में खाना छोड़ दिया है। अब हम मिट्टी की हाँडियों में पकाते हैं और मिट्टी की तश्तरियों में खाते हैं। उनकी इच्छा हो तो वह भी ज़ब्त कर ले जायँ। हम बाहर चटाइयों पर सोते हैं, खाटों पर नहीं। उन्हें कोई क्या ज़ब्त करेगा? और अब हम और ही उपाय सोच रहे हैं। अब हम घरों में क्यों बन्द रहें। हम तो किसी घर को धर्मशाला बना देना चाहते हैं। कोई ग़ैर खातेदार (जिसके ज़मीन नहीं है) धर्मशाला को चलावेगा। ज़रूरत होगी, तो भण्डारा भी चलेगा।"

श्रीयुत महाशय चन्द्रकान्त जी बारदोली स्वयं गए थे। वे अपना अनुभव इस प्रकार लिखते हैं—"सवेरे नौ बजे की धूप थी। सरसन गाँव के एक स्वयंसेवक के साथ मैं गया। वहाँ एक कुनबी के घर में एक वृद्ध स्त्री नाज साफ़ करती थी। "भाई पत्रिका लाए हो?" स्वयंसेवक को देखकर तुरन्त ही उसने पूछा।

"नहीं" उस स्वयंसेवक ने जवाब दिया, और पत्रिका दोपहर में या साँझ में मिलेगी, यह बतलाया।

कौतूहल होने पर मैंने पूछा—"माँ जी! तुम्हें तो बहुत कष्ट सहना पड़ता है?"

"ओ हँसने वाले भाई! पर उसके बिना हमारे दिन

बारदोली-स्वयंसेविकाओं का एक प्रभावशाली जत्था, जिन्होंने प्राण रहते अत्याचार न सहने की शपथ ली थी।

"मगर यदि तुम्हें घर-बार छोड़कर हिजरत करने की ज़रूरत हुई तो?"

"बहुत ख़ुशी से। हमने अपने बच्चों को रिश्तेदारों के यहाँ भेज दिया है। कुछ औरतें भैंसों के साथ चली गई हैं। सच पूछिए तो हम लोग सोने भर को घर में आते हैं।"

उपरोक्त बातचीत से यह तो प्रतीत होता है कि किसान अब स्वयं मर्दाने और वीर बन रहे हैं और अब भारत के किसान भारत के स्वामी बनेंगे, वह दिन भी शीघ्र आने वाला है।

सूने थे? ये हमारी दो भैंसे देखो—वे घर में बँधी हैं। अगर मैं उन्हें बाहर रक्खूँ, तो ज़ब्ती वाले उठाकर क़साई को सौंप दें। घर में भैंसों की सेवा करती हूँ, इसका मुझे कुछ दुख नहीं होता।" इतने में उसका लड़का नहा कर आया। स्वयंसेवक के साथ वह भी तैयार होकर चलने लगा। पर मेरा ध्यान उस वृद्धा की ओर था।

"माँ जी! इस साल ज़मीन बोई जायगी क्या?"—थोड़ी देर में मैंने पूछा।

"बोई जाय या न बोई जाय। हम तो वल्लभभाई जो कहें, उसकी राह देख रहे हैं। पेट पुरता खाने को इस

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धरती से न मिले, इतनी हद तक ईश्वर नहीं रूठा है। घर की इस ज़मीन के छोड़ने का अवसर तो आने का नहीं!"

"क्यों नहीं आवे?"—उसका लड़का बीच में बोला। "सरकार ज़मीन ज़ब्त करे तो फिर क्या होगा?"

"अरे क्या बात है? ज़मीन ज़ब्त कैसे करेगी? स्टीमर पर ज़मीन चढ़ाकर उसे विलायत तो नहीं ले जायगी?" यह सुनकर हम सब हँस पड़े। "ज़ब्त हुई ज़मीन में भी हम खेती करेंगे, सरकार को जो करना हो वह करे।"

गाँव में क्रूर पठान फिरते थे। स्त्रियाँ उनके दुष्ट व्यवहार जानती थीं, तो भी कितनी स्त्रियाँ घर से बाहर निकलने में नहीं हिचकती थीं। पठानों का विकराल स्वरूप उन्हें नहीं डराता था और न वे अपनी हिम्मत ही खोती थीं।

एक कुनबिन के घर हम गए। उस देवी से बात की। उसने कहा—"तीन दिन से मेरी भैंस दो-एक पठान बाँध कर ले गए हैं। मैं तो उस दुष्ट पठान के आगे जाकर कहने वाली हूँ कि, ओ नालायक़! मुझे ले जा न! इन बेचारे

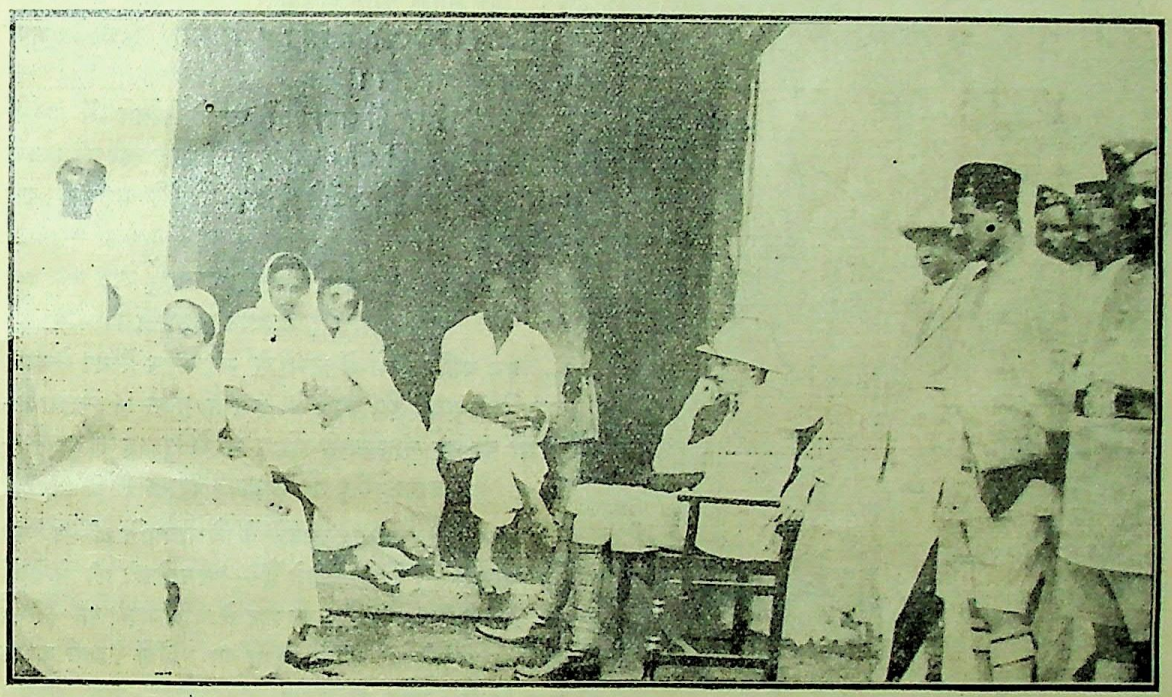

दो सुप्रसिद्ध महिला कार्यकर्त्ता

(१) कुमारी मीठूबेन पेटिट और (२) श्रीमती मेसानिया हिरासत में। आप ज़ब्ती का माल किसी को न ख़रीदने देने का प्रचार कर रही थीं, इसी जुर्म में पुलिस ने आपको गिरफ़्तार कर लिया था।

यह सुनकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। उस वृद्धा से फिर हमने बिदा ली। इस प्रकार जिन-जिन गाँवों में गए, वहाँ के वृद्ध, युवा या बालक, स्त्री या पुरुष किसी के घर में शोक के चिन्ह नहीं दिखाई पड़ते थे। भयङ्कर अत्याचारों से पीड़ित होते हुए भी मैंने देखा कि सबके मन में उत्साह है—जैसे कि उनके घर में महा उत्सव हो रहा हो।

निर्दोषों को किस लिए ले जाता है? इन्होंने तेरा क्या अपराध किया है? पर ये पापी सुनते नहीं। मुझे जानवर ले जाने का दुख नहीं है। मुझे जेल में क्यों नहीं ले गए? इनकी इस शैतानी से वल्लभभाई की सरदारी के नीचे मरना ठीक है।" इसी प्रकार जिस घर में जाओ, यही सुनने को मिलता था। सरकार की प्रतिष्ठा तो नष्ट हो गई थी। वहाँ से हम फिर एक भाई के घर में गए।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उसकी युवा पत्नी ने अपने ऊपर अत्याचारों का वर्णन करने के उपरान्त कहा—"भाई! हमारे गाँव से सरकार को फूटी कौड़ी नहीं मिलने की।"

श्रीमती शारदा मेहता, बी० ए०

आप सर्व-प्रथम गुजराती ग्रेजुएट महिला हैं, जिन्होंने अपना जीवन ही देश-सेवा में लगाने का पुण्य सङ्कल्प किया है। बारदोली सत्याग्रह-आन्दोलन में स्त्रियों ने जो भाग लिया, वह आपही के नेतृत्व और शिक्षा का फल था। महात्मा गाँधी ने एक बार कहा था कि "मुझे अरमान है कि एक बार मैं शारदा मेहता जैसी वीर माता के गर्भ से पैदा होऊँ।"

उसने फिर कहा—"यह सत्याग्रह क्या ऐसा-वैसा है। वर्षों तक सरकार इसी प्रकार ज़ुल्म करती जाय तो उसका परिणाम उसी के लिए ख़राब होगा।" फिर उसने उत्साह-पूर्वक कहा—"सौ दिन सास का तो एक दिन बहू का, इसी से हम लोगों के छकाने की बारी आई है।"

"आज तो इस गाँव में छोटे कमिश्नर की मोटर आई थी?"—मेरे साथी ने उससे पूछा।

"क्या करने के लिए?"

"और ज़ब्ती के लिए शिकार खोजते होंगे।"

"कौन सा मुँह लेकर अब ज़ब्ती करने आया होगा? और क्या ज़ब्ती करेगा? हमें ले जाय तो ज़ब्ती हो सकती है।" इस प्रकार गाँव की स्त्रियाँ सत्याग्रह के लिए तैयार दिखाई दीं। उनकी हिम्मत और श्रद्धा के आगे मुझे मस्तक झुकाना पड़ा।

एक दूसरे घर में गए, वहाँ घर के आँगन में युवती लड़कियाँ खेल रही थीं। कूद-कूद कर नाच रही थीं। उन बालिकाओं की ओर मैंने देखा, तो मेरे कान में यह आवाज़ आई :—

अमे लीधी प्रतिज्ञा पालशुँ रे,
बारदोली नी राखवा लाज।

इन बालिकाओं में अभी से यह सरल प्रेरणा देखकर आनन्दित हृदय हो, वहाँ से रवाना हुआ। इन बालिकाओं का यह गीत अभी भी कानों में सुनाई पड़ता है—

"बारदोली नी राखवा लाज।"

बारदोली-सत्याग्रह-छावनी के विभागपति श्री० डॉक्टर चम्पकलाल जी घीआ कहते हैं—"बारदोली की देवियों को भैंसें बड़ी प्यारी हैं। सरकार ने चालबाज़ी कर स्त्रियों के दिल दुखाने का प्रयत्न किया था। भैंसें ज़ब्त करना शुरू किया—उन्हें हर प्रकार से सताना शुरू किया। मूक प्राणी किसके आगे अपनी फ़र्याद करे? बैठ जाय या पैर मारे तो पीछे से पठान का डण्डा पड़े। घास, पानी और दाने के लिए कोई व्यवस्था नहीं। एक भैंस बेचारी सरकारी थाने में ही यमराज के घर में चली गई और सरकार के कपाल में काला टीका पोत गई। दूसरी भैंस का हाल बड़ा करुणाजनक था। उसे ज़ब्त कर ख़ूब मारा। इसलिए वह थाने पर पहुँचते ही ज़मीन पर गिर पड़ी, उससे खड़ा होना मुश्किल हो गया। देह सख़्त मार की चोट से सूज गई, मुँह और पैर में घाव हो गए। सात दिन तक यही अवस्था रही। नौकरशाही के अमलदार और बम्बई-सरकार के आदर्श

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पठान भैंस के इस बर्ताव से परेशान हो गए। थाने में मरे तो सरकार के सर पर बदनामी आवे, और गाँव में वापस ले जाने वाला उन्हें कोई नहीं मिलता था। ख़ुद वापस ले जाने में शर्म मालूम देती थी कि सरकार को बारदोली तहसील भर में भैंस ले जाने के लिए एक भी नौकर नहीं मिलता, और सरदार वल्लभभाई के पास तहसील के अस्सी हज़ार आदमी अमीर और ग़रीब तावेदारी में हाज़िर थे। पर भैंस के मरने का डर था। इससे रात के दो बजे भैंस को एक सरकारी गाड़ी में डालकर जिस किसान के यहाँ से उसे ज़ब्त किया था, उसी किसान के घर के आगे चुपचाप छोड़ आए। सवेरे गाँव के लोगों ने भैंस की दयाजनक अवस्था देखी। मुँह में से सफ़ेद फेन निकल रहा था। मरने की घड़ी आ गई थी। मूक प्राणी असहाय अवस्था में बिना हिले-डुले दुख सहन कर रहा था। बेचारे किसान ने इस मृत्यु-शय्या पर पड़ी हुई भैंस के घाव साफ़ किए, उसकी सेवा बर्दाश्त की!

पर दुष्ट, घातकी, नराधम जैसे-राक्षसों की मार से की हुई शिकार, पड़ी हुई भैंस अन्त में यमराज के दरबार में सरकार के दूतों की काली कथा कहने के लिए चली गई। हज़ार के क़रीब भैंसें ज़ब्त कर ली गईं, और ग़रीब किसानों की यह सम्पत्ति मामूली क़ीमत में क़साइयों के हाथ नीलाम कर दी गईं। अपने बच्चों से भी प्यारे जानवर क़साइयों के हाथों में जायँ—यह बारदोली के किसान नहीं सहन कर सकते थे। तिस पर भी उन्होंने आश्चर्यजनक शान्ति धारण की। वे यह मान बैठे कि जैसे अपने जानवरों को दूसरी बीमारियाँ घेर लेती हैं, वैसे नौकरशाही के रोग की बीमारी भी उनको सता रही है।

बारदोली के वीर किसान और उनकी वीराङ्गना देवियों की उपमा किससे दी जाय। अस्सी हज़ार स्त्री-पुरुष एक आदमी के रूप में काम कर रहे हैं। बालोद के सेठ दोराबजी, सेठ वीरचन्द भेनाजी तथा बारदोली क़स्बे के सेठ इस्माइल गवा के अविचल साहस, धैर्य, दृढ़ता और सहनशीलता के लिए उन्हें जितनी बधाई दी जाय, थोड़ी है। नौकरशाही ने तो इन तीन भाइयों से दुश्मनी का बदला लेने का निश्चय किया था। सेठ दोराबजी के यहाँ तीन-तीन बार

कुमारी मीठूबेन पेटिट

आप बम्बई के धन-कुबेर मि० पेटिट की कन्या-रत्न हैं। जिन्होंने आजीवन किसानों की सेवा करने का संकल्प किया है। बाढ़ के समय आपने पीड़ितों की जो सेवा की थी, वह स्वर्णाक्षरों में अंकित है। बारदोली-सत्याग्रह-आन्दोलन की आप एक प्रभावशालिनी कार्यकर्त्री थीं। आजकल आप मद्य-निषेध सभा की ओर से बड़े ज़ोरों से कार्य कर रही हैं। प्रान्तीय सरकार पर आपके कार्य का बड़ा आतङ्क है।

ज़ब्ती की। तेईस सौ रुपए की ज़ब्त की हुई शराब को केवल ९९॥) रु० में बेच दी। इतने पर भी लगान की

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रक़म पूरी नहीं हुई, तो बाक़ी के लगान के लिए उनकी क़रीब ३० हज़ार रुपए की ज़मीन ख़ालसा कर दी। दूकानें बन्द कर दीं गईं। तब आबकारी-विभाग की ओर से यह

श्रीमती भक्त लक्ष्मी देसाई

आप दरबार गोपालदास जी की त्यागशीला पत्नी हैं, जिन्होंने १९२१ में गद्दी त्याग दिया था। पति पत्नी दोनों ही ने किसानों की सेवा का व्रत धारण किया है और बारदोली-सत्याग्रह-आन्दोलन में इस आदर्श दम्पति ने विशेष भाग लिया था।

धमकी दी गई कि जो दूकान नहीं खोलोगे तो तुम्हारे साथ क़ानूनी कार्यवाही की जायगी। सरकार ने इस प्रकार बारदोली के हर एक किसान की परीक्षा लेकर उसे रास्ते का भिखारी बना दिया था, तिस पर भी किसान नौकरशाही के पैरों पर नहीं गिरते थे, वरन् अपनी माँग पर क़ायम थे।

वीरों की क़ुर्बानी के कुछ जाग्रत नमूने देखिए :—

सेठ वीरचन्द भेनाजी को तहसील से ख़ालसा का नोटिस पहले-पहल मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। दब्बू बनिया जानकर सरकार ने अपना पहला दाँव उन्हीं पर आज़माया। पर सदा के डरपोक और मालदार इस बनिए ने तो एक वीर क्षत्रिय की सी हिम्मत दिखलाई। उसके यहाँ तो दो बार ज़ब्ती हुई। ज़मीन ख़ालसा की। फिर उसके घोड़े की दो जोड़ियाँ ज़ब्त करके ले गए।

सेठ इस्माइल गवा एक ईमानदार मुसलमान हैं। सात सौ रुपए की लगान के लिए इन पर ख़ूब दाब-दूब की गई। सरकारी अमलदार, सरकार के जी-हुज़ूरियों ने इन्हें बहुत समझाया, फुसलाया, धमकाया, पर यह मुसलमान अपने वचन की प्रतिज्ञा कैसे तोड़ सकते थे? इनकी बन्दूक़ छीन ली गई। लायसेन्स भी ले लिया गया। इनकी पचास हज़ार रुपए की ज़मीन ख़ालसा कर ली गई।

मि० गार्ड ने इन्हें ख़बर दी कि सरकार ने ज़मीन पर क़ब्ज़ा कर लिया है। इस ज़मीन पर उस समय ५ हज़ार रुपए का अनाज, २० हज़ार रुपए की घास और क़रीब २५ हज़ार रुपए के बैल थे। यह ख़बर सुनने पर भी इस भाई का चेहरा वैसा ही हँसता रहा। हमेशा आनन्द में रहता। इसकी हिम्मत और सहनशीलता तो भारतवर्ष के उन ज़मींदारों के लिए सबक़ है, जो किसानों को चूसते हैं—और सरकार के जी-हुज़ूर बनते हैं।

बारदोली के किसान जेल से नहीं डरते थे। जेलों में वे सैकड़ों की संख्या में भर गए और बाक़ी जाने के लिए कमर कसे हुए थे। सरकार उनकी खेती में उन्हें अटकावेगी, तो वे सब के सब जेल भर देंगे। उनके लिए तो घर की सब सम्पत्ति दे देना और जेल जाना मामूली बात हो गई थी। घर पर ताला बन्द कर तीन-तीन दिन तक दिन-रात जानवर और आदमी एक साथ मकान में बन्द हैं; और यह हालत हुए आज ५ महीने हो गए—यह जेल नहीं तो क्या है? जेल में ख़ूराक

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मिलती है, रहने को घर मिलता है और हवा मिलती है। मिहनत तो किसानों को सवेरे से शाम तक कहाँ नहीं करनी पड़ती? सरकार के आगे वीर किसान हाथ उठा-उठा कर कहते थे कि हम पर तोप चला दो। हम अस्सी हज़ार किसान तमाम भारतवर्ष के किसानों को चूसने वाले लगान के लिए मर जायँगे तो सोच नहीं। अमीर-ग़रीब सब मरने को तैयार हैं। किसानों की स्त्रियाँ खुल्लमखुल्ला कहती थीं—"इन्हें क़ैद करोगे तो स्त्रियाँ खेती कर जेल जायँगी। हम तोपों से भी नहीं डरती हैं। सरकार पुरुषों से पहले हमारा बलिदान ले।"

रायम गाँवों के किसान गोसाईं भाई के पञ्चायत में हाज़िर न रहने का मुक़द्दमा अदालत में चलता था। यह क़ायदा है कि पञ्चायत में बुलाने के लिए लिखित परवाना आना चाहिए। सर फ़ौजदार ने वैसा नहीं किया। जब अदालत में फ़ौजदार ने कहा कि "लिखित परवाना" दिया गया है, तब गोसाईं भाई का सच्चा हृदय झूठी बात सहन न कर सका, और वे बोल उठे—"अरे फ़ौजदार, तू ईश्वर को साक्षी कर तो बोल?" किसान झूठी साखी कैसे दे सकते हैं? और वह डर तो सारी दुनिया का न्याय करने वाले भगवान् का था। फ़ौजदार, मैजिस्ट्रेट या नौकरशाही के अमलदारों का न्याय किस खेत की मूली था। बेचारा फ़ौजदार बहस में गड़बड़ा गया।

सरमन में एक मुहल्ले पर अठारह घण्टे तक ज़ब्ती करने के लिए घेरा डाला गया था। घेरा डालकर जानवर तथा आदमियों को शौच-क्रिया तक से रोका गया। पानी की कठिनाई कर दी गई। ख़ूराक मिलना तो मुश्किल था। सब दरवाज़ों के बन्द होने से बाल-बच्चे तथा जानवर तड़फड़ाते रहे। सात दिन बीत गए, पर घर न खुले। वीर किसान ज़रा भी न झुके। हार कर नौकरशाही ने ज़ब्ती का घेरा उठा लिया और किसानों की विजय हुई। ज़ब्ती की क्रूरता और अमानुषिक नीति इस सभ्य सरकार के राज्य में चलती है। यह क्या इस सरकार को लज्जित करने वाली नहीं हैं? ये नृशंस अत्याचार बारदोली तहसील भर में हुए हैं। यहाँ इन्हें दुहराने से सैकड़ों पन्ने भर जायँगे। एक बड़े खातेदार से लगान देने की बड़ी पैरवी की गई। पहले तो उसे धमकी मिली। पीछे झूठे मामले में उसे फँसाने का प्रयत्न किया गया। तिस पर भी वह भाई विचलित नहीं हुआ। तब एक ऐसे पेन्शनर की पेन्शन में से, जो उक्त खातेदार का मित्र था, लगान वसूल किया गया। उस पेन्शनर से अमलदार ने कहा कि तुम्हारे खातेदार मित्र ने, तुम्हारी पेन्शन में से लगान वसूल करने के लिए हमें इजाज़त दी है। पर इस पेन्शनर से इसके खातेदार मित्र ने कुछ नहीं कहा था।

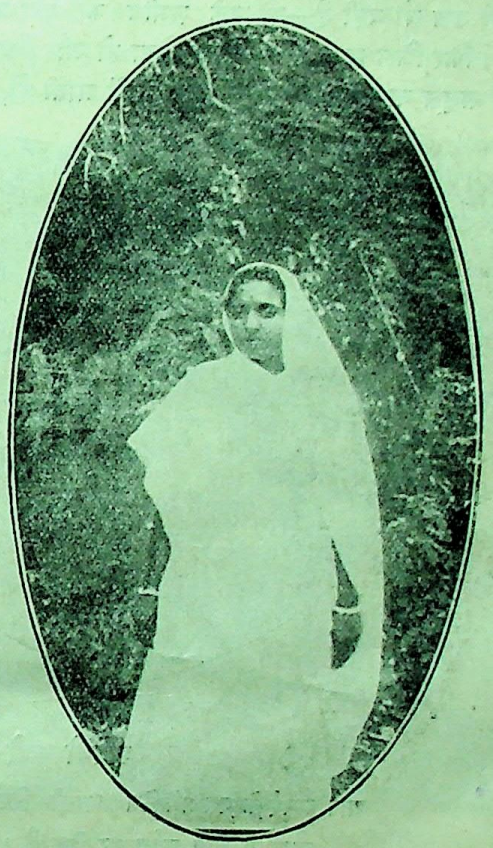

कुमारी मनीबेन पटेल

आप भी बारदोली-सत्याग्रह-आन्दोलन की प्राण थीं। आपने भी बड़े त्याग और निष्काम सेवा कर भारतीय महिलाओं के समक्ष एक अपूर्व आदर्श उपस्थित किया है।

वहाँ पर उसने पेन्शन से रुपए काटने से साफ़ इन्कार कर दिया। घर पहुँचने पर पोल खुल गई। सरकार के ज़िम्मेदार अफ़सर कितना झूठ बोलते हैं, इसका प्रमाण ग़रीब किसानों को पूरा-पूरा मिल गया।

एक किसान के पुत्र ने अपने पिता को इस आशय का पत्र लिखा कि मेरे लिए गौरव छोड़ जाना, मिल्कियत

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं। मिल्कियत-जायदाद तो मैं प्राप्त कर सकूँगा, पर पीढ़ियों तक के लिए खोई हुई इज़्ज़त फिर मिलना सम्भव नहीं। पिता भी सरकारी था—पर वह एक सरकारी अमलदार था, जो पहले लोगों को बहुत सताता था। उसने अब यह ज़ाहिर कर दिया कि मेरे पुत्र को मेरे पीछे विरासत में मिल्कियत नहीं—इज़्ज़त चाहिए; और मेरी उम्र तो बड़ी है—तो मुझे ज़मीन को क्या करना है। फिर जिस राज्य में न्याय न होता हो और किसानों को समूल नाश करने की नीति व्यवहार में आती हो, उस राज्य में मुझे ज़मीन रखकर खेती करने से क्या लाभ है। भले ही ज़मीन सरकार ज़ब्त करे या बेच डाले। कुल ७६ पटेल तथा २१ तलाती-पुलिस और चौकीदारों ने इस्तीफ़े दे दिए थे। प्रजापक्ष की यह कितनी बड़ी विजय थी। सरकारी पुलिस बारदोली में नहीं थी। जो थोड़े आदमी थे, उनपर कलक्टर साहब का विश्वास नहीं था। यह बहादुर पुलिस के नौकर भी इसी तहसील की सन्तानें हैं, किसान हैं, और इनकी देश की ओर लगन सूली पर चढ़ने वाले देशभक्त के सामने जितनी ज्वलन्त है उतनी ही प्रशंसनीय भी है। गाँव के किसान तो यह कहते थे कि इन पटेल और तलातियों के इस्तीफ़े का मूल्य हमारे लिए काउन्सिल के सभासदों के इस्तीफ़ों की अपेक्षा अधिक गौरव-जनक है।

बम्बई के उत्कट विद्वान् मुन्शी कन्हैयालाल एडवोकेट की विदुषी धर्मपत्नी श्रीमती लीलावती देवी ने स्वयं बारदोली जाकर जो कुछ उद्गार प्रकट किए हैं, उन्हें सुनिए:—

"बारदोली के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के अत्याचारों

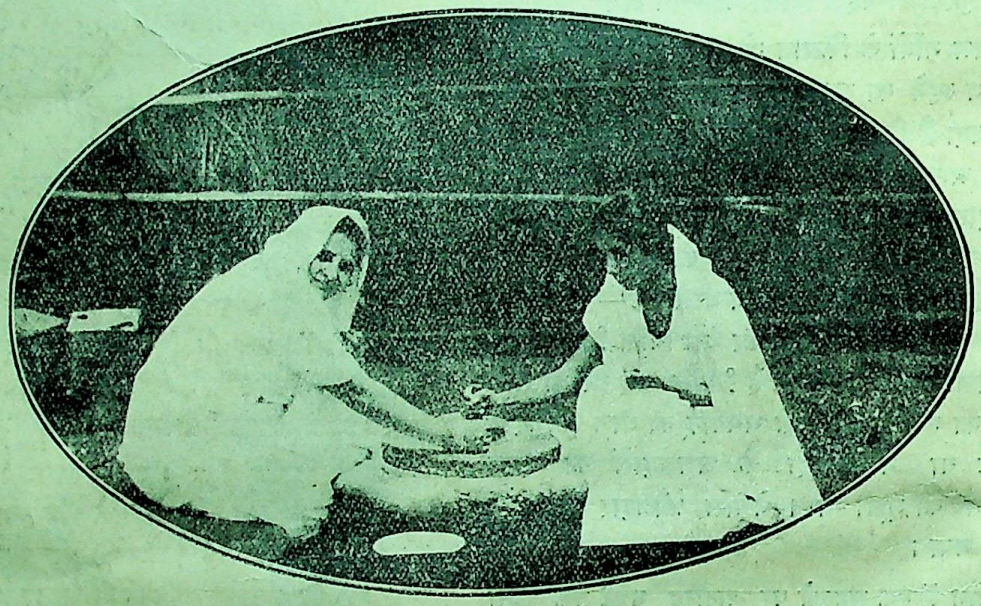

अपनी पुत्री-सहित श्रीमती भेसानियाँ

आप बम्बई के एक प्रतिष्ठित पारसी-परिवार की महिला-रत्न हैं, जिन्होंने शेष जीवन किसानों के सुधार के लिए अर्पण कर दिया है। आपने बारदोली-सत्याग्रह-आन्दोलन में आदर्श भाग लिया है। आप ही इस चित्र में चक्की पीसने का अभ्यास कर रही हैं।

के समाचार आने पर मैं तारीख़ १४ को सशङ्क हृदय से अपने पति के साथ रवाना हुई। तारीख़ १५ को सवेरे मैं और मेरे पति तथा रायबहादुर भीमभाई नायक बारदोली-स्टेशन से उतरे और सरदार वल्लभभाई के साथ आश्रम में गए। सारे आश्रम में उत्साह व तत्परता और स्वातन्त्र्य का वातावरण व्याप्त था। शोक, दुख, चिन्ता, दुर्बलता कहीं नहीं दीखती थी। वहाँ की परिस्थिति के सम्बन्ध में हमने वल्लभभाई से पूछा। आश्रम के प्रकाशन विभाग से बारदोली की घटनाएँ थोड़े समय

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में ही मेरे पति को बतला दी गई। बारदोली का प्रकाशन विभाग ग़ज़ब का काम कर रहा था।

पर अब सबसे बड़ा अनुभव तो अभी होने वाला था—वह हमें तब हुआ जब हम मोटर पर चढ़कर ग्राम देखने गए। वर्षा आगई थी, इसलिए सड़कों पर मिट्टी जम गई थी। सबसे पहले हमारी पार्टी सरमन गई। वहाँ से लौटती बार हम बावला गाँव गए।

जैसे हातिमताई के क़िस्से में किसी निर्जन नगर की कहानी पढ़ते हैं, उसी प्रकार सारा गाँव दिखाई दिया। हरेक घर के दरवाज़े और खिड़कियाँ बन्द थीं। इन घरों के अन्दर कोई जीवित आत्मा रहती होगी, यह बात पहले-पहल किसी अनजान आदमी को देखने पर तो नहीं मालूम हो सकती थी। वह तो यही जानेगा कि यहाँ कोई आदमी की जाति रहती ही नहीं है। एक ओर चबूतरे पर उसी गाँव का एक स्वयंसेवक पहरा दे रहा था। हमारी मोटर देख कर उसने तुरन्त आवाज़ दी कि खिड़कियाँ खोलो, आश्रम की मोटर है।

आश्रम की ओर धीरे-धीरे एक के बाद एक दरवाज़े खुल गए। हम घर के अन्दर गए और वहाँ जो दृश्य देखा वह जीवन भर नहीं भूलेगा। उसमें केवल दरवाज़े से प्रकाश और हवा आ सकती थी, खिड़की कोई नहीं थी। इस घर में तीन-चार स्त्रियाँ लड़कों को लेकर खड़ी थीं। एक ओर के हिस्से में भैंसें और उनके बच्चे वग़ैरा जानवर बँधे थे। दरवाज़ा खोलने पर भी उस घर में अँधेरा दिखाई देता था। पर जब इस घर के दरवाज़े बन्द हो जाते होंगे तब इन सबकी क्या हालत होती होगी? कलकत्ते की काल-कोठरी की अपेक्षा यह अधिक अँधेरा कारागृह था। ऐसे एक घर नहीं, किसानों के सब के सब घरों में स्त्रियाँ और बालक गन्दगी में बन्द होकर रहते; साथ ही इस कारावास से सड़ गए और सफ़ेद हो गए। जानवर भी एक साथ रात-दिन पाँच-पाँच महीने से रह रहे थे। उनके प्यारे जानवर बाहर अहाते में रहने से ज़ब्त न हो जायँ, इसी कारण से वे उन्हें इस स्थिति में रखते थे, जिस दुर्गन्ध और गन्दगी में कभी कोई एक क्षण बैठने को तैयार नहीं हो सकता। ज़ब्ती अमलदारों की निर्दयता के समय तो कितनी बार वे एक-एक सप्ताह तक शौचादि

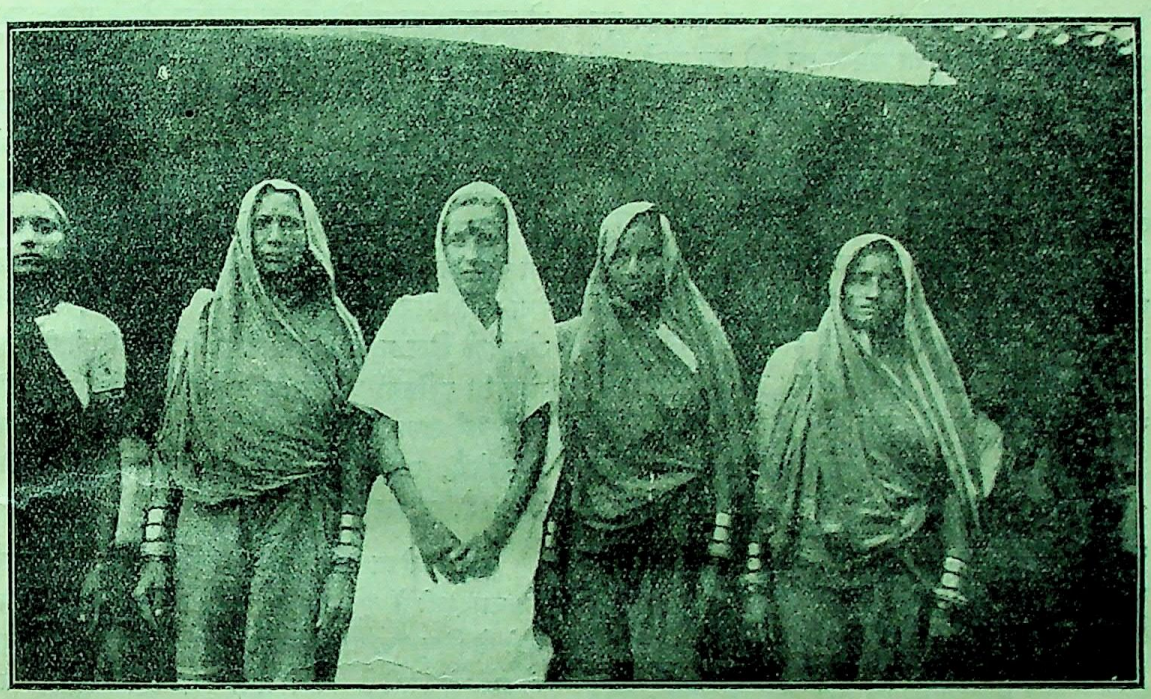

किसान-स्त्रियों के मध्य में श्रीमती पेटिट

जो बम्बई के धन-कुबेर मि० पेटिट की आदर्श-धर्म-पत्नी हैं।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के लिए बाहर नहीं जा सकते थे। उसी अँधेरी तङ्ग जगह में गड्ढा खोदकर मल-मूत्र करते थे। यह दृश्य देखकर मेरी छाती फट गई। नेत्रों से आँसू बहने लगे। पर इतने दुख सहन करने वाली उन बहिनों के मुख पर कायरता और दुख लेशमात्र भी नहीं था। यह दृश्य देखते-भालते एक घर की वृद्ध माँ जी से मैंने सहज ही में कहा—"माँ जी, इतना दुख सहन करती हो, इससे सरकार का पैसा दे दो, तो कैसा हो?" जवाब में वृद्धा माँ ने हँस दिया। अभी तक इतना सहन किया और अब पैसा दे दें? न्याय होगा तब पैसा देंगे, अन्याय की एक दमड़ी नहीं मिलेगी। फिर धृष्टता कर मैंने एक दूसरे भाई से कहा—सरकार वल्लभभाई को पकड़ लेगी तो क्या करोगे?

"एक वल्लभभाई जायँगे तो दूसरे ऐसे अनेक वल्लभभाई वली होंगे।" यह जवाब मिला। इतनी दृढ़ता के आगे निर्बलता का एक शब्द भी बोलना पाप था। इस बीच में गाँव के लगभग सभी आदमी इकट्ठा हो गए थे। उनके आगे थोड़ी सी बातें कीं। उनके दुख-सुख जानने का थोड़ा प्रयत्न किया, उनकी दृढ़ता और साहस की प्रशंसा करके हमारा दल आगे चला।

सरमन-आश्रम में गए। वहाँ डॉक्टर सुमन्त और श्रीमती शारदा बहिन से भेंट हुई। थोड़ी देर वहाँ बैठने के बाद भुसावल गाँव भी जाकर देख आए। वहाँ पहले से लोगों को ख़बर होने से श्रीमान् लल्लूभाई के यहाँ सब इकट्ठे हुए थे। श्रीमान् लल्लूभाई पर किसी नाज़िर ने सूरत की अदालत में मुक़दमा चलाया था। उनका यह अपराध था कि उन्होंने लोगों को लगान नहीं भरने दिया। इसके बाद हम लोग कहाँ-कहाँ गए और क्या-क्या देखा, उस सम्बन्ध में मैं यहाँ पर कुछ लिखूँगी।

सच पूछो तो "इस समय बारदोली में सरकार का डर और राज्य के लिए इज़्ज़त इन दोनों चीज़ों में से एक भी नहीं रही।" सरदार वल्लभभाई का बारदोली में जितना हुक्म माना जाता है, उतना ही सरकारी हुक्म वहाँ हास्यास्पद अवस्था में पहुँच गया है। पटेलों और पटवारियों ने इस्तीफ़े दे दिए हैं, और लोगों ने मकान के नम्बर निकाल कर फेंक दिए हैं। इतना हो गया है कि अब लोगों की ज़मीन का पहचानने वाला सरकार के लिए कोई नहीं रहा।

सरकारी अफ़सर योग्यायोग्य का सारा विचार बिलकुल भूल गए हैं। चालीस हज़ार रुपए की ज़मीन चालीस रुपए में बेची जाय; इतने पर भी लगान पूरा न हो, तो रोटी करने के बासन और घर के गाड़ी-घोड़े तक एक सौ रुपए के लगान के लिए ज़ब्त कर, बेच डाले गए। श्रीमती मीठू बहिन, मुरारी बहिन, श्रीमती माई लक्ष्मी देवी आदि वीर बहिनों ने ज़ब्त ज़मीनों को अपने अधिकार में कर रक्खा है। जब तक ये बहिनें जेलों के बाहर हैं, तब तक इन ज़मीनों पर किसी का क़ब्ज़ा नहीं हो सकता। पर उन्हें एकाएक पकड़ना, केवल एक बन्दर-घुड़की है।

सरकारी अफ़सरों के दिमाग़ी हुक्मों में से एक हुक्म भी वहाँ अमल में नहीं आता। कलक्टर के कमरे के बाहर पहरा देने वाले तीन युवकों को एक के बाद एक को पकड़ा तो और अनेक पकड़े जाने के लिए इतने और आ गए कि कलक्टर को ही वहाँ से दूसरी जगह चल देना पड़ा। मकान खुदवाया, गाड़ी ज़ब्त की, पर उसे जोतने के लिए न तो बैल मिले और न खींचने के लिए मज़दूर। ज़ब्तियाँ और ख़ालसा के नोटिस बिना पहचाने चाहे जहाँ लगा दी जाती है, लोग उन पीले पन्नों को न देखते हैं, न पढ़ते हैं। लोग तो यह मानते हैं कि ज़मीन हमारी है, सरकार कौन होती है?

छोटे से लेकर बड़े से बड़े सरकारी नौकर या अफ़सर को बारदोली में एक पाई की चीज़ नहीं मिलती। चाय पीने के लिए एक पाव भी दूध नहीं मिलता था। बेचारे नौकरों को रस्सी के बिना पानी भी नहीं मिलता। यह मुसीबत सरकारी नौकरों की थी। उनका किसी क़िस्म का काम करने के लिए कोई आदमी नहीं मिलता। एक अफ़सर की मोटर यदि कीचड़ में फँस जाय तो घण्टों तक लोगों को धमकी और लालच देने के उपरान्त भी वहाँ पड़ी रहती थी। पर कोई उसमें हाथ नहीं लगाता था। जब सरदार वल्लभभाई आवें और सरकारी अफ़सर उनसे कहें, तब उनकी आज्ञा से लोग मोटर को कीचड़ से निकालते थे। यह स्थिति वहाँ थी। आज की घड़ी तक लोगों की दृढ़ता का कीर्ति-स्तम्भ स्थिर है।

पठानों के ज़ुल्मों की भी हद हो गई थी। उनकी नङ्गे होकर नहाने की बात, शक्कर के धोखे में नमक चुराने की बात और लोगों के घर में ज़बरदस्ती घुस जाने की बात,

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भयङ्कर अत्याचारों की बड़ी लम्बी फ़ेहरिस्त है। अफ़सरों ने भी इन पठानों को ख़ूब उत्तेजना दी। ज़ब्ती सूर्यास्त के उपरान्त नहीं होती, पर इनका क़ानून सूर्यास्त के बाद भी चलता। ताला न तोड़ने का नियम होने पर भी ये दुष्ट पठान दरवाज़ा खोलकर घरों में घुस गए। इन दुष्टों ने देवियों के हाथ पकड़-पकड़ कर घसीटा। इतने पर भी ज़ब्ती अफ़सर न शर्माया। रात में एक आदमी ने दरवाज़ा खटखटाया—"फ़लाने भाई, दरवाज़ा खोलो,

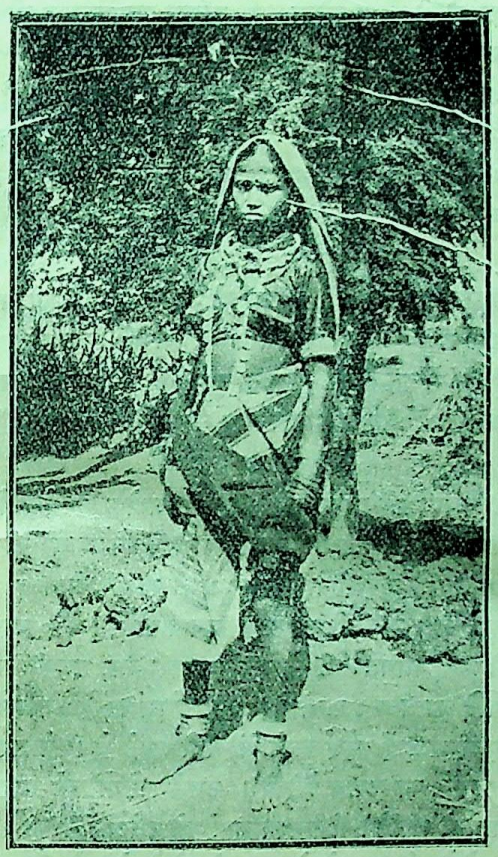

रानीपरज जाति की एक किसान महिला

इस जाति ने भी बारदोली-सत्याग्रह-आन्दोलन में प्रभावशाली भाग लिया था।

तुम्हारे आदमी आए हैं।" इस प्रकार की झूठी बातों से ये दुष्ट पठान बड़ी रात में लोगों को तङ्ग करते।

पर किसी घड़ी दर-असल मेहमान आते थे, यह सन्देहजनक बातें थीं। दरवाज़े तो खुल नहीं सकते थे। मेहमान आने पर भी उन्हें चौतरे पर रहने को कहा जाता। बाहर खिड़की से लटकाकर चाय और पानी दे दिया जाता और सवेरे जाने को भीतर से ही कह दिया जाता था। भूल-चूक से खिड़की खुल जाय तो पठान तुरन्त कूद आते थे। अनेक बार तो वे दीवार पर चढ़कर पीछे के रास्ते से घर में घुस आते थे। इस प्रकार लगातार घर बन्द रहने पर घरों में स्वयंसेवक-दल लोगों को भोजन और पानी पहुँचाता। इतना होने पर भी लोगों ने बिना किसी शिकायत के सारी अवस्था सहन की है।

एक समय एक देवी मकान का दरवाज़ा खोल कर आँगन में कुछ काम से आई थी। इतने ही में ज़ब्ती अफ़सर आ धमके। देवी तुरन्त घर में जाने लगी। पर अफ़सर ने उसे दरवाज़े पर पकड़ लिया। उस पर दरवाज़ा बन्द करने का और अपना पैर कुचलने का मुक़दमा चलाया। देवी का पति बेचारा भलामानुष था। वह पहली बार ठीक-ठीक उत्तर न दे सका। दूसरी बार अदालत में जाने पर उसकी स्त्री भी उसके साथ हो ली। गाड़ी में वह उसे हिम्मत देने लगी और बोली—"जवाब देने में क्यों डरते हो? रोनी शकल क्यों बनाए हुए हो? अगर सच-सच कहने पर छः महीने की सज़ा मिले तो कहना कि सरकार १२ महीने की क़ैद दे।"

बारदोली की इस लड़ाई में इस प्रकार बहिनों ने पुरुषों को आगे बढ़ाया। बारदोली की बहिनों का शौर्य अपूर्व था। उनके मुख पर चिन्ता नहीं, दुख नहीं। जितना दुख वे सहन करतीं, वे हँसते-हँसते सहन करती थीं। अपने स्वयं निर्णीत कारागार में महीनों बन्द रहने पर भी विषाद की एक रेखा भी उनके हृदय को कलुषित नहीं करती थी। सरदार वल्लभभाई पर तो अस्सी हज़ार भाई-बहिनों की अपूर्व श्रद्धा थी। वे जहाँ जाते थे वहाँ गाँव की स्त्रियाँ एक के बाद एक आतीं। उनके मस्तक पर कुटुम्ब की विजय का तिलक कर अपनी शक्ति के अनुसार रुपए की भेंट देतीं। जो विश्वास और भक्ति-भाव से भेंट होती है उसे देखकर अश्रद्धालु का भी हृदय पिघल जाता था। इनके गीत दृढ़ता और आत्म-विश्वास पैदा करने वाले सुने। इन अशिक्षित भाई-बहिनों की आत्मा की महत्ता के आगे हमारा हृदय नमता था।

पर सरदार वल्लभभाई पर इनका विश्वास देखने का मौक़ा तो हमें शाम को मिला। नानीफ़रोद नामक गाँव

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में उनका व्याख्यान था। वहाँ हमारे साथ वे चल दिए। रास्ते में आने वाले गाँवों में बड़े उमङ्ग, सद्भाव और भक्ति से लोग उनका स्वागत करते थे। स्त्रियाँ उन पर कुङ्कुम, अक्षत और पुष्प चढ़ातीं। उनके आगे भेंट धरतीं। यह सब दृश्य हमें देखने को मिला। बारदोली के ८० हज़ार स्त्री-पुरुष और बालकों का मन केवल वल्लभभाई में था। वे उनके मार्ग-दर्शक नहीं, वरन् तारनहार हैं। उनकी आज्ञा को वे प्राण देकर भी पूर्ण करने को तैयार हैं।

अमे लीधी प्रतिज्ञा पालशुँ रे।
भले काया ना कट का थाय॥

यह घोषणा केवल एक गाँव के लोगों की नहीं थी, समस्त बारदोली इस प्रतिज्ञा से बद्ध है! सरकार इन्हें डराने और कुचलने की मिथ्या बात करती थी।

वहाँ तो स्त्रियाँ यह गाती थीं :—

सरकार, जो ने अभागीयातु जागी।
तोग्रा वार ऊपर वे गया बागी।

कौन कहता है कि यह लोग हार की ज़रा भी आशङ्का रखते थे?

बारदोली तालुक़े में सत्याग्रहियों ने जो सुव्यवस्था रक्खी थी, उसके आगे आजकल के अङ्गरेज़ी शासन की व्यवस्था किसी मूल्य की नहीं। हर-एक छावनी में एक विभागपति था। इस विभागपति के हाथ के नीचे स्थानीय स्वयंसेवक और कार्यकर्त्ता थे। वे अपने अधीन के गाँवों में घूमते थे। उनकी व्यवस्था करते थे, समाचार संग्रह करते थे और सत्याग्रह का प्रचार करते थे, ज़ब्तीदारों की ज़ब्ती होने पर उनकी ख़बर लेते थे और प्रत्येक समाचार विभागपति को देते थे। ये विभागपति अपने सौंपे हुए गाँवों की पूरी-पूरी ख़बर बारदोली के मुख्य आश्रम में भेजते थे। इन ख़बरों से बारदोली का प्रकाशन विभाग प्रकाशित करने योग्य समाचार तुरन्त प्रकाशित कर देता था और शेष समाचार सरदार वल्लभभाई और उनके साथियों के पास जानकारी के लिए पहुँचा देते थे। इन समाचारों में प्राइवेट जानकारी की भी कई बातें होती थीं। इसके सिवा सरकारी ख़बरें जानने के लिए भी ख़ास-ख़ास आदमी काम करते थे। प्रत्येक सरकारी हलचल की जानकारी सरदार वल्लभभाई पटेल को ठीक समय पर होती रहती थी।

इस प्रकार सारी तहसील एक ज़ञ्जीर से बँधी हुई थी। यह ज़ञ्जीर इतनी मज़बूत थी कि सरकार उसे तोड़ने के लिए कमज़ोर साबित हुई। सरकार के हाथ-पैर—पटेल और तलाती, गाँव की पुलिस और चौकीदारों ने इस्तीफ़े देकर सरकार को बारदोली तहसील में पङ्गु कर दिया था। सरकार को लक़वा मार गया था। कुछ विभागपतियों के नाम यहाँ दिए जाते हैं :—

छावनी का नाम			विभागपति का नाम
बारदोली-क़स्बा मोता	...		डॉक्टर चम्पकलाल घीआ
सरमन	...	...	डॉक्टर सुमन्त मेहता
बालोद	...	...	डॉक्टर चन्दूलाल देसाई
वराड	...	...	श्री० मोहनलाल पण्ड्या
मढ़ी	...	...	श्री० अब्बास तय्यबजी
बामनी	...	...	दरबार साहब देसाई

इसी प्रकार दूसरी छावनियों में भी विभागपति नियुक्त थे। सरकारी शासन को बन्द कर देने की सम्पूर्ण व्यवस्था इन छावनियों ने कर डाली थी। अब तो बारदोली में सरकारी हुकूमत रही ही नहीं थी। सरदार वल्लभभाई का राज चल रहा था।

आश्रम में

बारदोली-सत्याग्रह-आश्रम में प्रत्येक कार्यकर्त्ता एक निष्ठा से अपना काम करता था। प्रत्येक काम की ओर अपनी ज़िम्मेदारी समझता था। स्वामी आनन्द श्री० वल्लभभाई के मन्त्री की तरह काम करते थे। श्री० कल्याण जी भाई आगत सज्जनों की व्यवस्था कर, उनकी सवारी आदि का प्रबन्ध करते थे—भिन्न-भिन्न बारह आश्रमों की आवश्यकताएँ पूर्ण करने में लगे रहते थे। वे सरकारी हरकतों का जवाब देते थे। उनसे लोगों को सावधान रखते थे। संक्षेप में समस्त कार्य बड़े परिश्रम से कर रहे थे, वे फ़ोटो भी उतारते थे। उनके फ़ोटो लेने से नौकरशाही के अमलदार भी दङ्ग हो गए थे। चीनी के धोखे में बारदोली-स्टेशन पर नमक चुराने वाले पठान का मुफालाल के साथ रेलवे पुलिस के पहरे में फ़ोटो खींच लेने पर कलक्टर साहब को भी सफ़ाई देनी पड़ी थी। आश्रम के मन्त्री श्रीयुक्त ख़ुशालभाई भोजन-व्यवस्था के अतिरिक्त बड़े से बड़ा काम करने में अपना जीवन धन्य समझते थे। श्री० ख़ुशालभाई आज कई वर्षों से बारदोली को तैयार करने के लिए आश्रम में कुटुम्ब-सहित निवास कर रहे थे,

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीयुक्त जुगत रामदेव शान्त-रूप से प्रकाशन विभाग के मन्त्री-पद का कार्य कर रहे थे। इनकी क़लम के प्रभाव से सरकारी नौकर चक्कर में पड़ जाते थे। किसान अमलदारों के धोखे में नहीं आते थे। इसके सिवा अनेक नवयुवक अपनी सहनशीलता, कर्त्तव्यपरायणता और कार्यदक्षता को प्रकट करने के लिए बारदोली-सत्याग्रह में लगे हुए थे।

सौभाग्यवती भक्ति लक्ष्मी देवी

जीवन तक याद न भूलने वाली ऐसी छाप हमारे हृदय पर गुजरात के रत्न श्रीमान् गोपालदास देसाई डासा की प्यारी पुत्री हैं। यह बहिन भी दिन-रात काम में लगी रहतीं। वे युवकों को रण में जूझने के लिए अग्रसर करती थीं। शराब की दूकान पर पहरा देते समय गिरफ़्तार भी हो चुकी थीं।

बारडोली के विजयोत्सव पर महात्मा गाँधी जी ने जो भाषण दिया था, उसका सारांश नीचे दिया जा रहा है :—

"किसी सत्याग्रही के लिए इससे अधिक सच्ची बात कोई नहीं हो सकती कि बारदोली-सत्याग्रह के लिए और किसी का नहीं, केवल परमात्मा का ही यश गाना

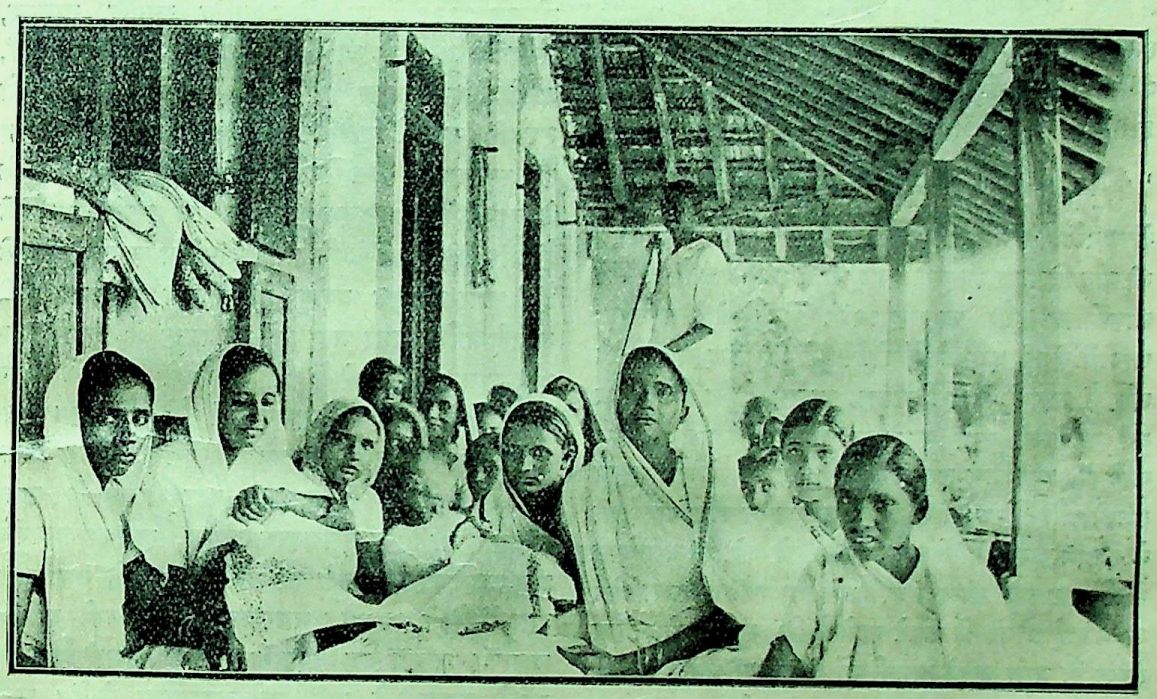

बारदोली-सत्याग्रह-आन्दोलन में भाग लेने वाली कुछ प्रतिष्ठित महिलाएँ, जिनका एकमात्र कार्य खादी बनाना और घर-घर उसका प्रचार करना था— यही थी इनकी दिनचर्या।

की पत्नी सौभाग्यवती भक्त लक्ष्मी देवी की पड़ी। इस देवी ने राज-दरबार के सुख भोगे हैं। जिन्होंने धूप और सर्दी न देखी हो, जिनकी आज्ञा मानने के लिए अनेक सेवक हाथ जोड़े खड़े हों, वे राजघराने की पत्नी श्रीमती भक्ति लक्ष्मी बहिन आज बारदोली-आश्रम में सवेरे से सन्ध्या तक सतत् परिश्रम करती हैं। मेहमानों की वे मेहमानदारी करती थीं। इन्हीं के समान श्रीमती मीठू बहिन पेटिट एक पारसी-देवी हैं। ख़ानदान और धनाढ्य कुटुम्ब

चाहिए, एक उसी को धन्यवाद देना चाहिए। मगर मैं जानता हूँ कि इससे हमें सन्तोष नहीं मिलने वाला है, क्योंकि हमें यह विश्वास नहीं हुआ है कि हम कुछ नहीं हैं, हम तो केवल उसके हाथ के साधन भर हैं और वह जैसे चाहता है, हमसे काम लेता है। हमने अब तक परमात्मा के हाथों आत्म-समर्पण करने का महत्व नहीं समझा है। आदमी अभी कुछ अंश तक मनुष्य और पशु दोनों है, बल्कि अभी तो उसमें मनुष्यता की बनिस्बत

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पशुता ही अधिक है, और इसलिए केवल परमात्मा का ही यश गाने से उसका अहङ्कार सन्तुष्ट नहीं होता। सच पूछो तो ऐसे अवसरों पर परमात्मा को याद करके हम मानते हैं कि मानों हम उन्हीं पर कृपा कर रहे हों। इसलिए अपने पशु-स्वभाव के अनुसार हम अपने सरदार, उनके सहायकों और बारदोली के स्त्री-पुरुषों को भले ही बधाई दे लेवें; अपने सहकारियों के सहयोग के बिना वल्लभभाई अकेले लड़ाई नहीं जीत सकते थे। मगर उसी तरह से हमें गवर्नर साहब, उनके अफ़सरों और काउन्सिल के सभ्यों को भी सुखद समझौता कराने में मदद करने के लिए धन्यवाद देना चाहिए। अगर हम अपने विरोधियों के यथायोग्य धन्यवाद देने के अपने कर्त्तव्य के पालन में पीछे पड़ें, तो हममें नम्रता की कमी होगी।

"गीली ज़मीन में इतनी तकलीफ़ से बैठा हुआ सूरत के नागरिकों का इतना बड़ा समूह मुझे आज सन् १९२१ की याद दिलाता है। मुझे आज भी वे शब्द याद हैं, जो मैंने आपको इसी ठौर पर सन् १९२१ में कहे थे। सम्भवतः आप में से भी कुछ लोगों को तब के मेरे शब्द याद होंगे। और मैं आपको याद दिलाना चाहता हूँ कि हमने सात वर्ष पहले जो काम करने का निश्चय किया था, उन्हें करने में हम किस तरह चूके हैं। अगर केवल उत्सव मनाने और मिठाइयाँ बाँटने के बाद सूरत और बारदोली के आदमी कान में तेल डाल कर सो रहे, तो बारदोली से जो पाठ हमें सीखना है, उसे हम नहीं सीख सकेंगे। वल्लभभाई लोगों को कहते रहते हैं कि सरकार से लड़ना सहज है, मगर अपने आदमियों से लड़ना सहज नहीं है, क्योंकि हम स्वभावतः ही सरकार की राई के समान भूल को पर्वत बना डालते हैं। मगर जैसे ही हमें अपनी त्रुटियाँ नज़र आती हैं, हम उसका सामना करने से भाग चलते हैं। इसलिए मैंने बारदोली वालों को याद दिलाया कि तुमने अपने व्रत का पहला भाग पूरा कर लिया है, अब दूसरा भाग भी—यानी पुराना लगान देना—पूरा करो। मैं जानता हूँ कि यह थोड़े दिनों में हो जायगा। मगर उसके बाद? सत्याग्रह-आन्दोलन में अत्यन्त बड़ी शक्ति और उत्साह का जो संग्रह हुआ है, उसे कैसे काम में लाया जायगा? बारदोली की स्त्रियों में पैदा हुई अपूर्व जाग्रति से क्या लाभ उठाया जायगा? आप कैसे उनकी सेवा करोगे; किस तरह उनके साथ एक बनकर उनके दुख दूर करने में उन्हें सहायता दोगे? सत्याग्रह में अन्धे अधिकार के अत्याचार का सविनय विरोध, उसकी सविनय अवज्ञा शामिल है, मगर विरोध करने की शक्ति में ही आत्म-शुद्धि और रचनात्मक काम छिपे हुए हैं। अगर मैं आपसे पूछने बैठूँ कि सन् १९२१ से आपने अब तक रचनात्मक काम और आत्म-शुद्धि के सम्बन्ध में क्या काम किया है, तो मैं जानता हूँ कि आपको और मुझको, दोनों को रोना पड़ेगा।

"आपको कहना चाहता हूँ कि मैं वही गाँधी हूँ, जो सन् १९२१ में था। जिस शान्ति, समृद्धि, स्वराज्य, रामराज्य या धर्मराज्य के लिए हम कोशिश कर रहे हैं, उसके लिए मेरे पास अब भी वे ही अनिवार्य शर्तें हैं जो तब थीं। सूरत के आरामतलब हिन्दू-मुसलमानों को तब तक स्वराज्य का नाम लेने का क्या हक़ है, जब तक कि वे ख़ुदा के नाम पर एक-दूसरे का गला काटने को दौड़ते हैं और फिर न्याय के लिए अदालतों का दरवाज़ा झाँकते हैं? अगर सचमुच बहादुर हो तो भले ही बराबरी की लड़ाई लड़ो, मगर अदालतों की शरण में रक्षा के लिए दौड़े न जाओ। अङ्गरेज़ों और जर्मनों ने लड़ाई के मैदान में लड़ाई की, मगर वे अदालतों में दौड़े नहीं गए। खुलकर न्यायपूर्वक लड़ने में कुछ बहादुरी है, मगर अदालतों में दौड़ जाने में कुछ भी बहादुरी नहीं है। अगर लड़ना है तो हिन्दू-मुसलमान जमकर, खुलकर लड़ लेवें और अपने झगड़े फ़ैसले कर लेवें, तब उनके नाम इतिहास में लिखे जायँगे। मगर अदालतों में लम्बे मुक़दमे चलाकर लड़ना कुछ बहादुरी नहीं है। हमारे वर्त्तमान तरीक़े बहादुरी के नहीं, बल्कि कायरता के हैं। सच्ची बहादुरी तो धर्म के लिए जान देने में, और जो बातें धार्मिक दृष्टि से परमावश्यक नहीं हैं, उन्हें अपने आप ही छोड़ देने में है। यही बारदोली का पाठ है। और अगर हम विजयोल्लास में अपने आपको भूल जायँ तो बारदोली का यह पाठ भी हम भूल जायँगे। जब तक हम लोग, जो एक ही ज़मीन से पैदा हुए हैं, एक ही मातृभूमि की सन्तान हैं, एक दूसरे को सगा भाई समझना नहीं सीखते, बारदोली के समान विजयों से कुछ नहीं होगा।

"दूसरा काम है हिन्दू-धर्म की शुद्धि करनी। क्या आपने उसका सबसे बड़ा कलङ्क धो लिया है? मैं फिर

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भी कहता हूँ कि आत्म-शुद्धि के बिना सच्चा स्वराज्य असम्भव है। मुझे कोई दूसरा नहीं मालूम है। भले ही आप मेरी इसे मर्यादा, मेरी निर्बलता कहें, मगर तब यह सत्याग्रह की मर्यादा, सत्याग्रह की निर्बलता कही जायगी। अगर दूसरा कोई रास्ता है तो मैं उसे नहीं जानता हूँ और आत्म-शुद्धि के सिवाय, दूसरे उपायों से जीती गई कोई वस्तु, और चाहे जो कुछ हो, मगर स्वराज्य नहीं हो सकती।

"हमारे कार्यक्रम की तीसरी और अन्तिम वस्तु है, इस देश के नर-कङ्कालों के प्रति हमारे कर्त्तव्य का पालन। चाहे सुनते-सुनते कोई भले ही ऊब जाय, मगर मैं फिर भी कहूँगा कि इसकी एकमात्र दवा चर्ख़ा ही है। अभी मुझे चर्ख़े की उपयोगिता का एक विचित्र प्रमाण मिला। सर लल्लूभाई सामलदास ने कृषि-कमीशन की रिपोर्ट को अपनी आलोचना में दिखलाया है कि अपनी रिपोर्ट के सहायक धन्धों वाले अध्याय में कमीशन के सभ्यों ने चर्ख़ा शब्द तक से अछूते रहने की कोशिश की है। मैं पूछता हूँ कि उस एकमात्र धन्धे का नाम लेने से भी, जो करोड़ों भुक्खड़ों को रोज़ी देता है, भागने के क्या मानी हैं? मेरा दावा है कि ख़ास बात में चर्ख़े की सम्भवता छिपी हुई है। वे इसकी टीका कर सकते थे, इसका मज़ाक़ भी उड़ा सकते थे, इसे हँसी में भी उड़ा दे सकते थे, मगर नहीं, वे शान्त चित्त से इसकी अनन्त सम्भवताओं पर विचार भी कर सकते थे।"

यह बात तो साफ़ ज़ाहिर है कि इस सम्बन्ध में सरकार ने सरासर बेईमानी की। अफ़सर-बन्दोबस्त ने हिसाब लगाने और बातें देखने में काफ़ी भूलें की थीं, दूसरे उनकी ग़लत रिपोर्टों के लिए ख़ुद सेटिलमेण्ट-कमिश्नर ने उन्हें आड़े हाथों लिया था। एक तो आपकी पहली रिपोर्ट से यह भी पता नहीं लगता कि बन्दोबस्त के क़ायदों के अनुसार वाक़ई कुछ जाँच की भी गई थी या नहीं। फिर दूसरी रिपोर्ट, जिसमें लगान बढ़ाया गया था, वह भी इन क़ायदों के मुताबिक़ नहीं थी और ग़लत आँकड़ों के आधार पर बनी थी। इसके सिवा बन्दोबस्त भी ग़लत क़ायदे से हुआ था। इन्हीं आरोपों के लिए दुबारा जाँच करने को किसानों का आग्रह था।

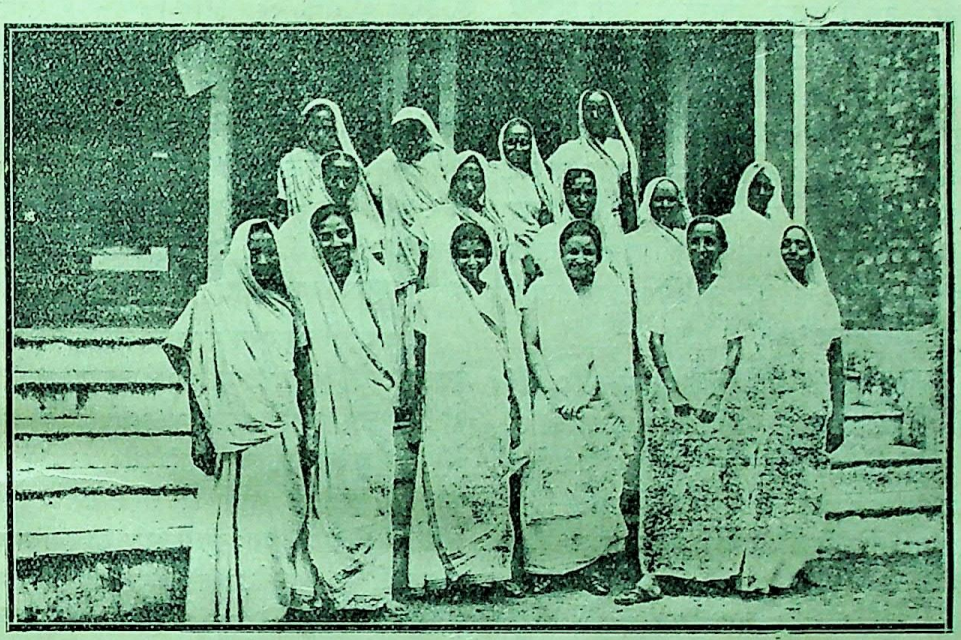

बम्बई पारसी-सोसाइटी की महिलाएँ

जिन्होंने अपना घर-बार त्याग कर बारदोली-सत्याग्रह-आन्दोलन में शरीक होकर उसे सफल बनाया और किसानों की सेवा की। सभी महिलाएँ गुजराती वेष-भूषा में हैं।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रथम तो महकमे-माल के कोड के बन्दोबस्त के क़ायदों के बनाने में अभागे किसानों का हाथ ही नहीं था, फिर उनके अनुसार चलने में भी सरकार की सरासर अन्धा-धुन्ध नीति रहना निस्सन्देह बेईमानी ही थी।

बारदोली-युद्ध शान्त हो गया अवश्य, पर यह सवाल सिर्फ़ बारदोली का ही नहीं है—यह सवाल तमाम हिन्दुस्तान के किसानों का है। सिर्फ़ किसानों का ही क्यों कहा जाय, यह सवाल भारतवर्ष के सर्वनाश का कारण है। किसानों के इस कर ने—जो भारत-सरकार ने उन पर अपने शासन के प्रथम दिन से ही लगाया है, भारत को चूर-चूर कर दिया है। करोड़ों मनुष्य रात-दिन पसीना बहा कर भी पेट नहीं भर पाते—करोड़ों मनुष्य अकालों में भूखे मर गए हैं। इन तमाम मरे हुओं और मरते हुओं के हलक़ से यह जल्लाद-सरकार कैसी निर्दयता से अपना कर निकालती रही है, यह बात यदि सरकार के कारनामों के इतिहास से खोज निकाली जाय तो रोंगटे खड़े हो जायँगे। इस सम्बन्ध में हम कुछ विचार करना चाहते हैं। अस्तु—

समस्त ब्रिटिश-भारत में २२ करोड़ किसान हैं! जो ३६ करोड़ एकड़ धरती को प्रति वर्ष जोतते-बोते हैं, और अपने कड़े परिश्रम से जो पदार्थ इस ज़मीन से ये किसान उत्पन्न करते हैं, उनका मूल्य १५ अरब (??) रुपया होता है। जिनमें से ५ अरब के अनुमान रक़म सरकार कर के ख़ूनी पञ्जे से छीन लेती है और बाक़ी ज़मींदार और सूदख़ोर बनिए। सरकार इन ५ अरब रुपयों में से किसानों के हित के लिए सिर्फ़ २४ लाख रुपए ख़र्च करती है। शेष सब उसकी जेब में भर कर चाय-बिस्कुट के काम में आता है। एक विद्वान् का कथन है :—

"जो देश केवल साधारण खेती में लगे रहते हैं, उनमें मन की मन्दता, शरीर का भद्दापन, पुराने अन्ध-विश्वासों और रीति-रिवाजों पर प्रेम, और सभ्यता, वैभव और समृद्धि का तथा स्वतन्त्रता का अभाव पाया जाता है। दूसरी ओर जो देश व्यापार में लगे हैं, उनमें मानसिक और शारीरिक गुणों की उन्नति के, निरन्तर उद्योगी बने रहने के, मुक़ाबला करने के और स्वतन्त्रता के भाव पाए जाते हैं।"

शिल्प और व्यापार ही में जहाज़ी बेड़ों का उपयोग होता है। व्यापारिक बेड़ों की रक्षा के लिए सैनिक बेड़े बनते हैं। तैयार माल बेचने तथा कच्चा माल प्राप्त करने के अभिप्राय से उस देश के निवासी को नए देशों की यात्रा, युद्ध और बहुत-कुछ पराक्रम करने पड़ते हैं, इसलिए वे देश, जहाँ शिल्प और व्यापार उच्च है, उन्नत हो जाते हैं।

यह बात स्पष्ट है कि ये वीर-महान् किसान, जो १५ अरब रुपए प्रति वर्ष पैदा करते हैं, सब अलग-अलग गाँवों में रहते हैं। तमाम ब्रिटिश-भारत में ८ लाख गाँव हैं, इनमें उपरोक्त २३ करोड़ किसानों के साथ ५ करोड़ उपजीवी, कुल मिलकर २८ करोड़ मनुष्य रहते हैं, शेष ३ करोड़ स्त्री-पुरुष क़स्बा-शहरों और नगरों में रहते हैं। ब्रिटिश-भारत में २२ हज़ार क़स्बे, शहर और २ लाख और उससे अधिक की आबादी के शहर १० हैं। १ लाख से २ लाख तक की आबादी के शहर ३० और ५० हज़ार से १ लाख तक के ७७ शहर हैं। इन्हीं में उपरोक्त ३ करोड़ मनुष्यों का निवास है।

अब गाँवों की दशा पर ग़ौर करिए! क्या भारत का ऐसा भी कोई पुरुष है, जो गाँवों की दुर्दशा से नावाक़िफ़ हो? सरकार जहाँ नगरों और शहरों की स्वास्थ्य-रक्षा के लिए अनेक उद्योग करती और करोड़ों रुपए ख़र्च करती है, वहाँ इन गाँवों की तरफ़ उसका रत्ती भर भी ख़्याल नहीं है। फलतः खुली हवा का स्वाभाविक सुयोग पाकर भी ये अभागे, रोगी, कुरूप और महामारियों के शिकार बने रहते हैं। उनकी इतनी बड़ी आय का लगभग ३० फ़ी सैकड़ा सरकार, ३० सै० सूदख़ोर बनिया और ३० सै० ज़मींदारों के पेट में चला जाता है। हैज़ा, प्लेग, मलेरिया और चेचक इनके घरों में घर किए सदा विराजमान रहते हैं और इनसे बचने का इनके पास कोई उपाय, कोई प्रतिकार नहीं है—वे लोट-पोट कर, मरना होता है तो मरते हैं, जीना होता है तो जीते हैं!!

किसी भी गाँव में आप जाइए—बिलकुल घर की दीवारों से मिला हुआ मैले और सड़े हुए पानी का गढ़ा आपको दीख पड़ेगा। बरसात में यह ख़ूब बढ़ा हो जाता है और रास्ता बन्द कर देता है। कभी-कभी बरसात में गलियों और दरवाज़ों तक कमर-कमर पानी चढ़ आता है। इन बेचारों को—स्त्री-पुरुषों को—महीनों खड़े-खड़े शौच-क्रिया करनी पड़ती है!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गाँव में घुसकर देखिए, मैले, टूटे-फूटे, कच्चे, बेडौल, बिना सरोसामान छोटे-छोटे घेरे, एक तरफ़ छप्पर, उसी में एक कोने में चूल्हा है, दूसरे में सोने के गुदड़े! सामने पशु बँधे हैं। गोबर और पेशाब का बीच में ढेर लगा है। स्त्री, बच्चे, पुरुष, बूढ़े, जवान—सभी कुछ न कुछ जीवन के उद्योग में लगे हैं। घर में यदि दूध का पशु है तो वह बनिए से रुपया उधार लेकर लिया गया है। उसका रत्ती-रत्ती दूध जमाकर घी उसकी दूकान पर जाता है। सिर्फ़ छाछ पीने को मिल जाती है! सारी फ़सल बनिए के घर सीधी जाती है। साल भर के खाने को मोटा अन्न और कपड़े बराबर उसी से उधार आते रहे हैं। रात को कोई विनोद नहीं, कोई जीवन नहीं, चुपचाप पड़े-पड़े हुक्का पिए जाना, प्रातःकाल अँधेरे में उठकर हल-बैल कन्धे पर रखकर खेत में जा पिलना—धरती की छाती में ८ अङ्गुल गहरी जुताई करनी, कड़ी धूप या भयानक वर्षा उसमें बाधा नहीं डाल सकती। कभी-कभी घुटनों-घुटनों पानी में १६-१६ घण्टे तक खड़े होकर नराई करना !! ऐसी भयानक मिहनत और ऐसा निकृष्ट पोषण! तत्व से रहित अन्न खाकर क्या कोई भी मनुष्य सुन्दर, बलवान् या मनुष्य ही बना रह सकता है?

ये गाँव छोटे-छोटे अलग-अलग बसे होते हैं। इनके निवासियों को बन-पर्वत, घाटी और मैदानों में जीवन व्यतीत करना पड़ता है। वे गाँव से बाहर नहीं जाते, बाहर की बात नहीं जानते, नहीं समझते, वे अपने पैतृक खेतों में जोंक की तरह चिमटे रहते हैं। फ़ुरसत में दिन-रात काहिल की तरह सोते हैं। उत्साह, साहस, नवीनता, ज्ञान, वीरता उनमें कहाँ से आवे? न्याय-शासन, अधिकार की गूढ़ बातें वे इस परिस्थिति में कैसे समझें?

१५ अरब रुपए की महान् रक़म में से सरकार को लगभग साढ़े चार अरब रुपए मिलते हैं। परन्तु सरकार इन अभागों के लिए क्या करती है, इस पर भी विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

सन् १८६६ में बङ्गाल और उड़ीसे के अकाल के अनन्तर सरकार ने सबसे प्रथम कृषि-विभाग खोलने की बात सोची थी, पर उस समय कुछ नहरों की वृद्धि करके ही बात वहीं रहने दी गई। इसके बाद फिर सन् १८६९ में लॉर्ड मेयो ने कृषि-विभाग स्थापित करने की चेष्टा की। इस बात पर मैनचेस्टर की 'रूई-सभा' भी सहमत थी, क्योंकि उसे रूई की बड़ी ही ज़रूरत थी। कृषि-विभाग क़ायम हुआ, परन्तु सन् १८७९ में रुपए की तङ्गी से वह स्वराष्ट्र-विभाग में मिला लिया गया। १८८० के अकाल में फिर वह बात चली और प्रान्तीय कृषि-डाइरेक्टर नियत किए गए। इसके बाद सन् १८८९ में भारत-सचिव ने डॉक्टर भीलकर को भारतवर्ष भेजा। उन्होंने घूम-घूमकर भारतवर्ष की खेती का पता लगाया। उन्होंने रिपोर्ट में भारतीयों की कृषि-विज्ञान की सराहना की। उन्होंने कहा कि उन्हें सिर्फ़ साधनों की कमी है।

अन्त में कृषि-विभाग में दो प्रकार के मनुष्य रक्खे गए—एक वे, जो कृषि-सम्बन्धी शिक्षा दें, दूसरे जो वैज्ञानिक अनुसन्धान करें, परन्तु प्रान्तीय डाइरेक्टरों ने भारी भूलें कीं और कुछ लाभ न हुआ। फिर शिकागो के दानवीर हेनरी फ़िलिप ने साढ़े चार करोड़ रुपया लॉर्ड कर्ज़न को भारत की भलाई में ख़र्च करने को दिया। उसी से पूसा का कृषि-कॉलेज खोला गया, जहाँ अब सिर्फ़ बड़े-बड़े प्रयोग होते हैं। आजकल सरकार २४ लाख (???) रुपए कृषि-शिक्षा के लिए ख़र्च करने की उदारता कर रही है। अब किसानों को कुछ चुने हुए बीज, कुछ नए-नए खाद, कुछ विलायती ढङ्ग के हल-औज़ार आदि देने के अतिरिक्त किसानों का सरकार से कुछ भी भला नहीं हो रहा है। उनके जीवन को उन्नत करने, उन्हें सुखी, समृद्धिशाली बनाने, उन्हें स्वावलम्बी बनाने, उन्हें सभ्य और नागरिक बनाने में सरकार की ज़रा भी चेष्टा नहीं है। जिनकी गाढ़ी पसीने की कमाई में से साढ़े चार अरब रुपया सरकार खाती है, उनके लिए २४ लाख का नाममात्र ख़र्च करना सरकार की इन सीधे-सादे ग़रीबों के प्रति पूरी-पूरी नमकहरामी है।

ब्रिटिश-भारत में खाने की चीज़ों में धान, गेहूँ, ज्वार, बाजरा, चना सब लगभग सवा दो लाख एकड़ ज़मीन में तथा ईख ढाई हज़ार एकड़ में, तेलहन, कपास, जूट, नील, पोस्त, चाय, ये लगभग ४५ हज़ार एकड़ में बोए जाते रहे हैं।

कुल खेती के सैकड़े पीछे ६ में कपास बोई जाती है, गत बीस वर्षों में कपास की खेती सैकड़ा पीछे ६७ बढ़ गई है। देश में भी कपास की बहुत माँग है। फिर जापान, चीन, अफ़्रीका, और मध्य एशिया वाले भी बराबर ख़रीदने के

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इच्छुक हैं। गत २५ वर्षों में मद्रास में १० लाख, बम्बई में १५ लाख, पञ्जाब में ६ लाख और मध्य-प्रदेश में १५ लाख एकड़—वृद्धि कपास की उपज में हुई है। गेहूँ पश्चिमोत्तर भारत का प्रधान खाद्य द्रव्य है। इस कारण पञ्जाब, संयुक्त-प्रदेश, मध्य-प्रदेश इसकी बड़ी खेती करता है। कुल खेती का दशमांश गेहूँ होता है। इधर १२ वर्षों में प्रायः ८५ लाख एकड़ गेहूँ की खेती बढ़ी है। उपज का फ़ी सैकड़ा ७०-८० तो देश में रह जाता है, शेष इङ्गलैण्ड, बेलजियम, फ्रान्स, मिश्र और इटली चला जाता है।

धान—गेहूँ की तरह चावल भी पूर्वीय देशों का प्रधान खाद्य है। इसी कारण यह वहाँ अधिक होता है। कोई ८ करोड़ एकड़ धरती में इसकी खेती होती है। यह कुल खेती का सैकड़ा पीछे ३५ हिस्सा है।

ईख—विलायती खाँड ने देशी खाँड को गिरा दिया है। विशेषकर जावा की खाँड ने देशी खाँड के बाज़ार को चौपट कर दिया। इधर २५-३० वर्षों में जावा की खाँड की आमदनी लगभग १९½ लाख मन से बढ़ते-बढ़ते अब सवा दो अरब मन होगई है! बङ्गाल, बम्बई और मध्य-प्रदेश की ईख की फ़सल बहुत घट गई है। परन्तु मद्रास, आसाम और युक्त-प्रदेश में बढ़ी है। कुल २४, २५ लाख एकड़ ज़मीन में ईख बोई जाती है। जूट की तिजारत रेशेदार पदार्थों में सबसे ज़्यादा है। कोई तीस लाख एकड़ में इसकी पैदावार होती है।

नील—नील की अब पहले सी इज़्ज़त नहीं है। २०-२२ वर्ष पहले २०-२२ लाख एकड़ ज़मीन में नील बोया जाता था। परन्तु लड़ाई के बाद फिर ६-७ लाख एकड़ में बोया जाने लगा है।

तमाखू—इसकी उपज बढ़ती जा रही है। लगभग ६० करोड़ के मूल्य का तमाखू देश में प्रति वर्ष बोया जाता है।

तेलहन—२५ करोड़ रुपयों के लगभग तेल और तेलहन हर साल बाहर जाता है। और कई करोड़ का देश में जलाने, खाने, लगाने आदि के काम आ जाता है।

चाय—इसकी खेती बराबर उन्नति पर है। गत २० वर्षों में इसकी खेती तिगुनी हो गई है।

रबर, कॉफ़ी, फल और रेशम—कॉफ़ी के बग़ीचे मद्रास-इलाक़े में हैं। ब्रह्मा और मद्रास में रबर के बग़ीचे हैं। केटा और पेशावर में फलों की उन्नति का थोड़ा-बहुत प्रयत्न किया जा रहा है। पूसा, बर्मा, बङ्गाल और आसाम में रेशम की अभी उन्नति की जा रही है।

इस प्रकार इतना माल, इतनी काम की वस्तुएँ जो किसान उत्पन्न कर रहे हैं, उनकी दशा वास्तव में बहुत ही शोचनीय है, जैसा कि ऊपर बताया गया है।

हम इस बात पर अब पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं कि किसानों को कभी न पनपने देने वाली भूमि-कर सम्बन्धी सरकारी नीति है। जो समूह केवल परिश्रम से ही १५ अरब रुपया कमाता है, वह इतना दरिद्र क्यों है, इसकी सबसे अधिक ज़िम्मेदारी भूमि-कर-सम्बन्धी क़ानून की ज़िम्मेदारी है। राजा भूमि का स्वामी होता है, यह बात सत्य है। और अत्यन्त प्राचीन काल से राजा भूमि-कर लेते आए हैं; यह बात भी सत्य है। भारतवर्ष में पृथ्वी के इतिहास के प्रारम्भ से राज्य-सत्ता रही है और राजाओं ने भूमि-कर लिया है। पर हम यह कह सकते हैं कि इस सम्बन्ध में अङ्गरेज़ी सरकार जो अनीति और बेईमानी की चाल चली है, वह तो कभी पृथ्वी पर किसी ने की ही न थी।

प्राचीन काल में यूनान, फ़ारस, चीन और रोम में उपज का $\frac{१}{१०}$ भाग; डायोक्लीशियन के काल में—रोम में $\frac{१}{२५}$ या $\frac{१}{६}$; भारतवर्ष में गौतम धर्म-सूत्र (अ० १,४२) के मत से $\frac{१}{१०}$; वशिष्ठ धर्म-सूत्र (अ० १, ४२) के मत से $\frac{१}{६}$; मनुधर्म-सूत्र (अ० ७, १३०) के मत से $\frac{१}{१२}$ राज-कर लिया जाता था। इससे अधिक कर कभी हिन्दू-राज्य-काल में नहीं बढ़ाया गया।

मुसलमान-सम्राटों ने यद्यपि भौमिक सम्पत्ति को अपने अधीन कर लिया था, किन्तु लगान उनका भी इतना भयानक न था।

बादशाह अकबर ने अधिक से अधिक जो कर लिया था, वह $\frac{१}{३}$ था। पर उसे वास्तव में जो मिलता था वह $\frac{१}{६}$ से अधिक न था। आईने-अकबरी में लिखा है:—

"बहुत से प्रान्तों में भूमि का माप नहीं किया गया था, वहाँ पर लगान अन्दाज़ से ही लिया जाता था। जहाँ माप भी किया गया था, वहाँ भी उसकी ठीक विधि न होने से गाँव के ज़मींदार तथा चौधरियों पर ही निर्भर करना पड़ता था। × × × बादशाह लगान के अधिक से अधिक रुपए नियत करते थे, परन्तु वास्तव

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में उतने रुपए राज्य-कोष में कभी न आते थे। और प्रजा कम लगान देकर मज़े में दिन काटती थी।"

स्वर्गीय रमेशचन्द्र दत्त ने लिखा है कि अकबर के समय में निम्नलिखित ८ प्रान्तों का कल्पित लगान यह था :—

बङ्गाल	... ...	१,४९,६१,४८२
बिहार	... ...	५५,४७,९८५
इलाहाबाद	... ...	५३,१०,६९५
अवध	... ...	५०,४३,९५४
आगरा	... ...	३६,५६,२५७
दिल्ली	... ...	१,५०,४०,३८८
लाहौर	... ...	१,३१,८६,४६०
मुलतान	... ...	३७,८५,०९०
कल्पित लगान	...	७,७३,२२,३११

इन आठ प्रान्तों को अब अङ्गरेज़ी राज्य में तीन प्रान्तों में बाँट दिया गया है—(१) बङ्गाल (२) संयुक्त-प्रान्त और (३) पञ्जाब।

इन तीनों प्रान्तों से सन् १८९५-९६ में—

बङ्गाल से	...	... ३,९०,५२,२१०
युक्त-प्रान्त से	...	... ६,०१,६९,४४०
पञ्जाब से	...	... २,३९,६६,९९०
वसूल किया कर		१२,३१,८८,६४०

उपरोक्त हिसाब बताता है कि अङ्गरेज़ों ने भारत पर अधिकार करने के बाद ही मुग़ल-राज्य से ३५ वर्ष बाद, मुग़लों से लगभग दूना लगान नक़द वसूल कर लिया था। आजकल तो यह रक़म तिगुने से भी कुछ अधिक हो गई है। भारत में सदैव से किसान ही भूमि के स्वामी होते थे। अब भी यूरोप में किसान भूमि के मालिक हैं, परन्तु वे ही यूरोपियन हिन्दुस्तान में किसानों की ज़मीन के स्वामी बन बैठे हैं। प्रायः यह दस्तूर हुआ करता है कि १०-१५ वर्षों में लगान बढ़ा दिया जाता है। पञ्जाब, मद्रास, बम्बई, युक्त-प्रान्त आदि देशों का लगान बारम्बार बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक पहुँच गया है कि लगान दे चुकने पर किसान के पास खाने को कुछ भी नहीं बच रहता। यही कारण है कि किसान भयानक क़र्ज़े में नाक तक डूबे हुए हैं!

सन् १७९३ में बङ्गाल में कुल उपज का ९०) सैकड़ा लगान सरकार ने स्थिर किया था। यह कितना भयानक था, यह बात विचारने की है। परन्तु अब साढ़े पचीस प्रति सैकड़ा है। इतना लगान मुग़लों के राज्य में केवल युद्ध-काल ही में लिया जाता था!

बङ्गाल के अत्यन्त प्राचीन इतिहास से पता लगता है कि बङ्गाल की समस्त ज़मीन छोटे-बड़े ज़मींदारों में विभक्त थी। ये ज़मींदार भूमियों के अन्तरीय शासक तथा राजा थे। अफ़ग़ान-काल में इन्हें कुछ धक्का लगा था, किन्तु राज्य में उनकी स्थिति वैसी ही बनी रही। एक ज़मींदार ने सन् १२८० में दिल्ली के पठान-बादशाह को मदद दी थी। पठानों के बाद १६ वीं सदी में अकबर ने बङ्गाल को फिर विजय किया, परन्तु ज़मींदारों की दशा में कुछ भेद न हुआ। बङ्गाल के ज़मींदार प्रायः कायस्थ थे। अकबर के ज़माने में तमाम बङ्गाल का लगान २ करोड़ रुपए राज्य की ओर से नियत था। अङ्गरेज़ों ने आरम्भ ही में इन ज़िलों से ४ करोड़ रुपए लगान वसूल किया!

१८ वीं सदी के प्रारम्भ में अङ्गरेज़ों ने अन्य प्रदेशों की तरह बिना वहाँ के ज़मींदारों की दशा को ठीक-ठीक समझे समस्त भूमि को अपनी समझ लिया और ५ वर्ष के लिए मनमाना लगान लगा दिया, पर जब वह वसूल न हुआ तो ज़मीनें नीलाम होने लगीं, इसका बड़ा भयानक परिणाम हुआ।

१७८० में दीनाजपुर का राजा मर गया। इस प्रान्त का लगान २१ लाख रुपया था। राजा का पुत्र ५ वर्ष का था और उसकी विधवा स्त्री अपने उस शिशु-पुत्र की संरक्षिका थी। अङ्गरेज़ों ने उस दयनीय दशा पर ज़रा भी तरस न खाकर, देवीसिंह नामक एक अति क्रूर आदमी को रियासत के प्रबन्ध के लिए भेज दिया। यह आदमी पूर्निया और दीनाजपुर में अत्याचार और क्रूरता के लिए दोषी ठहराया गया था। पर लगान वसूल करने में वह एक ही था। इसने जमींदारों तक को कोड़े लगवाए, स्त्रियों के साथ अमानुषी अत्याचार किए। अन्त में किसान इससे तङ्ग आकर गाँव छोड़-छोड़ कर भागने लगे। उन्हें सिपाहियों से पकड़वा-पकड़वा कर ज़मीन जोतने पर लाचार किया गया। अन्त में दीनाजपुर तथा रङ्गपुर में विद्रोह हो गया। इस विद्रोह को जिस अमानुषी क्रूरताओं से दबाया गया, वह बङ्गाल में कभी भी न भूलने की घटनाएँ हैं।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बर्दवान का राजा तिलकसिंह सन् १७६७ में मर गया। उसका पुत्र छोटी उम्र का था। अङ्गरेज़ों ने ब्रजकिशोर को राज्य-प्रबन्ध के लिए भेज दिया। यह अत्याचार में देवीसिंह से कम न था। तेजसिंह की माता ने इस पापी को राज्य की मोहर न दी। उसके लिए इसने रानी को बहुत तङ्ग किया और अन्त में कुमार को क़ैद कर लिया। लाचार, रानी को मुद्रा देनी पड़ी। फिर राजा गोविन्दसिंह ने बर्दवान पर इतना लगान बढ़ाया कि जो सीमा से बाहर है। आज तक बर्दवान की प्रजा अङ्गरेज़ी राज्य भर में सबसे अधिक लगान दे रही है। राजशाही की रानी भवानी एक पूज्य देवी थीं। प्लासी-युद्ध के समय सम्पूर्ण उत्तरीय बङ्गाल इन्हीं के राज्य में था। वे जैसी प्रबन्धक थीं, वैसी ही दयावती भी। अङ्गरेज़ों ने इन पर बुरी तरह लगान बढ़ा दिया, पर यह प्रजा से वसूल न कर सकीं, क्योंकि यह उन पर ज़ुल्म करना नहीं चाहती थीं, तब दुलालराय को सरकार ने लगान एकत्र करने को भेज दिया। इस नीच ने रियासत को तहस-नहस कर दिया और रानी को बड़ा ही कष्ट दिया।

इन सबका परिणाम यह हुआ कि तमाम जङ्गल बियाबान हो गया और किसान छोड़-छोड़कर भाग गए। मि० शोर ने बङ्गाल के लगान की एक सारिणी दी थी, जो निम्नाङ्कित है :—

सन् १५८२	अकबर के राज्य में	टोडरमल के बन्दोबस्त से	१,०७,९३,१५२)
सन् १६५८	अकबर के राज्य में	सुल्तान शुजा ,,	१,३१,२५,९०९)
सन् १७२२	मुग़ल-राज्य में	जफ़रख़ाँ ,,	१,४२,८८,१८६)
सन् १८२२	,,	शुजाख़ाँ ,,	१,४२,४५,५६१)
सन् १९१७	अङ्गरेज़ी राज्य में	अङ्गरेज़ों ,,	३,०८,८४,१८४)
सन् १९१८	अङ्गरेज़ी राज्य में	अङ्गरेज़ों ,,	२,९९,२५,०००)
सन् १९१९	अङ्गरेज़ी राज्य में	अङ्गरेज़ों ,,	२,९८,५४,०००)

इस सारिणी से अङ्गरेज़ी राज्य के प्रवेश के साथ-साथ ही लगान-वृद्धि का पूरा ज्ञान हो जाता है। लॉर्ड कॉर्नवालिस ने हेस्टिंग्स के अत्याचारों के बाद बुद्धिमानी से ज़मींदारों के साथ स्थिर लगान का समझौता कर लिया। पर यह लगान ९०) सै० तक पहुँच गया था। फिर भी स्थिर-लगान से वहाँ के किसानों में सन्तोष हुआ।

संयुक्त-प्रान्त के भिन्न-भिन्न भागों में, भिन्न-भिन्न काल में, अङ्गरेज़ों का अधिकार हुआ। सन् १७७५ में अवध के नवाब से बनारस तथा उसके साथ के ज़िले ले लिए गए और १७९५ में उनमें बङ्गाल के समान स्थिर लगान प्रचलित कर दिया गया। इलाहाबाद तथा आगरा के प्रान्त १८०१ तथा १८०३ में इनके हाथ आए। इन पर अधिक से अधिक लगान लगाया गया। १८०२ में एक घोषणा द्वारा यह प्रकट किया गया कि दो बार त्रैवार्षिक बन्दोबस्त और तीसरी बार चतुर्थ वार्षिक बन्दोबस्त कर देने के अनन्तर स्थिर लगान-विधि प्रचलित कर दी जायगी। पर इस पर अमल नहीं किया गया। १८२२ के बाद समय-समय पर लगान बढ़ाया गया। १८३७ में भयानक अकाल पड़ा और इलाहाबाद से देहली तक का देश उजड़ गया। आगरे पर इसका बुरा प्रभाव था। तब भी लगान आधा वसूल किया गया था।

१८५६ में अवध को सरकार ने प्राप्त किया और १८५७ में भारत में ग़दर हुआ। ग़दर के बाद सरकार ने १८५८ में समस्त भूमि छीन ली और उनका फिर से विभाग करके ५० राज-भक्त तालुक़ेदारों के तालुक़ेदारी में स्थिर लगान-विधि प्रचलित की गई; और अन्यों में ३० वर्ष के अनन्तर बन्दोबस्त करने का निश्चय किया गया।

१८४६ में पहले सिक्ख-युद्ध के पश्चात् रावी तथा सतलज के मध्य का एक भाग सरकार ने अपने राज्य में मिला लिया। १८४९ में पञ्जाब का शेष भाग भी सरकार के हाथ में आ गया। दिल्ली और कुछ अन्य ज़िलों को युक्त-प्रान्त से अलग करके १८५८ में पञ्जाब में जोड़ दिया गया। और फिर वही अधिक से अधिक लगान लगा दिया गया।

यह दुखदाई डाकेज़नी और अत्याचार की कहानी है। इसका तो अब एक ही उपाय है और वह यह कि इस

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषय में समस्त भारत में भयानक सत्याग्रह किया जाय और प्राण रहते एक पाई भी अधिक लगान सरकार को न दिया जाय।

बम्बई में सन् १८१७ में जिस भूमि पर ८० लाख लगान था, उस पर १८१८ में—एक ही वर्ष में—१ करोड़ १५ लाख और कुछ ही वर्षों में डेढ़ करोड़ हो गया। इस भयानक प्रहार से पञ्चायतें टूट गईं और सन् १८२५ में मि० प्रिङ्गल ने मद्रास की विधि पर बम्बई में भी लगान का निश्चय किया, जो भूमि की उपज से भी बहुत अधिक था।

१८३६ में मि० गोल्ड स्मिथ तमाम बन्दोबस्त की जाँच के लिए नियत हुए। इनकी मदद के लिए कैप्टिन विङ्गर और लेफ़्टिनेण्ट वाश को भी भेजा गया। इन्होंने सरकार से एक नवीन विधि की ही सिफ़ारिश की। उसकी शर्तें ये थीं :—

१—प्रत्येक किसान से अलग-अलग उसकी ज़मीन का लगान लिया जाय।

२—प्रत्येक बदोबस्त ३० वर्ष बाद हुआ करे।

३—लगान भूमि के मूल्य के अनुसार नियत हुआ करे, न कि उपज के अनुसार।

यह बन्दोबस्त १८३६ से शुरू हुआ और १८७२ में समाप्त हुआ। इसका भयानक परिणाम यह हुआ कि जहाँ लगान १५ लाख ३० हज़ार रुपए था, वहाँ २० लाख ३१ हज़ार हो गया। अर्थात् ३० सै० वृद्धि हो गई।

१८६६ में फिर बन्दोबस्त बदला और १३,३६१ गाँवों का, जिनका लगान पहले १४ लाख ४६ हज़ार रुपया था, १८ लाख ८६ हज़ार कर दिया गया। अर्थात् ३० फ़ीसदी फिर बढ़ा दिया गया। इसके ३ वर्ष बाद १८६९ में फिर ३० सै० लगान में वृद्धि कर दी गई। इस समय बम्बई के प्रान्त के लगान की रक़म साढ़े पाँच करोड़ रुपयों के लगभग है !!

किसी भी जाति और देश के ग़रीब अभागे किसानों पर इससे अधिक क्या मुसीबत पड़ सकती है !! सन् १८७९ में बड़े लाट की काउन्सिल में सर विलियम हण्टर ने कहा था—"दक्षिणी किसानों के कष्ट कम करने में सबसे अधिक कठिनाई तो यह है कि उनका लगान इतना बढ़ा हुआ है कि उनके पास खाने को अन्न और पहनने को वस्त्र तक नहीं है।"

इस लूट और निर्दय अत्याचार की फ़र्याद अङ्गरेज़ी अदालतों में नहीं है। इसका एक निर्लज्ज उदाहरण यह है कि सन् १८७३ में बम्बई-हाईकोर्ट में सेटेलमेण्ट ऑफ़िसर के विरुद्ध प्रजा ने एक अभियोग खड़ा किया था, जिसमें हाईकोर्ट ने प्रजा-पक्ष में फ़ैसला दे दिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि बम्बई-गवर्नर की काउन्सिल में एक क़ानून बन गया कि "आगे से लगान-सम्बन्धी कोई भी अभियोग कर्मचारियों के विरुद्ध नहीं किए जा सकेंगे।" अब कहिए, इन अन्नदाता किसानों का जो परिश्रम करके १५ अरब रुपए धरती माता के पेट से निकालते हैं, सहायक कौन है—और ये कैसे पृथ्वी पर जीवित रह सकते हैं ?

सब से—सर्व-प्रकार चूसा जाने वाला भारत किस प्रकार यह चोट पर चोट सह सकता है ? धरती माता के पेट से १५ अरब रुपया निकालने वाले वीर, साहसी और परिश्रमी किसान कहाँ तक इस लगान-वृद्धि से छुटकारा पा सकते हैं। वे तो कमाते-कमाते मर जाते हैं। मरने तक उनके पास एक पैसा भी अपना नहीं जुट पाता है। और उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया भी उधार कफ़न लाकर की जाती है ! यह है इन प्रजा-पालक अभागे किसानों का अन्त !!

अब हमें देखना चाहिए कि अङ्गरेज़ी सरकार जब से भारत में आई है, तब से देश में कर-वृद्धि का क्या परिणाम हुआ है। सन् १७७० ई० से लेकर सन् १९०० ईसवी तक भारत में २३ बड़े भयङ्कर अकाल पड़े हैं, जिनमें प्रायः ३ करोड़ मनुष्य मर गए। और १९०० से १९२८ तक छोटे-छोटे अकाल तो प्रायः समाचार-पत्रों में पढ़ने को नित्य मिल जाते हैं। ये २३ अकाल पड़े तो समस्त भारत में हैं, पर अधिकतर इनमें मद्रास और बङ्गाल के अकालों की संख्या है। इन कुल अकालों का मूल कारण सरकार का समय-समय पर लगातार कर-वृद्धि है। इन अकालों से कितना नुक़सान हुआ, सो तो पाठक स्वयं सोच सकते हैं। इन भयानक रोंगटे खड़े करने वाले अकालों का ब्यौरा भी सुनिए :—

१—१७७० का बङ्गाल का अकाल—ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के भयानक अत्याचारों और बुरी तरह मालगुज़ारी बढ़ाने से यह अभूतपूर्व भयानक अकाल पड़ा था। इसमें १ करोड़ से अधिक बङ्गाली तड़प-तड़प कर

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मर गए थे। यह मानों समस्त बङ्गाल के एक तिहाई आदमी थे। कोर्ट ऑफ़ डाइरेक्टर्स ने अपने १७ मई सन् १७६६ के पत्र में अपने नौकरों के अत्याचार पर शोक प्रकट किया था।*

२—१७८३ का मद्रास का अकाल—इस अकाल का कारण मैसूर के साथ वारन हेस्टिंग्स का युद्ध था। मृत्यु-संख्या अज्ञात।

३—१७८४ का उत्तर भारत का अकाल—इस बड़े अकाल में गाँव के गाँव उजड़ गए थे। इसका कारण अङ्गरेज़ों का अवध पर दख़ल करना और भयानक कर वसूल करके अपनी जेबें भरना था। बलात्कार से विद्रोह हो गया था, जिसे अत्यन्त क्रूरतापूर्वक दबाया गया। कैप्टन एडवर्ड का कथन है कि, "जब मैं १७७४ में अवध में गया था तब वह बड़ा हरा-भरा था, परन्तु १७८३ में वह बिलकुल उजाड़ था।" वारन हेस्टिंग्स ने स्वयं लिखा है—"बक्सर से लेकर बिहार-प्रान्त के अन्त तक मैंने प्रत्येक गाँव उजड़े देखे हैं। इस अकाल में बनारस में एक तिहाई खेती बन्द हो गई थी।"

४—१७९२ का बम्बई और मद्रास का अकाल—लॉर्ड कॉर्नवालिस के समय में यह भयानक अकाल पड़ा था।

५—१८०३ का बम्बई का अकाल—यह अकाल मराठों और अङ्गरेज़ों के युद्ध के कारण हुआ था। होल्कर की सेनाओं ने तथा पिण्डारियों ने खेतियों को उजाड़ दिया था।

६—१८०४ का उत्तर भारत का अकाल—यह युद्ध और कुशासन से हुआ था। १८०१ में अवध के कुछ भाग अङ्गरेज़ों ने नवाब से छीन लिए थे और मालगुज़ारी इकट्ठी करने में बड़ा ज़ुल्म किया गया था। उसी का यह परिणाम था।

७—१८०७ का मद्रास का अकाल—इस अकाल का मुख्य कारण मालगुज़ारी की अधिकता थी। वह बलात् ली गई। उसे ले लेने पर किसानों के पास कुछ न बचा। फिर १८०६ में वृष्टि बिलकुल न हुई थी।

८—१८१३ का बम्बई का अकाल—यह भी मालगुज़ारी की वृद्धि के कारण हुआ था।

९—१८२३ का मद्रास का अकाल—रय्यतवारी विधि से मद्रास में पुनः लगान लगाया गया था। इस अकाल में सरकार ने अन्य प्रान्तों से अन्न मँगाया था।

१०—१८३३ का मद्रास का अकाल—यह अकाल बड़ा भयानक था। गन्तूर ज़िले के ५ लाख मनुष्यों की आबादी में से २ लाख मनुष्य भूखे मर गए थे! मद्रास की गलियाँ और नीलोर की सड़कों पर लाश ही लाश दीखती थीं।

११—१८३७ का उत्तर-भारत का अकाल—इन दिनों अवध, आगरा, कानपुर आदि नगरों में नए सिरे से लगान निश्चित किया गया था। यह लगान $\frac{2}{3}$ हो गया था। प्रजा के पास कुछ न रहा। फिर वृष्टि भी नहीं हुई। यह अकाल इतना भीषण था कि फ़तहपुर, कानपुर और आगरा शहर में लाश फेंकने वालों का ख़ास इन्तज़ाम करना पड़ा था। फिर भी लाशें सड़कों पर ही पड़ी रह जाती थीं और उन्हें जङ्गली पशु खा जाते थे। गलियाँ मुर्दों से भर गई थीं। लॉर्ड लॉरेन्स का कहना है—"मैंने अपने जीवन में कभी ऐसा नाशकारी दृश्य नहीं देखा, जैसा पलवल और होदाद परगनों में।" इस दुर्भिक्ष में ८ लाख मनुष्य मरे थे!!

१२—१८५४ का मद्रास का अकाल—यह अकाल उत्तर मद्रास तथा हैदराबाद में पड़ा। मृत्यु-संख्या का पता नहीं। इसके कारण कई वर्ष तक मद्रास की जन-संख्या न बढ़ सकी थी।

१३—१८६० का उत्तर भारत का अकाल—सत्तावन के ग़दर के २ वर्ष बाद यह अकाल पड़ा। ग़दर के कारण स्थान-स्थान पर खेती उजड़ गई थी। इसका कारण भी लगान ही था। यद्यपि वह $\frac{2}{3}$ से घटा कर $\frac{1}{2}$ कर दिया गया था। कर्नल बेयर्ड स्मिथ ने फिर भी स्थिर लगान की सलाह दी थी। इस अकाल में ३५ हज़ार आदमियों को रिलीफ़ वर्क और ८० हज़ार को ख़ैराती मदद ९ मास तक मिली थी, फिर भी २ लाख मरे थे!!

१४—१८६६ का उड़ीसे का अकाल—यह अकाल उड़ीसा में निश्चित लगान न होने के कारण पड़ा था। इसमें ४२ हज़ार आदमियों की १६ महीने तक मदद की गई थी। फिर भी साढ़े चौदह लाख आदमी मरे थे!!

*"The corruption and rapacity of our servants."

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१५—१८६९ का उत्तरी भारत का अकाल—यह अकाल राजपूताने से प्रारम्भ होकर उत्तर-पश्चिम प्रान्तों में फैल गया था। इसमें ६५ हज़ार आदमियों को रिलीफ़ वर्क से और १८,००० को ख़ैराती मदद मिलती थी, फिर भी १२ लाख आदमी मरे !!

१६—१८७४ का बङ्गाल का अकाल—इसमें ७ लाख ३५ हज़ार आदमी रिलीफ़ वर्क से और साढ़े चार लाख ख़ैराती सहायता से ९ महीने तक पले। इस अकाल में लॉर्ड नॉर्थब्रुक ने बड़े यत्न से लोगों की प्राण-रक्षा की थी।

१७—१८७७ का मद्रास का अकाल—इस अकाल का कारण सन् १८५६ की सरकारी लगान-सम्बन्धी नीति को त्याग देना था। लगान बढ़ा देने ही से यह अकाल पड़ा। इसमें ५० लाख मनुष्य मरे।

१८—१८७८ का उत्तर-भारत का अकाल—यह अकाल अत्यन्त भयानक था। इसका वास्तविक कारण लगान-वृद्धि था। इसमें १२,७५० मनुष्यों को अनाथालयों से और ५ लाख ५७ हज़ार को रिलीफ़ वर्क से सहायता दी गई। इसमें १२ लाख ५० हज़ार मनुष्य मरे।

१९—१८८९ का मद्रास का अकाल—इसमें बहुत मनुष्य मरे।

२०—१८९२ का बहुप्रान्तीय अकाल—मद्रास, वर्मा तथा अजमेर में इसका भयानक रूप था। कारण अस्थिर लगान-प्रथा थी।

२१—१८९७ का भयङ्कर भारत-व्यापी अकाल—इसका प्रभाव समस्त देश में था। और यह अत्यन्त भयानक था। इसमें ३० लाख मनुष्यों को सहायता दी गई थी। इसमें मज़दूर और कारीगरों की अधिक मृत्यु हुई।

२२—१९०० का भयङ्कर अकाल—जो पञ्जाब, राजपूताना, मध्य-प्रान्त और बम्बई में पड़ा। इसमें ६० लाख मनुष्यों को रिलीफ़ वर्क से सहायता दी गई। फिर भी बहुत अधिक मृत्यु हुई।

२३—१९०० से १९२८ तक के अकाल—जो हर दूसरे-तीसरे वर्ष किसी न किसी प्रान्त में पड़ते ही रहते हैं। गढ़वाल और पुरी के अकालों का इसमें विशेष उल्लेख करना उचित है। सरकार इस विषय में सहानुभूति तो क्या प्रकट करती, उलटे उसकी रिपोर्ट में सत्य बातें छिपी रहती हैं। १९१६ में नदी की भयानक बाढ़ से पुरी की खेतियाँ नष्ट-भ्रष्ट हो गईं। १९१८ में फ़सल पहले ही अच्छी न हुई थी। फिर युद्ध के कारण विदेश में बहुत अन्न गया था। बदले में सरकारी नोटों का ढेर प्राप्त हुआ था। फलतः अकाल पड़ा और लाखों मनुष्य मर गए।

एक अकाल की हानि का अनुमान एक विद्वान् ने लगाकर बताया है कि एक ही अकाल में सरकार और प्रजा की लगभग सवा अरब (?) रुपयों की हानि हुई और ५० लाख मनुष्य मरे अलग। उस हानि का हिसाब देखिए :—

१—सरकारी ख़र्च में हानि	...	१२,००,००,०००
२—मालगुज़ारी में ,,	...	३,७८,००,०००
३—खेती की ,,	...	४६,७०,००,०००
४—आबकारी-टैक्स की हानि	...	४२,७५,०००
५—चुङ्गी की आमदनी में हानि	...	७१,८५,०००
६—नमक-टैक्स में हानि	...	४०,९५,०००
७—ज़ेवरों की हानि	...	१,४८,२०,०००
८—खाद्य पदार्थों की महँगी से हानि		१९,५०,००,०००
९—पशुओं की हानि	...	७,१२,४१,५००
१०—मज़दूरों की हानि	...	४,१२,५०,०००
११—क़र्ज़ देने वालों की हानि	...	३,००,००,०००
१२—व्यापारियों की हानि	...	१,५०,००,०००

इसमें ५० लाख मनुष्यों के प्राणों का भी कुछ मूल्य जोड़ लिया जाय और फिर इन तमाम अकालों की हानि का धन और जन-हानि की दृष्टि से विचार लगाया जाय तो निस्सन्देह पृथ्वी काँप उठेगी !!

इन अकालों के कारणों पर स्वर्गीय सर रमेशचन्द्र-दत्त लिखते हैं :—

"×××सन् सत्तावन के ग़दर के बाद राज्य की बागडोर महारानी विक्टोरिया के हाथ में आई। तब से आज तक भारतवर्ष के भीतरी भागों में कभी लड़ाई नहीं छिड़ी—प्रजा शान्त और राज्य-भक्त रही। वह मिहनती और किफ़ायत से रहने वाली थी। फिर भी अकालों ने उग्र-रूप धारण किया। ग़दर के बाद ४० वर्षों में १७ अकाल पड़े, जिनमें डेढ़ करोड़ मनुष्य तड़प-तड़प कर भूखे मर गए। इसका कारण भयानक भूमि-कर है।"

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सन् १७७० का बङ्गाल का अकाल पृथ्वी पर कभी न भूलने वाला अकाल था, जिसमें १ करोड़ मनुष्य मरे थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भी अपने नौकरों के अत्याचार के लिए लज्जित होना पड़ा था। उस भयानक दुर्दशा का आँखों देखा वर्णन स्वर्गीय चण्डीचरण सेन ने इस प्रकार किया है :—

"घोर दुर्भिक्ष समुपस्थित है। सूखे नर-कङ्कालों से मार्ग भरे पड़े हैं। × × × सहस्रों नर-नारी मर-मर कर मार्ग में गिर रहे हैं। भगवती गङ्गा अपने तीव्र प्रवाह में सूखे मुर्दों को गङ्गासागर की ओर बहाए लिए जा रही हैं। अपने अधमरे बच्चों को छाती से लगाए सैकड़ों स्त्रियाँ अधमरी अवस्था में गङ्गा के किनारे सिसक रही हैं, पर पापी प्राण नहीं निकलते। फिर भी डोम अन्य मुर्दों के साथ उन्हें भी टाँग पकड़-पकड़ कर गङ्गा में फेंक रहे हैं। जहाँ-तहाँ आदमियों का समूह हिताहित-शून्य हो, वृक्षों के पत्तों को खा रहा है। गङ्गा-किनारे के वृक्षों में पत्ते नहीं रहे हैं।"

आगे आप लिखते हैं—"कलकत्ता नगरी में एक रमणी एक मुट्ठी नाज के लिए अपने गोद के बच्चे को बेचने के लिए इधर-उधर घूम रही है।"

यह घटना प्लासी के भाग्यहीन युद्ध के समय की है। उस समय बङ्गाल में बहुत अन्न था, पर वह सब लूट-कर अङ्गरेज़ों ने सेना के लिए कलकत्ते में जमा कर रक्खा था। अगले वर्ष खेती न हुई, तिस पर कम्पनी के कर्म-चारियों का भयानक अत्याचार और ६० प्रति शत भूमि-कर !! फलतः यह भयानक अकाल पड़ा था। इतिहास-कार लिखते हैं कि कलकत्ते में बहुत अन्न अङ्गरेज़ों के पास जमा है, यह सुनकर चारों ओर से—पूर्निया दीनाज-पुर, बाँकुड़ा, बर्दवान आदि से—हज़ारों नर-नारी कलकत्ते को चल दिए। गृहस्थों की कुल-कामिनियों ने प्राणा-धिक बच्चों को कन्धे पर चढ़ाकर विकट यात्रा में पैर धरा। जिन कुल-बधुओं को कभी घर की देहलीज़ लाँघने का अवसर नहीं आया था, वे भिखारिन के वेश में कलकत्ते की तरफ़ आ रही थीं। बहुमूल्य आभूषण और अशर्फ़ियाँ उनके आँचल में बँधी थीं और वे उसके बदले एक मुट्ठी अन्न चाहती थी। इन्हें लक्ष्य करके चण्डीचरण सेन ने कहा था :—

"हे बङ्ग देश के नर-नारीगण ! तुम झूठी आशा के सहारे व्यर्थ कलकत्ते जा रहे हो। कलकत्ते में जो चावल रक्खे हैं, वे तुम्हारे भाग्य में नहीं हैं—तुम्हारे जीने-मरने में किसी को कुछ लाभ नहीं है। × × × जो शासक तुम्हारी रक्षा का भार उठा चुके हैं, वे अर्थ-गृद्ध होने के कारण तुम्हारी रक्षा का कुछ भी ख़्याल न करेंगे—वह अन्न तो उनके सैनिकों के लिए है। उनके निकट सैनिकों के प्राण तुम्हारे प्राणों की अपेक्षा अधिक मूल्यवान् हैं।"

कहाँ तक इस प्रकार के उद्धरण दिए जायँ, अङ्गरेज़ी साम्राज्य का इतिहास इन्हीं बातों से भरा पड़ा है।

पहले कहा गया है कि प्राचीन काल में भूमि-कर की कोई नियत रक़म न थी। सुकाल-अकाल का ख़्याल करके ही ज़मींदार अपना लगान लेते थे, जैसा कि रज-वाड़ों में अब भी लिया जाता है। इससे किसानों और राजाओं में सम्मान-भाव रहता था। पर आज वह बात कहाँ है? किसान लोग दिन-प्रतिदिन एक नई कर-प्रणाली के भारी बोझ से नीचे को दबते चले जा रहे हैं। इसीसे किसानों के मन में खेती की उन्नति करने की उमङ्ग नहीं उठ पाती है। थोड़े-थोड़े समय के लिए कर नियत करना, उगाहने में छूट न करना और पूर्ण कठोरता दिखाना, इन कारणों से बेचारे किसान बनियों के क़र्ज़ के नीचे दब गए हैं। उन पर २५ फ़ी सदी क़र्ज़ा है !!

पर अधिक सोचने की बात तो यह है कि ब्रिटिश-सरकार इतना लगान क्यों बढ़ाती है? यह तो वही मिसाल होती है कि मकड़ी अपने जाले में मक्खी को फँसा लेती है, चूसती है और ख़ूब ख़ून चूसती है। जब वह मर जाती है तो फिर दूसरा जाला बुनकर दूसरी मक्खी की ताक में रहती है। अङ्गरेज़ों की नीति प्रारम्भ से यही है कि भारत को किसी प्रकार भी हो, चूस लेना चाहिए। हमारा धन, दौलत, हीरे, जवाहरात, अमूल्य वस्तुएँ—सब कुछ तो ये ले गए और अब हमारी ग़रीबी की गहरी परिश्रम की कमाई को ये अपने पेट में इस तरह झोंके जा रहे हैं ! किसी भी गवर्नमेण्ट की यह नीति महज़ डाकेज़नी है और इसकी जितनी निन्दा की जाय, थोड़ी है।

इस लगान-नीति के सम्बन्ध में सर हेनरी कॉटन कहते हैं :—

"हमारी भूमि-का-सम्बन्धी नीति में यह बात गुप्त रीति से मान ली गई है कि भारतवर्ष की धरती के स्वामी भारत के निवासी नहीं हैं, किन्तु गवर्नमेण्ट। है

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जब 'राज्य' (State) शब्द 'प्रजा' शब्द का पर्याय हो तो ऐसा कहने से कोई हानि नहीं है—विदेश की भूमि राज्य की है। परन्तु जिस दशा में कि 'राज्य' कहने से परदेशी लोगों का एक ऐसा छोटा सा समूह समझा जावे कि जो भूमि-कर की आमदनी में से लगभग एक तृतीयांश तो अपने नौकरों ही की तनख़्वाह में ख़र्च कर देता है, जिसका न तो यहाँ पर कोई स्थायी घर ही है और न जिन्हें देश की हानि-लाभ से ही कुछ काम है, तो देश की भूमि को राज्य की भूमि कहना कदापि उपयुक्त नहीं हो सकता। चिरस्थायी प्रबन्ध वाले ज़िलों के सिवा समग्र भारतवर्ष में हमने इसी सिद्धान्त के आधार पर सब प्रबन्ध किया है। इसी लिए किसान इतने ग़रीब हो गए हैं। ज़ोर के साथ इस सत्य-सिद्धान्त की दुहाई देकर थोड़े से परदेशी लोग, जो अपने को राज्य (State) कहते हैं, वास्तव में भूमि के स्वामी बन बैठे हैं। हमने तालुक़ेदार से लेकर किसान तक की जायदादों के स्वत्व छीन लिए हैं और गाँवों की, बस्तियों की पञ्चायतों के नियमों को उलट-पलट दिया है। उस एकॉनॉमिक आधार को, जिस पर देश भर की खेती करने वाली जातियों का पारस्परिक घनिष्ट सम्बन्ध जुटा हुआ था, हमने जड़ से उखाड़ डाला है और उसके स्थान पर एक बहुत ख़र्चीला और बनावटी नया ढङ्ग स्थापित कर दिया है।"

सर हेनरी कॉटन अन्यत्र लिखते हैं :—

"पुराने समय में जिन महापुरुषों के हाथों में इस देश का शासन था और जो वास्तव में हमसे अधिक बुद्धिमान् थे, वे देश-प्रबन्ध में बहुत सावधानी से हस्तक्षेप किया करते थे। × × × भूमि या भूमि-सम्बन्धी ऐसे क़ानून का जारी करना, जिसके लिए देश अभी प्रस्तुत नहीं है, इस बात को प्रमाणित करता है कि भारतवर्ष की वर्त्तमान अवस्था की आवश्यकताओं को ठीक-ठीक पहचानने की योग्यता हममें नहीं है।"

"टेनेन्सी, क़ानून के सम्बन्ध में सरकार डींग हाँकती है कि इससे किसान पहले की तरह दबे न रहेंगे और व्यक्तिगत लाभों पर ध्यान रहेगा।"

इस पर सर हेनरी कॉटन का कहना है :—

"यह किसी भी देश के लिए लाभ की बात नहीं है कि उसमें केवल ऐसे-ऐसे तुच्छ कृषक बसते हों कि जिनका कर उपज के साथ-साथ बढ़ता रहे, क्योंकि ऐसा करने से न तो वे भूमि की उन्नति के लिए उद्योग करेंगे और न खेती के बढ़ाने के लिए किसी प्रकार का उद्योग करेंगे।"

डॉक्टर बुकॉनल साहब ने लिखा है :—

"देशी लोगों का कथन है कि यद्यपि मुग़लों ने हमको ख़ूब निचोड़ा एवं दबाया; और यद्यपि उन्होंने सदा हमारे साथ बुरा व्यवहार किया, तथापि अङ्गरेज़ी राज्य की अपेक्षा तो हम मुग़लों के ही राज्य को उत्तम समझते हैं, क्योंकि मुग़लों के अत्याचार तो जैसे-तैसे सहे भी जाते थे, परन्तु अङ्गरेज़ी सरकार की यह नीति कि किसी के ज़िम्मे भूमि-कर का बक़ाया रह जाय तो उसकी भूमि सर्वथा बेच दी जाय, हमसे किसी तरह सहन नहीं होती। मुग़लों के समय में रिश्वतें ख़ूब चलती थीं। पर फिर भी उस समय हमें जो कुछ देना पड़ता था, वह सब आजकल जो दिया जाता है, वास्तव में उसका आधा भी न था।"

किसानों की उन्नति की थोथी बकवादों से अब काम नहीं चल सकता। उन्हें तरह-तरह के खाद और यन्त्रों की योजना दिखाई जाती है, पर उनके पास इतना पैसा कहाँ है कि वे लकड़ी लेकर जलावें और गोबर बचाकर उसका खाद बनावें? कहाँ से वे क़ीमती कल-पुर्ज़े और औज़ार ख़रीदें? उद्योग-धन्धे नष्ट होने पर बेचारे किसानी पर झुके थे, किसानी पर यह गाज पड़ी—अब वे भाग-भागकर नैटाल, मॉरिशस और मिर्च के टापू में शर्तबन्धे कुली बनकर कुत्तों की तरह बे-मौत अपमान की मौत मर रहे हैं!! अकेले मद्रास से ही दो लाख आदमी भाग गए हैं!!!

आज सरकार हमें विश्वास दिलाती है कि हम किसानों को उन्नति का मार्ग बता रहे हैं। खेतों की सिंचाई को पानी की नहरें और बम्बे बना रहे हैं। नए-नए आविष्कार के हल चला रहे हैं। खेती अच्छी पैदा हो, ऐसे-ऐसे ढङ्ग किसानों को बता रहे हैं। पर यह सब व्यर्थ और थोथी बकवाद है। आज तक किसानों की एक भी उन्नति नहीं हो पाई है, और वे जिस अन्यायपूर्ण अत्याचार से मारे जा रहे हैं, वह सब पर प्रकट है और कोई सद्व्यक्ति उसे सह न सकेगा।

ढाका, करनाटक, तञ्जोर इत्यादि बड़े-बड़े समृद्धिशाली प्रदेश क्यों नष्ट-भ्रष्ट और ग़ारत हुए? केवल इस कर की बदौलत! तञ्जोर में मि० पैट्री सन् १७६८ में जब आए

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

थे तो वे लिखते हैं—"उस समय तञ्जोर भारत के उन्नतिशील प्रदेशों में से एक था। विदेशी तथा अन्तरीय व्यापार का केन्द्र था। यहाँ की वस्तुएँ अफ्रिका और दक्षिणी अमेरिका में पहुँचती थीं। तञ्जोर की उपमा इङ्गलैण्ड से देने में कोई अत्युक्ति न होगी। परन्तु १७७१ में अङ्गरेज़ों ने इस सोने की चिड़िया को फँसाने की चेष्टा की और १७७३ में इसे जीत लिया। इसके कुछ दिन बाद ही तञ्जोर उजड़ कर नष्ट-भ्रष्ट हो गया।"

मि० चेपलेन ने एक किसान का हाल बताया है। उसके पास १० एकड़ भूमि थी। और उसकी फ़सल १८०) रु० में बिकती थी :—

बैल इत्यादि का ख़र्च	...	...	२४॥)
मज़दूरी	...	...	१७)
बीज की क़ीमत	...	...	२०॥)
परिवार का भोजन-ख़र्च	...	...	२८)
वस्त्रादि	...	...	२२)
फुटकर	...	...	९)
योग	...		१२१)

अब १२१) ख़र्च करके उसके पास ५९) शेष बचते हैं, जिसमें से ६१) लगान देना है अर्थात् २) गाँठ से देने पड़ते हैं। इस दुर्दशा में ग़रीब किसान किस प्रकार पनप सकते हैं? यह बात तो कुछ गए-बीते दिनों की है, पर आजकल की जो लगान-विधि है, उससे हम किसी किसान को सुखी नहीं देख सकते। सरकार लाख प्रयत्न करेगी, तब भी वे न सँभल सकेंगे और न अब तक सँभल सके हैं!

अङ्गरेज़ कहते हैं कि हमने किसानों को ज़मींदारों के पञ्जों से छुड़ाकर मुक्त किया है और नए-नए यन्त्र खेती के लिए बना दिए हैं। पर यह सब धोखा है। भूमि-कर की नीति और उसके वसूल करने में जो कठोरता होती है, वह इतनी ज़हरीली है कि किसान की दुर्दशा हुए बिना नहीं रह सकती।

अन्त में यह सब बताकर हम पाठकों से आग्रह करेंगे कि वे इस जटिल प्रश्न को ख़ूब मनन करें। वे समझ लें कि सरकार के हथकण्डे—जो लॉर्ड क्लाइव ने फैलाने शुरू किए थे—कहाँ तक अपने शिकार को फँसाने में सफल हुए हैं। अङ्गरेज़ों की लगान-नीति दिन पर दिन बढ़ती रही है और बढ़ेगी। बारदोली ने जिस साहस से इसका दमन करने का बीड़ा उठाया है, वह वास्तव में तेजोमय कार्य है। प्रत्येक किसान को, ज़मींदार को, प्रजा को, और अन्त में राजाओं को इसमें योग देना चाहिए—देश भर में आग लग जाने का यह प्रश्न है। यदि एक सभ्य सम्राट् के शासन में उसकी प्रजा सुख, शान्ति, आनन्द और मौज में नहीं रह सकती, तो उसका ऐसे सम्राट् की प्रजा होना धिक्कारने योग्य है।

अब, जब तक देश मिलकर एक स्वर से सरकार को यह न जता दे कि तुम्हारी कर-सम्बन्धी माँग बड़ी ही अन्यायपूर्ण है और नग्न अत्याचार है, तब तक देश को चैन से बैठना नहीं चाहिए। प्रत्येक नेता को इसके लिए उत्सुक और अधीर होना चाहिए। इसी अधीरता की अग्नि में आहुति देने में हमें अपनी पूर्ण शक्ति लगा देनी चाहिए, जिससे सरकार की वह धींगा-धींगी इसमें जलकर ख़ाक हो जाय और प्रत्येक जगह का आदर्श उपस्थित हो तथा २३ करोड़ अभागे, किन्तु वीर, सीधे-सादे मनुष्य जी उठें! *

* यह लेख बहुत परिश्रम और खोज के साथ लिखा गया है। यदि कोई सम्पन्न सज्जन पुस्तकाकार इसकी लाख-पचास हज़ार कॉपियाँ छपाकर बिना मूल्य किसानों में बटवा सकें तो वास्तव में हमें बड़ी प्रसन्नता होगी।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सोहाग की साड़ी कहानी

[ले० श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]

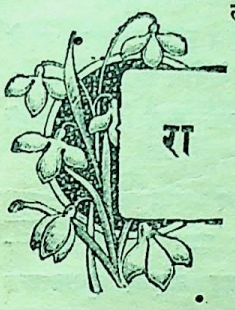

रात के आठ बज चुके हैं। एक साधारण मकान के एक कमरे में चारपाई पर एक नवयुवक सिर पर हाथ धरे बैठा है। उसके सामने ही भूमि पर बिछी हुई एक चटाई पर एक सुन्दर युवती सिर झुकाए बैठी है। युवती एक मामूली सफ़ेद धोती पहने है। उसके शरीर पर कोई अलङ्कार नहीं है—केवल पैरों में चाँदी की दो झाँझें और पैरों की एक-एक उँगली में एक-एक बिछुआ पड़ा हुआ है। हाथों में काँच की साधारण चूड़ियाँ हैं।

कुछ देर तक दोनों इसी प्रकार सिर झुकाए हुए बैठे रहे। हठात् युवक ने सिर उठाकर युवती की ओर देखा और बोला—क्या उपाय करें, कुछ समझ में नहीं आता? तुमने सब देख लिया है? कहीं सन्दूक़-बन्दूक़ में कोई चीज़ पड़ी रह गई हो?

युवती ने विषादपूर्ण मन्द मुस्कान के साथ कहा—कहीं कुछ नहीं है, मैंने सब देख लिया है। और मेरी तो सब गिनी हुई चीज़ें थीं। छः चीज़ें सोने की थीं और पाँच चाँदी की—कुल ग्यारह चीज़ें थीं। वह ग्यारहों बिक चुकी हैं। ख़ाली ये झाँझें और बिछुए रह गए। ये होंगे पन्द्रह-बीस रुपए के। बीस रुपए भर दोनों झाँझें हैं और चार रुपए भर दोनों बिछुए होंगे। इस प्रकार कुल चौबीस-पचीस भर चाँदी है। अगर बेची जाय तो कठिनता से पन्द्रह-सोलह की बिकेगी।

युवक—ख़ैर, पन्द्रह-सोलह ही क्या कम हैं? पन्द्रह-सोलह में तो महीना भर टल सकता है।

युवती—बिछुए तो मैं उतारूँगी नहीं, चाहे प्राण चले जायँ। हाँ, झाँझ ले सकते हो, यद्यपि झाँझ भी × × ×

इतना कह कर युवती रुक गई। उसका गला रुँध गया और आँखों में आँसू भर आए।

युवक 'हूँ' कहकर चुप हो रहा और विचार-सागर में मग्न हो गया। युवती भी आँखें पोंछकर उँगली से चटाई को खरोचने लगी।

युवक पुनः थोड़ी देर पश्चात् बोला—परन्तु आवश्यकता तो इस समय सौ रुपयों की है, बीस-पचीस से क्या भला होगा? सौ रुपए हों, तो महीने भर का खाने का गुज़र चल जाय और नौकरी भी लग जाय। यदि पन्द्रह-बीस में काम चलता तो मैं तुम्हारी झाँझें ले भी लेता, परन्तु जब काम नहीं चलेगा तब इन्हें लेकर तुम्हारा जी दुखाना व्यर्थ है! और कोई ऐसी चीज़ है नहीं, जो बेचकर सौ रुपए प्राप्त किए जा सकें।

युवती ने पुनः सिर उठाया और बोली—और कौन ऐसी चीज़ है? गहना तो सब चला ही गया।

"उसका मुझे कुछ अफ़सोस नहीं। तुम बिना गहने के भी उतनी ही सुन्दर दिखाई पड़ती हो, जितना कि पूर्णिमा का चन्द्रमा।"

कुछ क्षणों के लिए युवती के गालों पर लज्जा की हलकी लाली दौड़ गई। उसने किञ्चित मुस्करा कर कहा—हाँ, मन समझाने के लिए तो × × ×।

युवक बात काटकर बोला—मन समझाने की बात नहीं, सच्ची बात है—मेरे हृदय की बात है। मुझे गहना जाने का ज़रा भी अफ़सोस नहीं है। परन्तु यह समस्या कठिन आ पड़ी है।

कुछ क्षण के लिए पुनः दोनों उदासीनता के सागर में मग्न हो गए। हठात् युवती ने सिर उठाकर कहा—केवल एक चीज़ ऐसी है, जिससे सौ रुपए मिल सकते हैं।

युवक चौंक पड़ा। उसने उत्सुकता-भरे हुए स्वर में पूछा—है? कौन चीज़ है? लाओ—जल्दी निकालो।

"परन्तु वह मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारी है।"

"लाओ, दिखाओ तो वह क्या है?"

युवती उठी और कोठरी में चली गई। थोड़ी देर में वह एक श्वेत कपड़े में लिपटी हुई एक वस्तु लाई। युवक ने पूछा—यह क्या है?

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

युवती ने कपड़ा खोलकर एक बनारसी साड़ी निकाली और उसे युवक के सम्मुख रखकर बोली—यह है।

युवक ने साड़ी को उलट-पलट कर देखा और बोला—बड़ी सुन्दर साड़ी है। कितने की होगी?

"ढाई सौ में ख़रीदी गई थी।"

"तब तो सौ रुपए में अवश्य ही बिक जायगी।"—युवक ने प्रसन्न होकर कहा।

"परन्तु मैं इसे बेचूँगी नहीं।"

युवक ने म्लान-मुख होकर पूछा—क्यों?

"यह मेरे सोहाग की साड़ी है।"—युवती ने गम्भीरता-पूर्वक कहा।

"ओह, इन भावुकता की बातों में क्या धरा है? तुमने व्यर्थ ही इतना परेशान किया! पहले से बता देती तो इतनी चिन्ता क्यों होती।"

"भावुकता नहीं। मैं इसे प्राण रहते कभी न निकालती, पर तुम्हें चिन्तित और दुखी देखकर मैंने इसे निकाला—यह समझ लो कि मैंने अपना कलेजा निकाल कर तुम्हें दिया है।"

"ओफ़ ओह! एक साधारण साड़ी का इतना मान!"

"यह साड़ी साधारण नहीं है। इसका मूल्य समझने के लिए इसे मेरी आँखों से देखो तो पता चले।"

युवक हँसकर बोला—अच्छा! अच्छा! ईश्वर चाहेगा तो मैं तुम्हें इससे बढ़िया साड़ी ला दूँगा।

"मुझे यही साड़ी चाहिए—न बढ़िया न घटिया।"

"ख़ैर, इस समय तो मैं इसे बेचता हूँ, फिर देखा जायगा।"

"बेचने तो मैं दूँगी नहीं।"—युवती ने दृढ़तापूर्वक कहा।

"क्यों? बिना बेचे काम कैसे चलेगा?"

"ढाई सौ की साड़ी सौ रुपए में गिरवी भी रक्खी जा सकती है?"

"अच्छा, तुम्हारा यह मतलब है! तो यदि ऐसी बात है तो न बेचूँगा। मुझे चीज़ें बेचने का शौक़ सो है नहीं। गहना तो इसलिए बेच दिया कि गिरवी रखने में ब्याज की चपत मुफ़्त में पड़ती—ईश्वर देगा तो नया बन जायगा।"

"उस गहने की मुझे परवा नहीं, उनका तो बेचना ही ठीक था। पर यह साड़ी मत बेचना। यह साड़ी मैं नहीं जाने दूँगी।"

"अच्छी बात है, न बेचूँगा।"—यह कहकर युवक ने साड़ी को कपड़े में लपेटा और उठ खड़ा हुआ।

युवती ने युवक के कन्धे पर हाथ रखकर कहा—पहले मेरे सिर पर हाथ रखकर कहो कि बेचोगे नहीं।

युवक मुस्करा कर बोला—क्या तुम्हें विश्वास नहीं होता?

"मुझे विश्वास है, पर तुम मेरा कहना करो।"

युवक ने युवती के सिर पर हाथ रखकर कहा—"अच्छा, नहीं बेचूँगा, बस!" यह कहकर युवक चल दिया।

घर से बाहर आकर वह द्रुतगति से एक ओर चला। थोड़ी देर में वह एक बड़े मकान के द्वार पर पहुँचा। द्वार पर एक आदमी बैठा तमाखू पी रहा था। उससे युवक ने पूछा—बाबू जी हैं?

आदमी ने चिलम भूमि पर रखकर खड़े होते हुए कहा—हाँ, हैं! नीचे बैठक में बैठे हैं?

युवक भीतर चला गया। सामने ही बैठका था। बैठके में एक अर्द्धवयस्क पुरुष आराम-कुर्सी पर लेटे हुए समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। युवक उनके सामने पड़ी हुई कुर्सी पर जाकर बैठ गया। उसकी आहट पाकर उन्होंने पत्र हटाकर युवक की ओर देखा। युवक को देखते ही उन्होंने पत्र अलग रख दिया और आँखों पर से ऐनक उतारते हुए बोले—कहो भाई बनवारीलाल, अच्छे तो हो?

बनवारीलाल ने एक दीर्घ निश्वास छोड़कर कहा—हाँ, किसी न किसी प्रकार जीवित हूँ।

उन सज्जन ने पूछा—नौकरी लगी?

"अभी तो नहीं, पर आशा है।"

"कहाँ?"

"बैङ्क में एक पचास रुपए की जगह है।"

"तब तो अच्छा है।"

"हाँ, जब मिल जाय तब न—हेडक्लर्क साहब कुछ दक्षिणा चाहते हैं।"

"तो दे डालो। आजकल नौकरी मिलना बड़ा कठिन है।"

"यह तो मुझसे अधिक कदाचित् ही कोई जानता

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हो। एक वर्ष चेष्टा करते हुए हो गया—पास-पल्ले जो कुछ था, सब बैठे-बैठे खा डाला, कुछ नौकरी के फेर में ख़र्च हो गया—और अभी ठिकाना नहीं है।"

वह सज्जन मुँह बनाकर बोले—बड़ा कठिन समय है।

बनवारीलाल ने कहा—इस समय आपसे कुछ सहायता चाहता हूँ। मुझे कुछ रुपए चाहिए। इसके लिए मैं यह वस्तु लाया हूँ, इसे देख लीजिए।

यह कह कर बनवारीलाल ने कपड़ा खोलकर साड़ी उनके सम्मुख रख दी। उन सज्जन ने पुनः ऐनक चढ़ाई और साड़ी को ध्यानपूर्वक देखा। देखकर बोले—कितने रुपए चाहिए?

बनवारीलाल ने कहा—मैं इसे गिरवी रखना चाहता हूँ। आप इस पर अधिक से अधिक कितने दे सकते हैं?

उन सज्जन ने पुनः साड़ी को देखा और कुछ क्षणों तक सोचकर बोले—अधिक से अधिक सौ रुपए।

बनवारीलाल ने कहा—ढाई सौ की ख़रीदी थी, कहीं कोई दाग़-धब्बा नहीं है—बिलकुल नई है।

"हाँ, यह ठीक है, पर इस समय कपड़े का भाव गिरा हुआ है।"

"कितना गिरा होगा?"

"ख़ैर, मैं आपको सौ रुपए दे सकता हूँ, इससे अधिक नहीं।"

"सवा सौ दीजिए!"

"सवा सौ! सवा सौ उस दशा में दे सकता हूँ, यदि आप इसे बेच डालिए।"

"ख़ैर, बेचूँगा तो मैं इसे हज़ार रुपए में भी नहीं।"

"अच्छा! ऐसी चीज़ है?"

"जी हाँ! आप सवा सौ दे दीजिए। मैं इसे अवश्य छुड़ा लूँगा, यह निश्चय जानिए।"

"तो ब्याज डेढ़ रुपया सैकड़ा लगेगा!"

"डेढ़ रुपया तो बहुत है—एक रुपया लीजिए!"

"इससे कम न होगा।"

"बीस आने लगा लीजिए।"

"ऊँहूँ!"

"अच्छा, तो डेढ़ ही सही, अपनी ग़रज़ है। जो आप माँगेंगे, देना पड़ेगा।"

वह सज्जन बोले—यह बात नहीं, यदि दूसरा डेढ़ ले तो मैं बीस ही आने ले लूँगा।

"मुझे दूसरे के पास जाना होता तो मैं आपके पास क्यों आता?"

उन सज्जन ने घर के अन्दर से सवा सौ रुपए लाकर दे दिए और आवश्यक लिखा-पढ़ी कर ली।

चलते समय बनवारीलाल ने कहा—इसे सुरक्षित रखिएगा, मैं अवसर मिलते ही इसे छुड़ा लूँगा।

"यदि आप ब्याज अदा करते रहिएगा तो सुरक्षित रहेगी, अन्यथा मैं बेच डालूँगा। डेढ़ सौ तक का भार इस पर हो सकता है, इससे अधिक नहीं। जिस दिन इस पर डेढ़ सौ हो जायँगे, उसी दिन बिक जायगी, इसे याद रखिएगा।"

"ईश्वर चाहेगा तो ऐसा नहीं होने पाएगा।" यह कहकर बनवारीलाल चल दिए!

(२)

उपर्युक्त घटना हुए छः मास व्यतीत हो गए। आजकल बनवारीलाल बैङ्क में नौकर हैं, पचास रुपए मासिक वेतन मिलता है। शाम का समय था। बनवारीलाल को आज ही छठे मास का वेतन मिला था। अपनी पत्नी को रुपए देते हुए उन्होंने कहा—लाओ, दो रुपए माधोलाल को ब्याज के दे आऊँ। पत्नी ने दो रुपए बनवारीलाल को दे दिए और बोली—इन छः महीनों में साठ रुपए तो जमा होगए, सत्तर रुपए और हो जायँ तो साड़ी छूट आवे।

बनवारीलाल ने कहा—छूट आवेगी, कौन जल्दी पड़ी है, उसके बिना कुछ काम अटका है?

"काम तो नहीं अटका है, पर छुड़ानी तो पड़ेगी ही।"—उनकी पत्नी ने किञ्चित् मुस्करा कर कहा।

बनवारीलाल ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया और चल दिए।

माधोलाल ने उन्हें देखते ही कहा—आइए, अच्छे आए, मैं आपको बुलवाने ही वाला था।

बनवारीलाल ने उनके सामने ब्याज के रुपए रखते हुए कहा—कहिए, मैं तो स्वयम् हाज़िर हो गया।

"बात यह है कि आपकी साड़ी का एक गाहक लगा है। यदि आप कहें तो साड़ी बेच दी जाय—दाम अच्छे मिल रहे हैं।

"क्या दाम मिल रहे हैं?"—बनवारीलाल ने उत्सुक होकर पूछा।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"दो सौ रुपए !"

"दो सौ रुपए ? तब तो बेच देना ही ठीक है।"

"मेरी भी यही राय है। ७५) रुपए आपको अधिक मिल रहे हैं। इनमें पचीस रुपए मिलाकर सौ रुपए की एक साड़ी ले लीजिए—सौ रुपए में अच्छी साड़ी आ जायगी।"

"कहते तो आप ठीक हैं।"

"तो फिर क्या राय है—बेच दूँ ?"

"हाँ बेच दीजिए—परन्तु × × ×।"

बनवारीलाल को ध्यान आगया कि उन्होंने अपनी पत्नी के सिर पर हाथ रखकर शपथ की है कि साड़ी नहीं बेचेंगे।

माधोलाल ने पूछा—परन्तु क्या ?

"बात यह है कि मेरी पत्नी उसे बेचना नहीं चाहती।"—बनवारीलाल ने कुछ सकुचाते हुए कहा।

"क्यों ?"

"पता नहीं क्यों !"

"अजी, यह सब स्त्रियों के झगड़े हैं—स्त्रियाँ हानि-लाभ तो समझतीं नहीं, उन्हें तो अपने काम से काम है। यदि आप इसे नहीं छुड़ाएँगे तो घाटे में रहेंगे। अभी आप शायद छुड़ा न सकेंगे। साल दो साल पश्चात् छुड़ाएँगे तो काफ़ी ब्याज हो जायगा, अब छुड़ाइएगा तो सवा सौ घर से निकाल के देने पड़ेंगे। इस समय तो ७५) मिल रहे हैं और ब्याज से पिण्ड छुटा जा रहा है।"

बनवारीलाल ने सोचा—बात तो ठीक है। परन्तु शपथ ली है। उसका क्या होगा ?

एक प्रकार से शपथ का अब कोई प्रभाव नहीं रहा। उस समय बेचने की क़सम खाई थी, सो उस समय नहीं बेची। कुछ जन्म भर के लिए क़सम थोड़े ही खाई थी। इसी प्रकार कुछ देर तक बैठे बनवारीलाल विचार करते रहे।

मधोलाल ने मुस्करा कर कहा—कहिए, क्या सोच-विचार है, पत्नी के भय के मारे साहस नहीं होता—क्यों ?

बनवारीलाल शरमा गए। उन्होंने कहा—नहीं, साहस क्यों नहीं पड़ता, यही सोच रहा था कि कहीं उसे दुख न हो।

"दुख की कौन सी बात है ? उसे तो साड़ी चाहिए। मैं सौ रुपए की ऐसी साड़ी दे सकता हूँ, देखने में उससे अच्छी जँचे।"

"उससे अच्छी न हो, परन्तु यदि वैसी ही हो तो और भी अच्छा !"

"वैसी ही कैसे हो सकती है—रङ्ग वैसा हो सकता है, पर काम वैसा नहीं होगा।"

बनवारीलाल ने पुनः सोचा—ठीक तो है, इसे बेच कर सौ रुपए की हलकी साड़ी ले लें, उसका मन भी रह जायगा और अपना काम निकल जायगा। ढाई सौ की साड़ी व्यर्थ है। उसके साथ के लिए कुछ गहना-ज़ेवर भी तो होना चाहिए, ख़ाली साड़ी पहनने से तो वह माँ की जँचेगी। सबसे पहले तो कुछ गहना बनवाना चाहिए—साड़ी इतनी आवश्यक नहीं है, जितना कि गहना।

माधोलाल नैराश्यपूर्ण स्वर में बोले—यदि आपकी इच्छा नहीं है, तो मत बेचिए। मेरा उसमें कोई लाभ नहीं है। मैंने तो केवल आपकी शुभ-कामना करते हुए यह इसलिए कहा कि जिसमें आपको व्यर्थ ब्याज की चोट न सहनी पड़े।

बनवारीलाल कुछ सिटपिटा कर बोले—आपका विचार उत्तम है और उसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँ। आप उसे बेच डालिए। मैंने तय कर लिया।

"बेच डालूँ ?"—माधोलाल ने निश्चय करने के लिए पूछा।

"हाँ, बेच डालिए।"

"अच्छी बात है। आज मैं उसे बेच दूँगा। कल आप शाम को आकर रुपए ले जाइएगा।"

"बहुत अच्छा !"—कहकर बनवारीलाल उनसे विदा हुए।

(३)

दूसरे दिन शाम को बनवारीलाल माधोलाल के यहाँ पहुँचे। उन्होंने उन्हें देखते ही ७५) रु० उनके हवाले कर दिए और बोले—सवा सौ मैंने अपने काम लिए—ब्याज इस महीने का आप दे ही गए थे। इस प्रकार ७५) बचे।

बनवारीलाल रुपए लेकर घर की ओर चले।

रास्ते में वह सोचते जा रहे थे—७५) रु० ये हैं ६०) घर में धरे हैं। इस प्रकार कुल १३५) रु० होगए

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसका कोई गहना बनवा देंगे! साड़ी ससुरी में क्या धरा था; परन्तु घर में इन रुपयों की बाबत क्या कहेंगे। उँह! इसकी क्या चिन्ता है—इसके लिए बीस बहाने हो सकते हैं। कह देंगे, एक का कुछ काम कर दिया था, उसने दिए।

यही सब सोचते-विचारते बनवारीलाल घर पहुँचे। कपड़े-वपड़े उतार कर ज़रा दम लेने के पश्चात् उन्होंने जेब से रुपए निकालकर पत्नी दिए। उसने पूछा—यह कहाँ मिले?

बनवारीलाल ने कहा—आज बैङ्क में एक सेठ रुपए जमा करने आया था। उसका एक हज़ार रुपए का नोट गिर गया। उसने बहुत ढूँढ़ा, पर न मिला। अन्त में जब वह निराश हो गया था तो भाग्य से मुझे मिल गया। मैंने उसे दे दिया। उसने प्रसन्न होकर इनाम के तौर पर ये रुपए दिए।

यह सुनकर उनकी पत्नी बहुत प्रसन्न हुई। उसने कहा—तो अब साड़ी छूट आवेगी। कल मैं सवा सौ दे दूँगी, साड़ी छुड़ा लाना।

बनवारीलाल अप्रसन्न होकर बोले—न जाने उस साड़ी में कौन लाल टँके हैं, जो उसकी रट लगा रक्खी है। रुपए आए हैं, धरे रहने दो—न जाने किस समय कैसा काम आ पड़े। साड़ी कौन काम आवेगी? यदि रुपयों का कुछ उपयोग ही करना है, तो कोई गहना बनवा लो।

पत्नी गम्भीर होकर बोली—उस साड़ी की क़दर तुम नहीं जान सकते, उसकी क़दर मैं जानती हूँ। वह वह साड़ी है, जिसे मेरे पिता मेरे लिए बड़े चाव से लाए थे। वह वह साड़ी है, जो मैंने केवल एक बार उस समय पहनी थी जब मेरा विवाह हुआ था। इसलिए मेरे लिए उस साड़ी से बढ़कर दूसरा कपड़ा नहीं हो सकता, वह चाहे जितना मूल्यवान् हो। ख़ैर, यदि इस समय नहीं तो दो-तीन महीने बाद उसे छुड़ाना—पर छुड़ाना अवश्य पड़ेगा। वह साड़ी बड़ी भाग्यवान् है। उसी की बदौलत आज हम-तुम निश्चिन्तापूर्वक बैठे रोटी खा रहे हैं—वह न होती तो यह नौकरी मिलती?

बनवारीलाल मुँह बनाकर बोले—बस, रहने दो। तुम तो उस ससुरी को बिलकुल देवी-देवता बनाए दे रही हो। छिः छिः, साड़ी न होती तो नौकरी न लगती; क्या कही है? साड़ी न होती गहना होता, तब भी नौकरी लग जाती। आवश्यकता तो रुपयों की थी—जिस वस्तु से रुपए प्राप्त हो जाते वही यथेष्ट थी। यह कहना कि साड़ी की बदौलत नौकरी लगी, एक महा पोच और लचर बात है।

"उस समय तो साड़ी ही ने सहायता की थी। साड़ी न होती तो क्या करते?"

"कुछ न कुछ प्रबन्ध तो होता ही, साड़ी न होती तब भी काम निकालना ही पड़ता। साड़ी की बदौलत इतना हुआ कि अधिक परेशानी नहीं उठानी पड़ी—बस!"

"उस समय तो कहीं ठिकाना नहीं था।"

"वह सब हो जाता। संसार में किसी का काम नहीं रुका करता।"

"उस समय तुम्हारे मुख पर जितनी निराशा और घबराहट थी, उसे देखकर तो यही प्रतीत होता था कि इस समय कहीं ठिकाना नहीं है।"

"ऐसा ठिकाना नहीं था, जहाँ से सरलतापूर्वक मिल जाता, यही घबराहट और चिन्ता थी। चेष्टा और प्रयत्न करते तो मिलता—मिलता कैसे न?"

"ख़ैर, इस समय अब तुम चाहे जो कह लो, पर उस समय अवस्था बहुत बुरी थी—उस समय साड़ी ही ने सहायता की थी।"

बनवारीलाल हँसकर बोले—तुम्हारा बस चले तो तुम उस साड़ी के लिए एक मन्दिर बनवा दो।

"मेरा हृदय ही उसका मन्दिर है। मेरा हृदय उसे प्यार करता है। उसे ईंट-पत्थर के मन्दिर की क्या आवश्यकता है। फिर वह कुछ ईश्वर थोड़े ही है, जो मन्दिर बने। मन्दिर ईश्वर और देवता के लिए बनते हैं—साड़ियों के लिए नहीं।"

बनवारीलाल ने कहा—ख़ैर, यह सन्तोष की बात है कि तुम उसे ईश्वर नहीं मानतीं।

"नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है। परन्तु मैं उसे इतना अवश्य मानती हूँ कि वह हमारे ही पास रहे। जब तक वह हमारी है, तब तक हमारा कुछ अनिष्ट नहीं हो सकता। परन्तु जब वह हमारे पास से निकल जायगी, तब के लिए मैं नहीं कह सकती कि क्या होगा।"

"क्या होगा?"—बनवारीलाल ने व्यङ्ग से पूछा।

"यह मैं नहीं बता सकती कि क्या होगा, पर उसका

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चला जाना हमारे लिए अशुभ अवश्य होगा—यह मैं ज़ोर देकर कह सकती हूँ।"

बनवारीलाल का कलेजा धक् से हुआ। आज ही तो वह साड़ी चली गई। आज तक वह हमारी थी; पर इस समय वह हमारी नहीं रही। यह विचार उनके मन में अपने आप उठा। कुछ देर तक बनवारीलाल मौन तथा गम्भीर बैठे रहे।

पत्नी ने पूछा—क्या सोच रहे हो?

"तुम्हारी रहस्यपूर्ण बातों पर विचार कर रहा हूँ। मुझे तो ऐसी बातों पर विश्वास नहीं। किसी एक विशेष चीज़ के पास न होने से अनिष्ट हो सकता है, इसे मैं नहीं मानता। और मुझी पर क्या—कोई समझदार आदमी नहीं मानेगा।"

"न माने, मुझे इसकी आवश्यकता नहीं कि कोई माने या न माने। मैं तो केवल अपने मन की बात तुमसे कह रही हूँ। तुम नहीं मानते तो न मानो—मैं यह कब कहती हूँ कि मानो।"

बनवारीलाल चुप हो रहे—कुछ उत्तर न दिया।

(४)

"आज लाला माधोलाल के यहाँ से बुलावा आया है।"—बनवारीलाल की पत्नी ने उनसे कहा।

"तो फिर?"

"जाना पड़ेगा।"

"आज क्या है उनके यहाँ?"

"उनकी लड़की के लड़का हुआ था। उसी की बरही है।"

"चली जाना।"

बनवारीलाल ऑफ़िस चले गए। वहाँ से यह समझकर कि अभी शायद उनकी पत्नी माधोलाल के यहाँ से न लौटी हो, वह बैङ्क के एक व्यक्ति के साथ, जो उनका सहकारी था और जिससे उनकी घनिष्ट मित्रता हो गई थी, चले गए। वहाँ उन्हें रात के आठ बज गए। आठ बजे जब वह घर लौटे तो देखा कि पत्नी चारपाई पर ओढ़े-लपेटे पड़ी है।

बनवारीलाल ने रज़ाई उठाकर पूछा—क्यों, पड़ी कैसी हो?

"जी अच्छा नहीं है।"—पत्नी ने कराहते हुए कहा।

बनवारीलाल ने पत्नी के माथे पर हाथ धरा तो उन्हें पता लगा कि पत्नी को ज्वर है।

बनवारीलाल ने कहा—बुख़ार है। नाहक़ वहाँ गईं।

पत्नी ने पति का वाक्य सुनकर कहा—हाँ, नाहक़ गई, न जाती तो अच्छा था।

"और क्या—वहाँ गईं, थकावट आगई, इसी से बुख़ार चढ़ आया। ख़ैर, अब तुम चुपचाप पड़ी रहो।"

"तुम्हारे लिए खाने-पीने का × × ×।"

बनवारीलाल बोल उठे—इसकी चिन्ता मत करो, मैं घनश्यामदास के यहाँ खा-पी आया हूँ। बैङ्क से उन्हीं के यहाँ चला गया था—मैंने सोचा, शायद तुम अभी न लौटी हो। घनश्यामदास न माने—खाना खिलाकर ही छोड़ा। तुम निश्चिन्त पड़ी रहो।

* * *

बनवारीलाल की पत्नी को चारपाई पर पड़े आज दसवाँ दिन है। बनवारीलाल ने बैङ्क से छुट्टी ले ली है। वे ही उसकी सेवा-शुश्रूषा करते रहते हैं। वैद्य की चिकित्सा होती है।

दसवें दिन उनकी पत्नी ने उनसे कहा—अब मेरे बचने की आशा मत करो। मैं अब बचूँगी नहीं। मेरा अन्त समय आ गया है।

बनवारीलाल व्याकुल होकर बोले—ऐसी बातें मत करो। तुम अच्छी हो जाओगी।

पत्नी ने सिर हिलाया और बोली—अब नहीं अच्छी होऊँगी—अब तो चल-चलावो है। मैं क्यों मर रही हूँ, तुम जानते हो?

"कौन कहता है तुम × × ×।" बनवारीलाल का कण्ठ भर आया और नेत्रों में आँसू छलछला आए। वह आगे कुछ न कह सके।

पत्नी ने कहा—मैं इसलिए मर रही हूँ कि मेरी साड़ी चली गई।

बनवारीलाल का कलेजा धड़कने लगा और चेहरा फ़क़ हो गया। उन्होंने तुरन्त अपने को सँभालकर कहा—चली कहाँ गई?

"मुझे सब मालूम हो गया है, अब कपट करने की आवश्यकता नहीं। जिस दिन मैं माधोलाल के यहाँ गई थी, उस दिन मुझे यह बात मालूम हुई। मैंने

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

माधोलाल की लड़की को वह साड़ी पहने देखा। मैंने समझा, इनके यहाँ गिरों रक्खी ही है, पहन ली होगी। मैंने हँसी में उससे पूछा—यह साड़ी तो बड़ी अच्छी है, कितने की मँगाई है?

इस पर लड़की ने कहा—'यह हमारे यहाँ गिरों रक्खी थी। मुझे यह पसन्द आ गई। मैंने बाबू जी से कहकर इसे ख़रीद लिया।' मैंने उससे पूछा—'कितने दिन हुए ख़रीदी?' उसने कहा—'बीस दिन हुए।' फिर मैंने दाम पूछे तो उसने दो सौ बताए। मैंने समझ लिया। बीस दिन हुए तुमने ७५) रु० लाकर मुझे दिए थे। सवा सौ पर साड़ी गिरवी रक्खी थी—सवा सौ और पछत्तर दो सौ होते हैं। बस उसी समय से मेरा चित्त बिगड़ना आरम्भ हुआ। मैं नहीं जानती कि मैं शाम तक उनके यहाँ कैसे रही और घर कैसे आई। बुख़ार मुझे वहीं चढ़ आया था। यदि वह अपने यहाँ की दासी के साथ मुझे सवारी पर न भेजते, तो मैं अपने पैरों घर नहीं आ सकती थी।

बनवारीलाल को तो जैसे काठ मार गया। वह चुपचाप सिर झुकाए मूर्ति की भाँति बैठे रहे।

पत्नी ने पुनः कहना आरम्भ किया—तुमने मुझसे छल किया, यह अच्छा नहीं किया। तुमने मेरे सिर पर हाथ रखकर उसे न बेचने की क़सम खाई थी; परन्तु फिर भी तुमने उसे बेच दिया।

"जिस समय मैंने क़सम खाई थी, उस समय तो नहीं बेचा था।" बनवारीलाल ने भर्राई हुई आवाज़ से यह बात कही, परन्तु वह पत्नी से आँखें नहीं मिला सके।

"जब तुमने क़सम खाई थी तो उसके मैंने जो अर्थ समझे थे वह यह थे कि कभी नहीं बेचोगे।"

"परन्तु मैंने जो अर्थ लगाए वह यह थे कि उस समय नहीं बेचूँगा—उस समय मैंने नहीं बेची।"

"जो चीज़ बेची जा सकती है वह हर समय बेची जा सकती है, और जो नहीं बेची जा सकती वह किसी समय भी नहीं बेची जा सकती।"

"हाँ, यह ठीक है; परन्तु × × ×।"

"परन्तु-वरन्तु कुछ नहीं, तुमने बहुत बुरा किया। मैं उस साड़ी को इतना प्यार करती थी—यह जानते हुए भी तुमने उसे बेच डाला। यदि तुम मुझे प्यार करते होते तो उसे कभी न बेचते—केवल इसीलिए न बेचते कि मैं उसे प्यार करती हूँ। इससे प्रकट है कि तुम मुझे प्यार नहीं करते। दूसरी बात यह है कि तुमने मुझे भुलावे में डालकर उसे बेचा—मुझसे छल किया। यदि मुझसे कहकर और ज़िद करके बेच देते, तब भी मुझे इतना दुख न होता।"

बनवारीलाल अत्यन्त अधीर होकर बोले—यह तुम क्या कह रही हो। मैं तुम्हें जितना प्यार करता हूँ उतना ईश्वर जानता है; पर मैं उस साड़ी को व्यर्थ समझता था, इसलिए मैंने उसे बेच डाला।

"मेरे इतना कहने-सुनने पर भी तुम उसे व्यर्थ समझते रहे—मेरी प्यारी चीज़ को व्यर्थ समझे—यह क्या कुछ कम दुख की बात है?"

"यदि ऐसी बात है तो मुझे अपने कार्य पर हार्दिक पश्चात्ताप है और मैं तुमसे उसके लिए क्षमा चाहता हूँ।"

यह कहकर बनवारीलाल ने अश्रु बहाते हुए पत्नी के वक्षस्थल पर अपना सिर रख दिया।

पत्नी ने उनके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—मैंने कहा था कि साड़ी चली जाने पर कुछ अनिष्ट होगा। वही हुआ। पर इतना सन्तोष है कि मेरी ही जान पर बीती, तुम पर कुछ आँच न आई। यह बड़ी ही ख़ुशी की बात है। मुझे यही भय था कि कहीं ईश्वर न करे तुम्हें कुछ × × × ख़ैर मुझे अपने मरने का कुछ भी दुख नहीं।

"यह तुम क्या कहती हो, मेरा अनिष्ट नहीं हुआ? यह तो सोलहो आने मेरा ही अनिष्ट हो रहा है। मेरा सर्वनाश हुआ जा रहा है, इससे अधिक अनिष्ट और क्या होगा।" बनवारीलाल ने पत्नी के वक्षस्थल पर से सिर उठाकर यह वाक्य कहा और रोते हुए पुनः वहीं सिर रख दिया।

"ख़ैर, जो होना था हो गया। अब तुम इतना व्याकुल क्यों होते हो?" पत्नी ने अत्यन्त प्रेम से कहा।

"तुमने मुझे क्षमा कर दिया या नहीं?"

"तुम्हें तो मैं आरम्भ से ही क्षमा किए हुए थी, मैंने तुम्हें अक्षम्य कभी समझा ही नहीं।"

हठात् बनवारीलाल सिर उठाकर आँसू पोंछते हुए बोले—तो मैं भी तुमसे वादा करता हूँ कि इसी समय जैसे बनता है, जाकर साड़ी लाता हूँ।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह कहकर वह उठे। उनकी पत्नी बोली—अब कहीं मत जाओ, मेरा चित्त घबरा रहा है—मेरे ही पास बैठे रहो।

"मैं अभी आता और साड़ी लेकर आता हूँ।"

यह कहकर उन्होंने—कुछ दूर पर बैठी हुई एक स्त्री से, जिसे उन्होंने पत्नी की सेवा के लिए रख लिया था, कहा—तुम इनके पास आकर बैठो, मैं अभी आता हूँ।

* * *

बनवारीलाल माधोलाल के पास पहुँचे और बोले—बाबू जी, वह साड़ी आप लौटा दीजिए।

"कौन साड़ी?" माधोलाल ने आश्चर्य से पूछा।"

"वही, जो आपके यहाँ गिरों थी और जिसे आपने बहाना करके अपनी लड़की के लिए ख़रीद लिया था।"

बनवारीलाल ने आवेश से उत्तर दिया—ख़रीद लिया तो दाम भी तो दिए थे।

"हाँ दिए थे; पर मैं साड़ी बेचना नहीं चाहता था, आपने मुझे प्रलोभन में डालकर उसे ले लिया। उसकी बदौलत आज मेरी पत्नी मृत्यु-शय्या पर पड़ी है। परन्तु इस अन्त समय में मैं उसे उसकी प्यारी वस्तु से वञ्चित नहीं रखना चाहता। लीजिए, यह आपके ७५) रु० रक्खे हैं, साड़ी आप ला दीजिए।

"बिकी हुई चीज़ कैसे लौटाई जा सकती है?"

"लौटाई जा सकती है और आपको लौटानी पड़ेगी।" बनवारीलाल ने कर्कश स्वर में कहा।

"क्यों?"

"इसलिए कि आपने मुझे धोखा देकर इसे ख़रीदा।"

"जब आपको दाम दिए तब उसमें धोखा काहे का?"

बनवारीलाल ने कहा—आप यह बताइए, साड़ी दीजिएगा या नहीं? स्त्री मर ही रही है—मेरी आँखों में संसार शून्य है। यदि आप साड़ी न देंगे तो मैं भी यहीं प्राण त्याग दूँगा।

माधोलाल बनवारीलाल की रक्तवर्ण आँखें और विक्षिप्तों की सी दशा देखकर घबरा गए। उन्होंने सोचा—ऐसा न हो यह व्यक्ति जान पर खेलकर हमारा कुछ अनिष्ट कर बैठे—इस समय अपने होश में नहीं है। अतएव वह बोले—यदि यह बात है तो साड़ी मैं लाए देता हूँ। प्राण क्यों देते हो? इतनी छोटी सी बात के लिए मैं तुम्हारे प्राण नहीं लेना चाहता।

* * *

"लो, साड़ी ले आया।"

यह कहते हुए बनवारीलाल घर में प्रविष्ट हुए। उनकी पत्नी के पास बैठी हुई स्त्री ने रोकर कहा—किससे कहते हो? वह तो चली गईं।

बनवारीलाल के मुख से निकला—हैं! वह शीघ्रता-पूर्वक शय्या के पास पहुँचे और कपड़ा हटाकर देखा—पत्नी के प्राण-पखेरू उड़ चुके थे। उन्होंने कुछ क्षण तक स्थिर दृष्टि से पत्नी का मुख देखा। इसके पश्चात उन्होंने साड़ी को खोला और पत्नी के ऊपर ओढ़ा दिया और उसके वक्षस्थल पर मुँह रखकर बालकों की भाँति फूट-फूटकर रोने लगे।

पञ्च-भूत

[रचयिता—श्री० कालीप्रसाद जी भटनागर 'विरही']

रोदन, आहें, चाहें, पीड़ा, व्याकुलता, यह हैं आधार!
इनसे ही है रचा हुआ बस, विरही का सारा संसार!!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भारत में अङ्गरेज़ी राज्य

[ले० महात्मा सुन्दरलाल जी, भूतपूर्व सम्पादक 'कर्मयोगी' और 'भविष्य']

मीर क़ासिम

बङ्गाल की अवस्था

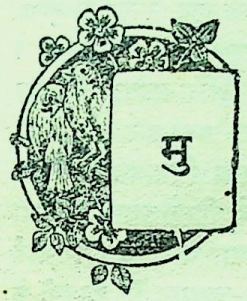

मुर्शिदाबाद के दरबार तथा बङ्गाल की प्रजा दोनों की अवस्था मीर क़ासिम के मसनद पर बैठते ही और अधिक शोचनीय होती गई। सब से पहले मीर क़ासिम ने देखा कि राज्य की आर्थिक अवस्था अत्यन्त बिगड़ी हुई थी। सरकारी मालगुज़ारी ठीक तौर पर वसूल न हो रही थी। खज़ाना क़रीब-क़रीब ख़ाली था। सालाना ख़र्च आमद से बढ़ गया था और फ़ौज की कई महीने की तनख़ाहें चढ़ी हुई थीं। इसके अतिरिक्त ठीक मीर जाफ़र के समान मीर क़ासिम ने अब महसूस किया कि जो बड़े-बड़े वादे उसने अङ्गरेज़ों के साथ कर रक्खे थे, उन्हें पूरा करना इतना आसान न था। इन वादों तथा अन्य नई-नई माँगों को पूरा करने के लिए मीर क़ासिम ने अपने यहाँ के ज़मींदारों और रईसों को अङ्गरेज़ों ही के सिपाहियों की मारफ़त बुला-बुला कर ज़बरदस्ती उनसे रक़में वसूल करनी शुरू कीं। जब इससे भी काम न चल सका तो उसे जगत सेठ से क़र्ज़ लेना पड़ा और अन्त में अङ्गरेज़ों को रक़में देने के लिए रियासत के जवाहरात बेच कर और महल के सोने-चाँदी के बरतन गलवा कर सिक्के ढलवाने पड़े।

कम्पनी की टकसाल कलकत्ते में क़ायम हो चुकी थी। तथापि बावजूद मीरक़ासिम की कड़ी आज्ञाओं के, जगह-जगह प्रजा ने कलकत्ते के सिक्कों को बिना बट्टे के लेने से इन्कार किया। इस पर अङ्गरेज़ों ने उससे यह प्रार्थना की कि जो सिक्के हम कलकत्ते में ढालें उन पर भी हमें मुर्शिदाबाद का नाम और मुर्शिदाबाद ही की छाप रखने की इजाज़त दी जावे। मीर क़ासिम ने इस जाली कार-रवाई को तो मञ्ज़ूर न किया, किन्तु उसने अङ्गरेज़ों को सन्तुष्ट करने के लिए कलकत्ते के सिक्कों को लेने से इन्कार करने वाले या उन पर बट्टा माँगने वाले ज़मींदारों और अन्य लोगों को कड़ी सज़ाएँ देना शुरू कर दिया। इन सख़्तियों के कारण अनेक ज़मींदार मीर क़ासिम से असन्तुष्ट हो गए, यहाँ तक कि कई जगह नए नवाब के विरुद्ध विद्रोह की तैयारियाँ होने लगीं।

कुछ वर्ष पहले कम्पनी का क़र्ज़ा चुकाने के लिए मीर जाफ़र ने बर्धमान के इलाक़े की सालगुज़ारी कम्पनी के नाम कर दी थी। उस समय से ही बर्धमान का इलाक़ा अङ्गरेज़ों के इन्तज़ाम में आ गया था और कम्पनी के सिपाहियों ने, जिनमें अधिकांश देशी सिपाही मद्रास से लाए गए थे, उस इलाक़े भर में लूट-मार जारी कर रक्खी थी। इन तिलङ्गे सिपाहियों के अत्याचारों की शिकायत करते हुए सितम्बर, सन् १७६० में बर्धमान के ज़मींदार राजा तिलकचन्द ने कलकत्ते की अङ्गरेज़-कमेटी को लिखा—

"अनेक तिलङ्गों ने मण्डलघाट, मानकर, जहानाबाद चितवर, बरसात, बलगुरी और चोमहन के परगनों तथा अन्य स्थानों में घुसकर वहाँ के बाशिन्दों को लूट लिया है और उनके साथ इस तरह के अत्याचार किए हैं जिनसे लोगों की जान तक ख़तरे में पड़ गई है। इन अत्याचारों से मजबूर होकर वहाँ के बाशिन्दे भाग गए और उन मौज़ों में लगभग दो या तीन लाख रुपए का नुक़सान हुआ है।"*

तथापि इन तिलङ्गों की लूट-मार जारी रही और राजा तिलकचन्द को कुछ समय बाद फिर लिखना पड़ा—

"तिलङ्गों के व्यवहार से रय्यत को ज़बरदस्त कष्ट हो रहा है और मजबूर होकर रय्यत अपने घर-बार छोड़-छोड़ कर भाग रही है।"*

* Long's *Records* p. 236

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किन्तु कम्पनी ने इन शिकायतों की ओर कुछ भी ध्यान न दिया। लिखा है कि बर्धमान के कई परगने इस समय वीरान पड़े हुए थे।

अब मीर क़ासिम ने यह तमाम इलाक़ा हमेशा के लिए कम्पनी को दे दिया और वहाँ के ज़मींदार को अङ्गरेज़ों के अधीन कर दिया। जब यह नया परवाना राजा तिलकचन्द के पास पहुँचा तो उसे दुख होना स्वाभाविक था। उसने गवरनर वन्सीटार्ट को अपनी ज़मींदारी की शोचनीय अवस्था की फिर से सूचना दी और अपने यहाँ की मालगुज़ारी का सब हिसाब भेज दिया।

वन्सीटार्ट ने किसी तरह उसकी सहायता न की। और न कम्पनी के सिपाहियों के अत्याचार बन्द हुए। मजबूर होकर, कहा-जाता है, राजा तिलकचन्द ने बीरभूम के राजा के साथ मिलकर अङ्गरेज़ों और मीर क़ासिम दोनों के विरुद्ध लड़ने के लिए सेना जमा करनी शुरू की। इस पर कलकत्ते की काउन्सिल ने बर्धमान और मेदिनीपुर के इलाक़ों पर क़ब्ज़ा करने के उद्देश से कप्तान ह्वाइट के अधीन कुछ सेना बर्धमान भेजी। राजा तिलकचन्द के एक पत्र से मालूम होता है कि इस सेना ने भी मार्ग भर में असहाय ग्राम-वासियों पर तरह-तरह के ज़ुल्म किए, उन्हें ख़ूब लूटा और ख़ून बहाया।

२८ दिसम्बर, सन् १७६० को कप्तान ह्वाइट की सेना और बर्धमान के राजा की सेना में लड़ाई हुई, जिसमें राजा की सेना हार गई। अङ्गरेज़ी सेना का एक हिस्सा बीरभूम की राजधानी नागौर पर क़ब्ज़ा करने के लिए भेज दिया गया। वहाँ का राजा अपनी राजधानी छोड़कर पहाड़ों की ओर भाग गया और बर्धमान तथा नागौर दोनों पर कम्पनी का क़ब्ज़ा हो गया।

आए दिन के राज्य-परिवर्त्तन के कारण बङ्गाल के शासन की अवस्था अत्यन्त अस्त-व्यस्त हो रही थी कम्पनी की व्यापार-सम्बन्धी ज़बरदस्तियाँ बङ्गाल भर में ज़ोरों के साथ बढ़ रही थीं। अङ्गरेज़ों ने जो लगभग तीस हज़ार नई सेना मीर क़ासिम और सम्राट् की सहायता के लिए और साम्राज्य की रक्षा के लिए कहकर जमा कर रक्खी थी और जिसके ख़र्च के लिए मीर क़ासिम से तीन बड़े-बड़े ज़िले लिए गए थे, वह सब अब सूबे भर में इन ज़बरदस्तियों को जारी रखने के लिए काम में लाई जा रही थी।

प्राचीन भारतीय नरेशों के अधीन राज्य की आमदनी का एक बहुत बड़ा ज़रिया तिजारती माल का महसूल था। विशेषकर मुग़ल-सम्राटों के अधीन ईरान, अरब, मिश्र, इतालिया, स्पेन, पुर्तगाल, इङ्गलिस्तान, बर्मा, चीन, जापान इत्यादि अनेक बाहर के मुल्कों के साथ और स्वयं भारत के अन्दर तिजारत बेहद बढ़ी हुई थी, जिसमें हज़ारों भारतीय जहाज़ हर साल लगे रहते थे और हर व्यापारी को अपना माल एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाने में सरकारी महसूल देना पड़ता था। केवल ईस्ट इण्डिया कम्पनी को मुग़ल-सम्राट् ने ख़ुश होकर यह महसूल माफ़ कर दिया था। इस माफ़ी का मतलब यह था कि कम्पनी जो माल विलायत से लाकर हिन्दोस्तान में बेचना चाहे या जो हिन्दोस्तान का बना माल ख़रीद कर विलायत ले जाना चाहे, उस पर कोई महसूल न लिया जावे। शाही फ़रमान में कम्पनी के मुलाज़िमों अथवा अन्य अङ्गरेज़ों को निजी तौर पर बिना सरकारी महसूल दिए तिजारत करने की इजाज़त कहीं न थी, और न कम्पनी को ही देश के भीतर की मामूली तिजारत में बिना महसूल दिए हिस्सा लेने का अधिकार दिया गया था। इतना ही नहीं, नमक, छालिया, तम्बाकू, इमारती लकड़ी, सूखी मछली इत्यादि बहुत सी चीज़ों में आरम्भ से ही बङ्गाल भर के अन्दर यूरोप-निवासियों को तिजारत करने की सख़्त मनाही थी।

सब से पहले मीर जाफ़र के समय में अङ्गरेज़ों ने ज़बरदस्ती इस नियम को तोड़ा और नमक इत्यादि की तिजारत शुरू कर दी, जिसका ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है। मीर जाफ़र ने बहुतेरा ऐतराज़ किया, किन्तु उसकी एक न चल सकी। अङ्गरेज़ों का यह तमाम व्यापार शाही फ़रमान से बाहर और उसके विरुद्ध था। किन्तु मालूम होता है कि कुछ दिनों तक अङ्गरेज़-व्यापारी अपनी इस नाजायज़ शख़्सी और मुल्क की भीतरी तिजारत पर महसूल उसी तरह अदा करते रहे, जिस तरह तमाम देशी व्यापारी करते थे।

अब मीर क़ासिम को नवाब बनाने के बाद कम्पनी के मुलाज़िम तथा अन्य अङ्गरेज़ कम्पनी का पास (दस्तक) लेकर बिना किसी तरह का महसूल दिए देश भर में हर चीज़ का व्यापार करने लगे। और जब नवाब के कर्मचारी ऐतराज़ करते थे वा महसूल माँगते थे

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तो उन्हें कम्पनी के नए सिपाहियों के द्वारा दुरुस्त कर दिया जाता था। इतिहास-लेखक मिल लिखता है—

"इस प्रकार कम्पनी के मुलाज़िमों का माल बिलकुल बिला महसूल सब जगह आता-जाता था, जबकि शेष सब व्यापारियों को अपने माल पर भारी महसूल देना पड़ता था। परिणाम यह हुआ कि देश का समस्त व्यापार तेज़ी के साथ कम्पनी के मुलाज़िमों के हाथों में आने लगा और राज्य की आमदनी का एक स्रोत बिलकुल सूखने लगा। जब महसूल जमा करने वाला कोई सरकारी कर्मचारी कम्पनी के दस्तक के इस दुरुपयोग पर ऐतराज़ करता और माल को रोकता था तो उसे गिरफ़्तार करके पास की अङ्गरेज़ी कोठी में पहुँचा देने के लिए सिपाहियों का एक दस्ता भेज दिया जाता था।"*

अङ्गरेज़ों की इस शख़्सी तिजारत के साथ जो-जो अत्याचार और ज़बरदस्तियाँ होती थीं, उनकी गवाही अनेक अङ्गरेज़-लेखकों के बयानों से मिलती है। जहाँ-जहाँ कोई अङ्गरेज़ बैठकर इस तरह व्यापार करता था, वहाँ-वहाँ ही अङ्गरेज़ी झण्डा और कम्पनी के कुछ सिपाही उसके साथ रहते थे। वारन हेस्टिंग्स २५ अप्रैल, सन् १७६२ के एक पत्र में लिखता है—

"जिन-जिन जगहों में मैं गया हूँ, वहाँ-वहाँ अनेक अङ्गरेज़ी झण्डे लहराते हुए देखकर मैं चकित रह गया हूँ × × × चाहे किसी भी अधिकार से ऐसा क्यों न कर लिया गया हो, मुझे विश्वास है कि जगह-जगह इन झण्डों की मौजूदगी से नवाब की आमदनी, देश की शान्ति अथवा हमारी क़ौम की इज़्ज़त, तीनों में से किसी को भी लाभ नहीं पहुँच सकता। × × × मार्ग में हमारे सिपाहियों के व्यवहार के ख़िलाफ़ मुझसे अनेक शिकायतें की गईं। हम लोगों के पहुँचते ही लोग अधिकांश छोटे क़स्बों और सरायों को ख़ाली छोड़कर भाग जाते थे और दुकानों को बन्द कर देते थे, क्योंकि उन्हें हमसे भी उसी तरह के व्यवहार का भय था।"*

वेरेल्स्ट नामक अङ्गरेज़ इस सम्बन्ध में हमें एक और नई बात बताता है। वह लिखता है—

"उन दिनों बहुत से हिन्दोस्तानी व्यापारी अपनी सुविधा के लिए कम्पनी के किसी नौजवान मुहर्रिर को धन देकर उसका नाम ख़रीद लेते थे और उसके नाम के 'दस्तक' के ज़रिए देश के लोगों को तङ्ग करते थे और उन पर अन्याय करते थे। इस ज़रिए से इतनी ज़्यादा आमदनी होने लगी कि कई नौजवान (अङ्गरेज़) मुहर्रिर १५ हज़ार और २० हज़ार रुपए साल ख़र्च कर सकते थे, नफ़ीस कपड़े पहनते थे और रोज़ अच्छे से अच्छा खाना उड़ाते थे।"

वह आगे चलकर लिखता है—

"बिना महसूल दिए तिजारत की जाती थी और उसके जारी रखने में अनन्त अन्याय किए जाते थे। × × × इसी बात के कारण मीर क़ासिम के साथ लड़ाई हुई।"†

* "The Company's servants, whose goods were thus conveyed entirely free from duty, while those of all other merchants were heavily burdened, were rapidly getting into their own hands the whole trade of the country, and thus drying up one of the sources of the public revenue. When the Collectors of these tolls, or transit duties, questioned the power of the Dustuck, and stopped the goods, it was customary to send a party of Sepoys to seize the offender and carry him prisoner to the nearest factory."

—Mill's *History of India*, Vol III, pp. 229, 230.

* "I have been surprised to meet with several English flags flying in places which I have passed; . . . By whatever title they have been assumed, I am sure their frequency can bode no good to the Nawab's revenues, the quiet of the country, or the honor of our nation . . . Many complaints against them (Sepoys) were made me on the road; and most of the petty towns and serais were deserted at our approach and the shops shut up from the apprehensions of the same treatment from us."

—Warren Hastings in a letter to the President, dated Bhagalpur 25th April, 1762.

† "At this time many black merchants found it expedient to purchase the name of any young writer, in the Company's Service, by loans of money, and under this sanction harassed and oppressed the natives. So plentiful a supply was derived from this source that many young writers were enabled to spend £s. 1,500 and £s. 2,000 per annum, were clothed in fine linen, and fared sumptuously every day."

* * *

A trade was carried on without payment of duties, in

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कम्पनी के डाइरेक्टरों तक ने ८ फ़रवरी, सन् १७६४ के एक पत्र में "कम्पनी के नौकरों, गुमाश्तों, एजण्टों और दूसरों की इस निजी तिजारत" को "नाजायज़", "दस्तक का लज्जाजनक दुरुपयोग", "हर तरह से अनधिकार-युक्त" और नवाब तथा उसकी "क़ुदरती प्रजा" दोनों के साथ "डबल अन्याय" स्वीकार किया है। किन्तु डाइरेक्टरों के इस पत्र के बाद भी इस अन्याय में कोई अन्तर न पड़ा।

उन सिपाहियों के ज़रिए, जो नवाब के धन से नियुक्त किए गए थे, नवाब ही की प्रजा के ऊपर जिस-जिस तरह के अत्याचार किए जाते थे, उनका कुछ अनुमान मीर क़ासिम के नाम बाकरगञ्ज के एक राजकर्मचारी के २५ मई, सन् १७६२ के नीचे लिखे पत्र से किया जा सकता है। वह लिखता है—

"× × × यह जगह पहले बड़ी तिजारत की जगह थी, किन्तु अब नीचे लिखी कारवाइयों की वजह से बरबाद हो गई। एक अङ्गरेज़ माल ख़रीदने या बेचने के लिए यहाँ किसी गुमाश्ते को भेजता है। फ़ौरन् वह गुमाश्ता यह फ़र्ज़ कर लेता है कि यहाँ के किसी भी बाशिन्दे के हाथ ज़बरदस्ती अपना माल बेचने या उसका माल ज़बरदस्ती ख़रीदने का मुझे पूरा अधिकार है, और यदि वह बाशिन्दा ख़रीदने या बेचने की सामर्थ्य न रखता हो और इन्कार करे, तो फ़ौरन् या तो उस पर कोड़े बरसाए जाते हैं या उसे क़ैद कर लिया जाता है। यदि वह राज़ी हो जावे तब भी केवल इतना ही काफ़ी नहीं समझा जाता, बल्कि एक दूसरी ज़बरदस्ती यह की जाती है कि अनेक चीज़ों के व्यापार का ठेका अपने ही हाथों में ले लिया जाता है, अर्थात् जिन-जिन चीज़ों का व्यापार अङ्गरेज़ करते हैं, उनका व्यापार किसी दूसरे को नहीं करने दिया जाता और न किसी दूसरे के पास से किसी को ख़रीदने दिया जाता है। × × × और फिर अङ्गरेज़ समझते हैं कि कम से कम जो हम कर सकते हैं, वह यह है कि दूसरा सौदागर जिस दाम पर कोई चीज़ ख़रीदता है, हम उसी चीज़ को उससे बहुत कम दाम पर ख़रीदें। अक्सर ये लोग दाम देने ही से इन्कार कर देते हैं। और मैं दख़ल देता हूँ तो फ़ौरन् मेरी शिकायत होती है।"*

१८ वीं सदी के उत्तरार्द्ध में बङ्गाल भर के अन्दर इस ज़बरदस्त और व्यापक अत्याचार के विषय में अब हम इङ्गलिस्तान के प्रसिद्ध नीतिज्ञ और वक्ता एडमण्ड बर्क के कुछ वाक्य उद्धृत करते हैं। बर्क ने इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के सामने कहा था—

"तिजारत जो संसार के हर दूसरे देश को धनवान् बनाती है, बङ्गाल को सर्वनाश की ओर ले जा रही थी। पहले समय में, जबकि कम्पनी को देश में किसी तरह की राज्य-सत्ता प्राप्त न थी, उन्हें अपने 'दस्तक' या 'पास' के ऊपर बड़े-बड़े अधिकार मिले हुए थे; उनका माल बिना महसूल दिए देश भर में आ-जा सकता था। (धीरे-धीरे) कम्पनी के नौकर अपनी-अपनी शख़्सी तिजारत के लिए इस पास का उपयोग करने लगे। यह मामला जब तक कि थोड़ा-थोड़ा होता रहा, देश की सरकार ने कुछ हद तक इसे गवारा कर लिया; किन्तु जब सभी लोग इस तरह की तिजारत करने लगे, तब तिजारत की अपेक्षा उसे डकैती कहना ज़्यादा ठीक मालूम होता था।

"ये व्यापारी हर जगह पहुँचते थे, अपने ही दामों पर माल बेचते थे, और दूसरे लोगों को भी ज़बरदस्ती मजबूर करके उनका माल अपने ही दामों पर ख़रीदते थे। बिलकुल यह मालूम होता था कि तिजारत के बहाने एक फ़ौज लोगों को लूटने जा रही है। लोग अपनी देशी अदालतों से रक्षा की आशा करते थे, किन्तु व्यर्थ। अङ्गरेज़-व्यापारियों की यह सेना अपने कूच में तातारी आक्रमकों से बढ़कर लूट-मार और बरबादी करती थी। × × × इस प्रकार यह अभागा देश दुहरे अन्याय की भयङ्कर लूट द्वारा टुकड़े-टुकड़े किया जा रहा था।" †

---

the procecution of which infinite oppressions were committed. . . . This was the immediate cause of the war with Mir Cassim."

—Verelst's *View of Bengal*, pp. 8 and 46.

* Vansittart's *Narrative*, Vol, II. p. 112.

† "Commerce, which enriches every othe country in the world, was bringing Bengal to total ruin. The Company, in former times, when it had no sovereignty or power in the country, had large privileges under their Dustuck or permit; their goods passed without paying duties through the country. The servants of the Company made use of this Dustuck for their own private trade, which, while it was used with moderation, the native

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सन्देह होने लगता है कि उन दिनों बङ्गाल में किसका शासन था ? वास्तव में शासन न मुग़ल-सम्राट् का था, न मुर्शिदाबाद के सूबेदार का ; शासन था विदेशियों की क्रूर-नीति, अराजकता और इस देश के दुर्भाग्य का, और यह सब परिणाम था थोड़े से भारतवासियों की लज्जाजनक देशघातकता का। हम ऊपर कह चुके हैं कि वर्धमान, मेदिनीपुर और चट्टग्राम की आमदनी से वे सब फ़ौजें रक्खी गई थीं, जिनके द्वारा बङ्गाल भर में यह भयङ्कर नादिरशाही चलाई जा रही थी। सच यह है कि इसे नादिरशाही कहना भी नादिरशाह के साथ अन्याय करना है। नादिरशाह यदि ग़ैर-मुल्क में पहुँचकर अपने सिपाहियों की शान क़ायम रखने के लिए चन्द घड़ी के लिए क़त्लेआम का हुक्म दे सकता था तो वह अपनी एक आवाज़ पर अमन क़ायम करना भी जानता था और क्षमा और उदारता की शक्ति भी उसमें अपार थी। वास्तव में अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में बङ्गाल के अन्दर अङ्गरेज़ों के अत्याचारों की तुलना संसार के इतिहास के किसी दूसरे पन्ने पर मिलना कठिन है।

बङ्गाल और बिहार भर में इस समय कम्पनी की कोठियाँ फैली हुई थीं। नमक से लेकर इमारती लकड़ी तक अनेक चीज़ों का समस्त व्यापार अङ्गरेज़ों के हाथों में आ गया था। किसानों की खड़ी खेती कम्पनी के अङ्गरेज़-नौकर जिस भाव चाहे, ख़रीद लेते थे। देश के हज़ारों-लाखों व्यापारियों की रोज़ी छिन चुकी थी और किसानों की हालत इससे भी अधिक करुणाजनक थी। कम्पनी के गुमाश्तों और एजण्टों के, नवाब के मुलाज़िमों के साथ रोज़ाना जगह-जगह झगड़े होते रहते थे। कम्पनी के गुमाश्ते अनेक झूठी-सच्ची शिकायतें रोज़ाना कलकत्ते भेजते रहते थे और वहाँ से वही फ़ौजी सिपाही नवाब के मुलाज़िमों अथवा स्वाभिमानी प्रजा को दुरुस्त करने के लिए जगह-जगह भेज दिए जाते थे। नवाब की सरकारी चौकियों में बङ्गाल भर के अन्दर कहीं पर एक पाई महसूल की वसूली न होती थी। मीर क़ासिम ने पत्रों द्वारा अनेक बार ही अत्यन्त करुणाजनक शब्दों में गवर्नर वन्सीटार्ट से इन तमाम बातों की शिकायत की, किन्तु इन शिकायतों और मीर क़ासिम के प्रयत्नों का ज़िक्र और आगे चलकर किया जायगा।

पानीपत की तीसरी लड़ाई

इस सब अपमान से बङ्गाल की वास्तविक रक्षा करने और देश को भावी आपत्तियों से बचाने का केवल एक ही तरीक़ा हो सकता था। देश में उस समय केवल एक ही शक्ति थी, जिसके झण्डे के नीचे शेष समस्त शक्तियों का मिलना सम्भव हो सकता था। वह शक्ति दिल्ली के मुग़ल-सम्राट् की रही-सही शक्ति थी। उपाय केवल यह था कि विदेशियों के मुक़ाबले के लिए दिल्ली-सम्राट् के झण्डे के नीचे देश की समस्त हिन्दू तथा मुसलमान राज-शक्तियों को एकत्रित किया जाय और उनके सम्मिलित प्रयत्नों द्वारा विदेशियों को बङ्गाल तथा भारत से निकाल कर बाहर कर दिया जाय।

यह एक आश्चर्य की बात है कि यह उपाय उस समय उसी राजा नन्दकुमार को सूझा, जिसने सन् १७५७ में अमींचन्द के धन के लोभ में आकर अपने स्वामी सिराजुद्दौला, भारतीय प्रजा तथा फ़्रान्सीसी, तीनों के साथ विश्वासघात किया था। मालूम होता है कि नन्दकुमार अब अपने देश को अङ्गरेज़ों के हाथों बिकते हुए और प्रजा के ऊपर उनके अन्यायों को देखकर अपनी ग़लती पर पछता रहा था। राजा नन्दकुमार ने जी-तोड़ प्रयत्न शुरू किए। सम्राट् शाहआलम अभी तक बिहार में था। सम्राट् तथा मराठों से उसने पत्र-व्यवहार शुरू किया। उसके प्रयत्नों द्वारा मराठों ने मीर क़ासिम और अङ्गरेज़ दोनों के विरुद्ध सम्राट् की ओर से बङ्गाल पर हमला करने का वादा किया। बर्धमान, बीरभूम तथा अन्य अनेक स्थानों के राजा और ज़मींदार इस कार्य के लिए सम्राट् के झण्डे के नीचे आ-आकर जमा होने लगे।

Government winked at in some degree ; but when it got wholly into private hands, it was more like robbery than trade. These traders appeared every where ; they sold at their own prices, and forced the people to sell to them at their own prices also. It appeared more like an army going to pillage the people, under pretence of commerce, than anything else. In vain the people claimed the protection of their own Country Courts. This English army of traders, in their march, ravaged worse than a Tartarian Conqueror. . . . Thus this miserable country was torn to pieces by the horrible rapaciousness of a double tyranny."

—Burke in his impeachment of Warren Hastings.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ये सब प्रयत्न अभी चल ही रहे थे, इतने में एक ऐसी घटना हुई जिसका भारत के अन्दर ब्रिटिश-राज्य के क़ायम होने पर अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा, किन्तु जिसके इस महत्वपूर्ण प्रभाव पर भारतीय इतिहास-लेखकों ने अभी तक उचित ध्यान नहीं दिया। यह घटना ६ जनवरी, सन् १७६१ ई० की पानीपत की तीसरी लड़ाई थी।

भारत का राजशासन उस समय ख़ासी बिगड़ी हुई अवस्था में था। औरङ्गज़ेब की सङ्कीर्ण नीति और उसके अविश्वासी स्वभाव तथा बाद के दिल्ली के सम्राटों की विलास-प्रियता और अयोग्यता ने मुग़ल-साम्राज्य को अङ्ग-भङ्ग और खोखला कर दिया था। अनेक छोटे-बड़े नरेशों के अलावा अवध के नवाब और दक्षिण के निज़ाम अपने-अपने सूबों के स्वतन्त्र शासक बन बैठे थे। बङ्गाल अभी तक नाममात्र को दिल्ली के अधीन था। किन्तु कई वर्ष से बङ्गाल से भी दिल्ली ख़िराज जाना बन्द हो गया था, जिसके कारण शाहआलम दूसरे को बिहार पर चढ़ाई करनी पड़ी थी। स्वयं राजधानी के निकट भरतपुर के जाट-राजा और रामपुर के रुहेला-नवाब दोनों अपने-अपने स्वतन्त्र राज्य क़ायम कर रहे थे। मराठों की शक्ति दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी। दिल्ली के सम्राट् अभी तक भारत के सम्राट् कहलाते थे, किन्तु बहुत दर्जे तक केवल नाम के लिए। पश्चिम में सिन्ध और पञ्जाब के सूबे अफ़ग़ानिस्तान के शासक अहमदशाह अब्दाली के अधीन हो चुके थे और पूरब में बङ्गाल और बिहार दोनों के अन्दर अङ्गरेज़ों की साज़िशें सफल हो रही थीं।

वास्तव में भारत के क्रियात्मक प्रभुत्व के लिए उस समय अफ़ग़ानों, मराठों और अङ्गरेज़ों के बीच एक प्रकार का त्रिकोनिया संग्राम जारी था, जिसमें अफ़ग़ान और मराठे अपने युद्ध-बल पर तथा अङ्गरेज़ अपनी कूटनीति के बल सफलता की आशाएँ कर रहे थे। उस समय देश की इस विपज्जाल से निकलने का केवल एक ही उपाय हो सकता था। वही उपाय राजा नन्दकुमार को सूझा, और ज़ाहिर है कि दिल्ली और पूना के कुछ नीतिज्ञ भी नन्दकुमार के इस विचार से पूरी सहानुभूति रखते थे।

सम्राट् आलमगीर दूसरे के समय में वज़ीर ग़ाज़ी-उद्दीन ने मराठों को सम्राट् की सहायता के लिए दिल्ली बुलवाया। उस समय के पेशवा ने अपने भाई रघुनाथराव (राघोबा) को सम्राट् के आज्ञापालन के लिए एक बड़ी सेना-साहित दिल्ली भेजा। सम्राट् तथा पेशवा के बीच प्रेम का सम्बन्ध क़ायम हो गया। रघुनाथराव ने अपनी सेना-सहित और आगे बढ़कर अहमदशाह अब्दाली के नायब के हाथों से पञ्जाब विजय कर लिया और एक मराठा-सरदार को दिल्ली-सम्राट् के अधीन वहाँ का सूबेदार नियुक्त कर दिया। राघोबा दक्षिण लौट आया। मराठों की शक्ति इस समय शिखर पर पहुँची हुई थी। किन्तु इस अन्तिम घटना ने उनके विरुद्ध अहमदशाह अब्दाली का क्रोध भड़का दिया, और सन् १७५९ ई० में एक ज़बरदस्त सेना लेकर वह पञ्जाब पर अपना राज्य फिर से क़ायम करने और मराठों का विध्वंस करने के लिए अफ़ग़ानिस्तान से निकल पड़ा।

सदाशिव भाऊ २० हज़ार सवार, १० हज़ार पैदल और तोपख़ाना लेकर अहमदशाह के मुक़ाबले के लिए पूना से रवाना हुआ। पेशवा का पुत्र विश्वासराव भी सदाशिव के साथ था। मार्ग में होलकर और सींधिया की सेनाएँ सदाशिव से आ मिलीं। राजपूत-राजाओं ने सहायता के लिए अपने-अपने सवार भेजे। भरतपुर का जाट-राजा ३०,००० सेना लेकर स्वयं सदाशिव से आ मिला। साम्राज्य की राजधानी दिल्ली में सदाशिव का ख़ूब स्वागत हुआ। अवध का नवाब शुजाउद्दौला अपनी तथा सम्राट् की सेना-सहित सदाशिव की मदद के लिए तैयार हो गया। एक बार मालूम होता था कि भारत के समस्त हिन्दू तथा मुसलमान विदेशियों से अपने देश की रक्षा करने के लिए कमर कस कर मैदान में उतर आए।

किन्तु सदाशिव भाऊ उस ऐन परीक्षा के समय सच्चा नीतिज्ञ साबित न हो सका। गर्व ने उसकी दूरदर्शिता पर परदा डाल दिया। मार्ग में ही उसने कई मराठा-सरदारों को अपने अनुचित व्यवहार से नाराज़ कर लिया। राजा भरतपुर को भी वह सन्तुष्ट न रख सका। दिल्ली के अन्दर उसका बर्ताव और भी घृणित रहा। क़िले में घुसते ही बहुत सा शाही सामान उसने अपने क़ब्ज़े में कर लिया। दीवानें ख़ास की सुन्दर क़ीमती चाँदी की छत को उखड़वा कर और गलवा कर उसने उससे १७ लाख रुपए ढलवा लिए। यह भी कहा जाता है कि वह इस समय विश्वासराव को दिल्ली के तख़्त पर बैठाना

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मीर क़ासिम

[श्रीयुत् बहादुरसिंह जी सिङ्घी, कलकत्ता, की कृपा द्वारा, एक प्राचीन चित्र से]

भारत में अङ्गरेज़ी राज्य नामक अप्रकाशित पुस्तक से

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक क्रान्तिकारी प्रकाशन

एक बार—केवल एक बार इस क्रान्तिकारी पुस्तक को अवश्य पढ़िए और जहाँ तक आप कर सकें, इसका प्रचार कीजिए। इस पुस्तक में केवल समाज-पीड़ितों की आत्म-कथाएँ हैं। वह कथाएँ हैं, जिनसे अग्निमय लपटें निकलती हैं। वह विस्फोटक भावनाएँ, जिन्हें पढ़कर एक बार विचार करने के लिए

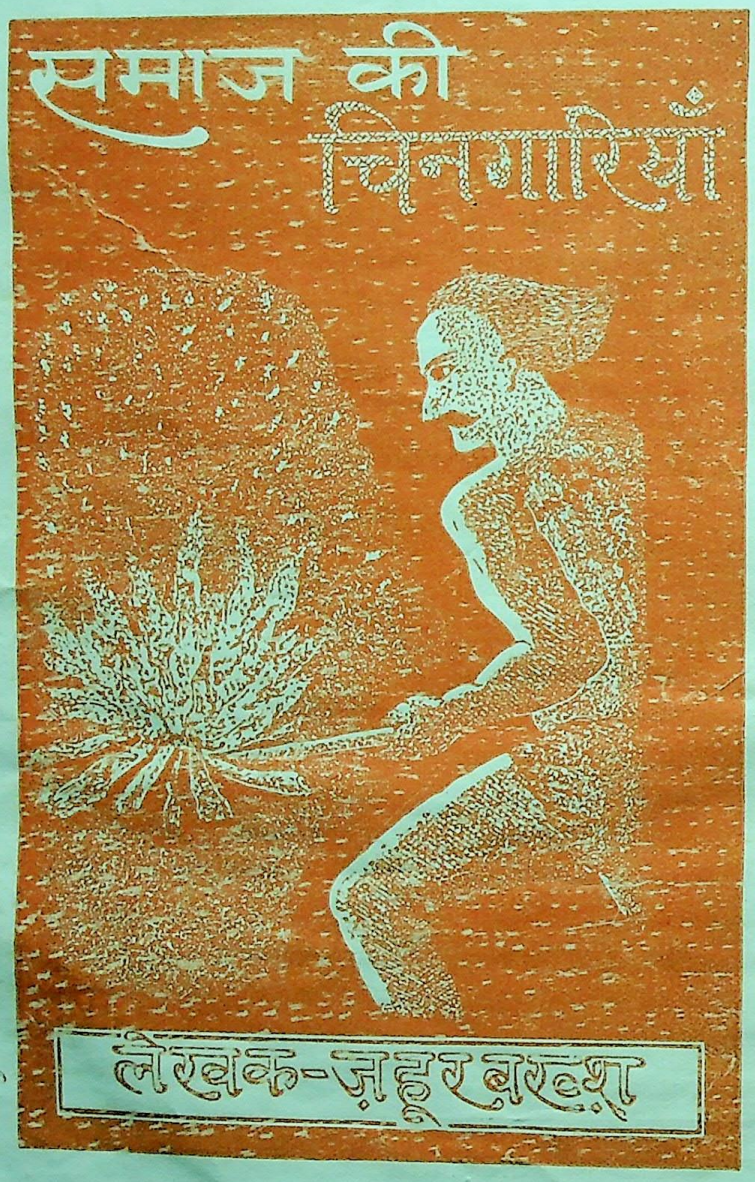

प्रकाशक—व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

आपको बाध्य होना होगा। पुस्तक ४० पाउण्ड के प्रसिद्धिख्यात 'फ़ेदरवेट' काग़ज़ पर छपी है। सुन्दर जिल्द और Protecting Cover से मण्डित है। फिर भी मूल्य केवल ३) रु०; स्थायी तथा 'चाँद' के ग्राहकों से, जो अपना ग्राहक-नम्बर लिखेंगे, २।); न पढ़ने वाले आजीवन पछताएँगे, इस बात का हम आपको विश्वास दिलाते हैं।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चाहता था। सदाशिव भाऊ की इस सङ्कीर्ण तथा घातक नीति का परिणाम यह हुआ कि उसके मुसलमान-मित्रों के दिल उसकी ओर से फिर गए। अवध का नवाब-वज़ीर उसकी ओर से सशङ्क हो गया और जिस उत्साह के साथ वह आक्रमक अहमदशाह के विरुद्ध मराठों की सहायता करना चाहता था, न कर सका।

६ जनवरी, सन् १७६१ को पानीपत के ऐतिहासिक मैदान में एक अत्यन्त घमासान संग्राम हुआ, जिसमें दोनों ओर के हताहतों की संख्या लाखों तक पहुँच गई। ऐन मौक़े पर सदाशिव के व्यवहार से बेज़ार होकर भरतपुर का राजा अपनी सेना सहित मैदान से हट गया। होलकर तटस्थ रहा। सदाशिव और विश्वासराव दोनों मैदान में काम आए। विजय अहमदशाह की ओर रही। नवाब शुजाउद्दौला ने मजबूर होकर विजयी अहमदशाह के साथ मेल कर लिया। किन्तु अहमदशाह को भी अपनी इस विजय की बहुत ज़बरदस्त क़ीमत देनी पड़ी। उसके इतने अधिक आदमी लड़ाई में काम आए और घायल हुए कि आगे बढ़ने का इरादा छोड़कर उसे फ़ौरन् अफ़ग़ानिस्तान लौट जाना पड़ा। लौटने से पूर्व उसने शाहआलम दूसरे को भारत का सम्राट् स्वीकार किया और ग़ाज़ीउद्दीन को हटाकर उसकी जगह नवाब शुजाउद्दौला को दिल्ली की सल्तनत का वज़ीर क़रार दिया। निस्सन्देह सदाशिवराव की सङ्कीर्णता और अदूरदर्शिता के कारण पानीपत के मैदान में मराठों की बढ़ती हुई शक्ति चकनाचूर हो गई और उसके साथ ही साथ दिल्ली के साम्राज्य तथा भारत की राष्ट्रीय स्वाधीनता दोनों की आशाएँ कुछ समय के लिए ख़ाक में मिल गईं।

प्रोफ़ेसर सिडनी ओवन ने सच कहा है—

"कहा जा सकता है कि पानीपत की लड़ाई के साथ-साथ भारतीय इतिहास का भारतीय युग समाप्त हो गया। इसके बाद से इतिहास के पढ़ने वाले को दूरवर्ती पश्चिम से आए हुए व्यापारी शासकों की उन्नति से ही सरोकार रह जाता है।"*

* "With the battle of Panipat, the native period of Indian History may be said to end. Henceforth the interest gathers round the progress of the Merchant Princes from the far west."

—*India on the Eve of the British Conquest*, by Professor Sydney Owen.

निस्सन्देह जिस त्रिकोनिया संग्राम का हम ऊपर ज़िक्र कर चुके हैं, उसकी तीन शक्तियों में से अफ़ग़ानों को अब और आगे बढ़कर दिल्ली-सम्राट् के निर्बल हाथों से भारतीय साम्राज्य की बाग छीनने का साहस न हो सकता था। मराठों की कमर टूट चुकी थी और वे अङ्गरेज़ों के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए अब बङ्गाल तक पहुँचने के नाक़ाबिल थे। इस प्रकार नन्दकुमार और उसके साथियों की आशाओं पर पानीपत ने पानी फेर दिया।

एक अङ्गरेज़-लेखक साफ़ लिखता है—

"पानीपत की लड़ाई से मराठा-सङ्घ को जो थोड़ी देर के लिए धक्का पहुँचा, उसके कारण मराठे बङ्गाल पर हमला करने से रुक गए। इस हमले में शायद शुजाउद्दौला और शाहआलम मराठों के साथ मिल जाते, और सम्भव है कि ये लोग अङ्गरेज़-कम्पनी की उस सत्ता को, जो अभी उस समय तक कमज़ोर थी और अनेक कठिनाइयों से घिरी हुई थी, सफलता-पूर्वक उखाड़ कर फेंक देते।"*

इसके बाद केवल अङ्गरेज़ बाक़ी रह गए और विविध सूबों के निर्बल तथा अदूरदर्शी शासकों को एक दूसरे से तोड़-फोड़कर अपने लिए अनन्य राजनैतिक प्रभुत्व का मार्ग बना लेना अब उनके लिए काफ़ी सरल हो गया।

शाहआलम और अङ्गरेज़

अब हम इस प्रसङ्ग से हटकर फिर अपने असली वृत्तान्त की ओर आते हैं। सम्राट् शाहआलम दूसरा अभी तक बिहार-प्रान्त में था। सितम्बर, सन् १७६० ही में अङ्गरेज़ शाहआलम को अपनी ओर करने का निश्चय कर चुके थे। इस समय बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा के अनेक ज़मींदार, जो नई क्रान्ति के विरुद्ध थे, सम्राट् के झण्डे के नीचे जमा हो रहे थे। अङ्गरेज़ों ने अब जिस तरह हो, बिहार पहुँचकर सम्राट् से मामला तय कर लेना ज़रूरी समझा। करनल केलो की जगह अब मेजर कारनक बङ्गाल की सेनाओं का प्रधान सेनापति था। जनवरी, सन् १७६१ में कारनक पटने पहुँचा। कम्पनी की सेना

* H. G. Keene's *Madhava Rao Scindhia*, p. 46.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के अलावा रामनारायण की सेना और मुर्शिदाबाद की सेनाएँ भी इस समय कारनक के साथ थीं। गया मौनपुर के निकट सम्राट् की सेना और इन सेनाओं का आमना-सामना हुआ। अन्त में समझौते की बातचीत होने लगी।

सम्राट् शाहआलम कारनक को साथ लेकर पटना आया। मीर क़ासिम पटने में मौजूद था। मीर क़ासिम ने हाज़िर होकर पिछले ख़िराज के बदले में एक बहुत बड़ी नक़द रक़म सम्राट् की भेंट की और अपने यहाँ की सरकारी टकसाल में शाहआलम दूसरे के नाम के सिक्के ढलवाने का वादा किया। यही वादा कलकत्ते की टकसाल के बारे में अङ्गरेज़ों ने किया। मीर क़ासिम ने तीनों प्रान्तों की आमदनी में से २४ लाख रुपए प्रति वर्ष दिल्ली-सम्राट् की सेवा में भेजने का वचन दिया। सम्राट् शाहआलम ने मार्च, सन् १७६१ में तीनों प्रान्तों की सूबेदारी का परवाना बाज़ाब्ता मीर क़ासिम के नाम जारी कर दिया। अङ्गरेज़ों का मुख्य उद्देश पूरा हो गया। उन्होंने इस अवसर पर एक कोशिश यह भी की कि जिस प्रकार मीर क़ासिम को शाही परवाना अता हुआ, उसी प्रकार जो इलाक़े अङ्गरेज़-कम्पनी के पास थे, उनके लिए कम्पनी को अलग सूबेदारी का परवाना मिल जावे, किन्तु शाहआलम ने इसे स्वीकार न किया। एक और प्रार्थना इस समय अङ्गरेज़ों ने शाहआलम से यह की कि सूबेदार मीर क़ासिम को रहने दिया जावे, किन्तु तीनों प्रान्तों की दीवानी के अधिकार उससे लेकर कम्पनी को अता हो जावे। दीवानी का मतलब यह था कि सूबेदार के मातहत तीनों प्रान्तों से सरकारी मालगुज़ारी वसूल करके उसका हिसाब सम्राट् और सूबेदार दोनों को दे देना और वसूली का ख़र्च निकाल-कर शेष सब धन सूबेदार के सुपुर्द कर देना कम्पनी का काम रहे; और उस धन से सरकारी फ़ौजें रखना अपने प्रान्तों के शासन का शेष समस्त कार्य चलाना और सम्राट् को सालाना ख़िराज भेजना सूबेदार का काम रह जाय।

शाहआलम स्वभावतः इस समय दिल्ली लौटने के लिए उत्सुक था। राजधानी के अन्दर सिंहासन के लिए किसी दूसरे हक़दार के खड़े हो जाने की भी सम्भावना थी! सम्राट् ने चाहा कि अङ्गरेज़ अपनी सेना-सहित मेरे साथ दिल्ली चलें। इसके बदले में वह कम्पनी को तीनों प्रान्तों का दीवान बना देने के लिए भी तैयार था। किन्तु अङ्गरेज़ों के पास उस समय इस कार्य के लिए काफ़ी फ़ौज न थी। स्वयं बङ्गाल के अन्दर वे अपने अनेक शत्रु पैदा कर चुके थे। इसलिए वे सम्राट् की इस इच्छा से उस समय लाभ न उठा सके। और जून, सन् १७६१ में सम्राट् शाहआलम पटने से दिल्ली की ओर लौट गया।

राजा रामनारायण से विश्वासघात

अब अङ्गरेज़ों को मराठों का डर न था। शाहआलम से किसी प्रकार निबटारा हो गया। बङ्गाल का मैदान फिर कम्पनी के मुलाज़िमों की लूट और ज़बरदस्तियों के लिए ख़ाली हो गया। इस बार उनका पहला वार राजा रामनारायण पर हुआ। अङ्गरेज़ों ही के बयान के अनु-सार रामनारायण एक अत्यन्त योग्य शासक था। वह अत्यन्त धनवान् भी मशहूर था और आरम्भ से अङ्गरेज़ों का "पक्का हितसाधक" रह चुका था। किन्तु अब मीर-क़ासिम और अङ्गरेज़ दोनों को रुपए की ज़रूरत थी। अपनी सेना के बल लोगों को पकड़-पकड़ कर मीर-क़ासिम के सामने पेश करना और उनसे रक़में वसूल करना अङ्गरेज़ों का इस समय एक ख़ास पेशा था। यह इलज़ाम लगाकर कि रामनारायण के ज़िम्मे सूबेदार की बक़ाया निकलती है, गवरनर वन्सीटार्ट ने रामनारायण को छल द्वारा गिरफ़्तार कर मीर क़ासिम के हवाले कर दिया। इसके कुछ ही समय पहले वन्सीटार्ट ने कारनक को लिखा था कि तुम्हें नवाब के हर तरह के अन्यायों से रामनारायण की रक्षा करनी चाहिए। कारनक ने सन् १७७२ में पार्लिमेण्ट की सिलेक्ट कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा था कि राजा रामनारायण पर बक़ाया का इलज़ाम "बेबुनियाद" था। निस्सन्देह वन्सीटार्ट और उसके साथियों का यह कार्य सर्वथा निस्स्वार्थ न था। १७ जुलाई, सन् १७६१ को करनल कूट ने गवरनर और काउन्सिल के नाम एक पत्र भेजा, जिसमें साफ़ लिखा है कि मीर क़ासिम इस कार्य के लिए साढ़े सात लाख रुपए रिशवत देने को तैयार है। गवरनर वन्सीटार्ट के इस कार्य की निन्दा करते हुए इतिहास-लेखक मिल लिखता है—

"मिस्टर वन्सीटार्ट के शासन की यह घातक भूल थी, क्योंकि इसके कारण ऊँचे दरजे के हिन्दोस्तानियों के

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिलों से अङ्गरेज़ों की रक्षा के ऊपर विश्वास बिलकुल उठ गया, और क्योंकि इस मामले में जिस ज़बरदस्त अन्याय में मि० वन्सीटार्ट ने साथ दिया, उससे लोगों की यह राय होगई कि वन्सीटार्ट अपनी कमज़ोरी से अथवा रिशवत लेकर किसी भी पक्ष का समर्थन करने को तैयार हो सकता है × × ×।"*

मुर्शिदाबाद में निर्दोष रामनारायण को हथकड़ियाँ डालकर रक्खा गया, उससे ख़ूब धन वसूल किया गया और पटने में उसकी जगह दूसरा नायब नियुक्त कर दिया गया।

मीर क़ासिम का चरित्र और शासन

मीर क़ासिम साधारण चरित्र का मनुष्य न था। उसमें और मीर जाफ़र में बहुत बड़ा अन्तर था। मीर जाफ़र अयोग्य, निर्बल, स्वार्थी, अदूरदर्शी तथा भीरु था। किन्तु मीर क़ासिम की दूरदर्शिता, उसकी योग्यता, उसके बल, उसकी वीरता और शासक की हैसियत से उसकी कार्य-कुशलता की लगभग समस्त इतिहास-लेखकों ने मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। उदाहरण के लिए इतिहास-लेखक करनल मालेसन मीर क़ासिम के "बढ़े हुए युक्ति-कौशल, उसकी योग्यता × × × उसके दृढ़ सङ्कल्प, चीज़ों का शीघ्रता से निर्णय कर सकने की क्षमता, उदार विचार × × × विमल मस्तिष्क और प्रबल चरित्र" की जगह-जगह प्रशंसा करता है।† एक दूसरा अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक लिखता है—"मीर क़ासिम के अन्दर एक योद्धा की वीरता और एक राजनीतिज्ञ की दूरदर्शिता दोनों मौजूद थीं।"‡ करनल मालेसन के अनुसार मीर क़ासिम को मीर जाफ़र के साथ देशघातकों की श्रेणी में रखना मीर क़ासिम के साथ अन्याय करना है। यह विद्वान् इतिहास-लेखक लिखता है कि मीर क़ासिम का इरादा मीर जाफ़र के साथ विश्वासघात करने का न था, मीर क़ासिम ने अपने बूढ़े श्वसुर की निर्बलता, भीरुता और अयोग्यता को अच्छी तरह अनुभव कर लिया था; उसकी आत्मा यह देखकर अत्यन्त तप्त थी कि बङ्गाल का सूबेदार विदेशियों के हाथों की केवल एक कठपुतली रह गया था; और यह देखकर ही मीर क़ासिम ने जिस तरह हो सका, सूबेदार की सत्ता को फिर से क़ायम करने का सङ्कल्प किया।* मीर क़ासिम और अङ्गरेज़ों में जो गुप्त समझौता हुआ था, वह केवल मीर क़ासिम को मीर जाफ़र का प्रधान मन्त्री बनाने के विषय में हुआ था, और मीर क़ासिम को आशा थी कि इस हैसियत से मैं सूबेदारी की सत्ता को फिर से क़ायम कर सकूँगा, किन्तु जब एक बार यह सब मामला निर्बल और सशङ्क मीर जाफ़र पर प्रकट कर दिया गया और मीर जाफ़र को मीर क़ासिम पर विश्वास न हो सका, तो फिर मीर क़ासिम के लिए पीछे हट सकना असम्भव हो गया। इसमें भी सन्देह नहीं कि मीर क़ासिम ने मसनद पर बैठते ही बङ्गाल की अवस्था को सुधारने का जी-तोड़ प्रयत्न किया और इस प्रयत्न में बहुत दरजे तक उसे आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई।

माल और ख़ज़ाने के महकमों में उसने अनेक सुधार किए। सन् १७६२ तक उसने न केवल अपनी फ़ौज की तमाम पिछली तनख़्वाहों को अदा कर दिया और अङ्गरेज़ों की एक-एक पाई ही चुकता कर दी, बल्कि शासन का इतना सुन्दर प्रबन्ध किया कि सूबेदारी की आमदनी सालाना ख़र्च से बढ़ गई। अङ्गरेज़ों पर उसे शुरू से ही विश्वास न था, तथापि उसने अङ्गरेज़ों के साथ अपने वचन का अक्षरशः पालन किया। मुर्शिदाबाद की राजधानी में विदेशियों का प्रभाव अधिक बढ़ गया था, इसलिए मीर क़ासिम ने मुङ्गेर को अपनी नई राजधानी बनाया। उसने अधिकतर मुङ्गेर ही में रहना शुरू कर दिया। मुङ्गेर की उसने बड़ी सुन्दर

---

* "This was the fatal error of Mr. Vansittart's administration; because it extinguished among the natives of rank all confidence in the English protection; and because the enormity to which, in this instance, he had lent his support, created an opinion of a weak or a corrupt partiality, . . ."

—*Mill*, Vol. III, p. 224.

† " . . . a man of great tact and ability . . . of iron will, quick decision, large views, . . . of clear head and strong charactor."

—*The Decisive Battles of India*, by Colonel Malleson, pp. 127, 145.

‡ "He united the gallantry of the soldier with the sagacity of the statesman."

—*Transactions in India from 1757 to 1783.*

* *The Decisive Battles of India*, p. 128

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और मज़बूत क़िलेबन्दी की। लगभग चालीस हज़ार सेना वहाँ जमा की। उस सेना को यूरोपियन ढङ्ग के अस्त्रों की शिक्षा देने के लिए अपने यहाँ अनेक योग्य यूरोपियन नौकर रक्खे। एक बहुत बड़ा नया कारख़ाना तोपें ढालने का उसने क़ायम किया, जिसकी तोपों के विषय में कहा जाता है कि उस समय की यूरोप की बनी हुई तोपों से हर तरह बढ़कर थीं। मीर क़ासिम की समस्त प्रजा उससे अत्यन्त सन्तुष्ट थी और उससे प्रेम करती थी।

मीर क़ासिम के विरुद्ध साज़िश

किन्तु ज्योंही मीर क़ासिम और उसकी प्रजा के थोड़ा-बहुत पनपने का समय आया, त्योंही मीर क़ासिम को भी मसनद से उतारने की तैयारियाँ शुरू होगईं। करनल मालेसन साफ़ लिखता है कि मीर क़ासिम ने अङ्गरेज़ों के साथ अपने समस्त वादे पूरे कर दिए, तथापि "लालची अङ्गरेज़ों को अपनी अर्थ-पिपासा के शान्त करने का सर्वोत्तम उपाय यही दिखाई दिया कि मीर क़ासिम को नाश करके उसके उत्तराधिकारी के साथ नए सिरे से सौदा किया जावे।"*

जिस प्रकार मीर जाफ़र के विरुद्ध अङ्गरेज़ों ने मीर क़ासिम को अपनी साज़िशों का केन्द्र बनाया था, उसी प्रकार अब उलट कर मीर क़ासिम के ख़िलाफ़ बूढ़े मीर जाफ़र को इन नई साज़िशों का केन्द्र बनाया गया। मीर क़ासिम के विरुद्ध सामग्री तैयार करने के लिए कलकत्ते की सिलेक्ट कमेटी के कुछ मेम्बरों ने ११ मार्च, सन् १७६२ को कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम एक लम्बा पत्र भेजा, जिसमें उन्होंने मीर क़ासिम और उसके चरित्र पर अनेक झूठे-सच्चे दोष लगाए, मीर जाफ़र की ख़ूब तारीफ़ें कीं। यह स्वीकार किया कि मीर जाफ़र के चरित्र पर इससे पूर्व जो दोष लगाए जा चुके थे वे सब झूठे थे, और मीर जाफ़र को मसनद से उतारना एक भूल और अन्याय था, और लिखा—

"जब से वह (मीर क़ासिम) सूबेदार बना है, तब से उसके ज़ुल्मों और लूट-खसोट की हम अगणित मिसालें आपको दे सकते हैं। किन्तु उससे यह पत्र बेहद लम्बा हो जायगा × × ×। हम केवल एक राम-नारायण का विशेषकर वर्णन करते हैं, जिसे उसने पटने की नायबी से अलग कर दिया है। यह बात मानी हुई है कि रामनारायण अपने वचन का सच्चा है, इसीलिए उसकी नायबी का समर्थन करना हम सदा अपने लिए हितकर नीति समझते रहे। आजकल मीर क़ासिम रामनारायण को उस समय तक हथकड़ी डाल कर रक्खे हुए है, जब तक कि वह हद दर्जे उससे धन न चूस ले। इसके बाद इसमें कोई सन्देह नहीं कि रामनारायण का काम तमाम कर दिया जायगा। जिन-जिन लोगों ने अङ्गरेज़ों का साथ दिया था, उनमें से सब नहीं तो अधिकांश से भारी-भारी रक़में वसूल की जा चुकी हैं। उनसे रुपए वसूल करने के लिए जो-जो पीड़ाएँ उन्हें दी गई हैं, उनसे कई के प्राण निकल गए। दूसरों को या तो कमीनेपन के साथ क़त्ल कर दिया गया और या (जो हिन्दोस्तानियों में अक्सर होता है) बेइज़्ज़ती से बचने के लिए उन्होंने आत्म-हत्या कर ली × × ×।"

मीर क़ासिम के चरित्र को कलङ्कित करने में अब इन लोगों ने कोई कसर उठा न रक्खी। अङ्गरेज़ों को रुपए देने के लिए ही मीर क़ासिम को अपने अनेक आश्रितों पर ज़ुल्म करने पड़े। इतिहास से ज़ाहिर है कि अङ्गरेज़ ही इस तरह के अनेक अभागों को ला-लाकर मीर क़ासिम के हवाले करते थे। अङ्गरेज़ों ही ने साढ़े सात लाख रुपए अथवा कुछ अधिक के बदले में अपने सच्चे मित्र निर्दोष रामनारायण को छल से पकड़ कर मीर क़ासिम के हाथों में दिया और अब अङ्गरेज़ ही मीर क़ासिम को इन सब अन्यायों के लिए दोषी ठहराते थे।

एक इलज़ाम मीर क़ासिम पर यह भी था कि वह अपनी फ़ौज बढ़ा रहा था, उन्हें यूरोपियन ढङ्ग की क़वा-यद और यूरोपियन शस्त्रों का इस्तेमाल सिखा रहा था और नई क़िलेबन्दियाँ कर रहा था (!)।

इसी पत्र में इन लोगों ने लिखा कि मीर जाफ़र के चरित्र के विरुद्ध जितने इलज़ाम गवरनर वन्सीटार्ट ने लगाए थे वे सब झूठे हैं, उनका उद्देश केवल "लोगों के चित्तों को मीर जाफ़र की ओर से फेर देना था," और

---

* "Mir Kassim performed his covenant. But . . . men greedy of gain, . . . deeming that the shortest road to their end lay in compassing the ruin of Mir Kassim, in order to make a market of his successor."

—*The Decisive Battles of India*, p. 134.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह कि मीर जाफ़र को मसनद से उतारने और मीर क़ासिम को उसकी जगह बैठाने से समस्त प्रजा अत्यन्त असन्तुष्ट है। कमेटी के छः मेम्बरों के इस पत्र पर दस्तख़त हैं। निस्सन्देह इस पत्र को पढ़ने के बाद कम्पनी के उस समय के अङ्गरेज़-मुलाज़िमों के किसी भी पत्र अथवा बयान पर कुछ भी विश्वास कर सकना सर्वथा असम्भव है।

तिजारत और सरकारी महसूल-सम्बन्धी अङ्गरेज़ों के अत्याचार इस समय तक समस्त बङ्गाल में फैल चुके थे, और बढ़ते जा रहे थे। इन अत्याचारों के विषय में करनल मालेसन लिखता है—

"इस लज्जास्पद और अन्यायपूर्ण पद्धति का परिणाम यह हुआ कि इज़्ज़त वाले देशी व्यापारी बरबाद हो गए, ज़िले के ज़िले निर्धन हो गए, देश का समस्त व्यापार उलट-पुलट हो गया, और उस ज़रिए से नवाब को जो आमदनी होती थी, उसमें धीरे-धीरे किन्तु लगातार कमी आती गई। मीर क़ासिम ने बार-बार कलकत्ते की काउन्सिल से इन ज़्यादतियों की शिकायत की, किन्तु व्यर्थ।"*

अन्त को इन अगणित शिकायतों के जवाब में इस सब मामले का निबटारा करने के लिए ३० नवम्बर, सन् १७६२ को गवरनर वन्सीटार्ट और वारन हेस्टिंग्स नवाब से भेंट करने के लिए मुङ्गेर पहुँचे। मीर क़ासिम ने जो शिकायतें इस समय वन्सीटार्ट के सामने पेश कीं, उनमें से एक यह भी थी—

"जब सूबेदार (मीर क़ासिम) बिहार की ओर गया हुआ था और बङ्गाल में कोई शासक न रहा था, उस समय अङ्गरेज़ों ने अपने अत्याचारों द्वारा इस सूबे के हर ज़िले और हर गाँव को तबाह कर डाला था, प्रजा से उनकी रोज़ की रोटी तक छीन ली गई थी और सरकारी महसूलों और मालगुज़ारी का जमा होना बिलकुल बन्द हो गया था, जिससे सूबेदार को क़रीब एक करोड़ रुपए का नुक़सान हुआ × × ×।"*

१५ दिसम्बर, सन् १७६२ को वन्सीटार्ट और मीर क़ासिम के बीच एक सन्धि हुई, जो 'मुङ्गेर की सन्धि' के नाम से प्रसिद्ध है। और बातों के साथ इस सन्धि में यह भी तय हुआ कि अङ्गरेज़-व्यापारी आयन्दा से नमक, तम्बाकू, छालिया इत्यादि सब चीज़ों के ऊपर ९ फ़ीसदी महसूल दिया करें और हिन्दोस्तानी व्यापारी इन्हीं तमाम चीज़ों पर २५ फ़ीसदी महसूल दिया करें। निस्सन्देह यह सन्धि भारतीय व्यापारियों के साथ न्यायोचित न न थी, तथापि मीर क़ासिम ने शान्ति की इच्छा से विवश होकर उसे स्वीकार कर लिया।

वन्सीटार्ट और हेस्टिंग्स दोनों ने सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर किए और दोनों ने कलकत्ता-काउन्सिल के नाम अपने १५ दिसम्बर के पत्र में इस सन्धि की 'न्याय्यता' और 'उदारता' और मीर क़ासिम की 'सचाई' तीनों की स्पष्ट शब्दों में तारीफ़ की है। वन्सीटार्ट ने मीर क़ासिम से यह वादा किया कि कलकत्ते पहुँचकर मैं कम्पनी और सरकार के बीच के सब मामले तय कर दूँगा। किन्तु कलकत्ते वापस पहुँचते ही बजाय 'सब मामला तय' करने के गवरनर वन्सीटार्ट ने कम्पनी और उसके आदमियों की धींगाधींगी को पूर्ववत् जारी रखने के लिए जगह-जगह नई फ़ौजें रवाना कर दीं। इसके साथ-साथ कलकत्ते की अङ्गरेज़-काउन्सिल ने अपनी बाज़ाब्ता इजलास करके फ़ौरन् तमाम अङ्गरेज़ी कोठियों और उनके गुमाश्तों के पास यह स्पष्ट सूचनाएँ भेज दीं कि मुङ्गेर की शर्तों पर हरगिज़ कोई अमल न करे और यदि नवाब के कर्मचारी अमल कराने पर ज़ोर दें, तो उनकी ख़ूब गत बनाई जावे। इसी इजलास में यह भी कहा गया कि मुङ्गेर की सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए वन्सीटार्ट ने नवाब मीर क़ासिम

* "The results of this shameful and oppressive system were that the respectable class of native merchants were ruined, whole districts became impoverished, the entire native trade became disorganised and the Nawab's revenue from that source suffered a steady and increasing declension. In vain did Mir Kassim represent, again and again these evils on the Calcutta Council."

—*The Decisive Battles of India*, p. 137.

* "When His Excellency went to Behar, Bengal being left without a ruler, every village district in that province was ruined through the oppression of the English, the subjects of the Sarkar were deprived of their daily bread, and the collection of the revenues was entirely stopped, so that His Excellency lost nearly a crore of rupees . . . ."

—*Calendar of Presian Correspondence*, p. 194, No. 1695.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से सात लाख रुपए रिशवत ली थी। जो हो, सन्धि-पत्र की स्याही अभी सूखने भी न पाई थी कि सन्धि तोड़ दी गई। नवाब के कर्मचारी यदि कोई बोलते थे या महसूल माँगते थे तो पूर्ववत् उन पर मार पड़ती थी। मीर क़ासिम ने वन्सीटार्ट को ५ मार्च, सन् १७६३ के पत्र में फिर लिखा कि—"तीन साल से सरकार को अङ्गरेज़ों से एक भी पाई वा एक भी चीज़ नहीं मिली। इसके विपरीत सरकार के कर्मचारियों से अङ्गरेज़ बराबर जुरमाने और हरजाने वसूल कर रहे हैं।"

मीर क़ासिम ने बार-बार शिकायत की, किन्तु कोई फल न हुआ। विदेशी व्यापारियों का बिना महसूल व्यापार करना और देशी व्यापारियों से भारी महसूल वसूल किया जाना दोनों बराबर जारी रहे। इस घोर अन्याय द्वारा देशी व्यापारियों का अस्तित्व ही मिटता जा रहा था। अन्त को मजबूर होकर और देशी व्यापारियों को जीवित रखने का और कोई उपाय न देख, २२ मार्च, सन् १७६३ को मीर क़ासिम ने अपनी सूबेदारी भर में चुङ्गी की तमाम चौकियों को उठवा दिए जाने का हुकुम दे दिया और सूबे भर में एलान कर दिया कि आज से दो साल तक किसी तरह के तिजारती माल पर किसी से किसी तरह का भी महसूल न लिया जाय। निस्सन्देह मीर क़ासिम की सालाना आमदनी को इससे ज़बरदस्त धक्का पहुँचा, किन्तु देशी व्यापारियों को अन्याय से बचाने और उन्हें ज़िन्दा रखने का मीर क़ासिम को और कोई उपाय न सूझ सकता था। इस आज्ञा से मीर क़ासिम की बेबसी और उसकी प्रजापालकता दोनों प्रकट होती हैं।

असंख्य हिन्दोस्तानी व्यापारियों को इस आज्ञा से लाभ हुआ। वे अङ्गरेज़ों से कम ख़र्च में ज़िन्दगी बसर कर सकते थे और अपना माल सस्ता बेचकर भी लाभ कमा सकते थे। तिजारत का द्वार एक बार बिलकुल खुल गया, जिसके कारण चारों ओर से आ-आकर बङ्गाल में व्यापारियों की संख्या बढ़ने लगी और देश की तिजारत और कृषि दोनों फिर ज़ोरों के साथ उन्नति करने लगीं। स्वार्थपरायण अङ्गरेज़ों को यह कब सहन हो सकता था। फ़ौरन् कलकत्ते में काउन्सिल का फिर इजलास हुआ। तय हुआ कि नवाब की नई आज्ञा नाजायज़ है, और नवाब को मजबूर किया जाय कि अपनी इस आज्ञा को वापस लेकर देशी व्यापारियों से पूर्ववत् महसूल वसूल करे। ऐमयाट और हे नामक दो अङ्गरेज़ मुङ्गेर जाकर नवाब से मिलने और ये सब बातें नए सिरे से तय करने के लिए नियुक्त हुए।

बङ्गाल की प्रजा के साथ अत्याचारों और बङ्गाल के शासक के साथ ज़बरदस्तियों का प्याला अब लबालब भर चुका था। मीर क़ासिम को यह भी मालूम था कि बङ्गाल के तीनों प्रान्तों की दीवानी के अधिकार प्राप्त करने के लिए दिल्ली-सम्राट् के साथ अङ्गरेज़ों का गुप्त पत्र-व्यवहार बराबर जारी है। मीर क़ासिम और वन्सीटार्ट के दरमियान इस समय जो पत्र-व्यवहार हुआ, वह पढ़ने के योग्य है। मीर क़ासिम ने बार-बार अपने कर्मचारियों और अपनी प्रजा के ऊपर अङ्गरेज़ों के अत्याचारों की शिकायतें कीं। अत्यन्त करुण शब्दों में उसने लिखा है कि—"कम्पनी के जो तिलङ्गे सिपाही सम्राट् और सूबेदार की सहायता के लिए कह कर रक्खे गए थे और जिनके ख़र्च के लिए मैं कम्पनी को पचास लाख रुपए की ज़मींदारी दे चुका हूँ, वे अब देश भर में मेरे और मेरे आदमियों के विरुद्ध काम में लाए जा रहे हैं।" अन्त को एक पत्र में उसने साफ़-साफ़ लिखा कि—"मुझे मालूम हुआ है कि बहुत से अङ्गरेज़ एक दूसरा सूबेदार खड़ा करना चाहते हैं। × × × हर शख़्स पर ज़ाहिर है कि यूरोप वालों का एतबार नहीं किया जा सकता।"

मीर क़ासिम के साथ अङ्गरेज़ों के इस समय के व्यवहार की आलोचना करते हुए मालेसन लिखता है—

"किसी भी क़ौम के इतिहास में उनसे अधिक अनुचित, अधिक नीच और अधिक शर्मनाक काररवाइयों की मिसालें नहीं मिलतीं, जो काररवाइयाँ कि मीर जाफ़र को मसनद से हटाने के बाद तीन वर्ष तक कलकत्ते की अङ्गरेज़-गवर्नमेण्ट ने कीं।"*

मालेसन यह भी लिखता है कि—"मीर क़ासिम का एकमात्र क़ुसूर यह था कि उसने यूरोप-निवासियों के अत्याचारों से अपनी प्रजा की रक्षा करने का प्रयत्न

* "The annals of no nation contain records of conduct more unworthy, more mean, and more disgraceful, than that which characterised the English Government of Calcutta during the three years which followed the removal of Mir Jaffar."

—*The Decisive Battles of India*, p. 133.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किया।"* इस पर भी "मीर क़ासिम अपनी स्वाधीनता और प्रजा के सुख का नाश किए बिना किसी क़ीमत पर भी अङ्गरेज़ों के साथ अमन से रहने के लिए उत्सुक था।"†

किन्तु मीर क़ासिम के विरुद्ध साज़िश अभी पूरी तरह पकने न पाई थी, इसलिए उसके अन्तिम पत्र के उत्तर में वन्सीटार्ट ने मीर क़ासिम को लिख दिया—"यह क़िस्सा कि अङ्गरेज़ दूसरा नाज़िम खड़ा करना चाहते हैं, चालबाज़ लोगों की मनगढ़न्त है × × ×।"

इसके बाद जब वन्सीटार्ट ने मीर क़ासिम को लिखा कि ऐमयाट और हे एक नई सन्धि करने के लिए मुङ्गेर भेजे गए हैं, तो मीर क़ासिम ने उत्तर में लिखा कि—"हर साल नई सन्धि करना क़ायदे के ख़िलाफ़ है, क्योंकि इनसान की सन्धियों की कुछ उमरें होती हैं।" उसने यह भी लिखा कि—"एक ओर आप चारों तरफ़ फ़ौजें भेज रहे हैं और दूसरी ओर मुझसे बातचीत करने के लिए आदमी भेज रहे हैं?"

वास्तव में ऐमयाट और हे का मुङ्गेर भेजना केवल एक चाल थी। बङ्गाल के अन्दर तीसरी क्रान्ति के लिए अङ्गरेज़ों की तैयारी ज़ोरों के साथ जारी थी।

मीर क़ासिम को इतने में पता चला कि मेरे विरुद्ध साज़िशों का जाल स्वयं मेरी राजधानी के अन्दर पूरा फैल चुका है। वही जैन जगतसेठ, जो ६ वर्ष पूर्व सिराजुद्दौला के पतन में अङ्गरेज़ों का सहायक हुआ था, अब फिर इस नई साज़िश में शामिल था। पता चलते ही मीर क़ासिम ने जगतसेठ और उसके भाई स्वरूपचन्द दोनों को मुङ्गेर बुलाकर नज़रबन्द कर दिया। ये दोनों भाई मीर क़ासिम की प्रजा थे। अङ्गरेज़ों को इस पर एतराज़ करने का कोई अधिकार न था। किन्तु वन्सीटार्ट ने इस पर भी एतराज़ किया।

इस बीच ऐमयाट और हे दोनों दूत मुङ्गेर पहुँच गए। २५ मई, सन् १७६३ को इन दोनों ने कम्पनी की ओर से ग्यारह नई माँगें लिखकर मीर क़ासिम के सामने पेश कीं—(१) यह कि अङ्गरेज़-काउन्सिल ने तिजारती महसूल और एजण्टों के विषय में जो कुछ तय किया है, नवाब उसे ज्यों का त्यों लिखकर स्वीकार करे, (२) यह कि नवाब अपनी प्रजा अर्थात् देशी व्यापारियों पर नए सिरे से महसूल लगावे और अङ्गरेज़ों की बिना महसूल तिजारत जारी रहे, (३) यह कि अङ्गरेज़ों और उनके जिन-जिन आदमियों को नई आज्ञा के कारण व्यापारिक नुक़सान हुआ है, नवाब उन सबका हरजाना पूरा करे, (४) यह कि नवाब अपने उन सब कर्मचारियों को, जिन्हें अङ्गरेज़ कहें, दण्ड दे। इत्यादि, इत्यादि।

निस्सन्देह कोई स्वाभिमानी शासक इन शर्तों को स्वीकार न कर सकता था। ऐमयाट का व्यवहार भी नवाब के साथ अत्यन्त रूखा और धृष्टतापूर्ण था। यहाँ तक कि उसने मीर क़ासिम की शिकायतें सुनने तक से इन्कार कर दिया। वास्तव में अङ्गरेज़ युद्ध चाहते थे और युद्ध की पूरी तैयारी कर चुके थे। १४ अप्रैल, सन् १७६३ ही को अङ्गरेज़ों ने अपनी सेना को तैयार हो जाने की आज्ञा दे दी थी। पटने में एलिस नामक एक अङ्गरेज़ कम्पनी के एजण्ट की हैसियत से रहता था। एलिस ने वहाँ के नायब नाज़िम को दिक़ करना और बात-बात में उसकी आज्ञाओं का उल्लङ्घन करना शुरू कर दिया था। मीर क़ासिम ने अनेक बार वन्सीटार्ट से एलिस के व्यवहार की शिकायत की, किन्तु व्यर्थ। अब कलकत्ते से एलिस को लिख दिया गया कि तुम आज्ञा पाते ही पटने पर क़ब्ज़ा करने के लिए तैयार रहो। कम्पनी की काफ़ी सेना पहले ही पटने पहुँचा दी गई थी। उधर ऐमयाट साहब सुलह के लिए मुङ्गेर में ठहरे हुए थे और इधर हथियारों से भरी हुई कई किश्तियाँ एलिस की मदद के लिए कलकत्ते से पटने की ओर जा रही थीं। जब ये किश्तियाँ मुङ्गेर के पास से निकलीं, नवाब उन्हें देखकर चौंक गया। उसने किश्तियों को आगे बढ़ने से रोक दिया और २ जून, सन् १७६३ को वन्सीटार्ट को लिखा कि—"कम्पनी की नई माँगें बेजा और पहली सन्धियों के विरुद्ध हैं × × × पटने की अङ्गरेज़ी फ़ौज या तो कलकत्ते वापस बुला ली जावे और या मुङ्गेर में रक्खी जावे, नहीं तो मैं निज़ामत छोड़ दूँगा।"

* "Whose only fault . . . was his endeavour to protect his subjects from European extortion."

—*Ibid*, p. 136.

† "Mir Kassim, still anxious for peace at any price short of sacrificing his own independence and the happiness of his people."

—*Ibid*, p. 140.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसके जवाब में ऐमयाट ने मीर क़ासिम से साफ़-साफ़ कहा कि बजाय वापस बुलाने के पटने में अङ्गरेज़ी फ़ौज बढ़ाई जायगी। हथियारों की किश्तियाँ मुङ्गेर में रुकते ही कलकत्ते की काउन्सिल ने, जो केवल एक बहाने के इन्तज़ार में थी, ऐमयाट और हे को वापस बुला लिया और एलिस को आज्ञा दे दी कि तुम फ़ौरन् पटने पर हमला करके नगर पर क़ब्ज़ा कर लो।

युद्ध का प्रारम्भ

युद्ध का प्रारम्भ हो गया। २४ जून की रात को अचानक हमला करके एलिस ने पटने पर क़ब्ज़ा कर लिया। मीर क़ासिम की बरदाश्त की कोई हद न थी। इतिहास-लेखक ऐलिफ़िन्सटन लिखता है कि—"अगणित कोप-कारणों के होते हुए भी उसने धैर्य और बरदाश्त से काम लिया।"* किन्तु अब मजबूर होकर उसे एलिस के विरुद्ध सेना भेजनी पड़ी। मीर क़ासिम की सेना ने पटने पहुँचकर फिर से नगर अङ्गरेज़ों से विजय कर लिया। इस बार की लड़ाई में कम्पनी के लगभग ३०० यूरोपियन और ढाई हज़ार हिन्दोस्तानी सिपाही काम आए। एलिस और उसके कई यूरोपियन साथी १ ली जुलाई को क़ैद करके मुङ्गेर पहुँचा दिए गए।

ऐमयाट चुपके से किश्ती में बैठकर कलकत्ते के लिए रवाना हो गया। मीर क़ासिम ने हे को मुङ्गेर में रोक लिया। मालूम होता है कि मीर क़ासिम ने अपने आदमियों को हुक्म भेज दिया कि ऐमयाट को भी रोक कर वापस मुङ्गेर भेज दिया जाय। क़ासिमबाज़ार के निकट नवाब के एक कर्मचारी मुहम्मद तक़ी ख़ाँ ने अपने एक आदमी को भेजकर ऐमयाट से खाना खाने के बहाने किनारे पर आने की प्रार्थना की। ऐमयाट ने इनकार किया और उसकी किश्तियाँ बीच धार से चलती रहीं। एक दूसरा उच्च कर्मचारी भेजा गया, जिसने किनारे से फिर कहा कि खाना तैयार है और यदि आप सेनापति मुहम्मद तक़ी ख़ाँ की प्रार्थना स्वीकार न करेंगे तो उन्हें दुख होगा। ऐमयाट ने फिर इनकार कर दिया। इसके बाद किनारे के अफ़सरों ने किश्तियों को रुकने का स्पष्ट हुक्म दिया। जवाब में ऐमयाट ने वहीं से किनारे की ओर गोलियों की बौछार शुरू कर दी। नवाब के आदमियों ने अब बाज़ाब्ता किश्तियों पर पहुँचकर बदला लिया। उस हत्याकाण्ड में ऐमयाट का भी वहीं पर काम तमाम हो गया।

२८ जून को मीर क़ासिम ने वन्सीटार्ट और उसकी काउन्सिल के नाम इस प्रकार पत्र लिखा—

"× × × रात के डाकू की तरह मिस्टर एलिस ने पटने के क़िले पर हमला किया, वहाँ के बाज़ार को और तमाम व्यापारियों और नगर के लोगों को लूटा और सुबह से तीसरे पहर तक लूट और क़त्ल जारी रक्खी। × × × चूँकि आप लोगों ने बेइन्साफ़ी और ज़ुल्म के साथ शहर को रौंद डाला है, लोगों को बरबाद किया है और कई लाख का माल लूट लिया है, इसलिए अब इन्साफ़ यह है कि कम्पनी ग़रीबों का नुक़सान भर दे, जैसा पहले कलकत्ते में हो चुका है। आप ईसाई लोग विचित्र दोस्त निकले। आपने सन्धि की, उस पर ईसामसीह के नाम से क़सम खाई। इस शर्त पर कि आपकी सेना सदा मेरा साथ देगी और मेरी सहायता करेगी, आपने अपनी सेना के ख़र्च के लिए मुझसे इलाक़ा लिया। असलियत में मेरे ही नाश के लिए आप फ़ौज रख रहे थे, क्योंकि उसी फ़ौज के हाथों ये सब कार्य हुए हैं। × × × इसके अलावा कई साल से अङ्गरेज़-गुमाश्तों ने मेरी निज़ामत के अन्दर जो-जो ज़ुल्म और ज़्यादतियाँ की हैं, जो बड़ी-बड़ी रक़में लोगों से ज़बरदस्ती वसूल की हैं और जो नुक़सान किए हैं, मुनासिब और इन्साफ़ यह है कि कम्पनी इस समय उस सबका हरजाना दे। आपको सिर्फ़ इतनी ही तकलीफ़ करने की ज़रूरत है कि जिस तरह से बर्धमान और दूसरे इलाक़े आपने लिए थे, उसी तरह मुझ पर इनायत करके आप उन्हें वापस लौटा दीजिए।"*

निस्सन्देह सर्वथा मजबूर होकर मीर क़ासिम ने अब कड़ाई करने का पक्का निश्चय कर लिया।

७ जुलाई को यह पत्र कलकत्ते पहुँचा। उसी रोज़ कलकत्ते की अङ्गरेज़-काउन्सिल की ओर से मीर क़ासिम के साथ युद्ध का एलान प्रकाशित हुआ, जिसमें प्रजा को यह सूचना दी गई कि मीर क़ासिम की जगह मीर

* "... he conducted himself under innumerable provocations with temper and forbearance, ..."
—*Rise of the British power in India* by Elphinstone, pp. 390, 391.

* Long's *Selections*, pp. 325, 326.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जाफ़र को अब फिर से बङ्गाल की मसनद पर बैठा दिया गया है। नवाब मीर जाफ़र ही के नाम पर बङ्गाल भर से सेना जमा की गई और मीर जाफ़र ही के नाम पर प्रजा से अङ्गरेज़ी सेना का साथ देने के लिए कहा गया। किन्तु इस बाक़ायदा एलान से पहले ही पटना विजय भी हो चुका था और फिर से छिन भी चुका था। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि कलकत्ते के अङ्गरेज़-व्यापारियों की काउन्सिल को बङ्गाल के सूबेदार को मसनद से उतारने या दूसरा सूबेदार नियुक्त करने का अधिकार कभी किसी ने न दिया था।

कम्पनी की सेना मेजर एडम्स के अधीन ५ जुलाई को अर्थात् युद्ध के एलान से दो दिन पहले कलकत्ते से मुर्शिदाबाद की ओर रवाना हुई। मीर क़ासिम की सेना सिपहसालार मुहम्मद तक़ी ख़ाँ के अधीन मुङ्गेर से चली। तक़ी ख़ाँ एक वीर और योग्य सेनापति था। किन्तु लिखा है कि उसकी तमाम तजवीज़ों में बात-बात में मुर्शिदाबाद का नायब नाज़िम सय्यद मुहम्मद ख़ाँ, जो ज़ाहिर है, अङ्गरेज़ों से मिला हुआ था, रुकावटें डालता रहता था। स्वयं उसकी सेना के अन्दर अङ्गरेज़ काफ़ी सफलता के साथ विश्वासघात के बीज बो चुके थे। तीन स्थानों पर दोनों ओर की सेनाओं में कई छोटी-बड़ी लड़ाइयाँ हुईं। इन लड़ाइयों का विस्तृत वृत्तान्त "सीअ-रुल मुताख़रीन" नामक ग्रन्थ में दिया हुआ है। उस ग्रन्थ में मुसलमान-सेना के अन्दर के एक ख़ास देशघातक मिर्ज़ा ईरज ख़ाँ का ज़िक्र आता है, जिसने भीतर ही भीतर अङ्गरेज़ों से मिलकर मीर क़ासिम और मुहम्मद तक़ी ख़ाँ के साथ दग़ा की। क़रीब दो सौ यूरोपियन और दूसरे ईसाई, जो नवाब की सेना में विविध पदों पर और ख़ासकर तोपख़ाने में नौकर थे, ऐन मौक़े पर शत्रु की ओर जा मिले। सारांश यह कि इन लड़ाइयों में से एक में मुहम्मद तक़ी ख़ाँ भी मार डाला गया। इन्हीं लड़ाइयों के सम्बन्ध में मालेसन लिखता है कि—"अङ्गरेज़ों की सफलता में जितनी सहायता भारतीय नेताओं और नरेशों की परस्पर ईर्ष्या से मिली है, उतनी दूसरी किसी भी चीज़ से नहीं मिली।"*

* "Few things have more contributed to the success of the English than the action of jealousy of each other of the native princes and leaders of India."

—*Ibid*, p. 150.

ऊदवानाला की लड़ाई

मीर क़ासिम की सेना ने अब ऊदवानाला नामक ऐतिहासिक स्थान पर अपना अन्तिम पड़ाव किया। प्राकृतिक स्थिति और मीर क़ासिम की दूरदर्शिता दोनों ने मिलकर इस स्थान को अत्यन्त सुरक्षित और अभेद्य बना रक्खा था। एक ओर गङ्गा थी, दूसरी ओर ऊदवा-नाला नाम की गहरी नदी, जो गङ्गा में गिरती थी, तीसरी ओर राजमहल की दुरारोह पहाड़ियाँ और चौथी ओर मीर क़ासिम की बनवाई हुई ज़बरदस्त खाड़ियाँ और क़िलेबन्दी, जिसके ऊपर सौ से ऊपर मज़बूत तोपें लगी हुई थीं। पहाड़ियों की तलहटी में खाड़ियों से ऊपर की ओर एक झील और एक लम्बी-चौड़ी दलदल थी। इस दलदल के अन्दर से एक अत्यन्त पेचदार रास्ता दुर्ग से बाहर आने-जाने का था, जिसका अङ्गरेज़ी सेना को किसी तरह पता न चल सकता था। एक महीने तक मीर क़ासिम की सेना इस दुर्ग के अन्दर और कम्पनी की सेना, जिसके साथ बूढ़ा मीर जाफ़र भी था, ऊदवानाला के बाहर पड़ी रही, किन्तु न अङ्गरेज़ अपनी तोपों के गोलों से सङ्गीन क़िलेबन्दी पर किसी तरह का असर पैदा कर सके और न भीतर की सेना को ज़रा भी हानि पहुँचा सके। दूसरी ओर मिरज़ा नजफ़ ख़ाँ नामक एक साहसी और परहेज़गार मुसलमान सेनापति प्रतिदिन रात के पिछले पहर उसी दलदल के रास्ते आकर अङ्गरेज़ी सेना पर धावा करता और अनेकों को ख़त्म कर तथा लूट का माल लेकर उसी रास्ते लौट जाता। अङ्गरेज़ी सेना किसी तरह उसका पीछा न कर पाती थी। युद्ध की सामग्री भी अङ्गरेज़ों की निस्बत मीर क़ासिम की सेना के पास कहीं अधिक उत्तम थी। अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक ब्रूम लिखता है कि भारत की बनी हुई जो बन्दूकें इस समय मीर क़ासिम की सेना के पास थीं, वह अङ्गरेज़ी सेना की, इङ्गलिस्तान की बनी हुई बन्दूकों से धातु, बनावट, मज़बूती, उपयोगिता इत्यादि सब बातों में कहीं बढ़िया थीं।* ज़ाहिर था कि ईमान-दारी के साथ अङ्गरेज़ किसी तरह मीर क़ासिम पर विजय न प्राप्त कर सकते थे।

मीर क़ासिम की सेना का एक ख़ास दोष, जो उसके

* *History of the Bengal Army*, by Broome, p. 351.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लिए घातक सिद्ध हुआ, यह था कि उसने अनेक यूरोपियन और आरमीनियन ईसाइयों को अपनी सेना के अनेक बड़े-बड़े ओहदों पर नियुक्त कर रक्खा था। ईसा की ११ वीं सदी से लेकर, जब कि यूरोप की कई ईसाई-शक्तियों ने मिलकर पहली बार मुसलमानों से जैरूसेलम (बैतुलमुक़द्दस) छीनना चाहा, आज पर्यन्त हज़रत ईसा और हज़रत मुहम्मद के अनुयायियों के बीच प्रायः लगातार संग्राम होते रहे हैं। ईसाई-ताक़तों ने अनेक मुसलमान-राज्यों के स्वतन्त्र अस्तित्व को मिटाकर अनेक बार अपना जुआ मुसलमान-क़ौमों के कन्धों पर रक्खा है। ईसाइयों और मुसलमानों के इस सदियों के विरोध के अतिरिक्त यूरोपियनों का ख़ासकर किसी यूरोपियन क़ौम के विरुद्ध अपने किसी एशियाई स्वामी के साथ वफ़ादारी कर सकना लगभग असम्भव है। इस सचाई को न समझ सकना अनेक भारतीय तथा अन्य एशियाई शासकों के लिए घातक साबित हुआ है।

कलकत्ते में इस समय आरमीनियां का एक मशहूर ईसाई-सौदागर ख़ोजा पेतरूस रहता था। इस सौदागर का एक भाई ख़ोजा ग्रिगरी मीर क़ासिम की सेना में एक अफ़सर था। और भी कई आरमीनियन ईसाई इस समय मीर क़ासिम की सेना में नौकर थे। मेजर एडम्स ने ख़ोजा पेतरूस की मारफ़त गुप्त पत्र-व्यवहार द्वारा इन सब लोगों को अपनी ओर फोड़ लिया।

इनके अलावा मीर क़ासिम की सेना में एक अङ्गरेज़ सैनिक भी था, जो कुछ समय पहले अङ्गरेज़ी सेना को छोड़कर नवाब के यहाँ भरती होगया था। इस अङ्गरेज़ को अपनी सेना में भरती कर लेना मीर क़ासिम के नाश का मूल कारण साबित हुआ। उसने मिरज़ा नजफ़ ख़ाँ के आने-जाने के मार्ग को धीरे-धीरे अच्छी तरह देख लिया और एक दिन, जबकि मालूम होता है दुर्ग के भीतर के अन्य ईसाई तथा ग़ैर-ईसाई विश्वासघातकों के साथ समस्त योजना पक्की की जा चुकी थी, ४ सितम्बर की रात को क़रीब दस बजे यह शख़्स नवाब की सेना से निकल कर अङ्गरेज़ों की ओर चला आया और वहाँ से शत्रु की सेना को साथ ले, उसी मार्ग से रातोंरात अचानक नवाब की सेना पर आ टूटा। क़िले के अन्दर के अनेक अफ़सर शत्रु से मिले हुए थे और अनेक के विषय में "सीअरुल-मुताख़रीन" से पता चलता है कि वे अपने स्थान की अभेद्यता और शत्रु की अशक्तता पर अत्यधिक भरोसा करके अपने कर्त्तव्य से असावधान हो गए थे। ऐसी स्थिति में सेना का कर्त्तव्य-विमूढ़ हो जाना स्वाभाविक था। परिणाम यह हुआ कि मीर क़ासिम के पूरे पन्द्रह हज़ार सैनिक उस रात की लड़ाई में काम आए।

इस अङ्गरेज़ विश्वासघातक के कार्य के विषय में कर्नल मालेसन लिखता है कि—"केवल एक व्यक्ति के इस कार्य ने अङ्गरेज़ों के नैराश्य को विश्वास में बदल दिया; और इस कार्य के परिणाम ने मीर क़ासिम की सेना के आत्म-विश्वास को नैराश्य में बदल दिया। अङ्गरेज़ी सेना के लिए इस व्यक्ति ने इस मौक़े पर ईश्वर का काम किया।"*

"जनरल एडम्स ने मीर क़ासिम की सेना को केवल विजय ही नहीं किया, बल्कि उसका संहार कर डाला।"† मीर क़ासिम की लगभग चार सौ तोपें इस युद्ध में अङ्गरेज़ों के हाथ आईं।

ऊदवानाला ही विदेशी व्यापारियों के विरुद्ध बङ्गाल के भारतीय सूबेदारों की आशा का अन्तिम आधार था। ४ सितम्बर, सन् १७६३ की रात को वह आशा सदा के लिए टूट गई। जो चीज़ सिराजुद्दौला के लिए प्लासी साबित हुई, वही मीर क़ासिम के लिए ऊदवानाला साबित हुआ, और दोनों स्थानों पर लगभग एक ही से उपायों द्वारा अङ्गरेज़-व्यापारियों ने बङ्गाल की सरकारी सेना पर विजय प्राप्त की।

ऊदवानाला की पराजय का एक कारण यह भी बताया जाता है कि उस रात मीर क़ासिम स्वयं अपनी सेना के साथ दुर्ग के अन्दर मौजूद न था। अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक बोल्ट्स की राय है कि यदि मीर क़ासिम स्वयं अपने अफ़सरों को सावधान रखने और अपने सैनिकों को प्रोत्साहित करने के लिए मौजूद होता तो—"शायद ही नहीं, वरन् बहुत ज़्यादा सम्भव है कि उस

* "It was the act of a single individual which converted the despair of the English into confidence; it was the consequence of that act which changed the confidence of Mir Kassim's army into despair. The individual on this occasion performed the divine function for the English army."

—*Ibid*, p. 157

† *Ibid*, p. 160.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिन से अङ्गरेज़-कम्पनी के पास इन प्रान्तों में एक फ़ुट ज़मीन भी न रह जाती।"*

मीर क़ासिम के शासन का अन्त

ऊदवानाला की पराजय मीर क़ासिम के लिए एक बहुत बड़ा धक्का था। तथापि उसने विदेशियों की अधीनता स्वीकार न की और न वह इतनी जल्दी हिम्मत हारा। ऊदवानाला के बाद उसने मुङ्गेर के क़िले को सँभाला। यह क़िला भी अत्यन्त मज़बूत था। उसकी रक्षा का उचित प्रबन्ध कर मीर क़ासिम अज़ीमाबाद (पटना) के लिए रवाना हो गया। "सीअरुल-मुताख़रीन" से पता चलता है कि मीर क़ासिम के जाते ही मुङ्गेर के क़िलेदार अरबअली ख़ाँ ने नक़द रिशवत लेकर अपना क़िला चुपचाप अङ्गरेज़ों के सुपुर्द कर दिया। अङ्गरेज़ों ने मुङ्गेर पर क़ब्ज़ा जमाकर अब मीर क़ासिम का पीछा किया। महाराजा कल्यानसिंह की पुस्तक "ख़ुलासतुल तवारीख़" में लिखा है कि अज़ीमाबाद-क़िले के संरक्षक मीर मुहम्मदअली ख़ाँ ने अपने लिए पाँच सौ रुपए मासिक पेन्शन कम्पनी से मञ्ज़ूर कराकर बिना विरोध के वहाँ का क़िला भी शत्रु के हवाले कर दिया।

असहाय मीर क़ासिम को इस समय अपने चारों ओर सिवाय दग़ा के और कुछ नज़र न आता था। अङ्गरेज़ों को अब केवल दो बातों की चिन्ता थी। एक एलिस इत्यादि जो अङ्गरेज़ मीर क़ासिम के पास अभी तक क़ैद थे, उन्हें छुड़ा लेना और दूसरे किसी प्रकार मीर क़ासिम को गिरफ़्तार करना। १९ सितम्बर, सन् १७६३ को एडम्स और कारनक ने मीर क़ासिम के एक फ़्रान्सीसी मुलाज़िम जाँती (Gentil) को इस मज़मून का एक पत्र लिखा—

"मुसलमान जब कभी बेख़ौफ़ ऐसा कर सकते हैं, सदा हमारे सहधर्मियों और यूरोप-निवासियों के साथ क्रूर से क्रूर पाशविकता का व्यवहार करते हैं। किसी ईसाई के लिए मुसलमानों की नौकरी करना बड़ी ज़िल्लत का काम है। हमारा यह भी अनुमान है कि किसी बहुत ही ज़बरदस्त ज़रूरत से मजबूर होकर ही आपने इतनी ज़िल्लत की नौकरी स्वीकार की होगी। अब ऐसी कष्टकर ग़ुलामी से बच निकलने का और हमारी क़ौम की फिर से मित्रता लाभ करने का आपके लिए अच्छा मौक़ा है। आप इससे इनकार नहीं कर सकते कि हमारी क़ौम के साथ आपने बहुत बेजा सुलूक किया है (जबकि आजकल हमारी और आपकी क़ौमों में सुलह है।) यदि आप हमारे आदमियों को क़ासिमअली ख़ाँ के हाथों से निकाल कर हमारे पास भेजने की तदबीर कर सकें, तो आप अङ्गरेज़ों की कृतज्ञता पर पक्का भरोसा रखिए; और हम आपको पचास हज़ार रुपए फ़ौरन् देने का वादा करते हैं।"*

"सीअरुल-मुताख़रीन" में लिखा है कि इसके बाद मीर क़ासिम को किसी तरह गिरफ़्तार करने की अङ्गरेज़ों को चिन्ता हुई। वन्सीटार्ट और वारन हेस्टिंग्स ने कलकत्ते के ईसाई-सौदागर ख़ोजा पेतरूस से, जिसे आग़ा बेदरूस भी कहते थे, ख़ोजा ग्रिगरी के नाम, जिसे गुरघिन ख़ाँ भी कहते थे, इस सम्बन्ध में एक पत्र लिखवाया। अचानक एक दिन रात को एक बजे मीर क़ासिम के एक विश्वस्त जासूस ने उसे जगाकर ख़बर दी—"आप बिछौने पर पड़े क्या कर रहे हैं, आपका सेनापति गुरघिन ख़ाँ आपको साफ़ फिरङ्गियों के हाथों में बेच रहा है!

---

* "... it is more than probable that, the English Company would have been left, from that day, without a single foot of ground in these Provinces."

—*Consideration on Indian Affairs*, by Bolts, p. 43.

* "We are persuaded also that it must have been the most absolute necessity only which could have engaged you in so dishonourable a service to a Christian as that of the Moors, who always treat with the grossest brutality those of our religion and Europeans when it is in their power to do it with impunity. A favourable opportunity now offers to enable you to rid yourself of so irksome a slavery and to reconcile yourself with our nation, towards which you can not deny but you have acted very improperly (and which is now at peace with yours). If you can contrive means for the delivery of our gentlemen from the power of Cossim Ally Khan and will convey them to us, you may place a firm reliance on the gratitude of the English; and we promise you fifty thousand Rupees immediately."—Letter dated 19th September 1763, from Adams and Carnac to one Monsieur Gentil in the employ of Meer Kassim.

—Long's *Records*, pp. 332, 333.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कुछ बाहर के लोगों के साथ और मालूम होता है कि भीतर के लोगों, यानी आपके क़ैदियों के साथ भी उसकी साज़िश हो चुकी है।"

अभी तक एलिस और उसके अङ्गरेज़-साथियों के साथ मीर क़ासिम ने बड़ी उदारता का व्यवहार किया था। इन खुले राजद्रोहियों को ख़त्म कर देने के बजाय वह तीन महीने से बराबर उन्हें आदरपूर्वक अपने साथ रक्खे था और खिला-पिला रहा था। किन्तु "सीअरुल-मुताख़रीन" के अनुसार जब उसने देखा कि ये सब लोग अब भी मेरे विरुद्ध एक गहरी साज़िश कर रहे हैं, और बाहर से शस्त्रों वग़ैरह का भी गुप्त प्रबन्ध कर चुके हैं, तो उसने मजबूर होकर पटने में ख़ोजा ग्रिगरी को, एलिस और उसके तमाम साथियों को—केवल एक अङ्गरेज़-डॉक्टर फ़ुलरटन को छोड़कर—जगतसेठ और उसके भाई महाराजा स्वरूपचन्द को यानी उन सबको, जो इस साज़िश में शामिल थे, क़त्ल करवा दिया। कहा जाता है कि ख़ोजा ग्रिगरी इस साज़िश का सरग़ना था।

इसके बाद जब अङ्गरेज़ पटने की ओर बढ़े तो मीर क़ासिम ने कर्मनासा नदी को पार कर कुछ सेना और तोपख़ाने सहित ४ दिसम्बर, सन् १७६३ को अपनी सरहद से निकल कर नवाब शुजाउद्दौला के सूबे अवध में प्रवेश किया। तीन वर्ष तक वह बङ्गाल का सूबेदार रहा। उसका सारा शासन-काल आपत्तियों से भरा हुआ था। अब इस प्रकार उसके शासन का अन्त हुआ। निस्सन्देह वह योग्य, वीर तथा अपने देश और प्रजा दोनों का सच्चा हितचिन्तक था। सिराजुद्दौला के समान वह विश्वासघात का शिकार हुआ। उसके शासन-काल और पतन के समस्त वृत्तान्त को पढ़कर और उसके विरोधियों की समस्त करतूतों की तुलना कर प्रत्येक निष्पक्ष मनुष्य के चित्त में उसकी ओर दया, प्रेम तथा सहानुभूति का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। वास्तव में बहुत दरजे तक वह अन्तिम वीर था, जिसने बङ्गाल की स्वाधीनता की रक्षा के लिए एक बार जी-तोड़ प्रयत्न किया और इसी प्रयत्न में अपने आपको मिटा डाला। *

* भारत में अङ्गरेज़ी राज्य नामक अप्रकाशित पुस्तक का एक अध्याय, जो शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है।

—स० 'चाँद'

याचना

[रचयिता—श्रीमती पार्वती देवी जी शुक्ला]

(१)

इस अभिलाषी आकुल चित को,
सुखद-सान्त्वना दे-देकर।
रक्खा है विश्वास-गोद में,
शान्ति-सुधा से, से-से कर।

(२)

बहुत समय हो गया दीनता—
के दुख में दहते-दहते।
बहुत विषम-विपदाओं के—
घातक-प्रहार सहते-सहते!

(३)

यों करते साधन-आराधन,
वन्दन-अभिनन्दन तेरा।
बहुत हुआ अब भला इधर भी,
नाथ! लगा दो फिर फेरा॥

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रणय-कल्पना

कपड़े के इन दो भागों को सीती हैं भगवन् जैसे !
सी जाता जो मेरे मन से ! प्रियतम का भी मन वैसे !!

FINE ART PRINTING WORKS ALLAHABAD

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्तस्तल को गुदगुदाने वाली ! हृदय की कली खिलाने वाली !!

अपूर्व ! अनोखी !! हास्यरस-पूर्ण पुस्तक !!!

[ले० श्री० प्रवासीलाल जी वर्मा, भूतपूर्व सम्पादक 'धर्माभ्युदय']

दुनिया की झञ्झटों से जब कभी आपका जी ऊब जाय, आप इस पुस्तक को उठाकर पढ़िए ; मुँह की गुदनी दूर हो जायगी । हास्य की अनोखी छटा छा जायगी । पुस्तक को पूरी किए बिना आप कभी न छोड़ेंगे—यह हमारा दावा है । पुस्तक की छपाई और काग़ज़ के बारे में प्रशंसा करना व्यर्थ है । मूल्य सिर्फ़ १॥)

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चतुर्वेदी जी की घासलेट-चर्चा

"अबलाओं का इन्साफ़" की निष्पक्ष आलोचना

[ले० श्री० जनार्दन भट्ट जी, एम० ए०]

"विशाल भारत" के सुयोग्य और श्रद्धेय सम्पादक पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने कुछ दिनों से हिन्दी-संसार में एक नया शब्द गढ़ डाला है, जो हिन्दी की अख़बारी दुनिया में "घासलेटी साहित्य" के नाम से मशहूर हो रहा है। जहाँ तक मुझे मालूम हुआ है, चतुर्वेदी जी का मतलब "घासलेटी साहित्य" से अश्लील साहित्य का है। पर घासलेट से अश्लीलता का अर्थ कैसे निकला तथा अश्लीलता का भाव प्रकट करने के लिए चतुर्वेदी जी को इसी शब्द का सहारा क्यों लेना पड़ा, यह मेरी समझ में न आया। आगे चलकर हिन्दी का कोष लिखने वालों को यह शब्द ज़रूर एक बड़ी भारी पहेली या बला साबित होगा। कोई इसकी उत्पत्ति शायद "घास" से निकालेंगे और कोई "लीद" से और कोई "घास-लीद" दोनों से। उनकी मेहनत को हलका करने और उन्हें इस झञ्झट से बचाने के लिए मैं "घासलेट" शब्द की उत्पत्ति यहाँ पर लिखे देता हूँ। "घासलेट" अङ्गरेज़ी शब्द "गैस-लाइट" (Gas Light) से निकला है और वह केरोसिन या मिट्टी के तेल के लिए बम्बई में इस्तेमाल होता है। अस्तु, मिट्टी के तेल और अश्लीलता के बीच क्या रिश्ता है, यह चतुर्वेदी जी ही बतला सकते हैं! शायद उनको ऐसे शब्द की तलाश थी जो वज़न में पूरा "चॉकलेट" की तरह उतरे और साथ ही अश्लीलता का अर्थ भी प्रकट कर सके। सचमुच "चॉकलेट" और "घासलेट" में वज़न ख़ूब बैठता है, "लेट" दोनों में समान है, ख़ाली "चॉक" और "घास" का फ़र्क़ है।

आजकल जैसे हर बात में अराजकता का भूत सरकार को दिखाई पड़ा करता है, उसी तरह हिन्दी के कुछ लेखकों को बहुत सी पुस्तकों और लेखों में गन्दगी का परनाला बहता नज़र आता है। वे हर बात में अश्लीलता की बू सूँघा करते हैं। ऐसे लोगों में हमारे श्रद्धेय मित्र पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी भी हैं। मेरा चतुर्वेदी जी से नम्र निवेदन है कि यदि उन्हें अश्लीलता की इतनी तलाश है, तो उनको वेद और पुराण से शुरू करना चाहिए; क्योंकि जितना इन ग्रन्थों का प्रचार और प्रभाव जनता के बीच है, उतना "चॉकलेट" जैसी पुस्तकों का नहीं। ख़ैर, वेद को जाने दीजिए, क्योंकि उसके मन्त्रों के भिन्न-भिन्न अर्थ हो सकते हैं। पुराण को लीजिए। पुराण अश्लीलताओं से भरे पड़े हैं। नमूने के तौर पर ब्रह्मा का अपनी लड़की के पीछे भागना, महादेव का मोहनी के पीछे दौड़ना, इन्द्र का गौतम ऋषि की पत्नी का धर्म भ्रष्ट करना, तथा चौर-जार-शिरोमणि भगवान् कृष्ण का गोपियों के साथ विहार करना, आदि पुराणों में पढ़िए और अश्लीलता की बानगी का मज़ा चखिए। संस्कृत के महाकाव्यों और नाटकों को भी पढ़िए जो शृङ्गार-रस से भरे हुए हैं। ढूँढ़ने से उनमें बहुत सी अश्लीलता की सामग्री मिल जायगी। परन्तु अश्लीलता के पीछे लाठी लेकर न पड़ने वालों को उनमें कविता का अलौकिक आनन्द प्राप्त होगा और अनेक उपयोगी शिक्षाएँ भी मिलेंगी। मिसाल के तौर पर महाकवि भवभूति का "उत्तर रामचरित" लीजिए। संस्कृत के कवियों में भवभूति सबसे अधिक पवित्र चरित्र और उनका "उत्तर रामचरित" सबसे अधिक अश्लीलता-रहित ग्रन्थ माना जाता है। पर वह भी कुछ अश्लीलतान्वेषी सज्जनों की दृष्टि में अश्लीलता से ख़ाली नहीं है। उत्तर रामचरित का वह श्लोक, जो अश्लील समझा जाता है, यह है:—

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्ति योगात्,
अविरलित कपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिल परिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो,
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्॥

अर्थात्—रामचन्द्र जी सीता से कहते हैं—"प्रिये,

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह वही प्रसावण पर्वत है, जहाँ बनवास के समय हम लोग रहते थे और जहाँ हम दोनों एक दूसरे का गाढ़ आलिङ्गन किए हुए तथा एक दूसरे के गाल से गाल सटाए हुए रात की रात बिता देते थे, पर हम लोगों की बात ख़तम न होती थी। रात बीत जाती थी, पर बात न बीतती थी।"

यह श्लोक कुछ लोगों की राय में अश्लील माना जाता है और भवभूति की लेखनी से न लिखा जाना चाहिए था। एक लिहाज़ से देखा जाय तो सचमुच इसमें अश्लीलता की पुट मिली हुई मालूम पड़ती है। परन्तु जिनका ध्यान अश्लीलता की ओर नहीं, बल्कि कवित्व की ओर है वह इसमें अश्लीलता नहीं, बल्कि कविता का अनोखा आनन्द पाते हैं। यही हाल हिन्दी के बहुत से काव्य-ग्रन्थों का भी है। दो-एक को छोड़कर, शायद कोई हिन्दी का काव्य ऐसा न होगा जिसमें कुछ न कुछ अश्लीलता न पाई जाती हो। पर अश्लीलता उनके लिए है जो अश्लीलता की खोज के लिए उन्हें पढ़ते हैं। बाक़ी काव्य का और भक्ति का वही स्वाद उनमें मिलता है, जो संस्कृत के काव्यों और ग्रन्थों में मिलता है। यही बात "चॉकलेट" जैसी पुस्तकों के लिए भी कही जा सकती है। किसी पुस्तक के सम्बन्ध में कुछ फ़ैसला करने के पहले हमें यह देखना चाहिए कि वह किस उद्देश्य से लिखी गई है। पुस्तक लिखने में लेखक का उद्देश्य क्या है—अश्लीलता फैलाना या किसी व्यभिचार, अत्याचार या कुरीति की ओर समाज का ध्यान खींचकर उसे सुधारना? उसके कुछ फ़िक़रे इधर से और कुछ फ़िक़रे उधर से लेकर अपनी पहले ही से मान ली हुई राय के मुताबिक़ फ़ैसला न करना चाहिए, बल्कि कुल पुस्तक पढ़ लेने के बाद देखना चाहिए कि उसका क्या असर हम पर पड़ता है।

यही नहीं, जिस कुरीति की ओर जनता का ध्यान खींचने के लिए वह पुस्तक लिखी गई है, उसकी ओर ध्यान खींचने में वह सफल हुई या नहीं, या जिस किसी अच्छे उद्देश्य से लिखी गई है उसको 'अन्ततो गत्वा' कुछ न कुछ पूरा करने में सफलता प्राप्त की है या नहीं। "चॉकलेट" को ही लीजिए। मैंने इस पुस्तक को पढ़ा नहीं है, पर जहाँ तक चतुर्वेदी जी की आलोचना से पता चला है, यह पुस्तक सदभिप्रायपूर्ण उद्देश्य से लिखी गई है, न कि जनता को अश्लीलता की ओर ले जाने के उद्देश्य से। जहाँ तक मुझे ज्ञात हुआ है, लेखक का उद्देश्य समाज का ध्यान एक ऐसे महाघृणित और अस्वाभाविक पाप की ओर खींचने का है, जो समाज में महाभयङ्कर रूप से फैला हुआ है और जिसका पर्दा फ़ाश करने की हिम्मत, झूठी लज्जा या अश्लीलता के डर से बड़े-बड़े अगुआ, उपदेशक या लेखक की भी नहीं पड़ती। पर यह एक ऐसा व्यभिचार है, जो समाज को घुन की तरह खोखला बना रहा है। न जाने कितने सुकुमार, सुन्दर और कोमल-वयस्क बालक, जो आगे चलकर देश की भावी आशाओं को सफल बना सकते थे, विषय-लम्पट तथा अस्वाभाविक पापाचार में रत, नर-पिशाचों की घृणित काम-तृष्णा के शिकार बनकर प्रति दिन शारीरिक, मानसिक और नैतिक पतन के गढ़े में गिर रहे हैं और समाज अपने आसन से ज़रा भी नहीं डिगता। विधवाओं के ऊपर जो अत्याचार होते हैं, उनसे कहीं बढ़कर ये अत्याचार हैं जो समाज के नवयुवक बालकों के ऊपर हो रहे हैं। इस अप्राकृतिक पाप के अपराधी यदि साधारण, असभ्य और अपढ़ लोग ही होते तो भी ग़नीमत थी, परन्तु पढ़े-लिखे, सभ्य और शिष्ट लोगों में भी यह पाप उसी भयङ्कर रूप में फैला हुआ है जैसा कि अशिक्षित और असभ्य लोगों में। कोई फ़िर्क़ा ऐसा नहीं, कोई समाज ऐसा नहीं, कोई पेशा ऐसा नहीं, जो इन नर-पिशाचों से ख़ाली हो। अध्यापकों में ये पाए जाते हैं, वकीलों में ये देखे जाते हैं, डॉक्टरी पेशा इनसे ख़ाली नहीं, सम्पादकों में भी कई इस फ़न के उस्ताद मिलते हैं। कहाँ तक कहें, कोई समुदाय ऐसा नहीं, जहाँ इन नर-पिशाचों का जाल न बिछा हो! मैं एक ऐसे सज्जन को जानता हूँ, जो देखने में बहुत ही सभ्य और शिष्ट, बातचीत करने में निहायत आला दर्जा के शाइस्ता-ख़्याल, सरकारी नौकरी में बहुत ऊँचा ओहदा पाए हुए, शायद राय-बहादुर भी हैं, दो-एक प्रतिष्ठित पत्रों के सम्पादक भी रह चुके हैं, दोनों वक़्त सन्ध्या ज़रूर करते हैं, उम्र भी ४०-४५ से कम न होगी; पर हज़रत इस फ़न में पूरे उस्ताद हैं। अब तक सैकड़ों नहीं तो कई दर्जन कोमल-वयस्क, गुलाब के समान सुन्दर बालकों और नवयुवकों को अपनी अस्वाभाविक काम-तृष्णा को शान्त करने के लिए सदाचार से भ्रष्ट कर चुके हैं और अपने पीछे एक

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दो नहीं, बल्कि अनेक अपने सिखलाए हुए इस सम्प्रदाय के मुरीद छोड़ जाने वाले हैं। अभी थोड़े दिनों की बात है कि कलकत्ते का एक विद्यालय अपने एक ऐसे ही अध्यापक के कारण काफ़ी बदनाम हो चुका है। कहा जाता है कि उस नराधम अध्यापक ने, न जाने कितने छात्रों को अपनी अस्वाभाविक काम-तृष्णा का शिकार बनाया था। मैं चतुर्वेदी जी से पूछता हूँ कि इस भयङ्कर दुराचार और पापाचार को रोकने का समाज ने क्या प्रयत्न किया है? मैं एक हेडमास्टर की हैसियत से कह सकता हूँ कि यह अस्वाभाविक व्यभिचार कितनी भयङ्करता के साथ समाज में फैला हुआ है। पर समाज के सिर पर जूँ तक नहीं रेंगती और अगर कोई हिम्मत करके अपने ढङ्ग पर इस गन्दे पाप का पर्दा फ़ाश करता है और इसकी ओर समाज का ध्यान खींचना चाहता है, तो अश्लीलता की गुहार दी जाती है और यह कहा जाता है कि लिखने वाला "ज़िम्मेवार" शख़्स नहीं है और उसका मस्तिष्क "सभ्य और सुसंस्कृत" नहीं। परन्तु यह निश्चय करना ज़रा टेढ़ी खीर है कि कौन "ज़िम्मेवार" है और किसका मस्तिष्क "सभ्य और सुसंस्कृत" गिना जा सकता है? अगर कोई शख़्स "ज़िम्मेवारी" का और "सभ्यता तथा सुसंस्कृतता" का दावा करता है और यह कहता है कि फ़लाँ शख़्स "ज़िम्मेवार" नहीं है तो वह महज़ हिमाक़त करता है। ख़ैर, हमारे मित्र चतुर्वेदी जी एक लिस्ट ऐसे सज्जनों की बना देते जो उनकी राय में "ज़िम्मेवार" हों और दूसरी लिस्ट ऐसे आदमियों की छपा दें जो उनकी पाक राय में "ग़ैर-ज़िम्मेवार" समझे जायँ तो बहुत अच्छा होता, ताकि हम ऐसे लोग अगर "ज़िम्मेवार" न समझे जायँ तो अनधिकार चर्चा से बरी रहें।

ख़ैर, अगर ख़ाली "चॉकलेट" ही पर चतुर्वेदी जी की नाराज़गी होती तो कोई बात न थी, परन्तु उन्होंने बहुत सी ऐसी पुस्तकों को भी अश्लील पुस्तकों की सूची में शामिल कर दिया है, जो एकमात्र समाज-सुधार के पवित्र उद्देश्य से लिखी गई हैं। ऐसी एक पुस्तक "अबलाओं का इन्साफ़" है। पुस्तक क्या है, हिन्दू-समाज के अत्याचार की भट्टी में जलते हुए अबलाओं के दिल का दर्द भरा तराना है, या अन्धे हिन्दू-समाज की आँखों में फिर से ज्योति पैदा करने वाला समीरे का सुर्मा है, या मौत के मुख में पड़ी हुई हिन्दू-जाति को फिर से जिलाने वाला सञ्जीवन लटका है। परन्तु चतुर्वेदी जी को उसमें सिवा अश्लीलता के और कुछ भी नहीं सूझा। उस पुस्तक को आदि से लेकर अन्त तक ध्यान के साथ पढ़ने के बाद मुझे तो उसमें अश्लीलता की बू तक न मिली। हाँ, स्वार्थी और अत्याचारी हिन्दू-समाज के प्रति घृणा और अत्याचारों की चक्की में पीसी जाती हुई हिन्दू-अबलाओं के प्रति दया और सहानुभूति का स्रोत हृदय में अवश्य उमड़ आया। हिन्दू-बालिका के पैदा होने पर कैसे शोक और मातम के साथ उसका स्वागत किया जाता है, कैसे गुड़िया की तरह शादी कर दी जाती है, विधवा हो जाने पर कैसे-कैसे अत्याचार उस पर होते हैं, किस तरह समाज अपने अन्यायों के द्वारा विधवाओं को व्यभिचार करने, गर्भ गिराने और वेश्या बनने के लिए मजबूर करता है—यह सब दुख-भरा दास्तान अबलाओं की ज़बानी अगर आप सुनना चाहते हैं तो इस किताब को पढ़िए। हाँ, यह ज़रूर है कि इन सब अत्याचारों और व्यभिचारों की जीती-जागती तसवीर घुमा-फिरा कर नहीं, बल्कि स्पष्ट और नङ्गे शब्दों में खींची गई है। इसी से वे लोग जो पर्दे का फ़ाश होना अच्छा नहीं समझते, इस पुस्तक से बिगड़े हैं और इसे अश्लील कहकर इसके महत्व को घटाना चाहते हैं। जो लोग पर्दा फ़ाश होने के ख़िलाफ़ हैं, उनका कहना यह है कि भाई, सामाजिक कुरीतियों के बारे में लिखो, पर खुले शब्दों में नहीं, क्योंकि इससे हमारे आत्माभिमान को या सञ्जीदा दिल को धक्का पहुँचता है। यह कहना वैसा ही है जैसा कोई कहे कि सड़े-गले मवाद से भरे हुए पुराने नासूर को चीरो, पर देखना मवाद न गिरने पावे, क्योंकि उससे मेरे नाज़ुक दिल को सदमा पहुँचेगा, क्योंकि मैं चीर-फाड़ और मवाद देखना बरदाश्त नहीं कर सकता। या कोई यह कहे कि देखो, अपने ग़म से भरे हुए दिल के बोझ को रोकर हलका कर सकते हो, पर ख़बरदार, एक क़तरा आँसू न गिरने पावे! क्यों भाई? इसलिए कि तुम्हारे आँसू देखकर मेरे शान्त हृदय में बेचैनी पैदा हो जाती है।

पुस्तक के सम्बन्ध में इतना कह देने के बाद मैं इसके लेखक के बारे में भी कुछ कह देना चाहता हूँ। मैंने सुना है, इस अत्यन्त उत्तम और उपयोगी पुस्तक के लेखक कोई "ग़ैर-ज़िम्मेवार" नहीं, बल्कि बहुत ही "ज़िम्मेवार"

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शख़्स हैं। कोई भुक्खड़ हिन्दी के लेखक नहीं, बल्कि एक करोड़पती असामी हैं, जो लक्ष्मी के कृपापात्र होकर भी लक्ष्मी-वाहन नहीं, वरन् अच्छे विद्वान् हैं। नए विचारों के होते हुए भी, धर्मशास्त्र और दर्शनशास्त्र के अच्छे ज्ञाता हैं, जो साधारणतया हिन्दू-समाज के और विशेषतया मारवाड़ी-समाज के एक रत्न हैं, और जिनका हृदय सामाजिक अत्याचारों और व्यभिचारों को देखकर, वैसा ही धधका करता है, जैसा कि हिन्दी में घासलेटी साहित्य के प्रचार को देखकर चतुर्वेदी जी का। इसलिए कम से कम यह तो चतुर्वेदी जी नहीं कह सकते कि यह शख़्स "ज़िम्मेवार" नहीं है। परन्तु दुर्भाग्य से इसके लेखक ने अपना नाम न देकर, और एक फ़र्ज़ी स्त्री के नाम से इसे छपवा कर चतुर्वेदी जी के व्यङ्ग का पात्र अपने को बना लिया है; क्योंकि चतुर्वेदी जी अपनी "चॉकलेट"-आलोचना के अन्त में व्यङ्ग के साथ लिखते हैं—"हमारा यह चैलेञ्ज "अबलाओं के इन्साफ़" की लेखिका श्रीमती स्फुरणा देवी (या श्रीमान् स्फुरण देव?) को भी है।" पर चतुर्वेदी जी को याद दिलाने की ज़रूरत नहीं है कि पहले कई वर्षों तक वे भी एक "भारतीय हृदय" इस फ़र्ज़ी नाम से लिखते रहे हैं। अङ्गरेज़ी का प्रकाण्ड लेखक ए० जी० गार्डनर "एल्फ़ा ऑफ़ दि प्लाउ" के नाम से लिखता है, और हिन्दी के आचार्य श्रीमान् पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी जी भी "ज्ञ" के नाम से सरस्वती में लिखा करते हैं। इसलिए "अबलाओं के इन्साफ़" का लेखक यदि किसी फ़र्ज़ी नाम से लिखता है तो वह व्यङ्ग का पात्र न होना चाहिए—सिर्फ़ देखना यह चाहिए कि जो बात लिखी गई है वह माक़ूल है या नहीं। यदि बात ठीक है तो चाहे उसे स्त्री लिखे या पुरुष, असली नाम से हो या फ़र्ज़ी नाम से, अङ्गरेज़ी में हो या फ़ारसी में, सीधी भाषा में हो या टेढ़ी, मुँदे शब्दों में हो या खुले—उसे स्वीकार कर लेना चाहिए और इसके लिए खिल्ली न उड़ानी चाहिए कि उसने अपना असली नाम नहीं दिया है।

अस्तु, अब थोड़े से अवतरण इस पुस्तक से देकर मैं यह साबित करना चाहता हूँ कि अश्लीलता फैलाना तो दूर रहा, यह पुस्तक सदाचार फैलाने और आम तौर पर हिन्दू-समाज तथा ख़ास तौर पर मारवाड़ी-समाज की कुरीतियों और व्यभिचारों के मिटाने में चिरायते काढ़े में मिली हुई रामबाण बूटी का काम करती है।

देखिए, हिन्दू-समाज में स्त्रियों की शोचनीय दशा का कैसा अच्छा चित्र लेखक ने खींचा है [पेज ८-९]:—

हिन्दू के घर जिस समय कन्या का जन्म होता है, उसी समय से उससे घृणा होना आरम्भ हो जाती है; यद्यपि उस बेचारी ने उस समय उस घर की कुछ भी हानि नहीं की; परन्तु घर के सब लोगों में शोक छा जाता है। घर वाले सब उस नवागत बालिका को गाली देते हैं—"राँड कहाँ से आ गई!" लोग उनके शोक की आश्वासना करते हैं—"इस बार पत्थर आ पड़ा तो क्या हुआ? अब की बार बधाई होगी। आँधी के बाद वर्षा आती है" इत्यादि। कहीं-कहीं तो उस नवजात बालिका के घात का भी उद्योग होता है *। यह तो अत्याचार का मङ्गलाचरण है। बालिका के पालन-पोषण के लिए इतनी बेपरवाही की जाती है कि शिष्ट लोग पशुओं के पालन में भी नहीं करते। अगर लड़का होता है, तो बड़ा आनन्द मनाया जाता है, और वह बहुत हिफ़ाज़त के साथ पाला-पोसा जाता है। बालिका जब बाल-रोगों से पीड़ित होती है, तब उसके इलाज की तरफ़ कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता; क्योंकि इच्छा तो यह रहती है कि किसी तरह यह मर जाय तो पीछा छूटे; परन्तु लड़के की बीमारी में घर वालों के होश उड़ जाते हैं। इलाज में बहुत धन ख़र्च किया जाता है। नींद उड़ जाती है और भूख बन्द हो जाती है। देवी-देवता और क़बरों-पीरों को मनाते नाकों दम आ जाता है। जिस घर में लड़के-लड़की साथ-साथ रहते हैं, वहाँ लड़के के

* इस सम्बन्ध की जानकारी करने के लिए पाठकों को **'चाँद' कार्यालय**, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित **शिशु-हत्या** अथवा **नरमेध-प्रथा** शीर्षक पुस्तक मँगा कर पढ़ना चाहिए। इस खोजपूर्ण पुस्तक के लेखक हैं श्री० शीतलासहाय जी, बी० ए० और मूल्य है चार आने।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

खान-पान की तो पूरी तरह तवज्जह होती है और उसकी रुचि के माफ़िक़ मिष्टान्न बनाए जाते हैं। अगर एक समय वह कुछ कम खाए, तो सब परेशान हो जाते हैं; परन्तु लड़की को रूखा-सूखा या लड़के का जूठा भोजन मिलता है। अगर वह एक-दो दिन कुछ न खाय, तो कोई पूछता नहीं। इन अत्याचारों को सह कर भी वह कभी किसी से नाराज़ नहीं होती; किन्तु माता-पिता, भाई आदि से बहुत प्यार करती है। "राँड" शब्द से इनका सम्मान होता है। मानो राँड होना कोई साधारण बात है।

और सुनिए :—

इस समाज के मनुष्य स्त्रियों पर केवल अत्याचार ही नहीं करते, किन्तु अपने स्वार्थ और इन्द्रिय-लोलुपता के लिए बेचारी अबलाओं से कुकर्म करवाते हैं; और उन सब अत्याचारों और कुकर्मों का दोष भी इन्हीं पर मढ़ते हैं। इनका धर्मशास्त्र कहता है कि ब्रह्मदेव की आधी देह से पुरुष और आधी देह से स्त्रियाँ उत्पन्न हुई हैं (मनु० अ० १ श्लोक ३२), जिससे प्रमाणित है कि सृष्टि के लिए ईश्वर को पुरुष और स्त्री दोनों का होना एक समान अभिप्रेत है; परन्तु इन धर्मात्माओं (?) के नज़दीक तो स्त्री-जाति की आवश्यकता एक साधारण पशु के बराबर भी नहीं होती। तभी तो कन्या का उत्पन्न होना इनको इतना शोक और दुखजनक प्रतीत होता है कि उसके जीवित रहने की अपेक्षा मर जाना ही अच्छा समझते हैं। मानो वे लोग न तो स्त्रियों से पैदा हुए और न उनको जीवन-काल में स्त्रियों की कोई आवश्यकता ही रहती है। अगर उनके वश की बात होती, तो शायद वे अपनी जाति में कन्या पैदा ही न होने देते; परन्तु परमात्मा को यह बात स्वीकार नहीं। अतएव वह उनको पुरुषों से कुछ अधिक संख्या में पैदा करता है। घर वालों का अनादर तथा अपमान सहना ही इनका बाल्यकाल का सुख है। माता-पिता तो घोड़े, बैल, भेड़, बकरी आदि के पालन-पोषण और रक्षा के लिए जितनी चिन्ता करते हैं, उतनी भी कन्याओं के लिए नहीं करते। 'राँड' कह कर पुकारना कन्याओं का सम्मान समझते हैं। मानो राँड होना कोई सुख का हेतु है। इनका धर्मशास्त्र बहुत आग्रह-पूर्वक आदेश देता है कि कन्या सदा-सर्वदा पूजने योग्य है। जिस कुल में वह दुखी होती है, उस कुल का नाश हो जाता है (मनु० अ० ३, श्लोक ५५ से ६०; अ० ९ श्लोक २६ से २८) परन्तु ऐसे धर्मशास्त्रों की भी इन्हें कुछ परवाह नहीं। ये स्त्री-जाति से घृणा करना और उस पर अत्याचार करने ही में अपनी उच्चता और गौरव समझते हैं।

भला जो जन्म से ही स्त्री-जाति से इतना द्वेष करते हैं, वे उनको बाल्यावस्था में सुशिक्षा एवं धर्मोपदेश देने का तथा युवा होने पर उनको सन्मार्ग पर चलाने, कुसङ्ग से बचाने और दुष्टों से रक्षा करने का कष्ट क्यों उठाने लगे? चाहे धर्मशास्त्र कितना ही चिल्लाता रहे कि स्त्रियों का सुशिक्षा देना, कसङ्ग से बचाना और दुष्टों से रक्षा करना प्रत्येक मनुष्य का परम कर्त्तव्य है; चाहे वे पिता के आश्रित हों या पति के अथवा पुत्र के—उन सब का कर्त्तव्य सदा उनकी रक्षा करना है। जो इन कर्त्तव्यों का पालन नहीं करता, वह धर्म से विमुख होता है; क्योंकि स्त्री स्वभाव ही से चञ्चल और निर्बल होने से स्वयं अपनी रक्षा करने में असमर्थ होती है। अतएव उनकी रक्षा करने का भार स्वयं उनके ऊपर ही न रखकर, पुरुषों पर रक्खा गया है; और जो पुरुष इनकी रक्षा न करे, उसको पापी होना भी ठहराया गया है (देखिए मनु० अ० ९, श्लोक २ से १६ तक)।

परन्तु इनको धर्मशास्त्र के वचनों तथा कर्त्तव्याकर्त्तव्य के विचार से क्या प्रयोजन? इन्हें तो अपने स्वार्थ साधने और अपनी मनमानी करके धर्मध्वजी बनने का मिथ्या अभिमान करने से मतलब है। जब तक इनके स्वार्थ और बड़प्पन

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में आघात नहीं पहुँचता, तब तक न तो इन्हें धर्म-शास्त्र याद आता है और न किसी के भले-बुरे का विचार ही इनके ध्यान में बैठता है। जब इनके स्वार्थ में ज़रा भी बाधा आने की सम्भावना का चिन्ह इनके चित्त में पैदा होता है, तो चट धर्म-शास्त्र की दुहाई देने को तैयार रहते हैं, और अपने किए हुए धर्म-विरुद्ध आचरणों का तथा कुकर्मों का फल भोगने को स्वयं तैयार न होकर, सब दोष बेचारी स्त्रियों के सिर मढ़ कर आप निर्दोष, पुण्यात्मा और धर्मध्वजी बने रहने का दावा करते हैं। [पृष्ठ २२६—२२६]

देखिए, नीचे के अवतरण में कलकत्ते में रहन-सहन का ढङ्ग कैसे सच्चे शब्दों में वर्णन किया गया है। जो कभी कलकत्ते के बड़ा बाज़ार में रहे हैं, उन्हें मालूम होगा कि मारवाड़ी लोग एक ही मकान में किस तरह अचार की तरह गँजे रहते हैं। एक ही मकान में एक-दो नहीं, कभी-कभी सौ-सौ कुटुम्ब तक रहते हैं, जिससे प्रायः बड़े-बड़े व्यभिचार हो जाते हैं। अगर एक-एक कुटुम्ब के पीछे कई कमरे हों तब भी ग़नीमत होती। सो भी नहीं; प्रायः देखा जाता है कि कितने ही लखपती या धनी क्यों न हों, पर मारवाड़ी एक ही दो कमरे में कुल कुटुम्ब सहित गुज़ारा कर लेंगे। एक ही कमरे में आप भी रहेंगे, उनकी स्त्री भी रहेगी और बाल-बच्चे भी रहेंगे। उतने ही कमरे में कचर-बचर बच्चे भी पैदा हो जाते हैं, बच्चे को नज़र लगने से बचाने के लिए मिर्चे की धूनी भी सुलगाई जाती है और क्या-क्या नहीं होता। उसी का चित्र नीचे लेखक (लेखिका ?) के ही शब्दों में दिया जाता है। इस बयान की कहने वाली राधा नाम की एक मारवाड़ी-स्त्री है, जो १० वर्ष की उम्र में ब्याही गई और १४-१५ वर्ष की उम्र में विधवा हो गई। इस तरह के उदाहरण सैकड़ों की तायदाद में पाए जाते हैं। यह तो केवल दिग्दर्शन के तौर पर लेखक ने दिया है। [पृष्ठ १५-२२]

राधा—महाराज, मेरे विवाह के तीन-चार महीने बाद मेरे माता-पिता मुझे तथा मेरे छोटे भाई-बहिन को लेकर देश से विदा होकर कलकत्ते चले गए। वहाँ बाँसतल्ला स्ट्रीट में—एक बाड़ी में कमरा किराए पर लेकर रहने लगे। हमारे यहाँ छोटू ब्राह्मण रसोइया रहता था, जिसकी आयु लगभग अट्ठारह साल की थी। वह छोटे से बड़ा हमारी नौकरी में ही हुआ था। उसके माता-पिता भी हमारे ही यहाँ नौकरी करते थे, अतः मेरी माता जी उसको अपने पुत्र की तरह समझती थीं। उसके साथ किसी बात का भेद-भाव न था। मैं उसको अपना बड़ा भाई समझती थी। उसके सिवाय एक ग्वाला (नौकर) चौका-बरतन आदि के लिए, कलकत्ते में ही रख लिया था। पिता जी दिन में अपने काम-काज के लिए दूकान चले जाते। दो बार भोजन करने आते; और रात को बारह बजे के लगभग सोने आते। कमरे में एक खट-छप्पर (लोहे की खाट) बिछा हुआ था, जो पिता जी तथा माता जी के सोने के लिए था। मैं अपने भाई-बहिनों के साथ नीचे ज़मीन पर सो जाती थी। कमरा बहुत तङ्ग था; अतः हम लोगों के बिछौने खट-छप्पर से सटे हुए ही होते थे। पिता जी सोने आते, उससे पहले हम भाई-बहिनों को नींद आ जाती और सवेरे उनके उठने के बाद हम लोग जगते। प्रायः डेढ़ साल तक कोई उल्लेख करने योग्य बात नहीं हुई।

* * *

अब रात को बारह बजे जब मेरे पिता जी सोने आते, तब मैं स्वतः ही नींद से जगने लगी, परन्तु जागती हुई भी बनावटी नींद का ढोंग करके पड़ी रहती, और अपने माता-पिता की बातें सुनती रहती। मेरे पिता की आदत थी कि पहले मेरी माँ से पूछ लेते कि बालक सब सोए हुए हैं न ? जब मेरी माँ उत्तर दे देती कि ये तो सब गहरी नींद में हैं, तब वे और बातें छेड़ते। भला उन्हें क्या मालूम था कि मैं नींद का बहाना कर अन्दर से जागती हूँ, परन्तु यह ढोंग बहुत दिन तक कैसे चल सकता था ? जागते आदमी से कुछ न कुछ ऐसी हलचल हो ही जाती है कि

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिससे दूसरों को मालूम हो जाय। और नहीं तो ख़ुर्राटे तो अवश्य बन्द हो जाते हैं। एक दिन मेरे पिता को शक हो गया कि मैं जागती हूँ। उन्होंने माँ से कहा—बाई जागती है। माँ ने कहा भला वह काहे को जागने लगी? वह तो सन्ध्या को सोती और सवेरा होने पर आँख खोलती है। यह दूसरों की तरह चालाक नहीं है। पिता जी ने कहा, पुकारो तो सही। माँ ने पुकारा—बाई, ये बाई, जागती है क्या? मैंने कुछ भी उत्तर न दिया। माँ ने कह दिया—यह बेचारी तो भर-नींद में है। तुम नाहक़ वहम करते हो। उस समय तो बात ख़तम हो गई; परन्तु खटका उनके दिल में पैदा हो गया। अतएव उनके चित्त में सदा सङ्कोच बना रहता था; और मैं भी इस तरह ढोंग बना कर माता-पिता के व्यवहारों को छिपे-छिपे देखना उचित नहीं समझती थी; परन्तु क्या किया जाय, दूसरी कोई जगह न थी, जहाँ मैं सोती; न कोई मेरे पास सोने वाली थी।

धर्मराज—क्या तुम्हारे पिता इस योग्य न थे कि दूसरा कमरा किराए पर ले लेते; और एक स्त्री तुम्हारे पास सोने को रख लेते?

राधा—थे क्यों नहीं; मेरे पिता धनाढ्य थे और अनेक कमरे तथा नौकर-नौकरानियाँ रख कर आराम से रह सकते थे; परन्तु इस समाज में कुछ ऐसी प्रथा सी पड़ गई है कि कष्ट सह कर भी एक ही कमरे में गुज़ारा करना। दूसरे शादी-ग़मी आदि के कामों में चाहे जितना ख़र्च कर दें और व्यापार-फाटके आदि में चाहे जितना नुक़सान दे दें; परन्तु अपने आराम के लिए और अपने बालकों की रक्षा के लिए धन ख़र्च करना वे लोग फ़ुज़ूल-ख़र्ची समझते हैं।

धर्मराज—धन्य है ऐसी समझ को।

राधा—उस बाड़ी की चार मञ्ज़िलें थीं। सब से ऊपर की छत के दो तरफ़ रसोइयों की क़तारें थीं। शेष खुली थी। इन रसोई-घरों में एक रसोई हम लोगों ने किराए पर ली थी। हमारा कमरा बाड़ी की दूसरी मञ्ज़िल में था। गर्मी के दिनों में कई लोग पहली रात में छत पर सोने चले जाते थे, और कोई-कोई तो रात भर छत पर ही सोते थे। मेरे कमरे के पड़ोस में एक वैश्य रहता था, जिसकी एक पन्द्रह वर्ष की विधवा बहिन थी। रात को वह वैश्य और उसकी स्त्री कमरे में सोते और वह विधवा बहिन 'गोमती' एक ब्राह्मणी के पास छत पर सोती थी। मैंने विचार किया कि मैं भी छत पर सोने लगूँ तो क्या हर्ज है; परन्तु मेरे पास सोने वाली कोई स्त्री नहीं है, इसलिए मेरे माता-पिता मुझे अकेली छत पर कैसे सोने देंगे। फिर मैंने विचार किया कि विधवा और ब्राह्मणी के पास मैं भी सोती रहूँगी; और छत पर और भी बहुत नर-नारी सोते हैं, सो कोई जोखिम तो है नहीं, परन्तु मेरे कहने से मेरे माता-पिता शायद न मानें, इसलिए उस विधवा और ब्राह्मणी से मैंने सहायता ली। वे तो चाहती ही थीं कि मेरी-जैसी कोई सङ्गिनी मिले। अस्तु—

ब्राह्मणी ने मेरी माँ से कहा—जवान बेटी को पास में सुलाकर तुम स्त्री-पुरुष को एक साथ सोने में शर्म नहीं आती!

माँ ने कहा—क्या करें, बाई को किसके भरोसे और कहाँ सुलावें?

ब्राह्मणी—गोमती मेरे पास सोती है, क्या उसे कोई खाता है? इसी तरह राधा भी मेरे पास सो सकती है। मैं अपनी बेटी की तरह उसकी हिफ़ाज़त रक्खूँगी।

माँ—गोमती तो होशियार है। यह बालक है। कहीं बेअदबी से सोवे तो अच्छा नहीं लगता।

ब्राह्मणी—यह बालक है तो क्या हुआ, मैं तो बालक नहीं। पचास वर्ष लिए हैं, क्या बेअदबी से सोएगी, तो मैं इसको ढाँकूँगी नहीं?

मेरी माता इस तरह का सुभीता तो चाहती ही थी, तिस पर उसने यह भी सोच लिया कि छोटू हमारी रसोई के आगे तो सोता ही है, वह

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भी मेरी तरफ़ का ध्यान रक्खेगा। माँ ने ब्राह्मणी से कहा—मैं उनसे (मेरे पिता से) पूछ कर कहूँगी।

मेरे पिता ऐसे सरल प्रकृति के पुरुष थे कि मेरी माता जो चाहती, उनसे करवा लेती। फिर इस बात की मञ्जूरी लेना कौन सी बड़ी बात थी। निदान उस रात से मेरा सोना गोमती और ब्राह्मणी के पास शुरू हो गया। गोमती और ब्राह्मणी ने मेरी हर तरह से ख़ातिर की और मुझे किसी बात की शिकायत न थी।

इसके बाद राधा किस तरह माता-पिता की बेपरवाही के कारण व्यभिचार के रास्ते में लगाई गई, यह पाठक "अबलाओं के इन्साफ़" में स्वयं पढ़ सकते हैं।

प्रायः मारवाड़ी-समाज में देखा जाता है कि जब बहू-बेटियाँ परदेश जाती हैं तो घर वाले उनके साथ नहीं जाते। क्योंकि व्यापार से उन्हें इतनी फ़ुरसत कहाँ कि स्त्रियों को लाने-ले जाने में स्वयं साथ रहें। इसी का चित्र नीचे के अवतरण में खींचा गया है। बयान करने वाली वही राधा है [पृष्ठ ३३—४०]

हमारे यहाँ यह रिवाज था कि जब तक माता-पिता और सास-ससुर जीवित रहें, तब तक शाम को ससुराल जाना और दिन में पीहर चले आना। मेरा विवाह देश ही में हुआ था; और विवाह के बाद मेरा पति काम सीखने के लिए बम्बई चला गया, जहाँ मेरे ससुर की दूकान थी; और मैं अपने माता-पिता के साथ कलकत्ते चली आई थी। जब माता ने पिता से मुझे ससुराल भेजने को कहा, तो उसका मतलब यही था कि वे मुझे लेकर देश जाते और मेरा पति बम्बई से वहाँ बुला लिया जाता। निदान, पिता जी ने मेरे पति को बम्बई से देश बुलाने के लिए मेरे ससुर को पत्र दिया, जो उन्होंने स्वीकार किया और पति यथासमय बम्बई से देश आ गया, परन्तु मुझे देश ले जाने के लिए मेरे पिता को कार्यवश अवकाश न मिला; यद्यपि मेरी माता ने बहुत ही कहा-सुनी की; माता भी उन्हें छोड़कर मेरे साथ देश आना नहीं चाहती थी, क्योंकि एक तो पिता के स्वास्थ्य के लिए खान-पान की सुव्यवस्था माता के बिना नहीं हो सकती थी, दूसरे देश में मेरी सौतेली दादी और दादा रहते थे, उनसे माँ की पटती न थी। उस समय सब कुटुम्ब शामिल ही था। अस्तु—

लाचार होकर उन्होंने केवल मुझे ही भेजना निश्चित किया; यद्यपि मैं इस बात से सख़्त नाराज़ थी। देश में मेरी नानी और मौसी मौजूद थीं, अतएव दिन में उनके पास रहने की व्यवस्था की गई। मुझे देश पहुँचाने के लिए छोटू को साथ भेजने का माता-पिता ने विचार किया। यह सुनकर मैं बहुत घबड़ाई और जाने ही से इन्कार कर दिया। माता के बहुत दबाने पर मैंने साफ़ कह दिया कि छोटू के साथ मैं न जाऊँगी; क्योंकि सफ़र के काम में वह होशियार नहीं है और न मुझे उस पर भरोसा ही है। जब माता ने यह बात पिता जी से कही, तो एक बार वे ख़ूब बिगड़े, परन्तु फिर उनके समझाने पर दूकान के एक तगादगीर रामलाल को साथ भेजना निश्चित किया। गुरुवार की दस बजे की गाड़ी से थर्ड क्लास का टिकिट लेकर हम लोग रवाना हुए। एक ब्राह्मण-युवती को उसके पति ने देश भेजने के लिए हमारे साथ कर दिया। अतएव हम दो स्त्रियाँ रामलाल के साथ रवाना हुईं। बोझ हमारे साथ टिकिटों से अधिक था; परन्तु रेलवे-बाबू को कुछ देकर बिना तौलाए ही रख दिया गया। मैंने अपना आसन प्लेटफ़ॉर्म की ओर खिड़की के पास जमाया; और जब स्टेशन पर गाड़ी खड़ी होती, तो मैं खिड़की के बाहर गर्दन निकाल कर तमाशा देखती और लोग मेरे रूप-रङ्ग, वेश और शृङ्गार को देखकर मेरी खिड़की के पास जमा होते और घूर-घूरकर मुझे देखने लगते। तीन-चार घण्टे चलने के बाद एक स्टेशन पर तीन मुसलमान हमारे कम्पार्टमेण्ट में आ बैठे; और हम लोगों को टकटकी लगाकर देखने

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लगे। हम दोनों बारीक मलमल की धोतियाँ पहने हुए और उसके ऊपर मलमल के महीन "अचरवा" ओढ़ रक्खे थे। रेशमी बारीक फुलवर गाछ की अँगिया पहने थीं तथा सोने और मोतियों के गहने पहने हुए थीं। मुसलमानों को आए एक घण्टा भी व्यतीत न हुआ था कि टिकिट जाँचने वाला हमारे कमरे में आया, और हमारा टिकिट देखने के बाद असबाब की तरफ़ देखा, तो उसे शक हुआ और हाथ के काँटे से उसे तौलने लगा। जब टिकिटों से सामान ज़्यादा हुआ, तो रामलाल से सब असबाब का किराया माँगा। रामलाल किराया देने में उससे हुज्जत करने लगा। जब गाड़ी स्टेशन पर ठहरी, तो टिकिट जाँचने वाले ने रामलाल को नीचे उतारा, जिससे वह बहुत घबराया और हम दोनों स्त्रियाँ डर के मारे काँपने लगीं। सिवाय रोने के और कर ही क्या सकती थीं? यह मामला देखकर मुसलमान भी हँसने और ख़ुश होने लगे। रामलाल निरा भोंदू था। सफ़र का काम उसको बहुत ही कम पड़ा था। बात करने की तमीज़ तक न थी, तो भला वह रेल के बाबुओं से क्या सवाल-जवाब कर सकता था? जब गाड़ी छूटने की घण्टी बजी, तो पाँच-सात रुपए बाबू को देकर पीछा छुड़ाया; और गाड़ी चलने के ऐन टाइम पर कमरे में आ गया। अतएव हम दोनों के दिल में शान्ति हुई। मुसलमानों को रामलाल के भोंदूपन की ख़ातिरी हो गई। अब वे हमारे साथ ख़ूब मसख़री-ठट्ठे करने लगे। इश्क़ की अश्लील ग़ज़लें गाने लगे; और हमको सब्ज़ परी और नील परी कहकर पुकारने लगे। उन उद्दण्ड लोगों के सामने बेचारे रामलाल को बोलने की हिम्मत कहाँ? हम तीनों चुपचाप मुँह फेरकर बैठ गए और उनको मनमाना बकने दिया। शाम हो गई। हमारी छाती धड़कने लगी कि न मालूम इन दुष्टों के साथ रात कैसे गुज़रेगी। शराब की बोतलें उनके पास थीं, जिन्हें वे पी रहे थे और अखाद्य चोज़ें खा रहे थे, जिससे हम दोनों का जा घबरा गया और क़ै होने लगी। यह देख, उनका मज़ाक़ और भी बढ़ने लगा। इस समय की हम लोगों की घबराहट का अनुभव हमीं को है या है उनको, जो हमारी जैसी स्थिति में पड़ी होंगी। वे दुष्ट हम दोनों से सटकर बैठने लगे, तब हम दोनों एक कोने में बैठां और रामलाल को अपनी दूसरी तरफ़ बैठाया। फिर वे लोग हमारे सामने वाली पटरी पर बैठ गए और छेड़-छाड़ करने लगे। उस समय हमारे धर्म और जीवन की रक्षा के लिए सिवाय उस ईश्वर के कोई दूसरा न था, जिसने द्रौपदी की इज़्ज़त दुष्ट दुःशासन के हाथ से बचाई थी। इसी तरह की आपत्तियाँ झेलने के कुछ काल पीछे गाड़ी स्टेशन पर ठहरी और एक भला आदमी स्त्री को साथ लिए हमारे कमरे में आ घुसा। हमने समझा कि इतने दुष्ट तो थे ही, यह एक और आ पड़ा; परन्तु हमारा भय ग़लत था, वह नवागत व्यक्ति बहुत ही भलेमानस कानपुर के रहने वाले थे। हमारी असहाय अवस्था पर उन्हें तरस आता था। उन्होंने हमसे पूछा—तुम लोगों का दुनिया में कोई वारिस भी है या अकेली ही हो? हमने इसका कुछ भी जवाब न दिया। तब उन्होंने पूछा कि तुम कहाँ से आती हो और कहाँ जाओगी? मैंने कहा—कलकत्ते से अपने देश को जा रही हूँ। उन्होंने पूछा—कलकत्ते में तुम्हारे कौन हैं? मैंने कहा—मेरे पिता हैं और मेरे साथ वाली का पति है। उसने कहा—क्या तुमको घर से निकाल दिया है? मैंने उत्तर दिया—नहीं, उन्होंने इस आदमी के साथ हमें देश भेजा है। उन सज्जन ने अफ़सोस ज़ाहिर करते हुए कहा—बलिहारी है तुम्हारे घर वालों की बुद्धि की, जिन्होंने तुम-जैसी सुकुमार युवतियों को ऐसे वस्त्राभूषण पहनाकर, इतने लम्बे सफ़र के लिए लावारिस माल की तरह, एक निरे भोंदू के साथ भेजते कुछ भी विचार नहीं किया। ऐसे

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लोग न मालूम किस तरह बड़े-बड़े काम-धन्धे करते हैं! जिनको अपनी बहू-बेटियों की इज़्ज़त और हिफ़ाज़त का ज़रा भी ख़्याल नहीं, वे लोग भी मनुष्यों की गिनती में आते हैं—यही अचरम्भा है। अगर संयोग से मैं इस कमरे में न आता, तो न मालुम रात को तुम लोगों की क्या दशा होती?

इसके बाद इन अबलाओं का क्या हाल हुआ, यह आप स्वयं "अबलाओं के इन्साफ़" में पढ़िए!

जिन लोगों को कभी दिल्ली से कलकत्ते तक सफ़र करने का मौक़ा पड़ा होगा, उन्होंने मारवाड़ी स्त्री-पुरुषों के, गाड़ी से उतर कर प्लेटफ़ॉर्म ही पर, नहाने का अश्लील और घृणोत्पादक दृश्य ज़रूर देखा होगा। उसी का सच्चा चित्र लेखक (लेखिका?) ने कैसी अच्छी तरह खींचा है। बयान करने वाली वही ऊपर कही गई राधा है [पृष्ठ ३८]

सवेरे जब गाड़ी 'मुग़लसराय' पहुँची तो हम लोग नहाने-धोने की फ़िक्र करने लगे; क्योंकि नहाए बिना हम जल भी नहीं पी सकती थीं। पानी-पाँड़े को बुला कर हम दोनों प्लेटफ़ॉर्म पर ही नहाईं। महीन कपड़े पानी से भीग जाने पर नहीं के बराबर हो जाते हैं; अतएव स्टेशन के लोग और ख़ासकर हमारे कमरे वाले मुसलमान, हमारे इर्द-गिर्द खड़े हो गए और हमको देख-देख कर हँसने और ठट्ठा करने लगे। अनेक तरह की निर्लज्जता की बातें हमें सुना-सुना कर बकने लगे; परन्तु हमने उनकी कुछ भी परवाह न की। प्लेटफ़ॉर्म पर ही धोती पहनी और भींगी धोतियों को निचोड़ कर कमरे में आ गईं। रामलाल नहाने के लिए नल पर गया हुआ था। वहाँ पर मुसाफ़िरों की इतनी भीड़ थी कि उसको नहाने का नम्बर ही न मिला; और बहुत देर तक वहाँ खड़ा रहा। गाड़ी चलने का टाइम हो गया, तब हम लोगों की उत्कण्ठा बढ़ी, पर हम कर ही क्या सकती थीं। नल पर जाकर उसको ले आने का हममें साहस न था। इञ्जन ने सीटी दी और गाड़ी चल पड़ी। रामलाल वहीं रह गया। हम लोग स्टेशन की तरफ़ झाँकती और हाथ मलती रह गईं।

हिन्दू-समाज में स्त्री कितनी ही छोटी उम्र में विधवा क्यों न हो गई हो, पर दूसरी शादी नहीं कर सकती। लेकिन पुरुष एक स्त्री के मरने के बाद दूसरी और दूसरी के मरने के बाद तीसरी-चौथी शादी तक कर सकता है—चाहे मौत के कगारे पर ही क्यों न खड़ा हो। इसी का चित्र नीचे के अवतरण में खींचा गया है। बयान करने वाली राधा की सौतेली माँ कृष्णा है [पृष्ठ ११५—११८]

मेरे पिता जी मेरी बाल्यावस्था में ही मर गए थे। मेरी माता जीवित थी; एक भाई था, जो आजीविका के निमित्त विदेश में रहता था, एक बहिन मुझसे बड़ी, सौभाग्यवती और सन्तान वाली थी। तेरह वर्ष की अवस्था में मेरी माँ और बहिन के उद्योग से मेरा विवाह राधा के पिता के साथ हो गया; और उसी समय से मेरा सांसारिक जीवन आरम्भ हुआ। विवाह के बाद दो-चार महीने तक तो मैंने पूर्णतया होश नहीं सँभाला; परन्तु फिर मैं दुनियादारी कुछ-कुछ समझने लगी। अपनी सौत की सन्तानों से मुझे बहुत घृणा रहती थी। उनको देख-देख कर मैं सदा जला करती थी। विशेषकर राधा से मुझे बड़ी नफ़रत थी; और घर पर उसका अधिकार होना मुझे सहन नहीं होता था। पति मुझे सदा इन बालकों से प्रेम रखने की शिक्षा देता था, जो मुझे बहुत बुरी मालूम होती थी। वस्त्राभूषणों के शृङ्गार से यद्यपि मैं बड़ी प्रसन्न होती थी; परन्तु पति के प्रेम का मेरे चित्त पर कुछ भी असर न पड़ता था। पीहर में, जब मैं अपनी सहेलियों में बैठती, तो उनके युवा पतियों के राग-रङ्ग की बातें सुन-सुनकर हैरान होती; क्योंकि मुझे अपने घर में उस राग-रङ्ग का अनुभव नहीं होता था। इसलिए मेरा दिल उनकी बातें सुन कर बराबर की अवस्था वाले पति-पत्नी के सहवास के आनन्द के लिए बहुत ही लालायित होता था। जब मैं

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपनी सहेलियों से सुनी हुई, उनके राग-रङ्ग की बातें अपने पति से कहती, तो वे उनको अनसुनी सी कर, अनेक प्रकार की घर-गृहस्थी की शिक्षाएँ देकर टालमटोल करते। ये बातें मुझे बहुत बुरी लगतीं। अन्त में मुझे निश्चय हो गया कि युवावस्था के आमोद-प्रमोद, हँसी-ख़ुशी और क्रीड़ा-कलोल की आशाएँ अपने पति से रखना व्यर्थ ही नहीं, किन्तु बहुत दुखदायक है; क्योंकि वे अपनी युवावस्था समाप्त कर चुके थे—शरीर सब शिथिल हो गया; और बीमार रहने के कारण मिज़ाज भी चिड़चिड़ा हो गया है। ऐसी अवस्था में अपनी युवावस्था के अनुकूल क्रीड़ाओं की बातें उनसे कहकर उन्हें नाहक़ तङ्ग करना है; और कलह के सिवाय उससे और कुछ न होगा। यह विचार कर मैं अपना मन मसोस कर रह गई। दिन के समय तो अपने घर तथा पीहर में ख़ूब शृङ्गार तथा सजावट से रहती; और सहेलियों के सामने अपने गहने, कपड़े तथा धन का ख़ूब अभिमान करती; (ग़रीब घर की लड़का जब धनवान् को ब्याही जाती है, तो उसके धन के अभिमान का ठिकाना नहीं रहता) परन्तु रात को जब पति के पास जाती, तब मैले-कुचैले कपड़े पहने हुए उससे पहले ही सो जाती। इस व्यवहार से पतिदेव मेरी निराशा का हाल समझ गए; और मुझे हर तरह से प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगे। जो बात उनके किए हो सकती थी, उसके करने में वे कुछ भी उठा न रखते थे। मेरे कहने से राधा का अधिकार छीन कर मुझे दे दिया गया; और वह अपनी ससुराल चली गई। घर पर मेरा साम्राज्य हो गया। इसके बदले में मैं भी पति से विशेष प्रेम दिखाने लगी; और जो कुछ वे कहते, मैं स्वीकार कर लेती। सौत के बालकों के साथ उनके सामने बनावटी प्रेम—उनके खाने-पीने की ऊपरी सहानुभूति—दिखाती रहती। यह सब कारस्वाई मैं अपनी माँ और बहिन की शिक्षानुसार करती। पतिदेव मेरे इस प्रकार के आचरण से बड़े प्रसन्न रहने लगे; और धीरे-धीरे उन पर मेरा पूरा क़ब्ज़ा हो गया; अर्थात् मैं जो नाच नचाती, वही वे नाचने लगते। घर में जो अच्छी से अच्छी खाने-पीने की सामग्री होती, वह मैं अपनी बहिन को भेजती। यदि सौत के बालक कोई चीज़ माँगते या खाने के लिए कहते, तो पति की अनुपस्थिति में मैं उनका मुँह झाड़ देती। मेरा भीतरी यही भाव रहता था कि ये बालक मेरे लिए जीते क्यों बच गए। मैंने अपनी तरफ़ से उनके साथ अत्याचार करने में कोई कसर नहीं रक्खी। थोड़े ही दिनों बाद सब से छोटे लड़के को छोटी माता निकली, जिसमें बदपरहेज़ी रहने से बीमारी बिगड़ गई; और वह चल बसा। उसके कुछ ही महीने बाद उससे बड़ी लड़की मियादी बुख़ार में समाप्त हो गई। राधा के ससुराल जाने के एक साल ही में दो तो समाप्त हो गए। शेष तीन में से एक विवाहित था। वह मेरे व्यवहार से दुखी होकर अपनी स्त्री-सहित कलकत्ते चला गया। अब एक लड़का ग्यारह वर्ष का और एक लड़की नौ वर्ष की अविवाहित अवस्था में मेरे पास रह गए। मैंने सोचा कि इनका विवाह कर छुट्टी कर देनी चाहिए। लड़की तो किसी दुजहे वर को दे दी जाय, ताकि विवाह होते ही अपने घर चली जाय। लड़के का विवाह होने के बाद उसकी बहू से मेरी न बनेगी, तब वह भी अलग कर दिया जायगा। निदान इन दोनों के सम्बन्ध करने की बातें चलने लगीं। लड़के के लिए एक ठिकाने की बात आई, जो हमसे बहुत अधिक हैसियत का था। लड़की मङ्गलीक थी। उसके योग्य मङ्गलीक वर नहीं मिलता था। हमारा लड़का मङ्गलीक था, इसलिए मेल बराबर खा गया। लड़की उम्र में पूरी अर्थात् बारह वर्ष की थी।

इसके बाद कृष्णा व्यभिचार में किस तरह अवतीर्ण हुई, यह "अबलाओं के इन्साफ़" में पढ़िए!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिन्दुओं के यहाँ कन्या-जन्म कैसे मातम के साथ और पुत्र-जन्म कैसी ख़ुशी के साथ मनाया जाता है और पुत्र-प्राप्ति के लिए कैसे-कैसे जादू, टोने, टनमन और व्यभिचार कराए जाते हैं, यह किसी से छिपा नहीं है। उसी का एक चित्र नीचे दिया जाता है। बयान करने वाली वही राधा की माँ कृष्णा है [पृष्ठ १३५—१३८]

एक ब्राह्मण की सिद्धाई बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। उसके चमत्कारों के गीत हर जगह ख़ूब गाए जाते थे। अनुष्ठान-प्रयोग कर पुत्रहीन को पुत्र, द्रव्यहीन को द्रव्य देता था, कुँवारों का विवाह करा देता था तथा रोगियों को निरोग बनाता और मुक़दमे वाले को मुक़दमा जिता देता था। मारण, मोहन, उच्चाटन और वशीकरण उसके बाएँ हाथ के खेल थे। मैं उस सिद्ध की तारीफ़ सुनकर शाम के वक़्त उसके घर गई। वह अपने नित्य-नियम में बैठा हुआ था। रक्तवर्ण के सब वस्त्र पहने था। देवी की पूजा-सामग्रियों से कमरा बड़े ठाठ से सजा हुआ था। पूजा के सैकड़ों छोटे-मोटे चाँदी के बरतन अनेक प्रकार की सामग्रियों से भरे थे। अष्टाङ्ग धूप की सुगन्ध से कमरा महक रहा था। कई दीपक जल रहे थे, जिनमें से अनेक अखण्ड ज्योति के बतलाए गए। वहाँ का ढङ्ग देखकर मेरे दिल में पूर्णतया श्रद्धा हो गई। जब सिद्ध जी से बातें हुईं, तब तो मुझे निश्चय हो गया कि देवी इसके साक्षात्कार है; यह जो चाहे सो करने की सामर्थ्य रखता है। अनेक बड़े-बड़े आदमियों के कार्य भी उसने सिद्ध किए हुए बतलाए। विशेष कर पुत्र देने के तो सैकड़ों चमत्कार दिखाए। मेरी पुत्रेच्छा वह पहले ही लोगों से सुन चुका था; और जो स्त्री-दलाल मुझे यहाँ लाई थी, उसने मेरा सब हाल कह दिया था; अतः वह मुझसे इस तरह बातें करने लगा कि मानो वह मेरे दिल का सब हाल जानता हो। सारांश यह कि उसने मुझ पर पूरा प्रभाव डाल दिया। मैंने उससे कहा—आप मेरे दिल का हाल तो सब जानते ही हैं, अब जैसे बने मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिए।

उसने कहा—यह कौन सी बड़ी बात है, जगदम्बा प्रार्थना सुनते ही उसे पूर्ण करेंगी। करने-कराने वाली तो सब योग-माया है, मेरा क्या अख़्तियार है।

मैंने कहा—योग-माया आपके घट में ही निवास करती है।

उसने कहा—तुम्हारी जन्म-पत्री में ग्रहों का ऐसा योग पड़ा है, जिससे पुत्र की बाधा है। उस योग का दोष मिटाने के लिए बड़ा अनुष्ठान करना होगा; और आधी रात के समय श्मशान में बलि-दान देना होगा, जो बड़ा भयानक और जोखिम का काम है। भगवती साक्षात् खप्पर लेकर सामने आ खड़ी होती हैं। यदि थोड़ी चूक हुई तो बलि देने वाले का ही बलिदान हो जाता है। देवताओं को छेड़ना कोई तमाशा नहीं है; परन्तु तुम्हारे वास्ते तो सब करना ही होगा।

मैंने कहा—महाराज, आपकी बड़ी दया होगी, मैं आपका एहसान जन्म भर न भूलूँगी।

उसने कहा—अच्छा, अनुष्ठान और बलि की सब सामग्री मैं पत्रे पर लिखकर इस स्त्री (दलाल) के हाथ भेज दूँगा। उसके अनुसार सब चीज़ भेज देना। मैं तो इस वक़्त तुमसे कुछ नहीं लूँगा; जब तुम पुत्र को गोद में खेलाओगी; तब प्रसन्न होकर जो बधाई दोगी, वह ले ली जायगी। यहाँ योग-माया की कृपा से किसी बात की कमी नहीं है। जो आवश्यकता होती है, वह स्वयं भेज देती हैं। (गद्दी को बताकर) इसके नीचे से रुपए निकलते ही चले जाते हैं। भैरव जी के स्थान पर रोज़ पचास ब्राह्मणों का भोजन नियम से होता है। हमारी कुछ दूकानें तो चलती ही नहीं, सब योग-माया ही भेजती हैं।

मैंने कहा—महाराज, अनुष्ठान और बलिदान की सामग्री मैं कहाँ एकत्र करती फिरूँगी, आप

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ही मँगा लें और जो ख़र्च लगे, मैं दे दूँगी। एक दिन के ब्राह्मण-भोजन का ख़र्च भी मैं दूँगी।

उसने कहा—इतने बड़े अनुष्ठान की केवल पचास ब्राह्मणों के भोजन से शान्ति नहीं हो सकती। कम से कम २०० ब्राह्मण जीमने चाहिए।

निदान अनुष्ठान, बलिदान और ब्राह्मण-भोजन के ख़र्च का तख़मीना १०००) रु० का हुआ। यह ख़र्च मैंने घर जाकर भेज दिया। सिद्ध जी ने कहा था—मैं अधिक भैरव जी के स्थान में ही रहता हूँ, जो शहर से एक मील दूर जङ्गल में झाड़ी के बीच में है। वह बहुत रमणीय स्थान है; और वहाँ एकान्त होने से मेरा जप-अनुष्ठान ठीक होता है। घर में तो मैं बहुत कम रहता हूँ। आज तुमको इत्तिफ़ाक़ से ही मिल गया। अगले रविवार को दोपहर के समय एक बजे तुम भी भैरव जी के स्थान पर आना। इतने में अनुष्ठान हो जायगा। उसका प्रसाद लेना, भैरव जी के दर्शन करना, फिर तुम्हारे सब मनोरथ योग-माया की कृपा से पूरे हो जायँगे।

सिद्ध जी की आज्ञानुसार रविवार को मैं इक्के पर सवार होकर भैरव जी के स्थान पर गई। वह स्थान बिलकुल एकान्त में था। उस समय वहाँ सिद्ध जी के सिवा और कोई न था। यदि सिद्ध जी वहाँ न होते, तो मुझे वहाँ जाते बहुत भय लगता, क्योंकि एक तो स्थान एकान्त का था, दूसरे भैरव जी की मूर्त्ति ऐसी विकट थी कि दर्शन करने से ही भय के कारण रोंगटे खड़े हो जाते थे।

इसके बाद का हाल "अबलाओं के इन्साफ़" में पढ़िए!

हिन्दू-समाज में बहुत सी जातियाँ ऐसी हैं, जिनमें लड़कियों की कमी के कारण बड़े-बड़े व्यभिचार होते हैं। ऐसी ही राजपूताना की एक ब्राह्मण-जाति का चित्र नीचे के अवतरण में दिया गया है। बयान करने वाली उसी जाति की भानमती नाम की एक स्त्री है। [पृष्ठ १४६]

मेरा नाम भानमती है। मेरा जन्म एक साधारण-स्थिति के ब्राह्मण के घर में हुआ था। हमारी जाति में लड़कियों की कमी के कारण लड़कों का विवाह होना बहुत कठिन होता है। इसलिए लड़के-लड़की का "सट्टा" हुआ करता है, अर्थात् अपनी लड़की किसी को देकर उसके बदले में अपने लड़के के लिए लड़की लाते हैं। जिनके घर में केवल लड़के उत्पन्न होते हैं—लड़कियाँ नहीं, उनके लड़के प्रायः कुँवारे ही रहते या किसी की सामर्थ्य हो, तो हज़ारों रुपए लड़की के लिए देने पर लड़के का विवाह नसीब होता है; और यदि किसी के लड़का न होकर लड़की ही होती है, तो वह रुपए लेकर मालामाल हो जाता है। अस्तु—

अपने माता-पिता के चार लड़कों के बाद मैं एक लड़की हुई थी। जिस समय मैं दो-तीन वर्ष की थी, उस समय मेरे बड़े भाई की अवस्था बारह वर्ष की हो गई थी। अतः उसका विवाह करने की मेरे माता-पिता को बहुत फ़िक्र हो गई। इसलिए उन्होंने मेरे साथ उसका सट्टा करने की कोशिश की। बहुत दौड़-धूप करने के बाद वह सट्टा पार पड़ा; अर्थात् मैं दस वर्ष के एक बालक को दी गई। उस बालक की आठ वर्ष की बहिन एक तीसरे सात वर्ष के लड़के को दिलाई गई, उस तीसरे लड़के की पाँच वर्ष की बहिन एक चौथे पैंतीस वर्ष के दुजहे वर को दिलाई गई, और उस चौथे की दो वर्ष की बेटी मेरे भाई को मिली!! वे चारों ही विवाह एक साथ हुए; क्योंकि एक-दूसरे का विश्वास किसी को नहीं होता था।

देवता लोग—राम! राम!! कैसा घोर अन्याय है! विवाह क्या है, मानो कोई कठपुतलियों का खिलवाड़ है। ऊँट-छछूँदर का मेल, भैंस-चूहे का मेल!

भानमती—मेरा विवाह कब और कैसे हुआ, मुझे पता नहीं, परन्तु जब मैं बड़ी हुई, तो सुना

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कि मेरा विवाह तीन वर्ष की अवस्था में मेरी माता की गोद में ही हुआ था; और विवाह के दस दिन बाद ही मेरा पति शीतला की बीमारी से मर गया। मेरे माता-पिता उस समय रोए-पीटे होंगे; पर मुझे कुछ मालूम नहीं।

उत्तरी भारत में और विशेषकर राजपूताना में होली का त्योहार कैसे वीभत्स ढङ्ग से मनाया जाता है और उसके द्वारा अश्लीलता का कैसा प्रचार होता है, यह सब जानते हैं। उसी का चित्र नीचे उद्धृत किया जाता है। बयान करने वाली वही ऊपर कही गई भानमती है। [पृष्ठ १५१—१५३]

इस घटना के थोड़े दिनों बाद ही होली का त्योहार आ गया। फाल्गुन शुक्ला अष्टमी से ही इस समाज में खुले-आम अश्लीलता ही अश्लीलता हो जाती है। छोटे-छोटे बालक भी गलियों में अश्लील गालियाँ बकते और अश्लील तथा वीभत्स गायन गाते फिरते हैं, जिसके सुनने से लज्जा को भी लज्जा आती है, पर उनके माता-पिताओं को नहीं आती। छोटे बालक उन अश्लील गालियों और गायनों का मर्म तो समझते नहीं, अपने घर में माता तथा बहिनों के सामने भी उसी तरह बकते और गाते हैं, जिनको सुन-सुनकर सब हँस देती हैं। मुहल्ले-मुहल्ले में व्यभिचार-पूर्ण तमाशे आरम्भ हो जाते हैं। साधु-फ़क़ीरों का अपनी चेलियों के साथ व्यभिचार; गुरु, पुरोहितों और ज्योतिषियों का अपनी यजमानिनियों के साथ व्यभिचार; मुसलमानों का हिन्दू-स्त्रियों से तथा हिन्दुओं का मुसलमान-स्त्रियों से कुत्सित प्रेम, अनजान विदेशियों से पनघट से पानी भरते समय कुल-ललनाओं का प्रेम; देवर-भौजाई, जेठ-भौजाई, चाची-जेठवता, मामी-नानदा, साली-बहनोई का, सौतेली माँ से बेटे का प्रेम, इस तरह के व्यभिचारपूर्ण दृश्य इन तमाशों में अश्लील गायन, अश्लील हाव-भाव और अश्लील बोल-चाल द्वारा दिखाए जाते हैं। तमाशा जितना ही अधिक अश्लीलतापूर्ण शब्दों में किया जाता है, उतनी ही अधिक उसकी तारीफ़ होती है। अश्लीलता में कसर केवल इतनी ही रहती है कि इनमें स्त्री का स्वाँग भी पुरुष ही करते हैं। इसलिए स्त्री-पुरुष का साक्षात् समागम नहीं हो सकता! इसके अतिरिक्त किसी बात की कसर नहीं रहती। इन तमाशों को देखने के लिए पुरुष-स्त्री, छोटी-बड़ी, विधवा-सधवा सब एकत्र होती हैं। ऐसे अवसरों पर किसी भी पुरुष या स्त्री का मन अपने क़ाबू में नहीं रह सकता। जिनके पति हों, उनकी भी प्रवृत्ति इन महान् अनर्थकारी अभिनयों को देखकर व्यभिचार की ओर हो जाती है; फिर जिनके पति न हों, उनका तो कहना ही क्या? इन तमाशों के अवसरों पर अनेक विधवाएँ बिगड़ती हैं। मैं भी सब की तरह सदा तमाशे देखने जाती। अब की होली में इन तमाशों का असर मेरे चित्त पर इतना पड़ा कि काम-वासना एकदम उद्दीप्त हो गई। रही-सही कसर होलिका-दहन के समय तथा उसके दूसरे दिन हमारे ही कुटुम्ब के छोटे-बड़े, पिता, भाई, भतीजों के हमारे सामने किए हुए अश्लील नृत्य, अश्लील बकवाद तथा भ्रष्ट गायनों ने पूरी करा दी।

क्षमा—क्या तुम्हारे पिता, भाई, भतीजे तुम्हारे सामने ही यह महान् पैशाचिक काण्ड करते थे?

भानमती—हमारे मुहल्ले की बहुएँ एकत्र होकर चबूतरों पर बैठ जातीं; और हम बेटियाँ जो अपनी ससुराल नहीं जाती थीं, उनके पीछे छिपकर मुँह ढाँप कर बैठ जातीं। पुरुष उन बहुओं के नाम ले-लेकर अश्लील गालियाँ बकते, उनको लक्ष्य कर अश्लील हाव-भाव करते। उनके सामने स्त्री-पुरुष के सहवास के समय के नङ्गे चित्र और नङ्गे खिलौने रख कर उनको दिखाते और कोई-कोई तो उनके सामने नङ्गे होकर नृत्य करते। ये सब दुष्कृतियाँ पीछे बैठी हुई हम भी देखतीं। यह बात उन लोगों से छिपी नहीं रहती

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

थी। जिनके पति जीवित होते हैं, वे अपनी-अपनी ससुराल में रहती हैं, वहाँ भी यही दृश्य होते हैं!

धर्मराज—इन लोगों के व्यवहार से तो पिशाच-राक्षस भी शरमाते हैं।

भानमती—इस होली के दृश्य देखने के बाद मेरा मन क़ाबू में न रहा—और किसी न किसी पुरुष से शीघ्र मिलने का मैंने निश्चय कर लिया। मैं यौवन में दीवानी-सी रहने लगी।

हिन्दू-समाज और हिन्दू-धर्म में पुरुष और स्त्री के बीच कैसा अन्यायपूर्ण भेद-भाव बर्ता जाता है, यह नीचे लिखे हुए बयान से सिद्ध होता है। बयान करने वाली सुशीला नाम की ब्राह्मणी विधवा है [पृष्ठ १८०—१८२]

सुशीला—मैं ईश्वर को नहीं मानती थी। मेरा यह विचार था कि यदि ईश्वर कहीं होता, तो संसार में इतने ज़ुल्म, इतने पक्षपात क्यों होते? लोग ईश्वर को सर्व-व्यापक, जगत्पिता, न्यायकारी आदि विशेषण देते हैं, परन्तु यदि वह सर्वव्यापक होता, तो उसके रहते लोग छुप-कर घोरातिघोर दुराचार करते? और स्थानों की बात जाने दीजिए, ख़ास उसी के मन्दिरों में, उसी के तीर्थों में, जहाँ वह मूर्त्तिमान् माना जाता है, उसी के ठेकेदार महन्त, आचार्य, पुजारी, पण्डित और कथक्कड़ लोग ऐसे-ऐसे पाप-कर्म करते हैं, जिनको सुनकर ही साधारण लोग भय से काँप उठते हैं। इससे सिद्ध होता है कि उसके ठेकेदार स्वयं ही उसको नहीं मानते; किन्तु निर्बल आत्मा के लोगों को उसके नाम से डरा-धमका कर अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए उन्होंने उसके अस्तित्व की कल्पना कर ली है। यदि वह ईश्वर जगत् का पिता होता, तो पिता अपनी सन्तानों में इतनी विषमता कदापि न रखता कि एक तो संसार के सब पदार्थों का भोग करता हुआ अधा जाय और दूसरा जड़-पाषाण से भी गया-गुज़रा जन्म बिताने को मजबूर किया जाय। पुरुष और स्त्री में इतना भेद रहे कि एक के जन्म में आनन्द-मङ्गल मनाया जाय और दूसरे के जन्म में रोया जाय। एक भोक्ता और दूसरी भोग्य-पदार्थ मानी जाय। पुरुष हज़ार स्त्रियाँ भोगने को स्वतन्त्र हों और स्त्री को एक पुरुष की प्राप्ति का सौभाग्य भी न मिले। स्त्री के मरने पर पुरुष चिता की बाट देखता हुआ भी एक नवीन कन्या का जीवन नष्ट करे; और विधवा होने पर एक छः वर्षीया बालिका को भी आजीवन सतीत्व-रक्षा करते हुए जीवन बिताने पर मजबूर किया जाय। कहाँ है उसका जगत्पितापन? यदि उसका वास्तविक अस्तित्व है, और वह किसी का पिता है, तो केवल पुरुषों का पिता है, जगत् का नहीं। यदि ईश्वर न्यायकारी होता, तो क्या उसकी महान् अत्याचारी नर-पिशाच सन्तान इस तरह के अनर्थ करती हुई भी धन-धान्य और कीर्त्ति से परिपूर्ण रह सकती? अस्तु, भगवन्! ईश्वर के अस्तित्व का ढोंग पुरुषों ने केवल अपने स्वार्थ के लिए रच लिया है—ऐसी मेरी धारणा थी।

जाति-धर्म—क्या तुम पाप-पुण्य को भी नहीं मानतीं?

सुशीला—नहीं प्रभो! मैं नहीं मानती। यह पाप-पुण्य का ढोंग भी इन पुरुषों ने ही अपने स्वार्थ के लिए रच लिया है। धर्मशास्त्र पुराणादि सब पुरुषों के ही बनाए हुए हैं, अतः उन्होंने अपनी अनुकूलता वाले व्यापार को पुण्य और अपनी प्रतिकूलता के व्यवहारों को पाप मान लिया। तिस पर भी सन्तोष नहीं हुआ, तो अपने लिए हर बात में स्वतन्त्रता रख ली और स्त्रियों को परतन्त्र बना दिया। पुरुष चाहे जितना व्यभिचार करे, वह पापी नहीं माना जाता; परन्तु स्त्री यदि किसी पुरुष के साथ एकान्त में निर्दोष वार्त्तालाप भी कर ले, तो उस पर अनेक तरह के इलज़ाम लगाकर पापिनी, अभागिनी कहकर उसका मुँह काला किया जाता है।

राजपूताना के भिन्न-भिन्न स्थानों में अक्सर कुछ

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मेले लगते हैं जिनमें स्त्रियाँ भी भाग लेती हैं। मेले क्या हैं, अश्लीलता के घर हैं। ऐसे ही एक मेले का चित्र नीचे खींचा गया है। बयान करने वाली गङ्गा नाम की एक ब्राह्मणी विधवा है [पृष्ठ १९९]

कुछ दिनों बाद शहर से कुछ दूर एक मेला लगा। यह मेला प्रति वर्ष लगता है, और लोग सवारियों पर बैठ-बैठकर जाया करते हैं। हमने भी एक बैलगाड़ी किराए पर की। मेरी बहिन, भावज तथा दूसरी मेल-जोल की एक-दो स्त्रियों के साथ मैं मेले में गई। गाड़ी पर छतरी लगती है; परन्तु उसके आगे का भाग खुला रहता है; और उस खुले भाग में जो सबसे अधिक ख़ूब-सूरत तथा कम उमर की स्त्री होती है, वही बैठाई जाती है; ताकि मेले में आने वाले रसिक लोग सब उस गाड़ी पर ही टूट पड़ें। उस समय अपनी सहेलियों में सबसे अधिक रूपवती नवोढ़ा मैं ही थी, अतः सज-धज कर मैं ही अग्र भाग में बैठी।

कुल-धर्म—तुम तो विधवा थीं। ऐसे मेलों में सजावट के साथ क्यों गईं?

गङ्गा—महाराज, उस समाज में विधवाओं के लिए मेलों में जाने की कोई रुकावट नहीं है। वे सुहागिनों के समान वस्त्राभूषण भी पहन सकती हैं। केवल शीशफूल, विशेष प्रकार के एक-दो गहने तथा गोटे-किनारी के वस्त्रों के सिवाय दूसरे बढ़िया से बढ़िया शृङ्गार कर सकती हैं।

क्षमा—और फिर उनसे आजन्म ब्रह्मचारिणी रहने की आशा की जाती है?

गङ्गा—मेले में छैले पुरुष झुण्ड बाँधकर गाड़ियों के पास आकर खड़े हो जाते हैं। गाड़ी में बैठी हुई स्त्रियाँ उनके नाम ले-लेकर अश्लील से अश्लील गालियाँ गाती हैं, जिनके पुरस्कार-स्वरूप वे उनके मर्मस्थानों पर तक-तक कर नींबू, अनार, नासपाती, खटाई की पुड़िया तथा पान आदि फेंकते हैं। केवल इतना ही नहीं, वे उनके मर्मस्थानों पर हाथाबाँही करते और चुटकी काटते हैं। इससे स्त्रियाँ ख़ूब प्रसन्न होती हैं; और अश्लील गाने गाती हैं। जिस गाड़ी के आगे बैठने वाली, जितनी अधिक सुन्दरी होती है, उतनी ही उस गाड़ी के पास अधिक भीड़ होती है। पुरुषों के आघातों की वर्षा अधिकतर आगे बैठने वाली पर ही होती है। मेरे प्रताप से मेले भर में सबसे प्रथम नम्बर मेरी गाड़ी का रहा; अर्थात् सबसे अधिक भीड़ हमारी गाड़ी के पास ही जुटी रही; और आमदनी भी सबसे अधिक हुई। मेरे शरीर पर चारों ओर से इतने आघात होते थे कि एक क्षण भर भी अवकाश नहीं मिलता था। इस पर भी जितनी व्यथा मुझे होनी चाहिए थी, उतनी यौवन के जोश में नहीं हुई; यद्यपि मेरे अङ्ग ताड़ना से लाल अवश्य हो गए थे! पीड़ा होने पर भी वे आघात मुझे नागवार नहीं गुज़रते थे। गाड़ी के पास आने वाले ग्राहकों में मेरी बहिन के दोस्त का भतीजा मुझ पर मुख्य रूप से आशिक़ था, जिसके सन्देशे बुढ़िया कुटनी के द्वारा मेरे पास आ चुके थे। गाड़ी के पास जब यह धूम मची हुई थी, उसके नौकर ने मेरी बहिन के साथ अलग होकर मेरे लिए बातचीत कर सौदा तय कर लिया। उससे मेरे मिलने के लिए ३००) रुपए ठहरे; और उसी रात को बहिन के साथ मैं उससे मिलने गई।

एक देवता—क्या यह किसी वेश्या का बयान हो रहा है?

क्षमा—भगवन्, मालूम होता है, आपका ध्यान कहीं दूसरी ओर चला गया है। यह बयान एक बहुत उच्च कुल में उत्पन्न हुई ब्राह्मणी का है, जिसका समाज अपने कृत्यों से वेश्याओं को भी मात करता है, जिसके चरित्र सुन-सुनकर लज्जा को भी लज्जा आती है। जिस समाज की यह घोर पापमयी परिस्थिति है, जिस समाज की युवतियों को यह शिक्षा मिलती है, वह अपनी स्त्रियों को सदाचारिणी और विधवाओं को

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आजन्म ब्रह्मचारिणी तथा सच्चरित्र रखने की डींग हाँकता है !

वर्त्तमान हिन्दू-गृहस्थाश्रम का जीवन कैसा दुखमय और पापमय है, इसका कैसा अच्छा चित्र लेखक ने नीचे खींचा है [पृष्ठ ३०१]

क्या वर्त्तमान समय में इस समाज का गृहस्थाश्रम वास्तव में सुख-शान्तिमय और सुधरा हुआ है ? युवावस्था-सम्पन्न, वैधव्य दुख से कातर बहू-बेटियाँ जिस घर में दिन-रात रोती-बिलखती आयु का एक-एक दिन युग के समान व्यतीत करें, क्या वह सुख-शान्तिमय गृहस्थ की गणना में आने योग्य कहा जा सकता है ? जिस घर में दुश्चरित्र स्त्री-पुरुष बालक-बालिकाओं को भ्रष्ट करते रहें, क्या वह सद्गृहस्थ कहला सकता है ? जिस घर में विधवा बहिनें, बहुएँ और भावजों के साथ निष्ठुर व्यवहार होता है और उनके खाने-पीने के प्रबन्ध के लिए अदालतों में मुक़दमे लड़े जाते हैं, क्या वह सच्चा सद्गृहस्थ होने का दावा रख सकता है ? जो घर विधवा स्त्रियों के कारण कलह का क्षेत्र बना रहता है तथा जिस घर को स्त्रियों का तिरस्कार होने के कारण देवता भी छोड़ देते हैं, क्या वह घर उच्च वर्ण के हिन्दुओं का सद्गृहस्थ समझा जा सकता है ? कहने का प्रयोजन यह है कि स्त्रियों पर इस तरह के अत्याचार होने के कारण वर्त्तमान समय में इनके गृहस्थाश्रम की वास्तविक व्यवस्था बिगड़ कर घोर दुखमय हो रही है। ×××गृहस्थी में आधा हिस्सा पुरुष का और आधा स्त्री का होता है। जिस समाज में दोनों भाग बलवान् होते हैं और एक दूसरे के प्रति अपना कर्त्तव्य उचित रूप से पालन करते हैं, वही दुनिया में ठहर सकता है, परन्तु जिस समाज का आधा अङ्ग अत्याचार सहते-सहते निकम्मा हो जाय, वह लम्बी मुद्दत तक जीवित नहीं रह सकता।

हिन्दू-समाज में लड़के-लड़कियों का विवाह गुड़िया का खेल समझा जाता है। लड़कियों के विवाह की कोई उमर निश्चित नहीं है। वह किसी भी उमर में विवाह की वेदी पर बलिदान कर दी जाती हैं। इसी पर "इन्साफ़" के लेखक (लेखिका ?) के विचार पढ़िए, जो नीचे दिए जाते हैं [पृष्ठ २३४—२३८]

×××कन्याओं की सगाई करने के लिए उमर नियत नहीं है। जन्म से लेकर विवाह से पहले तक वह चाहे जब कर दी जाती है ! वर की आयु का कोई बन्धन नहीं—कन्या से छोटा हो, समान हो, उससे बड़ा या उसके पितामह की अवस्था का भी क्यों न हो, केवल होना चाहिए धनवान् और अपनी बराबरी का जातिवान्। वर के गुणों की तरफ़ ध्यान देने की कोई आवश्यकता नहीं। जब दस-ग्यारह वर्ष की अवस्था से पूर्व ही विवाह कर दिया जाता है, तो उस बालक के गुण-अवगुण का पता ही कैसे चल सकता है ? रहे-सहे स्वास्थ्य की जाँच करने की भी ज़रूरत नहीं रहती ; क्योंकि बालक-वर के स्वास्थ्य की तो जाँच ही क्या हो सकती है ? और वृद्ध-वर का स्वास्थ्य अधिकतर बीता हुआ होता ही है। वर के माता-पिता और कुटुम्ब के आचरण का भी कुछ विचार नहीं किया जाता और न यह देखा जाता है कि इनके घर में स्त्री-पुरुषों का परस्पर कैसा व्यवहार है। मैं ऊपर कह चुकी हूँ कि यदि विचार किया जाता है, तो सिर्फ़ धन और जाति की बराबरी का। जब ये दोनों गुण मिलें, तो फिर तीसरी किसी बात के देखने की ज़रूरत नहीं। चट सगाई कर ली जाती है, और सगाई करने का काम प्रायः स्त्रियों के अधिकार में देकर पुरुष निश्चिन्त हो जाते हैं। इन स्त्रियों के पास धूर्त बातें बनाकर कन्याओं की मँगनी करते हैं, और वे उनकी बातों में आकर बिना सोचे-विचारे दे डालती हैं। सगाई पक्की हो जाती है। नतीजा यह होता है कि ऊँट का बिल्ली के साथ और चूहे का भैंस के साथ विवाह होने के उदाहरण इस समाज में घटित होते हैं। सगाई हो जाने के बाद वह ऐसी पक्की हो जाती है

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कि फिर कभी छूट नहीं सकती, चाहे वर में कोई अवगुण ही प्रतीत हो—बेजोड़ हो अथवा सम्बन्धियों का दुराचार ज़ाहिर हो जाय। अगर किसी अवगुण के कारण कोई सगाई छोड़ दे, तो जाति के लोग सिर पर चढ़ आते हैं। सगाई क्या हुई, मानो विवाह ही हो गया।

धर्मशास्त्र और वैद्यक सिद्धान्तानुसार अठारह वर्ष से प्रथम विवाह होना सर्वथा वर्जित है; परन्तु शास्त्रों को या कन्या के भावी सुख-दुख को कौन देखता है? यहाँ तो मतलब अपने स्वार्थ से है। सम्बन्धी प्रतिष्ठित हुआ, तो अपनी प्रतिष्ठा बढ़ती है; और धनवान् होता है, तो उससे येन-केन-प्रकारेण सहारा या आपत्ति-काल में सहायता की आशा रक्खी जाती है। यदि और कोई आशा न भी रक्खी जावे, तो इतना भाव तो अवश्य होता है कि धनवान् के घर कन्या देने से उसका बोझ हम पर कुछ न रहेगा। धर्मशास्त्रानुसार कन्या-दान वर के प्रति होना चाहिए; परन्तु इनके यहाँ कन्या-दान समधी को दिया जाता है; क्योंकि वर तो अबोध रहता है; और वर को देने से इनकी स्वार्थ-सिद्धि भी नहीं होती। यदि धनवान् तथा प्रतिष्ठावान् के कुँवारे लड़के का संयोग न बैठा, तो फिर दूजवर अर्थात् जिसकी प्रथम स्त्री मर गई हो, उसकी तलाश की जाती है; और चालीस-पचास वर्ष तक के धनी एवं प्रतिष्ठित रँडुओं को दस-ग्यारह वर्ष की कन्या दे डालने में इनको कुछ भी सङ्कोच, दया, लज्जा एवं भय प्रतीत नहीं होता! कन्या देते समय ये लोग इस बात का कुछ भी विचार नहीं करते कि हिन्दू-जाति की स्त्री के लिए इस लोक और परलोक का वास्तविक सुख सिर्फ़ पति पर ही निर्भर है। यदि पति सुयोग्य, सदाचारी और निरोग हुआ, तो उन्हें अन्य सुखों की परवाह कम रहती है; परन्तु यदि पति का सुख समुचित रूप से न हो, तो त्रैलोक्य के राज्य की सुख-समृद्धि भी उन्हें ज़रा भी आनन्ददायक नहीं होती। इतना होने पर भी कन्या देने में ये लोग भेड़-बकरियों को बेचने के समय जितना विचार करते हैं, उतना भी नहीं करते। फिर वे अभागिनें यदि दुख पाकर कुमार्गगामिनी हों, तो उनका सब अपराध भी उन्हीं के सिर मढ़ने को तैयार रहते हैं।

किसी स्वार्थ-पूर्त्ति के लिए कन्या देना शास्त्रों ने राक्षसी विवाह माना है; परन्तु इस समाज में कोई धन लेकर, कोई पीछे से अर्थ-प्राप्ति के भाव से, कोई अपने पुत्र के सट्टे में और कोई अन्य प्रयोजन की सिद्धि के लिए अपनी कन्या देकर उसका सर्वनाश करते हैं। इस तरह के आसुरी कार्य करते हुए भी ये लोग अपने को असुर नहीं मानते; बल्कि परम धार्मिक होने का घमण्ड करते हैं।

इस तरह के हज़ारों अत्याचार बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह से उत्पन्न होने वाले विविध प्रकार से नित्य प्रति होते रहते हैं; जिनका अगर पूरा वर्णन किया जाय, तो आप लोगों के वर्षों तक सुनते रहने पर भी उसका अन्त न हो। इन अत्याचारों को स्त्री-जाति बिना किसी पेतराज़ के सहन करती चली जा रही है; परन्तु पुरुषों को कुछ भी तरस नहीं आता, यद्यपि वे इन अत्याचारों का हाल अच्छी तरह जानते हैं; क्योंकि ये अत्याचार उन्हीं के किए हुए होते हैं।

भगवन्! कितने घोर अन्याय की बात है कि पुरुष तो संसार का सब सुख भोग कर लड़के-लड़कियों के पिता, पितामह होकर भी पिछली अवस्था में एक दस-ग्यारह वर्ष की अबोध बालिका का जन्म बिगाड़ने के लिए एक, दो, चार, दस—चाहे जितने पुनर्विवाह कर लें; किन्तु पुरुषों की कर्त्तव्यहीनता, स्वार्थलोलुपता एवं दुष्टता के परिणाम से ज़बरदस्ती विधवा की गई आठ, दस, बारह, पन्द्रह वर्ष की अबोध एवं निर्दोष बालिकाएँ, जिनको यह भी पता नहीं कि संसार का सुख और पति का प्रेम किस चिड़िया का नाम है, जन्म-भर के लिए संसार

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के सब सुखों को त्याग कर बाल-ब्रह्मचारिणी, तपस्विनी या योगिनी बने रहने के लिए बाध्य की जाती हैं !!

विधवाओं के ऊपर अत्याचार करने का तो हिन्दू-समाज ने ठेका ही सा ले रक्खा है। विधवाओं की करुण-कहानी "इन्साफ़" के लेखक (लेखिका ?) के शब्दों ही में सुनिए, जो नीचे उद्धृत की जाती है [पृष्ट २३६—२५०]

बालिकाएँ चाहे जिस उमर में विधवा हो जायँ, इनका रूप-यौवन उसी तरह खिलता है, जिस तरह सधवाओं का; बल्कि विधवाओं का रूप-यौवन सधवाओं से अधिक प्रभावशाली और स्थायी होता है। अनेक प्रकार के सांसारिक विषय-भोगों की वासना क़ुदरती तौर से इन्हें भी सधवाओं की तरह या उनसे भी अधिक उत्पन्न होती है। सधवाओं को तो सब प्रकार के भोग प्राप्त हो जाने से शान्ति मिल जाती है, परन्तु विधवाओं की वासनाएँ कभी तृप्त न होने से बढ़ती ही रहती हैं। विधवाओं के अङ्ग भी सधवाओं की तरह ही बढ़ते हैं—किसी प्रकार की न्यूनाधिकता नहीं होती। इन बातों से सिद्ध होता है कि प्रकृति के सम्मुख विधवा और सधवा में कुछ भी फ़र्क़ नहीं होता। प्रकृति के विपरीत चलने से संसार में कोई भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता; और न प्रकृति के विरुद्ध बँधी हुई कोई सामाजिक मर्यादा ही धर्म-सङ्गत हो सकती है। श्रुति, स्मृति, वेद, पुराण, इतिहास आदि पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि ब्रह्मज्ञानियों के सिवाय प्रकृति को उल्लङ्घन करने की सामर्थ्य न तो आज तक किसी में हुई है और न भविष्य में होगी। अनेक बड़े-बड़े देवता, ऋषि, महर्षि और राजर्षि भी इस प्रकृति के चक्कर में आकर अपने कर्त्तव्य-पथ से विचलित हो गए, जिनकी सैकड़ों कथाएँ शास्त्रों में मौजूद हैं; और ईश्वर स्वयं कहते हैं—"मम माया दुरत्यया !" तब इन साधारण, अबोध, अशिक्षित और मूढ़ जीवों को प्रकृति के नियमों के उल्लङ्घन करने को बाधित किया जाता है, इससे अधिक अन्याय और मूर्खता किसी के विचार में भी नहीं आ सकती। × × × अगर ईश्वर की यह मर्ज़ी होती कि विधवा होने से संसार के विषयों से रहित हो जाय, तो वह विधवाओं के रूप बिगाड़ देता, यौवन छीन लेता, विषय-वासना हर लेता तथा विषय-भोग के सब सामान नष्ट कर देता; और पुरुषों की प्रवृत्ति उनसे हटा लेता, जैसे कि बिना ऋतु के पशुओं की प्रवृत्ति नहीं होती। कम से कम उनको गर्भ-स्थिति के अयोग्य तो अवश्य कर देता, ताकि गर्भपात और भ्रूण-हत्याएँ न होतीं !

* * *

क्षमा—सुनिए महाराज, जब बालिका विधवा हो जाती है, तब ये लोग इनके खाने-पीने, सोने-बैठने, फिरने-घूमने, हँसने-खेलने, विषय करने आदि के सब जन्म-सिद्ध अधिकार छीन लेते हैं। ये लोग उनके शरीर के प्राकृतिक वेगों को शान्त करने के लिए कोई भी व्यवस्था नहीं करते; बल्कि जहाँ तक हो सकता है इन वेगों और कामनाओं को उत्तेजित करने के साधनों का प्रयोग करते हैं।

धर्मराज—क्या विधवाओं का खान-पान, सोना-बैठना, हँसना आदि भी बन्द किया जाता है ?

क्षमा—हाँ ! महाराज, जब कभी कोई विधवा अच्छी स्वादिष्ट वस्तुएँ खाने या पीने को मन चलाती है, तो उसे टोकते हैं और कहते हैं कि विधवाओं के लिए स्वादिष्ट पदार्थ खाना वर्जित है। उन्हें तो उपवास करके शरीर सुखाना चाहिए। यदि वे साफ़-सुथरे वस्त्र पहनती हैं, तो लोग आँखें उठाकर देखते हैं; और बनाव करने के ताने मारते हैं; क्योंकि मैले-कुचैले वस्त्र ही लज्जा और शील-निवारणार्थ उनके लिए प्रस्तुत हैं। घर से बाहर पैर रखना इनके मत से घोर पाप करना है। अपने दुर्भाग्य और दुखों को याद करते हुए तथा शरीर के प्राकृतिक वेगों की यातना सहते हुए उनकी नींद हराम हो जाती है; फिर

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हँसना-खेलना तो दूर की बात है। यदि इन दुखड़ों को घण्टे-आध घण्टे के लिए भूलकर कभी हँसने-खेलने में चित्त बहलाने को उत्सुक होती हैं, तो लोग ताने मारने लगते हैं—देखो राँड को हँसना-खेलना सूझ रहा है। सारांश यह कि एक जड़ मूर्त्ति की तरह रहने के सिवाय और कुछ भी करने का इस समाज में उनको अधिकार नहीं। हाँ, इनसे पशुओं की तरह काम लेने का पुरुषों को सदा अधिकार रहता है। फ़र्क़ इतना ही रहता है कि पशुओं को उनके शारीरिक वेग शान्त करने और जङ्गलों में आज़ादी से चरने का मौक़ा अच्छी तरह दिया जाता है; किन्तु इन बेचारियों को यह भी नसीब नहीं होता।

धर्मराज—वे इनको विषयों की उत्तेजना किस तरह देते हैं?

क्षमा—खान-पान के अच्छे-अच्छे सामान इनके सामने बनवाए जाते हैं, और इनको दिखा-कर सब खाते हैं। इनकी बराबरी की स्त्रियाँ इनके सामने नहा-धोकर तेल-फुलेल लगातीं और शृङ्गार करके अच्छे से अच्छे रेशमी चमकीले वस्त्र तथा मन को लुभाने वाले क़ीमती आभूषणों से सज कर त्योहार और विवाह आदि के अवसरों पर घूमती-फिरतीं, शृङ्गाररस-पूर्ण अश्लील गान गातीं और परस्पर हँसी-ठट्ठा करती-हैं। युवा-वस्था के पुरुषों के साथ उनका सङ्ग बेरोक-टोक, सबके सामने और एकान्त में भी होता है। ये लोग उनके साथ दिल्लगी और छेड़छाड़ भी करते रहते हैं। पिता, भ्राता, ससुर, देवर और जेठ आदि रात के समय अपनी-अपनी स्त्रियों को साथ लेकर सजे हुए कमरों में बिजली की रोशनी जलाकर किलोल करते हैं; और ये बेचारी एक कोने में पड़ी हुई सब दृश्य आँखों से देखती एवं कानों से सुनती रहती हैं। सारांश यह कि वासनाओं को उत्पन्न करने वाले सब विषय इनकी इन्द्रियों के सामने उपस्थित किए जाते हैं, मानो भूख से आतुर जीव को ज़ञ्जीर से बाँधकर उसकी नज़र के सामने खाने की सामग्री रखकर उसे चिढ़ाते और व्याकुल करते हैं। यही नहीं, यदि उनको कोई धार्मिक ग्रन्थ, गीता, सहस्रनाम आदि पढ़ाने आता है, तो उसको एकान्त में बैठकर पढ़वाते हैं; परन्तु वह उनको पढ़ाने की ओर ध्यान न रखकर, पाप-दृष्टि से बिगाड़ने की फ़िक्र में रहता है (राधा का बयान देखिए), कोई कथा-वार्त्ता सुनाने आता है, तो उसकी भी दृष्टि उसी प्रकार की होती है। यदि कोई उनके दुखों में सहानुभूति दिखाकर नज़दीक होता है, तो वह भी अन्दर से दुष्ट-भावों से भरा होता है। यदि वे किसी धर्माचार्य या गुरु की शरण में जाती हैं, तो वहाँ भी सब साज-बाज इन्द्रियों को उत्तेजना देने वाले ही होते हैं; और अक्सर देखा जाता है कि वे लोग वैराग्य एवं संन्यास का उपदेश देने के बदले अपने स्वार्थ के लिए उन्हें भोग-विलासों में ही घसीटते हैं। (सुशीला का बयान देखिए) राधा-कृष्ण के शृङ्गार-रस के गान तथा रास-लीला आदि से उनको उत्तेजित किया जाता है (राधा का बयान देखिए)। देवालय और तीर्थ-स्थान, जहाँ इनके जाने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं समझी जाती, स्वतन्त्रतापूर्वक इनको विषय-भोगों में प्रवृत्त करने के लिए सुरक्षित क़िले ही हैं।

उत्तेजनाओं का उपरोक्त वर्णन प्रतिष्ठित एवं धनी विधवाओं के सम्बन्ध में है; परन्तु जो दरिद्र घर की विधवाएँ होती हैं, उनकी दशा वर्णनातीत है। बेचारी जहाँ जाती हैं, जहाँ बैठती हैं, वहीं उनको सब प्रकार के विषयों की उत्तेज-नाएँ ही नहीं मिलतीं; वरन् ये पुरुष-व्याघ्र सर्वदा उन्हें हड़पने के लिए तैयार रहते हैं। बाल्यावस्था में माता-पिता अपने कामों के लिए उन्हें कहीं भेजते हैं, तो दुष्ट लोग मार्ग में तथा जहाँ जाती हैं, उन स्थानों में सताते रहते हैं (मनोरमा का बयान देखिए)। यदि किसी की नौकरी करती हैं, तो वह स्वामी और उसके घर के अन्य नौकर-चाकर उससे छेड़-छाड़ करके

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भ्रष्ट करते हैं। स्वामी की स्त्रियों के साथ मेलों, उत्सवों आदि में बाहर जाती हैं, तो अश्लील गायन और दुष्टों के धावे झेलने में सबसे पहला नम्बर उन्हीं का आता है (आनन्दी का बयान देखिए)। अपनी स्वामिनी के शृङ्गार, भोग-विलास और शय्यादि तैयार करने का काम उन्हें ही सौंपा जाता है; और कई अवसर तो ऐसे भी आ जाते हैं कि स्त्री-पुरुष निर्लज्ज होकर हास्य-क्रीड़ा भी उनके सामने कर लेते हैं (आनन्दी, मनोरमा और सुशीला के बयान देखिए)। इससे अधिक उत्तेजना संसार में और क्या हो सकती है? घोर वीभत्स, राक्षसीय होलिकोत्सव का वर्णन भानमती के बयान में है, क्या इससे अधिक उत्तेजना देने वाले किसी अभिनय की कल्पना की जा सकती है?

क्या इस तरह की उत्तेजनाओं में रहकर इन्द्रियों का विषयों से विरोध करना सम्भव है? क्या कोई पुरुष, चाहे वह पण्डित हो या ब्रह्मचारी, आचार्य हो या वैरागी, भोगी हो या संन्यासी, साधू हो या ज्ञानी, चाहे देवता ही क्यों न हो, यह दावा कर सकता है कि इस तरह की स्थिति में रहकर इन्द्रियों को वश में रख सकेगा?

* * *

ऊपर जितने अवतरण इस पुस्तक से उद्धृत किए गए हैं, उनसे यह काफ़ी तौर पर साबित हो जाता है कि यह पुस्तक सामाजिक बुराइयों से जर्जर हिन्दू-जाति और विशेष करके मारवाड़ी-समाज के सुधार के लिए उतनी ही उपयोगी है, जितना कि पुराने बुख़ार से पीड़ित रोगी के लिए चिरायते का काढ़ा। जो लोग अश्लीलता की गुहार मचाकर इसके महत्व को कम करना चाहते हैं, वे हिन्दू-जाति के साथ शत्रुता कर रहे हैं और समाज-सुधार के रास्ते में रोड़ा अटका रहे हैं।

अन्त में मैं अपने श्रद्धेय मित्र पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी से निवेदन करता हूँ कि जिस तरह वे "घास-लेटी साहित्य" के सम्बन्ध में बुलेटिन निकाल कर अपने विचारों को जनता के सामने रख रहे हैं, उसी तरह मैं चाहता हूँ कि मेरे इस लेख को भी वे एक बुलेटिन के तौर पर प्रकाशित कर दें, जिसमें कि जनता के सामने दोनों पक्ष की बातें आ जायँ और एकतरफ़ा डिग्री न हो।

चित्र-दर्शन

[रचयिता—श्री० रमाशङ्कर जी शुक्ल, एम० ए० 'रसाल']

जाहि अनुराधे हौ हिए में अरी राधे! तुम, जाके हित नेह की समाधि साधे रहतीं।
नाधे हौ निरन्तर हू अन्तर बिहाय सब, प्रेम-नेम सीझि जाए रीझि रहो चहतीं॥
सोई यदुबीर की लिखाइ तसबीर लाई, लखौ जाके लखिबे को अँखियाँ उमहतीं।
लखि तसबीर सखि नैन तो निवाजि लैहैं, हियहिं निवाजैं कैसे, सो तौ नेक कहतीं॥

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विधवा-विवाह की नैतिकता

[ले० ऋषिवर श्री० रामगोपाल जी मोहता]

विधवा-विवाह की नैतिकता के विषय में सुधारकों में भी प्रायः मतभेद देखने में आता है। कइयों के मत में कुँवारी कन्या और बाल-विधवा के विवाहों की नैतिकता एक समान है; कई लोग बाल-विधवा के विवाह को आपद्धर्म मानते हैं, कई विधवा-विवाह को आवश्यक मानते हुए भी, इसको नीची दृष्टि से देखते हैं और कई लोग इसको आदर्श विवाह नहीं मानते। अतः विधवा-विवाह की नैतिकता के विषय में कुछ चर्चा करना आवश्यक प्रतीत होता है। अस्तु—

इस विषय की मीमांसा करने के लिए सबसे पहले यही विचारना चाहिए कि विवाह का वास्तविक प्रयोजन क्या है? आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदि अनेक प्रकार के प्राकृतिक वेग अर्थात् इन्द्रियों के विषय-भोग और शीत, उष्ण, सुख, दुख आदि द्वन्द्व प्रत्येक शरीरधारी के स्वाभाविक धर्म हैं तथा इन वेगों और द्वन्दों को शान्त करना भी प्रत्येक के लिए अनिवार्य है—यह बात सभी मानते हैं। सृष्टि के आरम्भ से लेकर अब तक ऐसे इने-गिने महापुरुषों ही के नाम सुनने में आते हैं, जो इन प्राकृतिक वेगों से सर्वथा मुक्त रहे हों। ऐसे महापुरुष मनुष्य-कोटि से परे अलौकिक शक्तिशाली माने जाते हैं और विधि-निषेध के नियम उन पर लागू नहीं होते। परन्तु हमको जन-साधारण के लिए विचार करना है, न कि असाधारण दिव्य आत्माओं के!

मनुष्य-शरीर इतर निम्न-श्रेणी के प्राणियों से ऊँचा माना गया है, क्योंकि इसमें बुद्धि का विशेष विकास होने से आत्म-ज्ञान की योग्यता है। परन्तु जब तक वह उक्त प्राकृतिक वेगों से पीड़ित रहता है, तब तक उसका मन विक्षिप्त रहता है, वह आत्मज्ञान की तरफ़ लग ही नहीं सकता। इसलिए उक्त प्राकृतिक वेगों को शान्त करना उसके लिए भी आवश्यक होता है, परन्तु उन्हें पशु-पक्षियों की तरह उच्छृङ्खलता से शान्त न करके, उसको ऐसे नियमित रूप से बुद्धिमत्ता के साथ शान्त करना चाहिए कि जिससे विषयादिकों में अत्यन्त तल्लीन होकर अधःपतन न होवे और मनुष्य-शरीर के वास्तविक लक्ष्य आत्मोन्नति के पथ पर अग्रसर होने में रुकावट न पड़े।

यदि इन प्राकृतिक वेगों को सर्वथा मार डालने का हठ किया जाय तो इसमें सफलता नहीं हो सकती, क्योंकि शरीर प्रकृति का कार्य है और इसके रहते प्रकृति पर सर्वथा विजय पाना असम्भव है। इसलिए इन वेगों को शान्त करने के लिए विषयों को मर्यादित रूप में भोगते हुए जीवन व्यतीत करके आत्मोन्नति के पथ पर अग्रसर होना ही धर्म माना गया है, और इसी सिद्धान्त के अनुसार शरीर के समस्त व्यवहारों की देश, काल और व्यक्तियों की आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुसार समय-समय पर मर्यादाएँ बाँधी जाती हैं। इन्हीं को धर्म, नीति, न्याय या आदर्श कहते हैं। स्त्री-पुरुष के विवाह की मर्यादा भी उसी प्रयोजन की सिद्धि के लिए बाँधी गई है, अर्थात् एक पुरुष को एक स्त्री के साथ जोड़ दिया जाता है, ताकि वे मर्यादित रूप से गृहस्थी के कर्त्तव्य पालन करते हुए तथा अपनी-अपनी योग्यतानुसार एक दूसरे की शारीरिक आवश्यकताएँ पूरी करते हुए एक दूसरे की आत्मोन्नति में सहायक हों तथा संसार-रूपी नाटक में अपना-अपना पार्ट नियमित रूप से प्ले करते हुए अपने लक्ष्य पर पहुँचने का यत्न करें। इन नियमों के पालन करने-करवाने के लिए ही अनेक समाजों की सृष्टि हुई है।

प्रायः देखा जाता है कि संसार में स्त्री-पुरुषों की संख्या बराबर ही हुआ करती है, अतएव साधारणतया एक स्त्री का एक पुरुष के साथ विवाहित होकर यावज्जीवन निर्वाह करना समाज के लिए श्रेष्ठ मर्यादा मानी गई; परन्तु विशेष परिस्थितियों में साधारण नियमों के अपवाद भी होते हैं—जिस तरह युद्ध के समय अधिक संख्या में पुरुषों के मारे जाने पर एक पुरुष का अनेक

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्त्रियों के साथ विवाह करना भी न्यायोचित माना जाता है, इत्यादि।

विषयों का नियन्त्रण ही धर्म, नीति या आदर्श हो सकता है। उनको सर्वथा मार डालने का प्रयत्न धर्म, नीति या आदर्श नहीं कहा जा सकता; क्योंकि जो बात हो ही नहीं सकती वह धर्म, नीति या आदर्श कैसे और किसका होगा? किसी विषय का अभाव धर्म नहीं हो सकता—भाव ही धर्म हो सकता है। अब हम अपने असली विषय 'विधवा-विवाह' पर आते हैं। अस्तु—

क्षुधा, तृषा और भोगेच्छा आदि प्राकृतिक वेग तथा शीतोष्ण, सुख, दुख, मानापमान आदि द्वन्द विधवाओं के शरीर में भी अन्य प्राणियों—मनुष्य और सधवा स्त्रियों के समान ही होते हैं, चाहे बाल-विधवा हो या युवा! चाहे पुरुष-सहवास से सर्वथा वञ्चित रही हो या कुछ काल गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत कर चुकी हो—जब तक शरीर है तब तक क्षुधा, तृषा, शीतोष्ण लगेंगे ही और जब तक शरीर में यौवन है, तब तक काम का प्राकृतिक वेग भी अनिवार्य ही है। यदि एक पुरुष के साथ मर्यादित रूप से कामादि वेगों को शान्त करने तथा भोजन, वस्त्र, गृह आदि आवश्यकताएँ पूरी करने की सम्मान-सहित योजना स्थायी रूप से रहेगी तो धर्म या नीति में कोई ह्रास नहीं आ सकता और न वह आदर्श से ही गिर सकता है। परन्तु यदि यौवन-सम्पन्ना विधवाओं के विवाह को आपद्धर्म समझा जायगा या हीन-दृष्टि से देखा जायगा तो श्रेष्ठ कुल और धर्म का मिथ्याभिमान रखने वाले लोग ऐसे लाञ्छित विवाह कदापि न करेंगे, जिससे समाज में उच्छृङ्खलता बढ़ती जायगी और अमर्यादित रूप से प्राकृतिक वेगों की शान्ति करने का प्रयत्न किया जायगा, जिससे वास्तविक शान्ति कभी नहीं हो सकती, किन्तु सदा इन वेगों से उत्पन्न होने वाली शारीरिक यातनाओं से पीड़ित रहने के कारण वे दुखातुर देवियाँ समाज को पीड़ित करती रहेंगी और स्वयं अपना पतन करती हुई समाज का भी पतन करती रहेंगी। ऐसी दशा में आत्मोन्नति की तो आशा करना ही विडम्बना है।

हमारे इन सुधारक भाइयों के विधवा-विवाह को आदर्श-हीन या आपद्धर्म मानने का यही कारण प्रतीत होता है कि एक स्त्री का एक पुरुष के साथ एक बार विवाह-संस्कार मात्र को, या कुछ आगे बढ़े तो विवाह के बाद उस पुरुष के साथ एक बार अङ्ग स्पर्श कर लेने तक को ही वे आदर्श या श्रेष्ठ धर्म मानते हैं; फिर यदि वह पुरुष-संस्कार होने के—या एक बार अङ्ग-स्पर्श करने के बाद मर जाय तो स्त्री के लिए दूसरा विवाह करना उनकी दृष्टि में आपद्धर्म और आदर्श-हीन हो जाता है। जब उनसे यह प्रश्न किया जाता है कि स्त्री के मरने पर पुरुष पुनर्विवाह करता है तो वह श्रेष्ठ धर्म क्यों माना जाता है, तब वे विवश होकर पुरुष का पुनर्विवाह होना भी आदर्श-हीन कहने लग जाते हैं और पुराने विचारों के रूढ़िवादियों को 'रूढ़ियों के ग़ुलाम' मानते हुए भी वे स्वयं इस विषय में रूढ़ि की पाबन्दी से मुक्त नहीं होते और तात्विक दृष्टि से विचार न करके, केवल आधिभौतिक दृष्टि से ही इसकी नैतिकता के विषय में फ़ैसला दे देते हैं। वास्तव में अग्नि के सामने विवाह-संस्कार की विधि पूरी करने मात्र की रूढ़ि ही से विवाह पूरा नहीं हो जाता और न स्त्री-पुरुष के अङ्ग स्पर्श होने मात्र से ही विवाह की सफलता सिद्ध होती है। विवाह का सच्चा प्रयोजन, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, गृहस्थ-धर्म को नियमानुसार पालन करके, शारीरिक वेगों को मर्यादित रूप से शान्त करते हुए शनैः शनैः अपने असली लक्ष्य सच्चे और अक्षय आत्म-सुख की प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर होना है, न कि आठ वर्ष से लेकर साठ वर्ष तक बलात्कार संन्यास-व्रत धारण करने का निष्फल-हठ करना? इसलिए आवश्यकता और योग्यता होने पर एक स्त्री या पुरुष के न रहने पर करने योग्य पुरुष या स्त्री दूसरा विवाह करे तो वह वास्तव में श्रेष्ठ धर्म है, न कि आपद्धर्म, आदर्श-हीन या नीति-विरुद्ध? जब तक ऐसे पुनर्विवाह को हीन-दृष्टि से देखा जायगा, तब तक समाज का उद्धार और उन्नति होना कदापि सम्भव नहीं, क्योंकि शारीरिक वेगों से पीड़ित व्यक्ति कोई भलाई नहीं कर सकता।

प्रसङ्गवश यहाँ यह भी कहना पड़ता है कि हमारे अनेक शिक्षित बन्धु प्रत्येक कार्य की नीतिमत्ता की जाँच केवल आधिभौतिक दृष्टि से ही किया करते हैं, यहाँ तक कि द्रौपदी के पाँच पति होने आदि बातों को लेकर, महाभारत-काल को भी वे लोग नीतिमत्ता में गिरा हुआ ज़माना कहा करते हैं। परन्तु ऐसा कहने में यह विचार उनके चित्त से लुप्त हो जाता है कि सनातन हिन्दू-धर्म आध्यात्मिक धर्म है और हिन्दू-समाज की मर्यादाएँ उस

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कच्ची एवं सङ्कीर्ण आधिभौतिक भित्ति पर ही खड़ी नहीं की गई हैं कि स्थूल शरीरों के स्पर्शास्पर्श मात्र ही से उसकी नीतिमत्ता में फ़र्क़ आ जाय, किन्तु वे उस सनातन आध्यात्मिक मूल पर निर्माण की हुई हैं जो इन नाशवान् क्षणभङ्गुर पञ्चभौतिक शरीरों से तो क्या, किन्तु मन, बुद्धि आदि से भी अधिक सूक्ष्म, अविनाशी, विशाल और पवित्र है। यदि वे शिक्षित भाई आध्यात्मिक दृष्टि से नीतिमत्ता का निर्णय करें तो भारतवर्ष का वह बढ़ा-चढ़ा उन्नति का ज़माना और भीष्म, युधिष्ठिर जैसे धार्मिक तत्ववेत्ताओं के तथा गीता-ज्ञान के उपदेशक, महायोगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण महाराज के कृत्य उनकी नीति से गिरे हुए कदापि प्रतीत न हों।

जब से भारतीयों ने आध्यात्मिक दृष्टि से संसार के व्यवहार करना छोड़कर, केवल आधिभौतिक दृष्टि का अवलम्बन किया है, तभी से इस देश का पतन होने लगा है और इस समय यहाँ तक नौबत पहुँच गई है कि देश की और समाज की उन्नति के इच्छुक सुधारक लोग भी आधिभौतिकता के दलदल से पीछा नहीं छुड़ा सकते और यही कारण है कि उनको सफलता नहीं मिलती। देश और समाज के दुख तभी दूर होंगे, जब कि कार्य-कर्त्तागण सङ्कुचित आधिभौतिक भाव छोड़कर महान्, उदार और आध्यात्मिक भाव पूर्णरूप से धारण करेंगे। सच्चा सुधार आध्यात्मिकता में है, न कि आधिभौतिकता में! *

* प्रचार की दृष्टि से यह लेख कलकत्ते से प्रकाशित होने वाले सहयोगी 'नवयुग' में भी भेजा गया था, नवम्बर का 'चाँद' फाँसी-अङ्क होने के कारण यह पहले उसमें प्रकाशित नहीं हो सका।

—स० 'चाँद'

निशीथ-चिन्ता

[रचयिता—पण्डित रामनरेश जी त्रिपाठी]

(१)

जिसके नेत्रों में दर्शित है,
सच्चरित्र उन्नत पवित्र मन।
जिसकी भौंहों में लक्षित है,
सरल प्रकृति-सम्भव भोलापन॥

(२)

लगते हैं जिसके कपोल युग,
रक्त-प्रभा से ऐसे सुन्दर।
जैसे दर्पण में गुलाब के,
गुच्छक के प्रतिविम्ब मनोहर॥

(३)

नोकवती नासा करती है,
जिसकी प्रतिभा को सुप्रमाणित।
किसी सुकवि की एक पंक्ति सी,
सुन्दर सरस अर्थ से प्राणित॥

(४)

शुभ्र उषा सी दिव्य हास्य सी,
रूप-सिन्धु की मणि सी मञ्जुल।
करुणा सी मृदु, धर्म-गीत सी—
शुद्ध, कल्पना सी सुख-सङ्कुल॥

(५)

बाट जोहती हुई एकटक,
पथ पर दृष्टि दिए चिन्ता-रत।
किस दिन मैं स्वीकार करूँगा,
ऐसी प्राण-प्रिया का स्वागत!!*

*अप्रकाशित 'स्वप्न' से।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीमती धर्म्मशीला जायसवाल, बी० ए०

[आपका सविस्तार परिचय अन्यत्र देखिए]

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

छप गया ! छप गया !!

एक हलचल मचाने वाला, सर्वथा मौलिक सामाजिक उपन्यास

अनाथ पत्नी

[ले० पण्डित भगवतीप्रसाद जी वाजपेयी]

[भूमिका-लेखक—श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]

इस उपन्यास में बिछुड़े हुए दो हृदयों—पति-पत्नी—के अन्तर्द्वन्द का ऐसा सजीव चित्रण है कि पाठक एक बार इसके कुछ ही पन्ने पढ़कर करुण, कुतूहल और विस्मय के भावों में ऐसे ओत-प्रोत हो जायँगे कि फिर क्या मजाल कि इसका अन्तिम पृष्ठ तक पढ़े बिना कहीं किसी पत्ते की खड़-खड़ाहट तक सुन सकें !

अशिक्षित पिता की अदूरदर्शिता, पुत्र की मौन व्यथा, प्रथम पत्नी की समाज-सेवा, उसकी निराश रातें, पति का प्रथम पत्नी के लिए तड़पना और द्वितीय पत्नी को आघात न पहुँचाते हुए, उसे सन्तुष्ट रखने को सचेष्ट रहना, अन्त में घटनाओं के जाल में तीनों का एकत्रित होना और द्वितीय पत्नी के द्वारा, उसके अन्तकाल के समय, प्रथम पत्नी का प्रकट होना—ये सब दृश्य ऐसे मनोमोहक हैं, मानो लेखक ने जादू की क़लम से लिखे हों !!

लेखक कहानी और उपन्यास लिखने में वैसे भी लब्ध-प्रतिष्ठ हैं, पर इस उपन्यास के लिखने में तो उन्होंने सचमुच कमाल किया है। शरत् बाबू के उपन्यासों में जो मोहक आकर्षण है और मेरी करेली के उपन्यासों में जो तड़पन, वह सब आपको इसकी पृष्ठ-प्यालियों में सर्वत्र ही छलकता हुआ मिलेगा !!!

कागज़ बढ़िया, छपाई लाजवाब, मूल्य केवल २)

'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गृह-विज्ञान

[ले० सौभाग्यवती हजेला]

डूबना

जब कोई व्यक्ति डूबता है तो जल उसके पक्वाशय (मेदा) और हवा के स्थान फेफड़ों में भर जाता है। यदि डूबे हुए व्यक्ति को श्वास न आता हो तो उसका मुँह खोल, तुरन्त ही उलटा लटका देना चाहिए, फिर पेट को हलके-हलके पसलियों के नीचे की ओर दबाना चाहिए जिससे सब पानी निकल जाय।

यदि डूबा हुआ व्यक्ति बच्चा हो तो उसे घुटनों के सहारे उलटा लिटा, पेट दबाकर जल निकाल देना चाहिए। यह क्रिया घुटने मोड़ कर उकड़ूँ बैठने से अच्छी होती है।

ऐसा करने के पश्चात् डूबे हुए व्यक्ति को चित लिटा कर ऐसा यत्न करना चाहिए कि वह शीघ्र साँस लेने लगे। उसके सिर व कन्धे के नीचे तकिया या कपड़ा लगाना चाहिए, जिससे वह ज़रा ऊँचा हो जाय। इसके पश्चात् मुँह का थूक इत्यादि साफ़ कर, ठोढ़ी को नीचे की ओर दबा, जीभ को, जो प्रायः गले की तरफ़ को लौट जाती है, किसी चिमटे अथवा कपड़े की पट्टी व उँगलियों द्वारा बाहर निकाल, रोगी के हाथों को कन्धे के ऊपर पूरा फैलाना चाहिए।

इसके पश्चात् हाथों को कोहनियों तक मोड़ कर पसलियों के बराबर से पेट तक लाकर ज़रा दबाना चाहिए। यह क्रिया प्रति मिनट १५ से २० बार करनी चाहिए। इससे कम अथवा ज़्यादह नहीं। ऐसा करने से श्वास आने लगता है। जब तक श्वास भली प्रकार न आए, यह क्रिया बराबर करते रहना चाहिए। यदि पाँच मिनट के अन्दर श्वास न आए वा सर्दी अधिक हो, तो बाँई छाती के आस-पास गरम जल में कपड़ा भिगो कर स्तन को शनैः-शनैः थपकना चाहिए। यदि आध घण्टे तक श्वास न आए तो समझ लेना चाहिए कि मृत्यु हो गई।

* * *

मोच आ जाने पर

यदि किसी के पैर इत्यादि स्थानों में मोच आ जाय तो उस स्थान को १० मिनट ठण्ढे पानी में और दस मिनट गरम पानी में डुबो रखने से और उस स्थान पर पट्टी बाँधने और उसे गीला रखने से मोच आए हुए स्थान की सूजन भी घट जाती है और दर्द भी बन्द हो जाता है। यह औषधि मेरी भली-भाँति अनुभव की हुई है।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परदा

परदे की समस्या अब हम लोगों के लिए कोई नई बात नहीं है। इस विषय पर व्याख्या और मनन करते हुए यहाँ के लोगों को बहुत दिन बीत गए। यद्यपि परदे की बात छेड़नी, कही गई बात को दुहराना-सा जान पड़ता है, किन्तु यह विषय ऐसा है जिसके सम्बन्ध में अभी तक लोकमत निश्चित तथा स्थिर नहीं हो पाया है। लोगों का इस विषय के ऊपर न तो विचार ही स्पष्ट है, न सभी का मन्तव्य एक है। परदा उठाने का मतलब कोई कुछ समझता है और कोई कुछ! किसी के विचार में अनावश्यक परदे को उठा देना ही बस है, किसी के विचार में स्त्रियों के लिए पूरी स्वतन्त्रता तथा स्वच्छन्दता आवश्यक है। कितने परदा उठाने के विरोधी अब तक वर्त्तमान हैं, जो परदे की प्रथा को अत्यावश्यक और समाज-रक्षा का साधन बतलाते हैं। इसके अलावा परदे की स्थिति भी स्थान-स्थान पर भिन्न है, जाति-जाति में भिन्न है। कहीं किसी से परदा है, कहीं पर किसी दूसरे से। परदे का उपद्रव सब प्रान्तों से अधिक बिहार में है। यहाँ परदे का अन्त नहीं है। स्त्रियों को पुरुषों से क्या, स्त्रियों से भी परदा है। घर के भीतर बैठी स्त्रियाँ एक दूसरे से अकारण परदा करती हैं। अपने ही घर के अधिकतर मनुष्यों से परदा किया जाता है। उत्तर भारत के अन्य प्रान्तों में भी परदा है, परन्तु बिहार से कम। पञ्जाब और बङ्गाल में परदा बहुत कम है, गुजरातियों में केवल नाम-मात्र का और दक्षिण भारत महाराष्ट्र और मद्रास में परदा है ही नहीं।

पहले यह देखना चाहिए कि परदा है क्या? वास्तव में किसको परदा कहते हैं। परदे की बात चलने पर बहुत से पण्डित तथा पुराने ख़्याल वाले शास्त्र टटोलने लगते हैं; पुराने समय के आदर्शों पर व्याख्या करने लगते हैं, तथा परदे के इतिहास पर विचार करने लगते हैं! परदे के विरोधी जब यह कहते हैं कि पुराने समय में जब बहुधा स्वयम्बर हुआ करता था, स्त्रियाँ अपने पुरुषों के साथ बाहर जाया करती थीं, राजसभा में राज-सिंहासन पर राजा के साथ रानी बैठती थीं, तब मुसल-मानों के पहले भारत में परदा नहीं था; तब इनके विरोधी कहते हैं कि जब पुराने समय में परदा नहीं था तब क्यों-कर पुराने संस्कृत-ग्रन्थों में यह लिखा है कि स्त्रियों को सूर्य भगवान् कभी देख नहीं सकते थे, केवल चन्द्रमा की शीतल किरणें ही इन स्त्री-रत्नों से परिचित थीं? अतएव उस समय भी यहाँ परदे की प्रथा थी! किन्तु यथार्थ तो यह है कि इन शास्त्रार्थों से कुछ भी लाभ नहीं। दोनों ही बातें साथ-साथ सच्ची हो सकती हैं। कार्यवश स्त्रियाँ पुरुषों के साथ रहती थीं, साथ रहने या आने-जाने में कोई रुकावट नहीं थी—और साथ-साथ यह भी ठीक है कि अकारण ही सभी जगह दिन-दहाड़े मारी-मारी नहीं फिरती थीं, उचित समय पर टहलती-घूमती थीं और स्त्रियोचित अपना शील-गुण बनाए रखती थीं। इसमें सन्देह नहीं कि परदा उठा देने पर हम लोगों को फिर भी वैसा ही करना

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ॐ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट—
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

उपयुक्त और वाञ्छित है। इसी तरह उक्त प्रकार की तिरछी-बाँकी बातें परदे के विषय में अनेकानेक सुनने में आती हैं। अतएव इसमें सन्देह नहीं कि यह विषय इस समय भी अत्यन्त उलझा हुआ, मिथ्या भावों से परिपूर्ण, वाद-ग्रस्त और कठिन हो रहा है। तरह-तरह की युक्तियाँ भिन्न-भिन्न स्थानों से उपस्थित की जाती हैं। अतएव सभी मनुष्यों का धर्म है कि इस विषय पर यथोचित विचार कर किसी एक आदर्श को स्थिर कर लें, नहीं तो जिसका जो जी चाहता है उसी को वह उपयुक्त और आवश्यक समझता है और मान लेता है, सो भी प्रायः केवल बातों से, व्यावहारिक रूप से नहीं! परदा उठाना एक व्यावहारिक कार्य है, केवल बातों से काम नहीं चल सकता। एक दिन सभा-सोसाइटी में अपनी स्त्री को ले जाकर उपस्थित कर देने को परदा उठाना नहीं कहते, न इससे परदे की कुप्रथा सचमुच उठ ही सकती है। अतएव जब तक परदा-परित्याग के लिए व्यावहारिक प्रयत्न न किए जायँगे, तब तक इसका देश में पूरा विस्तार नहीं होगा। बिना इसे नित्य-कार्य में परिणत किए क्या यह कुप्रथा हटने की है?

यह ध्यान देने की बात है कि इस देश में परदा सभी जातियों में नहीं है। दरिद्रों के बीच उनकी दरिद्रता के कारण अधिकतर परदा रह ही नहीं सकता। बहुत सी श्रमजीवी जातियाँ ऐसी हैं, जिनमें परदा न है, न रह सकता है। देहातों में शहरों की अपेक्षा परदा कम है। कृषि करने वाली जातियों की स्त्रियों को कार्यवश परदा छोड़ना ही पड़ता है। छोटी कहलाने वाली जातियों में परदा नहीं है। देहातों की बड़ी कहलाने वाली जातियों की स्त्रियों में भी अपरिचितों से विशेष परदा नहीं है, याने उनसे स्त्रियाँ एकदम छिपती नहीं हैं। और परदे का मतलब भी यही है कि स्त्रियाँ किसी दूसरे से छिपें! किसी से परदा करना अपने को उससे छिपाना है। परदा उठाने से अभिप्राय यह है कि अपने को छिपाते न रहें। साथ ही साथ इसका मतलब यह भी नहीं है कि परदा उठा देने से हमारी स्त्रियाँ चाहे जहाँ जी चाहे चली जायँ, सभी से अकारण ही बोलती चलें, ठट्ठा-मज़ाक़ करें, याने जो जी में आवे, करें। हम लोग कभी अपने लड़कों या आश्रितों को भी जो जी चाहे, करने नहीं देते। तब जो लोग यह सोचते हैं कि जहाँ परदा उठा, सब गया; उन्हें अपनी भूल समझ लेनी चाहिए। परदा हटाने से मतलब यह है कि हमारी स्त्रियाँ बन्दी न बन जायँ, जीते-जागते सामान की गठरी न बन जायँ, अथवा आँख रहते कपड़ों में लपेट देने से अन्धी न बन जायँ, ज़रा-सा अनजान से बोलने के भय से घोर शारीरिक कष्ट या कठिनाई न उठाती रहें। परदे के चलते, बल रहते भी अपनी जानें जोखिम में न डाल दें, याने परदे के कारण अपनी शारीरिक अवनति तथा स्वास्थ्य-हानि न उठावें। समय और स्थान रहते भी केवल परदे के कारण विधाता के दिए हुए प्राकृतिक सुख या सम्पदा का उपभोग न करें, बल्कि उनसे वञ्चित रहने के कारण अकारण ही घर के कोने में छुप कर सड़ती रहें! परदा त्यागने का मूल रहस्य यह है कि परदे की लाज रखने के लिए, केवल परदे के नाम के लिए, अपने स्वास्थ्य, समय, धन, शील, स्वभाव तथा सुख की क्षति न करें। अतएव देश-काल के अनुकूल परदा उठाना अनिवार्य है।

अब यह प्रश्न उठता है कि परदा कहाँ तक उठाया जाय, और स्त्रियाँ कहाँ तक स्वच्छन्द हो जायँ? यह तो स्पष्ट है कि अपनी अवस्था और आवश्यकता ही के अनुकूल परदा उठाना युक्तिसङ्गत है, इस विषय में देखा-देखी तथा अन्ध-अनुकरण के लिए स्थान नहीं है। बहुतों का यह ख़्याल है कि परदा उठाकर स्त्रियाँ अवश्य नियमित रूप से प्रतिदिन सैर के लिए निकलें! तो शायद इसकी आवश्यकता सबको नहीं है। जिनकी आर्थिक अवस्था उन्नत है, जिनकी स्त्रियों को घर में काम-धन्धा करना नहीं पड़ता, वे चाहे भले ही टहलती फिरें, किन्तु साधारण गृहस्थों के घर की स्त्रियों के लिए तो यह उपयुक्त न होगा। नहीं तो परदा के हटते कितने बेचारों के घर में उपद्रव तथा अशान्ति फैल जायगी। ऐसे तो योंही स्त्रियों में कपड़े का शौक़ तथा फ़ैशन बढ़ता जाता है; सैर-सपाटे में तरह-तरह के कपड़े और फ़ैशनों को देख कर हमारी स्त्रियाँ भी स्वभावतः अपनी आवश्यकताओं को बढ़ाकर घर में झञ्झट फैलाने लगेंगी। इसके अतिरिक्त घर के काम-धन्धों में भी थकावट होने लगेगी। अतएव हम लोगों का परदा-त्याग उसी प्रकार का होना चाहिए जैसा कि मद्रास और महाराष्ट्र के प्रान्तों में है। यत्न करना चाहिए कि दक्षिण भारत की तरह सभी

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जगह, सारे देश भर में सभी जाति की स्त्रियों की अवस्था हो जाय, और शायद यही अवस्था प्राचीन काल में यहाँ थी भी। यदि हम लोग विदेशियों या मेमों का अनुकरण करेंगे तो हमारे यहाँ भी वही दुरवस्था कपड़े और बनाव-सिंगार के सम्बन्ध में हो जायगी, जैसी कि उन देशों में इस समय उपस्थित है! विदेशी पाश्चात्य आदर्शों के उपस्थित होते परदा-परित्याग की समस्या यहाँ अवश्य सङ्कटमय और आपत्तिजनक हो जायगी, यद्यपि अन्यथा यह विषय हम लोगों के बीच सीधा और सुगम है। आदर्श के विषय में भ्रम और अन्धकार होने के कारण ही परदे की समस्या कठिन और विवादपूर्ण हो रही है।

समाज का हितसाधन तो तभी होगा, जब विषय के ऊपर आगा-पीछा देख कर निष्पक्ष और युक्तिसङ्गत विचार किया जाय। परदा उठाने के विरोधियों का कहना है कि परदा उठाने से स्त्रियाँ आपत्तिग्रस्त हो जायँगी, बुरे लोग इन्हें छेड़ेंगे; स्त्रियों के शील-स्वभाव में अन्तर पड़ जायगा, घरेलू काम-काज में बाधा होने लगेगी। वेश-विन्यास के ख़र्चे बढ़ जायँगे। सम्भव है, स्त्रियाँ बुल, शील और स्वभाव की मर्यादा भी छोड़ दें! अतएव परदा एक अत्यन्त ही आवश्यक वस्तु है। अब देखना चाहिए कि इन बातों में कहाँ तक सार है। सबसे साधारण और बड़ी भूल इस सम्बन्ध में यह है कि परदे के परित्याग को लोग प्रदर्शन या नुमाइश समझते हैं। याने जहाँ परदा उठा कि हमें अपनी स्त्रियों को ख़ाम-ख़्वाही सबके सामने तसवीर की तरह दिखलाना ही पड़ेगा! कैसी भूल है!! परदा उठाया जाय, इसलिए नहीं कि स्त्रियाँ अपने को अकारण सबको दिखाती फिरें, बल्कि इसलिए कि परदा एक हानिकारक, अनावश्यक और अस्वाभाविक प्रथा है। परदा हटाने में कोई आपत्ति या डर की बात नहीं है। स्त्रियाँ जो ख़राब हैं, परदे में रह कर भी दुराचार करती हैं, यदि वे परदे के बाहर रहेंगी तो भी वे दुराचारिणी ही रहेंगी। शील-स्वभाव के विषय में लाभ छोड़कर हानि नहीं है। स्त्रियों की विमूढ़ता, इनकी कूपमण्डूकता तथा अल्पज्ञता जाती रहेगी। पुरुषों के बहुत से बोझ हट जायँगे तथा स्त्रियों के सांसारिक तथा व्यावहारिक ज्ञान निस्सन्देह बढ़ जायँगे। जब स्त्रियाँ संसार से अधिक परिचित हो जायँगी, अधिक देख-भाल के कारण इन्हें कार्य-विधि की जानकारी हो जायगी तब यह निश्चय है कि स्त्रियों की कार्यकारिणी शक्ति अत्यधिक बढ़ जायगी। सैर-सपाटे में व्यर्थ समय सभी स्त्रियाँ तो नहीं बिता सकेंगी। अधिकांश को तो अपने घर-बार के सब काम करने होंगे। अतएव कुछ पैसे वाले फ़ैशनेबुल घराने की स्त्रियों को देखकर सारे स्त्री-समाज को वैसा समझ लेना भूल है। वेश-विन्यास भी अधिकतर इन्हीं घरों में घिरा हुआ है। साधारण मनुष्यों की स्त्रियाँ चाहे जितनी कोशिश करें, इच्छा रहते भी अपनी आर्थिक अवस्था के कारण फ़ैशन के पीछे बहुत ख़र्च नहीं कर सकतीं। यदि करें तो वह फ़ैशन नक़ल करने वाली बुद्धि का दोष है, परदा छोड़ने का नहीं। आज आप मद्रास महाराष्ट्र या उत्तरी भारत के प्रान्तों की छोटी जाति की अधिकांश स्त्रियों को देखिए। परदा न रखते हुए भी फ़ैशन के फन्दे से बहुतेरी बची हुई हैं। अतएव वास्तव में परदा-त्याग से फ़ैशन का बहुत ही कम सम्बन्ध है और होना ही चाहिए। परदा त्यागने से किसी भी विषय में स्त्रियों को क्षति नहीं है, बल्कि परदा-रूपी बन्धन से छुटकारा पाने पर स्त्रियों में एक विशेष प्रकार की सजीवता आ जायगी, स्त्रियाँ शुद्ध, स्वच्छ, सरल तथा स्वास्थ्यकर जीवन बिताने लगेंगी। परदा का मतलब ही छिपाना, गुप्त रखना, धोखा देना है, अतएव परदा क्योंकर यथार्थ और निर्दोष हो सकता है? परदा का अर्थ ही छिपाना है, हम परदा दूसरों से उन्हीं बातों का करते हैं, जिन्हें हम छिपाना चाहते हैं; हम अपने दोषों को दूसरों से छिपाने के निमित्त उन्हें परदे में रखते हैं। अतएव हम अपने गुणों का प्रकाश करते हैं, दोषों को छिपाते हैं। हमारी स्त्रियाँ बेचारी क्या कोई दोष हैं, जिन्हें हम छिपाते फिरते हैं? वास्तव में उन्हें हम परदे में रखकर अपना और उनका दोनों का ही अनिष्ट करते हैं। आर्य-कालीन परदा चाहे जैसा भी हो, सम्भवतः जिसे हम आज परदा कहते हैं, वह उस समय था ही नहीं। आजकल का अधिकांश परदा अनावश्यक तथा स्त्री-जीवन की विडम्बना-मात्र है। आधुनिक परदा बुरे दिनों में प्रारम्भ हुआ है, और यह हमारे समाज की एक यातना है। जो इसमें गुण देखते या परदे को आवश्यक समझते हैं, वे निश्चय ही भ्रान्त हैं, और अपने भ्रमवश इस विषय के समझने में नितान्त विमूढ़ भी हैं। यह समझने की बात है कि परदे के अन्दर यदि कोई बुरा काम करना चाहे तो

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आसानी से कर सकता है, क्योंकि वह जानता है कि यहाँ तो परदा है, इसके प्रताप से यहाँ कोई आ ही नहीं सकता। उसी काम को दश-पाँच मनुष्यों के सामने दुष्ट-हृदय मनुष्य भी नहीं कर पाएगा। परदे की ओट में कितनी बुराइयाँ की जाती हैं, सो जानने वाले जानते ही हैं। परदे के कारण हमारे घर-द्वार मैले बने रहते हैं। परदा करने वालों का जीवन दूषित हो जाता है, परिवार के अन्दर अकारण ही विरोध फैल जाता है, क्योंकि परदे के कारण घर के अन्दर भी एक दूसरे से भली-भाँति वार्त्तालाप नहीं कर सकते! पुत्र-बधू के मन में क्या बात है, श्वसुर जी समझ नहीं सकते, और परदे के कारण न पुत्र-बधू अपने श्वसुर से कुछ कह ही सकती है और न श्वसुर जी सुन ही सकते हैं। यदि कोई बीचवान् या अन्य व्यक्ति चाहे तो आसानी से श्वसुर-बहू में परस्पर बैर-भाव उत्पन्न करा दे। इसी प्रकार घर के अन्दर, परिवार के अन्दर, अकारण ही मनोमालिन्य उत्पन्न हो जाता है। परदे के मिथ्या भावों के कारण यदि किसी युवती या बालिका को कोई कठिन स्त्री-रोग हो जाय तोभी वह उसे किसी से न कह पाएगी और अन्त में निस्सहाय होकर अपने प्राण दे देगी। परदे के मिथ्या प्रपञ्च में पड़कर समाज का कितना बड़ा अपकार हो जाता है, इसे विरला मनुष्य ही समझता है!

इस गर्हित धोखे की टट्टी ने कितनों के प्राण ले लिए, कितनों के जीवन का सत्यानाश कर डाला, कितनों की मान-मर्यादा मिट्टी में मिला दी, यह पता लगाने से ही जान पड़ेगा। बिना भली-भाँति सोचे-विचारे किसी बात को ठीक और सच मान लेना अपने को हतबुद्धि प्रमाणित करना है। परदे के पक्षपातियों को चाहिए कि इस विषय के ऊपर पूरा अनुसन्धान करें, आँख खोल कर देखें, नहीं तो "मूँदहु आँख कतहुँ कोउ नाहीं" से काम चलने का नहीं! संसार और समाज के भार तथा बन्धनों का बढ़ाना मनुष्य का कर्त्तव्य नहीं, धर्म नहीं। हमारा प्रयत्न होना चाहिए कि संसार को सुखी, समाज को शुद्ध और मानव-जीवन को पवित्र बनावें! उन उपायों का साधन करें जिनसे दुखियों के दुख छूट जायँ, बन्दियों के बन्धन टूट जायँ, समाज से अन्याय और कलङ्क दूर हो जायँ! नहीं तो "कौआ कान लिए जाता है," के पीछे दौड़ने वाले क्या इस अभागे देश में कम हैं? विषय सुगम है, केवल डूब कर देखने और स्थिर तथा निष्पक्ष मन से विचारने की बात है!

—रत्नेश्वरप्रसाद सिंह मेवार, बी० ए०, बी० एल०

* * *

सामाजिक कुरीतियों में स्त्रियों का भाग

हमारे समाज का शासन सनातन से धर्म द्वारा होता आया है। अति प्राचीन काल में राजा निस्पृह, त्यागी और सत्यप्रिय ब्राह्मणों को मन्त्री के पद पर सम्मानित करते थे और वे अपनी पक्षपात-रहित सुन्दर मन्त्रणा से समाज के कल्याणकारी कार्यों में राजा की सहायता करते थे। उस नियम का पालन बहुत काल तक होता रहा, जिसके कारण समाज-कल्याण के कामों में राजनीति और धर्म दोनों मिल गए। राजनीति से धर्म का पालन होता था और अधर्म का नाश।

जब तक आर्यों की सन्तान शक्तिशाली रही, यही नियम रहा। परन्तु वैमनस्य, स्वार्थ, फूट और अज्ञान के कारण उनकी शक्ति का ह्रास होने लगा और भारतीय इतिहास का वह काल उपस्थित हुआ, जब विदेशियों की शक्ति की सत्ता वैदिक-धर्मावलम्बियों को स्वीकार करनी पड़ी। वे परतन्त्र हुए और उनके राजनैतिक बल का संहार हुआ। परतन्त्रता की दशा में समाज के कृत्यों की स्वतन्त्रता भी जाती रहती है, वैसे ही भारत के आर्य-वंशजों के धर्म-भाव में भी कुछ अन्तर आरम्भ हुआ और सामाजिक कृत्यों में शिथिलता और परिवर्त्तन होने लगा।

क्रमशः सैकड़ों वर्ष के उपरान्त हमारे समाज के कई धार्मिक सिद्धान्तों के रूप बदल गए। बदलना भी स्वाभाविक था, जब हमारी राजनीति ही बदल गई और हमें अपनी इच्छा के प्रतिकूल भी शासकों की प्रसन्नता के काम करने पड़े। उस पर भी अत्याचार और अन्याय ने कम शक्ति नहीं दिखाई। समयानुसार धार्मिक और सामाजिक परिवर्त्तन होते-होते कई धार्मिक कृत्यों के रूप ऐसे बदल गए कि हम आज उनके सच्चे प्राचीन रूप को देखकर चकित हो उठते हैं और उसे स्वीकार करने को भी तैयार नहीं होते। फलतः जिन नियमों को पहले

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समाज के कल्याण का रूप दिया गया था, उन नियमों के रूप में परिवर्त्तन आ जाने से उनसे समाज का कल्याण नहीं होता; बल्कि बुराइयाँ हो रही हैं। इन बुराइयों के विधायक नियम को हम कुरीतियाँ कहते हैं और उन्हें दूर करना आवश्यक समझा जाता है।

अब हमसे यह छिपा नहीं है कि हमारा सामाजिक और जातीय पतन अपने समाज की कुरीतियों के ही कारण हुआ है और हो रहा है। इन कुरीतियों के रहते हममें प्रेम नहीं होता, पारस्परिक भेद वर्त्तमान रहता है। भेद एकता का नाशक है, और एकता के बिना कोई समाज या राष्ट्र बली नहीं हो सकता। अतएव अपने को शक्तिशाली बनाने के लिए समाज में ऐक्य की स्थापना आवश्यक है, जो कुरीतियों के नाश किए बिना किसी प्रकार सम्भव नहीं।

स्पष्ट है कि किसी मानव-समाज के दो मुख्य अङ्ग स्त्री और पुरुष हैं। समाज की कुरीतियों को दूर करने में दोनों की ही चौकसी होनी चाहिए। जब यह बात स्वयं-सिद्ध है कि सामाजिक कुरीतियों से केवल पुरुषों की ही क्षति नहीं है, स्त्रियों की भी, तब किसी प्रकार स्त्रियाँ इस कर्त्तव्य से विलग नहीं हो सकतीं। दोनों दो होते हुए भी एक ही शरीर के, एक प्राण के संरक्षक हैं, इसलिए उनके कार्यों में भी सम्बन्ध है और वे दोनों ही समाज की उन्नति और अवनति के उत्तरदायी हैं।

स्त्री और पुरुषों के भिन्न-भिन्न विभागों की बात दूर रख, यह माना जा सकता है कि विवाह, पूजा-विधि और मेल, ये तीन ऐसे प्रश्न हैं जिनमें दोनों साथ हैं। फलतः जो कुरीतियाँ इन तीन विषयों के सम्बन्ध में हैं, उनमें स्त्रियों का भी हाथ है, और दूर करने की चेष्टा में भी स्त्रियों का भाग लेना अनिवार्य है। पुरुष तो इन कुरीतियों के उत्तरदायी हैं ही, पर स्त्रियाँ भी इससे मुक्त नहीं हैं। यह उनके विचारने का विषय है कि इन कुरीतियों का सम्पादन पुरुष, स्त्रियों की आड़ लेकर ही करते हैं। विवाह, विग्रह और व्यर्थ-पूजा में पुरुष कहा करते हैं—"क्या करूँ, घरनी मानती ही नहीं, वह ऐसा करने के लिए बाध्य कर रही है और घर में क्लेश किए बैठी है।" ऐसी दशा में स्त्रियों का क्या उत्तर हो सकता है? बात तो साफ़ है। यदि उनका कोई सहयोग नहीं तो वे इन कुरीतियों के विरुद्ध ज़ोर लगाने में अपना बल दिखा सकती हैं और यदि उनका हाथ है तो अपनी सन्तान के अन्धकारमय भविष्य पर विचार कर इसके विरुद्ध भी क्लेश उत्पन्न कर नासमझ पुरुषों को इनकी बुराइयाँ सुझा सकती हैं।

विवाह के नाम पर समाज में जो कुरीति जारी है, वह हमारी जाति के इतिहास का घृणित अंश है। विवाह-विधान समाज के लाभ के लिए निर्धारित है, किसी शास्त्र या धर्म की मनसा के आधार पर वह समाज के अनगिनत लोगों के अहित का कारण नहीं हो सकता। तो भी अबोध बालिकाएँ विवाह-बन्धन से एक अपरिचित वर के साथ जकड़ दी जाती हैं। इस बाल-विवाह का बुरा प्रभाव बालक और बालिकाओं दोनों पर पड़ता है। अबोध बालिकाओं का सम्बन्ध अनमेल होने के कारण समाज बाल-विधवाओं की गहरी आह से दग्ध हो रहा है, और बड़ी अवस्था की लड़कियों से विवाहित होने के कारण छोटे बच्चों की जीवन-कली खिलने के पूर्व ही म्लान हो जाती है। सैकड़ों निस्सहाय बालिकाओं को माता-पिता के निर्णय पर भरोसा रख, वृद्ध पतिदेवों की सेवा स्वीकार करनी पड़ती है। वह सेवा भी उनके लिए स्थायी नहीं होती और वृद्धदेव के काल-कवलित हो जाने पर उन्हें वैधव्य की विषम ज्वाला में दग्ध होते रहना पड़ता है।

क्या माता अपनी लाड़िली पुत्री और प्राण-प्रिय पुत्रों की रक्षा इस कुरीति-कर्कशा से नहीं कर सकती? यदि नहीं तो उनमें मातृत्व का अभाव है और 'माता' शब्द को अपमानित करने वाली ऐसी पत्थर-हृदया माताओं को 'माँ' कहलाने का कोई अधिकार नहीं। कोई माता-हृदय अपनी आँखों से अपने पुत्र और पुत्री का दुर्दशाग्रस्त जीवन देखना पसन्द नहीं करता। तब कैसे आशा की जाय कि वे इस कुरीति का समर्थन कर सकती हैं। दहेज की कुप्रथा से बाध्य होकर भी यदि पिता अनमेल-विवाह के लिए प्रस्तुत हो जाय, तो माता को हठ कर अपने हृदय के टुकड़ों की रक्षा करनी चाहिए। हाड़ और धड़ की चिन्ता बालिका नहीं करती, उसे सुयोग्य तथा स्वस्थ पति ही प्रिय है। अतएव माता को भी यही देखना चाहिए। ऊँच और नीच कुलों के प्रश्न लेकर भी लड़कियों का जीवन नष्ट किया जाता है। यहाँ माता को विचारना चाहिए कि जिस स्त्री का पति ही सर्वस्व है, उसे उचित

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अखिल भारतवर्षीय महिला शिक्षा कॉन्फ्रेन्स पटना, के स्वागत-समिति की कार्यकारिणी सभा की सुयोग्य सदस्याएँ

बैठीं हुईं—(१) मिसेज़ एस० के० पी० सिनहा (२) मिसेज़ एच० एल० नन्द क्यूलियर [कोषाध्यक्षा] (३) मिसेज़ के० पी० जैसवाल [उप-प्रधाना] (४) मिसेज़ मज़रुलहक़ [प्रधाना] (५) मिसेज़ पी० के० सेन [मन्त्रिणी] (६) मिसेज़ ईश्वरीनन्दन प्रसाद [संयुक्त मन्त्रिणी] (७) मिसेज़ ज्ञानचन्द [संयुक्त मन्त्रिणी]

खड़ी हुईं—(८) मिसेज़ डी० एल० नन्द क्यूलियर (९) मिसेज़ मूले (१०) मिसेज़ गोपालप्रसाद (११) मिसेज़ धर्मशीला (१२) मिसेज़ अस्थाना (१३) मिसेज़ ए० टी० सेन (१४) मिसेज़ डी० एन० सरकार

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

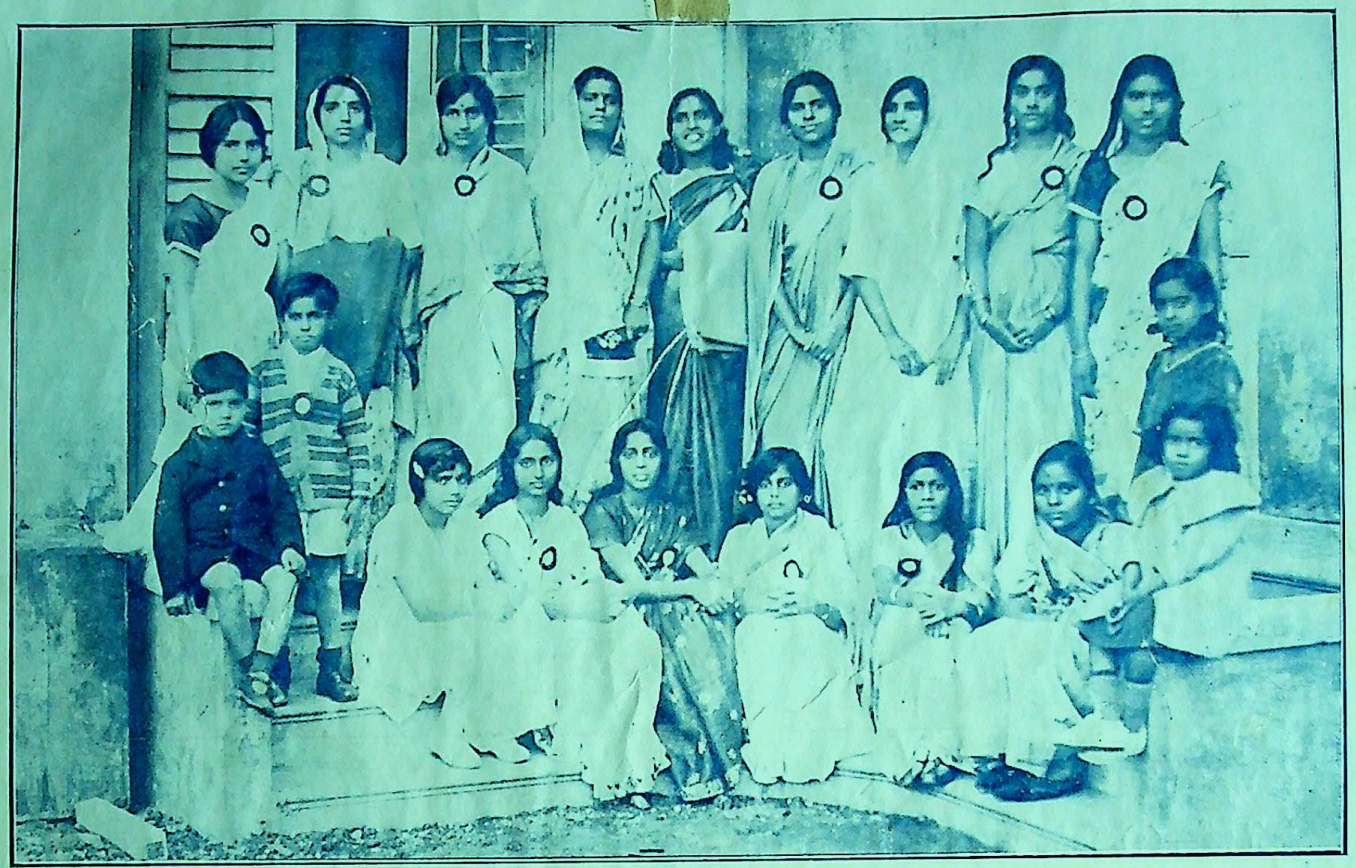

अखिल भारतवर्षीय महिला शिक्षा कॉन्फ्रेन्स, पटना की स्वयं-सेविकाएँ, जिन्होंने बड़ी योग्यता से कार्य किया।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पति की सेवा का अवसर न दे, ऊँचे कुल में डालने से उसकी पुत्री को क्या लाभ होगा ?

पूजा-विधि की ओर स्त्रियों की अधिक प्रवृत्ति होती है। पतिदेव का सिद्धान्त चाहे जो हो, स्त्रियाँ शिवलिङ्ग और एकादशी-व्रत में ही मस्त रहती हैं। भिन्न-भिन्न त्योहारों के अवसर पर और तीर्थाटन में स्त्रियाँ साग्रह पति से अधिक व्यय करा बैठती हैं। इसका कारण उनकी धर्मतत्वानभिज्ञता है। धर्म का तत्व मनुष्य को आनन्दित और शान्तचित्त बनाने का है, आय से अधिक अनियमित व्यय कर अधर्म-रत लोगों के उदर-पोषण का नहीं। पुनः स्त्रियों के लिए पति की मन, वचन, कर्म से सेवा करना परम धर्म है। इस धर्म से बढ़ कर कोई दूसरा धर्म नहीं है। सीता को पातिव्रत्य धर्म का उपदेश देते हुए अनुसूया देवी ने इसी तत्व को क्या सुन्दर रूप में सामने रक्खा है :—

मातु-पिता-भ्राता-हितकारी,
मित सुख-प्रद सुनु राजकुमारी।
अमित-दानि भर्त्ता वैदेही,
अधम सो नारि जो सेव न तेही।
वृद्ध रोग-बस जड़ धन-हीना,
अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना।
ऐसेहु पति कर किए अपमाना,
नारि पाव जमपुर दुख नाना।
एकइ धरम एक व्रत नेमा,
काय बचन मन पति-पद-प्रेमा।

भारत की सती-साध्वी रमणियों की जीवनियाँ इसलिए प्रसिद्ध नहीं हैं कि वे अपने पति के रहते पत्थर और पीर की पूजा करती थीं, बल्कि इस कारण कि पति-सेवा में उन्हें अपनत्व का कुछ भी ध्यान नहीं रहा। सीता, सावित्री, अनुसूया, द्रौपदी आदि के पवित्र नाम आज भी स्त्री-समाज को इसी परम धर्म की शिक्षा दे रहे हैं। पुनः पति-पद के उपरान्त स्त्रियों का ध्यान पुत्र और पुत्रियों के जीवन को सुखमय बनाने की ओर होना चाहिए। पश्चात् गृह-प्रबन्ध का प्रश्न है। इस धर्म और कर्त्तव्य की पूर्त्ति में लगी स्त्रियों को अन्य पूजाओं और कृत्यों के करने का अवसर कहाँ ? तो भी झुण्ड बाँध-बाँध कर स्त्रियाँ पुरुषों के सिर पर गट्ठर रखवाए तीर्थों की हवा खाती फिरती हैं और अशिक्षिता होने के कारण नाना प्रकार के कष्ट सहन करती हैं। इससे तीर्थ के पण्डे-पुजारियों का घर भरता है और उनका घर ख़ाली होता है, कुछ हाथ भी नहीं आता। इसी प्रकार घर पर भी कई व्यर्थ ख़र्च पूजा-विधान में स्त्रियाँ करती हैं और अपने घरों की आर्थिक अवस्था पर ध्यान नहीं देतीं। उन्हें पहले अपने-अपने घरों की आर्थिक अवस्था ठीक रखनी चाहिए, तब पूजा-पाठ और दान पर ध्यान देना उचित है। कहावत भी है—"पहले भीतर, तब देव और पीतर।"

प्रत्येक घरों में कुछ न कुछ वैमनस्य पुरुषों में पाया जाता है। वह आरम्भ में अङ्कर-रूप में रहता है। पीछे बढ़ते-बढ़ते बड़ा वृक्ष बन जाता है और घर के आनन्द के स्थान को डालियों से छा लेता है। ऐसी दशा में गृह के आनन्द का आलोक नष्ट हो जाता और फूट का अन्ध-कार घर बना लेता है। भाई-भाई में, पिता-पुत्र में प्रायः विग्रह खड़ा होता रहता है और जब प्रत्येक घर की यही दशा है, तब उनसे बने समाज में शान्ति कैसे रह सकती है। हम देखते भी हैं कि समाज में विग्रह, द्वेष और फूट का कैसा प्राबल्य है।

इस मेलनाशक विग्रह का मुख्य कारण स्त्रियाँ ही बताई जाती हैं। यद्यपि यह एकदम सत्य नहीं है, तो भी इसमें कुछ सत्यता अवश्य है। पुरुषों का प्रेम अपनी पत्नियों से घना होता है। साधारण पुरुष अपनी स्त्री की मनोव्यथा सह नहीं सकते, न उधर अशिक्षिता स्त्री में सहन-शक्ति होती है। फल-स्वरूप छोटी सी बात के लिए घर की स्त्रियों के बीच वृहत् रूप धारण कर लेने पर उनके पतिदेवों की भी दलबन्दी हो जाती है और यहीं से विग्रह का आरम्भ होता है। क्रमशः पारस्परिक सहानुभूति के घटते जाने पर बाँट-बखरे का अवसर आ उपस्थित होता है। इसी प्रकार पुत्र पिता की सेवा त्याग और भाई भ्रातृत्व की ममता छोड़, अलग घर बना कर ऐक्य का मूलोच्छेद करता है। इसमें भी स्त्रियों का पूरा भाग कहा जा सकता है।

ऐसी दशा में स्वीकार करना ही पड़ेगा कि समाज की बड़ी-बड़ी कुरीतियों में स्त्रियों का भी सहयोग है और वे अशिक्षा के कारण इन कुरीतियों का पालन करती हुई अपनी सन्तान का भविष्य नष्ट करती हैं। इस कारण स्त्री-समाज के सुधारकों का ध्यान समुचित स्त्री-शिक्ष

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की ओर होना चाहिए और विचारशील स्त्रियों का ध्यान अपने समाज के कलङ्क को दूर करने की ओर। सामाजिक कुरीतियों को बिना ठुकराए समाज का हित किसी प्रकार सम्भव नहीं।

—पाण्डेय रामावतार शर्मा, एम० ए०, विशारद

* * *

स्त्री-समाज में आत्महत्या की प्रवृत्ति

हमारे भारतीय समाज की स्थिति वर्त्तमान में "मर्ज़ बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की" वाली लोकोक्ति को सोलह आना चरितार्थ कर रही है। ज्यों-ज्यों सुधार की चेष्टा की जाती है, त्यों-त्यों बिगाड़ होता जाता है। समाचार-पत्रों में भले ही आशा का सुनहरा और तीव्र प्रकाश दिखाई दे, पर समाज का मार्मिक अध्ययन करने वाले आदमी से यह बात छिपी नहीं रह सकती कि अन्धकार दिनोंदिन कैसा गहरा रूप धारण करता जा रहा है। स्त्रियाँ समाज की माताएँ हैं और उनके उत्थान के लिए वक्ता लोग जनता के सामने ऐसी बुलन्द आवाज़ उठाते हैं कि बस कुछ न पूछिए, ज़मीन-आसमान प्रकम्पित हो उठते हैं; पत्र-पत्रिकाओं में ऐसे-ऐसे लेख लिखे जाते हैं कि जिनसे जोश की चिनगारियाँ भभक उठती हैं। पर क्या सचमुच स्त्रियों के कष्ट दूर हो रहे हैं? अनुभव तो यह बतलाता है कि उनके दारुण उत्पीड़न की मात्रा इतनी तीव्र हो उठी है कि उन्हें अपना जीवन दूभर होता जा रहा है! उनके सिर पर सदैव मृत्यु के बवण्डर मँडराते रहते हैं। अन्ततः स्त्रियों में भी प्राण हैं, उन्हें भी व्यथाओं की दारुण पीड़ा उद्वेलित कर देती है और वे अपनी व्यथा का, अपनी पीड़ा का, अपने जीवन की लाञ्छनाओं का प्रतिकार करना चाहती हैं। परन्तु वे शक्ति-हीन हैं, साधन-हीन हैं, अशिक्षित हैं; और पुरुषों ने उन्हें ऐसी अमानुषिकता से पददलित कर रक्खा है कि प्रतिकार की प्रबल भावना रखते हुए भी वे अपनी असमर्थता के कारण तड़प-तड़प कर रह जाती हैं। ऐसी विषम परिस्थिति में अत्याचार का प्रतिकार करने के लिए उनके सामने दो ही साधन रह जाते हैं—या तो दुराचार में लिप्त हो जाना या आत्म-हत्या द्वारा अपने त्रसित जीवन को शेष कर देना।

यद्यपि स्त्री के दुराचार में लिप्त हो जाने से उसके उद्दाम परिपीड़न की मात्रा थोड़े समय के लिए स्वल्प भले ही हो जावे, पर इससे रोग का सर्वथा नाश नहीं होता। कुछ समय बाद ही वह और भी प्रबल वेग से भड़क उठता है। स्त्री चारों ओर से हताश हो जाती है। उसके परम लाञ्छित जीवन को दूर-दूर तक आश्रय की झलक भी दिखाई नहीं देती। अन्त में वह अपने अमूल्य प्राणों का मोह त्याग, आत्म-हत्या के अत्यन्त रोमाञ्चकारी मार्ग का अवलम्बन करती है! यह बात नहीं कि पहले स्त्रियाँ आत्म-हत्या नहीं करती थीं, परन्तु उस समय इस भीषण कृत्य का ऐसा उग्र रूप नहीं था। अब तो उनकी असीम शक्ति ने इस भीषण कार्य को अत्यन्त साधारण कर दिया है! स्त्रियों में आत्म-हत्या की प्रवृत्ति दिनोंदिन प्रबल होती जा रही है। और यह प्रवृत्ति अब दुराचारिणी स्त्रियों के सिवा सदाचारिणी स्त्रियों में भी प्रवेश कर रही है। मेरे विचार से भारत में ऐसा कोई स्थान न होगा, जहाँ वर्ष में दस-पाँच स्त्रियाँ आत्माहुति देकर अपने लाञ्छित नारी-जीवन को शेष न करती हों। यह कठोर प्रवृत्ति क्या हिन्दू-स्त्रियाँ और क्या मुस्लिम स्त्रियाँ—दोनों में समान रूप से पाई जाती है।

आगे मैं स्त्रियों की आत्म-हत्या की कुछ करुण घटनाओं के दृश्य उपस्थित करता हूँ। इन घटना-चित्रों की एक-एक रेखा सत्य पर अवलम्बित है। इनके दर्शन से पाठकों को मालूम होगा कि बेचारी स्त्रियों को कितने साधारण कारणों से ही कैसी निर्ममता से अपने जीवन का बलिदान करना पड़ता है :—

१—ग्रीष्म-ऋतु का समय था। अभी मैं प्रातः-कालीन निद्रा की ख़ुमारी त्याग, उठ कर बिस्तर पर बैठा ही था कि कुछ लोगों को झपट कर एक ओर जाते देखा। मैंने विस्मित होकर एक आदमी से पूछा—"इतने सवेरे ऐसे झपाटे से कहाँ दौड़े जा रहे हो? क्या कहीं आग लग गई है?" उसने उत्तर दिया—"आपको नहीं मालूम? ख़ाँ साहब की पुत्र-बधू कुएँ में गिर पड़ी है।" मैं भी तुरन्त बिस्तर त्याग घटना-स्थल पर पहुँचा। पहुँच कर क्या देखता हूँ कि लोग ख़ाँ साहब की पुत्र-बधू को कुएँ से निकाल चुके हैं! उसका एक पैर टूट गया है, सिर बुरी तरह फट गया है और वह ख़ून में लथपथ

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हो रही है ! वह होश में आ चुकी है और दो-एक सज्जन उसे समझा रहे हैं—"देखो, पुलिस वालों से कुछ अण्ट-सण्ट न कह देना ! जब वे तुमसे कुएँ में गिरने का कारण पूछें, तब तुम उनसे कह देना—"मैं रोज़ाना फ़जर की नमाज़ पढ़ती हूँ। आज घर में पानी नहीं था, इसलिए मैं मुँह-अँधेरे पानी भरने आई थी। पैर फ़िसल जाने से कुएँ में जा गिरी। ख़बरदार, इसके सिवा और कुछ न कहना, नहीं तो पुलिस तुम्हें पकड़ ले जायगी, और तुम्हारी बहुत बुरी हालत करेगी।" इसी समय कुछ लोग कुएँ में पानी उड़ेल रहे थे। एक आदमी ने कुएँ के पाट पर रस्सा और घड़ा भी लाकर रख दिया। मैं उन लोगों का यह प्रपञ्च देख, मन ही मन कुढ़ रहा था कि पुलिस आ पहुँची। एक भले आदमी तुरन्त थानेदार साहब को एक एकान्त कमरे में ले गए। थोड़ी देर के बाद पुलिस कुछ योंही पूछ-ताछ कर और बालिका को अस्पताल भिजवाने की आज्ञा देकर चली गई। पाँच-छः दिन बाद अस्पताल में ही उस बालिका का देहान्त हो गया। वह बड़ी ही सुन्दरी थी, अभी उसकी आयु सोलह-सत्रह वर्ष से अधिक न थी। उसका सरल और निर्दोष मुखड़ा भुलाए नहीं भूलता। ख़ाँ साहब धनिक थे, उन्होंने पैसे के बल से असल बात दबा दी। उन्हीं के शुभ-चिन्तकों से पूछने पर पता चला कि ख़ाँ साहब का पुत्र नपुंसक है। कहीं पुत्र-बधू का आचरण न बिगड़ जाय, इसी भय से उनके घर के लोग उसे सताते रहते थे। उस रात को ख़ाँ साहब के उस नपुंसक पुत्र ने अपनी पत्नी को बहुत बुरी तरह पीटा था। अन्त में बेचारी ऊब उठी और इस भीषण कार्य को करने के लिए बाध्य हुई। उसका फूल-जैसा सुन्दर शरीर मिट्टी के ढेर में दबा दिया गया। पर ख़ाँ साहब का वह नपुंसक पुत्र, समाज का वह भार, अब भी चैन से गुलछर्रे उड़ा रहा है !!

२—उसी दिन मैं सन्ध्या-समय अपने मित्र के साथ वायु सेवनार्थ निकला। नगर के मध्य में क्या देखता हूँ कि एक कुएँ पर बड़ी भीड़ लगी हुई है। कौतूहलवश मैं भी भीड़ चीरता हुआ कुएँ के निकट जा पहुँचा। थानेदार साहब डटे हुए कुछ लिख रहे थे। उनके सामने ही कोई बीस वर्ष की सुन्दरी का शव किसी कुम्हलाए हुए पुष्प के समान पड़ा हुआ था। वास्तविक घटना मेरी समझ में आ गई। थानेदार साहब पञ्चायतनामा लेकर और शव को फुँकवाने का हुक्म देकर चलते बने। सुन्दरी के शव पर अत्यन्त मैले-कुचैले वस्त्र देखकर मैंने समझा था कि यह किसी ग़रीब आदमी की स्त्री होगी। पर पूछने पर पता चला कि वह एक धनिक जैनी की पत्नी थी। जैनी महाशय वेश्यागामी हैं, स्त्री की गोद में दो मास की बालिका थी। आप वेश्या के प्रेम में ऐसे पागल हुए कि पत्नी की सुधि ही भूल गए। उस दिन आपकी पत्नी तीन दिन की भूखी-प्यासी थी। जब उसने आप से भोजन की प्रार्थना की, तब बेचारी पर मार पड़ी। अन्त में क्षुधा से अत्यन्त आकुल हो, पुत्री को बिलखती हुई छोड़ कर बेचारी कुएँ की गोद में जा रही। उस पवित्र नारी का अन्त ऐसे कष्ट से हुआ। पर धन के प्रताप से सेठ जी का बाल भी बाँका न हो सका !

३—एक पण्डित जी नम्बर एक के जुआरी थे। जुआरियों की दशा किसी से छिपी नहीं—उनसे कौन से पाप नहीं होते। आप पत्नी की और प्यारे बच्चों की चिन्ता त्याग, सदा द्यूत-क्रीड़ा में निमग्न रहते थे। कभी-कभी आपकी पत्नी और बच्चों को निराहार ही रहना पड़ता था। यद्यपि ब्राह्मणी सीधी-सादी स्त्री थी, पर बच्चों का कष्ट कैसे देख सकती थी ? जब वह ब्राह्मण-देवता से अपने और बच्चों के कष्ट की शिकायत करती, तब आप उन्हें भोजन-पानी देने के बदले मार-पीट कर सन्तुष्ट करना चाहते। क्रमशः ब्राह्मणी तिरस्कार और क्षुधा की पीड़ा सहते-सहते ऊब उठी। अन्त में एक दिन बच्चों को भाग्य-भरोसे छोड़, अफ़ीम खाकर सो रही। पुलिस को पता चला, उसने ब्राह्मणी की लाश अस्पताल भिजवाई। डॉक्टरों ने लाश की चीरा-फाड़ी की। परिणाम यह हुआ कि लाश ब्राह्मण देवता को दे दी गई, वे निरपराधी सिद्ध हुए और अब भी जन-साधारण के पूज्य बने हुए हैं !!

ये तीन घटनाएँ एक स्थान की हैं और तीन दिन के अन्दर की हैं ! अभागे भारत की छाती पर नित्य न जाने ऐसी कितनी घटनाएँ घटती होंगी। पुरुषों की बेदर्दी से स्त्रियाँ तो अपना त्रसित जीवन समाप्त कर डालती हैं; पर पुरुषों का कुछ नहीं होता ! यद्यपि क़ानूनन् पुरुषों को दण्ड मिलना चाहिए, पर कहने की आवश्यकता नहीं कि वर्त्तमान काल में न्याय का मूल्य कितना बढ़ा-चढ़ा है ! इस समय भारत में टके के भाव गवाह मिल जाते

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं और उनकी झूठी गवाहियाँ पुरुषों को निर्दोष सिद्ध कर देती हैं। सारा लाञ्छन स्त्रियों के मत्थे ही मढ़ा जाता है! उक्त घटनाओं के सम्बन्ध में मैंने किसी को पुरुषों की निन्दा करते नहीं सुना, सभी स्त्रियों पर ही लाञ्छन लगाते देखे गए! जब तक बेचारी जीवित रहीं, लाञ्छित होती रहीं और मर गईं तो भी लाञ्छन ने उनका पीछा न छोड़ा। किसी ने यह सोचने का कष्ट न उठाया कि यदि ये बेचारी दुराचारिणी होतीं, तो क्यों अपने जीवन का ऐसा दुखमय अन्त कर देतीं—किसी के साथ भाग कर न चली जातीं, फिर परिणाम चाहे जो होता। जिनमें आत्म-त्याग की ऐसी प्रबल भावना मौजूद थी, जिनमें सतीत्व का पवित्र विलास था, उन्हें ही अपनी थोड़ी सी आयु में पुरुषों के अत्याचार पर अपनी आत्माहुति देनी पड़ी, फिर भी उनका चरित्र सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है! हा दुर्दैव !!!

अस्तु, समाज के सामने मैं यह विचारणीय विषय प्रस्तुत करता हूँ। यह विषय ऐसा नहीं है कि उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाय! यदि अभी से स्त्रियों की इस आत्म-हत्या की प्रवृत्ति को रोकने का प्रयत्न न किया गया, तो इसमें सन्देह नहीं कि भविष्य में देश के लिए इसका परिणाम बड़ा ही घातक होगा। कम से कम इतना तो अवश्य होना चाहिए कि जिनके उत्पीड़न से स्त्री आत्म-हत्या करने के लिए विवश होती है, उन्हें समुचित दण्ड दिया जाय! अभी तो ऐसे अपराधी कदाचित् ९९ फ़ीसदी साफ़ बच जाते हैं। अस्तु, यदि मित्रवर सहगल जी की इच्छा हुई, तो मैं निकट-भविष्य में, इस विषय पर एक पुस्तक हिन्दी-संसार के समक्ष प्रस्तुत करूँगा।

—'एक मुस्लिम-हृदय'

* * *

वर्त्तमान शिक्षा और स्त्रियाँ

इधर कुछ वर्षों से भारतीय शिक्षित जनता का ध्यान स्त्री-शिक्षा के प्रश्न पर विशेष रूप से आकृष्ट हो रहा है, और प्रतिदिन जन-समुदाय हमारी बहिनों की शिक्षा की आवश्यकता और महत्ता को अनुभव करने लगा है, और परिणाम-स्वरूप अनेक महिलाओं ने उच्च से उच्च शिक्षा में पुरुषों से भी बाज़ी मार ली है। यद्यपि अभी उनकी संख्या बहुत न्यून है, किन्तु वर्त्तमान गतिविधि को दृष्टिगत करते हुए यही अनुमान होता है कि भविष्य में इस ओर सन्तोषप्रद प्रगति होगी। 'स्त्री शूद्रो नाधीयताम्' आदि कपोल-कल्पित वेद-वाक्यों का महत्व कुछ स्वार्थी और धर्म के दलालों तक ही परिमित है, विज्ञ जनता अब इस विषय को एक भिन्न दृष्टि से देखने लगी है। किन्तु ऐसे लोग यद्यपि तत्वतः स्त्री-शिक्षा के सर्वथा पक्ष में हैं, तथापि उनके हृदय में एक शङ्का है, और वह यह कि क्या वर्त्तमान शिक्षा हमारी पुत्रियों के लिए लाभप्रद होगी? उनकी इस शङ्का का महत्व यद्यपि एकदम समझ में नहीं आता, किन्तु ज़रा सूक्ष्मता से विचार करने पर उसमें एक बड़ा भारी तथ्य दृष्टिगत हुए बिना नहीं रहता। किसी भी वस्तु की उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता, लाभ व हानि तज्जन्य परिणामों से ही भली प्रकार अनुभव हो सकती है, अतः इस थोड़े समय में हमारी बहिनों पर किए गए वर्त्तमान शिक्षा के प्रयोगों के प्रभाव का सूक्ष्म अन्वेषण हमारे सम्मुख उक्त शङ्का का उत्तर स्पष्ट रूप से रख देगा। पाश्चात्य शिक्षा का जो प्रभाव हमारे बालकों पर पड़ा है, वह भी उपरोक्त प्रश्न के हल करने में सहायक हो सकता है।

भारतीय संस्कृति वर्त्तमान शिक्षा के अनुरूप है अथवा नहीं? जिस शिक्षा से अन्य देशस्थ लोगों को यदि लाभ हुआ है, तो क्या यह आवश्यक है कि हमारे लिए भी उक्त शिक्षा-पद्धति लाभप्रद सिद्ध होगी? तथा गत एक शताब्दी के शिक्षा के इतिहास व उसके परिणाम क्या सन्तोषप्रद हैं? आदि अनेक प्रश्न हैं, जिनका सन्तोषपूर्ण उत्तर हमें इस बात के निश्चय करने में सहायक होगा कि वर्त्तमान युनिवर्सिटियों तथा कॉलेजों की शिक्षा, भावी भारत की आदर्श माताओं तथा भगिनियों के निर्माण करने में समर्थ होगी अथवा नहीं?

कम से कम मैं अपने इस विद्यार्थी-जीवन के थोड़े से अनुभव से इसी परिणाम पर पहुँचा हूँ कि वर्त्तमान शिक्षा हमारी बहिनों के लिए अहितकर ही नहीं, किन्तु घातक सिद्ध होगी।

हम जिस भावी भारत के सुखमय स्वप्न देख रहे हैं, और जिनके निर्माता भावी सन्तति की ओर टकटकी लगा रहे हैं, उनकी पूर्ति वर्त्तमान शिक्षा-दीक्षा में पले

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हुए लड़के-लड़कियों से होना असम्भव-सा ही प्रतीत होता है। सम्भव है, पाठकों को मेरे इस विचार में कुछ अत्युक्ति दीख पड़े, किन्तु मैं अपनी तथा अपने सहपाठी भाई-बहिनों की अवस्था देख कर, इससे भी अधिक निराशापूर्ण भाव रखने में सङ्कोच नहीं करता।

आज मैं 'चाँद' के पाठक-पाठिकाओं के सम्मुख उपरोक्त विषय में कुछ और निवेदन करना चाहता हूँ, और इसी प्रकार देश के शिक्षा-प्रेमी तथा हामी सज्जनों की सेवा में भी एक चेतावनी रखना उचित समझता हूँ। मैं भली प्रकार जानता हूँ कि यह मेरी अनधिकार चेष्टा होगी, क्योंकि 'महिला' नामधारी किसी प्राणी की शिक्षा-दीक्षा के उत्तरदायित्व का एक शतांश भी मेरे अधिकार में नहीं है, विपरीत इसके प्रतिदिन मुझे अपनी सहपाठिन बहिनों के साथ ही कॉलेज में जाकर उस उच्च शिक्षा के साक्षात् अवतार अर्थात् प्रोफ़ेसर जी की ओर टकटकी लगाए, उनके श्रीमुख से बरसने वाली Cupid's College * की आदर्श महिला अथवा 'चाँद' की परिभाषा में महिला-रत्न Lamia the lovely graduate * की प्रेम-कहानी का Vivid picture अपने हृदय-मन्दिर में धूप-दीप नैवेद्य के साथ 'स्थापित' करना पड़ता है, अन्यथा मुझे और मेरी बहिनों को परीक्षा-रूपी 'यज्ञ' की आहुति बनना पड़ेगा। अस्तु—

फिर भी यदि मैं इस विषय में चेतावनी न सही, किन्तु अन्य किसी रूप में कुछ लिखूँ तो सम्भवतः वह 'मदाख़लत बेजा' न होगी। यह स्वाभाविक बात है कि जब किसी नवीन वस्तु का जन्म अथवा पुनर्जन्म होता है तो लोग उसकी ओर सर पर पैर रखकर भाग खड़े होते हैं, नवीन जोश और उत्साह में उनकी विचार-शक्ति की धारा बोथरी हो जाती है, और वे 'सूर-दासों' के समान उसका अनुकरण करने लगते हैं। हमारी वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली की प्रगति का इतिहास भी इसी का एक जीता-जागता चित्र अथवा चरित्र है। लॉर्ड मैकॉले ने जिस शिक्षा की परिभाषा करते समय अपने श्रीमुख के 'भोंपो' से कहा था कि यह शिक्षा भारत में एक Chemical change उत्पन्न करेगी, अर्थात् वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली में पले हुए लोग यद्यपि रङ्ग में काजल के समान, वेष में हिन्दू के समान, होंगे किन्तु मनोभावों में बिलकुल अङ्गरेज़ों के समान कोढ़ी (सफ़ेद) होंगे। बीसवीं सदी के शिक्षित भारतीयों के आचार-विचार तथा 'सिद्धान्त' (?) बिलकुल हमारे अनुकूल होंगे, उसी शिक्षा के पीछे लोग आज ऐसी दौड़ लगा रहे हैं कि मानो कोई नवीन मोटर भागी जा रही है।

लोकमान्य तिलक के शब्दों में इसे Evil necessity मानकर यदि हमें (लड़कों को) इसमें अपने जीवन को नष्ट करना अनिवार्य ही हो, तो मेरी मोटी समझ में यह बात नहीं घुसती कि हमारी बहिनों को क्यों इस 'अनिवार्य' रोग का शिकार बनाया जाता है। वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली का जो विषैला परिणाम देश के नवयुवकों के पिचके गालों, धँसी आँखों और झुकी कमरों पर दृष्टिगत हो रहा है तथा जिसके कारण आज हमारे देश की भावी आशाओं के अन्दर से स्वदेश-प्रेम, आत्म-सम्मान तथा सदाचार के आदर्श का ह्रास हो रहा है, जिस शिक्षा ने हमें एक दयनीय और वीभत्स स्थिति में ला पटका है, उसी मायाविनी से हमारी भावी माताओं तथा भगिनियों को बचाने का सुअवसर जानकर ही आज मैंने आपके सम्मुख कुछ पंक्तियाँ रखने का साहस या दुस्साहस किया है। कारण, अभी स्त्री-शिक्षा का श्रीगणेश है, यदि इसी समय हमारे उत्तरदायी नेताओं ने तथा उक्त विषय से सम्बन्धित उत्तरदायी लोगों ने, स्त्रियों की शिक्षा-प्रणाली व पद्धति को उचित व वाञ्छनीय मार्ग में नहीं मोड़ा तो सम्भव है कि आगे जाकर लड़कों की शिक्षा के समान यह रोग भी असाध्य जान पड़े और तब केवल पश्चात्ताप करके शान्त रहना पड़े। अतएव जिन्हें देश का भविष्य उज्ज्वल देखने की अभिलाषा है, जो यह चाहते हैं कि उनके सुख-स्वप्न की आशाएँ सत्य सिद्ध हों, उनके लिए यह समय उक्त प्रश्न को शान्त चित्त से मनन कर तदनुसार कार्य करने के लिए अत्यन्त महत्त्व का है। कारण, उस सुवर्णमय भविष्य की उत्पत्ति करने वाली सन्तति की निर्माता हमारी भावी माताओं की सृष्टि इसी समय में होगी, अतः यदि इस समय हमने आलस्य अथवा प्रमाद-वश इस प्रश्न पर विचार न किया, तो उसका दुष्परिणाम देश को अधिक काल तक भोगना पड़ेगा।

सम्भवतः मेरी उपरोक्त भावनाओं में किसी सूक्ष्म-

* उक्त दोनों वाक्य हमारी Text-book के हैं।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्रष्टा को स्त्री-शिक्षा का विरोध दीख पड़े, अतः उनकी दीर्घ शङ्का के निवारणार्थ मैं इतना ही कहकर अपने स्त्री-शिक्षा के प्रेम का प्रमाण देना चाहता हूँ कि यदि कभी मुझे भारत में कमाल पाशा-जैसा स्थान मिले, तो मैं सर्व-प्रथम लड़कियों की ही शिक्षा को अनिवार्य कर दूँ। यह बात दूसरी है कि वह शिक्षा किस प्रकार की होगी। इसी प्रकार मेरी कुछ माताएँ और बहिनें, शायद उपरोक्त बात से यह अनुमान लगावें कि उनके 'समानाधिकार के महायुद्ध' का यह विरोध है, किन्तु उनकी सेवा में भी मेरा इतना ही निवेदन है कि मेरा यह तात्पर्य कदापि नहीं है। माताओं के अधिकार पुरुषों के बराबर ही नहीं, किन्तु उनसे भी अधिक हैं; परन्तु यहाँ तो बात ही भिन्न है। यदि आज पुरुषों में शराब और अन्य दुर्व्यसनों का प्रचार हो, तो क्या हमारी बहिनें भी उसके लिए समानाधिकार की भित्ति पर माँग पेश करेंगी? मेरा उपरोक्त बातों के लिखने का केवल-मात्र इतना ही तात्पर्य है कि जिस आधुनिक शिक्षा ने हमारे आचार, विचार और शरीर में घुन लगा दिया, जिसने हमारे अन्दर से सदाचार का महत्व निकाल दिया, जिसने हमारे मनों में अपने पूर्वजों के प्रति हेय-भाव और घृणा का सञ्चार कर दिया, जिसने हमारा विराट् शरीर 'दो बाँसों पर हाँडी' के समान वीभत्स रूप में परिणत कर दिया, जिसके कारण आजकल हमें ३० और ३५ वर्ष की ही अवस्था में 'वृद्ध' होने का सौभाग्य प्राप्त होता है, जिसमें बॉयरन और शेक्सपियर की कल्पित रचनाओं के कारण आज हमें दिन में ही तारे दिखाई पड़ते हैं, वीर-रस के स्थान में शृङ्गार-रस जिसका माध्यम है और सच्चरित्रता तथा ब्रह्मचर्य के स्थान में आचार-विहीनता जिसका आवश्यक परिणाम है, जो शिक्षा आज हमारे अन्दर से दासत्व की मनोवृत्ति को निकालने में असमर्थ है, जो हमें अपना आदर्श बताने में असफल है, जो राष्ट्रीय भाषा की प्रगति में बाधक है, जो हमारी मानसिक और शारीरिक शक्ति को विकसित नहीं कर सकती, जिसका उद्देश्य केवल-मात्र 'क्लर्क' उत्पन्न करना है, जो हमें देशभक्ति के नशे में मस्त करने में असमर्थ है, ऐसी शिक्षा देकर कम से कम हमें अपनी बहिनों का जीवन नष्ट न करना चाहिए। उन्हें डिग्रियाँ लेकर क्लर्की नहीं करनी है, बल्कि उनके सिर पर भावी राष्ट्र के निर्माण का बड़ा भारी उत्तरदायित्व है। उनको उसी के अनुकूल शिक्षा देना जितना अधिक आवश्यक है, उतना ही वर्त्तमान विषैली शिक्षा से बचाना भी आवश्यक है। यह ध्रुव-सत्य है कि शिक्षित माताएँ ही प्रताप और शिवाजी उत्पन्न कर सकती हैं। भावी सन्तति—जिस पर राष्ट्र का भविष्य स्थिर है—शिक्षित माताओं द्वारा ही निर्मित होंगी, किन्तु इसके लिए वर्त्तमान शिक्षा प्रतिकूल ही नहीं, किन्तु घातक भी है। मैं दावे से कह सकता हूँ कि वर्त्तमान शिक्षित बी० ए० और एम० ए० माताओं में से ९५ प्रतिशत की सन्तानें अधिक निर्बल, अधिक रोगी, अधिक निरुत्साही तथा अधिक अयोग्य होंगी। जब आप मानते हैं कि वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली में भुने हुए युवकों की सन्तानें उपरोक्त दोषयुक्त हैं, तो यह बात स्पष्ट है कि जब माता-पिता दोनों ही समान होंगे तो उसका परिणाम अधिक हानिकारक होना अनिवार्य है। हो सकता है, देवी सरोजिनी आदि के समान वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली में पली कुछ माताएँ अधिक योग्य हों, किन्तु कितनी? और वह भी आजकल की शिक्षा का परिणाम न होगा, उसमें उनकी अपनी ही दैवी शक्ति कारणीभूत होगी। मैं बनारस-विश्वविद्यालय में पढ़ता हूँ, मेरे ही साथ यहाँ अनेक बहिनें भी हैं, और सम्भवतः कुछ दिनों में उनके पढ़ने का अलग प्रबन्ध भी हो जाय, किन्तु प्रश्न साथ या अलग पढ़ने का नहीं है, प्रश्न है उस शिक्षा का जो उन्हें और हमें दी जाती है। यदि शान्ति-पूर्वक विचार किया जाय तो प्रत्येक मनस्वी इस बात को अनुभव करे बिना न रहेगा कि वर्त्तमान शिक्षा ने हमारे देश के युवकों की जो हीन अवस्था कर रक्खी है, वह हमारी बहिनों के लिए कदापि वाञ्छनीय नहीं है। इसके विपरीत उनके लिए उस शिक्षा की आवश्यकता है कि जिसके द्वारा वे भावी भारत के निर्माण में सहायक हो सकें। यूनिवर्सिटी की डिग्रियों की उनको उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी कि वास्तविक शिक्षा की। उनके लिए झूठे इतिहास और संसार भर के भूगोल के ज्ञान की अपेक्षा व्यावहारिक और गृह-सम्बन्धी ज्ञान की अधिक ज़रूरत है।

बॉयरन और कीट्स की शृङ्गाररस-पूर्ण कविताओं की अपेक्षा उनके लिए रामायण और महाभारत के पातिव्रत्य धर्म के आदर्श अधिक लाभप्रद हैं, जामिति और बीज-

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गणित में शक्ति व्यय करने की अपेक्षा चिकित्सा-विज्ञान और सन्तान-शास्त्र की शिक्षा उनके लिए अधिक उपयोगी

कुमारी ए० जे० वाचा, बी० ए० (ऑनर्स)

आप इस साल सम्मान-सहित कर्नाटक-कॉलेज से बी० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाली सर्व-प्रथम महिला-रत्न हैं।

है। मेरा यह तात्पर्य कदापि नहीं कि उनको इन सब विषयों की आवश्यकता ही नहीं, किन्तु उनके लिए प्रथम अपने मुख्य उत्तरदायित्व का पालन करना अधिक श्रेयस्कर है।

प्रत्येक उन्नत राष्ट्र की कन्याएँ सर्वप्रथम सन्तति-पालन, अतिथि-सत्कार, अपने पुत्रों और भाइयों को स्वास्थ्य और सदाचार की शिक्षा देना, तथा अपने स्वधर्म और स्वदेशी आदर्शों से उनको परिपूर्ण करना अधिक महत्वपूर्ण समझती हैं। वर्त्तमान कॉलेजों में पढ़ कर हमारी बहिनों के स्वास्थ्य का जो भयानक ह्रास होता है, वह बड़ा ही चिन्तनीय है। निर्बल माताओं की सन्तान की शारीरिक शक्ति का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। कॉलेजों की पाठ्य-पुस्तकों में और विशेषकर अङ्गरेज़ी टेक्स्ट-बुकों में हमारे सदाचार के आदर्श के विरुद्ध पाठ पढ़ाए जाते हैं। उन शृङ्गार-रस की कविताओं से उत्पन्न हुए प्रभाव का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। अस्तु—

मेरी यही धारणा है कि हमारी बहिनों के लिए शिक्षा-क्रम इससे सर्वथा भिन्न होना चाहिए, हमारे संरक्षकों और माता-पिताओं को केवल डिग्रियों के पीछे पागल बनकर, अपने पुत्रों के समान अपनी पुत्रियों के जीवन को भी निस्सार और नष्ट न करना चाहिए। सबसे अधिक शोक तो इस बात का है

श्रीमती एम० सोरावजी

आप कैनानोर-म्युनिसिपैलिटी के भूतपूर्व चेयरमैन श्री० मानिकजी सोरावजी प्लीडर की धर्म्म-पत्नी हैं। आप कैनानोर की स्पेशल मैजिस्ट्रेट नियुक्त हुई हैं।

कि बनारस हिन्दू-यूनिवर्सिटी-जैसी राष्ट्रीय संस्थाओं को भी ऑक्सफ़र्ड और केम्ब्रिज की होड़ करने की धुन सवार

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। क्या यदि वे चाहें तो अपना पाठ्यक्रम देश और जाति के लिए उपयोगी नहीं बना सकतीं? सरकारी शिक्षा-संस्थाओं और राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं—यहाँ तक कि राष्ट्रीय यूनिवर्सिटी तक के पाठ्यक्रम में कोई भेद नहीं है। मेरी समझ में इन शिक्षणालयों का एकमात्र राष्ट्र के लिए उपयोग उनके राष्ट्रीय पाठ्यक्रम में ही हो सकता है।

कुमारी एम० लूनिस

आप मदुरा की बाल-रक्षा-समिति की सुपरिन्टेन्डेण्ट नियुक्त हुई हैं

जाने दीजिए, यदि थोड़ी देर के लिए वर्त्तमान भ्रष्ट परिस्थिति में लड़कों के लिए कोई विशेष परिवर्त्तन करना वाञ्छनीय न हो, तो कम से कम लड़कियों को तो उस पतन की ओर जाने से बचाने के लिए अभी पर्याप्त समय तथा अच्छा अवसर है, अन्यथा जब लड़कों के समान उनकी शोचनीय अवस्था को देख कर लोगों की आँखें खुलेंगी, तब उन्हें अपनी भूल प्रतीत होगी। लड़कों की अवस्था तो बिगड़ ही गई है, अब यह समाज के हाथ में है कि अपनी पुत्रियों को भी वैसा ही बनावे अथवा उससे बचावे। अतः जहाँ हम स्त्री-शिक्षा के लिए सर्वत्र प्रयत्न करें, वहाँ हमें उनके लिए भिन्न पाठ्यक्रम का भी ध्यान रखना चाहिए, तभी भारतीय स्त्रियों की शिक्षा से उन्हें तथा देश को लाभ हो सकता है। देश का भविष्य भावी सन्तान पर निर्भर है, और भावी सन्तति का निर्माण हमारी माताओं पर। ऐसी अवस्था में यह स्पष्ट है कि हमारी बहिनों की शिक्षा-दीक्षा तथा आचार-व्यवहार का कितना महत्व है। आशा है कि विज्ञ-समाज इस बात को ध्यान में रख कर स्त्री-शिक्षा की उन्नति में अग्रसर होगा।

—डी० बी० बावले

* * *

पण्डिता धर्मशीला

श्रीमती धर्मशीला जायसवाल पटने के नामी विद्वान् श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल-विद्यामहोदधि बैरिस्टर की द्वितीय पुत्री हैं। धर्मशीला जब ४ वर्ष की अवस्था की थीं, उसी समय अपनी इच्छा से अपनी अग्रजा के साथ स्कूल जाने लगीं। वे अपने स्कूल में सबसे नन्हीं बालिका थीं। ११ वर्ष की अवस्था तक कानवेण्ट स्कूल में पढ़ती रहीं। तत्पश्चात स्कूल छोड़ कर, घर पर अध्ययन कर अपने पिता से मैट्रिक पास करने की अनुज्ञा ले १२ वर्ष की उम्र में मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास कर डाली। फिर घर पर ही अध्ययन कर १४ वर्ष की आयु में एफ़० ए० पास किया, और गत मार्च में कलकत्ता-विश्वविद्यालय की बी० ए० परीक्षा १६ वर्ष के वय में नामवरी (Distinction) के साथ पास किया। परीक्षा में आपको फ़िलॉसफ़ी (दर्शन) में सौ में ७० और अङ्गरेज़ी में ७२ अङ्क मिले। कुल साढ़े बारह सौ छात्र

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में सवा सौ छात्रों को "डिस्टिङ्क्शन" मिला। इनमें धर्मशीला को लेकर ८ लड़कियाँ हैं। धर्मशीला ही उम्र में सबसे छोटी हैं। इतनी कम उम्र की ग्रेजुएट भारतवर्ष में दूसरी बहिन नहीं है।

धर्मशीला केवल बी० ए० ही नहीं, पण्डिता हैं, संस्कृत में श्लोक-रचना कर लेती हैं। चित्र-विद्या में बहुत चतुर हैं। क़लमी तसवीर बहुत सुन्दर बनाती हैं।

एम० ए० की परीक्षा देकर यह फ़िलॉसफ़ी डॉक्टर की और बैरिस्टरी की परीक्षा देने इङ्गलैण्ड जायँगी। गत २२ सितम्बर को इनका विवाह बाबू चन्दलाल जी, बी० ए० के साथ हुआ है। वह पूर्निया के राजा पृथ्वीचन्द लाल के भतीजे हैं, और इङ्गलैण्ड सिविल-सर्विस परीक्षा के लिए गए हैं।

यह विवाह वैदिक रीति से संयुक्त, नए क़ानून से रजिस्टरी होकर हुआ है। हिन्दुओं के विवाह भी रजिस्टरी द्वारा हों, यह क़ानून सर हरिसिंह गौड़ ने पास कराया था। इसके अनुसार विवाह करने वाले बहु-विवाह नहीं कर सकते और उनकी लड़कियाँ भी अपने भाइयों के साथ दाय (हिस्सा) बपौती में पाएँगी।

इस विवाह के साक्षी (रजिस्टरी के समय) पटना-हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस, श्रीमती मनोहरलाल, धर्मपत्नी पण्डित-प्रवर रामावतार शर्मा साहित्याचार्य, सर अली इमाम और प्रसिद्ध बैरिस्टर मिस्टर के० बी० दत्त थे। धर्मपत्नी मनोहरलाल जी बिहार में परदा उठा देने वाले स्त्री-समाज की नेत्री हैं। आप मुज़फ़्फ़रपुर के रईस स्वर्गीय राय परमेश्वर नारायण मेहता की पुत्री और मिस्टर मनोहरलाल बैरिस्टर की पत्नी हैं। श्रीयुत रामावतार शर्मा और धर्मशीला के पिता में गाढ़ी मित्रता है। पण्डित जी की धर्मपत्नी ने अपनी पुत्रियों-सहित मण्डप में बैठ, यह विवाह करा स्त्री जन को मानो यह शिक्षा दी कि वैदिक विधि में विवाह के लिए समय का निषेध नहीं है। उन्हीं के परामर्श और सहयोग से यह शुभकार्य सम्पादित हुआ। पण्डित धुरेन्द्र शास्त्री ने विवाह-विधि सम्पन्न कराई और मन्त्र सब श्रोताओं को समझाते गए।

हमें यह समाचार देते हुए अपार आनन्द है। आशा है कि बहिन धर्मशीला की शिक्षा तथा विवाह का आदर्श लेकर हमारी अन्धकार में गिरी हुई बहिनें अपनी उन्नति करने का प्रयत्न करेंगी तथा समाज की कुप्रथाओं को दूर करने के लिए अग्रसर होंगी। साथ ही मुझे इस बात का भी गर्व है कि यह गौरव बिहार को ही प्राप्त है। ईश्वर से प्रार्थना है कि युगल दम्पति चिरायु होकर हमारे देश का गौरव बढ़ावें।

—इन्दुमती तिवारी

श्रीमती श्रीराम भागीरथी अम्मल

आप चिंगलपेट (मद्रास) के ज़िला शिक्षा-परिषद् की सभासद चुनी गई हैं।

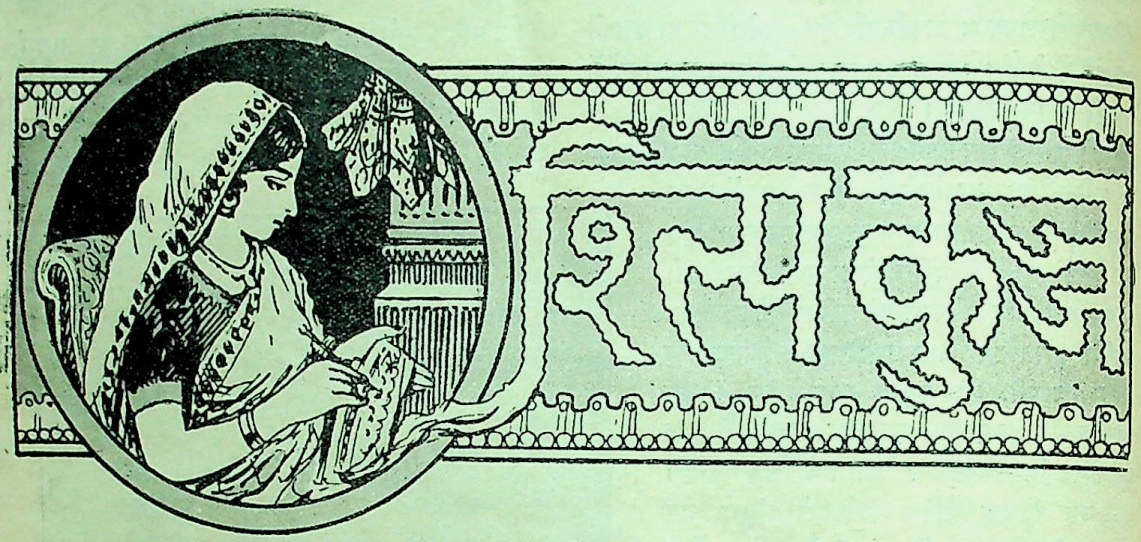

[ले० कुमारी शीरीं क़ाज़ी]

क्रोशिए के काम का कुत्ता

इस कुत्ते को हम क्रोशिया से बिन कर तकिया-गिलाफ़ या किसी और चीज़ पर बना सकते हैं और Cross stitch से भी कपड़े पर बना सकते हैं, विधि इतनी सरल है कि बतलाने की आवश्यकता नहीं।

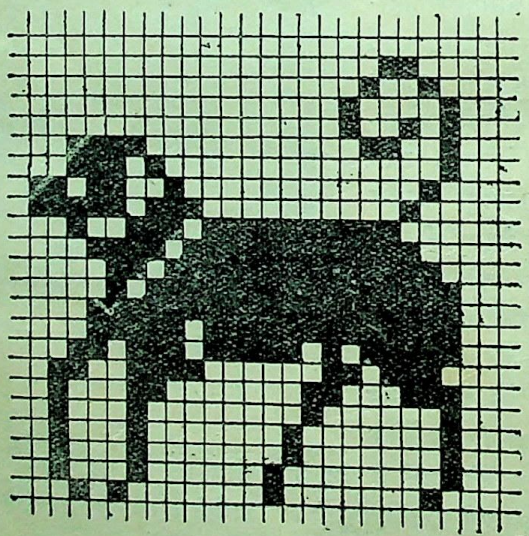

कुत्ते का नमूना

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[ले० श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

(सितम्बर से आगे)

लतखोरीलाल

(५)

ईश्वर सलामत रक्खे मेरे मैले रूमाल और मेरी चवन्नी को, जिनकी बदौलत किसी तरह आबरू बचाता और चने कुड़कुड़ाता इस लम्बे सफ़र को मैंने बहुत-कुछ तय कर डाला। रास्ते में कैसी-कैसी आफ़तें झेलीं, पैरों में कितने-कितने बड़े फफोले पड़े—यह सब श्रीमती जी से मिलने के मनसूबों में मैं भूला हुआ था। क्योंकि पाँचवें दिन मैं उनसे सिर्फ़ चार ही कोस के फ़ासले पर था। मगर भाई पेट अजब चीज़ है, यह किसी तरह से भी नहीं भुलाया जा सकता। जब से चवन्नी ख़तम हो गई, तब से इस कम्बख़्त ने क़दम-क़दम पर नाक में दम कर दिया। सूरत भिखमङ्गे से भी बत्तर हो रही थी, क्योंकि बदन पर रूमाल की सिर्फ़ तीन अङ्गुल चौड़ी पट्टी के कुछ भी न था। चेहरे पर भूख और थकावट से हवाइयाँ उड़ रही थीं। उस पर पाँच रोज़ की दाढ़ी ने उसे और भी ख़बीस बना के मुझे बिलकुल बनमानुष बना रक्खा था। भीख माँगने के लिए उससे बढ़ कर और धजा क्या हो सकती है? मगर माँगने का हुनर कहाँ? क्या करता? एकाध राही से मुठभेड़ हो जाती थी। वे लोग मुझे ख़ूब घूर कर देखते थे। जी बहुत चाहता था कि इनसे एक पैसा माँग लूँ, मगर कलेजा मसोस कर आँखें नीची कर लेता था। अब मालूम हुआ कि इसके लिए भी बड़ी हिम्मत और योग्यता की दरकार है। हमारे नेताओं ने इस फ़न को ज़रूर ही ख़ूब सीखा होगा, तभी यह लोग बात की बात में किसी न किसी बहाने हज़ारों रुपए इकट्ठा कर लेते हैं। मगर मैं बेवक़ूफ़ अपने पेट की ख़ातिर एक पैसा भी किसी से नहीं माँग सका—महज़ अपने अनाड़ीपन की वजह से।

कुछ दूर और चलने के बाद देखा कि दो शिकारी सड़क के किनारे एक पेड़ के नीचे बैठे कटोरदान सामने रक्खे कुछ खा रहे हैं। मुल्की मामलात पर आपस में बड़े जोश के साथ बहस भी करते जाते हैं। मगर मेरा ध्यान उनकी बातों पर न था। यहाँ तो सारा बदन, आँख, नाक, कान—सभी अपना-अपना काम छोड़ कर पेट से जा मिले थे। उसी की हमदर्दी में लगे हुए थे। यहाँ तक कि ख़ुद भी

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पेट ही पेट हो रहे थे। क्योंकि मैं चौबीस घण्टों का भूखा था, तो मैं किसी की बातें सुनने के लिए अपने किस अङ्ग से काम लेता? तबीयत में तो बस यही थी कि किसी तरह कटोरदान लेकर भाग चलूँ। चोरी या सीनाज़ोरी कभी नहीं की थी। मगर अब मुझे यक़ीन हो गया कि लोग चोरी क्यों करते हैं।

मैं चुपचाप उनके पास जाकर बैठ गया, फिर भी चोरी की नीयत से नहीं। जब भीख माँगने में नानी मर रही थी तो भला चोरी करने के लिए इतना बड़ा कलेजा कहाँ से लाता? मैं तो सिर्फ़ पेट के हुरपेटने से वहाँ चला गया था। आदमी भलेमानुष मालूम होते थे, इसलिए समझता था कि तर्स खाकर कुछ न कुछ मुझको भी देंगे। मगर वे लोग अपनी धुन में ऐसे मस्त थे कि कम्बख़्तों ने आँख उठा कर भी नहीं देखा। खाना ख़तम भी हो चला, और किसी वक़्त में अगर किसी ने मुझे जूठन खाने के लिए कहा होता तो उसे मैं बिना मारे न छोड़ता। मगर इस वक़्त यही जूठन मुझे अमृत की तरह दिखाई दे रही थी।

आख़िर कब तक सब्र करता। मगर फ़िक्र यह हुई कि खाना माँगूँ तो किस तरह से? पेट चिल्ला रहा था, मगर ज़बान तो तालू से सटी हुई थी। बार-बार उसे हिलाने की कोशिश करता रहा, मगर कम्बख़्त अपनी जगह से टसकती ही न थी। बड़ी मुश्किलों से पेट पकड़ कर, कलेजा थाम कर, बहुत-कुछ सोच-विचार कर मुँह खोला तो बड़े धीमे सुरों में लड़खड़ाता हुआ सिर्फ़ इतना ही बोल सका—"भाई साहब!"

दोनों शिकारियों का मिज़ाज बिगड़ गया। दोनों ही ने एक साँस में डाँट दिया। उसके बाद एक ने फटकारना शुरू किया—"क्यों बे गधे, तमीज़ से बातें नहीं करता? हम तेरे भाई होने लायक़ हैं? हरामज़ादे! यह सूरत और यह हौसला! भाग, नहीं मारते-मारते कचूमड़ निकाल दूँगा।"

अब ख़्याल हुआ कि मेरी धजा भिखमँगों की सी है और मुझे भिखमँगों की तरह बातचीत करनी चाहिए। इसलिए अपनी ग़लती सुधारता हुआ अपनी ग़रज़ यों ज़ाहिर की; क्योंकि साफ़-साफ़ शब्दों में बिना आदत के भीख माँगते किसी तरह भी नहीं बन पड़ता—चाहे आज़मा के कोई देख ले।

मैं—मैं ग़रज़मन्दा हूँ। अपनी ग़रज़ में अन्धा हो रहा हूँ। मैंने जान-बूझ कर आपका अपमान (insult) नहीं किया। अपनी ग़लती की माफ़ी चाहता हूँ। मैं रोज़ी की तलाश में हूँ। अगर आप मेहरबानी करके अपनी बन्दूक़ वग़ैरह ले चलने के लिए मुझे क़ुली बना लेंगे तो मैं अपने पेट की आग बुझा सकूँगा और आपको बड़ी दुआएँ दूँगा।

दोनों चकरा कर मेरा मुँह देखते हुए जल्दी-जल्दी अपना सामान बटोरने लगे।

एक ने घबड़ाकर कहा—मैं पहचान गया जनाब आपको। मगर आप हम लोगों के पीछे नाहक़ पड़े। आप सी० आई० डी० के आदमी (जासूस) हैं, तो जाइए किसी चोर-बदमाश का पता लगाइए। देशभक्तों का पीछा करके क्यों अपनी औक़ात ख़राब करते हैं। मुल्की मामलात पर जैसी बातें हम लोग कर रहे थे, वैसी तो अब आजकल सभी किया करते हैं। मगर इससे यह थोड़े ही साबित होता है कि हम लोग सरकार के दुश्मन हैं?

दूसरा—एक नसीहत मेरी भी सुन लीजिए। वह यह कि जब कभी आपको भिखमँगे का रूप धरना हो, तो खोपड़ी पर अङ्गरेज़ी बाल, उँगली में सोने की अँगूठी और ज़बान में शीन-क़ाफ़ की दुरुस्ती न रक्खा कीजिए, वरना इसी तरह हर जगह आपका भण्डा फूट जाया करेगा।

इतना कह कर वे दोनों अपना सामान लादे तेज़ी के साथ चल दिए, और मैं अपना-सा मुँह लेकर रह गया। वही मसल हुई कि 'जहाँ जाय भूखा वहीं पड़े सूखा।' मगर ख़ैर, इस मुसीबत की अँधियारी में अँगूठी का ख़्याल एकाएक उदय होकर मुझ मुर्दे को मरने से बचा लिया। इसकी मुझे ज़रा भी याद न थी, वरना इसे औने-पौने दामों पर बेच कर इतनी मुसीबतें काहे को झेलता? ख़ैर, अब सही। गोकि अब मकान सिर्फ़ तीन ही कोस के फ़ासले पर था, फिर भी अँगूठी बेचने का पक्का इरादा कर लिया; क्योंकि बिना कुछ खा-पीकर अपनी सूरत पर की फटकार दूर किए श्रीमती जी के सामने किस तरह जा सकता था? भला वह ऐसी शकल पर कब निगाह उठाना गवारा कर सकती थीं? उन्हें हमारी मुसीबतों से क्या मतलब? यही जो उन्हें ख़्याल

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होता तो आज तक वह मिलने से परहेज़ करके मुझे यों कुत्ते की मौत मारतीं ?

इतने में ही एक जवान अकड़ता हुआ उधर से निकला। दिल में समझ लिया कि आदमी है शौक़ीन और यह ज़रूर मेरी अँगूठी ख़रीद लेगा। इसलिए झट हाथ में अँगूठी लेकर मैं उसके पास गया।

मैं—यह अँगूठी बिकाऊ है। बहुत सस्ते में दे दूँगा। लेना चाहो तो ले लो।

जवान ने अँगूठी अपने हाथ में लेकर पूछा—यह किसकी है ?

मैं—मेरी है ?

उसने आव देखा न ताव, बस धड़ से एक तमाचा मेरे मुँह पर रसीद किया।

जवान—क्यों बे, यह तेरी है ? तेरे बाप ने भी ऐसी अँगूठी कभी देखी थी ? चोर कहीं का, तू पुलिस के आदमी को धोखा देता है ? जानता नहीं, मैं पुलिस का हवलदार हूँ। चल थाने पर। अब तुझे मैं कहाँ छोड़ने का ? आज ही तो बचा, चोरी करने का मज़ा पाओगे।

हाय ! बाप रे बाप ! तमाचे से ख़ाली गाल ही लाल हुए, मगर पुलिस का नाम सुनते ही मेरा सारा बदन काँप उठा, प्राण सूख गए ; क्योंकि भाई यमराज से भी मैं उतना नहीं डरता हूँ, जितना पुलिस से। कोई मुझे डरपोक भले ही कहे, मगर भाई असल बात तो यह है कि अगर मेरे सगे बाप भी पुलिस के आदमी होते तो उनसे भी मैं इसी तरह डरता, बल्कि पैदा होते ही आँख बन्द करके फिर अल्ला मियाँ के पास चल देता। क्योंकि यदि किसी वक़्त अब्बा जान को कोई मामला न मिलता तो वे मुझे ही जेलख़ाने भिजवाने का इन्तज़ाम कर बैठते। और कहते कि बेटा, मैं अपनी आदत से मजबूर हूँ। क्या करूँ ? मेरे पास फाँसने के लिए हज़ारों दफ़ाएँ हैं, मगर इस वक़्त कोई कम्बख़्त चालान करने के लिए नहीं मिलता। इस आड़े वक़्त तुम्हीं काम आ जाओ। तुमसे बढ़कर मेरा कौन हो सकता है ? इसीलिए यह मेहरबानी तुम पर कर रहा हूँ।

मैं पुलिस का नाम सुनते ही अँगूठी छोड़-छाड़, सर पर पाँव रख कर खेतों की ओर भागा। इस मरी हुई हालत पर भी मैं भागता ही गया और डेढ़ मील तक पीछे मुड़ कर देखने का नाम न लिया। मगर सड़क छूट जाने के कारण खेतों से शहर पहुँचने का रास्ता मालूम ही न था, और उस हवलदार के मारे सड़क पर जाने की हिम्मत नहीं पड़ती थी।

बड़ी देर तक इधर-उधर भटकता रहा। आख़िर शाम हो चली। मैं बहुत घबड़ाया कि कहाँ जाऊँ, किससे राय पूछूँ। इतने में एक गाड़ीवान अपनी बैलगाड़ी खेतों में फँदाता हुआ, बैलों की पूँछ उमेठता हुआ बड़ी तेज़ी से एक मोड़ पर से सामने आया। मैंने लपक कर उससे पूछा—भाई, शहर अब कितनी दूर है ?

गाड़ीवान—आँधर हो। वह देखो घन्टाघर दिखाई देत है। बस अब कोस भर होई, मुला ए साइत बोलो मत, हमार जान साँसत में पड़ा है।

मैं—वहाँ पहुँचने का रास्ता कौन है ?

गाड़ीवान—तुरे रस्ता में आग लगे। हमरे मरे-जीए पर लाग है, अउर तू रस्ता पूछत हो। काव कही, एक ससुर बदमास लरिका हमरे गाड़ी के सामने फाट पड़ा। तौन तनी चोटाय गा है। वही सार हुआँ पड़ा हल्ला मचाए है। अब्बै गउँवा वाले सुनिहें तो हमका मारिन डरिहें। यही लिए हाली किए हन। कवनो जतन से यह आगे वाला नारा पार कइ लेई तौ हमरे जीव में जीव आवे और तू का तब रस्ता बताई।

मैं—अच्छा, तो भाई मुझे अपनी गाड़ी पर बैठाल ले। मैं पीछे देखता रहूँगा कि कोई आता तो नहीं है।

गाड़ीवान—भले कह्यो। अच्छा आय जाव। जैसे कोई का आवत देख्यो वइसे बतायो।

अन्धा चाहे दो आँखें। मारे थकावट के मैं योंही गिरा पड़ता था और उधर श्रीमती जी से मिलने के लिए अलग मरा जा रहा था। इसलिए गाड़ी पर बैठते ही निहाल हो गया। मैंने लम्बी तान दी और श्रीमती जी से मिलने के मनसूबे करने लगा। इसी तरह हम लोग नाले पर पहुँच गए। इतने में एकाएक बड़े ज़ोर का शोर हुआ। गाड़ीवान कूद कर भाग खड़ा हुआ, बैल बौखला कर गाड़ी लिए नाले में घुसे। मैं आठ-दस आदमियों को लाठी लिए पीछे दौड़ते देख कर गाड़ी के पेंदे में और दबक गया। मगर गाड़ी कम्बख़्त बीच नाले में पहुँच कर एक गड्ढे में जा पड़ी। और मुझे लिए-दिए भचाक से एकदम उलट गई।

(क्रमशः)

(Copyright)

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

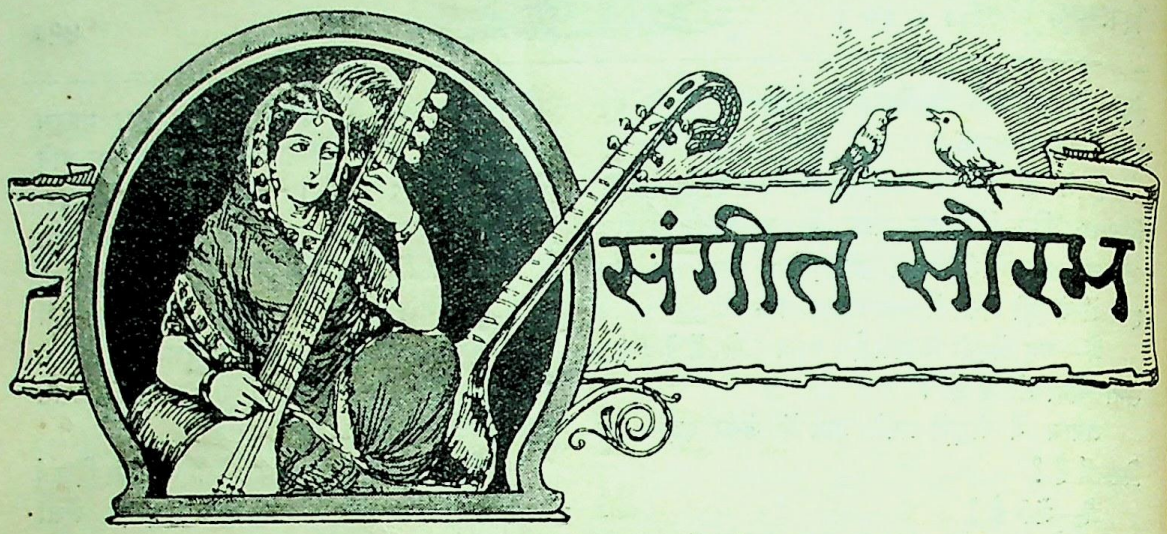

[सम्पादक—श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय (नीलू बाबू)]

रामकली

(त्रिताल, १६ मात्रा)

[शब्दकार तथा स्वर-लिपिकार—पण्डित केदारनाथ जी 'बेकल' बी० ए०, एल्-टी०]

बरजो री लालनवा माई,
भरन ना दे गगरिया मोको,
कौन भाँति बचाऊँ लजिया।
ढीठ लँगरवा,
सदा श्याम पनघट पर रोके,
लगावे छतियाँ 'बेकल' मनहरवा॥

स्थायी

	०				१				×				३	
ध़	प	म	प	ध़	प	म	ग	म	ग	म	--	नध़	—	ध़	—
व	र	जो	—	—	री	ला	—	ल	न	वा	—	मा	—	—	—
०					०		०	०			०				
स	—	ध़	—	—	स	न	स	ऱ	स	न	स	—	ऱ	ऱ	ऱ
ई	—	—	—	—	भ	र	न	न	दे	—	—	—	ग	ग	रि
स	—	स	न	स	—	स	—	स	ग	मग	म	प	—	ध़	—
या	—	मो	० —	को	—	कौ	—	न	भाँ	—	त	ब	—	चा	—
ध़	—	ध़	ध़	प	—	प	म	प	प	प	प	म	प	नध़	—
ऊँ	—	ल	जि	या	—	ढी	—	ठ	लँ	ग	र	वा	—	—	—

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्तरा

								ध	ध	ध	न	० स	० स
								स	दा	—	श्या	—	म
० स	० स	० स	० र	० र	० स	न	—	० स	—	ध	० स	न	० स	—	र
प	न	ध	ट	प	र	रो	—	के	—	ल	गा	—	वे	—	छ
—	र	स	—	० स	न	० स	० स	० र	० स	न	० सन	० स	न	ध	—
—	ति	याँ	—	वे	—	क	ल	म	न	ह	र	वा	—	—	—

राग-विवरण—भैरव ठाठ का औडव-सम्पूर्ण राग। आरोह में, म और न वर्जित, अवरोह सम्पूर्ण। र और ध कोमल। गाने वाले कभी-कभी दोनों निषादों का प्रयोग भी करते हैं। ध वादी, र संवादी, दूसरी मत से ग वादी और प संवादी। प्रातःकाल गाना चाहिए।

* * *

राग मालश्री ३ ताल

[स्वरकार तथा शब्दकार—श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय (नीलूबाबू)]

स्थायी—मोहन मोसे करत रार,
जाओ जी कान्हा अपने द्वार।
अन्तरा—ऐसे हो तुम नन्द के छैल,
बाट चलत मोरी रोकत गैल।
आँचल पकड़त बहियाँ न माने,
सुघर पिया करत रार॥

स्थायी

०				१				×				३			
स	ग	ग	त पम	प	ग	—	—	स	ग	ग	० नि	—	स	—	—
मो	ह	न	मोओ	ओ	से	—	—	क	र	त	रा	—	र	—	—
ग	प	० स	नि	० स	पं	—	ग	प	ग	० नि	—	स	—	—	—
जा	ओ	जी	कां	आ	न्हा	—	अ	प	ने	द्वा	—	र	—	—	—

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्तरा

ग	—	ग	—	प	ग	नि	नि	सं	—	सं	सं	नि	—	सं	—
ऐ	—	से	—	हो	ओ	तु	म	नं	—	द	के	छै	—	ल	—
नि	—	नि	नि	प	प	ग	प	सं	—	नि	नि	प	ग	ग	—
बा	—	ट	च	ल	त	मो	री	रो	—	क	त	ग	ए	ल	—
सं	सं	सं	नि	नि	प	प	ग	—	प	प	ग	—	स	—	—
आँ	च	ल	प	क	ड़	त	वहि	—	या	न	मा	—	ने	—	—
स	ग	ग	प	त म	प	ग	—	स	ग	ग	नि	—	सं	—	—
सु	घ	र	पि	इ	इ	या	—	क	र	त	रां	—	र	—	—

नोट :—ओढव राग ध, रे वर्जित, म तीव्र, बाक़ी शुद्ध स्वर।

नौकर—मुझे आपके यहाँ काम करते हुए दो साल होगए, मैं दो आदमियों का काम करता रहा हूँ, अब आप मेरी तनख़्वाह बढ़ाइए।

मालिक—तनख़्वाह तो मैं बढ़ा नहीं सकता; पर जिन दो आदमियों का तुम काम करते रहे हो, उनके नाम बता दो तो मैं उन्हें खड़े-खड़े निकाल सकता हूँ।

*
**

"तुम्हें मालूम है कि कल एक जहाज़ डूबने की ख़बर आई है?"

"मालूम क्या, मैं ही तो एक आदमी हूँ, जो बचा हूँ।"

"कैसे?"

"मैं उस जहाज़ पर जाने वाला था, पर देर हो जाने के कारण मुझे वह नहीं मिला।

*
**

किराएदार—देखिए जनाब, रात भर कमरे की छत टपकती रही, तमाम कपड़े भीग गए।"

मकानदार—छत टपकती रही! यह कैसे? यह छत कभी नहीं टपक सकती।

किराएदार—तो शायद अपनी दुर्दशा पर रोती रही हो।

"कल तुमने जो दूध दिया था, वह दूध नहीं, पानी था।"

दूधवाला—पानी होता तो सफ़ेदी कैसे होती, पानी में कहीं सफ़ेदी होती है?

*
**

दो बहरे रास्ते में मिले। एक ने कहा—कहो, क्या घूमने जा रहे हो?

दूसरा बहरा—नहीं, घूमने जा रहा हूँ।

पहला बहरा—अच्छा, मैं समझा शायद घूमने जा रहे हो।

*
**

पुत्र—पिता जी, कल मैंने एक स्वप्न देखा। मैंने देखा कि मेरा विवाह हो रहा है। अकस्मात मैं उठकर खड़ा होगया और मैंने कहा—मैं विवाह नहीं करूँगा, फिर मैंने विवाह नहीं किया। इसका क्या अर्थ है।

पिता—इसका अर्थ यह है कि सोते में तुम्हारी बुद्धि जागते की अपेक्षा अधिक ठीक रहती है।

*
**

मोहन—अरे भाई सोहन, हमने सुना है कि तुम्हारे उस दिन कोड़े लगे थे।

सोहन—सच है। मुझे तो उसी समय मालूम हो गया था।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह उपन्यास

[लेखक—'पागल']

दूसरा खण्ड

(सितम्बर से आगे)

अलिन्द

कहने को मैं 'अलिन्द' नाम का बड़ा ही नामी चित्रकार कहा जाता हूँ, परन्तु मैंने बरसों से दुनिया त्याग रक्खा है। संसार मुझे काटने को दौड़ता है। इसी लिए उससे छिप कर एकान्त में केवल एक ही नाम को जपता हुआ, एक ही ध्यान में विलीन होकर, एक ही आशा के आधार पर अपने सूखे जीवन की घड़ियाँ गिन रहा हूँ। इस ध्यान में मुझे कितना सुख और कितनी यन्त्रणा है, उफ़! कह नहीं सकता। पत्थर की मूर्ति पुजते-पुजते देवी बन जाती है, परन्तु मेरे हृदय की हाड़-मांस की बनी हुई देवी भी मेरी पूजा से हाय! एकदम पत्थर हो गई। भाग्य की यह विचित्र लीला! इसीलिए तो कितनी ही बार मैंने उस नाम को भुलाने, उस ध्यान को त्यागने और उस आशा को मिटाने के लिए सैकड़ों ही उपाय किए। फिर भी मेरे रोम-रोम से वही नाम बज रहा है। मेरी आँखों के सामने वही मूर्ति खड़ी है। मेरे जीवन को वही आशा थामे हुए है। उफ़! मैं मिट गया, परन्तु मेरी आशा न मिटी। अन्त में जब मैं आत्मवेदना से पागल होकर मृत्यु की शरण में जा रहा था, तब ऐसे ही सङ्कट की घड़ी में डॉक्टर सन्तोषानन्द ने मेरी बाँह पकड़ी।

न जाने डॉक्टर की दृष्टि में कौन सा जादू था कि जिस समय से मुझ पर पड़ी, मेरा हृदय उसी दम से आप से आप उनकी ओर सरकने लगा। मुझे मनुष्यों से घृणा थी, फिर भी मैं उनसे भाग नहीं पाता था। लाख अपने को रोकता था, तो भी मैं उनकी सङ्गत के लिए व्याकुल हो उठता था। मैं अपनी वेदना को उनके सम्मुख जितना ही दबाता था, उतने ही वेग से उभर कर वह उन पर प्रकट हो जाती थी। तभी तो वह रेल में मुझसे मिलते ही मेरा रोग पहचान गए थे, और इसी कारण मैं उनके ताँगे पर से भागा था कि कहीं मैं आवेश में आकर अपना सारा दुखड़ा उगल न बैठूँ। क्योंकि उनकी मर्मभेदी बातों के आगे मैं अपने ऊपर विश्वास नहीं कर पाता था। अब भाग्य ने मुझे फिर उन्हीं के हाथों में डाल दिया, जिनसे मन तो दिल खोल के मिलना चाहता था, परन्तु मैं बदहवास होकर भागता था। इसीलिए आज भी जैसे ही मेरी व्यथा मेरे हृदय-पट को खोल कर बाहर निकली पड़ती थी, वैसे ही मैं व्याकुल होकर उनके यहाँ से फिर भाग खड़ा हुआ।

उस समय मैं अपने पागलपन में इतना चूर था कि मैंने डॉक्टर सन्तोषानन्द के रोकने-टोकने के आग्रह या सभ्यता के आदेशों की कुछ भी परवा न की। उन्होंने मेरा हाथ पकड़ कर मुझे बैठाना चाहा था, परन्तु मैंने उन्हें ढकेल दिया और सीधा अपने मकान की ओर लपका। रास्ते में यह मुझे कुछ भी ख़बर न थी कि मेरी क्या दशा है। लोग मुझे देख कर क्या कहते होंगे या मेरे आगे-पीछे कौन आता-जाता है। मैं तो अपनी इष्ट देवी की याद उभर उठने के कारण उसकी धुन में अन्धा हो रहा था। उसके दर्शनों के लिए व्याकुल था, छटपटा रहा था, अधीर होकर तड़प रहा था।

अपने मकान में घुसते ही मैंने अपनी बैठक खोली। यही मेरा चित्र बनाने का कमरा (Studio) था। वहाँ सैकड़ों ही चित्र बेतरतीबी से पड़े थे। बहुत से दीवारों पर टँगे थे। मैंने किसी पर ध्यान नहीं दिया। मैंने अपनी बड़ी सी अलमारी खिसकाई, जिसका पिछला भाग दीवाल से बिलकुल मिला हुआ था। उसका खिसकाना मेरे सामर्थ्य से बाहर था। परन्तु जोश में न जाने मुझमें कहाँ से

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सौगुनी शक्ति आ जाती थी कि इसको मैं खिसका कर इसके पिछले हिस्से को अपने सामने कर लेता था। इस दफ़े भी वही किया। उसके इस तरफ़ आदमी के डील के बराबर एक तसवीर शीशे में जड़ी हुई थी। उसे देखते ही जिस तरह से कई दिनों का प्यासा पानी पर टूट पड़ता है, उसी तरह मैं उस पर झपटा और बेतहाशा उसको चूमने लगा।

इतने में किसी ने मेरे कन्धे पर हाथ रख कर कहा—अरे भलेमानुष, इतने उतावले न हो। देखो, शीशा टूट जायगा।

मैंने घूम कर देखा कि सन्तोषानन्द मुस्करा रहे हैं। बस, वहीं मैं लज्जा और पश्चात्ताप से गड़ गया। परन्तु दूसरे ही क्षण मेरे सर से पैर तक आग लग गई और मेरी आँखों से अङ्गारे बरसने लगे। मैंने घुड़क कर उनसे पूछा—किसी के कमरे में चोर की तरह बिना इत्तिला कराए घुस आना भला कौन सी सभ्यता है?

सन्तोषानन्द—जहाँ दो दिल आपस में घुल-मिल जाते हैं, वहाँ परदेदारी नहीं होती भाई!

मैं—मैं यह सब कुछ नहीं जानता। आपको इस तरह मेरे पीछे आने की क्या आवश्यकता थी?

सन्तोषानन्द—रक्षा करने वाले का लक्ष्य रक्षा करना होता है, चाहे जिस उपाय से हो!

मैं—मेरी रक्षा करने आए थे? क्यों? क्या तुम समझते हो कि मैं कोई पाप करने आया था? मैं क्या कोई निन्दित और घृणित कर्म कर रहा था? उफ़! तुम भी मुझे बुरा समझने लगे? दुनिया मुझ पर थूकती है तब तुम क्यों न थूकोगे? हाय, मैं इसी योग्य हूँ। भलाई-बुराई सब कुछ समझता हूँ; फिर भी मैं मूर्ख हूँ, महा-मूर्ख हूँ। थूको-थूको, जितना जी चाहे मुझ पर थूको।

इतना कहते ही मैं खड़ा न रह सका। मैं अपना सर पकड़ कर वहीं ज़मीन पर बैठ गया। सन्तोषानन्द ने मेरा हाथ थाम कर बड़ी मधुरता से कहा—मैं तुम्हें बुरा समझूँगा? राम! राम! तुम्हें हो क्या गया है, जो तुम ऐसा विचार करते हो? मैं तो तुम्हारा मकान देखने के लिए तुम्हारे पीछे-पीछे आया था। जब तुम अपने घर में घुसने लगे उस समय तुम्हारी सूरत की हालत देखकर मैं डर गया। तुम ऐसे उन्मत्त हो रहे थे कि जो न कर डालते वही थोड़ा था। इसलिए जैसे ही तुमने बैठक खोली वैसे ही तुम्हारे पास पहुँच गया। मगर तुम अपनी बदहवासी में मुझे देख न सके। ऐसी हालत में तुम्हें अकेले छोड़ना किसी तरह भी मुनासिब न था। तब मैं क्या करता, तुम्हीं सोचो।

मैं—फिर भी पुकार कर तुम्हें यहाँ आना चाहिए था।

सन्तोषानन्द—तब मुझे इस चित्र की दिव्य सुन्दरता और तुम्हारे अनमोल भावों की अलौकिक बहार कैसे देखने को नसीब होती?

मेरा क्रोध पानी-पानी हो गया। मेरी लज्जा दूर भाग खड़ी हुई। मैंने उठ कर बड़ी उतावली से पूछा—हैं न यह सुन्दरता की खान?

सन्तोषानन्द—क्यों नहीं, जब तुमने बनाई ही ऐसी है।

मैं—आह! मैंने कहाँ बनाई? मैं बना ही न सका। उसके लावण्य के एक अंश भी तो इस चित्र में नहीं ला सका। ईश्वर की रची हुई दिव्य सुन्दरता की सच्ची तसवीर उतारने का भला मनुष्य में सामर्थ्य कहाँ?

सन्तोषानन्द—फिर भी मनुष्य अपनी मानसिक सुन्दरता की छटा कहाँ तक दिखला सकता है, तुमने इसमें पूरे तौर पर झलका दिया है। जिस तरह सूर्य की ज्योति से चाँद की आभा है, उसी तरह तुम्हारे सच्चे अनुराग से यह छवि दमक रही है। वाह! वाह! बलिहारी है तुम्हारे चित्रकारी की। क्यों न हो। तभी तो दुनिया तुम्हें पूजती है।

मैं—अरे! डॉक्टर, मेरी चित्रकारी को न देखो। उसको देखो जो मेरे जीवन का आधार है, मेरे सौन्दर्य का आदर्श है, मेरी कला का लक्ष्य है, मेरी कल्पना की सीमा है, मेरी पूजा की मूर्ति है, मेरी आशा का उद्देश है और मेरी सत्यानाशी का वृत्तान्त है। देखो, कितनी सुन्दरी है।

सन्तोषानन्द—यह तुम देखो। मैं तो केवल इसमें तुम्हारे हृदय की सुन्दरता, तुम्हारे अनुराग की थाह और तुम्हारी कला की कुशलता देख रहा हूँ।

मैं—अन्धे हो।

डॉक्टर सन्तोषानन्द बिना कुछ बोले-चाले रुष्ट होकर चले गए।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(२)

डॉक्टर सन्तोषानन्द के एकाएक बिगड़ जाने पर मुझे बाद को बहुत अफ़सोस हुआ ; क्योंकि मैंने ही उन्हें अन्धा कहके उनका अपमान किया। यद्यपि जिसकी प्रशंसा मैं सुनना चाहता था, उसकी वह तारीफ़ न कर सके, फिर भी उन्होंने उसकी कोई बुराई भी नहीं की थी, बल्कि उलटे उन्होंने मेरी कला को सराहा था। इसके लिए वह धन्यवाद के भागी थे। मगर मैं अपनी नादानी में आकर उन्हें झिड़क बैठा। संसार में मुझे एक समान-हृदय, मेरे भावों को समझने और मेरी व्यथा पर सच्चा आँसू बहाने वाला मिला भी तो मैंने उसका इस तरह अनादर किया ; अफ़सोस !

उस समय से मुझे बराबर यही सोच रहा कि किस तरह मैं अपने अपराध को धोऊँ—किस युक्ति से मैं उन्हें फिर मना लूँ ; क्योंकि हँसी उड़ाने वालों और स्वार्थियों से भरे इस विश्वासघाती संसार में सच्ची सहानुभूति देने वाला वह अनमोल और दुर्लभ रत्न है, जो भाग्य से पाकर ठुकरा देना अपने ही गले पर छुरी चलाना है। मैं तो मर ही चुका था। उन्होंने मेरी मरी हुई आशा-लता को अपने आँसुओं से सींच कर उसमें एक नया जीवन डाल रक्खा था। उनका सहारा टूटते ही अब इसकी क्या दशा होगी ? यह पहाड़-से दिन किस तरह कटेंगे ? मैं किसके आगे अपना दुखड़ा रोऊँगा ? उफ़ ! मैं अकुला कर कुत्ते की मौत मरूँगा। कई दिन तक मैं इसी चिन्ता में पड़ा रहा। अन्त में जब मुझसे न रहा गया, तब मैं एक दिन स्वयं ही उनके पास गया।

वह मुझे देख कर मुस्कराए। मगर इस तरह मिले, मानो उनका मन मुझसे कभी मलीन ही नहीं हुआ था, और न उन्होंने किसी प्रकार से मेरी उस दिन की असभ्यता का ही कुछ उल्लेख किया। उन्होंने बातों-बातों में पूछा—क्यों अलिन्द, मेरे लिए भी क्या तुम एक चित्र बना दोगे ?

मैं तो उन्हें अपने पश्चात्ताप और अनुग्रह से ख़ुश करने के लिए उनका मुँह ही निहार रहा था। भला ऐसा सुयोग्य अवसर पाकर कब चूक सकता था ? झट बोल उठा—एक नहीं, जितने कहिए उतने।

सन्तोषानन्द—नहीं, मुझे एक की ही ज़रूरत है।

मैं—जैसी मर्ज़ी। मगर कब ?

सन्तोषानन्द—जब ज़रूरत होगी। इस समय तो तुमसे वचन ले रहा हूँ। बोलो पक्का वादा करते हो ?

मैं—हाँ भाई।

सन्तोषानन्द—बाद को मुकरोगे तो नहीं ?

मैं—हर्गिज़ नहीं।

सन्तोषानन्द—अच्छा, तो इसे याद रखना।

मैं—मुझे कोई बात भूलती नहीं है। उस दिन की भी बात मुझे याद है।

सन्तोषानन्द—किस दिन की ?

मैं—जिस दिन मेरी मूर्खता पर आप रूठकर मेरे यहाँ से चले आए थे।

उन्होंने हँस कर जवाब दिया—वह तो मैंने दिल्लगी की थी।

मैं—वाह भाई, अच्छी दिल्लगी की ! मैं तो पछ-ताते-पछताते मर मिटा।

सन्तोषानन्द—हाँ, उस वक़्त इसी की ज़रूरत थी। क्योंकि तुम्हारे पागलपन को शान्त करने की इसके सिवाय कोई दूसरी युक्ति ही न थी।

मैंने कुछ उत्तेजित होकर पूछा—आप क्या इस वक़्त भी दिल्लगी कर रहे हैं ?

सन्तोषानन्द—भाई गर्म न हो। मैं तुम्हारा दुश्मन नहीं, बल्कि सच्चा हितैषी हूँ। मुझे तुम्हारी जान प्यारी है। जिस तरह भी बन पड़ेगा, उसकी सलामती चाहूँगा। उस दिन तुम पागलों से भी बदतर हो रहे थे। अगर तुम्हारा पागलपन और भी बढ़ने के लिए छोड़ दिया जाता या उस चित्र के सम्बन्ध में कुछ पूछ-ताछ करके उत्तेजित किया जाता तो न जाने वह क्या अनर्थ न कर डालता। तुम चित्र देख रहे थे और मैं तुम्हें देख रहा था। तुम भावों के आवेश में उन्मत्त हो रहे थे और मैं तुम्हें शान्त करने की तरकीब सोच रहा था। यदि मैं उस समय तुम पर पश्चात्ताप का बोझ न लाद देता तो अब तक तुम किसी की याद में तड़पते-तड़पते जान दे डालते या सड़कों पर ख़ाक उड़ाते फिरते। मेरे पास आकर इस तरह भले मानसों की सी बातें आज हर्गिज़ नहीं कर सकते थे।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मैं—बहुत सही कहते हो डॉक्टर। तुम मनोविज्ञान के साक्षात् अवतार हो। सचमुच मेरी ही भूल थी। माफ़ करो भाई।

कुछ देर इधर-उधर की बातें करके उन्होंने पूछा—चित्रकारी बड़ी अच्छी कला है। मैं भी सीखना चाहता हूँ। मुझे सिखा दोगे?

मैं—अरे भाई, तुम्हें सीखने की क्या ज़रूरत? तुम तो योंही एक बड़े भारी चित्रकार हो।

सन्तोषानन्द—मैं?

मैं—बेशक! तुम लेखनी से चित्र खींचते हो, मैं तूलिका से। मैं केवल चेहरे पर के भाव अङ्कित करता हूँ, मगर तुम तो हृदय के भीतर घुस कर वहाँ से भाव निकाल लाते हो। तुमसे बढ़ कर चित्रकार कौन हो सकता है?

सन्तोषानन्द—क्यों बना रहे हो?

मैं—नहीं, सच कहता हूँ। तुममें और चित्रकार में बस इतना ही भेद है, जितना कवि और गवैया में होता है। क्योंकि कवि शब्दों से करामात दिखाता है तो गाने वाला ध्वनि से। इसलिए भाई तुम चित्रकार तो हो ही?

सन्तोषानन्द—यह बातें रहने दो। बताओ, सिखाओगे या नहीं?

मैं—सिखाने को मैं तैयार हूँ। मगर जो चीज़ लड़कपन से सीखी जाती है, उसकी बात ही कुछ और होती है। तभी तो देखो लोहार का लड़का जितना अच्छा अपना काम कर सकता है, उतना कोई दूसरे पेशे वाला लोहारी सीख कर नहीं कर सकता।

सन्तोषानन्द—हाँ, यह तो मानना ही पड़ेगा। इसी तरह मालूम होता है कि तुम्हारे ख़ानदान में भी यह कला अवश्य रही होगी, तभी तो तुम चित्रकार हुए।

मैं—नहीं, मेरे पुरखे तो व्यापारी थे। मेरे पिता जी भी गुजरात में व्यापार करते थे।

सन्तोषानन्द—तब तुम किस तरह चित्रकार हुए? तुम पर तो वह ख़ान्दानी बात लागू नहीं होती।

मैं—हाँ, बहुत से पेशे ऐसे हैं जिनके गुर को समझना लड़कपन की बुद्धि के बाहर होता है। जैसे डॉक्टरी, वकालत इत्यादि। इसी तरह मेरे लिए व्यापार था। हर आदमी को लड़कपन में कोई न कोई शौक़ होता है। चाहे वह उसके प्राकृतिक स्वभाव से पैदा हो जाय या अवस्था की अनुकूलता से या उसकी ख़ान्दानी बात होने के कारण। जो बात ख़ान्दान में होती चली आती है वह लड़कपन की समझ से बाहर नहीं होती, वह उस वंश के बालकों की रुचि को जल्दी अपनी ओर खींच लेती है; क्योंकि वे आरम्भ से ही देखते-देखते उसे समझने लगते हैं। इसी तरह अन्य कारणों से भी बाल्यावस्था में कोई न कोई शौक़ पैदा हो जाता है। अस्तु—

कारण से कोई बहस नहीं है, देखना चाहिए उस रुचि को। यदि वह किसी कला से सरोकार रखती है और वह बराबर जारी रह गई तो वह उस कला की निपुणता की सीमा की ओर आप से आप बढ़ती जाती है। इसीलिए विदेश कलाओं का भण्डार हो रहा है; क्योंकि वहाँ शिक्षा का मुख्य अभिप्राय यही है कि बालकों की रुचि को समझना और उसी के अनुकूल शिक्षा देना, और यहाँ शिक्षा का आदर्श है केवल डिग्रियाँ लेना। इसीलिए हमारे युवक निकम्मे होकर रह जाते हैं—कुछ भी नहीं कर सकते। यद्यपि मेरे वंश में चित्रकारी की कला नहीं थी, तथापि लड़कपन ही में मेरी रुचि इसकी ओर झुक गई थी; क्योंकि ईश्वर ने मेरी प्रकृति में सौन्दर्य-उपासना दे रक्खी थी, जिसके कारण मैं छुटपन में ही फूलों की सुन्दरता पर मुग्ध होकर उन्हें तोड़ लेता था। सुन्दर चित्रों को पाकर घण्टों निहारा करता था, और उन्हें ख़रीद लेने के लिए सौ-सौ हठ करता था। पिता जी का चित्र ख़रीदते-ख़रीदते जब नाक में दम हो गया, तब उन्होंने अपने व्यापार में चित्रों को भी स्थान दिया। फिर क्या था, तब मैं मनमाने अच्छे-अच्छे चित्रों को चुन कर ले लेता था, और रातोंदिन बस उन्हीं को देखता था। इस आदत ने मुझे जीती-जागती तसवीरों पर भी मुग्ध करना सिखा दिया। परन्तु वह चलती-फिरती तसवीरें न ख़रीदी जा सकती थीं और न फूलों की तरह तोड़ी जा सकती थीं। तब मुझे उनके चित्र स्वयं खींचने का चस्का पड़ा; क्योंकि अगर असल को नहीं अपना सकता तो उनकी नक़ल से मन को सन्तोष दे लूँगा। इसीलिए उसी समय से मैं टेढ़ा-मेढ़ा चित्र खींचने का अभ्यास

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करने लगा। इसकी लत मुझमें इतनी बढ़ गई कि जो कुछ भी सामने पाता था, मैं उसी की तसवीर खींचने लगता था। यहाँ तक कि कुछ ही दिनों में मेरा अभ्यास इतना बढ़ गया कि आदमी को सामने बिठा कर उसकी सच्ची तसवीर खींच लेता था। इसी के फेर में पढ़ना-लिखना भी छूट गया। क्योंकि स्कूल में जब मास्टर सवाल लिखाते थे, तब मैं अपनी कॉपी में उनकी सूरत बनाता था। कितनी ही बार मैं इसके लिए मारा गया, मगर यह लत न छूटी। इसी तरह मैं चित्रकार होगया। इसलिए डॉक्टर, जिस कला को तुम अपना चुके हो उसी के पीछे पड़े रहो! तुम एक दिन मुझसे भी बढ़कर ख्याति प्राप्त करोगे। नाहक़ चित्रकारी के फेर में पड़ कर अपना समय नष्ट न करो। क्योंकि सीखने को तो बहुत-कुछ उसे सीख जाओगे, परन्तु वह बात नहीं आ सकती, जो तुम लड़कपन से सीख कर उसमें पैदा कर सकते।

सन्तोषानन्द—भाई अलिन्द, तुम्हारा कहना बहुत ही सच और उपदेशदायक है। मैं तुम्हारी बुद्धि की जितनी भी प्रशंसा करूँ, थोड़ी है। तुम केवल अनुभवी ही नहीं, बल्कि एक बेढब ज्ञानी भी हो। तुमसे ऐसी ही बातें सुनने की आशा रखता हूँ। मुझे चित्रकारी सीखने की इच्छा नहीं है। मैंने तो केवल तुम्हारी बातें जानने के लिए इसका इस ढङ्ग से प्रसङ्ग उठाया था, क्योंकि अभी तुम्हारी मानसिक दशा पर भरोसा नहीं कर सकता। तुम्हारे उद्भ्रान्त-चित्त होने के कारण तुम्हारे सम्बन्ध में कोई बात बेधड़क पूछना तुम्हारे लिए असहनीय होगा। इसीलिए फूँक-फूँक कर क़दम रखता हूँ। मगर हाँ, एक बात समझ में नहीं आती कि तुम्हारी तरह बहुतों ने लड़कपन से इस कला को सीखा होगा, मगर तुम कैसे सभों के सिरमौर बन गए। तुम्हारी तूलिका में कहाँ से इतनी अतुल सजीवता और सुन्दरता फट पड़ी, जिसकी गर्द तक कोई भी चित्रकार छू नहीं पाता।

मैंने एक गहरी साँस लेकर उत्तर दिया—बस, गुरु के प्रताप से।

सन्तोषानन्द—कौन गुरु?

मैं—वही, जिसका चित्र तुम मेरी अलमारी के पीछे जड़ा हुआ देख चुके हो। वही, जिसे मैं हर साइत पूजता हूँ।

सन्तोषानन्द—अरे! वह तो किसी बालिका की तसवीर है।

मैं—क्या बालिका गुरु नहीं हो सकती? क्या मनुष्य किसी बच्चे से शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकता? हाय! उसने तो मुझे ऐसी शिक्षा दी है कि उफ़! × × ×

मैं आगे कुछ न बोल सका। मेरा गला रुँध गया और मेरी आँखें डबडबा आईं।

(क्रमशः)

(Copyright)

पुत्र—पिता जी, आप जो मेरे लिए हवाई बन्दूक़ लाए थे, वह कहाँ से लाए थे?

पिता—याद नहीं कि कहाँ से लाया था।

पुत्र—और वह गेंद?

पिता—वह भी याद नहीं कि किस दूकान से लाया था।

पुत्र—पिता जी, आपको कोई बात याद नहीं रहती। आप थोड़े दिन मेरे मास्टर साहब से पढ़ लीजिए, तो फिर आपको याद रहने लगे।

डॉक्टर (घायल से) तुम अच्छे तो हो जाओगे, पर काम करने योग्य नहीं रहोगे।

आलसी घायल—यह तो बड़ा शुभ समाचार है।

*
**

"आज मैंने एक बड़ी सुन्दर स्त्री देखी।"

"उसकी सूरती-शक्ल कैसी थी?"

"रेशमी साड़ी और गुलाबी क़मीज़ पहने थी।"

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गर्भाधान के लिए

शिवलिङ्गी बीज ६ माशे और शङ्खपुष्पी की जड़ दो तोला, दोनों का चूर्ण बना ले। ५ माशे की मात्रा में सुबह-शाम धारोष्ण दूध के साथ ऋतुमती स्त्री चौथे दिन से ३ दिन तक सेवन करे, अवश्य गर्भाधान होगा।

दूसरी दवा

शिवलिङ्गी के बीज ६ माशे, श्वेत कटेरी की जड़ ५ तोले, असगन्ध ५ तोले, सफ़ेद दूब ५ तोले, इन सबका चूर्ण बना ले और १३ माशे चूर्ण ऋतुमती स्त्री चतुर्थ दिन से गाय के दूध के साथ सेवन करे तो गर्भाधान होता है।

तीसरी दवा

शिवलिङ्गी के बीज ७ नग और अनबिधे मोती ३ नग रजोस्नान के बाद स्त्री साबित निगल जाय और ऊपर से गाय के दूध में बनी चावल की खीर खावे। इसी प्रकार तीन दिन प्रातःकाल खाकर गर्भाधान-संस्कार करे तो अवश्य सन्तान प्राप्त हो।

नोट—उपरोक्त तीनों प्रयोगों से यदि प्रथम मास में लाभ न हो, तो तीन मास तक लगातार प्रति मास में तीन दिन सेवन करना चाहिए।

* * *

दाढ़ का दर्द

जलभाँगरे का रस कान में डालने से दाढ़ का दर्द तुरन्त दूर हो जाता है।

* * *

आँख का दर्द

अपामार्ग (लटजीरा) की जड़ १ तोला, सेंधा नमक ४ रत्ती, शहद १ तोला, सबको ताँबे के पात्र में इतना रगड़े कि काजल की भाँति हो जाय। इसके लगाने से आँखों की सब प्रकार की पीड़ा और सुर्ख़ी दूर होती है।

* * *

बिच्छू-दंश

अपामार्ग (लटजीरा) की जड़ बिच्छू के काटे हुए स्थान में पीस कर लेप करने से और पत्तों का रस कान में डालने से दर्द तुरन्त बन्द हो जाता है। यही बर्र के काटने में भी लाभकारी है।

* * *

शीघ्र प्रसव के लिए

प्रसव-काल में यदि दर्द अधिक हो रहा हो और बच्चा पैदा होने में देर हो, तो लटजीरा की जड़ एक छटाँक खूब बारीक पीस कर प्रसूता स्त्री की जङ्घाओं में लेप करने से शीघ्र प्रसव होता है। परन्तु प्रसव हो जाने पर लेप को तुरन्त ही कपड़े से पोंछ डालना चाहिए, नहीं तो गर्भाशय तक निकल आने की सम्भावना है।

* * *

प्लीहा

शङ्ख की भस्म मट्ठे के साथ सेवन करने से प्लीहा नष्ट हो जाती है।

* * *

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आतशक

शुद्ध रस-कपूर १ तोला और कालीमिर्च १ तोला, दोनों को सेहुँड़ के दूध में पीस कर चने बराबर गोली बनाकर छाया में सुखा ले। १ गोली प्रातः-काल पानी से निगल जाय, आठ या दस दस्त होंगे। सात दिन में असाध्य आतशक भी शान्त हो जाता है। पथ्य में दूध-चावल की खीर ही खानी चाहिए।

* * *

विषम-ज्वर

कञ्जा की मींगी १ तोला, काली मिर्च ६ माशे, फिटकरी भूनी ६ माशे, केसर १ माशा—सबको पानी में पीसकर दो-दो रत्ती की गोली बना ले। एक-एक गोली सायं-प्रातः देने से विषम-ज्वर, तिजारी आदि शीघ्र दूर होते हैं।

* * *

पुष्टिकारक योग

केवाँच के बीज, गोखुरू बड़ा, सफ़ेद मूसली, सेमर-मूसली, आँवला, तालमखाना, गिलोय-सत्त, शतावर, बीजबन्द, सबको समभाग लेकर चूर्ण बना ले और उसके बराबर मिश्री या देशी खाँड़ मिलाकर शीशी में रख ले। इसे ६ माशे से १ तोला तक गोदुग्ध के साथ सेवन करने से वीर्य-सम्बन्धी समस्त रोग दूर हो जाते हैं। ऐसे रोगों के लिएयह दवा रामबाण है।

* * *

शिरदर्द

चन्दन, सोंठ, सेंधानमक, बालछड़, सुगन्ध-बाला, क़लमी शोरा और कपूर—इन सब चीज़ों को बराबर-बराबर पीस कर चूर्ण बना ले। आवश्यकता पड़ने पर थोड़ा चूर्ण पानी में महीन पीस कर मस्तक पर लेप करने से हर प्रकार का शिर-दर्द आराम होता है।

बलतोड़

शहद और चूना एक में मिला कर लगाने से बलतोड़ पक कर फूट जाता है।

* * *

पसली की पीड़ा

सींगी मोहरा, हरताल, हींग, राई, नौशादर, मैनसिल, लहसुन, बच और एलुवा लेकर सबको कूट-पीस ले, फिर थोड़ा सा चूर्ण पत्थर पर रख कर सिरका डाल कर बारहसिङ्गा से रगड़े। गाढ़ा हो जाने पर गरम करके पसली पर लेप करे। इससे तुरन्त पसली की पीड़ा शान्त हो जाती है।

—उत्तराकुमारी

* * *

गण्डमाला की औषधि

गण्डमाला गले में होती है। जिस मनुष्य के गले में गण्डमाला हो, वह छबूँदा † को मार कर दो तोले सरसों के तेल में भून कर लगा लेवे। इस तेल के कुछ दिन लगाने से गण्डमाला अवश्य अच्छी हो जावेगी।

* * *

बाल काले करना

लोहे का चूरा, भाँगरा, हरड़, बहेड़ा, आँवला और काली मिर्च, सबको बराबर-बराबर कूट-पीस तथा छान कर चूर्ण बना ले। फिर ईख के रस में डालकर एक महीने तक बरतन का मुँह बन्द करके रक्खा रहने दे। इसे पके हुए बालों में लगाने से शीघ्र ही वे काले हो जायँगे।

* * *

—सौभाग्यवती हजेला

† यह एक प्रकार का कीड़ा है, जो जङ्गलों में पाया जाता है। यह बड़ा ज़हरीला और काले रङ्ग का होता है। इसकी पीठ पर सफ़ेद रङ्ग के ६ बूँद होते हैं।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भोजन-सम्बन्धी आवश्यक बातें

अधिक भोजन करने से क़ब्ज़, दस्त आदि अनेक प्रकार के पेट-सम्बन्धी रोग उत्पन्न हो जाते हैं और इससे बुख़ार भी आने लगता है। यदि भोजन अच्छा और पूरा मिले और परिश्रम यथेष्ट न किया जाय, तो शरीर बेडौल हो जाता है। प्रायः दूकानदार और सेठ आदि ऐसे ही होते हैं। ऐसे लोगों को कभी-कभी गठिया भी हो जाती है। थोड़ा और ख़राब भोजन करने से मनुष्य दुबला हो जाता है और जल्दी मर जाता है। यदि तरकारियाँ या ताज़े फल यथेष्ट न मिलें तो मसूड़े फूल जाते हैं, और रक्त दूषित, हलके नीले रङ्ग का तथा तेज़ाब की ख़ासियत का हो जाता है।

गरमी के दिनों में घी, तैल आदि का व्यवहार कम कर देना चाहिए और दूध-दही, मट्ठे आदि का व्यवहार ख़ूब करना चाहिए। जाड़े के दिनों में इससे विपरीत आचरण होना चाहिए, अर्थात् उन दिनों में घी, तैल आदि के अनेक प्रकार के पकवानों का अधिकता से प्रयोग करना चाहिए।

गेहूँ का आटा यदि बहुत दिनों तक रक्खा रहे तो उसमें कई प्रकार के कीड़े तथा घुन लग जाते हैं। इसी प्रकार चावल में भी होता है। ऐसी चीज़ों को व्यवहार में लाने के पहले ख़ूब देख-भाल लेना चाहिए; क्योंकि उनके खाने से अनेक प्रकार के भयङ्कर रोग उत्पन्न हो जाते हैं। बासी भोजन भी स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकर तथा रोगोत्पादक होता है। बासी भोजन करना रोगों को निमन्त्रण देना है। भोजन ही नहीं, किसी भी बासी, गन्दी तथा सड़ी-गली चीज़ों के व्यवहार से सिवा हानि के लाभ कुछ नहीं है; अतः रसोई बनाने वाले को चाहिए कि वह सब चीज़ों को देख-भाल कर काम में लाए। इसके अतिरिक्त उसे ऋतु और प्रकृति का भी सदैव विचार रखना चाहिए।

* * *

आलू की पूड़ी

एक सेर आलू लेकर धीमी-धीमी आँच में उबाले। उबल जाने पर छिलका अलग करके मैदा के समान कर ले। फिर एक सेर मैदा उसमें

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मिलाकर साने और पानी की आवश्यकता होने पर खालिस दूध काम में लावे। एक माशा केसर घी में पीस कर मैदा में मिला ले और अन्दाज़ से सेंधा नमक डाल कर उसे खूब गूँद डाले। जब बिलकुल तैयार हो जाय, तब पूड़ी बना कर घी में सेंक ले। यह पूड़ी बहुत स्वादिष्ट और मुलायम होती हैं।

* * *

मूली और अदरक की चटनी

मूली और अदरक को छील कर, छोटे-छोटे एक-एक अङ्गुल के लम्बे टुकड़े बना ले। इन टुकड़ों नींबू के अर्क़ में डाल दे और फिर उसमें नमक, ज़ीरा, कालीमिर्च, धनियाँ और पोदीना पीसकर मिलावे। यह चटनी बड़ी स्वादिष्ट और गुणदायक होती है।

* * *

नारङ्गी की चटनी

नारङ्गी को छील कर, सब फाँकों को अलग कर ले, फिर फाँकों के ऊपर का छिलका निकाल डाले। अब भीतर के गूदे को पत्थर की प्याली में रख कर नमक, कालीमिर्च, पोदीना, ज़ीरा और हींग भून कर मिलावे, और फिर अदरक के छोटे-छोटे टुकड़े करके उसमें डाल दे। यह चटनी भी बड़ी स्वादिष्ट और लाभदायक होती है।

—कलावती

* * *

शकरकन्द के रसगुल्ले

सेर भर शकरकन्द लेकर अच्छी तरह उबाल ले। जब उबल जाय तब छिलका अलग कर, मसल कर बारीक कर ले और उसमें एक छटाँक मैदा मिला ले। इसके बाद एक पाव खोवा लेकर उसमें पिस्ता, किशमिश और छोटी इलायची बारीक करके मिला ले और छोटी-छोटी गोली बनावे। अब थोड़ा सा शकरकन्द का भुरता लेकर एक गोली उसके अन्दर रख कर उसे गुलाब-जामुन या परवल की शक्ल का बनाए। इसी प्रकार सारे भुरते के रसगुल्ले बना डाले और मन्द अग्नि से घी में सेंके। जब वह सिंक कर बादामी रङ्ग के हो जायँ, तो उतार ले। अब आध सेर चीनी में आधी छटाँक पानी डाल कर उसको अग्नि पर चढ़ा दे आर जब एक तार की चाशनी तैयार हो जाय, तब उसे उतार कर उसमें सिंके हुए शकरकन्द के सूखे रसगुल्लों को डाल दे। एक घण्टा बाद निकाल कर काम में लाए। यह जितनी देर रस में पड़े रहेंगे उतने ही अच्छे होंगे।

* * *

सँदेस बनाने की विधि

दो सेर ताज़ा कच्चा दूध लेकर (यदि भैंस का हो तो बहुत अच्छा है) उसे आग पर चढ़ा दे और आध पाव दही लेकर थोड़ा-थोड़ा दूध में डाले, जिससे कि दूध फट जाय, और यदि दही न हो तो नींबू से दूध फाड़ ले, किन्तु दही ज्यादा अच्छा है। जब दूध फट जाय तो उसको एक कपड़े में रख कर निचोड़े। कपड़े के अन्दर दूध की फुटक रह जायगी। दूध फाड़ने के लिए इसी छाने का पानी बहुत अच्छा है वह और बोतल में सुरक्षित रह सकता है। अब दूध की फुटक को सिल पर पीस ले और उसमें पिस्ता मिला दे, और उसके ही अन्दाज़ से चीनी की तीन तार की चाशनी बना कर उसमें वह फुटक डाल कर चलाए। जब वह लड्डू या गोली बनाने योग्य हो जाय तो उतार ले और एक-एक किशमिश भीतर रख कर लड्डू बाँध ले। यह लड्डू बहुत स्वादिष्ट होते हैं।

—कुमारी सत्यवती भँवर

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

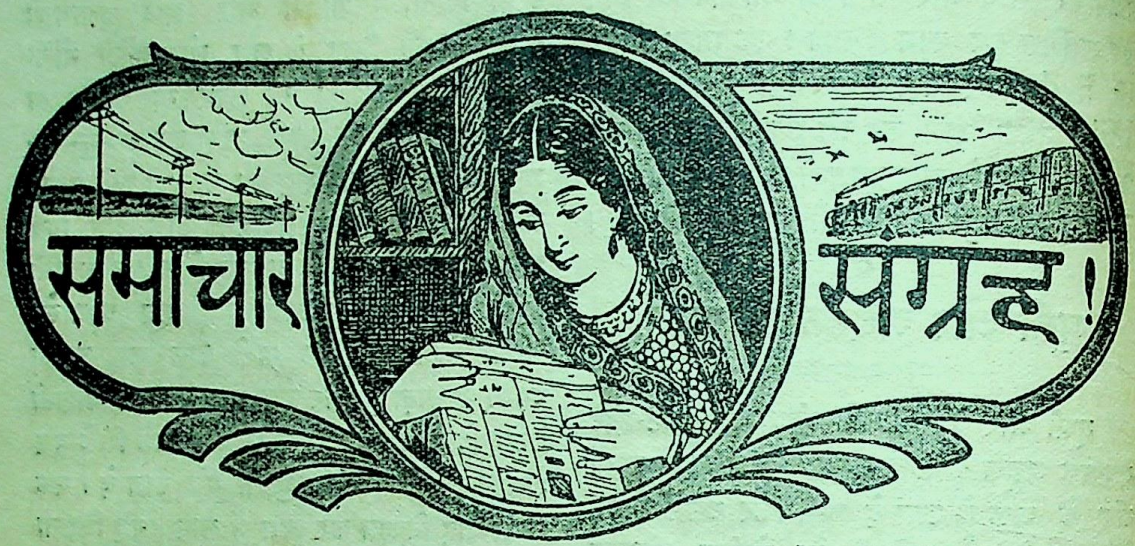

लाला जी का स्वर्गवास

हमें यह दुखदाई समाचार प्रकाशित करते वास्तव में अपार क्लेश हो रहा है कि आज, जबकि हमें पञ्जाब-केशरी लाला लाजपतराय जी की आवश्यकता थी, वे हमारे बीच से उठ गए! गत १७वीं नवम्बर को प्रातःकाल पौने सात बजे हृदय की गति रुक जाने के कारण अचानक आपकी मृत्यु होगई। अपनी श्रद्धाञ्जलि तो हम फिर कभी भेंट करेंगे, इस समय हम केवल परम-पिता से प्रार्थना करते हैं कि आपकी आत्मा को चिर-शान्ति और परिवार वालों को धैर्य प्रदान करें।

एक प्रशंसनीय दान

काशी के बाबू बालकृष्ण दास जी खत्री ने अपने पुत्र श्रीकृष्णदास जी के विवाह के शुभ अवसर पर २० हज़ार रुपयों का प्रशंसनीय दान इसलिए दिया है कि इन रुपयों का सूद खत्री-बालकों की शिक्षा और खत्री-विधवाओं की सहायता में व्यय किया जाय। जो लोग शादी-विवाह के अवसर पर आतिशबाज़ी और वेश्याओं के नृत्य में लाखों रुपए कुछ ही घण्टों में स्वाहा कर डालते हैं, उन्हें इस प्रकार के आदर्श दानों से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

* * *

राजपूताना महिला-कॉन्फ्रेन्स

हमें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि राजपूताने की मरुभूमि में भी जाग्रति के स्पष्ट-चिह्न दिखाई देने लगे हैं। गत १९वीं और२० वीं नवम्बर को अजमेर में महिलाओं की एक विराट् सभा मिसेज़ रेनॉल्ड्स के सभापतित्व में बड़े समारोह से हुई। राजपूताने के विभिन्न भागों से आकर स्त्रियों ने बड़े उत्साह से कॉन्फ्रेन्स की कार्यवाही में भाग लिया। उपस्थित महिलाओं की संख्या एक हज़ार से अधिक थी। अनेक महिलाओं के सारगर्भित व्याख्यान हुए और कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव—ऐसे प्रस्ताव, जिनके उपस्थित होते ही प्रायः मार-पीट तक हो जाने की सम्भावना रहती है—बड़े उल्लास-पूर्वक सर्वसम्मति से पास हुए, जिनमें राजपूताने के राज्याधीशों से सविनय प्रार्थना की गई है कि (१) प्रत्येक गाँव और तहसील में कन्या-पाठशालाएँ स्थापित की जायँ (२) परदे की नाशकारी प्रथा को एकबार ही तिलाञ्जलि दी जाय (३) बाल-विधवाओं का पुनर्विवाह किया जाय (४) स्त्रियों के दाय भाग को सुरक्षित रक्खा जाय—पूर्वजों की सम्पत्ति में बालकों के समान उन्हें भी भाग दिया जाय (५) बाल-विवाह की नाशकारी प्रथा—जिसके कारण शिशुओं तथा स्त्रियों की मृत्यु-संख्या इतनी भयङ्कर हो रही है, एक बार ही बन्द कर दी जाय (६) शारदा-बिल का समर्थन किया जाय और (७) प्रत्येक राज्य में यह क़ानून बना दिया जाय कि लड़कों का विवाह १८

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट—
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य,
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

वर्ष से पूर्व और लड़कियों का १४ वर्ष से पूर्व कदापि—किसी भी हालत में न किया जाय। कहने की आवश्यकता नहीं कि रोम-रोम से हम इन प्रस्तावों का स्वागत करते हैं और परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि इन देवियों को परमात्मा वह शक्ति प्रदान करें, जिससे वे इन उपयोगी प्रस्तावों को कार्यरूप में परिणत कर सकें।

* * *

विधवा-विवाह के विरोधी ध्यान दें!

कविराज पं० शम्भूदत्त जी शर्मा कौशिक मिश्र ने जो रोमाञ्चकारी समाचार हमारे सामने उपस्थित किया है, उस पर टिप्पणी करना विषय की जटिलता को हलका करना होगा। आप लिखते हैं—"कमालपुर (पञ्जाब) के एक प्रतिष्ठित विधुर ब्राह्मण अपनी विधवा भाभी के साथ प्रेम करने लगे और जब उसके गर्भ रह गया तो उसको दाइयों आदि के द्वारा नष्ट करवाने की चेष्टा की। जब इसमें सफलता नहीं मिली तो उस स्त्री को अन्य दो व्यक्तियों द्वारा भ्रष्ट बताया गया। फिर एक सिक्ख को १००) रु० का नोट देकर इस बात के लिए उसे राज़ी किया गया कि वह उस अभागिनी विधवा को ले जाकर कहीं बेच आवे। यह सम्वाद पाते ही विधवा ने रोना-पीटना शुरू कर दिया। इसके बाद दो-तीन मुसलमानों द्वारा उसे उड़वा देने की चेष्टा की गई, पर इसमें भी सफलता नहीं मिली। अन्त में उस बेचारी स्त्री को मारना-पीटना शुरू किया गया; खाना-पीना देना बन्द कर दिया गया। मैं एक दिन कमालपुर के निकटवर्ती स्थान बीपूर जाटान में एक रोगी को देखने गया था, वहीं एक सज्जन द्वारा मुझे पूर्ण वृत्तान्त मालूम हुआ। मुझे उस स्त्री पर दया आ गई। मैं उस अभागिनी स्त्री के पास गया और उससे मैंने कहा कि आप मेरे घर चलें। यथाशक्ति आपकी सेवा करूँगा। ४ दिन बाद उसका ज्येष्ठ उसको मेरे घर छोड़ गया। २ महीने के बाद उसको एक कन्या मि० भा० शु० ७ शुक्र को हुई। सवा महीने बाद मैंने मि० आश्विन शु० ५ शनिवार को उस विधवा का पुनर्विवाह कर दिया।"

* * *

आदर्श दान

बड़ी प्रसन्नता की बात है कि धीरे-धीरे प्रत्येक समाज अपनी कमज़ोरियों का अनुभव कर उसे सुधारने का प्रयत्न कर रहा है। दान-प्रणाली में वास्तव में बड़े क्रान्तिकारी सुधारों की आवश्यकता है और इस ओर भी लिखे-पढ़े व्यक्तियों का ध्यान आकर्षित होने लगा है। पाठकों को जानकर प्रसन्नता होगी कि भवानीपुर के एक हिन्दू-सज्जन ने अभी हाल ही में २½ लाख रुपयों का गुप्त दान एकमात्र विधवाओं की सहायता के लिए प्रदान किया है। कलकत्ते की हिन्दू-सभा की सलाह से इसका उपयोग किया जायगा। यह सारी रक़म एक ट्रस्ट के अधीन होगी और वही इसका लेखा रक्खेगी। लोगों के बहुत आग्रह करने पर भी दानी सज्जन ने अपना नाम प्रकट न करने का आग्रह किया है। उन्होंने प्रेस-प्रतिनिधि से यह कहा था कि "यह दान करने और इसे गुप्त रखने में मुझे जो आनन्द प्राप्त होगा, वह कदाचित् पुत्र गोद लेने से भी न होता। हिन्दू-विधवाओं की करुण दशा देखकर मैं तो स्वप्न में चौंक उठता हूँ। मनसा-वाचा-कर्मणा से इनकी सहायता करना प्रत्येक देशवासी का कर्त्तव्य है।"

* * *

स्त्रियों की बिक्री

बड़े परिताप और लज्जा की बात है कि अभागे भारत में स्त्रियों के ख़रीद-फ़रोख़्त का व्यवसाय बजाय घटने के दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। १९११ की मनुष्य-गणना के सेन्सेस कमिश्नर ने अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट लिखा था कि अन्य प्रान्तों की अपेक्षा पञ्जाब में स्त्रियों के ख़रीद-फ़रोख़्त का व्यवसाय दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। इतना होने पर भी भारतीय सरकार ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। अब युक्त-प्रान्तीय पुलिस की रिपोर्ट देखने से पता चलता है कि समस्त उत्तरीय भारत में स्त्रियों की तिजारत बड़े ज़ोरों से हो रही है और इन गुण्डों का जाल सारे हिन्दुस्तान में फैला हुआ है। मिरज़ापुर, कानपुर, आगरा, बनारस, लखनऊ, इलाहाबाद, अमृतसर, रावलपिण्डी, देहली और पेशावर आदि इस नारकीय व्यवसाय के ख़ास अड्डे बने हुए हैं! युक्त-प्रान्तीय पुलिस ने इस सम्बन्ध में बहुत सी गिरफ़्तारियाँ की हैं और अनेक स्त्रियों का उद्धार भी किया है। क्या ग़ुलामों की सरकार अपनी सारी शक्ति व्यय करके भी इस सङ्गठित व्यवसाय का नाश नहीं कर सकती?

* * *

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीमती मोहता का आदर्श

परमात्मा की सृष्टि-रचना वास्तव में बड़ी विचित्र है। कीचड़ से कमल की उत्पत्ति, खान से मणियों की उत्पत्ति, हाथी से गजमुक्ता की उत्पत्ति, नीलाम्बर से चन्द्रोदय की उत्पत्ति और पर्वतों की अन्धकारमय गुफाओं से सञ्जीवनी बूटियों की उत्पत्ति जिस प्रकार हमें आश्चर्य में डालती है, ठीक उसी प्रकार जब हम मरू-भूमि के बीहड़ रेगिस्तान में—धर्मान्धता के कट्टर गढ़ बीकानेर के मारवाड़ी-भाइयों की सुधारात्मक प्रवृत्ति पर दृष्टिपात करते हैं तो हमारे आश्चर्य की सीमा नहीं रहती। अधिकांश मारवाड़ी-भाइयों की जहालत सर्व-प्रसिद्ध है। इसलिए एक ऐसे समाज का छोटे से छोटा सुधार भी हमें आश्चर्य की दृष्टि से देखना पड़ता है। बीकानेर के अधिकांश सामाजिक सुधारों का उत्तरदायित्व मोहता-परिवार पर ही है। अन्य सुधारों के समान इस समाज में परदा-प्रथा के विरुद्ध बग़ावत करने का श्रेय भी इसी परिवार को है। श्री० बालकृष्ण जी मोहता की धर्मपत्नी इस कुप्रथा के मस्तक पर पाद-प्रहार करने वाली मारवाड़ी-समाज की प्रथम महिला-रत्न हैं, जो आजकल कलकत्ता-अबला-आश्रम की अभागिनी महिलाओं की सेवा कर रही हैं। (इस संस्था का उल्लेख हम आगामी अङ्क में करेंगे) अब 'कराँची-गज़ट' को देखने से पता चलता है कि विगत १८ अक्टूबर को श्री० रामगोपाल गोवर्धनदास मोहता हिन्दू-जीमखाना (व्यायामशाला) के सभापति और टेनिस के खिलाड़ियों को एक भोज दिया गया था। अधिवेशन मि० रूपचन्द बिलाराम (एडिशनल जुडिशियल कमिश्नर, सिन्ध) की अध्यक्षता में हुआ था। इस अवसर पर रावबहादुर सेठ शिवरतन मोहता महोदय की धर्मपत्नी भी उपस्थित थीं। यह पहला ही अवसर था जब देवी जी ने परदा-प्रथा को तिलाञ्जलि देकर सभा के समक्ष एक आदर्श उपस्थित किया। आशा है, देवी जी का यह आदर्श अनेक मारवाड़ी महिलाओं का पथ-प्रदर्शक होगा।

* * *

नागपुर महिला-कॉलेज

बड़ी प्रसन्नता की बात है कि सी० पी० सरकार ने नागपुर में एक महिलाओं का कॉलेज स्थापित करने का निश्चय कर लिया है और एक जाँच-कमिटी इसलिए नियुक्त की है कि जाँच करके वह प्रान्तीय सरकार को इस बात की रिपोर्ट दे कि कौन सा स्थान महिला-कॉलेज के लिए उपयुक्त होगा। कमिटी इस बात की भी सिफ़ारिश करेगी कि कॉलेज की निजी बिल्डिङ्ग बनवाई जाय या किराए पर ली जाय। नागपुर डिवीज़न के कमिश्नर इस कमिटी के प्रधान तथा सुपरिन्टेण्डिङ्ग इञ्जीनियर फ़र्स्ट सर्कल नागपूर, मॉरिस कॉलेज के प्रिन्सिपल, श्रीमती रामाबाई टाँबे, मिसेज़ मेकफ़ेडिन (Mc Fadyen) और डॉक्टरा इन्दिराबाई नियोगी इस कमिटी की सदस्या नियुक्त हुई हैं। हमें आशा है, कमिटी कॉलेज के लिए एक ख़ास और विशाल बिल्डिङ्ग बनाने का परामर्श दे, अपने कर्त्तव्य का पालन करेगी।

* * *

महिला राजनैतिक परिषद्

इस वर्ष भारतीय महिलाओं में वास्तव में अभूतपूर्व जाग्रति उत्पन्न हुई है। पाठकों को जानकर प्रसन्नता होगी कि विगत १३ वीं अक्टूबर को मेरठ में महिलाओं के राजनैतिक कॉन्फ़्रेन्स का अधिवेशन बड़े समारोह से सम्पन्न हुआ। भिन्न-भिन्न प्रान्तों से लगभग १५० महिला-प्रतिनिधि इस परिषद् में पधारी थीं। अनेक उपयोगी प्रस्ताव पास हुए। देश के राजनैतिक आन्दोलन में भाग लेने के लिए स्त्रियों को उत्साहित किया गया। स्त्रियों और कन्याओं की अनिवार्य शिक्षा के लिए ज़ोर दिया गया, परदा-प्रथा की हानियाँ बतलाई गईं और स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के प्रस्ताव भी पास हुए। अपने प्राणों की आहुति देकर भी स्त्री-जाति की प्रतिष्ठा क़ायम रखने वाले वीर-श्रेष्ठ भाई खड्गबहादुर सिंह जी को अब तक जेल में सड़ाने के लिए सरकार की तीव्र निन्दा और उन्हें तुरन्त मुक्त करने की प्रार्थना की गई। पञ्जाब की श्रीमती पार्वती देवी जी का भाषण बड़ा प्रभावशाली हुआ। आपने एक बड़े मार्के की बात कही। आपने कहा कि आज भारतीय महिलाओं को अपनी स्वतन्त्रता और अधिकार प्राप्त करने के लिए दो प्रकार की शक्तियों से लड़ना पड़ रहा है। एक विदेशी सरकार से और दूसरे भारतीय पुरुषों की सङ्कीर्णात्मक प्रवृत्ति से। आज इस उन्नति और विकास के युग में पुरुषों द्वारा भारतीय स्त्री-

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जाति पर जो अमानुषिक अत्याचार हो रहे हैं, उसे देखकर पुरुष-मात्र को लज्जा से अपना मस्तक नत कर लेना चाहिए। आपने प्रत्येक स्त्री से कम से कम दिन में ३ घण्टे सूत कातने की, परदा-प्रथा का मुँह काला करने की तथा विधवा-विवाह के प्रचार करने की प्रार्थना की। बालक-बालिकाओं के विवाह के लिए आपने उपयुक्त अवस्था क्रमशः २६ और १८ बतलाई। देवी जी ने आँखों में आँसू भर कर उपस्थित महिलाओं को बतलाया कि—"एक निर्लज्ज काम-लोलुप ६० वर्ष के बूढ़े ने हाल ही में २६वीं बार अपना विवाह किया है और अनेक भूत-पूर्व स्त्रियाँ अभी तक जीवित हैं और बूढ़े को कोस रही हैं।" इन पंक्तियों को सुनते ही सारी सभा में एक बार ही खलबली मच गई और लानत तथा धिक्कार की आवाज़ों से सारा मण्डप गूँज उठा। वृद्ध-विवाह के सम्बन्ध में स्त्रियों की मनोवृत्ति का यह सच्चा प्रदर्शन था।

* * *

महिला-शक्ति का महत्व

विगत २२ वीं अक्टूबर को डॉक्टर एनी बेसेण्ट महाराजा कोचिन के निमन्त्रण पर इरनाकुलम पधारी थीं। स्थानीय महिला-समिति ने डॉक्टर महोदया को एक सारगर्भित अभिनन्दन-पत्र भेंट किया था। उसके उत्तर में श्रीमती बेसेण्ट ने जो महत्वपूर्ण व्याख्यान दिया था, भारतीय पुरुषों को उसकी उपयोगिता और सत्यता पर विचार करना चाहिए। आपने कहा कि जब तक भारतीय महिलाओं की शिक्षा-दीक्षा, उनके स्वास्थ्य, स्वतन्त्रता और उन्नति की ओर विशेष ध्यान न दिया जायगा, तब तक भारतीयों का स्वतन्त्र होना एक बार ही असम्भव है। आपने प्राचीन भारतीय आदर्शों की चर्चा करते हुए बतलाया कि जब तक स्त्री-पुरुषों का देशोन्नति में समान हाथ और दिलचस्पी रही, तब तक कोई उसे पराधीन नहीं कर सका और कर भी नहीं सकता था। स्त्रियों के मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति पर ही किसी देश की उन्नति तथा अवनति सर्वथा अवलम्बित है, और यह एक निश्चित-सत्य है कि यदि भारतवासी अपना सुधार करना चाहते हैं और पूर्ण स्वतन्त्रता का उपभोग करना चाहते हैं, तो उन्हें स्त्री-जाति के सुधार की ओर तुरन्त ध्यान देना चाहिए। गत वर्षों में भारतीय महिलाओं में जो जाग्रति उत्पन्न हुई है उस पर आपने बड़ा हर्ष प्रकट किया और सुधारों के आन्दोलनों को और भी वेग से चलाने की सलाह दी। देवी जी ने कहा कि भारत की स्वतन्त्रता में अब देर नहीं है; और इसके पहले कि यह प्राप्त हो, भारतीय स्त्री-पुरुषों को इस बात का सम्मिलित उद्योग करना चाहिए कि वह सुरक्षित रह सके।

* * *

कड़ुआ और मीठा

माथुर चतुर्वेदियों में आज—इस उन्नति के युग में—भी वही सब सामाजिक कुरीतियाँ प्रचलित हैं, जो अभागे भारत को बुरी तरह लथेड़ रही हैं। बाल-विवाह, बेमेल-विवाह, बदला करने की प्रथा, विधवा-विवाह का विरोध, परदा-प्रथा का समर्थन, अनुचित उपजाति का ढकोसला आदि-आदि सभी कुरीतियाँ इस समाज का रक्त चूस रही हैं। इस समाज के कोढ़ में जो खाज का कार्य कर रहा है वह है 'कड़ुआ' और 'मीठा' उपजाति का परस्पर विरोध, 'कड़ुआ' और 'मीठा' का फ़िक्रा हम देखते हैं दिनोंदिन विस्तृत होता जा रहा है और आज इन दो फ़िक्रों में भी कितनी उपजातियाँ उत्पन्न हो गई हैं और दिनोंदिन इनमें परस्पर विरोध बढ़ता जा रहा है। इस समाज के नवयुवकों को इन कुप्रथाओं के विरुद्ध एक बार ही बग़ावत का झण्डा बुलन्द करना चाहिए, इसीमें इस समाज का कल्याण है। परमात्मा 'कड़ुओं' के स्थान में सबको 'मीठा'—बहुत मीठा कर दें, 'चाँद' की यही कामना है।

* * *

गौड़ ब्राह्मणों का सद्कार्य

हमारे आश्चर्य की सीमा नहीं है, जब हम उस रिपोर्ट को पढ़ते हैं, जो हमारे विशेष सम्वाददाता, ने रोहतक से हमारे पास भेजी है। हाल ही में रोहतक ज़िले के गौड़ ब्राह्मणों ने अपनी जातीय महासभा में एक बड़ा महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास कर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया है। शिक्षित ब्राह्मणों के अलावा इस सभा में अनेक ग्रामीण और दक़ियानूसी ख़्याल के गौड़ ब्राह्मण भी उपस्थित

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

थे और सभों ने एक स्वर से अनुमोदित कर यह प्रस्ताव पास किया है कि जो विधवाएँ संयमपूर्वक जीवन व्यतीत करने में असमर्थ हों, तुरन्त उनका पुनर्विवाह कर दिया जाय और समाज में ऐसी विधवाओं को भी उसी प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाय, जिस दृष्टि से हम साधारण विवाहिता स्त्रियों को देखते हैं। यदि वह प्रस्ताव, कोरा प्रस्ताव न रह कर, कार्य-रूप में परिणत किया गया तो वास्तव में गौड़ ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा हमारी दृष्टि में बहुत अधिक बढ़ जायगी, पर क्या ऐसा होगा ?

* * *

प्रयाग महिला समिति

उपरोक्त समिति की अध्यक्षता में स्त्रियों की एक विराट सभा विगत तीसरी दिसम्बर को स्थानीय भारती-भवन में हुई थी। लगभग सभी प्रतिष्ठित महिलाएँ सभा में उपस्थित थीं। शहर की अनेक ऐसी स्त्रियों ने, जिन्हें बहुत हद तक 'अशिक्षिता' कह सकते हैं, विशेष दिलचस्पी से सभा की कार्यवाही में भाग लिया। कई उपयोगी प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुए, जिनमें तीन विशेष महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय हैं। पहिले प्रस्ताव में बाल-विवाह प्रथा के विरुद्ध घृणा प्रदर्शित की गई और उपस्थित महिलाओं ने दृढ़ निश्चय किया कि अपने परिवार में, जहाँ तक उनकी शक्ति काम कर सकेगी, वे इस प्रकार बालक-बालिकाओं का बलिदान न होने देंगी। दूसरे प्रस्ताव में स्त्रियों के परिमित क़ानूनी अधिकारों की निन्दा की गई और तीसरे प्रस्ताव में इस बात पर खेद प्रगट किया गया कि पति की जायदाद में उसकी विधवा को कोई विशेष अधिकार नहीं रहता। वास्तव में बृटिश-शासन-पद्धति का तथा स्त्रियों के स्वत्वों के प्रति भारतीय पुरुषों की उदासीनता का यह ऐसा कलङ्क है, जिसे सारे समुद्र का जल भी नहीं धो सकता। स्त्रियों का क़ानूनी अधिकार कितना सङ्कुचित है, इस बात का प्रमाण निम्न-लिखित पत्र से मालूम होगा जिसे "एक दुखिया बहिन" ने श्रीमती लाडो रानी ज़ुतशी के पास भेजा है और जिसे उन्होंने हमारे पास भेजने की कृपा की है :—

"मेरी प्यारी बहिन,

निवेदन यह है कि १० सितम्बर, १९२८ के समाचार-पत्र 'लीडर' में यह देखकर बहुत प्रसन्नता हुई कि आपने लड़कियों के दायाधिकार के विरुद्ध आवाज़ उठाने का बीड़ा उठाया है। मैं आपके इस यत्न के लिए आपको और आपकी सहयोगिनियों को अनेक धन्यवाद देती हूँ, और सर्वशक्तिमान जगदीश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि वह आपके कार्य में सफलता प्रदान करें। मेरी दुख-भरी कथा सुनिए :—

"मेरे पिता जी का स्वर्गवास हुए १५ वर्ष हुए। उन्होंने दस लाख रुपए की सम्पत्ति छोड़ी थी, जिससे २६,०००) का प्रति वर्ष लाभ होता है। मेरा एक भाई है, पर जब से मेरे पिता मरे हैं मेरे भाई ने एक बार भी मुझे अपने घर नहीं बुलाया। वह अपनी पत्नी के वशीभूत है, मेरी माता भी जीवित हैं, पर वह बेबस हैं। धन के अभाव में जो हमारी दुर्दशा हो रही है, हमीं जानती हैं। मेरे पतिदेव तिजारत किया करते थे, पर उनका कार्य शिथिल हो गया, इसलिए हमारा निर्वाह भी बहुत कठिनता से होता है। मेरे ६ बच्चे हैं, यदि लड़कियों को पिता की सम्पत्ति में से भाग मिलता होता तो मैं क्यों इस प्रकार दुख भोगती ? अवश्य मनु महाराज के दाय नियमों में परिवर्तन होना चाहिए। जिस समय स्त्री-समाज का कोई जलसा हो, मेरी यह दुख की कहानी सुना देना। धर्मशास्त्रों में परिवर्तन की बहुत आवश्यकता है। अब ऐसा समय आगया है कि कोई भाई अपनी बहिन के दुख का बिलकुल ध्यान नहीं रखता। बहिन गर्मी के दिनों में चक्की पीसकर अपना पेट भरती है और भाई बिजली के पङ्खों का आनन्द लूटते हैं !! ऐसा होने से ज्ञात होता है कि दुनिया के बुरे दिन आ गए हैं, तभी तो वर्षा नहीं होती, काल पर काल पड़ते हैं। मेरे पतिदेव को आप कहीं नौकरी दिलवा दें तो बड़ी कृपा होगी !!"

कौन ऐसा सहृदय होगा जिसकी आँखों से पत्र पढ़कर गर्म आँसुओं की दो बूँदें न टपक पड़ें ? हमें खेद है, बड़ी व्यवस्थापिका सभा के एक भी सदस्य ने पुरुषों की इस हृदय-हीनता की ओर अब तक ध्यान नहीं दिया, हालाँकि ये सदस्य एसेम्बली-प्रवेश के समय सामाजिक तथा राजनैतिक सुधारों के लिए बर्फ़ के समान घुलते रहने की दुहाई देते फिरते हैं !! किसी आगामी अङ्क में हम विशेष रूप से इस समस्या पर प्रकाश डालेंगे।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

६,००० प्रतियाँ हाथोंहाथ बिक चुकी हैं !!

तीसरी बार !

प्राण नाथ

तीसरा संस्करण !!

लेखक—

लम्बी दाढ़ी, नाक में दम, मार-मार कर हकीम, लखनऊ लाल, आदि-आदि अनेक पुस्तकों के रचयिता—हास्यरस के प्रधान लेखक

श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०

इस सुन्दर उपन्यास की उत्तमता का अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसकी ६,००० प्रतियाँ हाथोंहाथ बिक चुकी हैं और नित्य माँगें चली आ रही हैं ! वह चीज़ है जिसे पढ़कर आपको अपनी सामाजिक स्थिति पर घण्टों विचार भी करना होगा और सामाजिक सुधार के क्षेत्र में अपने को उतारने की शपथ खानी होगी। पहले संस्करण का मूल्य २॥) था पर केवल प्रचार की दृष्टि से इसे घटा कर २॥) कर दिया गया है, छपाई-सफ़ाई दर्शनीय हुई है। पुस्तक सजिल्द है। आज ही एक प्रति मँगा लीजिए। स्थायी ग्राहकों से मूल्य केवल १॥=)

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न्यू फ़ैशन बनारसी साड़ी

सात रुपया में

सस्तेपन का कमाल

लम्बाई ५ गज़, चौड़ाई १। गज़

नया आविष्कार, अत्यन्त सुन्दर, आम-पसन्द बनावट, सुशिक्षित गृह-देवियों के बर्तने और उपहार में देने योग्य, टिकाऊ, पक्का रङ्ग, काडी रेशम या ज़री के काम वाली, जिस रङ्ग की दरकार हो, मँगाइए।

Rs. 7.

देखने में १००) की साड़ी जँचती है। केवल मशहूर करने की ग़रज़ से, लागत से भी कम दाम (Sample Price) केवल ७) डाक-ख़र्च ॥-); व्यापारियों का ज़्यादा तादाद का ऑर्डर न लिया जायगा। नापसन्द होने से पूरे ख़र्च-सहित दाम फेरकर वापस लेने की गारण्टी।

पता:—

स्वदेशी मिल्क-साड़ी-स्टोर

२३२ बलदेव-बिल्डिङ्ग, झाँसी JHANSI, U. P.

Printed and Published by R. S. [illegible] Editor— at The Fine Art Printing Cottage Twenty-eight, Elgin Road Allahabad.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

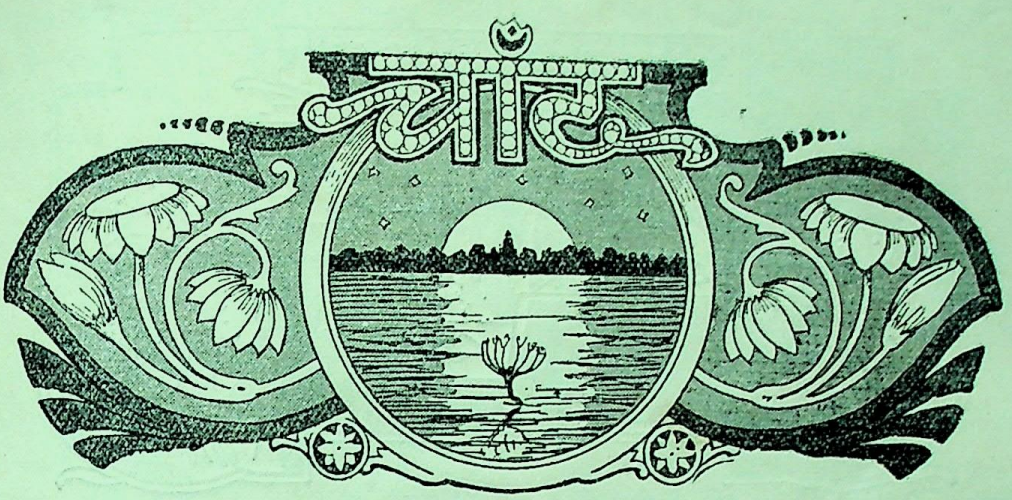

Highly appreciated and recommended for use in Schools and Libraries by
Directors of Public Instruction, Punjab, Central Provinces and
Berar, United Provinces and Kashmir State etc.. etc.

वर्ष ७ खण्ड १ | जनवरी, १९२९ | संख्या ३ पूर्ण संख्या ७५

वरदान

ॐ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट—
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

[रचयिता—श्रीमती महादेवी जी वर्मा]

तरल आँसू की लड़ियाँ गूँथ,
इन्हींने काटी काली रात।
निराशा का सूना निर्माल्य,
चढ़ा कर देखा फीका प्रात!।१।

सजग लखती थीं तेरी राह,
सुला कर प्राणों में अवसाद।
पलक-प्यालों से पी पी देव,
मधुर आसव-सी तेरी याद!।२।

इन्हीं पलकों ने कण्टकहीन,
किया था वह मारग बेपीर!
जहाँ से छूकर तेरे अङ्ग,
कभी आता था मन्द समीर!।३।

असन जल का जल ही परिधान,
रचा था बूँदों में संसार।
इन्हीं नीले तारों में मुग्ध,
साधना सोती थी साकार!।४।

आज आए हो हे करुणेश,
इन्हें जो तुम देने वरदान!
गला कर मेरे सारे अङ्ग,
करो दो आँखों का निर्माण!।५।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चाँद

जनवरी, १९२९

हिन्दुओं का भयङ्कर ह्रास

आज हिन्दू-समाज के अन्तस्तल में पतन की जो भयानक शक्तियाँ काम कर रही हैं, उनका स्मरण कर एक बार ही हृदय दहल जाता है और नेत्रों से गर्म आँसुओं की दो बूँदे टपक पड़ती हैं—आत्मा प्रकम्पित हो उठती है और इस निर्लज्जतापूर्ण जीवन से घृणा होने लगती है, इसका कारण है। हिन्दुओं का पतन बड़े ढङ्ग से हो रहा है और जिस प्रगति से हो रहा है, यदि कुछ दिनों के भीतर ही—निकट-भविष्य में ही, इसके कारणों को रोका न गया तो इस विशाल जाति का पतन एक निश्चित-सत्य है! इस जटिल प्रश्न पर प्रत्येक भारतवासी को ठण्ढे दिल से विचार करना चाहिए और इस पतन के वास्तविक कारणों का पता लगाना चाहिए।

हिन्दू सबसे पहले धर्म से गिरे, उनका नैतिक पतन हुआ, फिर आध्यात्मिक पतन हुआ और आज? वर्त्तमान युग उनके सामूहिक पतन का युग है। इसके सर्वनाश का यह विध्वंसात्मक चक्र आज से नहीं, बहुत दिनों से चल रहा है और उसका प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ है कि हिन्दू-जाति का जीर्ण-शीर्ण कलेवर आज अन्धकूप के किनारे पर खड़ा हुआ अपने अन्तिम घड़ियों की प्रतीक्षा कर रहा है। उसकी सारी शक्तियाँ छिन्न-भिन्न हो गई हैं, अङ्ग अस्त-व्यस्त हो गया है, स्वतन्त्रता नष्ट हो गई है और उसका अन्तिम अवलम्ब—उसकी विशाल जन-संख्या भी, जिसका उसे सबसे अधिक गर्व था, उत्तरोत्तर क्षीण होती जा रही है। हिन्दुओं की उदासीनता, उनकी स्थिति-पालकता और अपरिवर्त्तनशीलता ने इस रोग की जड़ को इतना पुष्ट कर दिया है कि वह क्रमशः असाध्य होता जा रहा है। हिन्दुओं के इस महान् रोग की तुलना क्षय के रोगी से की जा सकती है, जिसके प्राण घुल-घुल कर निकलते हैं, पर प्राणान्त होना जिस प्रकार क्षय के रोगी का निश्चित है, ठीक उसी प्रकार अभागे हिन्दुओं का सर्वनाश भी एक निश्चित-सत्य है!! जिन विनाशकारी कीटाणुओं ने हमारे पतन का रास्ता इतना विस्तृत कर दिया है, हमारी जड़ खोखली कर दी है और हमें राह का भिखारी बना दिया है, उन्हीं पर आज हम विचार करना चाहते हैं। अस्तु—

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समस्त संसार की जन-संख्या इस समय, सरकारी रिपोर्ट के अनुसार १,६४,६४,७१,००० है, जिसमें से ५४,४५,१०,००० ईसाई हैं, ४६,३८,००,००० बौद्ध हैं, २२,१८,२५,००० मुसलमान हैं और २१,६७,३४,५८६

अछूत-बालकों का नारकीय जीवन (हिन्दू-धर्म की गोद में)

अभागे हिन्दू हैं। यहूदियों की संख्या १,१२,०५,०००, अन्यान्य मतानुयायियों की संख्या १,५२,८०,००० और जङ्गली जातियों की संख्या है १५,८२,७०,०००। इन अङ्कों को देखने से स्पष्टतया पता चलता है कि संसार के चार

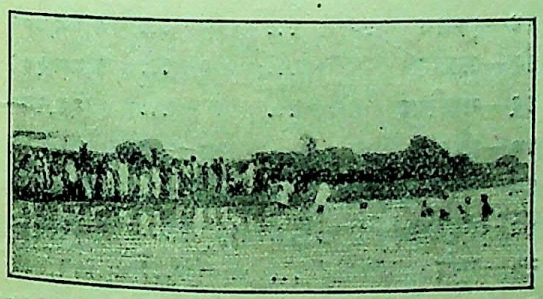

४५ अभागे हिन्दुओं के धर्म-परिवर्तन का उत्सव। ये भाग्यशाली स्त्री-पुरुष ईसाई-धर्म में दीक्षित ... हो रहे हैं !!

प्रमुख धर्मावलम्बियों में हिन्दुओं की ही संख्या सब से कम है! इस स्थल पर एक बात और भी विचार करने की है, वह यह कि जहाँ अन्य धर्मावलम्बियों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है, वहाँ हिन्दुओं का ह्रास बड़ी तीव्र गति से हो रहा है। इसका भी प्रमाण लीजिए—सन् १८८१ में समस्त भारत की आबादी में ७४·६ फ़ी सदी हिन्दू थे, जो सन् १९११ की मनुष्य-गणना के अनुसार ७३·४ फ़ी सदी रह गए। सन् १९०१ में यह औसत घट कर ७१·८ हो गया और १९११ में वे रह गए ६९·२, और १९२१ में? हमें आश्चर्य न होना चाहिए, आज समस्त भारत में हिन्दुओं का औसत केवल ६८·६ फ़ी सदी रह गया है! इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि हिन्दुओं के ह्रास का यदि यही क्रम जारी रहा तो आगामी क़रीब ४०० वर्षों में हिन्दुओं का चिन्ह

वे हिन्दू-बालिकाएँ, जो हिन्दू रहने पर नंगी सड़कों पर घूमा करती थीं और हलवाइयों की दूकान के नीचे गिरे हुए जूठे टुकड़ों पर ही जिनका जीवन निर्वाह होता था, अब ईसाई होने पर लज्जा-निवारणार्थ वेचारियों को धोतियाँ नसीब हुई हैं।

केवल इतिहास के रक्त-रञ्जित पृष्ठों में ही मिलेगा—हमें तो इसमें भी सन्देह है!

हिन्दुओं की अकाल-मृत्यु ही इस ह्रास का एकमात्र कारण हो, सो बात भी नहीं है। इसका भी अकाट्य प्रमाण हम देने को तैयार हैं। १९११ की मनुष्य-गणना की रिपोर्ट के अनुसार समस्त भारत में हिन्दुओं की

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संख्या थी २१, ७५, ८६, ८६२, जो सन् १६२१ ई० में घट कर २१, ६७, ३४, ५८६ रह गई अर्थात् केवल १० वर्षों में साढ़े आठ लाख हिन्दू घट गए! यह कहाँ गए, इसका एक छोटा सा प्रमाण तो यहीं ले लीजिए, शेष कारणों पर हम आगे चल कर विचार करेंगे। सन् १६११ की मनुष्य-गणना के अनुसार भारत में ईसाइयों की संख्या ३८, ७६, २०३ थी और १६२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार इनमें ६ लाख की वृद्धि हुई, अर्थात् इनकी संख्या ४७, ५४,०७६ हो गई अथवा यों कहिए कि १० वर्षों में साढ़े आठ लाख हिन्दू घटे और इन्हीं १० वर्षों में ६ लाख ईसाई बढ़े!! इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि प्रति दिन क़रीब २४४ नए ईसाई बढ़ते हैं और प्रति दिन क़रीब-क़रीब इतने ही हिन्दू घटते हैं!!

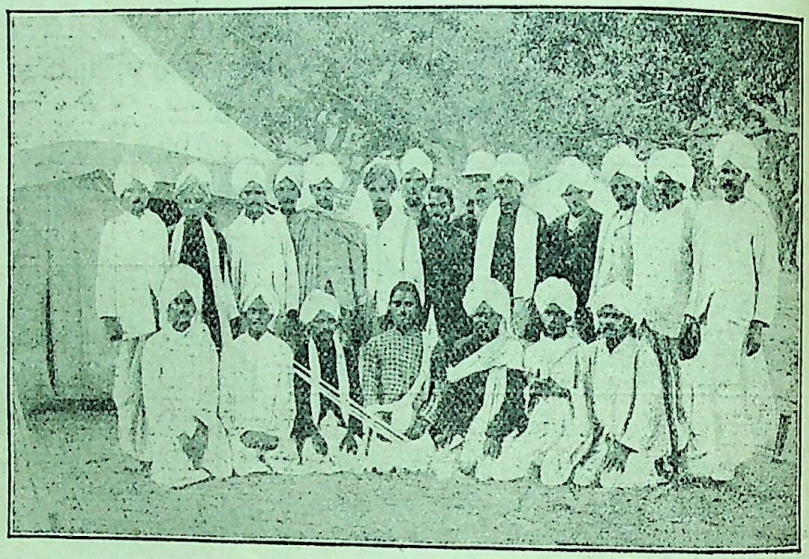

वे हिन्दू, जो हिन्दू-समाज के अमानुषिक अत्याचारों से त्रस्त होकर ईसाई हो गए थे, आज वे ही ईसाई-धर्म के प्रचार का कार्य कर रहे हैं और लाखों हिन्दुओं को ईसाई बनाने में सहायक हो रहे हैं! पर दोषी कौन है?

ऊपर जो ब्योरा दिया गया है, वह केवल भारतवर्ष का है, किन्तु समस्त हिन्दुओं की संख्या जो पिछले १० वर्षों में घटी है, वह है लगभग सवा करोड़!! इस समय भारतीय हिन्दुओं की ८५ प्रमुख जातियाँ हैं, जिनमें नीचे दिए ५२ जातियों का ह्रास बड़ी तीव्र गति से हो रहा है:—

क्रमाङ्क	जाति	१० वर्षों में कितने घटे?
१	ब्राह्मण	३,४०,७१७
२	अहीर	४,१५,६२५
३	बाँभन (महापात्र)	६८,६०६
४	बागदी	१,४६,४२५
५	बाउरी	४,३३,०२८
६	भूमिहार	२,११,२२७
७	बारूई	४,१५,१६६
८	चमार	२,३०,०८५
६	चाला	६४,५५२
१०	चूहड़	२२,४७१
११	धानुक	१,०६,५७४
१२	धोबी	५३,८७४
१३	डोम	५,००,८७०
१४	दुसाध	१,४८,७०२
१५	फ़क़ीर	१,८८,५७६
१६	गड़रिया	६६,२२०
१७	गौर	४३,६५६
१८	गोल्ला	१,२१,२६१
१६	गौड़	१५,३५८
२०	गूजर	१६,१७३
२१	हज्जाम	१,०७,६७५
२२	जोगी	१,५२,६०५
२३	जुलाहा	२,००,२६७
२४	काछी	७६,३०६
२५	कहार	१,३१,४७५
२६	करन	६०,५६४
२७	क़साई	६,७६,३६५
२८	केवट	६५,१८६

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

२९—कोरी	...	...	८६,१८१
३०—कोली	...	...	६,७२,७८४
३१—कुँभार	...	...	७१,७८६
३२—कुनबी	...	...	१२,८३,७०९
३३—कुरुमवान	...	...	९२,३४०
३४—लिङ्गायत	...	...	२,३८,७१६
३५—लोध	...	...	१,१५,५६८
३६—लोहार	...	...	५,२४,०६४
३७—मादिगा	...	...	२,४३,१६४
३८—महार	...	...	३,४०,१६४
३९—माल	...	...	१,४८,९१५
४०—माली	...	...	१,६०,२४३
४१—मोची	...	...	९४,६५२
४२—पल्ली	...	...	१८,८२३
४३—परिया	...	...	४०,९४६
४४—पासी	...	...	११,२४३
४५—पाटन	...	...	२,४८,९४८
४६—राजवन्सी	...	...	२,३०,७८०
४७—साइजिद	...	...	५४,२७८
४८—साही	...	...	१,४४,०६९
४९—सिद्धी	...	...	८,४३,१०४
५०—सुनार	...	...	१,२५,३६७
५१—तेली	...	...	७३,७६२
५२—बक्कालिपी	...	...	२,०४,५४१

उपरोक्त अङ्कों को ध्यानपूर्वक देखने से पता चलता है कि अधिकतर ह्रास हुआ है अशिक्षित तथा अछूत कही जाने वाली जातियों का। ये प्रायः सभी ऐसी जातियाँ हैं, जिन्हें आसानी से बहकाकर—साधारण से साधारण प्रलोभन देकर अन्य धर्म्मावलम्बी उन्हें अपने धर्म में दीक्षित कर सकते हैं, और हो भी यही रहा है। अछूत जाति के लोग आज उच्च जाति कहे जाने वाले हिन्दुओं के अत्याचारों से पिसे जा रहे हैं—आज से नहीं, हज़ारों वर्षों से उन्हें पद्दलित किया गया और उनके मनुष्योचित सभी अधिकार शनैः शनैः उनसे छीन लिए गए। पर अब ज़माना बदल रहा है, इस उन्नति और विकास के युग ने उनके हृदयों में भी क्रान्ति उत्पन्न कर दी है और अब वे अपने पशुता का जीवन परित्याग कर मनुष्यों का सा जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। सम्भव है, अभी बहुत दिनों तक उनके नेत्र-पट न खुलते, पर अन्य धर्म्मावलम्बियों के सङ्गठित प्रचार (Propaganda) का प्रभाव भी इनके जीवन पर कम नहीं पड़ रहा है। अन्य धर्म्मावलम्बी प्रचारकों की तर्कपूर्ण युक्तियों के सामने बेचारे अशिक्षित अछूतों को निरुत्तर हो जाना पड़ता है, और उत्तर दिया ही क्या जा सकता है? ये प्रचारक उनकी दीनावस्था दिखा कर उन्हें इतना उत्तेजित कर देते हैं कि बेचारों को क्षणिक आवेश में आकर अपने बाप-दादों के धर्म्म को तिलाञ्जलि दे देनी पड़ती है। और ये धर्म्म-प्रचारक झूठ भी तो नहीं कहते। वे ऐसे शिकार को पाकर उनसे पूर्ण सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं और हर

'उच्च-जाति' के हिन्दुओं की बर्बरता और अत्याचारों से त्रस्त अछूत-परिवार ईसाई-दीक्षा लेने जा रहे हैं!

प्रकार के सहयोग और सहानुभूति का विश्वास दिलाते हैं। मुसलमान-प्रचारक एक ओर कहते हैं—"लात मार दो इन बुज़दिल हिन्दुओं के नाजायज़ गुरूर पर, यह कुफ़्र के पुतले जब अपनी कनीज़ों की—अपनी बहू-बेटियों की इमदाद नहीं कर सकते तो तुम्हारी इमदाद क्या ख़ाक करेंगे? जो तुम्हारा छुआ हुआ पानी पीना नाजायज़ समझते हैं वह तुम्हारी आफ़ियत की फ़िक्र ही क्यों करने लगे? हमारा कुशादा धरम देखो और इसकी ख़ूबियों की परिस्तिश करो। नाचीज़ से नाचीज़ इन्सान—ख़्वाह वह किसी मज़हब का मानने वाला रहा हो, एक मर्तबा अगर इस्लाम क़ुबूल कर ले तो हम उसके हुक़ूक़ों (स्वत्वों) की हिफ़ाज़त के लिए ज़मीन-आसमान एक कर सकते हैं। देखो, हमारे भिश्ती तक नवाबों के साथ हुक़्क़ा पी सकते हैं। हमारी मस्जिदों का दरवाज़ा हक़ीर से हक़ीर मुसल-

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मान के लिए हमेशा खुला रहता है और तुम अपने मन्दिरों में अपने ख़ुदा की परिस्तिश से भी महरूम रक्खे जाते हो! हमारे दस्तरख़्वानों पर ग़रीब और अमीर एक साथ हम-निवाला हो सकते हैं और तुम्हारे काफ़िर हिन्दू तुम्हारे साथ कुत्तों से भी बदतर सुलूक करते हैं, जूठे रोटी के टुकड़े जिस तरह कुत्तों के आगे फेंके जाते हैं, तुम्हारे सामने भी उसी तरह फेंके जाते हैं। ऐसी ज़िन्दगी पर लानत है! क़सम क़ुरान-शरीफ़ की, अगर इस हक़ीर ज़िन्दगी को ठुकरा कर रसूल-पाक का बनाया हुआ इस्लाम क़ुबूल कर लो, तो वल्लाह हैवान से इन्सान नज़र आओगे! यही बुज़दिल और काफ़िर, जो आज तुम्हें दुत-कारते हैं, क़सम क़ुरान-शरीफ़ की, आदाब अर्ज़ करेंगे—मिन्नतें करेंगे। तुम्हीं से ख़ौफ़ खाएँगे, इसलिए नहीं कि तुम मुसलमान हो, बल्कि इसलिए कि वे बुज़दिल जान जाएँगे कि तुम्हारे पुश्त पर सारी क़ौम का साया है × × इत्यादि।" दूसरी ओर ईसाई-धर्म-प्रचारक इन्हीं बातों को अपने शब्दों में सुझा कर उन अभागों को अपनी अतुल शक्ति और अपने पीछे ब्रिटिश साम्राज्य की छत्र-छाया का प्रलोभन देते हैं। उन्हें प्रत्यक्ष दिखाया जाता है—'घसीटा' चमार जब से 'ईसाई होकर 'मिस्टर टॉम' के नाम से प्रसिद्ध हुआ है, तब से उसकी कितनी प्रतिष्ठा बढ़ गई है। रेलवे में नौकरी भी मिल गई है। काम तो करता है इञ्जन में कोयला झोंकने का, लेकिन जहाँ हिन्दुस्तानियों को १५) रु० वेतन मिलता है, वहाँ उसको मिलता है ८०)रु० मासिक!! तुम्हारे ऐसे तीन ख़ानसामा-बावर्ची उसकी सेवा में उपस्थित रहते हैं। दूसरा उदा-हरण दिया जाता है 'कलुआ' पासी का, जो अब 'रॉस रिचार्ड्स' (Ross Richards) के नाम से प्रसिद्ध है और बड़ी लाईन में ट्रेवलिङ्ग टिकट कलक्टर हो गया है, अब जिसे १४०) रु० मासिक वेतन मिलता है और जो बड़े से बड़े हिन्दुस्तानी को जब चाहे 'डेम, ब्लडी, काला आदमी' कह सकता है और कोई उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। इसी प्रकार के अनेक 'डिक' और 'हेरी' के उत्थान की कथा सुनाकर बेचारे अशिक्षित अछूतों को ईसाई-मिशनरी अपने कपट-जाल में फँसा कर हिन्दू-जाति के विनाश-लीला में प्रवृत्त हैं। शायद हमें बतलाना न होगा कि बी० एन० रेलवे आदि की हड़तालों में रेलवे-आत्म-रक्षिणी सेना (Railway Defence Force) के जिन एङ्गलोइण्डियनों

बाईं ओर अछूतावस्था में एक हिन्दू-परिवार! दाहिनी ओर ईसाई होने पर उसी परिवार की काया-पलट—पशु से मनुष्य!!

ने बेचारे स्वयं दुख के मारे हड़तालियों पर गोलियों की वर्षा की थी, उनमें से कौन कह सकता है, अनेक 'कलुआ' पासी 'घुरई' ठाकुर और 'घसीटा' चमार के वंशज न होंगे?

पाठकों को जान कर आश्चर्य न होना चाहिए कि इस समय भारत में केवल हिन्दुओं का धर्म-परिवर्त्तन करने के लिए—उन्हें ईसाई-धर्म में दीक्षित करने के लिए १३७ ईसाइयों की मिशनरी जमायतें बड़े ज़ोरों से काम कर रही हैं, जिनमें १८,७७६ पादरी और ५०० डॉक्टर भी काम करते हैं। मिशनरियों की ओर से खुले हुए ४०३ अस्पताल निर्धन भारतीयों की सेवा (?) कर रहे हैं। ४३ प्रेस हैं और भिन्न-भिन्न भाषाओं के ६६ पत्र-पत्रिकाएँ निकलती

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं। भारत की लगभग सभी शिक्षा-सम्बन्धी अच्छी संस्थाएँ ईसाइयों द्वारा प्रचलित हैं, जिनमें बाइबिल का पढ़ना अनिवार्य होता है, पादरियों का व्याख्यान सुनना अनिवार्य होता है और न जाने क्या-क्या करना अनिवार्य होता है। सरकारी और जातीय इतने स्कूल और कॉलेज हैं नहीं, जिनमें भारतीय बालक स्वतन्त्र होकर पढ़-लिख सकें; अतएव बाध्य होकर उन्हें इन संस्थाओं की शरण लेनी ही पड़ती है। समस्त भारत में ईसाई-मिश्नरियों के ५१ कॉलेज, ६१० मिशन-स्कूल और ६१ ट्रेनिङ्ग स्कूल और कॉलेज हैं। इन संस्थाओं में ४८,०४४ छात्र आज शिक्षा पा रहे हैं।

मुक्ति-सेना की कार्यवाही और उसकी संलग्नता आज भारतवासियों से छिपी नहीं है। इसके आधीन ३०८ यूरोपियन ऑफ़िसर, २,८८६ भारतीय प्रचारक, ५०७ प्राईमरी स्कूल, १४,६७५ छात्र डे-स्कूलों में पढ़ने वाले, २२ बोर्डिङ्ग, ९०० जरायम पेशा के लोग, १७ उपनिवेश, ३,२४२ एकड़ भूमि, ७ भिन्न-भिन्न भाषाओं में ११ मासिक पत्र, जिनके पढ़ने वाले १५,००० हैं और इनकी कुल ५६७ सामाजिक संस्थाएँ हैं, जिनमें कार्य के अतिरिक्त २६,८०३ मनुष्यों का पालन होता है।

इन साधनों के अलावा साधारणतया सब मेलों में और विशेष कर उन मेलों में जो नीच-जाति के होते हैं, जिस प्रकार ईसाई-धर्म-प्रचारक अपनी दूकानें सजा कर बैठते हैं सो सभी जानते हैं, बतलाने की आवश्यकता नहीं। हमारा अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि सारे मिश्नरी बेईमानी से, दग़ाबाज़ी, से फ़रेब से या ढोंग रच कर जनता को धोखा देते हों, बल्कि इनमें से बहुतेरे बड़े सच्चरित्र, सिलनसार, नेक और निस्स्वार्थ समाज-सेवी होते हैं, जो अपनी संस्थाओं द्वारा भारतीय जनता की बहुत उपयोगी सेवाएँ कर रहे हैं। बात यह है, ईसाइयों का अपने धर्म में अटूट विश्वास है। अपने देश, समाज और जाति के वे सच्चे शुभचिन्तक, निस्स्वार्थ सेवी और कर्त्तव्य-परायण हैं। वे जनता के समक्ष अपने धर्म की विशालता और जीवन का आदर्श उपस्थित कर उन्हें अपनी ओर आकर्षित करना जानते हैं। यही कारण हैं, जो उनके सहायक हो रहे हैं और पग-पग पर उन्हें आशातीत सफलता प्राप्त हो रही है। मद्रास के बड़े पादरी ने १९२५ की जो रिपोर्ट प्रकाशित की है, उसे देखने से पता चलता है कि ईसाइयों की दैनिक वृद्धि का औसत

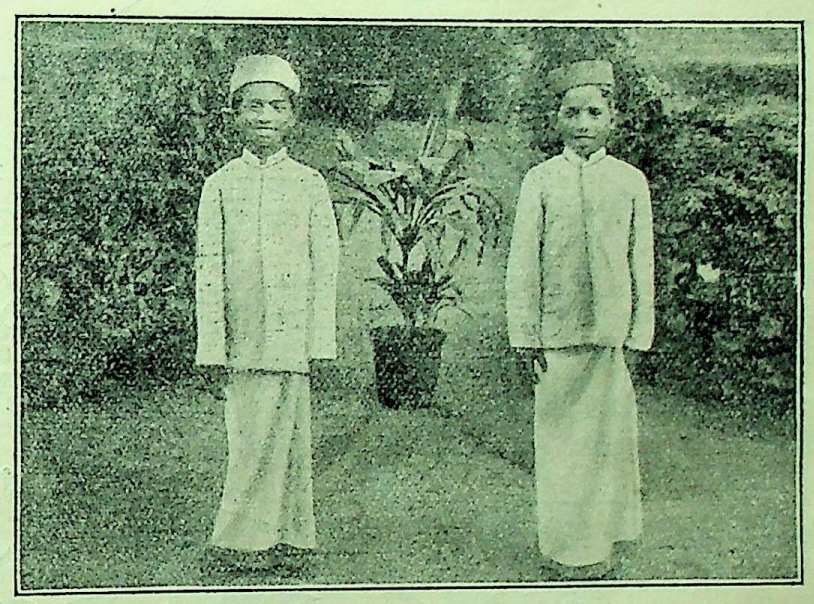

हिन्दुओं की गलियों में घूमने वाले अनाथ हिन्दू-बालक, जो ईसाई होकर अपने नए वेष-भूषा पर इतरा रहे हैं !!

२९९ ३ है, अर्थात् लगभग ३०० अन्य धर्मावलम्बी—ख़ासकर हिन्दू—प्रति दिन ईसाई-धर्म में दीक्षित हो रहे हैं। एक और उदाहरण भी हम इस स्थल पर देना चाहते हैं। पञ्जाब प्रान्त में सन् १८८१ में केवल ३,७७९ ईसाई थे, सन् १८९१ में इनकी संख्या एकाएक १,६३,९९४ हो गई और १९२१ की गणना के अनुसार केवल इस प्रान्त के ईसाइयों की संख्या बढ़ कर ३,४६,२५९ हो गई है और दिनोंदिन इस संख्या में वृद्धि होती जा रही है, अर्थात् ३०० नए ईसाई प्रति दिन बढ़ते जा रहे हैं !!

ईसाई-मिश्नरियों की इन कार्यवाहियों को और इनकी सफलता को देख कर मुसलमानों ने भी इधर कुछ दिनों से हिन्दुओं की मूर्खता, उनकी अकर्मण्यता

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

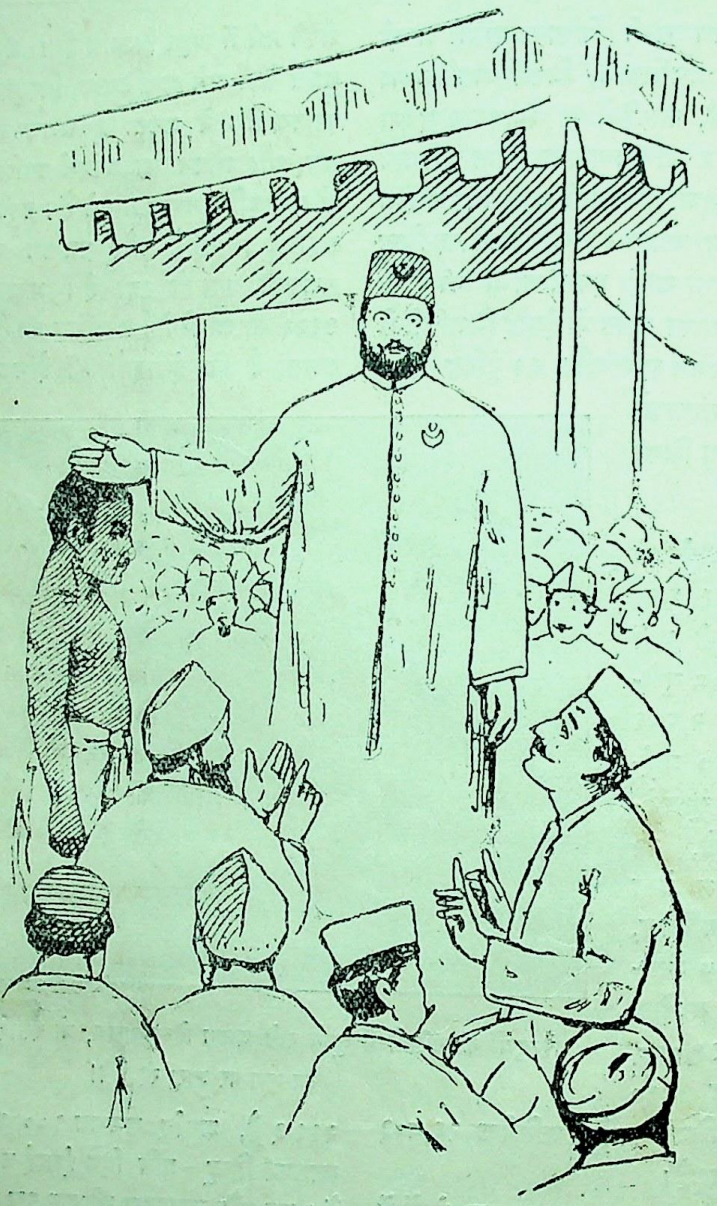

लावारिस माल—Unclaimed Property

राष्ट्रपति मौलाना मुहम्मदअली (कॉङ्ग्रेस के प्लेटफ़ॉर्म से)

भाइयो ! अछूतों का सवाल हिन्दू-मुसलमान दोनों का ही सवाल है ! बेहतर तो यही हो कि हिन्दू और मुसलमान मिल कर—समझौता करके—इन्हें आपस में आधा-आधा बाँट लें। इससे हिन्दू-मुस्लिम इत्तहाद हमेशा के लिए क़ायम हो जायगा !

स्वराजिस्ट—जनाब, बिलकुल ठीक और बजा फ़र्माते हैं। हम लोग क़तई मुत्तफ़िक़ राय हैं। आख़िर इन अछूत बेचारों का भी तो ठिकाना लगना ही चाहिए।

कॉङ्ग्रेस का प्रतिनिधि-मण्डल—आमीन ! आमीन !!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और बढ़ती हुई विलासिता से पूरा-पूरा लाभ उठाया है। यह सच है कि ईसाइयों के समान अभी इन्हें उतनी सफलता प्राप्त नहीं हुई है और न इनके पास पर्याप्त

हिन्दू रहने पर ये अछूत-बालिकाएँ मारी-मारी फिरती थीं। ईसाई होकर इन्होंने नवीन जीवन प्राप्त किया है। ये अब मिशन-स्कूल में शिक्षा पा रही हैं और टोकरी बनाने का कार्य सिखा कर इन्हें स्वावलम्बी बनाया जा रहा है। हिन्दुओ, देखो और इनके भाग्य की सराहना करो !!

साधन ही हैं, पर फिर भी हम इस जाति की ज़िन्दादिली, देश और समाज-प्रेम की खुले दिल से प्रशंसा करते हैं। पाठकों को यह जान कर भी आश्चर्य न करना चाहिए कि केवल जनवरी १९२७ से ७ अगस्त सन् १९२७ तक अर्थात् ८ महीनों में केवल देहली की जामा मस्जिद में ३,९३६ आदमी मुसलमान बनाए गए !! इसका अर्थ यह हुआ कि औसत के हिसाब से केवल एक देहली शहर में प्रति दिन १६ व्यक्ति मुसलमान बनाए गए। सन् १९११ से सन् १९२१ तक—केवल १० वर्षों में २५½ लाख नए मुसलमान भारत में पैदा हुए। हिन्दुओं की आज जो मनोवृत्ति है, उसे दृष्टि में रखते हुए हम तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि हिन्दू निकट-भविष्य में अपनी संख्या बढ़ा नहीं सकते। कारण स्पष्ट है; ७ करोड़ मुसलमान अरब, ईरान और तुर्किस्तान से नहीं आए थे। उन आने वालों की संख्या लगभग ७०० मात्र थी—हिन्दुओं ने ही अपनी बहू-बेटियाँ उन्हें देकर उनकी संख्या में वृद्धि की है! जब ७०० से वे ७ करोड़ हो गए और उनकी वृद्धि कोई नहीं रोक सका तो आज ७ करोड़ धर्म के नाम पर मर-मिटने वालों की वृद्धि कौन माई का लाल रोक सकता है? धर्म का प्रश्न उपस्थित होने पर मुसलमानों का बच्चा-बच्चा मरने को प्रस्तुत रहता है। मुसलमान मरना जानते हैं, इसलिए उन्हें कोई मार नहीं सकता। हिन्दुओं को अपनी जान धर्म से प्यारी है, इसलिए वे जी नहीं सकते, उनका विनाश एक निश्चित-विषय है। यदि हम जीना चाहते हैं तो हमें मृत्यु का भय त्याग देना होगा और यदि हम मृत्यु चाहते हैं तो हमें जीवन का लोभ ही मृत्यु प्रदान कर सकता है। किसी भी राष्ट्र अथवा समाज के सारे उत्थान और पतन का यही सारमय निष्कर्ष है—यही उसके इतिहास का संक्षिप्त, किन्तु अकाट्य परिचय है? अस्तु।

पर अपनी इस पतितावस्था से त्राण पाने के लिए लम्बी-नाक वाले हिन्दू क्या कर रहे हैं? वे अपनी सङ्कुचित जातीय सभाओं में ईसाइयों तथा मुसलमानों के धर्म-परिवर्तन की निन्दा करते हैं। उन्हें गालियाँ देते हैं और सरकार से उन्हें दण्ड दिलाने की प्रार्थना के प्रस्ताव पास करने की प्रार्थना कर, अपने सारे कर्त्तव्य की 'इति-श्री' समझते हैं। अभागे हिन्दुओं के आज

मद्रास के 'पारिया' नामधारी अछूतों के लड़के, जो ईसाई होने पर मिशन-स्कूल में शिक्षा पा रहे हैं

सात करोड़ अछूत कहे जाने वाले भाई पशुओं से बुरा जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनकी लगभग तीन करोड़ अभागिनी विधवा बहिनें राह की भिखारिनी बनी घुट-घुट कर अपना जीवन व्यतीत कर रही हैं। इनमें से

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अधिकांश प्रकृति से युद्ध न कर सकने के कारण पराजित होकर आज अपना नारकीय जीवन व्यतीत कर रही हैं, जिसके फल-स्वरूप न जाने कितने वेदव्यास, न जाने कितने कर्ण, न जाने कितने कालिदास और न जाने कितने कबीर आज कूड़ों के ढेरों पर, पेड़ों के नीचे और नदी के तट पर उचित देख-भाल न हो सकने के कारण हिन्दू-समाज को कोसते हुए अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देते हैं! यदि इन्हीं लावारसी बच्चों को उठाकर, इन्हीं अभागिनी अनाथ विधवाओं का हाथ पकड़ कर बेचारे मुसलमान अथवा ईसाई अपनी संख्या बढ़ाते हैं, यदि उन्हें पशु से मनुष्य बनाने का प्रयत्न करते हैं तो हिन्दू-महासभा के रङ्ग-मञ्च से उनकी निन्दा की जाती है, उन्हें गालियाँ दी जाती हैं और उनका अपमान किया जाता है। यदि

मिशन-स्कूल की वे बालिकाएँ, जो कभी अछूत थीं, अब स्कूल के लिए पानी भरने जा रही हैं।

हिन्दुओं के इन्हीं विनाशकारी छिद्रों की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया जाता है, उसकी आँखों में उँगली डालकर उसके इस भयङ्कर पतन की ओर इशारा किया जाता है तो धन्यवाद देने के बदले 'चाँद' के बहिष्कार का फ़तवा दिया जाता है! उस पर क़ानूनी कारवाई करने की धमकी दी जाती है और सम्पादक महाशय के ख़ून कर डालने के लिए नवयुवकों को प्रोत्साहित किया जाता है, यह है अभागे हिन्दुओं का सच्चा स्वरूप और यह है उसके भावी पतन का नग्न-चित्र!!

भारतीय मनोवृत्ति का व्यापक स्वरूप यदि कोई देखना चाहता है, तो उसे जातीय आन्दोलनों की तह में देखना चाहिए—चाहे वह हिन्दू-महासभा हो या ख़िलाफ़त का व्यवसाय। हमारी अधिकांश ज़िल्लत के लिए, हमारे भयानक पतन के लिए और हमारी वर्त्तमान पतितावस्था के लिए ज़िम्मेदार हैं हमारे सुधार के लिए बर्फ़ के समान घुलने वाले हमारे अधिकांश नेतागण, जिन्होंने देश और समाज-सुधार के पवित्र कार्य को अपने पेट पालने का व्यवसाय बना रक्खा है! हमारे इस आक्षेप को निराधार कहने का प्रयत्न करना, अपनी अनुभव-शून्यता का परिचय देना होगा! आज हिन्दू-महासभा के नाम पर यदि करोड़ों नहीं, तो लाखों रुपए हिन्दू-सङ्गठन के पवित्र आन्दोलन को कलङ्कित करने के लिए एकत्र किए जा चुके हैं, पर क्या हम इस बात को पूछने का साहस कर सकते हैं कि इस विपुल धन का आज तक क्या उपयोग हुआ है? कितनी व्यायामशालाएँ, कितने संरक्षण-गृह, कितनी पाठशालाएँ और कौन-कौन सी संस्थाओं का निर्माण किया गया है? हम दावे के साथ कह सकते हैं कि ऐसा एक भी उपयोगी कार्य पिछले ५ वर्षों में नहीं हुआ है और न निकट-भविष्य में होने की सम्भावना ही है। पर भोली जनता को धोखा देने के लिए, सर्व-साधारण का मुण्डन करके अपनी उदर-पूर्ति के लिए—हमारे अधिकांश नेतागण, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान—देश का रक्त चूस रहे और कोठियाँ खड़ी कर रहे हैं। जिनके बाप-दादे कौड़ी-कौड़ी को मुहताज थे—दिन में जिनके एक भी भोजन का ठिकाना नहीं था और गलियों में दूकान-दूकान पर भिक्षा माँगते फिरते थे—उन्हीं की सन्तान आज जातीय आन्दोलन के नाम पर मालामाल हो रही है! जिनके पिता दिन में एक दाता के यहाँ भोजन कर दूसरे दिन के लिए दूसरे दाता की तलाश करते हुए सड़कों पर भटकते थे, उन्हीं की सन्तान आज हिन्दू-सङ्गठन के पवित्र नाम को कलुषित करने के कारण सैकड़ों और हज़ारों रुपए मासिक आय (Honorarium) का प्रबन्ध कर चैन की बंसी बजा रही है! वे दिन-भर शतरञ्ज खेलकर अपना तथा अपने मित्रों का मनोविनोद करते हैं और कभी-कभी सन्ध्या को भूले-भटके प्रेसों में पहुँच कर सीधे-सादे अशिक्षित कम्पोज़िटरों और प्रेस के अन्य कार्यकर्त्ताओं को हिन्दू-सभा की मेम्बरी के लिए प्रोत्साहित करते हैं। इसी श्रेणी के देशद्रोही नेताओं की आवभगत में—उनके पूजा-सत्कार में—देश के कोने-कोने

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

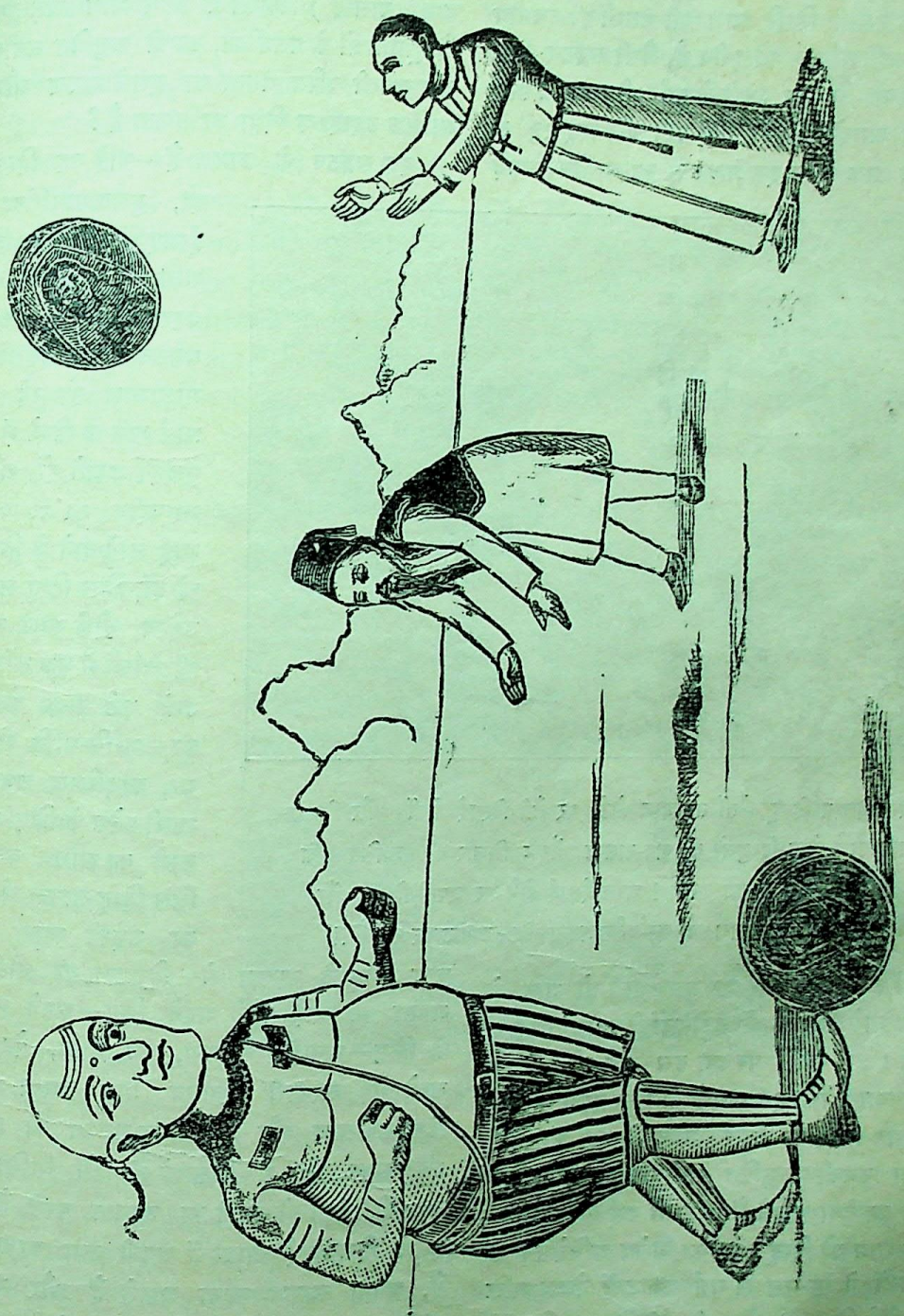

अछूतों का फ़ुटबॉल

परिडत जी अछूतों के बहिष्कार का फ़तवा देकर उसे ठुकरा रहे हैं और मौलवी तथा पादरी साहब अछूत रूपी गेंद को ठोक रहे हैं !

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से एकत्रित किया हुआ सारा धन स्वाहा हो रहा है, यही कारण है कि हमारी स्थिति आज भी उतनी ही दयनीय है—उससे कहीं अधिक शोचनीय है, जैसी सङ्गठन और हिन्दू-महासभा का ढोंग रचने के पूर्व थी। सन् १९२३ से इन थोथे आन्दोलनों की नींव पड़ी और सन् २३ से २७ के अन्त तक केवल इस प्रान्त में २८ जातीय झगड़े

यदि ये महिलाएँ हिन्दू होतीं तो आज कोठों पर बैठी दिखाई देतीं और जिनका एकमात्र कार्य होता हिन्दुओं की पाप-वासना और व्यभिचार की प्रज्वलित अग्नि में अपना सदाचार स्वाहा करना! आज ईसाई होने पर अपनी शिक्षा और शिल्प-कला के ज्ञान द्वारा सदाचार-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर रही हैं!!

हुए, जिनमें ३९ हिन्दू और ४२ मुसलमान तो जान से गए और न जाने कितनों की हड्डी-पसली आज तक दुख रही होगी। इस स्थान पर हम इस बात की विवेचना नहीं करना चाहते कि इन झगड़ों के जन्म-दाता हिन्दू थे या मुसलमान। हम तो केवल जातीय नेताओं की स्वार्थ-लिप्सा और उनकी कलुषित मनोवृत्ति से देशवासियों को सचेत कर देना चाहते हैं। हमने कई ऐसे उदाहरण देखे हैं कि शाम को हिन्दू-सभा का विशेष अधिवेशन कर हिन्दू-नेताओं ने रङ्ग-मञ्च से गर्ज कर उन्हें केवल शक्ति-शाली बनने के लिए उत्साहित ही नहीं किया, बल्कि सच तो यह है कि उन्हें उद्दण्ड होने को उकसाया भी गया; और जब दूसरेदिन हिन्दू-मुसलमानों का मोर्चा लगा तब वही नेता दुम दबाकर बन्द गाड़ी में (जिसका नम्बर भी हमारे पास है) देहली के लिए भाग खड़े हुए। क्या हिन्दू-नेताओं के पतन का, उनकी कलुषित मनोवृत्ति का और उनकी चरित्र-हीनता का इससे दारुण और इससे मार्मिक उदाहरण दिया जा सकता है?

हम सङ्गठन के क़ायल हैं—चाहे वह हिन्दुओं का हो, मुसलमानों का अथवा ईसाइयों का। हम क्रियात्मक शक्ति (Creative Force) के कट्टर पक्षपाती हैं, किन्तु जिस सङ्गठन के नाम पर हिन्दू-नेता मालामाल हो रहे हों—वे फ़र्स्ट क्लास के डिब्बे में बैठ कर गुलछर्रे उड़ाते हों और हमारे भाग्यहीन ९९.८ प्रति शत भाई दाने-दाने के लिए तड़प रहे हों, जिस हिन्दू-सङ्गठन का उद्देश्य भोले-भाले नागरिकों की आँखों में धूल झोंक कर—उन्हें झूठे सब्ज़ बाग़ दिखा कर—भाँति-भाँति से बहका कर, काउन्सिल अथवा एसेम्बली-प्रवेश के लिए वोट प्राप्त करने का साधन बनाना हो, जिस हिन्दू-सङ्गठन के नेताओं का उद्देश्य मृदुल भाषणों द्वारा सभा के रङ्गमञ्च से—हिमालय की चोटी से—जनता को आर्द्र करके अपने लिए—अपने बाल-बच्चों के लिए—अनुचित सम्मान, धन, कीर्ति, ऐश्वर्य और लम्बे-चौड़े सरकारी ख़िताब प्राप्त करना हो, उस हिन्दू-महासभा और उस हिन्दू-सङ्गठन को हम हृदय की समस्त शक्ति से धिक्कारते हैं और शिक्षित समाज को भी, ऐसा ही करने का आह्वान करते हैं। यदि हमारे हिन्दू-भाई वास्तव में अपनी रक्षा करना चाहते हैं, अपना सङ्गठन करना चाहते हैं और संसार में जीवित रहना चाहते हैं तो उनका सबसे पहला कर्त्तव्य है इस प्रकार के स्वार्थी नेताओं के कपट-जाल से अपने को दूर रखना।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनेक भारतीय नेताओं की ईमानदारी में हमें सन्देह रहा है और समय-समय पर इस सन्देह की पुष्टि भी होती गई है। हमारा विश्वास है कि सभा-सोसाइटियों के रङ्गमञ्च से ललित, मुहावरेदार और सुन्दर भाषा में व्याख्यान देने की अपेक्षा यदि हमारे नेताओं में आत्म-विश्वास होता, यदि वे अपने स्वार्थ की आहुति देकर, किसी विषय का अध्ययन कर, उतना ही कहते जितना वे स्वयं कर सकते हैं, तो आज की अपेक्षा हमारे समाज तथा देश-सुधार का कार्य कहीं सुगम हो गया होता, पर परिस्थिति ऐसी नहीं है। जिन नेताओं के हृदय के कोने-कोने में विधवा-विवाह का विरोध भरा हुआ है, वे ही सामाजिक परिषद् के प्लेट-फ़ॉर्म पर खड़े होकर विधवाओं की दशा पर आँसू बहाते हैं और उनके (विधवाओं के) जीवन का करुणापूर्ण दृश्य श्रोताओं के सामने उपस्थित करते हैं; जो नेता बाल-विवाह की कलुषित प्रथा को ही देश की दुर्बलता का कारण समझते हैं, अवसर पड़ने पर वे ही नेता बाल-विवाह जैसे महत्व-पूर्ण बिल का विरोध प्रदर्शित करने में आत्म-ग्लानि का अनुभव तक नहीं करते, लज्जा से उनका मस्तक नत नहीं होता, जब चाहे, निमन्त्रित कर किसी भी प्लेटफ़ॉर्म से फिर बाल-विवाह का विरोध उनसे करा लीजिए! जो नेता अछूतों को मानवीय अधिकार प्रदान करने के लिए गला फाड़-फाड़ कर व्याख्यान देते फिरते हैं, उनके स्वत्वों को कुचलने वाले उच्च जाति के लोगों पर घृणा और रोष प्रकट करते हैं और शास्त्रों की तथा धर्म-ग्रन्थों की दुहाई देकर यह बात साबित करते फिरते हैं कि अछूत और उच्च जाति में किसी भी प्रकार का भेद-भाव जगन्नियन्ता ने निर्माण नहीं किया है, वे ही नेता अछूत कहे जाने वाले भाई से स्पर्श हो जाने पर तीन बार स्नान करते हैं और गोबर और क़ीच—न जाने क्या-क्या खाकर अपनी आत्म-शुद्धि करते हैं!

हम यहाँ पर एक उदाहरण भी देकर अपने आशय को और भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं। गत वर्ष काशी में हिन्दू-महासभा का अधिवेशन था। सार्वजनिक सभा में महामना मालवीय जी अछूतों की पतितावस्था का चित्र खींच रहे थे। बेचारों की आँख में सदा की भाँति आँसू आगए। तब काशी में बिजली नहीं थी, गर्मी का दिन था। कोनों में खड़े हुए बेचारे अछूत नेताओं को पङ्खा झल रहे थे। महामना आत्म-विस्मृति के कारण—अथवा न जाने कैसे बड़े जोश में आगए और व्याख्यान के सिलसिले में "तू ही तो मेरा राम है" कह कर एक अछूत के पैर पर गिर पड़े और ख़ूब रोए, फिर क्या था करतलध्वनि से सारी सभा गूँज उठी, बड़ी चहल-पहल रही, बड़ा जोश फैला, महामना की अछूत-प्रियता का नारा बुलन्द होने लगा और वह सभी बातें हुईं जो ऐसे मौक़ों पर हुआ करती हैं; पर क्या महामना में इतना

वे लावारिस हिन्दू-बालक, जिनके शरीर के ढाँचों में हिन्दुओं की बर्बरता का चित्र दिखाई देता था, अब ईसाई होकर मिशन-स्कूल में व्यायाम की शिक्षा पा रहे हैं!!

आत्म-बल है कि उसी 'राम' के हाथ का छुआ हुआ एक लोटा जल ग्रहण कर सकें, अथवा एक ही फ़र्श पर बैठ कर कुछ भोजन ही कर लें? यदि नहीं, तो फिर इस प्रपञ्चता की क्या आवश्यकता थी? हमारा तो पूर्ण विश्वास है कि महामना अछूत-रूपी 'राम' के चरणों पर न गिर कर, उस अछूत को अच्छी तरह स्नान करा कर, हाथ ख़ूब साफ़ करा कर और लोटा बालू से मँजवा

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर यदि महामना उससे पानी मँगा कर, बिना प्यास के भी दो घूँट पी लिए होते, तो आज अछूतों के सुधार का मार्ग कहीं अधिक सरल हो गया होता। हमारा दृढ़ निश्चय है, महामना के आँसू गिराने की अपेक्षा यह विशेष क्रियात्मक सहानुभूति प्रदर्शित हुई होती और दर्शकों तथा श्रोताओं पर इस बात का वह प्रभाव पड़ता जो महामना के जीवन भर इसी प्रकार का व्याख्यान देने से नहीं पड़ सकता!

इसी प्रकार की एक मनोरञ्जक घटना महामना के

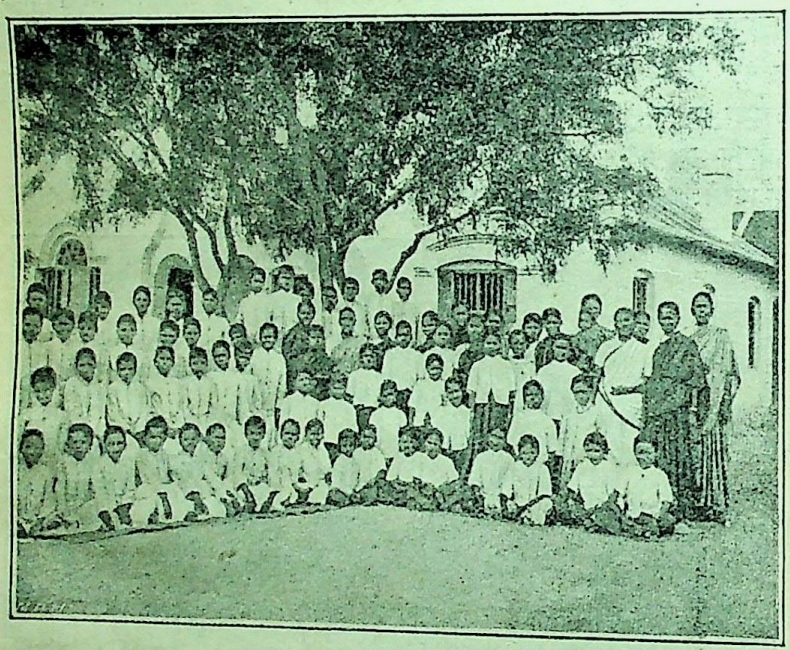

यह चित्र 'पारिया' नामधारी मद्रास के उन अछूतों का है, जो भूखों मरते थे। उच्च-जाति के हिन्दुओं का अत्याचार ही जिनका सारा वैभव था। अब ईसाई होकर बड़ी स्वच्छन्दता-पूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे और हिन्दू-समाज को कोस रहे हैं!!

सम्बन्ध में पाठकों को और स्मरण होगी। विगत ६ठी अप्रैल, सन् १९२७ को कुम्भ के अवसर पर हरिद्वार में महामना मालवीय जी के सभापतित्व में सनातनधर्म का एक विराट् अधिवेशन हुआ था। महामना ने अपनी स्वाभाविक ओजस्वी वक्तृता में सनातनधर्म की मर्यादा, उसकी विश्वव्यापी महानता एवं उसके सौन्दर्य की व्याख्या की; और कहा कि सनातनधर्म का सबसे सुन्दर स्वरूप वर्ण-व्यवस्था ही है! तत्पश्चात् महामना ने बाल-विवाह की दूषित प्रथा को एक बार ही बन्द करने का आदेश दिया और अन्त में विधवाओं की दारुण अवस्था का वर्णन करते हुए महामना बिलख-बिलख कर रोने लगे और उनके साथ ही रोने लगे भोले-भाले श्रोतागण! श्रोताओं पर महामना के इन आँसुओं का चाहे कुछ भी प्रभाव पड़ा हो, पर हमारे पत्थर-से वज्र कलेजे पर महामना के इन सारहीन आँसुओं का किञ्चित प्रभाव भी नहीं पड़ सका। अपनी इस कमज़ोरी को हम जून, १९२७ के एक नोट में स्वीकार भी कर चुके हैं!

इस टिप्पणी से हमारा मन्तव्य यह कदापि नहीं है कि महामना अछूतों के सुधार के पक्षपाती अवश्य हों, उनका छुआ हुआ खाना खाएँ और उनके हाथ का मँगाया हुआ पानी पीवें, और हम यह भी नहीं चाहते कि महामना अपने निजी विश्वास के विरुद्ध बाल-विवाह का विरोध अवश्य करें, हम एक क्षण के लिए यह भी नहीं चाहते कि महामना अपनी इच्छा तथा सिद्धान्त के विरुद्ध विधवा-विवाह का भारतवर्ष में प्रचार करें; पर इतना हम अवश्य चाहते हैं कि वे भारतीय जनता के भोलेपन से अनुचित लाभ न उठावें—केवल उन्हीं सुधारों के लिए आँसू बहावें और केवल उन्हीं सुधारों के लिए व्याख्यान दें अथवा चन्दा इकट्ठा करें जिसे उनकी अन्तरात्मा खुले-दिल से स्वीकार करती है, क्योंकि हमारा पूर्ण विश्वास है कि ऐसा करने से महामना, जिन्होंने अपना प्रायः सारा जीवन देश-सुधार के कार्य में व्यय कर दिया है, जो पिछले ३६ वर्षों से सार्वजनिक कार्य में रत रहे हैं—अपने देशवासियों का विशेष कल्याण कर सकेंगे!

हिन्दू-जनता से भी हमें कुछ निवेदन करना है, वह यह कि यदि वास्तव में वे अपने को शक्तिशाली, सुदृढ़

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं सङ्गठित करना चाहते हैं तो उन्हें किसी भी नेता की आवश्यकता न होनी चाहिए—उन्हें चाहिए समस्त भारत के हिन्दू-सङ्गठन का क्षणिक विचार परित्याग कर अपने अधीनस्थ परिवार का सङ्गठन करना और उन्हें शक्तिशाली तथा कर्तव्य-परायण बनाना। उन्हें समस्त भारत के हिन्दुओं की क्षणभङ्गुर सङ्गठन-आशा को एक बार ही तिलाञ्जलि देकर, अपनी सारी शक्ति अपने आश्रित व्यक्तियों के सुधार में, अपने परिवार वालों

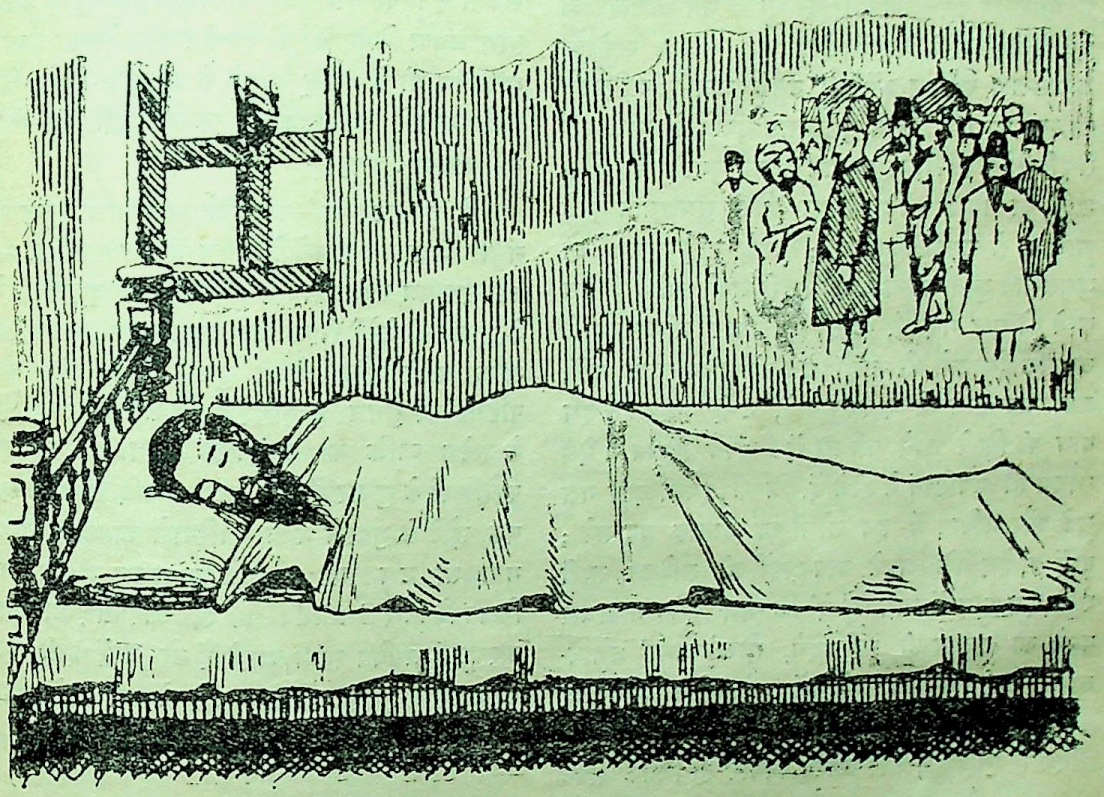

ख़्वाजा हसन निज़ामी का सुख-स्वप्न

सोते ख़्वाजा हसन निज़ामी, स्वप्नों का है तना वितान !
छोड़ अछूत राम-गंगा को, कलमे में लाते ईमान !!

की शिक्षा में और अपने कुटुम्बियों को बलिष्ठ करने में व्यय कर देनी चाहिए। सारे भारत में बाल-विवाह की कुप्रथा के कारण जो भयङ्कर हानियाँ हो रही हैं, उन्हें एक बार ही विस्मरण कर देना चाहिए और यह देखना चाहिए, इस बात का दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिए कि हमारे परिवार में इस प्रकार का अनिष्ट कदापि न होने पाएगा; उन्हें इस बात की चिन्ता न करनी चाहिए कि ३००हिन्दू आज प्रति दिन ईसाई अथवा १६ हिन्दू केवल देहली की जामा मस्जिद में प्रति दिन मुसलमान हो रहे हैं, बल्कि उन्हें यह देखना चाहिए कि उनके परिवार में वे कारण ही उत्पन्न न हों, जिनसे खीज कर किसी को धर्म-परिवर्त्तन करने की आवश्यकता उपस्थित हो। जो लोग वास्तविक सङ्गठन करना चाहते हों, उन्हें यह भूल जाना चाहिए कि समस्त भारत लगभग तीन करोड़ अभागिनी विधवाओं के करुण-क्रन्दन से गूँज रहा है, बल्कि उन्हें इस बात पर विचार करना चाहिए कि इस अकाल वैधव्य और बलात् निर्यातन का कारण क्या है और इन कारणों को ढूँढ़ कर इस पर विचार करना चाहिए—इस बात का अनुसन्धान करना चाहिए कि वैधव्य-जीवन का परिपीड़न इतना हाहाकार क्यों उत्पन्न

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर रहा है, और इन्हीं कारणों को अपने परिवार से समूल नष्ट कर देना चाहिए। जो लोग वास्तव में सामाजिक सुधार के पक्षपाती हैं, जो लोग देश की शक्ति को सुदृढ़ एवं शक्तिशाली बनाना चाहते हैं, उन्हें अपने सात करोड़ अछूत भाइयों की दयनीय दशा पर आँसू बहाने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि उनका कर्त्तव्य यह है कि वे अपने परिवार में ऐसे वायुमण्डल का सञ्चार करें—अपने आश्रित व्यक्तियों को ऐसी आदर्श शिक्षा प्रदान करें—कि वे संसार भर के धर्म कोआदर की दृष्टि से देखें, प्राणिमात्र में ईश्वर का—परब्रह्म परमेश्वर का अस्तित्व स्वीकार करें और उनके मानवी अधिकारों की रक्षा करें। जो लोग मुसलमान गुण्डों के अत्याचारों से परिपीड़ित हों; जिन्हें पग-पग पर इन गुण्डों की नादिर-शाही का भय हो; जिनकी बहू-बेटियाँ मुसलमान गुण्डे आसानी से भगा ले जाते हों; जिनके भाई-बान्धवों को मुसलमान मुल्ला अथवा ईसाई पादरी अपने धर्म में दीक्षित करने को तुल गए हों, उन्हें मुसलमान अथवा प्रभु के उपासक ईसाइयों को गाली देने की आवश्यकता नहीं, उनसे जङ्ग करने की ज़रूरत नहीं, उन्हें ज़रूरत है इस बात की कि वे अपने परिवार में—अपने कुटुम्ब में ऐसे साधन ही उपस्थित न होने दें, जिनसे इनकी दाल गल सके और भविष्य में इन लोगों का उत्साह बढ़ सके; उन्हें चाहिए कि अपने बाप-दादों की सञ्चित सारी शक्ति इस बात में व्यय कर दें कि हम ऐसे अत्याचार करने का अवसर ही नहीं देंगे, जिनसे अन्य धर्मावलम्बियों की शक्ति में वृद्धि हो सके। जिन लोगों को पण्डे-पुजारियों और मठाधिपतियों के विलासितापूर्ण जीवन से घृणा हो, और उनका विनाश ही जिनके जीवन का ध्येय हो, वे भी बड़ी सुगमता से अपने इस पवित्र सङ्कल्प की पूर्ति कर सकते हैं। इनके छिद्रान्वेषण करने की अपेक्षा यह कहीं उपयुक्त होगा कि प्रत्येक हिन्दू-परिवार इन धूर्तों का—ऐसे कलुषित तीर्थस्थानों का, जहाँ ऐसे काण्ड उपस्थित होते हों, जब तक पूर्ण सुधार अथवा संहार न हो ले, तब तक इनका बहिष्कार कर देना ही समाज के लिए श्रेयस्कर है, इसी प्रकार अन्य सभी बातों का भी—अन्य सभी कुरीतियों का भी—सुधार किया जा सकता है। पर सामाजिक परिषदों चिकने-चुपड़े प्रस्तावों द्वारा अथवा विधवाओं की दयनीय दशा देखकर महामना मालवीय जी के आँसू बहाने से ही समाज का किसी प्रकार का भी उपकार होना सम्भव नहीं है—हो भी नहीं सकता। अस्तु—

हिन्दू-सङ्गठन का—अपने को शक्तिशाली, सुदृढ़ और संसार की अन्य जातियों के समक्ष जीवित प्रमाणित करने का एकमात्र यही उपाय है कि प्रत्येक हिन्दू-परिवार देश के सुधार की ठेकेदारी का प्रलोभन छोड़ कर, अपनी सारी शक्ति अपने परिवार के ही सुधार में व्यय करे। अपने परिवार का सुधार इच्छानुकूल हो लेने पर उस परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य हो जायगा कि वह अपने पड़ोसियों के सुधार में हाथ बटावे। यदि किसी नगर के एक छोटे से मुहल्ले में चार परिवारों का भी सुधार हो गया तो उस सारे मोहल्ले का सुधार हो जाना एक निश्चित-विषय (Settled fact) है, और यदि भारतवासी वास्तव में जीवित रहना चाहते हैं तो उन्हें इसी उपाय का अवलम्बन करना होगा—चाहे वे आज करें अथवा और भी क्षीण होकर!

भीख

[रचयिता—श्री० रामाज्ञा जी द्विवेदी 'समीर' एम० ए० (ऑनर्स)]

कौन सा किया था अपराध आज मैंने प्रभु! दरशन देके मुँह आपने लिया जो मोड़।
एक दिन वह भी था जब आप आपे से, अपने निकल के चुके थे मर्यादा तोड़॥
छोड़ दी है मैंने जब अपनी निराशा प्रभु, सकते नहीं क्या आप अपनी रुठाई छोड़?
प्रेम की तो भीख दे दी आपने बिना ही माँगे, माँगता हूँ दर्शन की भीख और हाथ जोड़॥

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नेत्राञ्जन कहानी

[ले० प्रोफ़ेसर कन्हैयाप्रसाद सिंह जी, एम० ए०]

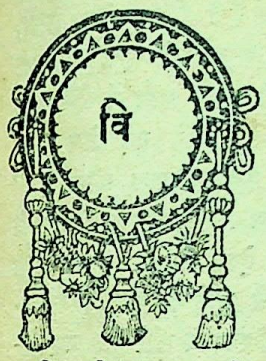

धवा-आश्रम का मन्त्रि-पद स्वीकार कर मैं विनोद बाबू के व्यङ्गों का लक्ष्य बन गया। जब कभी भेंट होती तो वे ऐसे वाक्यों से मेरा स्वागत करते कि जिनको सुनकर मैं भीतर ही भीतर कटकर रह जाता। यदि कोई दूसरा व्यक्ति मुझे इस प्रकार छेड़ता, तो मैं उसकी अच्छी ख़बर लेता, अथवा यों कहिए कि मैं उससे घोर वाक्-युद्ध ठानता और सैकड़ों युक्तियों द्वारा यह सिद्ध करके दिखला देता कि वर्त्तमान परिस्थिति में समाज को और गहरे पतन से बचाने के लिए विधवा-आश्रमों की कितनी आवश्यकता है, जिससे विपक्षी को फिर जीभ हिलाने का साहस तक न हो सकता। पर विनोद बाबू से मेरी लाचारी थी। विनोद बाबू मेरे स्कूल-काल के सहपाठी और मित्र होकर भी मेरे सीनियर थे और मैं उनसे सङ्कोच खाता था। जब कभी किसी विषय पर वाद-विवाद होता तो मैं उनके सामने दबकर ही बोलता। किन्तु जब उस दिन विनोद बाबू ने भेंट होते ही जैसे मेरे भावों की एकदम उपेक्षा करते हुए ताना दिया—'कहिए मन्त्री जी, आज कोई नई चिड़िया फँसी या नहीं ?' तो मैं ऊब उठा। अब और शील-सङ्कोच के फेर में पड़कर अपने व्यक्तिगत विचारों को स्वतन्त्र रूप से उन पर प्रकट न करना, मुझे अनुचित प्रतीत होने लगा। मैंने कुछ रुखाई और दृढ़ता से कहा—'विनोद बाबू, वैसे हँसी में आप जो चाहे कह लीजिए, मुझे कुछ आपत्ति नहीं होगी। पर मैं अपने मत पर दृढ़ हूँ और आप से भी अनुरोध करता हूँ कि विषय को गम्भीरता-पूर्वक सोचकर किसी सिद्धान्त पर पहुँचें। मुझे विश्वास है कि यदि आप परम्परा को अनुचित महत्व नहीं देंगे तो आपको मेरे विचारों से सहानुभूति हो ही जायगी।'

विनोद बाबू ने हँसकर कहा—आज तो तुम जैसे मुझे दीक्षा देने को तुल गए हो। पर यह तुम्हारा भ्रम है कि मैं परम्परा का अन्ध-भक्त हूँ। तुमने जो यह समाज की बहकी स्त्रियों को चराने और रूठी स्त्रियों को मनाने का ठेका लिया है, इसका स्त्री-समुदाय की मनोवृत्ति पर कैसा असर होगा, इसे भी कभी सोचा है ? स्त्रियाँ स्वभाव से ही चञ्चल हुआ करती हैं, फिर उनके लिए सभाओं में चिल्ला-चिल्लाकर रोना, उनके लिए नगर-नगर में विधवा-आश्रम खोलना, उनकी चञ्चलता से सहानुभूति करना है—उनको कर्त्तव्य-पथ से भीरु बनाना है। पुराने रिवाजों के अनुसार उन पर जो बन्धन डाले जाते हैं, उनके साथ जो कड़ाइयाँ की जाती है, वे क्षम्य हैं; क्योंकि इन सबके मूल में यही सिद्धान्त है कि उन्हें अपने शेष जीवन के उत्तरदायित्व का बोध होता रहे। पर नई रोशनी के बाबू लोग इसे अन्याय समझते हैं। मेरी बुद्धि में इस विचार के दो कारण हैं, एक तो पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क से हमारे नव शिक्षित भाइयों के नैतिक आदर्श का पतन और दूसरा उनके हृदय की अनुचित कोमलता।

मैंने आवेश में आकर उत्तर दिया—विनोद बाबू, कदाचित् आपको समाज की भीतरी अवस्था से परिचय नहीं है। यदि आपको वास्तविकता का पता रहता तो आपके ऐसे विचार कभी न होते। भला आज विधवाओं के साथ जैसी कठोरता के व्यवहार किए जा रहे हैं, उन्हें कौन अन्याय नहीं कहेगा ? आप समाज की बागडोर थामने वाले भद्र नामधारियों को उच्च-नैतिक आदर्श के भक्त समझते हैं, यह आपकी सरासर भूल है। आपको यह जानने की आवश्यकता है कि ये ही लोग हमारी देवियों के अकाल-वैधव्य को लाने वाले तथा उनके धर्माचरण को नष्ट करने वाले हैं। पर जब ये ही अपने न्यायासन पर विराजमान होते हैं तो ढकोसला बनाए रखने के लिए उनके लिए कठिन से कठिन दण्ड का विधान करते हैं। ऐसे अन्यायियों से पीड़ित अबलाओं को आश्रय देना, उनको अपने स्वत्वों का बोध कराना, मैं अपना नितान्त कर्त्तव्य समझता हूँ। ऐसा करना हृदय की अनुचित कोमलता का परिचायक नहीं है

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बल्कि ऐसा न करना नृशंसता का द्योतक है। आपने यह भी बिना सोचे कह दिया कि नव-शिक्षित दल का नैतिक आदर्श नीचे गिर गया है। हमारा आदर्श ज्यों का त्यों है। मगर हम आदर्श को व्यवहार में लाना चाहते हैं, आदर्श का स्वाँग नहीं रचना चाहते।

विनोद बाबू ने फिर व्यङ्ग की शरण लेकर कहा—तुम स्त्रियों के माया-जाल में फँस गए हो। कुछ विधवाओं के मुँह से समाज की झूठी शिकायतें सुनी होंगी, बस ले उड़े। क्या तुमने स्त्रियों को बात-बात में रोते नहीं देखा है?

इतने में हम दोनों स्टेशन पहुँच गए। जेठ की कड़ी दुपहरी थी, गाड़ी के आने में घण्टे भर की देर थी। विनोद बाबू को इसी गाड़ी से इलाहाबाद जाना था। मैं तो हर ट्रेन के समय इस उद्देश्य से स्टेशन जाता था कि कहीं समाज की पद-दलित किसी अबला को विक्षिप्त पाऊँ तो उसे आश्रम में शरण दूँ। विनोद बाबू से चौराहे पर मेरी भेंट हो गई थी। स्टेशन पर मुसाफ़िरों के शोर-गुल के कारण विनोद बाबू के साथ जो विचार-विनिमय हो रहा था, उसमें बाधा पड़ गई। हम दोनों एक दूसरे को अपने मत की श्रेष्ठता दिखलाना चाहते थे। मैंने विनोद बाबू से कहा—अभी तो गाड़ी के आने में विलम्ब है। चलिए गोदाम में चलकर बैठें। वहाँ कोई आदमी नहीं दीखता।

हम लोग जल्दी-जल्दी वहाँ पहुँचे। स्थान की निर्जनता देखकर हम दोनों को कुछ सन्तोष हुआ। बस, बोरों की ढेर पर गाढ़ी नींद में सोए हुए एक कुली को छोड़कर वहाँ कोई जीवधारी नहीं था। हम दोनों अपनी धुन में मस्त थे, अतएव बड़ी तत्परता से एक बेञ्च पर बैठकर बहस के लिए तैयार हो गए। मैंने विनोद बाबू के अन्तिम व्यङ्ग का उत्तर देना ही चाहा था कि मेरी दृष्टि बरामदे के दूसरे किनारे की ओर दौड़ गई। मैंने देखा, हम लोगों के सामने ही एक मलिनवस्त्रा युवती सिर नीचा किए दीवार के सहारे बैठी है। मेरे हृदय में सन्देह का उदय हुआ। मैंने विनोद बाबू का ध्यान उधर आकर्षित करते हुए उससे पूछा—'आप कौन हैं?' युवती ने धीरे से सिर उठाकर मेरी तरफ़ देखा। युवती का सौन्दर्य देखकर मैं विस्मित होकर रह गया। विनोद बाबू मेरा मुँह ताकने लगे! मेरे हृदय ने कहा—अरे, यह तो किसी निर्दय ने सम्पूर्ण खिले गुलाब के पुष्प को जड़ से तोड़ और मसल कर कूड़े-करकट में फेंक दिया है! शरीर की उज्ज्वल कान्ति चिन्ता की मलिन छाया पड़ने पर भी मेघ को चीरकर छिटकने वाली चाँदनी की तरह चमक रही है! सिन्दूरहीन भाल, बिखरे काले-काले लम्बे बाल, कङ्कणों से शून्य सुकुमार कलाइयाँ—हाय, इसका पाणि-पल्लव हाथ में लेने वाले किस छलिया ने इसे ठगा है! मैंने बड़े प्रेम और सहानुभूति के स्वर में फिर पूछा—'आप कौन हैं?' कुछ देर तक युवती मुझे एकटक निहारती रही। उसकी आँखों में आँसू सूख गए हों, ऐसा मालूम पड़ता था। मेरे मुख का भाव देखकर उसे मुझ पर कुछ विश्वास-सा हुआ। उसने नैराश्य के स्वर में धीरे से कहा—'बाबू जी, मैं एक अबला हूँ।' इस उत्तर से सन्तुष्ट न होकर मैंने फिर प्रश्न किया—'क्या आप हम लोगों पर विश्वास रखकर अपना पूरा परिचय बतला सकती हैं?'

युवती—'मेरा पूरा परिचय एक पूरी करुण कहानी है, उसे क्या सुनाऊँ?' वाक्य समाप्त होते-होते युवती की आँखें डबडबा आईं और उसका कण्ठ अवरुद्ध हो गया।

मैंने फिर अनुरोध किया—तो फिर आप अपना वृत्तान्त अवश्य कह डालें। हम लोग आपकी यथाशक्ति सहायता करेंगे।

युवती की आँखों से आँसू निकल कर उसके कपोलों पर बहने लगे? उसने रोने के स्वर में कठिनता से कहा—नहीं बाबू जी, मैं आपको अपने लिए कष्ट नहीं देना चाहती। परमात्मा आपका भला करें।

मैं समझ गया कि मेरे सहानुभूति के शब्दों ने युवती की दुरवस्था-जनित वेदना को और भी तीव्र कर दिया है। उसकी मुखाकृति से यह स्पष्ट झलक रहा था कि मेरा 'सहायता दान' का वचन उसके घायल स्वाभिमान को तीर की तरह लगा है। वास्तविक निरावलम्ब अवस्था भी आत्म-गौरव को उतना नहीं खलती, जितना परावलम्बन की निरी कल्पना! युवती के हृदय की कोमलता को ध्यान में रखते हुए मैंने बड़े स्नेह से कहा—'आप मुझे पराया समझती हैं, इससे मेरे जी को दुख हो रहा है। धर्म की दृष्टि से मैं आपको अपनी बहिन समझता हूँ, अतएव आपके कष्टों के निवारण

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का प्रयत्न करना तो मेरा कर्त्तव्य ही है। आप मेरे सामने अपने जीवन की दुर्घटनाओं का वर्णन करने तथा मुझसे आपकी जो क्षुद्र सेवा हो सकेगी, उसे स्वीकार करने में तनिक भी ग्लानि न मानें।' मेरे इस कथन का युवती पर अच्छा असर हुआ। उसके मुख की चेष्टा से मैंने अनुमान किया कि वह मेरी प्रार्थना पर कुछ सोच रही थी। कुछ देर बाद उसने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर हृदय के आवेग को रोका, आँचल से आँसू पोंछे और कुछ सँभल-कर बैठी। फिर मानों मेरा मन रखने के लिए उसने मेरी ओर देखते हुए इस प्रकार अपना परिचय देना प्रारम्भ किया :—

"बाबू जी, मेरा घर इसी ज़िले के अन्तर्गत है। मैं जाति की ब्राह्मणी हूँ। आठ ही वर्ष की उम्र में मेरा विवाह हुआ और सोलहवें वर्ष में मैं काल-चक्र की महिमा से विधवा हो गई। मेरे पतिदेव को यक्ष्मा का रोग हो गया था। वैधव्य-काल से लेकर आज तक मैंने पति-शोक के भार को वहन करती हुई जिन बाहरी दुखों को भोगा है, उनका वर्णन ही मेरा पूर्ण परिचय है।"

युवती सहसा रुक गई। वह आगे का हाल कहना चाहती थी, पर आँसू कलेजे से उमड़ कर उसके कण्ठ और आँखों में पहुँच चुके थे। मैंने सान्त्वना देते हुए कहा—आपको धीरज धारण करना चाहिए। आप पर जो कुछ बीत चुका है, वह तो बीत ही चुका, अब आप भविष्य के लिए चिन्ता न करें।

युवती थोड़ी देर तक मौन रही, फिर रुँधे हुए कण्ठ से कहने लगी—"बाबू जी, मेरे प्राणाधार के परलोक-गमन के बाद कुछ दिनों तक घर में दारुण शोक छाया रहा। घर में तीन ही प्राणी बच रहे थे। बाहर दरवाज़े पर पण्डित जी सिर थामे बैठे रहते, भीतर माता जी और मैं विलाप करतीं। पण्डित जी का अनुज सहोदर छिन गया था; माता जी का लाल उठ गया था; इस निर्धनी का सर्वस्व खो गया था। पर जब दिन-रात हाथ-पैर पटकते रहने पर भी क्रूर काल नहीं पसीजा तो हम लोगों ने झूठी आशा को छोड़कर नैराश्य की शरण ली। किन्तु मेरा तथा माता जी का नैराश्य असन्तोष का था, अतएव हम दोनों अशान्त ही रहीं। हाँ, पण्डित जी ने पूर्ण रूप से सन्तोष ग्रहण कर लिया और गृहस्थी के धन्धों में लग गए। पण्डित जी ने स्वयं शोक से छुट्टी लेकर हम लोगों को समझाना शुरू किया। उन्होंने कितनी कथाएँ कहीं, कितने दृष्टान्त दिए और कितने शास्त्रोक्त वचनों के अर्थ बतलाकर इस संसार की क्षणभङ्गुरता सिद्ध की, यह मुझे स्मरण नहीं है। मेरे कहने का तात्पर्य यही है कि पण्डित जी बहुत यत्न करने लगे कि हम लोग भी शोक को भूलकर घर के काम-धन्धों में लग जायँ। समय की गति की सहायता मिल जाने से पण्डित जी को अपने प्रयत्न में धीरे-धीरे सफलता मिलने लगी। माता जी को और मुझको भी सन्तोष-पथ पर अग्रसर होना पड़ा। हम लोग पहले की तरह घरेलू कामों में जी बहलाने लगीं। पर सच पूछिए तो यह जी बहलाना नहीं था, दिन काटना था। पण्डित जी को हम लोगों की—विशेष कर मेरी—उदासीनता से दुख होता था। इसलिए वे तरह-तरह के ढङ्ग लगा कर मेरी उदासीनता दूर करने के प्रयास में प्रविष्ट हुए। भीतर आते ही वे माता जी से मेरे सम्बन्ध में भाँति-भाँति के प्रश्न करते—'दुलहिन ने भोजन किया या नहीं? दुलहिन का स्वास्थ्य कैसा है? उसकी साड़ी तो फटी नहीं है?' मैं पण्डित जी की आन्तरिक इच्छा के विरुद्ध चिन्तित भाव बनाए रखने में कर्त्तव्य की हानि तो समझती थी, पर लाख चेष्टा करने पर भी मुख पर उल्लास नहीं ला सकती थी। तथापि मैंने पण्डित जी को अपनी चिन्ता से मुक्त करने के उद्देश्य से अपने को इतना योग्य अवश्य बना लिया था कि दौड़-धूप कर घर के काम कर सकती थी; और कभी-कभी मुझे पण्डित जी को सन्तुष्ट हो जाने के लिए मेरा इतना ही करना काफ़ी जान पड़ता था। आगे चल कर मैंने देखा कि पण्डित जी अब एक नए ही ढङ्ग से मुझे ख़ुश करने की चेष्टा कर रहे हैं। ज़मींदार बाबू के यहाँ से जब आते तो सीधे माता जी के पास चले जाते और कोई न कोई चर्चा चला कर मेरी प्रशंसा करने लगते। भोजन के समय माता जी से कहते—मैया, दुलहिन के हाथ की तरकारी बहुत अच्छी बनती है। तुमने इतने दिनों तक तरकारी बनाया, पर दुलहिन की बनाई तरकारी में जो स्वाद है, वह तुम्हारी बनाई में कहाँ?

"माता जी मेरी इस प्रशंसा को सुन कर गर्व करतीं, पर मेरे वैधव्य का स्मरण हो आने से उनका गर्व तुरन्त शोक में परिणत हो जाता और उनकी आँखों से

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आँसू की दो बूँदें टपक पड़तीं। कभी कभी पण्डित जी का यह उद्योग अनावश्यक प्रतीत होता और मुझे कुछ झुँझलाहट-सी हो जाती; पर दूसरे ही क्षण यह भाव हृदय में दौड़ जाता कि पण्डित जी मेरा शोक भुलाने के लिए ही इतना प्रयत्न कर रहे हैं।

"पर बाबू जी, कुछ दिन और बीतने के बाद पण्डित जी की एक नई चेष्टा देखने में आई। वे अपने पूर्व-अभ्यास के प्रतिकूल आवाज़ दिए बिना ही बेधड़क अन्दर चले आते, जिससे कोठरी में भागते-भागते मेरी जान पर आ बीतती। तब मैं बहुत करके कोठरी में ही बैठने लगी। पर जब कभी माता जी पड़ोस में जातीं और पण्डित जी दरवाज़े पर रहते, तो वे कोई न कोई वस्तु ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उस कमरे में घुस जाते जहाँ मैं बैठी होती। मैं उनको देखते ही कोने में छिपने को दौड़ती तो वे अनावश्यक आश्चर्य प्रकट करके लौट जाते। बड़ी दीदी (पण्डित जी की स्त्री) का देहान्त हो जाने के बाद माता जी को घर के काम-काज में सहायता देने का भार मेरे ही ऊपर आ पड़ा था, अतः रसोई आदि के समय मेरा आँगन में घूमना-फिरना अनिवार्य हो जाता था। ऐसी परिस्थिति में पण्डित जी की समझ में यह मोटी सी बात क्यों नहीं आती कि वे बेधड़क भीतर घुस जाते हैं? यह प्रश्न प्रायः मेरे दिल में उठा करता और इसके उत्तर में पण्डित जी के प्रति सन्देह का भाव उदय हो जाता। पर वह तत्काल विलीन हो जाता। मुझे अपने आप पर क्रोध होता; मुझे अपनी क्षुद्रता ही इस सन्देह का कारण जान पड़ती। बाबू जी, क्या देवालय में भूत की शङ्का हो सकती है? क्या यज्ञाग्नि से गाँव के जल जाने का सन्देह भी किसी को होगा? पर हाय! पण्डित जी की चेष्टा कुछ ऐसी अस्वाभाविक होने लगी कि मेरा क्षीण सन्देह विश्वास के रूप में बदल गया। मैं अच्छी तरह समझ गई कि पण्डित जी पाप के गर्त्त में गिरने के लिए मार्ग ढूँढ़ रहे हैं। अब पण्डित जी कभी-कभी सन्ध्या के अँधेरे में भी मेरे कमरे में कोई चीज़ लाने के बहाने चले आते और मुझे घबरा कर भागती देख आश्चर्य का भाव दिखला, पर कुछ उदास-सा होकर, लौट जाते। कई बार तो ऐसा हुआ कि मेरा उनसे स्पर्श होते-होते बच गया। मैं भविष्य की चिन्ता में पड़ गई। वह मुझे बड़ा ही भयङ्कर दीख पड़ता था। मैं रात-दिन परमात्मा से अपनी धर्म-रक्षा के लिए प्रार्थना करती रहती। एक दिन पण्डित जी ने माता जी से आकर कहा—मैया, मालकिन दुलहिन को अपने यहाँ लड़कियों को सीने-पिरोने की शिक्षा देने के लिए कुछ दिन तक रखना चाहती हैं। बाबू साहब ने डोली भिजवा दी है।

"माता जी ने भोलेपन से कहा—'क्या हर्ज है बेटा, जब तुम्हारी इच्छा है तो दुलहिन को भेज दो। वहाँ अपनी वयस वालियों के साथ रहेगी तो उसका जी भी लगेगा।' मैं डोली में सवार हुई और ज़मींदार बाबू की हवेली में पहुँचाई गई। पहले तो मुझे पण्डित जी की इस नई चाल का कुछ अर्थ ही नहीं जँचा। मैं कुछ न समझ सकी कि पण्डित जी क्योंकर मुझे ज़मींदार बाबू के यहाँ भेज रहे हैं। पर वहाँ कुछ दिन रहने के बाद मेरा जो अनुभव हुआ उसे विचारने पर मुझे पण्डित जी के नीच उद्देश्य का पता चल गया। वे मुझे वैभव का सुनहरा रङ्ग और विलास का मतवाला ढङ्ग दिखला कर मेरी विरक्ति को तोड़ना चाहते थे। उन्होंने जान-बूझ कर मुझे प्रलोभनों में फेंक दिया था। वे चाहते थे कि मेरी प्रवृत्ति ही पापोन्मुख हो जाय जिससे उनको अपनी दुष्ट कामना की पूर्ति में कठिनाई न हो। माता जी के घर में रहने तथा मुझसे अनुज-बधू का सम्बन्ध होने के कारण वे मुझे विचलित करने के सभी साधनों का उपयोग नहीं कर सकते थे। एक बात और थी। वे अपनी सदाचार-सुख्याति को भी बड़ी ईर्ष्या से सुरक्षित रखना चाहते थे। वे ज़मींदार बाबू के पुरोहित, सजातीयों के नेता और ग्राम के प्रतिष्ठित विद्वान् हैं। उद्दण्डता से कुछ कर बैठने में कलङ्क का भय था, चतुरता से चलने में दोनों काम निकलते थे। वे इसीलिए तरह-तरह की चाल चलते थे। हाय री दुर्बुद्धि!"

युवती हठात् चुप हो गई। उसका मुख घृणा का व्यञ्जक हो रहा था। उसके फड़कते हुए होठों से मानों पुरुष-जाति के प्रति धिक्कार के अनगिनत शब्द निकल रहे थे। वह ऐसी मुद्रा से मेरी ओर देखने लगी कि मैंने लज्जा से सिर नीचा कर लिया। पर कुछ ही क्षणों के बाद उसका भाव बदल गया और वह पहले के स्वर में बोली—

"बाबू जी, ज़मींदार बाबू के यहाँ दो ही चार दिन रहने के बाद मुझे विश्वास हो गया कि यहाँ का वातावरण

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दूषित है। अन्तःपुर में मैंने जिस दासी को देखा, वही नववयस्का, आभूषणों से लदी हुई और रूपवती। उनके हाव-भाव, रहन-सहन और बातचीत को देखकर मैं क्षुब्ध हो उठी। मुझे अपने भविष्य की चिन्ता बेतरह सताने लगी। पर प्रकाश में मुझे वहाँ के लोगों की रुचि रखने के लिए प्रसन्न ही रहना पड़ता। थोड़े दिनों में मैं सभी दासियों से हिल-मिल गई। इसके बाद मुझे इन दासियों के द्वारा भूषण, वस्त्र और द्रव्य का प्रलोभन कितनी बार और कितने ढङ्ग से दिया गया, उसका वर्णन करने के लिए मुझमें यथेष्ट धैर्य नहीं है। हाँ, इतना अवश्य था कि मेरे स्वभाव से परिचित हो जाने के कारण कोई दासी मुझसे खुल कर अपना मतलब नहीं कह सकती। कभी कोई आकर कहती—'मिसराइन जी, बड़े बाबू बड़े हौसले के आदमी हैं। उनसे क्यों नहीं पत्र लिख कर गहनों के लिए प्रार्थना करती हो? विधवा हो, कुछ आगे का ध्यान रख कर पूँजी कर लो। तुम्हारे भी क्या स्वामी हैं कि उन पर भरोसा करोगी! बड़े बाबू ढल गए तो निहाल हो जाओगी। दो ही चार गहने ऐसे बनवा देंगे कि तुम्हें घर से सरोकार न भी रहे तो तुम उनको बेच कर जीवन भर निर्वाह कर लो।' कभी दूसरी आकर कहती—'देखो मिसराइन जी, आज त्योहार है। तुम भी एक बढ़िया साड़ी के लिए सरकार में अर्ज़ी भेजो। रँगी-रँगाई साड़ी पहनना पसन्द नहीं है तो एक सफ़ेद रेशम की साड़ी माँग भेजो। उनके लिए यह कोई बड़ी चीज़ नहीं है, पर तुम्हारे लिए तो एक रखने की चीज़ हो जायगी।' दासियों को तो मैं यह कह कर टाल देती कि मुझे गहने-कपड़ों से कुछ मतलब नहीं है, मेरे भाग्य में उनका भोग बदा होता तो मेरा माँग ही क्यों जलता? पर जब खुली तौर पर उपहार के रूप में मुझे कोई वस्तु दी जाती तो मुझे पण्डित जी के डर से उसे स्वीकार करना पड़ता। पण्डित जी ने मुझे यहाँ आने ही के पहले सावधान कर दिया था—'देखो दुलहिन, बाबू साहब की रुचि के प्रतिकूल आचरण मत करना। वे जो कुछ देवें, उसे स्वीकार कर लिया करना।'

"माता जी को इसी बीच में उन्होंने मायके भेज दिया। मैं भाग कर दुखड़ा सुनाती तो किसको? पण्डित जी प्रति-दिन पूजा करने के लिए हवेली आते तो बड़ी मालकिन से देर तक घुल-घुल कर बातें करते। उनको प्रसन्न करने के लिए केवल गोपी-विरह-सम्बन्धी श्लोकों को ही पढ़कर सुनाते, उनका अर्थ बतलाते। उनके पारस्परिक बर्ताव से अब मुझे सारी बातें पूरी तौर से समझ में आगईं। पण्डित जी मुझे वहाँ रख कर ज़मींदार बाबू को भुलाए रखना चाहते थे। बड़ी मालकिन भी मेरे रहने से अपना रास्ता साफ़ देखती थीं।

"बाबू जी, जब मैं प्रलोभनों के वश न हुई तो एक नई चाल चली गई। मेरा डेरा हवेली के पिछले खण्ड में स्नानागार के बग़ल वाली कोठरी में दे दिया गया और मेरे साथ सोने के लिए एक दासी नियुक्त कर दी गई। मैं समझ गई कि बाबू साहब दुस्साहस की चरम-सीमा लाँघना चाहते हैं। मैं सशङ्क रहने लगी। मैं भाग जाना चाहती थी, पर दासी की उपस्थिति से लाचार हो जाती। एक रात दासी नहीं आई। मैंने अच्छा सुयोग पाकर निश्चय किया कि भाग चलूँ और कुएँ में कूद कर सारी विपत्तियों से मुक्त हो जाऊँ। बारह बजने को था। मैं निकल कर भाग जाना ही चाहती थी कि एक ऐसी दुर्घटना हुई, जिसके स्मरण-मात्र से मेरा हृदय ग्लानि से भर आता है। बाबू साहब का मुसलमान-सईस खिड़की के द्वार से कमरे में घुस आया। उसे इतनी हिम्मत देने वाला कौन था? जब यह प्रश्न मेरे दिल में उठता है, तो बस एक ही उत्तर आता है—चरित्र-हीनता के दोष से दूषित ज़मींदार बाबू के दरबार का वायु-मण्डल! बाबू जी, उस दुष्ट मुसलमान ने कोठरी में प्रवेश कर × × ×"

करुण-कथा के इस स्थल पर पहुँच कर युवती ने दीर्घ साँस ली। वह ग्लानि और शोक से अभिभूत हो गई। वह आगे का वृत्तान्त कहना चाहती थी, पर कह नहीं सकती थी। ऐसा प्रतीत होता था कि उसका हृदय व्यथाग्नि से जल रहा है। मानों उसने कलेजे को ठण्डक पहुँचाने के लिए ही बग़ल में रक्खे लोटे को उठाया और दो-तीन घूँट पानी पीकर एक ठण्डी साँस ली!

मैंने कहा—'आपके पास ठण्डा जल तो न होगा, मँगवा दूँ?' युवती ने लोटे को नीचे रखते-रखते उत्तर दिया—'बाबू जी, यह जल बहुत ठण्डा है।' यह कह कर वह फिर आत्म-कथा में प्रवृत्त हुई। बोली—"हाँ, उस दुरात्मा के प्रवेश करते ही मैं मारे भय के एक क्षण के लिए संज्ञा-शून्य-सी हो गई। पर दूसरे क्षण मुझे

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ही अपने भीतर एक अज्ञात शक्ति की प्रेरणा का अनुभव हुआ। मैंने अपूर्व साहस से उसका सामना किया और दाँतों के प्रयोग से उसके सारे प्रयत्न विफल कर दिए। घर में कुछ हल्ला-सा हुआ। वह नारकीय पकड़े जाने के डर से खिड़की से कूद कर भागा। ड्योढ़ी के पिछवाड़े वैद्यराज का मकान है। उनके दरवाज़े पर घर के पाँच-सात व्यक्ति लेटे नींद को बुला रहे थे। उसको भागते देख सब उठ पड़े और 'चोर-चोर' कह कर शोर मचाते हुए उसका पीछा किया। ड्योढ़ी और गाँव के प्रायः सभी लोग जग गए। वह दुष्ट बात की बात में पकड़ लिया गया। ड्योढ़ी पर लोगों की भीड़ लग गई। ज़मींदार बाबू दो-चार गण्य-मान्य व्यक्तियों के साथ मेरी कोठरी की जाँच में आए। उस समय मेरी दशा विचित्र हो रही थी। मुझसे बिना कुछ पूछताछ किए ही सब वापस चले गए। मैं रात-भर जड़वत् बैठी रह गई।

"बाबू जी, दूसरे दिन ज़मींदार बाबू की कचहरी में उस मुसलमान-सईस ने अपनी सफ़ाई में कहा कि उसका मुझसे महीनों का सम्बन्ध है। मेरे बयान की तो आवश्यकता भी न समझी गई। बाबू साहब अपनी असफलता के कारण ईर्ष्या के वशीभूत हो गए थे, इसलिए उन्हें उस नराधम के कथन पर विश्वास होने में देर न लगी। एक साधारण स्त्री की इतनी मजाल कि मेरा तिरस्कार करके मेरे क्षुद्र नौकर की कामना पूर्ति करे—कदाचित् इसे अपना घोर अपमान समझ कर ही बाबू साहब ने मुझे दोषी ठहरा कर मेरा अभियोग जातीय पञ्चायत में अन्तिम निर्णय के लिए भेज दिया। बाबू जी, हर एक मनुष्य दूसरे को अपने ही जैसा समझता है।

"जातीय पञ्चायत ने निर्णय दिया कि जब तक मैं पण्डित जी के घर से न निकाल दी जाऊँ, तब तक पण्डित जी जाति से बहिष्कृत रहेंगे। पञ्चों ने कहा—"पण्डित जी, प्रस्तुत मामले से कम गम्भीर मामलों में भी आपने कई बार 'जातिच्युत' का निर्णय दिया है। आशा है, आप इस कुलटा को घर से निकाल कर अपने सिद्धान्त की रक्षा करेंगे।" पण्डित जी को इस निर्णय का विरोध करने का साहस नहीं हुआ। मेरा अनुमान है कि उन्होंने अपने जातीय नेतृत्व को बनाए रखने के लिए पञ्चों के निर्णय को सिर-आँखों पर रख लिया। पण्डित जी खूब समझते थे कि मुझ पर जो दोष लगाया गया था, वह झूठा था। पर मामला इतना तूल हो गया था, इतनी हद तक पहुँच चुका था कि पण्डित जी से कुछ करते-धरते नहीं बनता था।

"बाबू जी, जिस दिन निर्णय सुनाया गया, मैंने उसी रात को वहाँ से प्रस्थान कर दिया। तीन दिन की लम्बी सफ़र तय करके यहाँ आ गई हूँ। कहाँ हूँ, कहाँ जा रही हूँ, यह नहीं जानती। लज्जा, क्षोभ और ग्लानि के कारण मैंने अपनी विपत्ति कभी किसी परिचित व्यक्ति से नहीं कही। आपने मुझसे बहिन का धार्मिक सम्बन्ध जोड़ लिया, इसलिए आपके अनुरोध को न टाल सकी।"

आत्म-कथा समाप्त करते-करते युवती की आँखें मुँद गईं। कोई एक मिनट के बाद उसने फिर हम लोगों की तरफ़ देखा। विनोद बाबू ने उसके मनोभावों की कुछ भी परवाह न करते हुए मानो उसकी परीक्षा लेने के उद्देश्य से कहा—आप भविष्य की चिन्ता न करें। आपको हिन्दू-जाति में रखने में हम लोगों को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। इतना ही नहीं, यहाँ तो जिन विधवाओं की इच्छा होती है, उनका विवाह भी कर दिया जाता है।

विनोद बाबू देखना चाहते थे कि उसके आन्तरिक भाव कहाँ तक शुद्ध हैं, उसका यह सब ढङ्ग त्रिया-चरित्र तो नहीं है।

पर उनके इस भूमिकाबद्ध प्रस्ताव को सुनते ही युवती फूट-फूट कर रोने लगी। जब उतना आँसू बह चुका, जितना हृदय के एक आवेग में बहना चाहिए, तब वह आकाश की ओर ताकने लगी। आकाश को थोड़ी देर तक टकटकी लगा कर देखते रहने के बाद उसने हम लोगों पर दृष्टि डाली। उसकी साँस वेग से चल रही थी। उसके होठ बिलकुल सूख गए थे, क्योंकि वह रह-रह कर उसे जीभ से चाटती थी। एकाएक उसने लोटे को उठा कर फिर दो-तीन घूँटें लगाईं। अनन्तर बड़ी गम्भीरता से बोली—बाबू जी, आज आपको हम अबलाओं के लिए ऐसा प्रबन्ध करने को भी लाचार होना पड़ा?

इसके बाद मैंने विधवा-आश्रम में रहने से क्या लाभ है, इसको थोड़े शब्दों में समझा कर युवती से कहा—आप से मेरा अनुरोध है कि वहीं चल कर रहें।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आपके सम्बन्धियों को भी हम लोग समझा-बुझाकर आपको घर में रखने के लिए राज़ी कर लेंगे।

युवती ने मेरे कथन को बड़े ध्यान से सुना। वह कृतज्ञ दीख पड़ती थी, पर उसकी कृतज्ञता कुछ और ही प्रकार की थी। वह अपनी सहायता के लिए हम लोगों को मानों बिलकुल अयोग्य समझ रही थी? वह हम लोगों को दया की दृष्टि से देख रही थी—ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार बीच नदी में डूबता हुआ कोई सहृदय वीर उसे बचाने के विफल प्रयास में किनारे पर खड़े चिल्लाने वाले छोटे बालकों को देखता है!

युवती के कुछ देर तक मौन रहने पर मैंने फिर कहा—आपको मेरी प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ेगी। आप आश्रम में चल कर रहें!

मैंने देखा, युवती का कलेजा फिर उमड़ आया, पर इस बार आँसुओं के न निकलने के कारण उसे अधिक कष्ट हो रहा था। आँखों से आग-सी निकल रही थी, साँस जैसे फूल रही थी।

मैंने पूछा—कहिए तो गाड़ी ले आऊँ, आश्रम यहाँ से दूर है। युवती बेसुध भाव से मुझे देख रही थी। वह 'हाँ' या 'नहीं' कुछ नहीं कहना चाहती थी।

मैं समझ गया कि उसे घोर सन्ताप हो रहा है। अतएव अब उससे कुछ पूछना उचित नहीं! आश्रम में शीघ्र पहुँचाना ही कर्त्तव्य है।

विनोद बाबू और मैं तेज़ी से स्टेशन आए। पर तब तक वहाँ कोई गाड़ी नहीं आई थी, इसलिए चौराहे तक जाना पड़ा। कोई पन्द्रह मिनट में हम दोनों किराए की एक घोड़ा-गाड़ी में वापस आए। पर गोदाम में प्रवेश करते ही हम लोगों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। युवती का शरीर निश्चेष्ट पड़ा था, वह भौतिक दुखों से निवृत्ति पा चुकी थी। मैं तो हतबुद्धि-सा हो गया। विनोद बाबू विस्मय पूर्वक ध्यान से युवती के मृतक शरीर को देखने लगे। अनन्तर लोटे को उड़ेल कर देखा तो चौंक कर पीछे हटते हुए बोले—हाय विनय, इस में विष भरा था!!

* * *

दूसरे दिन मैं अपने ऑफ़िस में बैठा युवती का हुलिया लिख कर पुलिस में भेज रहा था कि इतने में विनोद बाबू पहुँचे और जेब से सौ-सौ रुपए के दो नोट निकाल कर मेरे सामने रखते हुए बोले—मन्त्री जी, इन्हें स्वीकार कर मेरा नाम आश्रम के संरक्षकों में दर्ज कर लीजिए। कल की घटना से मेरी आँखें खुल गईं। उसने मेरे लिए 'नेत्राञ्जन' का काम किया। यह कह कर विनोद बाबू ने मेरा हाथ चूम लिया?

उन्होंने इलाहाबाद जाना स्थगित कर दिया था!

उमङ्ग

[रचयिता—श्री० 'प्रभात' कविरत्न]

(१)

मैं नीरस-मरु में भी अमृत—
रस सञ्चारित कर दूँ;
माँ! तेरे गीतों से नीरव—
नभ-मण्डल को भर दूँ।

(२)

मैं उजड़े को परिवर्त्तित कर,
नन्दन-विपिन बना दूँ;
निज रहस्यमय स्वर्ण-कथाएँ,
जग को समुद सुना दूँ।

(३)

फूल बिछा दूँ मैं तेरे—
भक्तों के कण्टक-पथ पर;
खींच सूर्य-सिंहासन लाऊँ,
बैठ विजय के रथ पर?

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गोस्वामी तुलसीदास और स्त्री-जाति

[ले० श्री० रजनीकान्त जी शास्त्री, बी० ए०, बी० एल०]

"राम-चरित-मानस" के रचयिता हिन्दी के अद्वितीय महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी के नाम से आज सारा संसार परिचित हो रहा है। हिन्दू-जाति में तो ऐसा कोई विरला ही परिवार होगा, जहाँ तुलसी-कृत रामायण (राम-चरित-मानस) की एक प्रति न देख पड़ती हो। इस महाकाव्य को रचकर गोस्वामी जी ने अपने नाम को सर्वसंहारी प्रबल काल के आक्रमण से पूर्णतः सुरक्षित कर दिया है। क्या वृद्ध, क्या बालक; क्या राजा, क्या रङ्क; क्या शिक्षित, क्या गँवार; क्या बड़े, क्या छोटे—सभी इस सर्व रसमय महाकाव्य को बड़ी श्रद्धा तथा भक्ति से देखते हैं। कोई ऐसा ही विरला मनुष्य होगा जो अपने प्रतिदिन की बोल-चाल में इस ग्रन्थ के दो-एक दोहे वा चौपाइयों का उदाहरण न देता हो। इस महाकाव्य में उपमा-आदि अलङ्कारों की बौछार, ओज, प्रासाद, माधुर्य आदि गुणों की भरमार; शृङ्गार, हास्य, करुणा आदि नाना विध रसों की घनघोर वर्षा तथा लोकोक्तियों और वाग्धाराओं के एक पर एक उमड़ते हुए तरङ्ग देख, पाठकों का हृदय एक अनिर्वचनीय भाव से ओत-प्रोत हो जाता है। महाकवि ने हर्ष, विषाद, राग, द्वेष, प्रसन्नता, क्रोध आदि विविध मानवी मनोवृत्तियों के चित्रण में कमाल कर दिखाया है। रामायण के पात्रों के साथ-साथ पाठकजन भी उनके हर्ष में हँसते, विपत्ति में रोते, प्रेमीजनों के साथ प्रेम करते, प्रसन्न होते तथा समय पड़ने पर क्रोध करते हैं। इतना ही नहीं, वे पात्रों के अस्तित्व में अपना अस्तित्व लीन कर देते हैं और अपने को उनका समकालीन समझ, रामायण-वर्णित घटनाओं का अनुभव प्रत्यक्ष-सा करने लगते हैं। हमारे इस कथन में तनिक अत्युक्ति नहीं है कि सर्वप्रियता की दृष्टि से गोसाईं जी की यह कृति अपना सानी नहीं रखती। पर इसकी यह सर्वप्रियता तथा इसके प्रति लोगों की असीम श्रद्धा और भक्ति ही इसकी यथार्थ आलोचना में विघ्न-बाधा उपस्थित कर देती हैं। इसके यथार्थ गुणों तथा यथार्थ दोषों पर समुचित प्रकाश नहीं डालने देती।

गोसाईं जी ने अपने इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में इसे "नाना पुराण निगमागम सम्मत" बनाने का वचन दिया है। पर इसके पाठकों में से विरला ही कोई ऐसा होगा, जो इस बात की खोज करता हो कि देखें कहाँ-कहाँ पर उन्होंने अपने उक्त वचन के विरुद्ध काम किया है अथवा यों कहिए, उनका मत कहाँ-कहाँ पर श्रुतियों, स्मृतियों तथा पुराणों के प्रतिकूल ठहरता है। यों तो खोज करने पर गोसाईं जी के रामायण में बहुत सी शास्त्र-विरुद्ध बातें मिलेंगी; पर आपने जो स्त्री-जाति के विषय में अपनी सम्मति दी है उससे कोई भी विद्वान् शायद ही सहमत हो। आप स्त्री-जाति में केवल दोष ही दोष देखते हैं, गुण एक भी नहीं; और जब-जब आपको उनकी निन्दा करने का मौक़ा मिलता है तब-तब आप उस मौक़े को नहीं चूकते। इसके उदाहरण देते हैं—

(क) सीता-अनुसूया-सम्वाद में आप लिखते हैं "सहज अपावन नारि" अर्थात् स्त्रियाँ स्वभाव से ही अपवित्र हैं। उनकी यह अपवित्रता उनके जन्म के साथ ही उत्पन्न होती है। "अपावन" शब्द से शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार की अपवित्रता लेनी चाहिए।

(ख) रामचन्द्र-कृत समुद्र-निग्रह प्रसङ्ग में आप फ़रमाते हैं "ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी" अर्थात् ढोल, गँवार, शूद्र, पशु तथा स्त्रियाँ ये सब पीटने से ही सीधे रास्ते पर आते हैं। स्त्रियों और शूद्रों को पशु की तरह पीट-पाट कर ठीक करने का क्या ही अच्छा नुस्ख़ा आपने अपनी "नाना पुराण निगमागम सम्मत" बुद्धि से बतला दिया!

(ग) रावण-मन्दोदरी-सम्वाद में आप नारी-स्वभाव को यों अङ्कित करते हैं "नारि सुभाव सत्य कवि कहहीं, अवगुण आठ सदा उर रहहीं। साहस अनृत चपलता माया, भय अविवेक अशौच अदाया।" अर्थात् पण्डितों ने स्त्रियों का स्वभाव ठीक बतलाया है कि

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उनके हृदय में ये आठ अवगुण सर्वदा रहते हैं—(१) परिणाम को बिना सोचे ही किसी कार्य के करने में धृष्टता तथा शीघ्रता करना, (२) झूठ बोलना, (३) कभी स्थिर नहीं रहना, (४) दूसरों को ठगने के लिए माया (कपटपूर्ण व्यवहार) रचना, (५) भय का कारण न रहते हुए भी भय करना, (६) विचार न करना, (७) अपवित्र रहना और (८) निर्दय होना।

(घ) शूर्पणखा की नाक कटने के प्रसङ्ग में आपने अपनी स्त्री-जाति विषयक घृणा की मानो चरम सीमा दिखलाई है और उन्हें घृणित से भी घृणित पुंश्चली मानने का सदुपदेश देने में तनिक भी कसर नहीं की है—"भ्राता पिता पुत्र उरगारी, पुरुष मनोहर निरखत नारी" अर्थात् हे गरुड़ ! स्त्रियाँ ऐसी कुबुद्धि होती हैं कि वे केवल सुन्दर पुरुष चाहती हैं—चाहे वह भाई, पिता, पुत्रादि क्यों न हो। अभिप्राय यह कि वे अपने भाई आदि से भी अपनी काम-पिपासा को सन्तुष्ट करा लेने में तनिक भी नहीं हिचकतीं। धन्य हो महाराज ! यह तो आपने हमारी गृहदेवियों को अच्छा सार्टिफ़िकेट दे डाला !!

मालूम होता है कि गोसाईं जी को स्त्री-जाति के प्रति एक भारी चिढ़-सी हो गई थी; यहाँ तक कि उसके आवेश में आकर उनके विषय में परस्पर विरोधी बातों को लिखते हुए आपको यह न मालूम हुआ कि मैं क्या लिख रहा हूँ। सीता-अनुसूया-सम्वाद में आपने पातिव्रत्य-धर्म का उपदेश दिया है। आप लिखते हैं :—

उत्तम के अस बस मन माहीं,
सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं।
मध्यम पर पति देखहिं कैसे,
भ्राता पिता पुत्र निज जैसे।
धर्म विचारि समुझि कुल रहहीं,
सो निकृष्ट तिय श्रुति अस कहहीं।
बिनु अवसर भय ते रह जोई,
जानेहु अधम नारि जग सोई।

अर्थात्—आपने पतिव्रता स्त्रियों को चार श्रेणियों में बाँटा है—(१) उत्तम, (२) मध्यम, (३) नीच और (४) लघु। इनके लक्षण ये हैं। उत्तम स्त्रियाँ यह समझती हैं कि हमारे पति के सिवा इस संसार में स्वप्न में भी अन्य कोई पुरुष है ही नहीं। मध्यम स्त्रियाँ पर-पुरुषों को अपने भाई, पिता, पुत्र आदि की दृष्टि से देखती हैं। जो स्त्रियाँ अपने धर्म तथा कुल का विचार कर व्यभिचार से रुकती हैं, वे नीच स्त्रियाँ हैं। और जो लौकिक तथा पारलौकिक दण्ड-भय से किम्वा मौक़ा न मिलने के कारण कुकर्म से अलग रहती हैं, वे अधम (लघु) हैं। फिर उसी प्रसङ्ग में कहते हैं :—

वृद्ध रोग-वश जड़ धन हीना,
अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना।
ऐसेहु पति कर किय अपमाना,
नारि पाव दुख यमपुर नाना।
एकै धर्म एक व्रत नेमा,
काय वचन मन पति पद प्रेमा।

अर्थात्—"पति यदि बूढ़ा, रोगी, जड़, दरिद्र, अन्धा, बहरा, क्रोधी तथा महादुखी भी हो तो भी स्त्रियों को उसका अपमान नहीं करना चाहिए। अपमान करने से यमलोक में उन्हें नाना प्रकार के दुख भोगने पड़ते हैं। मन, वचन, कर्म से पति-चरणों में प्रेम रखना ही स्त्रियों का एकमात्र धर्म है, एकमात्र व्रत है तथा एकमात्र नियम है।"

वाह जी गोसाईं जी ! यह तो आपने बुढ़ऊ बाबा की तरफ़ से भी सिफ़ारिश कर दी, जिसमें उनकी नव-परिणीता अल्पवयस्का नव-वधू उनके श्रीचरणों में अपना तन, मन, धन, सब स्वाहा कर दे। ज़बरदस्ती पतिव्रता बनाने की यह अपूर्व महौषध आपको किस शास्त्र में हाथ लगी, जिसकी कड़वी घूँट आप बेचारी छोकरियों के भी हलक़ में ढकेलना चाहते हैं। यदि गोसाईं जी इस समय जीवित होते तो हम एक बात और भी उनसे विनय-पूर्वक पूछते। यदि आपकी समझ-मुबारक में स्त्रियाँ केवल सुन्दर पुरुष ही चाहती हैं—वे भले-बुरे का विचार कुछ भी नहीं करतीं, तथा यदि वे नाना विधि सहजात अवगुणों की खान हैं तो कम से कम उत्तम तथा मध्यम कोटि के पातिव्रत्य इस संसार में केवल दुर्लभ ही नहीं, किन्तु अलभ्य होंगे। ये पातिव्रत्य केवल कल्पना में ही पाए जा सकेंगे, व्यावहारिक जीवन में कभी नहीं। पर हमारा इतिहास हमें बता रहा है कि सती (दक्ष-कन्या),

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सीता, सावित्री, दमयन्ती, मदालसा, विदुला, पद्मावती आदि उत्तम कोटि की पतिव्रताएँ अपने अटूट पातिव्रत्य-धर्म से आज भी संसार भर के नारी-समाज का मुख उज्ज्वल कर रही हैं। इन्हीं पतिव्रताओं के पुण्य-चरित्र रूपी आलोक-वर्त्तिका अपने साथ में लेकर आज भी नारी-समाज अपने सङ्कटमय कर्त्तव्य-पथ पर निधड़क चले जाने का साहस कर रहा है। और पतिव्रताओं की बात जाने दीजिए, जिन भगवती जनक-नन्दिनी का पावन चरित्र आप अपने रामायण में गा रहे हैं, कम से कम उनका भी उदाहरण आपको निःशेष नारी-समाज को कलङ्कित करने के पहले विचार लेना चाहिए था। आपको यह विचार लेना चाहिए था कि यदि सब स्त्रियाँ सीता-सावित्री नहीं हैं तो सब स्त्रियाँ शूर्पणखा भी नहीं हैं। अतः सबों को एक ही नाथ से नाथना घोर अन्याय है। इसी को कहते हैं "अन्धेरपुर नगरी बेबूझ राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा।"

पतिव्रता स्त्रियों के कुछ उदाहरण दे, अब विद्या, वीरता, कार्य-कुशलता आदि सद्गुणों से विशिष्ट स्त्रियों के उदाहरण देते हैं। गोसाईं जी के "नाना पुराण निगमागम सम्मत" विचार से स्त्रियों में कोई गुण ही नहीं है; उनमें केवल दोष ही भरे हैं। पर हमारा तो यह विचार है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक गुणवती होती हैं। यह बात तब स्पष्ट होगी जब उन्हें गुणवती बनाने का कष्ट उठाया जाय—अथवा उन्हें गुणोपार्जन करने का अवसर दिया जाय। हमने तो उन्हें केवल बच्चे पैदा करने की मैशीन बना रक्खा है। हमारा उनसे अधिक आशा करना भूल है। बबूल का पेड़ बोते हुए भी हम आम का फल खाना चाहते हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि पुरुषों की तरह स्त्रियाँ भी धीर, वीर, कार्य-निपुण, विदुषी आदि हो सकती हैं। रोमनों के दाँत खट्टे कर देने वाली बोडीशिया एक स्त्री ही थी। ऑर्लियन्स के अवरोध (Siege of Orleans) में अङ्गरेज़ों के छक्के छुड़ा देने वाली जोन ऑफ़ आर्क एक त्रयोदश वर्षीया ग्रामीण बालिका थी। दुर्दान्त मुग़ल-सम्राट् अकबर से लोहा लेने वाली चाँद सुल्ताना एक अबला थी। इसी प्रकार रानी दुर्गावती तथा झाँसी की रानी भी स्त्रियाँ ही थीं, जिनके वीर-चरित इतिहास के पन्नों में देदीप्यमान मणियों की तरह जड़े हैं। और भी सुनिए इङ्गलैण्ड के घरेलू तथा बाहरी, धार्मिक एवं राजनीतिक झगड़ों के झकोरों से बचाकर सुदृढ़ करने का श्रेय रानी एलिज़ाबेथ को हुआ। राजनीति-कुशला इस रानी ने इङ्गलैण्ड पर जिस चातुरी के साथ शासन किया, वह पुरुषों को भी नसीब नहीं। अब विद्या के क्षेत्र में आइए। राजा जनक की सभा में गूढ़ दार्शनिक विषयों पर आलोचना तथा प्रत्यालोचना करने वाली एवं बड़े-बड़े वेदान्ती पुरुषों को भी निरुत्तर कर देने वाली मैत्रेयी और गार्गी स्त्रियाँ थीं। मण्डन मिश्र की स्त्री भारती (सरस्वती) एक स्त्री ही थी, जो अपने पतिदेव तथा श्रीशङ्कराचार्य के बीच होते हुए शास्त्रार्थ में हार-जीत की निर्णायिका बनाई गई थी। बस इसी से उसकी विद्वत्ता का अनुमान कीजिए। वेद-दर्शन-काल में कितनी स्त्रियाँ मन्त्रों की द्रष्ट्री तक हुई हैं। वर्त्तमान समय में भी विदुषी स्त्रियों का अभाव नहीं है। इस विषय में श्रीमती सरोजिनी का नाम बताना मानो सूर्य को दीपक दिखाना है। विश्वविद्यालयों में कितनी छात्राएँ छात्रों से भी बाज़ी मार लेती हुई देखी जाती हैं। यदि विद्वान् पुरुषों की अपेक्षा विदुषी स्त्रियों की संख्या कम है तो इसका कारण उनकी स्वाभाविक अयोग्यता नहीं है, वरन् पुरुषों की स्वार्थपरता है, जो उन्हें दासता की कड़ी ज़ञ्जीरों में जकड़े रखना चाहती है। स्त्री की योग्यता तो इसी से सिद्ध है कि विद्या का अधिष्ठाता देवता एक देवी (सरस्वती) है, न कि कोई देव। पर गोसाईं जी के मस्तिष्क में ये सब बातें नहीं धसीं। धसें कैसे? वहाँ पर तो "ताड़न" वाला मन्त्र परदा डाले हुए था, इसी कारण वहाँ पर "जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी" वाली उनकी ही चौपाई काम कर गई।

गोसाईं तुलसीदास जी का स्त्री-विषयक मत बतलाकर अब मन्वादिक धर्म-शास्त्रकारों का मत बतलाते हैं, जिससे पाठकों को यह बात भली-भाँति मालूम हो जायगी कि तुलसीदासी मत "नाना पुराण निगमागम सम्मत" कदापि न होकर सम्भवतः "क्वचिदन्यतोऽपि" सम्बन्ध रखता है; अथवा स्पष्ट भाषा में यों कहिए कि वह मत गोसाईं जी की निजी कल्पना है। यद्यपि मनु ने भी स्त्रियों में कुछ दोष पाए हैं, पर ऐसा नहीं कि उन्होंने उनके केवल दोषों का उद्घाटन कर, उनके गुणों को छिपा लिया है। उन्होंने गुण-दोष दोनों दिखलाए

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं और हमें तुलसीदास की तरह "ताड़न" वाले नुस्ख़े का प्रयोग न कर, उनके साथ प्रेम, सहानुभूति आदि के व्यवहार करने की शिक्षा देते हैं। वे अपनी स्मृति के ९ वें अध्याय में स्त्रियों के ये दोष बतलाते हैं—

नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः।
सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते॥
पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्चनैस्नेह्याच्च स्वभावतः।
रक्षिता यत्नतोऽपीह भर्त्तृष्वेता विकुर्वते॥

अर्थात्—"स्त्रियाँ रूप की परीक्षा नहीं करतीं; युवा, वृद्ध आदि अवस्था पर इनकी श्रद्धा भी नहीं है, सुन्दर हो वा कुरूप, पुरुष को पाते ही उसके साथ सम्भोग करती हैं। स्त्रियाँ पुरुष को देखते ही उसके साथ क्रीड़ा करने की इच्छा से, चित्त की चञ्चलता से तथा स्वाभाविक स्नेह-शून्यता से, पति के यत्न के साथ रक्षा करने पर भी उससे प्रतिकूल होकर व्यभिचार करती हैं।"

फिर वे कहते हैं—

शय्यासनमलङ्कारं कामं क्रोधमनार्जवम्।
द्रोहभावं कुचर्यां च स्त्रीभ्योमनुरकल्पयत्॥

अर्थात्—"मनु जी ने शय्या, आसन, भूषण, काम, क्रोध, कुटिलता, द्रोह-भाव तथा कुचाल—ये सब स्त्रियों के लिए हैं, ऐसी कल्पना सृष्टि के समय की थी।"

अतः स्त्रियों की रक्षा के लिए वे पुरुषों को सख़्त ताकीद करते हैं, पर वे स्त्रियों को डण्डे मारने को भी नहीं कहते :—

एवं स्वभावं ज्ञात्वाऽसां प्रजाएति निसर्गजम्।
परमं यत्नमातिष्ठेत् पुरुषोरक्षणं प्रति॥

अर्थात्—"प्रजापति का रचा हुआ इनका ऐसा स्वभाव जान कर इनकी रक्षा का यत्न पुरुष विशेष रूप से करे।"

मनु भगवान् स्त्री-जाति में उक्त दोषों की कल्पना करते हुए भी स्त्रियों को साक्षात् लक्ष्मी की दृष्टि से देखते हैं :—

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन॥

अर्थात्—"ये स्त्रियाँ गर्भाधान के निमित्त परम मङ्गल की पात्र हैं, अतः वस्त्राभूषण से सम्मान करने योग्य और घर की शोभा-रूप हैं। अधिक क्या कहें, घरों में स्त्री और लक्ष्मी में कुछ भेद नहीं है। स्त्रीहीन गृह श्रीहीन प्रतीत होता है।"

फिर वे तृतीय अध्याय में लिखते हैं :—

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः॥
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः॥
शोचन्ति जामयोयत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धतेतद्धि सर्वदा॥
जामयो यानि गेहानि शपन्त्य प्रतिपूजिताः।
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः॥
तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूति कामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च॥

अर्थात्—"बहुत कल्याण के चाहने वाले पिताओं, भ्राताओं, पतियों तथा देवरों को उचित है कि वे भोजन, वस्त्र, अलङ्कार आदि से इनका सत्कार तथा पूजन करें। जहाँ पर स्त्रियाँ पूजी जाती हैं, वहाँ पर सब देवता विहार करते हैं तथा जहाँ पर ये नहीं पूजी जातीं वहाँ की यज्ञादि सारी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। जिस कुल में बहिन, स्त्री, पुत्री और पुत्र की बहू आदि दुखी रहती हैं, वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, और जहाँ ये दुखी नहीं रहतीं वह धन-धान्य से सदा समृद्ध रहता है। भगिनी, पत्नी, बेटी, बहू—ये दुखी हो जिन घरों को कोसती हैं, वे घर अभिचार द्वारा नष्ट हुए के समान धन, जन आदि समेत नाश को प्राप्त हो जाते हैं, अतः ये भगिनी आदि, कौमुदी आदि सत्कारों में और यज्ञोपवीत आदि उत्सवों में समृद्धि चाहने वाले पुरुषों के द्वारा सदा पूजने योग्य हैं।"

अहा! स्त्री-जाति के दोषों को देखते हुए भी महाराज मनु अनदेखा-सा बन कर लक्ष्मीवत् पूजन-योग्य बतलाते हैं और हमारे गोसाईं जी उन्हें ख़ूब बनाकर पीटने का सदुपदेश दे रहे हैं। दोनों महानुभावों के स्त्री-विषयक भावों में कितना अन्तर है, यह पाठकगण स्वयं विचार लें।

तुलसीदास जी के विषय में परम्परा से एक किम्वदन्ती सुनी जाती है, जिसे उनकी जीवनी लिखने वालों ने अब लेखबद्ध कर दी है। वह यह है कि तुलसी-

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दास जी को अपनी स्त्री से ही ज्ञान प्राप्त हुआ था। किसी दूसरे लेख में हम यह दिखलावेंगे कि गोसाईं जी का जाति का ब्राह्मण होना तथा उनका विवाहित होना, ये दोनों बातें उनके जीवनी-लेखकों की केवल थोथी कल्पनाएँ हैं, जो उनके ही (गोसाईं जी के ही) लेखों से खण्डित हो जाती हैं। यहाँ पर हम केवल इतना ही कह देना पर्याप्त समझते हैं कि यदि गोसाईं जी किसी भी स्त्री (अपनी वा अन्य) से ज्ञान प्राप्त किए रहते तो वे अपने जीवन की इस प्रसिद्ध घटना का उल्लेख अपने लेखों में अवश्य करते तथा स्त्री-जाति के प्रति इतना द्वेष न रखते। यदि उनका किसी स्त्री से ज्ञान प्राप्त करने की घटना सत्य है, तो उनका इसका उल्लेख न करना तथा स्त्री-जाति के प्रति इतना द्वेष-भाव रखना नितान्त अनुचित एवं कृतघ्नता का द्योतक है।

परिचय

[रचयिता श्री० 'श्रीपति']

(१)

नव-यौवन के प्रौढ़ क्षेत्र में—
प्रेमाङ्कुर-लतिका सुख मूल!
नव-विकसित-वसन्त में सहसा—
हन्त! हुई क्योंकर निर्मूल!!

(२)

नव-अनुराग-पराग कहाँ नव—
अभिनय का अमन्द मकरन्द!
नव-साधना-कुञ्ज का कलरव,
नव्य-भाव के अलि स्वच्छन्द!!

(३)

लूट लिया वैभव किस निष्ठुर—
कुटिल-हृदय ने असमय आज!
हुए दृष्टि-पथ से ओझल हा!
कहाँ, सौख्य के वे प्रिय-साज!!

(४)

हूँ बन्दी, यह अखिल विश्व है—
विस्तृत, मेरा कारागार!
निरपराधिनी हूँ मैं अबला,
क्रन्दन ही मेरा व्यापार!!

(५)

हूँ करील-वन की कोकिल मैं,
शोक-सिन्धु मोती श्री-हीन!
हूँ प्रातःकालीन कुमुदिनी,
प्रभा-हीन नलिनी मैं दीन!!

(६)

हूँ प्रत्यक्ष मूर्त्ति करुणा की,
हृदय-विदारक हूँ चीत्कार!
हूँ कलङ्क, हिन्दू-समाज का,
दुखिया की हूँ आह! पुकार!!

(७)

हूँ सौभाग्य-विभव के रज-कण,
भस्म-राशि आशा की नाथ!
शोकाकुल अबला बाला हा!
विधवा हूँ मैं और अनाथ!!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भारत में अङ्गरेज़ी राज्य

[ले० महात्मा सुन्दरलाल जी, भूतपूर्व सम्पादक 'कर्मयोगी' और 'भविष्य']

टीपू सुलतान

१७९२ की सन्धि के बाद

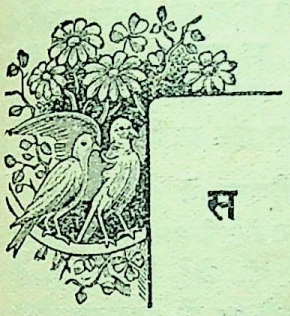

सन् १७९२ में अङ्गरेज़ों, निज़ाम और मराठों ने मिलकर टीपू सुलतान पर हमला किया था और उसका राज्य छीन कर आपस में बाँट लिया था। इन चारों शक्तियों के बीच उस समय मित्रता की सन्धि हो चुकी थी। टीपू पर तीन करोड़ से ऊपर युद्ध-दण्ड लगाया गया था, जिसमें से एक करोड़ उसी समय वसूल कर लिया गया था। शेष की अदायगी के लिए दो साल की अवधि नियत थी। कॉर्नवालिस के पत्रों से ज़ाहिर है, उसे यह आशा थी कि टीपू, जिसका आधा राज्य छिन चुका था और शेष आधा बरबाद कर दिया गया था, दो साल के अन्दर इतनी भारी रक़म को अदा न कर सकेगा और इस बहाने कम्पनी को उसका रहा-सहा राज्य हड़पने का मौक़ा मिल जावेगा। किन्तु कॉर्नवालिस को इस विषय में निराशा हुई। टीपू एक अत्यन्त योग्य शासक था। वह अपनी ज़बान का भी सच्चा था। उसने अपनी ओर से सन्धि की शर्तों का सचाई के साथ पालन किया। इतिहास-लेखक मैलकम लिखता है कि—"अथक परिश्रम और अत्यन्त उत्साह के साथ वह अपनी शक्ति भर प्रत्येक उचित उपाय से अपनी खोई हुई शक्ति को फिर से प्राप्त करने की कोशिश करने का गम्भीर सङ्कल्प कर चुका था।" इसीलिए सन् १७९२ से—

"टीपू ने सबसे पहले अपनी आन क़ायम रखते हुए ठीक समय पर उस भारी रक़म को अदा कर दिया, जो सन्धि के समय उसके शत्रुओं की ओर से नियत कर दी गई थी। इतने ठीक मियाद के अन्दर इस तरह की रक़म का अदा हो जाना एक असाधारण बात है। फिर अपनी मुसीबतों से घबराकर बैठ जाने के बजाय युद्ध के कारण मुल्क की जो बरबादी हुई थी, टीपू सुलतान ने उसे फिर से दुरुस्त करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी। उसने अपनी राजधानी की रक्षा के लिए क़िलेबन्दी को बढ़ाना, सवारों की सेना को फिर से पूरा करना, पैदल सेना में नए रँगरूट भरकर उन्हें शिक्षा देना, अपने उन सामन्त सरदारों को, जो शत्रु से मिल गए थे, दण्ड देना, और अपने राज्य में कृषि को उन्नति देना शुरू किया; जिससे शीघ्र ही उसका देश फिर पहले की तरह ख़ुशहाल दिखाई देने लगा।"*

ऊपर लिखा जा चुका है कि टीपू ने सचाई के साथ सन्धि की शर्तों का पालन किया। किन्तु टीपू की वीरता और उसकी योग्यता तथा उसके राज्य का फिर से पनपना ही अङ्गरेज़ों के लिए सबसे अधिक भयावह था। कॉर्नवालिस के पत्रों से साबित है कि वह टीपू के अस्तित्व को ही अङ्गरेज़ों की भारतीय सत्ता के लिए ख़तरनाक

---

* " . . . with that unremitting activity and zealous warmth which we could look for in a prince, who had come to a serious determination by every reasonable means in his power to regain what he had lost.

" . . . I shall take a short retrospect of the leading features of his conduct since 1792.

" This was first marked by an honourable and unusually punctual discharge of the large sum which remained due at the conclusion of the peace to the allies. Instead of Sinking under his misfortunes, he exerted all his activity to repair the ravages of war. He began to add to the fortifications of his capital—to remount his cavalry, to recruit and discipline his infantry, to punish his refractory tributaries and to encourage the cultivation of his country, which was soon restored to its former prosperity."

—*Wellesley's Dispatches*, Vol. I, Appendix. pp. 668, 669.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मानता था। वेल्सली के पत्रों से साबित है कि वह भारत में क़दम रखने से पहले केप ऑफ़ गुडहोप ही में टीपू पर हमला करने और जिस तरह हो सके, उसे कुचलने का सङ्कल्प कर चुका था। उसके निज़ाम और पेशवा को पङ्गुल कर देने के प्रयत्न एक प्रकार से टीपू को कुचलने की अधिक गहरी योज़ना केवल अङ्ग थे।

दोषारोपण

टीपू पर आक्रमण करने के लिए उस पर कोई न कोई इलज़ाम लगाना आवश्यक था। कहा गया कि टीपू अङ्गरेज़ों पर आक्रमण करने वाला है, और इसके लिए फ्रान्सीसियों के साथ गुप्त षड्यन्त्र रच रहा है। बयान किया गया कि मॉरीशस के टापू में फ्रान्सीसियों ने एक एलान प्रकाशित किया है, जिसमें लिखा है कि टीपू ने अपने कुछ विशेष दूत एक जहाज़ में मॉरीशस भेजे हैं और उन दूतों के ज़रिए अङ्गरेज़ों के विरुद्ध फ्रान्सीसियों के साथ मेल करने का विचार प्रकट किया है, इत्यादि। इस इलज़ाम ही की बिना पर बिना टीपू से कोई बात पूछे कारवाई शुरू कर दी गई। ६ जून, सन् १७९८ को मार्क्विस वेल्सली ने इस फ्रान्सीसी एलान की एक कॉपी मद्रास के गवरनर हैरिस के पास भेजी और उसे आदेश दिया कि तुम तुरन्त टीपू के विरुद्ध सेना जमा करो। इसके बाद २० जून, सन् १७९८ को वेल्सली ने हैरिस को एक दूसरे पत्र द्वारा अपने "अन्तिम निश्चय" की सूचना दी और लिखा कि—"मैं समुद्र-तट पर सेना एकत्रित करने का पक्का निश्चय कर चुका हूँ।" इस पत्र में "टीपू पर अचानक आक्रमण करना" वेल्सली ने अपना "उद्देश्य" बताया, और अन्त में इस बात पर ज़ोर दिया कि इस मामले को "गुप्त" रखना "परम आवश्यक" है।*

सन् १७९२ में निज़ाम और पेशवा दोनों ने टीपू के विरुद्ध अङ्गरेज़ों का साथ दिया था। उस समय की सन्धि में यह तय हो गया था कि यदि टीपू की ओर से सन्धि की शर्तों का उल्लङ्घन होगा तो अङ्गरेज़, निज़ाम और पेशवा तीनों मिलकर उसका मुक़ाबला करेंगे। टीपू ने ईमानदारी के साथ सब शर्तों का पालन किया, इसलिए अब बजाय उन दोनों से इस विषय में सलाह तक करने के वेल्सली ने टीपू पर आक्रमण करने से पूर्व निज़ाम को अपने 'सब्सीडीयरी एलाएन्स' के जाल में क़ैद कर लिया, और जब पेशवा के दरबार में 'सब्-सीडीयरी एलाएन्स' की चाल न चल सकी, तो पेशवा को फँसाए रखने के लिए सींधिया को उकसा कर उसे एक विशाल सेना सहित पेशवा के पीछे लगा दिया और उस सेना द्वारा पेशवा के इलाक़े को लुटवाना शुरू कर दिया।

जेम्स मिल ने अपने इतिहास में साबित किया है कि फ्रान्सीसियों के उस समय टीपू के साथ मिलकर ब्रिटिश भारत पर आक्रमण करने की कोई किसी तरह की सम्भावना तक न थी। उसने यह भी दिखलाया है कि जिन काग़ज़ों के आधार पर टीपू पर फ्रान्सीसियों के साथ साज़िश करने का इलज़ाम लगाया गया है, उनमें से कुछ ऐसे थे जिनसे टीपू का कोई दोष साबित नहीं होता और शेष साफ़ जाली थे।*

इससे अधिक हमें इस मिथ्या दोषारोपण की विवेचना की आवश्यकता नहीं है। मद्रास के गवरनर हैरिस ने २३ जून, सन् १७९८ को एक पत्र में मार्क्विस वेल्सली को दर्शाया कि आपकी आशङ्काएँ सर्वथा निर्मूल हैं और टीपू से इस समय युद्ध छेड़ना अनुचित है। मद्रास गवरमेण्ट के सेक्रेटरी जोशिया वेब ने ६ जुलाई, सन् १७९८ को वेल्सली को लिखा कि—"फ्रान्स की जो सेना मॉरीशस टापू में थी भी वह सब वहाँ से यूरोप को भेज दी गई है और फ्रान्सीसी जहाज़ तक वहाँ से हटा लिए गए हैं, इसलिए फ्रान्सीसियों और टीपू के बीच साज़िश होना असम्भव है।" किन्तु वेल्सली के लिए फ्रान्सीसियों और टीपू की साज़िश केवल एक बहाना थी, उसका असली उद्देश टीपू सुल्तान को मिटा कर ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य को बढ़ा लेना और भविष्य के लिए अपने मार्ग से एक ज़बरदस्त रुकावट को दूर कर देना था।

---

* ". . . my final determination . . . to assemble the army upon the coast . . . with the object of striking a sudden blow against Tipoo, . . . you will of course feel the absolute necessity of keeping the contents of this letter secret."

—Marquess Wellesley to General Harris. 20th June, 1798.

* *History of India* by Mill Vol. VI.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

टीपू के साथ धोखा

९ जून, सन् १७९८ को वेलस्ली ने जनरल हैरिस को लिखा कि टीपू के विरुद्ध सेना जमा की जावे और उसके पाँच दिन बाद अर्थात् १४ जून को उसने टीपू को एक अत्यन्त प्रेमपूर्ण पत्र लिखा। इसके अतिरिक्त टीपू को और पूरी तरह धोखे में रखने के लिए उसने एक नई चाल चली। सर जॉन शोर के समय से वाईनाद के इलाक़े के विषय में कम्पनी और टीपू के बीच कुछ झगड़ा चला आता था। वेलस्ली ने अपना प्रेम दर्शाने के लिए अब वह इलाक़ा टीपू को लौटा दिया। वेलस्ली के प्रेम-पूर्ण पत्र के उत्तर में भोले टीपू ने अङ्गरेज़ गवरनर-जनरल को लिखा—

"आपका मित्रता-सूचक पत्र × × × मिला × × × उससे मुझे इस क़दर ख़ुशी और तसल्ली हुई कि जिसे पूरी तरह काग़ज़ पर बयान नहीं किया जा सकता। × × × ईश्वर की कृपा से दोनों बादशाहतों के बीच एकता और प्रेम का उच्च सम्बन्ध और दोस्ती और मेल की बुनियादें पूरी मज़बूती से क़ायम हैं। मुझे हमेशा इसका ख़याल रहता है कि मौजूदा सुलहनामों की शर्तों पर क़ायम रहूँ। आप दिल से मेरे दोस्त और ख़ैरख़्वाह हैं, और मुझे विश्वास है कि आप ध्यान से एकता और प्रेम को क़ायम रक्खेंगे।"*

निस्सन्देह टीपू को वेलस्ली की वास्तविक इच्छा और उसकी दुरङ्गी नीति का पता न था। वेलस्ली एक ओर टीपू को अपनी मित्रता का विश्वास दिलाता रहा और दूसरी ओर उस पर हमला करने की गुप्त तैयारियाँ करता रहा। धीरे-धीरे कुछ भनक टीपू के कानों तक भी पहुँच गई। २८ सितम्बर, सन् १७९८ को वेलस्ली के पास टीपू का एक और पत्र पहुँचा, जिसमें टीपू ने लिखा—

"दुष्ट लोग थोथे झगड़े और तनाज़े खड़े करके अपना मतलब पूरा करना चाहते हैं, किन्तु ईश्वर की कृपा से दोनों बादशाहतों के बीच एकता और प्रेम के चश्मे इतने पाक और साफ़ बह रहे हैं कि स्वार्थी लोगों की चालों से वे गन्दे नहीं हो सकते।"

वेलस्ली ने एक महीने से ऊपर तक इस पत्र का कोई उत्तर न दिया। इस बीच मिश्र देश के उत्तर में नील नदी के ऊपर नेलसन ने फ्रान्स के जहाज़ी बेड़े का ख़ात्मा कर डाला। फ्रान्सीसियों का डर शुरू से झूठा था। यह डर किसी स्वतन्त्र भारतीय नरेश पर हमला करने के लिए कोई बहाना भी नहीं हो सकता था, तथापि यदि इससे पूर्व फ्रान्सीसियों के भारत पर हमला करने की कोई सम्भावना हो भी सकती थी तो अब वह भी बिलकुल जाती रही। किन्तु जैसा हम लिख चुके हैं, ये सब बातें वेलस्ली के लिए केवल बहाना मात्र थीं, उसका असली उद्देश दूसरा और स्पष्ट था। ४ नवम्बर को वेलस्ली ने फिर टीपू को एक अत्यन्त मित्रता-सूचक पत्र लिखा। ८ नवम्बर को अपनी तैयारी देखकर वेलस्ली ने रङ्ग बदला और एक अत्यन्त उद्दण्डतापूर्ण पत्र में मॉरीशस के एलान का ज़िक्र करते हुए टीपू को लिखा कि—"आप यह गुमान नहीं कर सकते कि मेरे देश के शत्रुओं के और आपके बीच जो बातें हुई हैं, उनकी ओर से मैं उदासीन रह सकता हूँ।" इत्यादि। केवल चार दिन के अन्दर टीपू की ओर वेलस्ली के रुख़ में यह अचानक परिवर्त्तन हो गया।

छेड़छाड़

इसी पत्र में वेलस्ली ने टीपू को यह धमकी दी कि एक अङ्गरेज़ अफ़सर मेजर डवटन को इस उद्देश से आपके दरबार में भेजा जायगा, ताकि शान्ति क़ायम रखने के लिए जिन क़िलों की अङ्गरेज़ों को ज़रूरत है, उन्हें वह आप से माँग ले। असल में अङ्गरेज़ों की तैयारी पूरी हो चुकी थी, इसीलिए टीपू से अब साफ़ छेड़छाड़ शुरू कर दी गई।

पाँच दिन बाद वेलस्ली ने जल-सेनापति रेनियर को लिखा कि—"हैदराबाद को ठीक कर लिया गया है, और समुद्र-तट पर दोनों ओर हमारी युद्ध की तैयारियाँ ख़ूब हो चुकी हैं"—इसलिए "यह अवसर हमारे लिए अच्छा है और मैं इस अवसर से लाभ उठाकर केवल डर दिखाकर अथवा लड़कर टीपू को शक्तिहीन कर देने का पक्का निश्चय कर चुका हूँ।"

इसके बाद बिना टीपू के उत्तर की प्रतीक्षा किए वेलस्ली कलकत्ते से चल दिया और ३१ दिसम्बर, सन् १७९८ को स्वयं युद्ध के मैदान के समीप रहने के उद्देश से मद्रास पहुँच गया। मद्रास पहुँचते ही उसे अपने

* Tipoo's letter to Governor-General received in Calcutta 10th July, 1798.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

८ नवम्बर के पत्र के उत्तर में टीपू का साफ़-साफ़ पत्र मिला।

मॉरीशस वाले मामले के जवाब में टीपू ने लिखा—

"इस ख़ुदादाद सरकार में एक क़ौम व्यापारियों की है, जो ख़ुश्की पर और समुद्र पर तिजारत करती है। इनके गुमाश्तों ने एक-दो मस्तूल वाला जहाज़ ख़रीदा और उसमें चावल भर कर तिजारत के लिए निकले। अकस्मात् यह जहाज़ मॉरीशस टापू में जा पहुँचा। वहाँ से चालीस आदमी फ़्रान्सीसी और काले रङ्ग के, जिनमें से १० या १२ दस्तकार थे और बाक़ी नौकर थे, जहाज़ का किराया देकर जीविका की तलाश में यहाँ आ गए। उनमें से जिन्होंने नौकरी करना पसन्द किया वे रख लिए गए, बाक़ी इस ख़ुदादाद सरकार की सीमा से बाहर चले गए। शायद फ़्रान्सीसियों ने, जिनमें बुराई और छल भरा हुआ है, इस जहाज़ के जाने से फ़ायदा उठाकर इन दोनों सरकारों के दिलों में मैल पैदा कर देने के उद्देश से ये अफ़वाहें उड़ा दी हैं।

"मेरी यह दिली ख़्वाहिश है और मैं सदा इसी प्रयत्न में लगा रहता हूँ कि सुलहनामे की शर्तें पूरी हों और कम्पनी बहादुर की सरकार के साथ दोस्ती और मेल की बुनियाद स्थायी और मज़बूत रहे। × × × × इस परिस्थिति में आपके मैत्री-सूचक पत्र में युद्ध का सङ्केत × × × पढ़ कर मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ।"

वेलसली की धमकी के जवाब में टीपू ने लिखा—

"यह समझा गया है कि ख़ुदा के फ़ज़ल से सुलह के वक़्त चारों सरकारों के बीच शपथ-पूर्वक जो प्रतिज्ञाएँ की गई हैं, वे इतनी दृढ़ और सर्व-स्वीकृत हैं कि हमेशा क़ायम रहेंगी × × × मैं नहीं समझ सकता कि दोस्ती और मेल की बुनियादों को स्थायी बनाने के लिए, सल्तनतों को सुरक्षित रखने के लिए और सबके लाभ और भले के लिए इससे ज़्यादा कारगर और कौन से उपाय किए जा सकते हैं।"*

३१ दिसम्बर, सन् १७९८ को वेलसली को टीपू का यह पत्र मिला। ९ जनवरी, सन् १७९९ को वेलसली ने टीपू को एक और लम्बा पत्र लिखा, जिसमें उसने टीपू को यह स्पष्ट लिख दिया कि आप अपने समुद्र-तट के समस्त नगर और बन्दरगाह अङ्गरेज़ों के हवाले कर दीजे। पत्र मिलने के २४ घण्टे के अन्दर टीपू से जवाब माँगा गया। वास्तव में यह पत्र टीपू को केवल युद्ध की सूचना थी।

टीपू अब अच्छी तरह समझ गया कि जिन विदेशियों को हैदर ने पूरी तरह परास्त करके उनके साथ दया और उदारता का व्यवहार किया, जिन्हें स्वयं टीपू ने एक बार अपनी मुट्ठी में लाकर उनके वादों पर विश्वास करके छोड़ दिया, जिन्होंने अभी छै वर्ष पूर्व उसके साथ मित्रता की सन्धि की थी, वे अब उस पर झूठे दोष लगाकर उसे मिटा देने पर कटिबद्ध थे। पराजित शत्रु की ओर उदारता दिखलाना एशियाई नरेशों का सदा से एक विशेष गुण रहा है, किन्तु अनेक बार उन्हें इस उदारता का गहरा मूल्य चुकाना पड़ा है।

टीपू पर हमला

३ फ़रवरी, सन् १७९९ को कम्पनी की सेना टीपू के राज्य की ओर बढ़ी। टीपू इस युद्ध के लिए तैयार न था। १३ फ़रवरी को उसने वेलसली को पत्र लिखा कि मामले को शान्ति से तय करने के लिए मेजर डक्टन को मेरे दरबार में भेज दिया जावे। इसके बाद भी कई बार टीपू ने प्रार्थना की कि पहले बातचीत से मामले को तय करने की कोशिश कर ली जावे। किन्तु वेलसली ने इन प्रार्थनाओं की ओर कुछ भी ध्यान न दिया। २२ फ़रवरी को टीपू के साथ युद्ध का एलान कर दिया गया। कम्पनी की सेनाएँ जनरल हैरिस के अधीन थीं। जल और स्थल दोनों ओर से टीपू को घेर लिया गया। विवश होकर टीपू ने भी वीरता के साथ मुक़ाबले का निश्चय किया।

विश्वासघात का जाल

वेलसली जानता था कि बावजूद इतनी तैयारी के कम्पनी की सेना का टीपू को परास्त कर सकना इतना सरल न था। इसलिए उसने कम्पनी की प्राचीन प्रथा के अनुसार टीपू के अफ़सरों और उसकी प्रजा के साथ पहले ही से गुप्त साज़िशें शुरू कर दी थीं। वेलसली ने मद्रास के गवरनर हैरिस को लिखा—

"मेरे पास यह मानने के लिए काफ़ी वजह है कि टीपू सुलतान के बहुत से सामन्त, सरदार, मुख्य-मुख्य अफ़सर और प्रजा के अन्य लोग अपने नरेश के विरुद्ध विद्रोह करके कम्पनी और उसके साथियों की शरण में

* *Wellesley's Dispatches*, Vol. I. p. 382, 383

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आने के लिए तैयार हैं। सुलतान की दग़ाबाज़ी और ज़्यादती के कारण जिस युद्ध में हमें फिर से पड़ना पड़ा है, उसमें सुलतान के आदमियों के असन्तोष और विद्रोह से जहाँ तक सम्भव हो सके, लाभ उठाना हमारे लिए उचित और उपयुक्त है।"*

'दग़ाबाज़ी और ज़्यादती' वास्तव में किस ओर थी, यह इतिहास के पन्ने-पन्ने से ज़ाहिर है। रहा विपक्षी के 'आदमियों के असन्तोष और बग़ावत से जहाँ तक सम्भव हो सके लाभ उठाना', नहीं बल्कि उनमें असन्तोष और बग़ावत पैदा करके उन्हें अपनी ओर फोड़ना--सो यह काम सदा ही कम्पनी के लिए 'ज़ायज़ और मुनासिब' समझा गया। इस काम के लिए अर्थात् पहले से जा-जाकर टीपू के आदमियों से मिलने और उन्हें फोड़ने के लिए वेलस्ली ने अपने भाई करनल वेलस्ली, करनल क्लोज़, करनल एगन्यु, कप्तान मैलकम और कप्तान मैकॉले, पाँच आदमियों का एक बाज़ाब्ता कमीशन नियुक्त किया। इस समय के पत्रों से स्पष्ट है कि टीपू के विरुद्ध इससे पहले के युद्ध में भी कॉर्नवालिस इसी तरह के उपायों को काम में ला चुका था।

मीर हुसेनअली ख़ाँ किरमानी ने अपनी फ़ारसी पुस्तक "निशान-ए-हैदरी" में ख़ासे विस्तार के साथ बयान किया है कि किस प्रकार कम्पनी की सेनाओं ने एकाएक चारों ओर से टीपू को जा घेरा, किस प्रकार वीरता और आन के साथ टीपू ने मरते दम तक शत्रुओं का मुक़ाबला किया और किस प्रकार टीपू के दरबार और उसकी समस्त सेना को विश्वासघातकों से छलनी-छलनी करके अन्त में अङ्गरेज़ों ने विजय प्राप्त की।

इस पुस्तक से पता चलता है कि इस युद्ध में निज़ाम और उसके वज़ीर मीर आलम ने अङ्गरेज़ों को फिर ख़ूब सहायता दी। चार हज़ार सेना मद्रास से जनरल हैरिस के अधीन थी। चार हज़ार सब्सीडीयरी सेना हैदराबाद से आकर मिली। दो हज़ार सेना बङ्गाल की थी। आठ हज़ार सवार मीर आलम के अधीन थे और हैदराबाद ही के छै हज़ार सवार रोशनराव के अधीन थे। कुछ सेना बम्बई से आई। इस प्रकार कुल मिला कर लगभग ३० हज़ार सेना ने चारों ओर से टीपू पर एक साथ चढ़ाई की।

इस युद्ध के विविध संग्रामों को वर्णन करने के बजाय हम केवल युद्ध के उस पहलू को संक्षेप में बयान करेंगे, जो वास्तव में टीपू के नाश और अङ्गरेज़ों की सफलता का कारण हुआ। सबसे पहला धोखा जो टीपू के कुछ नमकहराम सलाहकारों और जासूसों ने उसे दिया, वह यह था कि उन्होंने टीपू को विश्वास दिलाया कि कम्पनी की समस्त सेना चार या पाँच हज़ार से अधिक नहीं है।

टीपू ने ख़बर पाते ही अपने विश्वस्त ब्राह्मण मन्त्री और सेनापति पूर्निया के अधीन कुछ सवार शत्रु के मुक़ाबले के लिए भेजे। रायकोट नामक स्थान से लगभग दो कोस पर इस सेना की कम्पनी की सेना से मुठभेड़ हुई। किन्तु पूर्निया भीतर से अङ्गरेज़ों से मिला हुआ था। उसने बजाय मुक़ाबला करने के कम्पनी की सेना के दाएँ-बाएँ चक्कर लगाने शुरू किए। कम्पनी की सेना आगे बढ़ती रही। पूर्निया की सेना के एक दल ने आगे बढ़ कर वीरता के साथ शत्रु को रोका और एक बहुत बड़ी संख्या को तलवार के घाट उतारा। पूर्निया ने यह देख कर अपने वीर सवारों को शाबाशी देने के स्थान पर उन्हें अत्यन्त कड़े शब्दों में लानत-मलामत की। सवार समझ गए कि पूर्निया लड़ना नहीं चाहता। इसके बाद कम्पनी की बढ़ती हुई सेना को रोकने वा उनसे लड़ने के बजाय विश्वासघातक पूर्निया की सेना शत्रु के आगे-पीछे बतौर उनके संरक्षकों के चलती रही।

यह ख़बर सुन कर कि कम्पनी की सेना बढ़ी चली आ रही है, सुलतान टीपू ने स्वयं सेना सहित आगे बढ़ने का विचार किया। उसके सलाहकारों ने फिर उसे धोखा दिया। जनरल हैरिस की सेना एक विशेष मार्ग से श्रीरङ्गपट्टन की ओर बढ़ रही थी। टीपू के सलाहकारों ने उसे दूसरा मार्ग बतला दिया और टीपू ने एक ग़लत

* I have reason to believe that many of the tributaries, principal officers, and other subjects of Tipoo Sultan, are inclined to throw off the authority of that prince, and to place themselves under the protection of the Company and of our allies. The war in which we are again involved by the treachery and violence of the Sultan, renders it both just and expedient that we should avail ourselves, as much as possible, of the discontent and disaffection of his people."

—Marquess Wellesley's letter to General Harris. *Wellesley's Dispatches*, p. 442.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सड़क पर जाकर डेरे डाल दिए। ज्योंही टीपू को इस विश्वासघात का पता चला, उसने फ़ौरन तेज़ी के साथ आगे बढ़कर गुलशनाबाद के पास सामने से हैरिस की सेना को रोका। कुछ देर तक ख़ूब घमासान युद्ध हुआ, जिसमें सुलतान के अनेक सिपाहियों और सेनानियों ने वीरता के हाथ दिखाए। कम्पनी की सेना और विशेष कर उनके तोपख़ाने को ज़बरदस्त हानि सहनी पड़ी। ठीक अवसर पर सुलतान ने अपने एक सेनापति कमरुद्दीन ख़ाँ को सवारों सहित आगे बढ़ कर शत्रु को समाप्त कर देने की आज्ञा दी, किन्तु कमरुद्दीन ख़ाँ भी अपने आपको अङ्गरेज़ों के हाथ बेच चुका था, मौक़ा मिलते ही शत्रु पर हमला करने के बजाय वह थोड़ा आगे बढ़ कर उलटा लौटा और एकाएक अपने सवारों सहित सुलतान की सेना के एक भाग पर टूट पड़ा। टीपू के अनेक जाँबाज़ सिपाही इस समय काम आए, अनेक हैरान होकर पीछे हट गए और कमरुद्दीन ख़ाँ के विश्वासघात के प्रताप से मैदान अङ्गरेज़ों के हाथ रहा।

इतने में टीपू को पता चला कि एक दूसरी सेना जनरल स्टुअर्ट के अधीन बम्बई से श्रीरङ्गपट्टन की ओर बढ़ी चली आ रही है, तो फ़ौरन कुछ सरदारों को जनरल हैरिस के मुक़ाबले के लिए छोड़ कर टीपू अपनी समस्त सेना और तोपख़ाने सहित जनरल स्टुअर्ट का मार्ग रोकने के लिए बढ़ा।

दो रात और एक दिन के लगातार कूच के बाद टीपू ने बम्बई की सेना को जा पकड़ा और पहुँचते ही हमले की आज्ञा दी। टीपू की सेना ने इस समय भी पूरी वीरता दिखलाई। कम्पनी की सेना को भारी शिकस्त खानी पड़ी। अनेक मैदान में काम आए और अनेक माल-असबाब छोड़ कर, जान बचा कर आस-पास के जङ्गल में जा छिपे। टीपू के जासूसों ने आकर उसे ख़बर दी कि बम्बई की सेना युद्ध का इरादा छोड़कर जङ्गल के रास्ते पीछे लौट गई। टीपू अपनी विजयी सेना सहित श्रीरङ्गपट्टन की ओर मुड़ आया।

मालूम होता है, पूर्निया और कमरुद्दीन जैसे विश्वासघातकों ने टीपू के चारों ओर नमकहराम मुख़बिर और सलाहकार पैदा कर रक्खे थे।

टीपू के श्रीरङ्गपट्टन पहुँचते ही जनरल हैरिस की सेना नगर के सम्मुख आ पहुँची। सामने की ओर श्रीरङ्गपट्टन का क़िला था और पीछे नगर। अङ्गरेज़ी सेना ने क़िले और नगर के अन्दर आग बरसानी शुरू की। टीपू के कुछ सलाहकारों ने उसे राय दी कि आप नगर छोड़ कर भाग जाइए अथवा सुलह की बातचीत शुरू कीजिए। वीर टीपू ने उस स्थिति में दोनों बातों से इनकार कर दिया। उसने अन्त समय तक लड़ने का निश्चय कर लिया था। मालूम होता है, पूर्निया और कमरुद्दीन ख़ाँ के विश्वासघात का उसे अभी तक पता न चला था। फिर इन्हीं दोनों सेनापतियों के अधीन सेना नियुक्त करके क़िले से बाहर भेजी गई। मीर हुसेनअली ख़ाँ लिखता है कि यह सेना बार-बार अङ्गरेज़ी सेना के दाएँ-बाएँ चक्कर लगाती थी, बार-बार टीपू के वीर सवार शत्रु पर हमला करने की इजाज़त माँगते थे और बार-बार उनके सेनापति उन्हें इजाज़त देने से इनकार करते थे, और सिपाही दुख और निराशा से हाथ मलते रह जाते थे; यहाँ तक कि बम्बई की सेना भी हैरिस की मदद के लिए आ पहुँची।

अन्त में एक घमासान संग्राम हुआ। इस संग्राम में महताब बाग़ का मोरचा श्रीरङ्गपट्टन के क़िले की कुञ्जी था। टीपू का एक विश्वस्त अनुचर सय्यद ग़फ़्फ़ार महताब बाग़ का संरक्षक था। सय्यद ग़फ़्फ़ार देर तक बड़ी वीरता के साथ शत्रु के हमलों से महताब बाग़ की रक्षा करता रहा। दुश्मन ने देख लिया कि सय्यद ग़फ़्फ़ार के रहते महताब बाग़ को जीत सकना असम्भव है। सय्यद ग़फ़्फ़ार को धन का लोभ दिया गया। उस पर इसका कोई असर न हुआ। अन्त में साज़िश होकर टीपू के पास के नमकहरामों ने टीपू को कुछ समझा-बुझा कर सय्यद ग़फ़्फ़ार को महताब बाग़ से हटवा कर क़िले के अन्दर बुलवा लिया। जिस मनुष्य ने सय्यद ग़फ़्फ़ार की जगह ली, वह अङ्गरेज़ों का धनक्रीत था। सय्यद ग़फ़्फ़ार जब वहाँ से चला गया तब उसने महताब बाग़ अङ्गरेज़ी सेना के हाथों में दे दिया और एक प्रकार से श्रीरङ्गपट्टन के क़िले का दरवाज़ा शत्रु के लिए खोल दिया।

टीपू का मुख्य सलाहकार इस समय उसका एक दीवान मीर सादिक़ था। भोले टीपू को बहुत देर तक इसका पता न चल सका कि यह मीर सादिक़ भी उसके दुश्मनों से मिला हुआ था। यहाँ तक कि मीर सादिक़

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ने टीपू के एक विश्वस्त अफ़सर ग़ाज़ी ख़ाँ को क़त्ल करवा दिया और क़िले की दीवारों के टूट जाने पर भी टीपू से इस ख़बर को छिपाए रक्खा। अन्त में जब टीपू को अपने कुछ विश्वस्त आदमियों द्वारा इन सब बातों का और मीर सादिक़ और उसके अन्य साथियों के विश्वासघात का पता चला, तो टीपू ने एक दिन सुबह को अपने हाथ से विश्वासघातकों की एक लम्बी सूची तैयार करके मीर मुईनुद्दीन के हाथ में दी और उसे आज्ञा दी कि आज ही रात को इन समस्त नमकहरामों का, जिस तरह हो, काम तमाम कर देना।

अकस्मात् जिस समय मीर मुईनुद्दीन ने इस सूची को खोल कर पढ़ना चाहा, महल का एक फ़र्राश, जो पढ़ना जानता था और मीर सादिक़ से मिला हुआ था, मीर मुईनुद्दीन के पीछे खड़ा हुआ था। इस फ़र्राश ने मीर सादिक़ का नाम सूची में सबसे ऊपर पढ़ कर फ़ौरन जाकर मीर सादिक़ को इसकी ख़बर दे दी। मीर सादिक़ सावधान हो गया।

उसी दिन सुलतान टीपू ने घोड़े पर चढ़ कर क़िले की चहारदीवारी का निरीक्षण किया। टूटी हुई दीवारों की मरम्मत का हुक़ुम दिया और ऐन एक दीवार के ऊपर अपना ख़ेमा लगवाया। कहते हैं कि कुछ ज्योतिषियों ने टीपू से आकर अर्ज़ की कि आज का दिन दोपहर से सात घड़ी बाद तक आपके लिए शुभ नहीं है। इन ज्योतिषियों की सलाह के अनुसार टीपू ने अपने महल में जाकर स्नान किया, हिन्दू क़ायदे से हवन और जाप आदिक कराए और दो हाथी, जिन पर काली झूलें पड़ी हुई थीं और जिनकी झूलों के चारों कोनों में सोना, चाँदी, मोती और जवाहरात बँधे हुए थे, एक ब्राह्मण को दान दिए। इसके बाद उसने अनेक ग़रीबों और मोहताजों में भोजन, वस्त्र और धन बँटवाया।

दोपहर के समय टीपू अभी भोजन करने के लिए बैठा ही था और अभी पहला ही कौर उसके मुँह में जाने पाया था कि किसी ने बाहर से आकर सूचना दी कि विश्वासघातकों ने सुलतान के विश्वस्त अनुचर सय्यद ग़फ़्फ़ार को, जो उस समय क़िले का प्रधान संरक्षक था, क़त्ल कर डाला। टीपू के लिए दूसरा कौर हराम हो गया। ख़बर सुनते ही वह फ़ौरन दस्तरख़ान छोड़ कर उठ खड़ा हुआ और घोड़े पर सवार होकर स्वयं सय्यद ग़फ़्फ़ार की जगह लेने के लिए अपने कुछ ख़ास-ख़ास सरदारों सहित पीछे की ओर से क़िले के अन्दर घुस गया।

इधर विश्वासघातकों ने सय्यद ग़फ़्फ़ार को ख़तम करते ही फ़ौरन दीवार पर चढ़ कर सफ़ेद रूमाल दिखा कर बाहर की अङ्गरेज़ी सेना को इशारा किया और पेश्तर इसके कि टीपू मौक़े पर पहुँच कर फिर से अपने आदमियों को जमा कर सके, शत्रु के सिपाही दीवार के टूटे हुए हिस्से से श्रीरङ्गपट्टन के क़िले के अन्दर घुस आए।

जब दीवान मीर सादिक़ को पता चला कि सुलतान ख़ुद सेना जमा करके क़िले के अन्दर गया है, उसने घोड़े पर चढ़ कर सुलतान का पीछा किया और जिस दरवाज़े से टीपू क़िले के अन्दर गया था, उसे मज़बूती से बन्द करवा कर, ताकि टीपू किसी तरह बच कर न निकल सके, बाहर से सहायता पहुँचाने के बहाने एक दूसरे दरवाज़े से ख़ुद बाहर निकलना चाहा। इस दूसरे दरवाज़े पर पहुँचते ही उसने वहाँ के पहरेदारों को आज्ञा दी कि जब मैं बाहर चला जाऊँ तो तुम दरवाज़े को मज़बूती से बन्द कर लेना और फिर किसी के भी कहने पर न खोलना। किन्तु अभी वह इन पहरेदारों से बात कर ही रहा था कि टीपू के एक वीर सिपाही ने सामने से आकर ललकार कर कहा—"ऐ कम्बख़्त मलऊन! अपने ख़ुदातर्स सुलतान को दुश्मनों के हवाले करके अब तू जान बचा कर भागना चाहता है? ले, यह तेरे गुनाह की सज़ा है!" यह कह कर उसने अपनी तलवार के एक वार से नमकहराम मीर सादिक़ के दो टुकड़े कर डाले। मीर सादिक़ की लोथ घोड़े से ज़मीन पर जा गिरी।

किन्तु टीपू और उसके देश को अब इससे क्या लाभ हो सकता था? टीपू ने जब अच्छी तरह देख लिया कि मेरे आदमियों ने मेरे साथ दग़ा की और क़िला शत्रु के हाथों में चला गया, तो उसने एक बार उसी दरवाज़े से फिर बाहर जाना चाहा; किन्तु एक साधारण क़िलेदार ने, जिसे मीर सादिक़ ने पहले से समझा रक्खा था, इस समय अपने स्वामी और नरेश टीपू सुलतान की आज्ञा पर क़िले का दरवाज़ा खोलने से इनकार कर दिया।

टीपू का अन्त

अङ्गरेज़ी सेना दीवार के टूटे हुए हिस्से पर से क़िले

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के अन्दर प्रवेश कर चुकी थी। टीपू अब फिर लौट कर अपने मुट्ठी भर आदमियों सहित बढ़ते हुए शत्रु की ओर लपका। उसने अपनी शक्ति भर अपने इन रहे-सहे सिपाहियों को जोश दिलाया। उसने चिल्ला कर कहा—"आख़ीर वक़्त तक क़िले की रक्षा करना हमारा फ़र्ज़ है" "इन्सान को मौत सिर्फ़ एक ही मरतबा आ सकती है, फिर क्या परवा है कि ज़िन्दगी कब ख़त्म हो!"* यह कह कर उसने अपनी बन्दूक़ से शत्रु की ओर गोलियाँ चलानी शुरू कीं। कई यूरोपियन अफ़सर उसकी गोलियों का शिकार होकर गिर पड़े। किन्तु शत्रु की संख्या बहुत अधिक थी। अन्त में एक गोली टीपू की छाती में बाईं ओर आकर लगी। टीपू ज़ख़्मी हो गया, तथापि उसने बन्दूक़ हाथ से न छोड़ी और न वह पीछे मुड़ा। इस ज़ख़्मी हालत में भी वह बराबर अपनी बन्दूक़ से शत्रु पर गोलियाँ बरसाता रहा। थोड़ी देर बाद एक दूसरी गोली टीपू की छाती में दाहिनी ओर आकर लगी। टीपू का घोड़ा अब ज़ख़्मों से छलनी-छलनी होकर गिर पड़ा। टीपू की पगड़ी ज़मीन पर जा गिरी। शत्रु अधिक निकट आ पहुँचे। प्यादा पा और नङ्गे सर टीपू ने अब बन्दूक़ फेंक कर दाहिने हाथ में अपनी तलवार सँभाली। टीपू की छाती से अब दो-दो धारें ख़ून की बह रही थीं। उसके कुछ वफ़ादार साथियों ने उसकी यह अवस्था देख कर सहारा देकर उसे एक पालकी में बैठा दिया। पालकी एक मेहराब के नीचे रख दी गई। इस हालत में टीपू के एक मुलाज़िम ने उसे सलाह दी कि अब आप अपने आपको अङ्गरेज़ों के हवाले कर दीजे और उनकी उदारता पर छोड़ दीजे, किन्तु वीर टीपू ने बड़े तिरस्कार के साथ इस सलाह को अस्वीकार किया। इतने में कुछ अङ्गरेज़ सिपाही पालकी के पास तक आ पहुँचे। इनमें से एक ने टीपू को ज़ख़्मी देख कर उसकी कमर से जड़ाऊ पेटी उतारना चाहा। टीपू ने अभी तक तलवार हाथ से न छोड़ी थी। उसने इस तलवार से गोरे सिपाही पर वार किया और एक वार में उसका घुटना उड़ा दिया। फ़ौरन् एक तीसरी गोली टीपू की दाहिनी कनपटी में आकर लगी, जिसने एक क्षण के अन्दर उसके ऐहिक जीवन का अन्त कर दिया। उस दिन रात को जिस समय टीपू का मृत शरीर लाशों के ढेर में से ढूँढ़ कर निकाला गया तो उस समय तक तलवार उसके हाथ से न छूटी थी। दाहिने हाथ का पूरा पञ्जा तलवार के क़ब्ज़े पर कसा हुआ था। टीपू प्रायः कहा करता था—"दो दिन शेर की तरह जीना ज़्यादा अच्छा है बजाय दो सौ वर्ष भेड़ की तरह जीने के।"

निस्सन्देह टीपू का जीवन और उसकी मृत्यु दोनों इस कथन के अनुरूप थीं।*

(अगले अङ्क में समाप्त)

* "*History of Hyder Shah and Tippoo Sultan*" by Prince Gholam Mohammad.

* **भारत में अङ्गरेज़ी राज्य** नामक पुस्तक का एक अध्याय, जो शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है।

—स० 'चाँद'

प्रतिशोच

[रचयिता—श्री० 'सरस']

वे जब लौं नहिं आए अरी! घरी एकु न ए कल पाती रहीं।
रोवत जोहत नित्त रहीं पथ, देखन कौ अकुलाती रहीं॥
वे जबु आए सुभागन तौ, झुकि कै सकुचाती लजाती रहीं।
आली री! ऐसेहि चूकि सदा, दुखिया अँखियाँ पछताती रहीं॥

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अम्बपालिका

[ले० प्रोफ़ेसर चतुरसेन जी शास्त्री]

मुज़फ़्फ़रपुर से पश्चिम ओर जो पक्की सड़क जाती है, उस पर मुज़फ़्फ़रपुर से लगभग १८-२० मील पर 'बैसौढ़' नामक एक बिलकुल छोटा सा गाँव है, जिसमें ३०-४० घर भूमिहार ब्राह्मणों के और कुछ घर क्षत्रियों के बच रहे हैं। इस गाँव के चारों ओर कोसों तक खण्डहर, टीले और पुरानी टूटी-फूटी मूर्तियाँ ढेर की ढेर मिलती हैं, जो इस बात की स्मृति दिलाती हैं कि यहाँ कभी कोई बड़ा भारी समृद्धिशाली नगर बसा रहा होगा।

वास्तव में अब से ढाई हज़ार वर्ष पूर्व यहाँ एक विशाल नगर बसा था, जिसका नाम वैशाली था, और जो प्रबल प्रतापी लिच्छविगण तन्त्र के शासन में था।

वैशाली लिच्छविगण तन्त्र की एक प्रधान नगरी और रियासत थी। नगर व्यापारियों, जौहरियों, शिल्पकारों और भिन्न-भिन्न प्रकार के देश-विदेश के यात्रियों से परिपूर्ण था। 'श्रेष्टि चत्वर' नगर का प्रधान बाज़ार था, जहाँ जौहरियों और बड़े-बड़े व्यापारियों की कोठियाँ थीं और जिनकी व्यापारिक शाखाएँ समस्त उत्तर भारत में फैली हुई थीं। दुकानदार स्वच्छ परिधान धारण किए पान कुचरते हँस-हँस कर ग्राहकों से बात करते, जौहरी, पन्ना, लाल, मूँगा, मोती, पुखराज, हीरा और अन्य रत्नों की परीक्षा तथा लेन-देन में व्यस्त रहते थे। निपुण कारीगर अनगढ़ रत्नों को सान चढ़ाते, स्वर्ण-आभरणों में रङ्गीन रत्न जड़ते और मोती गूँथते थे। गन्धी लोग केसर के थैले हिलाते थे। चन्दन के तेलों में भिन्न-भिन्न सुगन्ध मिला कर इत्र बनाए जाते और नागरिक उनका खुला उपयोग करते थे। रेशम और बहुमूल्य महीन मलमल के व्यापारियों की दुकानों पर बग़दाद और फ़ारस के व्यापारी लम्बे-लम्बे लबादे पहने, भीड़ की भीड़ पड़े रहते थे। नगर की गलियाँ सकरी और तङ्ग थीं और उनमें गगन-चुम्बी अट्टालिकाएँ खड़ी थीं, जिनके अँधेरे तहख़ानों में इन धन-कुबेरों का बड़ा भारी कोष और द्रव्य रक्खा रहता था।

सन्ध्या-समय सुन्दर श्वेत बैलों के रथों पर, जिन पर बढ़िया सुनहरा काम हुआ रहता था, नागरिक सैर करने राजपथ पर निकलते थे। इधर-उधर हाथी झूमते हुए बढ़ा करते थे और उन पर उनके अधिपति रत्नाभरणों से सज्जित अपने दासों तथा शरीर-रक्षकों से घिरे हुए चला करते थे।

२

अभी दिन निकलने में देर थी। पूर्व की ओर प्रकाश की आभा दिखाई पड़ रही थी, पर मार्ग में अँधेरा था। राजमहल के तोरण पर अभी तक प्रकाश जल रहा था। चारों ओर प्रतिहार पड़े सो रहे थे। उनमें से केवल एक भाला टेक कर खड़ा नींद में झूम रहा था। तोरण के इधर-उधर कई कुत्ते पड़े सो रहे थे।

धीरे-धीरे दिन का प्रकाश फैलने लगा। राजवर्गी इधर से उधर आने-जाने लगे। प्रतिहार रक्षी सेना का एक नवीन दल तोरण पर आ पहुँचा। उसमें से एक दण्डधर ने आगे बढ़ कर भाले के सहारे खड़े-खड़े ऊँघते मनुष्य को पुकार कर कहा—महानामन! सावधान होओ और घर जाकर विश्राम करो। महानामन ने सजग होकर अपने दीर्घकाय को और भी विस्तार करके एक ज़ोर की अँगड़ाई ली और यह कह कर कि—तुम्हारा कल्याण हो, वह अपना भाला धरती पर टेकता हुआ तीसरे तोरण की ओर बढ़ गया। पश्चिम की ओर पुराना प्रासाद और राजमहल का उपवन था, जिसकी देख-रेख महामामन के सुपुर्द थी। यहीं उसकी छोटी सी कुटिया थी, जहाँ वह अपनी प्रौढ़ा पत्नी के साथ १७ वर्ष से एकरस—आँधी-पानी, सर्दी-गर्मी में रहता था।

वह नींद में झूमता हुआ ऊँघ रहा था। अब भी प्रभात का प्रकाश धुँधला था। उसने अपनी कुटी के पास एक कदली वृक्ष के नीचे, आम्रकुञ्ज में एक श्वेत वस्तु पड़ी रहने का भान किया। निकट जाकर देखा, एक नवजात शिशु स्वच्छ वस्त्रों में लिपटा अपना अगूँठा चूस रहा है। आश्चर्य-चकित होकर महानामन ने शिशु को उठा

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लिया। देखा, कन्या है। उसने अपनी स्त्री को पुकार कर उसे वह कन्या देकर कहा—देखो, आज इस प्रकार अपने जीवन की पुरानी साध मिटी।

वह कन्या—उस दरिद्र लिच्छवि महानामन के उस दरिद्रावास में शशिकला की भाँति बढ़ने लगी। उसका नाम रक्खा गया अम्बपालिका।

३

वैशाली से उत्तर-पश्चिम २५ कोस पर, एक छोटे से गाँव में, एक किनारे पर एक साधारण घर था। उसके द्वार पर एक वृद्ध प्रातःकाल बैठा दातुन कर रहा था। पूर्व के द्वार पर से पैर की आहट सुन कर उसने पीछे को देखा, एक चम्पक-पुष्प की कली के समान ११ वर्षीया बालिका—अति सुन्दरी बालिका, जिसके घुँघराले बाल लहलहा रहे थे, दौड़ती-दौड़ती बाहर आई, और वृद्ध को देख उससे लिपटने को लपकी, पर पैर फिसलने से गिर गई। वह गिर कर रोने लगी। वृद्ध ने दातुन फेंक, दौड़ कर बालिका को उठाया, उसकी धूल झाड़ी; बालिका ने रोना रोक कर कहा—बाबा, घर में आटा बिलकुल नहीं है, हम लोग क्या खायँगे? वृद्ध ने उसे गोद में उठाते हुए कहा—'कुछ चिन्ता नहीं, मैं अभी गेहूँ पिसवाने की व्यवस्था करता हूँ।' बालिका ने कहा—'गेहूँ का भी तो एक दाना नहीं है?' वृद्ध क्षण भर अवाक् रहा। उसने कहा—'तब ठहर, मैं अभी शिकार मार लाता हूँ।' बालिका ने रोक कर कहा—'नहीं-नहीं, मैं पक्षी का मांस नहीं खाऊँगी।'

वृद्ध महानामन लिच्छवि था और कन्या थी अम्बपालिका। वृद्ध की पत्नी का स्वर्गवास हुए ८ साल व्यतीत हो गए थे। उसके बाद कन्या की परिचर्या में बाधा पड़ती देख, महानामन ने राज-सेवा छोड़ कर अपने ग्राम में आकर बालिका की सेवा-शुश्रूषा अबाध-रूप से करने का निश्चय कर लिया था। वह गत ८ वर्षों से इसी गाँव में रहता। अम्बपालिका को उसने इस तरह पाला जैसे पक्षी चुग्गा दे-देकर अपने शिशु-पक्षी को पालता है। परन्तु खेद है, धीरे-धीरे उसकी छोटी सी कमाई की क्षुद्र पूँजी, यत्न से ख़र्च करने पर भी समाप्त हो ही गई। और फिर धीरे-धीरे पत्नी के स्मृति-रूप दो-चार क्षुद्र आभूषण भी उदर-गुहा में पहुँच चुके। अब आज क्या किया जाय? अब तो आटा भी नहीं, एक दाना गेहूँ भी नहीं। वृद्ध की प्राणों की पुतली, इस प्रश्न पर चिन्तित हो रही है। यह और भी कष्ट का प्रश्न था। पर वृद्ध ने हँस कर कहा—'अच्छा, अच्छा, मैं अभी गेहूँ लिए आता हूँ।' इतना कह कर वृद्ध ने बालिका के तड़ातड़ ३-४ चुम्बन लिए और उसे गोद से उतारते-उतारते दो बूँद आँसू गिरा दिए। बालिका भीतर गई और वृद्ध चिन्ता-मग्न बैठ गया। अन्ततः उसने एक बार फिर महाराज की सेवा में उपस्थित होकर पुरानी नौकरी की याचना करने का निश्चय किया। उसके बाहु का पौरुष तो थक चुका था। परन्तु क्या किया जाय, कन्या का विचार सर्वोपरि था। फिर भी वृद्ध के अति गम्भीर होने का यही मात्र कारण न था। लाख वृद्ध होने पर भी उसकी भुजा में बल था—बहुत था। पर उसकी चिन्ता थी—बालिका का अप्रतिम सौन्दर्य। सहस्राधिक बालिकाएँ भी क्या उस पारिजात-कुसुम तुल्य कुन्द-कलिका के समान थीं? किस पुष्प में उतनी गन्ध, कोमलता और सौन्दर्य था? उसे भय था कि राज-नियमानुसार वह विवाह से वञ्चित करके कहीं नगर-वेश्या न बना दी जाय; क्योंकि लिच्छविगण तन्त्र में यह क़ानून था कि राज्य की जो कन्या अत्यधिक सुन्दरी होती थी, उसे किसी एक पुरुष की पत्नी न होने दिया जाकर नागरिकों के लिए सुरक्षित रक्खा जाया करता था। वास्तव में इसी भय से महानामन राजधानी छोड़ कर भागा था, जिससे किसी की दृष्टि उस बालिका पर न पड़े। पर अब उपाय न था। महानामन ने राजधानी में एक बार जाने का निश्चय किया!

४

वैशाली की ओर जाने वाली सड़क पर वर्षा के कारण बड़ी कीचड़ हो रही थी। कहीं-कहीं तो नालों का पानी कच्ची सड़क को तोड़ कर, सड़क पर नदी की तरह बह रहा था। अभी वर्षा हो चुकी थी। वृद्ध और उसकी पुत्री दोनों भीग गए थे, पर धीरे-धीरे बढ़े चले जा रहे थे। हवा बन्द थी, गर्मी बढ़ गई थी और दूरस्थ पर्वतों की चोटियों में अस्त होते हुए सूर्य को देख-देख कर वृद्ध डर रहा था। निकट किसी बस्ती के चिन्ह न थे। यदि यहीं चौपट में अँधेरा हो गया तो कहाँ रात कटेगी, बच्ची खायगी क्या, यही वृद्ध के भय का कारण था। वह लाठी टेकता-टेकता धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। वह स्वयं बहुत थक गया था और बालिका

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तो क्षण-क्षण में विश्राम की इच्छा प्रकट कर रही थी। बालिका ने कहा—पिता ! अब मैं और नहीं चल सकती, मेरे पैरों में देखो, लोहू बह रहा है, वे फट गए हैं। वृद्ध ने स्नेह से उसे चुमकार कर कहा—बस अब थोड़ी दूर और; निकट ही कहीं गाँव या बस्ती मिलने पर ठहरनेमें सुभीता रहेगा। पर बालिका और कुछ पग चल कर मार्ग ही में एक ऊँची जगह पर बैठ गई। वृद्ध भी निरुपाय हो, पास ही बैठ गया। अन्धकार ने चारों ओर से उन्हें घेर लिया।

सहसा बालिका ने चौंक कर कहा—पिता जी, देखो घोड़ों की टाप का शब्द सुनाई दे रहा है ! बुड्ढे ने उठ कर दूर तक दृष्टि करके देखा। सड़क के निकट एक घना सेमल का वृक्ष था, जिसके नीचे घोर अन्धकार था। वृद्ध कन्या का हाथ पकड़, वहीं जा छिपा। आकाश में अब भी बादल घिर रहे थे और फिर ज़ोर की वर्षा होने के रङ्ग-ढङ्ग दीख पड़ते थे। बीच-बीच में बिजली भी चमक जाती थी। थोड़ी देर बाद बहुत से सवार वहाँ तक आ पहुँचे। वर्षा भी शुरू हो गई। सवारों ने निश्चय किया कि उस वृक्ष के नीचे आश्रय लें।

वृद्ध भय से बालिका को छाती में छिपाए वृक्ष की जड़ में चिपक कर बैठ गया। सहसा बिजली की चमक में अश्वारोहियों ने वृक्ष के निकट मनुष्य-मूर्ति देख कर कहा—अरे ! वृक्ष के निकट यह कौन है ? वृद्ध वहाँ से हट कर चुपचाप खेत में जाने लगा। तत्क्षण एक बर्छा आकर उसकी छाती को विदीर्ण कर गया। वृद्ध एक चीत्कार करके धरती पर गिर गया। बालिका ज़ोर से चिल्ला उठी।

अश्वारोही दल ने निकट जाकर देखा—मृत पुरुष वृद्ध और निरस्त्र है। पर कन्या को देखते ही बर्छा फेंकने वाले सवार ने कहा—वाह ! बूढ़े को मार कर रत्न मिला ! इसमें किसी का साझा नहीं है ?

बालिका भय और शोक से चिल्ला उठी। अश्वारोही ने उसकी परवा न कर, उसे उठा कर घोड़े पर रख लिया और वे आगे बढ़े।

५

वैभवशालिनी वैशाली का जो 'श्रेष्टि चत्वर' नामक बाज़ार था, उसके उत्तर कोण पर एक विशाल प्रासाद, जिसके गुम्बजों का प्रकाश रात्रि को गङ्गा पार से भी दीखता था। बाहर का सिंहद्वार विशाल पत्थरों का बनाया गया था, जिसे उठाना और जोड़ना दैत्यों का ही काम हो सकता था। इन पत्थरों पर स्वपत्यकला और शिल्प की सूक्ष्म बुद्धि ख़र्च की गई थी। ड्योढ़ी पर गहरा हरा रङ्ग किया हुआ था और ऊँचे महराबदार फाटक पर फूलों की गुँथी हुई सुन्दर मालाएँ लटक रही थीं। पहले आँगन में प्रवेश करने पर श्वेत अट्टालिकाओं की पंक्ति दीख पड़ती थी। उनकी दीवारों पर काँच की तरह चमकदार श्वेत पलस्तर किया गया था। सीढ़ियों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के ख़ुदरङ्ग बहुमूल्य पत्थर लगे थे, और खिड़कियों में बिल्लौर के किवाड़ थे, जिनमें श्रेष्टि चत्वर की बहार बैठे ही बैठे दीख पड़ती थी। दूसरे आँगन में गाड़ी, बैल, घोड़े हाथी बँधे थे और महावत उन्हें चावल-घी खिला रहे थे। तीसरे आँगन में अतिथि-शाला तथा आगत जनों के ठहरने का प्रबन्ध था। यहाँ बहुत सुन्दर विशाल पत्थरों के खम्भों पर महराब खड़े हुए थे। चौथे आँगन में नाट्यशाला और गायन-भवन था, पाँचवें आँगन में भिन्न-भिन्न प्रकार के शिल्पकार और जौहरी लोग नाना प्रकार के आभूषण बना और रत्नों को घिस रहे थे। छठवें आँगन में भिन्न-भिन्न देश के पशु-पक्षियों का अद्भुत संग्रह था। सातवाँ आँगन बिलकुल श्वेत पत्थर का बना था, और उसमें सुनहरा काम हो रहा था। इसमें दो भीमकाय सिंह स्वर्ण की मेखलाओं से दृढ़तापूर्वक बँधे थे और चाँदी के पात्रों में पानी भरा उनके निकट धरा था। गृह-स्वामिनी अम्बपालिका इसी कक्ष में विराजती थी।

सन्ध्या होगई थी। परिचारक और परिचारिकाएँ दौड़-धूप कर रही थीं, कोई सुगन्धित जल आँगन में छिड़क रही थी, कोई धूप जला कर भवन को सुवासित कर रही थी, कोई सहस्र दीप-गुच्छ में सुगन्धित तेल डाल कर प्रकाशित करने में व्यस्त थी। बहुत से माली तोरण और अलिन्द पर ताज़े पुष्पों के गुलदस्ते और मालाओं को सजा रहे थे। अलिन्द में दण्डधर अपने-अपने स्थानों पर भाला टेके स्थिर भाव से खड़े थे। द्वार-पाल तोरण पर अपने द्वार-रक्षक दल के साथ सशस्त्र उपस्थित था।

क्षण भर बाद प्रासाद भाँति-भाँति के रङ्गीन प्रकाशों से जगमगा उठा। भाँति-भाँति के रङ्गीन फ़व्वारे चलने लगे और उन पर प्रकाश का प्रतिबिम्ब इन्द्र-धनुष की बहार

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिखाने लगा। धीरे-धीरे प्रतिष्ठित नागरिक कोई पालकी में, कोई रथ पर और कोई हाथी पर चढ़ कर प्रथम तोरण पार कर आने लगे। परिचारक गण दौड़-दौड़ कर अतिथियों को सादर उतार कर भीतरी अलिन्द में पहुँचाने तथा उनकी सवारियों की व्यवस्था करने लगे। हाथी-घोड़े, रथ, पालकी आदि वाहनों का ताँता लग गया। उनकी भीड़ से बाहर का विशाल प्राङ्गण भर गया।

सातवें तोरण के भीतर श्वेत पत्थर के एक विशाल सभा-भवन में अम्बपालिका नागरिक युवकों की अभ्यर्थना कर रही थी। यह भवन एक टुकड़े के ६४ हरे रङ्ग के पत्थर के खम्भों पर निर्मित हुआ था, और इस पर रङ्गीन रत्नों को जड़ कर फूल-पत्ती, पत्ती तथा वन के दृश्य बनाए गए थे। छत पर स्वर्ण का पत्तर मढ़ा था, जहाँ पर बारीक खुदाई और रङ्गीन मीना का काम हो रहा था। इस विशाल भवन में दुग्ध-फेन के समान उज्ज्वल वर्ण का अति मुलायम और बहुमूल्य बिछावन बिछा था। थोड़े-थोड़े अन्तर से बहुत सी वेदियाँ पृथक्-पृथक् बनी थीं, जहाँ कोमल उपाधान, मद्य के स्वर्ण-पात्र और प्यालियाँ, जुआ खेलने के पासे, तथा अन्य विनोद-सामग्री, भिन्न-भिन्न प्रकार के ग्रन्थ, बहुमूल्य चित्र तथा अन्य बहुत सी मनोरञ्जन की सामग्री थी।

महा प्रतिहार अलिन्द तक अतिथि-युवकों को लाता, वहाँ से प्रधान परिचारिका उसे कक्ष तक ले आती। कक्ष-द्वार पर स्वयं अम्बपालिका साक्षात् रति के समान आगत जनों का हाथ पकड़ कर स्वागत करती, एक वेदी पर ले जाकर बैठाती, सुगन्ध और पुष्प-मालाओं से सत्कार करती तथा अपने हाथ से मद्य ढाल कर पिलाती थी। उस स्वर्ग-सदन में, उस रूप-यौवन और जीवन के आलोक में, अर्द्ध रात्रि तक नित्य ही माधुर्य और आनन्द का प्रवाह बहता था। सैकड़ों दासियाँ दौड़-धूप करके याचित वस्तु तत्काल जुटा देतीं। फिर कुछ ठहर कर सङ्गीत-लहरी उठती। कोमल तन्तु-वाद्य गम्भीर मृदङ्ग के साथ वैशाली के श्रेष्ठ पुत्रों, राजवर्गियों और कुमारों के हृदयों को मसोस डालता था। वाद्य की ताल पर मोम की पुतली के समान कुमारियाँ मधुर स्वर में स्वर-ताल और मूर्च्छनामय सङ्गीत गान करतीं, और नर्तकियाँ ठुमक कर नाचती थीं। उस स्वप्न-सौन्दर्य के दृश्य को युवक सुगन्धित मद्य के घूँट के साथ पीकर अपने जन्म को धन्य मानते थे।

अम्बपालिका अब २० वर्ष की पूर्ण युवती थी। उसका यौवन और सौन्दर्य मध्याकाश में था। और लिच्छविगण तन्त्र के राजा ही नहीं, मगध, कोशल और विदेश के महाराजा तक उसके लिए सदैव अभिलाषी बने रहते थे। इन सभी महा नृपतियों की ओर से रत्न, वस्त्र, हाथी आदि भेंट में आते रहते थे और अम्बपालिका अपनी कृपा और प्रेम के चिन्ह-स्वरूप कभी-कभी ताज़े फूलों की एकाध माला तथा कुछ गन्ध द्रव्य उन्हें प्रदान कर दिया करती थी।

विधाता ने मानो उसे स्वर्ण से बनाया था। उसका रङ्ग गोरा ही न था, उस पर सुनहरी प्रभा थी—जैसी चम्पे की अविकसित कली में होती है। उसके शरीर की लचक, अङ्गों की सुडौलता वर्णन से बाहर की बात थी। उस सौन्दर्य में विशेषता यह थी कि समय का अत्याचार भी उस सौन्दर्य को नष्ट न कर सकता था। जैसे मोती का पर्त उतार देने से भीतर से नई आभा, नया पानी दमकने लगता है, उसी प्रकार अम्बपालिका का शरीर प्रति वर्ष निखार पाता था। उसका क़द कुछ लम्बा, देह मांसल और कुच पीन थे। तिस पर उसकी कमर इतनी पतली थी कि उसे कटिबन्धन बाँधने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग चैतन्य थे, मानो प्रकृति ने उन्हें नृत्य करने और आनन्द भोग करने को बनाया था।

उसके नेत्रों में सूक्ष्म लालसा की झलक और दृष्टि में ग़ज़ब की मदिरा भर रही थी। उसका स्वभाव सतेज था। चितवन में दृढ़ता, निर्भीकता, विनोद और स्वेच्छाचारिता साफ़ झलकती थी। उसे देखते ही आमोद-प्रमोद की अभिलाषा प्रत्येक पुरुष के हृदय में उत्पन्न हो जाती थी।

जैसा कहा जा चुका है, उसकी रङ्गत पर एक सुनहरी झलक थी। गाल कोमल और गुलाबी थे। ओठ लाल और उत्फुल्ल थे। मानो कोई पका हुआ रसीला फल चमक रहा हो। उसके दाँत हीरे की तरह स्वच्छ, चमकदार और अनार की पंक्ति की तरह सुडौल, कुच पीन तथा अनीदार थे। नाक पतली, गर्दन हंस-जैसी, कन्धे सुडौल, बाहु मृणाल-जैसी थी। सिर के बाल काले, लम्बे

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और घुँघराले तथा रेशम से भी मुलायम थे। आँखें काली और कटीली, उँगलियाँ पतली और मुलायम थीं। उन पर उसके गुलाबी नाखूनों की बड़ी बहार थी। पैर छोटे और सुन्दर थे। जब वह ठसक के साथ उठ कर खड़ी हो जाती तो लोग उसे एकटक देखते रह जाते थे। उसकी भुजाओं और देह का पूर्व भाग सदा खुला रहता था।

६

वैशाली में बड़ी भारी बेचैनी फैल गई। अश्वारोही दल के दल नगर के तोरण से होकर नगर से बाहर निकल रहे थे। प्रतीहार लोग और किसी को न बाहर निकलने देते थे और न भीतर घुसने देते थे। तोरण के इधर-उधर बहुत से नागरिक सेना का यह अकस्मात् प्रस्थान देख रहे थे। एक पुरुष ने पूछा—'क्यों भाई, जानते हो यह सेना कहाँ जा रही है?' उसने कहा—'न, यह कोई नहीं जानता। अश्वारोही दल निकल गया। पीछे कई सेना-नायक धीरे-धीरे परामर्श करते चले गए।

× × ×

क्षण भर में सम्बाद फैल गया। मगध के प्रतापी सम्राट् शिशुनागवंशी विम्बसार ने वैशाली पर चढ़ाई की। गङ्गा के दक्षिण छोर पर दुर्जय मागध सेना दृष्टि के उस छोर से इस छोर तक फैली हुई थी। इस सेना में १० हज़ार हाथी, ५० हज़ार अश्वारोही और पाँच लाख पैदल थे।

वैशाली के लिच्छविगण तन्म का प्रताप भी साधारण न था। गङ्गा के उत्तर कोण पर देखते-देखते सैन्य समूह एकत्रित हो गया। लिच्छवियों के पास ८ हज़ार हाथी, १ लाख अश्वारोही और ६ लाख पैदल थे।

तीन दिन तक दोनों दल आमने-सामने डटे रहे। तीसरे दिन लिच्छवि लोगों ने देखा, उस पार डेरों की संख्या कम हो गई है। निपुण सैनिक सहस्रों घाट से पार आने की तैयारी कर रहे हैं, यह समझने में देर न लगी। दोपहर होते-होते मागध सेना गङ्गा पार करने लगी। लिच्छवि-सेना चुपचाप खड़ी रही। ज्योंही कुछ सेना ने भूमि पर पैर रक्खा त्योंही वैशाली की सेना जय-जयकार करते बढ़ चली, मानों सहस्र उल्कापात हुए हों। मेघ-सङ्घर्षण की तरह घोर गर्जना करके दोनों सेनाएँ भिड़ गईं। मागध सेना की गति रुक गई। बाण, बर्छे और तलवारों की प्रलय मच गई। उस दिन, दिन भर संग्राम रहा। सूर्यास्त देख, दोनों सेना पीछे को फिरीं।

× × ×

२ मास से नगर का घेरा जारी है। बीच-बीच में युद्ध हो जाता है। कोई पक्ष निर्बल नहीं होता। नगर की तीन दिशाएँ मागध-शिविर से घिरी हैं। बीच में जो सबसे बड़ा डेरा है, उसके ऊपर सोने का गरुड़ध्वज अस्त होते सूर्य की किरणों से अग्नि की तरह दमक रहा है। उसके आगे एक स्वर्ण-पीठ पर गौर वर्ण सम्राट् विराजमान हैं। निकट एक-दो विश्वासी पार्श्वद हैं। सम्राट् अति सुन्दर, बलिष्ठ और गम्भीर मूर्त्ति हैं। नेत्रों में तेज और स्नेह, दृष्टि में वीरत्व और औदार्य तथा प्रतिभा में अदम्य तेज प्रकट हो रहा है। सम्राट् आधे लेटे हुए कुछ मन्त्रणा कर रहे हैं। एक कर्णिक नीचे बैठा उनके आदेशानुसार लिखता जाता है। एक दण्डधर ने आगे बढ़कर पुकार कर कहा—महा नायक युवराज भट्टारक पादीय गोपालदेव तोरण पर उपस्थित हैं। सम्राट् ने चौंक कर उधर देखा और भीतर बुलाने का सङ्केत किया। साथ ही कर्णिक और मन्त्री को विदा किया।

गोपालदेव ने तलवार म्यान से खींच शीश से लगाई और फिर विनम्र निवेदन किया 'महाराजाधिराज की आज्ञानुसार सब व्यवस्था ठीक है। देवश्री पधारने का कष्ट करें।' सम्राट् के नेत्रों में उत्कुल्लता उत्पन्न हुई। वे उठ कर वस्त्र पहनने के लिए पट-मण्डप में घुस गए।

७

वैशाली के राजपथ जनशून्य थे, २ प्रहर रात्रि जा चुकी थी, युद्ध के आतङ्क ने नगर के उल्लास को मूर्च्छित कर दिया था। कहीं-कहीं प्रहरी खड़े उस अन्धकारमयी रात्रि में भयानक भूत-से प्रतीत होते थे। धीरे-धीरे दो मनुष्य-मूर्तियाँ अन्धकार को भेदन करती हुई वैशाली के गुप्त द्वार के निकट पहुँचीं। एक ने द्वार पर आघात किया, भीतर प्रश्न हुआ—सङ्केत?

मनुष्य-मूर्ति ने कहा—अभिनय!

हलकी चीत्कार करके द्वार खुल गया, दोनों मूर्तियाँ भीतर घुस कर राजपथ छोड़, अँधेरी गलियों में अट्टालिकाओं की परछाईं में छिपती-छिपती आगे बढ़ने लगीं। एक स्थान पर प्रहरी ने बाधा देकर पूछा—'कौन?' एक

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्यक्तिने कहा—'आगे बढ़ कर देखो।' प्रहरी निकट आया। हठात् दूसरे व्यक्ति ने उसका सिर धड़ से जुदा कर दिया। दोनों फिर आगे बढ़े। अम्बपालिका के द्वार पर अन्ततः उनकी यात्रा समाप्त हुई। द्वार पर एक प्रतीहार मानों उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। सङ्केत करते ही उसने द्वार खोल दिया और आगन्तुकगण को भीतर लेकर द्वार बन्द कर लिया।

आज इस विशाल राजमहल सदृश भवन में सन्नाटा था। न रङ्ग-बिरङ्गी रोशनी, न फ़व्वारे, न दास-दासी गणों की दौड़-धूप। दोनों व्यक्ति चुपचाप प्रतीहार के साथ जा रहे थे। सातवें अलिन्द को पार करने पर देखा, एक और काली मूर्ति एक खम्भे के सहारे खड़ी है। उसने आगे बढ़कर कहा—'इधर से पधारिए श्रीमान्!' प्रतिहार वहीं रुक गया। नवीन व्यक्ति स्त्री थी और वह सर्वाङ्ग काले वस्त्र से ढाँपे हुए थी। दोनों आगन्तुक कई प्राङ्गण और अलिन्द पार करते हुए कुछ सीढ़ियाँ उतर कर एक छोटे से द्वार पर पहुँचे जो चाँदी का था और जिस पर अतिशय मनोहर जाली का काम हो रहा था और उसी जाली में से छन-छन कर रङ्गीन प्रकाश बाहर पड़ रहा था।

द्वार खोलते ही देखा, एक बहुत बड़ा कक्ष भिन्न-भिन्न प्रकार की सुख-सामग्रियों से परिपूर्ण था। यद्यपि उतना बड़ा नहीं, जहाँ नागरिक जनों का प्रायः स्वागत होता था, परन्तु सजावट की दृष्टि से इस कक्ष के सम्मुख उसकी गणना नहीं हो सकती थी। यह समस्त भवन श्वेत और काले पत्थरों से बना था। और सर्वत्र ही सुनहरी पच्चीकारी का काम हो रहा था। उसमें बड़े-बड़े बिल्लौर के अठपहलू अमूल्य खम्भे लगे थे, जिनमें मनुष्य का हूबहू प्रतिबिम्ब सहस्रों की संख्याओं में दीखता था। बड़े-बड़े और भिन्न-भिन्न भावपूर्ण चित्र टँगे थे। सहस्र दीप-गुच्छों में सुगन्धित तेल जल रहा था। समस्त कक्ष भीनी सुगन्ध से महक रहा था। धरती पर एक महा मूल्यवान् रङ्गीन बिछावन था, जिस पर पैर पड़ते ही हाथ भर धँस जाता था। ठीक बीचोबीच एक विचित्र आकृति की सोलह-पहलू सोने की चौकी पड़ी थी, जिस पर मोर-पङ्ख के खम्भों पर मोतियों की झालर लगा एक चन्दोवा तन रहा था। और पीछे रङ्गीन रेशम के परदे लटक रहे थे, जिनमें ताज़े पुष्पों का शृङ्गार बड़ी सुघड़ाई से किया गया था। निकट ही एक छोटी सी रत्न-जटित तिपाई पर मद्य-पात्र और पन्ने का एक बड़ा सा पान-पात्र धरा हुआ था।

हठात् सामने का परदा उठा और उसमें से वह रूप-राशि प्रकट हुई, जिसके बिना अलिन्द शून्य हो रहा था। उसे देखते ही आगन्तुकगण में से एक तो धीरे-धीरे पीछे हट कर कक्ष से बाहर हो गया, दूसरा व्यक्ति स्तम्भित-सा खड़ा रहा। अम्बपालिका आगे बढ़ी। वह बहुत महीन श्वेत रेशम की पोशाक पहने हुए थी। वह इतनी बारीक थी कि उसके आर-पार साफ़ दीख पड़ता था। उसमें से छन कर उसके सुनहरे शरीर की रङ्गत अपूर्व छटा दिखा रही थी। पर यह रङ्ग कमर ही तक था। वह चोली या कोई दूसरा वस्त्र नहीं पहने थी। इसलिए उसकी कमर के ऊपर के सब अङ्ग-प्रत्यङ्ग साफ़ दीख पड़ते थे।

विधाता ने उसे किस क्षण में गढ़ा था! हमारी तो यह धारणा है कि कोई चित्रकार न तो वैसा चित्र ही अङ्कित कर सकता था और न कोई मूर्तिकार वैसी मूर्ति ही बना सकता था।

उस भुवन-मोहिनी की वह छटा आगन्तुक के हृदय को छेद कर पार होगई। गहरे काले रङ्ग के बाल उसके उज्ज्वल और स्निग्ध कन्धों पर लहरा रहे थे। स्फटिक के समान चिकने मस्तक पर मोतियों का गुथा हुआ आभूषण अपूर्व शोभा दिखा रहा था। उसकी काली और कटीली आँखें, तोते के समान नुकीली नाक, बिम्ब-फल जैसे अधर-ओष्ठ और अनार-दाने के समान उज्ज्वल दाँत, गोरा और गोल चिबुक बिना ही शृङ्गार के अनुराग और आनन्द बखेर रहा था। अब से ढाई हज़ार वर्ष पूर्व की वह वैशाली की वेश्या ऐसी ही थी।

मोती की कोर लगी हुई सुन्दर ओढ़नी पीछे की ओर लटक रही थी और इसलिए उसका उन्मत्त कर देने वाला मुख साफ़ देखा जा सकता था। वह अपनी पतली कमर में एक ढीला सा बहुमूल्य रङ्गीन शाल लपेटे हुए थी। हंस के समान उज्ज्वल गर्दन में अङ्गूर के बराबर मोतियों की माला लटक रही थी और गोरी-गोरी गोल कलाइयों में नीलम की पहुँची पड़ी हुई थी।

उस मकड़ी के जाले के समान बारीक उज्ज्वल परिधान के नीचे, सुनहरे तारों की बुनावट का एक अद्भुत बाँधरा था, जो उस प्रकाश में बिजली की तरह

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चमक रहा था। पैरों में छोटी-छोटी लाल रङ्ग की उपानत थीं, जो सुनहरी फ़ीते से कस रही थीं।

उस समय कक्ष में गुलाबी रङ्ग का प्रकाश हो रहा था। उस प्रकाश में अम्बपालिका का मानों परदा चीर कर इस रूप-रङ्ग में प्रकट होना आगन्तुक व्यक्ति को मूर्तिमती मदिरा का अवतरण-सा प्रतीत हुआ। वह अभी तक स्तब्ध खड़ा था। धीरे-धीरे अम्बपालिका आगे बढ़ी। उसके पीछे १६ दासियाँ एक ही रूप और रङ्ग की, मानों पाषाण-प्रतिमाएँ ही आगे बढ़ रही थीं।

अम्बपालिका धीरे-धीरे आगे बढ़ कर आगन्तुक के निकट आकर झुकी और फिर घुटने के बल बैठ, उसने कहा—'परमेश्वर, परम वैष्णव, परम भट्टारक! महाराजाधिराज की जय हो!' इसके बाद उसने सम्राट् के चरणों में प्रणाम करने को सिर झुका दिया। दासियाँ भी पृथ्वी पर झुक गईं।

आगन्तुक महा प्रतापी मगध-सम्राट् बिम्बसार थे। उन्होंने हाथ बढ़ा कर अम्बपालिका को ऊपर उठाया। अम्बपालिका ने निवेदन किया—'महाराजाधिराज पीठ पर विराजें। सम्राट् ने ऊपर का परिच्छद उतार फेंका, वे पीठ पर विराजमान हुए।

अम्बपालिका ने नीचे धरती में बैठ कर सम्राट का गन्ध, पुष्प आदि से सत्कार किया। इसके बाद उसने अपनी मद-भरी आँखें सम्राट् पर डाल कर कहा—महाराजाधिराज ने बड़ी अनुकम्पा की, बड़ा कष्ट किया।

सम्राट् ने किञ्चित् मोहक स्वर में कहा—अम्बपाली! यदि मैं यह कहूँ कि केवल विनोद के लिए आया हूँ, तो यह यथार्थ बात नहीं—मैं तुम्हारे रूप-गुण की प्रशंसा सुन कर स्थिर नहीं रह सका, और इस कठिन युद्ध में व्यस्त रहने पर भी तुम्हें देखने के लिए शत्रुपुरी में घुस आया, परन्तु तुम्हारा प्रबन्ध धन्य है।

अम्बपालिका—(लज्जित-सी होकर तथा ज़रा मुस्करा कर) मैं पहले ही सुन चुकी हूँ कि देव स्त्रियों की चाटुकारी में बड़े प्रवीण हैं।

सम्राट्—चाटुकारी नहीं, अम्बपालिके! तुम वास्तव में रूप और गुण में अद्वितीय हो।

अम्बपालिका—श्रीमान्, मैं कृतार्थ हुई! इसके बाद वह अपने मुक्ता-विनिन्दित दाँतों की छटा दिखाते हुए सम्राट् की सेवा में खड़ी हुई। सम्राट् ने प्याला ले और उसे खींच कर बग़ल में बैठा लिया। सङ्केत पाते ही दासियों ने क्षण-भर में गायन वाद्य का सरञ्जाम जुटा दिया। कक्ष सङ्गीत-लहरी में डूब गया और उस गम्भीर निस्तब्ध रात्रि में मगध के प्रतापी सम्राट् उस एक वेश्या पर अपने साम्राज्य को भूल बैठे!

८

एक वर्ष बीत गया। प्रतापी लिच्छवि-राज मगध-साम्राज्य के आगे नत-मस्तक करने को बाध्य हुए। अब वैशाली में वह उमङ्ग न थी। अम्बपालिका का द्वार सदैव बन्द रहता था। द्वार पर कड़ा पहरा था। कोई व्यक्ति न उसे देख सकता था, न उससे मिल सकता था। उसके बहुत से युवक मित्र उस युद्ध में निहत हुए थे। पर जो बच रहे थे वे अम्बपाली के इस परिवर्त्तन पर आश्चर्यान्वित थे। वे किसी भी तरह उसका साक्षात् न कर सकते थे। दूर-दूर तक यह बात फैल गई थी।

अम्बपालिका के सहस्रावधि वेतन-भोगी दास-दासी, सैनिक और अनुचरों में से भी केवल दो व्यक्ति थे, जो अम्बपाली को देख सकते और उससे बात कर सकते थे। एक प्रधान परिचारिक यूथिका, दूसरा एक वृद्ध दण्डधर, जिसे भीतर-बाहर सर्वत्र आने की स्वतन्त्रता थी। सम्राट् का आगमन केवल इन्हीं दोनों को मालूम था और ये दोनों ही यह रहस्य भी जानते थे कि अम्बपालिका को सम्राट् से गर्भ है।

यथासमय पुत्र प्रसव हुआ। यह रहस्य भी केवल इन्हीं दो व्यक्तियों पर ही प्रकट हुआ। और वह पुत्र उसी दण्डधर ने गुप्त-रूप से राजधानी में जाकर मगध-सम्राट् की गोद में डाल कर, अम्बपालिका का अनुरोध सुना कर कहा—महाराजाधिराज की सेवा में मेरी स्वामिनी ने निवेदन किया है कि उनकी तुच्छ भेंट-स्वरूप मगध के भावी सम्राट् आपके चरणों में समर्पित हैं। सम्राट् ने शिशु को सिंहासन पर डाल कर वृद्ध दण्डधर से उत्फुल्ल नयन से कहा—'मगध के भावी सम्राट् को झटपट अभिवादन करो।' दण्डधर ने कोश से तलवार निकाल, मस्तक पर लगाई और तीन बार जयघोष करके तलवार शिशु के चरणों में रख दी। सम्राट् ने तलवार उठा कर वृद्ध की कमर में बाँधते-बाँधते कहा—अपनी स्वामिनी को मेरी यह तुच्छ-भेंट देना। यह कह कर उन्होंने एक

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वस्तु वृद्ध के हाथ में चुपचाप दे दी। वह वस्तु क्या थी, यह ज्ञात होने का कोई उपाय नहीं।

६

भगवत् बुद्ध वैशाली में पधारे हैं और अम्बपालिका की बाड़ी में ठहरे हैं। आज हठात् अम्बपालिका के महल में हलचल मच रही है। सभी दास-दासी, प्रतिहार, द्वारपाल दौड़-धूप कर रहे हैं। हाथी, घोड़े, पालकी, रथ सज रहे हैं। सवार शस्त्र-सज्जित हो रहे हैं! अम्बपालिका भगवान् बुद्ध के दर्शनार्थ बाड़ी में जा रही है। एक वर्ष बाद आज वह फिर सर्व-साधारण के सम्मुख निकल रही है। समस्त वैशाली में यह समाचार फैल गया है। लोग झुण्ड के झुण्ड उसे देखने राजमार्ग पर डट गए हैं। अम्बपालिका एक श्वेत हाथी पर सवार होकर धीरे-धीरे आगे बढ़ रही है। दासियों का पैदल झुण्ड उसके पीछे है, उसके पीछे अश्वारोही दल है और उसके बाद हाथियों पर भगवान् की पूजा-सामग्री। सबके पीछे बहुत से वाहन, कर्मचारी और पौरगण।

अम्बपालिका एक साधारण पीत-वर्ण परिधान धारण किए अधोमुख बैठी है। एक भी आभूषण उसके शरीर पर नहीं है। बाड़ी से कुछ दूर ही उसने सवारी रोकने की आज्ञा दी। वह पैदल भगवान् के निवास तक पहुँची, पीछे १०० दासियों के हाथ में पूजन-सामग्री थी।

तथागत बुद्ध की अवस्था ८० को पार कर गई थी। एक गौर-वर्ण, दीर्घकाय, श्वेत-केश, कृश, किन्तु बलिष्ठ महापुरुष पद्मासन से शान्त मुद्रा में एक सघन वृक्ष की छाया में बैठे थे। सहस्रावधि शिष्यगण दूर तक मुण्डित शिर और पीत वस्त्र धारण किए स्तब्ध से श्री-मुख के प्रत्येक शब्द को हृत्पटल पर लिख रहे थे। आनन्द नामक शिष्य ने निवेदन किया—'प्रभु! अम्बपालिका दर्शनार्थ आई है। तथागत ने किञ्चित हास्य से अपने करुण नेत्र ऊपर उठाए। अम्बपालिका धरती में लोट कर कहने लगी—'प्रभो! त्राहिमाम्! त्राहिमाम्!'

भगवत् ने कहा—'कल्याण! कल्याण!' आनन्द ने कहा—उठो अम्बपाली! महाप्रभु प्रसन्न हैं। अम्बपाली ने यथाविधि भगवत् का अर्घ्यदान, पाद्य मधुपर्क से पूजन किया और चरण-रज नेत्रों में लगाई, फिर हाथ बाँध सम्मुख खड़ी हो गई।

भगवत् ने हँस कर कहा—अब और क्या चाहिए अम्बपाली?

प्रभो! भगवन्! इस अपदार्थ का आतिथ्य स्वीकार हो, इन चरण-कमलों की देवदुर्लभ रज-कण किङ्करी की कुटिया को प्रदान हो।

प्रभु ने करुण स्वर में कहा—तथास्तु! भिक्षुगण सहस्र कण्ठ से जयोल्लास में चिल्ला उठे। परन्तु यह क्या? उस नाद को विदीर्ण करता हुआ एक और नाद उठा। भगवत् ने पूछा—आनन्द! यह क्या है? "प्रभो! लिच्छविराजवर्ग और आमात्यवर्ग श्रीपाद-पद्म के दर्शनार्थ आ रहा है। प्रभु हँस पड़े। अम्बपालिका हट गई। प्रतापी लिच्छवि राजागण, राजकुमार, आमात्यवर्ग और अन्तःपुर ने एक साथ ही भगवत् के चरणों में महान् मस्तक झुका दिए। भगवत् ने कहा—'कल्याण! कल्याण!!'

महाराज ने पद-धूलि मुकुट पर लगा कर कहा—महाप्रभु! यह तुच्छ राजधानी इन चरणों के पधारने से कृतकृत्य हुई। परन्तु प्रभो! यह वेश्या की बाड़ी है, श्री-चरणों के योग्य नहीं। प्रभु के लिए राजप्रासाद प्रस्तुत है और राजवंश प्रभु-पद-सेवा को बहुत उत्सुक है। भगवत् ने हँस कर कहा—'तथागत के लिए वेश्या और राजा में क्या अन्तर है? तथागत समदृष्टि है।'

'प्रभो! तब कल का आतिथ्य राज-परिवार को प्रदान कर कृतार्थ करें।'

'वह तो मैं अम्बपाली का स्वीकार कर चुका!'

राजा निरुत्तर हुए। वे फिर प्रणाम कर लौटे। कुछ श्वेत वस्त्र धारण किए थे, कुछ लाल और कुछ आभूषण पहने थे।

अम्बपालिका रथ में बैठ कर लौटी। उसने आज्ञा दी, मेरा रथ लिच्छवि महाराजों के बराबर हाँको। उनके पहिए के बराबर मेरा पहिया और उनके धुरे के बराबर मेरा धुरा रहे, तथा उनके घोड़े के बराबर मेरा घोड़ा।

लिच्छवियों ने देख कर क्रोध-मिश्रित आश्चर्य से पूछा—अम्बपालिके, यह क्या बात है? तू हम लोगों के बराबर अपना रथ हाँक रही है?

उसने उत्तर दिया—मेरे प्रभु! मैंने तथागत और उनके शिष्य वर्ग को भोजन का निमन्त्रण दिया है और वह उन्होंने स्वीकार किया है।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्होंने कहा—हे अम्बपाली ! हमसे एक लाख स्वर्ण-मुद्रा ले और यह भोजन हमें कराने दे।

'मेरे प्रभु, यह सम्भव ही नहीं है !'

'तब १०० ग्राम ले और यह निमन्त्रण हमें बेच दे'

'नहीं स्वामी ! कदापि नहीं।'

'आधा राज्य ले और यह निमन्त्रण हमें दे दे'

'मेरे प्रभु ! आप एक तुच्छ भूखण्ड के स्वामी हैं, पर यदि समस्त भूमण्डल के चक्रवर्ती भी होते और अपना समस्त साम्राज्य मुझे देते, तो भी मैं ऐसी कीर्ति की जेवनार को नहीं बेच सकती थी।

लिच्छवि राजाओं ने तब अपना हाथ पटक कर कहा—हाय ! अम्बपालिका ने हमें पराजित कर दिया, अम्बपालिका हमसे बढ़ गई। अम्बपालिके ! तब तुम स्वच्छन्दता से हमसे आगे रथ हाँको। अम्बपालिका ने रथ बढ़ाया। गर्द का एक तूफ़ान पीछे रह गया।

१०

दस सहस्र भिक्षुओं के साथ भगवान् बुद्ध ने अम्बपाली के प्रासाद को आलोकित किया। वैशाली के राजमार्ग में नगर के प्राण आ जूझे थे। महापुरुष बुद्ध और उनके वीतरागी भिक्षु भूमि पर दृष्टि दिए पैदल धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। नगर के श्रेष्ठिगण दूकानों से उठ-उठ कर मार्ग की भूमि को भगवान् के चरण रखने से पूर्व अपने उत्तरीय से झाड़ रहे थे। कोई नागरिक भीड़ से निकल कर पथ पर अपने बहुमूल्य शाल बिछा रहे थे। महाप्रभु बिना कुछ कहे एकरस धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। वह महान् संन्यासी, प्रबल वीतरागी महाप्राण वृद्ध-पुरुष श्रेष्ठ जय-जयकार की प्रचण्ड घोषणा से ज़रा भी विचलित नहीं हो रहा था। उसकी दृष्टि मानों पृथ्वी में पाताल तक घुस गई थी। पौर स्त्रियाँ झरोखों से खील और पुष्प-वर्षा कर रही थीं। अम्बपालिका का तोरण आते ही चार दण्डधरों ने दौड़ कर पथ पर कौशेय बिछा दिया। द्वार में प्रवेश करने पर सर्वत्र कौशेय बिछा था। अनगिनत कर्मचारी भिक्षुगण के साम्मानार्थ दौड़ पड़े। पीतवसनधारी मुण्डित भिक्षु नक्षत्रों की तरह उस विशाल प्राङ्गण में, महा जन-समूह में चमक रहे थे।

अतिथि-शाला में भगवत् के पहुँचते ही अम्बपालिका ने २०० दासियों के साथ स्वयं आकर तथागत के चरणों में सिर झुकाया और वहाँ से वह अपने अञ्चल से पथ की धूल झाड़ती हुई प्रभु को भीतरी अलिन्द तक ले गई। इस समय प्रभु के साथ केवल आनन्द चल रहे थे।

प्राङ्गण के मध्य में एक चन्दन की चौकी पर शुद्ध आसन बिछा था। अम्बपाली के अनुरोध पर प्रभु वहाँ विराजमान हुए। अम्बपाली ने अर्घ्य-पाद्य दान करके भोजन प्रस्तुत करने की आज्ञा माँगी। आज्ञा मिलते ही अम्बपाली स्वयं स्वर्ण-थाल में भोजन ले आई। अनेक प्रकार के चावल और रोटियाँ थीं। अम्बपाली सेवा में करबद्ध खड़ी रही। भगवान् ने मौन होकर भोजन किया और तृप्त होकर कहा—बस।

अम्बपाली के नेत्रों से अश्रुधारा बही। प्रभु ज्योंही शुद्ध होकर आसन पर विराजे, अम्बपाली ने पृथ्वी में गिर कर प्रणाम किया।

भगवत् ने कहा—अम्बपाली, अब और तेरी क्या इच्छा है ?

'प्रभु एक तुच्छ भिक्षा प्रदान हो ?'

तथागत ने गम्भीर होकर कहा—'वह क्या है ?'

'प्रभो ! आज्ञा कीजिए, कोई भिक्षु अपना उत्तरीय प्रदान करे।' आनन्द ने उत्तरीय उतार कर अम्बपाली को दे दिया। क्षण भर के लिए अम्बपाली भीतर गई। परन्तु दूसरे ही क्षण वह उसी वस्त्र से अङ्ग लपेटे आ रही थी। उस बौद्ध भिक्षु के प्रदान किए एकमात्र वस्त्र को छोड़ कर उसके पास न कोई और वस्त्र था न आभरण। उसके नेत्रों में अविरल अश्रुधारा बह रही थी। भगवत् विमूढ़ उसका व्यापार देख रहे थे। वह आकर भगवत् के सम्मुख फिर लोट गई।

भगवत् ने शुभ हस्त से उसे स्पर्श करके कहा—उठो, उठो ! हे कल्याणी ! तुम्हारी इच्छा क्या है ?

'महाप्रभु ! अपवित्र दासी की धृष्टता क्षमा हो, यह महा नारी-शरीर कलङ्कित करके मैं जीवित रहने पर बाधित की गई, शुभ सङ्कल्प से मैं वञ्चित रही; प्रभो, यह समस्त सम्पदा कलुषित तपश्चर्या का सञ्चय है। मैं कितनी व्याकुल, कितनी कुण्ठित, कितनी शून्य-हृदया रह कर अब तक जीवित रही हूँ, यह कैसे कहूँ। मेरे जीवन में दो ज्वलन्त दिन आए। प्रथम दिन के फल-स्वरूप मैं आज मगध के भावी सम्राट् की राजमाता हूँ, परन्तु भगवन् ! आज के महान् पुण्य-योग के फल-स्वरूप अब मैं इससे भी उच्च पद प्राप्त करने की धृष्ट अभिलाषा

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करती हूँ। महाप्रभु प्रसन्न हों। जब भगवत् की चरण-रज से यह घर पवित्र हुआ, तब यहाँ विलाप और पाप कैसा? उसकी सामग्री ही क्यों, उसकी स्मृति ही क्यों?

इसलिए भगवत् के चरण-कमलों में यह सारी सम्पदा, महल, अटारी, धन, कोष, हाथी, घोड़े, प्यादे, रथ, वस्त्र, भण्डार आदि सब समर्पित है। प्रभु ने भिक्षु का उत्तरीय मुझे भिक्षा दिया है, मेरे शरीर की लज्जा निवारण को यह बहुत है स्वामिन! आज से अम्बपाली भिक्षुणी हुई। अब यह इस भिक्षा में प्राप्त पवित्र वस्त्र को प्राण देकर भी सम्मानित करेगी। हे प्रभु! आज्ञा हो।

इतना कहकर अविरल अश्रुधारा से भगवत्-चरणों को धोती हुई, अम्बपालिका बुद्ध की चरण-रज नेत्रों से लगा कर उठी, और धीरे-धीरे महल से बाहर चली। महा वीतराग बुद्ध के नेत्र आप्यायित हुए। उन्होंने 'तथास्तु' कहा और खड़े होकर उसका सिर स्पर्श करके कहा—कल्याण! कल्याण!! सहस्र-सहस्र कण्ठ से 'जय अम्बपालिके, जय अम्बपालिके' का गगन-भेदी नाद उठा। सहस्रों नर-नारी पीछे चले। अम्बपाली उस पीत परिधान को धारण किए, नीचा सिर किए, पैदल उसी राजमार्ग से भूमि पर दृष्टि दिए धीरे-धीरे नगर से बाहर जा रही थी और उसके पीछे समस्त नगर उमड़ा जा रहा था। खिड़कियों से पौर वधुएँ पुष्प और खील-वर्षा कर रही थीं।

भगवत् ने कहा—हे आनन्द, यह स्थान बौद्ध भिक्षुओं का प्रथम विहार होगा। बौद्ध भिक्षु यहाँ रह कर सन्मार्ग का अन्वेषण करेंगे—यही तथागत की इच्छा है।

आनन्द ने शिर झुकाया। भिक्षु-मण्डल जय-नाद कर उठा। बुद्ध भगवान् धीरे-धीरे उठ कर नगर के राज-मार्ग से होते हुए अम्बपालिका की वाड़ी में आकर अपने आसन पर विराजमान हुए। कुछ दूर एक वृक्ष की जड़ में अम्बपाली स्थिर बैठी थी। भगवान् को स्थित देख वह उठी और धीर भाव से प्रभु के सम्मुख आकर खड़ी हुई। भगवत् ने उसकी ओर देखा। अम्बपाली ने विनयावनत होकर कहा—

"बुद्धं सरणं गच्छामि"
"धर्मं सरणं गच्छामि"
"संघं सरणं गच्छामि"

तथागत स्थिर हुए। उन्होंने तत्काल पवित्र जल उसके मस्तक पर सिञ्चन किया और पवित्र वाक्यों का उपदेश देकर कहा—भिक्षुओ! महा साध्वी अम्बपाली भिक्षुणी का स्वागत करो।

फिर जयनाद से दिशाएँ गूँज उठीं और अम्बपाली तथागत तथा अन्य वृद्ध भिक्षुगण को प्रणाम कर वहाँ से चल दी और फिर वैशाली के पुरुष उसे न देख सके!!

शृङ्गार का अन्त

[रचयिता—श्री० 'कुमार', बी० ए०]

(१)

मेरी आँखों के निद्रा-पल,
किसने छल से छीने?
किसने लूट लिए मेरे वे,
स्वप्न-पुष्प रस-भीने?

(२)

जाग उठी, देखा आँखों में,
हाय! जल रही लाली।
अरुण ओष्ठ-सी पूर्व-दिशा थी,
पीती मद की प्याली॥

(३)

मुरझा जावें फूल—फूल की—
सूखी छवि से चाह बने!
ओस जले—उसके जलने से,
मेरी आतुर आह बने!!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महाकवि शैली और भारतवर्ष

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट—
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

[ले० श्री० 'गुप्त' बी० ए०]

ली अङ्गरेज़ी साहित्य के उन कवियों में से हैं, जिन पर अङ्गरेज़ी भाषा को बड़ा गर्व है। अङ्गरेज़ी साहित्य के इतिहास के लेखक एवं सुप्रसिद्ध समालोचक डॉ० सेण्ट्सबरी (Dr. Saintsbury) का मत है कि शैली की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। सेण्ट्-सबरी-जैसे विद्वान् द्वारा शैली को यह प्रमाण-पत्र मिलना, उसकी उच्चतम कवित्व शक्ति का द्योतक है।

आज हम अपने पाठक और पाठिकाओं के सम्मुख उन भावों का वर्णन करने का साहस करते हैं, जो इस महाकवि के हृदय में हमारे देश के प्रति अङ्कित हुए थे। शैली ने भारतवर्ष को कभी अपनी आँखों से नहीं देखा था। इस देश के लिए उसने जो कुछ भी लिखा है, उसका अवलम्ब उसका अपना हृदय ही है। सम्भव है, यात्रियों के विवरण से उसे कुछ सहायता मिली हो, परन्तु उसके काव्य में भारत का वही चित्र अङ्कित है, जो उसने अपने कल्पना के नेत्रों द्वारा देखा था।

यद्यपि शैली ने भारतवर्ष के ऊपर कोई विशेष कविता नहीं लिखी है, परन्तु उसकी बिखरी हुई पंक्तियों को एकत्रित करने पर हमें उसके उन विचारों का पूर्ण-तया परिचय मिल जाता है, जो उसके हृदय-मन्दिर में इस देश और यहाँ के निवासियों के प्रति सन्निहित थे। शैली के काव्य में चित्रित भारतवर्ष, राजनीतिक भारत-वर्ष (Political India) नहीं है, वरन् सुन्दर एवं मनोहर पहाड़ों तथा झरनों से अलंकृत भारतवर्ष है। उसकी कविता में अङ्कित वह देश है, जो देव और देवियों की मातृभूमि है; धर्म का प्रार्थना-मन्दिर है, प्राकृतिक सौन्दर्य का निवास-स्थान है और अनिर्वचनीय रहस्यों की क्रीड़ाभूमि है। उद्विग्न-प्रेमी शैली ने अपने देश के किसी स्थान में बैठ कर हमारे देश की केवल इन्हीं बातों की कल्पना की थी; इनसे ही उसका मस्तिष्क प्रभावान्वित हुआ था और इसी का वर्णन हमें उसके काव्य में उप-लब्ध होता है। शैली की प्रत्येक पंक्ति से भारत के प्रति उसकी आदर्श भक्ति का सन्देश निकलता है।

उस महाकवि द्वारा लिखित यहाँ के दृश्यों का वर्णन पढ़ कर कौन सा ऐसा पाठक होगा, जो उसे अपनी स्मृति से विस्मरण कर डाले। शैली की कविता-शैली बड़ी ही मनोहर और हृदयग्राही है। अपने समाज की रूढ़ियों को तोड़ कर वह प्रेम-साम्राज्य की स्थापना करना चाहता था, परन्तु उसके देशवासी तो क्या, स्वयं उसके सम्बन्धी उससे इस कारण असन्तुष्ट हो गए थे। समाज के अत्या-चारों से पीड़ित होकर उसे अपनी मातृ-भूमि को अन्तिम नमस्कार करना पड़ा था। अपने निर्मम देशवासियों द्वारा निर्वासित होकर उसने निर्वासितों के स्वर्ग इटली प्रदेश (Paradise of the Exiles of Italy) की शरण ली थी। अल्पस (Alps) पहाड़ पर निवास करते हुए, उस पर पड़ी हुई अतुल हिम-राशि को देखकर ही कदा-चित उसे हिम-आसन्न हिमालय एवं काश्मीर प्रदेशीय पहाड़ी घाटियों का ध्यान आया था। काश्मीर के सुन्दर एवं मनोरम स्थानों में ही उसे सबसे प्रथम शान्ति का आलोक दिखाई दिया था। 'चाँद' के पाठक और पाठिकाओं के मनोविनोदार्थ शैली की भारत-विषयक कुछ पंक्तियाँ यहाँ दी जाती हैं :—

अपनी एक कविता में जिसकी आरम्भिक पंक्ति है "मैं राजा नहीं हूँगा" (I would not be a king) वह भाग्य की अस्थिरता के विषय में अपने भाव प्रकट करता है। एक स्थान पर वह कह उठता है :—

" Would be and I were far away,
Keeping flocks on Himalay."

अर्थात्—"अच्छा होता यदि वह और मैं दूर हिमा-लय पर भेड़ों को चराते होते !"

अपने एक अपूर्ण नाटक में, जिसका प्रथम दृश्य (Indian Archipelago) के एक द्वीप पर आरम्भ होता है, वह एक टोना करने वाली स्त्री (Enchantress) का

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वर्णन करता है। यह स्त्री भारतीय सामुद्रिक चोर (Indian Pirate) के प्रेम-पाश में फँस जाती है और एक नवयुवक को साथ लेकर पति-भक्ता की नाईं इधर-उधर अपने पति को ढूँढ़ती फिरती है। इस नवयुवक को देखकर एक पात्र पूछता है :—

"Fairest Stranger, when didst thou depart,
From the far hills where rose the springs India."

अर्थात्—"ऐ सुन्दर युवक! उन दूरवर्त्ती पहाड़ियों से, जो भारतवर्ष के झरनों का उद्गम हैं, तुम किस समय चले थे?"

पाठिकाएँ देखें, इस प्रश्न-कर्त्ता की उत्सुकता कितनी है और इससे उसकी भक्ति का श्रोत कितने वेग से बहता हुआ दृष्टिगोचर होता है।

शैली ने भारतवर्ष के झरनों और पहाड़ों की अपेक्षा, यहाँ के फूलों के विषय में अधिक लिखा है। कई स्थानों पर इन फूलों से उपमाओं और दृष्टान्तों का भी काम लिया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि—चम्पक (Jasmine)—(Juhe rose) ने अन्य पदार्थों की अपेक्षा उसकी कल्पना-शक्ति को विशेषतया आकर्षित किया था। "भारत की वायु के ऊपर कुछ पंक्तियाँ" (Lines to an Indian air) शीर्षक कविता में वह एक स्थान पर लिखता है :—

"The wandering airs they faint,
On the dark, the silent stream—
The Champak odours fail,
Like sweet thoughts in a dream."

अर्थात्—"चलती हुई वायु गहरी, नीरव नदी के कूल के ऊपर मूर्च्छित हो जाती है और चम्पक की सुगन्ध स्वप्न के मधुर विचारों की नाईं विलीन हो जाती है।"

किसी अन्य स्थान पर स्त्री की कोमलता की प्रशंसा करता हुआ वह लिखता है कि उसके रूप को देखकर—और मधुर-सुगन्ध ही के लिए विकसित होने वाले—मूर्च्छित हो जाते हैं।

"The Jassamine faint, and the sweet Juhe-rose
The sweetest flower for scent that blows."

उसी कविता के अन्तिम भाग में शैली ने लिखा है कि—

"भारतवर्ष के वे सुगन्धित, रँगीले और मधुर विरवे, ओस के कणों ने जिनका भरण-पोषण किया था, दिन-प्रति दिन पत्ता-पत्ता होकर धूल में विलीन होगए।"

"And Indian plants of scent and hue,
The sweetest that ever were fed on dew
Leaf by leaf, day after day
Were massed into the common clay."

हमारे देश की सरलता और आत्म-त्याग ने भी शैली के हृदय पर अच्छा प्रभाव डाला था। उसका उदाहरण हमें उसके Hellas नामक गीत-नाट्य में मिलता है। एक भारत-निवासिनी अभागिनी दासी सुल्तान महमूद के पलङ्ग के पास बैठी हुई है और अपने स्वामी को सुलाने के निमित्त एक गीत गा रही है। वह कहती है :—

"I breathe my soul on thee!
And could my prayers avail,
All my loys should be,
Dead, and I would live to weep
So than mightst win one hour of quiet sleep."

अभिप्राय यह है कि मैं अपना जीवन तुम्हारे ऊपर न्योछावर करती हूँ और यदि मेरी प्रार्थना स्वीकार हो जावे, तो चाहे मेरा सुख और आनन्द नष्ट हो जावे और मुझे केवल रोने के लिए जीवित रहना पड़े, परन्तु मेरी अभिलाषा यही होगी कि किसी प्रकार तुम कम से कम घड़ी भर सुख की नींद सो सको। पाठिकाएँ देखें, इन शब्दों में कितना आत्म-त्याग है, परन्तु भारतीयों के लिए यह कोई आश्चर्यजनक नहीं। नहीं कह सकते जब एक दासी की आत्म-त्याग-कथा पढ़कर वह इस पर इतना मोहित हो गया था, तो भारत में आकर और यहाँ की आदर्श देवियों को अपनी आँखों से देखकर उसका हृदय भारत के प्रति कितनी सहानुभूति प्रकट करता। यही नहीं, एक और स्थान पर प्रेम-पीड़िता रोज़ेलिन (Resolind) अपने पति के वियोग में भारत की सती से अपने प्रेम की तुलना करती हुई कहती है :—

"The Indian on the pyre
Of her dead husband, half consumed
As well might there he false as I."

शैली आजीवन आत्म-ज्ञान का प्यासा रहा। उसने

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भारतवर्ष के विषय में जो कुछ सुना अथवा पढ़ा था, उसी से इस देश के प्रति उसकी इतनी श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी। धर्म के विषय में उसके विचार वेदान्त से बहुत कुछ मिलते हैं और यदि हम यह कहें कि भारत ही उसके आत्म-ज्ञान का शान्ति-मन्दिर है तो कदाचित् उसमें कुछ अनुचित न होगा। शैली के दार्शनिक विचारों के विषय में हम फिर कभी लिखेंगे। इस समय अपनी दूसरी बात की पुष्टि का प्रमाण देकर इस लेख को समाप्त करते हैं।

शैली ने एक कविता लिखी है, जिसका नाम एलेस्टर (Alastor) है। यह एक अत्योक्ति (Allegory) है। इसमें एक शीलवान् तथा नवयुवक का चित्र अङ्कित किया गया है। (यह युवक वास्तव में शैली के अतिरिक्त कोई और नहीं है) यह युवक आत्म-ज्ञान का इच्छुक है और उस ज्ञान की प्राप्ति के लिए वह इधर-उधर घूमता फिरता है। उसकी उत्कट अभिलाषा ऐसे व्यक्ति से वार्त्तालाप करने की है, जो उसी के समान हो (He has 'a thirst for intercourse with an intelligence similar to itself.' "The prototype of his conception.") निराश घूमता-घूमता वह उस स्थान पर पहुँच जाता है, जहाँ से सिन्धु तथा अन्य नदियाँ निकलती हैं। आनन्दपूर्वक वह इस मार्ग पर चलता चला जाता है, यहाँ तक कि वह काशमीर की घाटियों में एक निर्जन एकान्त स्थान में, जहाँ नाना भाँति के सुगन्धित फूल खिले हुए हैं, आ पहुँचता है।

"O'er the Arial mountains which pour down
Indus and Oxus frow their icy canes
In Joy and exultation held his way,
I'ill in the Vale of Cashmir, far within
Its loveliest dell, where odours plants entwine
. . . . . ."

यहाँ चट्टानों के नीचे एक निकुञ्ज में बहती हुई नदी के कूल पर विश्राम लेने के लिए लेट जाता है।

"Beneath the hollow rocks a natural bower
Beside a Sparkling riverlet stretched
His languid limbs."

इसी स्थान पर, इसी भारत-भूमि में उस श्रान्त पथिक को आशा का आलोक दिखाई पड़ता है। युवक उस सुख-स्वप्न में एक सुन्दरी का दर्शन करता है। स्त्री अपने मुख पर परदा डाले हुए है। उस सुन्दरी का शब्द ध्यानावस्थित विचार-मग्न श्रान्त युवक की आत्मा से निकले हुए शब्द से बिलकुल मिल जाता है।

"Her Voice was like the Voice of his own soul
Heard in the calm of thought."

"ज्ञान, सत्यता और शील, यही उस सुन्दरी के गीत की तानें हैं। दैविक स्वतन्त्रता की आशाएँ ही उसके प्रिय विचार हैं। वह स्वयं एक कवि है।

"Knowledge, and truth and vertue were her theme
And lofty hopes of divine liberty
Thoughts the most dear to him and poesy
Herself a poet."

कहने का तात्पर्य यह है कि उस युवक को एक ऐसी ही युवती मिलती है, जो युवक के आदर्श के अनुसार है (The prototype of his conception) और उसको यह सफलता केवल भारतवर्ष ही में प्राप्त होती है। हम पहले ही कह चुके हैं कि Alastor एक अत्योक्ति है, अतएव भारत के प्रति शैली का भाव क्या था, इसका विचार विचारशील पाठक इस कविता से स्वयं कर लें।

आवश्यकता

हमें 'चाँद' के सम्पादकीय विभाग के लिए दो सहायकों, अङ्गरेज़ी-हिन्दी रीडरों और एक तेज़ Steno Typist की आवश्यकता है, प्रार्थियों का योग्य और अनुभवी होना हर हालत में ज़रूरी है। वेतन योग्यतानुसार।

मैनेजर, 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक तारा के प्रति

[रचयिता—श्री० प्रबोधचन्द्र जी]

(१)

नील नभ के सुन्दर शृङ्गार,
रजनि-लतिका के कोमल फूल।
उषा-रमणी के तिलक अनूप,
चमकते ऐ तारे, सुख-मूल॥

(२)

दिवस का हो जाता जब अन्त,
प्रकृति करने जाती विश्राम।
जगत-रव पड़ जाता है मन्द,
लोग जब आते निज-निज धाम॥

(३)

क्षितिज के अञ्चल पर सानन्द,
खेलता जब तम और प्रकाश।
पहुँच जाते नभ में चुपचाप,
बनाते उसे निशा-आवास॥

(४)

घना हो जाता तम सब ओर,
दीखती कहीं न कोई चीज़।
जला करती है कैसी आग,
तुम्हारे हृदय-देश के बीच॥

(५)

कहो तो, किस नेही का नेह,
जलाता तुमको सारी रात।
दीखते किस दुख से हो दुखित,
बताते ज़रा न अपनी बात।

(६)

धरातल पर नित आँखें डाल,
खोजते हो किसको सुकुमार
रत्न वह कोई है अनमोल?
किसी प्रेमी का खोया प्यार?

(७)

निरन्तर हुआ करेगी खोज,
नहीं है क्या इसका अवसान?
प्रतीक्षा का कब होगा अन्त,
कहो, कब टूटेगा यह ध्यान?

(८)

सखे! रख दो अन्तर को खोल,
नहीं कुछ है लज्जा का काम।
तुम्हारा-सा मेरा भी हाल,
न मिलता कहीं तनिक विश्राम!!

(९)

हृदय में जलती रहती आग,
जगत में छाया है तम घोर।
न मेरा है कोई अवलम्ब,
दीखता कहीं न दुख का छोर।

(१०)

घोर इस कोलाहल के बीच,
हो रहा सूनेपन का भान;
कहाँ है उस प्रकाश का मार्ग,
आह! मेरा कुण्ठित है ज्ञान!

(११)

दीखता कोई अभिनव रूप—
और हट जाता तम का राज।
मिलन को देता बाहु पसार,
नहीं आता पर कुछ भी हाथ!!

(१२)

सखे! इतना ही है सन्तोष,
'मुझी सा तुम हो दुख से चूर।'
सुनोगे मन दे मेरा वृत्त,
जलन इससे कुछ होगी दूर!!

(१३)

रहे कोई दुखिया के साथ,
करे हिय को सान्त्वना-प्रदान!
सुने सारा सुख-दुख का हाल,
यही सबसे बढ़कर वरदान!!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह उपन्यास

[लेखक—"पागल"]

दूसरा खण्ड

३

इसी तरह डॉक्टर सन्तोषानन्द से मुझसे बराबर भेंट होती रही। कभी वह मेरे घर आते और कभी मैं उनके यहाँ चला जाता था। मगर उन्होंने फिर कभी मेरी अलमारी के पीछे वाली तसवीर के बारे में कोई पूछ-पाछ न की। बल्कि मिलने पर वह सदा यही उद्योग करते थे कि मेरा मन बहले और मेरा दुखड़ा याद आकर मुझे न सतावे। इस मेल-जोल से उन्हें मेरी आर्थिक कठिनाई का हाल भली-भाँति मालूम होगया। यद्यपि नित्य ही प्रकाशकों और सम्पादकों के पत्र चित्रों और डिज़ाइनों की माँग के लिए आया करते थे और उनमें उचित पुरस्कार देने के वादे भी होते थे। फिर भी मैं अपनी परेशानी के कारण उन लोगों की आज्ञा कई दिनों से पालन न कर सका था। अन्त में एक दिन जब मेरा आख़िरी पैसा ख़र्च होगया और घर में दो ही चार दिन चलने भर की सामग्री रह गई, तब मुझे रुपयों की फ़िक्र हुई और चित्रों की माँग के ख़तों का ढेर सामने रख कर बैठा। उनको एक-एक करके पढ़ता था, सोचता था, फिर अलग रख देता था। घण्टों हो गए, मगर किसी भी माँग के योग्य मैं कोई चित्र का विषय नहीं सोच पाया। अपने दिमाग़ की यह दुर्दशा देख कर मैं झल्ला उठा और उन ख़तों को फाड़ने लगा। इसी बीच में डॉक्टर सन्तोषानन्द आ गए।

सन्तोषानन्द—भई, यह क्या फाड़े डालते हो?

मैं—तस्वीरों की माँग के पत्र।

सन्तोषानन्द—क्यों?

मैं—मेरे पास इन पत्रों के उत्तर देने के लिए टिकट के दाम तक नहीं हैं, क्या करूँ?

सन्तोषानन्द—भई वाह! अजब आदमी हो। जब ख़र्च की तङ्गी ऐसी है, तब तो तुम्हें इन्हें और भी सर-आँखों पर रखना चाहिए। क्योंकि इन पर अमल करने से तुम्हें रुपए मिल सकते हैं, जिनकी तुम्हें ज़रूरत है।

मैं—फिर भी आज तो नहीं मिल सकते। मेरी इस वक़्त की ज़रूरत तो इनसे नहीं दूर हो सकती। तब यह मेरे किस काम के?

सन्तोषानन्द—अगर पहले से चेते होते तो आज यह नौबत ही क्यों आती? इसलिए आदमी को हमेशा आगे की फ़िक्र अभी से रखना चाहिए। आज का सङ्कट अगर इनसे नहीं दूर हो सकता, फिर भी इनसे आइन्दा की मुसीबत कटने की उम्मीद तो है। इस तरह दौलत और नाम पर लात न मारो। आदमी बनो और काम करो।

मैं—किस बिरते पर? दिमाग़ में तो हाहाकार मचा हुआ है। न कल्पना में दम है और न सूझ और उपज में कुछ शक्ति है। उस पर उम्मीद पर काम करने को कहते हो? हाय! किस तरह करूँ?

सन्तोषानन्द—उफ़! निराशा ने तुम्हारी कला भी छीन ली? अफ़सोस! ख़ैर! इन ख़तों को फाड़ो मत। क्योंकि पत्रों का उत्तर न देना हद दर्जे की असभ्यता है। मैं नहीं चाहता कि मेरे मित्र पर ऐसा कलङ्क लगे। इसलिए इन्हें मुझे दे दो, मैं तुम्हारा सेक्रेटरी बन कर इन सभों के उत्तर दे दूँगा।

इतना कह कर वह मेरे ख़तों का बण्डल समेट ले गए। एकाध जगह मेरे कुछ पुरस्कार बाक़ी थे, जिनका इन्तज़ार मैं इन दिनों बड़ी बेचैनी से करता था। मगर जब दूसरे दिन की भी डाक ख़ाली गई, तब तो मेरे होश उड़ गए, और मैं सम्पादकों और प्रकाशकों पर जल मरा। मन ही मन कुढ़ कर यही कहता था कि ये लोग बस अपनी ग़रज़ देखते हैं, दूसरे की नहीं। इतने ही में एक पालकी-गाड़ी मेरे दरवाज़े के सामने रुकी और उसमें

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से एक सोलह बरस की अति सुन्दरी नवयुवती उतरी। वह सीधे मेरे कमरे में इस तरह पहुँची, मानो वह वहाँ कई बार आ चुकी है। यद्यपि मेरे पास चित्र खिंचाने के लिए पहले कितनी ही महिलाएँ आया करती थीं, तो भी इस नवयुवती को मैंने आज के पहले कभी नहीं देखा था। आने वाली हिन्दुस्तानी स्त्रियों के सङ्ग कोई न कोई नौकरानी, घर का आदमी या एक छोटा लड़का अवश्य रहा करता था, और आने पर पहले-पहल उनमें कुछ न कुछ सङ्कोच होता था। मगर इसके साथ न कोई साथी था और न नई जगह पर आने की झिझक ही थी। मैंने अपनी जगह से उठ कर इसका स्वागत किया। क्योंकि मैं विलायती मिसों और मेमों की सैकड़ों तस्वीरें बना चुका था, और इन लोगों के प्रभाव से स्त्रियों के प्रति आदर-भाव प्रकट करने की मुझे एक आदत-सी पड़ गई थी। फिर भी वह मेरे नमस्कार करने के पहले ख़ुद ही नमस्कार करके बोल उठी।

वह—मैं आपको एक कष्ट देने के लिए आई हूँ। यदि आज्ञा दें तो कहने का साहस करूँ।

मैंने एक कुरसी सरका के उसे उस पर बैठने का इशारा किया। वह धन्यवाद दे के बैठ गई। मैं भी दूसरी कुरसी पर बैठ गया।

मैं—कहिए, कैसे आपने तकलीफ़ की?

उसने अपनी कुर्ती की जेब से एक मोड़ा हुआ काग़ज़ निकाल कर मेरे हाथ में दिया और कहा—कृपा करके मेरा एक चित्र खींच दें।

मैंने स्त्रियों का चित्र खींचना बहुत दिनों से छोड़ दिया था। क्योंकि जिस काम में मेरा जी लगता न था वह मैं किसी तरह भी नहीं कर सकता था। जब किसी की आँखें सूर्य की चमक से चौंधिया जाती हैं, तब वह चिराग़ की ज्योति की ओर देखना किस तरह गवारा करे? इसलिए मैंने चित्र खिंचवाने वाली अन्य स्त्रियों की तरह इसे भी टालना चाहा।

मैं—मैं फ़ोटो नहीं खींचता। बेहतर होता, आप किसी फ़ोटोग्राफ़र के पास जातीं।

वह—मैं जानती हूँ कि आप फ़ोटोग्राफ़र नहीं, बल्कि चित्रकार हैं। मैं फ़ोटो नहीं, मैं अलिन्द के हाथ से अपना चित्र उतरवाने आई हूँ।

मैं—बेकार है; क्योंकि अलिन्द की आँखों में सुन्दरता देखने की दृष्टि अब नहीं है। इसलिए उसकी तस्वीरों में फ़ोटो से अधिक सुन्दरता अब नहीं आती।

वह—बला से। यह आपके नहीं, मेरे विचारने की बात है।

मैं—जब कम दाम में आप फ़ोटो खिंचवा सकती हैं, तब ज़्यादा दाम ख़र्च करके हाथ से तसवीर बनवाना कहाँ की अक़्लमन्दी है?

वह—इससे आपको कोई बहस नहीं।

हर तरह से हार कर मैंने अन्त में असलियत कह दी।

मैं—आप नाहक़ मजबूर करती हैं। मैंने स्त्रियों का चित्र खींचना बहुत दिनों से छोड़ दिया है।

उसने मुस्करा कर मेरी तरफ़ देखा और पूछा—क्यों?

मैं—अपनी ख़ुशी।

वह—हम स्त्रियों पर इतनी नाराज़गी? मगर जनाब—

"न हर ज़न ज़नस्तो न हर मर्द मर्द।
ख़ुदा पञ्ज अङ्गुश्त इकसाँ न कर्द॥"

"ख़ैर, मैं एक सिफ़ारिशी ख़त भी लेती आई हूँ। क्योंकि मुझे पहले ही मालूम हो गया था कि आप स्त्रियों से नफ़रत करते हैं, इसलिए शायद आप चित्र बनाने में आनाकानी करें।"

मैंने अब तक उस काग़ज़ को खोल कर देखा न था, जो उसने मुझे पहले दिया था। इसलिए उसकी बात का कोई उचित जवाब दे न सकने के कारण मैं सर झुकाए उस काग़ज़ को चुपचाप खोलने लगा।

वह—वह ख़त नहीं है। ख़त तो मेरे पास है। उसे आप यों ही जेब में रख लीजिए।

तब तक उस मोड़े हुए काग़ज़ को मैंने खोल डाला और देखा तो मैं और भी दङ्ग हो गया। क्योंकि वह सौ रुपए का नोट था।

मैं—अरे! यह आपने क्या दिया? हिन्दुस्तानियों से मुझे एक चित्र के लिए सिर्फ़ पन्द्रह रुपए मिलते हैं। हाँ, अङ्गरेज़ों से पचीस रुपए लेता हूँ।

वह—मगर मैं सौ रुपए देकर आपकी कला और आपका अपमान करना नहीं चाहती।

मैं—माफ़ कीजिए, मैं इतना ले नहीं सकता।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वह—और मैं उसमें से एक कौड़ी भी वापस नहीं ले सकती। चाहे चित्र बनाइए, चाहे नहीं।

मैं—मगर मैं न डाकू हूँ कि आपको कम्बल ओढ़ा कर इस तरह लूटूँ और न मैं भिखमङ्गा हूँ कि मुफ़्त लूँ। इसलिए अगर मैं आपका चित्र बनाऊँगा तो उसकी उजरत पन्द्रह रुपए ही लूँगा, जो सब से पाता हूँ।

वह—यह बात है तो आपके चित्रशाला की कोई भी तस्वीर पन्द्रह रुपए में ख़रीद सकती हूँ?

मैं—हाँ, शौक़ से।

वह—मुकरिएगा तो नहीं?

मैं—हर्गिज़ नहीं।

वह—अच्छा, तो जो तस्वीर आपकी अलमारी के पीछे लगी हुई है, मुझे उसी दाम पर दे दीजिए।

यह सुनते ही मैं चौंक पड़ा। घबड़ा कर उसका मुँह निहारने लगा।

मैं—अरे! तुम्हें उसका हाल कैसे मालूम हुआ? तुम कौन हो देवी?

वह—इससे आपका क्या मतलब? आप वह चित्र दीजिए। बात पक्की हो गई।

मैं—नहीं, नहीं, हाथ जोड़ता हूँ। मेरा प्राण ले लो, पर वह चित्र न लो। वह बिक्री के लिए नहीं है। मैं उसे दुनिया की सारी दौलत पाने पर भी नहीं अलग कर सकता।

वह—क्यों जनाब, उसका मूल्य दुनिया की सारी दौलत भी कम है और मेरे चित्र का दाम सौ रुपए भी नहीं हो सकते? ख़ैर! अब तो उसे आपको अलग करना ही होगा—ज़बान बदली नहीं जा सकती।

मैं—नहीं, ईश्वर के लिए ऐसा न कहो। मुझे बे-मौत न मारो—मेरे जीवन का एकमात्र सहारा न छीनो। यह छोड़ कर जो कुछ कहो, मैं मान लूँगा।

वह—अच्छा, तो मेरा चित्र बनाइए और मेरी तुच्छ भेंट स्वीकार कीजिए।

मैं—बेहतर है। मगर वह सिफ़ारिशी ख़त?

वह—अब उसकी ज़रूरत नहीं रही।

४

एक सप्ताह तक लगातार वह मेरी चित्रशाला में आती रही और हर बार सिर्फ़ पन्द्रह मिनट से आध घण्टा तक चित्र खिंचाने के लिए बैठती थी। इतने ही दिनों में वह मुझसे ऐसी बेबाक हो गई और इस तरह खुल कर मिलने लगी, मानो वह कोई स्त्री नहीं बल्कि कोई पुरुष-मित्र है। फिर भी वह मेरे लिए एक गहरी समस्या थी। उसकी अवस्था कम और सूरत से भोलापन टपकने पर भी उसकी बातों से योग्यता और ज्ञान की धाराएँ बहती थीं, जिनमें पड़ कर मैं चकित होकर रह जाता था और उसका अदब करता था। उसके गुणों को मैं बहुत-कुछ पहचान गया था, तोभी मैं उसे न जान सका कि वह कौन है! जब कभी इसकी बाबत मैंने कुछ पूछना चाहा, तब वह कोई न कोई ऐसी बात कह बैठती थी कि मैं निरुत्तर होकर चुप हो जाता था। उसके बारे में मुझे सबसे ज़्यादा ताज्जुब इसका होता था कि उसे मेरी अलमारी के पीछे वाली तस्वीर का हाल किस तरह मालूम हुआ। क्योंकि उस तस्वीर को मेरे सिवा, जिसकी वह थी, वह जानती थी या इटालियन कलाविद और तत्वज्ञानी मिकाशियो, या फिर डॉक्टर सन्तोषानन्द। अन्य किसी की इस संसार में उस पर कभी दृष्टि नहीं पड़ी थी। इस बीच में डॉक्टर साहब से भी भेंट नहीं हुई थी, ताकि मैं उनसे इस भण्डा के फूटने का कुछ पता लगाता। क्योंकि तीन दिन तक मैं इसी चिन्ता में लीन रहने के कारण उनके यहाँ न जा सका और चौथे दिन से सम्पादकों और प्रकाशकों के पास मेरी तरफ़ से डॉक्टर साहब के भेजे हुए ख़तों के उत्तर में चित्रों की माँग पेशगी पुरस्कार के साथ आने लग गई। रुपए पहले मिल जाने से मुझे अब झख मार के उन लोगों की आज्ञाएँ पालन करने में भी लग जाना पड़ा। काम की अधिकता इतनी हो गई कि मैं दो मिनट के लिए भी अपनी चित्रशाला के बाहर नहीं निकल सकता था।

आठवें दिन उस नवयुवती का चित्र सम्पूर्ण रूप से तैयार हो गया। मैं तख़्ते पर से उसका 'Canvas' (खींचे हुए चित्र का कपड़ा) उतार कर लपेटने जा रहा था कि डॉक्टर सन्तोषानन्द ने प्रवेश किया। मैं अपने पेशे के नियमों के अनुसार इस चित्र पर कोई परदा डाल देना चाहता था, क्योंकि वह कल्पित नहीं, बल्कि एक जीती-जागती नवयुवती की तस्वीर थी। बिना उसकी अनुमति के मैं इसे किसी को दिखा नहीं सकता था। मगर मैं उनके एकाएक आ जाने से कुछ ऐसा सिटपिटा

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गया कि मैं चित्र को छिपा न सका और उनकी दृष्टि उस पर पड़ गई। उन्होंने मेरे भाव को ताड़ते ही कहा—मुझे इसे देख लेने में कोई हर्ज नहीं है। मैं तारा को यों भी देख चुका हूँ। इसी लिए कह सकता हूँ कि तुमने उसकी तस्वीर बहुत ही सही और ख़ूब ही खींची है। शाबाश! मगर × × ×

उनके इस 'मगर' के शब्द ने इस नवयुवती के सम्बन्ध में उनसे कुछ जानने की मेरी बढ़ती हुई उत्सुकता को चट दबा कर मुझे इस चित्रकारी पर उनकी समालोचना सुनने के लिए व्याकुल कर दिया। मैंने अधीर होकर पूछा—मगर क्या? हाँ हाँ, कहिए! रुक क्यों गए।"

सन्तोषानन्द—कुछ नहीं! तुमने तो फ़ोटो के कैमरा को भी मात कर दिया। इस पर कोई कुछ कह ही क्या सकता है।

डॉक्टर ने प्रशंसा की आड़ में इतना गहरा आक्षेप किया कि मैं उनकी इस कला का ज्ञान देख कर मुँह निहारता रह गया। क्योंकि जो मर्म उनकी बात में छिपा हुआ था, वह हर चित्रकार भी नहीं जानता।

मैं—डॉक्टर साहब, मैं नहीं जानता था कि तुम इस कला में भी इतनी गहरी पैठ रखते हो। मगर भई, यह भी तो ख़्याल करो कि यह कल्पित नहीं, बल्कि सच्ची तस्वीर है। इसलिए जितनी सुन्दरता इसकी सूरत के रङ्ग और रूप में है वही तो इसमें दिखा सकता था।

डॉक्टर—तो क्या तुम समझते हो कि सुन्दरता केवल रूप और रङ्ग में होती है?

अब तो तत्व के इस गूढ़ प्रश्न के आगे मुझे दाई से पेट छिपाते बन न पड़ा। इसीलिए विवश होकर साफ़-साफ़ मैं कहने लगा।

मैं—नहीं, सुन्दरता रङ्ग और रूप में नहीं, बल्कि भावों की मधुरता में होती है, जिसकी ज्योति से सूरत दमक उठती है और वह प्यारी मालूम होती है। रङ्ग और रूप कितने ही साफ़ और सुडौल क्यों न हों, मगर यदि उन पर भीतरी सौन्दर्य की आभा नहीं है तो वह दिन के चाँद की तरह हज़ार फीकों में फीके लगते हैं। उनमें आकर्षण या अपने को पुजवाने की शक्ति नहीं उत्पन्न होती, जो सुन्दरता का मुख्य गुण है। रङ्ग की सफ़ाई या चेहरे की सुडौल बनावट तो सुन्दरता को उत्तम रूप से प्रकट करने में केवल सहायता भर देती हैं। तभी तो संसार में करोड़ों अच्छी सूरतें कही जाने पर भी वे सभी को नहीं, बल्कि केवल उसी को सबसे अच्छी दिखाई पड़ती हैं, जिसके आगे उनके मधुर भाव खिल उठते हैं।

सन्तोषानन्द—या जो अपने अनुभवी हृदय की प्रेरणा से उनकी दमक को अनुभव करके निरखना चाहता हो। क्योंकि इन बातों को निरजीव फ़ोटो का कैमरा नहीं देख सकता। वह तो केवल बाहरी बनावट का नक़्शा उतारना जानता है। इसीलिए फ़ोटो के आविष्कार होने पर भी चित्रकारी का आदर है।

मैं—जानता हूँ डॉक्टर, ईश्वर ने मुझे इस भेद को लड़कपन ही में सुझा दिया था। इसी मर्म को जान कर मैंने अपनी कला की इतनी धूम मचा दी थी। यही मेरी सफलता का गुर था, जिसे यहाँ केवल एक इटालियन कलाविद और तत्वज्ञानी मिकेशियो ने वही अलमारी वाली तस्वीर देख कर पहचाना था और यही मेरे पतन की गहराई है, जिसे तुमने आज इस चित्र को देख कर जाना। क्योंकि इसी ज्ञान के बल पर मैं ख्याति के इतने ऊँचे शिखर पर पहुँचा था और आज वही ज्ञान मुझे कुछ भी करने नहीं देता। अगर विवश होकर पेट के लिए कुछ करता हूँ, तो उसका नतीजा यह होता है, जिसे तुम देख रहे हो। इसीलिए मैं किसी सुन्दरी का चित्र नहीं खींचता। क्या करूँ, मेरी आत्मा स्वयं ही मरी हुई है। मैं किस बिरते पर किसी के आत्मिक सौन्दर्य को उभार कर निरखूँ और उसकी प्रतिभा की झलक अङ्कित करके चित्र की सुन्दरता बढ़ाऊँ। इसीलिए मैं इस सुन्दरी को किसी विशेष दृष्टि से नहीं देख सका, जिसमें वह अलौकिक मालूम होती, बल्कि उसी साधारण दृष्टि से देखा, जिससे उसे दुनिया देखती है या जैसी वह 'कैमरा' के 'प्लेट' पर दिखाई पड़ सकती है।

सन्तोषानन्द—ख़ैर! इसकी परवा न करो। अपना काम इसी तरह किए जाओ। तुम्हारी शक्तियाँ कितनी ही नष्ट हो जायँ, फिर भी मरा हुआ हाथी लाख टके का होता है। इसलिए जो कुछ तुम इस हालत में भी कर सकते हो, वह दूसरा नहीं कर सकता। यह भूल

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर भी न समझना कि मैंने इस चित्र को फ़ोटो से तुलना देकर तुम पर आक्षेप किया है। नहीं, बल्कि तुम्हारे अटल प्रेम को देख कर और भी चकित हो गया कि जिसके कारण तारा-ऐसी सुन्दरी में भी तुमको कोई विशेषता नहीं दिखाई पड़ी। इसीलिए उसका प्रभाव तुम्हारी कला पर उलटा पड़ते हुए देख कर मुझसे नहीं रहा गया और तुम्हें केवल सावधान करने की नीयत से सच्ची बात कह दी।

मैं—भाई, मैं तुम्हारे उपकारों को कभी भूल नहीं सकता। तुमने तो इस मुर्दे को जिलाने के लिए कुछ उठा नहीं रक्खा। मैं जानता हूँ कि आजकल काम की इतनी भीड़ किसकी बदौलत और क्यों है। मगर हाँ, यह तारा × × ×

सन्तोषानन्द—अच्छा, यह तो कहो कि वास्तविक सुन्दरता का मर्म जो तुमने बताया है, तुम्हें लड़कपन में किस तरह सूझा? यह तो ऐसे गूढ़ तत्व की बात है जो ज्ञानियों की ही समझ में आ सकती है।

मैं—अरे डॉक्टर! तुमने बड़ी पुरानी याद दिला दी। ख़ैर! सुनो। व्यापार में धन की वृद्धि होने के साथ पिता जी सट्टे का कारबार भी करने लगे थे। इसमें एक ही दिन में लाखों के वारे-न्यारे हो जाते हैं। इसलिए एक दिन भाग्य का पासा पलटा और हम लोग एकाएक गली के भिखारी हो गए। महाजनों ने हमारी सारी जायदाद पर अधिकार जमा कर हम लोगों को घर से निकाल बाहर कर दिया। उस वक्त थोड़ी-बहुत पूँजी जो पिता जी क़र्क़ी से बचा सके, उसे लेकर परदेश निकल खड़े हुए और भटकते-भटकते यहाँ पहुँचे और इसी मकान को किराए पर लेकर रहने लगे। उन दिनों यहाँ थिएटर की एक मशहूर कम्पनी आई हुई थी। उसमें विख्यात ऐक्ट्रेस मिस जहानारा काम करती थी। उसकी सुन्दरता पर सारा बनारस लट्टू था। और वह इस मकान की बाईं तरफ़, जो पीले रङ्ग की आलीशान कोठी है उसी में ठहरी हुई थी। चित्र निरखने की मुझमें स्वाभाविक रुचि होने के कारण मैं छुटपन में ही सौन्दर्योपासक हो गया था। इसलिए जहानारा की सुन्दरता की धूम सुन कर मुझे भी उसके देखने की इच्छा हुई। मगर पिता की आज्ञा बिना थिएटर जा नहीं सकता था और यों उसको देखना असम्भव था। क्योंकि वह कोठी के बाहर जब निकलती थी तो बुर्क़ा पहनकर और बन्द गाड़ी में। सौभाग्य से कोठे पर जिस कमरे में वह रहती थी, उसकी खिड़की के सामने मेरे कोठे की झरोखेदार ऊँची मुण्डेर थी। एक दिन उसकी खिड़की खुली हुई पाकर मैं अपने कोठे पर चढ़ गया और अपने झरोखों से उसके कमरे में चुपचाप झाँकने लगा। उस समय वह शायद किसी नए तमाशे के लिए हाथ में छुरा लेकर ख़ून करने का भाव-प्रदर्शन का अभ्यास कर रही थी। उसे इस दशा में देख कर मैं काँप उठा। वह मुझे ऐसी कुरूपा, भद्दी और डिरावनी जान पड़ी कि मुझे किसी तरह भी विश्वास न हुआ कि यही जहानारा है, जिसने अपनी सुन्दरता से शहर भर को दीवाना बना रक्खा है। दूसरे दिन भी मैंने यही कारवाई की, इस ख़्याल से कि कल कोई दूसरी दिखाई पड़ी थी तो शायद आज वह देखने को मिल जाए। मगर झरोखों से झाँकते ही मैं आवाक् होकर रह गया। क्योंकि वही स्त्री उस दिन प्रेम-भाव में मस्त होकर प्रेम-क्रीड़ा का रिहर्सल कर रही थी। उस रोज़ वह कितनी प्यारी और कितनी मोहनी मालूम हुई कि मैं कह नहीं सकता। यदि कल वह साक्षात् राक्षसी थी तो आज वही सुन्दरता में रति को भी मात कर रही थी। तब जाना कि सुन्दरता के लिए रूप और रङ्ग से भी बढ़ कर कोई और ही चीज़ दरकार होती है।

सन्तोषानन्द—धन्य ईश्वर, कि तुम बड़ी ही सुन्दर युक्ति से इस कला के लिए सही रास्ते पर शुरू ही में आ गए। ईश्वर की देन इसी को कहते हैं।

मैं—भाड़ में गई ऐसी देन। यही तो मेरी जान की काल होगई। उफ़! इसी ने मुझे सत्यानाश किया।

सन्तोषानन्द—सत्यानाश किया कि आदमी से बढ़ा कर तुम्हें देवता बना दिया? इसी की बदौलत तुम्हारा आज इतना नाम है। और न जाने संसार कब तक तुम्हारे नाम को जपेगा।

मैं—मगर हाय!—"हमें क्या जो क़ब्र में मेले लगे, हम तो लहद में अकेले रहे।"

सन्तोषानन्द—अरे! फिर तुम पर वही काली धुन सवार हुई? तुम्हें किस तरह और कहाँ तक इससे बचाऊँ? अच्छा, मारो गोली इन बातों को। मेरा मन तो अब जहानारा का हाल सुनने के लिए व्याकुल हो रहा है। भला उसके बाद भी तुमने उसे फिर कभी देखा था?

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मैं—हाँ भई, देखा था। क्योंकि उसकी सुन्दरता ने मुझ पर कुछ ऐसा जादू डाल दिया था कि मैं उसको नज़दीक से जी भर के देखने के लिए दीवाना हो गया। अख़बारों में ढूँढ़-ढूँढ़ कर उसके फ़ोटो देखे, परन्तु मुझे उनसे किसी तरह भी तृप्ति न हुई, क्योंकि उनमें वह बात न थी जो मेरी आँखों ने देखी थी। उसके पास पहुँचने की मैंने बहुतेरी तरकीबें कीं, मगर सब बेकार; क्योंकि बड़े-बड़े सेठ-साहूकार और नवाब लोग उससे मिलने के लिए तरसते थे तो फिर उनके आगे मुझ-ऐसे एक पन्द्रह बरस के छोकरे की भला क्या हस्ती थी? थिएटर के दरबानों ने मुझे कोठी के फाटक पर ही से दुरदुरा दिया। फिर भी मुझसे रहा न गया। मैंने जहानारा के नाम एक लम्बा-चौड़ा ख़त लिखा। उसमें क्या लिखा था, यह तो मुझे याद नहीं है, मगर इतना जानता हूँ कि मैंने अपनी लड़कपन की समझ के अनुसार बहुत कुछ लिखा था। उसे लेकर मैं अपने कोठे पर चढ़ गया। सोचा था कि आज मैं उसे झाँझरियों से पुकार कर किसी तरह इस ख़त को उसके पास पहुँचाऊँगा। मगर शाम तक उसकी खिड़की खुली ही नहीं, और मुण्डेरे के सूराख़ों से काग़ज़ फेंकना असम्भव भी जान पड़ा। तब मैंने तीर और कमान बनाए। आठ बजे रात को उसकी खिड़की खुली। उस समय वह मुँह फेरे हुए थिएटर जाने के लिए कपड़े पहन रही थी। मुझे पुकारने की हिम्मत न पड़ी। मैंने ख़त को तीर में बाँध कर चुपके से कमान द्वारा उसके कमरे में फेंक दिया और वहाँ से भाग खड़ा हुआ × × ×

सन्तोषानन्द घड़ी देखते हुए घबड़ा कर बोले—अच्छा भई, अब कल। मुझे एक मरीज़ देखने जाना है।

यह कह कर वह दनू से उठ कर चल दिए। जैसे ही वह कमरे से बाहर हुए वैसे ही तारा की गाड़ी मेरे द्वार के सामने आकर खड़ी हुई।

(क्रमशः)

(Copyright)

निष्ठुर

[रचयिता—श्री० कालीप्रसाद जी भटनागर 'विरही']

(१)

जीवन सारा बीत चला है—
सहते-सहते विरह-व्यथा!
उस 'निष्ठुर' ने कभी न पूछा—
आकर मेरी करुण-कथा!!

(२)

फिर भी निष्ठुर दुनिया मुझको—
'निष्ठुर' कह करती बदनाम!
और निगोड़ी सखियों ने भी—
रक्खा है 'पत्थर' उपनाम!!

(३)

मैं निष्ठुर हूँ अथवा 'वे' हैं—
किससे कहूँ कि कर दो न्याय!
जब दुनिया ही तुली हुई है—
मुझ पर करने को अन्याय!!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्यंग चित्रावली

[एक सच्ची घटना के आधार पर]

(१)

तन में आई अगर बुढ़ाई तो क्या ? मन है अभी जवान !
रमणी छूट नहीं सकती है, चाहे निकल जाय यह जान !!
यही सोचकर मन में विधि से वृद्ध महोदय करते ब्याह !
कुटुम्बियों को, पड़ोसियों को दिखलाने को गन्दी राह !!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चाँद

(२)

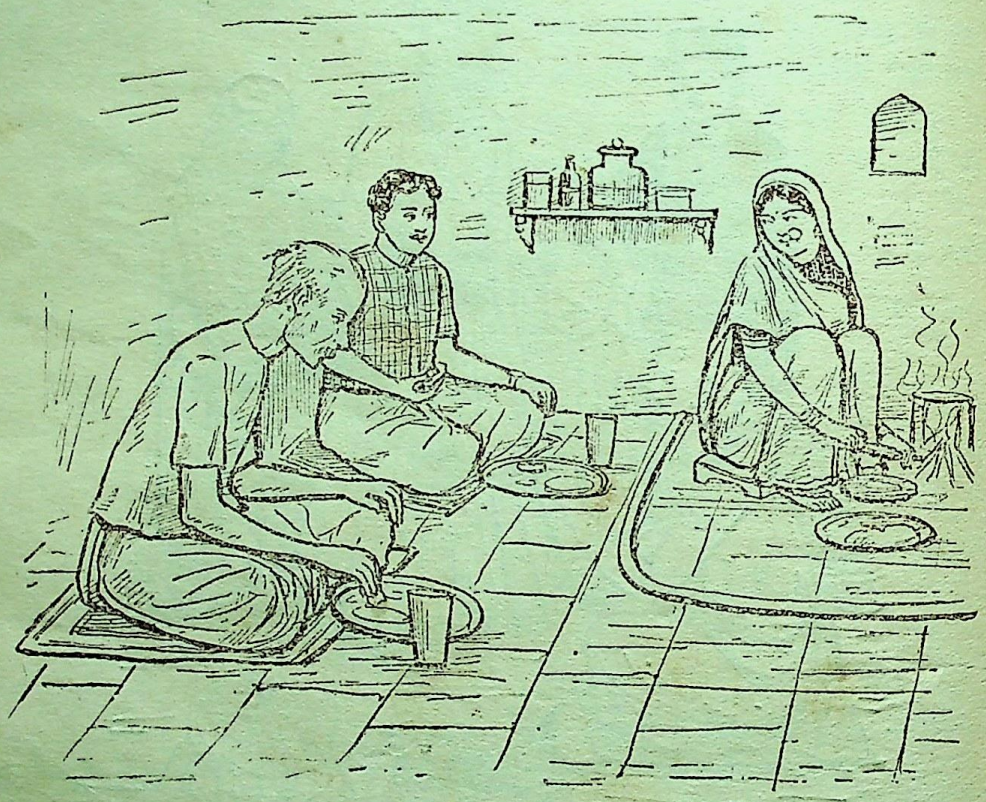

साथ पुत्र को ले करते थे वृद्ध महोदय नित भोजन !
उसी समय माँ औ' बेटे की लड़ती थीं आँखें छन-छन !!
दोनों ही में नया रक्त था, दोनों का था मन बेहाल !
वृद्ध भाँप क्या पाते, उनका निकट आ रहा था अब काल !!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चाँद

(३)

वृद्ध छोड़ अपनी पत्नी को आख़िर गए नरक के धाम !
उनके घर में इस घटना से मचा बड़ा भारी कुहराम !!
पर क्या होता, रङ्ग यही तो लाता बूढ़ेपन का ब्याह !
धन्य बुद्धि है उनकी जो जन, करते मन में ऐसी चाह !!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चाँद *

(४)

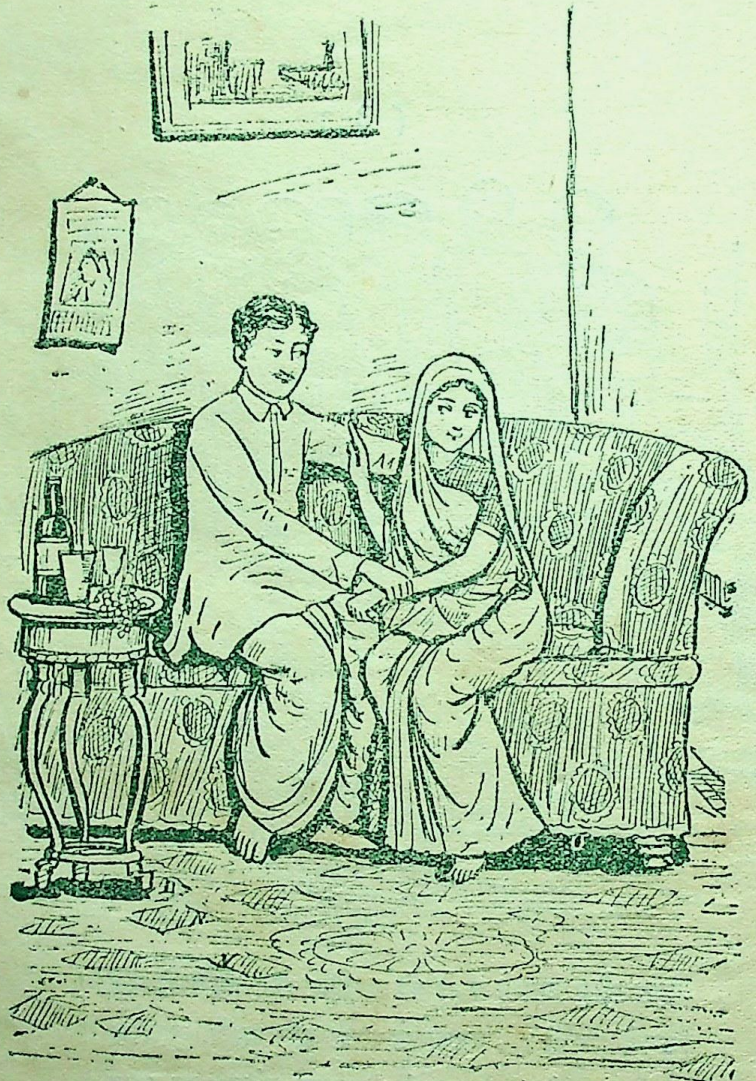

जब यों कण्टक दूर हो गया, होने लगा ऐश-आराम !
छोड़ पिता-सम्पत्ति भोगना, और कौन बेटे का काम ?
दोनों को यौवन के मद में सूझ न पड़ता था परिणाम !
हो यह सब कुछ, किन्तु बुरा है बस "विधवा-विवाह" का नाम !!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चाँद

(७)

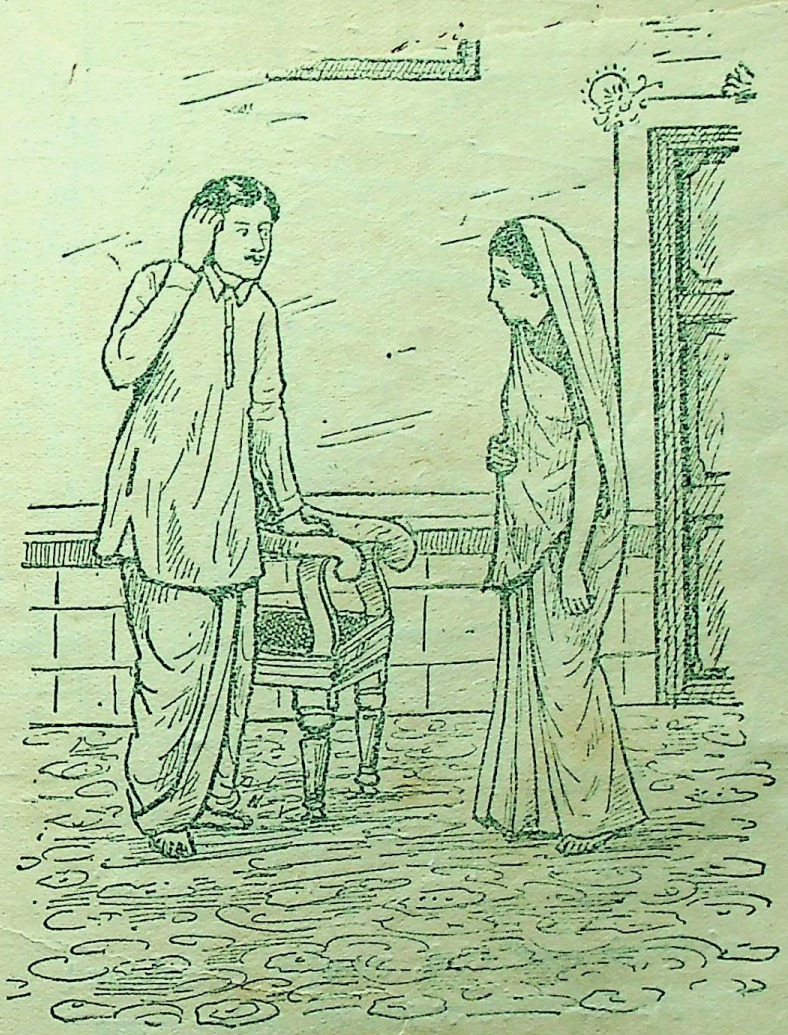

गर्भ रह गया जब, तब मूँदे बेटे ने हाथों से कान !
क्या अनिष्ट करती हो तुम यह, घर में बैठी अम्मीं जान !!
'यह क्या कहते हो' माँ बोली, लेकर एक दीर्घ निश्वास !
बोला बेटा "कौन करेगा ऐसी बातों पर विश्वास" ?

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चाँद *

(४)

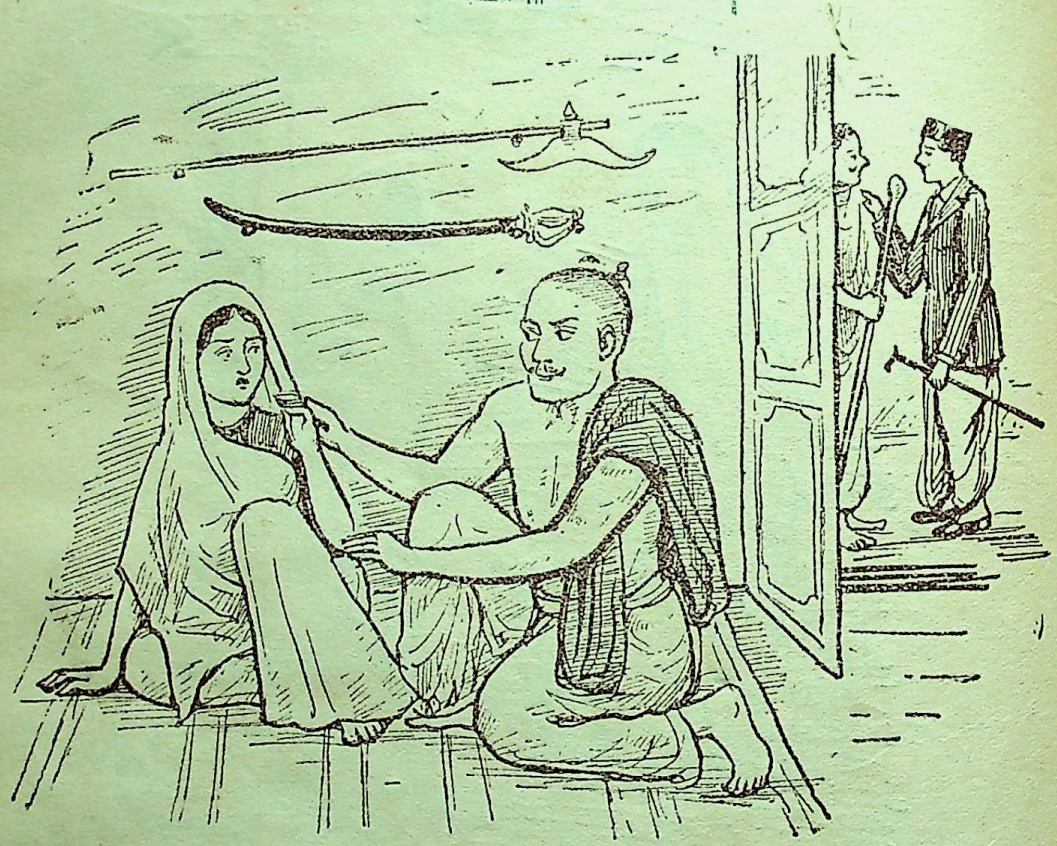

गई निकाली अबला घर से, तब पहुँची वह तीर्थ-स्थान !
पड़ी दृष्टि पण्डों की उस पर, किया गया समुचित सम्मान !!
'माता-माता' कह कर उसको घर ले गए ; हुई जब रात !
फरसा औ' तलवार दिखाकर उसकी लज्जा पर की घात !!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चाँद

(७)

जब पण्डे ने उसे निकाला भटकी तब वह बन-बन में !
अपने सारे दुखड़े रोती, हुई विवश अपने मन में !!
कुटनी मिली और फुसलाया—और ले गई अपने घर !
फूली नहीं समाई वह भी उसका देख रूप सुन्दर !!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चाँद

(८)

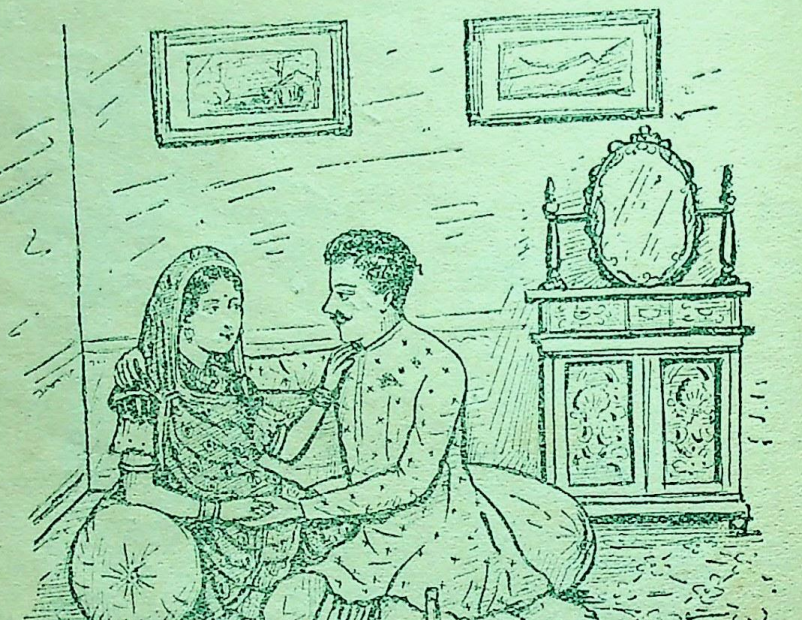

वेश्या बनकर अब उसने ही पाया है सब से सम्मान !
जिन लोगों ने उसे निकाला, वही आज उसपर कुर्बान !!
इसी तरह करता है चौपट, कुल-ललनाएँ 'वृद्ध विवाह' !!
खोल रहे हो यों समाज तुम, अपने लिए नरक की राह !!

* * *

देख रहे हो बोलो कैसे, जीते जी यह अन्तिम दृश्य ?
यदि देखे जाओगे यों ही, हो जाओगे कभी अदृश्य !!

—आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

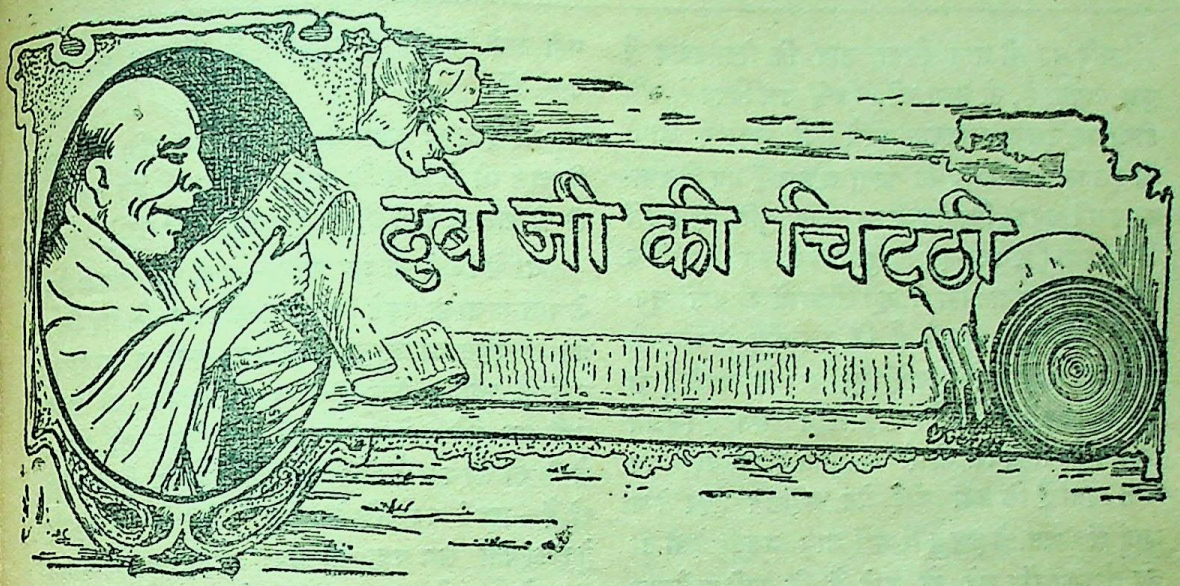

श्रीजी सम्पादक जी महराज,

जयराम जी की !

प्रेतात्माओं के सम्बन्ध में आप जो लेखमाला प्रकाशित कर रहे थे वह आपने बन्द कर दी, यह अच्छा किया। वैसे मैं एक हद तक प्रेतात्मवाद पर विश्वास करता हूँ। यह मैं मानता हूँ कि प्रेतात्माओं का अस्तित्व है और यह भी मानता हूँ कि वे कभी-कभी मनुष्यों को दिखाई भी पड़ती रहती हैं, परन्तु यह मैं नहीं मानता कि संसार में जितने रोग, कष्ट तथा दुख होते हैं, वे प्रेतात्माओं ही का उपद्रव होता है। प्रेतात्मवादी तो यहाँ तक मानते हैं कि संसार में जो हत्याएँ और चोरियाँ होती हैं, उनमें भी बहुधा प्रेतात्माओं का ही हाथ होता है। प्रेतात्माएँ जिससे रुष्ट होती हैं, उसका अनिष्ट किसी दूसरे मनुष्य से (उस पर अपना प्रभाव डाल कर) करा देती हैं। यह बात कहाँ तक ठीक है, यह मैं नहीं कह सकता। अन्य शास्त्रों की तरह प्रेतात्मवाद भी मनुष्यों के कर्मों पर अपना आधिपत्य जमाना चाहता है। ज्योतिष-शास्त्र कहता है कि मनुष्य के जीवन में जो सुख-दुखपूर्ण परिवर्त्तन होते हैं, वह सब ग्रहों का फल है। आयुर्वेद-शास्त्र कहता है कि कफ, पित्त, वात, ये तीन ही मनुष्य का जीवन हैं और जब ये कुपित हो जाते हैं तो मनुष्य के प्राणों पर आ बनती है। होम्योपैथी 'विषस्य विषमौषधम्' का सिद्धान्त मानती है। बायोकेमिक अपने बारह लवणों को ही मनुष्य के स्वास्थ्य तथा रोगों का कारण बताती है। यह दशा देखकर प्रेतात्मवादियों ने सोचा कि हम ही फिसड्डी क्यों रहें, अतएव उन्होंने कहना आरम्भ किया कि प्रेतात्माएँ रोग भी उत्पन्न करती हैं !! चलिए, अब तो प्रेतात्मवाद को लोग मानेंगे। आदमी किसी वस्तु को उसी समय मानता है जब उससे उसे सुख अथवा दुख मिलता है। प्रेतात्मवाद से किसी को कोई विशेष लाभ अथवा सुख मिला हो, यह तो अभी तक सुना नहीं। हाँ, अपने मृत सम्बन्धियों का दर्शन तथा उनसे वार्त्तालाप करने की बात कही जाती है। परन्तु उसमें बड़ा मतभेद है। अधिकांश लोग यह कहते हैं कि यह सब ढोंग है। विज्ञान की कृपा से मनुष्य में अब इतनी शक्ति उत्पन्न होगई है कि वह इस ढङ्ग की बातें बहुत सरलतापूर्वक दिखा सकता है। तीन-चार वर्ष हुए अङ्गरेज़ी के सुप्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र "पियर्सन वीकली" में लण्डन की एक बड़ी प्रसिद्ध "मध्यस्थ" (Medium) ने प्रेतात्माओं के दर्शन तथा उनसे वार्त्तालाप करने के रहस्य पर प्रकाश डाला था। उसने जो कुछ लिखा, उसके पढ़ने से ज्ञात होता है कि प्रेतात्माओं का खेल दिखाना बहुत साधारण बात है। स्वयं उसने वर्षों तक बड़े-बड़े चतुर लोगों की आँखों में धूल झोंकी। इसी प्रकार अन्य अनेक विद्वानों की धारणा भी यही है कि प्रेतात्मवाद में ढोंग, धोखा तथा फ़रेब बहुत और सत्यता नाम-मात्र की है।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यदि यह भी मान लिया जाय कि प्रेतात्मवाद में कुछ सत्यता है, तो हुआ करे। जिन्हें उस विषय से रुचि होगी वह उसका अध्ययन करेंगे। यों अकारण लोगों को इसकी ओर आकर्षित करना और उन्हें भय दिखला-कर उसमें उनका विश्वास उत्पन्न कराना युक्ति-सङ्गत नहीं जान पड़ता। एक तो हम हिन्दुओं के संस्कार ऐसे हैं कि बालपन में माता-पिता से भूत-लीलाओं की बातें सुन-सुनकर यह दशा हो गई है कि दाढ़ी-मूँछ के उग्गान हो जाने पर भी रात में यदि चूहे खड़बड़ करते हैं तो कलेजा धड़कने लगता है। यही ख़्याल आता है कि प्रेत आया। किसी अँधेरी कोठरी में घुसते हैं तो यही भय लगा रहता है कि कहीं कोई प्रेत महाशय हृदय से न लगा लें। रात को जङ्गल में कहीं आग जलती देखी तो यह सोचकर रोंए खड़े हो जाते हैं कि अगिया-बैताल है। छोटे-छोटे बच्चों के मस्तिष्क में हमारी माताएँ बाल्यावस्था में ही भूत तथा चुड़ैलों का भय ठूँस-ठूँस कर भर देती हैं। इसका फल यह होता है कि वे जन्म भर के लिए डरपोक तथा कायर हो जाते हैं। सम्पादक जी, मैं ऐसे-ऐसे लोगों को जानता हूँ कि जो तीन-तीन, चार-चार बच्चों के बाप हैं, पर यदि उन्हें रात में अपने ही मकान की किसी अँधेरी कोठरी में जाना होता है तो जोरू को साथ लेकर जाते हैं। क्यों? इसलिए कि यदि अकेले जायँगे तो प्रेत महाशय उन्हें गले लगा लेंगे या जान से मार डालेंगे। दूसरा आदमी साथ रहने से वे इन बातों से बच जायँगे। या तो प्रेत महाशय उसी दूसरे आदमी को चिपटेंगे या फिर नाक-दुम दबाकर भागेंगे। इस मूर्खता का भी कुछ ठिकाना है? परन्तु वे बेचारे करें क्या, उनके बचपन से ही ऐसे संस्कार पड़े हुए हैं, वे दूर कैसे हो सकते हैं? ऐसे लोगों को तो निर्जन तथा अँधेरे स्थान में चारों ओर प्रेत ही प्रेत दिखाई पड़ते हैं। अब बताइए, ऐसे लोग क्या तीर मार सकते हैं—वीरता का कौन काम कर सकते हैं। हाँ, यदि उनके साथ एक आदमी ऐसा रहे, जो उन्हें प्रेतों से बचाता रहे तो चाहे भले ही वह कोई वीरता का काम कर दिखाएँ। पाश्चात्य देशों के लोगों को देखिए कि वह अकेले ही अफ्रीका के निर्जन जङ्गलों में पड़े रहते हैं। जहाँ और जिस समय चाहते हैं, अकेले चले जाते हैं। इसका कारण क्या है? इसका कारण यही है कि बाल्यावस्था में उनके संस्कार ऐसे नहीं डाले गए कि वे भूत-प्रेतों में विश्वास करें और उनसे डरें।

यह दशा तो पहले ही से है। अब यदि कहीं यह विश्वास भी हो जाय कि अनेक रोगों में भी प्रेत महाशय ही की शरारत होती है, तो चलिए छुट्टी हो गई!

घर में किसी को ज्वर आया—बस, अब डॉक्टर-वैद्य के पास न जाकर पहले यह पता लगाइए कि यह किस प्रेत या चुड़ैल की कारगुज़ारी है। यह पता लगना सरल नहीं है, क्योंकि प्रेतराम सहज ही में अपने को प्रकट नहीं कर देते। ऐसी दशा में रोगी बेचारा तो मरा। रोगी तो मर रहा है और घर वाले प्रेत को ढूँढ़ते फिर रहे हैं—ख़ूब! अब यदि प्रेतात्मवादियों के सिद्धान्तानुसार प्रेत का पता लग गया तो अब उसको भगाने अथवा जलवाने-फुँकवाने का इन्तज़ाम होना चाहिए। यदि घर में दो-तीन आदमी एकदम से बीमार हो जायँ तो, जितने आदमी बीमार हों उतने ही प्रेतों की हुलिया जारी कराई जाय—क्योंकि ऐसा सुनने में नहीं आया है कि अनेक व्यक्तियों को एक समय में एक ही प्रेत पीड़ित करता हो। यदि चार आदमी बीमार हैं तो चार ही प्रेत होंगे। चार-चार प्रेतों का पता लगाना साधारण बात नहीं है। एक ही कमबख़्त बड़ी मुश्किल से ढूँढ़े मिलता है—चार-चार को ढूँढ़ना तो बहुत ही कठिन है। ऐसी दशा में रोगियों के प्राण तो दो ही तरह से बच सकते हैं। या तो ईश्वर स्वयं प्रेतों को समझा-बुझाकर या डरा-धमकाकर हटावे या फिर प्रेत महाशय ही ऊब कर भाग जावें। सो प्रेत महाशय तो ऊबते हुए कम सुने गए हैं—उन्हें तो दूसरों को पीड़ा देने में आनन्द आता है। अतएव केवल ईश्वर का भरोसा रह जाता है। यद्यपि यह कहा जाता है कि ऐसे लोग हैं जो प्रेतों को क़ैद कर लेते हैं, और दस-पाँच वर्ष अथवा जन्म भर के लिए उन्हें कारावास-दण्ड दे देते हैं या फाँसी का हुक्म सुना देते हैं और उनके फ़ैसले की कोई प्रेत अपील नहीं कर सकता—जो मनुष्य के लिए बड़े सन्तोष की बात है। परन्तु इन सब बातों के होते हुए भी यह बात सर्वमान्य है कि प्रेत अधिक हैं और प्रेतों को दण्ड देने वाले कम। प्रेतों के इन न्यायाधीशों की संख्या इतनी अल्प है कि जैसे दाल में नमक होता है। ऐसी दशा में प्रेतों का उत्पात कम कैसे हो सकता है, जबकि मनुष्यों

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का यह हाल है कि प्रत्येक स्थान में अपराधियों को दण्ड देने वालों के प्रस्तुत होते हुए भी वे अपराध करते ही हैं। ऐसी दशा में मनुष्यों का सहायक केवल ईश्वर ही रह जाता है।

हाँ, यदि प्रेतात्म-विद्या-विशारद प्रेतों को पकड़ने के लिए बाक़ायदा पुलिस, ख़ुफ़िया-पुलिस, अदालतें, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति सरलतापूर्वक किसी भी प्रेत पर नालिश कर सके, और प्रेतों के लिए दण्ड-विधान इत्यादि का प्रबन्ध कर दें तब तो मनुष्य की रक्षा इन प्रेतों से हो सकती है। परन्तु उस दशा में एक बड़ी ख़राबी यह होगी कि वहाँ भी हम लोगों को मुक़दमेबाज़ी का चस्का पड़ सकता है। उदाहरणार्थ श्याम की शत्रुता राम से है। श्याम ने सोचा कि राम का तो मैं कुछ बिगाड़ नहीं सकता—चलो राम के स्वर्गीय पिता के ख़िलाफ़ एक झूठी नालिश दायर कर दो और उनकी छीछालेदर करा दो। इधर राम को जो यह पता लगा तो वह अपने पिता की ओर से पैरवी करने लगा—चलिए मुक़दमेबाज़ी आरम्भ हो गई। परन्तु उस दशा में इतनी बात अच्छी रहेगी कि दोनों पक्षों को अपनी-अपनी बात कहने का अवसर दिया जायगा। यदि ऐसा हो जाय तब तो कदाचित् प्रेतों से बचत हो सकती है—यद्यपि मुझे इसमें सन्देह है। यदि ऐसा नहीं हो सकता तो फिर प्रेतात्मवादियों का यह प्रचार कि प्रेतात्माएँ पीड़ा देती हैं, बड़ा ही ख़तरनाक है। इससे व्यर्थ लोगों के हृदय में भय का सञ्चार होता है। एक तो हम लोगों में देवी-देवताओं के मारे ही नाक में दम रहता है। पूजते-पूजते आयु ख़तम हो जाती है फिर भी पता नहीं चलता कि कौन देवता सच्चा है और कौन झूठा। उस पर यदि प्रेत भी लाद दिए गए तो बस फिर बेड़ा पार है! आज मङ्गल ग्रह का कोप है, कल राहु डाह रहे हैं, परसों अमुकेश्वर रुष्ट हो गए—अभी तो इसी से छुट्टी नहीं थी, अब प्रेतों के नख़रे भी उठाने पड़ेंगे। रहे डॉक्टर-वैद्य, सो वे केवल पशुओं की चिकित्सा करके अपना पेट पालेंगे—क्योंकि प्रेत लोग पशुओं को नहीं सतावेंगे। यदि किसी का कुत्ता-बिल्ली बीमार हो, तब तो डॉक्टर-वैद्य बुलाए जायँ, अन्यथा वही प्रेत और पिशाच-पुरोहितों की पूछ हो!

इस सम्बन्ध में मैंने एक व्यक्ति से प्रश्न किया। वह बैसवारे के रहने वाले हैं। मैंने उनसे पूछा—आप प्रेत को मानते हैं?

उन्होंने कहा—प्रेत! प्रेत को क्यों मानें, वह हमारा कोई रिश्तेदार लगता है?

"नहीं, मेरा मतलब यह नहीं है, मेरा मतलब यह है कि आप उसके अस्तित्व में विश्वास करते हैं?"

"हमें तो आज तक कोई भूत-प्रेत ससुरा मिला नहीं—हाँ सुनते हैं कि होते हैं। हमारी तो यह इच्छा है कि एक बार कहीं दर्शन हो जायँ, पर मिलते ही नहीं, न मालूम साले कहाँ चले गए। बड़े-बूढ़े लोग कहते हैं कि जब रेल नहीं चली थी तब थे, जब से रेल चली तब से लापता हो गए।"

मैंने पूछा—क्यों, क्या रेल में भर-भर कर किसी टापू में भेज दिए गए?

"नहीं, यह बात नहीं, रेल के चलने में जो शब्द होता है उससे भाग गए। दूसरे रेल में आग भी रहती है—आग से भी प्रेत बहुत डरते हैं।"

"ओहो! यह नई बात मालूम हुई। तब तो रेल से बड़ा लाभ हुआ।"

"हमारा तो नुक़सान हो गया। हमारी तो इच्छा थी कि ज़रा दर्शन कर लेते।"

"महाशय जी, जिस प्रकार ईश्वर के दर्शन दुर्लभ हैं उसी प्रकार प्रेतों के दर्शन भी दुर्लभ हैं—समझे! जो बड़े ज्ञानी, तपस्वी होते हैं प्रेत उन्हीं को दर्शन देते हैं, उन्हीं से बातचीत करते हैं और उन्हीं के घर में आते हैं। रद्दी-खद्दी, बेपढ़े-लिखे और अज्ञानी आदमियों को प्रेत दर्शन नहीं देते—उन्हें देखकर भागते हैं। समझे! हाँ, यह तो बताइए आप यह मानते हैं कि प्रेत मनुष्यों को पीड़ा दे सकते हैं?"

"कौन प्रेत? उनकी ऐसी-तैसी, वे बेचारे क्या पीड़ा देंगे। जो देह धारण करके कुछ न कर सका, वह मरने पर क्या कर सकता है? यह सब ढोंग है। न जाने रोज़ कितने ख़ून और हत्याएँ होती हैं—तो जनाब यदि प्रेतों में पीड़ा देने की सामर्थ्य होती तो जिसकी हत्या की गई वह प्रेत बनकर हत्यारे को रगड़ देता। परन्तु ऐसा नहीं होता—हत्यारों को यदि पुलिस न पकड़े तो वह आनन्द किया करें। तब जो अपनी हत्या करने वाले का कुछ अनिष्ट नहीं कर सकता, वह दूसरे का क्या बिगाड़ सकता है?"

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मैंने कहा—मित्र, कहते तो पते की हो। हमने भी आज तक ऐसा न देखा न सुना।

वह महाशय बोले—मुदा भइया एक बात है। रात में कहीं अँधेरे में जो अकेले जाते हैं, तो रोएँ खड़े होने लगते हैं।

"अच्छा! यह बात भी है?"

"हाँ!"

"क्यों?"

"लड़कपन में सब लोग भूत-भूत कह कर डराया करते थे, सो उसी कारण कभी-कभी ध्यान आ जाता है कि शायद भूत होते हों।"

उनकी यह बात सुन कर मुझे बड़ा खेद हुआ। मैंने सोचा—देखिए, यह स्वयम् तो इतने साहसी हैं कि प्रेत के दर्शनों के लालायित हैं, परन्तु बाल्यकाल के संस्कार हृदय में भय उत्पन्न करने की चेष्टा करते हैं।

सम्पादक जी! बाल्यकाल के संस्कारों का तो यह हाल है कि बुढ़ापे तक पिण्ड नहीं छोड़ते। अब जो जवानी में यह संस्कार पड़ गए कि प्रत्येक बात में प्रेतों की झलक देखने लगें तो बस, फिर क्या कहना है। पूरे तीसमार ख़ाँ हो जायँ।

ईश्वर इन बातों से बचावे। यदि प्रेत हैं तो, और नहीं हैं तो—हमारी बला से! हमारा वह कुछ बना-बिगाड़ नहीं सकते। इसी सिद्धान्त में हम लोगों का कल्याण है।

भवदीय,

—विजयानन्द (दुबेजी)

उसास

[रचयिता—श्री० "श्याम" विद्यार्थी]

(१)

जीवन की यह करुण-पहेली आ—
सुलझाएगा अब कौन?
मेरी इस सोई वाणा का—
आन जगाएगा अब कौन?

(२)

सूनेपन की सूनी घड़ियों में—
उत्थित होकर यह कौन?
बिलख-बिलख कर ठण्ढी साँसें,
देतीं किसे निमन्त्रण मौन?

(३)

ले किसको बिठला लूँ मन में,
तन में आज रमा लूँ मैं?
किसकी पुण्य-स्मृति में, प्रियतम!
आँसू चार बहा लूँ मैं?

(४)

किस अनन्त रोदन-वारिधि में,
जी की तपन बुझा लूँ मैं?
फिर योगी बन उसी किनारे—
लेकर अलख जगा लूँ मैं?

(५)

मत छेड़ो, यों हा रहने दो,
भग्न-हृदय को बन बेपीर!
देखूँगा कब तक तड़पेगा,
टूटे 'पिञ्जर' में यह कीर!!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्त्रियाँ बनाम पुरुष

[ले० श्री० शिवप्रसाद सिंह जी]

IN every part of the world, one of the general characteristic of the savages is to despise and disgrace the female sex.—*Robertson.*

अर्थात्—"संसार के प्रत्येक भाग में वहशियों का मुख्य स्वभाव स्त्री-जाति से घृणा करना और उनका निरादर करना है।"

स्वामी दयानन्द (सनातनी) अपने "सत्यार्थ-विवेक" में लिखते हैं:—

कन्याऽप्येवं पालनीया शिक्षणीयाऽतियन्ततः।

अर्थात्—"कन्याओं को भी अत्यन्त प्रयत्न के साथ पालना और शिक्षा देनी चाहिए।"

गत् पाँचवीं जनवरी को कलकत्ते में भाषण देते हुए कवि-सम्राट् श्री० ठाकुर रवीन्द्रनाथ कहते हैं:—

"स्त्रियाँ गृहस्थी की सच्ची लक्ष्मी हैं और देश को वर्गीय सुख देने वाली हैं।"

और महर्षि मनु ने तो यहाँ तक कहा है:—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

अर्थात्—"जहाँ स्त्रियों का आदर होता है वहाँ देवता वास करते हैं और जहाँ निरादर होता है, वहाँ सब कार्य निष्फल होते हैं।"

पर आज उनकी क्या दशा है?

हम अपनी स्त्रियों को परदे के बाहर नहीं निकलने देते, कहते हैं—'परदा छोड़ देने से वे स्वतन्त्र हो जायँगी, और उस स्वतन्त्रता का फल होगा उनमें दुर्व्यसनों का प्रचार' कैसी विचित्र बात है! आप तो स्वतन्त्र होकर दुर्व्यसनी न होंगे, पर उसी स्वतन्त्रता को पाकर स्त्रियाँ दुर्व्यसनी हो जायँगी! प्राचीन काल में परदा नहीं था तो क्या सब स्त्रियाँ दुर्व्यसनी ही हुआ करती थीं? नहीं, कदापि नहीं। सच तो यह है कि इस परदे की प्रथा ने समाज में क्या-क्या बुराइयाँ नहीं फैलाईं? आजकल की स्त्रियाँ जो अपने सतीत्व की भी रक्षा करने में नितान्त असमर्थ हैं, उसका एक मुख्य कारण है परदा। इसके लिए मुझे दलील देने की आवश्यकता नहीं, यह स्पष्ट है कि इस समय भी जो स्त्रियाँ परदा फाड़ कर बाहर निकल आई हैं वे आदरणीय समाज-सेवा कर रही हैं और जो अब तक परदे में हैं उनका विकास ही कुण्ठित हो रहा है। श्रीमान् तो देशाटन करने के लिए इङ्गलैण्ड, अमेरिका, स्विज़रलैण्ड आदि घूमने प्रति वर्ष निकल जाते हैं और उनके लिए यदि कोई स्थान है तो वह अपनी अँधेरी कोठरी से निकल कर शौच-गृह तक! कैसी दयनीय दशा है? परदे के कारण न वे पढ़ सकती हैं और न पढ़ा सकती हैं। सार्वजनिक सूचना-विभाग के डाइरेक्टर श्री० जे० कोट-मैने अपनी 'इण्डिया—२५-२६' में लिखते हैं—"प्रारम्भिक शिक्षा का प्रचार न होने का कारण अब तक भारतीय स्त्रियों का शिक्षा-विभाग से नितान्त पृथक् रहना है।" परदे के कारण वे बाहर निकल ही नहीं सकतीं, शिक्षा का प्रचार हो कैसे?

बाल-विवाह स्त्रियों को दुर्बल बनाने में पूर्ण सहायता दे रहा है। यह नहीं कहा जा सकता कि इस रोग में हिन्दू ही ग्रस्त हैं। भारत की मर्दुमशुमारी की १९२१ की रिपोर्ट में लिखा है कि "बाल-विवाह का प्रचार हिन्दुओं की ऊँची जातियों की अपेक्षा छोटी जातियों में अधिक है और यह केवल हिन्दुओं में ही प्रचलित नहीं है।" आगे उसमें यह भी लिखा है कि "बाल-विवाह की प्रथा में कमी चाहे जिस कारण से हो, पर तालिका देखने से पता चलता है कि अविवाहितों की संख्या बढ़ गई है, हिन्दू-समाज ने इस प्रथा को दूर करने का अपेक्षाकृत अधिक प्रयत्न किया है, पर अन्य धर्मावलम्बियों ने भी इस प्रथा को दूर करने का प्रयत्न किया है। १० वर्ष से १५ वर्ष की अवस्था वाली स्त्रियों और १० से २० वर्षीय अवस्था वाले पुरुषों की संख्या में इस आन्दोलन के प्रचार का प्रभाव आश्चर्यजनक हुआ है। बङ्गाल और बिहार-उड़ीसा में अवस्था की बढ़ती अच्छी है। १० से १५ तक अवस्था वाले अविवाहित पुरुषों की संख्या प्रति सहस्र ८२६ से जो सन् १८९१ में थी, बढ़कर स १९२१

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में ८६८ प्रति सहस्र पहुँची है। लड़कियों की दशा और भी देखने योग्य है। बङ्गाल और बिहार-उड़ीसा की अविवाहिता लड़कियों की प्रति सहस्र संख्या निम्न-लिखित अवस्थाओं में दी जाती है :—

सन्	५ से १० वर्ष	१० से १५ वर्ष
१९२१	... ८९१ ...	... ४९४
१९११	... ८५१ ...	... ४२२
१९०१	... ८३६ ...	... ४०२
१८९१	... ८२७ ...	... ३७२

ठीक, क्या तीव्र उन्नति है! पूरे तीस वर्ष में प्रति सहस्र ५-१० वर्ष की अविवाहिता बालिकाओं की संख्या ६४ और १०-१५ वर्ष की अवस्था वालों की संख्या १२२ बढ़ी है; ख़ैर। अल्पायु वालों में २ से कुछ अधिक का प्रति सहस्र प्रति वर्ष का औसत है। एक बात और ध्यान देने योग्य यह है कि ये अङ्क उन प्रदेशों के हैं, जहाँ बाल-विवाह का प्रचार अन्य प्रदेशों से कम था।

नीची जातियों में बाल-विवाह के अधिक प्रचार का कारण उनकी अशिक्षित अवस्था ही है। ऊँची जातियाँ ज़्यादा पढ़ी-लिखी हैं। शिक्षा के ही प्रचार से समाज की उन्नति होती है। मारवाड़ी-समाज में इस प्रथा के होने का कारण उनका अज्ञान ही है। पर जो मारवाड़ी भाई कुछ देश देख चुके हैं, उनके हृदय में अपने देश के सुधारने की लगन अवश्य पैदा हो गई है; इससे भविष्य आशाजनक प्रतीत होता है। पर सरकार ने जो प्रयत्न शिक्षा-प्रचार के लिए किया, वह ज़ाहिर-ज़हूर है। स्वर्गीय श्री० गोपाल कृष्ण गोखले का अनिवार्य शिक्षा-सम्बन्धी बिल केवल इस बात पर अस्वीकृत किया गया था कि 'रुपया नहीं है।' पर यूरोपियन और डायरों को पेन्शन देने के लिए सदा रुपया रहता है। कोटमैन साहब भी अपने "इण्डिया २५-२६" में लिखते हैं—"सरकार की शिक्षा-विषयक नीति के आलोचकों को याद रखना चाहिए कि भारत को शिक्षित करना एक महाद्वीप को शिक्षित करना है और इसमें अत्यधिक धन की आवश्यकता है।" ख़ूब! 'महाद्वीप' को शिक्षित करना है तो 'महाद्वीप' से ज़ालिमाना कर भी तो लिया जाता है!

पर क्या करें, हमारे शिक्षक और सरपरस्त बनने वालों को हमारी इस दशा पर भी दया नहीं आती, और जब श्री० हरविलास शारदा अपना बाल-विवाह-विषयक बिल बड़ी धारा-सभा में पेश करते हैं, तो सरकार के भूतपूर्व स्वराष्ट्र-सचिव सर अलेक्ज़ैण्डर मुडीमैन बड़े आवेश के साथ कहते हैं—"महाशयो! मैं यह प्रथा तोड़ना नहीं चाहता कि बिल पेश करते समय उसे न टोका जाय, परन्तु चूँकि यह बिल एक अजीब ढङ्ग का है, इसलिए इस पर भारत-सरकार की स्वीकृति की आवश्यकता है। भारत-सरकार की ओर से जो कुछ मुझे कहना है वह यही है कि मैं इसके पेश होने के बाद इसके विषय में प्रत्येक प्रस्ताव का विरोध करूँगा, सिवाय इसके कि यह जनता की राय लेने के लिए प्रकाशित किया जाय।"

ख़ूब! जनता की राय लेना सरकार के लिए वाञ्छनीय वस्तु है। पर क्या मैं इतना पूछ सकता हूँ कि इसी बिल के लिए जनता की राय ली गई या और भी कभी? क्या ही अच्छा हुआ होता, यदि माननीय होम मेम्बर काकोरी डकैती के अभियुक्तों और बङ्गाल के नज़रबन्दों के बारे में भी जनता की राय पर इतना ही महत्व देते।

हमारे समाज में एक बात बड़ी लज्जाजनक है, वह है पुरुषों का स्त्रियों को पीटना और उनका निरादर करना। यह रोग अनपढ़ों से पढ़े-लिखे लोगों में अधिकता से पाया जाता है। कुछ उदाहरण लीजिए :—

(१) पण्डित × × × की स्त्री ने प्राण दे दिया। पता लगा कि उसकी यह इच्छा नहीं थी कि पण्डित जी मुवक्किलों से घूस लिया करें। पण्डित जी सरिश्तेदार थे, घूस न लें तो काम न चले। स्त्री ने कई बार समझाया। इस पर यह कहकर कि 'तू मुझको उपदेश देने चली है' उस पर टूट पड़े और फिर कई दिन तक उससे बोले तक नहीं। स्त्री ने दूसरा रास्ता न देख कर, विष खाकर प्राण दे दिए। पुलिस ने मुक़दमा चलाना चाहा, पर वहाँ भी घूस की विजय रही।

(२) एक कन्या-पाठशाला की अध्यापिका की पुत्री ने, जो विवाहिता हैं और उसी पाठशाला में काम करती हैं, मेरी बहिन कमला से एक दिन ज़हर माँगा। कमला एक ६-७ वर्ष की भोली लड़की है। वह क्या जाने कि ज़हर क्या होगा? अध्यापिका यह जानती थी कि मेरे यहाँ औषधियों के तौर पर कुछ ज़हर भी रहता है। कमला ने वादा कर लिया कि 'भैया जब कहीं चले जायँगे

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तो उनकी आलमारी खोल कर ला दूँगी।' यह बात अध्यापिका की माता को मालूम होगई। वे दौड़ी-दौड़ी मेरे पास आईं और मुझे आलमारी की ताली सुरक्षित स्थान में रखने के लिए बाध्य किया। विष खाने का कारण पूछने पर पता चला कि उनके पति उनको अकारण ही पीटते रहते हैं।

(३) तहसीलदार साहब बचपन से ही अप्राकृतिक व्यभिचारी हैं और लज्जावश आपने विवाह कर लिया। फलतः पत्नी भी व्यभिचारिणी है। घर में दिन-रात देवा-सुर-संग्राम हुआ करता है। एक पुत्र तथा एक बाल-विधवा पुत्री है। वह तहसीलदार साहब के साथ ही रहती है। माता की देखा-देखी वह भी व्यभिचारिणी है। तुर्रा तो यह है कि पिता का माशूक़ पुत्री का आशिक़ है। पुत्र सदाचारी है और उसने पिता को बुरे पथ से बचाने के लिए बहुत से व्यर्थ-प्रयत्न किए—तहसीलदार साहब धार्मिक इतने हैं कि बिना 'श्रीगणेशाय नमः' लिखे कोई कार्य ही आरम्भ नहीं करते।

(४) पण्डित जी कथावाचक हैं, पर हैं मांसाहारी! उनकी स्त्री ने कभी मांसाहार किया ही नहीं। मांस पकाना नहीं आता—कभी नमक अधिक हो जाता है तो कभी मांस जल जाता है। यहाँ भी पण्डिताइन जी की पीठ-पलस्तर की जाती है।

(५) हेडमास्टर साहब नपुंसक हैं। लुई कुहनी का वॉथ और शिलाजीत का सेवन करते-करते थक गए, पर सब व्यर्थ। तिस पर जान-बूझ कर शादी कर ली। सन्तान न होने से दुखी हैं। और उसका रञ्ज स्त्री की पीठ पर घूँसा बजाकर निकालते हैं। उनकी पत्नी पढ़ी-लिखी है। जहाँ तक मुझे परिचय है, उसने अपने मुँह यह बात अपने किसी प्रिय से भी न कहा होगा—यह मैंने स्वयं अपने नेत्रों देखा है।

(६) एक कहते बड़ी हँसी आती है। पेशकार साहब कमज़ोर कायस्थ हैं। आपके हाकिम कलक्टर साहब ताज़ा-ताज़ा फ़ौज से आए हैं। जब कोई बात साहब के समझ में नहीं आती तो फ़ौरन पेशकार के मुँह पर एक चाँटा जमाते हैं। पेशकार साहब भी बड़े बहादुर हैं। दिन भर गिनते जाते हैं और सन्ध्या-समय उनका वर्ग निकाल कर, अपनी पत्नी ही को साहब मानकर उसी से बदला लेते हैं। भई वाह !!

उपरोक्त कतिपय प्रमाणों से पुरुषों की निरङ्कुशता का पता चल सकता है। मैं यह नहीं कहता कि पीटने का रोग अनपढ़ों में है ही नहीं, पर जिस रोग की आशा जहाँ न हो और वह रोग वहाँ अधिक रूप में पाया जाय तो उससे बढ़कर लज्जाजनक बात और क्या हो सकती है? मेरे विचार में इसकी एक ही औषधि है—प्रत्येक गाँव और मुहल्लों में नवयुवकों का एक ऐसा दल स्थापित किया जाय, जो ऐसे पतित पतियों का पता लगाया करे और जब घटना पूर्ण रूप से प्रमाणित हो जाय तो तत्काल किसी स्थानीय समाचार-पत्र में प्रकाशित करा दे और ग्राम में उस पुरुष के इस दुर्व्यवहार के विरुद्ध सभाएँ करे। यह कार्य नवयुवकों के हाथ में लेने से ही सफल होगा। आशा है, कदाचित् वह पुरुष लोक-लज्जा से अपना अमानुषिक कार्य छोड़ दे।

यहाँ मुझे एक बात याद आती है। एक दिन नैपोलियन अपने दो सरदारों के साथ फ़ौज की छावनी में घूम रहा था कि एक ग़रीब मोदी की स्त्री से साक्षात् हो गया, जो एक पञ्च वर्षीय बालक की उँगली पकड़े हुए फूट-फूटकर रोती जा रही थी। वह सम्राट् नैपोलियन को नहीं पहचानती थी। समझती थी कि कोई साधारण कप्तान होगा। नैपोलियन ने घोड़ा रोक कर उस स्त्री से उसके रोने का कारण पूछा। स्त्री घबराई हुई थी, उसने कोई उत्तर न दिया। परन्तु लड़के ने बेधड़क उत्तर दिया कि मेरी माँ इसलिए रो रही है कि मेरे बाप ने इसे मारा है।

"तुम्हारा बाप कहाँ है?"—नैपोलियन ने पूछा।

"वह पास ही पहरे पर हैं।"

नैपोलियन ने स्त्री से उसके पति का नाम पूछा। स्त्री ने बताने से इन्कार कर दिया। वह सोचती थी, कप्तान उसको सज़ा दे देगा।

नैपोलियन ने कहा—तुम्हारा पति तुमको पीटता है, तुम रो रही हो, तिस पर भी उसके दुख पाने से तुम इतना डरती हो कि मुझको उसका नाम भी नहीं बतलातीं। यह ठीक नहीं है। क्या यह नहीं हो सकता कि तुम्हीं दोषी हो?

स्त्री ने उत्तर दिया—कप्तान साहब, उनमें सहस्रों गुण हैं। हालाँ कि एक उनमें बड़ा बुरा दोष भी है। वह एक अविश्वासी पुरुष हैं और जब उनको क्रोध आ जाता

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है तो वह आपे से बाहर हो जाते हैं। मैं उनको प्यार करती हूँ; क्योंकि वह मेरे धार्मिक पति हैं और मेरे प्यारे पुत्र के पिता हैं।

"तुम और तुम्हारा पति एक दूसरे को प्यार करो या न करो; परन्तु मैं यह नहीं चाहता कि वह तुमको पीटे। अपने पति का नाम बतलाओ और मैं सब मामला 'सम्राट्' से कहूँगा।" सम्राट् नैपोलियन ने कहा।

"यदि आप स्वयं सम्राट् होते तो भी मैं उनका नाम न बतलाती; क्योंकि मैं जानती हूँ कि वह दण्ड पावेंगे।"

"कैसी मूर्ख स्त्री है! मैं केवल यही चाहता हूँ कि उसको तुम्हारे साथ अच्छा बर्ताव करने के लिए शिक्षा दे दूँ।" यह कहते हुए उसने घोड़ा दौड़ाया और अपने ख़ेमे में जाकर सामान-रक्षा के अधिकारी को बुला भेजा। अधिकारी से उसने उस स्त्री के पति के बारे में पूछा।

अधिकारी ने उत्तर दिया—वह अपनी टोली में सब से अच्छा आदमी है। पर वह अपनी स्त्री से अकारण ही ईर्ष्या रखता है। उसकी स्त्री के चाल-चलन के विरुद्ध कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

"यह पता लगाओ कि उस सिपाही मोदी ने मुझे देखा है या नहीं? यदि नहीं, तो उसे यहाँ लाओ।" सम्राट् ने कहा।

वह सिपाही नैपोलियन को नहीं पहचानता था। जब वह सामने आया, तो उसने पूछा—मेरे बच्चे! क्या कारण है कि तुम अपनी पत्नी को पीटते हो? वह एक सुन्दर युवती है और वह अपने पतिधर्म को तुम्हारे पति-धर्म-पालन से अच्छी तरह पालन करती है। एक फ्रान्सीसी योद्धा के लिए यह एक लज्जा की बात है।

"सरकार! मैंने अपनी स्त्री को किसी भी पुरुष से बात करने से मना कर दिया था, चाहे वह कोई क्यों न हो, तिस पर भी वह मेरे साथियों से बात करने से बाज़ नहीं आती।" उसने उत्तर दिया।

"यही तो तुम्हारी भूल है! तुम एक स्त्री को बात करने से मना करना चाहते हो; तुम इसी तरह डेन्यूब (Danube) नदी का पथ बदलने का भी प्रयत्न कर सकते हो। मेरा कहना मानो; शक्की मत बनो—अपनी पत्नी को बात करके प्रसन्न-चित्त रहने दो। यदि वह अपराध करेगी तो प्रसन्न रहने की अपेक्षा वह स्वयं दुखी रहेगी। मैं चाहता हूँ कि तुम अपनी पत्नी को फिर न मारो। अगर तुम मेरी आज्ञा न मानोगे तो मैं सम्राट् से तुम्हारी शिकायत करूँगा। मान लो, यदि सम्राट् तुमको डाँटें तो तुम क्या कहोगे?" नैपोलियन ने कहा।

"मेरी स्त्री मेरी ही है और यदि मैं चाहूँ तो उसे पीट भी सकता हूँ। उस दशा में मैं सम्राट् से कहता कि आप अपने शत्रु को सँभालिए और मुझे अपनी पत्नी को स्वयं ठीक करने के लिए छोड़ दीजिए।"—सिपाही ने उत्तर दिया।

नैपोलियन हँस पड़ा और बोला—अजी, ख़्याल करो, तुम सम्राट् से बातें कर रहे हो।

अपराधी घबरा गया, उसका सिर नीचे हो गया और नम्रतापूर्वक बोला—सरकार! तब तो बात दूसरी है। जब आपकी आज्ञा है तो मुझे अवश्य माननी पड़ेगी।

"ठीक है। मैं तुम्हारी स्त्री की बड़ी प्रशंसा सुनता हूँ। उसने तुमको दण्ड दिलाने की अपेक्षा मेरी अप्रसन्नता सहन करना उपयुक्त समझा। उसके साथ दया का बर्ताव करो। ध्यान रक्खो, यदि फिर कभी मैंने सुना कि तुम अपनी पत्नी को पीटते हो, तो मैं तुम्हारे साथ भी सख़्ती का बर्ताव करूँगा।"

कई वर्ष पश्चात् नैपोलियन ने फिर उस स्त्री से पूछा—अब तुम्हारी क्या दशा है? क्या तुम्हारे पति ने जो प्रतिज्ञा मुझसे की थी, उसको पूरा किया?

"हाँ सरकार! जब से मुझको सरकार के दर्शन हुए तब से संसार में मैं सबसे भाग्यवती स्त्री हूँ।"—उसने उत्तर दिया।

सम्राट् नैपोलियन के जीवन-काल की एक दूसरी घटना लीजिए:—

नैपोलियन का एक सरदार वियना (Vienna) में एक साधुनी के यहाँ ठहरा हुआ था। एक दिन उसने शराब के नशे में उसको एक प्रेम-पत्र लिखा। उस स्त्री ने तत्काल सेनापति अण्ड्रोसी के पास रक्षा के निमित्त प्रार्थना की और उक्त प्रेम-पत्र भी प्रार्थना-पत्र के साथ भेज दिया। सेनापति अण्ड्रोसी ने प्रार्थना-पत्र और प्रेम-पत्र दोनों सम्राट् नैपोलियन के पास भेज दिया। नैपोलियन ने उस सरदार को दूसरे दिन परेड पर उपस्थित होने की तत्काल आज्ञा दी। निश्चित समय पर नैपोलियन महल के बाहर निकला और अपने हाथ में पत्र लिए

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सीधा सेना की ओर गया। सेना में जाकर उसने कहा--श्रीयुक्त × × × बाहर निकल आवें।

जब सरदार बाहर निकल आया तो नैपोलियन ने उस सरदार से क्रोधपूर्वक पूछा—क्या यह गन्दा पत्र तुम्हीं ने लिखा है?

सरदार ने घबराकर कहा—सरकार, क्षमा करें। मैं उस समय नशे में था और नहीं जानता था कि मैं क्या कर रहा हूँ।

"तुम एक साध्वी से, जो आदर-योग्य है; परन्तु युद्ध की आपदाओं से घिरी हुई है, बलात्कार करना चाहते हो! मैं तुमको लीजियन ऑफ़ ऑनर (Legion of Honour) के पद से हटाता हूँ। तुम उस आदरणीय पद पर रहने के योग्य नहीं हो। सेनापति डरसोन! देखना, मेरी आज्ञा का पालन करना। एक बूढ़ी स्त्री का सतीत्व भ्रष्ट न करना! मैं एक बूढ़ी स्त्री को अपनी माता के समान आदर करता हूँ।"--नैपोलियन ने कहा।

सचमुच स्त्रियाँ वह देवी हैं, जिनके सामने सब लोग सिर नवाते हैं। यह न समझिए कि स्त्रियाँ खिलौना हैं। इनके हृदयोद्गार परम पिता के पास जल्दी पहुँचते हैं। द्रौपदी चीर-हरण के कारण ही कौरव-वंश का नाश हुआ। सीता-हरण से रावण-वंश का नाश हुआ। चित्तौड़ की राजपूत-सतियों की हृदयाग्नि ने मुग़ल-वंश का इस तरह नाश किया कि आज कोई उनके नाम पर रोने वाला भी नहीं है।

वृद्ध-विवाह आदि से भी समाज में बहुत सी कुरीतियाँ फैल गई हैं, और उनकी भी औषधि वही नवयुवक-दल का सङ्गठन है। देश को आज दास-वृत्ति की स्त्रियों की आवश्यकता नहीं है। देश को आज खिलौने और बालकों की आवश्यकता नहीं है। आज वीर-माताएँ, वीर बहिनें और वीर-पत्नियों की आवश्यकता है। हमें तो आज एलोर की अन्नपूर्णा देवी सदृश पत्नियों की आवश्यकता है, जिन्होंने अपने पति को अमेरिका में सन्देशा भेजा था—"आप मुझे भूल सकते हैं, पर अपने देश को न भूलिएगा।"

हमें आज काकोरी-डकैती में फाँसी पाने वाले रामप्रसाद 'बिस्मिल' की माता की तरह माताओं की आवश्यकता है, जिन्हें अपने हृदयांश को भारत-माता की स्वतन्त्रता की बलि-वेदी पर आहुति करते हर्ष होता है। अपने पुत्र की मृत्यु के पश्चात् वह पूजनीया जननी कहती है—"मैं पुत्र की इस प्रकार की मृत्यु से दुखी नहीं हूँ। तुम लोग सत्य न छोड़ना और सत्य के लिए मर मिटना। मैं राम-सा ही पुत्र चाहती हूँ।" आप स्त्रियों का निरादर करके ऐसी माताएँ और बहिनें नहीं बना सकते, बल्कि उनका आदर करके ही बना सकते हैं।

अभिमन्यु की वीर जननी सुभद्रा का अर्जुन सदा आदर करते थे। कोर्सिका का प्रसिद्ध वकील लुई बोनापार्ट अपनी पत्नी श्रीमती लेटिशिया का सदा आदर करता था।

परन्तु स्त्रियों को भी द्विजेन्द्र बाबू के निम्न-लिखित शब्दों को कण्ठस्थ कर लेना चाहिए :—

"जो पति अपनी स्त्री का आदर करता है, उसकी पूजा सभी स्त्रियाँ करती हैं। वास्तविक साध्वी वही है, जो अपने पति के उन्हीं पैरों की पूजा करती है, जिनसे वह उसे मारता है। जिसकी पति-भक्ति का वियोग होने पर भी क्षय नहीं होता, पति के निष्ठुरता दिखलाने पर भी ह्रास नहीं होता, जिसकी पति-भक्ति अन्धकार में चन्द्रमा के समान शान्त, आँधी में पर्वत के समान दृढ़ और घूमने में तारों के समान स्थिर हो, जिसकी पति-भक्ति सब अवसरों पर, सब अवस्थाओं में, विश्वास के समान स्वच्छ, करुणा के समान अयाचित और मातृ-स्नेह के समान निरपेक्ष हो, वही सच्ची साध्वी है।"

हमारे सुधार का लक्ष्य प्रतिस्पर्धा कदापि न होना चाहिए, बल्कि सदैव यह स्मरण रखना चाहिए कि बिना स्त्री-पुरुषों के सम्मिलित उद्योग के हमारे देश का उत्थान नहीं हो सकता और देश का उत्थान ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए। जिन कुरीतियों और कतिपय सुधारों की ओर ऊपर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया गया है, आशा है पाठकगण इन पर अवश्य विचार करेंगे।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सेवा-धर्म

एक अनन्त अतीत काल से इस निखिल विश्व में सेवा-धर्म के मोहक सङ्गीत की मधुर ध्वनि होती आ रही है। सेवा-धर्म का पालन करने के लिए मनुष्य के हृदय में दो ही भावनाएँ उद्भूत होती हैं। प्रथम भावना मनुष्य को इस ओर आकर्षित करती है कि वह सेवा को—पर-हित को मनुष्य-धर्म का एक अतीव प्रधान अंश समझे। इस भावना से आक्रान्त हो मनुष्य केवल निरुद्देश्य लक्ष्य से सेवा-धर्म अर्थात् पर-हित में प्रवृत्त होता है, यह भावना मनुष्य के हृदय को पर-दुख-कातरता से मथ डालती है—यह भावना दैवी है। इस भावना से भावान्वित हो जो जन सेवा-धर्म के लिए अपने अस्तित्व को उत्सर्ग कर देते हैं, संसार उन्हें अपने हृदय के बहुमूल्य, बहुसम्मान्य आसन पर स्थान देता है, उनकी यश-दीप्ति से संसार अनायास ही मुखरित हो उठता है। परन्तु इस भावना से सेवा-धर्म का पालन करने वाले जन विरले ही दिखाई देते हैं, इसीलिए संसार शोक-सन्ताप की लीला-भूमि के दृश्य दिखा रहा है।

दूसरी भावना वह है, जिससे मनुष्य अपने अन्तस्तल के एक कोण में अपनी श्रेष्ठता या ख्याति के भाव ले सेवा-धर्म का पालन करने के लिए, वेगवत् आँधी के समान क्षेत्र में अवतीर्ण होते हैं। परन्तु ऐसे मनुष्यों की अभिलाषा कभी पूर्णता की सीमा का स्पर्श नहीं कर पाती। इसका कारण यह है कि वे अपनी इच्छित श्रेष्ठता का मूल्य देने में सर्वथा ही असमर्थ रहते हैं। इतना ही नहीं, श्रेष्ठता की कुत्सित कामना उन्हें संसार को कुछ देने की अपेक्षा, उससे कुछ ग्रहण कर लेने का ही प्रलोभन देती है। यह भावना आसुरी है, संसार का ग्रास करने वाली है, इससे संसार के लाभ की आशा करना कोरी मृग-मरीचिका है। यही भावना है, जिसके कारण संसार में वैतरणी का भैरव-नाद हो रहा है, और जिसके कारण आज अनन्त काल से संसार अशान्ति के अञ्चल में आकुल हो रहा है। इस प्रकार सेवा-धर्म का पालन करने वालों को संसार क्यों सम्मान्यपूर्ण सौहार्द्र-दृष्टि से देखेगा! विस्मृति के महासागर में ऐसे कितने जीव भरे पड़े होंगे, इसकी गणना करने में कौन समर्थ है?

जिन्होंने संसार-तत्व के अन्वेषण में अपनी आयु का सर्वांश व्यय कर दिया है, उनका स्वर्ण-कथन तो यही है कि पर-सेवा करना, केवल अपनी सेवा करना है। यह विचार नितान्त दृढ़ है; क्योंकि समष्टि के हित में ही एक का और समाज के हित में ही व्यक्ति का हित निहित है। जो जन सेवा-धर्म के इस सत्य स्वरूप का चिन्तन निष्काम-भावना से करते हैं, वे शीघ्रता-पूर्वक सफलता को प्राप्त होते हैं, और उनकी योजना उज्ज्वल, स्थिर और उच्च परिणाम पर पहुँचती है। मनीषिजनों ने इसी उज्ज्वल आकर्षण से प्रलुब्ध हो, विश्व को उपदेश दिया है—अहिंसा परम धर्म है। किसी भी मत-प्रवर्त्तक महात्मा ने यह नहीं कहा कि अहिंसा या दया उपेक्षणीय पदार्थ है। परन्तु संसार में सेवा-धर्म की भेरी गुँजाने वाले ऐसे कितने महज्जन हुए हैं, जिन्होंने इस ठोस सत्य की अपेक्षा

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की हो! यदि ऐसे जनों की संख्या अधिकता से हुई होती, जिन्होंने अहिंसा की परम साधना करते हुए सेवा-धर्म का पालन किया होता, तो आज संसार में सुख-शान्ति की अजस्र धारा प्रवाहित होती दीखती।

एक विद्वान् का कथन है—"जो दुख, शोक, परतन्त्रता और विवशता दूर करने के लिए प्रयत्नशील होते हैं और प्रधानतः जो दीन-जनों को अपनी विशाल भुजाओं की छाया में आश्रय देते हैं, वे ही सच्चे पर-दुख-भञ्जन—सच्चे जन-वल्लभ का महत् पद प्राप्त करते हैं। संसार में जो थोड़े से जीवन-कण दिखाई देते हैं, वे इन्हीं धार्मिक जनों की गाढ़ी कमाई के परिणाम हैं। जिस समाज के एक-एक व्यक्ति की यह भावना रहती है कि मैं अवसर प्राप्त होते ही सेवा-धर्म के किसी भी अंश के पालनार्थ अपने अस्तित्व को भी उत्सर्ग कर दूँगा, वही समाज उन्नति के मधुर फलों का आस्वादन लाभ करता है। परन्तु धर्म के इस महा-मन्त्र से दीक्षित जन अत्यन्त विरल ही दिखाई देते हैं। यद्यपि उपदेशकों की संख्या में न्यूनता नहीं होती, पर कहना और कर दिखाना दो भिन्न बातें हैं, जो बहुधा परस्पर विरोधिनी होती हैं।

यह सत्य है कि प्रत्येक मनुष्य, वह चाहे जैसी परिस्थिति में क्यों न हो, सेवा-धर्म का कुछ न कुछ पालन अवश्य कर सकता है, वह अपने द्रव्य से, अपने शरीर से और अपने सङ्कल्प से जन-साधारण का कुछ न कुछ हित अवश्य कर सकता है; पर सङ्कीर्ण और लुब्ध वृत्ति उसे ऐसा करने से स्तम्भित कर देती है। इन वृत्तियों का दास चाहे जैसा ऐश्वर्यशाली, चाहे जैसा बलशाली और चाहे जैसा विद्यावान् क्यों न हो, वह सर्वदा यही कहता रहेगा—'क्या करें भई, इच्छा तो बहुत रहती है कि मैं भी कुछ करता, पर परिस्थिति ऐसी है, वैसी है।' इन ऐसी-वैसी परिस्थिति का रोना रोने वाले अन्त में सब कुछ यहीं छोड़, अनन्त-पथ के पथिक हो जाते हैं। जिस व्यक्ति से पर-हित साधन न हुआ वह तो पशु से भी तुच्छ है, क्योंकि पशु का जीवन तो सदा पर-हित में ही व्यय होता है, और जो व्यक्ति सदा स्वार्थ-चिन्तन में रत रहा वह पशु से किस बात में कम है, पशु में भी तो स्वार्थ-साधन की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

परन्तु यथार्थ तो यह है कि धर्म का रास्ता कुछ टेढ़ा होता है, उस पर अतिक्रमण करने से कुछ न कुछ कठिनाई होती है और कायर आत्माएँ कठिनाइयों से भयातुर हो उठती हैं। इसीलिए सेवा-धर्म का पालन करने में मनुष्य अपनी असमर्थता के कुछ न कुछ बहाने गढ़ लेता है। अनादि-काल से दशों दिशाओं से छलना, प्रवञ्चना का एक अक्षम्य स्वर सुनाई दे रहा है—'आह! यदि मेरे पास द्रव्य की प्रचुरता होती तो मैं न जाने क्या कर डालता। यदि मुझमें पूर्ण पाण्डित्य होता तो मैं संसार को ज्ञानालोक से प्रकाशित कर देता।' ऐसे लोग संसार के साथ, समाज के साथ और स्वयं अपने साथ विश्वासघात करते हैं। ऐसे लोग घोर अन्धकार में खद्योत की नाईं झलक दिखा कर सर्वदा के लिए तिरोहित हो जाते हैं।

सूर्य सेवा-भाव का कैसा उत्कृष्ट उदाहरण है—उसकी सेवा-साधना कैसी गहन है। काल की अक्षुण्ण निर्झरिणी प्रवाहित होते संसार न जाने कहाँ का कहाँ जा पहुँचा, पर सूर्य अब भी उसी भावना से, उसी स्थिर गति से अपनी महोज्ज्वल साधना में प्रवृत्त है, अब भी वह स्वयं को उसी प्रकार तप की महाग्नि में कण-कण करके भस्मसात् कर रहा है। और यह किस लिए? केवल इस सुविशाल ब्रह्माण्ड की सेवा के लिए—उसके महदुपकार के साधनार्थ! परन्तु क्या संख्यातीत तारागण के सेवा-धर्म की लगन उपेक्षणीय है। नभ-मण्डल में सूर्य के उदित होते ही वे आकाश के सुनील, सुविस्तृत अञ्चल में मुँह छिपा लेते हैं, और उसके अस्त होते ही गगनाङ्गण में क्रीड़ा करने आ पहुँचते हैं। आँख-मिचौनी का यह खेल कब से हो रहा है, पर तारागण की सेवा-साधना की वह लगन अब भी ज्यों की त्यों है! अवसर पाते ही वे अपनी क्षीण शक्ति को सम्मिलित कर विश्व को अन्धकार से प्रकाश में ले जाने की चेष्टा में संलग्न हो जाते हैं।

क्या तारागण की इस सतत एवं अविश्रान्त साधना में शिक्षा का कुछ तत्व नहीं है। तुमसे कौन कहता है कि तुम इन्द्र का ऐश्वर्य, कुबेर की सम्पत्ति, वायु का बल और बृहस्पति की विद्या लेकर, वरुण की नाईं सेवा-क्षेत्र में समुपस्थित हो जाओ। जो तुम्हारे पास नहीं है, तुमसे उसका हिसाब ही कौन माँगता है? हाँ, जो तुम्हारे पास है, संसार उसे अवश्य चाहता है, और उसे पत्र-पुष्प के समान सेवा-धर्म के अर्पण कर देना तुम्हारा मानवी धर्म

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। इसी में तुम्हारा, तुम्हारे समाज का, तुम्हारे देश का और संसार का कल्याण है। इसी से तुम्हारे दोनों लोक बनेंगे।

जो कुछ तुम्हारे पास है, वस्तुतः तुम उसके स्वामी नहीं हो। वह तो तुम्हारे निकट विश्वपति की धरोहर है, जो तुम्हें इसलिए दी गई है कि तुम उससे विश्व-नियन्ता की सन्तानों की कुछ कल्याण-साधना कर सको! यदि तुम इस परम सत्य, परम धर्म से च्युत होगे, तो दुखियों का अतिक्रन्दन ईश्वर के समक्ष तुम्हारी पुकार करेगा, जहाँ तुम्हारी जिह्वा कुण्ठित हो जायगी। तुम्हें कोई अधिकार नहीं है कि एक दीन मनुष्य, एक मुट्ठी चनों के लिए तुम्हारे सामने हाथ फैलावे और तुम उस पैसे से जिसके द्वारा उस क्षुधाकुल जन के प्राणों को कुछ आधार हो जाता, पान खाकर थूक दो। क्या यह सौजन्य पर अत्याचार नहीं है? क्या यह मनुष्यता का गला घोटना नहीं है?

स्मरण रखना चाहिए कि जनता में जनार्दन की सजीव प्रतिभा विलास करती है। जनता का हित-साधन करना मानो जनार्दन की सेवा करना है। जनता के आत्म-सन्तोष में ही जनार्दन आह्लादित होते और उस सेवा-धर्म के साधक की ओर मुस्करा कर देखते हैं—उस पर उनकी स्नेह-धारा अजस्र रूप से दया का वर्षण करती है, जिससे वह अनायास ही अमरत्व को—देवत्व को प्राप्त हो जाता है। इसीलिए कहते हैं कि सेवा का महत्व अत्यधिक है, उसकी साधना व्यक्ति और समष्टि का हित करती है, वह जगत्-वत्सल माता है, संसार का जीवन है। सेवा जनार्दन को वशीभूत करने का मोहन मन्त्र है, सेवा मनुष्यों का अमरत्व और देवों का देवत्व है—सेवा परम धर्म है। महात्मा तुलसीदास जी ने भी कहा है—"पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।"

—ज़हूरबख़्श

* * *

झूसी

—

प्रयाग में श्री० गङ्गाजी के बाएँ किनारे झूसी नाम की एक पुरानी बस्ती है। इस स्थान में एक प्राचीन क़िला बना है, जिसके भीतर गढ़े हुए पत्थरों का एक कुआँ है, जो समुद्र-कूप कहलाता है। रायबहादुर बाबू सीताराम जी, बी० ए० ने लेखक से उसके देखने का आग्रह किया, इसलिए २१ जून को मैंने कई मित्रों के साथ उसका अवलोकन किया और जो कुछ मुझे वहाँ पर देखने को मिला और उससे जो अनुमान मेरे चित्त में उमड़ा उसको मैं प्रकाशित कर देना इसलिए आवश्यक समझता हूँ कि झूसी की ओर कदाचित् किसी पुरातत्ववेत्ता का ध्यान आकृष्ट हो जाय और झूसी के दुर्ग पर अधिक प्रकाश डालने की सामग्री मिल सके। सम्भव है, पुरातत्व-विभाग की किसी रिपोर्ट में इसका वर्णन दे दिया गया हो, परन्तु वह मेरे सामने नहीं है और कटनी में, जहाँ से मैं लिख रहा हूँ, ऐसा पुस्तकालय नहीं, जिसकी सहायता से झूसी का प्राचीन इतिहास लभ्य हो सके। बाबू सीताराम साहब का अनुमान है कि कदाचित् यह दुर्ग समुद्रगुप्त ने बनवाया हो, क्योंकि उनके विजय का वर्णन मुसलमानी क़िले में एक शिला-स्तम्भ पर अङ्कित है और झूसी के कुएँ का नाम भी उस सम्राट् के नाम से मिलान खाता है। जिस राजा का प्रयाग में कीर्ति-स्तम्भ खड़ा किया गया उसके ठहरने के लिए कोई दुर्ग भी रहा होगा। बाबू साहब का ख़्याल है कि झूसी का क़िला ही उस चतुर्थ शताब्दी के राजा की द्वितीय राजधानी अथवा अल्पकालिक निवास-स्थान था।

झूसी-दुर्ग में प्राचीनता के परिचय देने वाले ध्वंसावशेष बहुत कम हैं, वहाँ पर जो मकान इत्यादि बने हैं वे सब आधुनिक हैं। क़िले के नीचे अनेक गुफाएँ हैं, जो धुस खोद कर बना ली गई हैं। गङ्गा के किनारे की रेत को धुस कहते हैं। जो बस्ती धुस पर बसी उसका नाम धूसी होना स्वाभाविक है। जान पड़ता है कि वर्त्तमान नाम झूसी उसी धूसी का अपभ्रंश है।

इस स्थल में सबसे प्राचीन समुद्र-कूप ही जान पड़ता है। यह चौड़ा और सुन्दर कुआँ पत्थरों का बना है। कई वर्ष पूर्व जब वह साफ़ किया गया था तो उसमें से एक मूर्त्ति निकली थी, जो अब उसी कुएँ पर रक्खी है। मूर्त्ति की बनावट से जान पड़ता है कि वह कदाचित सहस्रेक वर्ष पुरानी होगी। कुएँ से कुछ गढ़े पत्थर भी निकले थे और अब वहीं पड़े हैं। परन्तु उन पर कोई ऐसे चिह्न नहीं हैं जिनसे उनके गढ़े जाने के समय का अनुमान किया जा सके। एक पत्थर पर 'सुमेरगिरकोट' लिखा

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। यह लेख वर्तमान समय के अक्षरों ही में है। पूछने से ज्ञात हुआ कि यहाँ कुछ दिन पूर्व सुमेरगिर नामी गुसाईं रहता था, उसी ने अपना नाम अमर करने की यह युक्ति निकाली थी। इस कूप में भेंट-स्वरूप रुपए-पैसे डाले जाने की प्रथा बहुत दिनों से है। इस कारण साफ़ करते समय अनेक सिक्के उपलब्ध हुए थे, जो सरकार को मिले। पता नहीं है कि उनकी जाँच की गई थी या नहीं। यदि उनमें प्राचीन सिक्के गुप्त-कालीन वा हैहय-कालीन रहे हों तो ऐतिहासिक खोज में उनसे भी कुछ सहायता मिल सकती है। अब भी यदि खोज लगाई जाय तो कदाचित् कोई मतलब की बात निकल आए। इस क़िले में बहुत सी ईंटें मिली हैं जो बहुत बड़े परिमाण की हैं और प्राचीनता की द्योतक हैं। इनकी भी यथोचित जाँच से कुछ उपयोगी निष्कर्ष प्राप्त हो सकता है। क़िले की गुफाओं और इमारतों में साधु-सन्त रहते हैं। इनमें एक वयोवृद्ध महन्त भी हैं। उनसे प्रश्न करने पर ज्ञात हुआ कि इस क़िले के निर्माता पुरूरवा थे, जिनकी स्त्री उर्वशी थी। इस स्थल में एक यज्ञ हुआ था, उस समय नृपतिगण के सिवाय देवी-देवताओं को निमन्त्रण दिया गया था, उनमें समुद्र भी शामिल था। समुद्र का डेरा कूप में डलवाया गया था, इसलिए उसका नाम समुद्र-कूप पड़ गया। एक अन्य साधु का कथन है कि यज्ञ के समय सात समुद्रों का जल लाया गया था, जो जल बच गया वह एक कुएँ में डाल दिया गया, उसी कारण उस कूप का नाम समुद्र-कूप पड़ गया। यह कथा महन्त जी की कथा से अधिकतर सङ्गत जान पड़ती है और चित्रकूट के भरत-कूप के इतिहास से मिलान खाती है। निदान इन कथाओं से ऐतिहासिक घटनाओं का कुछ न कुछ सङ्केत अवश्य प्रकटित होता है।

मेरी समझ में ये सब बातें गुप्त-कालीन कल्पना का खण्डन करती हैं। पहली बात तो यह है कि समुद्रगुप्त का जो कीर्त्ति-स्तम्भ खड़ा किया गया था, उसी के आस-पास उसका निवास-स्थान या दुर्ग होना चाहिए था। ऐसा कोई कारण नहीं दीखता कि जिसके वश कीर्ति-स्तम्भ गङ्गा के दाहिने किनारे खड़ा किया जाता और दुर्ग बाएँ किनारे दूर बनवाया जाता। कदाचित् इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि कीर्ति-स्तम्भ प्रयाग में खड़ा ही नहीं किया गया, वह पहले कोशाम्बी में था, जहाँ से मुसलमान राजा उठवा लाए, जैसे कि मेरठ और शैवातिक पर्वतों की लाटें उखड़वा कर दिल्ली में खड़ी कर दी गई थीं। अस्तु—

यदि झूसी का क़िला समुद्रगुप्त का बनवाया हुआ हो तो उसका नाम स्वभावतः समुद्रदुर्ग या समुद्रकोट पड़ता, जिससे सम्राट् का गौरव अधिक जाग्रत होता, न कि एक क्षुद्र कुएँ को उसका नाम देने से। गुप्त-वंश के राजाओं के अनेक शिलालेख मिले हैं, उनमें कहीं भी उस वंश का मूल पुरुष पुरूरवा नहीं बतलाया गया, न कहीं उल्लेख मिलता है कि गुप्त-नृप चन्द्रवंशी थे। पुरूरवा तो चन्द्रवंश का मूल पुरखा गिना जाता है। स्पष्ट रूप से कहीं भी नहीं बतलाया गया कि गुप्त-नृपति सूर्यवंशी या चन्द्रवंशी थे, परन्तु किसी-किसी लेख में सूर्य की वन्दना की गई है, यथा गङ्गधार शिलालेख में "× × × तस्मै सवित्रे नमः" लिखा पाया जाता है। मेरी राय में झूसी का क़िला त्रिपुरी के हैहयों का बनवाया हुआ जान पड़ता है। समुद्र-कूप की बनावट जबलपुर ज़िले के दैमापुर के कुओं से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। दैमापुर के कुएँ निस्सन्देह त्रिपुरी के हैहयों के समय के हैं। हैहयों के लेखों में उनकी वंशोत्पत्ति इस प्रकार लिखी मिलती है :—"पुत्रं पुरूरवसमौरसमवाय सुनुर्देवस्य सप्तजल राशि रसायनस्य। आसीदनन्य समभागशनोप भोग्य। यस्योर्व्वशी सुकलत्रमिहोर्व्वराच ॥" अर्थात् इस सात समुद्र के रसायन-रूपी देवपुत्र के पुरूरवा औरस पुत्र हुआ जिसकी साध्वी स्त्रियाँ उर्वशी और पृथ्वी हुईं, जिनके कारण वह सैकड़ों भोग-विलास का भागी हुआ।

जान पड़ता है कि हैहयों के पश्चात् झूसी का ह्रास हो गया। वह किसी ऐसे मूर्ख राजा के हाथ जा लगी, जिसके यहाँ न्याय का स्थान शून्य था। उस समय इसका नाम हरबोंगपुर हो गया। कहते हैं "अन्धेर नगरी अनबूझ राजा, टका सेर भाजी टका सेर खाजा" का यही स्थल है। हैहयों के ह्रास-काल में अनार्य लोग उठ खड़े हुए थे। ये अशिक्षित जङ्गली लोग थे। टका सेर भाजी टका सेर खाजा होने की सम्भावना इन्हीं लोगों के अमल में हो सकती है। लेखक को एक बार इन लोगों से नमूने के लिए तीर-कमान ख़रीदने का मौक़ा पड़ा। जङ्गली विक्रेता ने क़ीमत तीन बोड़ी

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कौड़ियाँ माँगीं, जो एक पैसे के बराबर होती हैं। लेखक ने कौड़ियाँ न होने के कारण आठ पैसे अर्थात् अठगुने दाम देने को कहा, परन्तु उस मूर्ख ने लेने से इन्कार कर दिया। तब एक बनिए ने वे पैसे लेकर उस जङ्गली को तीन बोड़ी कौड़ियाँ तुरन्त दे दीं और बात की बात में सात पैसे का मुनाफ़ा हासिल कर लिया।

—(रायबहादुर) हीरालाल, बी० ए०

* * *

पातिव्रत्य का ढोंग

हिन्दू-समाज में सती और पातिव्रत्य की महिमा विशद रूप से कही गई है। इतना ही नहीं, इस देश का प्राचीन इतिहास इस गौरवजनक आदर्श से परिपूर्ण है। महासती अरुन्धती और हिमाचल-कन्या पार्वती से लेकर यवन-राज्य-काल की अन्तिम घटिका तक भारतीय वीराङ्गनाओं ने स्वच्छन्दतापूर्वक पातिव्रत्य की रक्षा के लिए सतीत्व का अपूर्व जौहर दिखलाया है। सच पूछिए तो पातिव्रत्य-रक्षा के लिए भारतीय महिलाओं ने नवीन और प्राचीन सभी देशों से बाज़ी मार ली है। यहाँ का सा उदाहरण आज भी कहीं नहीं मिलता है। हमारी प्राचीन उन्नति भी इन्हीं महासतियों के बल पर हुई थी, और वर्त्तमान समय में हमारा जो दिन पर दिन पतन हो रहा है, उसका कारण हमारी देवियों की विपन्नावस्था और पातिव्रत्य के असली स्वरूप को भूल जाना है। भारतीय रमणियाँ तो आज भी अपने सतीत्व-पालन में विमुख नहीं हैं। आज भी मूर्ख से मूर्ख भारतीय महिला सतीत्व और पातिव्रत्य का अनुभव करती है। पर समाज की कमज़ोरी से एक बारगी ही उनकी पातिव्रत्य-रक्षा पर प्रहार हुआ है। समाज ने पातिव्रत्य के महत् उद्देश को भूल कर उसका विचित्र रूप दे दिया है। वे देवियाँ पातिव्रत्य-पालन के लिए ऐसे बन्धनों में जकड़ दी गई हैं कि उनका जीना न जीना समान है। वे जीवित अवस्था में मृत-तुल्य हैं। अण्डमन में आजीवन कारावास सहने वाले क़ैदियों को भी इतना कष्ट न होता होगा। सतीत्व-रक्षा के लिए पातिव्रत्य का जो रूप उनके सामने आज रक्खा जाता है, वह तो उलटा विघातक है। उनके लिए रौलट-ऐक्ट से बढ़ कर काले क़ानून हर समय पुरुषों की जिह्वा से बनते हैं। आडम्बर-युक्त लज्जा और परदा सतीत्व-रक्षा के प्रधान अङ्ग समझे गए। इन नियमों का जिस देवी ने ज़रा भी उल्लङ्घन किया, उसके लिए यही समझा गया कि उसमें पातिव्रत्य नहीं रहा और सतीत्व का विनाश हो गया। अयोध्या के धोबी की कथा वेद-वाक्य बन गई। इससे क्या हुआ? समाज का दिन पर दिन पतन! हमने पातिव्रत्य और सतीत्व का जो बाहरी रूप समझ रक्खा है, उससे यह विदित होता है कि हम प्राचीन देवियों को एकबारगी ही भूल गए। जिस प्राचीन समय का हवाला आज दिया जाता है, उस समय देवियाँ क्या इसी प्रकार पैरों की जूतियाँ बना कर रक्खी जाती थीं कि जब चाहा, बदल लीं? क्या उनके स्वाधीन होने से पातिव्रत्य का लोप हो गया था? यदि नहीं तो फिर इतनी ज़िद क्यों है?

पुरुष-वर्ग तो बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह और बहु-विवाह के रूप में अत्याचार कर पतिव्रताओं को कुमार्ग-गामी बना रहा है। "पर उपदेश कुशल बहुतेरे" सी बात हो गई है। धर्म का बन्धन एक के लिए रहा, दूसरे के लिए नहीं। इससे हमारा यह आशय कदापि नहीं है कि देवियाँ अपना धर्म पालन न करें। वे चाहती हैं, न्यायकारी पुरुषों से पातिव्रत्य की सच्ची रक्षा। पुरुष-समाज को जिस प्रकार उनके कुमार्गगामी होने पर दुख होता है, उसी प्रकार वे भी अपने पति और आताओं को भ्रष्ट होते हुए देख कर शोकातुर होती हैं; अपने अभिमान को भङ्ग हुआ समझती हैं। वे कभी स्वेच्छा से अपने पातिव्रत्य को नहीं भङ्ग करतीं। पुरुष-वर्ग चाहे जिस दृष्टि से उन्हें देखे, चाहे जितनी आपत्तियाँ उन्हें दे, वे पातिव्रत्य-रक्षा के लिए सब कुछ सहेंगी—यहाँ तक कि प्राणों पर भी खेल जायँगी। पर यह उनकी आन्तरिक प्रेरणा है कि समाज की बल-वृद्धि के लिए पुरुष-वर्ग भी उनके समान आचरण करे। यदि शास्त्र की आज्ञा "पतिन्त्व पतितं भजेत्" देवियों के लिए है, तो पुरुषों के लिए क्या यह आदेश नहीं है :—

कृतदारोऽस्मि भवति भार्य्येयं दर्पितामय।
त्वंद्विधानान्तु नारीणां सुदुःखा स सपत्नता॥

पातिव्रत्य का नियम यदि देवियों के लिए है, तो पत्नीव्रत का पुरुषों के लिए। कारण, बिना पुरुष के संयमी हुए देवियों की रक्षा नहीं होती दिखाई देती

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। इस कठिन समय में हिन्दू-देवियों पर भीषण आपदाएँ आ रही हैं। इसलिए नियम दोनों के लिए पूर्ण व्यावहारिक और समान रक्खा जाय। यदि पुरुष संयम से रहें तो स्त्रियाँ उनसे भी अधिक रह सकती हैं। आज अब ज़रा-ज़रा सी बात पर उनके पातिव्रत्य भङ्ग होने की धमकी न दीजिए। हम कहेंगे, इससे विनाश न होता होगा तो होगा। स्त्रियों के ही आत्म-विश्वास को प्रबल कीजिए कि वे अपने धर्म का पालन महान् सङ्कट के समय में भी करें और किसी दुष्ट के छेड़ने पर शिव-नेत्र की दृष्टि से उसे भस्मीभूत कर दें। इस नियम का पालन किसी बनावटी उपाय से नहीं हो सकता। हाँ, जिस गड्ढे में आप उन्हें रख रहे हैं, उससे उलटे उनके पातिव्रत्य पर वज्रपात हो रहा है और दिन पर दिन वैसा होने की आशङ्का है। देवियाँ पातिव्रत्य-रक्षा के लिए ऐसे स्थान में रक्खी जाती हैं कि उनका स्वास्थ्य पूर्ण नष्ट हो जाता है। किसी समय कोई अत्याचारी के प्रहार करने पर वे देवियाँ निर्बलतावश अपने आप की रक्षा नहीं कर सकती हैं। आए दिन नित्य-प्रति ऐसी घटनाएँ हमारे समाज में हो रही हैं। इसका यह कदापि तात्पर्य नहीं कि आप यूरोप की नक़ल कीजिए—आप अपने देश के अनुसार ही कीजिए। यदि यूरोप में कोई अच्छा ज्ञान है, तो उसे लेने में कोई हर्ज नहीं; क्योंकि ज्ञान तो अन्तर्राष्ट्रीय वस्तु है, जिस पर किसी एक का अधिकार नहीं हो सकता।

इस समय सबसे बड़ी आवश्यकता है कि आप एक क्षण भर की देरी न करके, पातिव्रत्य और सतीत्व-रक्षा के लिए उनके स्वास्थ्य को सुधार कर बलवती बनाइए और उनमें पवित्र भावों का सञ्चार कीजिए कि वे न तो अपने सत्य पथ से विचलित हो सकें और न सधर्मी और विधर्मी उन पर अत्याचार करने की चेष्टा करें। इतना ही नहीं, ऐसा होने पर सामाजिक जगत् इतना पवित्र हो जायगा कि हमारी अनेक कठिनाइयाँ स्वयं ही हल हो जायँगी। ऐसा न कीजिए कि एक देवी यदि घर में आए हुए सज्जन व्यक्ति को—जो दरवाज़े पर खड़ा है—भीतर से उत्तर दे दे कि मेरे पति घर में नहीं हैं, ऑफ़िस गए हुए हैं, आप शाम को मिलिएगा, तो इतने ही से उसे निकाल दें, यदि कोई चुग़लख़ोर इस बारे में आपसे यह आकर कह दे कि वह देवी अमुक व्यक्ति से गुपचुप बातें करके न जाने किस फ़िराक़ में है। यदि आप समाज में अपयश फैल जाने के भय से निकाल देते हैं, तो क्या आपका यह अक्षम्य अपराध नहीं है। अच्छा, तब आपकी शक्ति कहाँ चली जाती है, आप क्यों नहीं आगे बढ़ कर रक्षा करते हैं और स्वयं कायर, पौरुषहीन तथा अपराधी होने पर उस सती अबला को त्याग देते हैं, जबकि आपके देखते-देखते उस पर दुष्ट लोग जघन्य अत्याचार कर डालते हैं और आप टकटकी लगाए खड़े देखते रहते हैं, और उन लोगों के जाने के बाद निर्दोषिता को समाज से बाहर करके कुमार्ग का पथ अनुसरण कराते हैं। यदि उसने स्वेच्छा से व्यभिचार किया होता, तो वह निस्सन्देह अपराधिन है और आप भी उसे त्याग सकते हैं। लेकिन जब उस पर दूसरों ने अत्याचार किया, तब आप उसे बचाने के स्थान पर रक्षा करने वाले धर्म-ग्रन्थों से अपयश का टीका देकर त्याग देते हैं, तो क्या दुगुना अत्याचार नहीं करते हैं? आप पातिव्रत्य-धर्म को ज़रा गम्भीरता से सोचिए! जब किसी स्त्री ने स्वेच्छा से व्यवहार नहीं किया और दुष्ट पुरुषों से वह सताई गई; जबकि मन, वचन और कर्म से अपने पतिदेव के सिवा किसी को स्मरण नहीं किया, तब वह किस प्रकार अपराधिन हुई? आप हिन्दू-धर्मशास्त्रों का परिशीलन कीजिए। आपको अनेक स्थानों पर शास्त्राज्ञा मिलेगी कि इस अवस्था में देवियों का त्याग वर्जनीय है। धर्मशास्त्र तो अपवित्र को शरण देते हैं—पाप से छुड़ा कर सच्चे पथ पर लाते हैं।

आर्य-ग्रन्थों में रामायण के वीर-पुङ्गव पुरुष श्रीरामचन्द्र के सीता-त्याग के विषय में सन्देह है। श्रीराम के आदर्श-चरित्र से ऐसा व्यवहार न हुआ होगा। कविवरों ने इसे दूसरे ही अभिप्राय से गान किया है। इसलिए और नहीं तो शास्त्रों की ही दृष्टि से अपनी सामाजिक कमज़ोरी दूर कीजिए, अन्यथा इसका परिणाम अत्यन्त भीषण होगा। इससे तो सभी देवियों की रक्षा होना कठिन होगा। उस समय सिवा पछताने और हाथ मलने के कुछ न होगा। जाति का पतन हो जायगा। धर्मशास्त्र को मानिए, पर विवेक से, समय की गति भी देखिए। शास्त्र की उन आज्ञाओं को भी देखिए, जो आपत्तिकाल के लिए दी गई हैं। शास्त्रों से बलवान बनने में ही हिन्दू-जाति का कल्याण है। वे बातें भुला देनी चाहिए, जो इस समय अव्यावहारिक प्रकट हों। ऐसे काम कीजिए,

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिससे जघन्य अत्याचार—भ्रूण-हत्याएँ और धर्म-विसर्जन न हो। सती-प्रथा बन्द हो गई है, यद्यपि आज भी कभी-कभी पति-प्रेम से विह्वल हो या पति-कुल के सङ्कटों से त्रसित हो अथवा पातिव्रत्य-रक्षा के लिए देवियाँ सती हो जाती हैं। पर आज यह साधन सबके लिए नहीं है। सती होना प्राचीन आदर्श था, और यह हमारे लिए गौरव की बात है। आज हमारे लिए यह नियम उपलब्ध नहीं है। आज तो देवियों के वैधव्य प्राप्त करने पर संयम ही एकमात्र अवलम्ब है। ऐसे अवसर पर ज़रा-ज़रा सी बात पर अविश्वास प्रकट किया जायगा तो उनका जीवित रहना और अपने स्वर्गीय पतियों के प्रति पातिव्रत्य स्थिर रखना दुस्तर हो जायगा। सच जानिए, पुरुष-वर्ग की ग़लती से देवियों का सतीत्व हरण होता है। फिर वे ज़रा डिगीं नहीं कि तुरन्त ही असहयोग का शङ्ख फूँक दिया गया—तुरन्त उनका घर से विसर्जन कर विधर्मियों के लिए शिकार पैदा कर दिया गया! इससे विजातियों की संख्या बढ़ती है। उनके आचरण की रक्षा पशुवत् व्यवहार से न होगी। हमारे और उनके पूर्ण सहयोग से रमणियों की मर्यादा क़ायम रहेगी। यदि दैववश वे पतित हो जायँ तो भी घर से बाहर विधर्मियों को ले जाने का रास्ता न दीजिए। आप उन्हें अपने आश्रय में ही रखिए, चाहे आपका इस अवस्था में वैसा व्यवहार भले ही न हो। पातिव्रत्य छुईमुई नहीं है, वह तो तलवार की तेज़ धार है—आदर्श धर्म-पालन है। यदि आप चाहते हैं कि हमारी माताएँ और बहिनें आदर्श पतिव्रता हों तो वे भी यह चाहती हैं कि हमारे पिता, पुत्र और भ्रातृगण आदर्श-पत्नीव्रत हों। दोनों समान रूप से अपनी-अपनी ज़िम्मेदारी का पालन करें। इसी में देश की और हिन्दू-समाज की भलाई है।

—जी० एस० पथिक, बी० ए०, बी० (कॉम)

* * *

बहुविवाह-प्रथा

अन्य धर्मों में विवाह एक सामाजिक रीति है, परन्तु हिन्दू-धर्म में विवाह उन सोलह संस्कारों में से है, जिसका जन्म से मरण तक मनुष्य-जाति में होना आवश्यक समझा जाता है; अतएव जिस प्रकार अन्य संस्कार एक ही बार होते हैं, उसी प्रकार यह संस्कार भी धर्मानुसार एक ही बार होना चाहिए, परन्तु देखने में आता है कि बहुधा दो-तीन बार भी पुरुष अपना यह संस्कार कर डालते हैं, इससे विवाह का आदर्श नष्ट होता है। हिन्दू-शास्त्रकारों ने तो विवाह का उद्देश्य केवल सन्तानोत्पत्ति बताया है, भोग-विलास के लिए विवाह करना अनुचित ही नहीं, हानिकारक और निन्दनीय भी ठहराया है। इसी कारण केवल ऋतुमती होने के पश्चात् ही, स्त्री-पुरुष का संयोग होने का उल्लेख शास्त्रों में पाया जाता है। विवाह-सम्बन्धी जितने मन्त्र वेदों में पाए जाते हैं, उन सबों का प्रायः यही अर्थ है कि उत्तम, धार्मिक, कार्य-कुशल, साहसी और विद्वान् सन्तान उत्पन्न करना चाहिए और पितृ-ऋण चुकाना चाहिए। केवल हिन्दू-धर्म को छोड़ कर और किसी धर्म में विवाह का इतना उच्च आदर्श लौकिक और पारलौकिक दोनों दृष्टि से नहीं रक्खा गया है। मुसलमानी-धर्म-ग्रन्थों में, जहाँ बहु-विवाह की इजाज़त है, वहाँ विवाह-विच्छेद की भी इजाज़त है; परन्तु हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों में विवाह-विच्छेद का पता नहीं है। एक पुरुष को एक ही पत्नी करना चाहिए और एक स्त्री को एक ही पति करना चाहिए; हिन्दू-धर्म में यही आदेश है। एक पत्नीव्रत और पातिव्रत्य-धर्म की ही महिमा का शास्त्रों में सर्वत्र उल्लेख है; इसी कारण हिन्दू-धर्म में, विवाह-बन्धन केवल सामाजिक प्रथा ही नहीं समझी गई, वरन् इसे धार्मिक स्वरूप दिया गया है। परन्तु मुसलमानी व ईसाई-धर्म में, विवाह एक सामाजिक प्रथा-मात्र समझी गई है; और इसी कारण विवाह-त्याग की उन धर्मों में इजाज़त है।

मुसलमानी-धर्म में तो पत्नी-त्याग करने से पहले भी दूसरा विवाह करने की इजाज़त है; परन्तु ईसाई-धर्म में ऐसा नहीं है। ईसाइयों में एक पत्नी का त्याग हुए बिना, दूसरी का ग्रहण करना वर्जित है। इन दोनों धर्मों की बहु-विवाह प्रथा के साथ पत्नी-त्याग प्रथा का परिणाम स्त्री-समाज पर बड़ा भयङ्कर पड़ा है। जो गृह सुख का आगार होना चाहिए था, वे बहु-विवाह प्रथा के कारण, नर्क-धाम बन गए हैं। इस निन्दनीय प्रथा के कारण, अनेक गृहों में, नित्य-प्रति कलहाग्नि धधका करती है। जिन समाजों में यह प्रथा प्रचलित है,

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उनमें परस्पर स्त्री-पुरुष के अविश्वास के कारण, सच्चे प्रेम का अभाव रहता है। सांसारिक वासनाओं की तृप्ति के अभाव और सुख-कामनाओं के साधनों की कमी होने पर स्त्रियों में उदासीनता का भाव उत्पन्न होकर, प्रेम-पुरस्कार में कमी होने लगती है; और यही कमी आगे चल कर विकारों का कारण बन कर विवाह-विच्छेद की सामग्री जुटाती है। जिस समाज में धार्मिक आज्ञा के रूप में बहु-विवाह का प्रचार है, वहाँ सुख की मात्रा बहुत कम दिखाई पड़ती है। धर्म के नाम पर उसका पालन स्वार्थ-वश भले ही किया जाय, परन्तु मानवी प्रकृति इसे स्वाभाविक रूप में ग्रहण करने में असमर्थ है।

हिन्दू-समाज में भी, बहु-विवाह की प्रथा प्रचलित है; परन्तु पत्नी-त्याग की प्रथा का कहीं शास्त्रों में उल्लेख नहीं पाया जाता। अब विचारणीय बात यह है कि जिस समाज का उच्च ध्येय एक पत्नीव्रत और पातिव्रत्य धर्म हो, उसमें इस कलुषित प्रथा का प्रचार क्यों हुआ? हिन्दुओं में भी यह बुरी प्रथा कोई नवीन नहीं, बहुत प्राचीन काल से इसका प्रचार है। त्रेतायुग में राजा दशरथ के तीन स्त्रियाँ थीं। रामायण, महाभारत और पुराणों में राजाओं को छोड़ कर, ऋषियों तक का बहु-पत्नीक होना पाया जाता है। हिन्दू-समाज ने धर्म-मर्यादा क़ायम रखने के लिए बहुत प्रयत्न किया और यदि यह भी कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी कि यह धर्म अपनी इसी मर्याद-रक्षा के कारण जीवित है। ऐसे धर्म में बहु-विवाह का विधान किस उद्देश्य से रक्खा गया, समझ में नहीं आता है। मनुष्य के सोलह संस्कारों में जब विवाह भी एक संस्कार है, तो क्या बहु-विवाह प्रथा से इस संस्कार की मर्यादा भङ्ग नहीं होती है?

हिन्दू-धर्म में विवाह-संस्कार का उद्देश केवल सन्तानोत्पत्ति बताया गया है; और इसका मुख्य कारण पितृ-ऋण चुकाना समझा जाता है। इसलिए यह अनुमान करना कुछ कठिन नहीं मालूम होता कि एक पत्नी द्वारा सन्तान उत्पन्न होने की सम्भावना नष्ट होने पर सन्तानोत्पत्ति के हेतु ऋषियों ने दूसरे विवाह की आज्ञा दी और इसी उद्देश से बहु-विवाह का सूत्रपात हुआ। हिन्दू-समाज में, परन्तु आज्ञा मिल जाने से, सुखोपभोग के लिए भी, पुरुषों ने इसका उपयोग किया और शुद्ध धार्मिक कार्यों के लिए ऋषियों की दी हुई आज्ञा का दुरुपयोग होने लगा। काम-वासना की तृप्ति के लिए बहु-पत्नी की निन्दनीय प्रथा ने, हिन्दू-धर्म की मर्यादा को घटाया और समाज में उच्छृङ्खलता का भाव उत्पन्न किया। बहु-विवाह प्रथा कोई सनातन-धर्म न था, आपद्धर्म था; इसका उपयोग ऐसे कठिन समय में ही करने की शास्त्रकारों ने आज्ञा दी है, जब पितृऋण चुकाने के लिए सन्तान की आवश्यकता समझी जाय; अन्यथा यह प्रथा अत्यन्त वर्जित समझी जानी चाहिए।

पुरुष तो बहु-पत्नी कर सकते हैं, इसका उल्लेख भी शास्त्रों में है; क्योंकि उद्देश ही पितृऋण चुकाना विवाह का मूल बताया गया है। परन्तु क्या स्त्रियाँ भी ऐसा कर सकती हैं? क्या शास्त्रों ने स्त्रियों को भी बहु-विवाह अर्थात् बहु-पति करने की आज्ञा दी है? क्या एक पति की मौजूदगी में दूसरे पति का होना हिन्दू-धर्म के अनुकूल है? और ऐसा करने का कोई विधान शास्त्रों में पाया जाता है या नहीं? द्रौपदी के पाँच पति थे, यह सभी जानते हैं। उनका विवाह भी शास्त्रानुकूल हुआ था, यह भी कह सकते हैं। अतएव शास्त्रों में ऐसा विधान अवश्य होना चाहिए। पुराणों में भी ऐसे अनेक उदाहरण पाए जाते हैं। जाबाल ऋषि का उदाहरण इसी प्रकार का है। मत्स्यपुराण में भी इसके कई उदाहरण मिलते हैं। उशीज मुनि के भाई बृहस्पति ने एक बार काम-वासना से प्रेरित होकर अपनी भावज अर्थात् उशीज मुनि की पत्नी ममता से काम-वासना-तृप्ति के लिए याचना की थी। परन्तु इस प्रस्ताव को ऋषी-पत्नी ने बुरा न मान कर केवल यही उत्तर दिया था कि मैं तुम्हारे भाई से गर्भवती हूँ, इस समय मैं तुम्हारे उपभोग के योग्य नहीं हूँ, अतएव इस गर्भ-निवृत्ति के पश्चात् मैं तुम्हारी कामना पूरी करूँगी। इसी प्रकार महाभारत में जटिला नामक स्त्री के सात ऋषिपति होने का उल्लेख है। भागवत में कण्डु नामक मुनि की कन्या ने प्रचेत नामक पुरुष की पत्नी होकर उसके दस भाइयों से व्यवहार रक्खा था।

उपरोक्त दृष्टान्तों से इस बात का पता तो चलता है कि इस प्रकार की प्रथा प्राचीन काल में अवश्य प्रचलित थी और इस प्रथा को निन्दनीय भी नहीं समझा जाता था; और न इस प्रकार के सम्बन्ध से उत्पन्न हुई सन्तान

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को समाज में घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। इतना ही नहीं, धर्म की इस पर छाप लगा देने से इस प्रकार के व्यवहार को धर्मानुमोदित माना जाता था। हिन्दू-समाज में इस प्रथा के प्रचार का कारण केवल यह जान पड़ता है, जैसा ममता ने कहा था—"मैं इस समय गर्भवती हूँ, अतएव मैं उपभोग के योग्य नहीं हूँ।" केवल गर्भ धारणार्थ ही पति-पत्नी का संयोग होना उस काल में उचित समझा जाता था। इसके विपरीत काम-वासना के लिए स्त्री-पुरुष का संयोग निन्दनीय माना जाता था। सन्तानोत्पत्ति ही स्त्री-पुरुष के संयोग का मुख्य उद्देश्य था और इसी उद्देश्य-पूर्ति के लिए इसकी लोग इच्छा करते थे। काम-वासना की तृप्ति के लिए यह काम बुरा समझा जाता था। स्त्रियाँ भी पुत्र-कामना के हेतु पर-पुरुषों से सहवास करके सन्तान उत्पन्न करती थीं; और यह नियोग-प्रथा कहलाती थी। नियोग से उत्पन्न सन्तान औरस पुत्र के समान ही समाज में उच्च स्थान पाती थी। परन्तु ज्यों-ज्यों काम-वासना की वृद्धि होकर मनुष्यों के विचारों में परिवर्त्तन होता गया, उच्च ध्येय से समाज च्युत हुआ। ऋषियों ने इस प्रथा को वर्जित करार दे दिया। यदि मनुष्य-स्वभाव में उच्छृङ्खलता के भाव की जाग्रति न होती, पवित्रता और धर्म-भाव का प्राबल्य रहता तो यह प्रथा निन्दनीय और त्याज्य न मानी जाती। जब वर्त्तमान समय में विवाह का ही वह उच्च-आदर्श नहीं रहा तब एक स्त्री के बहु-पति होने अथवा नियोग-प्रथा के प्रचार से समाज की क्या गति होती, यह तो भगवान् ही जानें। विवाह की धर्म-मर्यादा टूट जाने पर भी पुरुषों ने तो अपने लिए बहु-पत्नी की प्रथा बनाए रक्खी, परन्तु स्त्रियों के लिए बहु-पति की प्रथा को रोक दिया गया; इसे पुरुषों का स्त्रियों पर अत्याचार समझना चाहिए या नहीं, यह बात विज्ञ पाठक ही विचार सकते हैं।

विवाह-प्रथा का आरम्भ ही केवल सन्तानोत्पत्ति के विचार से हुआ था, अतएव सन्तान के अभाव में जहाँ पुरुषों को दूसरी पत्नी करने का अधिकार रक्खा गया है, वहीं पर स्त्रियों को भी ऐसे अवसर पर अधिकार देने में क्यों आपत्ति की जानी चाहिए, यह समझ में नहीं आता? यदि यह प्रथा दूषित है, तो दोनों के लिए इसका समान व्यवहार क्यों न हो? धर्मशास्त्र की सूक्ष्म गति का आडम्बर रचने वाले लोग चाहे इन विचारों की निन्दा करें, परन्तु संसार के प्रवाह को रोकना उनके लिए तभी सम्भव होगा, जब स्त्री और पुरुष दोनों के लिए समान मर्यादा का सङ्गठन किया जायगा। अब यह समय नहीं रहा है कि केवल धर्मशास्त्र का नाम लेकर लोगों को धर्मात्मा बनाया जा सके। धर्म-धर्म चिल्लाने से अब कल्याण की आशा नहीं है। या तो बहु-विवाह की प्रथा को धर्मानुसार स्त्री और पुरुष दोनों के लिए त्याज्य समझना होगा या दोनों को इस विषय में समान अधिकार प्रदान करना होगा। समाज के कल्याण के हितार्थ, पुरुषों में भी इस प्रथा का बन्द होना श्रेयस्कर है। ऐसा होने से स्त्री-समाज के सन्तोष का कारण होगा; और पुरुषों में संयम की वृद्धि होकर इहलोक और परलोक दोनों में सुख की प्राप्ति होगी। धर्म की मर्यादा की रक्षा भी हो सकेगी। स्त्रियों में जो वर्त्तमान समय में उच्छृङ्खलता का भाव बढ़ रहा है और जिसके कारण समाज में बहुत-कुछ व्याकुलता उत्पन्न हो गई है, उसमें भी कमी होकर देश का कल्याण होगा। जिस प्रकार ऋषियों ने स्त्रियों में बहु-पति-प्रथा को बन्द करके धर्म और समाज को उस समय नष्ट होने से बचाया था, उसी प्रकार वर्तमान समय के धर्माचार्यों का भी कर्त्तव्य है कि वे पुरुषों में भी इस प्रथा को उठाकर भविष्य के लिए हिन्दू-समाज की रक्षा करें; नहीं तो स्त्रियाँ पुरुषों को भोग-विलास का आनन्द लेते हुए देखकर अपने लिए भी कोई ऐसा रास्ता निकालेंगी, जो हिन्दू-समाज को अधिक नीचे ले जायगा; और ऋषियों के तपोबल से जो मर्यादा स्थापित हुई है, वह नष्ट-भ्रष्ट होकर हिन्दुओं का और भी अधिक भयङ्कर पतन होगा।

—(ठाकुर) सूर्यकुमार वर्मा

* * *

स्वराज्य कब मिलेगा?

यह बीसवीं शताब्दी स्वातन्त्र्य-सूर्योदय का मङ्गल-प्रभात है। कोई भी देश, जाति या समाज अपने को परतन्त्रता-निशा के अन्धकार में अधिक समय तक नहीं रख सकता। भला कौन ऐसा भाग्य-विहीन

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्यक्ति होगा जो पराधीनता के पाश में जकड़ कर अपने को सुखी माने। इस उन्नति के युग में संसार की नारियाँ भी पिछड़ी नहीं रहीं। इङ्गलैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी, अमेरिका और रूस की नारियों ने उन्नति की घुड़दौड़ में बाज़ी मार ली है। और अभी कल ही जिनके घरों के आँगन में स्वातन्त्र्य-सूर्य की सुनहली किरणों ने अपनी रोशनी फैलाना शुरू किया है, उन टर्की तथा प्रबुद्ध अफ़ग़ान आदि देशों की नारियों ने भी चेहरे पर से पुराना बुर्क़ा उतार कर उन देदीप्यमान प्रकाशमयी किरणों का स्वागत किया है। अबला के नाम से पुकारा जाने वाला संसार का आधा भाग प्रमाणित कर रहा है कि वह पुरुष-जगत् से किसी बात में रञ्च-मात्र भी कम नहीं है।

ज्ञान, विज्ञान, काव्य, कला, वाणिज्य, व्यापार, युद्ध, राजनीति, संस्था और देश के शासन में स्त्रियों ने अपना जन्म-सिद्ध अधिकार पूर्णता के साथ प्रकट किया है। फलतः सावित्री, सीता, द्रौपदी मैत्रेयी, गार्गी, अहल्याबाई और झाँसी की महाशक्ति लक्ष्मीबाई की प्यारी पुत्रियाँ भी कब तक इस अज्ञान एवं विवशता के अन्धकार में पड़ी सड़ती रहतीं!

समय-चक्र परिवर्त्तनशील है। वह घूमता ही रहता है और उसका काम है दुनिया में उथल-पुथल मचाते रहना, आज इधर तो कल उधर। जहाँ पुरुषों की मस्तिष्क-शक्ति स्त्रियों को पराधीनता के पाश में बाँध रखने के लिए नित्य नए-नए नियमों और धर्म-शास्त्रों के सूत्रों की रचना किया करती थी, वहाँ अब उसी मस्तिष्क-धारा में स्त्रियों के उद्धार के लिए श्रेष्ठ, पवित्र और उन्नति-पथ की ओर शीघ्रगामी विमल उदार विचार प्रवाहित हो रहे हैं। और तदनुसार अनुकूल दशा में कुछ कार्य भी हो रहा है।

अब भी ऐसे कुछ कट्टर महात्मा लोग हमारे देश में विराजमान हैं, जो आकाश-पाताल एक कर कहा करते हैं कि स्त्रियों को पढ़ाने-लिखाने से वे किसी के वश में न रहेंगी, उद्दण्ड हो जायँगी, अपने पतियों को धता बता देंगी, घर के काम-काज में उनका मन न लगेगा, अपने धर्म को तिलाञ्जलि देकर वे किरस्तान बन जायँगी, और महाकविवर श्री० तुलसीदास की "जिमि स्वतन्त्र होई बिगरहिं नारी" इस चौपाई का उदाहरण हमारे सामने उपस्थित करेंगी तथा भारतीय गृहस्थाश्रम की सुख-शान्ति पर झाड़ू फेर देंगी।

परन्तु अब भारत की नारियाँ इस प्रकार के पोच आक्षेपों के विकारों से बहुत दूर पहुँच गई हैं। रात के घने अन्धकार को तहस-नहस कर सूर्य के प्रकाश की तरह यह बात सर्व-सम्मत हो गई है कि भारतीय नारियों को आवश्यक, सम्पूर्ण और उचित शिक्षा देने से ही भारतवर्ष का कल्याण होगा। पुरुषों को अब अच्छी तरह समझ लेना होगा कि स्त्री, समाज का आधा अङ्ग है। अङ्ग का एक हिस्सा सबल हो, शिक्षित हो और हो सम्पन्न, एवं दूसरा निर्बल, अशिक्षित, असभ्य और हीन हो तो भारत के लिए स्वराज्य स्वप्न की कहानी मात्र है। मन के लड्डुओं से भूख नहीं बुझती। जब तक भारतीय महिलाओं की पूर्ण उन्नति न होगी, तब तक न तो इस पतित देश का उद्धार हो सकता है और न स्वराज्य का सच्चा सुख ही हम भोग सकेंगे। जिस देश या समाज में विदुषी, पतिव्रता, शीलवती और कर्त्तव्यपरायणा स्त्रियाँ होंगी उसी देश में सुख-शान्ति का साम्राज्य होगा, उसी देश की माताओं के बालक वीर, देश-सेवा-परायण और अपने कर्त्तव्य के पालक होंगे। क्योंकि सुशिक्षित माता ही राष्ट्र की उन्नति करने वाली है, वही राष्ट्र-निर्माता है, उसी के भुज-बल से भारत को स्वराज्य मिलेगा। अब केवल ऐसी माताओं को अपने कन्धे पर आज़ादी का झण्डा उठाने भर की देर है!

—हृषीकेश शर्मा (सम्पादक 'हिन्दी-प्रचारक')

* * *

प्रेम का अत्याचार

लोगों का विश्वास है कि केवल प्रेम, दया आदि से रहित व्यक्ति ही हमारे ऊपर अत्याचार करते हैं। किन्तु यह बात हम लोगों के ध्यान में नहीं आती कि उनकी अपेक्षा भी भारी अत्याचार करने वाले एक श्रेणी के लोग हैं। जो प्रेम करता है वही अत्याचार करता है। प्रेम करने से ही अत्याचार करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। मैं यदि तुमको प्यार करता हूँ, तो तुमको मेरी बात सुननी पड़ेगी, मेरा अनुरोध रखना पड़ेगा। तुम्हारा इष्ट हो या अनिष्ट, तुमको मेरा मत

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वीकार करना पड़ेगा। वास्तव में जो प्रेम करता है उससे यह उम्मीद कभी नहीं की जाती है कि जान-बूझ कर वह तुम्हारी बुराई के लिए तुमसे अनुरोध करेगा। किन्तु मङ्गल तथा अमङ्गलजनक कार्य का निर्णय बहुत कठिन है और प्रायः दो व्यक्तियों की राय इस बारे में नहीं मिलती। राजा, समाज और प्रणयी, ये तीन जन इस संसार में अत्याचार किया करते हैं। राजा के अत्याचार रोकने के उपाय बहुत से हैं, समाज के अत्याचार को रोकने के लिए भी पण्डितों तथा विद्वानों ने कुछ उठा नहीं रक्खा है, किन्तु प्रेम का अत्याचार रोकने के लिए कभी किसी को यत्न करने की बात आज तक देखी-सुनी नहीं गई। कैकेयी के प्रेमात्याचार से दशरथ-कृत राम-वनवास तथा द्यूत में आशक्त युधिष्ठिर के किए भाइयों के निर्वासन तथा अन्यान्य सैकड़ों स्थानों में इस महती नीति का प्रतिपादन हुआ है। इस अत्याचार के करने वाले अत्याचारी अनेक हैं। पिता-माता, स्त्री-स्वामी भाई-बहिन, पुत्र-कन्या, आत्मीय-कुटुम्ब, सुहृद-भृत्य, जो कोई प्यार करता है, वही कुछ न कुछ अत्याचार और अनिष्ट करता है।

तुम्हारी प्रबल इच्छा है कि अमुक प्रकार की अच्छे लक्षणों वाली, अच्छे कुल की, अच्छे चरित्र की कन्या से विवाह हो और इसी बीच में तुम्हारे बाप ने बिना पूछे, बिना समझे-बूझे ही किसी लड़की के साथ तुम्हारे ब्याह की बात पक्की कर ली। तुम यदि बालिग़ हो तो इस विषय में पिता की आज्ञा मानने के लिए बाध्य नहीं हो। किन्तु पितृ-प्रेम के वशीभूत होकर तुमको प्रेमात्याचार सहना पड़ा। मान लो कोई ग़रीब है। दैव के अनुग्रह से उसे कोई अच्छी जगह दूर देश में मिल गई और वह वहाँ जाकर ग़रीबी से पीछा छुड़ाने का उद्योग कर रहा है। इसी बीच में माता ने रोना-धोना मचा दिया। उसे दूर जाने से मना किया। वह मातृ-प्रेम से लाचार होकर रह गया। मातृ-प्रेम के अत्याचार से उसने अपने को सदा के लिए ग़रीबी के गढ़े में डाल दिया। लायक़ भाई के कमाए रुपए को निकम्मे-नालायक़ भाई नष्ट करते हैं। यह बिलकुल ही प्रेम का अत्याचार है। भार्य्या के प्यार के अत्याचार का उदाहरण उद्धृत करने की कोई आवश्यकता ही नहीं जान पड़ती; और स्वामी के अत्याचार के सम्बन्ध में इतना ही कह देना पर्याप्त है कि उनमें से कुछ प्रेम के अत्याचार भी होते हैं, किन्तु अधिकांश अत्याचारों का सम्बन्ध बाहु-बल से ही होता है।

और उदाहरण देखिए। दशरथ-कृत राम-निर्वासन की बात को ही ले लीजिए! यहाँ कैकेयी और दशरथ दोनों ही प्रेम के अत्याचार में प्रवृत्त हैं। कैकेयी दशरथ के ऊपर और दशरथ राम के ऊपर प्रेम का अत्याचार कर रहे हैं। इनमें से कैकेयी का कार्य स्वार्थपूर्ण और नीच कह कर चिर-परिचित है। कैकेयी ने अपने किसी इष्ट की कामना नहीं की—अपने पुत्र की भलाई सोची थी। दशरथ ने सत्य-पालन के लिए राम को वन भेज कर भरत को राज्य दिया। इसमें उन्हें प्राणाधिक-पुत्र का वियोग स्वीकार करना पड़ा और अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। इसीसे भारतवर्ष के साहित्य का इतिहास उनके यश-कीर्त्तन से परिपूर्ण है। किन्तु उत्कृष्ट धर्म-नीति के विचार से यही सिद्ध होता है कि दशरथ ने पुत्र को अपने अधिकार से च्युत और निर्वासित करके सत्य का पालन किया, तो इसमें उन्हें घोर अधर्म हुआ। यह पूछा जा सकता है कि क्या प्रतिज्ञा-मात्र का पालन करना चाहिए। यदि सती-कुल-कामिनी किसी फेर में पड़ कर किसी दुश्चरित्र पुरुष के निकट धर्म-त्याग का वादा कर ले तो क्या उस वादे को पूरा करना चाहिए? यदि कोई किसी ठग के बहकाने से बिना किसी दोष के मित्र को मारने की प्रतिज्ञा कर ले तो क्या उसे उसका पालन करना चाहिए?

मनुष्य-जीवन प्रेम के अत्याचारों से पूर्ण है। जैसे परस्पर समाज-बन्धन में बँधे बिना मनुष्य-जीवन का उद्देश सुसम्पन्न नहीं होता, वैसे ही परस्पर आन्तरिक बन्धन में बँधे बिना मनुष्य-जीवन का अच्छी तरह निर्वाह नहीं होता। अतएव समाज का जैसा प्रयोजन है, वैसा ही बल्कि उससे भी अधिक प्रेम का प्रयोजन है। बाहु-बल या समाज का अत्याचार होने के कारण जिस तरह बाहु-बल या समाज को मनुष्य त्याज्य या अनादर की चीज़ नहीं समझते, उसी प्रकार प्रेम का अत्याचार होने के कारण यह भी त्याज्य या अनादरणीय नहीं हो सकता।

प्रेम के अत्याचार रोकने का एक उपाय धर्म का अवलम्बन है, तथा दूसरा कहा जाता है कि प्रेम के ही द्वारा प्रेम का अत्याचार शान्त किया जा सकता है।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सभी विज्ञ इसे स्वीकार करते हैं कि यह बात यथार्थ है। प्रेम यदि स्वार्थपरता से शून्य हो तो यह हो सकता है, किन्तु साधारण मनुष्यों की प्रकृति ऐसी है कि स्वार्थपरता-शून्य प्रेम इस संसार में दुर्लभ है। मनुष्य के निस्स्वार्थ प्रेम का अधिकांश प्रणयी और प्रणय-पात्र दोनों के चित्त को सुखदायक, किन्तु स्वार्थपूर्ण पशु-चरित्र होता है। प्रेम मनुष्य के हृदय में स्वार्थ-साधन के लिए नहीं स्थापित हुआ है। मनुष्य के चरित्र ने अब तक वैसा उत्कर्ष प्राप्त नहीं किया, इसीसे मनुष्य-प्रेम अब तक पशुवत् है। पशुवत् इसलिए है कि पशुओं में भी दाम्पत्य के अतिरिक्त परस्पर वत्स-स्नेह, दाम्पत्य और वात्सल्य आदि अन्य प्रकार के प्रणय हैं। सन्तान का स्नेह पशुओं में मनुष्य की अपेक्षा कम नहीं है।

प्रेम का यथार्थ स्वरूप ही अस्वार्थपरता है। जिस माता ने पुत्र के सुख के लिए पुत्र-मुख-दर्शन सुख की कामना छोड़ दी, वही यथार्थ स्नेह करने वाली है। जो प्रणयी प्रणय-पात्र की भलाई के लिए प्रणय-सुख-भोग को छोड़ सका, वही सच्चा प्रणयी है।

जब तक साधारण मनुष्यों का प्रेम इस तरह विशुद्धता को प्राप्त न करेगा, तब तक मनुष्य के प्रेम से स्वार्थपरता का कलङ्क दूर न होगा और प्रेम की यथार्थ स्फूर्ति न होगी। जहाँ प्रेम को ऐसा शुद्ध रूप प्राप्त होगा, या जिसका प्रेम ऐसे शुद्ध रूप को प्राप्त हो चुका है, वहीं प्रेम के द्वारा प्रेम का अत्याचार रोका जा सकता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रेम का अत्याचार धर्म तथा निस्स्वार्थ प्रेम से रोका जा सकता है। निस्स्वार्थ प्रेम और धर्म की एक ही गति और एक ही परिणति है। दोनों का साध्य दूसरे का मङ्गल है। वास्तव में प्रेम और धर्म एक ही पदार्थ हैं। सब संसार जब प्रेम का विषय हो जाता है, तब वह प्रेम ही धर्म नाम को प्राप्त होता है। धर्म जब तक सार्वजनिक प्रेम के रूप को धारण नहीं करता, तब तक वह सम्पूर्णता को नहीं प्राप्त होता, किन्तु मनुष्यों ने कार्यतः प्रेम को धर्म से अलग कर रक्खा है। अतएव प्रेम का अत्याचार रोकने के लिए धर्म के द्वारा प्रेम पर शासन होने की आवश्यकता है।

—शिलानाथप्रसाद्र सिंह

देव !

[रचयिता—श्रीमती महादेवी जी वर्मा, श्रीवास्तव]

(१)

सोकर मूक व्यथा में अपने,
मुझे जाग लेने दे!
अहम्भाव की चिर समाधि पर,
देव! त्याग लेने दे!!

(२)

छेड़ न, विस्मृति फूट पड़ेंगी,
पीड़ा पागल घड़ियाँ!
अध-कच्ची हो रह जाएँगी,
कच्ची जीवन-कलियाँ!!

(३)

उस अनन्त के पथ पर तेरे—
चित्रित तो हो जाऊँ!
घोर तिमिर में ज्योति-राशि की,
आभा कुछ लख पाऊँ!!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

छोटके भैया कहानी

[ले० श्री० जनार्दनप्रसाद जी झा 'द्विज']

दहेज में बड़ी से बड़ी रक़म और अधिक से अधिक चीज़ें पाकर भी वर-पक्ष के लोग सन्तुष्ट हो सके हों, ऐसा कम ही देखा गया है। मेरे विवाह में भी यही बात हुई। उस दहेज के पीछे मेरे बाबू जी तबाह होगए, फिर भी दहेज पाने वालों की इच्छा भूखी ही रही। बारात की बिदाई के समय हल्दी की थाली में सिर्फ़ एक सौ एक रुपए देख कर मेरे ससुर साहब के तन-बदन में आग लग गई। यह वह आग थी, जिसने उनके साधारण सौजन्य और शिष्टाचार के भावों को भी जला दिया। लात मार कर, हल्दी की थाली को दूर ठुकराते हुए, क्रोध-कम्पित स्वर में वे ज़ोर से चिल्ला उठे—"मुझसे यह अपमान नहीं सहा जा सकता। भला चाहते हो तो अपनी ये सड़ी हुई चीज़ें (थाली, लोटे, गिलास, कटोरे, कलसी, गगरे, आदि) मेरे सामने से उठा ले जाओ, नहीं तो मैं इन्हें चूर-चूर करके यहीं मिट्टी में मिला दूँगा।"

यद्यपि वे सारी चीज़ें एकदम नई, बहुत ही सुन्दर और क़ीमती थीं, फिर भी मेरे बाबू जी ने उनकी ओर से कोई वकालत न करते हुए बड़ी ही दीनता से हाथ जोड़ कर कहा—"ग़रीब की चीज़ें ऐसी ही हुआ करती हैं समधी जी! मैं किस लायक़ हूँ कि आपको कुछ दे सकूँ? इधर-उधर से भीख माँग कर जो कुछ जुटा सका, आपके चरणों पर समर्पित है। इस तरह अगर आप उन्हें ठुकरा देंगे तो मैं कहीं का न रह जाऊँगा। मेरी लाज बचाइए।"

इस करुण विनती से मेरे ससुर जी पसीजने वाले नहीं थे। उन्होंने और भी आग-बबूला होकर कहा—"लाज उसकी बचाई जाती है, जिसके पास वह हो। आपको अपने लाज-धरम का ख़्याल होता तो इस तरह छूछी हल्दी की थाली देकर आप मेरा अपमान न करते। आख़िर मुझे भी तो अपने समाज में अपनी प्रतिष्ठा रखनी है! आपके ये सारे बरतन पुराने हैं। ऊपर से इन पर पॉलिश करवा दिया गया है। इन्हें साथ ले जाऊँगा तो गाँव भर के लोग मेरा उपहास करेंगे। मैं इन्हें छू भी नहीं सकता। जी चाहे, आप उठाकर ले जाइए या यहीं पड़े रहने दीजिए।"

मेरे बाबू जी की आँखों में आँसू भर आए। क्रोध और अपमान की चोटों से आहत होकर भी उन्होंने अपनी स्वाभाविक नम्रता से उत्तर दिया—"मैं तो आपसे निवेदन कर चुका समधी जी! नई या पुरानी जैसी भी हों, अब ये चीज़ें आपकी हैं। मेरे-जैसे भिखारी से आप हल्दी की थाली में और क्या पाने की आशा कर सकते हैं? मेरे पास है ही क्या? गोबर उठाने के लिए मैं आपको अपनी बेटी दे सका, यही मेरा अहोभाग्य! आपकी इतनी कृपा न होती तो मेरा उद्धार असम्भव था।

मेरे ससुर जी कुछ बोलने ही वाले थे कि इतने में ही उधर से कोई और सज्जन बोल उठे—"रुपए ख़र्च करने में पीड़ा हो तो बेटी का ब्याह ही नहीं करना चाहिए। रख लेना चाहिए चुपचाप उसको अपने ही घर में।"

उनके बाद ही एक दूसरे सज्जन ने कहा—"ठीक तो है। बेटी जनमाने के पहले ही अच्छी तरह सोच लेना चाहिए कि उसके लिए कुछ ख़र्च करने की भी सामर्थ्य है या नहीं।"

अब इधर के लोग भी अपने बढ़ते हुए क्रोध को क़ाबू में नहीं रख सके। क्रोध में काँपते हुए बड़के भैया ने बाबू जी से डपट कर कहा—आप भी किन बेहूदों के आगे हाथ जोड़े खड़े हैं! जाइए यहाँ से। जितना ही हम दबे जाते हैं उतनी ही इनकी शेख़ी और भी बढ़ती जा रही है। ले जाइए दहेज की ये सारी चीज़ें घर; इन्हें देने की कोई ज़रूरत नहीं। अब इनकी गाली का जवाब गाली से और मार का जवाब मार से दिया जायगा।

"इतनी जल्दी घबरा मत जाओ बेटा!" कह कर बाबू जी उन्हें शान्तिपूर्वक कुछ समझाना ही चाहते थे कि इतने में मेरे ससुर जी ने बड़के भैया की पीठ पर पड़ाक

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से एक जूता पटक कर, राक्षसी-स्वर में चिल्लाते हुए, चुनौती दे दी—"मार तो मार ही सही। देखें, किन सालों में इतनी हिम्मत है!"

बड़के भैया ने भी उसके जवाब में जूता उठाया ही था कि बाबू जी उनसे लिपट गए और अपनी क़सम देकर उनको वैसा करने से रोक लिया।

"निकाल लो तलवार, फरसा और काट दो खीरे की तरह इन बलिदान के बकरों को! फूँक दो आग इस समूचे गाँव में! मारो, काटो, लूटो, पीटो, चखा दो मज़ा इन पाजियों को बढ़-बढ़ कर बातें करने का" इन्हीं शब्दों का उच्चारण करते हुए मेरे ससुर जी और भी पागलों की तरह चिल्ला-चिल्ला कर ऊधम मचाने लगे।

बड़के भैया की पीठ पर जूता पड़ते ही मेरे गाँव के पचीसों नवजवान लाठी लेकर बारात पर टूट पड़े। ससुर जी झोंक में आकर तलवार-फरसा निकालने की बात तो कह गए, मगर सच पूछिए तो उनके दल में दो-चार लाठियों के सिवाय आत्म-रक्षा के लिए और कोई अस्त्र-शस्त्र था ही नहीं! सब के सब बेचारे बुरी तरह पिट जाते, अगर छोटके भैया ने आगे बढ़ कर उन क्रोधोन्मत्त नवजवानों को रोक न लिया होता। "ख़बरदार! मेरे सम्बन्धियों पर हाथ छोड़ने का किसी को अधिकार नहीं है। उनकी गालियाँ और मार सहने का काम हमारा है। आप लोग व्यर्थ ही रक्तपात करने पर उतारू न हों।" छोटके भैया के इन शब्दों ने उन्हें लाठी चलाने का मौक़ा ही नहीं दिया।

बाबू जी अब भी मेरे ससुर के पैरों पर लोट-लोट कर अपने आँसू से धरती गीली कर रहे थे। बड़के भैया खड़े-खड़े क्रोध से दाँत पीस रहे थे। छोटके भैया अपनी ओर के लोगों को इस दृढ़ता से रोके हुए थे मानों वे उनके अधिनायक हों। और मैं? हाय! मेरी बाबत कुछ न पूछिए। मैं अपने सिसकते हुए पतिदेव के साथ पालकी के भीतर से ही रो-रोकर यह सब देख रही थी! मन ही मन यह भी सोच रही थी कि यदि मेरा जन्म ही न होता तो आज इस दारुण लीला की सृष्टि ही किस लिए होती!

भयङ्कर मार-पीट की नौबत तो किसी प्रकार टल गई। मगर मेरे ससुर जी को कोई शान्त न कर सका। वे दौड़ कर मेरी पालकी के पास आ गए और मेरे पतिदेव को उससे बाहर खींचते हुए बोले—तुम इसके भीतर बैठ कर औरतों की तरह क्यों रो रहे हो? चलो मैं तुम्हारा दूसरा ब्याह करा दूँगा। इस बेईमान की बेटी अब मेरे घर नहीं जा सकती। इसने हमारा घोर अपमान किया है।

मैंने देखा, अपने बाप की इस अमानुषिक निष्ठुरता का वे किसी तरह भी प्रतिरोध नहीं कर सके। बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोने लगे। मुझे ऐसा मालूम हुआ मानों मेरा सर्वस्व ही छिन गया। मैं भी रोती हुई पालकी से बाहर निकल आई और पछाड़ खाकर वहीं गिर पड़ी। मरी नहीं; अगर उसी समय मर गई होती तो आज यह दिन न देखना पड़ता। जब मेरी आँखें खुलीं तो मैंने अपने को छोटके भैया के कमरे में बिस्तर पर लेटी हुई पाया। वे धीरे-धीरे मेरे ऊपर पङ्खा झल रहे थे।

प्यार से माथे पर हाथ फेरते हुए उन्होंने सजल स्वर में पूछा—अब तबीयत कैसी है नीरो?

मैं क्या जवाब देती? धैर्य का बाँध टूट गया था, मैं एक बार ही फूट कर रो पड़ी। वे भी उसी तरह रो-रोकर मुझे चुप कराने लगे।

२

सुना, घर जाते ही मेरे पतिदेव भी बीमार होकर चारपाई पर गिर पड़े। पूरे महीने भर एक दिन छोड़ कर एक दिन, उन्हें ज्वर आता रहा। उसके बाद वे चारपाई से उठ तो ज़रूर गए, लेकिन केवल नाम-मात्र के लिए। अच्छे होकर भी वे दिन-रात किसी अगाध चिन्ता में डूबे रहते थे। हँसने-बोलने की तो बात ही क्या, लोगों का कहना है, खाने-पीने की ओर से भी बुरी तरह उदासीन रहने लगे। फल यह हुआ कि उनके खोए हुए स्वास्थ्य के लौट आने की बात तो दूर रही, जो कुछ बच रहा था उसमें भी धीरे-धीरे घुन लगने लगा। अब वे सप्ताह में चार दिन अच्छे रहते तो तीन दिन बीमार। कॉलेज का पढ़ना तो छुड़ा दिया गया, लेकिन घर पर पुस्तकों के सिवाय और उनका कोई साथी ही नहीं था। उस हालत में भी कभी-कभी रात-रात भर वे किताब लेकर बैठे ही रह जाते थे। लोग लाख समझाते, मगर उसका कोई असर नहीं होता। परिणाम वही हुआ जो ऐसी हालत में हो सकता है—उन्हें क्षय की बीमारी ने अपना शिकार

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बना लिया। वे कभी अच्छे और कभी बीमार रह कर बड़े कष्ट के साथ जीवन बिताने लगे।

मुझे समय-समय पर बराबर उनके सम्बन्ध में सारी बातें मालूम होती रहती थीं। मगर उनके पिता जी ने भूल कर भी कभी उनकी बीमारी का हाल मेरे पिता जी को नहीं लिखा। अब भी उनकी आँखें न खुलीं और न उनके हृदय का वह अमङ्गल अनुष्ठान ही पूरा हुआ, जिसका आरम्भ करके उन्होंने हम दोनों प्राणियों के असहाय जीवन को एक भयानक अन्धकार से ढँक दिया था। मैं जैसे-जैसे उनके बारे में सुनती जाती वैसे ही वैसे मेरा कलेजा भी कटा जाता। मन की यही साध मुझे दिन-रात विकल बनाए रहती कि मैं किसी तरह इस बीमारी में उनके पास बैठ कर उन्हीं की चरण-सेवा में अपना समय बिताऊँ। मगर यह मेरे भाग्य में लिखा ही नहीं था। क्या करती ? भीतर ही भीतर रो-रोकर मैं भी अपने जीवन की उन दारुण घड़ियों का अवसान करने लगी!

इसी तरह एक वर्ष बीत गया। अच्छी होने के बदले दिनोंदिन उनकी अवस्था और भी बिगड़ती ही गई। उस दिन जब मैंने सुना कि उनके मुँह से अब और भी अधिक मात्रा में ख़ून गिरने लगा है, उनकी देह में अब ज्वर बराबर बना ही रहता है, वे बहुत ही बेचैन रहने लगे हैं, तब तो मेरे धीरज का बाँध ही टूट गया! हृदय इस तरह हिल उठा जैसे इसका सारा अवलम्ब ही टूट गया हो! मन में आया, अभी-अभी उड़ कर उनके पास पहुँच जाऊँ, मगर देखा तो पङ्ख का पता ही नहीं था! इच्छा हुई, दौड़ कर उनके चरणों पर जा गिरूँ, लेकिन रास्ता चारों ओर से बन्द था। मैं माथा ठोक कर बैठ गई!

बाबू जी मेरी दशा देख कर रो पड़े। मेरे पास आकर ममता-भरी वाणी में उन्होंने मुझसे कहा—तुम तो देख ही रही हो बेटी! मैं हाथ के फोड़े से कितना विकल हूँ। पीड़ा के मारे मरा जा रहा हूँ, मुझसे लिखते नहीं बनता। चलो, तुम्हीं मेरी ओर से एक पत्र लिख दो।

मैं समझ गई, उन्हें किसके पास पत्र भेजना था। बाबू जी सचमुच फोड़े की भयङ्करता के मारे लिख नहीं सकते थे। वह उनके दाएँ ही हाथ पर हो गया था और बहुत ही कड़ी यातना दे रहा था। मेरा हृदय भर आया। मैंने बड़ी कठिनता से, अपनी उछलती हुई करुण भावनाओं को दबा कर, उनसे कहा—मैं न लिख सकूँगी बाबू जी, बड़के भैया से कहिए।

उनकी आँखों में आँसू भर आए। बहुत ही दुखित होकर उन्होंने कहा—प्रताप से वहाँ पत्र लिखने के लिए कहते हुए मुझे भय मालूम होता है, इसे क्या तुम नहीं जानती हो नीरो ? उसका हठ क्या तुमने देखा नहीं है ?

मैंने कहा—आप न कहिए, मैं किसी और से कहला दूँगी।

बाबू जी ने कहा—मेरी बात रख लो, वह देवता का कहा भी नहीं सुनेगा। इस मामले में उसका स्वभाव मैं अच्छी तरह जानता हूँ—सुनते ही झल्ला उठेगा। झूठ-मूठ उसे छेड़ने की ज़रूरत नहीं।

"तो फिर किसी और से लिखवा लीजिए" मैंने कहा—"गाँव में और भी तो लिखे-पढ़े लोग हैं।"

"उस पत्र में मुझे जो कुछ लिखाना है बेटी!" बाबू जी ने बड़ी गम्भीरता से मुझे समझाया—"वह बाहर विदित हो जायगा तो लोग मेरा उपहास करेंगे। मैं तो इसकी परवाह नहीं करता, लेकिन प्रताप से यह नहीं सहा जायगा। वह क्रोध में आकर गाँव भर का बखेड़ा मोल ले लेगा। जानता हूँ, मुझे तुमसे भी यह काम नहीं करवाना चाहिए; मगर इस समय मैं और कर ही क्या सकता हूँ? दुख के इस अथाह पारावार में डूबते हुए अपने बूढ़े बाप को इतना-सा भी सहारा न दे सकोगी बेटी ?"

मैं इसके आगे और कुछ न कह सकी। चुपचाप उठी और उनके कमरे में जाकर काग़ज़-क़लम लेकर बैठ गई।

बाबू जी ने पत्र लिखवाना शुरू किया। वह मेरे ससुर जी के नाम था। मेरे हृदय में बड़े ज़ोर से धड़कन शुरू हो गई! उन्होंने कहा "इसके आगे लिखो, बेटी!"

मेरी लेखनी काँपने लगी। वे लिखाने लगे—"आपका अपराधी तो मैं हूँ। मुझे चाहे जो दण्ड दीजिए। कहिए, इसी समय आकर आपके चरणों पर गिर पड़ूँ, और आप मेरी नङ्गी पीठ पर चाहे जितने जूते लगा लें। मगर मेरी बेटी का क्या क़ुसूर है ? इसे तो कम से कम एक बार अपने पति का मुँह निहार लेने दीजिए।"

बाबू जी रो-रोकर एक ही साँस में ये सारी बातें

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कह गए। जैसे वे पत्र नहीं लिखा रहे थे—साक्षात् किसी से बोल ही रहे थे। मेरे हाथ से लेखनी गिर पड़ी और मैं बाबू जी के गले से लिपट कर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी।

इसी समय किसी ने उनके गले से मेरा हाथ छुड़ाते हुए कहा—इस तरह रो-रोकर तुम भी मत मरो नीरो! धीरज बाँधो।

ये मेरे छोटके भैया थे। मुझे बरबस रोना बन्द करना पड़ा, नहीं तो वे और भी बुरी तरह रोने लगते।

उन्हें एकाएक कमरे में देख कर बाबू जी को भी ढाढ़स बँध आया। आँसू पोंछते हुए वे बोले—तुम कैसे आगए प्रमोद? कॉलेज में छुट्टी है?

उन्होंने बाबू जी के पैर छूते हुए कहा—छुट्टी लेकर आया हूँ; बहनोई जी को देखने जाना है।

बाबू जी ने सन्तोष की साँस खींच कर कहा—बड़ा अच्छा किया बेटा! मैं बड़ी उलझन में पड़ गया था। तुमने उसे दूर कर दी।

"मगर मैं नीरो को भी अपने साथ लिवा जाऊँगा"—छोटके भैया ने बिना किसी प्रकार के सङ्कोच का भाव दिखाते हुए कहा।

बाबू जी थोड़ी देर तक चुप रहे। फिर उन्होंने कहा—नहीं, यह ठीक न होगा बेटा! अपमान की इतनी कड़वी घूँट तुम लोग नहीं पी सकोगे। अच्छा हो, पहले तुम अकेले ही हो आओ। उन लोगों की मार-गाली सह कर भी उन्हें इस बात के लिए राज़ी कर आओ कि घड़ी भर के लिए भी वे तुम्हारी बहिन को अपने घर बुला लें।

"अच्छी बात है"—कह कर छोटके भैया उसी समय कमरे से निकल गए। मैं इतना भी नहीं कह सकी कि कम से कम वे मुँह-हाथ धोकर कुछ जलपान तो कर लें!

३

उसके दूसरे ही दिन छोटके भैया वहाँ से लौट आए। सीधे बाबू जी के पास पहुँच गए। उनका चेहरा देख कर हिम्मत न हुई कि उनसे कुछ पूछूँ। कमरे के बाहर ही दीवार की ओट में चुपचाप खड़ी होकर उनकी बातें सुनने लगी। सुनने में जितनी पीड़ा हुई थी, सुनाने में इस समय उससे भी बढ़ कर पीड़ा हो रही है। उस समय हृदय पर केवल एक ही चोट पड़ रही थी, आज उसी चोट के सिलसिले में न जानें कितनी चोटें सहनी पड़ रही हैं।

वह मेरा ससुर नहीं, पिछले जनम का कोई प्रति-हिंसक शत्रु था। वह मेरी सास नहीं, मेरे जन्म-जन्मान्तर की वैरिन थी। वह मेरी ननद नहीं, कभी की मुझसे चोट खाई हुई काली नागिन थी। इन सब लोगों ने एक साथ ही मुझसे बदला चुकाया।

छोटके भैया को देखते ही सब के सब कुत्तों की तरह उन पर टूट पड़े। सास और ननद ने गालियों से सत्कार किया और मेरे ससुर देवता उन्हें पीट भी देते, अगर छोटके भैया अपनी असाधारण सहनशीलता और पुरुषार्थ-भरी गम्भीरता से काम न लेते। वे इन उत्पातों से बिलकुल विचलित हुए ही नहीं। अन्त तक नम्रता, शान्ति और सद्भाव का साथ उन्होंने न छोड़ा। और यह सब उन्होंने सिर्फ़ मेरे लिए किया; नहीं तो उनके जैसा हृष्ट-पुष्ट नवजवान दस आदमियों को अकेले चबा सकता था।

उन्होंने बार-बार पैरों पड़ कर विनती की कि एक बार मेरी बहिन को इनका मुँह देखने दीजिए।

ससुर ने कहा—आज तक कहाँ थे?

सास ने कहा—इस कुदिन में उसे यहाँ बुला कर मैं अपना अमङ्गल करूँगी क्या? अभी गौना का दिन बहुत दूर है।

ननद ने कहा—किस कुघड़ी में मेरे भाई ने उस डाइन के माँग में सेन्दुर डाला कि उसी दिन से अभी तक खाट पर पड़े हुए हैं! उसे यहाँ बुला कर मैं अपने घर को मसान बनाऊँ तब न?

मेरे भैया सब तरह से निरुपाय होकर अपने बहनोई के कमरे में गए। उन्हें देखते ही वे बच्चों की तरह फूट-फूट कर रो पड़े। रोते ही रोते उन्होंने कहा—इन लोगों को आप व्यर्थ ही क्यों समझा रहे हैं? इनके आगे झुकना नम्रता का अपमान करना है।

छोटके भैया ने रोकर जवाब दिया—मुझे एक ही बहिन है, उसमें मेरे प्राण बसते हैं, उसी के लिए मुझे सब कुछ करना पड़ेगा।

"नहीं, अब आप कुछ मत कीजिए" उन्होंने बड़ी कातरता से कहा—"ये लोग आदमी नहीं, राक्षस हैं। इन लोगों को मेरे ऊपर तो दया ही नहीं आई, पराए की बेटी का दुख देख कर ये कब पसीजने वाले हैं! मैंने स्वयं इन लोगों से कई बार रो-रोकर विनती की; लज्जा-

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सङ्कोच छोड़ कर इनके आगे अपना हृदय खोल कर रख दिया, फिर भी इनकी पत्थर की छाती न पसीजी। इसलिए आप अब इनसे अधिक अपमानित न होइए। जाइए, अपनी बहिन को सान्त्वना दीजिए। बड़ी साध थी कि उसे गले लगा कर एक बार रो लेता। पर सब तरह से निरुपाय हो गया हूँ। कह नहीं सकता, उस बेचारी के भाग्य में क्या बदा है!"

इसी समय मेरे ससुर जी कमरे में घुस आए और बोले—आप लोग जो सलाह कर रहे हैं, वह मैंने भी सुन लिया है। अब अगर आप चुपचाप यहाँ से चल नहीं देते तो मैं कहे देता हूँ, ठीक नहीं होगा।

"अब तो मैं मर ही रहा हूँ बाबू जी!" मेरे पतिदेव ने कहा—"क्या इस समय भी मुझे थोड़ी देर तक सुखी नहीं रहने दीजिएगा?"

"वही तो मैं कह रहा था"—ससुर जी ने सिर हिला कर कहा—"चल गया न ससुराल का जादू! मगर याद रखना, मेरे जीते जी यह नहीं होने पाएगा।"

"सो तो मैं ख़ूब अच्छी तरह से जान गया हूँ" उन्होंने कहा—"मगर पूछता हूँ आपके इस अत्याचार का कहीं अन्त भी होगा या नहीं? मैं ऐसी कौन सी बातें कर रहा था, जिनको बन्द करने के लिए आप यहाँ लाठी लेकर आ धमके? कृपा कर थोड़ी देर के लिए मेरे कमरे से हट जाइए, नहीं तो दीवार में सिर पटक कर मैं इसी समय आत्म-हत्या कर लूँगा।"

वे जोश में आकर उठ बैठे। ससुर साहब चुपचाप कमरे से बाहर हो गए।

छोटके भैया ने उन्हें पकड़ कर लिटा दिया और पूछा—तो मैं उसे थोड़ी देर के लिए आपके पास ले आऊँ?

"नहीं"; उन्होंने हाथ जोड़ कर कहा—"ईश्वर के लिए ऐसी ग़लती न कीजिए। यह सच है कि मैं उसे देखे बिना सुख से नहीं मर सकता, फिर भी मरते समय मैं अपनी आँखों के सामने उसे अपमानित नहीं होने दूँगा।"

"मैं उसके अपमान करने वालों की लाश गिरा दूँगा"—भैया ने जोश में आकर कहा।

"इसकी ज़रूरत नहीं प्रबोध भाई!" उन्होंने बड़ी कातरता से कहा—"आख़िर अब वह यहाँ आकर ही क्या करेगी? जाइए, उसे ढाढ़स बँधाइए। उसकी रक्षा कीजिए और मुझ पापी की ओर से उससे क्षमा माँग लीजिए। लाइए, एक बार उसके नाते आप ही का हाथ चूम लूँ।"

"नहीं, आप किसी बात की चिन्ता न करें। मैं उसे एक बार आपके चरणों के पास देखना चाहता हूँ"—कह कर छोटके भैया आतुरता से उठ खड़े हुए।

उन्होंने भर्राए हुए स्वर में उत्तर दिया—जाइए, मगर जल्दी आइएगा।

बाबू जी को मेरे दुर्भाग्य की यह करुण गाथा छोटके भैया ठीक इसी तरह रो-रोकर सुना रहे थे, जिस तरह इस समय मैं आपको सुना रही हूँ। बाबू जी की आँखों से भी आँसू का सोता बह रहा था! और मैं एक अवलम्बहीन लतिका की तरह दीवार से टिकी हुई थी। मेरी आँखों का आँसू उस समय जैसे सूख-सा गया था।

वहाँ की सारी बातें सुना कर अन्त में छोटके भैया ने पूछा—तो मैं अब नीरो को वहाँ ले जाने की तैयारी करूँ न?

"हाँ" कह कर बाबू जी ने स्वीकृति दे दी। मेरा हृदय इस वेग से धड़कने लगा कि मालूम होता था अब फट ही जायगा। मगर यहाँ तो करम में लिखा हुआ था जन्म-जन्मान्तर के करोड़ों पापों का फल भोगना। वह फट कैसे जाता?

ख़ैर, थोड़ी ही देर के भीतर मेरे चलने की तैयारी होगई। मैं हहरते हुए हृदय और काँपती हुई आशा से पालकी के भीतर जा बैठी।

आँगन से पालकी बाहर निकली ही थी कि इधर से रोते और सिर पीटते हुए, गिरते और पछड़ते हुए मेरे बड़के भैया को कोई सम्हाले आ रहा था।

छोटके भैया ने आगे बढ़कर पूछा—क्या हुआ?

बड़के भैया ने सिर धुनते हुए जवाब दिया—होगा क्या मेरे भाई! हम लोग लुट गए! हमारी सोने की दुनिया जल गई! देखो, यही आदमी वहाँ से अभी यह चिट्ठी लेकर आ रहा है। तुम्हारे आने के बाद ही बहनोई जी चल बसे! हाय, हमारी दुलारी बहिन के जीवन को एकदम सूना करके वे न जाने कहाँ भाग गए!

मेरे आगे एकाएक अँधेरा छा गया। छोटके भैया ने जी कड़ा करके पूछा—कहीं उस राक्षस ने धोखा देने के लिए तो पत्र नहीं भेजा है?

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पत्र-वाहक की आँखों में आँसू भर आए। उसने विश्वास दिलाया—मैं उनके हाथ का पत्र लेकर नहीं आया हूँ बाबू जी! वे सचमुच राक्षस हैं। मुरली बाबू आपके भाई साहब के सच्चे दोस्त हैं। मैं उन्हीं की चिट्ठी लेकर आया हूँ। उधर उनकी लाश गाँव से बाहर निकली है, इधर मैं चिट्ठी लेकर यहाँ आया हूँ।

अब सन्देह के लिए कोई स्थान नहीं था। सब लोग सिर धुन-धुन कर रोने-पीटने लगे। मैं रो नहीं सकी, उसके पहले ही बेहोश होकर गिर पड़ी! पता नहीं, उस बेहोशी को भी मुझसे कौन सा बैर था, जो थोड़ी ही देर बाद उस रुदन भरे संसार में मुझे तड़पती हुई छोड़कर, वह भाग गई। वह भी तो मुझ हतभागिनी के साथ कुछ दया का बर्ताव करती! पर दुख में कौन किसका साथ देता है? फिर उसी को क्या पड़ी थी?

४

मेरी माँ तो विवाह के पहले ही मर गई थीं। दुर्भाग्य के दिन आते ही बाबू जी भी चल बसे। मेरे वैधव्य-शोक की वह निदारुण यन्त्रणा उनसे सही न गई। मरते समय बड़के भैया से वे कह गए—देखो बेटा! नीरो को अब तुम्हीं दोनों भाइयों का भरोसा है। इसे किसी तरह का कष्ट न पहुँचने पावे।

छोटके भैया का ब्याह अभी तक नहीं हुआ था। वे इसके लिए राज़ी ही नहीं होते थे। कहते थे, कॉलेज की पढ़ाई समाप्त हो जाय, फिर देखा जायगा। घर भी बहुत ही कम आते थे। लेकिन बाबू जी के मर जाने पर वे क़रीब-क़रीब हर एक रविवार को घर आने लगे। केवल इसलिए कि कम से कम सात-आठ दिनों के बाद वे मुझे एक बार देख सकें कि मैं सुख से रहती हूँ या नहीं। भावज का स्वभाव अच्छा नहीं था। बड़के भैया स्वयं उनसे बहुत डरा करते थे। छोटके भैया को यह अच्छी तरह से मालूम था। इसी लिए मेरे सुख-दुख की ओर वे अपनी ख़ास निगरानी रखते थे।

जब तक मेरे बाबू जी रहे, मुझे भावज की स्वभाव-कटुता का कोई व्यावहारिक अनुभव नहीं था। इसकी नौबत ही नहीं आ पाती थी। उनके मरते ही मेरे प्राण सङ्कट में पड़ गए। रह-रह कर भावज के दुष्ट प्रहारों की वृद्धि होने लगी और मैं बड़ी धीरता के साथ उन्हें सहने लगी। छोटके भैया जब आते, मुझे यही उपदेश दे जाते—देखना बहिन, भूल कर भी अपनी ओर से कोई ग़लती न होने देना। दो बातें सह लेने की आदत न छोड़ोगी तो जीवन में हर तरह का कष्ट झेल कर भी तुम सुख से रह सकोगी।

उनकी इन बातों का मर्म मैं समझती थी और इसी-लिए भौजी के आगे मुझे गरदन झुका कर ही रहना पड़ता था। मेरी इस नम्रता से उन्होंने बहुत ही अनुचित लाभ उठाना शुरू किया। मेरे झुके हुए कमज़ोर कन्धों पर उन्होंने धीरे-धीरे घर के सारे काम-काज का भार लाद दिया। मज़दूरिन की तरह मैं दिन-रात कठिन परिश्रम करने लगी। रसोई बनाना, आँगन-घर साफ़ करना, कपड़े धोना, धान कूटना, चक्की पीसना, बच्चों का मल-मूत्र फेंकना, कोई भी ऐसा काम न था जो मैं न करती होऊँ। फिर भी मीठी बोली सुनने को तरसना पड़ता था। किसी तरह से भौजी के मिज़ाज मिलते ही नहीं थे। बात-बात पर झुँझला उठतीं, गालियाँ बकने लगतीं, और ग़ुस्से में आकर बच्चों को पीटने लगती थीं।

एक दिन सौदा ख़रीदने गई। दूकान में बड़ी भीड़ थी। घर लौटने में देर होगई। फिर क्या था? जैसे ही आँगन में पैर रक्खा, भौजी भूखी शेरनी की तरह मुझ पर टूट पड़ीं। बोलीं—दूकान पर कौन यार-भतार बैठा रहता है, जिसके साथ बातें करने में इतनी बेसुध हो जाती हो कि इतना भी ख़्याल नहीं रहता कि घर में भी कोई काम-धन्धा है या नहीं?

सब कुछ होता था, मगर यार-भतार की बात सुनने की नौबत आज तक नहीं आई थी। मेरी सारी सहन-शीलता जाती रही। धरती पर सामान की गठरी पटकते हुए मैंने कड़क कर कहा—ज़रा, सम्हल कर बातें करना भी सीखो भौजी! जितना ही सहती जाती हूँ, उतना ही तुम बढ़ती जाती हो। सब कुछ सह लूँगी, मगर इस तरह की गालियाँ बकोगी तो अच्छा न होगा।

"और उलटे मेरे ही ऊपर ताव जमा रही हो?" आग-बबूला होकर वे बोलीं—"घर का सारा काम-धन्धा ज्यों का त्यों पड़ा है और तुम अभी टहलती हुई आ रही हो! तिस पर ऊपर से यह रोब!"

"काम-धन्धा पड़ा हुआ है तो तुम्हारे हाँथ-पाँव क्या गल गए हैं? करतीं क्यों नहीं? दिन-रात कमाते-कमाते मैं मरं जाती हूँ, फिर भी इनका काम ही नहीं पूरा होता;

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और आप, चौबीसो घण्टे सेज ही पर पड़ी रहती हैं।" इस बार मैंने भी अपने दिल का बुख़ार निकालते हुए उसी तरह बिगड़ कर जवाब दिया।

"सेज पर सोऊँगी नहीं ?" उन्होंने कहा—"मैंने किसी की सेज छीन ली है क्या ? जिसने जैसा करम किया है उसको वैसा ही फल मिल रहा है ! तुम्हें तो जनम भर का रोना बदा है, सेज पर सोओगी कैसे ?"

"रोना बदा है तो रोने के लिए दुनियाँ में और भी जगहें मिल जायँगी" मैंने जवाब दिया—"तुम्हारे तलवे की धूल मुझसे अब न झाड़ी जायगी। देख लिया, तुममें कितनी आदमीयत है।"

"मेरी आदमीयत देख कर तुम क्या कर लोगी ?" उन्होंने कहा—"जाओ न, जहाँ जाना चाहो। कोई रोकता है ? देखें, किस चूल्हे-भाड़ में जगह मिलती है। किसके इशारे पर आज इस तरह नाच रही हो ?"

"नाचना तो तुम जानती हो" मैंने जवाब दिया—"मुझे क्या मालूम कि नाचना किसे कहते हैं ? क्यों इस तरह मेरे घाव पर नमक छिड़कती जा रही हो ? कुछ भगवान् का भी डर है या नहीं ?"

"भगवान् का नाम लेकर मुझे इस तरह सरापोगी तो झाड़ू मार कर आँगन से बाहर निकाल दूँगी। डाइन कहीं की ! मेरे ही टुकड़ों से पल रही है और मुझे ही सराप (शाप) भी दे रही है"—कह कर सचमुच उन्होंने झाड़ू उठा लिया। इसी समय बड़के भैया आकर वहाँ खड़े होगए। उन्हें देखते ही मैं फूट-फूट कर रोने लगी !

५

सारे दिन की थकावट से देह टूट रही थी। पीड़ा के मारे सिर फटा जा रहा था। रात भर करवटें बदलती रही। सवेरे आँखें झप गईं। मुझसे उठा नहीं गया। क़रीब आध पहर दिन चढ़ आया और मैं नींद में बेहोश पड़ी रही। यह एक ऐसा अपराध था, जिसके लिए भौजी किसी तरह क्षमा नहीं कर सकती थीं। भरी तो रहती ही थीं, उन्हें बरसते कितनी देर लगती ? लगीं ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला कर बकने—"पटरानी की तरह, जब देखो बिस्तरे पर पड़ी रहती हैं। इतना बड़ा दिन चढ़ आया और अभी तक इनके लिए रात ही है।"

जिस आवाज़ से घर की दीवारें तक हिल उठती थीं उससे नींद उचटते देर लगती ? मैं हड़बड़ा कर उठ बैठी। मेरा समूचा शरीर अब भी अलसाया हुआ, थका हुआ और सूना-सा मालूम हो रहा था। मैं कमरे से निकल कर बाहर बरामदे में दीवार से टिक कर बैठ गई।

भौजी ने कड़क कर कहा—"इस तरह टिक कर बैठ क्या गई ? चौका-बर्तन योंही जूठा पड़ा है। बच्चे भूख के मारे रो-रोकर मेरे प्राण खा रहे हैं। इन्हें भी मार कर ही दम लोगी क्या ?

ग़ुस्से के मारे मेरी देह जल उठी। मुँह से आपही आप निकल पड़ा—मैं इन्हें मारने-जिलाने वाली कौन होती हूँ ? बच्चे तुम्हारे हैं तो प्राण किसके खाए जायँगे ? भूख के मारे रो रहे हैं तो जाकर इन्हें खिलाती क्यों नहीं हो ?

"खिलाऊँ किस चीज़ में रख कर ? तुम्हारे मुँह में ? बर्तन तो सब के सब जूठे पड़े हुए हैं।"

"सोने के बने हुए हाथ हैं क्या ? उनमें से उठाकर दो-तीन कटोरे धो लेतीं तो वे घिस जाते ?"

"हाँ ? अब तुम इतनी बड़ी नवाबज़ादी बन गई हो कि मैं तुम्हारे जूठे बर्तन धो दिया करूँ ?"

"मैंने तो रात में खाया भी नहीं। तुम्हारे ही नवाब-ज़ादे, नवाबज़ादियों और नवाब साहब के जूठे किए हुए बर्तन हैं।"

न जानें बड़के भैया कहाँ से छिप कर ये बातें सुन रहे थे। मेरा इतना कहना था कि धड़ाक से वे मेरे आगे आ खड़े हुए और अपनी लाल-लाल आँखें तरेरते हुए मुझसे बोले—मैं देखता हूँ, तुम अब बहुत ही बढ़-चढ़ कर बातें करना सीख गई हो। मुझे नवाब साहब कहते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती ?

अब मैंने बहुत ही ढीठ होकर जवाब दिया—और मैं भी देखती हूँ, इन बातों के लिए आप सदैव मुझे ही डाट-फटकार कर रह जाते हैं। उससे कुछ नहीं कहते जो दिन-रात सत्तू बाँध कर मेरे पीछे पड़ी रहती है।

"तो क्या तुम्हारे ख़ातिर उसे मार कर फेंक दूँ ?" बड़के भैया ने दाँत पीसते कहा—"तुम्हारे पीछे वह क्या पड़ी रहती है ? काम-धन्धा न करोगी तो कहेगी नहीं ? इतनी देर तक दिन में सोती भी रहती हो और काम करने को कहा जाता है तो गालियाँ बकने लगती हो !"

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"हाँ, हमेशा मैं सोती ही रहती हूँ; और घर का सारा काम आप से आप हो जाता है। पूछिए तो श्रीमती जी से कभी एक तिनका भी टसकाती हैं? रात-भर खाट पर तड़पती रही वह तो किसी ने नहीं देखा, सवेरे थोड़ी देर के लिए आँख लग गई तो चिल्ला-चिल्ला कर आसमान फाड़ा जा रहा है!"

भैया को इतना ग़ुस्सा चढ़ा जा रहा था कि उनके मुँह का रङ्ग एकदम तमतमा उठा, आँखों से आग की चिनगारियाँ बरसने लगीं। इस बार वे सहसा कुछ बोल नहीं सके। उनकी श्रीमती जी ने हाथ चमकाते हुए कहा—रात भर तड़पती रही तो देखने कौन जाता? बुला क्यों न लिया किसी को अपने यार-दोस्तों में से, जिनके बल पर साँडिन की तरह जिससे पाती हो उसीसे भिड़ जाती हो?

वह मेरे क्रोध की पराकाष्ठा थी। मैं भूल गई कि बड़के भैया सामने खड़े हैं। उसी तरह चिल्ला कर बोल उठी—तुम्हारा भी ख़सम मर जायगा तब मेरे बदले तुम्हीं ऐसा किया करना। साँडिन की तरह क्या, उससे भी बढ़ कर भिड़ना तो तुम अब भी बहुत अच्छा जानती हो, तब और जान जाओगी।

"क्यों री हरामज़ादी! मेरे सामने ही तेरी यह हिम्मत?" कह कर बड़के भैया ने उसी समय मेरी पीठ पर खड़ाऊँ बरसाना शुरू कर दिया। झोंटा पकड़ कर, मारते-मारते उन्होंने मुझे धरती पर बिछा दिया। मुझमें रोने की भी सामर्थ्य नहीं रह गई।

भरपेट पीट चुकने के बाद उन्होंने मुझे आज्ञा दी—जाओ, अब सीधे से अपना काम देखो। फिर कभी झगड़ते देखूँगा तो जीती नहीं छोड़ूँगा।

मैं दौड़ कर अपने कमरे में जा घुसी। भीतर से दरवाज़ा बन्द कर लिया और छाती पीट-पीट कर रोने लगी।

प्रायः सारा दिन मैं उसी तरह सिर पटक-पटक कर, छाती पीट-पीट कर, धरती पर लोट-लोट कर, रोती ही रही। बीच-बीच में मैं गालियाँ भी बकती जाती थी, अपने मारने वाले को अभिशाप भी देती जा रही थी।

मालूम होता है, बड़के भैया मुझे मार-पीट कर भूखे ही कचहरी चले गए थे। खाते क्या? खाने-पीने की कोई चीज़ भी तैयार रहती तब तो?

सन्ध्या-समय वहाँ से लौटे तो भूख के मारे झुँझलाए हुए तो थे ही, मुझे अभी तक उसी हालत में पड़ी देख कर उनका क्रोध और भी भभक उठा! पत्नी से पूछा—अभी तक उसका रोना ख़तम नहीं हो सका है?

"अभी कैसे ख़तम हो जायगा?" उन्होंने मुझे सुना कर जवाब दिया—"तभी से यही रट रही हैं कि 'जब तक मेरे मारने वाले की लाश न निकल जायगी, तब तक मैं इसी तरह बैठ कर रोती रहूँगी।' लाख मिन्नतें कीं, हर तरह से समझा-बुझा कर, माफ़ी माँग कर हार गई, मगर किवाड़ खोलती ही नहीं हैं।"

"नहीं खोलती है, तो अब मैं खोलता हूँ। देखें, पहले मेरी लाश निकलती है या इसकी" कह कर वे किवाड़ के पास पहुँच गए और उस पर धड़ाधड़ लात मारने लगे। थोड़ी ही देर में उसके दोनों पट दो तरफ़ को होगए। कमरे में घुसते ही उन्होंने मेरी पीठ पर धमाधम दो-तीन धौल जमा दिए और झोंटा पकड़ कर घसीटते हुए कहा—"अब भी उठती हो या नहीं?"

"नहीं उठूँगी; मुझे मार कर यहीं गाड़ दो!" मैंने कहा।

"यहाँ नहीं मरने पाओगी" कह कर घसीटते हुए, वे मुझे आँगन में ले आए और बोले—"मरना ही है तो मेरे घर से निकल जाओ, इस काम के लिए कोई दूसरी जगह ढूँढ़ो।"

इससे अधिक और कुछ नहीं हो सकता था। बात यहाँ तक बढ़ जायगी, इसकी आशा कभी नहीं की थी। मैं उठी और आँगन से बाहर निकल गई।

मुझे जाती हुई देख कर भौजी ने कहा—इसे पकड़ कर बाँध रक्खो, नहीं तो यह कुल का नाम डुबो देगी।

"जाने दो" बड़के भैया ने डपट कर जवाब दिया—"मैं इस राक्षसी से आजिज़ आ गया हूँ।"

'कहाँ जाऊँ—क्या करूँ' के फेर में पड़कर मैं गाँव के बाहर एक गाछ के नीचे बैठ गई। जीवन से घोर अरुचि हो गई थी। इसी समय कानों में रेलगाड़ी की आवाज़ आई। मन में आगया, क्यों न इसी के नीचे पड़ कर एक ही क्षण के भीतर अपनी सारी यातनाओं का अन्त कर दूँ! दुख में मृत्यु की कल्पना बड़ी मीठी लगती है। मैं उसके स्वाद पर निछावर होकर उठ खड़ी हुई और तेज़ी के साथ स्टेशन की ओर बढ़ी। मुश्किल से अभी

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दस गज़ का रास्ता तय कर सकी होऊँगी कि सामने से कोई आता हुआ दीख पड़ा। पास पहुँचते ही उसने पूछा—यह क्या, नीरो!

इतना सुनते ही मैं उसके चरणों पर गिर पड़ी। वह मेरे ही छोटके भैया थे।

६

मैं छोटके भैया के साथ ही शहर में रहने लगी। किराए का छोटा सा पक्का मकान था। बड़ा ही सुन्दर और स्वच्छ! जगह खुली हुई और स्वास्थ्य-प्रद थी। आस-पास में भले-भले लोगों के बँगले और बग़ीचे थे। पास ही गङ्गा जी की पवित्र धारा बह रही थी।

छोटके भैया ने घर से एकदम अपने को अलग कर लिया। पहले घर ही से उनके पढ़ने का ख़र्च आया करता था, उन्होंने उसे भी लेना बन्द कर दिया। कहा—जिस घर में मेरी बहिन का ऐसा अपमान हुआ उसकी कोई भी चीज़ मेरे छूने लायक़ नहीं रह गई।

बड़के भैया कई बार उनके पास आए। मेरे पैरों पर गिर-गिर कर माफ़ी माँगी, हर तरह से उनकी मिन्नतें कीं, लेकिन वे टस से मस नहीं हुए। बड़के भैया की उस अवस्था पर, उस पश्चात्ताप भरी दीनता पर, उनके उस आत्मसमर्पण की निर्मल कातरता पर, मुझे दया आ गई; परन्तु उन्होंने बिना किसी प्रकार की सहृदयता दिखाते हुए, कड़क कर कह दिया—मुझे आपकी सूरत से घृणा हो गई है। जो अपने ही आश्रय में रहने वाली एक अभागिनी अबला पर हाथ छोड़ सकता है, वह सब पापियों से बढ़कर है। कोई भी ऐसा नारकीय कृत्य नहीं, जिसे करते हुए उसकी आत्मा को क्लेश हो। कृपा कर यहाँ से जाइए अपनी श्रीमती जी के पास; मुझे उस पाप की छाया में घसीट कर ले जाने का विफल प्रयास न कीजिए। मैं अपने हिस्से की सारी धन-सम्पत्ति आप ही के लिए छोड़ देता हूँ; मुझे कुछ नहीं चाहिए। जाइए, कृपा कीजिए। बड़के भैया फिर कभी उनके पास नहीं आए।

कुछ दिनों तक तो बचे-खुचे रुपयों से काम चलता रहा, उसके बाद ही कठिनाई आ खड़ी हुई। लाचार होकर उन्हें कॉलेज की पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी। उन्होंने दो-तीन ट्यूशन कर लिए। पत्र-पत्रिकाओं में भी बराबर उनके लेख निकला करते थे। उधर से भी कुछ रुपए आने लगे। सब मिला कर वे महीने में सौ रुपए से अधिक ही कमा लेते थे। ख़र्च-बर्च का सारा हिसाब मेरे ही ज़िम्मे रहता था। मैं बहुत सावधानी से ख़र्च करने लगी। कुछ महीनों में हम लोगों का अर्थ-कष्ट बिलकुल जाता रहा। कुछ रुपए भी इकट्ठे हो गए।

छोटके भैया दिन-रात लिखने-पढ़ने में लगे रहते थे। कठिन परिश्रम और उद्योग उनकी जीवन-सृष्टि के प्रधान उपकरण थे। जब अपना काम कर चुकते तब वे मुझे पढ़ाया करते थे। धीरे-धीरे मेरे अध्ययन की रुचि और गति बढ़ती गई। अङ्गरेज़ी और हिन्दी-साहित्य का मर्म समझ सकने लायक़ उन्होंने मुझे बना दिया। मेरा जीवन ही दूसरा हो गया।

दिन के तीसरे पहर का समय था। भैया ट्यूशन पर गए हुए थे। उनके लौटने का वक़्त हो रहा था। मैं बिस्तरे पर लेटी हुई प्रेमचन्द जी की 'रङ्गभूमि' पढ़ रही थी। उसकी 'सोफ़िया' का प्रणय-चित्र मेरी सजल आँखों के सामने फिर रहा था। इसी समय किसी ने बाहर से पुकारा—'प्रमोद!'

आवाज़ सुनते ही मैंने किताब रख दी और उठ कर झरोखे से देखा, सड़क पर वही युवक खड़ा था जो छोटके भैया के पास प्रायः आया करता था। यही एक आदमी उनके मित्रों में था, जिसे वे बहुत प्यार करते थे।

उसे मैंने कई बार देखा था, भैया के साथ जलपान कराया था, मगर बातचीत कभी नहीं की थी। आज वह मुझे असाधारण रूप से सुन्दर मालूम हुआ। उसकी उस सौन्दर्य-सुषमा ने मेरे हृदय में एक नई आग लगा दी। मैं मुग्ध होकर उसे उसी तरह खड़ी-खड़ी देखती ही रह गई। मालूम होता था, दृष्टि-पथ पर एक देवदूत ही खड़ा है।

उसने फिर पुकारा—प्रमोद!

अब मेरा ध्यान टूटा। मैंने दौड़ कर नीचे जा किवाड़ खोल दिया और कहा—वे अभी लौट कर नहीं आए हैं।

उसने एक बार मेरी ओर देखा और लाज के मारे आँखें झुका लीं।

मैंने कहा—आते ही होंगे; आइए न, तब तक उनके कमरे में चल कर बैठिए।

बड़े सङ्कोच से उसने उत्तर दिया—अभी जाता हूँ; फिर शाम को आऊँगा।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मैं उसी जगह ज्यों की त्यों खड़ी रही, जब तक वह आँखों की ओट न हो गया।

शाम को मैंने बड़े हुलास के साथ, बड़े ही प्रेम से, जलपान के लिए कई तरह की बहुत ही अच्छी-अच्छी चीज़ें तैयार कीं। उसके बाद मैं कभी दरवाज़े पर जाती, कभी अपने कमरे की उस खिड़की के पास। प्रतीक्षा करते-करते आँखें थक गईं। लाचार होकर, अकेले छोटके भैया को ही जलपान कराना पड़ा। उस समय उस युवक की अनुपस्थिति ने मेरे हृदय को पागल बना दिया।

मुझसे जलपान की एक भी चीज़ नहीं खाई गई। भैया की थाली में बची हुई कोई चीज़ मैं कभी नहीं फेंकती थी, उस दिन फेंक दी। उसी समय से मेरा किसी काम में मन न लगता। खिड़की के पास खड़ी रहना ही अच्छा मालूम होता था। इसी उद्विग्नता ने मेरी रात की रसोई बिगाड़ दी। दाल में नमक देना भूल गई थी, तरकारी में हल्दी अधिक गिर पड़ी। चावलों के नीचे का हिस्सा कुछ जल गया। रोटियाँ भी जैसी ही तैसी हो पाईं।

खाते समय भैया ने हँस कर कहा—आज दाल बहुत ही मीठी लगती है नीरो! नमक के बदले चीनी तो नहीं छोड़ दी?

मैंने घबड़ाकर कहा—"ओहो! नमक देना ही भूल गई भैया!" और उनकी थाली में नमक के बदले चुटकी भर मिर्च की बुकनी रख दी!

वे क़हक़हा मारकर हँसते हुए बोले—तो क्या अब दाल को मीठी से तीती बना दूँ?

मुझे अब होश हुआ। लाज के मारे मर-सी गई। मगर अपनी झेंप मिटाने के लिए तुरन्त बोल उठी—"अब अकेली रसोई बनाने में मन नहीं लगता भैया! मुझे एक सखी ला दीजिए—अब आप अपना विवाह कर लीजिए।"

भैया चकित होकर मेरी ओर देखने लगे। मानों इस परिहास के भीतर कोई ऐसा सत्य छिपा हुआ था जिसे वे आज तक नहीं परख सके थे।

मैंने बिना कुछ समझे-बूझे ही फिर कह दिया—बस, इतनी सी मेरी विनती मान लीजिए भैया! मुझे एक अच्छी सी भौजी ला दीजिए।

भैया ने चुपचाप सिर झुका लिया। उनकी आँखों से टपाटप आँसू की बूँदें टपकने लगीं।

७

उसी दिन से भैया बहुत उदास रहने लगे। न जाने बैठे-बैठे क्या सोचा करते थे? मगर मेरे सामने आते ही वे अपनी उदासी और चिन्ता को प्रसन्नता के परदे में छिपा देते थे।

धीरे-धीरे इसी तरह दिन बीते जा रहे थे। अब उस युवक के साथ मेरी कुछ-कुछ घनिष्टता-सी हो चली थी। पहले वह उस समय मेरे घर में पाँव भी नहीं रखता था, जब भैया नहीं रहते, अब अवसर ताक कर उसी समय आता और बड़ी रुचि के साथ मुझसे बातें करता था।

एक दिन वह न जाने किस काम से दोपहर का खाना खाने के बाद ही भैया के पास चला आया। आषाढ़ की धूप थी। पसीने से लथपथ हो गया था। भैया ने उसे देखते ही कहा—"तुम बड़े ही हठी हो गए हो, इतना समझाता हूँ कि धूप में बिना छाता के मत चला करो, पैर में जूते पहना करो, मगर तुम मानते नहीं हो। बीमार पड़ जाओगे तो सारी तपस्या हवा हो जायगी।"

"तब क्या होगा?"—उसने हँस कर पूछा

"तब" भैया ने मुस्कराते हुए उसकी ठुड्डी हिला कर गाल पर हलकी-हलकी दो-तीन चपतें जड़ते हुए कहा—"तब इसी तरह मेरी चपतें खाया करोगे, और क्या होगा? नीरो! पङ्खा लेती आओ। देखो तो ज़रा इसकी शकल! मालूम होता है किसी के खेत में हल चला कर आ रहा हो।"

मैं पङ्खा झल रही थी। वे दोनों पढ़ रहे थे। अमर बाबू पढ़ते ही पढ़ते सो गए।

भैया ने पढ़ना बन्द करते हुए कहा—अब यह दो-तीन घण्टे के पहले जागेगा थोड़े ही? जाता हूँ तब तक ट्यूशन पर से हो आऊँ। यह उठे तो इसे जलपान-उलपान करा देना। शायद मुझे लौटने में दो-चार मिनट की देर हो जाय।

आकाश में बादल लटक आए! आस-पास की पुष्प-वाटिकाओं से सौरभ बटोर कर, मदमत्त कर देने वाली ठण्ढी-ठण्ढी हवा मेरे कमरे में उन्माद बिखेरने लगी। मैं सिर से पैर तक काँप उठी। वहाँ से भागी

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और फिर उसी जगह पहुँच गई, जहाँ अमर बाबू सोए हुए थे। मैं चुपचाप उनके पास जाकर बैठ गई। आँखें उनके मुखड़े पर बिछ गईं। मेरी सुध-बुध न जाने कहाँ खो गई!

बहुत देर के बाद उन्होंने अपनी आँखें खोलीं। मेरी समाधि टूट गई। फ़ौरन बोल उठी—जलपान ले आऊँ?

"मुँह-हाथ धोने के पहले ही?"—उन्होंने मुस्करा कर पूछा।

मैं लजा कर वहाँ से हट गई। फिर जलपान की थाली और मुँह-हाथ धोने का पानी ले आई।

खाने को कहा तो बोले—प्रमोद के बिना जलपान का लुत्फ़ नहीं आएगा। तब तक रुक जाऊँ तो कोई हर्ज है?

मैंने जवाब दिया—मैं यह सब नहीं जानती, आपको खाना पड़ेगा।

"कोई ज़बरदस्ती है?"—वे हँस कर बोले।

"हाँ" कह कर मैं एक गुलाबजामुन उनके मुँह के पास तक ले जाती हुई बोली—"ज़बरदस्ती मुँह में डाल दूँगी।"

उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया और हँस कर कहा यही गुलाब-जामुन छीन कर अब तुम्हारे मुँह में डाल दूँ?

इसी समय छोटके भैया आकर कमरे में दाख़िल होगए। मेरे तो सारे होश-हवास गुम होगए। मैं मूरत बनी वहीं बैठी रही। उन्होंने चटपट वही गुलाब-जामुन अपने मुँह में रख लिया।

भैया ने आते ही उनकी खोपड़ी पर एक चपत जमाते हुए कहा—पेट नहीं भरता है तो मुँह भी नहीं दुखता? ज़रा अपने थैले को छोटा बना लो।

"बस इतने ही में घबरा गए?" इन्होंने रसगुल्ला चाभते हुए जवाब दिया—"कभी दावत-ऊवत तो खिलाते नहीं; सड़ी-सड़ी चीज़ें खिला कर ऊपर से कहते हो पेट छोटा करने को!"

भैया ने हँसते हुए हाथ जोड़ कर कहा—कोप मत कीजिए दुर्वासा जी महाराज! इस अपराध के दण्ड-स्वरूप मैं कल ही आपकी एक बड़ी सुन्दर दावत दूँगा।

फिर उन्होंने मेरी ओर देख कर हँसते हुए कहा—नीरो! कल बनाओ तो ख़ूब बढ़िया-बढ़िया पदार्थ। देखें, इनका पेट कितना बड़ा है।

मेरे हृदय की हलचल बहुत-कुछ दबी भी और थोड़ी ही देर में फिर वह धीरे-धीरे बढ़ने भी लगी।

८

उस दिन चार ही बजे सवेरे उन्होंने मुझे जगा कर कहा—जाओ नीरो! जल्दी से नहा आओ। आज पूर्णिमा है, घाट पर बड़ी भीड़ होजायगी। मैं भी नहाने जाता हूँ।

मैं नहा-धोकर लौटी तो देखती हूँ, दोनों मित्र मुग्ध भाव से मेरे कमरे में खड़े हैं। भैया उनके ललाट पर तिलक लगा रहे थे।

भैया ने मुझे पास बुला कर मेरा हाथ उनके हाथों पर रख दिया और अश्रु-गद्गद् कण्ठ से बोले—अमर! मैं अपने जीवन की एक बहुत ही अनमोल निधि तुम्हारे चरणों पर चढ़ा रहा हूँ। आशा है, इसे पाकर तुम सुखी होगे। और मेरी लाड़िली बहिन! तुमने मुझसे एक सखी माँगी थी उसके बदले में तुम्हें अपना सबसे प्यारा 'सखा' भेंट कर रहा हूँ। परमात्मा सदैव तुम दोनों को सुखी रक्खें।

देखते ही देखते वह काम हो गया, जिसकी कभी आशा तो क्या, कल्पना भी नहीं की थी। हम दोनों आनन्द-विभोर होकर एक साथ ही उनके चरणों पर गिर पड़े।

आँसू पोंछते हुए वे चुपचाप कमरे से बाहर निकल गए, तभी से लापता हैं। कह नहीं सकती, मरने के पहले उस देव-दुर्लभ भाई को एक बार देख भी पाऊँगी या नहीं!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट—
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

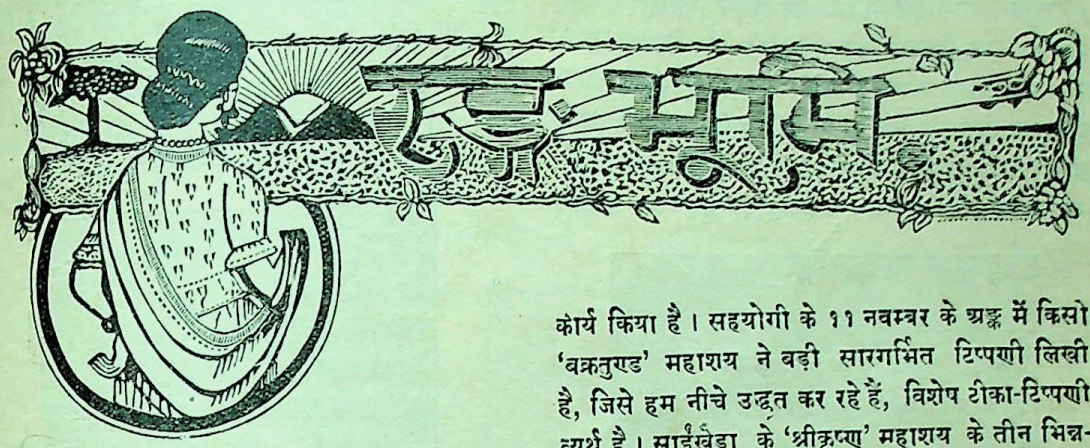

हिन्दुओं की पाखण्ड-पूजा

इसी अङ्क के अग्र-लेख में हमने अभागे हिन्दुओं के भयङ्कर पतन और ह्रास का जो चित्र चित्रित किया है, उसे ही हम अन्तिम शब्द नहीं मान सकते। हिन्दुओं के सुधार का प्रश्न वास्तव में बड़ा जटिल है। उन्हें बाहिरी शत्रुओं की अपेक्षा सर्व-प्रथम घरेलू शत्रुओं का सुधार अथवा संहार का सिंहनाद करना होगा—अपनी पाखण्ड-पूर्ण धार्मिक संस्थाओं के सुधार की ओर विशेष रूप से ध्यान देना होगा। यह घर के जातीय शत्रु वह भयङ्कर घुन हैं, जो धीरे-धीरे—भीतर ही भीतर—हमारी जड़ खोखली कर रहे हैं और जिनके पाखण्ड-पाश में पड़ कर हमारी अनेक बहू-बेटियाँ अपना सर्वस्व इन धूर्त्तों को समर्पित कर रही हैं। आज हमारे अधिकांश धर्म-गुरुओं की पाप-लीला नरक से भी अधिक दारुण सिद्ध हो रही है, हमारे अधिकांश तीर्थस्थान आज सण्ड-मुसण्ड और ढोंगी साधुओं, पण्डों और पुरोहितों के विलास-कानन बने हुए हैं! अधिकांश मठ और मन्दिर आज भ्रूण-हत्याओं के रक्त से रञ्जित हो रहे हैं, और इन भयङ्कर कीटाणुओं के नाश की ओर अभी तक हिन्दुओं का ध्यान भी नहीं गया है! कलकत्ते के 'गोविन्द-भवन' जैसी नारकीय संस्था के भण्डाफोड़ से होने वाला हृदय का घाव अभी भरने भी न पाया था कि सहयोगी 'प्रताप' ने साईं-खेड़ा के एक दूसरे 'श्रीकृष्ण' के नारकीय कृत्यों का भण्डाफोड़ कर, जनता को सचेत करने का अभिनन्दनीय कार्य किया है। सहयोगी के ११ नवम्बर के अङ्क में किसी 'वक्रतुण्ड' महाशय ने बड़ी सारगर्भित टिप्पणी लिखी है, जिसे हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं, विशेष टीका-टिप्पणी व्यर्थ है। साईंखेड़ा के 'श्रीकृष्ण' महाशय के तीन भिन्न-भिन्न रूपों के चित्र भी नीचे दिए जा रहे हैं। एक में रासलीला करते हुए कलियुगी 'कृष्ण' का चित्र स्त्री-वेष में है, दूसरे चित्र में यही साहब बहादुर बना हुआ है और तीसरे में नर-पिशाच ने छैले का वेष बना रक्खा है। क्या इन धर्म के नाम पर घोर अधर्म करने वाले नर-पिशाचों का इतना नग्न-चित्र देख कर भी शिक्षित स्त्रियाँ अपने घरों का सुधार करने में तत्पर न होंगी? क्या देश की माताएँ और बहिनें इस प्रकार की धार्मिक संस्थाओं का बहिष्कार कर अपने कर्त्तव्य का पालन न करेंगी? लेख इस प्रकार है :—

"पाखण्ड-पूजा, ऐसा मालूम पड़ता है कि हिन्दुओं की घुट्टी में पड़ गई है। दुनिया का कौन सा प्राणी और कौन सा पदार्थ हिन्दुओं की पूजा से बचा हुआ है? 'टाइम्स ऑफ़ इण्डिया' में मील के पत्थर की पूजा का एक चित्र छपा था। मील के सीधे-साधे पत्थर-देवता पर फूल और पत्रों का ढेर लदा हुआ था, और भक्त जी बहुत विनय के साथ उसके सामने सिर झुकाए हुए बैठे थे। रोज़ ऐसी ही घटनाएँ देखने में आया करती हैं। कहीं चौराहे के पत्थरों के ढेरों पर श्रद्धा और मुरादों के फूल चढ़े हुए होते हैं और कहीं पेड़ों पर धज्जियाँ झूलतीं और बाँबियों पर दूध रक्खा रहता है! चालाक लोग, यदि श्रद्धा, पूजा और सरलता की इस बाढ़ में जी भर-भर कर नहाने और ग़ोता लगाने की चालें चला करें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या? इसीलिए देश भर में सदा अवतारों की झड़ी लगी रहती है। पीर-पैग़म्बर उतने पैदा नहीं होते, जितने विष्णु और शिव के नए-नए

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्करण ! अभी इन पंक्तियों का लेखक बङ्गलोर के गत दङ्गे का कुछ विवरण पढ़ रहा था। उस विवरण में से भी एक अवतार खसक पड़े। हैदराबाद (दक्षिण) के मौलाना मोहम्मद सिद्दीक़ ने यही वाजिब समझा है कि पीर-पैग़म्बर या मेहदी बनने की अपेक्षा, दक्षिण के लिङ्गायत लोगों के आराध्य 'चन्निवशेश्वर' देव का अवतार

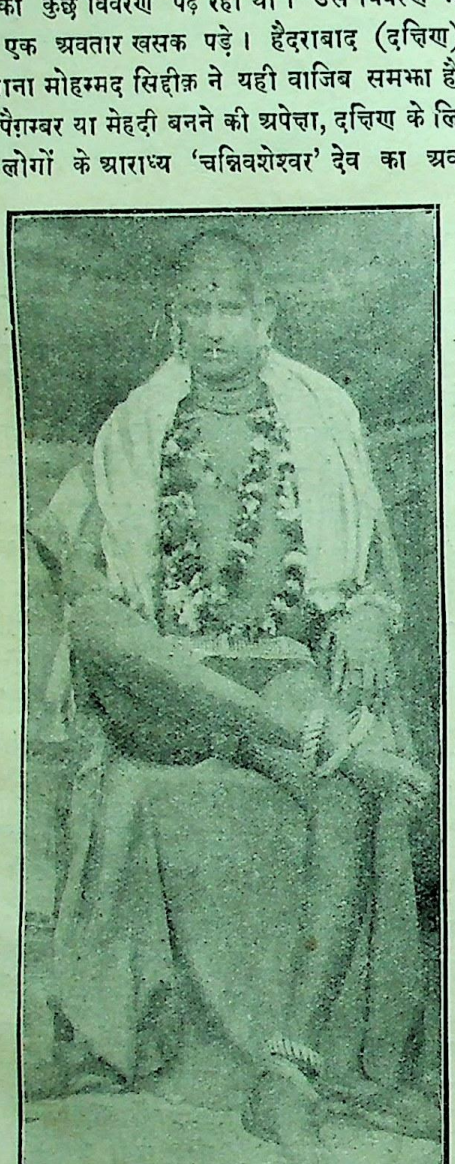

साईंखेड़ा का कलियुगी "कृष्ण" रासलीला के समय स्त्री-वेश में

बन जाया जाय। कहीं की दन्त-कथा है कि इस कलिकाल में, इस देवता का अवतार किसी विधर्मी के यहाँ होगा, और उसके शरीर पर कुछ चिह्न होंगे, उन्हीं से वह पहचाना जायगा। मौलाना अपने शरीर पर चिह्नों की भरमार दिखाते-फिरते हैं। विधर्मी हैं ही। बस, इन दोनों बातों ने उन्हें लिङ्गायतों के देवता बनने का ठेका दे दिया है। नए देवता का एक पत्र 'दीने-आलम' के नाम से निकल रहा है और उसके पट्ट-शिष्य मोहम्मदहुसैन 'ब्रह्मचारी' नए देवता की दिव्य वाणी को भक्तों के कानों तक पहुँचाने का पुण्य काम अत्यन्त उत्साह और भक्ति

साईंखेड़ा का कलियुगी "कृष्ण" छैला-वेष में

के साथ कर रहे हैं। कुछ लोग अब चौंके भी हैं। नए देवता की एक किताब है 'सदवरे-आलम'। उसमें यह सिद्ध किया गया है कि गो-हत्या करना तो हिन्दुओं का पुराना धर्म है, अर्जुन और कृष्ण तक ने उसे की, इस समय के हिन्दू अर्जन और कृष्ण के ख़िलाफ़ कैसे चलते हैं। पुस्तक में अर्जुन और कृष्ण के गायों के मारते हुए चित्र हैं !! इस पर हैदराबाद के कुछ हिन्दुओं ने वावेला मचाया, और राज्य ने उस पुस्तक को ज़ब्त कर लिया। बङ्गलोर के झगड़े की जड़ में ये नए देवता साहब भी समझे जाते हैं। मैसूर सरकार ने उनके श्रीचरणों के राज्य में पड़ने से मनाही कर दी, किन्तु तो भी भक्तों की कमी नहीं है, और भक्ति की भी कमी नहीं।"

किन्तु यहीं हद तो होती नहीं, नए देवताओं की महिमा उतनी ही अनन्त है, जितनी उनकी संख्या ! आग़ा ख़ाँ का नाम तो जग-ज़ाहिर है। पक्का मक्कार, भारत में

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तो अपने को पुजवाता है और यूरोप में मौजें मारता है। मुसलमानों का बड़ा ज़बरदस्त नेता बना फिरता है। दिसम्बर में, देहली में, मुसलमानों का जो जमघट लगने वाला है, उसका अधिनायक यही आग़ा ख़ाँ होगा। बहुत से हिन्दुओं का भी उपास्यदेव बना बैठा है। 'हिन्दी-श्रद्धानन्द' के पिछले अङ्क से यह मालूम पड़ा कि आग़ा ख़ाँ के एक छोटे भाई कोई मोटे मियाँ हैं, जो 'पीराना पन्थ' के अगुआ कहे जाते हैं। इन पर भी हिन्दुओं की दृष्टि रहती है, या यह कहना ठीक है कि बगुला की तरह इनकी दृष्टि भी हिन्दुओं पर रहती है। हाल में श्रीनिवास पोद्दार की अध्यक्षता में बम्बई के माधव बाग़ में सनातन-धर्मियों की एक सभा इसलिए हुई थी कि बम्बई के स्कूलों में सब प्रकार के लड़कों के लिए पानी का समान प्रबन्ध करके धर्म पर जो गहरा वज्रपात किया गया है उसका गहरा विरोध करके छुआछूत-धर्म की गहरी रक्षा की जाय। हिन्दुओं के धर्म की रक्षा के लिए ये मोटे मियाँ भी उस सभा में आदर के साथ बुलाए गए थे। कितना अच्छा योग था, और कितनी अच्छी धर्म-रक्षा! इसी समय एक देवता और याद आ रहे हैं। १९२६ में चम्पारन में एक रतूदास नाम के देवता पकड़े गए थे। उन्होंने नेपाल की सीमा में यज्ञ रचा था। चम्पारन की सीमा में भी उनकी बड़ी महिमा थी। अन्त में पुलिस ने पकड़ा और जेल का मेहमान बना दिया। पता लगा कि पुराना पापी है, धर्म के नाम पर लोगों को ठगता और अपनी पूजा करवाता फिरता है, और कई बार बदमाशी और जालसाज़ी में सज़ा पा चुका है। यह भी मालूम हुआ कि इस आदमी के कई नाम हैं, एक नाम गौहरशाह है, इस नाम से मुसलमानों का पीर बनता है, और रतूदास के नाम से हिन्दुओं का देवता! एक-दो सप्ताह में वह जेल से रिहाई पाने वाला है। मालूम हुआ है कि अब भी हिन्दुओं में से बहुत से उसको सिर-आँखों पर रखने के लिए तैयार हैं, और उसके स्वागत की तैयारी हो रही है!!

नरसिंहपुर ज़िला के गाड़रवारा तहसील के साईंखेड़ा स्थान के प्रमुख बड़े दादा की कीर्त्ति दूर-दूर तक फैली हुई है, और दूर-दूर से लोग उनके दर्शन के लिए जाते हैं। किन्तु उनके नाम पर और उनके स्थान की आड़ में धर्मभक्तों को धर्म के नाम पर बहकाने वाले लोग भी मौजूद हैं। एक भले आदमी 'छोटे दादा' के नाम से प्रसिद्ध हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार बनते हैं, और सीधे-सादे आदमियों को ख़ूब उल्लू बनाते हैं।

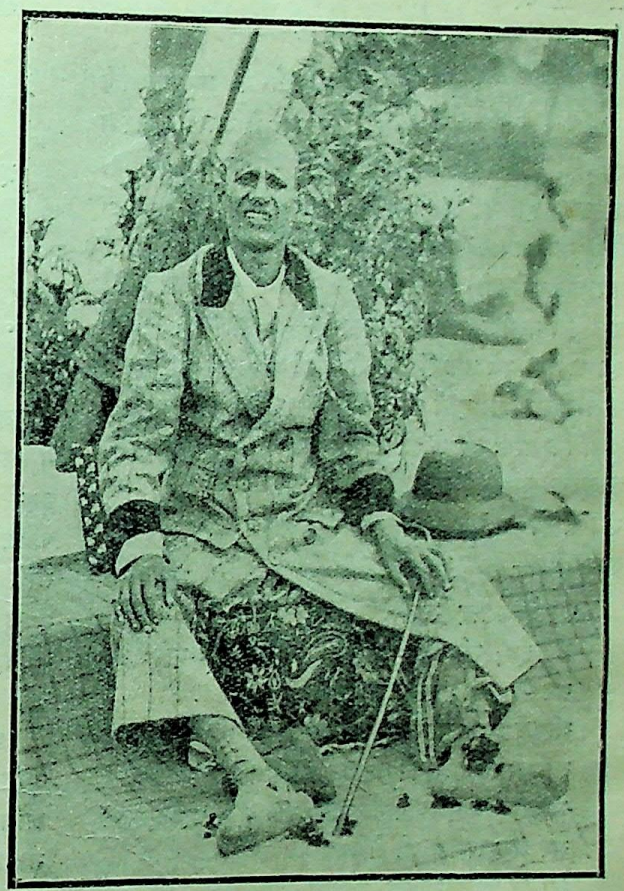

साईंखेड़ा का कलियुगी "कृष्ण" अपने असली वेष में। कम्बख़्त साहब बहादुर बना बैठा है!!

पूरे छैल-चिकनियाँ हैं, और मनमाने ढङ्ग से रहते हैं। साधारण आदमियों की धर्म-भावना किस प्रकार बुरी तरह से छली जाती है और एक चलता-पुरज़ा आदमी साधारण लोगों को धर्म के नाम पर कितना ठग सकता है, यह इस नए श्रीकृष्ण के इन चित्रों से प्रकट है। जिस देश के लोगों में साधारण समझ की इतनी कमी

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हो, और जिससे साधारण आदमी बने हुए लोगों से क़दम-क़दम पर इस प्रकार ठगे जाते हों, उसे यदि व्यापार और बल में विदेशी भी बहुत-कुछ बेवक़ूफ़ बनाते रहते हों, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?"

* * *

हिन्दू अबला-आश्रम, कलकत्ता

आज से चार वर्ष पूर्व कलकत्ते के कुछ उत्साही तथा समाज-सेवी सज्जनों ने उपरोक्त संस्था की नींव डाली थी। हमें यह देख कर वास्तव में बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि इस संस्था ने पिछले ४ वर्षों में हिन्दू-समाज की बड़ी ठोस सेवा की है। इस संस्था के प्रधान मन्त्री श्री० पद्मराज जी जैन ने—जो कलकत्ते के प्रतिष्ठित कार्यकर्त्ताओं में से एक हैं—१ली जून १९२७ से ३१ मई १९२८ तक संस्था की चतुर्थ वार्षिक रिपोर्ट हमारे पास भेजने की कृपा की है। हमें यह देख कर बड़ा हर्ष हुआ कि प्रायः हर श्रेणी और हर जाति के हिन्दू संस्था के सहायक और संरक्षक हो गए हैं और कार्य बड़े सुचारु रूप से हो रहा है। इस संस्था के संरक्षक निम्न-लिखित सज्जन हैं:—

सर देवप्रसाद सर्वाधिकारी के० टी०; सी० आई० ई०; सी० वी० ई०; एम० ए० एल्०-एल्० डी०

सर पी० सी० राय, के० टी०

श्रीयुत घनश्यामदास जी बिड़ला, एम० एल्० ए०

माननीय महाराजा बहादुर क़ासिम-बाज़ार

श्रीयुत जे० एम० सेन गुप्ता, बी० ए०, बार-एट-लॉ

सर ओङ्कारमल जी जेटिया

श्रीयुत छाजूराम जी चौधरी, सी० आई० ई०, एम० एल्० सी०

श्रीयुत रामानन्द चट्टोपाध्याय, एम० ए० (सम्पादक "मॉडर्न रिव्यु")

कार्यकारिणी सभा के सदस्य निम्न-लिखित सज्जन हैं :—

बाबू प्रभुदयाल हिम्मत सिंह, एम० एल्० सी० एटर्नी, काउन्सिलर कलकत्ता कॉरपोरेशन (सभापति)

बाबू दुर्गाप्रसाद जी खेतान, एम० ए०, बी० एल्० एटर्नी एट्-लॉ (उप-सभापति)

श्री० कृष्णकुमार मित्र, मन्त्री नारी-रक्षा-समिति, कलकत्ता (उप-सभापति)

श्री० नन्दलाल जी पुरी, मैनेजर सेन्ट्रल बैङ्क ऑफ़ इण्डिया (उप-सभापति)

श्री० भागीरथमल जी कनाडिया (उप-सभापति)

श्री० पद्मराज जी जैन (प्रधान-मन्त्री)

श्री० बालकृष्ण जी मोहता (सहायक मन्त्री)

श्री० डॉक्टर कृष्णगोपाल जी भट्टाचार्य काउन्सिलर कलकत्ता कॉरपोरेशन (सहायक मन्त्री)

श्री० गङ्गाप्रसाद जी भोतिका, एम० ए०, बी० एल०, ऑडिटर (आय-व्यय परीक्षक)

इनके इलावा कार्यकारिणी समिति के १९ सदस्य और अनेक सहायक भी हैं। प्रधान मन्त्री महोदय के शब्दों में इस संस्था की रिपोर्ट तथा उनका अनुभव इस प्रकार है :—

"कलकत्ते का हिन्दू-अबलाश्रम हिन्दू-जाति की सामाजिक कुप्रथाओं और सामाजिक अत्याचारों का एक सक्षात् प्रतिविम्ब है। मैंने चाहा था कि मैं इस रिपोर्ट में समाज की कुछ सच्ची घटनाओं का उल्लेख करूँ, परन्तु इससे समाज की माता और बहिनों के प्रति दिए हुए इस पवित्र वचन का उल्लङ्घन होता है कि "आप पर बीती हुई सारी घटना कोई भी नहीं जान सकेगा"। यही कारण है कि मेरी और मेरे सहयोगी बा० बालकृष्ण जी मोहता की इच्छा रहने पर भी हम उन घटनाओं का उल्लेख नहीं कर सके।

अबलाश्रम ने हिन्दू-जाति की सभी वर्ण, जाति और उपजातियों की माता और बहिनों को स्थान दिया है। आज भारतवर्ष में उच्च कहलाने वाली जातियाँ अपनी माता और बहिनों पर कैसा भीषण अमानुषिक अत्याचार कर सकती हैं, इसे यदि कोई सज्जन प्रत्यक्ष देखना चाहें तो उन्हें आश्रमवासिनी बहिनों की आत्म-कहानियाँ ही अच्छी तरह दिखला सकेंगी। यह विशेष लक्ष्य करने की बात है कि जितना अत्याचार उच्च कहलाने वाली जातियों में होता है, उतना नीच कहलाने वाली छोटी जातियों में नहीं होता। इस कथन की सत्यता हिन्दू-अबलाश्रम का विवरण प्रकट कर सकेगा।

मुझे तो यह कहने में भी कोई सङ्कोच नहीं होता कि हिन्दू-नारियाँ केवल गार्हस्थिक अत्याचार, सामाजिक उत्पीड़न और विधवाओं के प्रति घृणा के भाव के कारण

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ही अपना घर छोड़ने के लिए बाध्य हुआ करती हैं! पुरुष-जाति की यह धारणा कि हिन्दू-विधवाएँ कुत्सित काम-वासना की तृप्ति के लिए अथवा अन्य सांसारिक प्रलोभनों के कारण विधर्मियों के साथ अथवा अन्य किन्हीं व्यक्तियों के साथ घर से निकल जाया करती हैं, सर्वथा नहीं तो बहुत अंशों में मिथ्या है।

आश्रम ने समाज की विधवाएँ, विशेष कर घर छोड़ने को बाध्य क्यों होती हैं, ऐसी घटनाओं का संग्रह अलग ही कर रक्खा है। मैंने चाहा था कि समाज के कुछ लोग उन घटनाओं को देख कर यह निश्चय करें कि विवाह के सिवाय उनका और कौन सा अच्छा उपाय हो सकता है, परन्तु मुझे दुख है कि मेरे इस निवेदन पर किसी भी सज्जन ने ध्यान नहीं दिया। गत वर्ष आश्रम ने आश्रम-निवासिनी ३६ विधवा और कुमारी बालिकाओं का विवाह किया है।

इस वर्ष आश्रम का काम विशेष सङ्गठित रूप में चलने के कारण कई नवीन समस्याएँ उपस्थित हुई हैं। हिन्दू-भाइयों का कर्त्तव्य है कि वे इन गुरुतर समस्याओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें और इनका उपाय सोचें। केवल सोचने से ही काम नहीं चलेगा। मैं तो कहूँगा कि यथा-शीघ्र इनका प्रबन्ध होना चाहिए।

१—जिन निराश्रित स्त्रियों की आयु ३५ और ४० वर्ष से ऊपर है अथवा जिनकी मनोवृत्ति सांसारिक प्रलोभनों से हट गई है और जो केवल धार्मिक जीवन व्यतीत करना चाहती हैं, उनके लिए बहुत ही शीघ्र कलकत्ते के इन प्रलोभनमय वातावरण से बाहर किसी ऐसे स्थान में एक आश्रम निर्माण करने की आवश्यकता है कि जहाँ का वातावरण केवल धार्मिक और उन स्त्रियों की मनोवृत्ति के अनुकूल बनाकर उन्हें अपने मनोवाञ्छित जीवन-निर्वाह का सुगम उपाय कर दिया जा सके। शायद मेरे इस कथन के उत्तर में कुछ सज्जन नवद्वीप, काशी और वृन्दावन आदि के भजनाश्रमों का निर्देश करना चाहें तो मैं उन महानुभावों से इतना ही कहूँगा कि इन आश्रमों के स्थापनकर्त्ता महापुरुषों के विचार इनकी वर्त्तमान कार्य-प्रणाली से अवश्य ही कोसों दूर रहे होंगे। ये आश्रम आज धार्मिक जीवन-निर्वाह की ओर समाज की माता और बहिनों को एक पग भी आगे नहीं बढ़ाते। इन आश्रमों के जो कई गुप्त विवरण प्रकाशित हुए हैं वे बड़े ही भीषण हैं, इसलिए जहाँ धार्मिक शिक्षाओं के साथ-साथ उनका जीवन राष्ट्र के उपयोगी बनाया जा सके, ऐसे प्रयत्न की अनिवार्य आवश्यकता है।

आश्रम में रहने वाली देवियाँ, जिनका सर्वस्व हिन्दू-समाज ने अपहरण करके उन्हें राह की भिखारिणी बना दिया है!

२—उन बच्चों की रक्षा का प्रबन्ध कि जिनकी माताएँ सामाजिक कुप्रथाओं के कारण अपनी गर्भजात सन्तान को मार डालने पर उतारू होती हैं अथवा वे बच्चे, जिनकी देख-रेख करने वाला कोई न रहने के कारण अकाल में ही मर जाते हैं। यद्यपि अबलाश्रम ने जब से मकान परिवर्त्तन कर दिया है, तब से यथासाध्य ऐसे निराश्रित मातृ-पितृहीन बालकों को भी लेना प्रारम्भ

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किया है, तो भी अर्थाभाव के कारण उन बच्चों के लिए जैसे प्रबन्ध की आवश्यकता है वह अभी तक नहीं हो सका, न आश्रम उन्मुक्त द्वार से ऐसे बच्चों को ले ही सकता है। ऐसे बच्चों के लालन-पालन में ख़र्च की कहीं अधिक आवश्यकता होती है।

३—उन बालिकाओं के लिए एक जुदा स्थान, जो अप्राप्त वयस (नाबालिग़) हैं अर्थात् जिनकी आयु १६ वर्ष से कम की हो, होना चाहिए। यद्यपि वर्त्तमान समय में आश्रम ऐसी बालिकाओं को भी स्थान दे रहा है, परन्तु वह उन्हीं बालिकाओं को स्थान दे सकता है कि जिनको उनके अभिभावक या माता-पिता दे जायँ अथवा जो किसी कारणवश आश्रम में आ गई हों, परन्तु पुलिस और सरकार जिन बालिकाओं का उद्धार वेश्यालयों आदि बहुत से कुत्सित स्थानों से करती है, उनके लिए हिन्दुओं का कोई स्थान न होने के कारण वे विधर्मियों के हाथ सौंप दी जाती हैं !!

यदि हिन्दू-जाति को अपनी आत्म-रक्षा करनी है और सम्मान-पूर्वक करनी है, तो उसे इन उपरोक्त संस्थाओं का प्रबन्ध अविलम्ब करना होगा, अन्यथा हिन्दू-सन्तान यदि एक भी विवश होकर अपना पैतृक धर्म और समाज छोड़ने को बाध्य होती है तो उसका कलङ्क और महा पाप हिन्दुओं पर ही है ! आज न जाने हिन्दू-जाति का कितना धन केवल धर्म के नाम पर अपव्यय होता होगा, यदि उस धन का सदुपयोग ऐसे कामों में किया जाय तो न जाने उसका कितना सदुपयोग और लाभ हो।

देश में दहेज की प्रथा ने आज कितने पवित्र कुलों को कलङ्कित किया है, इसकी गणना नहीं हो सकती। अर्थहीन, दरिद्र, सामान्य स्थिति के गृहस्थ घर में जब कोई कन्या उत्पन्न होती है, तो मानो उनका मरण हो जाता है। वर्षों धन-संग्रह करने के बाद भी जब वर-पक्ष वालों की धन-लिप्सा तृप्ति नहीं होती और अपनी कन्या के लिए सुयोग्य वर मिलना दुर्लभ हो जाता है और इधर सात पीढ़ी नरक में चले जाने वाला डर भीषण रूप धारण कर सर पर नाचा करता है, उस विभीषिका का वर्णन लेखनी द्वारा नहीं हो सकता—उसका तो केवल अनुभव ही होता है। इस भीषण कुप्रथा के हाथों आज कई युवती कुमारी कन्याओं को अपने सतीत्व का बलिदान करना पड़ता है। एक ओर दिन-रात माता-पिताओं की ताड़ना, दूसरी ओर "मेरे ही कारण मेरे पिता का घर नरक बन रहा है" यह नित्य की भावना उन कुमारी बालिकाओं को एक बिन्दुमात्र जहाँ शान्ति मिलने की आशा हो उसकी ओर दौड़ाता है। चातक स्वाति-बूँद की तरह यदि उस बालिका से किसी ने एक शब्द मधुर कहा तो वह बालिका अपने को धन्य समझने लगती है। वे ही मधुरभाषी नर-पिशाच, कुलाङ्गार पुरुष उन अबोध कन्याओं का जीवन भ्रष्ट करते हैं। ऐसी कई गर्भवती कुमारी कन्याओं को अबलाश्रम ने इस वर्ष आश्रय दिया है। पुरुष-समाज का यह कैसा घोर कलङ्कमय भीषण दृश्य है, इसे समाज को सोचना चाहिए। इस वर्ष आश्रम में ऐसी १५ कुमारी बालिकाएँ आई हैं जो कुमारी अवस्था में ही गर्भवती हो गई थीं !! समाज के सामने नाक न कट जाय, इससे उनके अभिभावकों ने बच्चा पैदा हो जाने पर बच्चों को आश्रम में ही छोड़ कर उन लड़कियों को घर ले जाकर उनका विवाह कर दिया है। लिखते हृदय विदीर्ण होता है कि आज न मालूम कितनी कुमारी बालिकाओं का जीवन भ्रष्ट किया जाता है। समाज के भय से उनका गर्भपात कराया जाता है और पीछे कुलीनता और धर्म की दुहाई दी जाती है। हिन्दू-समाज को यदि जीना है तो उसको सबसे पहले अपनी बुराइयों को देखना होगा और समाज की चिन्ता न करते हुए समाज से उनका उन्मूलन कर देना होगा। इस प्रकार से बराबर ऐसी गर्भवती कुमारी बालिकाएँ आश्रम में आती हैं और दुधमुँहे बच्चों को बिलखती हुई छोड़ अपने अभिभावकों के साथ चली जाती हैं। ऐसी परिस्थिति समाज के लिए बहुत ही चिन्ताजनक और भयावह है। समाज के शुभचिन्तकों को चाहिए कि इसका कोई उचित उपाय करें। प्रायः जितनी कुमारी बालिकाएँ गर्भवती आश्रम में आती हैं उनमें से अधिकांश अपने सगे-सम्बन्धी परिवार वालों द्वारा ही गर्भवती बनाई हुई आती हैं। लिखते लज्जा मालूम पड़ती है, लेखनी थर्राती है, कितनी ऐसी ही बालिकाएँ आई हैं जिनकी दुख-कहानी सुन कर हृदय दुख से जल उठा है और उन नर-पिशाच पिता, भाई और चाचा कहलाने वालों के प्रति क्रोधाग्नि अपने आप उत्पन्न हो जाती है। मैं इस सम्बन्ध में विशेष न लिख कर, इतना ही कहता

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हूँ कि हिन्दू-समाज के महानुभावो ! आँखें खोलो और समाज की छाती पर से इस कलङ्क को मिटा कर ही चैन लो।

इस वर्ष आश्रम में ७२ बच्चे आए, जिनमें ३२ तो अपनी-अपनी माताओं के साथ चले गए, १८ बच्चों का देहान्त हो गया, १ बच्चा एक सज्जन को गोद दे दिया गया, और १ लड़का हिन्दू-अनाथालय में भेज दिया गया। बाक़ी २० लड़के आश्रम में हैं। बच्चों की देख-रेख, लालन-पालन में कितने ख़र्च की आवश्यकता है, यह

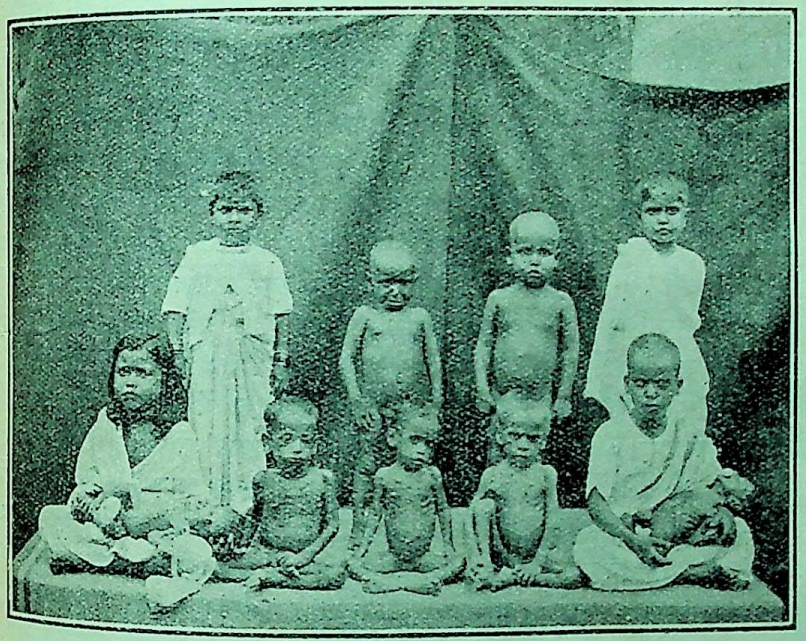

अबला-आश्रम के आश्रित कुछ अनाथ बच्चे। दाहिनी और बाईं ओर जिन अबोध शिशुओं को लड़के गोद में लिए बैठे हैं, उनकी दयनीय दशा पर किस सहृदय की आँखों से आँसू न निकल पड़ेंगे ?

प्रत्येक विचारवान् सज्जन विचार सकते हैं। आश्रम के पास ऐसा कोई आर्थिक साधन नहीं है कि बच्चों के लिए अलग-अलग धाइयाँ रक्खी जायँ। आश्रम-वासिनी देवियाँ ही इन बच्चों का लालन-पालन करती हैं। बच्चे प्रायः सभी १ वर्ष से कम अवस्था के हैं। जो १८ बच्चे मर गए हैं वे सभी माता के अभाव में मरे हैं। उनकी माताओं को आश्रम में एक-दो मास तक ठहराने पर ज़ोर देने पर भी उनके अभिभावकों ने बच्चों को छोड़ कर अपनी मान-रक्षा के लिए लड़कियों को ले जाना ही उचित समझा। समझाने पर भी वे नहीं समझे और लाचार होकर बच्चों को आश्रम में रखना ही पड़ा। एक-एक मास और पन्द्रह-पन्द्रह दिन के बच्चे माता के अभाव में जीवित कैसे रह सकते हैं, यह आप महानुभाव सोच और विचार सकते हैं।

ऐसे बच्चों के लालन-पालन के लिए वर्तमान आश्रम का भवन पर्याप्त नहीं है, तिस पर लालन-पालन करने वाली धाइयों की विशेष आवश्यकता है। मैंने पहले ही समाज के अन्दर अबलाओं पर होने वाले अत्याचारों का दिग्दर्शन करा दिया है। किस प्रकार प्रतिदिन हिन्दू-विधवाएँ घर छोड़-छोड़ कर बाहर आने के लिए बाध्य की जाती हैं, इसका प्रत्यक्ष दर्शन चारों ओर होता है। रात-दिन यही समाचार सुनने में आता है कि अमुक विधवा को अमुक स्थान पर अमुक विधर्मी भगा ले गया, अमुक की विधवा पुत्री, स्त्री या भगिनी भाग गई आदि। दुख है कि विधवाओं की इस भगदड़ से हिन्दू-समाज अभी तक जितना चाहिए उतना सचेत नहीं हुआ है। ऐसी दयनीय दशा समाज की हो रही है कि प्रत्येक समाज-हितैषी को आँसू बहाना पड़ रहा है। समाज का नग्न-चित्र विधवाओं के ऊपर होते हुए अत्याचारों का प्रतिफल आज स्पष्ट प्रकट कर रहा है। इस वर्ष आश्रम में इस प्रकार से समाज द्वारा सताई हुई एवं विधर्मियों के फन्दे से छुड़ाई हुई सब ३१० अबलाएँ आईं। इनमें से १७४ अपने अभिभावकों के पास भेज दी गईं। ३६ का विवाह कर दिया गया, जो अपने-अपने पति-गृह में बहुत ही प्रसन्न तथा सुखी हैं। आश्रम की ओर से बराबर उनकी सुधि ली जाती है और उनका पत्र आता-जाता रहता है।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विवाह बहुत ही जाँच-पड़ताल के बाद किया जाता है। वर को अपने यहाँ की हिन्दू-सभा के मन्त्री और प्रतिष्ठित सज्जनों का पत्र लाना पड़ता है। इसके बाद वर-कन्या दोनों जब एक दूसरे को पसन्द कर लेते हैं, तब मैजिस्ट्रेट के सामने दोनों की स्वीकृति ली जाती है। वर को इस बात के लिए लिखा-पढ़ी कर लेनी पड़ती है कि हमारी सम्पत्ति की अधिकारिणी यह देवी तथा इससे उत्पन्न बच्चे होंगे, तब विवाह किया जाता है।

२६ स्त्रियाँ स्थानाभाव के कारण फ़ीरोज़पुर और कानपुर-आश्रम को भेज दी गईं। दो कुमारी लड़कियाँ, जो पुलिस द्वारा भेजी गई थीं, पुनः उनको पुलिस ने ग्रीव्ज़ होम (Grieves' Home) दमदम में भेज दिया। (जहाँ वे निश्चित ईसाई हो जायँगी—स० 'चाँद') मैंने ऊपर ऐसी ही लड़कियों के लिए अलग स्थान बनाने की प्रार्थना की है। कारण, ऐसी सभी लड़कियाँ हमारे आश्रम में पुलिस के नियमानुसार आ नहीं सकतीं। इसलिए दानी-मानी सज्जनों को इधर ध्यान देना चाहिए और इसके लिए यथाशीघ्र प्रबन्ध करके हिन्दू-बालिकाओं को विधर्मियों के हाथ जाने से बचाना चाहिए। ६ गर्भवती स्त्रियाँ अस्पताल में बच्चा जनने के समय मर गईं। ७ भाग गईं। दो मुसलमान की लड़कियाँ थीं जो पुलिस-कमिश्नर को सूचना देकर मुस्लिम-अनाथालय में भेज दी गईं। इस समय आश्रम में ५४ देवियाँ हैं। प्रायः प्रतिदिन एक-दो आती ही रहती हैं। आश्रम का भवन, जोकि भाड़े पर लिया हुआ है, बहुत ही छोटा है। उसके लिए एक-बहुत ही बड़े भवन की आवश्यकता है, जो अर्थाभाव के कारण अभी तक हो नहीं सका है। यदि हिन्दू-समाज के हित-चिन्तक इधर ध्यान दें तो यह कोई बड़ी बात नहीं है। आज हिन्दू-जाति के धन से लाखों धर्मशालाएँ बनी हुई हैं और बन रही हैं। मन्दिर तैयार हुए हैं और हो रहे हैं, कितने ही काम होते हैं। यह हम कलकत्ते के हिन्दुओं के लिए लज्जा की बात है कि समस्त हिन्दू-मात्र का एकमात्र हिन्दू-अबलाश्रम हो, वह भी किराए के मकान में, फिर भी जितनी जगह की आवश्यकता है, वह न हो! इधर ध्यान देकर अबला-श्रम को इस ढङ्ग से बनाना चाहिए कि यहाँ से लड़कियों को स्थानाभाव या अर्थाभाव के कारण हम दूसरे स्थानों में भेजने के लिए बाध्य न हों! कलकत्ते की हिन्दू-जनता इधर ध्यान दे और अपने कर्त्तव्य को पहचाने।

प्रायः हिन्दू-देवियाँ ग्रामों से बहका कर या निज-निकट सम्बन्धियों की कुत्सित एवं घृणित काम-वासना का शिकार बन, प्रायः प्रति दिन हवड़ा तथा स्यालदा स्टेशनों पर पहुँचती हैं। विधर्मी बाज़ की भाँति उनकी ताक में रहते हैं और उनको देखते-देखते अपने फन्दे में फँसा कर साथ लेकर चल देते हैं। विपद-ग्रस्त ग्रामीण देवियाँ हवड़ा तथा स्यालदा के बड़े-बड़े स्टेशनों को देख कर अवाक् हो जाती हैं। साथ लाने वाले नर-पिशाच रास्ते से ही उनको धोखा देकर अलग हो गए रहते हैं। फिर उनको जो ही आदमी चाहता है, अपने साथ आसानी से ले जाता है। हिन्दुओं की इस परिस्थिति से विधर्मी बहुत ही लाभ उठा रहे हैं। आज हवड़ा और कलकत्ता में ऐसी अधिकांश हिन्दू-ललनाएँ मिलेंगी जो मुसलमानों के पास हैं और उनकी सन्तान कट्टर मुसलमान बन कर हिन्दुओं को परम शत्रु समझती है। प्रति दिन दो-चार ऐसी अबलाएँ आती हैं। यदि स्टेशन पर प्रबन्ध रहे तो ऐसी अबलाएँ विधर्मियों के जाल में जाने से आसानी से बचाई जा सकती हैं। आश्रम की ओर से हवड़ा और स्यालदा के स्टेशनों पर एक-एक आदमी रहते थे। हवड़ा स्टेशन का आदमी तो बहुत ही पहले अर्थाभाव के कारण हटा दिया गया था। अब स्यालदा का भी इसी अर्थ के अभाव से हटा दिया गया है!

इस विवरण-तालिका को पढ़कर आप महानुभावों को आभास मिल गया होगा कि आश्रम की आर्थिक दशा ठीक नहीं है। आश्रम में एक पैसे का भी कोई स्थायी फ़ण्ड नहीं है—प्रति दिन कुआँ खोदना और पानी पीना पड़ता है। कभी-कभी तो ऐसा अवसर उपस्थित हो जाता है कि क़र्ज़ लेकर काम चलाना पड़ता है। हिसाब देखने से आपको पता चलेगा कि आश्रम का मासिक ख़र्च क़रीब एक हज़ार रुपयों के है और बँधी हुई आय केवल २५०) रु० के क़रीब की! सदस्यों से मासिक आय केवल १४१) रु० आते हैं!

इस वर्ष कुल आय १५,७६०॥≡) की हुई है और व्यय १४,१५१॥≡)॥ हुआ है। आय-व्यय को देख कर सहज में ही अनुमान लगाया जा सकता है कि कार्य

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर्त्ताओं को आय के लिए किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है।

आश्रम की निरीक्षिका एक विदुषी महिला श्रीमती नारायणीदेवी हैं। आप बड़े ही प्रेम और लगन के साथ काम करती हैं। आपका प्रबन्ध बड़ा ही उत्तम है।

आश्रमवासिनी देवियों को सलमा-सितारा, सिलाई और चरख़ा आदि का काम सिखाया जाता है। इन देवियों की बनाई हुई कामदार वस्तुओं और सिलाई किए हुए कपड़ों को देख कर आश्रम में समय-समय पर पधारे हुए सभी महानुभावों तथा ख़रीदारों ने मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। परन्तु जिस रूप में इस काम को चलाने की आवश्यकता है उसमें भी अर्थाभाव बीच में ही आकर खड़ा हो गया है, इससे इन कामों द्वारा आश्रम को जो लाभ पहुँच सकता है, नहीं पहुँचा। महीने में दो बार उपदेश-पूर्ण स्लाइड्स मैजिक लालटेन द्वारा दिखाए जाते हैं। × × ×"

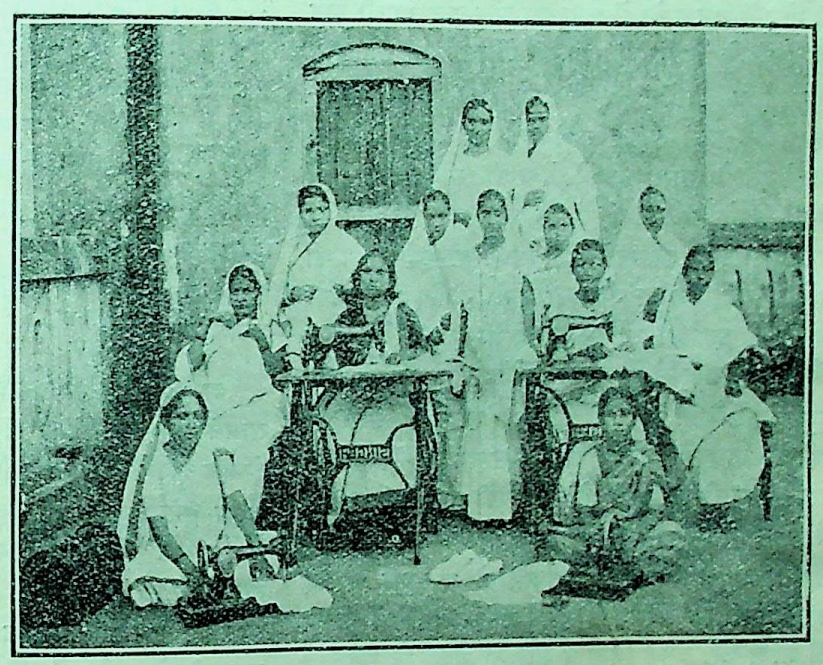

आश्रम की कुछ महिलाएँ सिलाई का काम सीख रही हैं

हिन्दू-समाज की उदासीनता के कारण हमारे समाज में जो भयङ्कर काण्ड अनुष्ठित हो रहे हैं, उनकी पर्याप्त चर्चा हम 'चाँद' के प्रस्तुत अङ्क में कर चुके हैं, कुछ विशेष लिखना केवल काग़ज़ काला करना होगा। यह वास्तव में बड़े लज्जा और परिताप का विषय है कि ऐसी उपयोगी संस्था के लिए भी धन का रोना रहे और वह भी कलकत्ते-जैसे कुबेरस्थान में—जहाँ दिन भर में करोड़ों रुपयों का वारा-न्यारा हो जाना एक साधारण सी बात है! यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो यहाँ धन का प्रश्न नहीं है, प्रश्न है हिन्दुओं की मनोवृत्ति का! कलकत्ते की हिन्दू-जनता नित्य हज़ारों रुपए थिएटर और सिनेमा की भेंट करती है, हज़ारों रुपए कलकत्ते के नवयुवक नित्य ही वेश्याओं के चरणों पर रख कर अपना लोक-परलोक बिगाड़ डालते हैं। कलकत्ते के न जाने कितने लक्षाधीश नित्य जुए और घुड़दौड़ में—सट्टे और फाटके में हज़ारों-लाखों रुपए स्वाहा कर डालते हैं, पर कैसे पश्चात्ताप का विषय है कि एक ऐसी उपयोगी संस्था का, निज का मकान भी पिछले चार वर्षों में ख़रीदा नहीं जा सका और स्थानाभाव के कारण शरण में आई हुई—रक्षा की दुहाई देती हुई—स्त्रियाँ और बिलखते हुए हिन्दू-बच्चों को इसलिए दुरदुरा दिया जाता है कि संस्था के पास इनके पालन-पोषण के लिए पर्याप्त धन नहीं है! कलकत्ते की हिन्दू-जनता के लिए चुल्लू भर डूब मरने की बात है। हमारा तो पूर्ण विश्वास है कि यदि कलकत्ते का एक व्यक्ति भी इस ओर ध्यान दे तो निजी मकान की तो बात ही क्या, जीवन भर संस्था का सारा व्यय वह वहन कर सकता है, पर यहाँ प्रश्न धन का नहीं है, प्रश्न है दूषित मनोवृत्ति को बदलने का। क्या हम आशा करें कि हमारे पास आगामी वर्ष की भेजी जाने वाली वार्षिक रिपोर्ट में इस धन का रोना न रहेगा?

इस संस्था के सञ्चालकों से—इसके प्रमुख कार्य-कर्त्ताओं से भी हमें कुछ निवेदन करना है, और वह उतना ही आवश्यक है जितना धन-संग्रह का प्रश्न! गत वर्ष जब

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन पंक्तियों का लेखक कार्यवश कलकत्ते गया था, तब आश्रम के प्राण-स्वरूप श्रीबालकृष्ण जी मोहता ने उस संस्था का हमें निरीक्षण कराया था, पर आग्रह करने पर भी इस संस्था की निरीक्षकों की सम्मति-पुस्तक (Visitors Report Book) में हम एक पंक्ति भी लिखने का साहस नहीं कर सके। उसका कारण था। आश्रम में रहने वाली देवियों की दिनचर्या और उनके व्यवहार हम पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं डाल सके। हमने इस संस्था में वही बातें देखीं जो हलवाई की दूकान पर प्रायः देखी जाती हैं। चूल्हे पर कढ़ाई चढ़ी है, ढेर की ढेर स्त्रियाँ कुछ बच्चों को गोद में अथवा पेट में लिए हुए और कुछ ख़ाली हाथ खाना छीनने में मस्त थीं—आपस में कलह हो रहा था। वे कढ़ाई पर गिरी पड़ती थीं। कमरों में जाकर देखा—स्त्रियाँ ठीक उसी प्रकार पड़ी हुई मिलीं, जिस प्रकार तीसरे दर्जे के मुसाफ़िरख़ाने में यात्री गाड़ी की प्रतीक्षा में पड़े रहते हैं। बरामदे में एक ओर एक ५-६ दिन का जना हुआ बच्चा एकान्त में पड़ा अपने पापपूर्ण जीवन की घड़ियाँ गिन रहा था और उसी के समीप ५-६ स्त्रियाँ आपस में इसलिए झगड़ रही थीं कि इसकी देख-भाल कौन करे, एक दूसरे को आगे ढकेल रही थीं और वह दूसरे के सिञ्चित पाप को छूने से घृणा प्रदर्शित कर रही थीं; हालाँकि सब का जीवन समान था—किसी के पाप की गठरी पेट में थी तो किसी की गोद में! आश्रम में रहने वाली अधिकांश स्त्रियाँ बङ्गालिनें थीं, जो मोहता जी तथा उनकी धर्मपत्नी से बार-बार आग्रह कर रही थीं कि भोजन के साथ उन्हें मछलियाँ अवश्य दी जाया करें, इसके बिना वे जीवित नहीं रह सकतीं। कुछ स्त्रियाँ धोतियाँ माँग रही थीं। कुल की संख्या उस समय सम्भवतः ७० थी, जिनमें ५८ थीं बङ्गालिनें, ३ कायस्थ-युवतियाँ थीं जो बिहार से भाग कर आई थीं तथा ५ उच्च कुल की ब्राह्मण महिलाएँ थीं और शेष फुटकर थीं; जिनका हमें स्मरण नहीं हो रहा है। उसी रोज़—हमारे निरीक्षण के दिन—एक कायस्थ-युवती बक्सर ज़िला से भाग कर पुरुष-वेष में आई थी, उसकी आत्म-कथा बड़ी लज्जापूर्ण थी। अपने श्वसुर से उसका अनुचित सम्बन्ध हो गया था। किसी प्रकार भी इस आश्रम में रहना उसने स्वीकार नहीं किया—बहुत रोई-पीटी। अन्त में मोहता जी तथा उनकी आदर्श धर्मपत्नी श्रीमती गङ्गादेवी—जिनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य ऐसी अनाथ बहिनों की सेवा करना है—अपने घर उसे ले गईं। फिर क्या हुआ, हम नहीं कह सकते। इस अप्रिय चर्चा का एकमात्र ध्येय है आश्रम के प्रमुख कार्य-कर्त्ताओं का ध्यान इन त्रुटियों की ओर आकर्षित करना, जिनके सुधार में ही ऐसी संस्थाओं का उज्ज्वल-भविष्य छिपा हुआ है। हमारा विचार है कि केवल भरण-पोषण करके ही हम ऐसी अभागिनी महिलाओं का उपकार नहीं कर सकते, बल्कि उन्हें भविष्य में स्वावलम्बी बनाना ही हमारा ध्येय होना चाहिए, उनकी दिनचर्या, एक आदर्श दिनचर्या होनी चाहिए। इन स्त्रियों और बच्चों की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए और कूट-कूट कर उनके हृदय में सेवा का भाव भरना चाहिए, ताकि ये ही स्त्रियाँ देश तथा समाज की सेवा करने में समर्थ हो सकें। हम संस्था के अधिकारियों का ध्यान 'चाँद' में प्रकाशित संरक्षण-गृह की योजना की ओर सादर आकर्षित करना चाहते हैं, जिसमें इन सभी बातों पर समुचित रूप से प्रकाश डाला गया है।

आश्रम के वार्षिक व्यय का जो विवरण हमारे सामने उपस्थित किया गया है, उसके सम्बन्ध में भी दो-एक त्रुटियों की ओर अधिकारियों का ध्यान आकर्षित करना हमारा दुखद, किन्तु आवश्यक कर्त्तव्य हो गया है। जबकि संस्था को धनाभाव के कारण इतनी कठिनाइयाँ हो रही हैं तो उसे साहूकारी करने की क्या ज़रूरत थी? हम नहीं समझ सकते ४००) रु० भागीरथराम जी को क़र्ज़ क्यों दिए गए? इसका कोई सन्तोषजनक कारण रिपोर्ट में नहीं दिया गया है। केवल कहा गया है "४००) रु० भागीरथराम जी को क़र्ज़ दिया गया—बदले में उन्होंने तब तक अपनी तीन सीने की मैशीनें आश्रम को दे दी हैं", हम इस व्यय से सन्तुष्ट नहीं हैं। भागीरथराम जी से मैशीनें लेने की ज़रूरत ही क्या थी, जबकि हाथ की सिङ्गर मैशीनें आजकल लगभग १२५) की बिक रही हैं। यदि तीन मैशीनें नक़द मोल ले ली गई होतीं तो उनका मूल्य भी ३७५) रु० ही होता। हालाँकि यही मैशीनें ५) रु० मासिक किश्त पर भी आसानी से मिल जाती हैं और कम्पनी के अमेरिका-स्थित अधिकारी ऐसी संस्थाओं के

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लिए विशेष रियायत करने को प्रस्तुत रहते हैं—यदि उचित लिखा-पढ़ी की जाय। संस्था द्वारा इस प्रकार का व्यय होना हम सरासर अनुचित समझते हैं। रिपोर्ट में इस प्रकार की एक-दो और भी रक़में हैं, जिन पर हमें इसलिए आपत्ति है कि जब तक संस्था पूर्ण रूप से स्वावलम्बी न हो जाय, ऐसे व्यय न होने चाहिए। उदाहरण के लिए टेलीफ़ोन के लिए आश्रम को इस वर्ष २१॥=) देने पड़े, यदि यह व्यय न होता तो क़रीब १८) रु० मासिक की बचत रहती और यही धन अनाथ बच्चों के पालन में—उन दीन और अभागे बच्चों के पोषण में जो छटाँक भर दूध के अभाव में हिन्दू-समाज को कोसते हुए अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देते हैं:—व्यय किया जा सकता था। फिर टेलीफ़ोन की इतनी आवश्यकता भी तो नहीं थी। जहाँ टेलीफ़ोन नहीं होते वहाँ भी कार्य तो हो ही जाता है। हमें आशा है, इसके सुयोग्य मन्त्री महोदय हमारे इस मित्र-भाव से दिए गए परामर्श पर अवश्य विचार करेंगे।

अन्त में हमें शब्द नहीं मिलते, जिनसे हम उन उदार और समाज-सेवी सज्जनों की प्रशंसा कर सकें, जिन्होंने कलकत्ते-जैसी पापपूर्ण नगरी में इस पुण्य-कार्य की नींव डाली है। श्रीपद्मराज जी जैन महोदय से तो हमारा व्यक्तिगत परिचय नहीं है, पर बालकृष्ण जी मोहता तथा उनकी विदुषी धर्मपत्नी श्रीमती गङ्गादेवी जी की तल्लीनता हमने स्वयं देखी है। जिस उत्साह से आश्रम का कार्य यह आदर्श दम्पति कर रहे हैं वह उन्हीं के उपयुक्त है। प्रधान मन्त्री महोदय के शब्दों में—"सचमुच यह दम्पति आश्रम के माता-पिता हैं!"

* * *

समाज की बलि

'चाँद' के इसी अङ्क में अन्यत्र हिन्दी के उदीयमान् लेखक श्री० जनार्दनप्रसाद जी झा की 'छोटके भैया' शीर्षक एक कहानी छप रही है, यह केवल कहानी नहीं है, दहेज की कुप्रथा के कारण आज हमारे अभागे देश में बालिकाओं का जो अमानुषिक वध हो रहा है, उसका ज्वलन्त चित्र है—मूक बहिनों की आत्म-कथा है। दहेज की कुप्रथा के कारण आज तक न जाने इस देश में कितने बलिदान हुए और नित्य ही होते जा रहे हैं, पर बड़े आश्चर्य की बात है कि इतनी अधिक क़ुर्बानियाँ भी भारतीय समाज के हृदय में सुधार की प्रवृत्ति उत्पन्न नहीं कर सकीं, नवयुवकों की उदासीनता का इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है। सहयोगी 'माहेश्वरी' की सारमयी टिप्पणी है:—

"पाठकों ने बङ्गाल की एक वीर कन्या के आत्म-बलिदान की करुण कथा पढ़ी होगी। आज हम उस विषय

इस वर्ष आश्रम की महिलाओं ने बड़ी धूमधाम से दुर्गापूजा का उत्सव मनाया था। मूर्ति का विसर्जन करने हाथ में लाठियाँ लेकर ये गंगा की ओर जा रही हैं

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में शेष समाचार देकर दहेज-प्रेमियों से यह पूछना चाहते हैं कि क्या ऐसे-ऐसे वीभत्स काण्डों से भी दहेज और चढ़ावे आदि की कुप्रथाओं का नाश करने के लिए आन्दोलन न करना चाहिए। स्वामी कुमारानन्द जी के नाम से बहुत से पाठक परिचित होंगे। स्वामी जी बङ्गाल के राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता हैं, असहयोग-आन्दोलन तथा उससे पूर्व भी आपने देश की महत्वपूर्ण सेवा की है, दहेज की कुरीति के लिए बलिदान होने वाली वीरबाला आपकी सगी भानजी हैं। स्वामी जी इस समय बम्बई ही में हैं और उन्हीं के द्वारा हमें उक्त दुखजनक घटना का समाचार मिला है। दहेज-प्रथा की बर्बरता को सर्व-साधारण के समक्ष प्रकट करने के लिए ही हम उक्त घटना के विषय में कुछ लिखना चाहते हैं। दहेज-प्रेमी सज्जन और ख़ास कर हमारी बहिनें इस घटना से पाठ ग्रहण करेंगी और यथासम्भव इस कुप्रथा के विनाश के लिए आन्दोलन होगा।

उक्त घटना गत ३ अक्तूबर को हुई। उस वीर-बाला का नाम वीणापाणि देवी है। बन्द कोठरी में अपने कपड़ों और शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़क कर उसने इस-लिए इस पापी संसार से बिदा होना उचित समझा कि दहेज के क्षुद्र लोभ में उसके प्रेमी ने, जिसके चरणों पर वह वीर-बाला सर्वस्व अर्पण कर चुकी थी, उसके पुनीत प्रेम को इस प्रकार ठुकरा दिया, नहीं-नहीं क्षुद्र स्वार्थ में अथवा माता-पिता के क्षणिक दबाव में आकर उसे शीशे की तरह पत्थर पर मार कर फोड़ डाला। ऐसी दुर्घटनाएँ हिन्दू-समाज के लिए कलङ्क-स्वरूप हैं। कुमारी वीणा-पाणि देवी गत वर्ष विशेष योग्यता के साथ मैट्रिक परीक्षा में उत्तीर्ण हुई थीं। गायन-विद्या में वह बहुत निपुण थीं। गायन-वाद्य के लिए उन्हें दो स्वर्ण-पदक तथा एक स्वर्ण-पदक सीने के कार्य में स्कूल के अधिकारियों की ओर से मिले थे। वीणापाणि देवी का एक युवक से प्रेम हो गया था। उसका प्रेम उपन्यास की चरित्र-नायिका का प्रेम नहीं; वरन् सती-साध्वी एकनिष्ठा हिन्दू बाला का प्रेम था और वह उसी युवक को अपना आराध्य-देव समझ बैठी थी। युवक का भी उस देवी से वैसा ही प्रेम था और दोनों अपने भावी जीवन को पति-पत्नी में सुखी बनाना चाहते थे। वीणापाणि और उस युवक का यह प्रेम-सम्बन्ध गुप्त नहीं, प्रकट था। लड़की के घर वाले और लड़के के परिवार वाले दोनों इस प्रेम-कथा से परिचित थे और वे इन युवक प्रेमियों का विवाह करने का पूर्ण विचार रखते थे। लेकिन विवाह का समय समीप आने पर उस लड़के के पिता ने विशेष दहेज के लालच में पड़ कर एक दूसरे धनिक व्यक्ति की लड़की से अपने पुत्र का विवाह करने का निश्चय किया। यह समा-चार लड़की और उसके माता-पिता के लिए बड़ा दुख-जनक था। लेकिन वे विवश थे। लड़के के पिता को समझाना, प्रार्थना करना ही उनके हाथ में था, जो सब कुछ उन्होंने किया, किन्तु क्षुद्र धन-लोभ में अन्धे बने हुए उस बधिर बाप को दया न आई!

लड़की इस दुर्घटना से बड़ी दुखी थी। उसका यह विश्वास था कि जिसे मैं अपना सर्वस्व अर्पण कर चुकी हूँ और जो मुझे हृदय से चाहता है, वह माता-पिता के हज़ार ज़ोर देने पर भी उसके साथ विश्वासघात नहीं करेगा। लेकिन उसने जिसकी स्वप्न में भी चिन्तना नहीं की थी वही मूर्ति-रूप में उसके समक्ष आगया। युवक ने माता-पिता के अनुचित दबाव और दहेज के क्षुद्र स्वार्थ के समक्ष सिर झुका दिया। उफ़! संसार कितना स्वार्थी है, मनुष्य लोभ के वशीभूत होकर कैसे-कैसे अनर्थ कर बैठता है। पापी स्वार्थ के समक्ष उस युवक के लिए उस वीर-बाला का पुनीत प्रेम किसी मूल्य का न रहा। क्षुद्रात्मा ने स्वर्ण-सुन्दरी का सर्वस्व हरण करके ऐसा बदला चुकाया! लेकिन एक आर्य बाला जो अपने धर्म और कर्त्तव्य को पहचानती है, जिसका प्रेम पाश्चात्य नहीं, भारतीय संस्कृति का गौरवमय पूर्वार्त्य है, वह भला कभी इस कठोरता-निर्दयता और वचन-भ्रष्टता से निराश होने वाली थी। उस वीरबाला ने इस दुःसह वेदना को अन्तर्हित करके संसार के समक्ष अपने पुनीत एवं निस्स्वार्थ प्रेम का सच्चा परिचय देना ही उचित समझा और मिट्टी का तेल छिड़क कर इस नश्वर शरीर को भस्मीभूत करके सदैव के लिए अपना नाम अमर कर लिया।

ऐ निर्दयी युवक, ओ हत्यारे प्रेमी, रो! और जन्म भर के लिए रो!! वह महान् आत्मा आज तुझे अपना चमत्कार दिखा कर स्वर्ग में विराजमान है और स्वर्ग से सन्देश दे रही है कि सच्चा और निस्स्वार्थ प्रेम इसको कहते हैं। स्वामी जी कहते हैं कि इस स्वर्गीय सुन्दरी ने अपने

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मरने से पूर्व ३० पृष्ठ का एक लम्बा पत्र उस निर्दयी युवक के लिए तथा दो पन्ने के दो पत्र अपने माता-पिता के लिए लिखे हैं। हमारे पास उक्त पत्रों की नक़ल नहीं है, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि वे पत्र हिन्दू-समाज में—और ख़ासकर बङ्गाली हिन्दू-समाज में—आग लगा देंगे। माता-पिता को पत्रों द्वारा इस वीर-बाला ने सान्त्वना दी है और बताया है कि मेरा हृदय मेरे क़ाबू में न होने से मैंने आत्म-हत्या की है। लड़के के नाम ३० पृष्ठ का लम्बा पत्र है, जो बड़ा रोमाञ्चकारी है। वह कहती है कि प्राण-प्यारे! हमारा तुम्हारा प्रेम "अङ्गरेज़ी कोर्टशिप" का प्रेम नहीं था। वह प्रेम परम पवित्र और अलौकिक था, जिसे भारतीय कन्याएँ जानती हैं। दूसरे एक स्थान पर लिखती है कि तुमको एक बार उपास्यदेव मान कर अब दूसरे के साथ विवाह करना मेरे लिए असम्भव है। तुमने जो किया वह ठीक किया, उसके लिए मैं तुम्हें दोषी नहीं ठहराती। मैं तो इसलिए मर रही हूँ कि दूसरे जन्म में तुम्हें ही प्राप्त करूँ !!

हम चाहते हैं कि विवाह-सम्बन्ध की स्वतन्त्रता को अपहरण करने वाले माता-पिता इस घटना को ध्यान से पढ़ें और देखें कि लड़के-लड़की की इच्छा बिना तथा दहेज के लोभ में आकर अपनी सन्तान का विवाह कर देने से कैसे भीषण अनर्थ हो जाते हैं।"

* * *

बिहारी महिलाओं की जाग्रति

हम ही नहीं, हमारे बिहारी मित्र भी सामाजिक सुधार के मामले में बिहार-प्रान्त को सबसे पीछे समझते थे—और बात भी ऐसी ही थी। समस्त भारत में प्रचलित सब प्रकार की सामाजिक कुरीतियों का सामूहिक दर्शन बिहार में आज भी किया जा सकता है, किन्तु अब तो हमारे हृदय में आशा का मधुर सञ्चार हो रहा है। बिहारी महिलाओं की अपूर्व जाग्रति देख कर आज हमारे हर्ष की सीमा नहीं है, किन्तु हमें इस जाग्रति से एक नया अनुभव यह हुआ है कि सामाजिक सुधार के कार्य में भी बलिदानों का बड़ा महत्व है। यदि सच पूछा जाय तो इस सारी जाग्रति का श्रेय है स्वर्गीय मगनलाल जी गाँधी को, जो बिहार में परदा-प्रथा का विनाश करने के लिए अहमदाबाद से पधारे थे और इस कुप्रथा के विरुद्ध आन्दोलन करते हुए ही बिहार में आप अकाल मृत्यु की आँचल में छिप गए। थी तो दारुण मृत्यु, पर कार्य कर गई सहस्रों बलिदानों का। बिहार की सामयिक जाग्रति का एक संक्षिप्त, किन्तु प्रभावशाली इतिहास है, और वह यह है:—

दरभङ्गा ज़िला के रहने वाले—जो जहालत का केन्द्र-स्थान है, श्री० रामनन्दन जी मिश्र बहुत दिनों से महात्मा गाँधी के पूर्ण अनुयायी हो गए हैं और बहुत दिनों से साबरमती के सत्याग्रह-आश्रम में रहते हैं। आप विवाहित हैं और आपकी इच्छा सपत्नीक आश्रम में रहने की हुई। आपका विवाह गया ज़िले में हुआ था। बिहार तथा इससे लगे हुए अनेक ऐसे स्थान हैं—जैसे गया, ग़ाज़ीपूर, बलिया आदि—जहाँ परदेश में अपनी स्त्री को लिवा ले जाना ईसाइयत का परिचय देना है, प्रसङ्गवश हमें एक रोचक घटना स्मरण हो आई है। हमारे कार्यालय में एक बिहारी सज्जन पिछले सात वर्षों से कार्य कर रहे हैं। गत वर्ष तक आप प्रयाग में अकेले ही रहे। हालाँकि आप विवाहित और शायद २-३ बच्चों के बाप भी हैं। बेचारे अपने हाथ से दोनों समय खाना बनाते और खाते रहे। साल में ८-१० रोज़ की छुट्टी लेकर घर हो आया करते थे, उनकी दृष्टि में दाम्पत्य जीवन की यही ज़िम्मेदारी थी, जिसे निबाहना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे। हमारा विश्वास था कि वे अविवाहित हैं। एक दिन प्रसङ्गवश इन पंक्तियों के लेखक को पता चला कि आप विवाहित हैं। हमारे आश्चर्य की सीमा न रही। पूछा गया कि आप इतने दिनों से यहाँ कार्य कर रहे हैं और गृहस्थी की सारी मुसीबतें यहाँ झेल रहे हैं। जो कार्य आप नित्य यहाँ करते हैं वही आपकी स्त्री घर पर करती होंगी, तब आप उन्हें यहाँ बुला क्यों नहीं लेते—वेतन भी आपको पर्याप्त मिलता है.....इत्यादि। इसका कोई स्पष्ट कारण वे न बता सके। लज्जा के मारे बेचारे कुम्हलाए जा रहे थे। बड़े आग्रह करने पर आपने अपने गाँव की दर्दनाक सामाजिक स्थिति बतलाई—कहा कि अगर मैं स्त्री को यहाँ ले आऊँ तो सारे गाँव में एक बार ही हल्ला मच जायगा कि अमुक व्यक्ति 'किरिस्तान' हो गया है। मेम-साहब साथ रहने गए हैं.....इत्यादि। बहुत-कुछ समझाने-बुझाने पर—देश की जाग्रति की ओर सङ्केत

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और उदाहरण पेश करने पर वे इस सुधार के लिए बढ़ने को तैयार हो गए और पूरे ६ वर्ष के बाद—बड़ी-बड़ी कोशिशों के बाद—अब उन्होंने अपनी धर्मपत्नी और बच्चों को यहाँ बुला लिया है। उनका जाति-बहिष्कार 'किरिस्तानी' के आश्रम में भेजने के लिए अनुमति देते? बड़े जङ्गो-जेहाद के बाद मिश्र जी की पराजय हुई, लड़की बिदा नहीं की गई। सनातन-धर्म की रक्षा तो हो गई, जामाता सन्तुष्ट हो या असन्तुष्ट; धर्म के सामने जामाता एक तुच्छ अपदार्थ है।

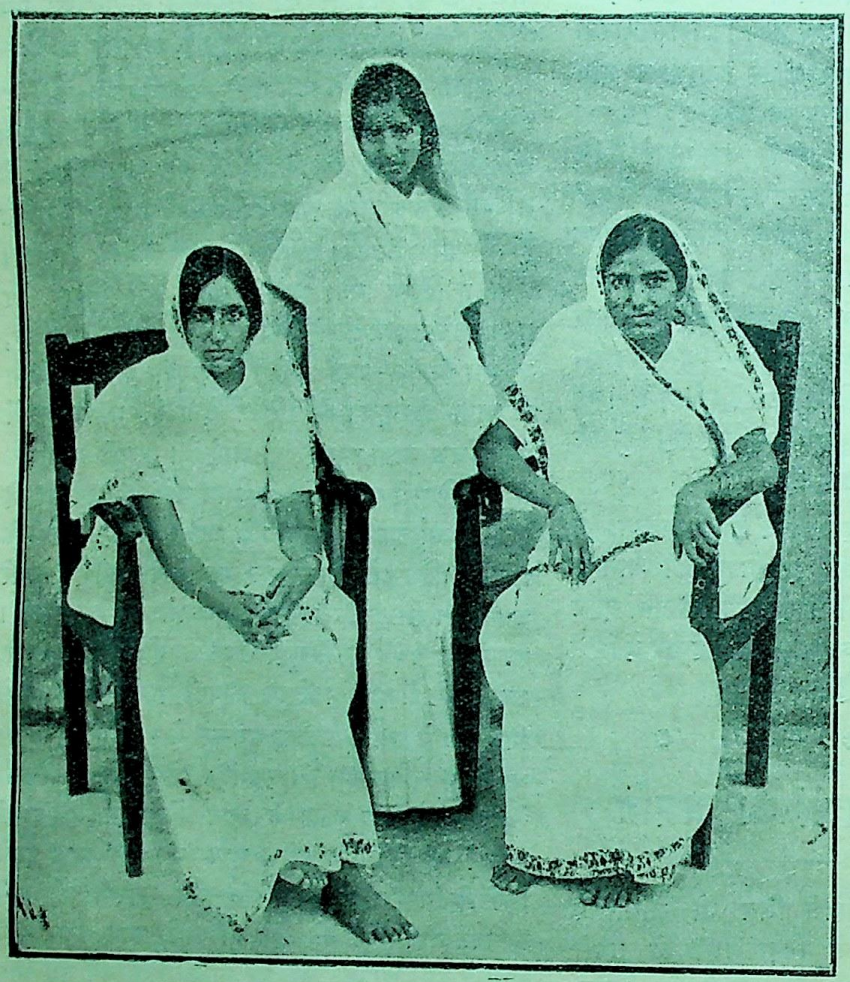

बाईं ओर से—प्रथम स्वर्गीय मगनलाल जी गांधी की पुत्री कुमारी राधाबहिन, बीच म स्वर्गीय दलबहादुर जी गिरि की कन्या और तीसरी श्रीमती राजकिशोरी देवी, आपही श्री० रामनन्दन जी मिश्र की धर्मपत्नी हैं, जिनके कारण बिहार में परदा-प्रथा को तोड़ने के लिए ऐसा प्रभावशाली आन्दोलन प्रारम्भ हुआ है!

हुआ कि नहीं, हमने अभी तक यह नहीं पूछा है। सारांश यह कि एक तो बिहार फिर बिहार का गाँव, कोढ़ और कोढ़ में खाज की लोकोक्ति चरितार्थ करता है। श्री० रामनन्दन मिश्र के श्वसुर महाशय भला क्यों अपनी छिपा-लुका कर पाली हुई लड़की को महात्मा गाँधी जैसे

मिश्र महोदय को अपनी इस परवशता पर बड़ी ग्लानि हुई। अपनी पली-पलाई स्त्री पर अपना कोई भी अधिकार न पाकर रोष और ग्लानि का होना स्वाभाविक ही था। बेचारों ने महात्मा गाँधी से सहायता माँगी। महात्मा जी ने मुस्कुराकर आपकी यथाशक्ति सहायता करने का वचन दे दिया और फल-स्वरूप स्वर्गीय मगनलाल जी गाँधी की पुत्री कुमारी राधा बहिन, स्वर्गीय दल-बहादुर गिरि की कन्या इस परदा की कुप्रथा के विरुद्ध बिहार में बग़ावत करने को भेज दी गईं, फिर स्वर्गीय मगनलाल जी गाँधी स्वयं भी पधारे और बड़े ज़ोरों से परदा-प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन होने लगा। बिहार के प्रायः सभी प्रतिष्ठित नेताओं ने पूरा सहयोग दिया और बड़े ज़ोरों से कार्यारम्भ किया गया। मिश्र जी की धर्मपत्नी भी उन्हें मिल गईं। अस्तु—

८ वीं जुलाई को इस परदा की कुप्रथा के विरुद्ध समस्त बिहार में सार्वजनिक सभाएँ करने का निश्चय किया गया और हमें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समस्त बिहार के लगभग सभी शहरों में सफलता-पूर्वक सभाएँ हुईं, जिनमें आन्दोलन की व्यापकता, दृढ़ता और प्रभाव का प्रदर्शन किया गया। मुज़फ़्फ़रपुर, छपरा, मोतिहारी, आरा, समस्तीपूर, बेतिया, भागलपुर, लहतियासराय, हाजीपुर आदि अनेक स्थानों में बड़ी प्रभावशाली सार्वजनिक सभाएँ हुईं और कार्यकर्त्ताओं ने बड़ा उत्साह प्रदर्शित किया। प्रायः सभी सार्वजनिक सभाओं में आई हुई स्त्रियों ने—जिनकी संख्या बहुत अधिक थी—परदा-प्रथा के मस्तक पर पाद-प्रहार किया। पटने के श्रीराधिकासिंह इन्स्टीट्यूट में स्त्री-पुरुषों की एक विशाल सार्वजनिक सभा श्रीमती अलखराज देवी के सभापतित्व में हुई, जिसमें समस्त एकत्र स्त्रियों ने बड़ा उत्साह प्रदर्शित किया। जिन स्त्रयों ने यौवन के आरम्भ से सूर्य का विमल प्रकाश स्वतन्त्रता-पूर्वक कभी न देखा था, उन्होंने आज देखा; उनके हर्ष और उल्लास की सीमा नहीं थी। अनेक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए, जिनमें सिद्ध किया गया कि परदा-प्रथा भारत की संस्कृति के सर्वथा विरुद्ध है और ईश्वर-प्रदत्त वायु-प्रकाश से स्त्रियों को वञ्चित रखना घोर अमानुषिक कार्य है। अन्य सभी सभाओं में लगभग इसी प्रकार के प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पास हुए तथा स्त्रियों की अनिवार्य शिक्षा पर बहुत ज़ोर दिया गया। तभी से बिहारी महिलाओं में अपूर्व जाग्रति की लहर हिलोरें ले रही है, जो यदि इसी प्रकार क़ायम रही तो देश का भारी सुधार करने में समर्थ होगी, हमारी अन्तरात्मा बार-बार यह कह रही है।

इस आन्दोलन के सिलसिले में श्रीमती कमला चट्टोपाध्याय का नाम, जो भारत-कोकिला श्रीमती सरोजिनी देवी की भावज हैं, विशेष उल्लेखनीय है। आपने समस्त भारत में स्त्रियों की दशा सुधारने का व्रत ले रक्खा है और इसी सदुद्देश्य से आप देश के एक छोर से दूसरे छोर का दौरा कर रही हैं। आपने अनेक महिला-समितियों का निर्माण तथा पूर्व निर्माणित समितियों में एक नए जीवन का सञ्चार किया है, जिसकी चर्चा हम फिर कभी सुविधानुसार करेंगे। आप बिहारी महिलाओं के सुधार का विशेष प्रयत्न कर रही हैं। आप ही के उद्योग से शिक्षा-सुधार-सम्बन्धी अखिल भारतवर्षीय महिला-कॉन्फ्रेन्स (All India Women's Conference on Educational Reform) का तीसरा अधिवेशन पटने में निमन्त्रित किया गया है, जिसकी बैठक ३ से ७ जनवरी तक पटना के श्री० राधिकासिंह हॉल में होनी निश्चित हुई है। इसमें समस्त भारत से लगभग २०० महिला-प्रतिनिधियों के आने की पूर्ण सम्भावना है। हम श्रीमती कमला चट्टोपाध्याय तथा उनकी सहयोगिनी बहिनों को इस सामयिक सुधार और जाग्रति के आन्दोलनों के लिए बधाई देते हैं और इस आन्दोलन की हृदय की समस्त शक्ति से सफलता चाहते हैं।

हे करुणाकर!

[रचयिता—श्री० चन्द्रनाथ जी मालवीय "वारीश"]

घनघोर घटा दुख का तम-तोम घिरा सब व्योम न जात कहा।
भव-सिन्धु अगाध न जात तरा, मद-मत्सर-मोह अपार महा।
निरद्वन्द्व-निरङ्कुशता-शठता पशुता-अघ-ओघ न जात सहा
करुणा कर हे—करुणा-कर को करुणा कर दे करुणाकर हा!!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[ले० श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

लतखोरीलाल

६

गिरता-पड़ता, मरता-खपता आख़िर किसी न किसी तरह एक बजे रात को मैं अपने घर के दरवाज़े के सामने जाकर खड़ा हुआ। तक़दीर बहुत तेज़ थी जो उल्टी हुई बैलगाड़ी के नीचे और पानी के भीतर से, घण्टों के बाद भी, मैं ज़िन्दा निकल आया था, वरना वहीं न ठण्ढा हो जाता? यहाँ तक पहुँचने की नौबत ही काहे को आती? ख़ैर! मकान पर आ तो गया, मगर यहाँ आके एक अजीब उलझन में जकड़ गया। इसलिए न तो अब मुझे दरवाज़ा खुलवा कर भीतर ही जाते बन पड़ा और न बाहर सोते हुए किसी नौकर को जगाते। धत् तेरे की! इस रोग की पहले अगर कुछ भी भनक मालूम होती तो इतनी मुसाफ़िरत तय ही क्यों करता? वहीं जङ्गल ही में मज़े में बैठे-बैठे मलार गाता। क्योंकि जिस मनसूबे के बल पर यहाँ तक सैकड़ों मुसीबतें झेलता और सर पर पाँव रख कर दौड़ता हुआ आया था, वह कम्बख़्त मेरे पीछे अब दबक रहा और मैं अपने ही दरवाज़े पर एक अजनबी, मुहताज और चोर की तरह थर-थर काँपने लगा। कुछ डर के मारे नहीं; मगर बात ही ऐसी थी जिसमें मैं क्या, दुनिया के बड़े-बड़े बहादुरों के बाप की भी वीरता कुछ काम नहीं कर सकती, क्योंकि भला कौन ऐसा माई का लाल होगा जो दो अङ्गुल की लँगोटी बाँधे, वह भी भीगी हुई, अपनी सबसे प्यारी, प्राणप्यारी, हृदयेश्वरी, दिलरुबा, सनम, जानेमन, वग़ैरा-वग़ैरा के सामने जाना पसन्द करेगा? जब शक्ल दिखने क़ाबिल होती है तभी किसी को मुँह दिखाते भी बन पड़ता है। मगर यहाँ तो सूरत पर फटकार बरस रही थी; वह भी छाती फाड़ कर। कहाँ तो मैं उनकी एक झलक के लिए तरस रहा था, तड़प रहा था और बेमौत मर रहा था और कहाँ अब इस डर से मरने लगा कि कहीं उनकी नज़र मुझ पर न पड़ जाय। वाह री मेरी कम्बख़्ती! जो न करे वह थोड़ा है।

इतने में कोठे पर मेरा कुत्ता जैक भूँक उठा। चौंक कर जो मैंने ऊपर निगाह की तो देखा कि आप छज्जे पर से झाँक रहे हैं। पहले शायद उसने मुझे कोई पत्थर की मूर्ति समझा था, जो वह एक ही दफ़े भूँक कर रह गया। मगर अब मेरे चौंक कर ऊपर ताकने से मुझे हिलता-डुलता पाकर उस कम्बख़्त ने भूँक-भूँक कर आसमान सर पर उठा लिया। भीतर "कौन है, क्या है, बाहर जाकर देखो" की चिल्लाहट गूँज उठी और बाहर नौकर भी कुनमुना उठे। मैं इस सूरत में नौकरों के सामने किस तरह खड़ा रह सकता था? इसलिए हाय! मुझे वहाँ से सर पर पाँव रख कर अपनी आबरू बचानी

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ही पड़ी। तो भी कम्बख़्तों ने मेरा पीछा न छोड़ा। दौड़ कर इन हरामज़ादे नौकरों ने दो-एक डण्डों से मेरी पीठ पर वार कर ही तो दिया। ख़ैरियत हो गई कि मुझे उस वक़्त घबड़ाहट में इसका पता न चला, वरना उसी वक़्त उन सालों को 'डिसमिस' कर देता। क्योंकि मालिक पर इस तरह हाथ छोड़ना भला कितनी बड़ी बदतमीज़ी है, आप ही समझिए।

मैं सरपट भागता जाता था कि इतने में मेरे पीछे कुत्ते की भूँकने की आवाज़ सुनाई पड़ी। घूम कर देखा कि नौकर तो सब पीछे छूट गए, मगर 'जैक' मुझ पर हमला करने के लिए छलाँगें मारता इस चाँदनी रात में दौड़ता आ रहा है। हाय! हाय! इस साले शिकारी कुत्ते को जो मैं जानता कि बड़ा होने पर मेरा ही शिकार करेगा तो भूल कर भी उसे न पालता। मगर तक़दीर की दाँव-पेंच ही ऐसी होती है कि दिन बिगड़ते हैं तो अपने भी बेगाने हो जाते हैं। उस पर मुसीबत यह हुई कि मैं अपनी बदहवासी में अपने कुत्ते का नाम भी भूल गया। तब किस तरह उसे चुचकार-पुचकार कर अपनी जान बचाता? समझ लिया कि अब मेरा ख़ात्मा होगया। इसलिए श्रीमती जी का नाम लेकर मैंने किचकिचा कर आँखें बन्द कर लीं और सूखे लट्ठे की तरह खड़ा हो गया।

मगर भई, आदमियों से जानवर हज़ार गुने अच्छे होते हैं। क्योंकि इनमें अपने-बेगाने और भले-बुरे की पहचानने की तमीज़ तो होती है, इसलिए जैक मेरे पास पहुँच कर बजाय काटने के, उछल-उछल कर मेरा मुँह चाटने लगा। उस वक़्त मेरे जान में जान आई। मगर भूख और थकावट के मारे मैं खड़ा न रह सका। भद् से वहीं ढेर हो गया और रो-रोकर कुत्ते से मैं कहने लगा—"मेरे प्यारे जैक, मेरे अच्छे दोस्त, जाओ, घर से एक रोटी का टुकड़ा ले आओ। बला से तुम कुत्ते हो, मगर इस वक़्त जात-पाँत गई भाड़ में, मैं उसके पाखण्ड में पड़ कर भूखों मरना नहीं चाहता।"

मगर बेचारा जैक इसके जवाब में ख़ाली दुम हिला कर कूँ कूँ करने लगा। इतने में थिएटर वाली सड़क से एक बाइसिकिल आई। जैक एक प्यार के लहज़े में उसके पीछे भूँकता हुआ दौड़ा। बाइसिकिल वाले ने चाल धीमी करके कहा—अरे जैक! तुम इतनी रात को घर के बाहर कैसे हो? चलो मेरे पीछे-पीछे चले आओ।

मैंने आवाज़ से पहचान लिया कि यह तो मेरा चचेरा भाई मदन है, जो मेरी श्रीमती जी को ससुराल से बिदा कराने गया था। मालूम होता है, यह इस वक़्त थिएटर देख कर लौटा है। मैंने बहुत-कुछ चाहा कि उसे पुकार कर अपना परिचय दूँ और अपने पास बुलाऊँ, मगर मुँह से आवाज़ न निकली। और बाइसिकिल और कुत्ता दोनों दूर निकल गए। मगर थोड़ी ही देर के बाद जैक फिर लौट आया। मदन की सीटी पर तुरन्त पलट पड़ा। मगर वैसे ही फिर मेरे पास दौड़ आया। जब किसी तरह जैक मुझे छोड़ कर मकान अकेला न जा सका, तो मदन उसे मना ले जाने के लिए झख मार कर मेरे पास तक आया और उसने आते ही मुझे घुड़की बताई। मैंने जवाब में क्या कहा, यह तो याद नहीं, मगर इतना मालूम है कि उसने चौंक कर पूछा—अरे! श्यामू दादा, आप हैं? वाह! आपने तो ख़ूब स्वाँग बना रक्खा है कि पहचान ही नहीं पड़ते।

मैं—ले अब जले पर निमक न छिड़को। पहले मुझे तुम कहीं से कुछ खाने को ला दो। मारे भूख के मर रहा हूँ, उठा नहीं जाता, और बदन ढकने के लिए कुछ कपड़ा दो, ताकि मुँह तो किसी को दिखा सकूँ तब बातचीत करना।

उसने बहुत-कुछ इधर-उधर की बातें करने की कोशिश की, मगर मैं अपनी ज़िद पर अड़ा ही रहा कि बिना कुछ खाए और कपड़े पहने मैं बोलूँगा नहीं और न यहाँ से एक इञ्च हटूँगा। तब वह बाइसिकिल पर थिएटर वाली सड़क पर लाट पड़ा। शायद कुछ नाश्ता-पानी लाने की नीयत से, क्योंकि थिएटर के पास इस वक़्त भी दूकानें खुली रहती हैं। आख़िर यही बात निकली। क्योंकि थोड़ी देर में वह अपने रूमाल में बाँधे पूड़ी-तरकारी, मिठाई और जेब में दो बोतल सोडा-वाटर के लेते आया। उफ़! उस वक़्त मैं खाने पर किस तरह झपटा हूँ कि क्या कोई मरभुक्खा कुत्ता झपटेगा!

मैं उन पूड़ियों के आगे दीन-दुनिया सब कुछ भूल गया। अगर कोई बात याद रही, तो सिर्फ़ यही कि बस अब थोड़ी ही देर में अपनी प्राण-प्यारी से नहा-धोकर और कपड़े पहन कर मिलूँगा। जब ज़रा भूखे पेट में अनाज की कुछ गर्मी पहुँची और आँख उठा कर देखा तो मालूम हुआ कि मदन वहाँ पर नहीं है। अब तो उसके और अपने दोनों के ऊपर बड़ा ग़ुस्सा मालूम हुआ।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्योंकि वह मुझे अकेला ही छोड़ कर चला गया, मुझे कपड़े पहना कर मकान ले चलने का उसने कुछ भी इन्तज़ाम नहीं किया। पेट की ज्वाला तो देखी, मगर कम्बख़्त ने मेरे हृदय की ज्वाला नहीं देखी—जो बिना श्रीमती जी से मिले भला कब शान्त हो सकती है? अपने ऊपर इसलिए बिगड़ रहा था कि मैंने उसका कोट क्यों नहीं ले लिया, न पूरा धड़ सही, कम से कम ऊपर का हिस्सा तो कुछ ढक जाता। तब किसी तरह अपने मकान के अन्दर घुसने की कुछ हिम्मत भी कर सकता था, वरना इस सूरत में जहाँ दरवाज़े के पास पहुँचा तहाँ फिर वही मुसीबत और वही डण्डेबाज़ी शुरू हो जायगी।

चलो, बड़ी बात कि मकान की तरफ़ से बाइसिकिल आती दिखाई दी। मैं जल्दी से सोडा-वाटर से हाथ मुँह धोकर उठ खड़ा हुआ कि आने वाला चाहे कोई भी हो, उसका कपड़ा बिना छीने उसे जाने न दूँगा। ख़ैरियत हो गई कि वह मदन ही था और वह अपने 'लगेजकैरियर' पर कपड़ों का बण्डल भी बाँधे था। उसमें अपने कपड़े देख कर मैं निहाल हो गया और दो ही मिनटमें चट धोती, क़मीज़, कोट वग़ैरह पहन कर मैं भलामानुस बना गया। अब क्या पूछना था। बाछें खिल गईं और मैं श्रीमती जी से मिलने के लिए बेताब हो गया। इसलिए मदन का हाथ पकड़ कर मैं बड़ी तेज़ी से अपने मकान की तरफ़ लपका। क्योंकि अब उनसे मिलने में भला क्या कसर थी? बासी भात में भी अल्ला मियाँ का साझा? नौकरों की ऐसी-तैसी। अब तो वह लोग मुझे पहचान कर अदब से अलग हट जायँगे और मैं झट अन्दर पहुँच कर पहले दाढ़ी बनाऊँगा। उसके बाद मुँह पर साबुन रगड़-रगड़ के ख़ूब नहाऊँगा, फिर अपनी श्रीमती जी के चरणों पर चट नाक रगड़ूँगा। वाह रे मैं! उफ़ ओह! इतनी मुद्दत्तों के बाद जाकर तक़दीर जगी? इन मनसूबों में मैं अपना सारा दुखड़ा भूल गया। क्यों न हो भाई, प्रेयसी से मिलने की ख़ुशी ऐसी ही होती है, और प्रेयसी भी कैसी, जिससे ज़िन्दगी भर अब तक मैं मिलने को तरसता ही रहा। मगर इतने में मदन ने मुझे रोक कर कहा—अरे! उधर कहाँ चले? ज़रा बात तो सुनिए।

मैं—बात पीछे करना। पहले मकान पर तो चलने दे।

मदन—मकान? क्या अपने साथ घर वालों पर भी आफ़त ढाइएगा?

मैं—आफ़त कैसी?

मदन—क्या आपको नहीं मालूम कि इञ्जीनियर साहब की मोटर-बाइसिकिल चोरी करने, सड़कों पर बकरियाँ कुचलने, एक गाड़ीवान को अधमरा कर देने, एक मेम साहबा को बुरी तरह घायल कर देने और किसी औरत को भगा ले जाने की इल्लत में पुलिस आपको ढूँढ़ रही है? घण्टे-घण्टे बाद मकान पर आकर आपका पता पूछा करती है।

मेरी हक्की-बक्की बन्द हो गई और मैं रुवासा होकर उसका मुँह निहारने लगा। उसने फिर कहना शुरू किया—सुनिए! जैसे ही मोटर-बाइसिकिल की वारदात शहर भर में फैली, वैसे ही इञ्जीनियर साहब ने अपनी जान बचाने की ग़रज़ से चट थाने में रिपोर्ट कर दी कि मेरी बाइसिकिल कोई चुरा ले गया। उनकी बाइसिकिल तो न जाने कैसे उनके पास फिर पहुँच गई और वह इन वारदात की ज़िम्मेदारियों से अपने को बरी पाकर चुप हो गए, मगर पुलिस वालों ने यह पता लगा लिया है कि चोर आप ही हैं और आप ही ने यह सब आफ़तें ढाई हैं, इसलिए घड़ी-घड़ी कॉन्सटेबिल आकर आपकी ख़ातिर सब घर वालों को तङ्ग किया करता है। चाचा जी इस मामले को दबा देने के लिए सैकड़ों ख़र्च कर चुके हैं और कर रहे हैं। बस, वह गाड़ीवान, जिसकी गाड़ी फ़िटन से लड़ कर उलट जाने से बुरी तरह अधमरा हो गया है, अभी अस्पताल में कराह रहा है। अगर वह अच्छा हो गया और आपका पता पुलिस को कुछ दिनों बाद मिला तब तो मामला रुपयों के ज़ोर से दबा ले जाने की उम्मीद पाई जाती है। इसलिए ईश्वर से दोआ मनाइए कि वह अच्छा हो जाय और आप तब तक एक दम लापता हो जाइए। जब आप 'देशबन्धु' अख़बार में मेरा यह विज्ञापन देखें कि मुझे एक अध्यापिका की ज़रूरत है, तब आप समझ जाइएगा कि मामला दब गया और उस वक़्त मज़े से आप आइएगा। मगर अभी तो आप फ़ौरन परदेस चले जाइए और वहाँ कुछ दिनों भेष बदल कर अपने को छिपाए रहिए। इसीलिए मैं चुपचाप चाची से एक सख़्त ज़रूरत का बहाना करके आपके लिए ७०) लाया हूँ। किसी तरह आप अपना इससे गुज़र-बसर कीजिए; क्योंकि घर में और ज़्यादा रुपए हैं ही नहीं।

(शेष मैटर ५६० पृष्ठ के दूसरे कॉलम में देखिए)

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

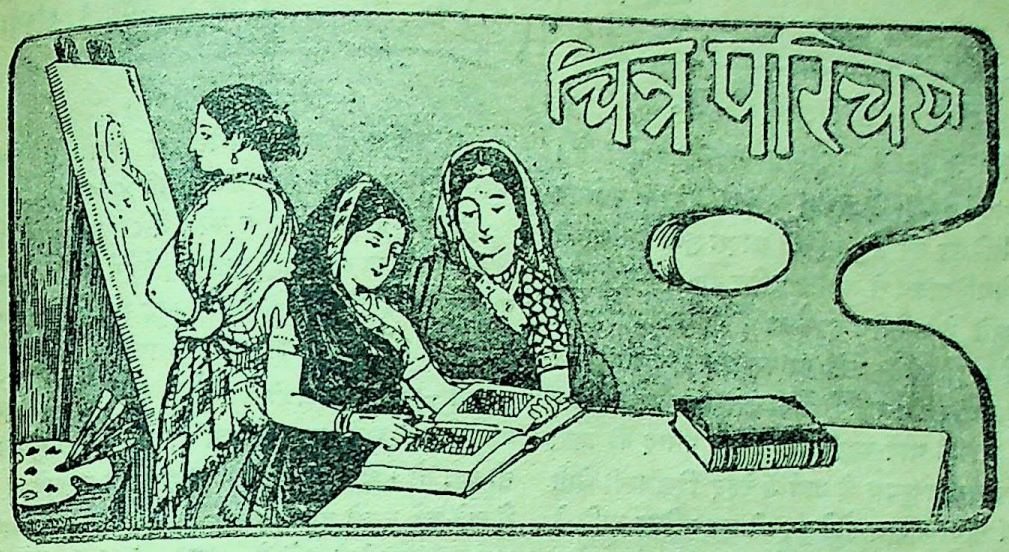

कुमारी प्राणजम ठाकोर, एम० ए०

कुमारी ठाकोर उन इनी-गिनी शिक्षित महिलाओं में हैं, जिनकी हमारे देश को आज आवश्यकता है। अपने देश में समुचित शिक्षा का प्रचार और शिक्षा-प्रणाली में सुधार कराना ही आपके जीवन का उद्देश है। इसी अभिनन्दनीय उद्देश को सामने रख कर देवी जी सन् १९१९ में इङ्गलैण्ड उच्च शिक्षा प्राप्त करने गई थीं। डॉक्टर मॉन्टेसरी द्वारा आविष्कृत मॉन्टेसरी शिक्षा-प्रणाली आपको बहुत पसन्द आई और इन्हीं डॉक्टर महोदया की अध्यक्षता में आपको जो प्रत्यक्ष अनुभव हुए उसकी वे सदा प्रशंसा करती हैं। आपने थोड़े ही समय में अपना अध्ययन पूर्ण करके अध्यापन कार्य का सर्वोच्च डिप्लोमा (Diploma of the Montessori Training Course for Teachers) प्राप्त कर लिया और सन् १९१९ के अन्त में आपने लन्दन-विश्वविद्यालय (University of London) में अध्ययन आरम्भ किया और वहीं से बी० ए० तथा सम्पादन-कला की परीक्षाएँ (Certificate of Journalism) सम्मान-सहित पास कीं। जून १९२३ में आप विश्व-भ्रमण के लिए विलायत से रवाना हुईं। समस्त यूरोप और अमेरिका की शिक्षा-सम्बन्धी प्रायः सभी विख्यात संस्थाओं का आपने निरीक्षण किया और शिक्षा-प्रणाली का अध्ययन भी। १९२६ के ही अन्त में आपको अमेरिका की शिक्षा-सम्बन्धी सर्वोच्च छात्रवृत्ति (Scholorship of the International Institute) प्रदान की गई। आपने अमेरिका के कोलम्बिया टीचर्स कॉलेज (Columbia Teachers College) की सर्वोच्च डिगरी प्राप्त कर साहित्य में एम० ए० की परीक्षा दी और उसमें भी सम्मान-सहित उत्तीर्ण हुईं। आपने अपने छात्र-जीवन में कई बार भारतीय सभ्यता और भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में सारगर्भित व्याख्यान देकर अमेरिका तथा इङ्गलैण्ड के सभ्य समाज के सम्मुख भारत का मुखोज्ज्वल किया है। हाल ही में आप भारत लौटी हैं। हम देवी जी का हृदय से स्वागत और उनकी मङ्गल-कामना करते हैं।

* * *

कुमारी बचुबेन लोटवाला

आप एक उच्च कोटि की शिक्षित महिला हैं। आप माननीय मिस्टर वी० जे० पटेल के साथ हाल ही में यूरोप-भ्रमणार्थ गई थीं। इस यात्रा ने देवी जी को जो अनुभव प्रदान किया है, उससे आप बहुत अधिक प्रसन्न हैं। आप बम्बई के म्युनिसिपल कॉरपोरेशन की सदस्या हैं और हाल ही में 'हिन्दोस्तान' नामक सुप्रसिद्ध दैनिक का सम्पादन-भार भी ग्रहण किया है। आपके भाग्य-शाली पिता श्री० आर० बी० लोटवाला, जिन्होंने इस उपयोगी पत्र का जन्म देकर भारत-माता की प्रशंसनीय सेवा की थी, सारा कार्य-भार अपनी पुत्री को सौंप दिया है, जिसे वे बड़ी उत्तमता से निबाह रही हैं। यह पहली ही महिला-रत्न हैं जिन्होंने इतने बड़े दैनिक पत्र का सम्पादन-भार ग्रहण कर भारतीय महिलाओं के समक्ष एक प्रशंसनीय आदर्श उपस्थित किया है। हम देवी जी की सफलता चाहते हैं।

* * *

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीमती हंसा मेहता, बी० ए०

'चाँद' के पाठकों से देवी जी अपरिचित नहीं हैं। आप भूतपूर्व बड़ोदा के दीवान और बीकानेर के वर्त्तमान प्राईम मिनिस्टर सर मनुभाई की आदर्श पुत्री हैं। आपने बम्बई-विश्वविद्यालय से सम्मान-सहित बी० ए० की परीक्षा पास करने के अतिरिक्त इङ्गलैण्ड में भी काफ़ी अध्ययन किया है। यूरोप और अमेरिका का आप ख़ूब भ्रमण कर चुकी हैं। आप बड़ी उच्च कोटि की लेखिका और नाट्यकार भी हैं, आपकी गल्पें-कहानियाँ भी बड़ी पसन्द की जाती हैं। आप समाज-सुधार के कार्य में बेहद दिलचस्पी लेती हैं, स्वयं नागर-ब्राह्मण होते हुए भी एक बनिया जाति के रत्न से अपना विवाह किया है। आपका शुभ नाम डॉक्टर जीवराज मेहता एम० डी० है। आप बम्बई की सुप्रसिद्ध भगिनी समाज की मन्त्रिणी और बम्बई (शहर) के स्कूल-कमेटी की सदस्या भी हैं। गुजराती महिलाओं की आप वास्तव में बड़ी सेवा कर रही हैं। बारदोली-आन्दोलन में आपने जो आदर्श कार्य किए हैं वह सर्वथा प्रशंसनीय हैं। देवी जी के इस आदर्श जीवन से आजकल की शिक्षित कही जाने वाली महिलाओं को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

* * *

श्रीमती शारदा दीवान, एम० ए०

आप बम्बई के सुप्रसिद्ध नर्मदल के नेता सर चिम्मनलाल सीतल-वाद—जो बम्बई-विश्वविद्यालय के वायस-चेन्सलर भी हैं—की आदर्श पुत्री हैं। आपने भारत की जन-संख्या की समस्या (Thesis on Population Problem in India) पर एक बड़ा ही विद्वत्तापूर्ण निबन्ध लिख कर भारतीय शिक्षित पुरुषों तक के दाँत खट्टे कर दिए थे। आपने सम्मान-सहित एम० ए० की परीक्षा पास की है और आजकल आप बड़े मनोयोग से बम्बई की बनिता-विश्राम-जैसी सुप्रसिद्ध और लोक-प्रिय संस्था की अवैतनिक मन्त्रिणी का कार्य कर रही हैं। आपके अधीन रह कर इस संस्था ने जो अभूतपूर्व उन्नति की है उसकी चर्चा हम 'चाँद' के किसी आगामी अङ्क में करेंगे। इस स्थान पर हम देवी जी के स्वार्थ-त्याग की प्रशंसा करते हैं और आपकी उत्तरोत्तर उन्नति चाहते हैं।

(५५८ पृष्ठ का शेषांश)

मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। मैंने लड़खड़ा कर कहा—और मेरी श्रीमती जी × × ×

मदन—उनका नाम न लो। मैंने घर में किसी से आपके आने का हाल नहीं बताया। सिर्फ़ उन्हीं से कहा। वह भी इस इरादे से कि शायद वह इस वक्त आपकी कुछ मदद करें, मगर कह कर पछताया।

मैं—हाँ-हाँ, बताओ, उन्होंने मेरे बारे में तुमसे क्या पूछा? भई, हाथ जोड़ता हूँ, उनसे ज़रा मुलाक़ात तो करा दो। चाहे जैसे बने। बाहर वाले पाख़ाने ही में मैं खड़े-खड़े उनसे दो बातें कर लूँगा। किसी के कानों-कान ख़बर न होगी। मैं सैकड़ों मील से उन्हीं की ख़ातिर पाँव-पैदल हज़ारों मुसीबतें झेलता आ रहा हूँ × × ×

मदन—देखिए, वक्त ख़राब न कीजिए। तीन बज चुके हैं। इसी तरह बातों में सुबह हो जायगी और आप पकड़ जाइएगा। इसलिए आप इस वक्त चुपके से चार बजे वाली गाड़ी से निकल जाइए। अभी वक्त है।

मैं—भई, मुझे उनसे मिलने में कुछ ही मिनट लगेंगे। क़सम खाकर कहता हूँ कि मैं बिलकुल ही छोटी मुलाक़ात करूँगा।

मदन—कहा था, मगर × × ×

मैं—मगर क्या? कहो-कहो भाई।

मदन—उनकी भौंहें सिकुड़ गईं। एकदम गर्म हो उठीं × × ×

मैं—मेरा आना सुन कर?

मदन—हाँ भाई!

मैं—अच्छा, बोलीं क्या, यह तो बताओ।

मदन—यही कि अपनी ऐसी-तैसी में जायँ। उसी के साथ जाकर रहें जिस नानी को अपने साथ भगा ले गए थे। मैं अब उनका मुँह तक देखना नहीं चाहती।

ऐसी आवभगत इतनी मुसीबतों के बाद? उफ़! कलेजे में गोला चल गया। मैं वहीं टूटे पेड़ की तरह धम् से बैठ गया। अगर तक़दीर रूठे तो आदमी रोकर दुखड़ा हल्का करे, मगर जब वही मार रही हैं, तब हाय! मैं क्या करूँ?

(क्रमशः)

(Copyright)

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[शब्दकार तथा स्वरकार—श्री० किरणकुमार जी मुखोपाध्याय (नीलू बाबू)]

ठुमरी धानी (३ ताल)

स्थायी—गगरिया मोरि काहे गिराई मोहन,
विनती करूँ छुल जिन कर मान।

अन्तरा—भयो पिया तुम निपट अनारी,
रोकत पनघट पै पर नारी,
निरखो गिरिधारी चितवत सखियन ॥

स्थायी

३				०				१				×			
क		क		०		क		क	क	क		क			
ग	म	नि	प	स	नि	प	म	ग	मग	सनि	स	ग	—	—	म
ग	ग	रि	य	मो	रि	का	हे	गि	राआ	इ ०	मो	ह	—	—	न
क	क			क				क		क		०क	क	क	क
प	ग	ग	म	ग	—	म	प	ग	म	नि	प	सनि	पनि	पम	गस
वि	न	ती	क	रुँ	—	छु	ल	जि	न	क	र	मा	,,	...	न

अन्तरा

क				क	क		क			क		क		०	
प	ग	—	म	गम	पनि	पम	गम	प	प	नि	प	नि	—	स	—
भ	यो	—	पि	या	... तु	...	म	नि	प	ट	अ	ना	—	री	—
०				क	०	०क	०क	०	०क	०	०	क			
स	—	स	स	नि	स	ग	ग	स	ग	स	स	नि	—	प	—
रो	—	क	त	प	न	ध	ट	प	ए	प	र	ना	—	री	—
क		क		क		क		क		क		क		क	
ग	म	ग	स	नि	स	ग	म	प	नि	प	म	ग	म	ग	स
नि	र	खी	ई	गि	रि	धा	री	चि	त	व	त	स	खि	य	न

नोट—इस राग में ग और नि सर्वदा कोमल लगते हैं; रे और ध वर्जित हैं।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

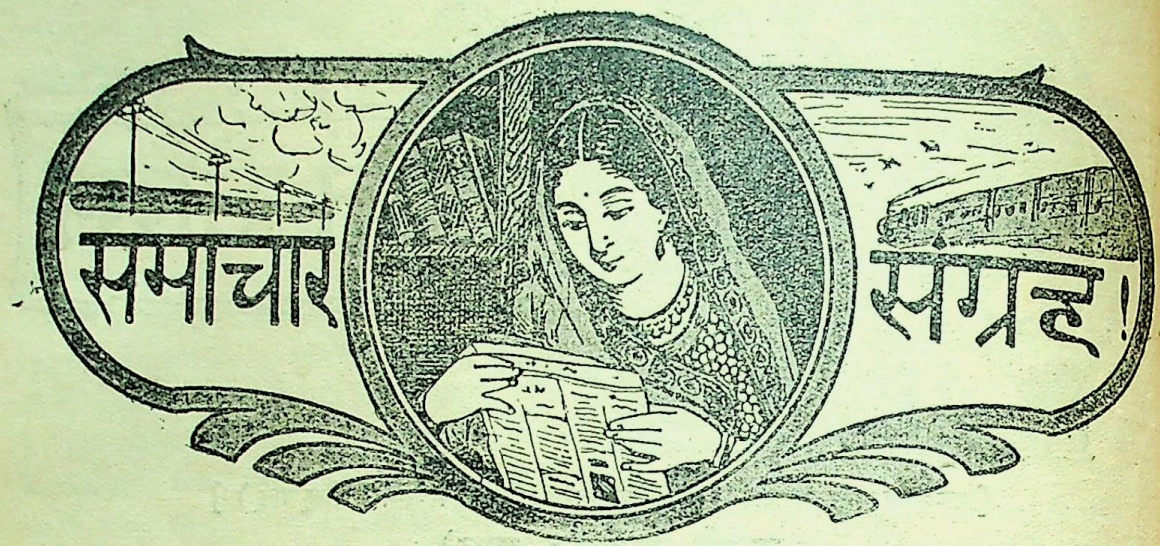

मैसूर महिला-कॉन्फ्रेन्स

गत ६ ठी दिसम्बर को बङ्गलोर के बानी-विलास इन्स्टीव्यूट में मैसूर महिला-कॉन्फ्रेन्स का तृतीय अधिवेशन मैसूर-दीवान की धर्मपत्नी श्रीमती मिरज़ा इस्माईल के सभापतित्व में हुई थी। सभा की उपस्थिति बड़ी सन्तोषजनक थी। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि हर जाति की स्त्रियाँ बहुतायत से शरीक हुई थीं। (१) स्त्रियों को वोट देने का अधिकार दिया जाना चाहिए (२) उनके क़ानूनी अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए प्रचलित क़ानून में सुधार होना चाहिए (३) बाल-विवाह के विरुद्ध प्रत्येक राज्य तथा भारतीय सरकार को कड़ा क़ानून बना कर अपनी सुधारात्मक प्रवृत्ति का परिचय देना चाहिए, आदि-आदि अनेक महत्वपूर्ण तथा उपयोगी प्रस्ताव पास हुए। एक बड़ी महत्वपूर्ण बात यह हुई कि समस्त मैसूर-राज्य की लगभग २,००० महिलाओं का हस्ताक्षरित प्रार्थना-पत्र महाराजा बहादुर मैसूर की सेवा में इस आशय का भेजा गया है कि स्त्रियों की उन्नति के सारे प्रयत्न बाल-विवाह प्रथा के कारण नष्ट हो रहे हैं और उन्हें बड़ी अड़चनों का सामना करना पड़ रहा है, इसलिए मैसूर-राज्य में बाल-विवाह के विरुद्ध शीघ्र ही एक कड़ा क़ानून पास होना चाहिए। हमें आशा है, मैसूर के यशस्वी महाराजा बहादुर अवश्य इस नैतिक सुधार की ओर ध्यान देने की कृपा करेंगे।

* * * * * *

देहली का प्रान्तीय महिला-सम्मेलन

विगत २४ नवम्बर को श्रीमती जे० सी० चैटर्जी के सभापतित्व में दिल्ली प्रान्तीय महिला-सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन देहली में बड़ी सफलतापूर्वक हुआ, जिसमें कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए। एक बड़ा प्रशंसनीय प्रस्ताव यह पास हुआ कि भारतीय सरकार से प्रार्थना की जाय कि सन् १९३० के बाद इन्ट्रेन्स की परीक्षा में किसी भी विवाहित विद्यार्थी को न बैठने दिया जाय, ताकि बाल-विवाह का प्रचार रुक सके। एक विदेशी सरकार ऐसा करेगी, हमें इसमें सन्देह है। जो भारतीय सरकार बाल-विवाह-जैसे उपयोगी बिल का खुला विरोध कर सकती है, उससे यह आशा करना सर्वथा व्यर्थ है। सभानेत्री महोदया ने पिछले वर्षों में स्त्री-शिक्षा के प्रचार में जो असाधारण उन्नति हुई है, उस पर बड़ा सन्तोष प्रकट किया। आपने कहा कि दो-तीन वर्ष पूर्व देहली में लड़कियों के लिए केवल ३ छोटे-छोटे स्कूल थे, किन्तु आज दो कॉलेज, तीन हाईस्कूल और लगभग ५० अन्य स्कूल हो गए हैं। पहले स्त्रियाँ घर की चहारदीवारी में सदा बन्द रहती थीं, किन्तु अब ये सार्वजनिक कार्यों में बहुत-कुछ भाग लेने लगी हैं। अगले वर्ष आपने और भी अनेक सुधारों में स्त्रियों को हाथ बटाने के लिए आह्वान किया। परमात्मा इन देवियों के स्तुत्य कार्य में सहायक हों।

* * * * * *

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ॐ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट—
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

पारवार जैनों में विधवा-विवाह

बम्बई के सुप्रसिद्ध हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय के अध्यक्ष श्री० नाथूराम जी प्रेमी का परिचय हिन्दी-संसार को कराने की आवश्यकता नहीं। आप सच्चे समाज-सुधारक हैं। हमें यह जानकर वास्तव में बड़ा हर्ष हुआ कि आपने अपने भाई श्री० नन्हेंलाल का शुभ-विवाह कराघाट (सागर, सी० पी०) की एक बाल-विधवा बालिका से जैन-रीत्यनुसार कराया है। यह शुभ-विवाह ९वीं दिसम्बर को बड़े समारोह से सम्पन्न हुआ। विवाह में लगभग ५०० जैनी तथा अन्य जातियों के प्रतिष्ठित व्यक्ति सम्मिलित हुए थे। इस शुभ अवसर पर विधवा-विवाह की आवश्यकता पर कई विद्वानों के प्रभावशाली भाषण भी हुए। नवयुवकों को उत्साहित किया गया कि सारहीन रूढ़ियों की पोषक पुरानी टकसाल की पञ्चायतों की ज़रा भी परवा न कर, उन्हें विधवा-विवाह का प्रचार कर अपनी जाति के खोखलेपन को दूर करना चाहिए। हम नव-दम्पति को हृदय से शुभाशीर्वाद देते हैं और प्रेमी जी को बधाई !

* * *

मद्रासी महिलाओं की विराट् सभा

विगत २४ नवम्बर को मद्रास-प्रान्त की स्त्रियों की एक विराट् सभा मद्रास के गवर्नर की धर्मपत्नी लेडी गोशें के सभापतित्व में हुई। लेडी गोशें ने कहा कि इस समय भारत में इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि देश की नारी-शक्ति सजग होकर अपनी ज़िम्मेदारी को पहचाने और तदनुकूल कार्य करे, सुधार के सारे प्रयत्नों का यही सार है। मद्रास-प्रान्त के प्रधान मन्त्री डॉक्टर सुब्बारायन की धर्मपत्नी ने अपने सारगर्भित भाषण में कहा कि आज भारतवासियों को एक सङ्गठित और सबल जाति बनाने के लिए यह प्रथम सोपान है कि स्त्रियाँ पुरुषों के सारे कार्यों में हाथ बटावें। आपने कहा कि समाज-सुधार का तो सारा आन्दोलन स्त्रियों को अपने हाथ में ही ले लेना चाहिए और उसे सफल बनाना ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लेना चाहिए। अन्य कई उपयोगी प्रस्ताव भी पास हुए, स्त्रियों में एक विशेष उत्साह की झलक थी।

* * *

एक आदर्श विधवा-विवाह

दो वर्ष पूर्व श्रीमती गार्गी देवी स्थानीय क्रॉस्थवेट कॉलेज में पढ़ती थीं। बी० ए० तक पढ़ने के बाद उच्च शिक्षा प्राप्त करने आप विलायत गई थीं। और हमें यह जान कर प्रसन्नता हुई कि आपने लन्दन-विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की कठिन परीक्षा सम्मान-सहित पास की। डॉक्टरा गार्गी देवी लखनऊ के सुप्रसिद्ध रईस राय साहब ज्वालाप्रसाद अस्थाना की पुत्री हैं। आप बाल-विधवा थीं। हमें यह जानकर दोहरी प्रसन्नता हुई कि गत ६ठी दिसम्बर को प्रोफ़ेसर कृष्णकुमार माथुर से, जो स्वयं भी विलायत से पढ़ कर लौटे हैं और जो हिन्दू-विश्वविद्यालय में जीव-शास्त्र (Geology) के प्रोफ़ेसर हैं, आपका पुनर्विवाह बड़ी धूमधाम से हो गया। अनेक प्रतिष्ठित सज्जन इस आदर्श विवाह में सम्मिलित हुए थे। हमें शब्द नहीं मिलते, जिनसे हम ८० वर्ष के वयोवृद्ध राय साहब मुन्शी ज्वालाप्रसाद जी के इस क्रियात्मक समाज-सुधार की प्रशंसा कर सकें। निश्चय ही समस्त कायस्थ-समाज पर इस कार्य का ख़ासा प्रभाव पड़ेगा—कोरे व्याख्यानों की अपेक्षा कहीं अधिक !

* * *

श्रीमती गुलाबदेवी-अस्पताल

स्वर्गीय लाला लाजपतराय जी ने अपने जीवन-काल में अपनी माता श्रीमती गुलाब देवी जी के स्थायी स्मृति-स्वरूप लाहौर में स्त्रियों के क्षय-रोग की चिकित्सा के लिए एक विशाल अस्पताल उपरोक्त नाम से खोलने का निश्चय किया था, जिसके लिए ५ लाख रुपयों की आवश्यकता थी। स्वयं लाला जी ने एक लाख दिया था और ७५,००० अन्य प्रान्तों से दान-स्वरूप इकट्ठा कर लिया था और २०,००० देने के उन्हें वचन मिल चुके थे। एक ट्रस्ट के हाथ में इस उपयोगी अस्पताल का सारा भार सौंप कर लाला जी मरे हैं। अस्पताल में केवल स्त्रियों की चिकित्सा होगी और अछूत स्त्रियाँ ख़ास तौर से इससे लाभ उठा सकेंगी। लाहौर से कई प्रसिद्ध डॉक्टरों ने फ़ण्ड के लिए अपील की है, हमें आशा है जनता इस परम पुण्य-कार्य में दान देकर अपना औचित्य पालन करेगी।

* * *

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

खत्रियों में विधवा-विवाह

हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि १२ वीं दिसम्बर को मेरठ में एक ढाई घर कपूर विधवा खत्री-बालिका का पुनर्विवाह देहली के लाला कन्हैयालाल मेहरोत्रा (ढाई घर) के पुत्र के साथ बड़े समारोह से सम्पन्न हुआ। विवाह के शुभ अवसर पर अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति सम्मिलित हुए थे। मेरठ के खत्रियों में यह पहला विधवा-विवाह था।

* * *

पाँच फ़ीट की अध्यापिका

अनेक पाश्चात्य देशों में, ख़ास कर इङ्गलैण्ड, अमेरिका और इजिप्ट आदि में, बालिकाओं को ही नहीं, बल्कि बालकों को पढ़ाने का काम महिलाएँ ही करती हैं। अभी हाल ही में शिक्षा-विभाग के अधिकारियों (New York Board of Education) ने निश्चय किया है कि भविष्य में पाँच फ़ीट से कम लम्बी स्त्री को अध्यापिका का पद नहीं मिला करेगा। अधिकारियों का कहना है कि बालक-बालिकाएँ नाटी स्त्रियों का रोआब (आतङ्क) नहीं मानतीं और इस प्रकार उनकी शिक्षा में बाधा पड़ती है। बोर्ड के इस फ़ैसले से वहाँ की स्त्रियों में—ख़ासकर नाटी स्त्रियों में—बड़ा असन्तोष फैल रहा है। उनका कहना है कि वे अपनी लम्बाई की कमी की पूर्ति अपने अन्य गुणों से कर सकती हैं।

* * *

एक कायस्थ-परिवार का आदर्श

काशी के सुप्रसिद्ध नेता श्री० सम्पूर्णानन्द जी के निकट सम्बन्धी श्री० महेन्द्रनाथ वर्मा महोदय का शुभ-विवाह, जो अभी तक अविवाहित थे, मुन्शी गणेशप्रसाद की बाल-विधवा पुत्री से उस दिन काशी में बड़े समारोह से हुआ है। शादी सनातन-धर्मानुसार हुई है। काशी के कायस्थ-समाज में यह पहला ही विधवा-विवाह सम्पन्न हुआ है। नगर के अनेक प्रतिष्ठित सज्जन विवाह में बड़े उल्लास से शरीक हुए थे। कन्या-पक्ष के अनेक सम्बन्धी, जो पिण्डरा (मध्य-प्रान्त) में थे, इस विवाह में शरीक होने को अच्छी संख्या में पधारे थे। हमें आशा है, यह विवाह कायस्थ-समाज में एक आदर्श उपस्थित करेगा और नवयुवकों को उनके कर्तव्य की ओर आकर्षित करने में सहायक होगा।

बारडोली में समाज-सुधार

बारडोली ताल्लुक़ा में जब से सरकारी अन्यायपूर्ण कर न देने का आन्दोलन चला है, तब से वहाँ के सार्वजनिक जीवन में एक विशेष क्रान्ति उत्पन्न हो गई है; और प्रगति को देखते हुए हमारा तो विश्वास है कि यह तब तक शान्त न होगी जब तक वहाँ पूर्ण रूप से राजनैतिक तथा सामाजिक सुधार न हो ले। बारडोली तथा इसके आस-पास के सभी ताल्लुक़ों की जनता ने शपथ खा ली है कि चाहे कुछ भी हो, १४ वर्ष की कम उम्र वाली कन्याओं का तथा १६ वर्ष से कम उम्र वाले बालकों का विवाह वे कदापि न होने देंगे। शायद हमें यह बतलाना न होगा कि कुछ दिन पहले तक बारडोली ताल्लुक़ा जहालत का केन्द्र समझा जाता था, जहाँ के लोग ५ वर्ष के भीतर ही कन्याओं का विवाह कर देना अपना परम धर्म समझते थे। जाति-पाँति के विरुद्ध भी बड़ा आन्दोलन हो रहा है।

* * *

भाई खड्गबहादुर की रिहाई

बड़ी व्यवस्थापिका के लगभग सभी सदस्यों ने वायसराय महोदय की सेवा में इस आशय का एक मेमोरियल दिया था कि स्त्रियों का सम्मान-रक्षा के लिए ही वीर खड्गबहादुर ने नर-पिशाच हीरालाल की हत्या की थी—उसने किसी व्यक्तिगत स्वार्थ से यह कार्य नहीं किया था। मातृत्व का मुखोज्ज्वल करना ही इस वीर-युवक का ध्येय था, इसलिए उसे अब सरकार को क्षमा कर अपनी उदारता का परिचय देना चाहिए। वायसराय महोदय ने बहुत दिनों तक सोच-विचार कर एसेम्बली के मेम्बरों को विश्वास दिलाया है कि मार्च १९२९ तक इस पर विचार किया जायगा। हमें समाचार मिला है कि आगामी मार्च में भाई खड्गबहादुर, बी० ए० अवश्य कारागार से मुक्त कर दिए जाएँगे। हमारा विचार है, कलकत्ते में राष्ट्रपति के स्वागत की भाँति इस वीर युवक का भी अपूर्व स्वागत होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं हुआ तो यह व्यक्तिगत ही नहीं, भारतीय मातृत्व का अपमान होगा।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्रान्तिकारी भावनाओं का सजीव चित्र

समाज की चिनगारियाँ

[लेखक—श्री० ज़हूरबख़्श जी]

एक अनन्त अतीत-काल से समाज के मूल में अन्ध-परम्पराएँ, अन्ध-विश्वास, अविश्रान्त अत्याचार और कुप्रथाएँ, भीषण अग्नि-ज्वालाएँ प्रज्वलित कर रही हैं और उनमें यह अभागा देश अपनी सदभिलाषाओं, अपनी सत्कामनाओं, अपनी शक्तियों, अपने धर्म और अपनी सभ्यता की आहुतियाँ दे रहा है। 'समाज की चिनगारियाँ' आपके समक्ष उसी दुर्दान्त दृश्य का एक धुँधला चित्र उपस्थित करने का प्रयास करती है। परन्तु यह धुँधला चित्र भी ऐसा दुखदायी है कि इसे देखकर आपके नेत्र आठ-आठ आँसू बहाए बिना न रहेंगे। 'समाज की चिनगारियाँ' आपको समाज के उस दारुण उत्पीड़न की मर्मस्पर्शी कथा सुनाने का उपक्रम करती है, जिसे सुनकर कभी आपका हृदय करुणा से उच्छ्वसित हो उठेगा, तो कभी मौन-हाहाकार कर उठेगा; कभी ग्लानि से गलित हो उठेगा, तो कभी जोश से फड़फड़ा उठेगा और कभी क्रोध की ज्वाला से भभक उठेगा तथा अन्त में आप आत्म-विस्मृत हो जायँगे।

पुस्तक बिलकुल मौलिक है और उसका एक-एक शब्द सत्य को साक्षी करके लिखा गया है। भाषा इसकी ऐसी सरल, वामुहाविरा, सुललित तथा करुणा की रागिनी से परिपूर्ण है कि पढ़ते ही बनती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि पुस्तक की छपाई-सफ़ाई नेत्र-रञ्जक एवं समस्त कपड़े की जिल्द दर्शनीय हुई है; और सजीव प्रोटेक्टिङ्ग कवर ने तो उसकी सुन्दरता में चार चाँद लगा दिए हैं। फिर भी मूल्य केवल प्रचार-दृष्टि से लागत मात्र ३) रक्खा गया है। 'चाँद' तथा स्थायी ग्राहकों से २।) रु०

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पटना में होने वाली तृतीय अखिल भारतवर्षीय महिला-कॉन्फ्रेन्स की सभानेत्री
श्रीमती रानी ललितकुमारी साहिबा, मण्डी

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

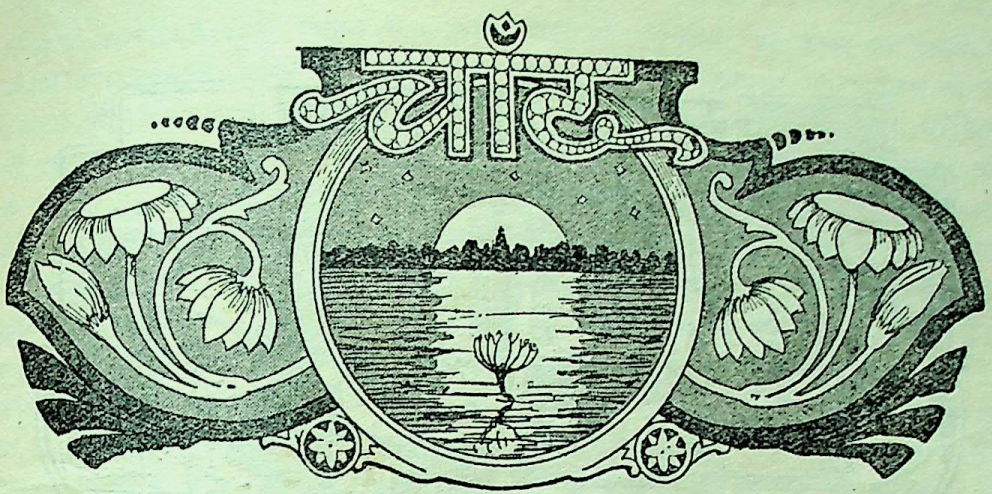

Highly appreciated and recommended for use in Schools and Libraries by
Directors of Public Instruction, Punjab, Central Provinces and
Berar, United Provinces and Kashmir State etc., etc.

वर्ष ७ खण्ड १ | फ़रवरी, १९२९ | संख्या ४ पूर्ण संख्या ७६

सन्देह

ॐ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट—
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

[रचयिता—श्रीमती महादेवी जी वर्मा]

(१)

बहती जिस नक्षत्र-लोक में,
निद्रा के श्वासों से वात।
रजत-रश्मियों के तारों पर,
बेसुध-सी गाती थी रात।

(२)

अलसाती थीं लहरें पीकर—
मधु-मिश्रित तारों की ओस।
भरती थीं सपने गिन-गिन के—
मूक व्यथाएँ अपने कोष!

(३)

दूर उन्हीं नीलम-कूलों पर,
पीड़ा का ले झीना तार।
उच्छ्वासों की गूँथी माला,
मैंने पाई थी उपहार।

(४)

यह विस्मृति है या सपना वह—
या जीवन-विनिमय की भूल।
काले क्यों पड़ते जाते हैं,
इसके वे सोने-से फूल?

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फ़रवरी, १९२९

देशी नरेशों की विलासिता

अभागे भारत को आज इस दुरवस्था तक पहुँचाने में तथा उसे पराधीनता की बेड़ी से जकड़ने में भारतीय नरेशों का कम हाथ नहीं रहा है, इस देश के पतन का इतिहास हमारे इस कथन का साक्षी है! आज यदि हमारे देश के नरेन्द्र-मण्डल में १०-५ नरेश भी अफ़ग़ानिस्तान के यशस्वी और देश-भक्त अमानुल्ला की भाँति अपने देश के शुभ-चिन्तक और समाज-सुधार के पक्षपाती होते तो संसार की कोई भी शक्ति भारत की ओर उँगली उठाने का साहस न कर सकती, पर यहाँ की तो बात ही दूसरी है। एक ओर प्रजा दाने-दाने को तरस रही है—भूख से व्याकुल होकर और बच्चों की क्षुधा निवारण न कर सकने के कारण, एक ओर माताएँ अपने प्यारे बच्चों का गला घोंट कर अपने मातृत्व को धिक्कार रही हैं, दूसरी ओर गौराङ्ग महाप्रभुओं की आवभगत में, क्षणिक खान-पान में, अफ़सरों के नाश्ता-पानी में लाखों रुपए स्वाहा किए जा रहे हैं, एक ओर संरक्षण-गृहों के अभाव के कारण हमारी लाखों स्त्रियाँ और बच्चे हमसे सदा के लिए अलग हो रहे हैं, दूसरी ओर कुत्तों की ख़रीद में और उनके लालन-पालन में लाखों रुपए व्यय किए जा रहे हैं! एक ओर शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाओं के अभाव के कारण करोड़ों भारतीय बालक-बालिकाएँ शिक्षित होने के नैसर्गिक अधिकार से वञ्चित रक्खी जाती हैं, दूसरी ओर प्रजा के रक्त से डूबे हुए धन-राशि को वेश्याओं के श्रीचरणों पर समर्पित किया जा रहा है!! हमारी ये पंक्तियाँ निराधार हों, सो बात नहीं है, हम इसके प्रमाण भी दे सकते हैं, अस्तु।

पूरे तीन वर्ष की बात है, शिमला-शैल पर हमारे एक महाराजा बहादुर ने लाट-साहब की 'टी पार्टी' में ६ लाख से अधिक व्यय करके अपनी राज्य-भक्ति का परिचय अपने प्रभुओं को दिया था! नवानगर के जाम साहब ने लॉर्ड सिडनहम (Lord Sydenham) की आवभगत में ७ लाख, लॉर्ड वेलिङ्गटन (Lord Wellingdon) के सत्कार में १० लाख, सर जॉर्ज लॉयड (Sir George Lloyed) की ख़ुशामद में ५ लाख,

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लॉर्ड रीडिङ्ग (Lord Reading) के स्वागत में ५ लाख और वर्तमान वायसराय लॉर्ड इरविन (Lord Irwin) के स्वागत-सत्कार में पूरे २५ लाख रुपयों की जो होली खेली थी, हमारा वह संस्मरण अभी पुराना नहीं हुआ है। इस अन्तिम २५ लाख की होली का ब्योरा भी सुन लीजिए, ४ लाख की नई मोटरें ख़रीदी गईं ५ लाख ८० हज़ार की मोटर बोटें, नौकरों की वर्दी-चपरास में ६५ हज़ार रुपए व्यय किए गए, ४० हज़ार का नया फ़र्श तथा क़ालीन आदि ख़रीदा गया, २ लाख रुपए सजावट में व्यय किए गए और १५ हज़ार रुपयों के फूल तथा ५ हज़ार की सुनहरी मालाएँ ख़रीदी और चढ़ाई गईं, १॥ लाख का बिजली का नया सामान ख़रीदा गया, ५० हज़ार के ख़ीमें लिए गए, २५ हज़ार का पेट्रोल और २० हज़ार आतिशबाज़ी में स्वाहा किए गए, १ लाख शिकारगाह की सजावट में लगाए गए और १ लाख दावत में, १ लाख का फ़र्नीचर ख़रीदा गया और ३५ हज़ार इस उत्सव की स्मृति को चिरस्थायी करने के लिए फ़ोटोग्राफ़री में व्यय हुए! इन रक़मों के अलावा ३ लाख रुपए ऐसे कामों में व्यय हुए, जिनका प्रकाशन शिष्टता की दृष्टि से वर्जित रक्खा गया है!! विलायती समाचार-पत्रों के कॉलमों में एक ओर इस प्रकार के नित्य होने वाले राजशाही ख़र्चों की सूची छपा करती है, दूसरी ओर भारत की दरिद्रता का करुण-क्रन्दन! पाश्चात्य देशवासी, जो भारतीय परिस्थिति और यहाँ के वातावरण से भली-भाँति परिचित नहीं हैं, सहसा विश्वास नहीं करते कि अधिकांश भारतवासी आज भूखों मर रहे हैं। देशी नरेशों की इस हृदय-हीनता पर उनका अविश्वास करना स्वाभाविक ही है। महाराजा पटियाला के कुत्तों की प्रेम-कथा अभी पुरानी नहीं हुई है। पिछली बार जब आप विलायत पधारे थे, आपने लाखों रुपए कुत्तों के ख़रीद-फ़रोख़्त में व्यय किए थे, यह देख कर कुत्ता-प्रेमी अङ्गरेज़-जाति के भी छक्के छूट गए थे और महाराजा पटियाला के कुत्ता-प्रेम की जो प्रशंसा हमने दिल मसोस कर विलायती समाचार-पत्रों में पढ़ी थी, वह भूल जाने का विषय नहीं है।

अब नरेन्द्र-मण्डल की चरित्र-हीनता तथा विलास-लीला की ओर ज़रा दृष्टिपात कीजिए। कई देशी नरेशों, ताल्लुक़ेदारों तथा ठाकुरों के लिए गुण्डों द्वारा प्रजा की बहू-बेटियों को उड़वा कर अपनी क्षणिक पर्यङ्कशायिनी बना लेना तो एक साधारण सी बात है, जिससे अधिकांश भारतवासी पूर्णतः परिचित हैं। आज से क़रीब दो वर्ष पूर्व एक देशी रियासत की एक हतभागिनी महिला ने परदा-प्रथा के विरुद्ध हमारी एक टिप्पणी पढ़ कर जो उद्गार प्रकट किए थे, वह आज भी हमारे कानों में गूँज रहे हैं। उस देवी ने अपने शासक की अमानुषिक इन्द्रिय-लोलुपता का हृदय-भेदी वर्णन करते हुए लिखा था—"परिस्थिति यह है, कुँओं पर से, घाट पर से तथा घर के आँगनों में से केवल इस अपराध के कारण अनेक स्त्रियाँ उड़वा ली जाती हैं कि परमात्मा ने उन्हें सौन्दर्य प्रदान करने में विशेष उदारता की है! तब भला आप ही बतलाइए, जब कठोर परदे को भेद कर शासकों की कुटिल आँखें उन पर पड़ रही हैं तब परदा-प्रथा उठ जाने से—जब रूप-राशि इन नर-पशुओं के सामने बिखेर दी जायगी तो हमारी क्या दुर्दशा होगी?" जब से इस देवी का यह करुणापूर्ण पत्र हमें मिला है तब से, जब कभी हम प्रसङ्गवश परदा-प्रथा के विरुद्ध लिखने की इच्छा करते हैं तभी स्त्रियों की यह मूक-वेदना मूर्तिमती करुणा का स्वरूप धारण कर हमारी आँखों से गर्म आँसुओं की दो बूँदें सामने के काग़ज़ पर अवश्य टपका देती है। हम जानते हैं, पाठकों को सहसा विश्वास नहीं होगा, पर जिन बातों का हम उल्लेख करने जा रहे हैं वे सभी बातें एकान्त सत्य हैं, अस्तु।

पीढ़ियों से चले आए अनेक दुर्गुणों के कारण अनेक राज्य के शासक नपुंसक हैं और अप्राकृतिक व्यभिचार में आकण्ठ लिप्त हैं, पर दूसरों के सामने शान तो रखनी ही होगी, इसलिए रानियाँ एक-दो नहीं, दर्जनों उनके नाम पर आँसू बहा रही हैं—पल्ले उठा-उठा कर उन्हें, अपने माता-पिताओं की हृदय-हीनता तथा अपने नारकीय जीवन को कोस रही हैं! बात यहीं तक होती तो ग़नीमत थी, उन्हें जो लज्जापूर्ण जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है वह एक बार ही असह्य है, अमानुषिक है और हैं हृदय को हिला देने वाली, किन्तु सत्य घटनाएँ!! राजा साहब स्वयं शराब पीकर मस्त हो जाते हैं, इष्ट-मित्रों को तथा राज्य के अफ़सरों को भी पिला कर मस्त कर दिया जाता है। जब सभों पर शैतान अपनी सवारी गाँठ लेता है, तब राजा साहब बहादुर अपनी दो-तीन चुनी हुई रानियों को

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बुलवा कर उन्हें पारा-पारी अफ़सरों तथा मित्रों की काम-लिप्सा शान्त करने की आज्ञा देते हैं और आप स्वयं एक ऊँची कुरसी पर बैठ कर इस अमानुषिक दुराचार का दृश्य बड़े आशापूर्ण नेत्रों से देखते और आनन्दित होते हैं !! कुछ ही दिनों की बात है, इस प्रकार के नारकीय जीवन से दुखी होकर एक अभागिनी रानी ने इस विलास-भवन में प्रवेश करते ही तमञ्चे से एक ऐसे अफ़सर को मार डाला था, जो उसे अपने बाहु-पाश में लेने को सब से पहले आगे बढ़ा था। इसके बाद पिस्तौल का मुँह राजा साहब की छाती के सामने करके उस देवी ने कहा था—"मैं सदा आपकी कृपा पर निर्भर थी, पर इस समय आपका जीवन मेरी कृपा पर अवलम्बित है। अगर मैं चाहूँ तो आपकी अमानुषिक हरकतों के लिए आपको मार कर, प्रजा का उपकार तथा पृथ्वी का बोझ बात की बात में हलका कर सकती हूँ, पर आप नहीं जानते कि मैं ऐसा क्यों नहीं कर रही हूँ ! आपके सौभाग्य से मैं हिन्दू-स्त्री हूँ और जिस वातावरण में मैं पली हूँ वह मुझे ऐसा करने से रोकता है, यही कारण है कि मैं आप पर हाथ नहीं छोड़ सकती, पर साथ ही मैंने भी इस नारकीय जीवन को न धारण करने की शपथ खा ली है।" इतना कहते हुए उस रानी ने अपनी छाती में स्वयं आघात कर उसी विलास-भवन में अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी !! व्यभिचार के उपस्थित कीड़े मन्त्र-मुग्ध की भाँति खड़े हुए यह सारा दृश्य देखते रहे। किसी के किए कुछ भी नहीं हो सका ! नशा उतरने पर सबको अपने पतन का ध्यान आया और यह ख़बर फैलाई गई कि रानी की मृत्यु का कारण एकाएक हृदय की गति बन्द हो जाना था !!

एक दूसरे राज्य की एक नारकीय घटना सुनिए। वहाँ की परिस्थिति भी उपरोक्त राज्य से मिलती-जुलती ही है। महाराजा साहब बड़े विनोद-प्रिय हैं और उनका सारा दिन आमोद-प्रमोद तथा शराब-कबाब में ही व्यतीत होता है, शिकार का भी बहुत शौक़ है। विनोद का एक उदाहरण हमें इसी प्रान्त के एक प्रतिष्ठित पादरी साहब ने सुनाया था, वह इस प्रकार है। प्रायः ऐसा होता है कि महाराजा साहब दीवानख़ाने में ख़ूब सज-बज कर बैठते हैं, शराब का दौर चलता है, प्रायः ऐसा होता है कि अपने साथ ही इष्ट-मित्रों को शराब पिला कर बद-मस्त कर दिया जाता है और किसी बहाने से उनकी बहू-बेटियों अथवा माँ-बहिनों को बुलवा लिया जाता है। दोनों की आँखों पर काले कपड़ों की पट्टी बाँध दी जाती है और उनसे परस्पर सम्भोग करने को कहा जाता है। मुँह काला करने के बाद उनकी पट्टी खोल दी जाती है और तब वे देखते हैं कि बहिन भाई के साथ पड़ी है और माता पुत्र के साथ, ससुर पुत्र-वधू की पर्यङ्कशायिनी है और पुत्री पिता की !! इस पर ख़ूब मख़ौल उड़ाया जाता है और उन्हें माँ-बहिन लगाकर गालियाँ दी जाती हैं। इसे साधारण विनोद-प्रियता का एक उदाहरण ही समझना चाहिए।

राजपूताने की एक रियासत की विलास-लीला तो अपनी चरम-सीमा लाँघ चुकी थी। सौभाग्य से वे राजा साहब अब इस क्षणभङ्गुर संसार में नहीं हैं, पृथ्वी उनके बोझ से हल्की हो चुकी है, पर अन्य तरीक़ों द्वारा उनकी स्मृति अन्य रूपों में अब तक क़ायम है। उन नारकीय राजा साहब के जीवन-काल में—जिसे अभी बहुत दिन नहीं हुए—कैसा अमानुषिक व्यभिचार होता था, उसका एक उदाहरण यहाँ दे देना पर्याप्त होगा, जो हमारे एक परम प्रतिष्ठित और आदरणीय मित्र ने हमें बतलाया है :—

राजा साहब नपुंसक थे, पर चाहते थे समस्त सांसारिक सुखों का उपभोग करना। आपने अपनी नपुंसकता के इलाज का जो आविष्कार किया था, वह उन्हीं के उपयुक्त था। आपने एक भवन ऐसा बनवाया था जिसके बीच में एक २० सीटों का आमोद-चक्र (Joy Wheel) लगाया गया था और ऊपरी भाग में एक रत्न-जटित कुर्सी लगाई गई थी। 'आमोद-चक्र' का ब्योरा इस प्रकार था। चारों ओर बीस रेल के सेकेण्ड क्लास जैसे बर्थ (Birth) बने थे। सब पर बिजली की बत्तियाँ फ़िट थीं और इन सभों के बटन (Switch) ऊपर रत्न-जटित कुरसी के पास लगे थे। जब महाराजा साहब की इच्छा प्रज्ज्वलित होती, वे तुरन्त मुसाहिबों को इसकी सूचना देते। तुरन्त २० स्त्री-पुरुष इस विलास-भवन में बुलाए जाते और घण्टी बजते ही स्त्री-पुरुषों का एक-एक जोड़ा आमोद-चक्र में एक-एक ख़ाने में लेट जाता और महाराजा साहब ऊपर की रत्न-जटित कुरसी पर विराजमान होकर बत्तियाँ गुल कर देते। दूसरी घण्टी बजते ही सब सम्भोग

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शुरू कर देते। बीच-बीच में बत्तियाँ बाल और बुझा कर महाराजा साहब आनन्द लाभ करते। फिर जोश में आकर वे नीचे उतर आते और बड़े ग़ौर से वे स्त्री-पुरुष रूपी इन कल-पुर्ज़ों का निरीक्षण करते। जब उनकी काम-पिपासा पूर्ण-रूपेण जाग्रत होती, तब किसी भी पुरुष को हटा कर स्वयं × × ×

यह तो केवल कुछ देशी नरेशों में प्रचलित व्यभिचार के कुछ सीन-मात्र हैं, इसके अतिरिक्त एक-एक राजा की सैकड़ों रानियों का होना तो जगत्-विख्यात बात है। शायद ही कोई अभागा राजा हो जो अपनी एक भार्या से सन्तुष्ट रहता हो। ऐसी परिस्थिति में राज-परिवारों में व्यभिचार का आधिक्य होना कितना स्वाभाविक है, इस बात का सहज ही में अनुमान लगाया जा सकता है। एक व्यक्ति सैकड़ों विवाहिता अथवा रखेल स्त्रियों को सन्तुष्ट कर सकेगा, यह बात ज़रा विचार करने की है। प्रायः देखा गया है कि सैकड़ों रानियों में से २-४ ही ऐसी सौभाग्यशालिनी महिलाएँ होंगी, जो अपने पति-प्रेम की अधिकारिणी हों। उनमें भी स्थायी प्रेम नहीं होता, कुछ दिनों तक वे एक स्त्री के प्रेम-पाश में बँधते हैं, फिर दूसरी के और फिर तीसरी अपने भाग्य पर गर्व करती है। शेष स्त्रियाँ प्रकृति से किस प्रकार युद्ध करने में समर्थ हो सकती होंगी—विशेष कर, जबकि वे इस प्रकार के दूषित एवं पापपूर्ण वायुमण्डल में रहती हों; जब उनमें शिक्षा का अभाव हो और जब उनके चारों ओर प्रलोभनों के ढेर लगे हों। उनका ऐसी परिस्थिति में सदाचार के पथ से विचलित न होना आश्चर्य एवं कौतूहल का विषय हो सकता है, उसमें लिप्त होना नहीं! इसका एक दूसरा पहलू भी है। मान लीजिए एक राजा की १०० रानियाँ अथवा रखेलियाँ हैं। राजा का देहान्त हो जाता है, फिर इन १०० स्त्रियों का क्या भविष्य होगा, कल्पना के सहारे कोई भी इस बात का अनुमान लगा सकता है!

महाराजा इन्दौर की व्यभिचार-लीला अभी पुरानी नहीं हुई है। मुमताज़ बेगम सम्बन्धी बावला-हत्याकाण्ड को भारतवासी भूलने भी न पाए थे कि महाराजा साहब बहादुर की प्रणय-लीला का दूसरा अध्याय शुरू हो गया था। एक साधारण वेश्या के कारण ही महाराजा इन्दौर को गद्दी से उतारा गया था, इस घटना को पाठक भूले न होंगे। इसी झेंप को मिटाने के लिए महाराजा तुकोजी राव बहादुर सन् १९२६ में इङ्गलैण्ड चले गए, वहाँ से फ़्रान्स गए और फिर स्वीज़रलैण्ड। पर कहीं भी आपकी आत्मा को शान्ति नहीं मिली—मन-चाही वस्तु प्राप्त नहीं हो सकी। अन्त में कैलिफ़ोर्निया (अमेरिका) में सैनफ़्रैन्सिस्को के पास मिस मिलर से उनकी कैसे भेंट हुई और किस छल-बल से उसे प्रेम-पाश में आबद्ध किया गया, यह सब हाल ही में घटित होने वाली मनोरञ्जक घटनाएँ हैं, इसलिए विशेष लिखना व्यर्थ है। खुले व्यभिचार पर परदा डालने के लिए उनके कुछ 'जी-हुज़ूर' कह सकते हैं कि मिस मिलर से उनका विवाह धार्मिक रीति से हुआ है, पर हम इस विचार के पोषक नहीं हैं। यह बिलकुल सत्य है कि शारदापीठ के जगद्गुरु शङ्कराचार्य ने स्वयं इन दो प्रेमियों को विवाह-सूत्र में बाँध कर, इस खुले व्यभिचार पर धर्म की मुहर लगा दी है, पर धर्म के इस उपहास को हमने सदा घृणा तथा रोष की दृष्टि से देखा है। पत्रकार की हैसियत से अध्ययन ही हमारा व्यवसाय है और अपने इस व्यवसाय से जो अनुभव हम प्राप्त कर सके हैं, उसके बल पर हम कह सकते हैं कि धर्म-गुरुओं की व्यवस्था जो चाहे और जब चाहे धन-रूपी कलियुगी भगवान द्वारा ख़रीद सकता है। स्वर्गीय लोकमान्य तिलक ने काशी के धर्म-गुरुओं से समुद्र पार करने की व्यवस्था १०,००० कलदार रुपयों से ख़रीदी थी, यह हमें ख़ूब स्मरण है। आज इस मद में रुपए ख़र्चने वालों की कमी है, नहीं तो बाल-विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध भी व्यवस्था ख़रीदी जा सकती थी, अस्तु।

महाराजा तुकोजीराव की दो विवाहिता सती और अनुपम सुन्दरी रानियाँ उनके नाम पर रक्त के आँसू बहा रही हैं। यह समाचार भी हमसे छिपा नहीं है कि मिस मिलर की प्रणय-लीला का समाचार सुनते ही इन्दौर की छोटी महारानी साहिबा श्रीमती इन्दिराबाई ने अन्न-जल त्याग दिया था, पर फल कुछ भी नहीं हुआ। आज तक ये बेचारी रानियाँ आन्तरिक सन्ताप की असह्य आग में धायँ-धायँ करके जल रही हैं और महाराजा बहादुर फ़्रान्स-अवस्थित निकुञ्जों में केलि-लीला कर रहे हैं! चाँदी की जूतियों से बहुमत को अपने पक्ष में करने का भूतपूर्व महाराजा इन्दौर और उनके साथियों ने जो असफल प्रयत्न किया है और मिस मिलर से विवाह

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर पूर्व तथा पश्चिम को एक सूत्र में बाँधने की जो दुहाई दी गई है वह आज के शिक्षित समाज को धोखा देने में कदापि समर्थ नहीं हो सकती !

इन्दौर-नरेश की दोनों रूप-यौवन-सम्पन्ना महारानियों की—महारानी चन्द्रावतीबाई तथा महारानी इन्दिराबाई की—आज जो दयनीय दशा है, उन्हें अपने जीवन से जैसी घृणा और असन्तोष हो गया है, उस पर विचार करते एक बार ही हृदय काँप उठता है। ये दोनों महारानियाँ उच्च कोटि की शिक्षिता, सुन्दरी तथा आदर्श पतिभक्ता रमणियाँ हैं, जिन्हें इन्हीं सद्गुणों के कारण आज रक्त के आँसू बहाने पड़ रहे हैं। बड़ी महारानी साहिबा के वे उद्गार, जो उन्होंने मिस मिलर की शादी के समय अपनी सौत से प्रकट किए थे, उनके हृदय की विशालता, उनकी सहनशीलता तथा उनकी मूक-वेदना के परिचायक हैं। जब छोटी महारानी साहिबा ने खान-पान परित्याग कर अपनी असाधारण मानसिक व्यथा का परिचय दिया था उस समय बड़ी महारानी साहिबा ने आँखों में आँसू भर जिन शब्दों में उन्हें सान्त्वना दी थी, उन्हें धैर्य बँधाया था, वे रमणी-हृदय की महानता का परिचय देते हैं। आपने छोटी महारानी साहिबा से कहा था—"इस घटना से इतनी व्यथित क्यों होती हो बहिन ! हमारे पति ने मेरे जीवित रहते हुए जब तुम्हारे साथ विवाह रचाया था तब क्या मैंने पति अथवा तुम्हारा सहयोग नहीं किया था ? हम स्त्रियाँ हैं बहिन, हिन्दू-समाज ने—हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों ने ही जब हमारे साथ इतना घोर अन्याय किया है, तब पति को क्यों दोष देती हो ? वे भी तो स्त्रियाँ हैं, जिनके पति एक-दो नहीं, सैकड़ों विवाह कर डालते हैं और रात-दिन व्यभिचार में आकण्ठ विलीन रहते हैं, उन सैकड़ों अभागिनी बहिनों की व्यथा का ज़रा अनुमान तो करो, इसी से अपना सारा दुःख भूल जाओगी !!"

एक ओर इन्दौर-राज्य के रङ्गमञ्च पर यह दुःखान्त नाटक हो रहा था और दूसरी ओर बड़वाहा के विवाह-रूपी मण्डप में एक नए बलिदान की योजना हो रही थी ! इस धर्मानुमोदित बलिदान में शारदा-मठ के जगद्गुरु शङ्कराचार्य जी का कम हाथ नहीं था। उन्हीं की व्यवस्था ने इस पापाचार पर धर्म की मुहर लगा कर हिन्दू-धर्म का उपहास कराया था। यदि कोई धर्म ऐसी परिस्थिति में—एक नहीं, दो-दो स्त्रियों के जीवित रहते—एक तीसरा विवाह करने का आदेश देता है तो वह धर्म नहीं, अधर्म है। समय आ गया है, जब ऐसे धर्म के मस्तक पर शिक्षित भारतवासियों को पाद-प्रहार करना चाहिए !!

एक नया बलिदान होते-होते अभी बचा है। अलवर के महाराजा साहब बहादुर, जिनकी अवस्था ५० वर्ष के क़रीब है और जिन्हें अलवर की ख़ुशामदी प्रजा ने "प्रभु जी" की उपाधि से विभूषित कर रक्खा है, एक षोडशी बालिका से विवाह कर उसका सर्वनाश करने जा रहे थे। प्रसन्नता की बात है, बालिका तथा उसके पिता की सामयिक दूरदर्शिता से यह काण्ड अनुष्ठित न हो सका। यह विवाह बीकानेर रियासत के श्री० दाऊभाई राख जी नाम के एक राजपूत सज्जन की कन्या से लगभग ठीक हो चुका था, किन्तु "सूक डूबे रहने के कारण और देवों के सोए रहने के कारण" विवाह शीघ्र सम्पन्न नहीं हो सका। इसी बीच में इस कुत्सित काण्ड का भण्डा फूट गया और पत्र-पत्रिकाओं में तथा सभा-सोसाइटियों में बड़ा आन्दोलन उठाया गया। कई प्रतिष्ठित व्यक्तियों तथा संस्थाओं के प्रवर्तकों ने भावी श्वसुर साहब से मिल कर उन्हें ख़ूब खोटी-खरी सुनाईं, उन्हें अलवर-नरेश की घृणित विलासिता के क़िस्से सुनाए गए और लड़की के भविष्य की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया गया। एक बड़े मार्के की बात जो हुई वह यह थी कि स्वयं बालिका ने इस विवाह-सम्बन्ध का खुला विरोध कर अपने औचित्य का पालन किया। भावी श्वसुर साहब पर इन बातों का काफ़ी प्रभाव पड़ा। 'प्रभु जी' की एक महारानी ने अपने नारकीय जीवन से खीज कर—जो उन्हें व्यतीत करना पड़ता था—कुछ ही वर्ष हुए आत्म-हत्या कर डाली थी। इसकी चर्चा भी भावी श्वसुर से की गई, यह भी कहा गया कि 'प्रभु जी' की रानियाँ एक नई सौत का स्वागत करने के लिए तैयार नहीं हैं ! इसलिए नहीं, कि उनके स्वार्थ पर प्रहार होगा, बल्कि इसलिए कि वे अपनी जाति की एक और बहिन को उसके सर्वनाश से बचाना चाहती हैं। इन सब बातों का 'प्रभु जी' के भावी श्वसुर पर सौभाग्य से वही प्रभाव पड़ा, जिसकी आशा थी और अन्त में उन्होंने अलवर-नरेश से अपनी कन्या का विवाह करने से साफ़

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इनकार कर दिया ! पर 'प्रभु जी' अभी निराश नहीं हुए हैं। दूसरी चिड़िया फँसाने का प्रयत्न हो रहा है !!

अलवर-नरेश की विलास-प्रियता के सम्बन्ध में भी कुछ पंक्तियाँ यहाँ लिख देना अनुचित न होगा। राज्य की हालत फ़िज़ूलख़र्चियों के कारण बड़ी अबतर हो रही है। राज्य के क़र्ज़दार होने पर भी तीन-तीन मास तक पलटनों तथा अन्य कर्मचारियों का वेतन नहीं बट सकता। यदि हाल ही में प्रकाशित होने वाली समाचार-पत्रों की ख़बरें सत्य हैं, तो शीघ्र ही अलवर-नरेश को महाराजा नाभा की भाँति अपने सारे राज्य से हाथ धोना पड़ेगा। ताज़ा समाचार यह है कि राज्य में भारी कुप्रबन्ध होने के कारण राज्य का सञ्चालन-भार ब्रिटिश-सरकार द्वारा नियुक्त एक अङ्गरेज़ एजेण्ट करेगा और महाराजा बहादुर को तीन वर्षों के लिए विलायत की यात्रा करनी होगी। विलायत जैसी विलास-नगरी में 'प्रभु जी' का नैतिक सुधार होना तो दूर रहा, रहा-सहा पतन अवश्य-भावी है। हमें खेद तो इस बात का है कि अपना इतना परोक्ष पतन देखते हुए भी 'प्रभु जी' की आँखें अभी तक नहीं खुली हैं। अपने २५ वर्षों के इस कुशासन पर परदा डालने के लिए महाराजा बहादुर ने अपने राज्य में रजत-जयन्ती बड़ी धूम-धाम से मनाने का निश्चय कर लिया है और इसमें कम से कम २५ लाख रुपयों के व्यय करने का भी निश्चय किया गया है। इस उत्सव में आमन्त्रित अफ़सरों तथा इष्ट-मित्रों के लिए तम्बू-क़ीमे लगाने के लिए बेचारे दीन-हीन किसानों की पनपी हुई खेती को, उनकी उपजी हुई फ़सल को, उखाड़ कर फेंक दिया गया है। अनेक मकान तोड़-फोड़ कर जगह साफ़ कर दी गई है! एक देशी नरेश की हृदय-हीनता का इससे अधिक क्या प्रमाण दिया जा सकता है? अलवर के 'प्रभु जी' के पतन की सीमा और भी विस्तृत है, एक ओर प्रजा भूखों मर रही है, दूसरी ओर नरेन्द्र-मण्डल के स्वार्थों की पुष्टि का प्रलोभन देने वाली बटलर-कमिटी के समक्ष अपनी माँगें उपस्थित करने के लिए लाखों रुपए नष्ट किए जा रहे हैं। अभी उस रोज़ हमने समाचार-पत्रों में पढ़ा है, पटियाला के महाराजा बहादुर ने अलवर-नरेश को और भी धन भेजने के लिए लन्दन से तार दिया है। उन्होंने लिखा है—"शीघ्र ही रुपए भेजिए, सर लेस्ली स्कॉट जैसे प्रतिष्ठित वकील किए गए हैं। अभी उनकी फ़ीस में ही ढाई लाख रुपयों की कमी है।" अनेक पाठकों को इस आन्दोलन के रहस्य का पता न होगा, इसलिए इस सम्बन्ध में कुछ पंक्तियाँ लिख देना आवश्यक है। देश के भावी शासन-विधान में देशी नरेशों की विलासिता में अनुचित हस्तक्षेप न किए जायँ—केवल इस बात का आन्दोलन हो रहा है और भारत के अनेक बड़े-बड़े राजे-महाराजे पानी के समान इस आन्दोलन में धन स्वाहा कर रहे हैं। जामनगर, काश्मीर तथा पटियाला आदि बड़े-बड़े सभी महाराजे लन्दन में इसीलिए पड़े हैं। लाखों रुपए व्यय कर इस स्वार्थपूर्ण आन्दोलन के लिए बहुमत अपने पक्ष में करने का प्रयत्न हो रहा है। पार्लिमेण्ट के मेम्बरों, नामी लेखकों तथा वकीलों द्वारा समाचार-पत्रों में अतुल धन-राशि देकर अपने पक्ष में लेख आदि लिखाए जा रहे हैं और न जाने क्या क्या हो रहा है; केवल इसलिए कि दैवयोग से कहीं भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य (Dominion Status) अथवा पूर्ण स्वतन्त्रता (Complete Independence) प्रदान कर दी जाय तब भी देशी नरेश ब्रिटिश-शासन की छत्र-छाया में ही रहें—स्वतन्त्र भारत के अधीन नहीं! यह है भारतीय नरेशों की मनोवृत्ति का नग्न-स्वरूप !!

काश्मीर के वर्तमान महाराजा बहादुर की विलास-लीला और उनकी प्रजा का करुण-क्रन्दन और उसकी अधोगति तथा करुणापूर्ण दरिद्रता यथेष्ट रूप से विख्यात है, इसलिए इस परिमित स्थान पर विशेष टीका-टिप्पणी करना सर्वथा व्यर्थ है।

सारांश यह कि देशी नरेशों की इस विलासिता का भयङ्कर प्रभाव स्त्री-समाज पर न पड़ता हो, सो बात नहीं है! यह एक अप्रिय-सत्य है कि अधिकांश रानियाँ, महारानियाँ ठकुराइनें और बबुआइनें आज अपने पतियों की स्वेच्छाचारिता तथा विलास-प्रियता की शिकार हो रही हैं और उनका यह आचरण वर्तमान परिस्थिति को दृष्टि में रखते हुए, जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं, बहुत हद तक क्षम्य है। इन आचार-भ्रष्ट देवियों से हमारी पूर्ण सहानुभूति है। हम वर्तमान प्रगति को दृष्टि में रखते हुए उनके मनोभावों का, उनके परिपीड़न का तथा उनके मस्तिष्क से उत्पन्न होने वाली स्वाभाविक क्रान्ति की एक हद तक कल्पना कर सकते हैं। जब हम सुनते हैं कि अमुक रानी का

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनुचित सम्बन्ध उसके अधीनस्थ अमुक कर्मचारी से है, जब हम सुनते हैं कि अमुक ठकुराइन का सम्बन्ध अमुक सेवक से है तो घृणा के स्थान पर हम अपने हृदय में दया का अनुभव करते हैं—उनकी वर्तमान दशा देख कर हमारे नेत्रों से रोष के स्फुलिङ्ग प्रकट नहीं होते, प्रकट होती हैं आँसुओं की गर्म धारें !!

उस दिन, जब हमने बम्बई में एक महारानी साहिबा के नैतिक पतन का समाचार पढ़ा था, सहानुभूति के कोमल भावों से हमारा हृदय एक बार ही भर आया था। उस अभागिनी महारानी की कथा समाचार-पत्रों में इस प्रकार प्रकाशित हुई थी:—

"बम्बई सूबे के एक देशी राज्य की महारानी गर्मियों में यू०पी० के एक पहाड़ी मुक़ाम पर रहती हैं और उनके पति साल का अधिक भाग विलायत में यूरोपियन स्त्रियों के साथ गुज़ारते हैं! यह महारानी इस पहाड़ी मुक़ाम पर शराब, अङ्गरेज़ी नाच और दूसरे दिल बहलाव के लिए मशहूर हैं। कुछ समय हुआ, यूरोप के दो पैदल संसार-यात्री इस पहाड़ी मुक़ाम पर आए और प्रसिद्ध लोगों के दस्तख़त लेने शुरू किए। ये महारानी की कोठी पर भी गए। महारानी ने जब देखा कि ये यूरोपियन सुन्दर जवान हैं तो उनसे कहा कि इस समय फ़ुरसत नहीं है, शाम को आओ! जिस समय यह दोनों शाम के वक़्त हस्ताक्षर कराने आए तो महारानी साहिबा ने उन्हें ख़ूब शराब पिलाया और १२ बजे रात तक उन लोगों में खाना-पीना होता रहा। अन्त में महारानी साहिबा को एक युवक पसन्द आ गया। महारानी साहिबा उसे आराम के कमरे में ले गईं और वहाँ जो कुछ हुआ उसका उल्लेख करना लज्जा-जनक है !!" उसी गोरे ने—जिससे महारानी साहिबा ने मुँह काला किया था—यह सारी घटना देहली के सहयोगी 'रियासत'-सम्पादक के एक मित्र से कह कर भारतीय स्त्रियों के व्यभिचार-प्रकृति की खिल्ली उड़ाई थी !!

यह समस्त भारत के मातृ-मण्डल का मस्तक नत करने वाली ऐसी लज्जापूर्ण घटना है, जिसका प्रभाव व्यभिचार में आकण्ठ लिप्त रहने वाले नरेन्द्र-मण्डल पर भले ही न पड़े, किन्तु समस्त भारत का यह एक निश्चित कलङ्क है। "महाजनो येन गतः स पन्था" अर्थात् बड़े लोग जिस राह से चलें, छोटों को उसी का अनुकरण करना चाहिए। जब शासक-मण्डली की दशा यह है, तो साधारण प्रजा की क्या गति होगी, यह कल्पना का विषय है, लिखने का नहीं !!"

विधवा की व्यथा

[रचयिता—श्री० 'कुमार' बी० ए०]

(१)

मैं सोई, मैंने देखा—यह,
जग उपवन है हरा, नवीन।
शैशव, यौवन और जरापन—
के प्रसून विकसित थे तीन॥

(२)

शैशव-सुमन अधखिला था,
यौवन-प्रसून पर थी लाली।
जर्जरपन का फूल छोड़ने—
वाला था तरु की डाली॥

(३)

उपवन हरा-भरा था—तरु थे—
पल्लव थे—थे सुरभित फूल।
हाय! न जाने कहाँ छिपा था,
मेरे विधवापन का शूल !!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वेच्छाचारिता कहाँ ?

[ले० श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा कौशिक]

सरस्वती देवी चौहान की अवस्था इस समय १९ वर्ष के लगभग है। वह आजकल थर्ड-इयर में पढ़ती हैं। उनके पिता ठाकुर रिपुदमनसिंह चौहान नगर के एक अग्रगण्य वकीलों में हैं। ठाकुर साहब के इस कन्या के अतिरिक्त अन्य कोई सन्तान नहीं है। अतएव उन्होंने सरस्वती का लालन-पालन बड़े लाड़-प्यार से किया है। सरस्वती को उच्च शिक्षा देने का सङ्कल्प उन्होंने इसी कारण से किया है कि वह उनकी एकमात्र सन्तान है। उनके कुछ पुराने विचार के नाते-रिश्तेदारों ने उनके इस सङ्कल्प पर बहुत नाक-भौं चढ़ाई थी, क्योंकि वे लड़कियों को अङ्गरेज़ी की उच्च शिक्षा देना पाप समझते हैं; परन्तु ठाकुर साहब ने उनकी कुछ भी परवा न करके सरस्वती को शिक्षा देने का कार्य जारी रक्खा। सरस्वती देवी का नख-शिख सौन्दर्यपूर्ण है।

सरस्वती देवी के साथ ही निर्मला देवी नाम की एक अन्य लड़की पढ़ती है। इसकी वयस भी १९-२० वर्ष के लगभग है। सरस्वती तथा निर्मला में बहुत स्नेह है। शाम के सात बज चुके हैं। सरस्वती अपने निजी कमरे में बैठी हुई निर्मला से बातें कर रही है। बातें वही कॉलेज सम्बन्धी हो रही हैं। थोड़ी देर तक तो दोनों प्रोफ़ेसरों तथा लेकचरारों के सम्बन्ध में टीका-टिप्पणी करती रहीं। हठात् बात का रुख़ बदल कर सरस्वती ने निर्मला से पूछा—सोमेश्वरप्रसाद से तुम्हारी बड़ी गहरी मित्रता है।

निर्मला ने किञ्चित मुस्करा कर पूछा—गहरी मित्रता से तुम्हारा क्या तात्पर्य है ?

"मित्रता से मेरा मतलब शुद्ध तथा पवित्र मित्रता से है।"

"हाँ, मैं मानती हूँ—मेरी उनकी मित्रता है।"

"आदमी तो अच्छा मालूम होता है। देखने-सुनने में भी अच्छा है, पढ़ने-लिखने में भी तेज़ है।"

निर्मला ने गम्भीर होकर कहा—बड़ा अच्छा आदमी है। मैं उसे बहुत पसन्द करती हूँ।

"मुझे वह बड़े ग़ौर से देखा करता है—यद्यपि वह मुझसे बातचीत करना चाहता है, पर उसका साहस नहीं पड़ता।"

"तो क्या हुआ, इसमें क्या हर्ज है ?"

"हर्ज की बात मैं नहीं कहती, मैं केवल तुम्हें बताती हूँ कि वह मुझ से मित्रता पैदा करना चाहता है।"

"यदि ऐसी बात है, तो उन्हें मुझसे कहना चाहिए था—मेरी तुम्हारी घनिष्टता है—यह बात वह भली भाँति जानते हैं।"

"कदाचित् उन्होंने इसलिए न कहा हो कि तुम्हें कुछ ईर्ष्या हो।"

"क्यों ? मुझे क्यों ईर्ष्या होने लगी ? क्या तुम समझती हो कि मेरा उनका प्रेम-सम्बन्ध है ?"

"यह सम्भव है कि तुम उनसे प्रेम न करती हो, पर तुम क्या यह निश्चयपूर्वक कह सकती हो कि वह तुमसे प्रेम नहीं करते ?"

निर्मला चुप हो गई। सरस्वती ने मुस्करा कर कहा—जान पड़ता है, तीर ठीक निशाने पर लगा है।

निर्मला मुस्करा कर कुछ झेंपती हुई बोली—तुम बड़ी चतुर हो सरस्वती। किस मज़े से धीरे-धीरे सब बातें जानना चाहती हो।

"मैं समझती हूँ कि तुम्हारे मन की बातें जानने का मुझे अधिकार है—अन्यथा हमारी तुम्हारी मित्रता बिलकुल व्यर्थ है।"

"ठीक कहती हो। अतएव मैं तुम्हें बताती हूँ कि सोमेश्वरप्रसाद के व्यवहार से यह पता चलता है कि वह मुझ से विवाह करना चाहता है।"

सरस्वती ने सिर हिलाते हुए कहा—यह बात है ? मैं तो पहले ही समझ गई थी। पुरुष अपना प्रेम-भाव पुरुष से भले ही छिपा ले, पर स्त्री से कभी नहीं छिपा सकता। पुरुष की प्रेम-दृष्टि को स्त्री तुरन्त ताड़ जाती है।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"ख़ैर, वह मुझ से प्रेम करता हो, चाहे न करता हो, परन्तु मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि मैं उससे प्रेम नहीं करती।"

सरस्वती ने नेत्र विस्फारित करके कहा—अच्छा! क्या ऐसी बात भी है?

"हाँ, ऐसी ही बात है। क्यों, तुम्हें आश्चर्य क्यों हुआ? क्या यह आवश्यक है कि मैं उससे प्रेम करूँ?"

"नहीं, आवश्यक तो नहीं है; परन्तु तुम्हारी उनकी मित्रता देख कर यह भावना उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि तुम्हारा उनका प्रेम है।"

"मेरी उसकी मित्रता है। वह बहुत ही भला और नेक आदमी है, तीव्र बुद्धि और विचारशील है। इसलिए मैं उससे मित्रता रखने में कोई हानि नहीं समझती। परन्तु मैं उससे विवाह करने के लिए प्रस्तुत होऊँगी—इसमें अभी मुझे सन्देह है। दूसरे, मैं अपनी इच्छानुसार विवाह करने के लिए स्वतन्त्र भी नहीं हूँ।"

"क्यों?"

"माता-पिता के रहते हुए मैं अपना पति स्वयम् कैसे चुन सकती हूँ? हम लोग ईसाई तो हैं नहीं।"

सरस्वती ने घृणा से मुँह बना कर कहा—इस से क्या होता है। हम लोग अशिक्षित तो हैं नहीं, जो अपना पति चुनने में ग़लती करें। हम लोग अपना भला-बुरा भली-भाँति समझती हैं। मैं अपने लिए तो शायद कभी अच्छा न समझूँगी कि मैं अपने विवाह की समस्त ज़िम्मेदारी अपने पिता पर छोड़ दूँ। कम से कम यह तो मैं स्वयम् निर्णय करूँगी कि मैं किस से विवाह करूँ।

निर्मला बोली—हाँ, तुम ऐसा कर सकती हो—तुम अपने पिता की एकलौती और दुलारी हो। तुम्हें सुखी करने के लिए वह, बहुत सम्भव है, तुम्हारी बात मान लें; परन्तु मेरे यहाँ ऐसा होना कठिन है।

"यह तो तुम्हारे अपने वश की बात है। यदि तुम चाहो तो तुम भी ऐसा कर सकती हो। यदि हमारे पिता हमें इतनी उच्च शिक्षा देने के पश्चात् हम लोगों से यह आशा करें कि हम—भेड़-बकरी की तरह—जिसे सौंप देंगे, उनके साथ हो लेंगी, तो उनकी यह बहुत बड़ी ग़लती है।"

"परन्तु हमारे पिता, जो हमें सुशिक्षित बनाने की प्राणपण से चेष्टा कर रहे हैं, इतने अज्ञ नहीं हैं जो हमें किसी अयोग्य व्यक्ति के साथ कर दें।"

"अयोग्य और योग्य का प्रश्न नहीं है। बड़े से बड़ा योग्य व्यक्ति भी ऐसा हो सकता है जिससे हम विवाह करना पसन्द न करें। ऐसे बहुत से पुरुष हैं जिन्हें हम बहुत योग्य समझती हैं, उनका आदर करती हैं। हम उन्हें अपना मित्र, शुभ-चिन्तक, भाई बनाने के लिए सहर्ष तैयार हैं; परन्तु यदि कहा जाय कि हम उनमें से किसी से विवाह करके उसे अपना पति बनावें तो कदाचित् इसके लिए हम कभी भी तैयार न होंगी। प्रोफ़ेसर × × × कितने योग्य आदमी हैं। उनकी विद्वत्ता तथा पाण्डित्य के कारण, कम से कम मैं, उन्हें बहुत ही आदर की दृष्टि से देखती हूँ, परन्तु यदि मुझ से पूछा जाय कि मैं उनसे विवाह कर सकती हूँ या नहीं, तो मैं साफ़ इन्कार कर दूँगी। मनुष्य की हैसियत से वह एक रत्न हैं, पर पति की हैसियत से, हुँः! वह एक अच्छे पति कभी नहीं हो सकते—कम से कम मेरा ऐसा ही विचार है। अतएव ऐसी दशा में हमें अपना पति चुनने का कार्य स्वयम् ही करना चाहिए। जब तक हमें यह विश्वास न हो जाय कि जिससे हमारा विवाह हो रहा है उससे हम प्रेम करती हैं तब तक हमें विवाह के लिए कभी भी तैयार न होना चाहिए।"

निर्मला बोली—हिन्दुओं में अधिकतर स्त्रियाँ विवाह के पहले अपने पति से प्रेम नहीं करतीं, वरन् विवाह के पश्चात् उनसे प्रेम करना सीख जाती हैं।

"अच्छा, तो क्या प्रेम करना सीखा भी जा सकता है?"

"हिन्दुओं में तो वह अभी तक सीखा ही जाता है! विवाह के पूर्व पति-पत्नी एक दूसरे की सूरत भी नहीं देखने पाते। विवाह होने के पश्चात् जब वे परस्पर मिलते हैं तब क्रमशः वे एक दूसरे से प्रेम करना सीख जाते हैं।"

सरस्वती अट्टहास्य करके बोली—यह नई बात सुनी।

"नई नहीं, यह बहुत पुरानी बात है। यदि तुम्हें इतिहास का ज्ञान हो तो तुम्हें मालूम होगा कि जब से यहाँ स्वयम्बर की प्रथा बन्द हुई है तब से ऐसा ही होता आया है और अब तक हो रहा है।"

"परन्तु यह ग़लत है—ऐसा नहीं होना चाहिए।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह तभी से हुआ जब से कि स्त्रियाँ अशिक्षित रक्खी जाने लगीं। जिस काल में स्त्रियाँ शिक्षित होती थीं उस काल में स्वयम्बर होते थे। यूरोप की स्त्रियाँ शिक्षित हैं, इसलिए वह अपना पति स्वयम् चुनती हैं। जहाँ स्त्रियाँ शिक्षित होंगी, वहाँ ऐसा ही होगा। और सच पूछो तो विवाह की सफलता इसी पर निर्भर है कि वर तथा वधू विवाह के पूर्व एक दूसरे से भली-भाँति परिचित हो जायँ।"

"यह बात मैं नहीं मानती। यूरोप आदि में कोर्टशिप होने के पश्चात् विवाह होने पर भी कितने तलाक़ होते हैं—हिन्दुओं में तलाक़ का नाम भी नहीं है।"

"इसी कारण हिन्दू-स्त्रियाँ अयोग्य पति मिलने से जन्म भर दुख झेलती रहती हैं।"

"न कहीं! अधिकतर तो यही देखने में आता है कि हिन्दू-स्त्रियाँ घर की रानी बन कर रहती हैं। अच्छा, अब बहुत समय होगया, अब घर जाऊँगी।" यह कह कर निर्मला विदा हुई।

२

सरस्वती देवी सोमेश्वरप्रसाद से परिचय प्राप्त करने के लिए बहुत उत्सुक हो उठीं। वह पहले ही से सोमेश्वरप्रसाद के सौन्दर्य तथा उसके गुणों के कारण उस पर मुग्ध-सी थीं—यद्यपि निर्मला के द्वारा वह उससे परिचित हो सकती थीं; परन्तु इस ढङ्ग को वह उचित नहीं समझती थीं। अतएव एक दिन उन्होंने कॉलेज से निकलते समय, जब कि सोमेश्वर उनके पास से होकर निकला, अपने हाथ की पुस्तकें भूमि पर गिरा दीं। पाश्चात्य शिष्टता के अनुसार सोमेश्वर ने झट उनकी पुस्तकें भूमि पर से उठा कर उनके हाथों में दे दीं। सरस्वती देवी ने "धन्यवाद!" कह कर पुस्तकें ले लीं। उसी दिन से दोनों का परस्पर परिचय हो गया। क्रमशः दोनों में मित्रता हो गई। अब बहुधा सोमेश्वर कॉलेज से छुट्टी होने के पश्चात् सरस्वती देवी को उनके घर तक पहुँचाने जाता है। निर्मला ने इस बात को बड़े ध्यान से देखा और समझा। इससे उसे अपने लिए ज़रा भी क्लेश न हुआ; परन्तु उसे दोनों की दशा पर कुछ हँसी अवश्य आई।

एक दिन निर्मला ने सरस्वती देवी से बातों ही बातों में कहा—आजकल सोमेश्वर तुम्हारे ईर्द-गिर्द बहुत रहता है—क्या बात है?

"तुम्हें ईर्ष्या होती है क्या?" सरस्वती देवी ने किञ्चित् रुखाई से पूछा।

"ज़रा भी नहीं, वरन् मेरा पिण्ड छूटा।"

"ख़ैर, तब तो तुम्हें लाभ ही पहुँचा।"

"निस्सन्देह! परन्तु तुम्हें उसकी मित्रता से कुछ लाभ पहुँचेगा या नहीं, इसमें मुझे सन्देह है।"

सरस्वती देवी भृकुटी चढ़ा कर बोलीं—इससे तुम्हारा क्या तात्पर्य है? क्या तुम समझती हो कि मैंने अपने किसी व्यक्तिगत लाभ के लिए × × ×।

निर्मला बात पूरी होने के पूर्व ही बोल उठी—नहीं, नहीं, मेरा यह तात्पर्य नहीं है। मेरा मतलब यह है कि वह ऐसा आदमी है जो कभी किसी से वफ़ा नहीं कर सकता।

"जानना चाहती हो?"

"हाँ-हाँ, यदि तुम बताने में कोई हर्ज न समझो।"

"मेरा कोई हर्ज नहीं है; परन्तु यह भय अवश्य है कि कहीं तुम मेरी बात के कुछ अर्थ न लगाओ।"

सरस्वती देवी हँस कर बोलीं—नहीं, जो अर्थ तुम समझाओगी मैं उसे ही मान लूँगी।

"यह तो तुम जानती हो कि सोमेश्वर मुझसे प्रेम करता था?"

"तुम्हीं कहती थीं।"

"ख़ैर, यह तो तुम देखती ही थीं कि वह बहुधा उसी प्रकार मुझ से मिलता-जुलता रहता था जिस प्रकार तुम से आज कल मिलता-जुलता है।"

"हाँ, यह बात तो देखती थी।"

"उसने अपने व्यहार से मुझ पर यह असर डालने की पूरी चेष्टा की थी कि वह मुझसे सच्चे जी से प्रेम करता है। ईश्वर को धन्यवाद है कि मेरे हृदय में उसके प्रति प्रेम की भावना कभी भी उत्पन्न नहीं हुई। यदि हुई होती तो आज क्या परिणाम होता?"

"क्या परिणाम होता?"

"तुम स्वयम् सोच सकती हो। जबकि आज वह मुझसे अलग-अलग रहने की चेष्टा करता है और तुम्हारे साथ रहता है। यदि मैं उससे प्रेम करती होती तो आज

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुझे कितना घोर दुख होता। उसके इस व्यवहार से मेरा हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया होता।"

सरस्वती देवी मौन रहीं, उनके हृदय ने निर्मला की बात का समर्थन किया।

"यदि तुम भी मेरी तरह उससे प्रेम नहीं करतीं तब तो ठीक है—अन्यथा मुझे भय है कि कहीं तुम्हें निराशा न हो। जो व्यक्ति कल तक मुझ से प्रेम करने का ढोंग रचे हुए था, वह आज मेरी ओर देखना भी नहीं चाहता। ऐसे आदमी का क्या विश्वास ! सरस्वती, मैं तुम्हें सोमेश्वर की ओर से सचेत करती हूँ।"

सरस्वती ने मुस्करा कर कहा—निर्मला, मैं तुम्हारी इस चेतावनी के लिए तुम्हारी कृतज्ञ हूँ। परन्तु साथ ही तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि मेरी उसकी केवल साधारण मित्रता है।

"तुम्हारी बातों से उस दिन मुझे यह पता चला था कि तुम अपना पति स्वयम् चुनोगी। यदि ऐसा ही हुआ तो मुझे यह जानकर प्रसन्नता और सन्तोष होगा कि जिसे तुमने अपना पति बनाना तय किया है वह सोमेश्वर नहीं है।"

"निर्मला ! मैं अबोध नहीं हूँ, मैं भी ये बातें समझती हूँ।" सरस्वती ने अभिमान पूर्वक कहा।

"यह मैं जानती हूँ और इसी लिए मैंने अभी तक तुमसे इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा था। यदि मैं यह समझती कि तुम भावुकता में बह जाओगी तो मैं उसी समय तुम्हें सचेत कर देती।"

इसके पश्चात् थोड़ी देर इध-उधर की बातें करके निर्मला चली गई। निर्मला के चले जाने पर सरस्वती अपने ही आप मुस्करा कर सिर हिलाते हुए बोली—निर्मला, मैं तुम्हें ख़ूब समझती हूँ। यह मत समझना कि मैं तुम्हारी इस शुभचिन्ता की ओट में छिपे हुए तुम्हारे स्वार्थ को नहीं देख सकी। सोमेश्वर मेरी ओर क्यों आकृष्ट हुआ, इसका कारण तो स्पष्ट है। मैं तुम से अधिक सुन्दर हूँ, तुम से अधिक बुद्धिमान् हूँ, तुम से सब बातों में श्रेष्ठ हूँ। सोमेश्वर बुद्धिमान् है, रत्नपारखी है; इसलिए उसने तुम्हें त्याग कर मेरी ओर चित्त लगाया है—उत्तम वस्तु की ओर आकर्षित होना मनुष्य का स्वभाव है। इसके ये अर्थ निकालना कि सोमेश्वर दग़ाबाज़ है, विश्वासघाती है—या तो निरी मूर्खता है या इसके भीतर कुछ रहस्य है। मैं समझती हूँ, तू इस प्रकार मेरे हृदय में उसके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न करा कर मेरा उसका मनोमालिन्य कराना चाहती है, जिससे वह पुनः तेरे अधिकार में हो जाय। परन्तु मैं तुझे विश्वास दिलाती हूँ कि ऐसा कदापि न होने पायगा।

इस प्रकार सरस्वती बड़ी देर बैठी बड़बड़ाती रही तथा अपने ही आप हँसती रही।

३

उपर्युक्त घटना हुए दो वर्ष व्यतीत हो गए। सरस्वती देवी ने बी० ए० पास करने के पश्चात् सोमेश्वरप्रसाद के साथ विवाह कर लिया। सोमेश्वरप्रसाद के साथ विवाह करने में उसे कितनी कठिनाइयाँ पड़ीं, इसका वर्णन करना व्यर्थ है। संक्षेप में इतना ही कहना पर्याप्त है कि इस सम्बन्ध में उसने अपने माता-पिता से खुली बग़ावत की—अन्त में उसने यहाँ तक धमकी दी कि यदि ऐसा नहीं किया जायगा तो वह घर छोड़ देगी। वह अब इस योग्य हो गई है कि अपना उदर-पोषण कर सके, अतएव अब वह केवल इसलिए अपनी अभिलाषाओं की हत्या नहीं कर सकती कि उसके माता-पिता उसका पालन-पोषण करते हैं। ठाकुर रिपुदमन-सिंह ने अपने भाग्य को दोष देते हुए सरस्वती देवी का कहना किया और उसका विवाह सोमेश्वरप्रसाद से कर दिया।

विवाह के पश्चात् दो वर्ष तक तो दम्पति का समय बड़े सुख से कटा। इस बीच में सोमेश्वरप्रसाद ने प्रथम श्रेणी में एम० ए० की परीक्षा पास की। इसके परिणाम-स्वरूप उन्हें रेलवे में ए० टी० एस० का पद मिला। यद्यपि उन्हें डिप्टी-कलेक्टरी भी मिल सकती थी, परन्तु उन्होंने रेलवे की नौकरी अधिक पसन्द की—उनका विचार था कि रेलवे में उन्नति करने का सुअवसर अधिक है।

इस प्रकार कुछ दिन और व्यतीत हुए।

एक दिन सोमेश्वरप्रसाद एक यूरोपियन युवती को साथ लेकर घर आए। पहले उन्होंने उसका परिचय सरस्वती देवी से कराया। बोले—यह मि० नॉर्मन, जो पञ्जाब मेल के गार्ड हैं, उनकी कन्या हैं। सरस्वती देवी को यह बात यद्यपि बुरी लगी, परन्तु शिष्टता के नाते उन्होंने उस समय मिस नॉर्मेन का अच्छा आदर-सत्कार किया। उसके विदा हो जाने पर सरस्वती देवी ने सोमे-

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्वर से कहा—क्या तुम समझते हो कि तुम्हारा यह कार्य उचित था ?

सोमेश्वर ने पूछा—कौन सा कार्य ?

"यही, मिस नॉर्मेन को यहाँ लाने का।"

"क्यों, क्या हर्ज था ?"

"तुम एक उच्च पदाधिकारी हो। तुम्हारे सामने एक गार्ड की बहुत ही साधारण स्थिति है—तुम उसके अफ़सर हो, वह तुम्हारा मातहत। ऐसी दशा में उसकी कन्या के साथ तुम्हारा यह व्यवहार अच्छा नहीं मालूम होता।"

"सोमेश्वर भृकुटी चढ़ा कर बोले—क्यों नहीं अच्छा मालूम होता ? मिस नॉर्मेन बहुत ही शिष्ट तथा सुशिक्षित हैं। ऐसी दशा में उनको यहाँ लाना कौन पाप हो गया ?"

"यहाँ शिष्टा का प्रश्न नहीं है—यहाँ अपनी स्थिति का प्रश्न है। तुम्हें एक साधारण गार्ड की लड़की के साथ इस तहर घूमना-फिरना और उसे घर पर निमन्त्रित करना शोभा नहीं देता। यदि तुम्हारे सहकारी तथा अफ़सर यह देखेंगे तो उनके हृदय में तुम्हारी क्या इज़्ज़त रहेगी ?"

"सहकारियों और अफ़सरों को मेरे प्राइवेट मामलों से क्या सरोकार ? अपने कर्त्तव्यपालन में मैं कोई त्रुटि करूँ तो वह कह सकते हैं—इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकते।"

"यह मैं भी जानती हूँ ; पर अपने मन में तो तुम्हारे इस कार्य को अनुचित × × ×

"समझा करें—इसकी मुझे कोई परवा नहीं।"

"नहीं, इस प्रकार दूसरों के विचारों को ठुकरा देना ठीक नहीं। विशेषतः जबकि तुम्हें उनके साथ रह कर काम करना है। मनुष्य एक ग़ैर आदमी की भावनाओं को, उसके विचारों को, ठुकरा सकता है; परन्तु जिनके साथ वह कार्य करता है, अपने समय का अधिक भाग व्यतीत करता है, उनकी भावनाओं का ख़्याल रखना पड़ता है।"

सोमेश्वर भृकुटी चढ़ा कर बोले—मैं समझता हूँ, यह तुम उन लोगों की भावना की रक्षा के लिए नहीं, वरन् अपनी भावना की रक्षा के लिए कह रही हो।

अब सरस्वती देवी को भी आवेश हो आया। उन्होंने कहा—यदि कहती हूँ तो क्या बुरा करती हूँ। मुझे ऐसा करने का पूरा अधिकार है। मैं एक ए० टी० एस० की पत्नी हूँ, मैं एक साधारण गार्ड की कन्या अथवा पत्नी से कभी मित्रता नहीं जोड़ सकती—चाहे वह यूरोपियन हो, चाहे अमेरिकन।

"ओह ओह—इतना घमण्ड ! वह गार्ड की कन्या है तो क्या बुरा है—गार्ड की कन्या होना कोई पाप नहीं है।"

"तो गार्ड की कन्या से घनिष्टता करना भी कोई पुण्य नहीं है।"

"वह चाहे जो कुछ हो, परन्तु वह यूरोपियन है और पढ़ी-लिखी है।"

"तुम इस समय बिलकुल हिन्दुस्तानी, काले आदमी, की सी बातें करते हो, यह बड़ी लज्जा की बात है। तुम समझते हो कि एक यूरोपियन कन्या से मित्रता होना बड़े सौभाग्य की बात है—चाहे वह बावर्चिन ही क्यों न हो। परन्तु यदि तुम अपने सहकारी किसी यूरोपियन से पूछो कि वह एक गार्ड की कन्या से मित्रता करना कैसा समझता है, तो तुम्हें ज्ञात होगा कि गार्ड की कन्या की क्या हैसियत है। मैं दावे के साथ कहती हूँ कि कोई भी यूरोपियन ऑफ़िसर इसे अच्छा न समझेगा।"

"मैं इसे नहीं मानता और न इस पर कोई वाद-विवाद करने के लिए तैयार हूँ।"

"मैं भी इस पर वाद-विवाद नहीं करना चाहती, परन्तु साथ ही मैं तुमसे यह भी कहती हूँ कि भविष्य में तुम उसके साथ कभी न दिखाई पड़ना और न उसे यहाँ लाना।"

"तो क्या तुम मुझे चैलेञ्ज (चुनौती) दे रही हो ?"

"यदि तुम इसे प्रार्थना के रूप में सुनने के लिए तैयार नहीं हो, तो चैलेञ्ज ही समझो।"

"अच्छा, देखा जायगा।"

यह कह कर सोमेश्वरप्रसाद चुप हो गए।

उपर्युक्त घटना के एक सप्ताह पश्चात्, जबकि सन्ध्या समय सरस्वती देवी टहलने के लिए घर के बाहर निकलीं तो उसी समय उन्हें सामने से मि० नॉर्मेन आते हुए दिखाई पड़े। मि० नॉर्मेन ने सरस्वती देवी को देखते ही अपनी टोपी उतार कर उनका अभिवादन किया।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पास आने पर उसने पूछा—क्या मि० सोमेश्वर मकान पर नहीं हैं ?

सरस्वती देवी ने कहा—"नहीं! वह घूमने गए हैं।"

"वह अभी तो मेरे मकान पर थे—अभी मिस नॉर्मेन के साथ कहीं गए हैं—मैंने समझा था कि कदाचित् यहाँ आए हों। मुझे अपनी लड़की से कुछ आवश्यक कार्य था, इसलिए इधर आया कि शायद यहाँ मिल जायँ।"

इतना सुनते ही सरस्वती देवी की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। उन्होंने बड़ी कठिनता से मि० नॉर्मन को उत्तर दिया—"वह इधर नहीं आए।" इसके पश्चात् वह तुरन्त घर की ओर लौट पड़ीं और आकर कमरे में बैठ गईं।

दो घण्टे पश्चात् सोमेश्वरप्रसाद घर आए। उस समय वह शराब के नशे में थे। उन्हें देखते ही सरस्वती देवी बोलीं—क्यों, मिस नॉर्मेन को कहाँ छोड़ आए, उसे भी लेते आते ?

सोमेश्वर बोले—तुम्हें उसका स्वप्न आया करता है क्या ?

सरस्वती देवी ने उसी प्रकार शान्तभाव से उत्तर दिया—स्वप्न तो नहीं आया, परन्तु उसका पिता उसे ढूँढ़ता हुआ यहाँ आया था।

कुछ क्षणों के लिए सोमेश्वर का चेहरा फ़क़ हो गया। परन्तु अपने को सँभाल कर उन्होंने कहा—वह क्या कहता था ?

"वह कहता था कि मि० सोमेश्वर मिस नॉर्मेन को साथ लेकर कहीं घूमने गए हैं।"

"झूठ बोलता था।"

"वह झूठ नहीं बोलता था, तुम झूठ बोल रहे हो।"

"हैं! तुम्हें यह कहने का साहस कैसे पड़ता है ?"

"इसलिए कि मैं तुम्हारी धर्मपत्नी हूँ, और मुझे ऐसा कहने का अधिकार है। तुमने तो लाज-शर्म और मान-मर्यादा सब को तिलाञ्जलि दे दी है। परन्तु मैं अभी इतनी पतित नहीं हुई हूँ। याद रक्खो, यदि तुम अपनी ये हरकतें न छोड़ोगे तो तुम्हें पछताना पड़ेगा। मैंने अपने माता-पिता की इच्छा के प्रतिकूल, उनसे लड़-भिड़ कर, तुमसे विवाह किया तो इसलिए नहीं, कि तुम जो चाहे करो, और मैं चुपचाप देखा करूँ।"

"मैं क्या करता हूँ।"

"तुम वह करते हो, जिसमें मेरा अपमान होता है, मेरी तौहीन होती है। जो तुम्हें मिस नॉर्मेन के साथ घूमते देखते होंगे वह क्या समझते होंगे। वह यह समझते होंगे कि मि० सोमेश्वर की पत्नी इस योग्य नहीं है कि वह मि० सोमेश्वर को प्रसन्न रख सके, उनकी एक अच्छी सहचरी बन सके, इसीलिए मि० नॉर्मेन गार्ड की कन्या के साथ घूमते फिरते हैं। यह मेरा अपमान नहीं, तो और क्या है ?"

सोमेश्वरप्रसाद नशे में तो थे ही, उन्हें क्रोध आ गया। उन्होंने कहा—मैं मिस नॉर्मेन के साथ घूमता फिरता हूँ—और बराबर ऐसा करता रहूँगा। तुम्हें जो करना हो, करो।

उनके इस कथन से सरस्वती देवी बहुत ही बिगड़ीं। उन्होंने भी शिष्टता को ताक़ पर रख दिया और जो मुँह में आया, कहने लगीं। नौबत यहाँ तक पहुँची कि सोमेश्वर बेत लेकर उन्हें मारने तक को तैयार हो गए। परन्तु घर के दास-दासियों ने दोनों को अलग कर दिया।

* * *

इसके एक मास पश्चात् निर्मला देवी को एक पत्र मिला—पत्र सरस्वती देवी का था। उसमें लिखा था—

प्रिय बहिन निर्मला !

तुम्हारी बात अक्षरशः सत्य निकली। तुम्हें याद होगा कि मेरे पति—मुझे अब उन्हें पति कहते हुए लज्जा मालूम होती है—के सम्बन्ध में तुमने मुझे चेतावनी दी थी। तुमने कहा था कि सोमेश्वर की ओर से सचेत रहना। परन्तु उस समय मैंने तुम्हारी बात नहीं मानी। मुझ अभागिनी ने समझा कि तुम अपने किसी स्वार्थवश ऐसा कह रही हो। जब मैं आज सोचती हूँ कि उस समय मैंने तुम्हारे सम्बन्ध में ऐसी अनुचित धारणा उत्पन्न करके तुम्हारे साथ कितना बड़ा अन्याय किया, तब मुझे बड़ा ही दुख होता है। तुम्हारे साथ तो मैंने केवल अन्याय ही किया, परन्तु अपने पैर में अपने आप कुल्हाड़ी मारी। सोमेश्वर मनुष्य नहीं, पशु प्रमाणित हुआ। अब मुझे ज्ञात हुआ कि मनुष्य का सौन्दर्य, उसकी विद्वत्ता, योग्यता उस समय तक बिलकुल व्यर्थ है जब तक कि उसमें सदाचार न हो। सदाचार मनुष्य के अन्य अवगुणों को

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

छिपा देता है—जब कि सदाचार हीनता उसके समस्त गुणों पर पानी फेर देती है।

आह! क्या ही अच्छा होता, यदि मैं उस समय तुम्हारी चेतावनी पर शुद्ध हृदयता के साथ विचार करती। मैंने तुम्हारी चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया, माता-पिता की बात नहीं मानी—उसी के परिणाम-स्वरूप आज मुझे इतना क्लेश भुगतना पड़ा। मेरे हठ और स्वेच्छाचारिता ने मुझे कहीं का न रक्खा।

तुम आश्चर्य करती होगी कि आख़िर सोमेश्वर ने क्या किया। संक्षेप में इस समय मैं इतना ही लिखती हूँ कि सोमेश्वर को अब हिन्दुस्तानी पत्नी पसन्द नहीं—उनका सम्बन्ध एक यूरोपियन कन्या से हो गया है। उसके पीछे वह एक दिन मुझे पीटने तक पर आमादा हो गए थे। मैं ऐसी बातें सहन नहीं कर सकती। मैं अशिक्षित हिन्दू-नारी नहीं हूँ जो प्रत्येक दशा में पति की पूजा किया करती हैं। यद्यपि उन अशिक्षित स्त्रियों के लिए अब मेरे हृदय में बड़ा आदर-भाव उत्पन्न हो गया है। सचमुच वे स्त्रियाँ धन्य हैं जो ऐसा करती हैं। परन्तु मैं तो ऐसा कभी भी नहीं कर सकती। मेरे आँखें हैं, मस्तिष्क है—इसलिए मैं उनका सदुपयोग करूँगी।

मैं आजकल अपने पिता के यहाँ हूँ—पति से अलग हो गई हूँ; और शायद सदैव के लिए। मेरे पिता के यहाँ मेरे गुज़ारे के लिए पर्याप्त सम्पत्ति है—इसके अतिरिक्त मैं ग्रेज्युएट हूँ—अपना पेट आराम के साथ भर सकती हूँ। शेष बातें भेंट होने पर बताऊँगी।

तुम्हारी,

—सरस्वती

निर्मला ने पत्र को लिफ़ाफ़े में रखते हुए अपने ही आप कहा—हाय री स्वेच्छाचारिता, तूने न जाने कितनों का सर्वनाश किया है।

आँसुओं की माला

[रचयिता—कविवर पं० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय 'हरिऔध']

चौपदे

(१)

कलेजे मैंने देखे हैं,
टटोले जी मैंने कितने!
काम सबने रस से रक्खा,
मिले मिलने वाले जितने।

(२)

सुनी मीठी-मीठी बातें,
चाव बहुतों में दिखलाया।
मिले सुन्दर मुखड़े वाले,
प्यार सच्चा किस में पाया?

(३)

सुखों की चाहें हैं सब में,
नहीं मतलब किसको प्यारा?
आँख में बसने वाले हैं,
कौन है आँखों का तारा?

(४)

रूप के भूखे दिखलाए,
मिला मुखड़ों का दीवाना।
किसी ने कब सच्चे जी से,
किसी के दुख को दुख माना?

(५)

इसे मैं किस को पहनाऊँ,
नहीं मिलता है दिल वाला?
आँसुओं का मोती ले ले,
बनाई क्यों मैंने माला?

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भारत में अङ्गरेज़ी राज्य

[ले० महात्मा सुन्दरलाल जी, भूतपूर्व सम्पादक 'कर्मयोगी' और 'भविष्य']

[शेषांश]

टीपू की मृत्यु के बाद

पू की आयु उस समय ४० वर्ष की थी। १७ वर्ष वह अपने पिता के तख़्त पर बैठ चुका था। उसका सबसे बड़ा बेटा फ़तहहैदर सुलतान इस समय क़िले से बाहर कारीघाट पहाड़ी के निकट शत्रु से लड़ रहा था। पिता की मृत्यु का समाचार सुनते ही वह क़िले की ओर लपका। सलाह के लिए उसने तुरन्त अपने वज़ीरों और अमीरों को जमा किया। इनमें एक ओर मलिक जहान ख़ाँ और उसके साथी लड़ाई जारी रखने के पक्ष में थे और दूसरी ओर पूर्निया और उसके साथी फ़ौरन सुलह कर लेने पर ज़ोर दे रहे थे। इतने में जनरल हैरिस ने सुलह की बातचीत करने के बहाने अपने कुछ अफ़सरों सहित आकर फ़तहहैदर सुलतान से भेंट की और अत्यन्त आदर और प्रेम के साथ सबके सामने उससे वादा किया कि यदि आप लड़ाई बन्द कर दें तो अङ्गरेज़ सरकार आपको फिर से आपके पिता के तख़्त पर बैठा देगी। इस साफ़ वादे पर और पूर्निया जैसों के ज़ोर देने पर फ़तहहैदर सुलतान ने शस्त्र रख दिए। जनरल हैरिस ने वहाँ से लौटते ही अपने इस वादे को साफ़ तोड़ डाला। निस्सन्देह उसका यह वादा केवल एक चाल थी। श्रीरङ्गपट्टन के क़िले पर अङ्गरेज़ी सेना का क़ब्ज़ा जारी रहा।

श्रीरङ्गपट्टन के क़िले के बाद अङ्गरेज़ी सेना के लिए नगर में प्रवेश करना बाक़ी था। मार्क्विस वेलस्ली के नाम से एक एलान प्रकाशित किया गया कि अङ्गरेज़ी सेना नगर-निवासियों के जान और माल दोनों की रक्षा करेगी और किसी पर किसी तरह का अन्याय न होगा। किन्तु विजयी अङ्गरेज़ी सेना के नगर में घुसते ही "श्रीरङ्गपट्टन की गलियों में एक-एक दीवार और एक-एक दरवाज़े से ख़ून बहने लगा।" इतना ही नहीं, श्रीरङ्गपट्टन के पतन के बाद कई दिन तक कम्पनी के सिपाहियों और विशेषकर गोरे सिपाहियों ने जो अकथनीय अत्याचार नगर-निवासियों पर जारी रक्खे और जिन्हें स्वयं अङ्गरेज़-अफ़सरों ने अपने पत्रों में स्वीकार किया है, उनके सामने किसी भी भारतीय नरेश के काले से काले पाप फीके मालूम होते हैं। मीर हुसेनअली ख़ाँ लिखता है कि क़त्ल, लूट और नगर की स्त्रियों के ऊपर बलात्कार इस ज़ोरों से बढ़ा कि वर्णन करना असम्भव है!

इसके बाद अङ्गरेज़ी सेना शाही महल के अन्दर घुसी। टीपू को अपने बाप के समान शेर पालने का शौक़ था। उसके महल के बाहरी सहन में अगणित शेर खुले फिरते रहते थे। अङ्गरेज़ों को भीतर घुसने से पहले इन शेरों को गोली से उड़ा देना पड़ा। महल के भीतर टीपू का ख़ज़ाना धन और जवाहरात से लबालब था। यह माल, हाथी, ऊँट और तरह-तरह का असबाब कम्पनी और उसके अङ्गरेज़ सिपाहियों के हाथों में आया। टीपू के सुन्दर तख़्त को, जो सोने का बना हुआ था, तोड़ डाला गया और हीरे, जवाहरात, मोतियों की मालाएँ और ज़ेवरों के पिटारे नीलाम किए गए। यहाँ तक कि केवल महल के जवाहरात की लूट का अन्दाज़ा उस समय १,११,४३,२१६ पाउण्ड अर्थात् लगभग १२ करोड़ रुपए का किया गया। टीपू का विशाल पुस्तकालय और अनेक अन्य बहुमूल्य पदार्थ श्रीरङ्गपट्टन से उठा कर विलायत भेज दिए गए।

४ मई, सन् १७९९ को टीपू की मृत्यु हुई। उसी दिन अङ्गरेज़ी सेना ने श्रीरङ्गपट्टन में प्रवेश किया। ५ मई को टीपू की लाश हैदरअली के मक़बरे के पास लाल बाग़ में दफ़न कर दी गई। इसके बाद फ़तहहैदर सुलतान के साथ जनरल हैरिस के वादे को मिट्टी में मिला कर अङ्गरेज़ों ने टीपू के भाई करीमसाहब, टीपू के १२ बेटों और उसकी बेगमों सबको क़ैद करके रायवेलोर के क़िले में भेज दिया।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

टीपू की सल्तनत के टुकड़े कर दिए गए। अधिकांश भाग कम्पनी को मिला। एक फाँक निज़ाम के हिस्से में आई। शेष भाग पर मैसूर के पुराने हिन्दू-राजकुल का शासन रहने दिया गया, और उस कुल का एक पाँच वर्ष का बालक राजा बना कर बैठा दिया गया, क्योंकि इस कुल के कुछ लोगों ने भी टीपू के विरुद्ध अङ्गरेज़ों को मदद दी थी। मैसूर के "दैव" का पद भविष्य के लिए उड़ा दिया गया; और विश्वासघातक पूर्निया बालक राजा का वज़ीर और रक्षक नियुक्त हुआ।

टीपू सुलतान

८ जुलाई, सन् १७९९ को मैसूर के नए महाराजा और अङ्गरेज़ कम्पनी के बीच सोलह शर्तों का एक नया सन्धि-पत्र लिखा गया। इन शर्तों का सार यह था कि कम्पनी की सबसीडीयरी सेना मैसूर में रहा करेगी, मैसूर के राजा को इस सेना के ख़र्च के लिए सात लाख पैगोदा अर्थात् लगभग पच्चीस लाख रुपए सालाना देने होंगे, रियासत के समस्त क़िले और तमाम फ़ौजी शासन अङ्गरेज़ों के हाथों में रहेगा, राज्य के हर महकमे में दख़ल देने का गवरनर-जनरल को पूरा अधिकार रहेगा। गवरनर-जनरल की आज्ञा हर समय और हर हालत में राजा के लिए मान्य होगी, और राजा का एक मात्र अधिकार यह होगा कि रियासत की आमदनी में से फ़ौजी तथा अन्य सब ख़र्च निकाल कर उसे कम से कम एक लाख पैगोदा सालाना अपने निजी ख़र्च के लिए मिलता रहे।

टीपू के जिन सरदारों और अन्य नौकरों ने अपने मालिक के साथ विश्वासघात किया था उनमें से कुछ को इनाम में जागीरें और पेनशनें दी गईं। इङ्गलिस्तान की सरकार ने उन सब अङ्गरेज़ों को इनाम दिए, जिन्होंने इस युद्ध में भाग लिया था। गवरनर-जनरल का नाम पहले 'अर्ल' मॉरनिङ्गटन था, अब रुतबा बढ़ कर उसका नाम 'मार्क्विस' वेल्सली होगया। जनरल हैरिस आयन्दा के लिए जनरल 'लॉर्ड हैरिस ऑफ़ श्रीरङ्गपट्टन' हो गया।

टीपू के सरदारों में से एक वीर मलिक जहान ख़ाँ ने, जिसे धूँडिया वाघ भी कहा जाता है, अन्त तक विदेशियों की अधीनता स्वीकार न की। केवल एक घोड़ा साथ लेकर श्रीरङ्गपट्टन के पतन के समय वह नगर से निकल गया और थोड़े ही दिनों में उसने लगभग तीस हज़ार सवार और पैदल अपने साथ जमा कर लिए। दो वर्ष तक कृष्णा और तुङ्गभद्रा नदियों के बीच के इलाक़े में वह अङ्गरेज़ों और उनके साथियों को दिक़ करता रहा। अनेक लड़ाइयों में उसने विजय प्राप्त की। उसकी कीर्ति चारों ओर फैल गई। किन्तु इस अरसे में वह कोई बाज़ाब्ता क़िला अथवा केन्द्र अपने लिए न बना सका। अन्त में दो वर्ष तक इस प्रकार मुक़ाबला करने के बाद एक स्थान पर करनल आरथर वेल्सली की सेना के साथ उसका अन्तिम संग्राम हुआ, जिसमें कड़प्पा और करनूल के अफ़ग़ानों ने उसके साथ विश्वासघात करके उसे करनल वेल्सली के हवाले कर दिया। अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक स्वाधीनता के इस सच्चे प्रेमी को, जिसने लगातार दो वर्ष तक अनन्त कष्ट सहन करते हुए भी विदेशियों की अधीनता स्वीकार न की, प्रायः उसी प्रकार डाकू बतलाते हैं जिस प्रकार छत्रपति शिवाजी को।

इस प्रकार वीर हैदरअली की नसल में राजसत्ता का अन्त कर दिया गया और निस्सन्देह भारतीय ब्रिटिश

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साम्राज्य के मार्ग से एक बहुत ज़बरदस्त बाधा दूर हो गई।

टीपू की मृत्यु का समाचार जब कलकत्ते पहुँचा तो वहाँ के अङ्गरेज़ों ने बड़े-बड़े जलसे किए और ख़ुशियाँ मनाईं, बाक़ायदा जुलूस निकाले गए और गवरनर-जनरल तथा शेष समस्त अफ़सरों ने एक विशेष दिन नियत करके बड़े ठाट-बाट के साथ कलकत्ते के नए गिरजे में जाकर ख़ुदा का शुक्रिया अदा किया; क्योंकि उस समय के बङ्गाल के अङ्गरेज़ चीफ़ जस्टिस सर जॉन ऐन्सटथर के शब्दों में टीपू की ताक़त ही—"उस समय एक मात्र ताक़त थी जो हमारी सेनाओं का मुँह मोड़ने का अपने में बल रखती थी।" और "भारत में हमारा (अङ्गरेज़ी) साम्राज्य अब से स्थायी और सुरक्षित हो गया।"*

टीपू का चरित्र

प्रसिद्ध इतिहास-लेखक जेम्स मिल के अतिरिक्त बहुत कम अङ्गरेज़ लेखक ऐसे हैं, जिन्होंने टीपू के चरित्र के साथ न्याय करने का प्रयत्न किया हो। इनमें से अधिकांश लेखकों ने टीपू को बदनाम करने के भरसक प्रयत्न किए हैं, यहाँ तक कि मुसलमान-लेखकों को धन देकर उनसे फ़ारसी में सुलतान टीपू की कल्पित जीवनियाँ लिखा डाली गई हैं। इन अङ्गरेज़ों तथा अङ्गरेज़ों के धनक्रीत भारतीय लेखकों की पुस्तकों में टीपू के अत्याचारों के अनेक कल्पित क़िस्से भरे हुए हैं। वास्तव में संसार के इतिहास में शायद बहुत कम लोगों के चरित्रों पर इतने अधिक झूठे कलङ्क लगाए गए होंगे जितने कि उन भारतीय वीरों के चरित्र पर, जिन्होंने समय-समय पर इस देश के अन्दर अङ्गरेज़ी राज्य के विस्तार को रोकने का प्रयत्न किया। प्रसिद्ध और प्रामाणिक अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक सर जॉन के, जो सन् ५७ के विप्लव के पश्चात् इङ्गलिस्तान के भारत-मन्त्री के दफ़्तर में "राजनैतिक और गुप्त विभाग" का सेक्रेटरी रहा, लिखता है—

"हम लोगों में यह प्रथा है कि पहले किसी देशी नरेश का राज्य छीनते हैं और फिर उस पर अथवा उसका उत्तराधिकारी बनने वाले पर झूठे कलङ्क लगा कर उन्हें बदनाम करते हैं।"*

दो तरह के इलज़ाम टीपू सुलतान पर लगाए जाते हैं। एक यह कि अपने अङ्गरेज़ क़ैदियों के साथ उसका व्यवहार अत्यन्त क्रूर था और दूसरा यह कि टीपू एक धर्मान्ध मुसलमान था।

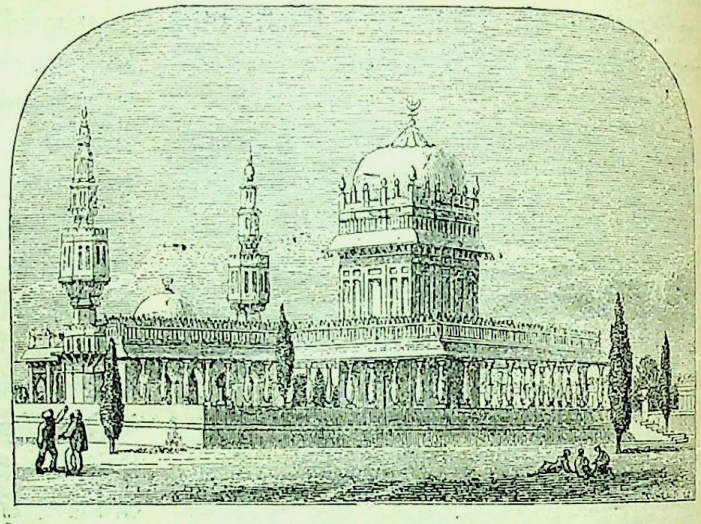

श्रीरंगपट्टन में हैदरअली और टीपू सुलतान की समाधि

पहले इलज़ाम के विषय में हम केवल इतना कहेंगे कि सिवाय कप्तान बेयर्ड जैसे अङ्गरेज़ क़ैदियों के बयानों के और कोई गवाही इस 'क्रूर व्यवहार' की नहीं मिलती, और यह अङ्गरेज़ क़ैदी न निष्पक्ष माने जा सकते हैं और न सर्वथा सत्यवादी। इसके अतिरिक्त यदि बेयर्ड और उसके साथियों के सारे बयान सच मान लिए जायँ तो भी वे समस्त अत्याचार, जो टीपू ने बेयर्ड और उसके साथी अङ्गरेज़ों पर किए, उन अत्याचारों के मुक़ाबले में सर्वथा फीके मालूम होते हैं जो अङ्गरेज़ों ने इन्हीं मैसूर के युद्धों में अपने हिन्दोस्तानी क़ैदियों और मैसूर की प्रजा के साथ किए।

दूसरा इलज़ाम इस देश में हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य

* Sir John Anstruther to the Governor-General, 17th May, 1799.

* ". . . it is a custom among us 'Odisse queæ ceseres'—to take a Native Ruler's Kingdom and then to revile the deposed ruler or his would-be successor."

—*History of the Sepoy War* by Sir John Kaye, Vol. III, pp. 361, 362.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को बढ़ाने का अङ्गरेज़ लेखकों के हाथों में सदा से एक विशेष साधन रहा है। सबसे पहले हम टीपू पर इस कलङ्क के विषय में इतिहास-लेखक जेम्स मिल की सम्मति उद्धृत करते हैं। जेम्स मिल लिखता है--

"टीपू के चरित्र की एक और विशेषता उसकी धार्मिकता थी। उसके मन पर इस धार्मिक भाव का अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ा हुआ था। दिन का अधिकांश समय वह ईश्वर-प्रार्थना में ख़र्च किया करता था। अपनी सल्तनत को वह 'ख़ुदादाद' अर्थात् ईश्वर-प्रदत्त कहा करता था। ईश्वर के अस्तित्व और उसकी पालकता में उसे इतना गहरा विश्वास था कि इस विश्वास का प्रभाव उसके जीवन के समस्त कार्यों पर पड़ता था। वास्तव में जिन चीज़ों ने उसे फँसाने के लिए जाल का काम दिया उनमें से एक उसका ईश्वर की सहायता पर विश्वास था; क्योंकि वह इस ईश्वरीय सहायता पर इतना अधिक भरोसा करता था कि उसके कारण वह अपनी रक्षा के दूसरे उपायों की अवहेलना कर जाता था।"*

यह बयान एक विद्वान् और प्रामाणिक अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक का है। निस्सन्देह इस विषय में हैदर-अली और टीपू सुल्तान में अन्तर था। हैदरअली सम्राट् अकबर के समान सर्वथा स्वतन्त्र विचार का मनुष्य था। टीपू ईश्वर में विश्वासी और धार्मिक विचार का था। हैदरअली किसी धर्म को भी पूर्ण वा निर्भ्रान्त न समझता था। टीपू इसलाम-धर्म को मानता था। किन्तु जिस प्रकार का ईश्वर-भक्त और विश्वासी मनुष्य टीपू था, उस प्रकार की धार्मिकता एक चीज़ है और धर्मान्धता बिलकुल दूसरी चीज़ है।

तथापि अङ्गरेज़ों और अङ्गरेज़ों के धनक्रीत भारतीय लेखकों की पुस्तकों में टीपू की धर्मान्धता और ग़ैर मुसलमानों के प्रति उसके अनुचित व्यवहार की इतनी कहानियाँ दर्ज हैं कि हमने इस विषय में अपनी अन्तिम राय क़ायम करने से पहले और अधिक खोज की आवश्यकता अनुभव की। हम वर्त्तमान मैसूर राज्य के पुरातत्व-विभाग के विद्वान् डाइरेक्टर डॉक्टर शाम शास्त्री और मैसूर-विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार श्रीयुत श्रीकान्तिया तथा वहाँ के उन अन्य सज्जनों के अनुग्रहीत हैं, जिन्होंने इस खोज में हमें हर तरह सहायता दी।

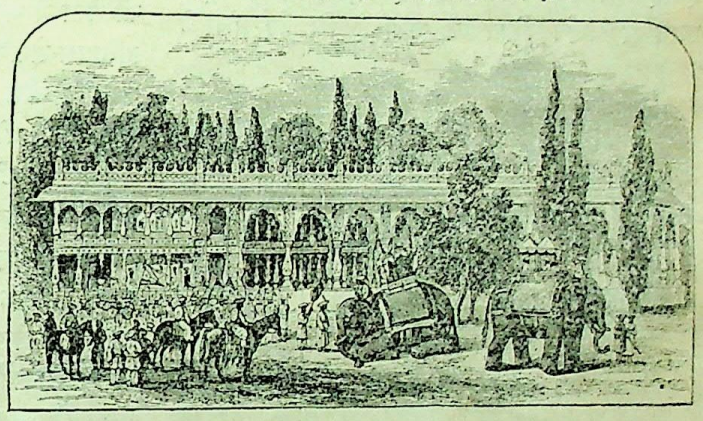

लालबाग़, श्रीरंगपट्टन में टीपू सुलतान के महल का बाहरी दृश्य

इस समस्त छानबीन में हमें केवल दो लेख इस प्रकार के मिल सके जिन्हें किसी प्रकार भी प्रामाणिक कहा जा सके और जिनसे टीपू में धार्मिक सङ्कीर्णता का आभास हो सके। पहला लेख टीपू का उस समय का एक एलान है, जब कि अङ्गरेज़ों और नवाब करनाटक के साथ टीपू का युद्ध जारी था। इस एलान में टीपू ने क़ुरान की आयतों और महाकवि हाफ़िज़ की कुछ पंक्तियों को उद्धृत करते हुए शत्रु के इलाक़े में रहने वाले मुसलमानों से प्रार्थना की है कि आप लोग विदेशियों को सहायता न दें और शत्रु के इलाक़े को छोड़ कर मैसूर राज्य में आ बसें। एलान में दर्शाया गया है कि किसी मुसलमान के लिए हिन्दोस्तान के हित के विरुद्ध विदेशियों की सहायता करना पाप है। टीपू ने इस एलान में करनाटक और बङ्गाल के अन्दर अङ्गरेज़ों के अत्याचारों

* "Another feature in the character of Tipu was his religion, with a sense of which his mind was most deeply impressed. He spent a considerable part of every day in prayer. He gave to his Kingdom, or state, a particular religious title, 'Khudadad' or God-given; and he lived under a peculiarly strong and operative conviction of the Superintendence of a Divine Providence. His confidence in the protection of God was, indeed, one of his snares; for he relied upon it to the neglect of other means of safety."

—*History of India*, By James Mill.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की ओर सङ्केत करते हुए लिखा है—"हिन्दू के नरेशों की निर्बलता के कारण वह मदोद्धत जाति (यानी अङ्गरेज़) व्यर्थ यह समझ बैठी है कि सच्चे दीनदार लोग निर्बल, तुच्छ और निकृष्ट हो गए हैं।" एलान में यह भी लिखा है कि हमने अपनी सल्तनत भर में प्रजा और राजकर्मचारियों को यह आज्ञा भेज दी है कि जो लोग शत्रु के इलाक़े से आकर मैसूर राज्य में बसना चाहें उनके जान-माल की पूरी रक्षा की जाय और उनकी जीविका इत्यादि का उचित प्रबन्ध करा दिया जाय इत्यादि।*

दूसरा लेख मैसूर राज्य में रहने वाले हिन्दोस्तानी ईसाइयों से सम्बन्ध रखता है। इस पुस्तक में एक दूसरे स्थान पर वर्णन किया जा चुका है कि हैदरअली ने

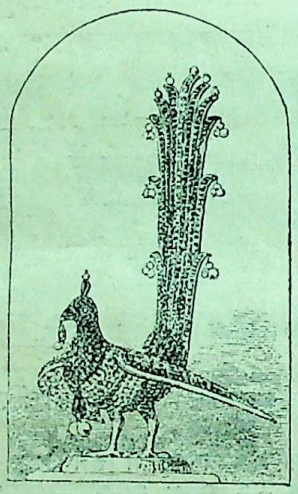

टीपू सुलतान के सिंहासन के शिखर का रत्न-जटित मोर

उदारतावश अपने राज्य में यूरोप के ईसाई पादरियों को अपने मत-प्रचार की इजाज़त दे दी थी और उनकी इच्छानुसार कई तरह की सुविधाएँ कर दी थीं, जिसके कारण विशेषकर समुद्र-तट के कुछ लोगों ने ईसाई-मत स्वीकार कर लिया था। किन्तु कम्पनी और हैदरअली के संग्रामों में इन्हीं यूरोपियन तथा भारतीय ईसाइयों ने हैदरअली के विरुद्ध अङ्गरेज़ों का साथ दिया। अपनी ईसाई प्रजा की ओर से इसी प्रकार का कटु अनुभव कई बार टीपू सुलतान को भी प्राप्त हुआ। वास्तव में ये भारतीय ईसाई अपने यूरोपियन धर्माचार्यों के हाथों में खेल रहे थे। विवश होकर टीपू को उनके विरुद्ध उपाय करने पड़े। जिस लेख की ओर हम सङ्केत कर रहे हैं, उसमें लिखा है कि एक बार समुद्र-तट के कुछ ईसाइयों की ज़्यादती को सुन कर टीपू ने आज्ञा दी कि तुम लोग अब या तो मैसूर राज्य छोड़ कर चले जाओ और या मुसलमान हो जाओ। एक इतिहास-लेखक लिखता है कि साठ हज़ार ईसाई मर्द, औरत और बच्चे गिरफ़्तार करके सुलतान के सामने पेश किए गए, उन्हें इसलाम-धर्म में ले लिया गया और जीविका के लिए उन्हें राज्य की सेना में भरती कर लिया गया। एक दूसरा अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक लिखता है कि इन लोगों की संख्या लगभग तीस हज़ार थी।* सम्भव है कि इस दूसरे अनुमान में भी अत्युक्ति की काफ़ी मात्रा मौजूद हो।

जो हो, टीपू की इन दोनों आज्ञाओं के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं।

पहला एलान साफ़ युद्ध से सम्बन्ध रखता था, उससे धार्मिक सङ्कीर्णता का कोई सम्बन्ध नहीं।

दूसरे लेख के विषय में, अपने तथा अपने राज्य के साथ ईसाइयों के विश्वासघात का हैदरअली और टीपू दोनों को काफ़ी कटु अनुभव प्राप्त हो चुका था। यही ईसाई बहुत दिनों तक टीपू के राज्य में सुख और स्वतन्त्रता के साथ रह चुके थे, और जब तक उनके दुष्कृत्य अधिक नहीं बढ़े, उनके साथ कोई छेड़छाड़ नहीं की गई। टीपू की इस दूसरी आज्ञा के सम्बन्ध में ठीक-ठीक संख्या का अथवा उसमें 'ज़बरदस्ती' की मात्रा का अनुमान कर सकना भी कठिन है।

इसके अतिरिक्त ईसाइयों को छोड़ कर मैसूर की शेष समस्त हिन्दू तथा अन्य ग़ैर-मुस्लिम प्रजा के साथ टीपू के अनुचित व्यवहार का इसमें कहीं ज़िक्र नहीं।

मैसूर की अधिकांश जन-संख्या हिन्दू थी और हिन्दुओं के साथ टीपू के किसी प्रकार के अनुचित व्यवहार का हमें एक भी प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता। इसके विपरीत अपनी हिन्दू-प्रजा के साथ टीपू

* *Select Letters of Tipu Sultan to various public functionaries*, arranged and translated by William Kirkpatrick, pp. 293-97.

* *Historical Sketches of the South India etc.*, by Colonel Mark Wilks, Vol. II, pp. 529, 530.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के उदार तथा प्रेम-पूर्ण व्यवहार के असंख्य उदाहरण उस समय के इतिहास में भरे पड़े हैं।

अन्त समय तक टीपू के दरबार में ऊँची से ऊँची पदवियाँ हिन्दुओं को मिली हुई थीं। उसके दो मुख्य मन्त्री पूर्निया और कृष्णराव ब्राह्मण थे, जिनमें पूर्निया उसका प्रधान मन्त्री था। इन दोनों मन्त्रियों का प्रभाव उस समय अत्यन्त बढ़ा हुआ था। इनके अतिरिक्त असंख्य ब्राह्मण टीपू के दरबार में विशेषकर राजदूतों का काम करने और दरबार में लोगों का परिचय कराने पर नियुक्त थे।

एक बार मलबार तट की नय्यर जाति के कुछ लोगों ने अपने ईसाई मत स्वीकार करने या न करने के विषय में टीपू सुलतान से सलाह माँगी। टीपू ने उत्तर दिया—

"नरेश प्रजा का पिता होता है। इस हैसियत से मेरी आपको यह सलाह है कि आप लोग अपने पूर्व-पुरुषों के मज़हब (अर्थात् हिन्दू मज़हब) पर क़ायम रहें; और यदि आपको अपना मज़हब बदलने की इच्छा है ही तो आप (ईसाई होने के स्थान पर) अपने पिता तुल्य नरेश का मज़हब स्वीकार करें।"

जगद्गुरु श्री० शङ्कराचार्य का शृङ्गेरी मठ मैसूर के राज्य में था। टीपू उस समय के शृङ्गेरी स्वामी जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री० सच्चिदानन्द भारती का असाधारण आदर करता था। जगद्गुरु के नाम टीपू सुलतान के समय-समय पर भेजे हुए तीस से ऊपर पत्र इस समय मौजूद हैं, जो अत्यन्त मान-सूचक शब्दों में लिखे हुए हैं।

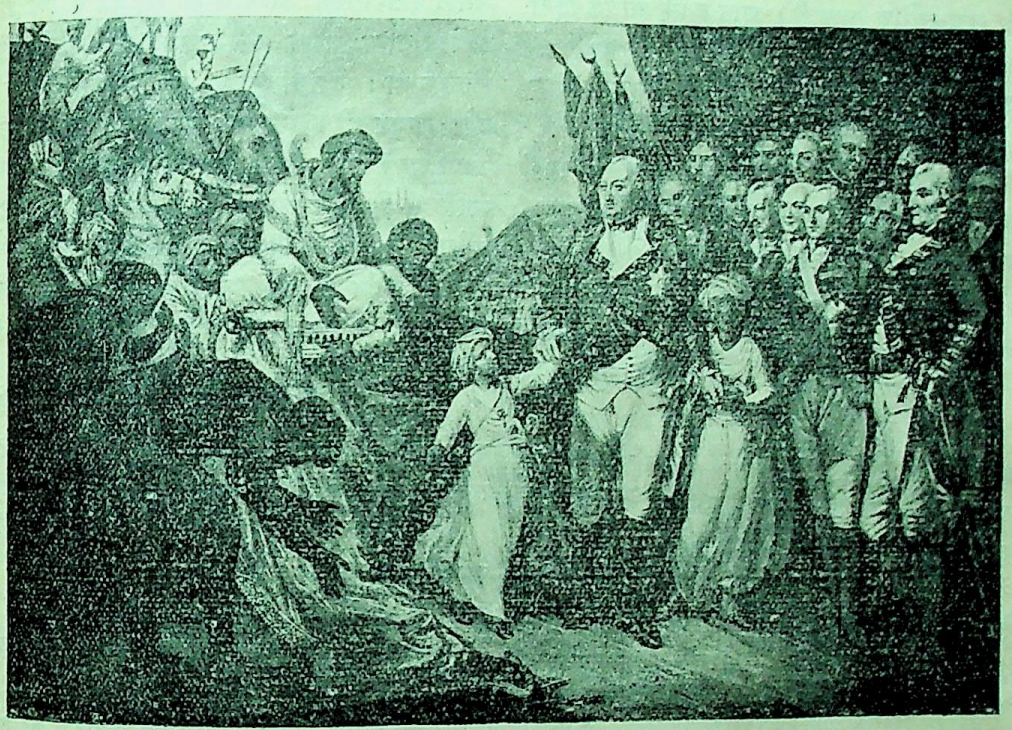

लॉर्ड कॉर्नवालिस टीपू सुलतान के दो बच्चे बतौर बन्धक ले रहा है

मैसूर-राज्य के पुरातत्व-विभाग के डाइरेक्टर ने दो मूल पत्रों के फ़ोटो हमारे पास भेजे हैं, जिनमें से एक को नमूने के तौर पर हम प्रकाशित कर रहे हैं। पत्र कनाड़ी भाषा में है।

पत्र का हिन्दी भाषान्तर इस प्रकार है—

मोहर टीपू सुलतान

"श्रीमत् परमहंसादि यथोक्त बिरुदाङ्कित शृङ्गेरी श्री० स्वामी सच्चिदानन्द भारती जी महाराज की सेवा में टीपू सुलतान बादशाह का सलाम।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"श्री० महाराज के लिखकर भेजे हुए पत्र से सकल अभिप्राय विदित हुआ। आप जगद्गुरु हैं, सर्वलोक के क्षेम और सबकी स्वस्थता के हित आप तपस्या करते रहते हैं। ऐसे ही दया कर इस सरकार के क्षेम और उसकी उत्तरोत्तर अभिवृद्धि के लिए तीनों काल में तपस्या करते हुए ईश्वर से प्रार्थना करने की कृपा कीजिए। आप जैसे-महापुरुष जिस देश में निवास करते हैं, उस देश में वर्षा अच्छी होती है, कृषि फूलती-फलती है और सदा सुभिक्ष रहता है। आप इतने अधिक दिनों तक परदेश में क्यों रह रहे हैं? जिस उद्देश से श्रीमहाराज वहाँ गए हैं उसे शीघ्र अपने अनुकूल सिद्ध करके अपने स्थान को वापस आने की कृपा कीजिए।

"तारीख़ २६, महीना राजी साल सहर सन् १२२० महम्मदी, तदनुसार परीधावी सम्वतसर माघ कृष्णा चतुर्दशी, लिखा हुआ सुब्राऊ मुन्शी हुज़ूर।"

(हस्ताक्षर टीपू सुलतान)

यह पत्र सन् १७९३ ईसवी का उस समय का लिखा हुआ है, जबकि जगद्गुरु किसी कार्यवश कुछ समय के लिए शृङ्गेरी मठ से बाहर पूना की ओर गए हुए थे। पत्र जगद्गुरु के एक पत्र के उत्तर में है। इस पत्र-व्यवहार से स्पष्ट है कि उस समय के जगद्गुरु शङ्कराचार्य में और टीपू सुलतान में किस प्रकार का सम्बन्ध था।

टीपू के महल के अन्दर अनेक हिन्दू-पुरोहित और ज्योतिषी रहा करते थे, और वे टीपू की ओर से यज्ञ, हवन, जप इत्यादि करते रहते थे। मरते दम तक टीपू ने ब्राह्मणों को दान दिए और हिन्दू-ज्योतिषियों के आदेशानुसार यज्ञ-हवन करवाए। भाद्रपद शुक्ला द्वितीया विरोधीकृत सम्वत्सर अर्थात् सन् १७९१ का लिखा हुआ जगद्गुरु के नाम टीपू का एक और पत्र हमारे पास मौजूद है, जिसमें टीपू ने अपने ख़र्च पर जगद्गुरु से 'शतचण्डी सहस्र पाठ' की व्यवस्था कर देने की प्रार्थना की है।

नञ्जुनगुड, श्रीरङ्गपट्टन और मेलकोट इत्यादि के अनेक हिन्दू-मन्दिरों को टीपू ने अनेक बार नज़रें और जागीरें प्रदान कीं। इनमें से बङ्गलोर में टीपू के ज़नाने महल के ठीक सामने श्रीवेङ्कटरामन्न स्वामी का मन्दिर, महल से मिला हुआ श्रीनिवास का मन्दिर, श्रीरङ्गपट्टन के महल के पास श्रीरङ्गनाथ स्वामी का मन्दिर तथा श्रीरङ्गपट्टन के अन्य अनेक मन्दिर उस समय से लेकर आज तक टीपू की धार्मिक उदारता के साक्षी मौजूद हैं।

टीपू की धार्मिक उदारता के विषय में इससे अधिक सुबूत देने की आवश्यकता नहीं है। निस्सन्देह इस तरह के नरेश पर अपने तुच्छ स्वार्थ की दृष्टि से झूठे कलङ्क लगाना उसके, उसके देश और उसकी जाति के साथ घोर अन्याय करना है।

टीपू के शेष चरित्र के विषय में, उस समय के समस्त ऐतिहासिक उल्लेखों से साबित है कि टीपू एक अत्यन्त योग्य शासक और अपनी प्रजा का सच्चा हितचिन्तक था। उसकी समस्त प्रजा उससे अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट थी। किसानों का वह विशेष मित्र था। उसने अपने राज्य-भर में इस बात की कड़ी आज्ञा दे रक्खी थी कि कोई पटेल, आमिलदार वा अन्य सरकारी कर्मचारी प्रजा के किसी मनुष्य से किसी तरह की 'बेगार' न ले, अर्थात् उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य न करावे। लगान की वसूली में किसी प्रकार की भी सख़्ती की इजाज़त न थी।

टीपू का कोई बड़े से बड़ा कर्मचारी भी यदि प्रजा पर किसी तरह का अत्याचार करता था तो टीपू इस तरह के अपराधी को सख़्त से सख़्त सज़ा देता था।

हर गाँव के लोगों को अपने यहाँ के रस्म-रिवाज सम्बन्धी अथवा अन्य इसी प्रकार के आपसी झगड़े स्वयं पञ्चायत द्वारा तय करने का अधिकार था और किसी राजकर्मचारी को उनमें हस्तक्षेप करने की इजाज़त न थी।*

किसानों की बहबूदी के अन्य उपायों की ओर से भी टीपू बेख़बर न था। हाल में मैसूर राज्य के अन्दर खेतों की आबपाशी और अन्य उपयोग के लिए कावेरी नदी के ऊपर एक बहुत बड़ा जलाशय तैयार हुआ है, जो भारत में इस प्रकार का सबसे बड़ा जलाशय बताया जाता है। इस जलाशय के लिए खुदाई होते समय एक पुराना पक्का बाँध दिखाई दिया, जिसकी नींव में से टीपू सुलतान के समय का फ़ारसी अक्षरों में खुदा हुआ एक शिलालेख मिला। शिलालेख

* Tipu Sultan 1749—1799, A. D. by V. Raghevendra Rao, M. A. *The Mysore Scout* for July 1927.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से मालूम होता है कि सबसे पहले सन् १७९७ ई० में टीपू सुलतान ने अपने हाथ से इस विशाल जलाशय की नींव रक्खी थी। यह शिलालेख टीपू सुलतान ही के हाथ का रक्खा हुआ बाँध का बुनियादी पत्थर है। सबसे विचित्र बात इस शिलालेख से यह मालूम होती है कि जबकि आजकल आबपाशी के हर नए प्रबन्ध के साथ-साथ भूमि का लगान बढ़ा दिया जाता है, टीपू सुलतान ने जो 'लखूखा' रुपए इस शुभ कार्य में ख़र्च किए वे लगान बढ़ाया जाय। किन्तु दुर्भाग्यवश बाँध की बुनियाद रक्खे जाने के दो वर्ष के अन्दर ही टीपू की इस आज्ञा का मूल्य केवल एक ऐतिहासिक लेख से अधिक न रह गया!

फ़ारसी शिलालेख का हिन्दी-अनुवाद इस प्रकार है:—

"या फ़त्ताह (ऐ खोलने वाले!)

"उस अल्लाह के नाम से जो रहमान और रहीम है!

"सन् १२२१ शादाब (सौर) जो मोहम्मद साहब—

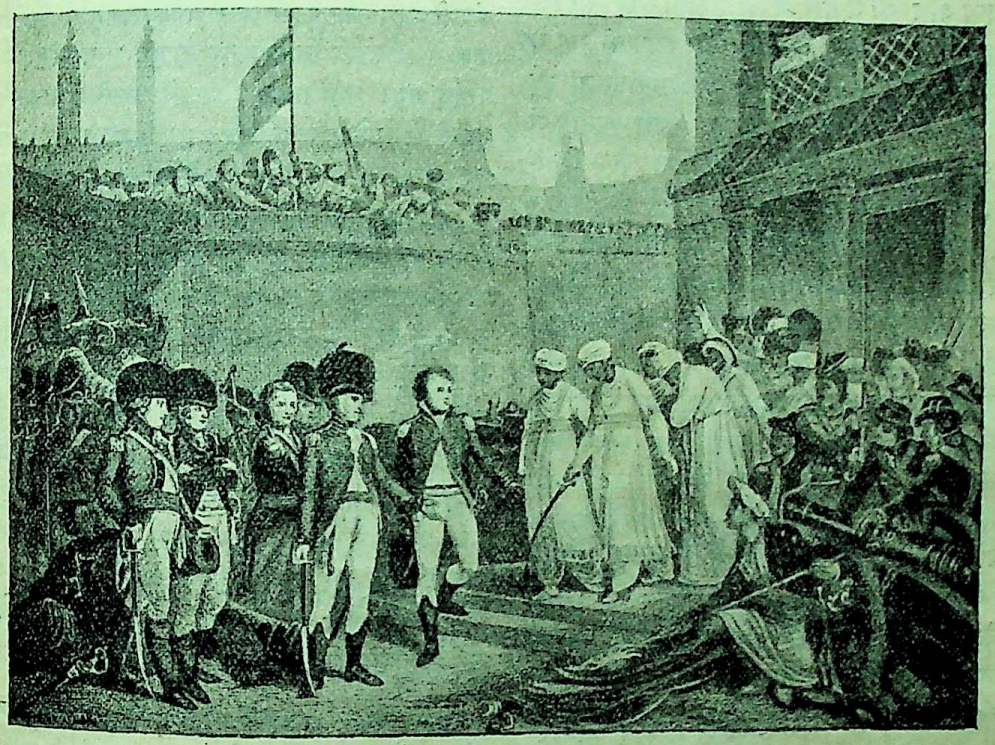

टीपू सुलतान की मृत्यु के बाद उसके दो पुत्रों का आत्म-समर्पण

केवल 'अल्लाह की राह पर' ख़र्च किए गए; यह आज्ञा दे दी गई कि जो किसान इस जलाशय की सहायता से नई ज़मीन में खेती-बाड़ी करेंगे, उन्हें औरों की अपेक्षा अधिक लगान देने के स्थान पर अन्य किसानों से एक चौथाई कम लगान देना होगा, और ये ज़मीनें उन किसानों के कुलों में सदा के लिए पैतृक रहेंगी। इसी लेख में टीपू ने अपने उत्तराधिकारियों तथा भावी शासकों को कड़ी से कड़ी क़समें दी हैं कि कोई इस 'अनन्त धर्मकार्य' में बाधा न डाले, अर्थात् न उन किसानों की सन्तति से कभी ज़मीनें छीनी जायँ और न कभी उनका

ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति दे—के जन्म से शुरू हुआ, उसके तक़ी (ज्येष्ठ) महीने की २९ तारीख़ को, तदनुसार शब २७ ज़िलहिज्ज सन् १२१२ हिजरी (चान्द्र) सोमवार के दिन, बहुत सवेरे, सूर्योदय से पहले, वृषभ लग्न और शुक्र घड़ी के प्रारम्भ में, ईश्वर की कृपा और रसूल ही सहायता से, ज़मीन और ज़माने के ख़लीफ़ा, चक्रवर्त्ती शहनशाह, जनाब हज़रत टीपू सुलतान ने—जो साया हैं उस अल्लाह का जो सबका मालिक और सबका दाता है, ईश्वर सदा उनके राज्य और उनकी ख़िलाफ़त को बनाए रक्खे—कावेरी नदी के ऊपर राज-

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धानी के पश्चिम में 'मुही' (अर्थात् जान डालने वाला) नामक बाँध की नींव रक्खी। शुरू करना हमारा काम है, पूरा करना अल्लाह के हाथ में है।

"जिस शुभ दिन नींव रक्खी गई उस दिन सूर्य, चन्द्रमा, शुक्र और वृहस्पति, चारों का मेष राशि में एक घर के अन्दर शुभ योग था। अल्लाह ताला की मदद से यह बाँध क़यामत के दिन तक क़ायम और स्थिर तारों के समान अटल रहे।

"इस बाँध की तैयारी में जो लखूखा रुपए सरकार ख़ुदादाद ने ख़र्च किए, वे केवल अल्लाह की राह में ख़र्च किए गए हैं। सिवाय इस समय की पुरानी या नई खेती-बाड़ी के, जो कोई मनुष्य कि पड़ती ज़मीन में (इस नए जलाशय के जल की सहायता से) खेती-बाड़ी करेगा, अपनी ज़मीन के फलों या नाज की पैदावार का जो भाग आमतौर पर नियम के अनुसार दूसरी प्रजा सरकार को देती है, उस भाग का वह केवल तीन चौथाई ख़ुदादाद सरकार को दे और शेष एक चौथाई अल्लाह की राह में माफ़ है। और जो कोई मनुष्य कि नई ज़मीन में खेती-बाड़ी करेगा उसकी औलाद और उसके वारिसों के पास वह ज़मीन पीढ़ी दर पीढ़ी उस समय तक क़ायम व बहाल रहेगी, जिस समय तक कि ज़मीन और आसमान क़ायम हैं। अगर कोई शख़्स इसमें रुकावट डाले या इस अनन्त ख़ैरात में बाधक हो तो वह कमीना, शैतान-ए-मलऊन के समान, मनुष्य-जाति का दुश्मन और किसानों की नसल का बल्कि समस्त प्राणियों की नसल का दुश्मन समझा जायगा।

लिखा सय्यद जाफ़र"

निस्सन्देह इस राजकीय लेख के भावों का आजकल के राजकीय लेखों में मिल सकना असम्भव है!

अपने राज्य के उद्योग-धन्धों और व्यापार को टीपू ने अपूर्व उन्नति दी। विशेषकर मैसूर के अन्दर सूती, ऊनी और रेशमी वस्त्रों के उद्योग ने जितनी उन्नति टीपू के समय में की, उतनी उससे पूर्व अथवा उसके बाद अर्वाचीन समय में कभी नहीं की। उसके लोहे इत्यादि के कारख़ानों में अन्य चीज़ों के अतिरिक्त बढ़िया से बढ़िया तोपें और दोनली तथा तीननली बन्दूकें ढलती थीं।

टीपू स्वयं विद्वान् था और विद्या और विद्वानों से उसे बड़ा प्रेम था। विद्वान् पण्डितों तथा मौलवियों दोनों का उसके दरबार में जमघट रहा करता था। उसका विशाल पुस्तकालय असंख्य, अमूल्य और अलभ्य पुस्तकों से भरा हुआ था। उसकी समस्त प्रजा सशस्त्र और सन्नद्ध थी, और उसके राज्य में चारों ओर वह ख़ुशहाली नज़र आती थी जो आस-पास के अङ्गरेज़ी इलाक़े में कहीं देखने को भी न मिलती थी।

टीपू का व्यक्तिगत जीवन अत्यन्त सरल, शुद्ध और संयमी था। उसका आहार अधिकतर दूध, बादाम और फल थे। शराब तथा अन्य मादक द्रव्यों से उसे सख़्त परहेज़ था। यहाँ तक कि उसने अपने राज्य भर में हर प्रकार की मदिरा तथा मादक द्रव्यों का बनना वा बिकना क़तई बन्द कर रक्खा था। स्त्री-जाति के सतीत्व की रक्षा का उसे असाधारण ख़याल रहता था। अपनी लड़ाइयों में वह इसका विशेष विचार रखता था कि उसके सिपाही इस विषय में कोई ग़लती न कर बैठें। यदि कभी किसी से इसके विपरीत आचरण हो जाता था तो टीपू अपराधी को कड़े से कड़ा दण्ड देता था। मराठों के साथ उसके संग्रामों में कम से कम दो बार अनेक मराठा स्त्रियाँ, जिनमें कुछ सरदारों की पत्नियाँ भी थीं, उसकी सेना के हाथों में आ गईं। दोनों बार टीपू ने उन स्त्रियों को बड़े आदर के साथ अलग ख़ेमों में रक्खा और फिर जबकि अभी युद्ध जारी ही था, उन्हें पालकियों में बैठा कर अपनी सेना के संरक्षण में मराठों के ख़ेमों तक पहुँचवा दिया।*

इस सबके अतिरिक्त टीपू अपने बाप के समान वीर, योद्धा और उत्कृष्ट सेनापति था। १७ वर्ष की अल्प आयु से ही उसने संग्राम विजय करने शुरू कर दिए थे। पिता ही के समान वह स्वाधीनता का सच्चा प्रेमी और इस देश के अन्दर विदेशियों की साम्राज्य-पिपासा का पक्का दुश्मन था। अपने समय का वही एकमात्र भारतीय नरेश था, जिसके पास विदेशियों के मुक़ाबले के लिए सुसन्नद्ध और प्रबल जलसेना थी, क्योंकि मराठों की जल-सेना उस समय तक काफ़ी घट चुकी थी। वास्तव में हैदर और टीपू से बढ़ कर शत्रु अङ्गरेज़ों को भारत में

* *Tipu Sultan*, By Colonal Mills pp. 75, 81, 95, 96, 201 and 202.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कोई नहीं मिला। टीपू के विरुद्ध अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों के विष उगलने का यही एकमात्र कारण है।

किन्तु टीपू अपने समस्त सामन्तों तथा अनुयायियों को उस तरह की सत्यता और निष्ठा के पाश में बाँध कर न रख सका, जिस तरह के पाश में हैदरअली ने उन्हें बाँध रक्खा था। इसके कई कारण हो सकते हैं। एक इतिहास-लेखक लिखता है कि हैदर अपने जिन विद्रोही मुलाज़िमों को एक बार बरख़ास्त कर देता था, उन्हें दोबारा अपने यहाँ न रखता था। किन्तु टीपू का व्यवहार इसके विपरीत था, वह इस तरह के आदमियों को एक बार सज़ा देकर उन्हें फिर बहाल कर देता था। इस इतिहास-लेखक का अनुमान है कि यह एक त्रुटि ही टीपू के नाश का कारण हुई।

असलीयत यह है कि विश्वासघात का जो पौधा हैदरअली के रहते हुए मैसूर की भूमि में न फल सका, वह धीरे-धीरे टीपू के शत्रुओं के लगातार परिश्रम और सिञ्चन द्वारा टीपू के समय में आकर फल देने लगा। सम्भव है कि देशघातकता के उस महान् पाप से भारतीय आत्मा को मुक्त करने के लिए—जिसने कि वास्तव में वीर टीपू की शक्ति को चारों ओर से घेर कर चकनाचूर कर दिया—भारत का एक बार विदेशी शासन के कठिन अनुभवों में से निकलना आवश्यक था। जो कुछ हो, टीपू वीर, योग्य और अपनी प्रजा का सच्चा हितैषी था। उसके शत्रु भी इस बात से इनकार नहीं कर सकते कि उसने अपने रुधिर के अन्तिम बिन्दु से अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा का प्रयत्न किया। उसने कभी किसी के साथ दग़ा नहीं की। उसकी मृत्यु एक आदर्श वीर की मृत्यु थी। भारत की स्वाधीनता के रक्षकों में उसका पद अत्यन्त ऊँचा था। और संसार के स्वतन्त्रता के 'शहीदों' में उसका नाम सदा के लिए स्मरणीय रहेगा।

हमें दुख और लज्जा के साथ यह स्वीकार करना पड़ता है कि औरङ्गज़ेब की मृत्यु के समय से सन् ५७ के विप्लव तक अङ्गरेज़ों और भारत के सम्बन्ध के डेढ़ सौ वर्ष के राजनैतिक इतिहास में हमें हैदर और टीपू दो, और केवल दो, व्यक्ति ही ऐसे नज़र आते हैं, जिन्होंने कभी किसी अवसर पर भी अपने किसी देशवासी के विरुद्ध विदेशियों के साथ 'समझौता' करना अङ्गीकार नहीं किया। विशेषकर टीपू यदि चाहता तो इस उपाय द्वारा आसानी से अपनी सत्ता के कुछ न कुछ अवशेष और सौ दो सौ वर्ष के लिए छोड़ सकता था। वह मर मिटा, किन्तु मरते-मरते उसने अपने दामन पर यह दाग़ लगने नहीं दिया। ध्यानपूर्वक खोज करने पर भी इन डेढ़ सौ वर्ष के अन्दर हमें कोई और हिन्दू अथवा मुसलमान नरेश अथवा नीतिज्ञ ऐसा नहीं मिलता, जिसका चरित्र इस विषय में सर्वथा निष्कलङ्क रहा हो।

टीपू की मृत्यु के बाद उसकी समाधि के ऊपर एक कवि ने मृत्यु की तारीख़ लिखते हुए कहा है—

चुँ आँ मर्द मैदाँ निहाँ शुद ज़ दुनिया,
यके गुफ़्त तारीख़ शमशीर गुम शुद।

अर्थात्—"जिस समय वह वीर संसार की दृष्टि से अतीत हुआ, किसी ने तारीख़ के लिए ये शब्द कहे—'शमशीर गुम शुद',*—अर्थात् तलवार गुम हो गई।"

मृत्यु के २४ वर्ष बाद उसकी याद में उसके किसी देशवासी ने एक मरसीया लिखा। इस मर्मस्पर्शी मरसीये के प्रत्येक खण्ड के अन्त में एक अनुपद आता है, जिसका अक्षरशः अनुवाद यह है—

"अल्लाह! इस तरह मर जाना अच्छा है,
"जब कि युद्ध के बादल हमारे सरों पर ख़ून बरसा रहे हों,
"बजाय इसके कि कलङ्क की ज़िन्दगी बसर की जावे,
"और सन्ताप और लज्जा के साथ उम्र काटी जावे।"

*इन फ़ारसी शब्दों से टीपू की मृत्यु का सन् निकलता है।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शब्द और अर्थ

[ले० श्री० मथुरालाल जी शर्मा, एम० ए०]

शब्द हृदयगत भावों के प्रायः यथावत् व्यञ्जक नहीं होते। 'साइन पोस्ट' के समान वे किसी स्थान की ओर सङ्केत करते हैं। स्थान पर पहुँचना-न पहुँचना पाठक या श्रोता का काम है। शब्द-सङ्केत पाने के बाद श्रोता को चाहिए कि वक्ता के भावान्तस्तल में प्रवेश करे। इसी का नाम सहृदयता है। वक्ता के हृदय-स्वर को पहचाने बिना उसका भाव-गायन समझ में नहीं आ सकता। शब्द शरीर है और भाव आत्मा। शब्दों के आत्मा से यदि परिचय नहीं हुआ तो श्रोता ठगा गया और वक्ता या तो निराश या दुखी हो गया या अपने शब्द-जाल के प्रयोग में सफल। यदि वक्ता का उद्देश्य है कि श्रोता शब्दों के अगोचर अभिप्राय को समझे और वह अभिप्राय श्रोता की हृदय-हीनता या भावों की असहयोगिता के कारण न समझा गया तो वक्ता को निराशा तथा दुःख होगा। और यदि उद्दिष्ट अभिप्राय से विपरीत आशय समझा गया तो वक्ता के साथ घोर अन्याय हो गया। कभी ऐसा भी होता है कि वक्ता के मन में कुछ और होता है और कहता है कुछ और। यह शब्द-जाल में फँसाने का प्रयास है, जिसका उपयोग राजनैतिक क्षेत्र में या धूर्तों के व्यवहार में हुआ करता है। काव्य-साहित्य में यह शब्द-प्रयोग नहीं होता। 'मनसि अन्यत् कर्मणि अन्यत्'—विष का संक्रमण प्रेम-पीयूष तथा साहित्य-सुधा में नहीं हो सकता। इन क्षेत्रों का नियम है 'मनसि एकं वचसि एकं'। इस मन तथा वचन की एकता को अनुभव करने के लिए श्रोता में सहृदयता तथा सहानुभूति होनी चाहिए। तथा इसको पूर्णतया व्यक्त करने के लिए वक्ता में अनुभाव या भाव-सूचक मुखाकृति तथा भावाभिनय होना आवश्यक है। यदि वक्ता में अनुरूप अभिनय तथा श्रोता में सरस सहृदयता नहीं है तो केवल शब्दों द्वारा मन तथा वचन का सुन्दर समन्वय व्यक्त नहीं हो सकता। यही कारण है कि लोग श्रव्य-काव्य की अपेक्षा दृश्य-काव्य में अधिक रुचि रखते हैं। दृश्य-काव्य में शब्दों के अतिरिक्त अनुभावक अभिनय होता है, जिससे श्रोता आसानी से शब्दों के भाव को हृदयङ्गम कर सकते हैं। परन्तु श्रव्य-काव्य में यह बात नहीं है। कवि पाठक के पास नहीं होता, केवल उसके शब्द होते हैं। शब्दों के अन्तर्गत भावों का अनुभव करना पाठक का कार्य रह जाता है।

भावों के सुन्दर सदन तक पहुँचने के लिए शब्दावलि केवल सोपान-पंक्ति है। यदि श्रोता या पाठक सोपान पर खड़ा हुआ ही सदन की प्रशंसा या निन्दा करने लगे तो यह उसकी भारी भूल होगी। शब्दान्तर्गत आशय को हृदयङ्गम करना श्रोता का कर्त्तव्य है और पाठक का नैपुण्य। कवि का भी कर्त्तव्य है कि वह यथाशक्य भावानुरूप शब्दों का प्रयोग करे, परन्तु फिर भी भाव कभी शब्द या इन्द्रियों के विषय नहीं बन सकते। भावों का स्थान है हृदय, न कि वाणी। जिसको हृदय अनुभव करता है उसको वाणी पूर्णतया तद्रूप व्यक्त नहीं कर सकती; क्योंकि "गिरा अहृदय हृदय बिनु वाणी।" अतः शब्दान्तर्हित अभिप्राय को समझने का प्रयास करना अधिकतर श्रोता या पाठक का ही कर्त्तव्य रह जाता है। कवि-हृदय में नैसर्गिक चिन्ता होती है कि यथासम्भव भावों को सुन्दर तथा स्पष्ट-रूप से यथावत् व्यक्त किया जावे। कवि कभी अलङ्कार का आश्रय लेता है और कभी वृत्ति की सहायता। कभी वह उक्ति-वैचित्र्य ग्रहण करता है और कभी सरल शैली। तिस पर भी यदि कोई कवि इस बात की आशा करे कि प्रत्येक पाठक उसके हृदय को समझ जायँगे तो उसको निराशा ही होगी। क्योंकि भाषा पर चाहे जितना अधिकार हो, उक्ति में चाहे जितना सौन्दर्य हो और शैली चाहे जितनी मधुर हो, फिर भी भाव तो भाव ही रहेगा। शब्दों का जामा पहनने से वह शब्द नहीं बन सकता। विदेशी पोशाक उसकी क़ौमियत को नहीं बदल सकती।

कुछ काव्य-मीमांसकों का मत है कि काव्य में भाषा,

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वृत्ति या अलङ्कार गौण हैं तथा रस प्रधान। इस मत को स्वीकार करके संस्कृत तथा हिन्दी के अनेक कवियों ने रचना करते समय यह लक्ष्य रक्खा कि रस की प्रचुर पुष्टि की जावे। उन्होंने इसमें प्रशंसनीय सफलता भी प्राप्त की, परन्तु रस को अनुभव करने के लिए भी तो पाठक या श्रोता में हृदय चाहिए। कवि चाहे रस का विकास भली-भाँति कर दे, परन्तु यदि पाठक का हृदय शुष्क और ऊसर है तो रस-वर्षा उसके लिए निष्फल है। ऐसे हृदय वाले मनुष्य को काव्य सुनाने से जो कवि को निराशाजन्य दुःख होता है उसका विचार करके श्री० भर्तृहरि व्यथित होगए थे और कहा था—'अरसिकेषु कवित्व निवेदनम् शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख।' जान पड़ता है कि बिहारी को भी ऐसे लोगों से पाला पड़ा था। तभी वह करुण स्वर से चिल्ला उठा था—'रे गन्धी मतिमन्द तू इतर सुँघावत काहि।' प्रत्येक कवि के हृदय में यह प्राकृतिक अभिलाषा होती है कि उसके अभिप्राय को पाठक यथावत् समझें। परन्तु कवि-द्वारा भावों की अभिव्यक्ति तथा पाठक द्वारा उनकी अनुभूति के लिए कवि तथा पाठक के हृदयों में सहयोगिता होनी आवश्यक है। भावुकत्व तथा भोजकत्व दोनों दुर्लभ गुणों का समन्वय हो तभी कवि को सन्तोष होता है और तभी कवि का अभिप्राय सिद्ध।

हम पहले ही बतला चुके हैं कि शब्द भावों के सङ्केत मात्र हैं। वक्ता का आशय उनमें तिरोहित रहता है। उसको जानने के लिए शब्दों के आत्मा में प्रवेश करना चाहिए। शब्दावली को नहीं, बल्कि शब्दावली के हृदय को पढ़ना चाहिए। भावों की अभिव्यक्ति में शब्द केवल सहायक हैं। कभी-कभी तो भावों को समझने के लिए उन पर ध्यान देने की भी आवश्यकता नहीं रहती। सहृदय श्रोता वक्ता के नेत्र तथा अन्य अङ्गाभिनय से ही उसके हृदय की बात जान लेता है। वास्तव में मूक भाषा ही सर्वाधिक मार्मिक होती है। एक जर्मन काव्य-मीमांसक के मतानुकूल यदि शब्द चाँदी हैं तो मौन सोना। वास्तव में शान्त और निस्तब्ध नीरवता महान् काव्य है। सम्पूर्ण सुन्दर भाव इसमें अन्तर्हित हैं। भावातिशयता निःशब्द है। अतिरेकावस्था में न मन्द मुसकान है न आह्लाद-हास्य और न आर्त्त-अश्रु। फिर भी सहृदय दर्शक उस रस में ग़र्क़ हो जाता है। कैलाश-पति के क्रोधानल से कामदेव जब भस्म हो गया तो रति के शोकातिरेक का कालिदास किस ख़ूबी से वर्णन करते हैं! देखिए—

तीव्राभिषङ्गप्रभवेण वृत्तिं,
मोहेन संस्तम्भयतेन्द्रियाणाम्।
अज्ञातभर्त्तृव्यसना मुहूर्त्तं,
कृतोपकारेव रतिर्बभूव॥

अत्यन्त तीव्र शोकावेग ने रति की इन्द्रियों के व्यापार को बन्द कर दिया। वह बेसुध हो गई। उसको पति की मृत्यु का भी पता न रहा। क्षण-भर के लिए मानों उसका बड़ा उपकार हो गया। वियोगानलदग्ध-हृदया एक महिला की ऐसी दशा का वर्णन कवि स्कॉट ने यों किया है कि She must weep or she should die इसका शोक इतना गहरा है कि यदि रोने से इसका हृदय हलका न हुआ तो यह अभी मर जावेगी। कविवर शेक्सपियर भी कहता है कि शोकातिरेक में आँसू नहीं निकल पाते—Intense sorrows too deep for tears. महाकवि भारवि इसकी पूर्ति करते हुए कहता है कि अतिरेक की अभिव्यक्ति नहीं होती—'नार्हत्याभिव्यक्तिमतिरेकः।'

वास्तव में भावातिरेक तथा शब्द-साफल्य में एक अखण्ड अनुपात है। ज्यों-ज्यों भाव अधिकाधिक प्रौढ़ होंगे त्यों-त्यों शब्द उनको व्यक्त करने में असफल होंगे। और ज्यों-ज्यों भाव साधारण होते जायँगे त्यों-त्यों शब्दों का सामर्थ्य बढ़ता जावेगा। यही कारण है कि अत्यन्तातिरेकावस्था में भाव मौन द्वारा प्रकट होते हैं और शब्द नितान्त असफल या असमर्थ ही नहीं, बल्कि अनावश्यक हो जाते हैं। फिर जब अतिरेक कम होने लगता है तो हृदय का उबाल अश्रु, हास्य, मुसकान या लय में व्यक्त होता है। जब पति-परायणा रति को कुछ होश आया तो जान पड़ता था कि विधाता ने उसके वैधव्य-दुख को पुनर्जाग्रत कर दिया। "वसुधा लिङ्गन धूसरस्तनी" तथा "विकीर्ण मूर्धजा"—रति तब रुदन करने लगी। मानव-हृदय के निपुण निरीक्षक कालिदास तुम धन्य हो, धन्य हो!! शोकातिरेक का ऐसा सुन्दर चित्र यदि तुम नहीं खींचते तो और कौन खींचता? चौदह सौ वर्ष बाद तुम्हारे भावों की प्रतिध्वनि उस्ताद दाग़ के दिल में हुई थी तब उन्होंने फ़रमाया था—'दर्द का हद से गुज़रना है दवा हो जाना।' अस्तु, रोदन, हास्य या मुसकान में शब्दाकृति विभावित नहीं होती। इस

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अवस्था में शब्द ध्वन्यात्मक रहते हैं, क्योंकि अतिरेक में पर्याप्त न्यूनता नहीं होती। पाठकों को अनुभव होगा कि रोदन या हास्य अवस्था के भाव मौनावस्था या मूर्च्छावस्था के भावों की भाँति शब्दों की सहायता के बिना भी किस प्रकार समझ में आ जाते हैं। जब अतिरेकावस्था निकल जाती है, भाव ठिकाने लग जाते हैं और हृदय-क्षोभ शान्त हो जाता है, तब शब्द सफल होने लगते हैं। अन्त में जब भाव विलीन होकर स्मृतिशेष रह जाते हैं, तब हम कहते हैं "उसको शोक था, उसको हर्ष था, आदि" यहाँ शब्दों का प्रभुत्व है और भावों का अभाव।

अब पाठक समझ गए होंगे कि भावों की अभिव्यक्ति में शब्द या वाणी का क्या स्थान है। कवि कालिदास को वाक् और अर्थ के समन्वय से बढ़ कर और कोई समन्वय नहीं रुचा। वह कहता है कि 'वागर्था इव संपृक्तौ × × ×।' भारत-कोकिला सरोजिनी भी शब्द और अर्थ के निरन्तर सम्बन्ध पर मुग्ध हैं। वह अनुभव करती हैं कि शब्द और अर्थ यदि अलग हो सकते हों तो प्रेमी के हृदय भी अलग हो सकते हैं, सुनिए—

If I could teach
My meaning to be severed from my speech
Perchance for one vague how I might devise some secret miracle
To be delivered from your poignant spell.

कवि और कोकिला दोनों का ही गान सरस है और सुन्दर है। दोनों के स्वर में सत्य का अंश है। वास्तव में शब्द और अर्थ का सम्बन्ध अखण्ड है और अद्वितीय है। परन्तु फिर भी हम अनुभव करते हैं कि इस प्रत्यक्ष सम्बन्ध के अन्तर्गत घोर दुखदाई पार्थक्य भी घुसा हुआ है। यह बात विचित्र सी सुनाई देती है, पर है यह सत्य और अनुभव-सिद्ध। अर्थ शब्द में संपृक्त भी है और पृथक् थी। उपनिषद्कार ने जो बात ब्रह्म के लिए कही है वह अर्थ या भाव के लिए भी लागू हो सकती है। ब्रह्म की भाँति भाव दूर भी है और निकट भी। तद्दूरे तद्वन्तिके।

शब्दसागर में डुबकी लगाने पर भाव-मुक्ताओं की प्राप्ति होती है। घास की भाँति वे शब्द जल पर नहीं तैरा करते। वे गहन तल में पड़े रहते हैं। उनकी प्राप्ति के लिए हृदय चाहिए। पुष्पों में सुगन्ध, अङ्गों में लावण्य और मुस्कान में विलास की भाँति शब्दों में भाव घुसा रहता है। सरस हृदय उनको शीघ्र अनुभव कर लेता है। उसके लिए वे प्रति शब्द में और प्रति ध्वनि में छलकते रहते हैं। शब्दों की अभिधा, व्यञ्जना और लक्षणा का उसे तत्काल अनुभव हो जाता है। परन्तु यदि हृदय नीरस है और भोजकत्वगुण से शून्य है तो उसके लिए कवि के शब्द केवल शब्द ही हैं। सरस हृदय विहङ्गों के कलरव में और नदियों के कलकल निनाद में भी अद्भुत गायन का अनुभव करता है। परन्तु नीरस हृदय के लिए वे केवल सर पचाने वाले शोर हैं। एक फ्रेञ्च कवि कहता है कि—"गाने से परे जो गायन है उसको सुनना सीखो।" यही बात प्रत्येक प्रकार की कविता तथा प्रेमियों के पारस्परिक भाषण के सम्बन्ध में कही जा सकती है। "शब्दों से परे जो शब्द है उसको सुनिए" इस गोचर तथा अगोचर के अलौकिक समन्वय के अनुभव का नाम भोजकत्व है। मम्मट के शब्दों में वह व्यक्ति धन्य है, जिसका हृदय इस वाञ्छनीय गुण से अलङ्कृत है।

वास्तव में सहृदयता की जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही कम है। एक प्रकार से सहृदय पाठक का स्थान भी उतना ही ऊँचा है, जितना कवि का। कवि भावों का स्रष्टा है और सहृदय पाठक उनका भोक्ता। कवि अपने लिए रचना नहीं करता, उसका ध्येय होता है दूसरों को आनन्द देना। उसको इसी में आनन्द है कि उसकी रचना से दूसरे आनन्दित होते हैं। जब कविवर वर्ड्सवर्थ को प्रोफ़ेसर रिचार्डसन के पत्र से यह विदित हुआ कि उनकी कविता को भारतीय विद्यार्थी बड़े चाव से पढ़ते हैं, तो कविवर गद्गद् हो गए। कवि और प्रेमी यही चाहते हैं कि उनके भावों को ज्यों का त्यों समझा जाय। कोई भी पुरस्कार उनको इतना सन्तुष्ट नहीं कर सकता, जितना उनके भावों की क़द्रदानी। कवि क्या, कोई भी लेखक या वक्ता अपने शब्दों का अन्तिम ध्येय यही समझता है कि उसके भाव पाठक या श्रोताओं के हृदयगत हों। परन्तु पार्थिव विषयों पर लिखने या बोलने वालों को इस उद्देश्य-प्राप्ति में कठिनता नहीं होती। उनके विषयों का सम्बन्ध हृदय से नहीं, किन्तु दिमाग़ से होता है—जो तर्क द्वारा उक्ति की छानबीन करके सार को ग्रहण कर लेता है। काव्यक्षेत्र में तर्क या विज्ञान की गुज़र नहीं होती। प्रेमी के हृदय का वास्तविक आशय जानने के लिए तथा कवि का अभिप्राय समझने के लिए सरसता तथा

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सहृदयता चाहिए। यदि पाठक में ये गुण हैं तो कवि का कार्य सफल है, अन्यथा उसका गायन, कथन या काव्य अरण्य रोदन है!

कवि, प्रेमी और पागल तीनों ही कल्पना के जीव हैं—यह महाकवि शेक्सपियर की उक्ति कितनी सुन्दर, गहन तथा मार्मिक है! कल्पनारूढ़ होकर कवि संसार से स्वर्ग में और कभी स्वर्ग से संसार में पहुँचा करता है। यही बात प्रेमी की है। अतः उनके भावों को समझने के लिए पाठक को भी कल्पना-शक्ति का उपयोग करना चाहिए। तर्क से या बहस से काम लेना कवि के साथ घोर अन्याय करना है। विज्ञान की प्रयोगशाला में या तर्क के युद्ध-क्षेत्र में काव्य या प्रेमालाप की परीक्षा नहीं हो सकती। सुन्दर सुमन के सौरभ का अनुभव करना हो तो उसको वनस्पतिशास्त्र की प्रयोगशाला में ले जाकर उसका विश्लेषण मत कीजिए। फूल के आकार, भार, नाप या तोल का ख़्याल छोड़ कर उसकी सुगन्ध का ध्यान कीजिए। इसी प्रकार शब्दों की निरुक्ति, रचना या पद-व्याख्या की ओर ध्यान देने से कवि के भावों का पता नहीं चलेगा। बहस में भगवान्, कुत्तों की लड़ाई में गान और शब्दों की छानबीन में भाव नहीं मिल सकते। कवि के भावों को समझने के लिए आवश्यक है कि पाठक की हृत्तन्त्री का काव्य के स्पर्श से वही तार झनकार उठे जिसमें से कवि के अभिप्राय का स्वर निकल सकता हो। जब कवि और पाठक, श्रोता और वक्ता की हृत्तन्त्रियों के तार एकस्वर हो जाते हैं, तब काव्य-गान सफल होता है। यही भावुकता और भोजकता का समन्वय है।

काव्य-रस का आस्वादन करने के लिए पाठक में केवल भोजकता गुण होना ही काफ़ी नहीं है, एक अवस्था विशेष की और आवश्यकता होती है। उस अवस्था को भावों की सहयोगिता कह सकते हैं। जो भाव कवि व्यक्त करना चाहता है, उसी भाव को प्राप्त करने के लिए पाठक को तैयार होना चाहिए। सहृदय पाठक भी सब प्रकार के भावों का चाहे जिस समय आनन्दानुभव नहीं कर सकता। यह सम्भव नहीं कि शोकसन्तप्त पाठक कालिदास के ऋतु-संहार में प्रवेश कर सके या हर्षोल्लसित वाचक अज-विलाप की मार्मिकता को समझ सके। परन्तु यदि कवि और पाठक के भावों में एकता हुई तो पाठक फ़ौरन काव्य-रस में प्लावित हो जायगा। प्रायः सहृदय मनुष्य इस संसार को अपने हृदय-दर्पण में देखा करता है। यही कारण है कि कविवर मधुसूदन दत्त की विरहिणी व्रजाङ्गना को यमुना नदी के कलकल निनाद में करुण स्वर सुनाई पड़ा था और विश्व के प्रति पदार्थ की गति में उसे अपने शोक की प्रतिध्वनि कर्णगोचर होती थी। ज़ेबुन्निसा को कल्पना हुई थी कि उसकी दर्द-भरी आहों से आसमान का रङ्ग नीला हो गया है। पति-वियोग व्याकुला महाराणी एलिज़ाबेथ को एक जर्मन शोक-काव्य पढ़ने पर ऐसा प्रतीत हुआ था मानों उसमें उन्हीं की हृदय-व्यथा का वर्णन है। इस प्रकार भावों की अनुकूल जाग्रति हो, तब काव्य के रस का आस्वादन होता है।

रसगङ्गाधर ने ठीक कहा है कि काव्य की आत्मा ध्वनि है। शब्दों की ध्वनि के अन्तर्गत जो भाव हैं वही असली काव्य है। यह मन और वाणी से अगोचर है, यह गूँगे का गुड़ है। "वे चितवन और कछुक जिहि बस भए सुजान।" बिहारी की इस अमर-पंक्ति में जो 'और' शब्द से ध्वनि निकलती है और सहृदय पाठक इसके अन्दर जिन भावों का अनुभव कर सकता है वे अनिर्वचनीय हैं। 'और' शब्द का रस और महत्व बिहारी एक पुस्तक लिख कर भी स्पष्ट नहीं कर सकते थे। यह हृदय की बात है, बहस की नहीं। कविवर वर्ड्सवर्थ के अलौकिक काव्य की समालोचना करते हुए एक विद्वान् लिखते हैं कि—Wordsworth says little but means much; his poetry is not in his words but far beyond them. वर्ड्सवर्थ के शब्द थोड़े होते हैं, किन्तु उनका आशय बहुत बड़ा होता है। कवि का काव्य उसके शब्दों में नहीं है, बल्कि उनसे बहुत परे है। यही बात वर्ड्सवर्थ के काव्य के लिए ही क्या, सब सुकवियों के काव्य के विषय में कही जा सकती है।

हम पहले ही शेक्सपियर की सुन्दर उक्ति उद्धृत कर चुके हैं कि कवि और प्रेमी एक ही श्रेणी के प्राणी हैं। विद्वान् लेखक स्टीवेन्सन ने क्या प्यारी बात कही है कि—"प्रेमी का आशय उसके उच्चरित शब्दों से प्रायः विपरीत होता है।" उसका आशय शब्दों में नहीं रहता, वह उसकी मुखाकृति में तथा आवाज़ में छलकता है। प्रेमी की क्षणिक चितवन से या मन्द मुसकान से जो

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाव एक पल भर में प्रकट हो जाते हैं, वे हज़ार पत्रों द्वारा भी व्यक्त नहीं हो सकते। जब डेल्बेक (Delbeque) ने एलिस (Ellis) से कहा—You, naughty creature कि "तुम उत्पाती जन्तु हो," तो वह उसके प्रेम में विह्वल हो गई। असंख्य सम्मान-पत्रों से भी उसे इतना हर्षातिरेक नहीं हो सकता था, जितना इन अटपटे तीन शब्दों से। वास्तव में कवि और प्रेमी के भावों को वही जानता है, जिसके हृदय में कसक हो।

अनुरोध

[रचयिता—पण्डित रमाशङ्कर जी मिश्र 'श्रीपति']

(१)

अरुणिमा में रवि का सानन्द,
उनीदे नयनों के पट खोल।
खिले जो मृदुल मनोरम मञ्जु,
किसे भाते न कमल वे लोल॥

(२)

प्रस्फुटित नवल कुसुम उद्यान,
ललित लतिकाएँ सुषमा-पुञ्ज।
प्रकृति-सर्वस्व सुगन्धित शुभ्र,
न भाते किसे कहो वे कुञ्ज॥

(३)

सरस भीने सौरभ से पूर्ण,
पड़ी अब तक न प्रणय के जाल।
सुखप्रद है न किसे वह मीत,
कली जो बनी न बिंध कर माल॥

(४)

किसे लगते न सुखद कमनीय,
मनोहर दृश्य अनोखे रङ्ग।
किन्तु हे भावुक! सरस रसज्ञ,
अनोखे अहो तुम्हीं क्या भृङ्ग॥

(५)

मधुप्रिय, निष्ठुर, कुटिल, मदान्ध,
लूटते फिरते हो मकरन्द।
शान्त कर निज मन की तापाग्नि,
गीत गाते फिरते स्वच्छन्द॥

(६)

निछावर करते थे प्रिय प्रान,
त्याग कर जिस पर निज सुख-साज।
मधुप! जिसका लूटा सर्वस्व,
उसी सुन्दर कलिका की आज॥

(७)

न लोगे सुधि क्या? अब रसिकेश!
करोगे प्रियतम! क्या अब मान!
धूलि-धूसरित पड़ी वह हाय!
यही है क्या तेरा सम्मान!!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दोषी कौन है ?

[ले० श्री० केदारनाथ जी अग्रवाल, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

प्रतिमा-पूजन की प्रथा भारतवर्ष में परम्परा से चली आती है। मलमास में कोई मिट्टी के शिव की पार्थी को शिवस्तोत्र सुनाता है तो कोई गोदावरी के तट के नदियों द्वारा विच्छेदित पर्वतों के छोटे-छोटे सुन्दर टुकड़ों को शालिग्राम कहता है। मन्दिरों और शिवालयों का भारतवर्ष में, इस समय, मुसलमान सम्राट् के निर्दयी आघात के पश्चात् भी, इतनी संख्या में वर्त्तमान रहना यही सूचित करता है कि प्रतिमा-पूजन की अभिलाषा हिन्दुओं के हृदय में आर्यसमाजियों और उनके अनुयायियों के जी-तोड़ परिश्रम पर भी अभी वैसी ही जहरा रही है। मुसलमानों के हृदय में भी उस पूजा-स्थान की इतनी इज़्ज़त है कि कलकत्ते के 'नाख़ुदा' के सामने बाजा बजने के लिए चौबीसों घण्टे दफ़ा १४४ का नोटिस जारी रहेगा। प्रति दिवस हिन्दू-पेपर्स चिल्लाते सुनाई पड़ते हैं। इसी प्रतिमा-पूजन के ओट में रोज़ाना गोहार लगाते हैं कि अमुक स्थान में मुसलमानों की ज़्यादती से बलवा हो गया। मुसलमान-अख़बार प्रति दिन इस बात का राग अलापते हैं कि अमुक मस्जिद के सामने नमाज़ के समय बाजा बजा, और इस तरह से हिन्दुओं ने मुसलमानों की प्रार्थना में विघ्न डाला। कोई मनुष्य इस युग में स्वतन्त्र नहीं रह सकता। प्रति घड़ी यही डर लगा रहता है कि कहीं आपस में प्रतिमा की अग्नि न भभक उठे। महात्मा गाँधी, हाथ पर हाथ धरे बैठे, परमात्मा से प्रार्थना कर रहे हैं कि ये धार्मिक झगड़े किसी प्रकार बन्द होते तो हम अपनी बाँसुरी पर अपनी विद्या की निपुणता और असहयोग का गीत गाकर दिखाते। मालवीय जी अलग ही तीन चावलों की खिचड़ी पका रहे हैं। नेता लोग प्रति दिन कान्फ्रेन्सेज़ और मीटिंग्स करते हैं कि कोई ऐसा समझौता निकल आता जिससे हमारे आपस के द्रोह का अन्त हो जाता। लेकिन यह सब व्यर्थ के बकवास हैं। उनकी आशा कभी फल-वती नहीं हो सकती।

'जॉनबुल' कहता है, मैंने एक अद्भुत 'मैजिक रॉड' इस धार्मिक युद्ध के अन्त करने का निकाला है। कहता है, यदि दोनों की आराध्यदेवी एक हो जायँ तो इन दोनों में झगड़े की तनिक भी आशङ्का न रहे। यदि एक ऐसी प्रतिमा ढूँढ़ निकाली जाय, जिसकी उपासना में लवलीन रहना दोनों ही अपना धर्म समझें, फिर प्रति दिन के कलह का बोरिया-बँधना इस पृथ्वी-मण्डल से उठ जाय। 'जॉनबुल' की राय में दालमण्डी की अप्सराएँ ही ऐसी हैं, जो इस सिंहासन को सुशोभित करके इस महान् कार्य का सञ्चालन भली प्रकार से कर सकती हैं। इन्हीं की नियुक्ति इस पद के योग्य है—यही एक ऐसी देवी हैं जो दोनों को एक ही खूँटे में बाँध सकती हैं। बाल्यकाल में हिन्दू, हिन्दू और मुस्लिम का सङ्गठन, युवावस्था की शोभा, जीर्णावस्था में मुस्लिम, ऐसे गुण और किसमें मिलेंगे। ये गुण ऐसे हैं जिनसे दोनों को इनका पुजारी होने में मोक्ष-लाभ की आशा हो सकती है। इनसे दोनों दिल खोल कर मिलने की उत्कट इच्छा रखते हैं। दोनों इनके पैर की धूलि को बाबा जी की भभूति समझते हैं। विशेष गुण इनमें यह है कि ये प्रायः सभी परम पूजनीय ब्राह्मण के और शूर-वीर क्षत्रियों की वंश-उजागिरा रहती हैं। बाल्यकाल में इनकी शिक्षा हमारे गुरुदेव ब्राह्मणदेव के यहाँ होती है। युवावस्था में माता-पिता या सास-ससुर के अनुचित और कठोर व्यवहार या पड़ोसियों की चञ्चलता उन्हें घर से निकाल कर 'सारिन्दों' की सुपुर्दगी में भेजती है। तो भी हम हिन्दू हैं, ब्रह्म-कुल उत्पन्ना इन श्रीमतियों का चरण हमारे लिए भृगु मुनि के चरण से कम आनन्द-दायक नहीं है। मुसलमान बिना रोक-टोक अपने खाने-पीने तथा और सब प्रकार के धार्मिक व्यवहारों में उनको अपने साथ पाते हैं। यह जाति ऐसी है जो हिन्दू होते हुए भी मुसलमानों को अपने हृदय में स्थान देती है, तो

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्यों न मुसलमानों की भी यह परम पूजनीया हो। इनके उपासक हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही हैं। इनकी प्रतिमा-पूजन में दोनों पन्थों को तनिक भी सङ्कोच नहीं हो सकता। इतनी बड़ी देवी, जिसकी उपासना से इस पृथ्वी-मण्डल के सभी धार्मिक झगड़ों की अन्त्येष्टि हो जाय 'जॉनबुल' की राय में इनके अलावा और कोई भी होने योग्य नहीं है।

हिन्दू-शास्त्रज्ञों के मतानुसार प्रति कन्या का विवाह उनके तेरहवें वर्ष में पैर रखने के पूर्व हो जाना ब्रह्मा की लकीर है अथवा लक्ष्मण की रेखा है। ऐसा नहीं होता तो माता-पिता बहुत बड़े दोष के भागी होते हैं। यदि हम अपने तईं शास्त्र को पालन करने के लिए यहीं तक बाध्य समझते तो भी ग़नीमत थी। लेकिन हम उनसे भी सैकड़ों डिग्री आगे बढ़ कर अपनी कन्याओं का तीन और चार ही वर्ष की अवस्था में विवाह कर दिया करते हैं।

कुछ यहीं तक नहीं, बूढ़े अमीर अपने बुढ़ापे में दूसरे जन्म के लिए साठ-साठ वर्ष की अवस्था में दस और बारह वर्ष की कन्याओं के साथ गाँठ जोड़ते फिरते हैं। "बूढ़ा वर प्रहसन" बूढ़ों की खोपड़ी में घुसता ही नहीं। कमल के पत्र पर जल की वर्षा है। बेचारे दरिद्र अपनी सीधी-सादी कन्याओं को दो-दो और चार-चार सौ की चमचमाहट की आड़ में इन भट्टियों में झोंक देते हैं। हम उन्हें प्रति दिन धनोपार्जन के लिए अयोग्य से अयोग्य और बूढ़े से बूढ़े भतारों के सुपुर्द करते रहते हैं। हमें तो अपनी इन्द्रियों को तृप्त करना है। हमें यह सोचने का कहाँ समय है कि हमारे इस गँठबन्धन का प्रभाव लखनऊ के गोल दर्वाज़े पर क्या पड़ता है। इस अनुचित वयस के सम्बन्ध का फल आगे चल कर वही होता है। बारह-बारह वर्ष के बच्चे, बिना अपनी वामाङ्गियों का दर्शन किए ही, दोनों घरानों को रोते-बिलखते छोड़ कर इस पृथ्वी से प्रस्थान कर जाते हैं! बूढ़े बाबा विवाह होने के चार ही पाँच वर्ष के भीतर इन अबलाओं को अपने कामी इष्ट-मित्रों और पड़ोसियों तथा दुराचारी अनुचरों की सोसाइटी का लाभ उठाने के लिए, छोड़ कर टें हो जाते हैं। ये विधवाएँ अकेले पड़ कर माता-पिता और सास-श्वसुर की आँख की किरकिरी हो जाती हैं। उनके भाई-बन्धु उन्हीं की आँखों के सामने अपनी स्त्रियों के सहवास का आनन्द उठाते हैं। उनके घर की और स्त्रियाँ विविध प्रकार के अच्छे से अच्छे वस्त्र पहन सकती हैं, उत्तम से उत्तम अप-टु-डेट नमूने के गहने उनके लिए बनते हैं, बढ़िया से बढ़िया खाना पकता है; लेकिन ये विधवाएँ पति-वियोग में इन सबको छू तक नहीं सकतीं। इनके लिए तो वही जौ की रोटी और दाल!

किसकी प्रकृति ऐसी होगी जो अपने ही घर में दूसरों को इस प्रकार से आनन्द उठाते देखे और स्वयम् उसको सर्प का बिल समझे। इस प्रकार की अबलाओं का होना तो इस युग में सम्भव नहीं, लेकिन तो भी हमें उन्हें पतिव्रता गान्धारी से कम नहीं बनाना है। हम उनका विवाह अयोग्य रूप से बच्चों और बूढ़ों के साथ कर दें, विधवा होने पर वैधव्य-पालन की आज्ञा दें, उन्हीं की आँखों के सामने अपनी इन्द्रियों को तृप्त करने की भिन्न-भिन्न चालें चलें, और तो भी इस बात की आशा करें कि ये मिल कर इलाहाबादी मुट्ठीगञ्ज की नींव मज़बूत न करेंगी—ऐसी आशा पर बलिहारी है!

शिक्षा हम उन्हें इस सम्बन्ध की देते नहीं, जिससे उनके आचरण पर हमारी शिक्षा का थोड़ा-बहुत भी प्रभाव पड़ सके। प्रथम तो हमारे कोड में स्त्री-शिक्षा पाप का मूल है और यदि किसी अभागे ने शिक्षा देने की बात सोची भी, तो अशिक्षित होने के कारण उचित और अनुचित शिक्षा में भेद नहीं जान पाता। शिक्षित भी हुआ, तो दरिद्रता उनकी कन्याओं को स्कूल ही की परिपाटी के अनुसार उन्हें शिक्षा दिलाने को बाध्य करती है। और वहाँ की गति (देहाती निसाँ स्कूल) जो होती है वह सब पर विदित ही है। 'सारङ्गा सदावृज' 'क़िस्सा तोता-मैना' 'सङ्गीत पूरनमल' वहाँ के पाठ्य हैं। शिक्षा हम उन्हें ऐसी देते हैं और आशा करते हैं कि तुलना में वे सती पार्वती से कम न हों। वैधव्य-पालन में तनिक भी पैर न फिसले। ऐसी शिक्षा के साथ यदि उनके आचरण में विशुद्धता आने पर उन्हीं को दोषी ठहराते हैं, तो हमसे बढ़ कर अन्यायी इस पृथ्वी पर कोई नहीं है।

हमारे अन्याय की सीमा का अन्त यहीं नहीं हो जाता। बहुत से प्रिय बन्धु बहुत सी अबलाओं के उपासक होते हैं। उन्हें एक-नारी-व्रत से सन्तुष्टता नहीं

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होती। प्रति दिन ये उदारचित्त प्रेमी जीव नई-नई नायिकाओं पर कृपा-दृष्टि करने का कष्ट उठाते रहते हैं। प्रति दिवस वे अपने उदार भाव का, उन बेचारी अबलाओं के चरित्र में परिवर्त्तन करने हेतु, नया आविष्कार सोचते रहते हैं। एक का उपासक होना उनकी कमज़ोरी का कारण उन्हें दिखलाई पड़ता है। इस प्रकार की उपासना उनकी स्त्री के पवित्र प्रेम में बाधा डालती है। सेठ जी रात-रात भर दूसरे की स्त्रियों के दामन के नीचे बैठ-बैठ कर गप्प लड़ाते हैं तो क्या यह सम्भव है कि सेठानी जी अपनी गोद में किसी और को शरण देने का प्रयत्न न करती हों? हम तो जहाँ चाहें, विचरें, जिस घर की गृहिणी को सुन्दर देखें उसी पर लट्टू होकर उसके सात पुश्त की पवित्र ख्याति को लीप-पोत कर बराबर करने में तत्पर रहें, और हमारी स्त्रियाँ इन सब बातों को समझती हुई भी, चुपचाप घर में बैठ कर राम-नाम जपा करें। इस प्रकार की आशा करना अपनी मूर्खता का ढिंढोरा पीटना है। क्या हमारे इस व्यवहार का प्रभाव हमारे यहाँ की स्त्रियों पर नहीं पड़ता? क्या हम इस बात को नहीं समझते कि हमारी इस उपासना से इन अप्सराओं की संख्या प्रति दिन बढ़ती जायगी?

शहाबुद्दीन गोरी जब भारतवर्ष पर विजयी हुआ था तो उसने क़ुतुबुद्दीन को ग़ुलाम बनाया था। उसकी यह प्रथा भारतवर्ष में दिन प्रति दिन उन्नति करती जा रही है। बहुत से पुरुषों ने अपनी इन्द्रियों के सुख का साधन इन्हीं ग़ुलामों को बनाया है। अपनी चिर-सङ्गिनी का त्याग उन्हें सब प्रकार से सुखमय है। उन वैरागियों ने अपनी स्त्रियों को वैराग्य का अधिकार दे दिया है। बेचारी अशिक्षिता होकर प्रायः रागिणी हो जाती हैं और 'राग' बीबी ही बन कर अपना जन्म सफल करती हैं। उन नीचों को उन्हीं ग़ुलामों की सोसाइटी में आनन्द आता है। उन्हीं की आज्ञाओं का पालन करने से हमारे श्रीमान् को छुट्टी नहीं मिलती, दिन-रात उन्हीं ग़ुलामों को प्रसन्न करने के नए प्रबन्ध सोचते रहते हैं। भला श्रीमती जी की कब हिम्मत पड़ सकती है कि श्रीमान् के इस प्रकार के ध्यानादि व्यवसाय में बाधा डाल सकें? उनकी स्त्रियों की उचित से उचित प्रार्थना भी उनके लिए बेगार है। सीधे मुँह बात तक नहीं निकलती। पुरुष की यह बेरुख़ाई देख कर सास-ससुर कब उन बेचारी अबलाओं की सूरत देखना पसन्द करेंगे। प्रत्येक दुख-सुख की सीमा होती है। जब तक सीमा के अन्दर दुख की डिगरी रहती है, वे सहने का प्रयत्न करती रहती हैं। अन्त में चल कर यही असहनीय हो जाता है और उन बेचारियों को अपने पवित्र पति के आश्रम को छोड़ कर इस नीच व्यवसाय की शरण लेनी पड़ती है!

इसी के साथ यह हमीं तो हैं जो दूसरों के यहाँ की स्त्रियों को भिन्न-भिन्न प्रकार के सुख का लोभ दिखलाते फिरते हैं। उत्तम से उत्तम और बढ़िया से बढ़िया जाल-दार बातें कह-कह कर उनको उनकी पति-सेवा से वञ्चित करने का प्रयत्न करते रहते हैं। किसकी ऐसी प्रकृति है जो चीथड़े-गुदड़े के सामने बढ़िया से बढ़िया मख़मल के गद्दे को ग्रहण करना अनुचित समझेगा? किसका ऐसा चित्त है जो धनाढ्यों का कृपा-पात्र होना पाप समझेगा? कौन ऐसा माई का लाल है जो इन दुष्टों के इन 'मिराज़' को ठुकरा कर अलग कर देगा? यह होते हुए भी बहुत सी सती-साध्वी ऐसी मिलेंगी जिनके ऊपर इन मायावी राक्षसों के प्रलोभन, चिकने घड़े के बूँद होंगे। लेकिन सब तो ऐसी हो नहीं सकतीं। ये दुष्ट उन बेचारियों को अपने सुख की सामग्री बनाने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के नए प्रयत्नों का अवलम्ब लिया करते हैं। यदि इनके कारण उनके आचरण में अन्तर आता है तो उस अन्तर का आना, आजकल के प्रवाह पर ध्यान देते हुए, प्रकृति के विरुद्ध नहीं कहा जा सकता। जब होगा, प्रकृति के विरोधियों में हमारी ही गणना होगी। हमीं लोग उनको इस मार्ग में लाने के सिद्धक-साधक गिने जायँगे!

हम लोग बहुत सी स्त्रियों को इस काम में सफलता प्राप्त करने के लिए कुटनी बना-बना कर तैयार करते हैं। उन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार की होशियारियों से सुसज्जित करते हैं और उन्हीं की शरण में अपने प्रारब्ध को सौंप देते हैं। हमारा भाग्योदय हमारे इन्हीं एजेण्टों के द्वारा उन्नति कर सकता है। एजेण्ट साहिबा स्त्री होने के कारण बिला रोक-टोक हमारे घरों को अपने चरणों से पवित्रता प्रदान कर सकती हैं। हम यह जानते हैं कि अमुक स्त्री बड़ी कुटिला है, तिस पर भी उन्हें अपने यहाँ आने-जाने देते हैं। प्रति दिन अपनी गृहिणियों को इनके व्याख्यान से शिक्षा ग्रहण करने देते हैं और इस पर यदि हमारे घर की स्त्रियाँ बाहर निकल कर और ही रूप धारण करती हैं,

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यदि बेचारी अबलाएँ उनके जाल में फँस कर उनके कथनानुसार धर्म को तिलाञ्जलि दे देती हैं तो कोई भी योग्य पुरुष यह बात कहने को प्रस्तुत न होगा कि दोष स्त्रियों का ही है।

मन्दिरों और मठों की संख्या हमारे देश में इतनी बढ़ गई है कि चार-चार क़दम पर क़तार से स्थापित हैं, तिस पर भी हमारे लिए बिना तीर्थ पर्यटन किए बैकुण्ठ का फाटक नहीं खुल सकता। विधवाओं के लिए तो विशेष रूप से तीर्थ-यात्रा आवश्यक है। प्रायः देखा गया है कि इनमें से बहुत सी काशीवास, प्रयागवास, अयोध्यावास ही किया करती हैं। और वहीं पर उनको इस व्यवसाय की शिक्षा दी जाती है। वहीं इन बेचारियों के कठिन परीक्षा का समय रहता है। अनेक तीर्थस्थान पण्डों, पुजारियों और शोहदों के क्रीड़ास्थल हैं। जिसको देश में कहीं जगह नहीं मिलती, यहीं आकर झोपड़ी डाल लेता है। इन धर्म के ठेकेदारों के पास उनके आचरण को अपवित्र करने और अपने तोंद महाराज की छल-कपट से उन्नति करने के सिवाय और कोई काम नहीं रहता, हम यह जानते हुए भी कि हमारे तीर्थों की दशा कितनी बिगड़ी हुई है, किन-किन प्रकार के दुर्व्यवहार हमारी गृहिणियों के साथ वहाँ किए जाते हैं, उनको वहाँ जाने देते हैं और वह भी प्रायः विधवाओं को तो दूसरों की रक्षा में भेजते हैं, क्योंकि हम उनके लिए विशेष चिन्ता की बात नहीं समझते। प्रति दिन सुनते हैं कि अमुक तीर्थ में इतनी स्त्रियाँ लापता हो गईं। समाचार-पत्र वाले रोज़ यह कह-कह कर कि अमुक मेले में स्त्रियों की बहुत बड़ी संख्या का पता नहीं लगा, हमारे कान गन्दे करते रहते हैं, लेकिन तिस पर भी यदि हम आँख मूँदे वही पुरानी लकीर पीटते हैं तो उसके दोषी हम हैं, न कि अनभिज्ञ बालाएँ?

यदि हममें से कोई तीर्थ-यात्रा के विरोधी भी होते हैं तो इन अशिक्षित स्त्रियों को अपने यहाँ के शिवालयों और मन्दिरों में जाने से तो कभी रुकने को कहते ही नहीं। प्रातःकाल गङ्गा-स्नान, उसके पश्चात् शिवालयों और मन्दिरों में ठाकुर जी के दर्शन, ये नित्य के नियम हैं। बेचारी अबलाएँ घर के भीतर की क़ैदी, क्या समझ सकती हैं कि पुजारियों में कैसे-कैसे गुण भरे हैं? मठाधिकारी कितने बड़े महात्मा हैं, इन दुनिया से अपरिचिता बधुओं को क्या पता हो सकता है? इसके जानने वाले तो हमीं लोग हैं। यदि इस पर भी सूर्य निकलने के पूर्व हम उन्हें इस प्रकार के पूजा-पाठ के उस स्थान में, जहाँ 'सटक सीताराम' जैसे महन्त विराजमान हों, आज्ञा देते हैं तो इसका अर्थ सिवा इसके और क्या हो सकता है कि हम स्वयं दालमण्डी के तिमञ्ज़िला बनवाने की फ़िक्र में हैं। यदि इन विधवाओं के आचरण में परिवर्त्तन लाने के लिए इन सब सुविधाओं को इकट्ठा करने वाले हमीं हैं तो क्यों उनको कलङ्क का टीका लगाया जाता है, कुछ समझ में नहीं आता।

ब्रह्म-पूजा हमारी नस-नस में इतनी कस के ठूँस दी गई है कि उनमें लाख कुकर्म हों, उनके आचरण कितने ही दूषित हों, वे कितने भी व्यभिचारी क्यों न हों, हमें तो पूज्य ही हैं, हमारे घरों में तो पुरोहित जी स्त्रियों के बीच आ ही जा सकते हैं। हम घर के आदमी हैं, हमारे घर की स्त्रियों को हमारे सामने घूँघट डालना ही पड़ेगा, लेकिन पुरोहित जी तो परमात्मा के यहाँ से पूजनीय होकर आए हैं, उनके सामने कैसा परदा? ये पाखण्डी इस प्रकार के आघात हमारी गृहिणियों पर करते हैं कि उनको सूझ तक नहीं पड़ सकता।। उनकी स्त्रियाँ प्रायः दलाली का काम करती हैं और वे उनके कमीशन-एजेण्ट होते हैं। पोथी-पत्रा देख कर बतलाते हैं कि अमुक समय रात्रि में गङ्गा-स्नान से अमुक ग्रह की शान्ति होगी। अमुक वृक्ष के नीचे अमुक प्रकार से पूजा करने से अमुक दुख से निवारण हो सकता है। ये अबलाएँ इन कठिन समस्याओं को न समझ कर इन धूर्त पाखण्डियों के हाथ में जाकर वहाँ फँस जाती हैं। यदि हम उन पुरोहितों की पूँछ काट कर उन्हें देशी बना दें, तो किसमें सामर्थ्य है कि हमारी गृहिणियों पर इस प्रकार जाल का फन्दा फेंक सके। पण्डित जी अपने यजमान की ख्याति का जनाज़ा निकालने को तो प्रस्तुत रहते हैं, लेकिन अपनी नाक की फ़िक्र नहीं करते।

कुछ इन्हीं तक नहीं, हमारे अधिकांश गुरुद्वारे भी इसी प्रकार के लोगों से भरे पड़े हैं। हमारे गुरुद्वारों की दशा प्रति दिन शोचनीय होती जाती है। गुरुमन्त्र देना उन्हें ख़ूब सिखाया गया है। पुरुष-जाति के तारक तो आप होते ही थे, हमारी गृहिणियों को भी अब आपने अपना लिया है। हमें क्या, हमें तो वही पुरानी प्रथा प्रिय है। यदि एक

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बार किसी गुरुद्वारे के शिष्य हमारे बाप-दादे हो गए तो हमारा वंश उनकी पुश्तैनी जायदाद हो गई। हमारे वंश में जितने होंगे, सबकी हजामत वहीं बनेंगी। हमारी देवियाँ इन गुरुदेवों को ब्रह्मदेव से कम नहीं समझतीं, क्योंकि आप फ़ारसी ज़बान में उनके 'उस्ताद जी' ही ठहरे! आर्यसमाजिस्ट हमें लाख समझाएँ, हमारी समझ में तो आ नहीं सकता—हम तो उन्हें धर्म का स्टॉक ही समझेंगे!

गुरुदेव के साथ प्रायः मन्दिरों के पुछल्ले भी लगे रहते हैं! उन्हें मन्दिरों में उत्सव मनाने की बड़ी उत्सुकता रहती है; क्योंकि इस योनि की समझ में परमात्मा के लिए इससे बढ़ कर रोचक पदार्थ का निर्माण ही नहीं हुआ। उत्सव पर हमारे घर की यही पतिता स्त्रियाँ इन मन्दिरों में गीत का राग अलापती हैं। या वही नाटक-मण्डलियाँ, जिनमें कि सभी शुद्ध आचरण के आदर्श होते हैं, अपने पवित्र राग से परमात्मा के कानों को सुधा-रस पिलाती हैं। क्या हमारे घर की गृहिणियाँ इन उत्सवों पर, झूलों में, जन्माष्टमी में नहीं जातीं और हम उन्हें उसी भीड़ में धक्के दे-देकर पीस नहीं डालते? क्या हम उनके साथ वहाँ अनुचित से अनुचित व्यवहार करने को तैयार नहीं रहते। क्या इस बात से कोई इनकार कर सकता है कि इन छोटी-छोटी नाटक और नौटङ्की की मण्डली के लड़के अपनी इन्द्रियों को इन गृहस्थों के ही घरों से तृप्त करने के प्रयत्न नहीं सोचते रहते हैं? क्या कोई कह सकता है कि इन मण्डलियों का प्रभाव हमारी गृहिणियों के चरित्र के बिगाड़ने पर नहीं पड़ता? हम सभी जानते हैं कि मण्डली के लड़के प्रायः व्यभिचारी होते हैं, तिस पर भी हमारा शौक़ नौटङ्की और नाटक में इतना बढ़ा-चढ़ा है कि इन छोटी-छोटी बातों का हमें ख़्याल भी नहीं हो सकता!

उपरोक्त बातों पर यदि हम ज़रा सा भी ग़ौर करें तो हमें स्वयं—बिना किसी की सहायता के—विदित हो जायगा कि इन सबकी संख्या ऊँची करने की नींव हमारे ही आचरण और दुर्व्यवहार हैं। हमीं इसके ज़िम्मेदार हैं। यदि हम अपने इन सब अनुचित व्यवहारों को त्यागने का कष्ट उठा सकें तो इनका नाश होना कोई असम्भव बात नहीं। यदि पुरुष-जाति उनके गृहों को दूषित न करे, यदि उनके बायकॉट का मन्त्र जपना हम आरम्भ कर दें तो वे इस व्यवसाय में आकर ही क्या करेंगी। यदि हम इनके नाश करने की प्रतिज्ञा दिल में ठान लें तो इन कलियुगी अप्सराओं का बीजारोपण ही लुप्त हो जाय। लेकिन हम तो यह चाहते ही नहीं हैं! हमारे तो दिल में कुछ और है, भीतर कुछ और। हम तो ऊपर से चिल्लाना जानते हैं, भीतर से तो हम उनकी दिनोंदिन उन्नति ही चाहेंगे। हम तो यह चाहते हैं कि हमारी इन्द्रियाँ भी तृप्त होती रहें और हमें कोई यह कहने वाला भी न हो कि हम जी-जान से इनके नाश करने की कोशिश में नहीं हैं। रोज़ाना म्यूनिसिपैलिटियों में हम गोहार लगाएँगे कि हम इनकी परछाईं अपने म्यूनिसिपल-एरिया के अन्दर न पड़ने देंगे। हममें से हर 'सिटी फ़ादर' अपना फ़र्ज़ समझेगा कि इन दुराचारिणियों को इस भूमण्डल पर रहने तक का स्थान न मिले। किसी युग में शिव जी ने 'रम्भा' को भस्म करके उसके नाश करने की कोशिश की थी। अब ये म्यूनिसिपल-कमिश्नर्स और सोशल रिफ़ॉर्मर्स पैदा हुए हैं। ऐसा मालूम होता है कि परमात्मा ने पृथ्वी-मण्डल का यह भारी बोझ हटाने के लिए इन्हें ढाला है। ऊपर से ये सभी फट-फटाते हैं, लेकिन दिल में इनके भी वही पाप की अग्नि जल रही है। और ठीक ही है, जॉनबुल के इतने उपकारक पदार्थ का क्योंकर नाश किया जा सकता है?

"धैर्य से मनुष्य सब कुछ कर सकता है।"
"क्या धैर्य से छलनी में पानी रक्खा जा सकता है?"
"हाँ, यदि पानी के जम जाने तक धैर्य रक्खा जावे।"

"रामलाल का पहला उपन्यास प्रकाशित हो रहा है।"
"उपन्यास का नायक कौन है?"
"जहाँ तक मेरा अनुमान है नायक प्रकाशक ही होगा।"

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मास्टर आत्माराम कहानी

[ले० श्री० 'सुदर्शन']

यंसेवक ने कहा—"वह तो हमारे मास्टर साहब हैं।"

मैं चौंक पड़ा। मुझे कभी सन्देह भी न हुआ था कि वह मास्टर हो सकता है। मैं समझता था, कोई नौकर होगा। शायद किसी वकील का चपरासी हो। इससे ज़्यादा मैंने उसे कभी कुछ ख़्याल नहीं किया। कितने आश्चर्य की बात है कि जो व्यक्ति रात के बारह-बारह बजे तक मेरी और दूसरे उपदेशकों की सेवा करता रहता था, जिसे जूते साफ़ करने, बिस्तर झाड़ने, और मैले कपड़े धोने में भी सङ्कोच न था, वह स्कूल का मास्टर निकला। मुझे बड़ा अभिमान है कि मैं आदमी को उसका चेहरा देख कर पहचान सकता हूँ। मगर मुलतान के उस उदास, निराश, चुपचाप रहने वाले अद्भुत आदमी के सामने मेरी यह शक्ति बिलकुल बेकार सिद्ध हुई। परन्तु मुझे अब भी सन्देह था कि सम्भव है, स्वयंसेवक किसी दूसरे व्यक्ति का ज़िक्र कर रहा हो। मैंने पूछा—तुम किस आदमी के विषय में कह रहे हो? मेरा इशारा उस आदमी की तरफ़ है, जो रात को हमें दूध देने आया था।

स्वयंसेवक—जी हाँ! मैं भी उन्हीं की बाबत कह रहा हूँ।

मैं—तुम मेरे रात के व्याख्यान में थे?

"हाँ थे।"

"व्याख्यान के शुरू होने पर जिस आदमी ने मेज़ पर लेम्प रक्खा था, मैं उस शख़्स का ज़िक्र कर रहा हूँ।"

स्वयंसेवक—वही मास्टर साहब हैं।

मैं—तुम ज़रूर ग़लती कर रहे हो। मैं ऐसा मूर्ख नहीं कि एक साधारण नौकर और स्कूल-मास्टर को भी न पहचान सकूँ। (थोड़ी देर के बाद) अच्छा, उनका नाम क्या है?

स्वयंसेवक—लाला आत्माराम, बी० ए०, बी० टी०। हमारे ही स्कूल में सेकेण्ड मास्टर हैं।

मैं—मगर शक्ल-सूरत से तो मालूम नहीं होता कि वह ग्रेजुएट होंगे। अगर वह मुझसे स्वयं कहते कि मैं ग्रेजुएट हूँ, मैं तब भी न मानता। समझता, झूठ बोल रहे हैं। और मुझे तो अभी तक विश्वास नहीं आता।

स्वयंसेवक—और किसी को भी विश्वास नहीं आता कि यह महात्मा ग्रेजुएट होंगे।

मैं—कपड़े कैसे मैले पहनते हैं, जैसे कुली हों। बल्कि मेरा तो ख़्याल है, कुलियों के कपड़े भी इनसे अच्छे होते हैं।

स्वयंसेवक—घर में इससे भी बुरे पहनते हैं। हाँ, जब इन्सपेक्टर आने वाला हो, उस दिन कपड़े बदल आते हैं।

मैं—और बहुत उदास रहते हैं। मैंने उनकी आँखों में कभी ज्योति नहीं देखी। यों काम को हर समय तैयार रहते हैं। ऐसा मालूम होता है, जैसे दिल ही दिल में कुढ़ते रहते हैं।

स्वयंसेवक—मगर किसी को कुछ बताते नहीं हैं। हेडमास्टर साहब ने कई बार अनुरोध किया, लेकिन कुछ न बताया। केवल इतना ही कहा—मैंने पाप किया है, यह उसका प्रायश्चित्त है।

मैं—अद्भुत प्रकृति का मनुष्य है।

स्वयंसेवक—मगर आदमी शरीफ़ हैं। आपको कोई काम हो, रात के २ बजे बुला भेजिए—दौड़ते हुए चले आएँगे। एक बार भी 'नहीं' न कहेंगे। और फिर जनाब पुरुषार्थी ऐसे हैं कि सारी रात काम कराते रहिए, आँख भी न झपकेंगी, न थकेंगे।

मेरी हैरानगी और भी बढ़ गई। स्वयंसेवक के चले

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जाने पर बार-बार सोचता था, इसकी तह में ज़रूर कोई अद्भुत रहस्य है, कोई छिपी हुई घटना है परन्तु वह क्या है? इस आदमी ने ऐसा कौन सा पाप किया है, जिसका प्रायश्चित्त करने के लिए अपने आपको लोगों की दृष्टि में गिरा रहा है। सन्ध्या का समय था, मेरा व्याख्यान शुरू होने में केवल एक घण्टा बाक़ी था। पण्डाल में लोग अभी से एकत्रित हो रहे थे। उनके चिल्लाने की आवाज़ें मेरे कानों तक पहुँच रही थीं। मगर मुझे व्याख्यान की ज़रा भी चिन्ता न थी, मैं ज़रा भी न सोचता था कि आज क्या कहूँगा। मेरे सामने इस समय एक ही प्रश्न था—यह मास्टर साहब कौन हैं? इनका गुप्त इतिहास क्या है? मैं इसे जानने के लिए अधीर हो रहा था।

सहसा दरवाज़ा खुला और एक आदमी अन्दर आया। मैं उछल पड़ा—यह मास्टर आत्माराम थे। इससे पहली रात को भी मेरा व्याख्यान था। भीड़ के अधिक होने के कारण मेरा गला बैठ गया था। डॉक्टर दत्त ने मेरे लिए गले की टिक्कियाँ भेजी थीं, ताकि व्याख्यान देते समय आवाज़ साफ़ रहे। मास्टर आत्माराम वही टिक्कियाँ लेकर आए थे। उन्होंने शीशी मेज़ पर रख दी, और धीरे से पूछा—आप भोजन कब करेंगे? इस समय या व्याख्यान के बाद? यदि इस समय खाना चाहें तो ले आऊँ?

मैंने इस प्रश्न का उत्तर न दिया, और उठ कर उनका हाथ थाम लिया। वह कुछ घबरा गए। शायद उनको मुझसे ऐसे सुकोमल व्यवहार की आशा न थी। मगर मैंने इसका ज़रा भी ख़्याल न किया, और कहा—मास्टर साहब! मुझे आप से शिकायत है कि आपने मुझे धोखा दिया, वरना मुझसे ऐसी गुस्ताख़ी कभी न होती।

मास्टर साहब ने मेरी ओर आश्चर्य से देखा और कहा—आप क्या कह रहे हैं? मैं आपका अभिप्राय नहीं समझा।

मैं उनको घसीट कर अपनी चारपाई के निकट ले गया, और उन्हें अपने साथ बैठा कर बोला—मैं अभी समझाए देता हूँ।

मगर वह उठने के लिए छटपटाने लगे, जैसे उनको दण्ड दिया जा रहा था। वह उठने का भरसक प्रयत्न करते हुए बोले—मुझे छोड़ दीजिए। मैं फ़र्श पर बैठूँगा।

मैं—(हँसकर) चुपचाप बैठे रहिए, नहीं तो मैं ज़बरदस्ती करूँगा।

मास्टर साहब—(मिन्नतें करते हुए) पण्डित जी! परमात्मा के लिए मुझे छोड़ दीजिए। मैं यहाँ बैठने योग्य नहीं, आपके चरणों में बैठूँगा।

मैं—चरणों में बहुत बैठ चुके, अब सिर पर बैठना होगा।

मास्टर साहब ने मेरी तरफ़ ऐसी दृष्टि से देखा, जो पत्थरों में भी सूराख़ कर देती। उनकी आँखें हृदय-वेदना से सजल होगईं। दीन-भाव से बोले—मुझे मजबूर न करें मैं आपके साथ कभी नहीं बैठूँगा।

मैं—मगर क्यों? साथ बैठने में आख़िर हर्ज क्या है? आप सभ्य हैं, शिक्षित हैं, एक हाईस्कूल के सेकेण्ड मास्टर हैं। फिर भी × × ×

आत्माराम—मैं इस सम्मान का अधिकारी नहीं हूँ—मैं नराधम हूँ। मैंने उनका हाथ छोड़ दिया। वह जल्दी से फ़र्श पर बैठ गए। अब उनका चेहरा फिर शान्त था, जैसे मछली को पानी मिल जाय। थोड़ा सा हँस कर बोले—मेरा स्थान यही है।

मैंने उनके कन्धे पर प्यार से हाथ रक्खा, और अपनी आँखें उनकी आँखों में डाल कर कहा—अपनी कहानी सुनाओ। मैं उसे सुने बिना यहाँ से न उठूँगा।

मास्टर आत्माराम ने एक ठण्डी साँस भरी, और दो गर्म आँसू टपका कर कहा—मुझसे एक पाप हो गया है, अब प्रायश्चित्त कर रहा हूँ। बस यही मेरी कहानी है।

मैं—नहीं; मैं सारी घटना सुनना चाहता हूँ। और (एक-एक शब्द पर ज़ोर देकर) मैं यह सम्पूर्ण कहानी सुने बिना अन्न ग्रहण नहीं करूँगा। बोलो, क्या कहते हो?

आत्माराम—(विवशता से) इससे कुछ प्राप्ति न होगी, उल्टा आप भी दुखी हो जायँगे।

मैं—आपका दिल तो हलका हो जायगा।

आत्माराम—मैंने यह घटना आज तक किसी से भी नहीं कही।

मैं—शायद ऐसी सहानुभूति से और ऐसे आग्रह से किसी ने पूछा भी न हो।

आत्माराम—आप क्षमा नहीं कर सकते।

मैं—मैं प्रतिज्ञा कर चुका।

आत्माराम—(सिर झुका कर) तो फिर किसी समय

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कह सुनाऊँगा। अब तो आपके व्याख्यान का समय है। आप सुनते हैं, कितना शोर मच रहा है? पाँच हज़ार से कम आदमी न होंगे। मेरी दुख-भरी कहानी सुन कर आपका दिल भर आया, तो व्याख्यान ख़राब हो जायगा।

मैं—मास्टर जी! मुझे इस समय व्याख्यान की ज़रा भी चिन्ता नहीं। आप इनकार करते हैं, मेरा शौक़ और भी बढ़ता जाता है। जब तक सुन न लूँगा, चैन न आएगा।

आत्माराम मेरे मुँह की तरफ़ देखने लगे।

मैंने झुक कर उनके कन्धों पर दोनों हाथ रख दिए, और कहा—अब तो आपको कहना ही पड़ेगा। देर करना निष्फल है।

आत्माराम ने आकाश की तरफ़ देख कर ठण्ढी साँस भरी, और इसके बाद धीरे-धीरे यों कहना शुरू किया :—

* * *

"पण्डित जी! मैं जालन्धर का रहने वाला हूँ। मेरे पिता जी वहाँ कपड़े की दूकान करते थे। वह बहुत अमीर न थे, पर ग़रीब भी न थे। उनकी गणना शहर के सुप्रसिद्ध लोगों में होती थी। उनकी बात टालने का किसी में साहस न था। शहर के गुण्डे भी उनके सम्मुख सिर न उठाते थे। उनकी सचाई और निर्भयता के दृष्टान्त जालन्धर में आज भी आपको सुनाई देंगे। परन्तु मेरा दुर्भाग्य देखिए; मेरे भाग्य में उनकी स्नेह-छाया न लिखी थी। मैं अभी दो ही वर्ष का था कि उनका देहान्त हो गया। मुझे उनकी शक्ल-सूरत भी स्मरण नहीं। भगवान् जाने, कैसे थे, कैसे नहीं थे।

मेरा पालन-पोषण मेरी विधवा माँ ने किया। उसकी एक सहेली शिवा होशियारपुर की रहने वाली थी। वह भी विधवा थी। इन दोनों में बहुत प्रेम था। उनका प्रेम देख कर सन्देह होता था कि वह सगी बहिनें हैं, सखियाँ नहीं। जब कभी मिलने का अवसर मिलता, सारी-सारी रात बातें करती रहतीं। रात समाप्त हो जाती, उनकी बातें समाप्त न होतीं। वह प्यार, वह स्नेह, वह विशुद्ध भाव आज भी याद आते हैं, तो दिल से धुआँ सा उठने लगता है। उसकी एक लड़की थी कमला, मुझसे तीन-चार वर्ष छोटी होगी। दोनों सखियों ने मिल कर हमारी सगाई कर दी।

उस ज़माने में मैं कॉलेज में दाख़िल हुआ ही था। सगाई होने पर मुझे हार्दिक आनन्द हुआ। मैंने कमला को केवल एकाध बार देखा था; वह भी बाल्यावस्था में। मुझे उसकी शक्ल-सूरत, रङ्ग-रूप कुछ भी स्मरण न था। मगर इस पर भी मुझे प्रसन्नता हुई। जब एकान्त में बैठता, कमला की काल्पनिक मूर्त्ति आँखों के सामने आकर खड़ी हो जाती। मुझे ऐसा मालूम होता था, जैसे एक हँसमुख, भोली-भाली सुन्दरी बाला लज्जा से सिर झुकाए मेरी तरफ़ प्रेम-पूर्ण दृष्टि से देख रही है। कभी-कभी ऐसा मालूम होता था, जैसे वह मुझसे बातें कर रही है। धीरे-धीरे मुझे कल्पना-जगत् की इस कल्पित मोहनी मूर्त्ति से प्रेम बढ़ने लगा। मैंने इस माया को जीती-जागती सुन्दरी लड़की समझ लिया, जिसे विधाता ने मेरे ही लिए उत्पन्न किया है। मगर भाग्य ने मेरे लिए कुछ और ही सोच रक्खा था। जब मैं ट्रेनिङ्ग कॉलेज में भर्ती हुआ, तो एक दिन पता नहीं, किस तरह मेरे दिल में विचार उत्पन्न हुआ कि यदि वह मेरे आदर्श पर पूरी न उतरी, तो क्या होगा? जीवन नष्ट हो जायगा, समस्त आशाएँ, सकल अभिलाषाएँ मिट्टी में मिल जाएँगी। यह आशङ्का न थी, मेरी तबाही का श्रीगणेश था। कदाचित् यह घड़ी मेरे जीवन से निकल जाती; काश मैं उस समय सो जाता, अचेत हो जाता, किसी दुर्घटना से ज़ख्मी हो जाता, तो आज मेरा जीवन ऐसा भयानक, ऐसा निराशापूर्ण, ऐसा शोकमय न होता। उस अशुभ दिन के बाद मेरे मन को सच्चा आनन्द कभी प्राप्त नहीं हुआ। मैंने इस सन्देह को, इस वहम को दिल से दूर करने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु यह सन्देह दूर न हुआ; जैसे खनखजूरे की विष-भरी टाँगें एक बार मांस में चुभ कर फिर यत्न करने पर भी बाहर नहीं निकलतीं और अन्दर धँसती ही जाती हैं। कुछ ही दिनों के बाद मैंने स्थिर कर लिया कि कमला से ब्याह न करूँगा, किसी और लड़की से देख कर करूँगा; पर आज सोचता हूँ, उस समय मुझे क्या हो गया था। शायद मैं पागल हो गया था। न कुछ देखा, न सुना; और निश्चय कर लिया। आदमी समझते-सोचते हुए भी कैसा अन्धा हो जाता है, यह आज समझता हूँ, उस समय ज़रा भी ख़्याल न था।

गर्मी की छुट्टियों में घर गया, तो एक दिन माँ ने

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कहा—क्यों बेटा! अब ब्याह कब करेगा? शिवा आई थी, कहती थी, लड़की जवान हो गई है।

मैं खाना खा रहा था, चुपचाप खाता रहा।

माँ ने थोड़ी देर मेरे उत्तर की प्रतीक्षा की और फिर बोली—समय बड़ा विकट है। लड़कियों को कुँवारी बैठा रखना आसान नहीं।

मैं अब के भी चुप रहा।

माँ—मैं भी उस दिन के लिए तड़प रही हूँ, जब तू सेहरा बाँध कर घोड़ी पर सवार होगा।

मैंने फिर भी उत्तर न दिया।

माँ—(मेरे थाल में भाजी डालते हुए) "तो इस बैसाख में ब्याह हो जाए?" अब चुप रहना कठिन था। मैंने धीरे से कहा—"मैं अभी ब्याह न करूँगा।"

माँ ने स्नेहपूर्ण दृष्टि से मेरी तरफ़ देखा, और बोली—तो क्या तू बुड्ढा होकर ब्याह करेगा? ज़रा इस लड़के की बातें सुनो। कहता है, अभी ब्याह न करूँगा। पण्डित गोकुलचन्द का लड़का मायाधारी तुमसे तीन महीने छोटा है, उसका ब्याह हुए दो वर्ष बीत गए। लाला कर्ताकिशन का लड़का चूनीलाल ××

मैं—(बात काट कर) मुझे औरों से क्या मतलब। मैं अभी ब्याह न करूँगा।

माँ—अच्छा यह भी न सही। जानता है, तेरे बाप का ब्याह कब हुआ था? १३ वर्ष की उमर में। उस समय मैं आठ वर्ष की थी।

यह कहते-कहते उसकी आँखें सजल हो गईं। उसकी आवाज़ गले में फँस गई। उससे और न बोला गया। वह चुपचाप दीवार की तरफ़ देखने लगी। मेरा भी दिल भर आया, हाथ का ग्रास हाथ ही में रह गया।

थोड़ी देर बाद उसने फिर ठण्डी साँस ली और बोली—आज अगर तेरा बाप जीता होता, तो क्या तू फिर भी आज तक कुँवारा ही बैठा रहता। न बाबा! मैं अब तेरी एक न सुनूँगी। तू तो पागल है। पढ़-लिख गया तो इससे क्या? मगर है तो वही पागल का पागल, ज़रा भी फ़र्क़ नहीं पड़ा।

मैंने हँस कर जवाब दिया—पागल हूँ, तो पागल-ख़ाने भेजो, ब्याह क्यों करती हो। इससे तो यह मालूम होता है कि तुम भी पागल हो गई हो।

अब माँ को भी हँसी आ गई; ठोड़ी पर उँगली रख कर बोली—बाबा पता नहीं, यह तूने इतनी बातें कहाँ से सीख लीं। पर एक बात कहे देती हूँ, तुझे अब ब्याह करना ही पड़ेगा।

मैंने खाने का थाल परे हटा दिया, और गम्भीरता से कहा—माँ! मैंने एक बार कह दिया है, ब्याह न करूँगा। यह मेरा अन्तिम निश्चय है।

शायद माँ को अब तक यही ख़्याल था कि यह इन्कार जीभ का है, हृदय का नहीं। लड़के माँ-बाप के सामने ऐसा ही कहा करते हैं। परन्तु मेरी दृढ़ता देख कर माँ का चित्त उदास हो गया। बोली—तो क्या जवाब दूँ, लड़की जवान हो गई है।

मैं—कहो, कहीं और ब्याह दे। हिन्दोस्तान में मेरे सिवाय और भी बहुत लड़के हैं।

मेरी इस बात से माँ के कलेजे में तीर-सा लगा। स्नेह की मूर्त्ति ने क्रोध का रूप धारण कर लिया। उसकी आँखों से आग की चिनगारियाँ निकलने लगीं, जैसे चन्दन को भी रगड़ा जाय तो उससे आग निकलती है। वह कड़क कर बोली—क्या कॉलेज में तू ने यही निर्लज्जता की बातें सीखी हैं। अगर मर्द होता तो मर जाता, पर यह बात मुँह से न निकालता। अपनी स्त्री का ब्याह दूसरे पुरुष से होते देखेगा, और फिर भी जीता रहेगा।

माँ का यह रूप देख कर मेरे देवता कूच कर गए। मेरे मुँह से एक भी शब्द न निकला। मुँह में ज़बान थी, ज़बान में बोलने की शक्ति न थी। मैं चाहता था, माँ एक बार फिर उसी तरह प्यार से अपना अधिकार जता कर कह दे, तुझे ब्याह करना होगा, तो मैं सिर झुका कर स्वीकार कर लूँ, चूँ भी न करूँ। परन्तु माँ ने यह शब्द न कहे, और उठ कर चारपाई पर जा लेटीं। मैं भी बाहर चला आया। अब मैं फिर वही ज़िद्दी, वही महामूर्ख, वही वहमी आत्माराम था, जिसने न कुछ देखा, न सुना, और समझ बैठा कि कमला से ब्याह करके मेरा जीवन अन्धकारमय हो जायगा। पहले-पहल यह सन्देह कोमल पौधा था, जिसे उखाड़ना ज़रा भी कठिन नहीं होता, आदमी चाहे तो पैर से भी उखाड़ ले। मगर अब वही पौधा वृक्ष का रूप धारण कर चुका था, जिसे हाथी हिलाना चाहे, तो वह भी न हिला सके। परमात्मा ही जानता है, संसार में मेरे जैसे अभागे कितने हैं, जो

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपने ही निर्मूल सन्देह के जगत में भटक-भटक कर नष्ट हो जाते हैं।

कुछ दिनों बाद होशियारपुर से पत्र आया कि जल्दी स्वीकृति भेजो, तो तैयारियाँ शुरू करूँ। मुझे तो शहर में मुँह दिखाना भी मुश्किल हो गया है। पत्र पढ़ कर मैं सोचने लगा, माँ को दिखाऊँ या न दिखाऊँ। फिर सिर पर सवार हो जायगी, फिर वही गालियाँ मिलेंगी, और क्या पता, ज़बरदस्ती ब्याह कर दे। मैं घबरा गया। दो दिन सोचता रहा, तीसरे दिन मार्ग मिल गया। मैंने माँ की तरफ़ से पत्र लिख दिया। उस पत्र का आशय यह था:—

"बहिन! क्या कहूँ, कहते हुए भी लज्जा आती है। जी चाहता है, कहीं डूब मरूँ। तुम्हें कभी मुँह न दिखाऊँ। मगर मेरा इसमें ज़रा भी दोष नहीं। आत्माराम की ही बुद्धि पर पत्थर पड़ गए हैं, कहता है, मैं ब्याह न करूँगा। क्या-क्या आशाएँ थीं—सब पर पानी फिर गया। कमला को अपनी बहू बना कर मुझे कैसा स्वर्गीय आनन्द प्राप्त होता। अफ़सोस !!

"मुझे आत्माराम से अब ज़रा भी आशा नहीं। मैं समझा-समझा कर थक गई, परन्तु उस पर असर नहीं होता। कैसे लिखवाऊँ कि कमला को कहीं और ब्याह दो। पर विवश हूँ।

तुम्हारी दुखी बहिन,

—रामदेवी"

पण्डित जी! यह पत्र लिख कर मैं ऐसा ख़ुश हुआ, जैसे सिर से कोई भार उतर जाय, जैसे कोई भयानक रोग टल जाय। मगर यह रोग न टला था, मैंने अपने जीवन की सबसे बड़ी बाज़ी हार दी थी। मैं कितना पतित, कितना पापी, कितना हृदयहीन हूँ। उस समय मुझे ख़्याल भी न आया कि मैं क्या कर रहा हूँ। माँ को मालूम भी न हुआ, और वह पत्र होशियारपुर जा पहुँचा। मेरा पत्र पाकर शिवा को कितना दुख हुआ होगा, यह मुझसे छिपा न था। इसी से उसने पत्र लिखना भी बन्द कर दिया। प्रेम जब क्रोध में आता है, तो चुप हो जाता है, बोलता नहीं है। मगर यह बात ज़्यादा दिन छिपने वाली न थी, एक दिन प्रकट हो गई।

बैसाख की एक सन्ध्या थी। मैं सैर करके घर लौटा तो माँ चुपचाप बैठी थी। उसकी आँखें रो-रोकर सूज गई थीं। मुझे देखते ही उसकी आँखों से फिर आँसू बहने लगे, जैसे घाव पर चोट लग जाय। रोते-रोते बोली—पुत्र! तूने बुरा किया। यह तुझे उचित न था। ग़रीब लड़की का दिल टूट गया है। जब से तेरा पत्र गया है, दिन-रात रोती रहती है। उसके मामा ने एक वर ठीक किया है, मगर वह कहती है, मेरा ब्याह हो चुका। हिन्दू की लड़की हूँ, दूसरा ब्याह तो न करूँगी। परन्तु उसका मामा ब्याह करने पर तुला हुआ है। भगवान् जाने, क्या हो, क्या न हो। मगर तूने बुरा किया। अब भी कुछ हो सके, तो कर ले, वरना मैं कुछ खा मरूँगी। हाय बेटा, तूने इतना भी न सोचा कि यह मेरी माँ है।

यह कह कर वह फूट-फूट कर रोने लगी। वह रात जिस तरह मैंने गुज़ारी है, यह मैं ही जानता हूँ। दूसरे दिन मैं होशियारपुर की गाड़ी में बैठ गया। मैंने दृढ़ सङ्कल्प कर लिया कि जाते ही शिवा के पाँव पकड़ लूँगा। कहूँगा तू मेरी माँ है, मुझे माफ़ कर, या सज़ा दे। परन्तु यहाँ पहुँचा, तो द्वार पर ब्याह के चिन्ह दिखाई दिए। मेरा कलेजा सन् से हो गया! पर मैंने फिर भी हिम्मत न हारी, और भागता हुआ अन्दर चला गया। उस समय मुझे जो कोई देखता, वह यही समझता कि यह पागल है। और मैं वास्तव में पागल ही था। मेरी विचार-शक्ति नष्ट हो चुकी थी। मुझे इतना भी मालूम न था कि मैं क्या कर रहा हूँ। आँगन में पहुँचा तो शिवा सामने से आती दिखाई दी। मगर इस दशा में उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। मुझे देखा, तो उसकी आँखों से आग की ज्वाला निकलने लगी, जैसे किसी ने सिंहनी के बच्चे को छेड़ दिया हो। दाँत पीसती हुई बोली—अब तू यहाँ क्यों आया है? क्या मेरी बेटी की हत्या करके भी तुझे सन्तोष नहीं हुआ?

यह कह कर वह तो वापस चली गई; मुझे जैसे किसी ने काठ मार दिया, जैसे किसी दैवी शाप से मेरे पाँव ज़मीन में जम गए। घर में मुहल्ले भर की स्त्रियाँ जमा थीं, शिवा की आवाज़ सुन कर उनमें से कुछ बाहर चली आईं। एक-दो मुझे पहचानती थीं। एक बोली—अरे बेटा! तूने तो अनर्थ किया। यह लड़की न

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

थी, हीरा थी। इसे ठुकरा कर तेरा भी भला न होगा। ग़रीब ने विष खा लिया।

मैंने कलेजा थाम लिया। मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानों यह जागृति नहीं है, स्वप्न है। सोचता था, अभी आँख खुल जायगी। अभी यह हार्दिक वेदना समाप्त हो जायगी। इतने में दूसरी स्त्री बोली—वह तो सती थी, सती। रात को ब्याह था, पहले ही विष खा लिया।

तीसरी—शायद बच जाए।

मुझे कुछ आशा हो गई।

दूसरी—(सिर हिला कर) अब क्या बचेगी। डॉक्टर भी जवाब दे गया।

मेरा दिल फिर बैठ गया।

तीसरी—डॉक्टर कोई परमेश्वर थोड़ा ही है। परमेश्वर चाहे तो अब भी बचा ले। वह चाहे तो मुर्दा जी उठे।

चौथी—इसमें क्या सन्देह है। वह सब कुछ कर सकता है। परमात्मा करे, बच ही जाय। ग़रीब ने दुनिया का देखा ही क्या है?

पाँचवीं—(रोकर) कल मैं पास बैठी रही, मुझसे ज़िक्र भी नहीं किया, हाँ चुप थी। अब मालूम हुआ, उसके मन में मौत बस चुकी थी।

दूसरी—उदास तो उसी दिन से थी, जिस दिन से (मेरी तरफ़ घृणा से इशारा करके) इसका ख़त आया था। उस दिन के बाद उसके मुँह पर किसी ने रौनक़ नहीं देखी।

तीसरी—क्यों बेटा! इसमें क्या कीड़े पड़े थे जो तूने मँगनी तुड़ा ली। ऐसी लड़की तो सारे शहर में न होगी।

चौथी—(घृणा से मुँह फेर कर) बहिन! तुम भी किससे बातें करती हो। ऐसे आदमी को तो मुँह न लगाना चाहिए। आदमी काहे को है, राक्षस है।

पहली—(ठण्डी साँस भर कर) वाह बहिन कमला! तू भी गई। अरी अभी तेरी उमर ही क्या थी?

मैं अवाक् खड़ा था। क्या कहता, क्या न कहता। अपने आपको धिक्कार रहा था। इतने में एक लड़की अन्दर से दौड़ती हुई आई, और मुझसे बोली—जल्दी चलो तुम्हें बुला रहे हैं।

मैं भागता हुआ अन्दर चला गया। वह ज़मीन पर पड़ी तड़प रही थी। इस समय भी वह कैसी सुन्दरी, कैसी मोहनी थी। ऐसा मालूम होता था, जैसे किसी निर्दयी ने एक फूल को तोड़ कर भूमि पर पटक दिया है। उसने मेरी तरफ़ देखा, और फिर आँखें बन्द कर लीं। उस अन्तिम दृष्टि में कितना प्यार, कितना अभिमान, कितना दुख तथा उलहना भरा था, इसे आज तक नहीं भूल सका।

उसकी माँ ने रोकर कहा—बेटी कमला! (घबड़ा कर जल्दी से) अरी बेटी कमला!

मगर कमला कहाँ थी?

स्त्रियों ने जल्दी से उसके हाथ पर आटे का दीपक रख दिया। तो क्या सचमुच उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गई? इतनी जल्दी! इतनी छोटी आयु में! उसकी माँ का हृदय-वेधक विलाप वायु-मण्डल में गूँजने लगा, स्त्रियाँ फूट-फूट कर रोने लगीं।

जब मैं बाहर निकला, तो आसमान चक्कर खा रहा था, ज़मीन घूम रही थी। मेरे पाँव तले भूमि न थी। हृदय के अन्दर आग लगी हुई थी। इस घटना को पाँच वर्ष बीत चुके हैं, वह आग उसी तरह सुलग रही है। न दिन को चैन आता है, न रात को आराम मिलता है। रात को ऐसा मालूम होता है, मानो कोई कन्धा पकड़ कर हिला रहा है। जागता हूँ, तो कोई कमरे में सिसकियाँ भरता हुआ मालूम होता है। सोता हूँ, तो स्वप्न में भयानक शक्लें देख कर चौंक उठता हूँ। उस समय मैं अपने आपे में नहीं रहता। मेरी गगन-भेदी चीख़ों से सारे मुहल्ले के लोगों की नींद हराम हो जाती है। अब मुझे कोई किराए पर मकान भी नहीं देता। कहते हैं, कौन मुहल्ले भर से लड़ाई मोल ले? तुम पर तो रात को भूत सवार हो जाता है। बड़े यत्नों से शहर से बाहर एक मकान मिला है। उसी में अपनी भग्न-हृदया माता के साथ अपने दुखमय अश्रुपूर्ण जीवन के दिन काट रहा हूँ। परन्तु आह! वह उसकी अन्तिम प्रेम-पूर्ण दृष्टि, वह उसकी जवानी और सुन्दरता की मौत एक पल के लिए भी नहीं भूलती। कैसी आन वाली थी। उसने मुझे देखा नहीं था, मुझसे बातचीत नहीं की थी और न उसका मुझसे पत्र-व्यवहार था। केवल नाम का सम्बन्ध था; उसी पर निछावर हो गई। वह इस

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वार्थमय संसार की लड़की न थी, कोई प्राचीन समय की सती थी। आज भी उसके अल्प-जीवन के अन्तिम क्षण मेरी आँखों के सामने फिर रहे हैं; वही मकान, वही आँगन, वही स्त्रियों से भरा हुआ कमरा, और वही उसमें लेटी हुई स्वर्ग की देवी, जो मुझे देखे बिना मरना भी न चाहती थी। हाय शोक! मैंने क्या कर दिया? आज पूरे पाँच साल से उसे स्मरण कर-करके रो रहा हूँ। मगर न वह भूलती है, न मौत ही आती है, जो इस जीवन का अन्त हो। इसीलिए मैले कपड़े पहनता हूँ, गन्दा खाना खाता हूँ, अपने आपको अपनी और दूसरों की आँखों में गिराता हूँ कि शायद इसी तरह मेरे पाप का प्रायश्चित्त हो जाय।"

यह कहते-कहते उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। मेरी ज़बान से एक शब्द भी न निकला; हाँ, हृदय में आग सी लग गई। थोड़ी देर बाद वह उठ कर मेरा जूता ले आए, और मेरे सामने रख कर बोले—चलिए! व्याख्यान का समय हो गया।

वृन्त

[रचयिता—श्री० चन्द्रशेखर जी ओझा]

(१)

सेवामय है सभी तुम्हारा,
जीवन, निधन, कलेवर, वेष!
प्रभु-गृह से आए तुम जग को—
देने सेवा का सन्देश॥

(२)

फल-भारानत शाखा-भुज से—
बुला-बुला करके सादर!
फल-स्वरूप में सबको देते,
वह ईश्वर-सन्देश प्रवर॥

(३)

इसमें भी वे शठ करते हैं—
तुम पर अगणित उपल प्रहार!
धन्य सरलता! सब सह कर भी,
तुम करते उनका उपकार॥

(४)

क्रूर-स्वार्थ-रत-विश्व-मध्य तुम,
फैलाए भुज-डाल विशाल!
विकल सरलता का, सेवा का—
देते अभय-दान सब काल॥

(५)

पल्लव-पल्लव पुलकित रहता,
करने को सेवा प्रति क्षण!
केवल अनिल समझ सकता है,
उसके वे सब भाव गहन॥

(६)

उन्नत-मुख उत्सुक सुनते क्या—
तुम अनन्त का नीरव गान!
सेवा-योगिन्! भरा उसी में—
क्या इन सब योगों का ज्ञान॥

(७)

चिर-मधु-विरही दुखित छोड़ते,
अहो! तुम्हीं पतझड़ उच्छ्वास!
चिर-मधु-सङ्गम-मुदित तुम्हीं हो,
लेते मलयानिल-निश्वास॥

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीजी सम्पादक जी महराज,

जय राम जी की!

आप अपने मन में कहेंगे कि दुबेजी महाराज प्रत्येक मास एक न एक नया स्वाँग लाते हैं। परन्तु सम्पादक जी, मैं क्या करूँ? जब लोगों को हिमाक़त की बातें करते देखता हूँ तो जी नहीं मानता। हमारे मुहल्ले में एक महाशय रहते हैं, (वह वृद्ध सज्जन नहीं, जिनके सम्बन्ध में मैं अपनी पिछली चिट्ठियों में लिख चुका हूँ) यह महाशय परले सिरे के दुर्बल-विश्वासी हैं। एक दिन का ज़िक्र सुनिए! आप कहीं बाहर जा रहे थे। असबाब ताँगे पर लद चुका था। घर से टीका लगवा कर और दही-लड्डू खाकर बाहर निकले और ज्योंही ताँगे पर पैर रक्खा त्योंही किसी ने तड़ से छींका। बस फिर क्या था, तुरन्त लौट पड़े और घर के अन्दर घुस गए।

पत्नी ने कहा—जूता बदल कर पहन लो।

वह झल्ला कर बोले—यह देशी जूता थोड़ा ही है जो बदल लूँ, यह शू है शू, यह बदल कर नहीं पहना जा सकता।

पत्नी ने कहा—अच्छा एक गिलास पानी पी लो।

अतएव वह बिना प्यास के एक गिलास ठण्ढा पानी पीकर पुनः निकले। द्वार पर आए ही थे कि घर की बिल्ली आगे से रास्ता काट कर निकल गई। अब क्या था—बहुत ही बिगड़े, बोले—इसी लिए मैं मना करता था कि बिल्ली न पालो। यह ऐसा पाजी जानवर है कि जब कहीं बाहर जाओ तो रास्ता अवश्य काटेगा। ऐसे मनहूस जानवर का पालना किस काम का। यह कहते हुए फिर दरवे के अन्दर हो गए।

पत्नी ने कहा—"सौ दफ़े राम का नाम जप लो; बिल्ली के रास्ते काटने का प्रभाव जाता रहेगा।" अतएव आप राम-नाम जपने लगे। उधर बाहर ताँगे वाला चिल्लाया—"बाबू जी, चलिए! ताँगा कब तक खड़ा रहे।"

बाबू जी ने उत्तर दिया—"आते हैं।" परन्तु इन दो शब्दों के कहने में यह भूल गए कि राम-नाम कितने बार जपा। पत्नी से बोले—"इस ससुरे ताँगे वाले ने भुला दिया—न जाने कितने बार जपा था। अब फिर से जपना पड़ा।" अतएव आपने फिर एक से शुरू किया। ख़ैर, किसी न किसी प्रकार सौ की गिनती समाप्त करके उठे और "श्रीगणेश जी सदा सहाय" कह कर फिर बाहर निकले। इधर पण्डित जी की यह दशा देख कर यार लोगों को दिल्लगी सूझी। ज्योंही उन्होंने दहलीज़ के बाहर पैर रक्खा, त्योंही एक ने "आक् छीं" के साथ दोनली का फ़ायर किया। बस, फिर क्या था—पण्डित जी आग ही तो हो गए, कड़क कर बोले—"अब मुहल्ले भर को आज ही ज़ुकाम होगा—आज ही सब मरेंगे। यहाँ खड़े क्या देखते हो, कोई नाच हो रहा है। देख रहे हो कि एक आदमी बाहर परदेस जा रहा है, फिर भी सामने खड़े होकर ऐन नाक के सामने छींकते हो। अच्छा, अब नहीं जायँगे, चाहे जो हो। तुम लोग आज ख़ूब जी भर के छींक लो।"

इधर पण्डित जी बक रहे थे, उधर भीतर पण्डिताइन कह रही थीं—राम करे छींकने वाले की नाक में कोढ़ टपके। दूसरे का असगुन मनाते हैं। वाह! अच्छे आए।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपने घर में बैठ के चाहे छींकैं चाहे पादें। हमारे दरवाज़े काहे छींकते हैं।

पण्डित जी फिर लौट पड़े। पत्नी से बोले—"अब क्या करें—क्या न जायँ? काम बड़ा ज़रूरी था। अच्छा, "शास्त्र में लिखा है कि सोलह श्वास ले लेने से छींक का दोष जाता रहता है।" यह कह कर आपने श्वासें गिननी आरम्भ कीं।

इधर द्वार पर जो दो-एक दिल्लगीबाज़ खड़े थे, उन्होंने एक कौतुक और रचा। मुहल्ले का एक आदमी जो काना था—उधर से कहीं जा रहा था। एक ने उसे बातों में लगा कर वहीं खड़ा कर लिया।

पण्डित जी ज्योंही पुनः द्वार पर आए, त्योंही एक ने उस काने से कहा—"पण्डित जी आगए, अभी तुम्हें पूछ रहे थे।" यह कह कर वह तो हट कर दूर जा खड़ा हुआ। वह काना पण्डित जी के सामने पहुँच कर बोला—क्या हुकुम है पण्डित जी!

पण्डित जी ने जो उनकी सूरत देखी तो हाथ-पैर ढीले हो गए। पहले तो कुछ क्षणों तक हक्का-बक्का होकर उसका मुँह ताकते रहे, तत्पश्चात् एकदम से मुख लाल हो गया। दाँत पीस कर बोले—क्यों बे हरामज़ादे, तुझे भी इसी समय आना था? जी चाहता है कि दूसरी भी फोड़ दूँ—झगड़ा मिटे।

काना बोला—पण्डित जी, मुझसे एक आदमी ने कहा कि पण्डित जी तुम्हें पूछ रहे थे।

पण्डित जी बोले—हाँ, तुम बड़े ख़ूबसूरत हो न, जो तुम्हें पूछ रहा था। और मुहल्ले वाले तो हैं बदमाश, लुच्चे, उन्हें किसी के हानि-लाभ से क्या मतलब? दिल्लगीबाज़ी में पड़े हैं। अच्छी बात है—अब मैं यह मुहल्ला ही छोड़ दूँगा, बस! ताँगे वाले, उतार दे असबाब अब नहीं जाएँगे!

ताँगे वाला बोला—तो मेरी मजूरी तो लाइए।

पण्डित जी—मजूरी? मजूरी कैसी?

ताँगे वाला—इतनी देर से खड़ा हूँ—इतनी देर में तो मैं एक रुपया पैदा करता। वाह, अच्छे आए—कोस भर से बुला के लाए, घण्टा भर खड़ा रक्खा, अब कहते हैं असबाब उतार दो। मुझे क्या, आप चाहे जाइए चाहे न जाइए, मेरी मजूरी दे दीजिए!

पण्डित जी—तो क्या मुफ़्त की मजूरी लेगा?

ताँगे वाला—घण्टा भर से खड़ा नहीं हूँ—मुफ़्त की काहे को। आप तो छींक-पाद के फेर में रह गए, मैं ग़रीब मर मिटा।

पण्डित जी—तो तेरे वास्ते हम अपना सगुन-असगुन न देखें। रास्ते में कुछ गड़बड़ हो जाय तो तू काम आएगा।

इस प्रकार पण्डित जी और ताँगे वाले में झायँ-झायँ होने लगी। अन्त में दो-चार आदमी बीच में पड़े और चार आने में फ़ैसला करा दिया। बोले—यह बेचारा ग़रीब आदमी इतनी देर से खड़ा है—इसे कुछ तो दीजिए ही।

पण्डित जी बोले—यह अच्छी रही, हमारा इतना बड़ा नुक़सान हुआ—ज़रूरी काम था, नहीं जा सके—ऊपर से चार आने की यह चपत पड़ी। न जाने आज किस ससुरे का मुँह देख कर उठे थे। ताँगे वाला असबाब उतार कर और चार आने लेकर चल दिया।

पण्डित जी ने उस दिन क्रोध के मारे भोजन नहीं किया। मुझसे दूसरे दिन भेंट हुई, मैंने पूछा—यह कल क्या मामला हुआ?

पण्डित जी बोले—मामला जो कुछ हुआ अच्छा हुआ—मैं यह मुहल्ला ही छोड़े दे रहा हूँ।

मैंने कहा—आप इतने दुर्बल-विश्वासी हैं, यह मुझे नहीं मालूम था।

पण्डित जी बोले—क्यों? शास्त्र के अनुसार कार्य करना दुर्बल-विश्वास है? आप तो हैं नास्तिक, कुछ मानते-वानते नहीं। हम सनातनधर्मी और कर्मकाण्डी ब्राह्मण ठहरे, हमें तो मानना पड़ता है।

मैंने पूछा—यदि आप कल चले जाते तो क्या होता?

पण्डित जी—होता कुछ ज़रूर, चाहे जो होता। सम्भव है, रेल ही लड़ जाती।

मैं—रेल तो कहीं लड़ी नहीं।

पण्डित जी—मैं नहीं गया, इससे नहीं लड़ी। रेल न लड़ती तो और कुछ उपद्रव हो जाता—होता कुछ जरूर! कुछ ठिकाना है—चार-चार अपशकुन—दो दफ़े छींक हुई, एक दफ़े बिल्ली रास्ता काट गई। ख़ैर, यह सब हुआ था—कोई चिन्ता नहीं, हमने उसका उपचार कर लिया। परन्तु अन्त समय वह साला काना सामने आ खड़ा हुआ, इसका कोई उपचार तो शास्त्र में है नहीं, क्या करता, नहीं गया!

काना विप्र मिले मग माँही।
प्राण जायँ कछु संशय नाहीं॥

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मैं—तब तो आपने बड़ा पुण्य कमाया। यदि आप जाते तो रेल तो लड़ती केवल आपकी हत्या करने को, अन्य लोग मुफ़्त में मरते।

पण्डित जी सिर हिलाकर बोले—हाँ, बात तो ऐसी ही थी।

मैं—शास्त्र भी क्या चीज़ है—शास्त्र की बदौलत आप स्वयम् भी बच गए और दूसरों को भी बचा लिया। यदि शास्त्र न जानते होते तो काहे को बचते—क्यों न?

पण्डित जी—अब आप राह पर आए। शास्त्र की बड़ी महिमा है। ज्योतिषी लोग दैवज्ञ क्यों कहलाते हैं? इसी लिए कि उन्हें भूत, वर्त्तमान, भविष्य तीनों कालों का ज्ञान रहता है।

मैं—तो आपको भी तीनों काल का ज्ञान रहता होगा?

पण्डित—हाँ, रहता क्यों नहीं—रहे न तो काम कैसे चले? ज्ञान न होता तो कल चले न जाते? यदि कल चले जाते तो बस × × ×।

मैं—सब समाप्त हो जाता?

पण्डित—और क्या! इन सब बातों का विचार रखना चाहिए। पहले हम दो-तीन बरस × × × मुहल्ले में रहे। वहाँ की दशा क्या बताऊँ। उस मुहल्ले में पाँच-छः काने हैं। घर से किसी समय निकलो, एक न एक काना सामने खड़ा है। नाक में दम हो गया। क्या कहें दुबे जी, जब कभी कहीं आवश्यक कार्य से जाना हो तो पहले दो आदमी दोनों नाकों पर खड़े कर देते थे कि कोई काना हो तो उसे युक्ति से हटा दें। फिर भी अधिकतर मिल ही जाते थे। अन्त में जब बहुत तङ्ग हो गए तो वह मुहल्ला छोड़ दिया।

मैं—ओफ़ ओह! तब तो इन कानों का एक अलग मुहल्ला बसाना चाहिए।

पण्डित—हाँ, है तो ऐसा ही।

मैंने पण्डित जी से अधिक वाद-विवाद करना उचित न समझा; क्योंकि वह ठहरे कुत्ते की दुम, जो कभी सीधी होती ही नहीं। सो सम्पादक जी, यह दशा है। जिस जाति में ऐसे लोग हों, उससे क्या आशा रक्खी जा सकती है?

ऐसे-ऐसे लोग हैं जो घर से बाहर जाते समय ऐसा रूप बनाते हैं कि मानो कालेपानी जा रहे हों। तीन-तीन, चार-चार दिन पहले से सायत-मुहूर्त्त देखा जाता है। ऐसों के लिए सप्ताह में एकाध ही दिन ऐसा निकलता है जिस दिन श्रीमान् कहीं परदेश की यात्रा कर सकते हैं, अन्यथा आज दिशा-शूल है, आज नक्षत्र ठीक नहीं, आज बाएँ चन्द्रमा है, आज भद्रा है, इसी फेर में रहते हैं। जिस समय घर से निकलते हैं तो ऐसा प्रबन्ध रहता है कि मानों वायसराय की सवारी निकल रही है। कोई आदमी नङ्गे सिर सामने न आए।

किसी को नङ्गे सिर देखा तो ललकारा, हटो सामने से, या सिर ढक लो—जानते नहीं, फलाने जा रहे हैं? यह औरत जो ख़ाली डोल लिए खड़ी है, इसे कहो, सामने से हट जाय—या डोल में पानी भर ले। इस बिल्ली को मारो, रास्ते में खड़ी है—ऐसा न हो कि रास्ता काट जाय। यदि घटनावश किसी ने टोक दिया—"कहिए महाराज, कहाँ चले?" ऐ है! बस ग़ज़ब हो गया। बरस पड़े—"आप भी अजीब आदमी हैं, इतने बड़े हो गए, पर तमीज़ न आई। सरासर देख रहे हो कि काम से जा रहे हैं, फिर भी टोक दिया! वाह साहब, वाह।" जो किसी ने इस पर प्रश्न कर दिया कि—"क्यों जनाब, टोकने से क्या हो गया?" तो और भी बिगड़े। बोले—"आप तो अङ्गरेज़ी पढ़ कर नास्तिक हो गए, आप इन बातों को क्या समझ सकते हैं।"

नास्तिक की परिभाषा भी कितनी बढ़िया है। जो छींक और टोकने में कोई हानि न समझे, वह नास्तिक। ख़ुदा हाफ़िज़ है इन अक़्ल के दुश्मनों का!

प्रातःकाल उठ कर यदि कहीं हाथी और बन्दर का नाम ले लीजिए तो आफ़त हो जाय। ये दोनों ऐसे प्राणी ईश्वर ने उत्पन्न किए हैं कि प्रातःकाल उठ कर इनका नाम ले लिया जाय तो कोई न कोई अनिष्ट होने की सम्भावना रहती है!

सम्पादक जी, ऐसी-ऐसी मूर्खताएँ हम लोगों में भरी पड़ी हैं कि उनका वर्णन करते हुए लज्जा मालूम होती है।

ईश्वर हम लोगों को इतनी बुद्धि दे कि हम लोग इन मूर्खताओं से अपनी रक्षा करें।

भवदीय,

—विजयानन्द (दुबे जी)

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भौजाई

[ले० श्री० लाला बाबूराम जी श्रीवास्तव]

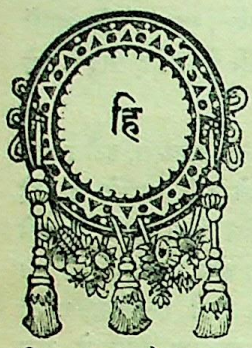

हिन्दू-समाज में भौजाई का नाता भी एक विलक्षण नाता है। वर्त्तमान युग में इस नाते का निभाना स्त्री-जाति के लिए अत्यन्त संयम का काम है। जिस प्रकार नारी-जाति की सच्चरित्रता पर अन्य सामाजिक कुरीतियों द्वारा कुठाराघात किया गया है, उसी प्रकार पुरुषों ने अपनी कुटिल स्वार्थ-सिद्धि के साधन में इस नाते द्वारा भी स्त्री-जाति पर घोर अत्याचार किया है। इसकी ओट में नारी-जाति के प्रति ऐसे वीभत्स एवं कलुषित उद्‌गारों का समावेश किया गया है कि शिष्ट-समाज इस अन्याय की तरफ़ उँगली उठाए बिना नहीं रह सकता। स्त्रियों की अशिक्षा ने तथा परदा-प्रथा की विषम वायु में पले हुए उनके अनुभव-हीन जीवन ने और इनके परिणाम-स्वरूप उनकी मानसिक दुर्बलता ने इस नाते के सञ्चालन की बागडोर पुरुषों के हाथों में और भी दृढ़ कर दी है। स्त्री-जाति कर भी क्या सकती है? शक्तिहीन स्त्री-समाज को अभी पुरुषों के ही अधीन रहना पड़ रहा है। स्त्रियों की ऐसी दीन-हीन अवस्था में इस भौजाई के नाते ने बिना किसी रोक-टोक के स्त्री-समाज पर अपना पूरा आधिपत्य जमा लिया है।

नव-बधू के पति-गृह में पदार्पण करते ही देवर-भौजाई की छेड़-छाड़ शुरू हो जाती है। प्रायः देवर-भौजाई एक ही अवस्था के होते हैं। पति के छोटे-छोटे भाई-बहिन भी इस छेड़-छाड़ में बिना किसी सङ्कोच के भाग लेते हैं। कोई नव-बधू के वस्तु उतारता है, कोई घूँघट-पट खींचता है और कोई उसे सर्वाङ्ग नग्न करना चाहता है। बालकों की इस अपरिपक्व अवस्था में, जबकि उनके चरित्र-सङ्गठन पर विशेष ध्यान देना चाहिए, और उनके चरित्र-प्रवाह को ब्रह्मचर्य की तरफ़ मोड़ना चाहिए, उनको ऐसी-ऐसी कुत्सित क्रीड़ाओं में डाल कर, उनके कोमल हृदय में विषय-वासनाओं का बीजारोपण किया जाता है और उनके व्यक्तिगत समस्त जीवन को तथा उनके द्वारा सामाजिक जीवन को विषम बना दिया जाता है; यह कैसे खेद की बात है।

नारी-जाति स्वभाव से ही लज्जाशील होती है। पति-गृह में नव-बधुओं की लज्जावश जो करुण दशा होती है वह हिन्दू-समाज भली-भाँति जानता और समझता भी है। कहाँ तो परदा-प्रथा में जकड़ी हुई नारी-जाति का शुष्क हृदय और नीरस जीवन, और कहाँ देवर-भौजाई का निस्सङ्कोच व्यवहार? नव-बधू की ऐसी मानसिक दुर्बलता में प्रायः देवर अपनी स्वार्थ-सिद्धि में सफल हो जाते हैं। कामोन्मत्त अपनी अन्ध-वासना के वशीभूत होकर क्या नहीं कर सकता? क्या प्यासा सरोवर के तट पर बैठ कर अपनी प्यास बुझाने में सङ्कोच करता है? क्या पूर्णिमा का चन्द्र देख कर जल-सिन्धु स्वभावतः नहीं उमड़ता? फिर देवर-भौजाई के तो पारस्परिक व्यवहार में कोई बाधा भी उपस्थित नहीं होती। घर के बड़े-बूढ़ों के 'बुढ़ापे का सुख' भला इससे अधिक और क्या हो सकता है। प्रायः ननद-भौजाई में भी हँसी-मज़ाक़ का आम रिवाज है। ननद चाहे विवाहिता हो या कुमारी, उसे अपनी भौजाई के साथ हँसी-दिल्लगी करने का पूर्ण अधिकार होता है। नव-बधू को भी अपने नए घर में कोई न कोई साथी अपनी पति-सेवा के उपरान्त समय काटने के लिए चाहिए ही। मनुष्य अकेला नहीं बैठ सकता, और फिर यह उम्र तो अकेले बैठने की होती ही नहीं। इसमें आमोद-प्रमोद की सामग्री कुछ न कुछ अवश्य होनी चाहिए। ऐसी दशा में नव-बधू अपनी ननद से और ननद द्वारा उसकी अन्य सखी-सहेलियों में अपना शेष समय व्यतीत करती है। स्त्री-शिक्षा के अभाव से उनके मस्तिष्क में कुछ ऐसे आदर्श विचारों का कोष नहीं होता, जिसके द्वारा उनके परस्पर दैनिक व्यवहार से उनकी तथा सामाजिक उन्नति की आशा की जा सके। पति-गृह में

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नव-वधुओं पर दाम्पत्य क्रीड़ाओं का नवीन प्रभाव पड़ता है और वह अपनी सखियों से निस्सङ्कोच उसी विषय पर बातचीत करती रहती हैं। इस प्रकार हँसी-मज़ाक़ करते-करते उनका आपस में दिल खुल जाता है और प्रायः सारा दिन इन्हीं रसीली बातों में कट जाता है। कुमारियों के हृदय पर इन बातों का पूरा प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है। मेरा यह तात्पर्य नहीं है कि आमोद-प्रमोद को जीवन में स्थान ही न देना चाहिए, परन्तु पात्र और समय का विचार रखना आवश्यक है। देवर अथवा ननद-भौजाई के आमोद-प्रमोद का जो वर्त्तमान रूप है वह अत्यन्त घृणित है। बाल अथवा प्रौढ़ विधवाओं के हृदय पर इस आमोद-प्रमोद का भला क्या प्रभाव पड़ता होगा, यह सोचने की बात है।

होली के अवसर पर देवर और भौजाई की होली मुख्यतः विख्यात है। कपोल और अधरों का स्पर्श, अबीर और गुलाल के बहाने मनमाना ऊधम करने को मिल ही जाता है। रङ्ग-पाशी के समय पकड़-धकड़ में भी ख़ूब मज़ा आता है। गुप्तेन्द्रियों तक लुके-छिपे 'मदाख़लत बेजा' आजकल माफ़ समझी जाती है। इस क्रीड़ा का जो प्रभाव नवयुवतियों और नवयुवकों के कोमल हृदय पर पड़ता है, वह जीवन में गहरा परिवर्त्तन कर देता है। किसी चर्म-रोग की चिकित्सा की जा सकती है, परन्तु हृदय का रोग असाध्य है। काम-विद्युत् का जो आघात मनुष्य के हृदय पर पड़ता है वह जीवन-भर उसे तड़पाता रहता है। क्या जाने कितनी अबलाएँ अपने दुर्बल हृदय पर इस आघात को न सह सकने के कारण पथभ्रष्ट हो जाती हैं। निस्सन्देह उनका चित्त सतीत्व के स्थान से डिग जाता है। धर्म का स्थान मन है। शरीर मन का केवल कर्म-यन्त्र है। यदि मनुष्य शरीर द्वारा कर्म न भी करे और उसका मन विचलित हो जाय तो वह धर्मच्युति है। तुलसीदास जी ने बिलकुल ठीक कहा है—

बिनु अवसर भय ते रहि जोई।
जानेहु अधम नारि जग सोई॥

अर्थात्—जिस स्त्री का मन विचलित हो जाता है, वह यद्यपि किसी ज्ञात अथवा अज्ञात भय से पातिव्रत्य का पालन करती है, तथापि वह अधम और पतिता है। आज भौजाई के नाते कितनी रमणियों के मन विचलित नहीं होते? कितने युवक काम-वेदना से पीड़ित नहीं होते? इस महान् अत्याचार का उत्तरदायित्व किस पर है? हिन्दू-समाज की कुरीतियों पर! क्या हमने कभी अपना प्राचीन इतिहास पढ़ा है और उस पर विचार किया है? वेदों और धर्मशास्त्रों को जाने दीजिए, वे विशाल और दुरूह हैं, पर यदि हमने रामायण के सदुपदेशों पर ही ध्यान दिया होता तो आज पति और पातिव्रत्य-धर्म की यह दुर्दशा न होती। पातिव्रत्य-धर्म का जैसा सुन्दर आदर्श तुलसीदास जी ने संसार के सामने उपस्थित किया है वैसा आज तक न तो किसी समाज के पुरुष ने और न किसी जाति के साहित्य ने ही किया है। वे श्रीरामचन्द्र जी के मुख से एक स्थान पर कहलवाते हैं—

मोहि अतिशय प्रतीत मन केरी।
जेहि सपनेहु पर नारि न हेरी॥

इसके बाद वे अनुसूया जी के मुख से निम्नलिखित अमूल्य पंक्तियाँ कहलवाते हैं—

उत्तम के अस बस मन माहीं।
सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं॥

तुलसीदास जी के इन उपदेशों में कितना आध्यात्मिक आदर्श भरा पड़ा है। प्रेम की एकता, जो ईश्वर का साक्षात् स्वरूप है, इस आदर्श में पत्नी और पतिव्रत्य-धर्म द्वारा कितनी सुन्दरता से केन्द्रित किया गया है! इसी आधार पर वे आगे चल कर लिखते हैं—

बिन श्रम नारि परम गति लहई।
पति-व्रत धर्म छाँड़ छल गहई॥

क्या हिन्दू-समाज ने इस ओर कभी ध्यान दिया? क्या उसने अपनी गृह-लक्ष्मियों को इस पदवी के योग्य बनाने का कभी प्रयत्न किया है? उसने कहीं साली का और कहीं भौजाई का नाता आरोप कर स्त्रियों के सतीत्व को भ्रष्ट करने में कैसी सहायता दी है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। भौजाई का नाता पहले कैसा पवित्र माना जाता था, इसका एक उदाहरण रामायण में लक्ष्मण और सीता के चरित्र में मिलता है। लक्ष्मण जी की माता सुमित्रा का कैसा सुन्दर उपदेश है—

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तात तुम्हार मात बैदेही।
पिता राम सब भाँति सनेही॥

यह माताओं का सदुपदेश आज अपनी सन्तान के प्रति कहाँ है? श्रीलक्ष्मण जी ने इस सदुपदेश को कहाँ तक पालन किया था, इसका एक और उदाहरण लीजिए। सुग्रीव से भेंट होने पर जब सीता जी के वस्त्राभूषण, जो वे सुग्रीव के आश्रम में छोड़ गई थीं, श्रीरामचन्द्र जी ने लक्ष्मण को दिखलाए और पूछा कि क्या तुम इन्हें पहचानते हो? तब लक्ष्मण जी कहते हैं—

कुण्डलं नैव जानामि नैव जानामि भूषणम्।
नूपुर एव जानामि नित्यं पादाभि वन्दनात्॥

अर्थात्—मैं कुण्डल कङ्कणादि आभूषण और वस्त्रों को नहीं पहचानता, मैं केवल नूपुरों को पहचानता हूँ, क्योंकि मैं नित्य उनके चरणों की ही वन्दना करता था।

यह था आदर्श देवर-भौजाई का। इन्हीं श्रेष्ठ आर्य-वीरों की सन्तान आज किस अधोगति को पहुँच गई है! हमारा साहित्य सदुपदेशों से भरा पड़ा है, परन्तु स्वार्थ-लोलुपता से अन्धा हिन्दू-समाज इस ओर आँख उठा कर भी नहीं देखता।

आजकल स्त्री-समाज में धीरे-धीरे जाग्रति पैदा हो रही है। वह अब अपने पैरों पर खड़ा होना चाहता है। क्या पुरुषों का कर्त्तव्य नहीं है कि वे इस पुण्य कार्य में उनकी सहायता करें और अपना दाम्पत्य जीवन सुखमय बनावें? फिर ऐसी कुरीतियों को उखाड़ फेंकने में क्यों इतना विलम्ब किया जाता है? स्त्री-समाज स्वयं इन कुरीतियों को मिटा देगा, परन्तु समय की आवश्यकता है। यदि पुरुष-समाज अब भी आँखें खोल कर स्त्रियों के सुधार की तरफ़ ध्यान दे, तो शीघ्र ही इस नारकीय काण्ड का अन्त किया जा सकता है।

कौन?

[रचयिता—श्री० नृसिंह पाठक 'अमर' विशारद]

(१)

कौन सुप्त मम हृत्तन्त्री को,
आकर देता छेड़ अजान?
कौन प्रसुप्त भाव को सन्तत—
जगा, बनाता विकल महान?

(२)

दिव्य-मिलन की बातें मेरे,
कानों में कह जाता कौन?
कौन अपूर्व रहस्य बताता,
'उसकी याद' दिलाता कौन?

(३)

भूतकाल का सुखमय जीवन,
वर्त्तमान का दुखमय चित्र?
भावी के फिर सुखद मिलन को,
कौन दिखाता सखी! विचित्र?

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

डॉक्टर केशवदेव शास्त्री, एम० डी०

[ले० श्री० जगदीशचन्द्र जी शास्त्री, काव्यतीर्थ]

क्टर शास्त्री का नाम दिल्ली के बच्चे-बच्चे की ज़बान पर था। पचास साल में भी पूरा जवान था, शरीर में यौवन, मुख पर तेज और आँखों में ज्योति थी। शोक, वह रोबीली आकृति आज नहीं है। दिल्ली उसके बिना सूनी है, क्या कॉङ्ग्रेस, क्या आर्यसमाज, क्या हिन्दू-सभा—सब उसके वियोग में रोते हैं, नवयुवक उसके बिना तड़पते हैं। दिल्ली में वह सिंहनाद कौन करेगा? बड़ी-बड़ी उलझनों को कौन सुलझाएगा? निराश नवयुवकों को मार्ग कौन दिखाएगा? बस यही समस्या है, जब वह था तब यह प्रश्न नहीं उठे। अब वह नहीं है, हम रोते हैं, हमारी आँखें रोती हैं—एक नहीं, अनेक झमेलों का सामना है। हम नहीं जानते, अपने को आश्वासन दिलाएँ, पतिपरायणा अमेरिकन देवी के आगे श्रद्धा की झोली बिखेर दें या उसकी आत्मा की सद्गति के लिए प्रार्थना करें। उस आत्मा को शान्ति देने के लिए करना बहुत-कुछ चाहिए, पर हमारी सामर्थ्य से बाहर है, यही बहुत है उनकी गाथा दूसरों को सुना दें, संसार को उनकी महत्ता और लोकप्रियता का परिचय मिले।

डॉ० शास्त्री का जन्म मॉण्टगुमरी के कमालिया क़स्बे में हुआ था। वंश अरोड़ा था और पिता एक अच्छे सम्पन्न व्यक्ति थे। ये तीन भाई थे और पिता जी उनके लायक़ अच्छी ज़मींदारी छोड़ कर मरे थे। पहले गाँव में और पीछे कुछ दिन लाहौर के डी० ए० वी० कॉलेज में भी पढ़े। बस, यहीं से इन्होंने सैनिक का जीवन धारण किया। बड़े भाई वकील हैं, वही ख़र्च देते थे। उन्होंने कहा, विवाह कर लो, पर वह नहीं माने। पहला मोर्चा घर वालों से ही पड़ा, बस क्या था, ख़र्च बन्द हो गया, एफ़० ए० की पढ़ाई पूरी ही नहीं हो सकी। फ़ोटोग्राफ़ी जानते थे, करने लगे, जो मिलता उसी पर सन्तोष था। इसी चक्कर में घूमते-फिरते अजमेर पहुँचे। फ़ोटोग्राफ़ी छोड़ी, प्रेस के फेर में पड़े। पहले छोटे से छोटा काम करना पड़ा, पर एक दिन ऐसा भी आया कि प्रसिद्ध 'वैदिक प्रेस' के अध्यक्ष हुए। तत्पश्चात् 'सद्धर्म प्रचारक' प्रेस जब जालन्धर से हरिद्वार आया, तो उसमें पहुँचे। वहाँ के भी प्रबन्धक बने। लेकिन यही उनके जीवन की समाप्ति नहीं थी। इन दिनों वे आर्यसमाज में अच्छा काम करने लगे थे। परन्तु संस्कृत जानने की आवश्यकता इन्हें प्रतीत हुई। बस, ऐसे प्रतिभा-सम्पन्न के लिए यह विचार ही काफ़ी था। प्रेस की मैनेजरी भी छोड़ी और रावलपिण्डी जा पहुँचे। पं० सीताराम जी शास्त्री को गुरु बनाया और कुछ दिनों में पञ्जाब-यूनिवर्सिटी से शास्त्री की उपाधि प्राप्त की। अभी और भी बड़े-बड़े मनसूबे थे, उनको पूरा करना खेल नहीं था, उनके लिए कोई स्वतन्त्र वृत्ति की आवश्यकता थी। इसी से वह कलकत्ते पहुँचे और महामहोपाध्याय कविराज पं० द्वारिकानाथ जी के शिष्य बने। गुरु की असीम कृपा और अपने परिश्रम से आयुर्वेद का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया और थोड़े ही दिनों में भिषगाचार्य की उपाधि प्राप्त की।

उनकी देश-सेवा का श्रीगणेश यहीं से होता है। अध्ययन समाप्त हुआ और यह प्रश्न उठा कि कार्य-क्षेत्र कहाँ बनाया जाय। सम्भवतः वह १९०७ या ८ का ज़माना था। काशी दक़ियानूसी पण्डितों का गढ़ था, नए-पुराने पण्डित मात्र सब एक ओर थे, आर्यसमाज के नाम पर गालियों की बौछार होती थी, नगर-कीर्त्तनों पर पत्थर बरसते थे। डॉ० शास्त्री वीर योद्धा थे, इन बातों ने उन्हें इतना उकसाया कि काशी में उन्होंने आसन जमाया। उस समय तक आर्यसमाज को पाला मारा हुआ था, डॉ० शास्त्री ने जाते ही जान-सी डाल दी। एक साधारण शास्त्री ने बड़े-बड़े धुरन्धर पण्डितों से लोहा लेने की ठानी। वेदविद्यालय, दयानन्द-स्कूल और रात्रि-पाठशालाएँ खोल डालीं। धीरे-धीरे आर्यसमाज का मार्ग साफ़ होगया। काशी से 'नवजीवन' नामक पत्र निकला और ख़ूब चला, गली-गली पढ़ा जाने लगा।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समाज-सुधार के आन्दोलनों में भाग लेने के लिए डॉ० शास्त्री ने बहुत पहले पैर बढ़ाया। स्वर्गीय पं० तुलसी-राम जैसे विद्वान् और महात्मा हंसराज जैसे नेता उस समय खान-पान से बहुत घबड़ाते थे। सन् १९१० में 'नव-जीवन' में इस विषय पर खूब विवाद छिड़ा, परन्तु शास्त्री जी अपने सिद्धान्त पर अचल रहे, प्रमाणों की झड़ी-सी लगा दी। यही नहीं, जब मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट में अछूतों

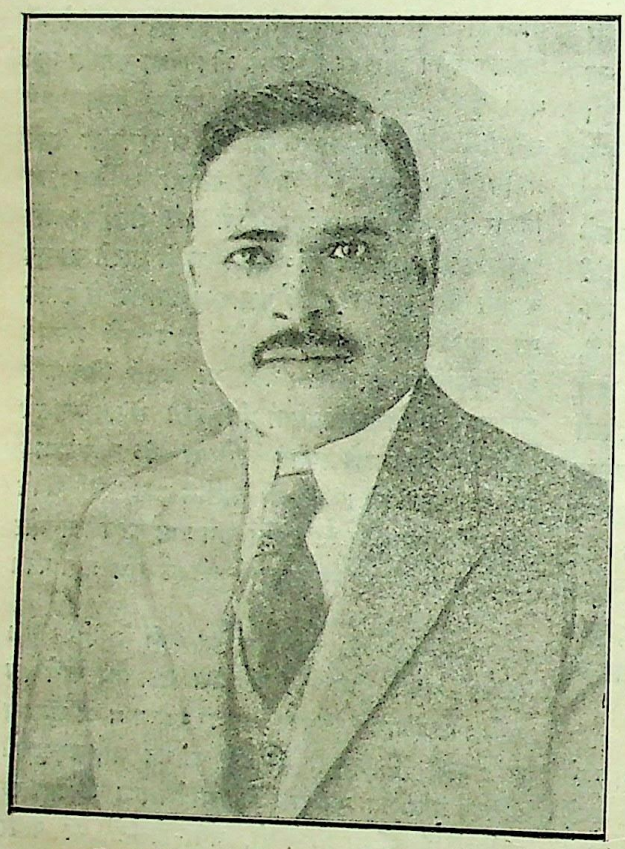

स्वर्गीय डॉक्टर केशवदेव जी शास्त्री, एम० डी०

(अमेरिका में लिया हुआ चित्र)

को हिन्दुओं में गिनने न गिनने का प्रश्न उठा, डॉ० शास्त्री ने उसमें पर्याप्त भाग लिया। एक सभा का प्रबन्ध कर पं० शिवकुमार शास्त्री जैसे कट्टर पण्डित को सभापति के आसन पर ला बैठाया।

देशाटन का उन्हें बड़ा शौक़ था। हर महीने कहीं न कहीं प्रचार करते ही रहते थे। पञ्जाब और संयुक्त-प्रान्त में तो प्रसिद्ध थे ही, पर बङ्गाल और बरमा तक दौरा कर आए थे और वहाँ उनका अच्छा सम्मान हुआ था।

अमेरिका जाने का तो उनका पक्का इरादा था। इसके लिए पर्याप्त धन की ज़रूरत थी। बहुत दिनों से वह अवसर की ताक में थे। इसी बीच अमेरिका में World's Purity Federation का उत्सव तय हुआ। बस, शास्त्री जी ने वहाँ के कार्यकर्त्ताओं से पत्र-व्यवहार शुरू किया। अन्त में उनको निमन्त्रण मिला और २५ जुलाई, १९१३ को अमेरिका के लिए चल पड़े। उसका दृश्य काशी-वासियों के सामने अब भी नाच रहा होगा। बनारस छावनी का स्टेशन कितने ही आर्यसमाजियों, सैकड़ों प्रतिष्ठित रईसों और सहस्रों कॉलेज और स्कूल के विद्यार्थियों से खचाखच भरा था, शास्त्री जी का गला फूल की मालाओं से भर गया था, एक से एक उत्तम उपहार मित्रों की ओर से दिए जा रहे थे। इस दृश्य में एक देवी का प्रेम विस्मरण नहीं किया जा सकता। यह एक आशीर्वाद था। एक रूमाल पर लिखा था:—

'God helps those who help themselves.

शास्त्री जी जैसे उद्योगी और Self-made मनुष्य के लिए इससे बढ़िया उपहार हो ही क्या सकता था? गाड़ी चल पड़ी और एक साथ सहस्रों कण्ठ से ध्वनि निकली 'नमस्ते'! जब तक गाड़ी स्टेशन को पार नहीं कर गई, नमस्ते की ध्वनि से स्टेशन गूँजता रहा। अजमेर और बम्बई होते हुए १लो अगस्त, १९१३ की शाम को 'विक्टोरियाडक' से रवाना हुए, चारों ओर से फूलों की वृष्टि और मालाओं की बौछार हो रही थी।

जब शास्त्री जी ने अमेरिका में पदार्पण किया तो समाचार-पत्रों के सम्बाददाताओं का ताँता लग गया। 'ट्रिब्यून' के सम्बाददाता ने ईसाई-मिशनरियों के प्रचार के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न किए। जिनके उत्तर में उन्होंने मिशनरियों के कार्यों की पर्यालोचना करते हुए यह भी कह दिया—"ईसाई लोग शहर के बाहर बङ्गलों में रहते हैं; वे हिन्दुस्तानियों से मेल-जोल करना पसन्द नहीं

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करते। मेरी समझ में तो यह आशा करना कि भारत-वासियों की एक बहुत बड़ी संख्या ईसाई-धर्म ग्रहण करेगी, व्यर्थ है। शिक्षित हिन्दू तो अपने धर्म, अपने यहाँ की तत्वविद्या और अध्यात्मविद्या को आदर की दृष्टि से देखते हैं और ईसाई-धर्म को वे ऐसे विश्वासों का समूह समझते हैं जो तर्क से खण्डित और विज्ञान के विरुद्ध है। अब रहे नीच आदमी, सो उनके विषय में यह कहना ठीक होगा कि मिश्नरी लोग उन्हें रोटी के लिए आर्थिक सहायता देकर अपने धर्म में मिला लेते हैं।"

इन खरी और स्पष्ट बातों से पादरियों में खलबली मच गई। इस घोर पाप का प्रायश्चित्त करने को डॉक्टर साहब को कहा गया। यही नहीं, वह सर्व-धर्म-सम्मेलन जिसने उन्हें आमन्त्रित किया था, इनके व्याख्यान का प्रोग्राम हटाने की व्यवस्था करने चला। शास्त्री जी दब्बू नहीं थे, उन्होंने परवा तक न की, पादरी लाख सिर पटक कर रह गए, बनारस का विद्वान् अपने वचनों पर दृढ़ रहा, न उसने सम्बाददाता को झूठा ठहराया, न शब्दों को वापस लिया, वह अपने एक-एक अक्षर को सिद्ध करने को तैयार था। कॉनफ्रेन्स में कई दिन हलचल रही, निदान शास्त्री जी का बयान (Statement) भी लिया गया। बहुत से लोग क्रुद्ध होकर चले गए, जो बचे उनमें वोटें ली गईं और पक्ष में १४ और विपक्ष में १० वोटें आईं और शास्त्री जी का भाषण हुआ। शास्त्री जी का भाषण कैसा हुआ, इस सम्बन्ध में हम स्वयं कुछ नहीं कहना चाहते। मिनिया पोलिस के Daily News ने लिखा था :—

"Using the English language almost perfectly Dr. Shastri delivered an address that was most masterly in its thought and construction. Besides it, none of the addresses of the session so far have mounted higher in psychological effect or in interest than this speech of the Hindu physiacian and editor."

आगे चल कर उसने लिखा है कि—"संसार के सभी भागों के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध व्याख्यानदाता यहाँ विद्यमान थे और इनमें लोगों का ध्यान डॉ० शास्त्री (केशवदेव शास्त्री) से अधिक किसी दूसरे व्याख्यानदाता की ओर आकर्षित नहीं हुआ।"

१९१५ में पनामा की नहर निकली और पनामा में प्रदर्शिनी होने वाली थी, उसी उपलक्ष में उसमें चीन, जापान और कनाडा सभी बड़े-बड़े देश अपने लिए केला-भवन तैयार करा रहे थे। डॉ० शास्त्री को यह बात असह्य थी कि इतनी बड़ी प्रदर्शिनी हो जाय और भारतवर्ष हाथ पर हाथ धरे बैठा रहे। उन्होंने तथा वी० वाई० शेवादे और वसन्तकुमार राय ने मिल कर एक चिट्ठी भारतीय समाचार-पत्रों को भेजी और १५ हज़ार रुपए इस कार्य के लिए माँगे। पता नहीं, इस उद्योग में उन्हें कहाँ तक सफलता मिली, हाँ, हमने समाचार-पत्रों में ज़रूर पढ़ा कि भारतवर्ष की नाक रह गई। भारतवर्ष का भी एक कमरा था, जो भारतीय वस्तुओं से भरा पड़ा था और बीसों हिन्दू-युवक वहाँ काम करते थे। इसका श्रेय किसको था? बस केवल डॉ० केशवदेव शास्त्री को।

इन कार्यों के बाद डॉ० शास्त्री की विद्वत्ता की धाक बैठ गई। आश्चर्य तो यह है कि केवल इन्ट्रेन्स पास व्यक्ति अमेरिकनों में इतना श्रद्धा और भक्ति का पात्र कैसे बन गया। उनकी अङ्गरेज़ी की शुद्धता और धाराप्रवाह बोलने की तारीफ़ हज़ारों कण्ठ करते रहे हैं। 'सानडायगा यूनियन' ने तो यहाँ तक लिखा था :—

"Dr. Shastri speaks English fluently with a vocabulary that would put most educated Americans to shame."

यानी वे धाराप्रवाह अङ्गरेज़ी बोलते हैं और उनका शब्द-भण्डार इतना बड़ा है कि बहुत से शिक्षित अमेरिकन लोगों को उसको सुन कर शर्म आ जायगी।

जिस देश में जाकर बड़े-बड़े विद्वान् भी मांस और अण्डे के फेर में पड़ जाते हैं, चाय, क़हवा और शराब तमाकू तो उनकी रोज़ की ग़िज़ा हो जाती है, ऐसे देश में भी डॉ० शास्त्री ने केवल आलू और डबल रोटियों पर ६ साल काट दिए। जिन हिन्दुओं के लिए वहाँ इतनी घृणा है, बहुविवाह के नाम पर हिन्दुस्तान पर लाखों दोष मढ़े जाते हैं, उसी देश के डॉ० शास्त्री के लिए एक अमेरिकन पत्र लिखता है :—

"Here is a model man and he is yet unmarried. Dr. K. D. Shastri Hindu scholar, author, reformer and editor arrived here yesterday. The doctor is a unique character for the

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

things he does not do. He does not drink nor smoke. He does not drink tea nor coffee. He does not eat meat. He is a becholar in a land where polygamy is not a crime"

यह श्रद्धाञ्जलियाँ हैं, जो अमेरिकन पत्रों ने शास्त्री जी पर चढ़ाई हैं। ऐसे एक नहीं, अनेक दृष्टान्त मिलेंगे। इसी विद्वत्ता का परिणाम यह हुआ कि शास्त्री जी

शास्त्री जी की अमेरिकन धर्मपत्नी श्रीमती मिनी जेनर न (Mrs. Minnie Jensen) (अब श्रीमती सुवीरा देवी)

Congress of Religious Philosophies के सभापति हुए। इस कॉङ्ग्रेस की ९ बैठकें हुईं, जिनमें तीन दिन क्रमशः ईसाई, पूर्वी देशवासियों और हिन्दुओं के लिए रक्खा गया। अन्तिम अधिवेशन का नाम रक्खा गया था Hindu day अर्थात् हिन्दू-दिवस। उस दिन शास्त्री जी का व्याख्यान वैदिक फ़िलॉसफ़ी पर हुआ, ब्रह्म-समाज, पारसी-धर्म और सिक्ख-धर्म पर भी विद्वत्तापूर्ण लेख पढ़े गए। पादरी शङ्का-समाधान से बहुत घबड़ाते हैं, लेकिन उस दिन इसके लिए ख़ूब समय दिया गया।

एक सज्जन ने पूछा—"क्या वेदों की फ़िलॉसफ़ी भारतीय स्त्रियों की अधोगति के लिए उत्तरदाता है ?" डॉ० शास्त्री ने उत्तर दिया—"वैदिक फ़िलॉसफ़ी के अनुसार स्त्रियाँ पुरुषों की अर्द्धाङ्गिनी हैं, और भारतीय स्त्रियों की अधोगति शिक्षा के अभाव तथा अर्थ-सम्बन्धी कारणों से हुई है। डेली न्यूज़ ने लिखा था—"ईसाई-दिवस में जितने प्रतिष्ठित अमेरिकन स्त्री-पुरुष सम्मिलित हुए उससे कहीं अधिक हिन्दू-दिवस में हुए।"

यह सब कुछ था, लेकिन शास्त्री जी विद्या में निरन्तर वृद्धि चाहते रहते थे। इसी बीच वह Chicago College of Medicine and Surgery में प्रविष्ट हो गए और दो वर्ष तक लगे रहे, बिजली का विशेष कार्य भी सीखा और प्रति दिन १८ घण्टे लगातार परिश्रम करके M. D. का डिप्लोमा प्राप्त किया। लब्धाङ्क ८० फ़ी सदी थे और सारे कॉलेज में वे चतुर्थ रहे। एक सार्वजनिक मनुष्य के लिए यह कोई कम नहीं है।

डॉ० शास्त्री का अमेरिकन-महिला से प्रेम प्रकट ही है। उस देवी का बलिदान बड़ा है, प्रेम के लिए उसने क्या नहीं छोड़ा ? फिर भी यह वज्र गिर ही पड़ा। सुवीरा देवी से जिनका एक बार भी परिचय है वह उनके प्रेममय व्यवहार को कदापि नहीं भूल सकते। अतिथि-सत्कार का तो कहना ही क्या ? इन पंक्तियों का लेखक राजपुर में कई दिन लगातार उनका अतिथि रहा है, उनके स्नेहमय अत्याचारों का ऋणी है। श्रीमती शास्त्री आजकल दिल्ली में ही हैं, सामान बिखरा पड़ा है, कोठी सुनसान है, देवी जी काले वस्त्रों को पहने दिन भर आँसू बहाती हैं, ऐसे समय में यह लेख लिखा जा रहा है, डॉ० शास्त्री की प्रशंसा और उनका गुण-गान ही उनके जीवन का आधार है। हमने समाचार-पत्रों की कतरनों के ढेर उनके पास देखे हैं, बस उसी के उलट-फेर में दिन कट जाता है। और उनकी

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बहिन ? उनका त्याग तो और भी महान् है, वह कहती हैं मेरे माता-पिता, भाई-बन्धु सब चल बसे।

अस्तु, शास्त्री जी ६ वर्ष बाद अमेरिका से लौटे और दिल्ली को अपना केन्द्र बनाया। गर्मी में राजपुरा और सर्दी में दिल्ली। दिल्ली आने पर शास्त्री जी में बड़ा अन्तर आ गया। पहले सैनिक थे, अब सेना-सञ्चालन का कार्य करने लगे। नवयुवकों पर तो उनकी विशेष दया थी। पहले उन्होंने भारत-वर्षीय आर्यकुमार-परिषद् को जन्म दिया था, अब साधु बास्वानी के सह-योग से 'युवकसङ्घ' को जन्म दिया। परिषद् के सभापति तो वह दो बार हो चुके थे, पर इस वर्ष मद्रास 'युवकसङ्घ' के भी प्रधान थे।

इसके अतिरिक्त वह आर्यसमाज और हिन्दी-प्रचारिणी सभा के प्रधान, हिन्दू-सभा और कॉङ्ग्रेस के उप-प्रधान तथा आर्य सार्वदेशिक सभा के प्रधान मन्त्री थे। इतने काम के अतिरिक्त अनेक सभाओं में सभापति होना, एक से एक बढ़िया भाषण देना उन्हीं का काम था। बहुत दिन तक 'आर्यकुमार' के सम्पादक रहे, फिर 'सार्वदेशिक' के सम्पादक बने। हिन्दी की सेवा केवल सम्पादक होकर ही नहीं, कई पुस्तकें लिख कर भी उन्होंने की है। उनमें सर्वोत्तम अमर जीवन, धर्म-शिक्षा और प्राणायाम-विधि आदि हैं। अङ्गरेज़ी के सैकड़ों ट्रैक्ट और कई अच्छी पुस्तकें लिखी हैं, जो अमेरिका में ही छपीं और बिकीं। इसके अतिरिक्त वह कई विदेशी भाषाओं के अच्छे जानकार भी थे।

योग्यता के अतिरिक्त वे बड़े मिलनसार थे। बड़े आदमियों को छोटे से छोटे से, सीधे मुँह बात करते कम देखा जाता है। दूसरे वह बड़े लोक-प्रिय थे। किसी को उनसे द्वेष नहीं था। २७ अक्तूबर को भुवाली सेनिटोरियम में तपेदिक़ से वही आत्मा हमें छोड़ चली। दिल्ली डॉ० शास्त्री को खोजती है, उसका कोई रत्न खो गया है, पर यह निश्चय है वह मिलेगा नहीं, फिर रोना-धोना किस लिए? बस श्रेय इसी में है कि हम डॉ० शास्त्री जैसे साहसी बनें, उनके एक-एक गुण का अनुकरण करने में मर मिटें।

बहिनों से !

ऐसी महिलाओं को, जो क्षणिक प्रलोभन में आकर सदाचार के पथ से विचलित हो गई हों, जिनके कुमारा-वस्था अथवा वैधव्य में ही गर्भ रह गया हो, उन्हें चाहिए कि स्वयं किसी प्रकार का अनिष्ट न कर एक गोपनीय पत्र द्वारा मुझे इस बात की सूचना तथा अपना स्पष्ट विचार लिखने की कृपा करें। मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि यदि लिफ़ाफ़े पर वे 'गोपनीय' अथवा 'प्राइवेट' लिख देंगी तथा पत्र पर पता निम्न-लिखित होगा तो सिवा मेरे उसे कोई नहीं खोल सकेगा, किसी को भी कुछ प्रगट न होगा और सारा प्रबन्ध करा दिया जायगा। निर्धन से निर्धन और पतित से पतित माता-बहिनें निस्सङ्कोच मेरी सेवा स्वीकार कर सकती हैं। उनकी सब प्रकार की सेवा माता-बहिन के समान ही की जायगी, इस बात का दृढ़ विश्वास रखना चाहिए। पत्र-व्यवहार इस पते से करना चाहिए :—

Private	गोपनीय
R. SAIGAL Esq.,	श्री० आर० सहगल,
28, Elgin Road,	२८ एल्गिन रोड,
ALLAHABAD	इलाहाबाद

"क्यों जी, तुम्हें उपन्यास से कितने रुपए मिले ?"

"जी हाँ, मिल गए। इतने मिले कि उसके कारण मेरे ऊपर जो मानहानि का मुक़दमा चला था उसे लड़ने के लिए यथेष्ट थे।"

"क्यों जी, इस समय क्या बजा होगा ?"

"बारह बजे हैं।"

"बारह ! नहीं, ज़्यादा बजे होंगे।"

"बारह से ज़्यादा तो कभी बजते ही नहीं।"

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

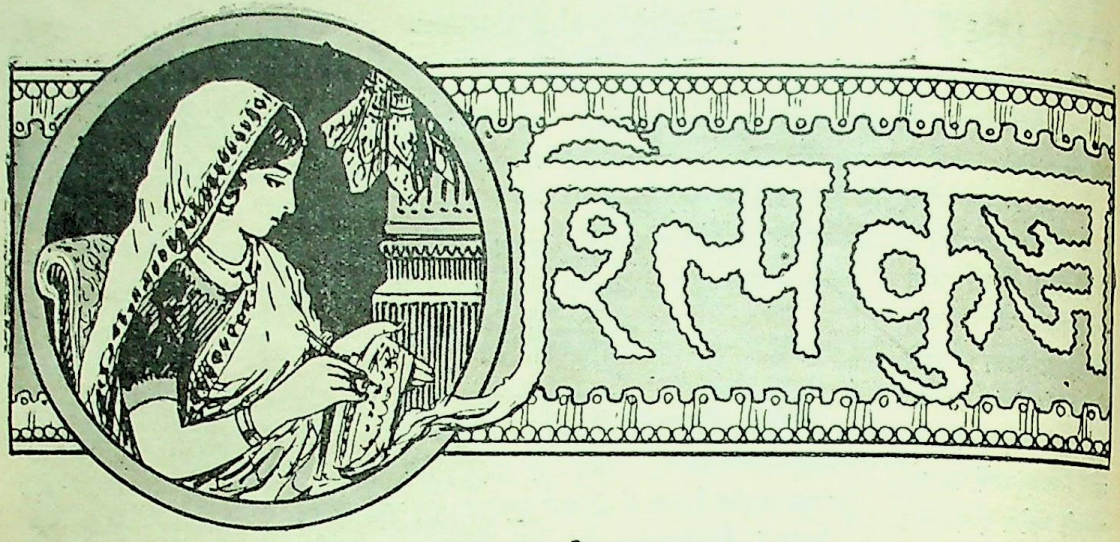

मोर

[ले० श्रीमती शकुन्तलादेवी गुप्ता 'हिन्दी-प्रभाकर']

यह मोर का नमूना कई प्रकार से बन सकता है। अर्थात् इसके फन्दों को गिन कर कोशिए से और काँटे से, जैसा कि 'चाँद' की पाठिकाओं को पहले बताया जा चुका है, इसको लट्ठे के रूमाल के बीच में लगाते हैं। परन्तु यदि काँटे का बनाया जाय तो लट्ठे पर ही बन सकता है।

मोर का नमूना

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वारिकापुरी

[ले० श्री० शीतलासहाय जी, बी० ए०]

पुराणों में तीर्थ-यात्रा करने के अनेक धार्मिक लाभ बताए गए हैं, किन्तु जो लोग कि तीर्थयात्रा इस दृष्टि से नहीं करना चाहते उनके लिए अन्य अनेक दृष्टि-कोण हैं जिनसे तीर्थ-यात्रा करना आवश्यक है। जिसके हृदय में श्रद्धा है, जो प्राचीन ऋषियों-मुनियों के अवतारों के तथा महान् पुरुषों के कार्यक्षेत्र, जन्मस्थान, मूर्त्ति आदि देख कर अपने हृदय पर उनके गुणों और आदेशों को अङ्कित कर सकता है, वह अयोध्या में जाकर श्रीरामचन्द्र के अनुपम और आदर्श-चरित्र और कार्यों का स्मरण करके अपने मन की कलुषता को कम कर सकता है, वह मथुरा और वृन्दावन में जाकर श्रीकृष्णचन्द्र के आदर्श आदेशों का स्मरण करके अपनी आत्मा को शुद्ध बना सकता है; किन्तु जिसका उद्देश इस प्रकार का नहीं है, उसके सम्बन्ध में यह प्रश्न उठता है कि वह क्यों किसी तीर्थ-यात्रा को जाय ?

हमारा कथन यह है कि तीर्थ-यात्राओं के लिए जाना राष्ट्रीय दृष्टि से भी बहुत आवश्यक है। जिस समय हिन्दुस्तान के नवयुवकों में वीरता और साहस के अङ्कुर जाग्रत होंगे तो आप देखेंगे कि नवयुवकगण कभी कैलाश की चोटी पर जाते हुए दिखाई देंगे और कभी रामेश्वरम् को पैदल सफ़र करते हुए नज़र आएँगे। अभाग्यवश हमारे देश के नवयुवकों का जीवन आजकल कुछ ऐसा परिमित और सङ्कुचित-सा हो रहा है कि इस प्रकार के साहसपूर्ण कार्यों के करने में ये विशेष दिलचस्पी ही नहीं लेते। कॉलेज के ज़माने में अपने माता-पिता के भेजे हुए रुपए को स्वादिष्ट भोजन, सुन्दर वस्त्र और शृङ्गार में लगा कर अपनी कक्षा में उत्तीर्ण हो जाने को ही भारतीय नवयुवक काफ़ी समझता है। सौभाग्य की बात है कि अब भारतीय नवयुवकों में किसी क़दर साहसपूर्ण कार्य करने की प्रेरणा दीख रही है और मालूम होता है कि थोड़े ही अर्से में तीर्थ-यात्राओं को जाना नवयुवकों के लिए आजकल की तरह एक असाधारण सी बात न होगी।

आजकल तीर्थ-यात्राओं के लिए जाने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। पहली बात तो यह होती है कि जिस स्थान पर जाया जाय उसके सम्बन्ध में ऐतिहासिक साहित्य का भारी अभाव है। उदाहरण के तौर पर अगर आप द्वारिका जायँ तो आपको किसी पुस्तक द्वारा या किसी अन्य तरीक़े से भी पता नहीं चल सकता कि यह नगर श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कैसे बसाया, उनके रहने का कौन सा स्थान था, उनकी रानियाँ कहाँ रहती थीं, इत्यादि। उनके बाद कौन-कौन राजे वहाँ पर हुए और काल के चक्र में पड़ कर द्वारिका इस वर्त्तमान दशा में कैसे पहुँची ? मन्दिरों को आप देखते हैं, घाटों पर आप टहलते हैं, किन्तु आपको यह पता नहीं चलता कि ये मन्दिर अथवा घाट किसने बनवाए। अगर प्रत्येक स्थान के लिए एक-एक पुस्तक ऐसी मौजूद हो जोकि ऐतिहासिक दृष्टि और पौराणिक तथा धार्मिक दृष्टि से भी उस स्थान के महत्व का वर्णन करे, तो तीर्थ-यात्रा बहुत ही लाभदायक हो सकती है।

थोड़े ही दिन हुए, लेखक को द्वारिका जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। पाठकों की सूचना के लिए लेखक यहाँ अपना अनुभव कुछ पंक्तियों में बयान कर देना चाहता है, जिससे यदि आवश्यकता हो तो वे लाभ उठा सकें।

द्वारिका-यात्रा के लिए कोई समय निश्चित नहीं है। इसलिए यात्रिगण अक्सर हरेक महीने में वहाँ जाया-आया करते हैं। आजकल अहमदाबाद से रात्रि के समय रेल-गाड़ी मिलती है। आधी रात के क़रीब बीरमगाम स्टेशन पर यात्रियों को उतरना पड़ता है। थोड़ी ही देर के बाद बीरमगाम से राजकोट के लिए सीधी गाड़ी मिल जाती है। राजकोट में यह गाड़ी ९ बजे सुबह पहुँच जाती है। उसके बाद फ़ौरन ही द्वारिका के लिए एक गाड़ी मिलती है। १० बजे राजकोट से चल कर क़रीब ८ बजे रात को द्वारिका पहुँच सकते हैं। द्वारिका का थर्ड क्लास का किराया अहमदाबाद से ६-७ रुपयों के क़रीब है।

द्वारिका बड़ोदा-नरेश के राज्य में है। यहाँ की भाषा

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कच्छी है, किन्तु हिन्दी आसानी से समझी जाती है। प्रसन्नता की एक बात यह है कि यहाँ के लोगों को तुलसीदास और सूरदास के भजन विशेष रूप से प्रिय हैं,

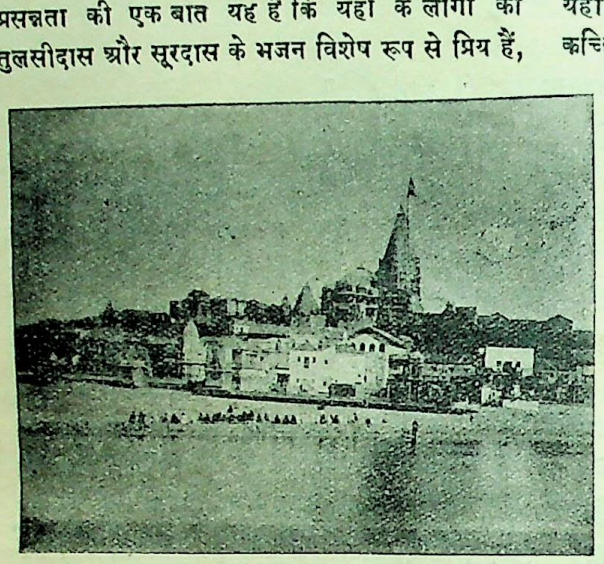

गोमती-द्वारिका का दृश्य

और ये लोग इन भजनों के सार को बहुत अच्छी तरह समझते हैं। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने में तुलसीदास और सूरदास के भजन जितनी सहायता दे रहे हैं, शायद राष्ट्रभाषा-सेवी नहीं जानते। जब कोई महाराष्ट्र देश का यात्री किसी गुजराती से बातें करने लगता है और वह अङ्गरेज़ी का प्रयोग नहीं कर सकता तब उसके लिए एक अनिवार्य-साधन हिन्दी-भाषा हो जाती है।

यहाँ की स्त्रियों में परदा नहीं है। लेखक का विचार है कि यहाँ के स्त्री-पुरुष, विशेषकर स्त्रियाँ, अपने सौन्दर्य में भारतवर्ष की तमाम जातियों में प्रथम नहीं, तो किसी से कम भी हरगिज़ नहीं हैं। गोरा चेहरा, लम्बी नाक, बड़ी आँखें, काली भौंहें यहाँ के स्त्री-पुरुषों के साधारण आकृति हैं।

द्वारिकापुरी में स्टेशन से दो मिनट के मार्ग पर किसी मारवाड़ी सज्जन की एक विशाल धर्मशाला है। इसमें यात्रियों के ठहरने के लिए पूरा प्रबन्ध है। खाने-पीने के लिए यहाँ पर पूड़ियों का रिवाज नहीं, लेकिन कहने पर हलवाई लोग रुपए के बराबर की पूड़ियाँ बना देते हैं। चाय पीने का रिवाज इस देश में बहुत ज़्यादा है। हर एक किसान, हर एक कुली, दिन में २-३ मरतबा दो-दो पैसे प्याले की चाय तो दूकान से लेकर ज़रूर ही पीता है। चाय पीने का रिवाज यहाँ देख कर यह आश्चर्य होता है कि यह पश्चिमी चीज़ कच्छियों और गुजरातियों में किस तरह से इतनी जल्दी फैल गई। द्वारिका की तरफ़ का पेड़ा भी मशहूर है, किन्तु चिवड़ा, बर्फ़िया, पकौड़ी इत्यादि विशेष रूप से लोगों को प्रिय हैं। और इसलिए जो यात्री संयुक्त-प्रान्त से जायँगे उन्हें खाने-पीने में किसी क़दर कठिनाई होती है, अगर वह अपने हाथ से खाना नहीं बना लेते।

द्वारिका का नगर दूर से बहुत ही सुन्दर मालूम देता है। रणछोड़ जी के मन्दिर की लहराती हुई पताका और सुन्दर उज्ज्वल गुम्बज दूर से ही यात्री का स्वागत करते हैं।

असल में द्वारिका दो हैं। एक को गोमती-द्वारिका कहते हैं और दूसरे को बेट-द्वारिका। गोमती-द्वारिका समुद्र के तट पर है। बेट-द्वारिका गोमती-द्वारिका से थोड़ी दूर के फ़ासले पर एक छोटा सा टापू है। गोमती-द्वारिका की आबादी चार-पाँच हज़ार के क़रीब है। शारदापीठ के श्री० शङ्कराचार्य की गद्दी यहीं है। यहाँ का मुख्य मन्दिर बहुत पुराना नहीं मालूम होता। पण्डे लोग मन्दिर के पास ही के दो-चार

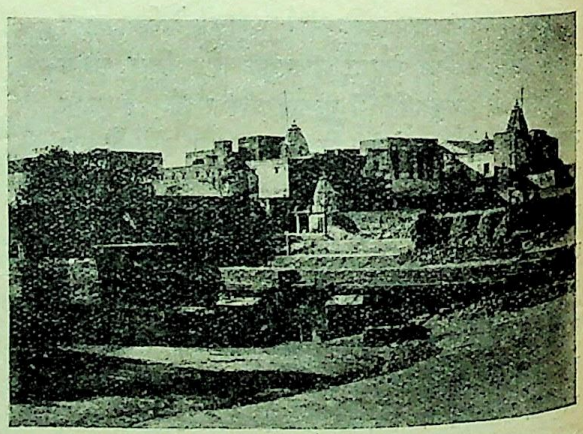

शंखोद्धार तीर्थ का दृश्य

मकानों को दिखलाकर यह कहते हैं कि यही सत्यभामा और रुक्मिणी आदि के महल हैं। इन मकानों के नीचे आजकल साधारण दूकानें हैं। लेखक को जिस समय सत्यभामा आदि के 'महल' दिखाए गए तो उसे अपने देश

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के सामाजिक पतन पर वास्तव में बड़ा क्लेश हुआ। हम लोग इतने अधिक पतित हो गए हैं कि धन की लालच में इन ऐतिहासिक स्थानों को भी अपने पेट पालने का साधन बना रहे हैं। मन्दिर के अन्दर जाने के लिए बड़ौदा राज्य की तरफ़ से कर लगता है। मन्दिर के दरवाज़े पर मिश्री मिलती है। मूर्त्ति के सामने मिश्री का ही प्रसाद चढ़ाया जाता है। मूर्त्ति के चरण स्पर्श के लिए ॥) देने होते हैं। समुद्र के तट पर और मन्दिर के पास जो घाट बने हुए हैं, बड़े सुहावने हैं। सायङ्काल को जिस समय सूर्य अस्त होने के क़रीब होता है, समुद्र का निर्मल और नीला जल यात्री के हृदय को बहुत ही ठण्ढक पहुँचाता है।

इस नगर का क़ानून यह है कि कोई किसी जानवर को मार नहीं सकता। राजपूताना में यह क़ानून है कि कबूतर और मोर का कोई शिकार नहीं कर सकता। अगर कोई इनको मारता है तो अक्सर मार-पीट हो जाती है, नहीं तो उस पर मुक़दमा तो ज़रूर ही चलता है, किन्तु द्वारिका का इस सम्बन्ध में अधिक विस्तृत नियम है। कोई भी किसी भी जानवर को नहीं मार सकता। मछली, चिड़िया, हिरन सभी शिकार से सुरक्षित हैं। द्वारिका के घाट पर इसलिए सायङ्काल को नाना प्रकार की और अनेक रङ्ग और रूप की छोटी-बड़ी मछलियाँ पानी के अन्दर हज़ारों की संख्या में केलि करती हुई दिखलाई देती हैं। ५-५ सेर की मछलियाँ निर्मल जल में घुटने भर की गहराई पर तैरती रहती हैं। पाव-पाव भर की मछलियाँ फ़ौज की फ़ौज इसी घाट पर इधर से उधर आती-जाती दिखाई देती हैं। घाट उत्तर मुख को है। मुख्य समुद्र पश्चिम दिशा में है। पश्चिम दिशा से पानी की एक बहुत छोटी धारा आती है, जोकि एक बाँध से टकरा कर इन उत्तर मुख के घाटों पर पानी पहुँचाती है। पश्चिम दिशा का समुद्र सायङ्काल के समय देखने योग्य होता है। पच्छिम की ओर मुँह करके आप इस समुद्र के किनारे खड़े हो जाइए, अनन्त सागर आपके सामने दिखाई देगा। सफ़ेद और नीली छोटी-छोटी और बड़ी-बड़ी समुद्र की लहरें आपकी आँख को झिलमिला देती हैं। ऐसा मालूम देता है कि मानों सूर्य पानी में डूब रहा है। डूबते समय सूर्य के चारों ओर की लालिमा सुवर्ण पर्वत के समान बन जाती है, मालूम होता है कि जैसे समुद्र के उस ओर सोने का एक पहाड़ है, जिसमें हर सायङ्काल को सूर्य जाकर अस्त हो जाता है। समुद्र का हाहाकार दिल को हिला देता है। थोड़ी देर में सूर्य अस्त हो जाता है, और साथ ही समुद्र की लहरों का वेग और उसका नाद शान्त पड़ जाता है। फिर भी अनन्त सागर आपके सामने नज़र आता है। प्रकृति के इस महान् दृश्य के बीच में मनुष्य मोहवश विह्वल होकर रह जाता है।

द्वारिका से १०-१२ मील के फ़ासले पर अरद्र नाम का एक स्टेशन है। बेट-द्वारिका जाने के लिए यहाँ आना पड़ता है। प्रातःकाल ८ बजे द्वारिका से गाड़ी मिलती है, जो साढ़े नौ बजे के क़रीब अरद्र पर पहुँच जाती है। यहाँ से छोटी-छोटी नौका या स्टीम-बोट बेट जाने के लिए मिलती हैं। नाव पाल के सहारे खेई जाती है। प्रातः-काल के समय वायु जाने के लिए अनुकूल होती है और सायङ्काल के समय आने के लिए। इसलिए ज़्यादातर नौकाएँ सुबह के समय बेट को जाती हैं और तीसरे पहर वहाँ से लौट आती हैं। अरद्र और बेट के दरमियान क़रीब दो मील के पाट का समुद्र है। किन्तु जगन्नाथपुरी के समान यहाँ के समुद्र की लहरें हाथी के समान ऊँची नहीं उठतीं। सुबह के समय समुद्र बड़ा रहता है, इसलिए संयुक्त-प्रान्त का हर एक यात्री, जिसने अपनी सारी ज़िन्दगी में समुद्र कभी नहीं देखा है, इस नीले, विस्तृत और विशाल पानी के वक्षस्थल पर नौका द्वारा चलते हुए विशेष भावों का अनुभव कर सकता है।

बेट-द्वारिका में ही छाप लगाई जाती है। जो लोग गरम लोहे से छाप नहीं लगवाना चाहते, वे यहाँ कच्ची छाप लगवा लेते हैं, जोकि ३-४ रोज़ में छूट जाती है। साधू लोग ज़्यादातर पक्की छाप लगवाते हैं। मन्दिर के अन्दर जाने के लिए बाहर से आए हुए यात्रियों को बड़ौदा-नरेश को १।) का कर देना होता है! बेट-द्वारिका एक छोटा सा नगर है। यहाँ के लोग न खेती करते हैं न कोई व्यापार। यात्री लोग ही इनके मुख्य व्यवसाय हैं। बेट-द्वारिका में ही शङ्खोद्धार तीर्थ है जिसका चित्र इस लेख के साथ दिया जा रहा है। शङ्खोद्धार तीर्थ का पौराणिक महत्व बहुत है, किन्तु इस समय इस जलाशय की ऐसी दुर्दशा है कि कुछ कहा नहीं जा सकता। इस तालाब में आस-पास के रहने वाले मनुष्य इसमें अपनी-

(शेष मैटर पृष्ठ ६२३ के पहिले कॉलम के अन्त में देखिए)

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कला का मूल्य कहानी

[ले० श्री० जयशङ्कर प्रसाद जी]

"अ भी तो पहना गई हो।"

"बहू जी! बड़ी अच्छी चूड़ियाँ हैं, सीधे बम्बई से पारसल मँगाया है। सरकार का हुक्म है, इसलिए नई चूड़ियाँ आते ही चली आती हूँ।"

"तो जाओ सरकार को ही पहनाओ, मैं नहीं पहनती।"

"बहू जी! देख तो लीजिए"—कहती और मुस्कराती हुई ढीठ चूड़ी वाली अपना बॉक्स खोलने लगी। वह पचीस बरस की एक गोरी छरहरी स्त्री थी। उसकी कलाई सचमुच चूड़ी पहनाने के लिए ढली थी। पान से लाल पतले-पतले ओठ दो-तीन वक्रताओं में अपना रहस्य छिपाए थे। उसे देखने का मन करता था, देखने पर उन सलोने अधरों से कुछ बुलवाने को जी चाहता, बोलने पर हँसाने की इच्छा होती और उस हँसी में शैशव का अल्हड़पन, यौवन की तरावट और प्रौढ़ा की सी गम्भीरता बिजलियों के समान लड़ जातीं।

बहू जी को उसकी हँसी बहुत बुरी लगती, पर जब पञ्जों में आधी चूड़ी चढ़ा कर, सङ्कट में फँसा कर, वह हँसते हुए कहती—"एक पान मिले बिना यह चूड़ी नहीं चढ़ती" तब बहू जी को क्रोध के साथ हँसी आ जाती और उसकी तरल हँसी की तरी लेने में तन्मय हो जातीं। कुछ ही दिनों से यह चूड़ी वाली आने लगी है। कभी-कभी तो बिना बुलाए ही चली आती और ऐसे ढङ्ग फैलाती कि बिना सरकार के आए निबटारा न होता। यह बहू जी को असह्य हो जाता। आज उसे चूड़ी फैलाते हुए देख कर बहू जी झल्ला कर बोलीं—आजकल दुकान पर गाहक कम आते हैं क्या?

"बहू जी! आजकल ख़रीदने की धुन में हूँ, बेचती हूँ कम।" इतने में कई दर्जन चूड़ियाँ बाहर सजा दी गईं। स्लीपरों के शब्द सुनाई पड़े। बहू जी ने कपड़े सँभाले, पर वह ढीठ चूड़ी वाली बालिकाओं के समान सिर टेढ़ा करके "यह जर्मनी की है, यह फ़रासीसी है, यह जापानी है" कहती जाती थी। सरकार खड़े मुस्करा रहे थे।

"क्या रोज़ नई चूड़ी पहनाने के लिए इन्हें हुक्म मिला है?"—बहू जी ने गर्व से पूछा।

सरकार ने कहा—"पहन भी लो, बुरा क्या है!"

"बुरा तो कुछ नहीं, चूड़ी चढ़ाते हुए कलाई दुखती होगी।"—चूड़ी वाली ने सिर नीचा किए, कनखियों से देखते हुए कहा।

एक हलकी सी लाली आँखों की कोर से कपोलों को तर करती हुई दौड़ जाती थी। सरकार ने देखा, एक लालसा भरी युवती व्यङ्ग कर रही है। हृदय में हलचल हो गई। घबरा कर बोले—ऐसा है तो न पहनो।

"भगवान् करें रोज़ पहनें।"—चूड़ी वाली आशीर्वाद देने के गम्भीर स्वर में प्रौढ़ा के समान बोली।

"अच्छा, तुम अभी जाओ"—सरकार और चूड़ी वाली दोनों की ओर देखते हुए बहू जी ने कहा।

"तो क्या मैं लौट जाऊँ? आप तो कहती थीं न, सरकार ही को पहनने के लिए कह दीजिए।"

"निकलो मेरे यहाँ से"—कहते हुए बहू जी की आँखें तिलमिला उठीं और सरकार भी धीरे से खिसक गए। अपराधी के समान सिर नीचा किए चूड़ी वाली अपनी चूड़ियाँ बटोर कर उठी। हृदय की धड़कन और अपना रहस्यपूर्ण निश्वास छोड़ती हुई बेचारी चली गई।

२

चूड़ी वाली का नाम था विलासिनी। वह नगर की एक प्रसिद्ध नर्तकी की कन्या थी। उसके रूप और सङ्गीत-कला की सुख्याति थी। वैभव भी कम न था, विलास और प्रमोद के पर्याप्त सम्भार मिलने पर भी उसे सन्तोष न था, हृदय में कोई अभाव खटकता था। वास्तव में उसकी मनोवृत्ति उसके व्यवसाय के प्रतिकूल थी।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कुल-बधू बनने की अभिलाषा-हृदय में और दाम्पत्य-सुख का स्वर्गीय स्वप्न उसकी आँखों में समाया था। स्वच्छन्द प्रणय का व्यापार अरुचिकर हो गया। परन्तु समाज उससे हिंसक पशु के समान सशङ्क था। आश्रय मिलना असम्भव जान कर विलासिनी ने छल के द्वारा वही सुख लेना चाहा। यह उसकी सरल आवश्यकता थी, क्योंकि अपने व्यवसाय में उसी का प्रेम क्रय करने के लिए बहुत से लोग आते थे; पर विलासिनी अपना हृदय खोल कर किसी से प्रेम न कर सकती थी।

उन्हीं दिनों सरकार के रूप-यौवन और चारित्र्य ने उसे प्रलोभन दिया। नगर के समीप बाबू विजयकृष्ण की अपनी ही ज़मींदारी में बड़ी सुन्दर अट्टालिका थी, वहीं रहते थे। उनके अनुचर और उनकी प्रजा उन्हें 'सरकार' कह कर पुकारती थी। विलासिनी की आँखें विजयकृष्ण पर गड़ गईं। अपना चिर-सञ्चित मनोरथ पूर्ण करने के लिए वह कुछ दिन के लिए चूड़ी वाली बन गई थी। सरकार चूड़ी वाली को जानते हुए भी अनजान बने रहे। अमीरी का एक कौतुक था, एक खिलवाड़ समझ कर उसके आने-जाने में बाधा न देते, क्योंकि विलासिनी के कलापूर्ण सौन्दर्य ने जो कुछ प्रभाव उनके मन पर डाला था, उसके लिए उनके सुरुचिपूर्ण मन ने अच्छा बहाना खोज लिया था। वे सोचते कि बहू जी का कुल-बधू जनोचित सौन्दर्य और वैभव की मर्यादा देख कर चूड़ी वाली स्वयं पराजय स्वीकार कर लेगी और अपना निष्फल-प्रयत्न छोड़ देगी।

चूड़ी वाली विलासिनी अपने कौतूहलपूर्ण कौशल में सफल न हो सकी थी; परन्तु बहू जी के आज के दुर्व्यवहार ने प्रतिक्रिया उत्पन्न कर दी और चोट खाकर उसने सरकार को घायल कर दिया।

३

अब सरकार खुल कर उसके यहाँ आने-जाने लगे। विलास-रजनी का प्रभात भी चूड़ी वाली के उपवन में कटता। कुल-मर्यादा, लोक-लाज और ज़मींदारी सब एक ओर और चूड़ी वाली अकेली दूसरी ओर थी। दालान में कुर्सियों पर सरकार और चूड़ी वाली बैठकर रात्रि-जागरण का खेद मिटा रहे थे। पास ही अनार का वृक्ष था, उसमें फूल खिले थे। एक बहुत ही छोटी काली चिड़िया आकर उन फूलों में चोंच डाल कर मकरन्द पान करती और कुछ केसर खाती, फिर हृदय-विमोहन कलनाद करती हुई उड़ जाती। सरकार बड़ी देर से कौतुक देख रहे थे। बोले—इसे पकड़ कर पालतू बनाया जाय तो कैसा?

"उहूँ, यह फुलसुँघी है। पिञ्जरे में जी नहीं सकती। इसे फूलों का प्रदेश ही जिला सकता है, स्वर्ण-पिञ्जर नहीं। इसे खाने के लिए फूलों की केसर का चारा और पीने के लिए मकरन्द-मदिरा कौन जुटावेगा?"

"पर इसकी सुन्दर बोली सङ्गीत-कला की चरम सीमा है। वीणा में भी कोई ही मीड़ ऐसी निकलती होगी! इसे अवश्य पकड़ना चाहिए।"

"जिसमें बाधा नहीं, बन्धन नहीं, जिसका सौन्दर्य स्वच्छन्द है, उस असाधारण प्राकृत-कला का मूल्य क्या बन्धन है? कुरुचि के द्वारा वह कलङ्कित भले ही हो जाय, परन्तु पुरस्कृत नहीं हो सकती। उसे आप पिञ्जरे में बन्द करके पुरस्कार देंगे या दण्ड?"—कहते हुए विलासिनी ने विजय की एक व्यङ्ग-भरी मुस्कान छोड़ी।

अब इसी वन-विहङ्गिनी को पकड़ने की लालसा बलवती हो उठी। सरकार ने कहा—"जाने भी दो, वह तुमसे अच्छी कला नहीं जानती।"

प्रसङ्ग बदल गया, नित्य का साधारण विनोदपूर्ण क्रम चला।

चूड़ी वाली अपने अभ्यास के अनुसार समझती कि यदि बहू जी की अपार प्रणय-सम्पत्ति में से कुछ अंश मैं भी ले लेती हूँ तो हानि क्या; परन्तु बहू जी को अपने

(पृष्ठ ६२१ का शेषांश)

अपनी धोतियाँ साफ़ करते हैं। इसके पानी से वे अपने बरतन आदि साफ़ करते हैं। वे इसमें स्नान भी करते हैं! बरसों से ऐसा करते-करते इसका पानी नीले से काले रङ्ग का होगया है। किन्तु इस स्थान का दृश्य बहुत अच्छा है और दोपहर के समय वृक्ष के नीचे खड़े होकर इस घाट की बेसरोसामानी को देख कर मनुष्य हिन्दू-समाज की वर्त्तमान दशा को देख लेता है!

कहते हैं कि बेट-द्वारिका श्रीकृष्णचन्द्र जी का विहार-स्थल था। समय-समय यह अपनी रानी, पटरानियों तथा पुत्र-पौत्री को लेकर इस स्थान पर विहार करने आते थे।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रणय के एकाधिपत्य पर पूर्ण विश्वास था। वह निष्क्रिय प्रतिरोध करने लगीं। राजयक्ष्मा के भयानक आक्रमण से वह घुलने लगीं और सरकार वन-विहङ्गिनी विलासिनी को स्वायत्त करने में दत्तचित्त हुए। रोगी की शुश्रूषा और सेवा में कोई कमी न थी; परन्तु एक बड़े मुक़दमे में सरकार का उधर सर्वस्व स्वाहा हुआ, इधर बहू जी चल बसीं! × × ×

चूड़ी वाली ने समझा कि उसकी पूर्ण विजय हुई, पर बात कुछ दूसरी थी। विजयकृष्ण का वह एक विनोद था। जब सब कुछ चला गया, तब विनोद लेकर क्या होगा। एक दिन उन्हें स्मरण हुआ कि अब मेरा कुछ नहीं है, उसी दिन चूड़ी वाली से छुट्टी माँगी। उसने कहा—कमी किस बात की है, मैं तुम्हारी ही हूँ और सब वैभव भी तुम्हारा है।

विजयकृष्ण ने कहा—मैं वेश्या की दी हुई जीविका से पेट पालने में असमर्थ हूँ।

चूड़ीवाली बिलखने लगी, विनय किया, रोई-गिड़गिड़ाई, पर विजयकृष्ण चले ही गए। वह सोचने लगी कि अपना व्यवसाय और विजय की गृहस्थी बिगाड़ कर जो सुख ख़रीदा था उसका कोई मूल्य नहीं, मैं कुल-बधू होने ही के उपयुक्त नहीं। क्या समाज के पास कोई प्रतिकार नहीं, इतनी तपस्या और इतना स्वार्थ-त्याग व्यर्थ है? मैं वेश्या ही रही?

परन्तु विलासिनी यह न जानती थी कि स्त्री और पुरुष सम्बन्धी समस्त अन्तिम निर्णय करने में समाज कितना ही उदार क्यों न हो, दोनों पक्ष को सर्वथा सन्तुष्ट नहीं कर सका और न कर सकने की आशा ही है। यह रहस्य सृष्टि को उलझा रखने की कुञ्जी है।

४

विलासिनी ने बहुत सोच-समझ कर अपनी जीवन-चर्या बदल डाली। सरकार से मिली हुई जो कुछ सम्पत्ति थी, उसे बेच कर पास के ही एक गाँव में खेती करने के लिए भूमि लेकर आदर्श हिन्दू-गृहस्थ की सी तपस्या करने में अपना बिखरा हुआ मन उसने लगा दिया। उसके कच्चे मकान के पास एक विशाल वट-वृक्ष और निर्मल जल का सरोवर था। वहीं रह कर चूड़ी वाली ने पथिकों की सेवा करने का सङ्कल्प किया। थोड़े ही दिनों में अच्छी खेती होने लगी और अन्न से उसका घर भरा रहने लगा। भिखारियों को अन्न देकर उन्हें खिला देने में उसे अकथनीय सुख मिलता। धीरे-धीरे दिन ढलने लगा, चूड़ी वाली की सहेली बनाने के लिए यौवन का तीसरा पहर करुणा और शान्ति को पकड़ ले आया। उस पथ से चलने वाले पथिकों को दूर से किसी कला-कुशल कण्ठ की तान सुनाई पड़ती:—

"अबलौं नसानी अब ना नसैहौं!"

वट-वृक्ष के नीचे एक अनाथ बालक नन्हू को चना और गुड़ की दुकान चूड़ी वाली ने करा दी है। जिन पथिकों के पास पैसे न होते उनका मूल्य वह स्वयं देकर नन्हू की दुकान में घाटा न होने देती, और कोई पथिक भी बिना विश्राम किए उस तालाब से न जाता। कुछ ही दिनों में चूड़ी वाली का तालाब विख्यात हो गया।

सन्ध्या हो चली थी, पखेरुओं का बसेरे की ओर लौटने का कोलाहल मचा और वट-वृक्ष में चहल-पहल हो गई। चूड़ी वाली चरनी के पास खड़ी बैलों को देख रही थी। दालान में दीपक जल रहा था। अन्धकार उसके घर में और मन में बरजोरी घुस रहा था। कोलाहल-शून्य जीवन में भी चूड़ी वाली को शान्ति मिली, ऐसा विश्वास नहीं होता था। पास ही उसकी पिण्डलियों से सिर रगड़ता हुआ कलुआ दुम हिला रहा था। सुखिया उसके लिए घर में से कुछ खाने को ले आई और कलुआ उधर न देख कर अपनी स्वामिनी से स्नेह जता रहा था। चूड़ी वाली ने हँसते हुए कहा—चल, तेरा दुलार हो चुका, जा खा ले!

चूड़ी वाली ने मन में सोचा—कङ्गाल मनुष्य स्नेह के लिए क्यों भीख माँगता है, वह स्वयं नहीं करता, नहीं तो तृण, वीरुध तथा पशु-पक्षी भी तो स्नेह करने के लिए प्रस्तुत हैं। × × ×

इतने में नन्हू ने आकर कहा—माँ, एक बटोही बहुत थका हुआ अभी आया है, भूख के मारे जैसे शिथिल हो गया है।

"तूने क्यों नहीं दे दिया?"

"लेता ही नहीं, कहता है तू बड़ा ग़रीब लड़का है, तुझसे न लूँगा।"

चूड़ी वाली वट-वृक्ष की ओर चल पड़ी। अँधेरा हो गया था, पथिक जड़ की ढासना लगाए लेटा था। चूड़ी

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वाली ने हाथ जोड़ कर कहा—महाराज ! आप कुछ भोजन कीजिए।

"तुम कौन हो ?"

"पहले की एक वेश्या।"

"छिः ! मुझे पड़े रहने दो, मैं नहीं चाहता कि तुम मुझसे बोलो भी ; क्योंकि तुम्हारा व्यवसाय कितने ही सुखी घरों को उजाड़ कर श्मशान बना देता है।"

"महाराज ! हम लोग तो कला के व्यवसायी हैं, यह अपराध कला का मूल्य लगाने वालों की कुरुचि और कुत्सित इच्छा का है। संसार में बहुत से निर्लज्ज, स्वार्थ-पूर्ण व्यवसाय चलते हैं। फिर भी, इसी पर इतना क्रोध क्यों ?"

"क्योंकि यह उन सभों में अधम और निकृष्ट व्यवसाय है।"

"परन्तु वेश्या का व्यवसाय करके भी मैंने एक ही व्यक्ति से प्रेम किया था। मैं और धर्म नहीं जानती, पर सरकार से जो कुछ मुझे मिला उसे मैं लोक-सेवा में लगाती हूँ। मेरे तालाब पर कोई भूखा नहीं रहने पाता। मेरी जीविका चाहे जो रही हो, मेरे अतिथि-धर्म में बाधा न दीजिए।"

पथिक एक बार ही उठ कर बैठ गया और आँख गड़ा कर अँधेरे में देखने लगा, सहसा बोल उठा—चूड़ी वाली ?

"कौन, सरकार ?"

"हाँ, तुमने मेरा शोक हर लिया। मेरे अपराध-जनक तामस त्याग में पुण्य का भी भाग था—यह मैं नहीं जानता था।"

"सरकार ! मैंने गृहस्थ-कुल-बधू होने के लिए कठोर तपस्या की है। इन चार बरसों में मुझे विश्वास हो गया है कि कुल-बधू होने में जो महत्व है, वह सेवा का है, न कि विलास का।"

"सेवा ही नहीं चूड़ी वाली ! उसमें विलास का अनन्त यौवन है, क्योंकि केवल स्त्री-पुरुष के शारीरिक बन्धन में वह पर्यवसित नहीं, बाह्य साधनों के विकृत हो जाने तक ही उसकी सीमा नहीं, गार्हस्थ्य जीवन उसके लिए प्रचुर उपकरणों की परम्परा प्रस्तुत करता है, इसी-लिए वह प्रेय भी है और श्रेय भी है। मुझे विश्वास है कि तुम अब सफल होओगी।"

"मेरी सफलता आपकी कृपा पर है। विश्वास है कि अब इतने निर्दय न होंगे"—कहते-कहते चूड़ी वाली ने सरकार के पैर पकड़ लिए।

"नहीं, अब मुझे कोई तुमसे अलग नहीं कर सकता।"

चितै-चितै

[रचयिता—श्री० 'रसिक']

(१)

कछुक दिना ते औरे गति-मति होत जात,
देखि-देखि पीतम सिहात है हितै-हितै।
उठत उरोज उकसौंहें, भौंहें बङ्क होतीं,
लङ्क ललना की अङ्क चार सी रितै-रितै॥
बदलति गति छिन-छिन में रसिक कवि,
मुख सों निकाई नई निसरै नितै-नितै।
चित्र ना खिंचत, छन-छन पै विचित्र छबि,
चतुर चितेरे रहे चकित चितै-चितै॥

(२)

रस-राती, मदमाती, सुधा-धार बरसाती,
जाती भोरी छोरटी सी गोरटी जितै-जितै।
टकटकी बाँधि लखते ही रह जाते सब,
अपने को भूलि चित्र-लिखे से तितै-तितै॥
कहत बनै ना मोसों 'रसिक' लुनाई कछु,
सोचत हौं नित निशि-वासर बितै-बितै
चञ्चला सों चन्द-मुख चाँदनी में चन्द जानि,
चौंकि-चौंकि परत चकोर ह्वै चितै-चितै॥

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गृह-विज्ञान

[ले० श्री० रामावतार जी शर्मा, एम० ए०, विशारद]

गृह-प्रबन्ध

सभी घरों की भीतरी व्यवस्था स्त्रियाँ ही करती हैं। पुरुष बाहर के कार्य कर सभी आवश्यक सामग्रियाँ एकत्रित करते हैं और स्त्रियाँ उनकी रक्षा करती हैं। इसके अतिरिक्त भोजन, घर की सफ़ाई, शिशुपालन आदि घर के भीतरी काम स्त्रियों ही द्वारा सम्पादित होते हैं। पुरुष इन कामों में बहुत कम भाग लेते हैं, जो नहीं के बराबर है। जिसके घर में कोई स्त्री नहीं रहती, उसे स्वयं घर की सफ़ाई, भोजन आदि के काम करने पड़ते हैं। इसे वह अपना दुर्भाग्य समझता है और इन कठिनाइयों से बचने के लिए अपना शरीर भी बेच कर विवाह द्वारा स्त्री प्राप्त करने को कटि-बद्ध रहता है। सारांश यह कि गृह-प्रबन्ध में स्त्रियों का हाथ अधिक होता है।

पाश्चात्य देशों के लोग गृह-प्रबन्ध का उत्तरदायी स्त्रियों को ही मानते हैं और उन पर सारे कार्य छोड़ कर अपना ध्यान जीवन-होड़ की ओर देते हैं। वहाँ की स्त्रियाँ गृह-प्रबन्ध में निपुण भी होती हैं और बड़ी तत्परता और बुद्धिमत्ता से अपने कर्त्तव्य का पालन करती हैं। इसका कारण यह है कि वहाँ का पुरुष-समाज उन्हें सुशिक्षिता बनाने में ही अपने घर और कुल का कल्याण समझता है। यह बात भी सत्य है कि शिक्षा से विचार और कार्य में दक्षता प्राप्त होती है और कोई शिक्षित किसी कार्य का सम्पादन अवश्य एक नादान अशिक्षित से अच्छी रीति से कर सकता है। इसी विचार से पाश्चात्य देशों में कई ऐसे विद्यालय स्थापित हैं, जिनमें अन्य विषयों की शिक्षा के साथ-साथ गृह-निरीक्षण, भोजन बनाने, सीने-पिरोने, स्वास्थ्य-विद्या, शिशुपालन आदि आवश्यक विषयों की उचित शिक्षा भी दी जाती है। इस प्रकार की उचित और उच्च शिक्षा से समन्वित हो, स्त्रियाँ गृह-प्रबन्ध में नैपुण्य से कार्य लेती हैं और घर के कामों की देख-रेख व्यवस्थित रूप में करती हैं। न वे अवसर पाने पर अपना समय व्यर्थ नष्ट करती हैं, न कोई कार्य जल्दी से कोरी कल्पना के बल पर ही सम्पादित करती हैं।

हमारे समाज की स्त्रियाँ केवल घर के भीतरी कामों में ही सर्वदा लगी रहती हैं; तो भी घर के कार्य सुनियमित रूप से न हो सकने की शिकायत पुरुष किया करते हैं। निस्सन्देह हमारे समाज में फूहड़ स्त्रियाँ भी अधिक हैं। गृहस्थों को अपने घरों की स्त्रियों पर कुछ न कुछ क्रोध बना ही रहता है, जिसका एक मात्र कारण उनके इच्छानुकूल गृह-प्रबन्ध न होना और कुछ वस्तुओं का सदा नष्ट हो जाना है। इस झञ्झट से उनका चित्त कभी प्रसन्न नहीं रहने पाता और घर के सभी लोग गृहस्थी की ही बातों में व्यस्त रहते हैं, जिससे दूसरी कोई आवश्यकता उन्हें प्रतीत नहीं होती। न उनका ध्यान अपने बच्चों पर जाता है, न पुष्टिकारक भोजन पर, न घर और घर के लोगों की सफ़ाई पर। यदि स्त्रियों पर ही गृह-प्रबन्ध का सारा भार होता और वे घर के भीतर के कामों को सँभालने में समर्थ हो सकतीं, तो पुरुषों को कुछ शान्ति और दूसरी बातों पर ध्यान देने का अवसर मिलता।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परन्तु हमारी सामाजिक व्यवस्था ऐसी है कि ऐसा होने ही नहीं पाता। कुछ रुकावट के कारण न तो पुरुषों की चिन्ता कम होने पाती है, न स्त्रियाँ गृह-प्रबन्ध में चतुर और दक्ष होती हैं। हमारे समाज में आज परदे की प्रथा है, जो न उन्हें बाहर निकलने देती है, न किसी प्रकार की बाहरी शिक्षा का उन्हें सौभाग्य होता है। स्त्रियों के विद्यालयों में जाकर या प्रदर्शिनियों में दस्तकारी की कलाएँ देख कर ज्ञान-प्राप्ति की बात तो दूर रही, वे वायु-सेवन और स्वास्थ्योन्नति के लिए भी बाहर नहीं निकलने पातीं। हम भी गृहस्थी के कामों को सुव्यवस्थित ढङ्ग से चलाने के लिए स्त्रियों की किसी विशेष शिक्षा की आवश्यकता नहीं समझते, और इस नासमझी के कारण स्त्रियों को अपने उत्तरदायित्व को दक्षतापूर्वक निभाने की कोई शिक्षा नहीं मिलती। परम्परा से घरों में चली आई बातों की जानकारी से ही उन्हें काम लेते रहना पड़ता है। जो स्त्रियाँ स्कूलों और कॉलेजों से शिक्षा भी प्राप्त कर रही हैं, वे भी गृह-प्रबन्ध में निपुण नहीं होतीं; क्योंकि उन्हें भी वही शिक्षा दी जाती है जिस शिक्षा से दफ़्तरों के बाबू तैयार किए जाते हैं।

शनैः शनैः अब लोग स्त्री-शिक्षा की उपयोगिता समझने लगे हैं और बालिकाएँ परदे से बाहर आ, स्कूलों और कॉलेजों की उच्च शिक्षा प्राप्त करने लगी हैं। परन्तु शिक्षा-विभाग के कर्णधारों और समाज-सेवियों का ध्यान शिक्षा की ऐसी पद्धति निर्धारित करने की ओर होना चाहिए, जिससे स्त्रियाँ 'किरानी' बनने की शिक्षा न पा, अपने उत्तरदायित्व को समझने की शक्ति प्राप्त करें और गृह-प्रबन्ध की सारी आवश्यक बातें जान कर सुदक्ष घरनी हो सकें। तभी वे पति-पत्नी-प्रेम को दृढ़ कर, पारिवारिक किचकिच का नाश कर, बेकारी की समस्या हल कर, सेवा से अड़ोस-पड़ोस को प्रसन्न रख, गृह-कार्य को ठीक कर और शिशुपालन में कुशलता दिखाकर गृहस्थी में स्वर्ग-सुख की झलक दिखा सकती हैं।

गृह-प्रबन्ध में शिक्षिता होने पर भी स्त्रियाँ घर के भीतरी कामों को ही करने की उत्तरदायी हैं, क्योंकि बाहर के कार्य-सम्पादन का भार पुरुषों पर है और वह पुरुषार्थ से सम्बन्ध रखता है। गृह-प्रबन्ध में स्त्रियों को कई भिन्न-भिन्न बातों पर ध्यान देना पड़ता है और उनके कार्य पाँच मुख्य विभागों में बाँटे जा सकते हैं। वे विभाग ये हैं—गृह-निरीक्षण, पाक-क्रिया, पारिवारिक सम्बन्ध, वस्तु-संरक्षण, दास-दासियों की देख-रेख और जाँच।

गृह-निरीक्षण—रोग-रहित स्वस्थ-जीवन के लिए निवास-स्थान की सफ़ाई अत्यन्त आवश्यक है। अतएव घर की मालकिन और अन्य स्त्रियों का ध्यान घर की सफ़ाई पर सर्वप्रथम होना चाहिए। गृहस्थों के घर में ऐसा विश्वास भी है कि सूर्योदय के पश्चात् झाड़ू चलाना सूर्यदेव को झाड़ मारना है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि सूर्योदय तक घर-द्वार न बुहार लेने पर पीछे बुहारना ही नहीं चाहिए, बल्कि यह अभिप्राय है कि सुबह ही उठ कर नित्य कार्य के प्रारम्भ में आँगन, कोठरियों और ओसारों को साफ़ कर लेना चाहिए। पक्की भूमि होने से बुहारने से ही काम चल जाता है, किन्तु कच्ची भूमि होने पर बुहारने के अतिरिक्त यत्र-तत्र आवश्यकतानुसार पोत देना भी चाहिए। बुहारने के पहले यदि पानी छिड़क लिया जाय तो अत्युत्तम हो, ऐसा करने से धूल उठ कर घर की चीज़ों पर नहीं पड़ती।

जिस घर में फूहड़ स्त्रियाँ होती हैं वे घरों के कोने, खिड़कियाँ आदि साफ़ नहीं करतीं, न कूड़े-करकट को उठा कर घर से दूर फेंकती हैं। उनकी सफ़ाई कभी ठीक नहीं होती और जहाँ-तहाँ धूल-मिट्टी, छिलके, उपले, पात्र आदि घर की वस्तुएँ पड़ी रहती हैं, जिनकी चिन्ता वे कभी नहीं करतीं। इस पर ध्यान देना अत्यावश्यक है। क्योंकि घर की गन्दगी से अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं और लोगों का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता।

घर की शुद्धता के लिए सफ़ाई के अतिरिक्त प्रकाश और शुद्ध वायु भी आवश्यक हैं। स्त्रियों को देखना चाहिए कि घर की सभी कोठरियों में पर्याप्त प्रकाश और पवन का प्रवेश होता है या नहीं। इसके लिए कोठरियों में खिड़कियाँ होनी चाहिए, घर के कोनों से सड़ी-गली रद्दी चीज़ों को बाहर कर देना चाहिए और घरों में बोरसियाँ (अँगीठियाँ) और मिट्टी के तेल की ढिबरियाँ नहीं जलानी चाहिए। मिट्टी के तेल की ढिबरियों से वायु दूषित और विषैली हो जाती है, जो साँस द्वारा भीतर जाकर फेफड़े को ख़राब कर देती है। दीए जलाने से ताखों (आले) में कजली पड़

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जाती है, उसे साफ़ करना स्त्रियाँ अनावश्यक समझती हैं, परन्तु वह उड़-उड़ कर भोजन और साँस से भीतर जा रोगों का कारण बनती है।

घर को सब प्रकार से साफ़ रख सजाए रखना चाहिए। सजावट से घर की शोभा बढ़ती है और शोभा चित्त को प्रफुल्लित करती है। इसलिए चित्रकारी का काम स्त्रियों को सीखना चाहिए। साथ ही अलमारियों, खिड़कियों और दरवाज़ों की दृढ़ता की देख-रेख करते रहना चाहिए और काँटों को ठोक-ठाक कर ठीक करने का अभ्यास डालना चाहिए।

पाक-क्रिया—भोजन बनाना स्त्रियों का मुख्य काम है, और पुरुष की भी सारी चेष्टाएँ भोजन की उत्तम सामग्रियों के एकत्रित करने की ही होती हैं। इसलिए रसोई के काम में स्त्रियों को विशेष और पूरा ध्यान देना चाहिए। उत्तम, शुद्ध और पुष्टिकारक भोजन से मनुष्य का स्वास्थ्य, जीवन और मस्तिष्क ठीक रहता है। ऐसे तो सभी स्त्रियाँ भोजन बनाती ही हैं, परन्तु इसमें भी कम बुद्धि की आवश्यकता नहीं। एक ही प्रकार का भोजन सभी ऋतुओं में स्वास्थ्यवर्द्धक नहीं होता, न एक ही खाद्य-वस्तु से मनुष्य की रुचि शान्त हो पाती है। स्त्रियों को पाक-शास्त्र के आधार से जानना चाहिए कि किसे कब कैसा भोजन देना चाहिए।

बहुत गृहस्थ घरों में बासी अन्न भी बच्चे खाया करते हैं और स्त्रियाँ परिश्रम से जी चुरा, आनन्द से खिलाती हैं। यह किसी प्रकार लाभदायक नहीं। बासी अन्न कभी किसी को नहीं खाना चाहिए। शुद्ध और हल्का भोजन स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। अपरिपक्व, सड़ा और अति-भोजन से स्वास्थ्य को क्षति पहुँचती है। इसलिए भोजन की शुद्धता और हल्केपन पर सदा ध्यान रखना चाहिए।

भोजन बनाने के समय स्त्रियों को रसोई के पात्र और अन्य सामानों की सफ़ाई पर ध्यान देना चाहिए। अपवित्र पात्र का व्यवहार हानिकर होता है। जो पात्र काम में लाए जायँ उन्हें गरम जल, राख और मिट्टी से साफ़ कर सूखे वस्त्र से पोंछ डालना चाहिए। पीतल, राँगा, ताँबा, जस्ता, काँस आदि के पात्र विषैले होते हैं। इनका व्यवहार करना ठीक नहीं है। रसोई के बरतनों का मुँह ढँका रहना चाहिए। ऐसा नहीं करने से कभी-कभी कीड़े-मकोड़े पड़ जाते हैं। रसोई बनाने वाले को भी अपनी देह और अपने वस्त्र साफ़ रखना चाहिए। रसोई-घर में काफ़ी प्रकाश पहुँचना आवश्यक है। अँधेरा रहने से रसोई ठीक नहीं बन पाती और धुआँ भी नहीं निकल सकता।

जिन घरों में ३-४ स्त्रियाँ हैं, उनमें ऐसी परिपाटी प्रचलित पाई जाती है कि नाते में सबसे छोटी स्त्री ही रसोई का काम देखती है और शेष स्त्रियाँ बैठी रहती हैं और उसे सहायता देना अपमान समझती हैं। इसका फल यह होता है कि रसोई ठीक नहीं बनती, अधिक समय लेती है और अधिक देर तक दोनों समय आग के पास रहने से भोजन पकाने वाली का शरीर अस्वस्थ हो जाता है। कई स्त्रियों के एक साथ रहने पर पाक-विभाग का काम थोड़ा-थोड़ा बाँट कर करना बहुत ठीक है। एक-एक काम एक-एक को लेकर उसे तत्परता से कर डालना चाहिए। ऐसा करने से विशेष थकावट भी नहीं मालूम होती, सभी का अङ्ग-सञ्चालन भी होता रहता है और रसोई भी अच्छी और निश्चित समय पर बनती है।

पारिवारिक सम्बन्ध—ऐसा देखा जाता है कि अधिक व्यक्तियों के घरों में बराबर कचपच हुआ करती है और घर के लोगों में एकता भी नहीं रहती। अनैक्य या मनमुटाव से घर का सौन्दर्य और आनन्द नष्ट हो जाता है और बाहर के कामों से थके पुरुषों को गृह जञ्जाल-सा जान पड़ने लगता है। अतः पुरुषों के सुख और अपने आनन्द के लिए स्त्रियों को सदा प्रेम से रहना चाहिए और किसी को कोई ऐसा विचार हृदय में नहीं लाना चाहिए जिससे पारिवारिक सङ्गठन को क्षति हो या किसी को फूट या क्रोध का अवसर हाथ लगे। घर के मालिक और मालकिन का प्रधान कर्त्तव्य यह होना चाहिए कि सभी व्यक्ति सदा कुछ न कुछ काम में लगे रहें। बेकार बैठे रहने से बक-झक करने की सम्भावना बनी रहती है।

पारिवारिक आनन्द के लिए सभी व्यक्तियों को सत्यप्रिय और निश्छल होना चाहिए। किसी से द्वेष कर या किसी की सन्तति पर डाह या छल न रखना मनुष्य का धर्म है। जो मनुष्य छल, झूठ या पाखण्ड से अपना मन मैला करता है, वह कभी सुखी नहीं रह

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सकता, न ईश्वर की कृपा और दया की आशा कर सकता है। परमात्मा हृदय के निष्कपट और सत्य-भाव से ही प्रसन्न रहते हैं। कहा भी है—"जहाँ झूठ तहँ पाप है, जहाँ सत्य तहँ आप।" आपस में मतभेद और लड़ाई-झगड़ों का कारण भी हृदय का छल ही है। अतएव छल और डाह दूर कर स्त्रियों को परिवार को सुखी बनाने की चेष्टा करनी चाहिए। कितनी आय है और क्या व्यय है, इस पर ध्यान रख कर ख़र्च की व्यवस्था करना उन्हीं का काम है। आय से अधिक व्यय होने पर घर की चीज़ें गिरों रक्खी जाने लगती हैं और माल-धन बिक जाता है। निर्धन दशा में परिवार के लोग भी अलग-अलग हो जाते हैं और बाल-बच्चे भी दरिद्रता से पीड़ित होने लगते हैं। इस कारण यह आवश्यक है कि स्त्रियाँ आय-व्यय पर पूरा ध्यान रक्खें। त्योहारों और विवाह के अवसर पर तथा पूजा-पाठ और तीर्थाटनों में आय के अनुसार अपनी शक्ति देखकर ही ख़र्च करना चाहिए। 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' के चरितार्थ करने वालों की मन्त्रणा में आकर या लोगों के हँसने का विचार कर या अपने अपमान की निर्मूल शङ्का कर कदापि शक्ति से अधिक ख़र्च कर ऋणी नहीं होना चाहिए। ऋण पारिवारिक आनन्द का शत्रु और दीनता का प्रेमी है। ऐसा काम भूल कर भी न करना चाहिए, जिससे पारिवारिक आनन्द नष्ट हो या सम्बन्ध-विच्छेद का अवसर उपस्थित हो।

परिवार की स्त्रियों के रगड़े-झगड़ों का एक कारण यह भी पाया जाता है कि कोई स्त्री घर के काम में व्यस्त रहती है और कोई आलसी बनी रहती है। आलसी पर काम करने वाली का स्वभावतः क्रोध हुआ करता है और ऐसा भाव प्रकट होते ही गृह-प्राङ्गण मुर्ग़ियों का युद्ध-स्थल बन जाता है। इसे दूर करने के लिए स्त्रियों का थोड़ा-बहुत लिखना-पढ़ना सीखना अनिवार्य है। ऐसा करने से वे कुछ कला-कौशल, चित्रकारी, सिलाई आदि का काम कर सकती हैं। जिसका जी घर के मोटे कामों में नहीं लगता वह इन सूक्ष्म कामों से परिवार का कल्याण कर सकती हैं। कुछ स्त्रियाँ इन कामों से पैसा भी पैदा करती हैं। घर के कामों से अवसर मिलने पर दूसरा काम स्त्रियों का चर्ख़ा चलाना और सूत कातना होना चाहिए। पहले यह काम गृहस्थों के घर में ज़ोरों से होता था, अब शनैः शनैः बन्द होता जा रहा है। परन्तु इसे जारी रखना और करना बहुत ठीक है। इससे बेकारी दूर रहती है और फ़ुरसत के समय में घर की स्त्रियाँ और लड़कियाँ एकत्र हो, कुछ काम भी करती हैं और मनोविनोद भी।

परिवार में रोग अपना घर न बनाने पाए, इसलिए बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों को परिवार के लोगों के शरीर और वस्त्र की सफ़ाई पर ध्यान देना चाहिए। स्त्रियाँ अपने तथा बच्चों के स्नान पर पूरा और उचित ध्यान नहीं देतीं, क्योंकि वे स्नान को भोजन बनाने या खाने की कुञ्जी समझती हैं। वास्तव में स्नान शरीर को स्वच्छ और शुद्ध रखने का नाम है। शरीर पर मैल न जमने से रोग नहीं होता। इसलिए स्नान करने में जल्दी न करनी चाहिए। स्नान नित्य करना आवश्यक है, और नित्य नहीं तो समय-समय पर स्नान के पूर्व साबुन या उबटन लगा कर देह को एकदम स्वच्छ कर लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त देहात की स्त्रियाँ अपने केशों की सफ़ाई पर ध्यान नहीं देतीं। एक दिन का बाँधा केश १०-१५ दिनों तक रह जाता है। ऐसा करना फूहड़पन और शृङ्गार का भद्दापन है। केश ऐसा बाँधना चाहिए कि आवश्यकता पड़ते ही शीघ्र खुल जाय। उसे बराबर धोते और साफ़ करते रहना उचित है, ऐसा न करने से वह लीख-ढीलों का घर बन जाता है। पहनने का वस्त्र, बिछौना और ओढ़ना भी कभी गन्दा न रहने पाए। उन्हें दो-तीन दिनों पर धूप में डाल कर गरम कर लेना चाहिए।

बच्चों की देख-रेख स्त्रियों का अपना मुख्य कार्य है। यह दूसरों से नहीं हो सकता। बच्चों के स्वास्थ्य की चिन्ता जन्म-काल के पहले से ही करना चाहिए। बच्चा जब गर्भ में रहता है, तब उसका स्वास्थ्य और मस्तिष्क माता के स्वास्थ्य और विचार के बल पर पुष्ट होता है। इसलिए गर्भवती स्त्रियों की पूरी सेवा होनी चाहिए। ऐसा कोई काम उनसे न लेना चाहिए जिससे शरीर को थकावट हो या मस्तिष्क में विकार उत्पन्न हो। गर्भ-काल की भूलों से गर्भवती और बच्चा—दोनों का जीवन ख़राब हो जाता है। बच्चा होने पर सौरिगृह में भी स्त्री की उचित सेवा होनी चाहिए। ऐसा देखा जाता है कि बच्चा होने की दशा में माता को स्त्रियाँ अपवित्र समझती

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं और स्वयं पास न जाकर गन्दी दाइयों को भेजा करती हैं, यह अशिक्षा का एक प्रमाण है। माता को उस समय भी साफ़-सुथरा वस्त्र, शुद्ध और हल्का भोजन, स्वच्छ कमरा और साफ़ दाई देनी चाहिए। बच्चे के लालन-पालन में भी उसी समय से ध्यान देना उचित है। जैसे-जैसे बच्चा बढ़ता जाय, उसके स्वास्थ्य पर पूरा ध्यान देना चाहिए।

जन्म का निर्बल बच्चा भी पीछे की सेवा से सबल हो सकता है, यदि माता-पिता उसके स्वास्थ्य की उन्नति पर पूरा ध्यान रक्खें। बच्चों को शक्तिवर्द्धक औषधियों के अतिरिक्त पुष्टिकारक भोजन देना चाहिए। स्वास्थ्य की उन्नति के लिए व्यायाम बहुत आवश्यक है, इसकी आदत बचपन से ही डालनी चाहिए। इसलिए माँ-बाप को अपने बच्चों को व्यायाम के लिए बाध्य करना चाहिए और उनसे नियमित व्यायाम कराना चाहिए। ऐसा भी पाया जाता है कि लोग अपनी पुत्रियों के लालन-पालन में उदासी दिखाया करते हैं—वे उनके स्वास्थ्य और शिक्षा पर कुछ भी ध्यान नहीं देते। उनका यह कार्य उनके मातृत्व और पितृत्व में बट्टा लगाता है और धार्मिक दृष्टि से भी वे परमेश्वर के समक्ष अपने धर्म के न पालन करने के उत्तरदायी हैं।

वस्तु-संरक्षण—बहुत घरों में की चीज़ें इधर-उधर बिखरी पड़ी रहती हैं और उनके बनने-बिगड़ने पर किसी का ध्यान नहीं जाता। उनकी ऐसी दशा देख पुरुष कट-कटाया करते हैं, पर फल कुछ नहीं होता। इसका कारण स्त्रियों का वैसा ही स्वभाव है। अशिक्षिता स्त्रियों के स्वभाव में फूहड़पन होने से वे वस्तु-संरक्षण से घर को सजा कर नहीं रख सकतीं। बाल्यकाल से ही उन्हें ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए, नहीं तो पत्नी-रूप में कदापि वे घर की वस्तुओं का संरक्षण सफलता-पूर्वक नहीं कर सकतीं। कहीं दाल की ढेरी रहती है तो कहीं चावल पड़ा रहता है, कहीं पापड़ उड़ा करता है तो कहीं बड़ी पर कौवे चोंच मारा करते हैं, कहीं थाली औंधी रहती है तो कहीं लोटा ठनठनाता रहता है, कहीं रामायण की पोथी के पन्ने उड़ते रहते हैं तो कहीं दावात की रोशनाई ढरकी पाई जाती है, किसी कोने में धोती पड़ी रहती है तो किसी ताक़ पर बच्चों के दो-तीन कुरते पड़े देखे जाते हैं।

ऐसा तो प्रायः पाया जाता है कि बॉक्सों में रक्खे हुए वस्त्र धूप न खाने के कारण नष्ट हो जाते हैं, और गृहस्थों के घरों में बोने के बीज चूहों से व्यर्थ कर दिए जाते हैं। यह घटना स्त्रियों की अशिक्षा और उत्तरदायित्व की अज्ञानता से होती है। उनकी अपनी बुद्धि कोई कार्य नहीं करती। वे पुरुषों की सम्मति पर निर्भर रहती हैं। जब जैसा कहा जाय वैसा करेंगी। अपने कर्त्तव्य का ज्ञान उन्हें शिक्षा देने, समझाने और अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी बनाने से ही होगा। लड़कपन से ही खेलों में उन्हें इन सब बातों की शिक्षा देनी चाहिए। भण्डार-घर बना कर सभी चीज़ों के सजाने और नियत स्थानों पर रखने का उपदेश देते रहना चाहिए। तभी सब चीज़ें सुरक्षित रह सकती हैं और आवश्यकता पड़ते ही मिल सकती हैं।

दास-दासियाँ—निर्धनों का काम बिना दास-दासियों के ही चल जाता है, क्योंकि वे गृहस्थी सम्बन्धी सब काम अपने हाथों कर लेते हैं, परन्तु सुखी घरों के काम दास-दासियों की सहायता के बिना नहीं चलते। अब तो बड़े घरों की स्त्रियाँ भोजन पकाने और बच्चों को दूध पिलाने से भी घृणा करने लगी हैं और बाबा जी रसोई बनाते हैं, दाइयाँ बच्चों की सेवा करती हैं। इससे बड़े घरों की स्त्रियों को कुछ भी परिश्रम नहीं करना पड़ता, और परिश्रम न करने से अङ्गों का सञ्चालन नहीं होता, अतः शरीर रोगों का घर बन जाता है। साथ ही भोजन भी अच्छा नहीं मिलता और बच्चों की भी उचित देख-रेख नहीं होती। हमारी सामाजिक व्यवस्था ऐसी है कि दास-दासियाँ समझदार नहीं होतीं। सभी नौकर नीच कुल के, तुच्छ विचार के और गन्दे आचरण के होते हैं। उन पर भोजन या बच्चों का भार छोड़ना कभी उचित नहीं। बाबा जी भी प्रायः गन्दे रहते हैं और आचरण-भ्रष्ट होते हैं, यही बात अन्य दास-दासियों के साथ भी लागू है। बाबा जी को इतनी बुद्धि नहीं होती कि वे अपना उत्तरदायित्व समझ कर भोजन की शुद्धता और स्वच्छता पर ध्यान दें।

यही दशा दास-दासियों की है। एक तो उनका आचरण प्रायः कुत्सित होता है, दूसरे वे स्वार्थी और कपटी होते हैं। शुद्ध हृदय के, सच्चे और सदाचारी दास-दासी

(शेष मैटर पृष्ठ ६३४ में देखिए)

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

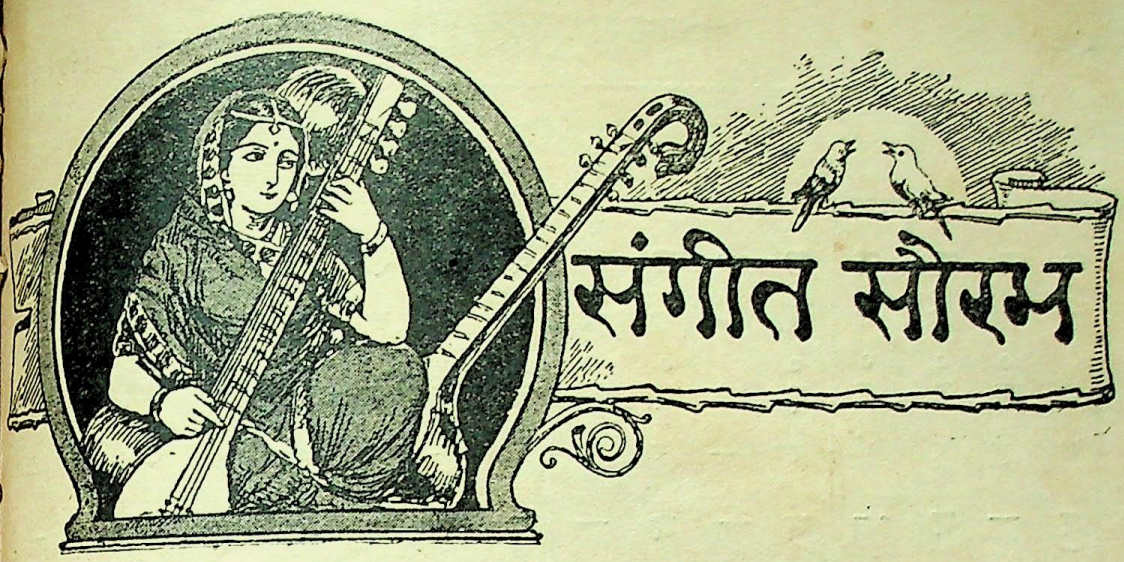

[सम्पादक—श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय (नीलू बाबू)]

बहार-तीन ताल

(१६ मात्रा)

[शब्दकार तथा स्वर-लिपिकार—पण्डित केदारनाथ जी 'बेकल' बी० ए०, एल्-टी०]

आयो बसन्त सघन-वन फूले,
छाय रही हर सू हरियालो।
मन्द समीर मदन-मन मोहे,
वनिता-नवल बनी हर डाली।

कलियन सों है लगन अली की,
मधुर गुँजार बखानत जी की।
पी पी पी पी करत पपीहा,
पी बिन विथा सुने को जी की।

कू कू कू कू अँबवा की डाली,
कोयल कूक रही मतवाली।
'बेकल' अनल विषम सम उपवन,
कण्टक विपिन विना वनमाली।

स्थायी

०				१				×				३			
म	—	म	म	म	—	म	म	प	ध	प	प	म	ग	म	—
आ	—	यो	व	सं	—	त	स	घ	न	व	न	फू	—	ले	—
ध	—	ध	न	ध	प	प	ध	न	—	न	स	न	—	स	—
छा	—	य	र	ही	—	ह	र	सू	—	ह	रि	या	—	ली	—
स	—	ग	ग	ग	—	ग	ग	ग	म	प	म	ग	र	स	—
मं	—	द	स	मी	—	र	म	द	न	म	न	मो	—	हे	—
स	र	स	—	न	ध	प	प	प	ध	न	स	न	—	स	—
व	नि	ता	—	न	व	ल	ब	नी	—	ह	र	डा	—	ली	—

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्तरा

न	न	न	न	न	—	न	॰स	॰स	॰स	॰स	॰स	॰स	—	न	॰स
क	लि	य	न	सों	—	ह	य	ल	ग	न	अ	ली	—	की	—
न	॰स	॰र	॰र	॰र	—	॰स	॰स	न	॰स	॰र	॰स	न	—	ध	—
म	धु	र	गुं	जा	—	र	व	खा	—	न	त	जी	—	की	—
न	—	न	—	ध	—	म	—	प	प	प	प	प	—	प	—
पी	—	पी	—	पी	—	पी	—	क	र	त	प	पी	—	हा	—

०				१				×				३			
म	—	ग	ग	ग	ग	म	म	र	—	र	—	स	न	स	—
पी	—	वि	न	वि	था	—	सु	ने	—	को	—	॰जी	—	की	—
स	—	म	—	म	—	म	—	प	प	प	प	ग	—	म	—
कू	—	कू	—	कू	—	कू	—	अं	व	वा	की	डा	—	ली	—
न	—	न	न	ध	—	ध	ध	न	—	न	॰स	न	—	॰स	—
को	—	य	ल	कू	—	क	र	ही	—	म	त	दा	—	ली	—
॰स	—	॰ग	॰ग	॰ग	॰ग	॰ग	॰ग	॰ग	॰म	॰प	॰म	०	॰र	॰स	॰स
वे	—	क	ल	अ	न	ल	वि	ष	म	स	म	उ	प	व	न
॰स	॰र	॰स	॰स	न	ध	प	प	प	ध	न	॰स	न	—	॰स	—
कं	—	ट	क	वि	पि	न	बि	ना	—	व	न	मा	—	ली	—

राग-विवरण—काफ़ी ठाठ का षाडव—षाडव राग—आरोह में ऋषभ और अवरोह में धैवत वर्जित—कोमल गन्धार और दोनों निषाद—बाक़ी स्वर शुद्ध कुछ गाने वाले आरोह में तीव्र ग—न और अवरोह में कोमल ग—न का प्रयोग करते हैं—र वादी स सम्वादी स्वर हैं—चञ्चल प्रकृति का राग बसन्त ऋतु में गाया जाता है।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साङ्केतिक चिन्ह

स्वर

१—नीचे बिन्दु वाले मन्द्र सप्तक के, बिना बिन्दु वाले मध्य सप्तक के और ऊपर बिन्दु वाले तार सप्तक के स्वर हैं—यथा— स सा सां
०

२—नीचे रेखा वाले स्वर कोमल हैं, यथा—रि ग ध नी और बिना रेखा वाले तीव्र स्वर हैं। यथा—रि ग ध नी

३—कोमल मध्यम का चिन्ह म आर तीव्र मध्यम का मं है नि

४—जो स्वर किसी स्वर के ऊपर लिखा हो, जैसे—स ग म उसको आलङ्कारिक स्वर या Crace Note कहते हैं। आलङ्कारिक स्वर को स्पर्श मात्र दबाने के पश्चात् मूल स्वर को दबाना चाहिए।

ताल

१—सम का चिह्न =×
ख़ाली का चिह्न= ०
और तालों के लिए अङ्क होगा=१ ३

२—⌣इस चिह्न के अन्दर दिए हुए स्वरों को एक मात्रा-काल में गाना या बजाना चाहिए।

३—जिन स्वरों के आगे—यह चिन्ह हो, उनको एक-एक मात्रा-काल तक और बढ़ाना चाहिए, जैसे सा—रि—
यदि ऐसे दो या दो से अधिक हों तो वहाँ उतने ही मात्रा-काल तक रुकना चाहिए यथा—स— — —

४—जहाँ से स्थायी या अन्तरे को दुहराया जायगा वहाँ यह*चिह्न होगा।

* * *

होली, कालिङ्गड़ा—तीन ताल

(१६ मात्रा)

स्थायी—कान्हा रँग डार गयो हो बेपीर।
भींग गई मोरि सर की चुनरी,
सगरी रँगी मेरो तन की चीर।

अन्तरा—मारत गुलाल तक तक सब को,
सखियन घेरत निपट अनारी,
सब ही के मुख पर मलत अबीर॥

स्थायी

३				०				१				×			
०		क		क							क	क		०	क
स	नि	ध	प	ध	प	म	ग	म	—	प	ध	मप	धनि	सनि	धप
कां	हा	रँ	ग	डो	आ	र	ग	यों	—	वे	ए	पीइ	इइ	इइ	इर
क			क							क			क		
ध	—	प	ध	म	प	ग	म	ग	म	ग	रे	ग	रे	स	—
भीं	—	ग	ग	ई	ई	मो	रि	स	र	की	ई	चु	न	री	—
		क						०	०	०क		०	क		क
स	रे	ग	रे	म	—	प	ध	नि	स	स	रे	सनि	धप	मप	धप
स	ग	री	रँ	गी	—	मे	रो	त	न	की	ई	चीई	ईई	ईई	इर

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्तरा

क			क						क		क				
ध	—	प	ध	नि	सं	नि	सं	नि	रें	सं	रें	सं	नि	सं	—
मा	—	र	त	गु	ला	आ	ल	त	क	त	क	स	ब	को	—
	क		क			क					क		क		
नि	रें	ग	रें	म	ग	रें	स	नि	नि	स	रें	सं	नि	ध	प
स	खि	य	न	धे	ए	र	त	नि	प	ट	अ	ना	आ	री	ई
				क		क			क			क		क	
म	ग	म	प	ध	प	ध	नि	सं	रें	सं	नि	पध	निस	निध	प
स	ब	ही	के	मु	ख	प	र	म	ल	त	अ	बीई	ईई	ईई	र

नोट—इस राग में 'रे' और 'ध' हमेशा कोमल लगते हैं।

(पृष्ठ ६३० का शेषांश)

दुर्लभ हैं। दास या दासियों के हाथों में बच्चों को सौंप कर निश्चिन्त हो जाना उनके जीवन की पवित्रता नष्ट करना है। सदैव आचरण-भ्रष्ट दासों के सङ्ग से बच्चों पर बुरा प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता और रोगी नौकरों के रोग बच्चों को हो जाने का भय रहता है। सङ्गत से ही गुण उत्पन्न और नष्ट होता है, ऐसी दशा में कम विचार के बच्चों को कदापि अशिक्षितों के सङ्ग में न रखना चाहिए। हमेशा घर के काम दास-दासियों पर छोड़ने के पहले उनकी बुद्धि और आचरण की जाँच कर लेनी उचित है। शिक्षित दास-दासियों के अभाव में स्वयं ही काम की देख-रेख करना ठीक और लाभप्रद है।

गृह-प्रबन्ध की इन आवश्यक और मुख्य बातों पर विचारने और ध्यान देने से ज्ञात होता है कि गृह-प्रबन्ध के लिए भी कुछ विशेष शिक्षा की आवश्यकता है। जब तक स्त्रियों को यह शिक्षा नहीं दी जायगी, वे गृह-प्रबन्ध में अपनी बुद्धि नहीं लगा सकतीं और न दक्षता से कोई कार्य कर सकती हैं। स्कूलों और कॉलेजों की शिक्षा के साथ उन्हें पाक-विधान, शिशु-पालन, रोग-चिकित्सा, और स्वास्थ्य-विद्या की भी शिक्षा मिलनी चाहिए। तभी वे अपने कर्त्तव्य का पालन कर, पुरुष-समाज की चिन्ता दूर कर अपने मनोहर कृत्यों से घरों में स्वर्ग-सुखों का अनुभव करा सकती हैं। सदा पुरुषों का ध्यान नारियों की गिरी दशा से निस्तार करने की ओर होना चाहिए, क्योंकि नारियों के निस्तार से ही समाज का भी निस्तार है।

मैं तुम्हें नौकर रख लूँगा, परन्तु पहले तुम यह बताओ कि तुमने कितनी जगह काम किया है।

तीस जगह!

तीस जगह! तब तो तुम्हें काफ़ी अनुभव होगा। इन तीस जगहों में तुमने कितने दिन काम किया।

एक वर्ष!

पुत्र—पिता जी आपके सिर पर बाल क्यों नहीं हैं?

पिता—मुझे दिमाग़ी काम ज्यादा करना पड़ता है इस लिए बाल नहीं पैदा होते। जिस अंग से अधिक काम लिया जाता है उस अंग पर बाल नहीं पैदा होते।

पुत्र—माता जी के दाढ़ी मूँछ नहीं है। तो क्या उन्हें मुँह से अधिक काम लेना पड़ता है?

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बप्पा रावल

नागदत्त नाम के एक राजा राजपूताने में राज करते थे। जब वह भीलों के हाथ से मारे गए तब उनके पुत्र की अवस्था केवल तीन बरस की ही थी।

गिल्होट नाम के वंश वाले उनके कुल-पुरोहित थे। जब उस बालक की रक्षा करने के लिए कोई भी न रहा तो उन्होंने निश्चय किया कि चाहे प्राण चले जायँ, पर इस वंश की रक्षा तो करनी ही होगी। यह विचार कर उन्होंने बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ सहीं, परन्तु तब भी वहाँ रहना कठिन हो गया। फिर वह उस बालक को लेकर त्रकूट पर्वत पर चले गए। इस पर्वत पर शान्ति स्वभाव के शिव जी के सेवक निवास करते थे।

जब वह बालक को लेकर उस पर्वत पर पहुँचे तो उन्होंने भीलों के यहाँ निवास किया और भीलों ने भी इनका उचित आदर-सत्कार किया। वह उस बालक को शिव-उपासकों को देकर स्वयं लौट आए। उस पर्वत पर भले प्रकार रक्षित होने के कारण इनके लिए कोई खटका न रहा। जैसे जैसे समय व्यतीत होता गया, वह भी काल के साथ बड़े होते गए। इस बालक के जीवन की बहुत सी अद्भुत घटनाएँ प्रचलित हैं, क्योंकि "होनहार क्या कहीं छिपाए से छिपते हैं?" इसी बालक का नाम बप्पा रावल हुआ।

जिन ब्राह्मणों ने इनको पाला था, बप्पा रावल बड़े होने पर उनकी गायों को चराया करते थे। इस सम्बन्ध में निम्न कहानी भी प्रचलित है :—

"एक समय जब बप्पा रावल गायों को चराने ले गए तो नगेन्द्रनगर की राजकुमारी से इनका साक्षात् हुआ। वह राजकुमारी अपनी सहेलियों सहित झूला झूलने आई थी। परन्तु भूल से उसकी सहेलियाँ झूले की रस्सी साथ लाना भूल गईं। राजकुमारी की सहेलियों ने बप्पा रावल से कहा—'तुम हमारी रस्सी ला दो।' बप्पा रावल ने उत्तर दिया—'हमारे साथ अपनी कुमारी का ब्याह कर दो, तो ला देंगे।'

खेल में ही उन्होंने सोलङ्की राजकुमारी के साथ बप्पा रावल का ब्याह कर दिया। राजकुमारी का दुपट्टा बप्पा रावल की धोती से बाँध कर एक वृक्ष के चारों ओर फेरे डाल दिए। जब राजा ने इस बात को सुना तो बप्पा रावल का वहाँ रहना कठिन हो गया और वह अपने बालीय और देव नामक दो साथियों के साथ उस स्थान को छोड़ कर चले आए।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिन गायों को यह चराया करते थे, उनमें से एक गाय बड़ी दुधारी थी, परन्तु वह घर आकर ज़रा भी दूध नहीं दिया करती थी। इनके साथियों ने इनसे कहा, तुम इस गाय का सब दूध पी लेते हो, इस पर बप्पा बड़े चिन्तित हुए और इस बात की खोज करने का विचार किया।

यह निश्चय करके एक दिन बप्पा उस गाय के पीछे-पीछे चलने लगे। गाय भी जङ्गलों को पार करती हुई आगे ही बढ़ती जाती थी और हमारे वीर बप्पा भी उसका पीछा ही किए चले जाते थे। अन्त में वह एक गुफा में पहुँची, जहाँ कि एक शिव-मूर्ति थी। बप्पा ने वहाँ देखा कि गाय शिव-मूर्ति के पास खड़ी हो गई और उसने आधा दूध उस मूर्ति पर गिरा दिया और आधा दूध उस जगह हारीत मुनि को पिलाया। बप्पा के वहाँ जाने से मुनि का ध्यान भङ्ग हो गया और मुनि ने उनसे उनका नाम और धाम पूछा। मुनि इनसे बड़े प्रसन्न हुए और फिर वह प्रत्येक दिवस मुनि-दर्शन के लिए वहाँ जाने लगे और उनसे अनेक विद्या सीखने लगे। इनके गुणों पर मोहित हो, मुनि ने इनको बहुत से हथियार दिए और भगवती ने प्रसन्न होकर एक तलवार दी। कहते हैं कि यह तलवार* बत्तीस सेर की थी।

जब मुनि के मरने का समय निकट आया तो उन्होंने बप्पा रावल को एक नियत रात्रि के समय अपने पास बुलाया। परन्तु उस रात्रि को उस समय वह सो गए और इस कारण वह वहाँ न पहुँच सके। कथा प्रचलित है कि मुनि को इन्होंने आकाश में जाते हुए देखा और इनकी देह पाँच हाथ बढ़ गई। पर तब भी यह वहाँ न पहुँचे। फिर मुनि ने इनको अपना मुँह खोलने की आज्ञा दी। जब इन्होंने मुँह खोला तो मुनि ने उसमें थूक दिया, पर वह थूक मुँह में न गिरा। कहते हैं कि इनके पहनने का कपड़ा साढ़े चार सौ हाथ लम्बा होता था।

कुमार बप्पा ने अपनी माता से सुना था कि मैं सूर्यवंशी चित्तौर के राजाओं का भाञ्जा हूँ। इस बात को याद करके इनको अपने चरवाहे जीवन से घृणा हुई। इन्होंने बनवास छोड़ दिया और बस्ती में आए। वहाँ वालों के अच्छे कार्य और उत्साह को देख कर यह भी उत्साहित हुए। जब वह उस बन से निकल रहे थे तो मार्ग में नाहरा मगरा नाम के गिरकूट स्थान में इनको गुरु गोरखनाथ सिद्ध के दर्शन हुए। वह इनकी योग्यता और तेज को देख कर प्रसन्न हुए और उन्होंने इनको एक दुधारी तलवार दी। कहते हैं कि इस तलवार को यदि मन्त्र पढ़ कर चलाया जाय तो पहाड़ के भी दो टुकड़े कर दे।

जिस समय बप्पा चित्तौर में पहुँचे उस समय वहाँ मौर्य-वंश के मानसिंह नाम के राजा राज करते थे। महाराज मान ने अपने भाञ्जे को आया जान कर उनका आदर-सत्कार करके ग्रहण किया और अपना प्रधान सामन्त बनाया। उनको कुछ भूमि भी भरण-पोषण को दी। महाराज मान के समय में सामन्त-प्रथा का ज़ोर था, परन्तु बप्पा के आने के बाद महाराज को सामन्तों की आवश्यकता न रही, इसलिए हमारे वीर बप्पा सब की आँखों में खटकने लगे।

उसी समय एक विदेशी बैरी ने आकर चित्तौर पुरी को घेर लिया। महाराज ने सामन्तों को लड़ने की आज्ञा दी। उन्होंने भूमि के पट्टे बड़े क्रोध से फेंक दिए और उत्तर में कहा—"महाराज, अपने प्रधान सेनापति बप्पा जी को लड़ाई में भेजें।" बप्पा युद्ध में गए, बड़े उत्साह से बैरियों से भिड़े। फिर और भी सरदार और सामन्त इनके साथ गए। बप्पा की मार बैरियों से न सही गई और वह भाग गए। इस प्रकार वह विजयी होकर चित्तौर में न आए और अपने

* इस तलवार की और भी बहुत सी कहानियाँ प्रचलित हैं। यह हम किसी अगले लेख में लिखेंगे।

—लेखक

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुरखाओं की राजधानी ग़ज़नी में चले गए। उस समय ग़ज़नी में मुसलमान राजा सलीम राज करता था। इन्होंने उसको उड़ी से उतार, उसकी बेटी से ब्याह किया।

सरदार भी अपने घोर अपमान के कारण चित्तौर न लौटे। महाराज मान ने जब उनको बुलाया तो उन्होंने कहला भेजा कि हम अपने अपमान का आप से एक साल तक बदला न लेंगे। आप तैयार हो जायँ। फिर यह सब मिल कर एक योग्य सरदार की खोज में लगे और उन्होंने बप्पा को ही अपना मुख्य नेता स्वीकार किया। बप्पा भी राज-लोभ में पड़ कर उनके नेता बने और चित्तौर अपने मामा मान से छीन लिया। उस समय यह उनके सब उपकार भूल गए और उनको गद्दी से उतार कर स्वयं गद्दी पर बैठे। इस समय यह केवल १५ बरस के थे।

यह राजकार्य बड़ी योग्यता से करते रहे और जब इनकी अवस्था ५० बरस की हुई तो यह राज्य को छोड़, ख़ुरासान देश में चले गए। वहाँ बहुत से प्रदेश विजय किए और अनेक मुसलमान स्त्रियों से ब्याह किया, जिससे इनके बहुत पुत्र और पुत्रियाँ हुईं। फिर ५० वर्ष बाद अर्थात् १०० वर्ष की अवस्था में बप्पा ने अपना शरीर त्याग दिया।"

—गङ्गादेवी कुलश्रेष्ठ

* * *

लकड़हारा और जलदेवता

कहानी

एक नगर में एक लकड़हारा रहता था। वह बहुत निर्धन था। प्रति दिन जङ्गल से लकड़ी काट कर लाता और उसे बेच कर अपना निर्वाह करता था। एक दिन वह एक जङ्गल में लकड़ी काटने गया। एक नदी के किनारे एक सूखा हुआ पेड़ था। वह उसी वृक्ष पर चढ़ कर उसकी डालियाँ काटने लगा।

संयोगवश उसकी कुल्हाड़ी हाथ से छूट कर उसी नदी में गिर पड़ी। वह बेचारा अफ़सोस करता हुआ उसी नदी के किनारे पर रोने लगा। उसके पास वही एक कुल्हाड़ी थी और वही उसके जीवन-निर्वाह का एकमात्र सहारा थी। वह ज़ोर से रो रहा था। उसे रोता देख कर जल-देवता को दया आ गई। परन्तु उसी समय उन्होंने यह भी सोचा कि ज़रा इसके ईमानदारी की भी परीक्षा लेनी चाहिए। यह सोच कर उन्होंने नदी से बाहर आकर लकड़हारे से उसके रोने का कारण पूछा। लकड़हारे ने कहा—"मैं अपनी कुल्हाड़ी लेकर इस वृक्ष की एक डाली काट रहा था। अचानक मेरी कुल्हाड़ी नदी में गिर पड़ी। मैं बहुत ही निर्धन हूँ। मेरी वही एक कुल्हाड़ी थी। उसके बिना मेरा काम ही नहीं होगा और मैं भूखों मर जाऊँगा। यदि आप देवता हैं तो मुझ पर दया कीजिए और मेरी कुल्हाड़ी ला दीजिए।"

लकड़हारे की बात सुन कर उन्होंने नदी में डूब कर एक चाँदी की कुल्हाड़ी लाकर उस लकड़हारे को दिखा कर पूछा—क्या यह तुम्हारी कुल्हाड़ी है?

लकड़हारे ने कहा—नहीं।

फिर वे डूब कर एक सोने की कुल्हाड़ी ले कर बाहर निकले। फिर उस लकड़हारे को वह कुल्हाड़ी दिखा कर उन्होंने पूछा—क्या यह तुम्हारी कुल्हाड़ी है?

लकड़हारे ने कहा—नहीं।

अबकी डूब कर वे उस लकड़हारे की ही कुल्हाड़ी लेकर आए। इस बार उसने कहा—"हाँ, यही मेरी कुल्हाड़ी है।" जलदेवता ने उसकी ईमानदारी और सत्यता से प्रसन्न होकर उसको कुल्हाड़ी के साथ-साथ सोने और चाँदी की कुल्हाड़ियाँ भी दे दीं। वह लकड़ी काट कर अपने घर गया।

घर जाकर उसने सब से यह बात कह

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुनाई, सभी आश्चर्य करने लगे। उसकी कहानी सुन कर एक दूसरे लकड़हारे को भी अपना भाग्य आज़माने की इच्छा हुई। दूसरे दिन वह भी कुल्हाड़ी लेकर वहीं लकड़ी काटने गया। उसने लकड़ी काटते-काटते जान-बूझकर अपनी कुल्हाड़ी नदी में गिरा दिया और झूठ-मूठ जाकर किनारे पर रोने लगा।

जलदेवता फिर पहले दिन की ही भाँति आकर उससे रोने का कारण पूछने लगे। वह भी उसी लकड़हारे की भाँति बोला—"मैं बहुत ग़रीब हूँ। मेरी कुल्हाड़ी इस नदी में गिर गई है। मुझ पर दया कीजिए।" देवता ने उसकी भी परीक्षा लेनी चाही। उन्होंने नदी में डूब कर एक चाँदी की कुल्हाड़ी लाकर पूछा—क्या यह तुम्हारी कुल्हाड़ी है?

वह पहले लकड़हारे की कहानी सुन चुका था, अतएव बोला—नहीं।

फिर जलदेवता ने एक सोने की कुल्हाड़ी निकाल कर पूछा—"क्या यह तुम्हारी कुल्हाड़ी है?" अब लकड़हारा लोभ को न रोक सका। झट कह दिया—"हाँ।"

लकड़हारे का यह उत्तर सुन कर देवता नदी में डूब गए। लकड़हारा ताकता ही रह गया, पर वे फिर न निकले। बेचारा अपनी भी कुल्हाड़ी गवाँ कर अफ़सोस करता हुआ घर चला गया।

कभी देखादेखी नहीं करनी चाहिए। लोभ बड़ी बुरी वस्तु है। लोभ करने से हाथ की वस्तु भी चली जाती है। सदा ईमानदार होना चाहिए।

—बल्बनप्रसाद सिंह

* * *

सियार और ख़रगोश की कहानी

लज्जा, अपमान और भय के कारण सियार भाई ने कुछ दिनों तक एकान्तवास किया। कुकुर भाई का भय बढ़ जाने से वह काँप उठते थे। राह चलते समय, कोई पीछे लगा हुआ है, इस भय से वह व्यस्त हो उठते हैं। बहुत-कुछ सोच-विचार के बाद उन्होंने ख़रगोश भाई को उनकी शैतानी का भरपूर बदला देने का निश्चय किया। मन ही मन सोचा—ख़ूब कोशिश कर, सारी बुद्धि लड़ाकर उसको मज़ा चखाऊँगा। वह भी याद करे कि किसी से पाला पड़ा था। बहुत होशियार बनता है। अब की साले को नानी की याद न करा दी तो मेरा नाम सियार भाई नहीं।

पर सियार भाई डाल-डाल चलते थे तो ख़रगोश भाई पात-पात। सियार भाई का इरादा ख़रगोश भाई से छिपा न रहा। ख़रगोश भाई ने भी मन ही मन निश्चय किया—ठहरो, तुम्हारे रहे-सहे विष-दाँत तोड़ कर ही आराम लूँगा। समझ क्या रक्खा है?

इसी धुन में ख़रगोश भाई चले जा रहे थे कि सामने घास पर एक बड़ा घोड़ा पड़ा दिखाई दिया।

धीरे-धीरे पैर रखते हुए ख़रगोश भाई आगे बढ़े। घोड़ा ज़िन्दा है या मुर्दा, यह तो निश्चय करना ही था।

आगे-पीछे, बाएँ-दाहिने, चारों ओर से देख-कर भी बेचारा कुछ समझ न सका। हठात् घोड़े की पूँछ हिल उठी। ख़रगोश भाई की समझ में अब आ गया कि घोड़ा ज़िन्दा है, पर गहरी नींद में पड़ा सो रहा है। वह न जाने क्या सोच कर चटपट दौड़ पड़े। अरे, सामने तो सियार भाई जा रहे हैं।

ख़रगोश भाई ने ज़ोर-ज़ोर से पुकारना आरम्भ किया—अरे सियार भाई हो, सियार भाई! ज़रा सुनना तो, बड़ी अच्छी ख़बर है। ओ सियार भाई! ज़रा ठहरो।

आवाज़ कान में पड़ते ही सियार भाई गर्दन घुमा कर खड़े हो गए। कौन पुकारता है?

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ख़रगोश भाई। सियार भाई का हर्ष कौन देखे? मन ही मन सोचने लगे—आज अकेला मिला है। गर्दन मरोड़ कर काँख में दबा, इसकी सारी कूद-फाँद सदैव के लिए समाप्त कर दूँगा। बड़े मौक़े से हाथ आया है।

पर निकट आने के पहले ही ख़रगोश भाई कहने लगे—भाई, एक बड़ा सुअवसर आज हाथ आया है। हम दोनों के भाग्य खुल गए हैं। अभी मैं एक स्थान पर ढेर का ढेर माँस पड़ा देख आया हूँ। उसे घर उठा लाने से कम से कम एक वर्ष के लिए छुट्टी हो जायगी।

इतना सुनते ही सियार भाई सारी शत्रुता भूल गए। प्रसन्न होकर पूँछने लगे—कहाँ भाई, कहाँ? कहाँ वह अमृत-भण्डार देखा है?

"यही सामने घास के मैदान में।"

सियार भाई ने फिर पूछा—क्या है?

"एक घोड़ा मैदान में पड़ा हुआ है, उसे बाँध कर घर खींच ले आना होगा।"

सियार भाई बोले—चलो, जल्दी चल! देर काहे की।

दोनों भाई परमानन्दित हो दौड़ चले।

अभी तक घोड़ा महाशय धूप में लेटे हुए आनन्द से सो रहे थे। दोनों भाई सोचने लगे कि घोड़े को किस प्रकार खींच कर ले जायँ। सियार भाई एक युक्ति बताते थे तो ख़रगोश भाई दूसरी। कुछ निश्चय न हो पाता था। बहुत-कुछ बहस के बाद ख़रगोश भाई सर हिलाते हुए बोले—वाह भाई, एक बड़ी बढ़िया युक्ति सूझी है। क्या कहना? इससे बढ़ कर और कोई दूसरी युक्ति नहीं हो सकती। तुम घोड़े के पीछे घुटने टेक कर बैठ जाओ। मैं तुम्हारे दोनों हाथ उसकी पूँछ में बाँध दूँगा। बस, फिर क्या, काम बना बनाया है। अगर घोड़ा महाशय उठ कर भागना चाहें तो अपने शरीर के बल से रोके रहना। मैं भी सहायता करूँगा। यह सब मैं ही कर लेता, पर कमज़ोर आदमी हूँ। इधर बीमार भी रहा हूँ। अगर मैं तुम्हारी भाँति मोटा-ताज़ा होता, तो कहने की ज़रूरत न पड़ती। तुम्हारे सर की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि ऐसी मज़बूती से थामता कि बेटा घोड़ा भी याद करते कि किसी से पाला पड़ा है। चाहे सूर्य-चन्द्रमा टूट पड़ते, पर मैं उसे टस से मस न होने देता। हाँ, अगर तुम्हें भय लगता है, तो कोई दूसरा उपाय सोचा जाय।

सियार भाई मन ही मन कुछ भयभीत अवश्य हो रहे थे, पर ख़रगोश भाई के सामने छोटा बनने से मर जाना कहीं अच्छा है। सियार भाई अपने को वीर सिद्ध करने के लोभ को रोक न सके, बोले—अच्छा भाई, तुम्हारा कहना ठीक है। मैं राज़ी हूँ।

ख़रगोश भाई ने सियार भाई को घोड़े महाशय की पूँछ में चुपके से बाँध दिया। फिर दो पग पीछे हट, कमर पर दोनों हाथ रख कर खड़े हो गए और दाँत बाहर निकाल कर हँसने लगे। हँसी रुकने पर ज़रा आगे बढ़ कर कहने लगे—हूँ, घोड़ा पकड़ना हो तो ऐसे पकड़े। सियार भाई की पकड़ क्या ऐसी वैसी होती है? हाँ, भाई, ज़रा मज़बूती से पकड़े रहना। मैं अभी आता हूँ।

यह कह कर ख़रगोश भाई चटपट झाड़ी से एक छड़ी तोड़ लाए और आगे बढ़ घोड़े की नाक पर सपाक से एक जमा दी।

घोड़ा महाशय इस प्रकार के शिष्टाचार के ज़रा भी अभ्यस्त न थे। वह तड़फड़ा कर उठ खड़े हुए और चारों पैरों से छलाँगें भरने लगे। अरे, यह क्या? घोड़ा महाशय के कूदते ही सियार भाई तो एकदम सशरीर ऊपर उठ गए। ख़रगोश भाई खड़े चिल्लाने लगे—अरे, यह क्या करते हो, भाई? ज़रा तो सँभलो। मज़बूती से पकड़ो। तनिक और ज़ोर लगाओ। राम-राम!! कहीं हार न मान लेना। बड़ी बदनामी होगी भाई!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पूँछ में एक भारी सियार का बोझ बँधा हो, तो भला कौन भलामानस हत-बुद्धि न हो जायगा? घोड़ा महाशय ने ऐसी घटना कभी देखी-सुनी न थी। बड़े चक्कर में पड़ गए। सियार भाई उन्हें तो दिखाई न पड़ते थे। उन्होंने समझा कि भूतों ने पूँछ पकड़ रक्खी है। वे भय से बेढब तुरकी नाच नाचने लगे। पर बोझा वैसा ही बना रहा। घोड़ा महाशय जितना ही नाचते-फिरते थे, सियार भाई भी उतना ही आँधी के तिनके की भाँति उड़ रहे थे। इस उछल-कूद में उनकी हड्डी पसली सब उलट-पुलट गईं। दुष्ट ख़रगोश भाई घोड़ा महाशय के साथ ही ताल देते हुए नाचते और कहते जाते थे—सँभलो, भाई सँभलो। ज़रा ज़ोर लगाओ। नीचे को दबाए रहो।

घोड़ा महाशय कूदते थे, उछलते थे, नाचते थे, फाँदते थे, उन्हें विराम कहाँ? पीछे तो भूत लगा हुआ था न! इसी बीच में किसी प्रकार अवसर पाकर सियार भाई ने कहा—सँभलो-सँभलो बार-बार कहते हो, कैसे सँभलूँ? ज़रा ज़मीन पर पैर तो टिके फिर थामूँ।

ख़रगोश भाई ज़रा पीछे हट कर फिर चिल्लाने लगे—रोको भाई, रोको। थोड़ी ही कसर है। ज़रा और बल लगाओ।

जब पूँछ का बोझ किसी प्रकार दूर न हुआ तो घोड़ा महाशय ने दुलत्ती छोड़ना आरम्भ किया। सियार भाई के पेट में एक लात जा लगी। लात के लगते ही वह भों-भों करके रोने लगे। घोड़ा महाशय और ज़ोर से दुलत्ती झाड़ने लगे। बराबर लातें लगने से सियार भाई का बन्धन छूट गया और वह शून्य में चक्कर खाते हुए भों-भों करते हुए मैदान में दूर जा गिरे। मामला सङ्गीन होते देख ख़रगोश भाई सटक गए थे।

सियार भाई यम के घर तक नहीं पहुँचे सही, पर यम के पड़ोसी के द्वार तक ज़रूर पहुँच गए थे। बेचारे की हड्डी-पसली सब ढीली हो गई थी। ख़रगोश भाई से बदला लेने की आशा से वह वहीं पड़े रहे। सियार भाई को केवल दुख यही था कि चलते-चलाते ख़रगोश भाई की चाल उन पर चल गई।

—वंशीधर, एम० ए०

विकाश

[रचयिता—श्री० जटाधरप्रसाद जी शर्मा 'विकल']

(१)

रुक जाता है वायु-वेग,
पर्वत में टकराने से।
रुक जाता जल-स्रोत राह—
में अवरोधक पाने से।
रुक जाता रवि का प्रकाश,
रथ के पछार खाने से।
कौन कहे शिशुता भी रुकती—
है यौवन आने से?

(२)

रुक जा सकती लहर-सिन्धु की,
इन्दु-चन्द्रिका पाकर।
रुक जा सकता है तुषार,
आघात उष्ण का खाकर।
रुक सकता संग्राम समर का,
रौद्र रूप दिखलाकर।
कौन कहे शिशुता भी रुकती—
है यौवन-पथ पाकर?

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

टीपू सुलतान

[टीपू सुलतान के पर-प्रपौत्र शहज़ादे अहमद हलीमुज़्ज़माँ और उनके भतीजे शहज़ादे ग़ुलामहुसेन शाह की कृपा द्वारा, एक तत्कालीन चित्र से]

'भारत में अङ्गरेज़ी-राज्य' से

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कमला के पत्र

छप गई ! छप गई !!

मूल्य ३) रु० मूल्य ३) रु०

[सुनहरी जिल्द, तिरङ्गा कवर]

यह पुस्तक कमला नामक एक शिक्षित मद्रासी महिला के द्वारा अपने पति के पास लिखे हुए पत्रों का हिन्दी-अनुवाद है। इन गम्भीर, विद्वत्तापूर्ण एवं अमूल्य पत्रों का मराठी, बँगला तथा कई अन्य भारतीय भाषाओं में बहुत पहले अनुवाद हो चुका है। पर आज तक हिन्दी-संसार को इन पत्रों के पढ़ने का सुअवसर नहीं मिला था। इस अभाव की पूर्ति करने के लिए ही हमने इसका हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित किया है।

इन पत्रों में कुछ पत्रों को छोड़, प्रायः सभी पत्र सामाजिक प्रथाओं एवं साधारण घरेलू चर्चाओं से परिपूर्ण हैं। उन पर साधारण चर्चाओं में भी जिस मार्मिक ढङ्ग से रमणी-हृदय का अनन्त प्रणय, उसकी विश्व-व्यापी महानता, उसका उज्ज्वल पत्निभाव और प्रणय-पथ में उसकी अक्षय साधना की पुनीत प्रतिमा चित्रित की गई है, उसे पढ़ते ही आँखें भर आती हैं और हृदय-वीणा के अत्यन्त कोमल तार एक अनियन्त्रित गति से बज उठते हैं। दुर्भाग्यवश रमणी-हृदय की उठती हुई सन्दिग्ध भावनाओं के कारण कमला की आशा-ज्योति अपनी सारी प्रभा छिटकाने के पहले ही सन्देह एवं निराशा के अनन्त तम में विलीन हो गई। इसका परिणाम वही हुआ जो होना चाहिए—कमला को उन्माद-रोग हो गया। उसके अन्तिम पत्र प्रणय की स्मृति और उन्माद की विस्मृति की सम्मिलित अवस्थाओं में लिखे गए हैं। जो हो, इन पत्रों में जिन भावों की प्रतिपूर्त्ति की गई है, वे विशाल और महान् हैं। अनुवाद बड़ी योग्यता के साथ किया गया है और उसमें इस बात का विशेष रूप से ध्यान रक्खा गया है कि भाषा सरल, सरस और सुबोध हो और मूल लेखिका की स्वाभाविकता किसी प्रकार नष्ट न होने पाए। पुस्तक अपने ढङ्ग की अनोखी है। काग़ज़ ४० पाउण्ड एण्टिक, पृष्ठ-संख्या ३००, छपाई-सफ़ाई दर्शनीय, मूल्य केवल ३) रु०! स्थायी ग्राहकों के लिए २।) मात्र! पुस्तक सुनहरी सजिल्द है और ऊपर तिरङ्गा Protecting Cover भी है !!

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह उपन्यास

[लेखक—'पागल']

दूसरा खण्ड

५

रा अपना चित्र देखते ही एका-एक चहक उठी, "अरे! क्या मैं इतनी सुन्दरी हूँ? और मुझमें इतनी सुन्दरता होने पर भी ....." उसने झट अपनी जीभ को दाँतों से दबा लिया और उसके चेहरे पर लज्जा की लालिमा दौड़ गई। मगर वह तुरन्त ही सँभल कर बातों में अपना भाव छिपा लेने की नियत से बोली—सचमुच आपकी तूलिका में जादू है। मैं तो आपकी कला पर मोहित हो गई।

मैं—मेरी कला पर या अपनी छवि पर?

उसके गालों पर की लाली और गहरा गई। मारे झेंप के वह तसवीर फेंक कर बोली—जाइए न देखूँगी, आप तो मुझे बनाते हैं।

वह उस समय झेंप और झुँझलाहट की ऐसी मूर्ति बनी हुई थी कि उसको चित्रकार ही नहीं, बल्कि कोई भी वास्तविक कलाविद अपने मुग्ध-नेत्रों से बिना जी भर के निरखे नहीं रह सकता था। परन्तु मेरी कला तो मरी हुई थी। मेरी आँखों पर उदासीनता का परदा पड़ा था। मैं उसे प्रशंसा की दृष्टि से देखने के लिए उत्सुकता कहाँ से लाता? इसलिए मैंने मुँह फेर कर लापरवाही से कहा—जिस कला पर आप मोहित होने को कहती हैं, उसका अच्छा आदर किया।

इसके बाद 'डेक्स' से एक अधूरा 'पेन्सिल स्केच' जो मैं एक मासिक पत्रिका के लिए बना रहा था, निकाल कर चुपचाप बनाने लगा। पाँच मिनट बाद मुझे कमरे में सिसकने की आवाज़ सुनाई दी। मैंने चित्र से सर उठा कर देखा तो मालूम हुआ कि तारा कुरसी पर बैठी हुई रो रही है। मेरी उदासीनता अब स्थिर न रह सकी। मैंने कौतुकवश उसके पास जाकर पूछा—क्यों रो रही हो तारा? अगर यह चित्र तुम्हारे पसन्द नहीं है तो मैं तुम्हारी दूसरी तसवीर खींच दूगा। यह भी न स्वीकार हो तो मैं इस चित्र के साथ तुम्हारे रुपए भी वापस किए देता हूँ। ठहरो!

यह कह कर मैं उठ ही रहा था कि उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और कुरसी के एक हैण्डिल पर अपनी कुहनी में अपना मुँह छिपा कर और भी बिलख-बिलख कर रोने लगी। मैं बड़े अचरज में पड़ कर सोचने लगा कि जिसकी बातों में इतना ज्ञान भरा रहता था वही आज बिना बात के एक नासमझ बालिका की तरह इतनी अधीर होकर इस तरह फूट-फूट कर रो रही है। आख़िर क्यों? अब तो मुझसे न रहा गया। मेरा हृदय जो स्त्रियों से इतना जला हुआ था कि उसमें कभी इन लोगों के लिए सहानुभूति उमड़ती ही न थी, वही इसके आँसुओं से ऐसा द्रवित हो गया कि मैं अपने को सँभाल न सका। उसका सर अपनी गोद में लेकर मैं झट कुरसी के हैण्डिल पर बैठ गया और अपने रूमाल से उसके आँसू पोछने लगा। उसने अपने सर को ज्यों का त्यों मेरी गोद में रहने दिया। ऐसा मालूम होता था कि इसमें उसे बड़ी शान्ति मिल रही है।

मैं—तारा! क्या हुआ क्या? तुम एकाएक रोने क्यों लगीं?

तारा—क्या कीजिएगा पूछ कर? किसी को चित्र बनाने में सुख मिलता है तो किसी को रोने में। मैं तो नहीं पूछने गई थी कि आप क्यों चित्र बना रहे हैं, जाइए बनाइए।

तारा की बच्चों की ऐसी भोली बात सुन कर मैं अवाक् रह गया। उसके रोने का कारण अब समझ में आया। उसके मान का अपमान हुआ। वह इसी लिए रूठी थी कि मैं उसे मनाऊँगा। यदि उसे यह आशा न

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होती तो वह रूठती ही क्यों ? परन्तु मेरी लापरवाही ने उसके हृदय पर आघात पहुँचाया। जिसे उसका स्त्रीपन किसी तरह भी सहन न कर सका। मैं मन ही मन अपनी हृदयहीनता को धिक्कारने लगा। और जिस तरह से माँ अपने मचले हुए बालक को गोद में हिला-डुला कर चुप कराती है, उसी तरह मैं उसके सिर को अपनी छाती से लगा कर उसे शान्त करने का उद्योग करने लगा।

मैं—अरी तारा, तू इतनी योग्यता और ज्ञान पाकर भी ऐसी नासमझ है, मैं नहीं जानता था!

तारा अपना मुँह उसी तरह मेरी गोद में छिपाए हुए बोली—और मैं नहीं जानती थी कि 'नासमझी' में इतनी शक्ति है, वरना मैं ज्ञान और योग्यता को कभी अपने पास फटकने न देती। बल्कि उन्हें झाड़ू मार कर दूर भगाती।

मैं—यह क्या कहती हो ? ज्ञान ही से मनुष्य के मनुष्यत्व की शोभा है।

तारा—"परन्तु स्त्री के स्त्रीपन की नहीं, बालक के बालकपन की नहीं।" इतना कहते-कहते उसने अपना सिर उठा लिया। उसकी सूरत से भोलापन का वह आकर्षण लोप हो गया। उसकी जगह पर ज्ञान की कान्ति फिर छा गई। मैं वहाँ से उठ कर दूसरी कुरसी पर बैठ गया। क्योंकि अब उसके पास उस तरह बैठे रहने का मुझमें साहस न रहा। वह कुछ देर तक अपने विचारों में डूबी रही। फिर वह इस तरह बोलने लगी मानो वह अपने मन से बातें कर रही है।

तारा—अब जाना। उफ़ ओह! प्रकृति की यह सत्यता इतने दिनों बाद मालूम हुई। मैं मानती हूँ कि ज्ञान बड़ी चीज़ है। मगर पुरुष के लिए पुरुषत्व, स्त्री के लिए स्त्रीपन और लड़कों के लिए लड़कपन उससे कहीं बढ़ कर है। ये प्रकृति के गुण हैं। इनमें जो आकर्षण और सौन्दर्य है वह मनुष्योपार्जित गुणों में कहाँ ?

मैं—ठीक कहती हो, तुम्हारी बातों को मैं जितना ही सुनता और उन पर विचार करता हूँ उतना ही अधिक मेरा आदर तुम्हारे प्रति बढ़ता है। इसलिए तुम अपने ज्ञान को न धिक्कारो। यह उसी का प्रभाव है जो मुझ-ऐसे मुर्दे से भी तुम्हारा सत्कार करा रहा है।

उसने झँझला कर उत्तर दिया—चूल्हे में जाय यह सत्कार। मैं देवता नहीं हूँ, मैं कोई पत्थर की मूर्ति नहीं हूँ।

मैं—देवता न सही, मनुष्य तो हो। मनुष्य ही सत्कार का भूखा होता है तारा.....

तारा—"फिर भी हर समय नहीं, हर जगह नहीं, हर व्यक्ति से नहीं।" यह कह कर उसने अपने मुँह को अपने दोनों हाथों में छिपा लिया और उसी तरह नीचा सिर किए हुए फिर बोली—संसार में सत्कार से भी बढ़ कर कोई चीज़ है। वह क्या है, सोच कर देखिए! उसे अब जाना कि स्त्री केवल ज्ञान और योग्यता से नहीं प्राप्त कर सकती, बल्कि अपने स्त्रीपन से, अपने स्वाभाविक गुणों से। उफ़! इसीलिए उसे मैं अब तक प्राप्त न कर सकी थी। भाई अलिन्द! आपने मुझे उसकी प्राप्ति का उपाय बता कर मेरा बड़ा उपकार किया।

मैं—कैसा उपाय और कैसा उपकार ? आप कहती क्या हैं ?

तारा ने सिर उठा कर कहा—ईश्वर के लिए मुझे 'आप' न कहिए। आपके मुँह से यह शब्द मुझे वज्र-समान मालूम होता है। आप आदर और सत्कार के बड़े दानी हैं तो इस धन को लुटाने के वास्ते आपके लिए सारी दुनिया पड़ी है। परन्तु मुझे क्षमा कीजिए। मैं आपसे यह दान नहीं चाहती, नहीं चाहती।

मैं—तब क्या चाहती हो, कुछ कहो तो।

तारा—पहले यह तो बताइए कि आप उसे दे सकेंगे ?

मैं—अगर वह चीज़ मेरे पास होगी तो मैं अवश्य दूँगा।

तारा—घबड़ाइए नहीं। मैं ऐसी कोई चीज़ चाहती ही नहीं, जो आपके पास न हो।

मैं—आख़िर वह है क्या, कुछ बताओ तो।

तारा—अब न कहूँगी।

मैं—क्यों ?

तारा—अगर मुझमें शक्ति होगी तो मैं आप ही ले लूँगी। ऐसी चीज़ें माँग कर नहीं ली जातीं।

मैं—तारा! तारा! इतनी गहरी पहेली न बनो। मेरा दिमाग़ बहुत कमज़ोर है।

तारा—मालूम है, आप बीमार हैं। इसीलिए मैं आपके पास आई थी कि बीमार, बीमार का हाल जितना

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समझ सकता है, उतना डॉक्टर भी नहीं जान पाता। मगर अफ़सोस! आप अच्छे बीमार हैं कि मेरी व्यथा नहीं समझ सके। अगर समझ सकते तो क्या कहना था—

"ख़ूब गुज़रेगी जो मिल बैठेंगे दीवाने दो।"

मैं—"हाथ जोड़ता हूँ तारा। मुझे अब अधिक उधेड़-बुन में न डालो। ईश्वर के लिए साफ़-साफ़ कह दो, क्या चाहती हो।"—इतना कह कर मैंने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—तुम्हें बताना पड़ेगा। जब तक न बताओगी तब तक तुम्हें छोड़ूँगा नहीं।

तारा ने मुस्करा कर पूछा—क्यों? आप इतने परेशान क्यों होगए?

मैं—क्योंकि मैं डरता हूँ कि शायद तुम्हारा लक्ष्य कहीं ऐसी वस्तु पर तो नहीं है जिसे मैं न दे सकूँ?

तारा—अगर वह भी दे सकते तो शायद आपको इस वक़्त इतनी परेशानी न होती! क्यों?

मैं—मुमकिन है।

तारा—"बस, जो मैं चाहती थी, पा गई।" इतना कहते-कहते उसने अपना हाथ झटक कर छुड़ा लिया और हँसती हुई वहाँ से भाग गई।

६

तारा की कैसी विचित्र प्रकृति थी, यही सोचते-सोचते मेरा दिमाग़ चकरा गया। कभी वह तत्वज्ञानी-सी प्रतीत होती थी और कभी ऐसी भोली कि मानो वह कुछ जानती ही नहीं। घड़ी में रूठना और घड़ी में हँसना। उसके स्त्रीपन की कैसी प्यारी छटा थी कि मुझ ऐसे उदासीन हृदय पर भी अपना प्रभाव बिना डाले न रह सकी। वह अपने ज्ञान और योग्यता के कारण मेरे लिए आदरणीया थी अवश्य, फिर भी उसके इन गुणों में वह माधुर्य, वह आकर्षण न था जो उसके भोलेपन में था। वरना और कभी तो मैं उसके पास बैठ कर इतने प्यार से उससे सहानुभूति न कर सका था? सच है, प्रकृति जिसको जिस लिए उत्पन्न करती है, उसको उसी के योग्य और अवस्थानुकूल स्वाभाविक गुण भी देती रहती है, ताकि उनके बल पर वह अपनी स्थिति को रोचक बनाता हुआ प्रकृति के आदेशों को पूरा कर सके। यदि कोई इन गुणों को किसी युक्ति से निर्मल कर दे, अन्य गुणों से बदल दे या अवस्था के विपरीत उनका प्रयोग करे तो फिर उसमें उसकी व्यक्तिता का स्वाभाविक सौन्दर्य कब रह सकता है? बच्चा ज्ञान छाटने लगे तो संसार में उसका आदर भले ही हो, परन्तु उसको गोद में उठा कर चूमने का भला किसका जी चाहेगा? तब प्यार किए जाने की उसकी स्वाभाविक लालसा की कैसे तृप्ति हो सकती है? उसे कितना ही सम्मान क्यों न मिले, मगर उससे उसके बाल्य-स्वभाव को कभी भी वास्तविक सन्तोष नहीं मिल सकता। इसलिए हर व्यक्ति में उसके व्यक्तिपन का होना उतना ही आवश्यक है जितना नेत्रों के लिए देखना और कानों के लिए सुनना। सचमुच तारा की टूटी-फूटी बातों में तत्व की बड़ी गहरी सच्चाई थी। परन्तु इसकी थाह उसे इतनी छोटी अवस्था में किस तरह मिली? निस्सन्देह उसका हृदय किसी अपने स्वाभाविक आकांक्षा के लिए भीतर ही भीतर रो रहा था, तभी ज़रा सी मेरी सहानुभूति से उसे यह असलियत सूझ गई।

ऐसी-ऐसी कितनी ही बातों में उसके अलौकिक ज्ञान की चमक अकसर झलक उठती थी, जिन्हें सुन कर मैं चकित होकर रह जाता था और मन ही मन उसका आदर करता था। परन्तु वह कौन सी ऐसी चीज़ थी जिसे वह इतनी ज्ञान-सम्पन्ना होने पर भी प्राप्त नहीं कर सकी थी और वह कौन सा पदार्थ था जो वह मुझसे लेना ही नहीं चाहती थी, बल्कि ले भी गई, मैं नहीं जान सका। इस पर जितना ही विचार करता था उतना ही हैरान होकर रह जाता था। मैं तो उसे कुछ देने योग्य था भी नहीं। फिर मुझसे वह क्या पा गई, समझ में नहीं आया। उसकी अटपट बातों में भीतरी वेदना की तिल-मिलाहट कुछ न कुछ टपकती थी अवश्य, परन्तु वह वेदना कैसी और क्यों थी, पता न मिला। इसलिए इन बातों के जानने की इच्छा मुझे उसके जाने के बाद ही से बुरी तरह सताने लगी। मैं अपने कौतूहल को जितना ही दबाना चाहता था उतनी ही मेरी सहानुभूति उसके प्रति न जाने क्यों आप से आप उमड़ कर उसे और भी तीव्र कर देती थी। यहाँ तक कि दूसरे दिन सुबह को जब मैं सो कर उठा तो सब से पहले मैंने यही सङ्कल्प किया कि आज डॉक्टर सन्तोषानन्द से जिस तरह भी मुमकिन होगा, तारा के सम्बन्ध में पूरा हाल जाने बिना नहीं

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रहूँगा। जब वह उसका नाम जानते हैं तब उसका हाल भी कुछ न कुछ ज़रूर ही जानते होंगे।

यद्यपि डॉक्टर साहब उस दिन ख़ुद ही मेरे पास आने के लिए कह गए थे, फिर भी मुझसे उनके आने तक प्रतीक्षा न की जा सकी और मैं ही चटपट खाना खाकर उनके यहाँ जाने की तैयारी करने लगा। इतने ही में डाक आगई। और मैं अन्य ख़तों पर सरसरी नज़र डाल कर एक पत्र को बड़े ध्यान से पढ़ने लगा। और उसको हाथ में लिए घण्टों बैठा रह गया। क्योंकि वह तारा ही का भेजा हुआ था और उसमें यही लिखा था कि—

"भाई आलिन्द,

मैं घबड़ाहट में चित्र लाना भूल गई। चिन्ता न कीजिएगा। यद्यपि मुझे उसकी कोई आवश्यकता नहीं है, तथापि कहीं आपकी कला का निरादर न हो, इसलिए मैं उसे कभी न कभी मँगवा लूँगी। मैं तो अपने दुख से व्याकुल होकर आपकी शरण में शान्ति पाने के लिए गई थी। मुझे आपका हाल कैसे मालूम हुआ और मुझे आपसे शान्ति मिलने की क्यों आशा हुई, बताने का कोई प्रयोजन नहीं मालूम होता। अस्तु, दया करके आपने मेरे साथ जो सहानुभुति प्रकट की है, उससे मैं कभी उऋण नहीं हो सकती। उसी को पाकर मैं एक दफ़ा फिर जी उठी हूँ। आशा है, आप मुझ पर अपनी इस कृपा को सदा बनाए रक्खेंगे। इतने दिनों तक मैं आपके पास बराबर गई, मगर आपने मुझसे किसी दिन भी मेरा नाम तक नहीं पूछा। और आज एकाएक आपने मेरा नाम लेकर मुझे कैसे सम्बोधन किया? अवश्य किसी ने आपको उसे बताया होगा। ख़ैर! जिस किसी से भी यह मालूम हुआ हो, कृपया उससे आप मेरे सम्बन्ध में कुछ न पूछिएगा। आपको उसके लिए मैं उसी की शपथ देती हूँ, जिसको आप प्यार करते हैं। अगर कहीं मेरा हाल आप सुनें भी तो तुरन्त अपने कानों में उँगली डाल लीजिएगा। यह चेतावनी मैं आपको ज़बानी न दे सकी, इसीलिए घर पहुँचते ही मैं आपको यह पत्र लिख रही हूँ। आशा है, आप मेरे अनुरोध की पूर्ण रूप से रक्षा करेंगे और इस पत्र को जला देंगे। नमस्कार!

कृपाभिलाषिणी,

—तारा"

"पुनश्च—यद्यपि कोई भी प्रतिष्ठित सज्जन मेरा भाई कहाने में अपना अपमान समझेगा, तथापि मेरा हृदय आपको भाई करके सम्बोधन करने से किसी तरह भी नहीं मानता। इसके लिए क्षमा कीजिएगा—हाथ जोड़ती हूँ।"

इस पत्र ने मेरे कौतूहल को निवारण करने के बदले और भी उसका कर भड़का दिया। उसका दुख क्या है? उसे मुझसे शान्ति मिलने की क्यों आशा हुई? उस पर वह मुझसे अपना हाल क्यों छिपाना चाहती है? वह मुझे भाई कहने के लिए क्यों क्षमा माँगती है? यह सब मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया। बल्कि उन पर विचार करते-करते उल्टे और भी मैं उलझन में पड़ गया। जितना रहस्यमय उसे मैं उसकी बातों से और उसकी प्रकृति की विचित्रता से समझता था, उससे कहीं बढ़ कर वह इस पत्र से मालूम हुई। इस रहस्य को कुछ सुलझाने की जो युक्ति सोची थी हाय! उसे भी उसने मुझसे छीन ली। क्योंकि उसके शपथ दिला देने से अब मैं उसका हाल डॉक्टर सन्तोषानन्द से भी नहीं पूछ सकता था। अगर मैं जानता कि उसके विषय में मुझे इतनी बेकली होगी तो इतने दिनों में मैं स्वयं ही उसी से उसका हाल बहुत-कुछ जान लेता। मगर तब तो मैंने इसकी परवा की ही नहीं। मैंने कभी उससे इतना भी तो नहीं पूछा कि तुम कौन हो, कहाँ रहती हो, क्या करती हो। और अब उसके आने की भी आशा नहीं थी; क्योंकि उसने चित्र मँगा लेने को लिखा था। उस पत्र में न तो उसका पता था और न मुहल्ले का नाम ही। इसलिए उत्तर देने से भी रहा। मैं इसी उधेड़-बुन में पड़ा हुआ था कि मैंने चिक के बाहर डॉक्टर सन्तोषानन्द को आते हुए देखा।

(क्रमशः)

(Copyright)

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट—
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

विविध विषय

अबलाओं के आँसू

मनु महाराज कहते हैं कि जिस कुल में स्त्रियाँ दुखित होकर हाहाकार करती हैं वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। मैं इससे कुछ आगे जाना चाहता हूँ। मैं कहता हूँ जिस जाति में और जिस धर्म में स्त्रियाँ दुख से अश्रुपात करती हैं वह जाति और वह धर्म भी चिर-काल तक संसार में नहीं रह सकता। मैं कोई कवि नहीं, और न स्त्री-दास ही हूँ; इसलिए मेरे उपर्युक्त शब्द रमणी-समाज की झूठी श्लाघा न समझे जाने चाहिएँ। मैं इन शब्दों में एक अटल सचाई देखता हूँ। उस सचाई के कारण ही ऋषियों ने समाज में स्त्री को इतना महत्व दिया है। दुःख और चिन्ता से रोते-धोते रहने वाली माता कभी नीरोग और वीर सन्तान को जन्म नहीं दे सकती। फिर जिस घर में लड़के और लड़कियाँ रोगी, कायर, और बुद्धिहीन हैं, उसका अभ्युदय असम्भव है। परिवारों के समूह का ही नाम जाति है। दुखी, कायर और दुर्बल मनुष्यों का समूह कभी सुखी और स्वतन्त्र नहीं हो सकता। इसीलिए आज्ञा है कि स्त्री चाहे कितना भी घोर अपराध कर चुकी हो, उसे फूल तक भी नहीं मारना चाहिए। पर उसका अर्थ यह नहीं कि उसको कदाचार से न रोका जाय, या उसे मनमानी करने दी जाय—इससे समाज को घोर हानि होने का भय है। अतएव जिस उद्देश्य से स्त्रियों को सुखी और प्रसन्न रखने का आदेश है, वह महान उद्देश्य उच्छृङ्खलता से लुप्त हो जाता है।

हिन्दू-सभ्यता में स्त्री का स्थान बहुत उच्च है। उसके बिना कोई भी धर्म-कार्य पूरा नहीं हो सकता। परन्तु दुख से मानना पड़ता है कि पौराणिक काल में हिन्दू-स्त्री का पद बहुत गिर गया था और गिरा हुआ है। हिन्दुओं के राजनीतिक और सामाजिक पतन के कारण चाहे अनेक हों, परन्तु उनमें से अवश्य एक यह भी है। किसी फ़ारसी कवि का कथन है कि पीड़ित व्यक्ति का दुःखपूर्ण निश्वास बड़े-बड़े साम्राज्यों को विनष्ट कर डालता है। इसे शायद कुछ लोग अत्युक्ति समझें। परन्तु यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि आँसू अनेक ऐसी चीज़ों को गला देता है जो किसी भी दूसरी वस्तु से नहीं गलतीं। फिर यदि ये आँसू किसी दुखिया देवी के हों तो फिर तो न मालूम वे क्या कर डालें।

हिन्दू लोग मुसलमानों और ईसाइयों के तलाक़ की खिल्ली उड़ाया करते हैं। वे अपने विवाह-सम्बन्ध को नित्य और अटूट बता कर अपनी पारिवारिक शान्ति की डींग हाँका करते हैं। परन्तु वे उस समय उन आत्म-त्यागी दुखी देवियों को भूल जाते हैं, जो दीपक में तेल की तरह जल कर इनके गार्हस्थ्य जीवन को सुखमय और प्रशान्त बना रही हैं। हिन्दू-पुरुष एक स्त्री के रहते दूसरा विवाह कर लेता है। अपने अनुकूल न होने पर वह पत्नी का परित्याग कर सकता है। उसकी इच्छा न रहते भी वह उसे अपने साथ रहने पर विवश कर सकता है, और स्त्री के रुग्ण होने पर भी उसे बलात् माता बना सकता है। इसके विपरीत स्त्री क़ानूनी तौर पर उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। वह उसकी भोग्य वस्तु है और वह भोक्ता है। कोढ़ी, कलङ्की, दुराचारी और अत्याचारी

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होने पर भी वह उसका परित्याग नहीं कर सकती। ऐसी अवस्था में हिन्दू-पुरुषों को अपना विवाह-सम्बन्धी सामाजिक नियम क्यों अच्छा न लगेगा? आगे मैं दो-तीन उदाहरण देता हूँ। इनसे पता लगेगा कि हिन्दू कन्याओं को कैसे-कैसे अत्याचार सहन करने पड़ते हैं!

मेरे अपने ही गाँव की बात है। गत वर्ष एक लड़की का विवाह हुआ। लड़की का पिता नहीं, माता और भाई हैं। खेती का काम होता है। ग़रीबी के कारण भाई

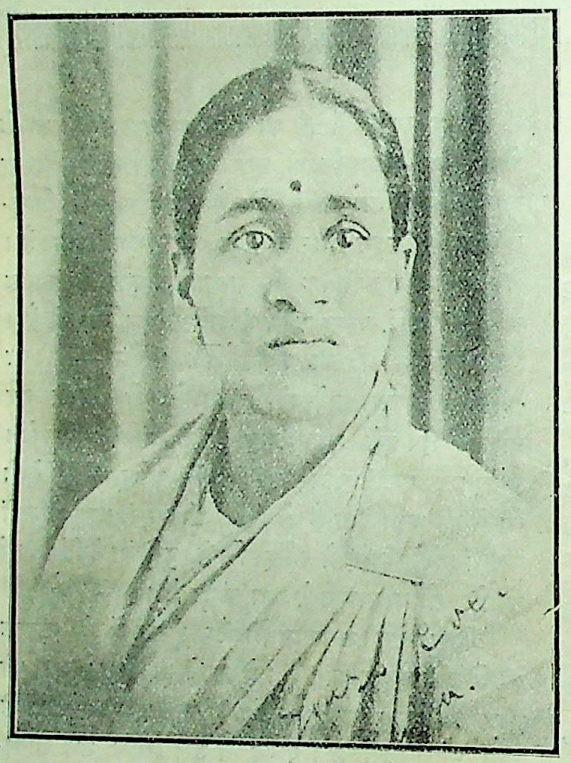

श्रीमती गङ्गूबाई पटवर्द्धन

आप प्रो० कर्वे महिला-विश्वविद्यालय की ग्रेजुएट [जी० ए०] हैं। किण्डरगार्टन तथा मॉन्टसोरी (Mantessory) सम्बन्धी उच्च शिक्षा प्राप्त कर हाल में ही विलायत से लौटी हैं।

का विवाह नहीं हो सकता था। माता ने लड़की को बेचने की ठानी। लड़की की अवस्था मुश्किल से १४ वर्ष होगी। माता ने रुपया लेकर एक चालीस वर्ष के प्रौढ़ पुरुष के साथ उसकी सगाई कर दी। विवाह की तिथि निश्चित हो गई। बारात आई। विवाह-मण्डप में जब वर महाशय पधारे तो बालिका एक गत-यौवन और कुडौल पुरुष को देख कर बहुत घबराई। उसने वहीं रोना आरम्भ कर दिया। उसने अपने सोहाग की चूड़ियाँ तोड़ डालीं, और मारे क्रोध के कपड़े फाड़ डाले। परन्तु उसकी सुनता कौन था? ज़बरदस्ती विवाह कर दिया गया। जब बारात के विदा होने का समय आया तो वह भाग कर कहीं छिप गई। ढूँढ़ने पर जब मिली तो उसने अपनी माता-रूपिणी वैरिन से साफ़ कह दिया कि मैं तो इस बुड्ढे के साथ जाऊँगी नहीं, तू चली जा। यह तेरे ही योग्य है। परन्तु इस घोर विरोध का कुछ भी फल नहीं हुआ। बेचारी को उस पुरुष के साथ, जो उसे एक आँख भी नहीं भाता था, पत्निरूप से रहना ही पड़ा, उस बाला की मानसिक वेदना का अनुमान करके मेरा हृदय काँप उठता है!

एक दूसरी घटना सुनिए। मेरे एक मित्र की दो बहिनें हैं। मित्र का देहान्त हो चुका है। बड़ी बहिन विधवा है—बड़ी दुखिया है। दोनों बहिनें अपनी भाभी के मायके रहती थीं। विधवा भाभी के पिता ने ही छोटी बहिन की सगाई एक जगह की। लड़की की आयु मुश्किल से चौदह-पन्द्रह वर्ष होगी। परन्तु जिस विधुर के साथ उसका सम्बन्ध किया गया, उसकी आयु पैंतालीस से कम क्या होगी। परन्तु कन्या को वर की बड़ी अवस्था का पता तक नहीं दिया गया। वह यही समझती रही कि वर उसके समवयस्क है। जिस दिन बारात आई, लड़की की सहेलियाँ उसे लेकर वर को देखने गईं। वर को बूढ़ा देख, बालिका के हृदय पर भारी चोट लगी। वह मन को मसोस कर रह गई। घर आकर उसने अपनी बड़ी बहिन से कहा—बहिन, मौसा तो कहते थे, तेरे लिए तेरी आयु का ही वर ढूँढ़ा है। पर वह तो बुड्ढा है। इतना कहते ही कहते अनाथा के नेत्रों से आँसू टप-टप गिर पड़े। वह अपने उस भारी शोक को सँभाल न सकी। पर क्या कर सकती थी? पराधीन थी। एक घण्टा बाद 'सप्तपदी' हो जाने पर वह उस वृद्ध महाशय की जङ्गम सम्पत्ति बन गई। अब उसे इस अत्याचार से क़ानून भी नहीं बचा सकता।

तीसरी घटना एक चमार-कन्या की है। बेचारी

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का विवाह कोई चार-पाँच वर्ष की आयु में हो गया था। परन्तु वह ससुराल नहीं गई थी। इस बीच में किसी आर्यसमाजी ने उसके पठन-पाठन का प्रबन्ध कर दिया।

मिसेज़ एल० रमुन्नी

आप मद्रास-सरकार द्वारा विलारी म्यूनिसिपल-काउन्सिल की सदस्या नियुक्त की गई हैं।

बुद्धि तीव्र थी। शीघ्र ही विद्या प्राप्त कर ली। नाना प्रकार के कष्ट और असुविधाएँ होते हुए भी उसने पाँच कक्षाएँ पास कर लीं। सभ्य समाज में उठने-बैठने और बोलने-चालने का भी ढङ्ग आ गया। साफ़-सुथरी रहने लगी। होशियारपुर के पास बसी ग़ुलामहुसेन नाम का एक गाँव है। वहाँ डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की कन्या-पाठशाला में अध्यापिका हो गई। उधर पति महाशय घास बेच कर निर्वाह करते थे। पहले तो इसलिए पत्नी को घर न लाए कि अभी छोटी है। व्यर्थ भोजन-वस्त्र का भार ही बढ़ेगा। परन्तु जब वह बड़ी हो गई और पढ़-लिख कर विदुषी बन गई तो डरे कि वह मेरे जैसे निरक्षर के घर बसना कब पसन्द करेगी। इसलिए उसने अपने पैसे खरे करने के लिए एक दूसरे मनुष्य के पास उसे बेच दिया। रजिस्टरी की जो नक़ल अरज़ी-नवीस के रजिस्टर में रहती है, वह नीचे दी जाती है :—

"नक़ल रजिस्टर अज़ अमृतसरिया अरज़ी-नवीस सदर होशियारपुर। मवर्रख़ा २७ जून, १९२८ ई०।

महँगा (लड़की के पति का नाम) की तरफ़ से इक़रारनामा।

मुसम्मात बन्ती उर्फ़ रमाबाई ज़ौजा (पत्नी) को मुज़हिर ने अपनी ज़ौजियत (पत्नित्व) से मुबलिग़ ३००) रुपया नक़द लेकर और बाक़ी दो सद रुपया लेना करके बहक़ मङ्गलसिंह वल्द गण्डासिंह रामदासिया सकना मँगवाल तर्क कर दिया है।

इक़रारनामा अज़ जानिब मङ्गलसिंह।

मिसेज़ जे० एस० जस्टिन

आप टिनावेली (मद्रास) ज़िला शिक्षा-समिति की सदस्या नियुक्त हुई हैं।

मुज़हिर मुसम्मात बन्ती उर्फ़ रमाबाई के बख़ाना ख़ुद आबाद हो जाने पर मुबलिग़ दो सद रुपया मुसम्मी महँगा वल्द दरबारी सकना धर्मकोट को दे दूँगा।"

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जब गाय या भैंस बेची जाती है तो भी बेचने वाला उसका रस्सा ख़रीदने वाले के हाथ में सौंपता है। परन्तु इस सौदे में इतनी बात की भी आवश्यकता न समझी गई। रमाबाई को कुछ पता ही नहीं। वह अपनी पाठशाला में पढ़ा रही है। इधर वह बिक भी गई। एक दिन अचानक मङ्गलसिंह बसी ग़ुलामहुसेन आया और पूछने लगा कि रमाबाई कहाँ है। रमाबाई ने कहा, कहो क्या काम है? तब वह बोला, यह देखो रजिस्टरी, मैंने तुम्हें मोल ले लिया है। तुम अब मेरे घर चलो।

रमा को बड़ा कष्ट और आश्चर्य हुआ। लड़की चतुर है। वह अपनी पाठशाला के भीतर चली गई, ताकि वह दुष्ट किसी प्रकार का अपमान न कर सके। ग्रामीण लोग बेचारी की सहायता करने के स्थान में उलटा उसकी हँसी उड़ाने और लाञ्छन लगाने लगे। अन्त को मङ्गलसिंह के विरुद्ध शिक्षा-विभाग के अधिकारियों के पास शिकायत की गई। तब कहीं कई मास के रगड़े-झगड़े के बाद अब उस धूर्त को डाँट-डपट हुई है, और बेचारी का पीछा छूटा है। रमा का जो पत्र हाल ही में मुझे मिला है, उसमें अपने कष्टों का वर्णन करते हुए उसने स्त्री-जाति की बेबसी पर भी आँसू बहाए हैं। यदि स्त्रियों के लिए भी पुरुषों को इस प्रकार बेच डालना सम्भव होता तो संसार की अवस्था आज से सर्वथा भिन्न दीख पड़ती। स्त्री अबला है, अपनी रोटी आप नहीं कमा सकती। वर्तमान समाज में उसका अकेली रहना या विचरना भी भय से रहित नहीं। इसीलिए पुरुष उस पर मनमाने अत्याचार कर रहे हैं। परमेश्वर जाने यह दशा कब सुधरेगी!

—सन्तराम, बी० ए०

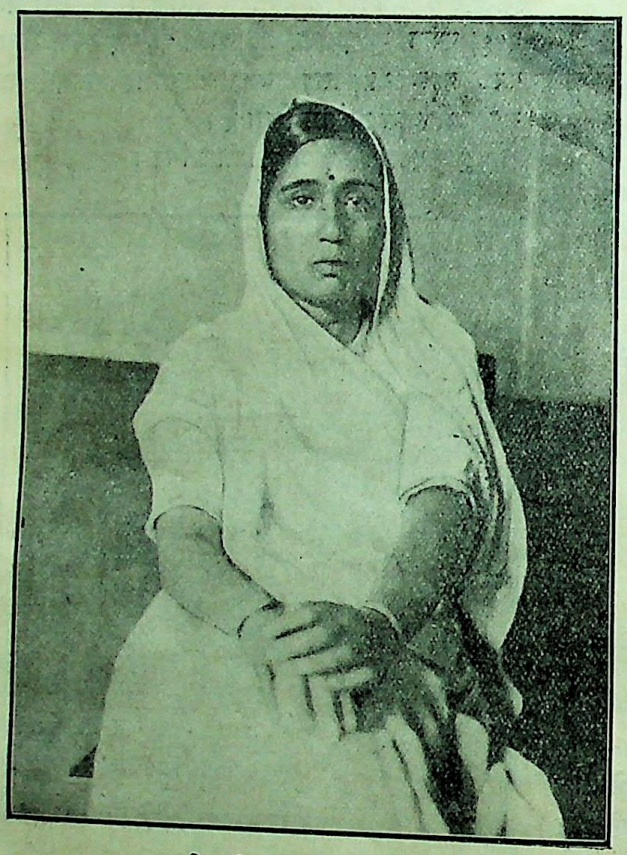

श्रीमती जयावती देसाई

आप चिम्मनभाई स्त्री-समाज, बड़ोदा की मन्त्रिणी हैं। राजनैतिक आन्दोलनों में भी आप विशेष भाग लेती हैं। बड़ोदा प्रजा-मण्डल की कार्यकारिणी सभा की आप सदस्या भी हैं

* * *

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाएँ

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन भारतवर्ष की एक प्रसिद्ध और माननीय संस्था है। इसका मुख्य उद्देश्य भिन्न-भिन्न उपायों से हिन्दी-भाषा का प्रचार करना और इसके साहित्य को सर्वरूपेण समुन्नत करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सम्मेलन की ओर से प्रति वर्ष (१) प्रथमा, (२) मध्यमा, (३) उत्तमा, (४) मुनीमी और (५) अराय़ज़नवीसी ये पाँच परीक्षाएँ ली जाती हैं। मध्यमा उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को 'विशारद' तथा उत्तमा उत्तीर्ण सज्जनों को 'रत्न' की उपाधि दी जाती है। परीक्षार्थियों की सुविधा के लिए देश के भिन्न-भिन्न ज़िलों तथा राज्यों में १८० परीक्षा-केन्द्र स्थापित हैं और यह प्रयत्न किया जा रहा है कि संवत् १९८६ की परीक्षाओं के लिए क़रीब ३०० केन्द्र हो जायँ।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन परीक्षाओं की कुछ विशेषताएँ ये हैं—सब परीक्षाएँ हिन्दी में होती हैं ; सभी देश, जाति और अवस्था के परीक्षार्थी इनमें सम्मिलित हो सकते हैं। परीक्षा-शुल्क

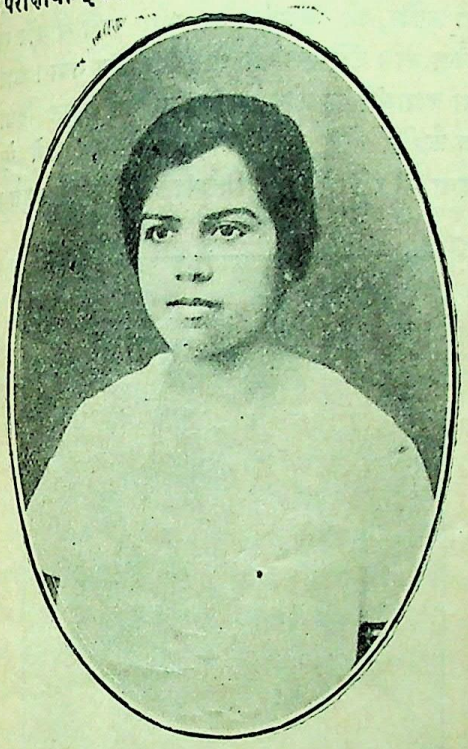

डॉक्टर मिस डी० एम० सतूर,
बी० ए०; एम० बी०; बी-एस

आपने इस छोटी अवस्था में ही डॉक्टरी की बड़ी उच्च शिक्षा प्राप्त की है। इस समय आप मद्रास के लेडी वेलिंगटन मेडिकल-स्कूल में शिक्षिका का कार्य कर रही हैं।

बहुत कम रक्खा गया है। जो अनुत्तीर्ण परीक्षार्थी किसी विषय में एक बार उत्तीर्ण हो जाता है, उसे उसमें फिर से नहीं बैठना पड़ता। इन परीक्षाओं के उत्तीर्ण परीक्षार्थी योग्यता में विश्वविद्यालय के ग्रेजुएटों से किसी भी बात में कम नहीं होते*। इन परीक्षाओं का सर्वत्र पूरा सम्मान है और कुछ ज़िला बोर्डों और देशी नरेशों ने इन परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियों को विशेष सुविधाएँ दे रक्खी हैं। यही कारण है कि प्रति वर्ष हज़ारों परीक्षार्थी इसमें सम्मिलित होते हैं। संवत् १९८५ की परीक्षाओं के लिए २,३६६ परीक्षार्थियों ने आवेदन-पत्र भेजे थे। विश्वविद्यालयों के ग्रेजुएट भी इसमें सम्मिलित होते हैं। इस वर्ष २३ बी० ए०, बी० एस्-सी० और एम० ए० मध्यमा परीक्षा में सम्मिलित हुए थे।

इन परीक्षाओं की एक विशेषता यह भी है कि महिलाओं से परीक्षा-शुल्क नहीं लिया जाता। इन परीक्षाओं की तरफ़ महिला-समाज का ध्यान विशेष रूप से गत दो वर्षों से ही आकर्षित होने लगा है। संवत् १९८३ में परीक्षार्थिनियों की संख्या केवल १८ थी। संवत् १९८४ और १९८५ की परीक्षाओं में उनकी संख्या बढ़ कर ६४ तक पहुँच गई। आशा है कि संवत् १९८६ की परीक्षाओं में परीक्षार्थिनियों की संख्या दो सौ से कम न होगी।

मिस वप्पू

आप हरदा (सी० पी०) म्यूनिसिपल काउन्सिल की सदस्या होने वाली प्रथम महिला-रत्न हैं। आप सामाजिक सुधार तथा शिशु-रक्षा आदि आन्दोलनों में विशेष भाग लेती हैं।

सम्मेलन की परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने से हिन्दी-

* इससे हमारा मतभेद है।—स० 'चाँद'

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाषा का ज्ञान प्राप्त होता है, साहित्य में उन्नति होती है, उपाधियाँ उपलब्ध होती हैं और उपाधियों की प्राप्ति से कीर्ति भी मिलती है। इसलिए परीक्षाओं में बैठना, उन्हें पास कर उपाधियाँ प्राप्त करना और सब प्रकार अपनी मातृ-भाषा अथवा राष्ट्र-भाषा की सेवा करना प्रत्येक भारतवासी का धर्म है। इन परीक्षाओं का पूरा विवरण और पाठ्य पुस्तकों की सूची तथा आवेदन-पत्र परीक्षा-मन्त्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग को लिखने से प्राप्त हो सकते हैं।

हम आशा करते हैं कि सभी विचारशील शिक्षक और होनहार नवयुवक तथा नवयुवतियाँ इन परीक्षाओं में शीघ्र सम्मिलित हो, हिन्दी-प्रचार के गौरवमय कार्य में हाथ बँटाने का श्रेय प्राप्त करेंगे।

—दयाशङ्कर दुबे, एम० ए०, एल्-एल् बी०
(परीक्षा-मन्त्री)

* * *

कुमारी बहिन

चाँद की किसी पिछली संख्या में ग्राम्य-गीत सम्बन्धी एक लेख में मैंने प्रसङ्ग-वश एक 'कुमारी बहिन' का ज़िक्र किया था। उसे पढ़ कर 'चाँद' के कई पाठक-पाठिकाओं ने मुझसे 'कुमारी बहिन' का परिचय पूछा था। पर उस समय मुझे परिचय प्रकाशित करने की आज्ञा नहीं थी, और मुझे भी अच्छी तरह मालूम नहीं था, इससे मैंने किसी को उत्तर नहीं दिया। अब 'कुमारी बहिन' की कुछ बातें मुझे मालूम हुई हैं, चित्र भी मैंने प्राप्त कर लिया है और आज्ञा भी; अतएव 'चाँद' में सब प्रकाशित किए देता हूँ।

'कुमारी बहिन' का नाम कमलेश्वरी कुँज़रू है। आप सुप्रसिद्ध पण्डित हृदयनाथ कुँज़रू की चचेरी बहिन हैं और अपने माता-पिता के साथ ग्वालियर में रहती हैं। आप कुछ दिनों तक 'स्त्री-दर्पण' की सहकारी सम्पादिका भी रह चुकी हैं। सन् २१ से जब कि आगरे में श्रीमती गाँधी आई थीं, उनका उपदेश ग्रहण कर आपने विदेशी वस्त्र का त्याग किया था। तब से आज तक खद्दर ही पहनती हैं और बहुत सादा जीवन व्यतीत करती हैं। विदेशी चीज़ें इस्तेमाल नहीं करतीं, और न बनाव-सिंगार पसन्द करती हैं।

आपके हृदय में दया बहुत है। सन् १९२६ के दिसम्बर में आप कानपुर में गङ्गा नहाने गई थीं। सर्दी के दिन थे। जाड़ा ज़ोरों का पड़ रहा था। रास्ते में एक बुड्ढा फ़क़ीर, जो वस्त्रहीन था और सर्दी से काँप रहा था, बैठा था। उसे देख कर आप से न रहा गया। आपने अपना काश्मीरे का कोट उतार कर उसे पहना दिया। बुड्ढा फ़क़ीर बोल नहीं सकता था। पर उसने ऐसी कृतज्ञता की दृष्टि से देखा, जिसका आपके ऊपर बहुत ही

काश्मीरी वेष में कुमारी कुँज़रू

प्रभाव पड़ा और तब से आप दीन-दुखियों की ओर और भी अधिक आकर्षित हुईं। आपसे किसी का दुख नहीं देखा जाता।

आप बहुत बारीक सूत कातती हैं। एक बार कलकत्ते से आपको बढ़िया सूत के लिए इनाम भी मिल चुका है। आप अपने ही हाथ के कते सूत की दरी पर सोती हैं।

आप अभी अविवाहिता हैं। काश्मीरी ब्राह्मण-वंश की हैं। कविता पढ़ने ही का शौक़ नहीं, बल्कि लिखती

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भी हैं। यहाँ जो चित्र दिया जाता है, वह आपकी काश-मीरी पोशाक में है।

—रामनरेश त्रिपाठी

* * *

वेद में पर्दा-प्रथा

स्त्रियों के लिए पर्दा कितना घातक है, इससे कितनी हानियाँ हैं और यह भारतीय प्राचीन सभ्यता के विरुद्ध है, इत्यादि बातों पर 'चाँद' में यथासमय बहुत-कुछ लिखा जा चुका है। इन बातों पर फिर से लिखना यहाँ व्यर्थ ही सा है। हम यहाँ यह विचार करेंगे कि वेद में स्त्रियों के पर्दे के विषय में क्या कहा गया है?

पर्दा हिन्दू-जाति के सनातन धर्म के प्रतिकूल है। रामायण और महाभारत आदि इतिहास-ग्रन्थों के पढ़ने पर मालूम होता है कि उस ज़माने में पर्दे की प्रथा नहीं थी, रामायण में लिखे हुए सीता देवी के वे वचन जो उन्होंने अपने पति के प्रति कहे थे, प्रत्येक मनुष्य के विचार करने योग्य हैं। उन्होंने श्रीरामचन्द्र जी से कहा था—

अहं दुर्ग गमिष्यामि वनं पुरुष वर्जितम्।
नानामृगगणाकीर्णं शार्दूल गण सेवितम्॥
सुखं वनेनिवत्स्यामि यथैव भवने पितुः।
अचिन्तयन्तीत्रिल्लोकांश्चिन्तयन्ति पतिव्रतम्॥
शुश्रूषमाणा ते नित्यं नियता ब्रह्मचारिणी।
सह रम्येत्वयावीर वनेषु मधु गन्धिषु॥
साहं त्वयागमिष्यामि वन मद्य न संशयः।
नाहं शक्या महाभाग निवर्त्तयितु मुद्यता॥
अहं गमिष्यामि वनं सुदुर्गमं,
मृगायुतं वानर वारणैश्च।
वने निवत्स्यामि यथा पितुर्गृहे,
तत्रेव पादावुप गुह्य संयता॥

अर्थात्—"मैं ऐसे निर्जन, घोर वन में चलूँगी जहाँ अनेक तरह के पशु और शेर चीते वग़ैरह होंगे। मैं वन में उसी तरह सुख पाऊँगी जैसा अपने पिता के घर पाती थी। पातिव्रत्य धर्म के आगे मुझे तीनों लोकों की भी परवा नहीं है। मैं नियमों का पालन करूँगी, आपकी सेवा करूँगी। तुम्हारे साथ मन्द सुगन्ध-पूरित वन में आनन्दपूर्वक रहूँगी। मैं ब्रह्मचारिणी बन कर रहूँगी। निस्सन्देह तुम्हारे साथ वन में चलूँगी। मैं वन जाने से किसी भी तरह रुक नहीं सकूँगी।"

जब सीता के इन वचनों पर भी राम ने उन्हें अपने साथ ले जाने से इन्कार किया तो उन्होंने कहा—

किंत्वामन्यत वैदेहः पितामेमिथिलाधिपः।
राम जामातरं प्राप्य स्त्रियम् परुष विग्रहम्॥

अर्थात्—"मिथिलाधिप मेरे पिता ने आपको पुरुष-वेषधारी स्त्री समझ कर अपना जँवाई नहीं बनाया था।"

क्या पति-पत्नी की इन बातों से कोई यह कह

मिसेज़ ए० ईपेन

आप मद्रास-सरकार द्वारा बेजवाड़ा-म्यूनिसिपल काउन्सिल की सदस्या नियुक्त हुई हैं।

सकता है कि ये पर्दानशीन स्त्रियों की बातचीत है? यह उस स्त्री-रत्न की भाषा है, जिसे देख कर पातिव्रत्य

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धर्म भी अपने भाग्य की सराहना करता है। पुरुष के साथ जो समानधर्मा होने का दावा कर सकती हो, वही ऐसे शब्दों का प्रयोग कर सकती है।

महाभारत की एक कथा देखिए। श्रीकृष्णचन्द्र जी जब कौरवों के पास पाण्डवों की ओर से सन्धि के लिए जाने लगे तब पाण्डव-पत्नि देवी द्रौपदी ने अपने बालों को दिखाते हुए कहा था :—

अयंते पुण्डरीकाक्ष दुश्शासन करोधृतः।
स्मर्त्तव्यं सर्व कार्येषु परेषां सन्धिमिच्छमः॥

श्रीमती इरावती कर्वे, एम० ए०

आप सुप्रसिद्ध समाज-सेवी प्रोफ़ेसर कर्वे की पुत्रवधू हैं, जो उच्च शिक्षा प्राप्त करने जर्मनी गई हैं। इस समय आप बर्लिन के एक विख्यात विश्वविद्यालय में अध्ययन कर रही हैं।

अर्थात्—"हे पुण्डरीकाक्ष! आप सन्धि करते समय यह न भूल जाना कि नीच दुश्शासन ने मेरे इन बालों को खींचा था।"

यह बात उस ज़माने की है, जब कि श्रीकृष्ण जी की उम्र ८० वर्ष से अधिक हो चुकी थी।* श्रीकृष्ण जी पाण्डवों से उम्र में दुगुने से भी कहीं अधिक थे। अर्जुन के मित्र थे और पाण्डवों के कुटुम्बी थे। परन्तु द्रौपदी अपने केशों को साड़ी से बाहर निकाल कर उन्हें दिखाती है और निर्भयतापूर्वक श्रीकृष्ण जी से बातचीत करती है। ये दो उदाहरण हमने दिए हैं, किन्तु हमारा प्राचीन इतिहास यदि उठा कर देखा जायगा तो उसमें पर्दे का कहीं ज़िक्र भी नहीं मिलेगा। देव-दानव, ऋषि-मुनि, गन्धर्व-किन्नर, मनुष्य, नाग जाति के लोग, इत्यादि किसी भी जाति, समाज, वर्ण अथवा देश में पर्दा नहीं था। अब हम वेदों के निम्न मन्त्रों पर यहाँ विचार करेंगे।

अहं विष्यामि मयिरूपमस्या
वेददित् पश्यन्मनसः कुलायम्।
न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्यतेश्वयं
श्रश्नानो वरुणस्य पाशान्॥ ५७॥

अर्थात्—"(अस्याः) इस पत्नी के (रूपम्) रूप को (मनसः) मन का (कुलायम्) आधार (वेदत्) जानता हुआ और (पश्यन्) देखता हुआ (इत्) ही (अहम्) मैं वर (मयि) अपने में (विष्यामि) निश्चयपूर्वक धारण करता हूँ (स्तेयम्) चोरी के पदार्थ को (न) नहीं (अद्मि) खाता हूँ (मनसा) विज्ञान से (वरुणस्य) रुकावट के (पाशान्) फन्दों को (स्वयम्) ख़ुद (श्रश्ना) ढीला करता हुआ (उत् अमुच्ये) मैं छूट गया हूँ।"

प्रत्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येनत्ववबन्धात्
सविता सुशेवाः। उरुं लोकं सुगमत्र पन्थाम्
कृणोमितुभ्यं सहपत्न्यै वधु॥ ५८॥

अर्थात्—"(वधु) हे वधू! (त्वा) तुझे (वरुणस्य) रोक के (पाशात्) बन्धन से (प्रमुञ्चामि) मैं छुड़ाता हूँ (येन) जिसके साथ (त्वा) तुझे (सुशेवाः) अत्यन्त सेवनीय (सविता) जन्मदाता पिता ने (अबन्धात्) बाँधा है। (सहपत्न्यै) पति के साथ (तुभ्यम्)

* इस सम्बन्ध में बहुत मतभेद है। अनेक ग्रन्थों में श्रीकृष्ण जी की आयु १५ से २० वर्ष की ही बतलाई गई है।
—सं० 'चाँद'

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तेरे लिए (अत्र) यहाँ (उरुम्) चौड़ा (लोकम्) स्थान (सुगम्) सुगम (पन्थाम्) मार्ग (कृणोमि) मैं बनाता हूँ।

ये दोनों मन्त्र अथर्ववेद के १४ वें काण्ड में वर्णित हैं। इनका देवता दम्पति है और गृहाश्रम में व्याख्यात हैं। ये दोनों मन्त्र विचारणीय हैं। ये दोनों मन्त्र स्पष्ट सूचित कर रहे हैं कि स्त्रियाँ पर्दे में अर्थात् बन्धन में नहीं रक्खी जानी चाहिएँ। यह पुरुषों का कर्त्तव्य है कि वे स्त्रियों को उनके कार्यों में स्वतन्त्रता प्रदान करें। जैसा कि ऊपर के मन्त्र ५७ में पति का पत्नी से कथन है कि—"मैं रुकावट के बन्धनों को ढीला करता हुआ स्वयम् स्वतन्त्र हो गया हूँ।" यदि इस मन्त्र को यह कह कर टाल दिया जाय कि इससे कुछ स्पष्ट अर्थ नहीं निकलता तो फिर मन्त्र ५८ को पढ़िए। इससे स्पष्ट हो जाता है कि—"पति के साथ तेरे लिए चौड़ा स्थान और चौड़े मार्ग मैं करता हूँ।" अर्थात् स्त्रियों के रहने के स्थान सङ्कुचित न हों, उन्हें पर्दे में दबोच कर न रक्खा जाय, बल्कि उनका स्थान विस्तृत हो अर्थात् स्वतन्त्रतापूर्वक इच्छानुसार इधर-उधर जा-आ सकें। "मार्ग सुगम करता हूँ।" यह वाक्य बिलकुल स्पष्ट बता रहा है कि स्त्रियाँ बिना रोक-टोक के रास्तों पर घूमें-फिरें। सारांश यह कि वे पुरुषों की भाँति जहाँ-तहाँ स्वतन्त्र-रूप से घूम-फिर सकती हैं—पर्दे में क़ैदी की तरह रहने की कोई ज़रूरत नहीं है।

सुमंगलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत्।
सौभाग्यमस्यै दत्वा दौर्भाग्यैर्विपरेतन।

—अथर्व १४। २। २८

अर्थात्—"(इयम् वधूः) यह बहू (सुमङ्गली) बड़े मङ्गल वाली है (समेत) मिल कर आओ और (इमाम्) इसे (पश्यत्) देखो। (अस्यै) इसको (सौभाग्यम्) सौभाग्यपन (दत्वा) देकर (दौर्भाग्यैः) दुर्भाग्यता से (विपरेतन) अलग रक्खो।"

यह मन्त्र और भी स्पष्ट कर रहा है कि पर्दे की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इसमें खुल्लमखुल्ला लिखा है कि—"इस मङ्गलवाली बहू को मिल कर आओ और देखो।" पर्दे में देखना मना है। पर्दा दृष्टि रोकने की वस्तु है, परन्तु वेद कहता है कि झुण्ड के झुण्ड लोग मिल कर उस सर्वगुण-सम्पन्न वधू को देखो और आशीर्वाद दो, इत्यादि बातों का आगे के मन्त्रों में ख़ुलासा वर्णन है। हमारे विषय से सम्बन्ध न रखने के कारण हमने यहाँ उन्हें नहीं लिखा है।

इसी तरह के मन्त्र ऋग्वेद में भी हैं। और भी ऐसे कई मन्त्र पाए जाते हैं, जिनसे पर्दा न होने की ध्वनि निकलती है। आशा है, विचारशील पाठक इन मन्त्रों पर विचार करेंगे।

—गणेशदत्त शर्मा, विद्यावाचस्पति

* * *

पतनोन्मुख मैथिल-समाज

मैथिल-समाज अपनी विद्या, बुद्धि एवं आध्यात्मिकता के कारण आज से शताब्दियों पहले भारतवर्ष का गौरव समझा जाता था और तक्षशिला, काशी आदि विद्या-केन्द्रों के अतिरिक्त मिथिला भी विद्या का प्रमुख केन्द्र माना जाता था। इतना ही नहीं, जिन शङ्काओं का समाधान उन विद्या-केन्द्रों में न हो पाता था, उनका समाधान मैथिल-समाज के दिग्गज विद्वानों की प्रखर बुद्धि करती थी। मैथिल-समाज का इतिहास बहुत ही प्रोज्ज्वल एवं रोचक है। इस समाज की महत्ता का अनुभव तो उन व्यक्तियों को होगा, जिन्होंने न्याय, मीमांसा, सांख्य और वेदान्त का अध्ययन किया होगा। इन शास्त्रों के टीकाकार विशेष कर मैथिल-समाज के विद्वान् ही हुए हैं और मैं समझता हूँ जब तक ये शास्त्र दुनिया में क़ायम रहेंगे, मैथिल-समाज ही नहीं, अखिल हिन्दू-समाज अपने पूर्वजों की विद्वत्ता पर गर्व करेगा। जनक, याज्ञवल्क्य, गौतम ऐसे ऋषियों और मण्डन, वाचस्पति, विद्यापति एवं उदयनाचार्य ऐसे अनेकानेक आचार्यों के उत्पन्न करने का श्रेय मैथिल-समाज को ही है। भगवान् शङ्कराचार्य से शास्त्रार्थ करने वाली भारती मैथिल-समाज की ही महिला-रत्न थीं। एक वह समय था, जब इस समाज के नैयायिकों की तर्कना-शक्ति इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि भारतीय विद्वत्-मण्डली दङ्ग रह जाती थी। एक वह समय था, जब केवल मीमांसा-शास्त्र के ज्ञाता एक, दो, दस, बीस, सौ ही नहीं, वरन् हज़ारों की संख्या में इस समाज की शोभा बढ़ा रहे थे। एक वह समय था, जब यहाँ की स्त्रियाँ तक बे रोक-टोक सभा-मण्डप में शास्त्रार्थ करने के लिए पधा-

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रती थीं और वहाँ जाकर अपनी विद्या, बुद्धि एवं सांसारिक अनुभवशीलता से प्रतिद्वन्द्वियों को परास्त करती थीं। सारांश यह कि उस समय का मैथिल-समाज आदर्श समाज गिना जाता था।

परन्तु आज का मैथिल-समाज उससे बिलकुल भिन्न है। आज तो यह पतनावस्था की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका है। आज इस समाज के अन्दर दो, चार, दस, बीस, सौ ही नहीं, वरन् हज़ारों की संख्या में ऐसे बदमाश, लम्पट, दुराचारी एवं नर-पिशाच मौजूद हैं, जो अपनी काम-पिपासा शान्त करने के निमित्त व्यभिचार का ताण्डव-नृत्य किया करते हैं। आज इस अभागे समाज में ऐसे बगुला भगतों की संख्या बेहद बढ़ती जा रही है, जो धार्मिकता की ओट में अधार्मिकता, कूपमण्डूकता एवं दाम्भिकता का नाटक खेला करते हैं। आज यह समाज ऐसे नर-पुङ्गवों से भी ख़ाली नहीं कहा जा सकता, जो अपने कुकर्मों से समाज को कलङ्कित करने से ज़रा भी नहीं हिचकते। इस समाज की वर्तमान स्थिति को देख कर कोई भी विचारशील व्यक्ति यह कहे बिना न रहेगा कि आज का अधिकांश मैथिल-समाज नारकीय कीटों से भी बदतर हो रहा है! आज इस अभागे समाज की छाती पर बाल-विधवाओं की संख्या धड़ाधड़ बढ़ती जा रही है और इस बढ़ती हुई संख्या का दुष्परिणाम किसी भी आँख, कान एवं दिमाग़ रखने वाले व्यक्ति से छिपा न होगा। यदि विचार-पूर्वक देखा जाय तो इन तमाम दुर्गुणों और व्यभिचारों का प्रमुख कारण बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, अनमेल-विवाह एवं बहु-विवाह की नाशकारी कुप्रथा ही है। इन विवाहों में से बहु-विवाह अब बहुत अंशों में बन्द हो गया है, पर वह भी उसी स्थिति में जब कि वर के पास धन की कमी रहते हुए दूसरी स्त्री भी मौजूद है। यदि स्त्री मरती जाय और वर धनी हो तो अन्त समय तक विवाहों का क्रम लगा रहता है। इन राक्षसी-विवाहों को सम्पन्न करने के निमित्त "सौराठ-सभा" में बातें पक्की की जाती हैं।

मैथिल-समाज में कदाचित् ही कोई व्यक्ति ऐसा मिले जो उक्त सभा को न जानता हो। इस सभा में केवल मैथिल ब्राह्मणों की ही बिरादरी इकट्ठी होती है और यहीं से उन लोगों के शादी-विवाह की बात पक्की होती है। यह सभा वर्ष में एक बार ५-७ दिन के लिए होती है और बेचारी अबोध कन्याओं के गले में फाँसी लगा कर फिर एक वर्ष के लिए रुक जाती है। इन विवाहों की बात पक्की करने के लिए तरह-तरह का स्वाँग एवं षड्यन्त्र रचा जाता है। एक ओर निर्धन वर, धनिकों में दिखाने के लिए बेशक़ीमती वस्त्र पहने हुए डटा है तो दूसरी ओर बूढ़ा वर नवयुवकोचित पोशाक पहन कर अपनी बेहूदगी ज़ाहिर करा रहा है। एक ओर ग्रेजुएट वर अपनी सारी पढ़ाई का ख़र्च कन्या वालों से वसूल करना चाहता है तो दूसरी ओर मूर्ख एवं जाहिल वर अपने बाप-दादों की कमाई से कन्या वालों की पूजा कर रहा है! एक ओर किसी बूढ़े वर से घटक (दलाल) यह कह कर रुपए जट रहे हैं कि आपकी शादी थोड़े रुपए में अच्छी लड़की से करा देंगे तो दूसरी ओर किसी अकर्मण्य वर से दो-चार गुरगे फ़र्ज़ी कन्या के नाम पर रुपए गिना नौ-दो ग्यारह हो जाते हैं। इन्हीं सब कुकर्मों के कारण मैथिल-समाज अधः-पतन के काले गर्त की ओर सत्वर गति से प्रधावित हो रहा है। या यों कहिए कि बिना पतवार की नौका के सदृश इधर से उधर भटक रहा है। यदि शीघ्र ही समाज-सेवियों का ध्यान इस ओर न गया तो वह दिन दूर नहीं, जब कि इसके अस्तित्व का भी ठिकाना न रहेगा। एक सभ्य-समाज की सभ्यता मिट्टी में मिलते देख प्रत्येक विचार-शील मनुष्य के हृदय में क्षोभ उत्पन्न हुए बिना न रहेगा, और इन्हीं शुभ-भावनाओं से प्रेरित होकर 'चाँद'-सम्पादक ने गत अक्तूबर महीने के 'चाँद' में "बिहार का कलङ्क" शीर्षक लेख लिखते हुए एक जगह कहा है—"आज का अधिकांश मैथिल-समाज अकर्मण्यता, सङ्कीर्णता एवं मूर्खता की सजीव मूर्ति है।"

मेरी राय में प्रत्येक आँख और दिमाग़ रखने वाला मैथिल 'चाँद'-सम्पादक के उपरोक्त शब्दों का समर्थन करेगा; पर जहाँ उन्होंने लिखा है कि "मैथिल-महासभा बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह एवं बहु-विवाह आदि दुर्गुणों को रोक रही है" वहाँ पर मेरा उनसे मतभेद है। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह अभी ज़ोरों पर है, और बहुविवाह यदि किसी अंश तक रुका है तो इसका श्रेय किसी संस्था या व्यक्ति को नहीं है। इसका श्रेय तो समय के प्रबल प्रवाह को ही है। यहाँ पर मैं मैथिल-समाज के एक साधारण सदस्य के नाते मैथिल-महासभा के बारे में कुछ लिख देना अपना कर्तव्य समझता हूँ। मैथिल-महासभा

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कोई जीती-जागती संस्था नहीं है ; और न है वह उन नवयुवकों की प्यारी संस्था, जो अपने सुन्दर समाज की बलिवेदी पर हँसते-हँसते बलिदान होते हैं। यह सभा तो उन थोड़े से आदमियों के इशारे पर चलती है, जो सुधार के नाम ही से नाक-भौं सिकोड़ते हैं।

जिस सभा का क्षेत्र ही इतना सङ्कुचित हो कि मैथिल ब्राह्मण और मैथिल कर्ण कायस्थ ही सदस्य तथा अनेक धुरन्धर विद्वानों के होते हुए महाराज दरभङ्गा ही सभापति चुने जायँ तो क्षोभ की सीमा नहीं रहती। इच्छा न रहते हुए भी महासभा के कर्णधारों से मैं पूछना चाहता हूँ कि क्या मिथिला में क्षत्री, वैश्य एवं शूद्र नहीं हैं? यदि हैं, तो ये लोग महासभा से क्यों बहिष्कृत हैं? क्या ये लोग मैथिल-भाषा-भाषी नहीं हैं अथवा मैथिल-सभ्यता से इन्हें प्रेम नहीं है? मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि जब तक यह सभा (मैथिल ब्राह्मण और मैथिल कर्ण कायस्थों की सभा) अपना सङ्कुचित विचार न बदलेगी, तब तक 'मैथिल-महासभा' कदापि नहीं कहला सकती।

यह निर्विवाद सिद्ध है कि हिन्दू-समाज के अन्दर जितनी बुराइयाँ हैं, मैथिल-समाज उनसे बरी नहीं हो सकता; क्योंकि यह भी उसी विशाल हिन्दू-जाति का एक छोटा सा अङ्ग है। आज जब कि विशाल हिन्दू-समाज के अन्दर क्रान्ति की भावना भभक रही है तो क्या मैथिल-समाज इससे अछूता रह सकता है? जबकि प्रत्येक समाज के अन्दर सुधार की आग धू-धू कर धधक रही है तो क्या यह गला-पचा, सूखा एवं जर्जर मैथिल-समाज कुम्भकर्णी निद्रा में मस्त रहते हुए इस आग की लपट से बच सकता है? जब कि प्रत्येक समाज अपने क्रान्तिकारी नवयुवकों के बल पर सामाजिक रूढ़ियों का विध्वंस करता हुआ आगे बढ़ रहा है, तो क्या हमारे वे बुज़ुर्ग जो "अष्टवर्षा भवेत् गौरी" की दुहाई देकर बाल-विवाह के प्रचार में सहायक होते हैं, अपने मनोरथ को सफलीभूत करने में समर्थ हो सकते हैं? जबकि प्रत्येक समाज के नवयुवक महावीर बजरङ्गी के सदृश कार्यक्षेत्र में धड़ाधड़ कूद रहे हैं तो क्या हमारे बुज़दिल, कूपमण्डूक बूढ़े खूसटों के विरोध करने से मैथिल-समाज के नवयुवक रुक सकते हैं? जब कि बिहार के नेताओं के साथ ही साथ आधुनिक संसार के महापुरुष —महात्मा गाँधी—कह रहे हैं कि परदा हटा कर स्त्रियों में शिक्षा-प्रचार करो, तो क्या बड़ी नाक वाले भाइयों के विरोध करने एवं सुधारकों को गाली देने से यह नाश-कारी परदा-प्रथा क़ायम रह सकती है? जबकि आज का अधिकांश हिन्दू-समाज अछूतों को अपनाने के लिए हाथ बढ़ा रहा है, तो क्या मैथिल-समाज के सिर पर छुआ-छूत का भूत सवार रह सकता है? कदापि नहीं!

निस्सन्देह अछूत उठेंगे और अपनी कमज़ोरी दूर करते हुए अखिल हिन्दू-समाज की भी कमज़ोरी दूर करेंगे। निस्सन्देह इस समाज के नवयुवक असंख्य आपत्तियों का सामना करते हुए भी उसकी नाशकारी प्रथाओं का विध्वंस कर देंगे। इतना ही नहीं, हमारी गृह-देवियाँ भी घर की तङ्ग चहारदीवारियों से निकल कर निस्सन्देह शुद्ध वायु सेवन करेंगी। पर आवश्यकता है उनमें शिक्षा-प्रचार की। क्या हमारे मैथिल-समाज के निर्भीक नवयुवक ये सब काम करके दिखाएँगे? यदि 'हाँ' तो उन्हें समाज के अन्दर क्रान्ति की भावना भभकानी होगी। यदि वास्तव में वे अपने समाज से तमाम दुर्गुणों को हटा कर इसे एक सभ्य-समाज बनाना चाहते हैं तो उन्हें एक नई संस्था क़ायम करनी होगी, अथवा मैथिल-महासभा को ही अपनाकर उसके सङ्कुचित विचार को बदलना होगा। यदि वास्तव में वे उन रूढ़ियों को तोड़ना चाहते हैं, जिनसे समाज रसातल की ओर द्रुत गति से प्रधावित हो रहा है, तो उन्हें निर्भीकता के साथ अपना विचार समाज के सामने रखना होगा। यदि वास्तव में उनका हृदय, काम के उद्दाम परिपीड़न से तड़पती हुई बाल-विधवाओं का करुण-क्रन्दन सुन कर विदीर्ण होता है तो उन्हें शीघ्र उनका उचित प्रबन्ध करना होगा। इस समाज के नवयुवकों में भी वे नवयुवकोचित गुण मौजूद हैं, जो अन्य समाज के नवयुवकों में पाए जाते हैं। क्या ही अच्छा होता कि वे अपने इष्ट-मित्रों सहित आगामी मुङ्गेर में होने वाली मैथिल-महासभा में सम्मिलित होकर अपने गुणों की सार्थकता प्रकट करते !!

—चतुर्भुजराय मैथिल

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[ले० श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

लतखोरी लाल

७

जब मेरी हृदयेश्वरी ही ने मुझे धता बता दिया तो तक़दीर बेचारी क्या करे। इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि तलवार का मारा बच भी सकता है, मगर भई, अपनी श्रीमती जी की बेमुरौवती का मारा नहीं! चाहे कोई कुछ करे! यही सोच कर मैं चुपके से परदेश के लिए रवाना हो गया। क्या करता? मदन ने माना ही नहीं। स्टेशन तक ख़ुद ही गाड़ी में बिठाल गया। यह मैं कैसे कहूँ कि भाग्य में श्रीमती जी से मिलना नहीं बदा था। अजी मिलना तो ख़ूब होता। मगर जब वह मिलना चाहतीं तब तो। इसलिए भाग्य को मुफ़्त में क्यों दोष दूँ, जब मेरे तमाम अरमानों का ख़ून करने वाली वह ख़ुद ही मौजूद हैं। ख़ैर! सौ सुनार की तो कभी तो एक लोहार की भी होगी। बस, इसी ख़्याल से मैं कानपुर जाकर एक सराय में अपने दिन काटने लगा।

मगर हर वक़्त मुझे यही फ़िक्र थी कि कहीं मैं पकड़ न जाऊँ। जहाँ कहीं भी लाल पगड़ी दिखाई देती थी वहीं मेरे होश उड़ जाते थे। और सर पर पाँव रख कर बदहवास भाग खड़ा होता था। उस पर मुसीबत यह थी कि इन लोगों से कोई भी रास्ता ख़ाली नहीं दिखाई देता था। मेरा दिल इतना डरा हुआ था कि सिवाय औरतों के मुझे हर आदमी से खटका रहता था। क्योंकि मैं समझता था कि ऐसा न हो कि उनमें कोई ख़ुफ़िया पुलिस का आदमी मुझे पकड़ने के लिए बदले हुए भेष में हो। इसलिए रोज़ ही मैं अपनी सूरत बदल कर बाहर निकलता था। इस तरह सूरत बदलने में मैं उस्ताद भी हो गया था और सराय वाले मुझे बहुरूपिया जानते थे। फिर भी दिल को चैन न था। यहाँ तक कि मुझे हौल दिल होगया और मैं अपनी ही घबराहट से मरने लगा।

मैं रोज़ ही 'देशबन्धु' अख़बार में अपने घर बुलाने वाले विज्ञापन को ढूँढ़ता था। मगर उसे भी मानों मेरी श्रीमती जी के मिज़ाज की हवा लग गई थी कि मेरी आँखें पथरा भी गईं, मगर वह विज्ञापन कम्बख़्त दिखाई न पड़ा और न पड़ा। इसी तरह महीना भर से ऊपर हो गया। रुपए भी बहुत से निकल गए! और मैं भेष बदलते-बदलते तङ्ग आ गया। कहाँ तक रूप बदलता।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कपड़े मेरे पास बस इने-गिने थे। फिर भी दाढ़ी-मूँछों से जहाँ तक सूरत बदली जा सकती है, वह सब कुछ कर चुका। दूसरे अड़ोस-पड़ोस के लोग जब मुझे बहुरूपिया जान गए तो अब भेष बदलने से कोई फ़ायदा न था। इसलिए यह सोचा कि कुछ दिनों औरत बन कर किसी दूसरी जगह ठिकाना करूँ और लोगों को धोखे में डालने के लिए पान-पत्ते की दूकान रख कर कुछ दिनों निबाह करूँ। यह राय मेरे मन में पैठ गई। इसलिए गिलट के छड़े, कुछ चूड़ियाँ, नक़ली बाल, साड़ी वग़ैरह किसी तरह चुपके-चुपके ख़रीद लिए। दो बड़े-बड़े पिलपिले रबड़ के गेंदों की भी ज़रूरत हुई। उन्हें मैं कई दिन तक ख़रीद न सका। क्योंकि जब-जब मैं इस नीयत से बिसातियों की दूकान पर गया तब या तो वैसे गेंद उनके पास न थे या किसी के पास दो एक नाप के न मिले या कभी वहाँ पर एक न एक पुलिस वाला दिखाई पड़ गया। इसलिए मैंने दो थैलों की एक चोली सीई। और थैलों में भेष बदलने वाले बालों को ठूस कर गुम्बद की तरह फुला दिया और उसी में बाल-सफ़ा और बाल चिपकाने के मसाले की शीशियाँ भी रख दीं, ताकि गुम्बदों में नुकीलापन हर वक़्त क़ायम रहे और बिगड़ कर बिलकुल गद्दे की तरह चिपटा न हो जाय। उन थैलों की जड़ों में एक चोर जेब भी बनाई। उसमें एक जेबी आइना, अपना छोटा सा उस्तरा और रुपए-पैसे भी रख लिए। क्योंकि औरत के भेष में मैं इन ज़रूरी चीज़ों को और रख ही कहाँ सकता था? इधर मैं चुपके-चुपके यह कारवाई करता जाता था और उधर दो-चार दिनों से मैं एक बुढ़िया पान वाली की दूकान पर जाकर रोज़ पान खाता था। क्योंकि उसकी बातों से मुझे मालूम हो चुका था कि जब तक उसकी लड़की दूकान पर बैठती थी तब तक ख़ूब बिक्री होती थी। मगर जब से वह अपनी ससुराल चली गई, तब से कोई ख़रीदार उसकी दूकान पर झाँकता भी नहीं। यह जान कर मैंने उसे सलाह दी थी कि अपनी लड़की की तरह कोई दूसरी औरत रख क्यों नहीं लेती? उस पर उसने कहा था कि मुझे तो कोई मिलती नहीं। अगर आप किसी को रखा दें तो मैं उसे सर-आँखों पर रक्खूँगी और आपको रोज़ मुफ़्त पान खिलाऊँगी। तभी से मुझे औरत बन कर उसके यहाँ कुछ दिन काटने का ख़याल पैदा हुआ। दाढ़ी-मूँछ तो नित्य नया भेष बदलने की ख़ातिर पहले ही से सफ़ा-चट कर रक्खे थे। इसलिए औरत बनने के लिए अपनी सूरत की कोई फ़िक्र न थी। बस, चोली कस कर उस पर ज़नानी बनियायन पहन लेने और नक़ली बाल लगा लेने से मेरा ढाँचा पुल्लिङ्ग से बिलकुल स्त्रीलिङ्ग हो गया। फिर तो सलूका, चूड़ी, साड़ी और दो-चार नक़ली ज़ेवरों के सहारे मैं परीछम बन कर दस बजे रात को उस बुढ़िया के यहाँ जाने के लिए चुपचाप सराय से निकल आया।

मगर बुरा हो इस कमबख़्त मुल्क का, जहाँ किसी भी नौजवान औरत का घर से अकेली निकलना वबाले-जान है। विलायती क्या, देशी ईसाई की मेम भी जहाँ चाहे तहाँ बेखटके आ-जा सकती है। कोई भी उससे आँख तक मिलाने की हिम्मत नहीं करता। मगर हिन्दुस्तानी औरतों की पोशाक में न जाने कौन सी बात है कि अगर उनके साथ कोई रखवार न हो, तो उन्हें यहाँ के लोग अपने बाप का माल समझ कर इस बुरी तरह उनके पीछे पड़ जाते हैं कि इनके आगे कार्तिक के कुत्तों की भी दुम दब जाती है। अगर इसका मुझे पहले से कुछ भी ख़याल होता तो बाबा मैं औरत बन कर भूल कर भी अपने सिर ऐसी आफ़त न ढाता। क्योंकि मर्द के भेष में रहने से पुलिस वालों से गिरफ़्तार हो के ख़ाली जेलख़ाने ही जाने का डर था, मगर औरत की शकल में लुक्कड़ों के हाथ पड़ कर न जाने कहाँ से कहाँ पहुँच जाने का अन्देशा हो गया। इसलिए मैं मारे डर के थर-थर काँप रहा था और दिल से उन औरतों की बहादुरी की शाबाशी देता था जो मेले-तमाशों में बन-ठन कर झुण्ड की झुण्ड सिर्फ़ दिखलाने के लिए एक अधमरे बूढ़े या बच्चे रखवारे को लेकर इन गुण्डों से मुक़ाबिला करने के लिए जाती हैं। बेशक वे बड़ी हिम्मत रखती होंगी, और हमारे यहाँ के मर्दों को बहादुरी की शिक्षा उन्हीं से सीखना चाहिए। मैंने भी अपने दिल को बहुतेरा समझाया कि जब वे औरतें ऐसे मौक़ों पर ज़रा नहीं घबड़ातीं तब तुम्हारी क्यों नानी मरी जाती है। मगर भई, मेरी फ़िलॉसफ़ी एक न काम आई और मैं सिर पर पाँव रख कर कभी इस गली में और कभी उस गली में अपनी जान बचाने लगा। मगर 'भेड़ जहाँ जाय वहीं मूँड़ी जाए' की गति मेरी भी, क्योंकि जिधर ही जाता था उधर ही जिस तरह से

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मीठे पर मक्खियाँ भिनभिनाती हुई टूट पड़ती हैं, उसी तरह मेरी झाँझ की झनकार सुनते ही न जाने कहाँ से दस-बीस तमाशबीन पैदा हो ही जाते थे। कोई बोलियाँ कसता था, कोई तान उड़ाता था, तो कोई पीछा करता था, और कोई रास्ता चलते धक्के देता था। यहाँ तक कि इन लोगों की ज़्यादतियों से मैं इतना परेशान हुआ कि दिल में ठान लिया कि अगर कोई अँधेरी गली मिली तो मैं फ़ौरन् इस औरत की पोशाक को खोल कर फेंक दूँगा और दिगम्बर होकर भाग खड़ा हूँगा। बला से मैं पकड़ा जाऊँ और मुझे जेलख़ाना जाना पड़े। कुछ परवा नहीं। क्योंकि इस मुसीबत से वह मुसीबत लाख दर्जे अच्छी थी।

आख़िर एक तङ्ग गली मिल ही गई, और वह अँधेरी भी थी। क्योंकि इसमें शायद दूकानें न थीं या होंगी भी तो बन्द हो चुकी थीं। मैं ख़ुद ही इसमें मुड़ने वाला था। उस पर तमाशबीनों ने मुझे इस जगह इस तरह घेरा कि मुझे झख मार कर इसी में भागना पड़ा। मैं इसी फ़िक्र में था कि ज़रा यह लोग पीछे पड़ जायँ तो मैं अपनी साड़ी उतार कर बग़ल में दबाऊँ, मगर इतने ही में दो आदमी दौड़ कर मेरे आगे हो गए और दो पीछे। इसके बाद मुझे पीछे एक एक्का आने की आवाज़ मालूम हुई। उस पर से एक आदमी कूदा और उसने चट मुझे गोद में उठा लिया। मेरा सिर चकरा गया! उस वक़्त मैं इतना बदहवास हो रहा था कि मुझे कुछ भी पता न चला कि मेरे साथ क्या कारवाई हो रही है। हाँ, कुछ देर के बाद अलबत्ता जान सका कि एक्के पर एक आदमी मुझे अपनी गोद में कसे हुए है। चारों ओर परदा पड़ा हुआ है और पर्दे के बाहर एक-एक आदमी इधर-उधर बैठे हुए हैं। उस वक़्त मेरे होश उड़ गए और मैं दिल ही दिल प्रार्थना करने लगा कि या ईश्वर मुझे इस मुसीबत से उबारो। मैं औरत बनने का मज़ा अच्छी तरह से पा गया। यह औरतों ही को मुबारक रहे। मैं अब भूल कर भी उनका हक़ कभी छीनने की कोशिश नहीं करूँगा।

(क्रमशः)

(Copyright)

हिन्दू-विधवा के उद्गार

[रचयिता—श्री० देवीप्रसाद जी गुप्त 'कुसुमाकर' बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

दिखा दो प्रभो! मुक्ति की राह।
मैं हिन्दू-विधवा हूँ, मेरा कैसे हो निर्वाह?
जान न पाई विधि-करतब मैं,
विधवा हुई न जाने कब मैं,
कहते हैं परिजन सब मेरे—कभी हुआ था ब्याह।
पति-सुख मैंने कभी न जाना,
नहीं किसी को पति ही माना,
विधवा हुई कहाँ जब मुझ पर, पड़ा न पति की छाँह?

यौवन की उमङ्ग है मन में,
मदन वास करता है तन में,
सखियाँ क्रीड़ाएँ करती हैं, होती है उर डाह।
चारों ओर पुरुष घेरे हैं,
मुझे प्रलोभन बहुतेरे हैं,
कब तक बचूँ जलाऊँ कब तक, हिय में अन्तर्दाह!
जो नित पाप-लिप्त रहती हैं,
रहूँ विरक्त मुझे कहती हैं,
फूँक न देवे उस समाज को, देखो! मेरी आह।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

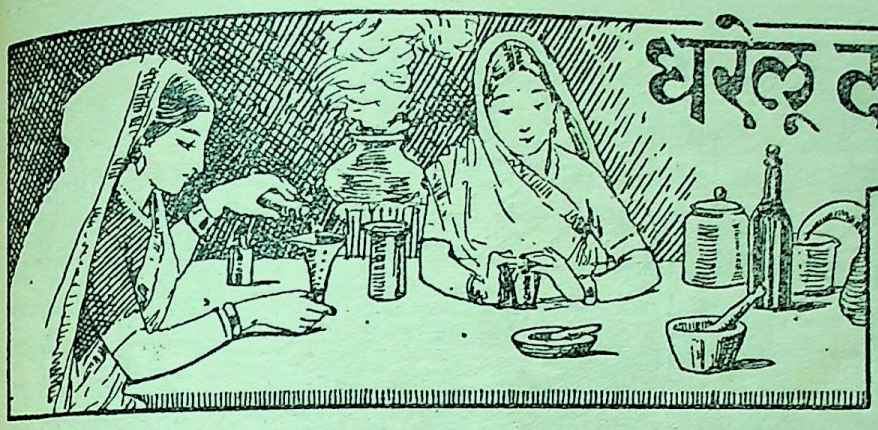

घरेलू दवाइयाँ

हैज़े की दवा

काली मिर्च एक माशा और अरहर के पत्ते एक तोला, दोनों को लेकर खूब घोटे, फिर पाव भर पानी में घोल कर रोगी को पिला दे। इससे शीघ्र लाभ होता है।

दूसरी दवा

बिजौरा नींबू के पन्द्रह बीज लेकर पानी के साथ खूब बारीक पीस डाले, फिर उसमें दो तोले मिश्री डाल कर पिलावे, अवश्य लाभ होगा।

* * *

प्रदर-रोग

मुलहटी ढाई टङ्क और चौराई की जड़ का रस दो टङ्क, दोनों को शहद में मिला कर पिलाए, इससे प्रदर रोग बहुत जल्द दूर होता है।

* * *

बवासीर की दवा

सूरन का भरता बना कर दही के साथ रोज़ खाए, इससे खूनी बवासीर में लाभ होता है।

—कलवाती, कौल

* * *

ऋतुस्रावक योग

शुक्ति (सुरती) को अग्नि में फूँक ले और उसकी भस्म ४ माशा, १ तोला पुराने गुड़ के साथ सायं-प्रातः सेवन करे, इससे बन्द हुआ मासिकधर्म होने लगता है।

दूसरी दवा

इन्द्रायण की जड़ की लुगदी भग में रखने से तीन दिन में ऋतुस्राव होता है। गर्भिणी को यह प्रयोग न करना चाहिए, नहीं तो गर्भस्राव हो जाने का अन्देशा है।

तीसरी दवा

एलुवा बोल, कुनैन, सुहागा, हींग, प्रत्येक को समान भाग लेकर पानी में पीस कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना ले। काला तिल १ तोला और पुराना गुड़ डेढ़ तोला, दोनों का चतुर्थांश क्वाथ बना कर आधपाव क्वाथ के साथ एक-एक गोली दोनों समय सेवन करे। इससे अवश्य मासिकधर्म होता है।

* * *

उपदंश की दवा

कचनार की छाल, बबूल की पत्ती, इन्द्रायण की जड़, छोटी कटेरी की जड़ और पत्ती, पुराना गुड़, प्रत्येक को आध-आध पाव लेकर तीन सेर पानी में चतुर्थांश क्वाथ बनाए। फिर उसकी सात मात्रा करके सात दिन सेवन करे। इससे शीघ्र आतशक आराम हो जाती है। विशेषता यह है कि इससे मुख नहीं आता और न विशेष परहेज़ की ही आवश्यकता है।

—उत्तराकुमारी वाजपेयी

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

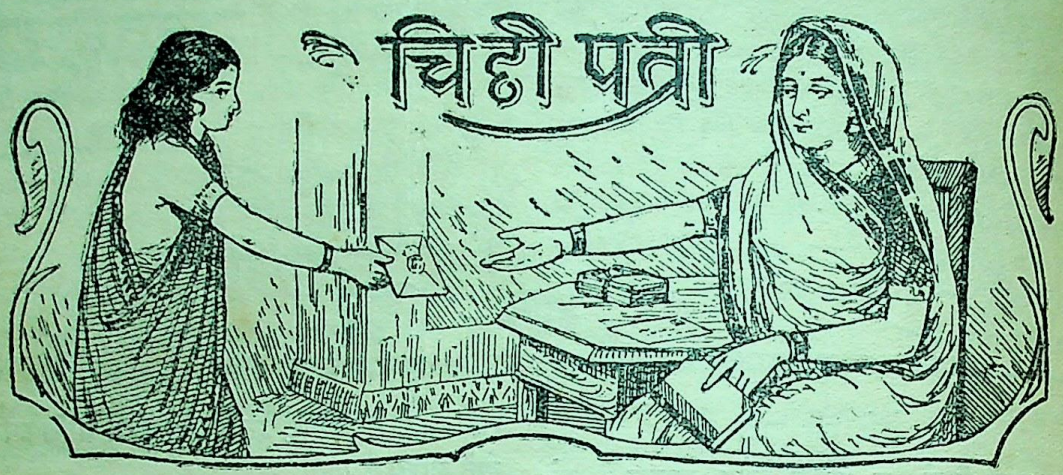

एक दुःखिनी का पत्र

लखीमपूर, खीरी से एक दुःखिनी बहिन लिखती हैं—

श्रीमान् सम्पादक जी,

मैं आज अपनी दुखित कहानी आपको सुनाना चाहती हूँ। मैंने आपके 'चाँद' में दो-चार पत्र देखे हैं, अतएव मैं चाहती हूँ कि मेरा पत्र आप 'चाँद' में छाप दीजिए, आपकी बड़ी कृपा होगी। मैं एक धनी-मानी सज्जन की बहू हूँ। मेरे पति महाशय वकील हैं, थोड़ी-बहुत प्रैक्टिस भी करते हैं, ज़मींदारी है, इससे घर का सब ख़र्च चला जाता है। मेरे परिवार में मेरी विधवा सास व एक रिश्तेदार की लड़की है। मेरी हृदय-विदारक कहानी पढ़ने से आपको मालूम होगा कि हम स्त्रियाँ किस तरह अपने जीवन को व्यतीत करती हैं। मेरे पति जी जुआ खेलते हैं और शराब भी पीते हैं। एक धनवान् गृहस्थ की लड़की से प्रेम भी रखते हैं। उससे पति महाशय की पूरे तौर से मुलाक़ात है। मुझे सास के ताने सुनने पड़ते हैं, उधर पति भी मुझसे रूखा व्यवहार करते हैं। मैं पति-प्रेम से वञ्चित हूँ। कभी-कभी केवल दर्शन हो जाते हैं। किन्तु क्या विवाह इसी को कहते हैं? एक दिन भी ऐसा नहीं जाता, जिस दिन सास जी के ताने न सुनने पड़ते हों। ज़रा-ज़रा सी बात पर लाञ्छनाएँ सहनी पड़ती हैं। एक दिन की बात है कि मैंने रिश्तेदार की लड़की से कुछ काम के लिए कहा, इसी बात पर सास जी कहने लगीं कि वह तो रानी हैं और हम लोग नौकरानी हैं, इसी लिए वह हुक्म चलाती हैं। और भी न जानें कितनी ही ऐसी कठोर बातें और कई शब्द ऐसे व्यङ्ग से कहे थे कि कलेजे में तीर की तरह चुभ गए। मेरी कोई सहेली भी नहीं है कि जिससे अपना दुख कहूँ। मैं अपनी दुख-भरी कहानी आपको सुनाती हूँ। आप मुझे कोई ऐसा उपाय बताइए जिससे मैं अपने पति को ठीक रास्ते पर ला सकूँ।

मेरे पति परिवार भर में अकेले हैं। मेरे ससुर बहुत ही मशहूर और प्रतिष्ठित थे, उनका नाम इस शहर में तथा अन्य शहरों में भी विख्यात है। मैं चाहती हूँ कि ससुर जी की मान-मर्यादा में धब्बा न लगे, उनकी कीर्त्ति जग में वैसी ही उज्ज्वल बनी रहे। पति जी का इधर यह हाल है। सास जी यदि समझाती हैं तो उनकी बातों पर कुछ भी ध्यान नहीं देते। सास जी को यह बात मालूम ही नहीं है कि यह रण्डीबाज़ भी हैं, लेकिन और सब बातें जानती हैं। मैं भी उनको समझाती हूँ, किन्तु मेरी बातों को सुनते भी नहीं। समझना और उन पर ध्यान देना तो बहुत दूर है, कुछ उत्तर भी नहीं देते। यदि उत्तर दिया भी, तो बहुत ही कठोर शब्दों में—"तुमसे क्या मतलब? तुम मेरी पत्नी हो, लेकिन तुम मेरी शिक्षिका नहीं हो।" यह उत्तर सुन कर दिल जल जाता है। मैं बहुत ही दुखी हूँ। क्या आप मुझे इस दुख से किसी प्रकार से छुटकारा दिला सकते हैं? मैं आपकी अनुग्रहीत हूँगी, आजन्म आपका उपकार नहीं भूलूँगी। मेरा जीवन बहुत ही दुखमय हो

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रहा है। सम्पादक जी, क्या कहूँ, इस जीवन से मैं निराश हो गई हूँ। यदि थोड़े ही दिन में कुछ उपाय न हुआ तो मैं इस संसार को छोड़ कर उस शान्तिमय लोक को सदा के लिए बिदा हो जाऊँगी। मेरे पास धन-वैभव है, सब सुख है, रूप भी है, तरुणी भी हूँ, फिर क्या कारण है कि मैं सुखी नहीं हूँ? इतना होते हुए भी मैं इस संसार में एकमात्र अपने दो साल के पुत्र का मुख देख कर जीती हूँ। पति महाशय तो मुझसे बिल-कुल ही रूखा व्यवहार करते हैं, बहुत ही अप्रसन्न रहते हैं। कहाँ मैं इतनी प्यारी थी, और कहाँ अब इतनी बुरी हो गई हूँ। क्या पुरुषों का यही कर्त्तव्य है? क्या उनका यही धर्म है? हम स्त्रियों को तो अपना धर्म सिखलाया जाता है, किन्तु पुरुषों को क्या यही उचित है कि वह स्त्रियों के ऊपर अत्याचार करें? मैं यह पत्र अपने परिवार वालों से छिपा कर लिखती हूँ, अतएव आप से हाथ जोड़ कर प्रार्थना करती हूँ कि ज़ाहिर न होने पाए। मैंने पहले एक पत्र आपको लिखा था, किन्तु आपने उत्तर नहीं दिया। मैं चाहती हूँ कि आप इस पत्र का जवाब 'चाँद' में ही छाप दीजिए।

देवी जी,

आपके इस करुणापूर्ण पत्र का उत्तर दिया ही क्या जा सकता है, यही समझ कर सन्तोष कीजिए कि आप अकेली ही इस दारुण परिस्थिति में नहीं हैं, आप ही के समान न जाने कितनी अभागिनी महिलाएँ आज ख़ून के आँसू बहा रही हैं, जिनका एकमात्र अपराध यही है कि उन्होंने अभागे हिन्दू-समाज में जन्म ग्रहण किया है, जिनके कष्टों का एक मात्र कारण यही है कि वे सहनशील हैं—एक अपराध और भी है—वे कोई अनुचित आचरण करके कुल में कलङ्क नहीं लगाना चाहतीं।

जिस 'धनवान् गृहस्थ की लड़की' से आपके पति-देवता का गुप्त-प्रेम है, कौन कह सकता है, उस महिला का जीवन आपसे भी दुखःपूर्ण न हो, तभी तो आपके पतिदेवता की चहेती बनी है! यदि आप इस बात की जाँच करेंगी तो आपको स्पष्ट विदित हो जायगा कि हमारी यह कल्पना निराधार नहीं है। रही घर वालों के ताने सुनने की बात, यह इतनी साधारण है कि इसे भी विशेष महत्व न दिया जाना चाहिए। यह अशिक्षा और जहालत का परिणाम है और इसके लिए भी आपके पतिदेवता ही ज़िम्मेदार हैं। आज भारत में करोड़ों विधवाएँ कूड़े-करकट की तरह मारी-मारी फिर रही हैं, आप भी अपने को विधवा समझ लीजिए और लोकलाज का वृथा आडम्बर परित्याग कर, समाज-सेवा का व्रत धारण कर, अपने को कार्यक्षेत्र में उतारिए—केवल इसी मार्ग द्वारा आपको वास्तविक शान्ति प्राप्त हो सकती है।

जो लोग हिन्दू-समाज में तलाक़ का विरोध करते हैं, उनका ध्यान भी हम इस पत्र की ओर आकर्षित करना चाहते हैं।

—सं० 'चाँद'

* * *

एक अभागिनी की दुःख-कथा

गाँदाँ नमसान नामक स्थान से एक बहिन अपनी दुःख-कथा लिखती हैं:—

श्रीमान् सम्पादक जी,

सादर नमस्ते!

आज मैं आपको अपनी दुःख-भरी कहानी सुना रही हूँ। मैं एक ब्राह्मण-कुल की बेटी तथा स्त्री हूँ। मेरी उम्र इस समय २० वर्ष से कम है। शादी हुए ३ साल हो गए। दो साल से पतिदेव के साथ रहती हूँ। उनकी उमर २५ साल की है। मुझसे पहले उनकी एक स्त्री मर चुकी है। घर में किसी चीज़ की कमी नहीं है। पतिदेव की आमदनी अच्छी है। मैं साधारणतया भोजन बनाना जानती हूँ। पतिदेव हमेशा मुझसे असन्तुष्ट रहते हैं। कहते हैं कि तुमको भोजन पकाना नहीं आता। कितना ही अच्छे से अच्छा भोजन बनाती हूँ, फिर भी यही शिकायत रहती है। कभी भी पेट भर भोजन नहीं खाते। मैं हैरान हूँ कि क्या करूँ। हालत यहाँ तक बिगड़ गई है कि हमेशा बीमार रहते हैं। पाचनशक्ति बहुत कमज़ोर पड़ गई है। आलसी तो इतने हैं कि दो-दो मास तक स्नान नहीं करते। नौ

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बजे से पहले कभी सोकर नहीं उठते। यदि मैं कभी बोलती हूँ तो कहते हैं, 'तुमसे क्या मतलब ?' खाने-पीने तथा अपना जिस्म सुधारने के विषय में कुछ ख़्याल नहीं करते—खाया तो खा लिया, न खाया तो न सही।

इन सब बातों के होते हुए एक बात और है, जिससे मुझे बड़ा क्लेश है। वह यह है कि ग़ैर-मुल्क में रहने के कारण पतिदेव की सोसाइटी बड़ी ख़राब है। उसमें कोई आदमी ऐसा नहीं है, जो मांस-मदिरा का प्रेमी न हो। जब देखो तब उसी विषय की बातें होती हैं। उन लोगों के साथ मिल कर पतिदेव भी वैसे ही हो गए हैं। मुझे इन चीज़ों से बड़ी घृणा है। यही कारण है कि पतिदेव को घर के भोजन से घृणा उत्पन्न हो गई है, और मुझसे प्रेम घटा कर सोसाइटी से करने लगे हैं। जो बात सोसाइटी करे, वही होती है। हमेशा दूसरों के इशारे पर चलते हैं। मैं जो कुछ कहूँ उसकी परवा नहीं। यार लोग सब खाने के कुत्ते हैं, खाने को मिला तो आ बैठे, नहीं तो रास्ता नापा। यार लोग आए, शराब का दौर चलने लगा और मेरी निन्दा होने लगी। इससे मुझे असह्य दुख होता है। रात-दिन दुख से जलती रहती हूँ। मैंने सोचा कि इस प्रकार जलते रहने से कोई सन्तोषजनक परिणाम नहीं होगा, अतएव क्यों न आपको सूचित करके कोई शान्तिप्रद शिक्षा ग्रहण करूँ।

पतिदेव की सोसाइटी का अधिक वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहर है। मेरा तथा पतिदेव का—दोनों का जीवन दुखमय हो रहा है। दो साल मुझे उनके साथ रहते हो गया, पर अभी तक शिशु का मुख नहीं देखा है। इस दो साल के अन्दर मैं अपने भाई-बहिन आदि किसी से नहीं मिल पाई हूँ। कोई दिन ख़ुशी से नहीं गुज़रा है। रात-दिन भट्ठी के समान मेरा हृदय जलता रहता है। पर मैं कर ही क्या सकती हूँ ? पुरुष जो चाहें, कर सकते हैं। हमको ईश्वर ने अत्याचार और ज़ुल्म सहने के लिए ही बनाया है। कहाँ तक लिखूँ, रोते-रोते आँखें पक गई हैं। कोई सहारा नज़र नहीं आता। पीहर भेजने की धमकी दी जाती है। सोचती हूँ, वहाँ जाकर भी सुख न मिलेगा। यदि भाग्य में सुख होता तो ससुराल में ही मिलता। कितनी दफ़ा दिल में आता है कि आत्मघात कर लूँ। फिर सोचती हूँ कि कभी तो ईश्वर मेरी हालत सुधारेगा। किन्तु कब तक सन्तोष करूँ ? ऐसे जीवन से तो मर जाना ही लाख दरजे अच्छा है। किन्तु मेरे लिए मौत का द्वार भी बन्द है। ईश्वर ने बिसार दिया है। मौत मेरे समीप आने से डरती है। अब मेरा तथा पतिदेव—दोनों का जीवन सुखमय बनाना आपके अख़्तियार है। जैसा उचित समझें, करें। यदि आपने मेरी बातों को निरर्थक जान कर छोड़ दिया तो सम्भव है कि मेरी जीवन-लीला थोड़े ही रोज़ में समाप्त हो जाय। मुझे आशा तथा पूर्ण विश्वास है कि आप मेरी हालत को आगे रख कर उचित शिक्षा प्रदान करेंगे। अधिक क्या लिखूँ। आप ख़ुद बुद्धिमान् हैं। 'चाँद' में आप कोई ऐसा लेख प्रकाशित करें जो मांस-मदिरा के बर-ख़िलाफ़ हो, जिससे मेरे पतिदेव अपनी हालत सुधारें और गन्दी सोसाइटी छोड़ दें। दाल, सब्ज़ी आदि तथा हर क़िस्म के भोजन बनाने के अच्छे-अच्छे तरीक़े भी लिखें। मैं आपकी कृपा की मशकूर हूँगी। कृपया आप मेरे इस पत्र को 'चाँद' में प्रकाशित कर दें और मेरा नाम न लिखें।

देवी जी,

आप भी परमात्मा से करबद्ध प्रार्थना कीजिए कि आगामी जन्म में आप स्त्री न हों; और यदि ऐसा हो भी, तो हिन्दू-कुल में जन्म ग्रहण न करें, इससे अधिक—इस प्रार्थना के अतिरिक्त—आप या हम कर ही क्या सकते हैं ? रही आत्म-हत्या की भीरुतापूर्ण बात, उसे एक बार ही दिल से निकाल दीजिए, ऐसा करने से आप मानसिक दुखों से इस जन्म में भले ही त्राण पा सकें, पर आपको अपने पिछले जन्म के कर्मों का फल तो भोगना ही पड़ेगा, कौन कह सकता है फिर आपका जीवन और भी कष्ट-पूर्ण न हो जाय ? युक्ति से काम लीजिए, अच्छी-अच्छी पुस्तकों का अध्ययन कीजिए। पाक-शिक्षा का विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने के लिए 'पाक-चन्द्रिका' आदि इसी विषय की बहुत सी पुस्तकें हैं, उन्हें पढ़िए।

—सं० 'चाँद'

* * *

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिन्दुओं की नाक

श्रीरामचन्द्र जी आर्य-मुसाफ़िर लिखते हैं:—

मान्यवर सम्पादक जी,

सेवा में निवेदन है कि मैं प्रचारार्थ रामनगर मण्डी आया हूँ। आज तक मैं यहाँ के सभी मुख्य-मुख्य स्थानों में घूमा हूँ। यहाँ भी गढ़वाल की तरह रण्डियाँ अधिक हैं, जिनके लिए कोई भद्र पुरुष या अन्य सुधारक कुछ काम नहीं करते। पर मेरे एक मित्र यहाँ बराबर रण्डियों से मिलते हैं और उन्हें इस बात पर विश्वास दिलाते हैं कि हम तुम्हारी हर प्रकार से सहायता करेंगे, अगर तुम इस पेशे को छोड़ कर विवाह करने को राज़ी हो। मैं भी उन रण्डियों से मिला हूँ। इस समय कई रण्डियाँ शादी करने के लिए तैयार हैं। मगर दुःख है, इसमें कुछ रुपए चाहिएँ, जिन्हें उनके माता-पिता को देकर उनका पिण्ड छुड़ा लिया जाय। रण्डियाँ मुसलमान और हिन्दू दोनों हैं।

यहाँ दुड़कियाँ नाम की एक जाति है, जिसका पेशा गाने-बजाने का है। इस जाति की स्त्रियाँ दूसरों के यहाँ जाकर गाती हैं एवं व्यभिचार करती हैं। मैंने उनके कई सम्बन्धियों से बातचीत की। बहुत समझाने पर वे लोग भी अपनी लड़कियों का विवाह करने को राज़ी हुए। परन्तु वे भी रुपया माँगते हैं। हज़ारों रुपए देकर शादियाँ करने वाले यदि सौ दो सौ रुपए ही ख़र्च करें तो यहाँ उनकी शादियाँ आसानी से हो जायँ; साथ ही देश का सुधार भी हो। मुसलमान लोग रुपए देकर यहाँ से बहुत सी स्त्रियाँ ले जा रहे हैं और मुसलमानी बना कर शादी कर रहे हैं। क्या हिन्दू-सुधारकों का ध्यान इस ओर नहीं जायगा? आशा है, इसके लिए आप शीघ्र यत्न करेंगे।

महाशय जी,

वेश्याओं का आधिक्य कहाँ नहीं है, और न जाने कितनी वेश्याएँ अपने सुधार तथा पवित्र दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने की इच्छुक हैं, पर मरणोन्मुख हिन्दू-समाज के नेताओं का ध्यान अभी तक इस ओर आकर्षित नहीं हुआ है। हम स्वयं निर्धन हैं, इसलिए सहायता ही क्या कर सकते हैं? हिन्दू-महासभा के कर्णधारों से प्रार्थना कीजिए, शायद एक जाँच-कमिटी बना कर हिन्दू-नेता अपना दायित्व कुछ दिनों के लिए टाल दें।

—सं० 'चाँद'

* * *

पारिवारिक अत्याचार

लश्कर से एक अभागिनी बहिन लिखती हैं:—

श्रीमान् सम्पादक जी,

नमस्ते!

मेरा जन्म कान्यकुब्ज वंश के अन्तर्गत द्विवेदी कुल में हुआ है। मेरे पिता जी एक साधारण ज़मींदार हैं। मेरे विवाह में पिता जी ने दहेज में दो हज़ार रुपए दिए थे, पर श्वसुर जी अप्रसन्न रहे। मैं विवाह में तो ससुराल नहीं गई। गौने में जब गाँव के बाहर आगई तब मेरा देवर बोला—"भाभी जी, एक बार और घर की ओर देख लो, अब शायद जीवन में इस गाँव के दर्शन न कर सकोगी।" मैं यह सुन कर अवाक् रह गई। पर उसकी बात पर विश्वास न हुआ। दो बार पिता जी बिदा के लिए आए, पर श्वसुर जी ने बिदा नहीं दी। माँ ने सैकड़ों रुपए (पिता जी से छिपाकर) और लोगों के हाथ श्वसुर जी के पास भेजे, पर उनका पत्थर का कलेजा न पसीजा।

आज मेरा गौना हुए छैः वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। मैं माँ-बहिन तथा प्यारे छोटे भैया को देखने को तरस रही हूँ और वे मुझे। मेरी माँ का स्वास्थ्य ख़राब हो गया है। वे रोग-शय्या पर पड़ी हैं और एक बार मुझे देखना चाहती हैं। पर ये अर्थ-लोलुप नीच मुझे नहीं भेजते। मैं इससे बहुत दुखी हूँ। कभी-कभी जीवन से घृणा होने लगती है। मैं अपनी पढ़ी-लिखी बहिनों तथा भाइयों से प्रार्थना करती हूँ कि वे कृपया मुझे कोई ऐसी युक्ति बतलावें जिससे मैं एक बार अपनी स्नेहमयी जननी के दर्शन कर लूँ। आशा है, मेरी प्रार्थना व्यर्थ न जायगी।

देवी जी,

आप माता जी के स्वास्थ्य तथा उनके जीवन की चिन्ता छोड़ कर पति-देवता की सेवा को ही सर्वोपरि समझें, आपके धर्म-ग्रन्थों और हिन्दू-

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समाज की यही आज्ञा है। माता जी से अगले जन्म में मिल लीजिएगा। ऐसा उच्च परिवार बार-बार थोड़े ही मिलेगा। एक तो हिन्दू, फिर ब्राह्मण; और उसमें भी कान्यकुब्ज—सोना और सुगन्ध का योग हुआ है!! यही समझ कर सन्तोष कीजिए कि दहेज-प्रथा की शिकार होने वाली आप अकेली ही महिला नहीं हैं, आप ही के समान न जाने आज आपकी कितनी बहिनें घुट-घुट कर भीषण पारिवारिक अत्याचारों को हँस कर सह रही हैं।

—स० 'चाँद'

* * *

कड़ुआ और मीठा

प्रतिष्ठास्पद सम्पादक जी,

सादर नमस्ते!

विगत मास के 'चाँद' में "कड़ुआ और मीठा" शीर्षक से माथुर चतुर्वेदियों के सम्बन्ध में जो टिप्पणी प्रकाशित हुई है, उसको आज अपने जातीय पत्र "माथुर-हितैषी" के क्रोड़पत्र के रूप में पढ़ा और हृदय को बहुत ही उत्तेजित और उत्साहित अनुभव किया।

सम्पादक जी, इस समाज की कुछ न पूछिए! आपने लगभग सभी कुरीतियों का यथावत् वर्णन कर दिया है, और सचमुच ही यह सभी इस जगत-पूज्या जाति के सुदृढ़ वृक्ष में घुन की भाँति घुसी हुई इसे भीतर ही भीतर खोखला बनाए देती हैं। यों तो ये बाहर-बाहर बसे हुए भाइयों में भी किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं, परन्तु इनका असली अड्डा उक्त समाज के केन्द्र-स्थान मथुरा नगर में ही प्रत्यक्ष रूप में देखने में आ रहा है।

आपकी वर्णन की हुई कुप्रथाओं के अतिरिक्त कतिपय और भी कुप्रवृत्तियाँ हैं, जो बहुधा यहाँ—मथुरा में—केन्द्रित हो रही हैं और इस समाज को शनैः शनैः नष्ट करने में राजयक्ष्मा का क़ातिल कार्य कर रही हैं। उनमें से कुछ ये हैं—

(१) नगर के नगर में ही विवाह-सम्बन्ध करना, जिससे बधू समस्त दिन अपने मायके और रात्रि को ससुराल में रहा करती हैं और इसके कुपरिणाम-स्वरूप इनके दाम्पत्य जीवन की जो दयनीय दशा हो रही है, उसे वे ही जानते हैं। शायद ही कोई भाग्यहीना पत्नी पति के बस में रहने को बाध्य होगी। फल-स्वरूप अनेक स्त्रियों का पति से सम्बन्ध-विच्छेद भी हो चुका है और वे पूर्ण स्वतन्त्रता से अपने मायके में ही अपने गृहस्थ-जीवन का सुख-दुख भोग रही हैं।

(२) ज्योनारों की प्रथा—चाहे बच्चा मरे या बुड्ढा, द्वादशे के दिन ऐसा ज़बरदस्त भोज दे डालेंगे कि चाहे घर-द्वार भी बिक जाय, पर नाक न कटने पाए। इससे इनकी आर्थिक स्थिति दिन-ब-दिन बिगड़ती जा रही है।

(३) जीवन-निर्वाह का साधन अधिकतर यजमानी वृत्ति ही होने के कारण सभी प्रकृति के मनुष्यों को घर में ठहराना, और पतियों का अपने घरों पर कम और विदेशों में अधिक रहना भी गृहस्थ-धर्म की दृष्टि से हानिकारक सिद्ध हो रहा है।

(४) बदले से विवाह होने के कारण वर-बधू की अवस्था और योग्यता-अयोग्यता का विचार बहुत कम किया जाता है, और अनेक घरों के युवकों को, जिनमें कि बदले में देने के लिए कन्याएँ नहीं हैं, सारी आयु कौमार्य्य जीवन ही व्यतीत करना पड़ता है। उधर बाल-विधवाओं का भी आधिक्य है। फल यह है कि दिन प्रतिदिन इनकी जन-संख्या घटती जा रही है। बदले के विवाहों में बहुधा सरकारी रजिस्टरी भी आपेक्षित होती है, जिससे वचन देकर कोई व्यक्ति प्रतिज्ञा भङ्ग न कर डाले। इन्हीं विषयों पर अक्सर झगड़े भी चलते रहते हैं।

(५) विद्या के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि इनका अधिकांश भाग संसार की वर्त्तमान धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थिति से नितान्त अनभिज्ञ है। प्रथम तो शिक्षा का एकान्त अभाव-सा ही है, और यदि कुछ सज्जन संस्कृत शिक्षा प्राप्त हैं, तो उनके परिज्ञान की सीमा पुरोहिताई और पूजा-पाठ के कार्यों तक ही परिमित है, समाज और संसार की उन्हें कुछ चिन्ता नहीं।

(६) मृतक सम्बन्धी के लिए छाती को घूँसों से पीट-पीट कर रोना तथा वर्ष भर के श्यापे की प्रथा भी इनमें प्रचलित है।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(७) सबसे अधिक बुरी प्रवृत्ति, जिसकी ओर आपका ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करना है, वह है इनकी स्वार्थपरता और लड़ाकू स्वभाव। ये सर्वदा अपने ही हितचिन्तन में रत रहते हैं। लड़ने की यह हालत है कि जिस समय यजमानों के ऊपर अथवा अन्य किन्हीं ऐसे ही घरेलू कारणों से लड़ाई छिड़ जाय, तो फिर बाँसों के तुमुल नाद से निस्तब्ध वायुमण्डल एकदम निनादित हो उठता है। इनकी गृहलक्ष्मियों में भी बहुधा ऐसे ही युद्ध ठनते हैं। परन्तु वे अधिकतर गाली-गलौज तक ही परिमित रह जाते हैं !!

सम्पादक जी, यह मैंने इस समाज की वर्त्तमान दशा का दिग्दर्शन मात्र कराया है। यदि आप इनके सुधार के निमित्त अपनी लेखनी उठाने का कष्ट करें, तो विस्तार से लिख कर आपकी सेवा में प्रेषित करूँ। यद्यपि मैं भी इसी समाज का एक तुच्छ व्यक्ति हूँ और उपरोक्त सभी कुरीतियों का अपने घर को ही शिकार पा रहा हूँ, परन्तु बुराई को तो बुराई कहना ही पड़ता है। आशा है, आप इसको अपने पत्र में स्थान देकर इन लोगों का ध्यान कुरीतियों की ओर आकर्षित करेंगे।

आपका,

—बलभद्र चौबे

* * *

महाशय जी,

हमें जो कुछ कहना था उसे सारांश में हम दिसम्बर मास के 'चाँद' में निवेदन कर चुके हैं। किसी भी समाज के बड़े-बूढ़ों से यह आशा करना कि वे रूढ़ियों की प्रचलित कुरीतियों को तिलाञ्जलि देकर देश और समाज के फलने-फूलने में सहायक होंगे—पत्थर से पानी निकालने की आशा के समान निराशा मात्र है।

हमें जो भी आशा है वह है देश के भावी नागरिकों से—देश के नवयुवकों से। जब तक वे कुचले हुए सर्प की भाँति एक बार ही तिलमिला कर इन रूढ़ियों की प्रचलित कुरीतियों के मस्तक पर पाद-प्रहार नहीं करेंगे—जब तक वे अपने समाज में बग़ावत का झण्डा बुलन्द नहीं करेंगे तब तक किसी भी प्रकार का सुधार सम्भव नहीं है। किसी भी देश का इतिहास हमारी इस धारणा का पोषक है।

—स० 'चाँद'

* * *

बप्पा रावल की तलवार

माननीय सम्पादक जी,

फ़रवरी, १९२८ के 'चाँद' में एक पत्र श्री० भूरालाल मूणोत का छपा है, उसमें मेरे 'बप्पा रावल की तलवार' शीर्षक लेख के सम्बन्ध में कतिपय प्रश्न किए गए हैं। मेरे लेख में राणा मुकुल का नाम मेरी असावधानी से छप गया था। 'मुकुल' की जगह महाराणा हमीर के पुत्र 'क्षेत्रसिंह' का नाम होना चाहिए था। लेख में जिन मालदेव का ज़िक्र आता है, उनका परिचय टॉड साहब के अनुसार निम्न भाँति है :—

"सन् १३०३ ई० में अलाउद्दीन ने चित्तौर को विजय करके वहाँ का राज्य-शासन झालौर के शैनगोड वंश के मालदेव नामक एक सरदार के हाथ में दे दिया। चित्तौर में दिल्लीश्वर की एक सेना भी मालदेव के अधीन रहती थी।"

टॉड साहब ने मालदेव के दो पुत्रों का भी राजस्थान के इतिहास में ज़िक्र किया है। उनके अनुसार बड़े का नाम बनवीर और छोटे का नाम हरीसिंह था। मालदेव के एक कन्या भी थी, जो कि बचपन ही में विधवा हो गई थी। उसका पुनर्विवाह कपट से महाराणा हमीर के साथ कर दिया गया था। राणा हमीर की इन्हीं रानी से कुँवर क्षेत्रसिंह पैदा हुए थे।

राणा हमीर इन्हीं रानी की सहायता से अपने पुरखाओं की सम्पत्ति चित्तौर को वैरियों के हाथ से निकाल सके थे, और मालदेव को युद्ध में पराजित किया था। इस युद्ध में मालदेव की तरफ़ से एक मुसलमान राजा भी लड़ा था। मालदेव का छोटा पुत्र हरीसिंह राणा हमीर द्वारा युद्ध में मारा गया और बड़े पुत्र बनवीर ने राणा हमीर की अधीनता स्वीकार की। राणा ने नीमच, जीरण, रतनपुर इत्यादि गाँवों की भूमिवृत्ति उनको दी।

इसके अतिरिक्त टॉड साहब के राजस्थान में मालदेव के विषय में कोई उल्लेखनीय बात नहीं मिलती।

मालदेव का कुछ हाल साहित्याचार्य पं० विश्वेश्वर-

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाथ रेऊ कृत 'भारत के प्राचीन राजवंश' नामक पुस्तक के पहले भाग के ३११ वें पृष्ठ पर दिया है।

डॉक्टर एनी बिसेन्ट कृत Children of the Motherland में मालदेव के बारे में निम्न पंक्तियाँ मिलती हैं।

" Meanwhile, at Chittor, dwelt Rao Mal Deo a prince of Chohan-race, who was, alas serving the Pathan Emperor and he sent embassy to Rana Hamir offering him his daughter in marriage."

शुभचिन्तिका,
—गङ्गादेवी

मदिरापान

[रचयिता—श्री० सूर्यनाथ जी तकरू]

(१)

जीवन-सरिता के दुकूल पर,
खड़ा हुआ मैं झूम रहा।
उनके आँचल के कोने को,
बार-बार हूँ चूम रहा।

(२)

आँसू की इस प्रबल धार में,
क्या जानें कब बह जाएँ।
अन्तर के अरमान हमारे,
पड़े यहीं पर रह जाएँ।

(३)

फिर क्यों आज न जग को भूल,
पी लें मदिरा का प्याला।
इन लहरों से क्यों न करें हम,
अब अपने को मतवाला।

(४)

इच्छाओं अरमानों की मैं,
आज चिता सुलगा आया।
अभिलाषाओं, आशाओं की,
आज समाधि लगा आया।

(५)

फिर तुम लैला मैं मजनूँ बन,
प्याले पर प्याला पी लें।
यह गुलाब की पङ्खड़ियाँ फिर,
क्यों न कहो, हाला ले लें।

(६)

चारों दिस फिर रिमझिम करके,
वही 'गुलाबी' बरसेगी।
होऊँगा बेहोश—वेदना,
निराधार हो—तरसेगी।

(७)

गहरी लाल भरी प्याली—
शराब की मेरी छलक रही।
मदिरा के बेहोश नशे में—
बार बार झप पलक रही।

(८)

अपने आप ढालता हूँ मैं—
यहाँ न कोई साक़ी है।
उनके आने तक खो बैठूँ,
होश—अभी कुछ बाक़ी है।

(९)

'प्यारे-प्यारे' रटते-रटते,
मेरा मन भी कीर हुआ।
भर-भर प्याले जो देता था,
वह क्यों यों बेपीर हुआ?

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आक के पत्तों का अचार

आक के अधपके पत्ते लेकर उबाल डाले। फिर कालीमिर्च, ज़ीरा, लौंग इलायची, सोंठ, धनियाँ, सौंफ़, दालचीनी, जावित्री, जायफल और नमक—सबको बारीक पीस कर पत्तों के ऊपर-नीचे लगाकर बर्तन में भर कर रख दे और ऊपर से थोड़ा सा नींबू का रस डाल दे। यह बहुत ही स्वादिष्ट अचार बनेगा।

* * *

नींबू का अचार

पक्के नींबू लेकर सरौते से उनको चार-चार फाँक इस प्रकार करे कि फाँकें अलग न होने पावें—जुड़ी रहें। फिर उनमें से बीजों को निकाल कर फेंक दे। इसके बाद मिट्टी के बर्तन में भर कर चौथाई के क़रीब लाहौरी नमक पीस कर ऊपर से डाल दे। बर्तन का मुँह बन्द कर ४ दिन तक रात को ओस और दिन को धूप दिखाया करे। जब ऊपर का छिलका सुर्ख़ हो जाय तो उसमें लौंग, इलायची, कालीमिर्च, सोंठ, पीपल, काला ज़ीरा, दालचीनी और सफ़ेद ज़ीरा, सबको अन्दाज़ से लेकर ख़ूब बारीक पीस कर डाल दे, और चलाकर सब में बराबर मिला दे। इसके बाद आवश्यकतानुसार नींबू का अर्क़ डाल दे और बर्तन का मुँह बन्द करके रख दे। यदि अचार को मीठा करना है तो थोड़ी सी शक्कर की चाशनी भी डाल दे। यह अचार भी स्वादिष्ट होता है।

* * *

कमरख का अचार

कमरखों के छोटे-छोटे टुकड़े करके उबाल ले और फिर बीज निकाल कर उसमें गरम मसाला, हल्दी, धनियाँ, मिर्च, नमक और राई मिला दे, उत्तम अचार तैयार होगा।

—वृन्दा

* * *

मिश्री बनाने की तरकीब

सफ़ेद साफ़ चीनी लेकर कुल की चार तार की चाशनी बना ले और मिट्टी के छोटे-छोटे गिलासों में भीतर की तरफ़ मोटा काग़ज़ सूत में लगा कर इस चाशनी को उनमें भर कर रख दे। जब थोड़ी देर में दो हिस्से के क़रीब जम जावे तो ऊपर की पपड़ी हटा कर गिलासों को बाँस की जाली पर औंधा करके रख दे और उसके नीचे थाल रख दे। जब गिलासों में से रस टपकना बन्द हो जाय तो उन्हें सीधा करके सुखा दे। जब बिलकुल सूख जायँ तो गिलासों को तोड़ कर मिश्री को बाहर निकाल ले और काग़ज़ छुड़ा कर काम में लावे।

* * *

गरी की बर्फ़ी

उम्दा और सफ़ेद गोले की गरी को पहले कद्दूकस में कस कर बारीक करे, फिर या तो अकेले या बराबर के खोए के साथ घी में भून ले और फिर बराबर की शक्कर की चाशनी के साथ आग पर चढ़ा कर थोड़ी देर घोटे। जब ख़ूब मिल जाय तो थाली में उतार कर फैला दे, और जब जमने पर आवे तब गुलाब या केवड़ा जिसकी पसन्द हो, ख़ुशबू दे दे।

—कलावती, कौल

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट—
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

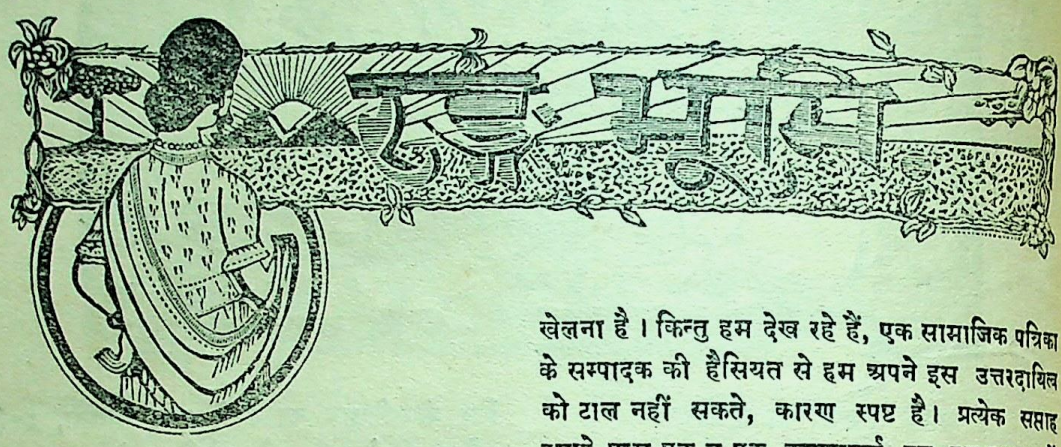

एक लाख की अपील

भारत में कई प्रमुख स्थानों में संरक्षण-गृहों की आवश्यकता दिखलाते हुए हम कई बार 'चाँद' के इन्हीं स्तम्भों में अपने विचार प्रगट कर चुके हैं। विगत अगस्त १९२७ के 'चाँद' में हमने इस प्रकार की संस्थाओं के निर्माण तथा कार्य-क्रम सम्बन्धी एक विस्तृत योजना भी प्रकाशित की थी और प्रचार की दृष्टि से इन्हीं लेखों का एक सुन्दर संग्रह १५,००० की विशाल संख्या में बिना मूल्य वितीर्ण भी किया गया था। हमें प्रसन्नता है, अनेक प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं ने हमारी इस योजना (Scheme) को बहुत पसन्द किया और जनता से इसे कार्य रूप में परिणत करने का अनुरोध भी। फल-स्वरूप कई स्थानों पर संरक्षण-गृहों की नीवें डाली गईं और तब से यह आन्दोलन धीमी, किन्तु निश्चित गति से चल रहा है। प्रयाग में इस प्रकार की एक भी संस्था नहीं थी। अनेक प्रतिष्ठित मित्रों ने इस शर्त पर पर्याप्त धन देने की इच्छा प्रकट की थी कि संस्था का सारा प्रबन्ध तथा उत्तरदायित्व इन पंक्तियों का लेखक पूर्ण-रूपेण ग्रहण करे, किन्तु कार्य की अधिकता के कारण हमारा साहस नहीं हुआ कि मित्रों की इस अपार कृपा का हम लाभ उठा सकें। संरक्षण-गृह जैसी नाज़ुक संस्था का सारा भार ग्रहण करना हँसी-खेल का विषय नहीं है, यह आग से खेलना है। किन्तु हम देख रहे हैं, एक सामाजिक पत्रिका के सम्पादक की हैसियत से हम अपने इस उत्तरदायित्व को टाल नहीं सकते, कारण स्पष्ट है। प्रत्येक सप्ताह हमारे पास एक न एक करुणापूर्ण पत्र इस सम्बन्ध में आया ही करते हैं। हाल ही के आए हुए कुछ पत्रों के नमूने ये हैं :—

(१)

गाज़ीपुर ज़िले से एक २१ वर्षीया कायस्थ-युवती ने अपने १५ दिसम्बर के पत्र में हमें अपनी मर्मभेदी कहानी इस प्रकार लिखी थी :—

पूज्य सम्पादक जी !

मैं पिछले पाँच वर्षों से नियम-पूर्वक आपका सुविख्यात अख़बार पढ़ रही हूँ, मुझे शब्द नहीं मिलते जिनसे अपने मनोभावों को आपके सामने बिखेर सकूँ—अपनी श्रद्धाञ्जलि आपके पवित्र चरणों में समर्पित कर सकूँ। 'चाँद' के प्रति मेरा मूक प्रेम रहा है और शायद आजीवन रहता, आप मुझे जान भी न पाते, किन्तु स्वार्थवश यह पत्र आपकी सेवा में लिखना पड़ रहा है। आशा है, आप अपनी इस अभागिनी बहिन से घृणा न कर, उसके पथ-प्रदर्शक बनेंगे और मेरे जीवन की सञ्चित उमङ्गों को बटोर कर एक निश्चित मार्ग पर लगाने की कृपा करेंगे।

इस समय मेरी अवस्था २१ वर्ष की है। मैं एक नायब तहसीलदार की अभागिनी कन्या हूँ। स्वर्गीय पिता जी का वेतन ८० रु० मासिक था और २-३ सौ मासिक आय उन्हें ऊपर से हो जाती थी। उनके क्रमशः तीन विवाह हुए। मैं पहली स्त्री की सन्तान हूँ। मेरी माता जी का देहान्त उस समय हुआ, जब मैं ३ वर्ष की मासूम थी। मेरा पालन-पोषण कैसा हुआ, आप स्वयं हिन्दू हैं, इस-

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लिए इसका अनुमान लगा सकते हैं। मैं आजीवन माता-पिता के स्वर्गीय प्रेम तथा लाड़-प्यार से वञ्चित रही। सौतेली माताओं के मुझ पर जो-जो पारिवारिक अत्याचार हुए हैं, उन्हें लिख कर मैं आपका अमूल्य समय नष्ट नहीं करना चाहती। मेरी दोनों सौतेली माताएँ अभी तक जीवित हैं और अपने-अपने मैके में चैन की बंसी बजा रही हैं। दोनों माताएँ दो भिन्न-भिन्न वस्तुएँ हैं। एक पूजा-पाठ में तथा तीर्थ-यात्रा में निमग्न रहती है, दूसरी एक मुसलमान बीड़ी वाले के साथ × × × इससे अधिक लिखने का मुझमें साहस नहीं है। पिता जी जो कुछ कमाते, वह सारा धन शराब-कबाब तथा यार-दोस्तों में स्वाहा होता रहा। एक मुसलमान वेश्या से उनका सम्बन्ध भी था। उसने भी उन्हें ख़ूब काठ का उल्लू बनाया और सब कुछ हड़प गई। ऐसी परिस्थिति में मेरी पढ़ाई-लिखाई का प्रबन्ध तो क्या होता, अब तक जीवित हूँ, सौतेली माताओं की यही क्या कम कृपा है!

आप जानते हैं, हमारी जाति में (कायस्थों में) वर का क्या मूल्य देना होता है और लड़की कितनी सस्ती समझी जाती है। घर में दहेज़ की रक़म न होने के कारण और किसी को चिन्ता न होने के कारण मैं आज तक कुमारी हूँ और शायद आजीवन रहूँ भी। मैंने अपनी बेहयाया से थोड़ा-बहुत हिन्दी पढ़ लिया है, सीने-पिरोने का काम भी जानती हूँ। पिता जी के मरने पर मैं अपने मामा के गले पड़ी और वहीं नौकरानी की तरह रहने लगी। यहाँ आने के दूसरे ही महीने मेरी मामी का देहान्त हो गया। पहले तो मेरे मामा मेरी चिन्ता ही नहीं करते थे, पर जब से मामी का देहान्त हुआ तब से वे विशेष लाड़-प्यार करने लगे, मेरे हर्ष की सीमा नहीं रही। लाड़-प्यार की मैं जन्म से भूखी थी, इसे पाकर मैं निहाल हो गई। पर मुझे क्या पता था कि इसी प्यार की तह में मेरे सर्वनाश की आग धू-धू करके सुलग रही है। मेरे नर-पिशाच मामा का प्रेम वात्सल्य-प्रेम नहीं था—वह था नर-पिशाचों की काम-लिप्सा का नग्न ताण्डव! मैं धीरे-धीरे सब समझ गई, पर अन्त में मेरा पतन हो गया, प्रकृति से मैं लोहा न ले सकी। हम दोनों ही अन्धे हो रहे थे—किसी को भविष्य की चिन्ता नहीं थी। ऐसी परिस्थिति में जो हुआ करता है वही हुआ! प्रकृति ने दण्ड दिया—वह दण्ड, जिसको हिन्दू-समाज घृणा की दृष्टि से देखता है। जब मेरे मामा को पता चला तो एक बार ही वे आग-बबूला होगए और लगे मुझे उलटी-सीधी सुनाने। सम्पादक जी! सत्य कहती हूँ, मेरी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। मैं इस बात की कल्पना भी न कर सकी थी कि पुरुष इतनी धूर्तता कर सकते हैं। सारे मुहल्ले में हल्ला मच गया और टीका-टिप्पणी होने लगी। मेरे नर-पिशाच मामा ने सबको न जाने क्या उलटा-सीधा समझा कर भूत कर दिया। मैं क्या करती? मुझमें इतना नैतिक बल नहीं था कि पञ्चों के सामने अपने नर-पिशाच मामा की सारी पोल खोल सकती। इस निर्बलता का एक यह भी कारण था कि मेरी बातों पर विश्वास ही कोई क्यों करेगा? मामा दोनों समय गङ्गा-स्नान करते हैं; भूमि पर सोते हैं, माथे में चन्दन पोतते हैं, एकादशी का नियमित रूप से व्रत रखते हैं—क्या इन सब बातों को देखता हुआ कोई व्यक्ति उनके कलुषित आचरण पर सन्देह करने का साहस कर सकता है? मैं घर से निकाल बाहर की गई, फिर मेरी क्या-क्या दुर्गति हुई और किस प्रकार मैं अपने मामा के पाप से अपना पिण्ड छुड़ा सकी, यह कहने का विषय नहीं है और न उन बातों को आप छाप ही सकते हैं। × × ×

यह पत्र लिखने के दो कारण हैं—एक तो यह कि मेरे समान अन्य हतभागिनी बहिनें, जिनकी संख्या कायस्थ-समाज में कम नहीं है, मेरी बर्बादी से शिक्षा ग्रहण करें, दूसरा कारण यह है कि मैं अब अपना शेष जीवन सामाजिक सुधार के पवित्र कार्य में व्यतीत करना चाहती हूँ। मैं प्रतिज्ञा करती हूँ, आजीवन विवाह न करूँगी और सदाचार-पूर्वक जीवन यापन करूँगी। क्या आप मुझे कोई ऐसी संस्था बता सकते हैं, जो मेरे मनोभावों की क़द्र कर सके। आप संरक्षण-गृह खोलने वाले थे उसका क्या हुआ? मेरी टूटी-फूटी भाषा सुधार लीजिएगा और नाम और पता गुप्त रखिएगा; यदि आप इस पत्र को 'चाँद' में छापें, आपको मेरी शपथ है।

* * *

(२)

श्री० रुद्रदत्त जी मिश्र, विशारद, अध्यापक, हिन्दी

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मिडिल स्कूल मँगरोल (कोटा स्टेट; राजपूताना) अपने ७वीं सितम्बर, सन् १९२८ के पत्र में लिखते हैं—

श्रीमान् सम्पादक महोदय 'चाँद'

श्रीमान् की सेवा में मैंने एक पत्र पहले भी भेजा था, जिसमें जबलपुर के उन डॉक्टर महोदय का पता पूछा था कि जो गर्भवती विधवाओं को अपने संरक्षण-गृह में प्रसवकाल तक रखने का प्रण कर चुके हैं। मुझे एक कानपुर की उच्च वंशज महिला की प्रतिष्ठा का ध्यान है। मेरे मित्र द्वारा उनका पता पूछा गया है। यदि आप लिखने की कृपा करें तो अत्युत्तम हो।

(१) कहाँ-कहाँ ऐसे संरक्षण-गृह हैं जहाँ ऐसी विधवाएँ प्रसवकाल तक रह सकती हैं, पते लिखिएगा।

(२) ऐसे आर्यसमाज के विधवा-आश्रम कहाँ-कहाँ हैं, जिनमें उपर्युक्त प्रबन्ध है।

आशा है, श्रीमान् शीघ्र से शीघ्र मुझे उत्तर देने की कृपा करेंगे। क्या इलाहाबाद में कोई ऐसा स्थान है?

उत्तर के लिए टिकट ⁻) का भेजा जाता है, इसी डाक से उत्तर देने का कष्ट कीजिए।

* * *

(३)

श्री० कालिकाप्रसाद गुरुदेव, प्रधान आर्य-समाज मुस्करा, ज़िला हमीरपुर (बुन्देलखण्ड) से अपने तारीख़ २७-११-२८ के पत्र में लिखते हैं :—

श्रीमान् महोदयवर,

सादर नमस्ते!

दश मास हुए जब एक ब्राह्मणी विधवा के जननार्थ प्रार्थना की थी। आपने पूर्ण सहायता का वचन देकर हमारे उत्साह को बढ़ाया था। आपकी इस कृपा के लिए हम कृतज्ञ हैं।

अब हमारे समक्ष एक असहाय निर्धन और कुलवती क्षत्राणी विधवा है, जिसकी अवस्था अनुमानतः २६ वर्ष है। इसके गर्भ रह गया है और आठवाँ मास पूर्ण होने को है। गर्भ एक सजातीय का है, पर वह कायर ग्राम त्याग कर भाग गया है। अब यह बर्बाद होने जा रही है। एक मुसलमान की बहकावट में है। उसने (मुसलमान ने) वादा किया है कि कोई नहीं जानेगा, हम तेरा गर्भ गिरवा देंगे, वह राज़ी हो गई है। परन्तु यह समाचार एक धर्मात्मा पुरुष को प्राप्त हुआ। वह बेचारा ७ मील उस विधवा के पास जाकर उस स्त्री को राज़ी कर पाया है कि तेरा प्रसव करा कर तेरे बच्चे को वहीं छोड़, दो मास पश्चात् तुझे वापस बुला लेंगे। आज वह सज्जन ३६ मील दौड़ कर मेरे पास आया है, अतः अब श्री सेवा में प्रार्थना है कि मुझे लौटती डाक से आज्ञा प्रदान करें कि मैं इस देवी को लेकर आपके पास प्रयाग पहुँचाऊँ और आप इसे कराँची या किसी अन्य स्थान पर भेज कर इसकी रक्षा करें। प्रसव के पश्चात् यह पुनः अपने गृह वापस आ जाय। यदि इसका प्रबन्ध नहीं हुआ तो यह गर्भस्थ जीव को मार, जेल जायगी अथवा मुसलमान हो जायगी। आशा है, आप उत्तर लौटती डाक से प्रदान करेंगे। पहली स्त्री का तो प्रबन्ध हमने कर लिया था, आपको कष्ट नहीं दिया था, पर अब आपको ही करना पड़ेगा। हम इस बार असमर्थ हैं।

चूँकि प्रसव-काल निकट है, अतः कृपया लौटती डाक से आज्ञा प्रदान करें। × × ×

* * *

(४)

श्री० बी० आर० वर्मा, हिन्दी विश्वविद्यालय, काशी से अपने २७-११-२८ के पत्र में लिखते हैं :—

प्रिय महाशय,

आपके फ़रवरी, १९२८ के 'चाँद' में "चिट्ठी-पत्री" वाले भाग में "हिन्दू विधवाओं की दुर्दशा" शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ था, जिसमें डॉक्टर बिहारीलाल जी बालाघाट (सी० पी०) ने वर्तमान हिन्दू-संसार में होने वाली भ्रूण-हत्याओं का एक हृदय-विदारक दृश्य खींचा था। उसमें उन्होंने बतलाया था कि उन्होंने इस बात का प्रबन्ध कर रक्खा है कि जो विधवा या कुँआरी इस बात की सूचना उन्हें दे दें कि अनुचित व्यवहार के कारण उसके गर्भ रह गया है तो आप प्रसव करा, जीवित बच्चे को अपने पास ले लेंगे। तथा उक्त रमणी को समाज की लाञ्छनाओं से बचाएँगे। अतः मैंने उक्त डॉक्टर साहब के पास इस आशा का पत्र लिखा था कि दो विधवाएँ, जो जाति की ब्राह्मणी हैं, उनके गर्भ लगभग ८ महीने के हो गए हैं और वे बिलकुल घबड़ा गई हैं। अतएव यदि उनकी ख़बर शीघ्र न ली जायगी तो या तो वे भ्रूण-हत्या करेंगी अथवा

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आत्म-हत्या या विधर्मी भी हो सकती हैं। मुझे जब इस बात की ख़बर लगी तो मैंने उन्हें सान्त्वना दिया था तथा उक्त डॉक्टर साहब के पास पत्र लिखा था कि आप कृपया यह बतलावें कि कब, कहाँ और कैसे उनके पास आया जाय? किन्तु अत्यन्त शोक के साथ कहना पड़ता है कि डॉक्टर साहब ने पत्रोत्तर भी नहीं दिया, क्या कारण है, समझ में नहीं आता। क्या उनका पता जो 'चाँद' में छपा था, यथेष्ट नहीं है, अथवा पत्र ही उनके पास नहीं पहुँचा, अथवा डॉक्टर साहब हैं ही नहीं? क्या बात है? अतएव मैं आपके पास आज इसी लिए यह प्रार्थना-पत्र भेज रहा हूँ कि उक्त कार्य में आप पूर्ण-रूपेण सहायता करें। आप से मुझे बहुत-कुछ आशा है। कृपया शीघ्रता कीजिएगा, नहीं तो अनर्थ हो जायगा। पत्रोत्तर अवश्य दीजिएगा। मैं आपकी पत्रिका का ग्राहक भी हूँ। मेरा ग्राहक-नम्बर ८,८२१ है। गाँव नारिया, डाकख़ाना लङ्का, बनारस हिन्दू-यूनिवर्सिटी।

* * *

इसी प्रकार के अनेक पत्र समय-समय पर 'चाँद' में छपते रहे हैं। मार्च १९२८ के 'चाँद' के इन्हीं स्तम्भों में हम कूड़ों पर, सड़कों पर, तथा रेलादि में निरपराध बालकों के पाए जाने के कई उदाहरण और चित्र प्रकाशित कर चुके हैं। कौन कह सकता है हरामी कह कर इस प्रकार परित्याग कर दिए जाने वाले निरपराध बच्चे भगवान् वेदव्यास से भी अधिक विद्वान्, कर्ण से भी अधिक पराक्रमी और वीर तथा कबीर की भाँति महान् न होते; यदि उन्हें जीने का अवसर दिया जाता? शायद हमें बतलाना न होगा कि महाभारत के अधिकांश प्रातः स्मरणीय पात्र हरामी थे—ठीक उसी प्रकार के हरामी थे जिस प्रकार के ये हरामी! धीवर की कुमारी कन्या सत्यवती के साथ महर्षि पराशर का सम्भोग और इसी के फल-स्वरूप भगवान् वेदव्यास का जन्म हमारी गढ़ी हुई घटना नहीं है। कुमारी कुन्ती के साथ सूर्य का व्यभिचार और इसके द्वारा प्रबल प्रतापी वीर कर्ण का जन्म भी उपेक्षा करने का विषय नहीं है। इस घटना के बाद भी कुन्ती के विवाह का किसी ने विरोध नहीं किया था। अन्त में कुन्ती का शुभ विवाह पाण्डु से हुआ था, जिनके सहवास से पाण्डवों का जन्म होना भी ध्रुव-सत्य है। महाकवि कालिदास के वंश का किसी को आज तक पता नहीं है। कबीर जैसे सिद्धभक्त भी कूड़े के ढेर पर पड़े हुए मिले थे, पर आज अभागे हिन्दुओं की हठधर्मी, उनकी सामाजिक सङ्कीर्णता, उनकी अपरिवर्तनशीलता और उनकी स्थितिपालकता ने न जाने कितने लालों को खोकर अपने को क्षीण और विधर्मियों को निहाल कर दिया है। ये पंक्तियाँ लिखते-लिखते हमें खण्डवा (सी० पी०) का एक रोमाञ्चकारी समाचार मिला है। १२ जनवरी के सहयोगी 'कर्मवीर' में यह पंक्तियाँ प्रकाशित हुई हैं जिन्हें सम्पादक महोदय ने निशान लगा कर तथा उस पर "Hindu Society exposed in its neckedness" लिख कर हमारे पास भेजने की कृपा की है। पाठकगण इन्हें पढ़ें और आँसू बहावें। पंक्तियाँ ये हैं:—

ता० ३०।१२।२८ को, रात्रि में, लगभग ८ बजे एक कन्या, तीन-चार दिन की, अनाथालय के टीन के कम्पाउण्ड के बाहर, कोई व्यक्ति डाल गया। कन्या के रोने पर अनाथालय के मेहतर ने सूचना दी। कन्या फाटक के पास पड़ी थी। उसके पास एक पत्र भी पड़ा मिला, जिसकी अविकल लिपि यह है:—

"ओं"

"श्री० माहा से कृपा करके यह लड़की आप के सूपरत करी है, आप हिन्दू धर्म कि रक्षा करना यही धर्म है ओर मैं जाती की ऊँची हूँ अपनी इज्जत रखने को आप के पास भेजी है अब मैं प्रतीगा करती हूँ कि जनम भर यह काम नहीं करूँगी और मैं किसी भी रूप में इस लड़की की साहता अनाथले में करती रहूँगी सो इसका अनाथले में भेजो और इसकी जान बचान यह आपसे प्रथन्या है इसके दोसी आप होवोगे अगर रक्षा नहीं करोगे तो मेरा आप सबको प्रनाम है।

द० हिन्दू कि बालीका

फिर से में अपना पता दूँगी।"

कन्या आश्रम में सकुशल है। इसको श्रीमान् ज़िलाधीश मिस्टर डी० वी० रेगे साहब और उनकी श्रीमती जी ने भी, अनायास रात्रि के

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समय आकर देखा, तथा बड़ा दया-भाव प्रदर्शित किया। श्रीमती जी ने इस कन्या के लिए कई गर्म वस्त्र भी भेजे हैं।

इसके अतिरिक्त कन्या को श्रीमान् पं० माखनलाल जी चतुर्वेदी सम्पादक 'कर्मवीर' और श्रीमान् पं० सि० मा० आगरकर स० सम्पादक 'कर्मवीर' ने भी अवलोकन किया है। कन्या सुन्दर और किसी उच्च घराने की है।

जिस देवी का यह कार्य है, हम उसके साहस की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते। उसने अपने एक पाप को छिपाने के लिए ण-हत्या का दूसरा पाप नहीं किया, और इस कन्या को आश्रम तक पहुँचाया।

—मौजीलाल, मन्त्री हिन्दू-अनाथालय, खण्डवा

* * *

हमारे पास इसी आशय का एक न एक अभागिनी महिला का करूणा-पूर्ण पत्र नित्य ही आया करता है, जिसमें वे अपनी लाज छिपाने के अभिप्राय से हमारी सहायता चाहती हैं, पर बिना किसी उपयुक्त संस्था के हुए हम व्यक्तिगत रूप से कर ही क्या सकते हैं। आज तक व्यक्तिगत रूप से हमसे जो कुछ हो सका है, हमने अभागिनी बहिनों की सेवा की है। अनेक महिलाओं को हमने श्रद्धेय मोहता जी के द्वारा स्थापित कराँची तथा बीकानेर के संरक्षण गृहों में जाने की सलाह दी है। स्त्रियों का सर्वस्व यों तो समस्त भारत में लम्पट पुरुषों द्वारा अपहरण किया जाता है, पर दुर्भाग्य से युक्तप्रान्त में इसका विशेष आधिक्य है। मिर्ज़ापुर, झाँसी, कानपुर, प्रयाग अथवा काशी की ऐसी अभागिनी स्त्रियों से यह आशा करना कि वे ७-८ मास का कलङ्क पेट में लेकर इतनी दूर की यात्रा करेंगी, दुराशा मात्र है। एक और भी कारण है। एक बार ऐसा विकट धोखा खाकर स्त्रियाँ सहसा किसी का विश्वास भी नहीं करतीं, उनका ऐसा करना नितान्त स्वाभाविक है। ऐसी परिस्थिति में हम प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं कि प्रयाग में एक विशाल संरक्षण गृह की नितान्त आवश्यकता है, जिसमें कम से कम १००-१५० स्त्रियों के रहने का तथा आदर्श जीवन व्यतीत करने का समुचित प्रबन्ध हो सके। इस कार्य के लिए कम से कम १ लाख रुपयों की आवश्यकता है। हिसाब का संक्षिप्त ब्योरा इस प्रकार है :—

एक ऐसे साधारण भवन के निर्माण के लिए जिसमें १०० कमरे, चौका तथा चारों ओर बरामदे, रसोई तथा गुसलख़ाने आदि रह सकें, करीब ५०,००० के व्यय होंगे। बर्तनों, चारपाइयों, वाद्यों, कपड़ों, बिस्तरों, मैशीनों तथा चर्ख़े आदि में कम से कम १०,००० व्यय होंगे। ज़मीन का किराया भी क़रीब ५०० रुपया वार्षिक देना होगा, एक छोटे से, किन्तु आवश्यकतानुसार दवाख़ाने के लिए भी कम से कम ५,००० रुपयों की आवश्यकता होगी और शेष रुपए, रेल-यात्रा, अन्य प्रकार की सहायता, कर्मचारियों का वेतन, शिक्षा आदि के समुचित प्रबन्ध तथा भोजन-वस्त्र के लिए सुरक्षित रहेंगे, जब तक संस्था अपने पैरों पर खड़ी हो सके, इस योजना के लिए अब तक हमें निम्न-लिखित दानों की सूचना मिली है:—

सुप्रसिद्ध समाज-सेवी श्रद्धेय रामगोपाल जी मोहता ... ... १०,०००रु०

एक गुप्त दानी सज्जन, जो अपना नाम प्रकाशित नहीं कराना चाहते ... २,१०० रु०

'चाँद' सम्पादक श्री० सहगल जी ... १,१०० रु०

[वाचनालय के लिए ६०० रु० मूल्य की पुस्तकें और ५०१ रु० नक़द]

इसी प्रकार के हमें दो-चार और भी वचन मिले हैं, अतएव देशवासियों की इस असाधारण जाग्रति ने हमें एक बार फिर आशा का आलोक दिखा दिया है और हृदय की सारी सञ्चित शक्ति लगा कर भी हमने इस संस्था को चलाने की प्रतिज्ञा कर ली है। हमें पूर्ण आशा है, प्रत्येक विचारशील देशवासी यथाशक्ति दान भेज कर हमारे इस पवित्र अनुष्ठान को सफल करने में हमारा सहायक होगा। अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति १ पैसे से लाख रुपए तक इस प्रस्तावित संरक्षण-गृह के सहायतार्थ भेज सकता है। जिन लोगों का ५०० रु० अथवा इससे अधिक दान आएगा, उनके दान से संरक्षण गृह का एक कमरा बनवाया जायगा और उस पर दानी सज्जन अथवा देवी के नाम की पटरी लगाई जायगी। किसी अवसर पर दान देते समय अथवा शादी-विवाह के उत्सवों पर दानी सज्जनों को इस संस्था की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस प्रस्तावित संरक्षण गृह का नाम मातृ-मन्दिर रक्खा जायगा, और भवन-निर्माण के लिए जमुना नदी के उस पार एक बहुत रमणीक और विस्तृत स्थान लेने का प्रबन्ध हो रहा है। ज़मीन स्थानीय एग्रिकलचरल इन्स्टीट्यूट (Agricultural Institute) के समीप है। और इस संस्था के प्राण सुविख्यात अमेरिकन, मिस्टर हिग्गिनबॉटम (Mr. Sam Higginbottam) ने सपरिवार इस उद्योग में हमारी सहायता करने का वचन दिया है। प्रयाग की अनेक शिक्षित महिलाओं ने सब प्रकार संस्था की सहायता करने का विश्वास दिलाया है, अच्छे-अच्छे पुरुष तथा लेडी डॉक्टरों ने भी पूर्ण सहयोग का वचन दिया है। श्रीमती विद्यावती सहगल स्वयं 'मन्दिर' में रहने वाली महिलाओं की देख-भाल करेंगी और उन्हें शिक्षा देंगी। इस संस्था का उद्देश्य निम्न-लिखित होगा :—

उद्देश्य

(१) निर्धन, निराश्रय तथा असहाय महिलाओं और बच्चों की हर प्रकार की सहायता करना।

(२) ऐसी स्त्रियों को, जो सुमार्ग से विचलित होकर, काम के क्षणिक वेग के उन्माद में प्रवाहित होकर अपना सर्वनाश कर चुकी हों, सहायता प्रदान कर उनके जीवन को आदर्श और उपयोगी बनाना—चाहे वे समाज से ठुकराई जाकर वेश्या ही क्यों न हो गई हों।

(३) असहाय तथा अनाथ विधवाओं की सेवा (उपकार नहीं) करना।

(४) जो महिलाएँ कला-कौशल अथवा सङ्गीतादि सीखना चाहें, उन्हें यथाशक्ति सहायता करना।

(५) जो असहाय महिलाएँ पढ़ने की इच्छा रखती हों, किन्तु धनाभाव के कारण पढ़ न सकती हों, उनकी शिक्षा का प्रबन्ध करना।

(६) ऐसी स्त्रियों के साथ यदि बच्चे हों तो उनके खान-पान और शिक्षा का उचित प्रबन्ध करना।

(७) यदि कुमार्ग द्वारा उत्पन्न हुए बच्चे सड़क या पेड़ के नीचे पड़े हुए मिलें, जैसा प्रायः होता है, तो उन्हें लाकर उनका पालन-पोषण करना तथा उनकी शिक्षा का प्रबन्ध करना।

(८) जो महिलाएँ शिक्षा प्राप्त करने के बाद अथवा पहले ही विवाह करना चाहती हों और संस्था की सहायता चाहती हों, उनके लिए सुयोग्य वर का प्रबन्ध कर विवाह करा देना।

(९) गर्भवती स्त्रियों की विशेष रूप से सहायता करना, चाहे वे कुमारी हों अथवा विधवा। उनके प्रसव का समुचित और सुचारु रूप से प्रबन्ध करना और उनको सामाजिक लाञ्छनाओं से बचाना।

(१०) इस प्रकार उत्पन्न हुए बालकों की उचित देख-भाल, उनका लालन-पालन तथा शिक्षा आदि का समुचित प्रबन्ध करना।

हम इस अपील की ओर 'चाँद' के विशाल परिवार का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करना चाहते हैं और आशा है, २-३ मास के भीतर पूरे १ लाख रुपए एकत्र हो जायँगे, ताकि शीघ्र से शीघ्र 'मातृ-मन्दिर' की नींव डाली जा सके। दान अथवा वचन निम्न-लिखित पते पर भेजना चाहिए:—

श्रीरामरखसिंह सहगल, नियोजक 'मातृ-मन्दिर' २८, एल्गिन रोड, इलाहाबाद।

R. SAIGAL, Esq.,
Organiser, Matri Mandir,
28, Elgin Road, Allahabad.

रुपए मिलने पर यहाँ से छपी हुई रसीद दानी सज्जनों की सेवा में भेजी जायगी और प्रत्येक मास के 'चाँद' में दाताओं की नामावली भी धन्यवाद-सहित प्रकाशित होती रहेगी।

इस अपील की ओर हम देश के समस्त पत्र-पत्रिकाओं का ध्यान भी आकर्षित करना चाहते हैं और उनके सहयोग की आशा करते हैं।

* * *

फाँसी-अङ्क की फाँसी

फाँसी-अङ्क की ज़ब्ती का फ़तवा देकर प्रान्तीय सरकार ने 'चाँद' जैसी सामाजिक पत्रिका पर जो अनुचित प्रहार किया है, उसे देख कर हमें तथा 'चाँद' के विशाल परिवार को क्लेश का होना स्वाभाविक

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ही है। आज अपनी दासता का हमें विशेष तथा प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है और अपने गरेबान में मुँह डाल कर आज हम अपनी परवशता का बड़ा दारुण स्वरूप देख रहे हैं।

'चाँद' का फाँसी-अङ्क भारत से ब्रिटिश-शासन की जड़ खोदने के अभिप्रायः से प्रकाशित नहीं किया गया था और न इस प्रकाशन का उद्देश्य अङ्गरेज़ी साम्राज्य के विरुद्ध घृणोत्पादक भावों का प्रचार ही था। केवल सामाजिक दृष्टि से, इस उन्नति और विकास के युग में फाँसी की जङ्गली प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन उठाना ही हमारा एकमात्र उद्देश्य था। हमने यथाशक्ति भिन्न-भिन्न प्रदेशों में प्रचलित प्राणदण्ड की अमानुषिक प्रथाओं की इस अङ्क में चर्चा की है। किसी भी जाति अथवा देश का पक्षपात नहीं किया है। इस समस्त अङ्क को बार-बार पढ़ने पर भी हमारी दृष्टि में एक भी पंक्ति आपत्तिजनक नहीं दिखाई दे रही है। एक गुरुतर अपराध अवश्य हुआ है, वह है फाँसी-अङ्क के परिशिष्ट भाग में मरे हुए विप्लवकारियों की चर्चा करना! इन बेचारे मरे हुओं की चर्चा हमीं ने की हो, सो बात भी नहीं है, इन स्वर्गीय आत्माओं की संक्षिप्त चर्चा अनेक पत्र-पत्रिकाओं में हो चुकी है, जिसके प्रकाशन पर सरकार द्वारा कभी आपत्ति नहीं की गई। इन पृष्ठों के अतिरिक्त फाँसी-अङ्क को ज़ब्त करने का हमें कोई दूसरा कारण दिखाई नहीं दे रहा है। पर सरकार स्पष्ट बतलाती भी तो नहीं कि उसकी दृष्टि में किस अंश का प्रकाशन घृणोत्पादक समझा गया है?

यदि इस अङ्क के प्रकाशन द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य का अस्तित्व ख़तरे में पड़ गया था और इस अङ्क को ज़ब्त करके ही भविष्य की शासन-प्रणाली को प्रान्तीय सरकार सुदृढ़ करना चाहती थी, तो उसके ऐसा करने को हम पराधीन रोक नहीं सकते थे, पर फिर भी हमें न्यायानुकूल कार्यवाही की आशा थी, वह भी नहीं हुई। ज़ब्ती का संक्षिप्त ब्योरा इस प्रकार है :—

फाँसी-अङ्क में पृष्ठ-संख्या बहुत अधिक होने के कारण इसके प्रकाशन में इस बार असाधारण देरी हो गई थी। १ ली नवम्बर को प्रकाशित न होकर, यह अङ्क प्रकाशित हो सका ११ वीं नवम्बर को। चूँकि दिवाली के कारण डाकख़ाना १२ तारीख़ को बन्द हो रहा था, इसलिए एक सप्ताह तक रात-दिन कार्य करके हमने १२वीं नवम्बर की डाक से अन्तिम कॉपी रवाना कर देने का निश्चय कर लिया था और हुआ भी ऐसा ही। १४ वीं नवम्बर को प्रातःकाल ६ बजे के क़रीब शहर-कोतवाली का एक सिपाही घबड़ाया हुआ आया और 'चाँद' के फाँसी-अङ्क की एक प्रति माँगने लगा। पूछा गया, क्या करोगे? उत्तर मिला, कोतवाल साहब माँग रहे हैं, कप्तान साहब इन्तज़ार में बैठे हैं, देख कर लौटा देंगे। उससे कहा गया, लिखा कर लाओ तब कॉपी मिल सकती है। १६ नवम्बर को दूसरा सिपाही ख़ुफ़िया पुलिस के किसी दारोग़ा साहब का एक पत्र लाया, जिसकी नक़ल नीचे दी जा रही है :—

O. H. M. S.

Dear Mr. Saigal,

I will be highly oblige (obliged?) if you will send your magazine (Chand on *Phansi*) for a short time. It will be returned after a short time.

Yours truly,
(Sd.) Jai Narain Singh,
S. I., D. I. S.
16th November, 1928.

फाँसी-अङ्क की एक प्रति दे दी गई, हालाँकि दो कॉपियाँ सरकारी रिपोर्टर को सदा की भाँति भेजी जा चुकी थीं। हम निश्चिन्त थे, हमारी यह कल्पना भी नहीं हो सकती थी कि "मियाँ की जूती और मियाँ का चाँद" वाली कहावत चरितार्थ की जायगी (मुफ़्त 'चाँद' न देकर, दारोग़ा साहब से २) वसूल किए जा सकते थे) इसके ५-६ रोज़ के बाद चारों ओर हल्ला सुनाई पड़ रहा था कि 'चाँद' का फाँसी-अङ्क ज़ब्त हो गया! हमारे पास लोग पत्र लिखते, टेलीफ़ोन करते और स्वयं आकर कुशल-समाचार पूछते। १६ वीं दिसम्बर तक यही क्रम जारी रहा और फाँसी-अङ्क की कॉपियाँ बराबर रवाना होती रहीं, हालाँकि ज़ब्ती की आज्ञा १० दिसम्बर को निकल चुकी थी। समस्त भारत के डाकख़ाने में सरकारी आज्ञा-पत्र भेजा जा चुका था कि 'चाँद' का फाँसी-अङ्क जहाँ भी मिले; सी० आई० डी० के बड़े दफ़्तर शिमला भेज दिया जाय—पर हमें आज यह पंक्तियाँ लिखते समय (२०-१-२६) तक कोई व्यक्तिगत सूचना नहीं मिली है। १६ दिसम्बर को एक मित्र प्रातःकाल आए,

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्होंने कहा कि १५ दिसम्बर के सरकारी गज़ट में फाँसी-अङ्क की ज़ब्ती की आज्ञा प्रकाशित हो चुकी है, मँगा कर देख लीजिए। उसी समय गवर्नमेण्ट प्रेस आदमी भेज कर गज़ट मँगाया गया। पढ़ कर हम स्तम्भित रह गए। अफ़वाह ठीक थी। उसमें छपा था—

December 10, 1928.

No. 3774/VIII-100—In exercise of the power conferred by section 99/A of the Code of Criminal Procedure, 1898 (Act V of 1898), the Governor in Council hereby declares to be forfeited to His Majesty *every copy* of the special *Phansi Ank* (Capital punishment number) of the Hindi CHAND magazine issued in November 1928, edited by Sri Chatur Sen Shastri and printed and published by R. Saigal at the Fine Art Printing Cottage, 28, Elgin Road, Allahabad, on the ground that the said number contains matter, the publication of which is punishable under section 124/A of the Indian Penal Code.

अब प्रश्न यह है कि हर एक व्यक्ति नियमित रूप से सरकारी गज़ट नहीं पढ़ता, हमारा भी न पढ़ना स्वाभाविक था। गज़ट १५ तारीख़ को प्रकाशित हो चुका था, किन्तु फाँसी-अङ्क की कॉपियाँ १९ तारीख़ तक बराबर भेजी जा रही थीं। क़ानून की अनभिज्ञता क्षम्य नहीं है (Ignorance of law is no excuse)। यह हमारा सौभाग्य था कि ऐसा नहीं हुआ, किन्तु यदि पुलिस चाहती तो ज़ब्त किए हुए साहित्य के प्रचार करने का अभियोग चला कर हमें दण्ड दिला सकती थी। वास्तव में कैसा अन्धेर है; आधी दुनिया जान ले कि 'चाँद' ज़ब्त हो गया, लेकिन उसके प्रवर्तकों को पता ही न दिया जाय! हमें यदि सामयिक सूचना मिल गई होती तो वृथा डाक-व्यय में हमारी आर्थिक हानि न होती और न ग्राहकों को असुविधा ही। जिन ग्राहकों की कॉपियाँ डाकख़ानों से ही उड़ा ली गई थीं, उनसे हमें वृथा लिखा-पढ़ी भी न करनी पड़ती। सैकड़ों ग्राहक लिख रहे थे. उन्हें फाँसी-अङ्क नहीं मिला। यहाँ से जाँच कर लिखा जाता कि अमुक तारीख़ को ठीक तौर से देख भाल कर रवाना किया जा चुका है, डाकख़ाने को शिकायत कीजिए। अस्तु—

फाँसी-अङ्क की १० हज़ार प्रतियों में से हमारे यहाँ वापसी आने वाली केवल ४० प्रतियाँ शेष बची थीं, जिसे सरकारी गज़ट पढ़ते ही हमने कलक्टर साहब के पास तुरन्त भेजकर अपने औचित्य का पालन किया और प्रान्तीय सरकार के चीफ़ सेक्रेटरी की सेवा में २२ दिसम्बर के अपने पत्र में अपनी नीयत (Intention) की सफ़ाई देते हुए हमने पूछा कि आख़िर फाँसी-अङ्क के किस अंश पर आपत्ति की गई है, ताकि उस प्रकार का साहित्य भविष्य में 'चाँद' में न छापा जाय। हमारे पत्र की नक़ल यह है :—

The Chief Secretary to
Government U. P.
Lucknow

December, 22nd. 1928.

Sir,

I was shocked at the perusal of Notification No. 3774/VIII-100 of December 10th appeared in the U. P. Gazette dated 15th. in which the Governor in Council has been pleased to forfeit copies of Special *Phansi Ank* of the Chand (November issue, edited by Prof. Chatur Sen Shastri of Delhi).

The magazine was brought into existence in the year 1922 and since then it has worthily served the society. The only object of the magazine being the betterment of society and uplift of Indian Women. The magazine is mostly subscribed by educated people of thought and is highly spoken of by the readers, public and Government officials alike. I take the liberty of presenting you a booklet entitled "Responsible Opinions." This will give an idea of what the magazine stands for.

The question of the elimination of the death-penalty has been agitating the minds of the Western Jurists for so long. They rightly claim that the punishment for a murder should not be a legalized killing. The society in its present stage of evolution does not favour the principle of eye for eye and tooth for tooth, on which the system of death-penalty is based. These are my confirmed

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

views that prompted me to bring out a Special Number on this most important topic of the day. In short, my object was purely humanitarian and not to spread disaffection against His Majety's Government, I am charged with.

Words fail me to express, how damaging I feel when I see that the forfeiture of my magazine is claimed under Section 124/A I never thought of and how anxious I am to vindicate my position in the eyes of the Government.

If you have time I would beg you to go through the issue and see for yourself how grave injustice is done to me by the local police. In the issue you will find that atrocities committed by any community—irrespective of color, caste or creed has been codemned on authentic grounds. The magazine begins with the pathetic account of the Christ. The history of French Revolution is amply traced. The trial of Charles not excepted. The killing of Jone of Arc is recalled. Atrocities of the Indian Mutiny of 1857 is vehemently condemned and assassination of President Lincoln is given full of pathos. In the end short account is given of some misguided Indians who were done to death by the Government for their revolutionary activities, which was only a collection from Newspapers and periodicals which were never objected to by the Government. This is the long and short of the whole issue. I have re-read the whole number, immediately after seeing the order and to me nothing appears to be so serious as to justify the action of the local Police. I shall thank you so much, if you be so good as to inform me what particular portion is taken exception to, so that the publication of such contributions may be particularly avoided in future.

In the end, I assure you once more that as a creed I am as loyal to the Crown as anybody could claim to be. At times, unfortunately so often in the present political atmosphere, that as a Journalist one has to comment against particular action of the Government but that does not mean that he, at a time cannot be loyal and true to his Journalistic profession. This is what I mean by representing my case to you and hope you will do me Justice.

I have the honour to be
Sir,
Your most obedient servant,
(Sd.) R. SAIGAL,

हमने इस पत्र की एक नक़ल प्रान्तीय गवरनर के प्राइवेट सेक्रेटरी की सेवा में भी भेज कर प्रार्थना की थी कि यह पेशगी भेजी हुई कॉपी गवरनर महोदय के सामने रख दी जाय, जिसका उत्तर हमें १ली जनवरी के पत्र में यह मिला कि विचार हो रहा है, और चीफ़ सेक्रेटरी आपको सरकारी निर्णय की सूचना देंगे। अस्तु—

हमने प्रान्तीय सरकार के चीफ़ सेक्रेटरी महोदय से ख़ास तौर से प्रार्थना की थी कि वे इस अङ्क को आदि से अन्त तक पढ़ लेने की अवश्य कृपा करें, क्योंकि कुछ भी हो, कुँवर जगदीशप्रसाद जी भारतीय थे, हिन्दी जानते ही होंगे—केवल यही समझ कर हमने यह अनुरोध करने की धृष्टता की थी, क्योंकि निम्न श्रेणी के पुलिस-कर्मचारियों की योग्यता में हमें सदा सन्देह रहा है। इसका कारण है। इन्हीं दिनों में ख़ुफ़िया पुलिस के कई दारोग़ाओं ने अपने चरण-रज से कार्यालय को पवित्र किया था। एक दारोग़ा साहब की योग्यता का नमूना भी दे देना अप्रासङ्गिक न होगा। वे कार्यालय के मैनेजर महोदय के टेबुल पर बैठे थे। मेज़ पर एक कॉपी "आदर्श चित्रावली" की पड़ी थी, उसमें अनेक कविताएँ भी थीं, आपने उन्हें बड़े ग़ौर से पढ़ा और बोले—"वास्तव में आपका 'चाँद' बहुत सुन्दर निकलता है, चित्र भी इतने अधिक निकलते हैं। आपको तो बड़ा ख़र्च करना पड़ता होगा! छपाई बहुत साफ़ होती है।" शायद बतलाना न होगा, दारोग़ा साहब ने इस चित्रावली को ही 'चाँद' समझ लिया था, उनका यह भ्रम दूर करने पर बेचारे बड़े लज्जित हुए। इस घटना से हमें केवल यह दिखाना है कि इसी प्रकार के बहुत से जाहिल आज हमारे भाग्य-विधाता बना दिए गए हैं। जो लोग 'चाँद' तथा 'चित्रावली' में भेद नहीं समझ सकते वे साहित्यिक

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लेखों को कितना समझ सकते होंगे, इसका सहज ही में अनुमान लगाया जा सकता है। एक दारोग़ा साहब ने, हमें विश्वस्त सूत्र से पता लगा है, अपनी रिपोर्ट में लिखा था "Its very name is objectionable" अर्थात् इस विशेषाङ्क का नाम (फाँसी-अङ्क) ही आपत्ति-जनक है। इन्हीं भाग्य-विधाताओं के डर से हमने चीफ़ सेक्रेटरी महोदय से इस अङ्क को आद्योपान्त पढ़ने की प्रार्थना की थी, पर उन्हें इतनी हमदर्दी क्यों होने लगी। मन्त्री महोदय का वही टकसाली उत्तर आया है, जिसकी नक़ल नीचे दी जा रही है :—

No. 29-Z.

From

KUNWAR JAGDISH PRASAD,
C. I. E., O. B. E., I. C. S.,
Chief Secretary to Government,
United Provinces.

To

R. SAIGAL SAHIB (?)
Printer and Publisher of the
"Chand" Magazine,
Allahabad.

Dated, Lucknow the January 10, 1929.

Sir,

Department Police. With reference to your letter, dated December 22, 1928, regarding the proscription of the Special *Phansi Ank* issue of the Chand magazine, I am directed to say that the grounds on which this issue of the magazine was proscribed are stated in notification No. 2774/VIII-100, dated December 10, 1828, and that Government have nothing further to add.

I have the honour to be,
Sir,
Your most obedient servant,
(Sd.) JAGDISH PRASAD,
Chief Secretary.

इधर हमसे प्रान्तीय सरकार से यह लिखा-पढ़ी हो ही रही थी; इस बीच में प्रयाग के एक दूसरे ख़ुफ़िया पुलिस के दारोग़ा साहब का पत्र हमें मिला, जिसमें उन्होंने अलीगढ़ ज़िले के 'चाँद' के ग्राहकों की सूची हमसे माँगी थी। पत्र में कहा गया था कि अलीगढ़ के डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट को इसकी ज़रूरत है। पत्र की नक़ल यह है :—

To

Mr. R. Saigal,
Chand Press,
28, Elgin Road,
Allahabad.

Dear Sir,

Will you please give me a list of your subscribers in Aligarh District. The District Magistrate of Aligarh wants it.

Yours Sincerely,
(Sd.) Surendra Nath
Mukerjea,
S. I., D. I. S.,

Allahabad
23-12-28.

हमारे क्षोभ की सीमा न रही। इस पत्र के उत्तर में हमने ग्राहकों के पते देने से साफ़ इन्कार कर दिया। हमने जो उत्तर दिया था, उसकी नक़ल भी नीचे दी जा रही है।

Dec. 24th.

Dear Sir,

I have your letter of yesterday's date. You know what addresses mean to a Newspaper; and as such—on business principles, I am sorry I do not see my way to comply with your request.

Yours truly,
(Sd.) R. Saigal.

Mr. S. N. Mukerjea,
S. I., D. I. S.
Allahabad.

पुलिस के साधारण कर्मचारियों के इस छिछोरेपन को उत्साहित करना हमने उचित नहीं समझा। इन पंक्तियों के लेखक ने २४ दिसम्बर को ख़ुफ़िया पुलिस के डिप्टी डाइरेक्टर जनरल (Deputy Director General of the Criminal Investigation Deptt.) से भेंट की। आप बहुत शराफ़त से पेश आए और इन अनुचित कार्यवाहियों के विरुद्ध आपने बड़ा रोष प्रकट किया। उन्होंने कहा कि पुलिस का कोई भी कर्मचारी आप से पते माँगने की जुर्रत नहीं कर सकता। मैं इस बात की

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पूरी-पूरी जाँच ही नहीं करूँगा, बल्कि जो कुछ भी कर सकता हूँ, करूँगा।

उनसे फाँसी-अङ्क के ज़ब्त होने के सम्बन्ध में और भी अनेक बातें हुईं, जिनका यहाँ प्रकाशन करना साधारण-शिष्टाचार के विरुद्ध समझ कर हम उन्हें नहीं देना चाहते। उन्होंने शहर-कोतवाल से पूछ-ताछ की और इस सम्बन्ध का फ़ाइल मँगाने की आज्ञा भी दी। कोतवाल साहब तथा अन्य पुलिस-कर्मचारियों से उनकी क्या बातचीत हुई, इसका तो हमें पता नहीं, किन्तु दूसरे रोज़ शहर के कोतवाल साहब हमारे यहाँ माफ़ी माँगने के लिए तशरीफ़ लाए और इन सारी कार्यवाहियों पर उन्होंने बहुत खेद प्रकट किया। उनका कहना था कि "मुझे आज तक इन दारोग़ाओं की इन अनुचित हरकतों का ज़रा भी पता नहीं था और न मैंने कभी 'चाँद' ही मँगाया था। मुझे आज तक इस बात का इल्म ही नहीं है कि 'चाँद' की शिकायत किसने की और वह ज़ब्त कैसे हो गया!" हमें इस बात का भी विश्वास दिलाया गया कि "भविष्य में इस प्रकार की मूर्खताएँ कदापि न होने पाएँगी और पुलिस के जिन कर्मचारियों ने इस प्रकार वृथा आपको कष्ट दिया है, उनकी भरपूर तम्बीह की जायगी।" किन्तु अब एक नया गुल खिला है, पिछले १५ दिनों से हमारी सारी डाक—बाहर से आने वाली तथा यहाँ से जाने वाली—दोनों ही सेन्सर (Censor) हो रही हैं —(खोल कर देखी जाती हैं)। कोतवाल साहब से, जो डिप्टी सुपरिन्टेन्डेण्ट पुलिस भी हैं और जिनके अधीन शहर तथा सिविल लाईन दोनों हल्क़े हैं, पूछा गया। आप फ़रमाते हैं कि उन्हें इस बात का ज़रा भी इल्म नहीं है, शायद ख़ुफ़िया पुलिस के विशेष विभाग (Special Branch of the C.I.D.) की ओर से ऐसा होता हो। इस अन्धेर का भी कोई ठिकाना है! 'बड़े सो बड़े, छोटे मियाँ सुभान अल्लाह' वाली कहावत अक्षरशः चरितार्थ हो रही है। बड़े हाकिमों को पता भी नहीं और साधारण कर्मचारी अपनी मनमानी कार्यवाही कर ब्रिटिश शासन-पद्धति को इस प्रकार कलङ्कित कर रहे हैं!

हमने प्रान्तीय सरकार के चीफ़ सेक्रेटरी महोदय की सेवा में जो सफ़ाई पेश की है और जिसकी नक़ल ऊपर दी जा चुकी है, उससे अधिक हमें कुछ भी नहीं कहना है। यदि सरकारी कोष में अन्याय के विरोध का ही दूसरा नाम अराजकता अथवा सरकार के विरुद्ध घृणोत्पादक भावों का प्रसार समझा जाता है, तो हम हृदय की समस्त शक्ति से किसी भी प्रकार के दण्ड का स्वागत करते हैं और परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वह सर्वशक्तिमान हममें इतना साहस दे कि हम दृढ़तापूर्वक सदैव अन्याय का विरोध करते रहें। रही, पुलिस की हम पर विशेष कृपा-दृष्टि की बात, सो उसकी भी हमें चिन्ता नहीं है। जब भारतीय सरकार के भूतपूर्व क़ानूनी सदस्य (Law member) डॉक्टर सर तेज़बहादुर सप्रू जैसे राज-भक्त व्यक्ति का नाम पुलिस की डायरी में अङ्कित हो सकता है; जबकि इसी प्रान्त के भूतपूर्व गवर्नर सर हारकोर्ट बटलर के अभिन्न मित्र महाराजा महमूदाबाद और भूतपूर्व अस्थायी गवर्नर—छत्तारी के नवाब साहब जैसे राज-भक्तों पर पुलिस की कृपा-दृष्टि रह सकती है तो हमारी हस्ती ही क्या है? इन प्रतिष्ठित व्यक्तियों की श्रेणी में अपना नाम देख कर हमें भी क्षणिक गर्व का होना स्वाभाविक ही है और इसे हम अपना सौभाग्य समझते हैं।

* * *

अखिल भारतीय सामाजिक परिषद्

पिछले ४० वर्षों से राष्ट्रीय कॉङ्ग्रेस-सप्ताह में ही अखिल भारतवर्षीय सामाजिक कॉन्फ्रेन्स का अधिवेशन होता आया है। इस बार भी ४१वीं बैठक कलकत्ते में बड़े समारोह से सम्पन्न हुई। सदा की भाँति सभी सामाजिक प्रश्नों पर विचार और प्रस्ताव पास किए गए। इस बार यह अधिवेशन बड़ी व्यवस्थापिका सभा के प्रभावशाली सदस्य श्री० मुकुन्दराव जयकर के सभापतित्व में हुआ था। सामाजिक सुधार के मामले में आपने अङ्गरेज़ी सरकार की उदासीनता पर बड़ा खेद और रोष प्रकट किया। आपने ठीक ही कहा कि एक तो भारतीय सरकार समाज-सुधार सम्बन्धी क़ानूनों के पास कराने में देश को किसी प्रकार की सहायता नहीं देती; उल्टे कभी-कभी अनुचित अड़चनें उपस्थित कर देती है, जिससे देशवासियों का किया-कराया सारा प्रयत्न निष्फल हो जाता है। सरकार प्रायः रूढ़ियों के उपासकों की

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पीठ ठोक कर उन्हें और भी उद्दण्ड कर देती है, यही कारण है कि हमारे देश में समाज-सुधार का कार्य इतनी मन्द गति से हो रहा है। किन्तु जयकर महोदय की यह शिकायत नई नहीं है। गत वर्ष के सभापति श्री० के० नटरञ्जन (सम्पादक इण्डियन सोशल रिफ़ॉर्मर) का भी ठीक यही कहना था। भिन्नता यह थी कि श्री० नटरञ्जन की राय में बिना स्वराज्य प्राप्त हुए सामाजिक सुधार हो ही नहीं सकता। आपकी इस धारणा से हमारा घोर मतभेद है। हमारा तो निश्चित-विश्वास है कि आज हम इतने निर्बल, अकर्मण्य, अपरिवर्तनशील तथा स्थितिपालक हैं कि यदि स्वराज्य मिल भी जाय, जिसकी बहुत कम सम्भावना है, तब भी हम उसका उपभोग नहीं कर सकते, उसे अधिक दिनों तक अपनी वर्तमान रूढ़ियों के अन्तराल में सुरक्षित नहीं रख सकते! रही सरकार की बात, सो उससे—एक हृदयहीन विदेशी सरकार से—किसी प्रकार के सुधार की आशा करना पत्थर से पानी निकालने के समान दुराशा मात्र है। शासित प्रजा जितनी ही कमज़ोर होगी उतना ही शासन सुदृढ़ रहेगा। प्रजा का शक्तिशाली और शासक का निर्बल होना—राजनैतिक कोष में एक ही अर्थ रखता है। अस्तु—

जयकर महोदय ने, इस बार अपने भाषण में एक बात अवश्य मार्के की कही है, वह यह कि स्त्रियों के उत्तराधिकार, पति के चुनाव तथा तलाक़ आदि विषयों में क़ानून द्वारा उन्हें वही अधिकार मिलने चाहिएँ जो अन्यान्य देशों की स्त्रियों को मिले हैं। यह बात सुनकर पुरानी टकसाल के लोग अवश्य नाक-भौं सिकोड़ेंगे, पर समय का प्रवाह बड़े वेग से गतिशील है और स्त्रियों की जाग्रति की गति यदि इसी प्रकार जारी रही तो क़ानून-निर्माताओं को इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना ही होगा।

सामाजिक सुधारों के अर्थ की विवेचना करते हुए आपने इसकी जो व्याख्या की, वह अवश्य आपके सारे व्याख्यान का एक महत्वपूर्ण पहलू है। आपने कहा कि सामाजिक सुधारों का अर्थ केवल कुरीतियों को दूर करना ही न समझना चाहिए, बल्कि इसे समाज में सुख, स्वास्थ्य एवं आनन्द की वृद्धि का एक सामूहिक आन्दोलन समझना चाहिए। आपके शब्द थे :—

". . . Every form of Social activity calculated to promote the health, comfort and happiness of Society . . . "सुधारों को सङ्कीर्णता की दृष्टि से न देख कर, उनका क्षेत्र जयकर महोदय ने विशेष विस्तृत कर दिया है, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं।

सभापति महोदय के महत्वपूर्ण भाषण के अतिरिक्त अनेक सुधारकों के बड़े सारगर्भित व्याख्यान हुए। इस परिमित स्थान पर उन सभों का उल्लेख करना हमारे लिए सम्भव नहीं है। समय-समय पर हम इन व्याख्यानों तथा प्रस्तावों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे। इस स्थान पर हम केवल ख़ास-ख़ास बातों की ही चर्चा करना चाहते हैं। अस्तु—

इस बार की सामाजिक परिषद् में आचार्य सर पी० सी० राय ने इस आशय का एक प्रस्ताव पेश किया कि जातिभेद की जड़ मिटाने के लिए सहभोज तथा भिन्न-भिन्न जातियों में असवर्ण विवाह की प्रथा को प्रोत्साहित किया जाय और छुआछूत सम्बन्धी प्रत्येक ढकोसले को समाज से निकाल दिया जाय, इसी में देश का कल्याण है। सुप्रसिद्ध समाज-सेविका श्रीमती कमला-देवी चट्टोपाध्याय ने इन प्रस्तावों का बड़े ज़ोरों से समर्थन करते हुए कहा कि सहभोजिता और अन्तर्जातीय विवाहों द्वारा हमारे राष्ट्रीय सङ्गठन में बहुत बड़ी शक्ति आ जायगी। यह बिलकुल सत्य है और इसमें मतभेद नहीं हो सकता, किन्तु क्या साल में एक बार केवल प्रस्ताव पास कर देने से ही यह जटिल प्रश्न हल हो जायगा? इसके लिए तो शिक्षा, प्रचार तथा एक सङ्गठित आन्दोलन की आवश्यकता है। पहले एक जाति में तो भेद-भाव मिट ले, एक जाति से उपजातियों का ढकोसला तो दूर हो ले, फिर कहीं ऐसे क्रान्तिकारी सुधार सम्भव हैं!

एक अङ्गरेज़ पादरी हर्बट एण्डरसन (Rev. Herbert Anderson) महोदय ने एक बड़ा महत्वपूर्ण प्रस्ताव मादक पदार्थों के विरुद्ध पेश किया और मादक द्रव्यों की हानियाँ बतलाते हुए आपने इस बात पर बड़ा ज़ोर दिया कि अमेरिका की भाँति भारत-सरकार को भी शराब तथा अन्यान्य मादक पदार्थों के प्रचार को रोकने का शीघ्र प्रयत्न करना चाहिए। आपने शराब सम्बन्धी हानियाँ बतलाते हुए कहा कि शराब निकृष्ट श्रेणी का अहार द्वितीय श्रेणी की औषध और प्रथम श्रेणी का विष है

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"It is a third rate food, second rate drug, and a first rate poison. . . ."

लेकिन पादरी महोदय शायद यह बात भूल गए कि अमेरिकन और ब्रिटिश राज्य में अन्तर कितना है? वहाँ का राज्य प्रजातन्त्र है और भारत एक ग़ुलाम देश है। यहाँ की सरकार, जिसकी आमदनी का १३वाँ हिस्सा मादक वस्तुओं के प्रचार से है, कैसे प्रजा की बेहतरी के लिए इतनी भारी आमदनी का परित्याग कर देगी? ख़ास कर ऐसी स्थिति में, जब वर्तमान सरकार इस जाति की नहीं, इस देश की नहीं—सात समुद्र लाँघ कर व्यापार की नीति को सामने रख कर शासन करने आई हो!

* * *

कलकत्ते की अखिल भारतीय महिला कॉन्फ्रेन्स

दिसम्बर का अन्तिम तथा जनवरी का प्रथम सप्ताह केवल कॉन्फ्रेन्सों का ही सप्ताह था। इन्हीं दिनों महिलाओं की दो महत्वपूर्ण अखिल भारतीय कॉन्फ्रेन्सें हुईं। एक तो थी समाज-सुधार सम्बन्धी, जो कलकत्ते में कॉङ्ग्रेस के साथ हुई और जिसकी सभापति थीं ट्रावनकोर की जूनियर महारानी पार्वती बाई। भारतीय रियासतों में स्त्रियों के सुधार तथा उन्नति की दृष्टि से कोचीन और ट्रावनकोर की रियासतें बहुत आगे बढ़ी हुई हैं। अतएव यह सर्वथा उचित ही था कि वहाँ की महारानी इस सभा की नेत्री बनाई जातीं। स्वागत-कारिणी समिति की सभापति थीं मयूरगञ्ज की महारानी साहिबा। देश भर की १००० से अधिक सुशिक्षित महिलाओं ने इसमें भाग लिया; यों तो सब मिला कर कई हज़ार स्त्रियाँ इसमें सम्मिलित थीं और हर्ष का विषय है कि आज तक किसी अन्य महिला-सभा में स्त्रियों की संख्या इतनी अधिक नहीं थी, जितनी इस बार!

मयूरभञ्ज की महारानी साहिबा ने स्वागत करते हुए सबका ध्यान भारतवर्ष के प्राचीन स्त्री-जीवन के आदर्श की ओर आकर्षित किया और कहा कि महिला-सङ्गठन के लिए देश भर में बहुत सी निस्स्वार्थ बहिनों की आवश्यकता है जो तन-मन-धन से स्त्री-समाज के उद्धार के लिए कटिबद्ध हो जायँ।

सभानेत्री ने अपने भाषण में सामाजिक कुरीतियों का विवरण देते हुए कहा कि हिन्दू-धर्म में स्त्रियों का अधिकार बहुत सङ्कुचित हो गया है, विशेष कर उत्तराधिकार सम्बन्धी स्वत्व तो उनसे छीन ही लिए गए हैं। बेचारी कितनी बहिनें, जो सहस्रों की जायदाद की अधिकारिणी हो सकती हैं, आज दाने-दाने को तरस रही हैं। हमसे अधिक उदारता तो मुसलमानों ने अपनी स्त्रियों के प्रति दिखलाई है और यद्यपि इस्लाम में आजकल पर्दे की बड़ी धाक है, इसके लिए न तो क़ुरान ही आज्ञा देता है और न हज़रत मुहम्मद का ही यह उद्देश्य था। यही बात बहु-विवाह के लिए भी ठीक है, जिसकी संख्या मुहम्मद साहब ने चार तक परिमित रक्खी है, इसका कारण आपने यह बतलाया कि शायद मुहम्मद साहब के पहले एक पुरुष बहुत सी स्त्रियों के साथ विवाह कर सकता था। उसे घटा कर उन्होंने अधिक से अधिक चार तक की सीमा बाँध दी।

वैदिक समय की स्त्रियों की दशा का वर्णन करते हुए आपने बतलाया कि उस समय तो वे पुरुषों के साथ-साथ बराबर सभी कार्यों में भाग लेती थीं—मन्त्रों के लिखने, यज्ञों में उन्हें पढ़ने और पुस्तकों की रचना करने में भी उनका बहुत हाथ रहता था। ऐसी ही स्त्रियों के होते हुए तो अङ्गरेज़ी विद्वान् ने कहा था कि "Paradise lies round the feet of mothers" अर्थात् सच्चा स्वर्ग माताओं के चरणों में विराजता है। परन्तु इसके प्रतिकूल पर्दे के कारण आजकल तो उनकी मानसिक, शारीरिक एवं सामाजिक दशा बहुत ही गिरी हुई है। इसकी अड़चन न तो उन्हें ठीक तौर से अपनी पारिवारिक स्थिति सँभालने देती है और न समय पड़ने पर खेती-बारी अथवा अपनी जायदाद का सञ्चालन ही पर्दानशीन औरतें सुचारु रूप से कर सकती हैं। इन अधिकारों के लिए स्त्रियों को समाज से लड़ना पड़ेगा, जैसे यूरोप में उन्हें अपने स्वत्वों के लिए सैकड़ों वर्ष सङ्घर्ष करना पड़ा है। रही पुरुषों की बात, उसके विषय में आपने ठीक ही कहा कि सभाओं में प्रस्ताव पास करते समय तो वे गला फाड़-फाड़ कर कमाल का जोश प्रगट करते हैं, पर जहाँ वास्तविक कार्य करने का समय आता है, ये सिट-

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पिटा जाते हैं। विश्वासों को कार्य में परिणत करने की शक्ति ही तो अपने समाज में नहीं है, जिसके कारण हम लोग अभी इतने पीछे पड़े हुए हैं। पर इसमें केवल पुरुषों का ही दोष नहीं, स्त्रियों का भी उतना ही उत्तरदायित्व है। उन्हें जनता की सम्मति को—बहुमत को—अपने पक्ष में करना है और यह सिद्ध कर दिखाना है कि प्रत्येक क्षेत्र में हम लोग वैसा ही कार्य कर सकती हैं, जैसा हमारी पाश्चात्य बहिनें यूरोप तथा अमेरिका में करती हैं।

पर्दा, विधवा-विवाह, बाल-विवाह आदि प्रश्नों पर कई आवश्यक प्रस्ताव पास हुए, पर सबसे अनोखी बात यह थी कि पर्दा वाले प्रस्ताव के समय बहुत सी पर्दानशीन स्त्रियाँ भी थीं, जिनके कारण प्रेस के प्रतिनिधियों को स्वयं पर्दे में ही बैठना पड़ा था! यह देख कर तो अचानक वही कहावत स्मरण हो आती थी कि घर में दीया जला के फिर मस्जिद में जलाया जाता है। जिस कॉन्फ्रेन्स में पर्दे के हटाने का प्रस्ताव पास हो, उसमें ही यदि इस तरह पर्दा किया जायगा तो परमात्मा ही जानता है कि कब तक पर्दे का पर्दा फाड़ा जा सकेगा।

* * *

अखिल भारतीय महिला-शिक्षा-कॉन्फ्रेन्स

शिक्षा-सम्बन्धी दूसरी कॉन्फ्रेन्स जो पटने में हुई उसकी अध्यक्षा थीं श्रीमती ललितकुमारी जी, महारानी मयडी। आपका भाषण बड़ा सारगर्भित तथा विद्वत्तापूर्ण था। पहले तो आपने पाश्चात्य देशों से तुलना करते हुए भारतीय स्त्रियों की भीषण निरक्षरता दिखलाई और कहा कि गत दस वर्षों में सैकड़ा पीछे ३ से भी कम स्त्रियों की संख्या पढ़ने-लिखने में बढ़ सकी है। इस हिसाब से तो देश भर की स्त्रियों को केवल पढ़ना-लिखना जानने के लिए सैकड़ों वर्ष लग जायँगे। अतएव इसके लिए जैसा कि कृषि-सुधार वाले रॉयल-कमीशन की सम्मति है, हमें अनिवार्य-शिक्षा (Compulsory Education) की शरण लेनी होगी। इतना ही नहीं, स्त्री-पुरुषों में समानता और उनके अधिकारों में भी हर प्रकार की समता की आवश्यकता इसके लिए परमावश्यक है। इसके अतिरिक्त प्रचलित शिक्षा-पद्धति में भी अनेक परिवर्त्तनों की आवश्यकता है, क्योंकि बालकों तथा बालिकाओं के लिए दो भिन्न-भिन्न प्रणालियों का आश्रय लेना पड़ेगा।

इस सम्बन्ध में आपने बड़े-बड़े पाश्चात्य लेखकों की पुस्तकों के उद्धरण देकर यह सिद्ध किया कि स्त्रियों में अब उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा स्वयं जाग्रत हो उठी है, जिसकी तृप्ति करना समाज तथा सरकार का परम कर्त्तव्य है। अधिकारों की समानता के लिए आपने बौद्धकालीन अनेक उदाहरण दिए, जिनमें स्त्री-पुरुष, भिक्षु-भिक्षुकाओं को एक ही स्वत्व प्राप्त थे, क्योंकि भारतवर्ष के लिए यह कोई नई बात नहीं थी। इसके उपरान्त आपने समाज-सुधार सम्बन्धी और बहुत सी साधारण बातें बतलाईं, जो ऐसे अवसरों पर प्रायः कही जाती हैं और जिनका उल्लेख हम 'चाँद' में कई बार कर चुके हैं।

तदनन्तर अनेक प्रस्ताव पास हुए, जिनमें से दो-तीन मुख्य थे। एक तो था प्रोफ़ेसर करवे के पूना वाले सेवा-सदन की तरह की और ऐसी ही संस्थाओं की स्थापना के विषय में। सचमुच प्रोफ़ेसर करवे की यह अनुपम संस्था स्त्री-समाज की उपयोगिता के लिए बहुत-कुछ कर रही है और इस प्रकार के जितने ही और आश्रम खोले जायँ उतना ही देश का कल्याण होगा। इस सम्बन्ध में पाठकों को यह जानकर हर्ष होगा कि हम यहाँ (प्रयाग में) भी इस तरह का एक संरक्षण-गृह (Rescue Home) स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। यदि लक्ष्मी के सुपुत्रों ने इसके लिए सहायता की तो शीघ्र ही हमारे प्रयत्न सफल होंगे। दूसरा प्रस्ताव इस विषय का था कि भविष्य में यह कॉन्फ्रेन्स अपना अधिकांश ध्यान महिला-संसार के सामाजिक सुधार तथा शिक्षा की ओर दे। इस सम्बन्ध में हमें केवल इतना ही कहना है कि इस समय, जब कि सुधारों के लिए लोग इतने उत्सुक हैं और स्त्रियाँ भी उच्च शिक्षा के लिए लालायित हो रही हैं, हमारे कर्णधारों को इस बात की बड़ी सावधानी रखनी चाहिए कि हमारी शिक्षा-प्रणाली एवं सुधार-पद्धति जातीय प्रथा की हो, केवल यूरोप की नक़ल मात्र न हो।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कॉन्फ्रेन्स में यों तो बिहार से बाहर की २०० से अधिक महिला-प्रतिनिधि उपस्थित थीं, पर बिहार के कुछ लोगों ने इसके विरुद्ध काफ़ी स्थानीय आन्दोलन किया था और यदि श्रीमती पी० के० सेन तथा श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय ने इतना परिश्रम न स्वीकार किया होता तो इसकी इस अधिवेशन का पटने में होना असम्भव ही था। ये दोनों देवियाँ इन दिनों महिला-संसार में बड़ी जाग्रति फैला रही हैं, जिसके लिए सारा देश इनका ऋणी रहेगा।

हमें पूर्ण आशा है कि आगामी वर्ष ये दोनों कॉन्फ्रेन्सें और अधिक उत्साह प्रदर्शित करेंगी और इस वर्ष के पास हुए प्रस्तावों के अनुसार तब तक बहुत-कुछ वास्तविक कार्य भी हुआ रहेगा, जिससे अगली बैठक में कोरे प्रस्ताव ही पास न हों, बल्कि राष्ट्र तथा समाज को हम और भी उन्नत अवस्था में देख सकें। शायद हमें बतलाना न होगा कि आज समस्त राष्ट्रों की दृष्टि भारतीय महिला-मण्डल की ओर आकर्षित हो रही है। महिला-मण्डल के उत्साह को देख कर ही वे देश की वास्तविक जाग्रति का अनुमान लगा सकते हैं। हमें यह देखकर वास्तव में बड़ी प्रसन्नता हुई है कि पटना शिक्षा-सुधार कॉन्फ्रेन्स में शिक्षित महिलाओं ने बड़े उत्साह से भाग लेकर देश के महिला-समाज के समक्ष एक आदर्श उपस्थित किया है और अब नारी-समाज का कर्तव्य हो गया है कि वह स्वयं हाथ-पैर हिला कर अपने अस्तित्व का परिचय दे तथा देश के फूलने-फलने में सहायक हो!

* * *

शैतान की विजय

अन्तिम पंक्तियाँ छपते-छपते हमें यह जान कर वास्तव में बड़ा क्लेश हुआ कि अफ़ग़ानिस्तान के मुल्लाओं ने वहाँ के लोकप्रिय शासक अमानुल्ला ख़ाँ के विरुद्ध केवल इसलिए बग़ावत का झण्डा बुलन्द कर दिया है कि अमीर साहब अफ़ग़ानिस्तान-जैसे जङ्गली प्रदेश को एक उन्नतशाली राष्ट्र बनाने का प्रयत्न कर रहे थे और रूढ़ियों तथा अन्ध-विश्वास के विरुद्ध उन्होंने अनेक सामाजिक तथा राजनैतिक सुधारों की योजना प्रजा के सामने रक्खी थी। आश्चर्य तो यह है कि षड्यन्त्रकारियों को अपने निन्दनीय प्रयत्नों में अभूतपूर्व सफलता मिली है, जिसके फल-स्वरूप सम्राट् अमानुल्ला ख़ाँ को बाध्य होकर शासन का परित्याग करना पड़ा और समस्त अफ़ग़ानिस्तान में आज शिव का नहीं, शैतान का क्षणिक राज्य क़ायम हो गया है!!

मदान्ध तथा षड्यन्त्रकारी प्रजा चाहती थी कि सम्राट् महोदय सारे सुधार वापस ले लें तथा सम्राज्ञी सौरिया का परित्याग इसलिए कर दें—उन्हें तलाक़ दे दें—क्योंकि उन्होंने परदा की अमानुषिक कुप्रथा का परित्याग कर दिया है और वे स्त्रियों में परदा-प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन भी कर रही हैं! प्रजा-वत्सल अफ़ग़ानिस्तान के सम्राट् महोदय ने व्यर्थ का रक्तपात न कर, सुधारों को रद्द तो कर दिया, किन्तु अपनी सहधर्मिणी का परित्याग उनके लिए असह्य था—वे भारतीय मुसलमान नहीं थे!! उन्होंने राज्य का परित्याग करना ही उचित समझा। जबकि सम्राट् महोदय ने राज्य का परित्याग ही उचित समझा तो उनके सुधार को वापस लेने की नीति की हम प्रशंसा नहीं कर सकते, यदि विरोध (Protest) स्वरूप सम्राट् महोदय अपने शासन का परित्याग किए होते तो आज उनके व्यक्तित्व के प्रति हमारी श्रद्धा कहीं अधिक बढ़ गई होती।

केवल सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध ऐसा शक्तिशाली आन्दोलन देख कर बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों का मस्तिष्क आज चक्कर खा रहा है। उन्हें विश्वास नहीं होता कि मुट्ठी भर मुल्ला सम्राट् अमीर अमानुल्ला ख़ाँ के सुदृढ़ शासन को एक बार ही उलट देने में कैसे समर्थ हुए? हमारा तो विश्वास है कि यह किसी प्रगाढ़ राजनैतिक षड्यन्त्र का फल है। कारण स्पष्ट है, यदि केवल अमानुल्ला ख़ाँ के प्रस्तावित सुधारों के विरुद्ध बग़ावत की आवाज़ उठाई जाती तो उनके शासन परित्याग करते ही सारा वायु-मण्डल शान्त हो गया होता, पर ऐसा नहीं हुआ। अमानुल्ला ख़ाँ के हटते ही उनके भाई इनायतुल्ला ख़ाँ ने राज्य पर अपना प्रभुत्व क़ायम करना चाहा—वस्तुतः ८४ घण्टों तक उन्होंने अफ़ग़ानिस्तान की बादशाहत का लुत्फ़ भी उठाया, पर तुरन्त बच्चा साक़ा नाम के एक व्यक्ति ने—जिसे कुछ लोग डाकू कहते हैं और कुछ कहते हैं पानी ढोने वाला भिश्ती—उन्हें भी राज्य से खदेर भगाया और इस समय शासन की बागडोर इसी के हाथ में है!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अमानुल्ला ख़ाँ संसार के इतिहास में अद्वितीय प्रतिभाशाली, लोकप्रिय तथा प्रजावत्सल शासक माने जा चुके हैं। एक ऐसे आदर्श सम्राट् का यह नाटकीय पतन देख कर, हमारी तो बुद्धि काम नहीं कर रही है। अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए, संसार की दृष्टि में अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए तथा अन्य सांसारिक प्रलोभनों के शिकार होकर, अथवा अपने अधिकारों तथा स्वत्वों की रक्षा के निमित्त राज्यसिंहासन से हाथ धोने की—अपने प्राण तक देने की घटनाएँ तो हमने इतिहासों में अनेक पढ़ी हैं, किन्तु अपनी प्रजा की उन्नति की सद्भावना से प्रेरित होकर, उसे सुदृढ़, चरित्रवान् एवं बलिष्ट करने के उद्योग में अपने राज्य-सिंहासन को ठुकरा देने वाले, अमानुल्ला ख़ाँ पहले शासक हैं—सारे ब्रह्माण्ड का इतिहास हमारी इस धारणा का पोषक है।

अमानुल्ला ख़ाँ का यह पतन स्थायी होगा—उनकी प्रजा उनके मनोभावों की क़द्र न करेगी, हम इसे मानने के लिए तैयार नहीं हैं। हमें ख़ूब स्मरण है, टर्की में भी मुल्लावाद का एक ऐसा ही समय आया था और जिस समय अपने सुधारात्मक विचारों के लिए टर्की की जाहिल प्रजा मुस्तफ़ा कमाल पाशा के जान की दुश्मन हो गई थी और उन्हें अपनी जान बचाने के लिए टर्की से भागना पड़ा था, उस समय उनके साथ केवल २१ नवयुवक थे—समस्त टर्की में केवल २१ आत्माएँ उनके उदार विचारों की पोषक थीं, पर आज वे ही मुस्तफ़ा कमाल पाशा टर्की के प्राण हो रहे हैं—आज बिना उनकी आज्ञा के समस्त राज्य में एक पत्ता तक नहीं हिल सकता। महात्मा लेनिन को एक दिन इसी अपराध के कारण—देश तथा समाज में प्रचलित अन्यायों के विरुद्ध आवाज़ उठाने के कारण—शराब के पीपे में छिप कर भागना पड़ा था और आज? आज उनका नाम केवल रूस ही नहीं, समस्त पराधीन देशों के लिए अक्षय-कवच का काम कर रहा है। स्वामी दयानन्द इसी सुधारात्मक प्रवृत्ति के लिए ईंट और पत्थरों से मारे जाते थे और अन्त में उनकी जान भी इसी अपराध के कारण ली गई, पर फल क्या हुआ? आज आधा संसार उनकी स्मृति का उपासक है। महात्मा ईसा ने इन्हीं ईश्वर-प्रदत्त विभूतियों के लिए अपना बलिदान कर दिया; किन्तु फल क्या हुआ? आज सारा ईसाई-समाज अपने किए हुए अन्यायों के लिए घुटने टेक-टेक कर उनकी आत्मा से क्षमा-भिक्षा माँग रहा है! इन सारी स्वर्गीय आत्माओं की सहानुभूति आज अमानुल्ला ख़ाँ के साथ है!!

उन्मत्त मुल्लाओं को, धन-लोलुप साम्राज्यवादियों को तथा स्वार्थ के पुतले सैनिकों को अपनी समस्त शक्ति लगा कर अमानुल्ला ख़ाँ के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने दीजिए, किन्तु हमने जिन कतिपय महात्माओं का नाम ऊपर लिया है, उनकी आत्माएँ अमानुल्ला ख़ाँ की रक्षा करेंगी—शैतान की पराजय और सत्य की विजय होगी। हमारे कानों में कोई कह रहा है कि शीघ्र ही सम्राट अमानुल्ला ख़ाँ तथा सम्राज्ञी सौरिया के सद्भावों की विजय होगी और हमारा यही पड़ोसी अफ़ग़ानिस्तान एशियाई देशों की पराधीनता अपहरण करने में सहायक होगी। परमात्मा हमारी इस भविष्य-वाणी को सफल करें।

* * *

कॉङ्ग्रेस और समाज-सुधार

पिछले ४२ वर्षों से राष्ट्रीय कॉङ्ग्रेस का अधिवेशन देश के कोने-कोने में होता फिर रहा है, और आज तक इस महासभा का उद्देश्य केवल स्वराज्य-प्राप्ति ही रहा है, किन्तु इस बार—कॉङ्ग्रेस की ४३ वीं बैठक में राजनीतिज्ञों का ध्यान पूरी तरह से अपनी लज्जापूर्ण विफलता की ओर आकर्षित हुआ है। इस अधिवेशन में, पहली बार उन्होंने स्वीकार किया है कि बिना पूर्ण सामाजिक सुधार हुए, बिना नागरिकों के सुदृढ़ एवं बलवान् किए लम्बे-लम्बे डग मारना व्यर्थ है। एक हास्यास्पद बात यह है कि इस वर्ष के अन्त तक सरकार से औपनिवेशिक स्वराज्य (Dominion Status) देने की प्रार्थना की गई है। साथ ही यह धमकी दी गई है कि यदि ऐसा नहीं हुआ तो भारतवासी आगामी वर्ष के शुरू में ही अपना ध्येय पूर्ण स्वराज्य (Complete Independece) बना लेंगे। दूसरे शब्द में यों कहिए कि यदि इस वर्ष औपनिवेशिक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हुई तो आगामी वर्ष कॉङ्ग्रेस के सभी नेता पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा कर देंगे। यदि घोषणा कर देने मात्र से ही स्वराज्य की प्राप्ति सम्भव थी, तो यही लम्बी-लम्बी दाढ़ी-मूँछ वाले नेता अब तक

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कहाँ थे? उन्होंने अब तक स्वराज्य की दुन्दुभी क्यों नहीं बजा दी?

पहली बार इस वर्षीय कॉङ्ग्रेस में रचनात्मक कार्य करने का निश्चय किया गया है। इस बार के प्रस्तावों में विशेष रूप से सामाजिक सुधार सम्बन्धी ठोस कार्यों पर ज़ोर दिया गया है। उन सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध आन्दोलन करने का आदेश किया गया है, जो समाज की स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रीय जाग्रति की अवरोधक हैं। इनमें भी पर्दे की कुप्रथा और महिलाओं की अधोगति सम्बन्धी कारणों के उन्मूलन करने के लिए विशेष ज़ोर दिया गया है। अछूतों की शिक्षा तथा सुधार और मादक पदार्थों का निषेध, तथा ग्राम-सङ्गठन आदि भी इस वर्ष के कार्य-क्रम के विशेष अङ्ग उद्घोषित किए गए हैं। सभापति पं० मोतीलाल जी नेहरू ने अपने भाषण में कहा है —

". . . I say that the only chance there is of Dominion Status being ever offered to them lies in the complete fulfilment of this very programme"

इस प्रोग्राम की महत्ता के सम्बन्ध में इससे अधिक और क्या कहा जा सकता था। प्रस्तावित स्वतन्त्रता की सारी नींव ही नेहरू महोदय ने अपने इसी कार्य-क्रम पर रख दी है। स्त्रियों के सुधार के सम्बन्ध में अपने इस बार के भाषण में नेहरू महोदय ने बहुत-कुछ कहा है। आपने कहा—

". . . If woman is the better-half of man, let us men assist them to do the better part of the work of National uplift."

अर्थात्—यदि स्त्री पुरुष की वास्तव में अर्द्धाङ्गिनी है, तो हम पुरुषों को उचित है कि हम राष्ट्रोन्नति के कार्य में उनके सहायक हों।

सारांश यह कि इस बार सामाजिक सुधार के जटिल प्रश्न को राष्ट्रीय कॉङ्ग्रेस ने, सौत के बच्चे की तरह अलग न फेंक कर, अपने कार्य-क्रम का एक विशेष अङ्ग बना लिया है। इस वर्ष इन कार्यवाहियों से सुधारकों का मार्ग कुछ सरल अवश्य हो जायगा, किन्तु कौन जानता है, राष्ट्रीय रङ्गमञ्च से गले फाड़ कर कोरे व्याख्यान देने वाले हमारे नेता वर्ष भर के लिए छुट्टी न पा जायँगे, क्योंकि उनमें से अधिकांश का तो यह विश्वास है कि स्वराज्य होते ही सारे सुधार आप से आप हो जायँगे; और इस वर्ष स्वराज्य मिलने में सन्देह की गुञ्जाइश ही नहीं है! बहुत करके तो ब्रिटिश सरकार स्वयं ही इस वर्ष स्वराज्य दे देगी और यदि नहीं मिला तो नेतागण पूर्ण-स्वतन्त्रता का उद्घोष अवश्य ही कर देंगे। हमारी इस टिप्पणी को मनोरञ्जन का विषय न समझना चाहिए, कॉङ्ग्रेस के अनेक नेताओं का ऐसा ही विश्वास है।

* * *

केशवचन्द्र सेन की जयन्ती

बङ्गाल के प्रसिद्ध समाज-सेवी श्रीयुत केशवचन्द्र सेन की ४५ वीं वार्षिक जयन्ती गत जनवरी में बड़े समारोह से मनाई गई है। सेन बाबू का स्वर्ग-वास हुए आज ४५ वर्ष हो गए, पर सारे बङ्गाल में ही नहीं, भारतवर्ष के बाहर भी इनकी कीर्ति वैसी ही अमर है, जैसी उनके जीवन-काल में थी। दूर-दूर देशों में भी इन्होंने भारतीय आदर्शों की पताका फहराई थी और अभी तक यूरोपीय समाज में इनके नाम का बड़ा प्रभाव है। केशवचन्द्र उन व्यक्तियों में थे, जिन्होंने कॉङ्ग्रेस स्थापित होने के बहुत पूर्व देश की स्वतन्त्रता का प्रश्न उठाया था और अपने जीवन में ही समाज-सुधार द्वारा उसे बहुत हद तक हल भी कर डाला था। पर स्मरण रहे कि ये केवल उन कोरे समाज-सुधारकों में न थे, जो धार्मिक कुरीतियों का ही विरोध करना अपना ध्येय समझते हैं। इनका मुख्य उद्देश्य भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में देश को स्वतन्त्र करना था। और इसी आदर्श को सामने रख कर इन्होंने बङ्गाली समाज को सङ्गठित करने का बीड़ा उठाया था। साथ ही साथ आप दर्शन तथा धर्मशास्त्र के बड़े गम्भीर विद्वान् थे।

पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को छोड़ कर इतनी ठोस समाज-सेवा और दूसरे बङ्गाली ने नहीं की है और न इतना विरोध ही किसी दूसरे नेता का हुआ है। इन दोनों महान् आत्माओं का कार्य भारतीय समाज-सुधारकों के लिए सदैव आदर्श तथा प्रोत्साहन का काम करेगा, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उनके जीवन में एक क्रान्ति उपस्थित हो गई थी और जैसा कि एक लेखक ने कहा है "He carried about a sun in his head and a hurricane in his heart." अर्थात् उनके सिर में सूर्य की चमक धधकती थी और हृदय में तूफ़ान की तेज़ी थी। इस चित्रकार की प्रतिभा में अग्नि की सी जलन थी, जिसके कारण उसकी आत्मा उसकी अमर कला को छोड़ कर और सभी बातों को नष्ट कर डालना चाहती थी। इसी कारण शायद वह मरते समय भी अपना ही एक चित्र बना रहा था!

यह तो हुई कुछ प्रसिद्ध यूरोपियनों के आत्म-हत्या की बात, पर साधारण मनुष्य प्रायः शोक अथवा दुःख के अगाध सागर में पड़ कर अथवा किसी न किसी कारण अपने जीवन को अनावश्यक समझ कर ही अपने प्राण देता है। विशेषज्ञ डॉक्टरों तथा विद्वानों का कहना है कि ज्यों-ज्यों सभ्यता बढ़ती जा रही है, त्यों-त्यों आत्म-घात करने की प्रवृत्ति भी बढ़ रही है। इस बात में कुछ तथ्य अवश्य है, क्योंकि सभ्यता के साथ-साथ मनुष्य के भावों की कोमलता बढ़ती जाती है, वह छोटी-छोटी बातों से प्रभावित हो जाता है, और आत्म-सम्मान तथा मर्यादा के लिए अपने प्राणों को कुछ नहीं समझता। जीवन की समस्याएँ भी गूढ़तर होती जा रही हैं और आत्म-हत्या करने के उपायों में भी वृद्धि हो रही है। भारतवर्ष में तो सरकार इसका कोई व्योरा ही नहीं रखती, पर यहाँ प्रायः लोग कुओं में डूब कर, अफ़ीम खाकर अथवा रस्सी से लटक कर ही मर जाते हैं। देहात की स्त्रियाँ तो इनके अतिरिक्त और कुछ कर भी नहीं सकतीं; पर यूरोप और अमेरिका में तो इसके अनेक सभ्य साधन मौजूद हैं। छुरा भोंक लेना, अनेक प्रकार के विष खा लेना, ऊँचे स्थानों से कूद पड़ना तथा पिस्तौल या रिवॉल्वर से गोली मार लेना इत्यादि अनेक रीतियों से प्राणान्त किया जाता है। फ्रान्स में तो प्रायः लोग कमरा बन्द करके अँगीठी जला लेते और सो जाते हैं—बस फिर सोए ही रह जाते हैं। समुद्र के किनारे वाले स्थानों में अधिकतः लोग डूब मरते हैं, क्योंकि बहुधा लोगों की धारणा है कि डूब कर मरने में कष्ट ही नहीं कम होता, एक प्रकार का विशेष आनन्द भी आता है।

इस सम्बन्ध में विद्वानों की और भी दो-एक सम्मतियाँ हैं, जो आत्म-हत्या के आँकड़ों के चिरकालीन अध्ययन पर अवलम्बित हैं। उनका कहना है कि आत्म-हत्या की संख्या गर्मी के दिनों में बढ़ जाती है और फिर क्रमशः कम होती जाती है, परन्तु साथ ही साथ यह भी है कि उन देशों में अधिक आत्म-हत्या होती है, जो प्रायः बङ्गाल की तरह उष्ण तथा जलपूर्ण होते हैं और जहाँ की आबोहवा नम और मलेरिया पैदा करने वाली होती है। इसका कारण भी है, ऐसे देशों के लोग प्रायः बड़े भावुक तथा आवेशपूर्ण होते हैं। वे क्रोध, प्रेम तथा दुःख से बहुत शीघ्र आक्रान्त हो उठते हैं और इसी कारण उनमें आत्मघात की प्रवृत्ति अधिक अंश में पाई जाती है। एक बात और मार्के की है कि विशेषकर आत्म-हत्याएँ महीने के शुक्ल-पक्ष में होती हैं, इस विषय के विशेषज्ञों ने इसका यह निष्कर्ष निकाला है कि चन्द्रमा का भी प्रभाव मनुष्यों को आत्मघात के लिए उतारू कर देने पर बहुत पड़ता है। चन्द्रमा की ज्योत्स्ना में एक प्रकार के विशेष उन्माद पैदा करने की शक्ति होती है। यूरोप में तो यह बहुत पुराना विश्वास है कि चन्द्रमा प्रेमियों को विक्षिप्त कर दिया करता है। इसका लैटिन नाम ल्यूना (Luna) है, जिससे ल्यूनाटिक (Lunatic) शब्द बना है, जिसका अर्थ है 'पागल'। इसी से डॉक्टरों का यह भी कहना है कि मनुष्य साधारण अवस्था में आत्मघात करता ही नहीं, इसके पहले वह पागल हो जाता है। बात नितान्त सच तो नहीं जान पड़ती, क्योंकि बहुधा पढ़े-लिखे लोग प्राण देने के पूर्व अनेक विद्वत्तापूर्ण पत्र—लम्बे-लम्बे पत्र—लिख गए हैं, जिनमें वे अपने मरने के कारण बतलाते और मित्रों से अन्तिम विदा माँगते हैं। जापान के टोकियो स्कूल में हिन्दुस्तानी भाषा के प्रोफ़ेसर हरिहरनाथ अतल ने जब सन् १९२१ में इस प्रकार अपने प्राण दिए थे तो वे पाँच लम्बे-लम्बे पत्र लिख गए थे। अन्य पत्र तो मित्रों को लिखे थे, पर एक में उन्होंने अपने आत्मघात का कारण बतलाया था। वे पहले संयुक्त प्रान्त के शिक्षा-विभाग में थे, पर जब जापान गए तो ब्रिटिश एम्बेसी के कर्मचारियों ने इनके ऊपर कड़ी दृष्टि रखना प्रारम्भ किया। उन्होंने इनसे यह भी कहा कि हिन्दुस्तान के समाचार-पत्र न मँगाओ और न टोकियो के हिन्दुस्तानियों से मेल-जोल रक्खो। इस प्रकार कई वर्ष तक इस विद्वान् नवयुवक को दूर देश जापान में भी अपने देशवासियों से

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बातचीत करने और उनके समाचारों तक से परिचित होने से रोक कर उसका जीवन असह्य बना दिया गया था। कारण केवल यही था कि अङ्गरेज़ी सरकार की आँखों में वहाँ के कुछ भारतीय खटक रहे थे और कर्मचारियों का विश्वास था कि वे कॉङ्ग्रेस की ओर से आन्दोलन के लिए वहाँ भेजे गए हैं।

इस प्रकार के पत्रों से तो पागलपन का पता नहीं चलता, हाँ इसे अलबत्ता चाहे पागलपन कहें, चाहे भीरुता कि दुःखपूर्ण स्थिति में पड़ कर मनुष्य हिम्मत हार बैठता है और उसे पराजित करने का यत्न न करके, स्वयं पराजित हो जाता है। अथवा यह कि वह दुःख से इतना अभिभूत हो जाता है कि विक्षिप्त होकर उसे अपनी परिस्थिति के सामने संसार में और किसी की परिस्थिति उतनी ख़राब दिखाई ही नहीं पड़ती, अतएव उसकी यह सङ्कुचित दृष्टि ही उसे पागल कर देती है। इसी लिए प्रायः यह भी देखा गया है कि पागलख़ानों में आत्म-हत्याएँ बहुत होती हैं। यूरोप आदि देशों में तो इसका पूरा ब्योरा रक्खा जाता है, जिससे पता चलता है कि कितने बूढ़े, कितने जवान, कितने अधेड़, कितने ज़हर खाकर, कितने डूब कर और कितने गोली मार कर आत्म-घात करते हैं। इस प्रकार की संख्याओं को एकत्र करने के लिए कुछ राष्ट्रीय नियम भी हैं, पर भारत-सरकार उनके अनुसार आत्म-हत्या की संख्याएँ नहीं रखती। यहाँ तो केवल यही हिसाब रक्खा जाता है कि इतनी औरतें मर गईं, इतने पुरुषों ने अपने को नष्ट कर डाला, बस इससे अधिक आपको पता नहीं चल सकता। पश्चात्य देशों में तो इस विषय पर अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं, कमीशनें बैठाई गई हैं और विद्वानों को आत्महत्या के कारणों तथा प्रतिबन्धों का अन्वेषण करने के लिए विशेष पुरस्कार दिए गए हैं। जब हम इस सम्बन्ध के आँकड़े एकत्र कर रहे थे तो हमें संसार भर के सभी देशों से भिन्न-भिन्न प्रकार के विवरण प्राप्त हुए थे। परन्तु भारत-सरकार पहले तो यों ही टालना चाहती थी, पर बहुत कहने-सुनने पर संख्याएँ भी भेजीं तो केवल मरे हुए स्त्री-पुरुषों की! बहुत सी प्रान्तीय सरकारों ने तो टकसाली उत्तर दे दिया कि संख्याएँ फ़लाँ रिपोर्ट में प्रकाशित हुई हैं। सारांश यह कि हमने इस सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने का यथाशक्ति प्रयत्न किया है और उसका फल पाठकों के सामने है। बाहर के देशों से, केवल इङ्गलैण्ड को छोड़ कर, और सभी स्थानों से इस सम्बन्ध में हमें बड़ी सहायता मिली है। अनेक पाश्चात्य देशवासियों ने हमारे पास इस सम्बन्ध की अनेक पुस्तकें और रिपोर्टें भेजीं और हॉलैण्ड से तो वहाँ के डाइरेक्टर ने हमारे अध्ययन की सुविधा के लिए एक डच-भाषा का कोष ही भेजने की कृपा की है। अस्तु—

इङ्गलैण्ड वालों की आना-कानी का कारण बतलाते हुए हॉलैण्ड के डाइरेक्टर ने हमें लिखा था—

"The figures relating to England are low, not because suicide is rarely committed in that country, but because relations are anxious to conceal this cause of death, because, according to English law and English opinion, attempts to commit suicide are thought condemnable."

अर्थात् इङ्गलैण्ड में आत्म-हत्या करते हुए पकड़े जाने वालों को क़ानून से दण्ड मिलता है, और ऐसे लोग समाज की दृष्टि में भी गिर जाते हैं। इसी से आत्म-हत्या से मरे हुए लोगों के सम्बन्धी इस बात को छिपाने का प्रयत्न करते हैं। हॉलैण्ड को छोड़ कर, अन्य सभी देशों में आत्म-हत्या का प्रयत्न दण्डनीय है। इस विषय में भी विद्वानों तथा न्याय-विधायकों की भिन्न-भिन्न सम्मति है—कोई कहता है कि प्रत्येक पुरुष को अपने जीवन पर अधिकार है और वह जैसा चाहे कर सकता है, दूसरों का कथन है कि नहीं, प्रत्येक व्यक्ति का समाज के प्रति कर्तव्य होता है और उसके पालन किए बिना, प्राण दे देना कायरता है, जिसे कभी उत्साहित नहीं करना चाहिए। पर फिर प्रश्न उठता है कि जिस क़ानून से आत्मघात दण्डनीय है, वह तो आत्महत्या कर डालने वाले को दण्ड देने में सर्वथा असमर्थ रहता है और दण्ड देता है केवल उन्हें, जो केवल इस पाप की इच्छा-मात्र करते हैं। सचमुच यह बड़ा ही हास्योत्पादक है कि इस पाप का कर डालने वाला तो मर कर प्रत्येक दण्ड से मुक्त हो जाता है, पर दण्ड उन्हें मिलता है, जो इसे करने का प्रयत्न-मात्र करते हैं। इसका उत्तर केवल यही हो सकता है कि दण्ड-विधान का आदर्श बदला चुकाना नहीं, बल्कि समाज के सम्मुख उदाहरण उपस्थित करना है, जिससे प्रत्येक अनुचित उदाहरण का दण्ड देना वाञ्छनीय है। आत्मघात के इस

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नैतिक पहलूपर एक बहुत विचारपूर्ण लेख प्रसिद्ध दार्शनिक सर ऑलिवर लॉज ने कुछ दिन हुए लिखा था। *

यूरोप के देशों में सबसे अधिक आत्म-हत्याएँ जर्मनी में होती हैं, जिनकी संख्या प्रति वर्ष १०,००० से ऊपर पहुँच जाती है। वहाँ की कुछ संख्याएँ इस प्रकार हैं:—

सन्	१८९५	१९१७	१९१८	१९१९
पुरुष	८,२८५	६,७११	६,२१६	६,३०८
स्त्री	२,२२५	४,०२३	३,९४३	३,८७२
जोड़	१०,५१०	१०,७३४	१०,१५९	१०,१८०

हिसाब लगाने से यह संख्या प्रति लाख १८ तक पहुँचती है। एक बात ध्यान देने योग्य है, वह यह कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या बहुत कम है। यह बात सभी यूरोपियन देशों में है और इसका कारण यह बतलाया जाता है कि वहाँ अधिकतः पुरुष ही ऐसी स्थिति में रहते हैं कि जीवन की समस्याओं के फेर में पड़ कर उन्हें आत्मघात करना पड़ता है। और इसके मुख्यतः दो कारण भी हैं—एक तो प्रेम, दूसरा व्यवसाय। प्रेम की निराशा अथवा व्यवसाय की असफलता के कारण बहुत से लोग प्राण दे देते हैं। स्त्रियाँ प्रायः व्यवसाय की झञ्झट से मुक्त रहती हैं और उनका जीवन अधिक आनन्द से भी बीतता है। भारतवर्ष में ठीक इसका उलटा है और यहाँ पुरुषों से स्त्रियाँ बहुत अधिक संख्या में आत्मघात करती हैं!

दूसरी बात यह है कि जिन देशों में सभ्यता का सङ्घर्ष अधिक रहता है, वहाँ यह संख्या अधिक होती है, क्योंकि वहाँ के दैनिक जीवन की समस्याएँ भी उतनी ही जटिल होती हैं। उदाहरण के लिए मिश्र देश में आत्म-हत्या की संख्या बहुत कम है। १९१८ तथा १९१९ की संख्याएँ यों हैं :—

	१९१८	१९१९
पुरुष	... ४९	... ५३
स्त्री	... ३६	... २९
जोड़	... ८५	... ८२

आश्चर्य की बात है, इतने गर्म देश में सब से अधिक लोग जल कर आत्म-हत्या करते हैं, पर यहाँ की संख्या प्रति लाख एक भी नहीं है, बल्कि ·७ ही है। परन्तु दूसरे गर्म देश ऑस्ट्रेलिया में अधिक लोग गोली मार कर आत्मघात करते हैं। वहाँ की संख्या प्रति लाख ११ से १५ तक है, जिसमें चौथाई से अधिक लोग बन्दूक, पिस्तौल अथवा रिवॉल्वर से आत्मघात करते हैं। प्रायः सभी देशों में विष का नम्बर दूसरा रहता है, जिसका कारण विष का सुगमता से मिल जाना और प्राणान्त करने में उसकी शीघ्रता जान पड़ता है।

इन सभी देशों से अधिक आत्म-हत्या जापान में होती है, जहाँ इसकी संख्या प्रति लाख २३ तक पहुँचती है। सुनते हैं, वहाँ तो बहुत लोग प्रति वर्ष बुद्ध की वार्षिक रथ-यात्रा में रथ के पहियों के नीचे दब कर मर जाने को बड़े पुण्य का कार्य समझते हैं और कितने ही इस प्रकार जान दे-देकर अपने को धन्य मानते हैं। परन्तु वहाँ की सरकारी रिपोर्ट में इसका कुछ उल्लेख नहीं मिलता, यद्यपि जापान की आत्म-हत्या सम्बन्धी संख्याएँ और सभी देशों से अधिक अच्छे ढङ्ग से रक्खी जाती हैं, जिससे पता चल जाता है कि किस अवस्था के कितने लोग किस प्रकार आत्म-हत्या करते हैं। नीचे दी हुई तालिका से जापान की आत्मघाती संख्या पर अच्छा प्रकाश पड़ता है :—

सन्	पुरुष	स्त्री	जोड़
१८८७	... ३,५८७	... २,२३६	... ५,८२३
१८९०	... ४,६९७	... २,७८२	... ७,४७९
१८९३	... ४,५८७	... २,८०२	... ७,३८९
१८९६	... ४,४८०	... २,९७१	... ७,४५१
१९०८	... ५,८९७	... ३,२०३	... ९,६००
१९१०	... ६,८११	... ३,९७२	... १०,७८३
१९१२	... ६,९१५	... ४,२१३	... ११,१२८
१९१४	... ८,०७८	... ४,६२७	... १२,७०५

ऊपर की संख्याओं से दो बातों का पता चलता है, एक तो यह कि गत ३० वर्षों में आत्म-हत्या करने वालों की संख्या दुगुनी से भी अधिक हो गई है और दूसरी यह कि वहाँ स्त्रियों की अपेक्षा, पुरुष ही अधिक आत्मघात करते हैं। वहाँ के और विवरण देखने से पता चलता है कि लगभग आधे लोग फाँसी लगा कर मरते हैं और तिहाई पानी में डूब कर। महीनों में, सब से अधिक मृत्यु

* *Fortnightly Review*, for October, 1921.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अप्रैल से लेकर अगस्त तक—गर्मी की ऋतु में ही—होती है और अवस्था के हिसाब से एक तो २० से लेकर ४० तक के लोग प्रायः आत्म-घात करते हैं और दूसरे ५० वर्ष से ऊपर के लोग, जो शायद जीवन से उकता जाते हैं।

भारतवर्ष की संख्याओं में तो ये विवरण मिलते ही नहीं और न सरकार इस विषय में कोई अलग रिपोर्ट ही प्रकाशित करती है, जब कि इस अभागे देश में मिश्र आदि देशों से कहीं अधिक आत्म-हत्याएँ होती हैं। यहाँ की संख्या प्रति लाख ३ से ५ तक पहुँचती है, पर जिस बात की ओर हम पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं वह यह है कि संसार भर के और देशों के प्रतिकूल भारतवर्ष में स्त्रियाँ ही अधिक आत्मघात करती हैं, जिसका निम्न-लिखित तालिका से स्पष्ट पता चलेगा :—

	१९१७		१९१८	
	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
बङ्गाल	१,३०६ ...	१,९४३ ...	१,३६६ ...	२,०५१
संयुक्तप्रान्त	६१० ...	१,७९४ ...	८९८ ...	२,३८८
बिहार	७५५ ...	१,३०५ ...	८४९ ...	१,४८५
मद्रास	५६४ ...	६८९ ...	६८२ ...	६८५
मध्यप्रान्त	४४८ ...	५०१ ...	५५० ...	६२९
बम्बई	२९२ ...	२२९ ...	२८७ ...	२३०
ब्रह्मा	१३७ ...	६३ ...	१३२ ...	८२
आसाम	१०३ ...	६१ ...	१४७ ...	९५
दिल्ली कुर्ग आदि	१७ ...	१५ ...	२९ ...	१५

ऊपर की तालिका से स्पष्ट है कि आत्मघात करने वाली स्त्रियों की संख्या, पुरुषों से लगभग तिगुनी है। दो ही तीन ऐसे प्रान्त हैं, जहाँ पुरुषों की आत्महत्या की संख्या स्त्रियों से अधिक है, किन्तु फिर भी आत्मघातिनी स्त्रियों की संख्या में विशेष अन्तर नहीं है। ऐसे प्रान्त आसाम, ब्रह्मा तथा बम्बई हैं, पर इन प्रान्तों की आत्म-हत्या की संख्या मिल कर, शेष प्रान्तों में से किसी एक के ही बराबर और कितनों से तो फिर भी कम ही है। जब हम विचार करते हैं कि देश में स्त्रियों की संख्या मर्दों से बहुत कम है तो ऊपर की संख्याएँ और भी भयावह प्रतीत होने लगती हैं। इन आँकड़ों से साफ़ पता लगता है कि जिन प्रान्तों में सामाजिक कुरीतियाँ कम हैं—और विशेषतः जहाँ पर्दा नहीं है, जैसे ब्रह्मा तथा बम्बई—वहाँ स्त्रियाँ कम आत्मघात करती हैं। बङ्गाल, युक्तप्रान्त तथा बिहार में अनेक सामाजिक तथा पारिवारिक अत्याचारों के कारण स्त्रियों, और विशेष कर विधवाओं का जीवन बड़ा असह्य हो जाता है, जिससे वे इस उपाय से संसार के कष्टों से छुटकारा पाने का प्रयत्न करती हैं। हमें विश्वास है कि यदि सरकारी रिपोर्टों में आयु के हिसाब से विवाहित, अविवाहित तथा आत्मघातिनी विधवाओं का विवरण प्रकाशित किया जाय, तो आत्मघात करने वाली स्त्रियों में विवाहित तथा विधवा युवतियों की ही संख्या अधिक प्रमाणित होगी। उनका जीवन इतना कष्टमय होता है और उन्हें पारिवारिक कुरीतियों का इस बुरी तरह शिकार बनना पड़ता है कि वे जीने से मरना ही अच्छा समझती हैं। उसी स्थिति में यदि मर्द रक्खे जायँ तो हमें सन्देह नहीं, वे भी इसी उपाय का आश्रय लेंगे। फिर स्त्रियाँ तो स्वभाव से ही कोमल-हृदया होती हैं, और घरों की दीवारों के भीतर बन्द रह कर वे बेचारी इस घृणित उपाय के सिवा और कर ही क्या सकती हैं?

बङ्गाल की स्नेहलता की आत्म-हत्या का हाल तो पाठकों को मालूम ही होगा। जब उसने देखा कि उसके विवाह में दहेज देने के लिए पिता को अपना सर्वस्व बेच डालना पड़ा तो अभागिनी बालिका को ऐसे नारकीय विवाह से ही नहीं, जीवन से भी घृणा हो गई और दहेज-प्रथा के पृष्ठ-पोषकों का मुँह काला करने के लिए एक लम्बा पत्र लिख कर, उसने अपने को मिट्टी के तेल से जला कर अपने परिवार वालों का बोझ हल्का कर दिया! इस घटना से बङ्गाल में ही नहीं, समस्त भारत में खलबली मच गई थी और समाचार-पत्रों में प्रकाशित उसके पत्र ने लोगों की आँखें खोल दी थीं। पर देश अब भी लकीर का फ़क़ीर बना हुआ है और कितनी ही युवतियाँ प्रतिवर्ष स्नेहलता की भाँति अपनी क़ुर्बानियाँ करके नवयुवकों को लज्जित कर रही हैं। पिता के दहेज कम देने पर ससुराल के लोग जीवन भर लड़की को ताना मारते रहते हैं और ऊपर से सास तथा ननद का साम्राज्य अलग खलता है। प्रायः घरों में उन्हें खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, सभी बातों का दुःख रहता है और

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

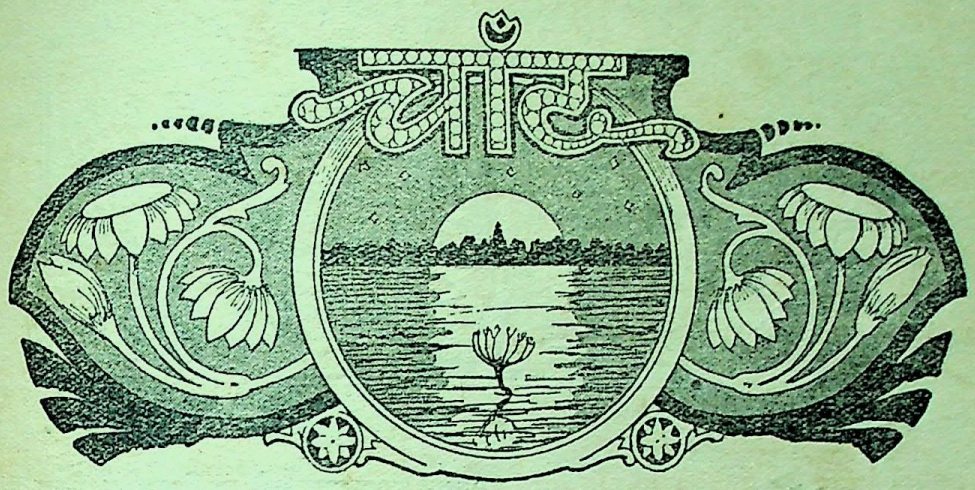

Highly appreciated and recommended for use in Schools and Libraries by Directors of Public Instruction, Punjab, Central Provinces and Berar, United Provinces and Kashmir State etc., etc.

वर्ष ७ खण्ड १ | मार्च, १९२९ | संख्या ५ पूर्ण संख्या ७७

वनिता-विनय

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर की स्मृति में सादर भेंट— हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

[रचयिता—श्री० शोभाराम जी, धेनुसेवक]

सत्-शिक्षा से पूर्ण सुशिक्षित हों वनिताएँ।
नहीं निरादर सहें, मान मनुजोचित पाएँ॥
करें प्रसव सुत-रत्न, वीर माता कहलाएँ।
मार्ग-प्रदर्शक बनें, मातृ का हर्ष बढ़ाएँ॥

दुखद दासता देश की, महिलाएँ मिल कर दलें!
प्रेम-पात्र निज नाथ की, बन सदा फूलें-फलें!!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मार्च, १९२९

आत्म-घात का रोग

आत्मघात करके सांसारिक दुःखों और झञ्झटों से छुटकारा पाने का प्रयत्न करना, मानव-स्वभाव की एक बड़ी पुरानी दुर्बलता है। महाकवि भवभूति ने अपने नाटक उत्तर-रामचरित में जनक ऐसे योगी को भी आत्म-हत्या करने की चेष्टा करते हुए दिखलाया है। जब उन्हें समाचार मिला कि रामचन्द्र ने गर्भवती सीता को एक धोबी के ताना मारने पर जङ्गल में भेज दिया है, तो उनके क्रोध की सीमा न रही। पहले तो उन्होंने सोचा कि सारी अयोध्या को पराजित करके भस्म कर दूँ। फिर शाप देकर रामचन्द्र और उनके भाइयों को ही नष्ट कर देने की इच्छा उनमें उत्पन्न हुई, पर अन्त में उन्होंने सोचा कि अपनी कन्या के यह सब कष्ट देखने और सुनने के लिए मैं ही क्यों जीवित रहूँ? उन्होंने आत्म-घात करने का निश्चय कर लिया; पर जब शान्त हुए तो लगे विचार करने, और देखा कि धर्मशास्त्र में तो आत्म-हत्या करने वाले को कठोर दण्ड देने का विधान है, यह भी लिखा है कि ऐसे लोगों को सहस्रों वर्ष अन्धकारमय नरक में रहना पड़ता है, और कभी मुक्ति नहीं मिलती। महाराज जनक ऐसे योगी, जो ध्यान में मग्न होकर 'विदेह' हो जाते थे, यदि दुःख और परिताप के मारे आत्म-घात करने के लिए तैयार हो जायँ तो साधारण मनुष्यों की बात ही क्या है!

यूरोप में भी बहुत प्राचीन समय से यह सामाजिक कुरीति चली आती है, यहाँ तक कि प्रसिद्ध दार्शनिक फ़लातूँ (Plato) ने यह सिद्धान्त ही बना रक्खा था कि प्रत्येक मनुष्य को आत्मघात करने का नैसर्गिक अधिकार है। प्रसिद्ध रोमन राजनीतिज्ञ केटो ने स्वयं अपने प्राण दे दिए थे, क्योंकि वह शत्रु से पराजित होने से मरना ही अच्छा समझता था। इसी से अङ्गरेज़ी में एक कहावत है कि "What Cato did and Plato taught could not be wrong" अर्थात् जो केटो ने किया और प्लेटो ने कहा है वह ग़लत नहीं हो सकता। शेक्सपियर के नाटक हैमलेट में राजकुमार हैमलेट भी अपने पिता की मृत्यु से घबराकर अपने प्राण दे देना चाहता है और बहुत गम्भीरता-पूर्वक कई दिन तक इस पर विचार करता है। यहाँ तक कि विक्षिप्त हो जाता है। हॉलैण्ड के विख्यात चित्रकार वॉन गॉग ने भी आत्म-हत्या की थी, जिसका कारण उनका अद्भुत पागलपन कहा जाता है। मौलिक एवं उच्चकोटि के आदर्शवाद के कारण

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यदि बीच ही में दुर्भाग्यवश कहीं विधवा हो गईं तो यह कष्ट सहस्र गुना अधिक बढ़ जाता है !! पढ़ी-लिखी न होने के कारण वे अपना दुःख न तो समाचार-पत्रों में प्रकाशित करा सकती हैं और न लज्जा के मारे किसी से कह सकती हैं। उनके कष्ट-निवारणार्थ सभा-समितियों की भी बहुत कमी है और फल यह होता है कि अपना दुखड़ा लिए ये बेचारी भीतर ही भीतर घुलती रहती हैं और जब सहनशीलता की हद हो जाती है, तो विवश हो मृत्यु की शरण लेती हैं। स्त्रियों के कष्ट प्रायः गूँगे होते हैं और मूक होकर उन्हें सहन करने पड़ते हैं! किसी का पति मद्यपायी तथा वेश्यागामी है तो दूसरी विधवा होकर गर्भिणी हो गई है; कोई पति के न रहने पर घर से निकाल दी गई है, तो दूसरी घोर दरिद्रता से अपना और अपने आधे दर्जन लड़कों का निर्वाह कर रही है और साथ ही देखती है कि पिता की लाखों की सम्पत्ति नालायक़ भाई उड़ा रहे हैं !!

जब तक इन कष्टों का निर्मूलन क्रान्तिकारी समाज-सुधार द्वारा न होगा, तब तक अबलाओं की विपत्ति बढ़ती ही रहेगी। आश्चर्य की बात है कि ज्यों-ज्यों कुरीतियों के मिटाने का प्रयत्न हो रहा है, त्यों-त्यों उधर आत्महत्या की संख्या भी बढ़ती जा रही है। यहाँ तक कि प्रत्येक प्रान्त में गत दस वर्षों में यह संख्या लगभग दूनी हो गई है। स्त्री-पुरुष, सभी में यह प्रकृति बढ़ती हुई जान पड़ती है। पुरुष प्रकृति से ही अधिक कठोर-हृदय, धैर्यवान् तथा सहनशील माना जाता है और भारत की आत्महत्या की संख्याओं से भी यही प्रगट होता है। यद्यपि संसार भर में सर्वत्र ही पुरुष अधिक आत्मघात करते हैं। जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है। यूरोप आदि देशों में तो पुरुष प्रायः प्रेम तथा व्यवसाय के कारण आत्मघात करते हैं, पर भारतवर्ष में तो बहुधा पारिवारिक झञ्झटों के कारण ही पुरुष ऐसा करते हैं। कारण स्पष्ट ही है, स्त्री-पुरुषों में प्रेम के लिए समाज में स्वतन्त्रता नहीं और व्यापार में भी हाथ-पैर फैलाने के लिए देश में इतना धन नहीं है। हाँ, एकाध आत्महत्याएँ अस्वाभाविक प्रेम के कारण भले ही देखी गई हैं। एक उदाहरण तो एक पढ़े-लिखे नव-युवक वकील साहब का है, जो अपने ख़ूबसूरत मुहर्रिर से प्रेम करते थे। मुहर्रिर उन्हीं के पास रहता, उनका भोजन भी बनाता और वकील साहब की स्त्री दूर घर पर और लोगों के साथ उनके नाम को रोती थी। दुर्भाग्यवश एक दूसरे मनचले वकील की निगाह लड़के पर पड़ी, जो उसी की जाति के थे भी। इनका भी विवाह तो हो चुका था, पर एक तो पत्नी सुन्दर नहीं थी, दूसरे आपको यह वहम होगया था कि उससे पैदा हुआ लड़का—जो इस समय दस-ग्यारह वर्ष का है—मेरा नहीं, किसी और का है! मुहर्रिर की एक सुन्दर अविवाहिता बहिन भी थी, जिसके कारण और भी ये उसे अपने यहाँ रखना चाहते थे। लड़के ने भी समझा कि मुफ़्त में बहिन की शादी हो जायगी और मेरा भी काम चलेगा। बस वह पुरानी नौकरी छोड़ कर अपनी जाति वाले वकील के यहाँ आगया। इस पर पहले वकील साहब ने ईर्ष्यावश दूसरे को विष देकर मार डालना चाहा और सारा मामला पुलिस तक गया। वकील साहब पर वारण्ट कटा और बेचारे नवयुवक तो थे ही, कुछ घबराहट में और बहुत-कुछ प्रेम की निराशा तथा अदालत में मामला आने पर सब भेद खुल जाने की लज्जा के कारण, घर से भाग कर विष खा लिया और गले में रस्सी बाँध कर कुएँ में कूद पड़े। इधर तो दो बच्चों के साथ विधवा स्त्री रह गई और उधर मुहर्रिर की बहिन से दूसरे वकील ने शादी करके अपनी पहली पत्नी तथा बच्चे को निराश्रय छोड़ दिया है। ये लोग कई वर्ष से वकील साहब की पुरानी ससुराल में रहते हैं। लड़की के पिता मालदार हैं, पर पति के रहते हुए भी स्त्री गत १० वर्षों से विधवा बनी बैठी है! यह तो हुई दो उच्चशिक्षा-प्राप्त वकीलों की कथा। दूसरी घटना एक २० वर्ष के विवाहित विद्यार्थी के आत्म-हत्या की अभी एक महीने पूर्व खुर्जे में घटी है। इस नवयुवक को एक छोटे सुन्दर लड़के से प्रेम था, पर शायद अपनी कुत्सित पिपासा शान्त न होते देख और एक दिन इसी कारण अध्यापक द्वारा पिटने पर रात को खुर्जा-कॉलेज के कुएँ में कूद कर उसने प्राण दे दिए! माँ-बाप का अकेला लड़का था, रोती-पीटती जब बुढ़िया माँ पहुँची, तो लड़के का शव जला दिया गया था, मारे शोक के उसने भी वहीं प्राण त्याग दिए! अपने अन्तिम पत्र में इस नवयुवक ने उस सुन्दर लड़के को 'नमस्ते' तो लिखा, पर अपनी नव-विवाहिता १४ वर्ष की पत्नी को एक अक्षर भी नहीं! परमात्मा ही इस जवान विधवा का वैधव्य निबाहे!

इस प्रकार की घटनाएँ अब प्रति दिन बढ़ती ही

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जा रही हैं और तिस पर भी सरकार का ध्यान आत्म-हत्या की संख्याओं की ओर नहीं जाता। आत्महत्या क्या, यह भी एक रोग हो गया है, जो प्रति वर्ष सभी प्रान्तों में अपने शिकारों की तादाद बढ़ाता ही जा रहा है। और प्रान्तों की बात जाने दीजिए, केवल युक्त-प्रान्त की संख्याओं को देखने से स्पष्ट पता चलता है कि अप्रैल से लेकर जुलाई तक आत्महत्या की संख्या बहुत बढ़ जाती है, और एक भी ज़िला ऐसा नहीं है, जहाँ यह रोग फैला न हो, बल्कि कितने ही स्थान तो ऐसे हैं जहाँ प्लेग अथवा हैज़ा आदि नहीं होता, पर आत्म-हत्याएँ बहुतायत से होती हैं। उदाहरण के लिए अलमोड़ा तथा गढ़वाल में प्लेग बिलकुल नहीं होता, पर आत्म-हत्याओं की संख्या ५० तक पहुँचती है; सीतापुर चेचक से स्वतन्त्र है, पर यहाँ प्रति वर्ष प्रायः ४५ मनुष्य आत्मघात करके मर जाते हैं; इसी प्रकार आधे से अधिक ऐसे ज़िले हैं जिनमें चेचक, हैज़ा आदि से लोग उतने नहीं मरते, जितने आत्म-हत्या से। इसके अतिरिक्त उन आत्मघातियों की तो गणना ही नहीं, जिनका पता घर वाले ठीक देते ही नहीं। प्रायः स्त्रियों के आत्महत्या करने पर लोग पुलिस से बचने के लिए उनकी मृत्यु के कुछ और कारण बतला देते हैं और कभी-कभी तो पुलिस स्वयं ले-देकर ऐसे मामलों को दबा देती है और कोई कल्पित कारण लिख देती है। यदि ऐसे उदाहरणों का भी ध्यान रक्खा जाय तो उपरोक्त संख्याएँ न जाने कितनी भयानक हो जायँगी!

यदि हमारी सरकार विदेशी न होती, तो इस जटिल प्रश्न की ओर उसका ध्यान जाना स्वाभाविक था, किन्तु बात दूसरी ही है। सुधारों में देशवासियों का हाथ बटाना तो दूर रहा, उल्टे हमारी सरकार हमारे निर्धारित सुधारों में रोड़े अटकाने का प्रयत्न करती है। बाल-विवाह आदि उपयोगी बिलों का भारतीय सरकार द्वारा विरोध करना, हाल ही की लज्जापूर्ण घटनाएँ हैं। एक ऐसी सरकार से यह आशा करना कि वह हमारे इन सुधारों की ओर ध्यान देगी अथवा हमारा हाथ बटाएगी, पत्थर से पानी निकालने की आशा के समान उपेक्षणीय है! किन्तु यह अवश्य है कि प्रान्तीय काउन्सिलों और बड़ी व्यवस्थापिका सभा के रङ्ग-मञ्च पर थिरकने वाले हमारे स्वनाम-धन्य नेता यदि इन अत्याचारों के विरुद्ध आन्दोलन उठावें, तो कम से कम जनता का ध्यान इस कुरीति की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हो सकता है और आत्महत्या-सम्बन्धी कारणों पर प्रकाश पड़ सकता है। यदि इन कारणों की जाँच के लिए विद्वानों तथा विशेषज्ञों की एक कमिटी बनाई जाय तो उन कारणों को वह जनता के सामने उपस्थित कर सकती है, जो आत्मघाती स्त्री-पुरुषों में प्रमुख हैं। और उन कुरीतियों के विरुद्ध देश के नेताओं को एक सर्वव्यापी आन्दोलन करना चाहिए। केवल आत्मघात का प्रयत्न अथवा इच्छा करने वालों को दण्ड देने से इस सम्बन्ध में किसी प्रकार के सुधार की आशा नहीं की जा सकती। हमें उन कारणों को—पारिवारिक तथा सामाजिक कष्टों को, तथा देश की दरिद्रता को दूर करने का सबल प्रयत्न करना होगा, हमें उन कारणों के मस्तक पर पाद-प्रहार करना होगा, जिनसे स्त्री-पुरुषों का वैवाहिक जीवन आज विषमय हो रहा है और जिससे खीज कर जीवन की अपेक्षा वे मृत्यु के आलिङ्गन को सुखदायी समझ रहे हैं। प्रत्येक समाज-सुधार-प्रेमी तथा प्रत्येक परिवार के प्रमुख व्यक्ति के कन्धे पर इन कारणों को दूर करने का भार है।

यहाँ एक बात हम और स्पष्ट कर देना चाहते हैं, विदेशी सरकार की उदासीनता पर हमारी टिप्पणी पढ़ कर तथा उन देशों की मृत्यु-संख्या देख कर, जो स्वतन्त्र हैं और जिनमें क़ानून निर्माण करने की क्षमता है, कुछ लोग कह सकते हैं कि वहाँ मृत्यु-संख्या का आधिक्य क्यों है? इस बात का उत्तर एक शब्द में देना सम्भव नहीं है, किन्तु हम यह अवश्य बतला देना चाहते हैं कि पाश्चात्य देशों के जिन सुधारों को, जिन फ़ैशनों को हम हीरा समझते हैं, उनमें से अधिकांश हीरा नहीं काँच हैं। दूसरी बात यह है कि जिस प्रकार वेश्या-वृत्ति का हम एक बार ही निर्मूलन नहीं कर सकते, किन्तु वेश्याओं की संख्या अवश्य घटा सकते हैं, ठीक उसी प्रकार आत्म-हत्या के रोग से देश को हम एक बार ही उन्मुक्त नहीं कर सकते, पर प्रयत्नों द्वारा उन कारणों को कम अवश्य कर सकते हैं, जिनसे आत्मघातियों को प्रोत्साहन मिलता है और अपने दुखमय जीवन की अपेक्षा वे मृत्यु को आदर की दृष्टि से देखते हैं!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आचार्य उपगुप्त

[ले० प्रोफ़ेसर चतुरसेन जी शास्त्री]

संध्या हो चुकी थी, सूर्य अस्त हो गया था, पर पश्चिम दिशा में अभी लाल आभा बाक़ी थी। पूर्व-दक्षिण कोण से जो प्रधान राजमार्ग मथुरा को जाता है, उस पर तीन यात्री धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। यात्री बहुत दूर से आ रहे थे। और वे अत्यन्त क्लान्त और थकित थे। उनमें एक वृद्ध था, दो युवक। उन दोनों में भी एक अति किशोर-वयस्क सुकुमार बालक था, जिसकी आयु कठिनता से १४ वर्ष की होगी। मध्यवर्ती युवक ने वृद्ध को सम्बोधन करके पूछा—लल्ल! मथुरा तो आ गई, आशा है, अब विश्राम और आश्रय मिलेगा। परन्तु लल्ल! क्या तुम्हें आशा है कि श्रेष्ठिवर हमें आश्रय देंगे? वे हमें पहचान सकेंगे, और हमारा भेद गुप्त रख सकेंगे?

"अवश्य ही ऐसा होगा, श्रेष्ठि धनगुप्त महाराज के परम मित्र, अनुग्रहीत और सेवक हैं।"

किशोर वयस्क बालक ने अतिशय क्लिन्त होकर कहा—महानायक! अब और कितना चलना पड़ेगा? मुझसे तो एक पग भी अब चलना कठिन है। देखो मेरे पैर क्षत-विक्षत हो गए हैं।

लल्ल ने क्षण भर रुक कर, पीछे फिर कर बालक को देखा, उसके ओष्ठ कम्पित हुए, और नेत्रों में एक कण अश्रुबिन्दु आकर गिर गया। पर उसने किञ्चित हँस कर कहा—अब तो आगए, थोड़ा धैर्य और!

"अब और नहीं" कह कर बालक वहीं सड़क पर बैठ गया। दूसरे युवक ने प्यार से उसका हाथ पकड़ कर कहा—यहाँ मार्ग में देर करने से क्या लाभ, सूर्य छिप गया है, कहीं द्वार बन्द हो गए तो बाहर ही रात काटनी होगी और वन्य-पशु फिर लल्ल को सोने न देंगे।

बालक फिर चला। लल्ल आगे बढ़ा। नगर के दक्षिण द्वार पर नगर-रक्षक रात्रि के लिए नवीन प्रहरियों की गिनती कर रहा था। तीनों यात्रियों ने चुपचाप द्वार में प्रवेश किया। किसी ने इन दीन यात्रियों की ओर ध्यान नहीं दिया। लल्ल ने विनीत भाव से युवक से कहा—यदि आज्ञा हो तो रात किसी अतिथिशाला में काट ली जाय, फिर प्रातःकाल श्रेष्ठिवर का घर ढूँढ़ लिया जायगा। अब इस समय कहाँ भटका जायगा। इतना कह कर उसने एक दृष्टि किशोर बालक पर फेंकी और युवक की आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ा रहा। युवक ने कहा—यही उचित है लल्ल! चलो अतिथिशाला में ही रात्रि व्यतीत करें।

तीनों यात्री नगर के जन-पथ पर आगे बढ़े।

२

"श्रेष्ठिवर धनगुप्त का घर क्या यही है?"

"यही है श्रीमान्! आपका कहाँ से पधारना हुआ है? आइए, भीतर आइए, घर को पवित्र कीजिए।"

लल्ल से जब एक परम सुन्दर युवक ने अति नम्रता-पूर्वक ये शब्द कहे, तब लल्ल आँखें फाड़-फाड़ कर उस युवक और सामने के एक साधारण घर को देखने लगे।

"अवश्य ही भ्रम हुआ है महोदय! क्या आप महा-श्रेष्ठि धनगुप्त को जानते हैं?"

"श्रीमान्! यह दास उनका पुत्र है।"

"आप? श्रेष्ठि धनगुप्त के पुत्र? और यह उनका घर? आपका शुभनाम?"

"सेवक का नाम 'उपगुप्त' है।"

"उपगुप्त, उपगुप्त! ओह! सचमुच आप××× परन्तु श्रेष्ठिवर कहाँ हैं?"

"पूज्य पिता जी का स्वर्गवास हुए ८ वर्ष होगए?"

"स्वर्गवास?" लल्ल ने मुँह फैला दिया।

"श्रीमान् अवश्य ही पितृ-चरणों के बन्धु हैं। मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिए।"

"उपगुप्त श्रेष्ठिवर!" इतना कह कर लल्ल ने युवक को दौड़ कर भुजा-पाश में बाँध लिया। कुछ ठहर कर लल्ल बोले—समझा! पिता के बाद लक्ष्मी ने भी उसके पुत्र को त्याग दिया! वाह रे कराल काल! जिसके नौ-व्यापार से समुद्र पटा रहता था, और यवन, चीन तक जिसकी हुण्डी चलती थी, उसका यह पुत्र नङ्गे पाँव खड़ा

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजमार्ग पर अतिथि का सत्कार कर रहा है, और जहाँ द्वार पर सेना और हाथियों की पंक्ति रहती थी वहाँ यह घर है !" यह कह कर लल्ल रोने लगे। एक बार उन्होंने फिर युवक को छाती से लगा लिया।

उपगुप्त ने धैर्य से पूछा—आर्य ! परिचय देकर कृतार्थ करें। यह तो मैं समझ गया, आर्य पितृ-तुल्य पूज्य हैं, आज मेरा जन्म इन चरणों की सेवा से कृतार्थ होगा।

"श्रेष्ठिवर उपगुप्त ! ईश्वर को धन्यवाद है कि श्रेष्ठिवर धनगुप्त का विनय, सौजन्य और अतिथि-सत्कार आप में अवशिष्ट है, जो श्रेष्ठिवर की सब सम्पत्तियों में अमूल्य थी, परन्तु अब परिचय की आवश्यकता नहीं, ईश्वर आपका कल्याण करें !"

इतना कह कर लल्ल चलने को तैयार हुए। उपगुप्त ने कातर स्वर से कहा—आर्य ! क्या दरिद्रता के कारण दास को आप त्याग रहे हैं ? यह न होगा। श्रीमान् यदि मेरा आतिथ्य न स्वीकार करेंगे तो मैं प्राण त्याग दूँगा। आर्य, मैं कभी झूठ नहीं बोलता !

लल्ल क्षण भर स्तब्ध खड़े रहे। फिर उन्होंने कहा—श्रेष्ठिवर, मेरे साथ और भी दो व्यक्ति हैं, देखो वे सम्मुख खड़े हैं × × × "आह ! आपने कहा नहीं × × × "यह कर उपगुप्त उधर दौड़े, लल्ल ने रोक कर कहा—श्रेष्ठिवर, ठहरिए, निस्सन्देह हम लोग आपके पिता का आश्रय प्राप्त करने यहाँ आए थे—पर अब नहीं श्रेष्ठिराज, हम लोग आपको विपत्ति और चिन्ता में नहीं डालेंगे। ईश्वर आपका कल्याण करें।

"तब आर्य ! मैं निश्चय प्राण-त्याग करूँगा।"

"नहीं महोदय ! आपका इस अवस्था में आतिथ्य स्वीकार न करने के कारण हैं। आप हमारे कारण विपत्ति में पड़ सकते हैं।"

"परन्तु महोदय ! मैं प्राण देकर भी हर्षित हूँगा। आर्य ! आज तक मैं अपने दारिद्र्य के लिए लज्जित नहीं हुआ—क्या अब श्रीमान् मुझे लज्जित करेंगे ?"

"नहीं, नहीं, श्रेष्ठिराज, बात कुछ और ही है। अच्छा, तब मैं स्वामी से आज्ञा ले लूँ !"

"मैं स्वयं ही उनके चरणों में प्रार्थना करूँगा !" इतना कह कर, उपगुप्त ने दूर खड़े दोनों युवकों के निकट जा, उनकी चरण-रज मस्तक पर लगाई।

लल्ल ने संक्षेप में सब कुछ कह कर घर में चलने का अनुरोध किया।

आसन देकर, सब के बैठने पर उपगुप्त ने कहा—आर्य ! अब अपना और इन पूज्यों का परिचय देकर कृतार्थ करें।

"श्रेष्ठिवर ! ये कलिङ्गराज-महिषीपट्ट महारानी चन्द्रलेखा और ये महाराजकुमारी शीला हैं। मगध के प्रतापी सम्राट् चण्डाशोक ने कलिङ्ग का महाराज्य नष्ट कर डाला, एक लाख कलिङ्ग योद्धा रणभूमि में काम आए हैं—महाराज युद्धभूमि से लौटे नहीं, न उनका शरीर प्राप्त हुआ है। महाराज कुमार हरिद्वार में स्वामी चिदानन्द के आश्रम में विद्याध्ययन कर रहे हैं। मैं महानायक भट्टारक पादीप लल्ल हूँ। राजपरिवार घोर विपत्ति में पड़ गया, तब इन महिलाओं को लेकर मैं आपके पिता के आश्रय की इच्छा से चल पड़ा। धनगुप्त श्रेष्ठिराज को छोड़ और कौन इन राज-अतिथियों को आश्रय दे सकता है ? चण्डाशोक ने सर्वत्र चर छोड़े हैं—जो कोई राजपरिवार और कुमार जितेन्द्र को पकड़ा देगा उसे दस सहस्र स्वर्ण-मुद्रा दी जावेंगी। और जो कोई उस परिवार को आश्रय देगा उसे प्राण-दण्ड होगा। श्रेष्ठिराज, इसी लिए हम लोग आपकी इस दुरवस्था में आपको विपत्ति में नहीं डालना चाहते थे।"

उपगुप्त ने सब सुन कर कहा—राजमाता और राजपुत्री और आपके चरणों से यह घर पवित्र हुआ, अब आपकी सेवा से शरीर को धन्य करूँगा।

'परन्तु', लल्ल ने कहा—"आप अपनी पत्नी तक से यह परिचय गुप्त रक्खेंगे और इनका पुरुष-परिचय ही देंगे।"

श्रेष्ठिवर ने स्वीकार किया।

३

अतिथियों के विश्राम की व्यवस्था करके उपगुप्त ने अपनी पत्नी से जाकर कहा—कुन्द ! मेरे स्वर्गीय पिता के मित्र हमारे अतिथि हुए हैं, उनका आतिथ्य हमें जैसे बने, करना होगा।

कुन्द ने कुण्ठित होकर कहा—परन्तु स्वामिन् ! घर में तो कुछ भी सामग्री नहीं है—अतिथि खायँगे क्या ?

उपगुप्त चुपचाप पत्नी के मुँह की ओर देखने लगे। उन्होंने कहा—कुन्द ! क्या किसी भी तरह तुम व्यवस्था नहीं कर सकतीं ? क्या और कोई आभूषण है ?

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"नहीं"

"तब कोई अनावश्यक पात्र बन्धक रख दिया जाय।"

"यही होगा और उपाय क्या है?"

उपगुप्त ने विकल होकर कहा—परन्तु कुन्द, तुम्हीं इसकी व्यवस्था कर देना, जिसमें हमारा नाम न प्रकट हो।

कुन्द ने कुछ कहने को मुख खोला ही था कि द्वार से कुछ मनुष्यों ने श्रेष्ठि को पुकारा। श्रेष्ठि ने बाहर आकर देखा, ८-१० राजकर्मचारी हैं और साथ में है ऋणदाता महाजन। उसने कर्कश स्वर में कहा—श्रेष्ठि उपगुप्त! हमारा चुकता-पावना अभी चुकाओ अथवा बन्दीगृह में जाओ।

श्रेष्ठिवर ने घबरा कर विनयपूर्वक कहा—मित्र! आप तो जानते ही हैं, मैं इस समय कितने कष्ट में हूँ; फिर आज अभी मेरे घर में पूज्य अतिथि आए हैं। श्रेष्ठिवर, कुछ और धैर्य धारण करो, वरना बड़ा अनर्थ हो जायगा।

ऋणदाता ने अवज्ञा से हँस कर कहा—मैं ऐसा मूर्ख नहीं, रक़म भी छोटी नहीं, अब और धैर्य किस आशा पर? दस सहस्र अभी दो, अन्यथा ये कर्मचारी तुम्हें बन्दी कर लेंगे।

उपगुप्त ने विवश होकर कहा—तब मुझे कुछ क्षण का तो अवकाश दीजिए, मैं अपने अतिथियों और पत्नी की कुछ व्यवस्था कर दूँ।

प्रधान राजकर्मचारी ने आगे बढ़ कर कहा—महोदय! इसके लिए हम लोग बाध्य नहीं। क्या आप कृपापूर्वक अभी वह धन देते हैं?

"नहीं, धन अभी नहीं है!"

"तब सैनिको, इन्हें बाँध लो।"

क्षण भर में सैनिकों ने श्रेष्ठि को बाँध लिया। विवाद सुन कर लल्ल और राजकुमारी बाहर आ गए थे। कुन्द भी सब व्यापार देख रही थी। सभी विमूढ़-वत् खड़े रहे। वे लोग श्रेष्ठिवर को बाँध कर ले चले। कुन्द पछाड़ खाकर धरती पर गिर पड़ी।

राजकुमारी शीला ने दौड़ कर उसे उठाया और फिर लल्ल को बुला कर धीरे से कहा—महानायक! इस विपन्नावस्था में हमें श्रेष्ठि और उनकी पत्नी की पूर्ण शुश्रूषा करनी होगी। कुन्द को शैया पर सुला कर राजकुमारी लल्ल से कुछ परामर्श करने लगी। कुमारी की बात सुन कर लल्ल ने चौंक कर कहा—यह तो अत्यन्त भयानक है।

"चाहे जो कुछ भी हो।"

"नहीं; कुमारी! ऐसा न होने पाएगा।"

"यही होगा महानायक।"

"कुमारी, सोच लो, राजमाता इसे कदापि न स्वीकार करेंगी।"

"हम लोगों का कर्तव्य है कि उन्हें सहमत करें।"

"पर यह भारी दुस्साहस है।"

"मैंने उसे करने का निश्चय कर लिया है। श्रेष्ठिवर को छुड़ाने का और उपाय नहीं, जब वे उन्हें बाँध रहे थे, उसी समय मेरे मन में यह विचार आया था।"

महानायक गम्भीर दुःख और विचार में मग्न हो गए।

४

घटना का विवरण सुनकर महारानी ने कहा—श्रेष्ठिवर को इस कष्ट से प्राण देकर भी मुक्त करना होगा महानायक!

राजकुमारी ने उतावली से कहा—माता, वह मैं करूँगी?

"तू क्या करेगी?" रानी ने बालिका को दृष्टि गाड़ कर देखा।

"भैया से मेरी आकृति बिलकुल मिलती है, क्यों महानायक?"

"तब?"

"और पुरुष-वेश में मैं, भैया ही मालूम होती हूँ—यह तुम बारम्बार कह चुकी हो।"

"हाँ, पर इससे क्या?"

"भैया को जीवित या मृत पकड़ाने वाले का पुरस्कार दस सहस्र है, इतना ही तो श्रेष्ठिवर को चाहिए? मैं अपने को भैया की जगह पकड़ाए देती हूँ—उन रुपयों से श्रेष्ठिवर मुक्त हो जायँगे।" इतना कह कर शीला खिल-खिला कर हँस पड़ी।

रानी पर वज्र गिर पड़ा, वह घबरा कर बोलीं—वाह, यह कैसी बात?

"क्यों?"—कुमारी ने गम्भीर होकर कहा।

"यह तेरा पागलपन है।"

"नहीं माँ, मैंने सब बातें विचार ली हैं।"

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"क्या विचार ली हैं ?"

"इस काम से दो बातें होंगी—एक तो श्रेष्ठि मुक्त होंगे, दूसरे भैया की खोज-जाँच बन्द हो जायगी और वे सुरक्षित रह सकेंगे ?"

"परन्तु ये बर्बर सैनिक तेरा कैसी निर्दयता से घात करेंगे ? चक्रवर्ती तक जीवित भी पहुँच गई तो वह शत्रु क्या तुझे छोड़ेगा ?"

न जाने क्यों चक्रवर्ती का नाम सुन कर शीला का मुख लाल हो आया। उसने कहा—माता ! चक्रवर्ती की आज्ञा जीवित पकड़ने ही की है। जीवित पकड़ कर वे बध नहीं करेंगे, चक्रवर्ती के सम्मुख ले जायँगे। वहाँ पहुँच कर मैं चक्रवर्ती से समझ लूँगी।

"न, शीला ! मैं तुझे इतना साहस न करने दूँगी। चलो, हम लोग अन्यत्र चलें।"

शीला ने आँखों में आँसू भर कर कहा—तब कलिङ्ग-राजपट्ट महिषी इतनी स्वार्थी होगईं कि जिसकी उदारता और आश्रय प्राप्त किया, उसे विपन्नावस्था में छोड़ जायँगी ?

लल्ल अब तक चुप थे। वे बोले—माता ! शीला ही की बात रहे। विशिष्ट अवसरों पर विशिष्ट पुरुष अपना प्रताप और त्याग प्रकट करते हैं। शीला का त्याग उसके वंश के उपयुक्त है। जो हो, श्रेष्ठिवर को छुड़ाना ही उचित है।

"तब क्या और कुछ उपाय नहीं ?"

"नहीं"

राजमाता गम्भीर चिन्ता में मग्न हुईं। शीला ने कहा—माता ! मैं कलिङ्ग की राजकुमारी हूँ, शस्त्र-विद्या और अश्वारोहण में कुशल हूँ, पिता जी ने मुझे कुछ शिक्षा भी दी है, इस प्रकार मैं एक बार सम्राट् के सम्मुख जाकर स्वयं उसके इस पातक और अत्याचार के सम्बन्ध में पूछना चाहती हूँ। इससे अवश्य हमारा कुछ कल्याण होगा !

अन्त में रानी ने सिर हिलाया। शीला ने कहा—तब महानायक, तुम कुन्द से कह दो कि तुम्हारे घर में कलिङ्ग का राजकुमार छिपा हुआ है, उसे पकड़ा कर श्रेष्ठि को छुड़ा दो।

लल्ल ने कहा—यह कर्त्तव्य मुझे पालन करना होगा। राजकुमारी ! तुम स्वयं ही यह साहस करो।

कुमारी ने कहा—नहीं, तुम्हीं उससे कहो, जिससे उस पर भेद प्रकट न होने पाए।

* * *

लल्ल का प्रस्ताव सुनकर कुन्द भय, आश्चर्य और दुःख से विमूढ़ हो गई। उसने कहा—क्या कलिङ्ग का राजकुमार ?

"जी हाँ, वह युवक वही कलिङ्ग-राजकुमार है, जिसके सिर का मूल्य दस सहस्र है। इतने ही में तो श्रेष्ठिवर छूट जायँगे।"

"और मैं उन्हें पकड़ा दूँ—अतिथि को, जो मेरे पति के पूज्य नहीं, उनके स्वर्गीय पिता के पूज्य हैं ? वृद्ध महोदय, आपसे ऐसे नीच प्रस्ताव की आशा न थी। आप कदाचित् अपने ही स्वामी से विश्वासघात कर रहे हैं।"

"नहीं, श्रेष्ठिबधु ! राजकुमार स्वयं यह इच्छा कर रहे हैं !"

"राजकुमार स्वयं इच्छा कर रहे हैं ?"—कुन्द ने विमूढ़ होकर पूछा ?

"जी हाँ, उन्हीं का प्रस्ताव तो मैं लाया हूँ।"

"तो कुमार की उदारता और त्याग धन्य है।" उनके चरणों में मेरा प्रणाम कहिए। परन्तु यह अधर्म मुझसे न होगा। हे ईश्वर ! पवित्र अतिथि से विश्वासघात करने की आप सम्मति दे रहे हैं !"

"विश्वासघात कैसे ?"

"नहीं, नहीं, कदापि नहीं।"

शीला ने निकट आकर कहा—देवी ! मेरी यह तुच्छ भेंट आपको स्वीकार करनी ही पड़ेगी। आप पतिप्राणा, साध्वी और धर्मात्मा हैं, आपका सौभाग्य अचल रहे। श्रेष्ठिवर महान् पुरुष हैं, मुझे प्रसन्नता होगी कि मेरा शरीर मेरे मित्र के काम आया।

कुन्द ने रोते-रोते कहा—राजकुमार ! ऐसी अधर्म की बात मुख से न निकालिए।

"अधर्म नहीं, देवी ! मुझे तो स्वयं सम्राट् के निकट जाना ही है।"

"परन्तु मैं यह कुकृत्य न करूँगी ?"

"तब श्रेष्ठिवर मुक्त किस प्रकार होंगे ?"

"जैसी प्रभु की इच्छा होगी, वही होगा।"

"प्रभु की इच्छा ही से यह सुयोग हाथ लगा है ?"

"नहीं, नहीं, कदापि नहीं।"

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"तब मुझे स्वयं यह कार्य करना होगा ?"

"नहीं; राजकुमार ! मुझे अधम न बनाइए !"

"देवी ! और कोई उपाय ही नहीं है, फिर यों मुक्त होने पर श्रेष्ठिवर कुछ न कुछ उपाय मुझे मुक्त करने का कर ही लेंगे, और यह तो मैं स्वयं कर रहा हूँ। सोचिए तो, श्रेष्ठिवर को वहाँ कितना कष्ट और वेदना होगी !"

कुन्द व्यथित और खिन्न-सी कुमार की ओर देखती रही।

कुमारी ने कहा—लल्ल ! तब तुम यह सन्देश राज-द्वार पर ले जाओ और नगराध्यक्ष को बुला लाओ।

लल्ल ने प्रस्थान किया। कुन्द ने बहुत बाधा दी। कुछ ही क्षण में सैनिकों सहित नगराध्यक्ष ने आकर कुमारी को बाँध लिया और १० तोड़े वहीं गिन कर उसे ले चले। कुन्द और महारानी दोनों पछाड़ खाकर गिर पड़ीं।

५

"किस महोदय ने इतनी कृपा की कुन्द ! धन्य है वह प्रभु। परन्तु हाँ, अतिथियों का ठीक सत्कार तो हुआ ? ओह ! तुम्हारा मुख इतना सफ़ेद क्यों हो रहा है कुन्द ! तुम इतनी दुःखी क्यों हुईं ? अरे ! रोने लगीं ?"

कुन्द चुपचाप पति के चरणों में गिर कर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। उपगुप्त ने कहा—कुन्द ! अब इतना दुःख क्यों, तुम उस कृपालु मित्र का नाम तो बताओ। मैं तनिक उसे धन्यवाद दे आऊँ। कुन्द ने रोते-रोते सब घटना बयान कर दी।

मानों सहस्र बिच्छुओं ने दंश किया। उन्होंने तड़प कर कहा—क्या कहा ? कुमार को पकड़ा कर यह धन प्राप्त किया ?

कुन्द निरुत्तर रही।

"कुन्द ! कुन्द ! यह पातक तुमने किया ? मेरा जन्म, जीवन, यश, धर्म—सभी नष्ट किया। कुन्द ! तुम ऐसी थीं ? यह तो आशा न थी। हाय ! बड़ा अनर्थ—बड़ा अधर्म हुआ !" इतना कह कर श्रेष्ठिवर विकल हो इधर से उधर टहलने लगे।

लल्ल ने धीरे-धीरे प्रवेश करके कहा—श्रेष्ठिवर ! कुमार ने स्वेच्छा से यह काम किया है, कुन्द का इसमें तनिक भी अपराध नहीं। ये तो अन्त तक सहमत न हुई थीं।

उपगुप्त ने रोते-रोते कहा—महानायक ! अब क्या होगा ? मैं कैसे इस पातक से उऋण होऊँगा ? कैसे मैं अब प्राण देकर कुमार को लाऊँ ? और आप जैसे विवेकी वृद्ध के रहते कैसे यह कुकर्म होने पाया ? कुन्द ! स्त्रियों से इसी लिए ज्ञानी पुरुष घृणा करते हैं, स्त्रियाँ इतनी तुच्छ हैं, इतनी स्वार्थी हैं ? हा—हा ! कुन्द ! तुम सब स्त्रियों में अधम रहीं—तुमने अपने स्वार्थ के—पति के स्नेह के लिए पवित्र अतिथि को × × × कहते-कहते श्रेष्ठिवर धरती पर गिर गए।

धीरे-धीरे रानी ने घर में प्रवेश करके कहा—श्रेष्ठिवर ! क्या आपको यह विश्वास नहीं होता कि हम तीनों में से किसी को इस घटना का दुःख नहीं ? फिर कुमार की तो यह इच्छा ही थी। वह वैसे भी सम्राट् की सेवा में जाता। इसके सिवा कुन्द किसी तरह अपमान की पात्री नहीं। जैसे आप धर्मात्मा, विनयी और महान् हैं, वैसी ही आपकी पत्नी भी हैं। श्रेष्ठिवर ! शोक त्याग कर अब यह उपाय सोचना चाहिए कि हमारा कर्तव्य क्या है ?

उपगुप्त उठ बैठे। उन्होंने कहा—सोचिए ! मैं किस प्रकार कुमार को ला सकता हूँ ?

तीनों व्यक्तियों में सलाह हुई। अन्त में यही निर्णय हुआ कि उन सैनिकों के साथ, जो कुमार को ले जा रहे हैं, हम लोग भी राजधानी को चलें। वहाँ जैसा कुछ होगा, देखा जायगा। यह निर्णय करके उपगुप्त ने कुन्द की ओर देख कर स्निग्ध स्वर में कहा—कुन्द, आओ ! इन पूज्य अतिथियों के सम्मुख हम-तुम भी कुछ परामर्श कर लें ! यह तो तुमने देखा ही कि यह धन कितने अपमान और अधर्म की जड़ है। आओ, हम मन, वचन, कर्म से इस धन का त्याग करें, मैंने श्रेष्ठि पद त्यागा, मैं दरिद्र-राज हुआ ! आज से धनमात्र मेरे लिए लोष्ठवत् हुआ और तुम्हारे लिए भी, कुन्द !

कुन्द ने चुपचाप स्वीकृति दी।

"अच्छा, अब आज से हम लोग न धन छुएँगे, न धन से हमारा सम्बन्ध रहेगा। अब दूसरी बात सुनो ! यह घनिष्ठ सम्बन्ध भी—जैसा कि हमारे-तुम्हारे बीच में है—दुःख और पाप का मूल है। देखो, इसी घटना ने कितने दुःख और पाप का प्रदर्शन कराया ! आओ, हम लोग इस सम्बन्ध का भी विच्छेद करें ! कुन्द, आज से हम लोग पति-पत्नी नहीं ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जगत में विचरण करो, जगत की सेवा करो। मैं कुमार को छुड़ा कर तब यह करूँगा।" इतना कह कर उपगुप्त उठे! कुन्द वज्राहत की तरह धरती पर गिर गई। उपगुप्त ने उधर देखा भी नहीं। वे अति गम्भीर मुद्रा में घर से बाहर हुए।

६

ग्रीष्म की ज्वलन्त लू और उत्ताप की तनिक भी परवा न करके सैनिक ने पर्वत की उपत्यका में घोड़ा छोड़ दिया था। आगे-आगे एक हरिण प्राण लेकर भाग रहा था। युवक सैनिक के धनुष पर बाण चढ़ा था। उसे उसने कान तक खींच कर मारा। बाण हरिण के पैरों में लगा। पर वह प्राण-सङ्कट को समझ कर गर्म-गर्म रुधिर-विन्दु टपकाता आहत होकर उपत्यका के एक पार्श्व में भाग कर छिप गया। हरिण को सम्मुख न देख कर सैनिक घोड़े से उतर पड़ा—वह रक्त-विन्दु के चिन्ह देखता-देखता आगे बढ़ा।

सम्मुख एक घने अश्वत्थ के वृक्ष के नीचे शीतल छाया में एक वृद्ध भिक्षु बैठा था। उसकी गोद में वही हरिण था—वह यत्न से उसके पैर से तीर निकाल कर उसके घाव पर पट्टी बाँध रहा था।

युवक ने वहाँ पहुँच कर क्रोध से कहा—तू कौन है, पाखण्डी?

"तुम्हारा कल्याण हो!"—वृद्ध भिक्षु ने सिर उठा कर कहा।

"पर तू है कौन?"

"मैं भिक्षु हूँ!"

"भिक्षु, तेरा यह साहस कि मेरे आखेट को हाथ लगा सके? इसे अभी छोड़ दे!"

"क्यों?"

"यह मेरा आखेट है!"

"यह तेरा किसलिए है?"

"मैंने इसे मारा है?"

"मारने वाला किसी का स्वामी नहीं हुआ करता, शत्रु होता है; और शत्रु का कोई अधिकार नहीं होता। स्वामी होता है बनाने वाला, उसी का अधिकार भी होता है।"

"तू बड़ा धृष्ट प्रतीत होता है।"

"साधु के लिए विनय और धृष्टता क्या है?"

"तब इसे छोड़ दे—यह मेरा शिकार है।"

"नहीं, यह मेरा आश्रित दीन पशु है।"

"इसे मैंने मारा है।"

"इसकी मैंने रक्षा की है।"

सैनिक का क्रोध और तेज मानो व्यर्थ जा रहा था। ऐसे धृष्ट प्रश्नोत्तर का उसे अभ्यास न था। परन्तु वृद्ध साधु का प्रभाव उस पर पड़ रहा था। उसने कहा—तू इसका क्या करेगा?

"मैं इसे नीरोग करके छोड़ दूँगा, यह फिर आनन्द से विचरण करेगा।"

"तू अवश्य इसका मांस खायगा। तू धूर्त है, मेरा आखेट हड़पना चाहता है।"

"युवक सैनिक, शान्त हो, हिंसक से रक्षक बड़ा है। जो व्यक्ति एक कीड़ा भी नहीं बना सकता, वह इतने बड़े पशु को कैसे मारता है? इसका उसे अधिकार क्या है? हम लोग भक्षक नहीं, रक्षक हैं। निकट ही हमारा विहार है, वहाँ बहुत से बौद्ध भिक्षु हैं, जो प्राणियों की सेवा-शुश्रूषा करते हैं। रोगी जीव-जन्तु की चिकित्सा की जाती है और प्रेम और दया हमारा धर्म है।"

युवक चुपचाप खड़ा रहा। उसने कहा—मैं तेरा वह विहार देखूँगा?

वृद्ध ने चलने का आयोजन करके कहा—मेरे साथ आओ। उसके पास और भी कई रोगी और घायल पशु थे। उन सबको उसने उठाया। सैनिक ने कहा, इतना भार तुम नहीं उठा सकते, लाओ यह हरिण मैं ले चलूँ।

युवक का स्पर्श पाते ही हरिण छटपटाने लगा।

भिक्षु ने कहा—उसे मत छुओ। उसे तुमसे घृणा है। भिक्षु ने उसे गोद में ले लिया। वह शिशु की तरह उसकी गोद में सो गया।

दोनों चले। युवक का गर्व भङ्ग हुआ। वह सोचता जा रहा था—मैं समझता था, पृथ्वी भर के राजमुकुट मेरे चरणों में गिरते हैं, और सभी मेरी प्रतिष्ठा करते और मुझसे भय खाते हैं। पर यह तुच्छ पशु भी मुझसे घृणा करता है? इस वृद्ध भिक्षु में ऐसा क्या गुण है, जो यह मूक प्राणी भी इस पर विश्वास करता, प्रेम करता और आत्मसमर्पण करता है? हाय! मैं इतना अधम हूँ। एक बार उसने रक्त और धूल से भरे अपने

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वर्षों को देखा। एक गम्भीर श्वास ली और नीचा सिर किए साधु के पीछे-पीछे चला।

७

वन-प्रदेश के एक घने कुञ्ज में वह विहार था। वहाँ पूर्ण शान्ति और आनन्द का राज्य था। उत्तप्त सूर्य की किरणें उस दुर्भेद्य वृक्ष-राशि को पार कर नहीं सकती थीं। उस सघन छाया में बहुत सी पर्ण-कुटियाँ बनी थीं, जहाँ भिन्न-भिन्न आयु के वीतराग बौद्ध साधु ज्ञानचर्चा में मग्न थे। रोगी और घायल पशु और मनुष्यों की चिकित्सा हो रही थी। सहस्रों पशु-पक्षी निर्भय किलोलें कर रहे थे। वृद्ध के पहुँचते ही दो साधुओं ने दौड़ कर वृद्ध का बोझ ले लिया और वे उनके उपचार में लगे। युवक सैनिक विमूढ़-सा खड़ा यह सब देख रहा था। ऐसी शान्ति और आनन्द उसने अपने जीवन में नहीं देखा था। एक नई भावना उसके हृदय में उदय हो रही थी—वह कुछ सोच रहा था। एक नवीन तेज उसके नेत्रों में दीप्त हो रहा था।

एक प्रचण्ड जयघोष हुआ—'महामोगलीपुत्र तिष्य की जय!' युवक ने दृष्टि उठा कर देखा—सम्मुख एक तेज-मूर्ति चली आ रही है। प्रशान्त मुखमण्डल, गम्भीर गति, महान् व्यक्तित्व। युवक ने सोचा, यह क्या? यही महाप्राण भगवान् मोगलीपुत्र तिष्य हैं, जिनके विषय में सुना गया है कि उनके दर्शन होना दुर्लभ है। और जिसे एक बार उनके दर्शन हो जाते हैं, वह धन्य समझा जाता है! युवक एकटक उस महान् शरीर को देखता रहा।

भगवान् तिष्य ने युवक के निकट आकर कहा—चक्रवर्ती सम्राट की जय हो!

एक अतर्क्य शक्ति के प्रभाव से सम्राट ने साधुवर के चरणों में सिर झुका दिया। भिक्षु-मण्डल अवाक् रह गया। भगवान् तिष्य ने कहा—सम्राट! इस वृद्ध भिक्षु ने अज्ञान में यदि कुछ अनाचार किया हो तो क्षमा करें—चक्रवर्ती से इसका परिचय नहीं।

सम्राट ने कहा—प्रभो! आज मैं कृतकृत्य हुआ। साम्राज्य के प्रचण्ड सम्मान और परिच्छद में मुझे ऐसी शान्ति नहीं मिली, जो आज मैं इस तपोवन में प्राप्त कर रहा हूँ। भगवान् के दुर्लभ दर्शन पाकर मैं और कृतार्थ हुआ। प्रभो! कलिङ्ग के युद्ध में मैंने एक लक्ष प्राणियों का वध किया है। अब देखता हूँ, वध करने से रक्षा करना श्रेष्ठ है। मैं समझता था कि पृथ्वी के महाराजा भी मेरा सम्मान करते हैं। परन्तु आज अधम प्राणी को घृणा करते देख कर मेरे मन में प्रबल आत्म-ग्लानि उदय हुई है। प्रभो! रक्षा करें। यह किङ्कर आपकी शरण है।

"सम्राट!" भगवान् तिष्य ने कहा—"आपकी धर्म में अभिरुचि हुई, यह बहुत शुभ हुआ। भगवान् बुद्ध ने भी इसी प्रकार अकस्मात् ज्ञान प्राप्त किया था। शक्ति और अधिकार द्वारा अधीनों को वश में करने की अपेक्षा प्रेम और दया से प्राणि-मात्र का जीतना श्रेयस्कर है। शरीर को अधीन करने की अपेक्षा आत्मा को वशीभूत कर लेना सच्ची विजय है। आप पृथ्वी के चक्रवर्ती सम्राट हैं; परन्तु जब आप पृथ्वी की आत्माओं को वशीभूत कर लेंगे, तो आपकी अक्षय विजय होगी। आप अमर होंगे।

सम्राट् ने नत मस्तक होकर कहा—भगवन्! मुझे सत्ज्ञान प्रदान कीजिए। मैं प्रेम और दया द्वारा प्राणियों की आत्मा को विजय करूँगा। क्षमा मेरा शस्त्र, दया मेरी नीति, और त्याग मेरा शासन होगा।

'तथास्तु' तब सम्राट् आपका नाम 'चण्डाशोक' के स्थान पर 'देवानां प्रिय' प्रसिद्ध होगा। आपका कल्याण हो, आप आज से देवताओं को प्रिय हुए। कहो—

"बुद्धं सरणं गच्छामि!
"धम्मं सरणं गच्छामि!
"संघं सरणं गच्छामि!"

सम्राट् ने पृथ्वी पर घुटने टेक कर उपरोक्त पंक्तियों को दुहराया। मोगलीपुत्र तिष्य ने पवित्र अभिसिञ्चन करके कहा—समाट् देवानां प्रिय अशोक की जय हो! आओ सम्राट्, अब मैं आपको आपके आचार्य का परिचय कराऊँगा, जिनसे गुरुवत् आपको व्यवहार करना होगा; जो परम वीतराग, महान् धर्मात्मा और एकनिष्ठ महापुरुष हैं, जिनकी आत्मा में महान् बुद्ध का निवास है। वे सदैव आपके साथ रहकर आपको कल्याण का मार्ग बतावेंगे और आपको सुमति की शिक्षा देंगे। उनके वचन का अनुसरण करके आप पृथ्वी पर और स्वर्ग में अक्षय कीर्ति प्राप्त करेंगे।

आचार्य तिष्य इतना कह कर पीछे को मुड़े। एक घने

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कुञ्ज में छोटी सी कुटिया के द्वार पर जाकर पुकारा—आचार्य उपगुप्त ! सम्राट् आपकी सेवा में समुपस्थित है ?

आचार्य उपगुप्त—वही श्रेष्ठिराज उपगुप्त—पीत परिधान किए, मुण्डित सिर, विनम्रमुख कुटी से बाहर आए। सम्राट् अशोक ने पृथ्वी पर गिर कर उनको प्रणाम किया और कहा—आचार्य ! मुझे सन्मार्ग बताइए।

आचार्य उपगुप्त की मुद्रा भङ्ग न हुई, न उन्होंने दृष्टि उठाई ! उनके नेत्रों में अश्रुधारा प्रवाहित हुई। आचार्य तिष्य ने कहा—आचार्य ! सम्राट् आपके तत्त्वावधान में पृथ्वी पर धर्म-विस्तार करेंगे—आप ही सम्राट् को सन्मार्ग बताने योग्य हैं, आप सम्राट् का प्रणाम ग्रहण कीजिए।

आचार्य उपगुप्त ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—देवानां प्रिय सम्राट् की जय हो। परन्तु आचार्य ! सम्राट् का भार मुझ पर न डालें, सम्राट ! आचार्य तिष्य के रहते और कौन सम्राट् को सन्मार्ग बतावेगा ?

भगवान् तिष्य ने कहा—आचार्य ! आत्मा पर सदैव ही अज्ञान का आवरण रहता है और उस आवरण को भेद करने के लिए एक रहस्यविद् की आवश्यकता है। आप ही वह रहस्यविद् हैं। आचार्य ! अपने शिष्य का कल्याण चिन्तन कीजिए—मेरा कार्य समाप्त हुआ। यह कह कर मोगलीपुत्र तिष्य अन्तर्धान हुए। सम्राट् और उपगुप्त क्षण भर विमूढ़ रहे। अब आचार्य उपगुप्त ने नेत्र उठ कर कहा—चक्रवर्ती, भीतर कुटी में पधार कर कृतार्थ करें।

दोनों महान आत्माएँ कुटी में प्रविष्ट हुईं।

८

आचार्य उपगुप्त ने कहा—हे सम्राट् ! यह दुःख उत्तम सत्य है। जन्म दुःख है, नाश दुःख है, रोग दुःख है, मृत्यु दुःख है, जिन वस्तुओं से हम घृणा करते हैं, उनका उपस्थित होना दुःख है। जिन वस्तुओं की हम अभिलाषा करते हैं, उनका न मिलना दुःख है। सारांश यह कि जीवन की पाँचों कामनाओं में लगे रहना दुःख है। दुःख के कारण का उत्तम सत्य यह है। लालसा पुनर्जन्म का कारण है, जिसमें सुख और लालच होते हैं। दुःख के दूर होने का उत्तम सत्य यह है—वह लालसा के पूर्ण निरोध से समाप्त होता है। यह निरोध किसी कामना की अनुपस्थिति से, लालसा को छोड़ देने से, लालसा के बिना कार्य चलाने से, उसकी मुक्ति पाने से, और कामना का नाश होने से होता है। सम्राट् ! क्या आप इस गूढ़ तत्व को समझे ?

"नहीं भगवन् !"

"सम्राट् ! जीवन दुःख है, जीवन और उसके सुखों की लालसा दुःखों का कारण है। उस लालसा के मर जाने से दुःख का अन्त होता है। और पवित्र जीवन से यह लालसा मर जाती है। पवित्र जीवन आठ विषयों में विभाजित किया गया है :—

"(१) सत्य विश्वास, (२) सत्य कामना, (३) सत्य वाक्य, (४) सत्य व्यवहार, (५) जीवन-निर्वाह के सत्य उपाय, (६) सत्य उद्योग, (७) सत्य विचार, (८) सत्य ध्यान।

"ये आठ विधियाँ आठ ग्रन्थों के समान हैं। शुद्ध विचार और शुद्ध विश्वासों को सीखना और उनका सत्कार करना चाहिए, उच्च उद्देश्य और कामनाएँ हृदय के नेत्र के सामने सदा उपस्थित रहनी चाहिए। प्रत्येक वाक्य में सत्यता, सुशीलता होनी चाहिए, और व्यवहार में सत्यता और पूर्ण शुद्धता। जीवन का उपाय इस प्रकार ढूँढ़ कर ग्रहण करना चाहिए, जिससे किसी जीवित या चैतन्य प्राणी को कोई कष्ट न हो। भलाई करने में तथा दया, सुशीलता और परोपकार के कार्यों में जीवन के अन्त तक निरन्तर उद्योग करना चाहिए। मन और बुद्धि से चेतन और कार्य-तत्पर होना चाहिए। शान्त और धीर विचार से जीवन को सुख प्राप्त होता है। यह कामना, मनःक्षोभ और जीवन की लालसा को जीतने का मार्ग है।

"सम्राट् ! यह तथागत बुद्ध की शिक्षाओं का सार है। आपने समझा ?"

"हाँ, आचार्य ! परन्तु संसार में सुखी कौन है ?"

"जिसने अपनी यात्रा समाप्त कर ली है, और शोक को छोड़ दिया है, जिसने अपने को सब ओर से स्वतन्त्र कर लिया है, जिसने सब बन्धनों को तोड़ डाला है, उसके लिए कोई दुःख नहीं। वह सुखी है।"

"आचार्य ! मैं सुखी नहीं हूँ। मैं सुखी होने की चेष्टा करूँगा। मुझे साधारण उपदेश प्रदान करें—मुझे कर्तव्य-पथ बतावें।"

आचार्य ने कहा—सम्राट् ! सन्मार्गी को किसी जीव

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को नहीं मारना-मरवाना चाहिए और यदि दूसरे लोग उसे मारें तो उसे सराहना नहीं चाहिए। सब जन्तुओं को, चाहे वे बलवान् हों वा बलहीन—उन सबके मारने का विरोध करना चाहिए।

उसे किसी की वस्तु भी नहीं लेनी चाहिए, जिसे कि वह जानता है कि वह दूसरे की है और जो उसे दी नहीं गई है। ऐसी वस्तु उसे दूसरों को भी न लेने देना चाहिए, और जो लें उन्हें न सराहना चाहिए। उसे सब प्रकार की चोरी का त्याग करना चाहिए।

उसे व्यभिचार का त्याग जलते हुए कोयले के समान करना चाहिए। यदि वह इन्द्रियों का निग्रह न कर सके, तो उसे पर-स्त्री से व्यभिचार तो न करना चाहिए।

उसे झूठ न बोलना चाहिए, न दूसरों से बुलवाना चाहिए। जो झूठ बोले उन्हें न सराहना चाहिए। उसे सब प्रकार असत्य का त्याग करना चाहिए।

उसे कोई मादक द्रव्य न सेवन करना चाहिए—न दूसरों को पिलाना चाहिए, न पीने वालों को सराहना चाहिए।

सम्राट्! ये पाँच शील हैं, इनका सद्धर्मी को अवश्य पालन करना चाहिए।

"भगवन्! मैं आज से इनका पालन करूँगा।"

"सम्राट्! भगवान् बुद्ध कहते हैं—

"घृणा कभी घृणा से नहीं जीती जाती। घृणा प्रीति से बन्द होती है। यही इसका स्वभाव है।

"जो हमसे घृणा करते हों, उनके बीच हमें घृणा-रहित हो प्रीतिपूर्वक रहना चाहिए।

"क्रोध को प्रीति से जीतना चाहिए। बुराई को भलाई से विजय करना चाहिए। लालच को उदारता से और झूठ को सत्य से जीतना चाहिए।

"उस मनुष्य के उत्तम और फलहीन शब्द, जो उनके अनुसार कार्य नहीं करता, उस सुन्दर फूल की नाईं हैं जो रङ्ग में सुन्दर, परन्तु गन्धरहित हैं।

"भलाई करने वाला जब संसार छोड़ कर परलोक को जाता है, तो उसे वहाँ उसके भले कर्म उसके सम्बन्धी और मित्रों की नाईं उसका स्वागत करते हैं।

"वह मनुष्य बड़ा नहीं है, जिसके सिर के बाल पक गए हैं, जिसकी अवस्था बड़ी हो गई है—वह तो वृथा ही वृद्ध कहलाता है। वह मनुष्य, जिसमें सत्य, पुण्य, प्रीति, आत्मनिरोध और संयम है—वह, जो अपवित्रता से रहित और बुद्धिमान् है—वही बड़ा है।"

आचार्य उपगुप्त ने इतना कह कर ऊपर नेत्र उठाए! फिर दोनों हाथ उठाकर कहा—सम्राट् का कल्याण हो! देवानां प्रिय! प्रियदर्शी सम्राट् की धर्म-विजय हो। हे सम्राट्! इस महान् धर्म की दीक्षा आपने ली, अब आप देश-देशान्तरों में धर्म-विस्तार कीजिए।

सम्राट् ने नत-मस्तक होकर 'जो आज्ञा' कहा, और बिदा हुए।

९

सन्ध्या का समय था। सम्राट् वाटिका में धीरे-धीरे गम्भीर मुख-मुद्रा किए टहल रहे थे। समस्त भारत के चक्रवर्ती सम्राट् के सम्मुख ऐसी गहन समस्या न आई थी। उनका चिन्तनीय विषय था कलिङ्गराज का दुर्धर्ष अपघात। वे सोच रहे थे, मैंने एक हरे-भरे सुखी राज्य का अकारण विध्वंस किया। कलिङ्गराज न जाने कहाँ कैसे मारे गए। उनके युवराज भी पता नहीं कहाँ हैं। और उनका परिवार न जाने किस दुर्दशा में है। कैसे मैं इस पातक से उऋण होऊँगा।

सम्राट् के ज्ञान-चक्षु खुल गए थे और उन्हें महान् दया-धर्म का तत्व प्रकट हो गया था। वे सोच रहे थे कि किस प्रकार इस दुष्कर्म का प्रतिशोध किया जाय।

हठात् एक दण्डधर ने निकट आकर अभिवादन करके कहा—प्रभो! कलिङ्ग राजकुमार को लेकर महानायक आए हैं।

अशोक ने उत्फुल्ल होकर कहा—उन्हें अभी यहाँ ले आओ। क्षण-भर ही में कलिङ्ग राजकुमार को लेकर महानायक ने सम्राट् का अभिवादन करके राजकुमार से कहा—कुमार! सम्राट् का अभिवादन करो!

कुमार ने हँस कर कहा—महानायक, आपकी आज्ञा की आवश्यकता नहीं, आपके सौजन्य के लिए, जो आपने मार्ग भर में मुझ पर किया, मैं आभारी हूँ। अब मैं सम्राट् के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए, स्वयं सोच-समझ लूँगा। आप सम्राट् की आज्ञा लेकर जा सकते हैं।

महानायक ने विमूढ़ होकर राजकुमार के इस प्रगल्भ भाषण को सुना। वह खड़ा रह गया। सम्राट् भी चकित हुए। उन्होंने दृष्टि गाड़ कर राजकुमार की मुख-मुद्रा देखी।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कुमार ने एक कटाक्षपात करके मुख नीचा कर लिया और कहा—सम्राट्, महानायक को आज्ञा प्रदान करें तो मैं सम्राट् का अभिवादन करूँ।

सम्राट् ने महानायक को जाने का सङ्केत किया और कुमार के निकट आकर कहा—कलिङ्ग-राजकुमार! अभिवादन की आवश्यकता नहीं। मैंने तुम्हारे राज्य और परिवार के साथ बड़ा अन्याय और अत्याचार किया। मैंने तुम्हें इसलिए बुलाया है कि अब तुम्हारे पूज्य पिता का पता लगाना कठिन है राजकुमार! तुम चाहो तो मुझे उस अपराध का दण्ड दो। परन्तु मैं चाहता हूँ कि तुम मुझे शत्रु न समझो प्रिय राजकुमार! क्या तुम मेरा अनुरोध रक्खोगे? छद्मवेशी राजकुमार कण्टकित होकर दो क़दम पीछे हट गए। उन्होंने धरती पर घुटने टेक कर सम्राट् का अभिवादन किया और कहा—चक्रवर्ती की जय हो! राजा राजाओं से युद्ध करते हैं—जय-विजय एक पक्ष की होती ही है। सम्राट् को विजित राज्य के बन्दी राजपुत्र के प्रति इतने शिष्टाचार की आवश्यकता नहीं

"नहीं राजकुमार! अकारण ही मैंने उस समृद्धि-शाली राज्य को भ्रष्ट किया और अब अकारण ही कुमार! तुम्हारे प्रति मेरे हृदय में अपूर्व प्रेम उमड़ रहा है—यह क्या बात है? अच्छा अपना हाथ तो मुझे दो प्रिय—परम प्रिय कुमार?"

कुमार ने पीछे हट कर कहा—नहीं श्रीमान्! यह सेवक इस सम्मान के योग्य नहीं। श्रीमान् को भी शत्रु-पुत्र का इतना सत्कार करना उचित नहीं।

"शत्रु-पुत्र नहीं, कुमार! मैंने निश्चय किया है कि मैं तुम्हारे पिता का राज्य तुम्हें युद्ध-क्षति सहित लौटा दूँगा, इसके सिवा और भी जो माँगो, मैं दूँगा।"

"सम्राट् क्या सत्य ही प्रतिज्ञाबद्ध होते हैं?"

"हाँ, हाँ, प्रिय कुमार! मैं वचन देता हूँ।"

"सम्राट् मुझे मेरी माँगी वस्तु देंगे?"

"अवश्य। चाहे वह सिंहासन ही क्यों न हो!"

"सिंहासन ही तक बस?" छद्मी कुमार ने कटाक्ष-पात किया।

"प्राण भी, शरीर भी!" प्यारे कुमार! तुम्हारी चितवन कितनी प्यारी है। लाओ अपना हाथ तो दो।"

"तब आपके प्राण और शरीर मेरे हुए? श्रीमान् फिर विचार लें। यह तुच्छ हाथ उपस्थित है।"

सम्राट् उसे पकड़ने को लपके। आचार्य उपगुप्त ने उच्च स्वर से पुकार कर कहा—"चक्रवर्ती! तनिक धैर्य!" चक्रवर्ती ने देखा—आचार्य दो व्यक्तियों के साथ आ रहे हैं। दोनों व्यक्ति दूर खड़े रह गए। आचार्य आगे बढ़े। सम्राट् ने आगे बढ़ कर आचार्य के चरणों में प्रणाम करके कहा—आचार्य! कलिङ्ग-राजकुमार जितेन्द्र उप-स्थित हैं। मैंने इन्हें इनका राज्य और युद्ध-क्षति तो दी ही है, अपना शरीर और प्राण भी दिया—ये इसके स्वामी हैं। कुमार! आचार्य को प्रणाम करो।

छद्मवेशी कुमार आगे बढ़ कर आँखें फाड़ फाड़ कर आचार्य उपगुप्त की ओर देखने लगे! आचार्य ने आगे बढ़ कर कुमार के मस्तक पर हाथ धर कर कहा—कल्याण! कल्याण!

छद्मवेशी राजकुमार के ओंठ फड़क कर रह गए। उसके मुख से अस्पष्ट स्वर में निकला—"श्रेष्ठि...व...!" आचार्य ने सम्राट के निकट पहुँच कर मधुर मुस्कान के साथ कहा—चक्रवर्ती ने बड़ी ही बुद्धिमत्ता से अपना प्राण और शरीर सुपात्र को दिया। हाँ, अब आप उस पवित्र हाथ का ग्रहण करिए! इतना कह कर आचार्य ने सम्राट् का हाथ पकड़ लिया।

सम्राट् चकित हुए। कुमार का मुख लाल हो गया। वे दो क़दम पीछे हट गए। आचार्य ने कहा—कलिङ्ग महाराज कुमारी शीला! तुमने स्वयं ही यह क्रय-विक्रय किया है, अब सङ्कोच क्यों?

सम्राट् के मुख से निकल गया—क्या कहा? कलिङ्ग महाराज कुमारी शीलादेवी! आचार्य, आप क्या कहते हैं?

आचार्य ने उधर ध्यान न देकर कहा—महाराज-कुमारी, अब अपना छद्मवेश त्याग दीजिए और तनिक निकट आइए! इतना कह कर उन्होंने कुमारी का हाथ सम्राट के हाथों में पकड़ा दिया।

दोनों का हृदय-स्पन्दन क्षण भर को रुक गया। कुछ शान्त होने पर सम्राट् ने कहा—आचार्य! कुकर्म का यह सुफल क्यों?

आचार्य ने कहा—सम्राट्! यह सुकर्म का फल है। देखिए, वह कलिङ्गराज और महाराज कुमार खड़े हैं, उनका स्वागत करें।

सम्राट् दौड़ कर कलिङ्गराज के पैरों में झुके।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कलिङ्ग-महाराज महेन्द्र ने उठा कर उन्हें छाती से लगा लिया। दोनों महानृपति तनमन से एक हो गए। इसके बाद आचार्य ने कुमारी के त्याग और साहस का सारा विवरण कह सुनाया। पिता ने पुत्री को छाती से लगाया और अपने हाथ से उसे सम्राट् के हाथों में सौंप कर कहा—सम्राट्! यद्यपि आप इसे भी मेरे देने से पूर्व ही ले चुके, परन्तु फिर भी मेरे हाथ से इसे एक बार ग्रहण कीजिए।

सम्राट् ने नत-मस्तक होकर कुमारी का पाणिग्रहण किया। साम्राज्य भर में आनन्दोत्सव की धूम होगई। कलिङ्गराज बनवासी हुए और महाराजकुमार जितेन्द्र कलिङ्ग की गद्दी पर विराजित हुए।

दमयन्ती-विलाप

[रचयिता—प्रोफ़ेसर मणिराम जी गुप्त]

(१)

सिधारे तुम कहाँ हे प्राणप्यारे,
रही जीती तुम्हारे ही सहारे!
कहो अपराध क्या है नाथ मेरा,
भला क्यों छोड़ भागे साथ मेरा!!

(२)

तुम्हारे बिन कहो कैसे रहूँगी,
विरह की वेदना कैसे सहूँगी!
भला क्योंकर न व्याकुल मीन होवे,
न तड़पे क्यों अगर जलहीन होवे!!

(३)

विजन बन में मुझे तुम छोड़ भागे,
जहाँ कोई न पीछे है न आगे!
बिलखती आपकी वन बीच दासी,
दया आती न क्या मुझ पर ज़रा सी!!

(४)

फटी जाती है मेरी हाय! छाती,
अगर फटती मही उसमें समाती!
कहाँ जाऊँ, किसे मैं अब बुलाऊँ?
कहाँ निज प्राणधन को हाय! पाऊँ!!

(५)

पड़ी जब बेख़बर मैं सो रही थी,
बिलखती भाग्य पर निज रो रही थी!
कहो क्या आपने मन में विचारा,
गए जो खींच यों मुझसे किनारा!!

(६)

खुला जब हा! अचानक नेत्र मेरा,
गया छा सामने मेरे अँधेरा!
अहो मुझ पर अचानक वज्र टूटा,
मेरा दुर्दैव ने सर्वस्व लूटा!!

(७)

अरे तू मृत्यु! क्यों जल्दी न आती,
विरह से जल रही है हाय! छाती!
निगोड़ी तू भला क्यों देर करती,
न आकर क्यों भला मम दुःख हरती!!

(८)

धरा फट जा तुझी में मैं समाऊँ,
तड़पती हूँ तनिक आराम पाऊँ!
कुटिल दुर्दैव! होती नीति तेरी,
किसी पर भी न होती प्रीति तेरी!!

(९)

न कोई हाय! तेरा भेद पाता,
मुझे तू किस लिए यों है सताता?
सदा से नाम है बदनाम तेरा,
सदा विपरीत होता काम तेरा!!

(१०)

विचरती थी कभी मैं सुख-सदन में,
रही हूँ ठोकरें खा आज वन में!
कभी मम दुःख का अन्त होगा?
कभी दर्शन पुनः तव कन्त! होगा!!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विचार-रश्मियाँ

[ले० प्रोफ़ेसर विश्वमोहनकुमार सिंह जी, एम० ए०, बी० एल०]

" Wiser than wisdom is thy simple lore,
.....Grow thou, flower ! "
—E. Arnold.

"बुद्धिमत्ता से भी उत्कृष्ट तेरी सरल कहानियाँ हैं, ऐ सुमन, तेरी वृद्धि हो !"

इन दिनों स्त्री-सम्बन्धी प्रश्न बड़ा ही जटिल, किन्तु मनोरञ्जक हो रहा है। जिस प्रकार स्वराज्य और स्वतन्त्रता के विचार लोगों के हृदय को उद्विग्न कर रहे हैं, उसी प्रकार स्त्रियों का स्वरूप और उनका जीवन में स्थान भी विचारशील जनों को बेचैन कर रहा है। जब तक हम अन्धकार में थे—मोहावच्छन्न थे, हमने उन्हें ठुकराया था, तुच्छ दृष्टि से देखा था। पर इस जाग्रति-काल में, संसार-सम्पर्क के समय में, जब हमारी आँखें खुली हैं—हमने देखा, जिसे हम सर्प समझे बैठे थे, वह सर्प नहीं, पुष्पों की माला है; काँच का ढेर नहीं, मोतियों की लड़ी है; काम का क्रीड़ास्थल नहीं, आत्मा की अनन्त पिपासा बुझाने के लिए शान्ति और आनन्द का श्रोत है। उन्हें भुलाना न होगा। उन्हें भूल कर ही हम अपने को भूल गए हैं—जन्म-सिद्ध अधिकारों से वञ्चित हो गए हैं; जीवन सुमन-विहीन कण्टकों की क्यारी बन गया है, सलिल-विहीन विशद बालुकाराशि बन गया है।

सबसे पहला प्रश्न स्त्रियों के स्वरूप के विषय में है। यहाँ स्वरूप से मतलब वाह्य सौन्दर्य से नहीं, बल्कि उनके अन्तर्तम भाव से है। हमारा सनातन आदर्श था कि स्त्रियाँ शक्ति हैं, पवित्रता की मूर्ति हैं, प्रेम की उद्गम हैं। ये ही भाव हमारी दुर्गा, पार्वती, लक्ष्मी, राधा, सीता सावित्री, दमयन्ती द्वारा प्रदर्शित किए गए हैं। हम अन्ध-परम्परा में विश्वास रखने के कारण अपनी अज्ञानावस्था में भी उन्हें शक्ति और माता के नाम से विभूषित करते रहे, परन्तु जिस प्रकार हमने सच्चे ईश्वर को खोकर पत्थरों में ही अपनी भावनाओं को परिमित कर दिया, उसी प्रकार उनकी अविच्छिन्न शक्ति को भूल कर उन्हें अबला बना दिया, उनकी चाँद-सी पवित्रता को भूल कर उन्हें दुर्गुणों का केन्द्र बना दिया, उनके स्वर्गीय स्नेह को भूल कर उन्हें काम-किल्लोलिनी बना दिया। इससे बढ़ कर दुःख की बात और क्या हो सकती है? जड़ों को काट कर कोई फल की आशा नहीं कर सकता, आँखों को फोड़ कर कोई देखने की आशा नहीं कर सकता।

दूसरा प्रश्न है स्त्रियों की शिक्षा का। इसका इतिहास भी बड़ा ही मनोरञ्जक है। जब पहले-पहल यह प्रश्न उठा, जन-समुदाय में खलबली मच गई। कितने लोग स्त्री-शिक्षा का नाम मात्र सुन कर ही सिहर उठे और कितने सुधारकों पर मनमानी गालियों की बौछारें पड़ने लगीं। दस ही वर्ष पूर्व की बात है, मैंने धुरन्धर पण्डितों को कहते सुना था कि स्त्रियों को शिक्षा देना मानो सर्प को दूध पिलाना है, उन्हें सभाओं में जोश के साथ कहते सुना कि "ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।" स्त्रियों के हृदय में सदा आठ अवगुण वर्तमान रहते हैं; मनु के आधार पर वे उन्हें शूद्र बताते थे, अतएव विद्याध्ययन की अनधिकारिणी कह कर उनकी घोर निन्दा किया करते थे। उन्हें ज़रा भी ख़्याल न था कि वे निर्लज्जता-पूर्वक अपनी ही माँ और बहिनों की धज्जियाँ उड़ा रहे हैं, जिनके प्यार में वे पले और जिनके पवित्र आशीर्वादों से वे फूले-फले हैं। यही भारत के विकट अधःपतन का समय था। सन्तोष की बात है कि समय के परिवर्तन से लोगों की सुरुचि भी बढ़ी। अब सभी एक स्वर से कह रहे हैं कि स्त्रियों की शिक्षा आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। अब हमारे सामने सवाल है कि स्त्रियों की शिक्षा की पद्धति क्या होनी चाहिए? क्या पुरुषों और स्त्रियों की शिक्षा-शैली एक ही होनी चाहिए या दो भिन्न प्रकार की? यदि भिन्न हो तो भिन्नता किन-किन विषयों में? यह प्रश्न बड़ा गहन है और सैडलर कमीशन (Sadler Commission) तक ने स्पष्ट रूप से इस पर कोई निश्चित सम्मति नहीं प्रकट की। मैं सम्यक् रूप से इस विषय पर किसी आगामी अङ्क में लिखूँगा, यहाँ मैं इतना ही कह देना चाहता हूँ कि इसका उत्तर इसी पर निर्भर है कि स्त्रियों का जीवन पुरुषों के जीवन से

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बिलकुल भिन्न है वा नहीं। यदि सर्वथा भिन्न है, तो भिन्न प्रकार की शिक्षा अवश्य होनी चाहिए। पर यदि घनिष्ठ पारस्परिकता का सम्बन्ध हो और यदि जीवन, प्रकृति और जीवों के, स्त्री और पुरुषों के आकर्षण एवं प्रतिकार्य (Re-action) का एक अटूट तारतम्य हो, यदि जीवन पृथक्-पृथक् वायु-विभक्त विभागों (Air-tight compartments) में नहीं चलाया जा सकता, तो कहना पड़ेगा कि दोनों की शिक्षा सभी विषयों में एक ही प्रकार की होनी चाहिए। फिर विशेषज्ञ होना अपनी-अपनी व्यक्तिगत रुचि पर निर्भर है।

अनेक लोगों का कहना है कि स्त्रियों को गृह-सम्बन्धी विषयों की शिक्षा ही पर्याप्त होगी। पर मेरा नम्र निवेदन है कि क्या इसी से उनका जीवन पूर्णता प्राप्त कर सकेगा? क्या इसी में हमारा कल्याण है? हम फिर भी अपने पुराने आदर्श को भूलते हैं और सङ्कुचित भावों को अपने हृदय में स्थान देते हैं। हमारी माता दुर्गा आजकल की मिट्टी की मूर्ति नहीं, वह शक्ति की प्रतिमा हैं, अनीति और दुराचार की नाशिनी हैं, शिव अथवा कल्याण की नहीं। क्योंकि ग्रन्थ कहता है, ज्योंही उनका पद धराशायी शिव पर पड़ता है, वे चौंक कर खड़ी हो जाती हैं। हमारी लक्ष्मी विभव की स्वामिनी हैं, इससे उनके अर्थशास्त्रज्ञ और व्यवसाय-सम्बन्धी गुणों की संरक्षिणी होने का भास होता है। हमारी सरस्वती ललित कलाओं की अधिष्ठात्री हैं। फिर हम कैसे कहें कि हमारी स्त्रियाँ केवल सरस्वती हो सकती हैं, लक्ष्मी और दुर्गा नहीं। इसके प्रमाण भी भरे पड़े हैं। यदि अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा स्त्रियों को न दी गई होती, तो हम कैकेयी, झाँसी की रानी अथवा जोन ऑफ़ आर्क (Jone of Arc) को रणक्षेत्र में कैसे पाते? पुराने समय को छोड़िए, यदि आजकल की अवस्था का भी मनन करते हैं तो पता चलता है कि स्त्रियाँ सभी क्षेत्रों में अपनी कुशलता एवं प्रवीणता दिखा रही हैं। यदि मैं भूलता नहीं तो टर्की ही में एक स्त्री सेनानी के पद पर नियुक्त की गई है, और पुलिस में रूस, इङ्गलैण्ड, अमेरिका आदि देशों में बहुत सी युवतियाँ योग्यता-पूर्वक काम कर रही हैं। अमेरिका की बहुत सी स्त्रियों ने थोड़ी पूँजी से बिना किसी सहायता के करोड़पति बन कर अपनी व्यवसाय-बुद्धि का परिचय दिया है। वक्तृत्व-क्षेत्र में एक ओर लॉयड जार्ज (Lolyd George) हैं, तो दूसरी ओर डॉक्टर बिसेण्ट (Dr. Besant) हैं; शारीरिक क्षेत्र में एक ओर राममूर्ति हैं तो दूसरी ओर ताराबाई; राजनीति-विज्ञान में भी महारानी एलिज़ाबेथ तथा नूरजहाँ का नाम अमर रहेगा। काव्य-संसार में भी, भारत ही को लीजिए, मीराबाई, तरुलता दत्त, सरोजिनी, महादेवी वर्मा, सुभद्रा देवी इत्यादि का स्थान कुछ कम नहीं है। आजकल के विश्वविद्यालयों के परीक्षा-फलों के देखने से पता चलता है कि स्त्रियाँ गणित-जैसे कठिन शास्त्रों में भी अपनी प्रखरता का परिचय दे रही हैं। मुझे तो कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं मालूम होता, जहाँ वे कृतकार्य न हो सकती हों।

पर प्रश्न हो सकता है कि इससे जीवन में उच्छृङ्खलता के प्रवेश करने का भय है। किन्तु यह सर्वथा भ्रान्ति है। सभी सब काम नहीं कर सकते। व्यक्ति-विशेष अपनी रुचि और क्षमता के अनुसार अपना क्षेत्र बना लेता है। पर सभों को इस चुनाव के लिए बराबर अवसर न देना भयङ्कर अन्याय है। मेरा शुद्ध विचार है कि पुरुष को जैसे राजनीति, विज्ञान एवं रण-शास्त्र में दक्ष होना चाहिए, वैसे ही ललित-कलाओं और गृह-सम्बन्धी विषयों में भी। उसी प्रकार स्त्रियों को जैसे ललित-कलाओं एवं मातृत्व-सम्बन्धी विषयों में पारङ्गत होना चाहिए वैसे ही राजनीति, विज्ञान एवं युद्ध-शास्त्र में भी; क्योंकि ज्ञान के बिना परस्पर सहानुभूति नहीं होती और सहानुभूति के बिना प्रेम और आनन्द स्वप्न-मात्र है। यदि स्त्रियों को राजनीति तथा सामाजिक संस्थाओं से अलग रक्खा जायगा तो फल यह होगा कि कल-कारख़ानों में काम करने वाली स्त्रियों, बच्चों तथा बाल-विधवाओं पर वही अत्याचार होता रहेगा जो आजकल हो रहा है, स्त्रियों का हिन्दू क़ानूनों में वही असहाय स्थान बना रहेगा जो अब है। अतएव जीवन के सभी क्षेत्रों में स्त्री-पुरुषों का अधिकार बराबर है, और उन्हें उनकी प्रसुप्त विभूतियों के विकाश के लिए बराबर अवसर न देना अत्याचार नहीं तो और क्या हो सकता है?

एक और प्रश्न, जो इस समय बहुत ज़ोर पकड़ रहा है, वह है स्त्री-पुरुषों अथवा पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध का। उनका परस्पर व्यवहार किस प्रकार का होना चाहिए

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिसमें प्रेम-ग्रन्थि अकाट्य बनी रहे और जीवन-नौका स्नेह-वीचि पर अविघ्न विचरती रहे। बरनर्ड शॉ (Bernard Shaw) तथा अन्यान्य अङ्गरेज़ी लेखकों से प्रभावान्वित हो, हिन्दी लेखकों में भी स्पष्टवादिता कुछ आने लग गई है। सुतरां, ये लोग भी इस गूढ़ विषय पर अधिक से अधिक स्पष्ट शब्दों में अपने विचारों को व्यक्त करने लगे हैं। वास्तविकता के दृष्टि-विन्दु से यह अच्छा अवश्य है, क्योंकि साफ़ कहने ही से मनोमालिन्य दूर होता है, पर साहित्य के दृष्टि-कोण से किञ्चित् भावनिरोध आवश्यक है, क्योंकि किसी भी कारण से सौन्दर्य का आदर्श क्षत-विक्षत नहीं किया जा सकता। सत्य हो, पर सुन्दर भी अवश्य हो, साथ-साथ कल्याणकर भी हो, तभी साहित्य का ध्येय ऊँचा रह सकता है, तभी यह अनश्वर भी हो सकता है।

जो हो, इस विषय पर बहुत से ग्रन्थ लिखे जा रहे हैं। श्री० कृष्णकान्त मालवीय की 'सोहागरात' और 'मनोरमा के पत्र' हिन्दी-संसार में नई चीज़ें हैं। 'निर्वासित' का 'स्मृति-कुञ्ज' और 'कमला के पत्र' तो उच्च कोटि के मनोवैज्ञानिक साहित्य हैं। इसके अतिरिक्त श्री० सन्तराम जी के लेखों तथा अन्यान्य आख्यायिकाओं ने इस विषय पर विशेष प्रकाश डालने की चेष्टा की है। इनकी शिक्षाओं का मूल्य चाहे जो हो, पर यह एक अत्यन्त गूढ़ रहस्य का निर्देश करता है जो अब तक शिष्टता के परदे में छिपा था। आजकल की वह वैवाहिक प्रथा, जिसमें दो युवक-हृदयों के जोड़ने का उत्तरदायित्व केवल ब्राह्मणों के पञ्चाङ्गों तथा गुरुजनों के विचारों पर रहा है, कभी सुखकर नहीं हुई है। केवल जाति-बहिष्कार एवं अन्यान्य कठोर दण्ड-विधानों के आधार पर ही इस अनिवार्य प्रेम का क़ानून जारी रहा। किन्तु अब आलोक के इस युग में पता चलता है कि शान्तिपूर्ण धरा के नीचे विषाद का ज्वालामुखी धधक रहा था। यदि ऐसा न होता तो पति-पत्नी के सुखी होने का प्रश्न लोगों के हृदय पर इतना अधिकार न जमाता। अतएव यह प्रश्न विवाह के प्रश्न की ओर जा पहुँचता है। जब तक इसका निर्णय नहीं हो जायगा, तब तक पति-पत्नी के सुखी होने का प्रश्न जड़ को छोड़ पत्तों को सींचने के ही तुल्य है।

यह समस्या इतनी जटिल एवं कोमल है कि स्वतन्त्र विचार प्रकट करने में हिचकिचाहट होती है और भय भी लगता है। पाश्चात्य देशों को देखने से पता लगता है कि उनकी वैवाहिक रीति में स्वच्छन्दता की मात्रा अत्यधिक है। कोर्टशिप (Courtship) की प्रथा में आन्तरिक प्रेमोत्पादन की प्रवृत्ति न होकर, बाध्य होकर कामुक प्रेम करने की प्रवृत्ति ही अधिक होती है। युवकों के प्रेमाश्रुओं और अवाधित हृदयाञ्जलि से व्यथित हो कितनी ही युवतियाँ प्रेम न होने पर भी विवाह-पाश में परिबद्ध हो गई हैं। एक ही समय विभिन्न युवकों की उथल-पुथल करने वाली आहों से कितनी युवतियों ने विह्वल हो अपने स्वर्गीय सौन्दर्य-सौरभ को यों ही वायु में लुटा दिया है। कितनों ही को अपनी चञ्चलता और अदम्य आवेश के कारण प्राणान्त तक करना पड़ा है। फिर जब हम उनके तलाक़ के मुक़दमों की संख्या देखते हैं तो कहना पड़ता है कि उनका गार्हस्थ्य जीवन कभी आदर्श नहीं हो सकता। जब हम भारत की ओर आते हैं तो और भी चकाचौंध हो जाती है। क्या गान्धर्व विवाह श्रेयस्कर है? पर शकुन्तला के दुखों से हृदय दहल उठता है। क्या स्वयम्बर इस समय सम्भव है? क्या स्वतन्त्र-प्रेम हो—बिजली की तरह आने वाला प्रेम! जैसा कि पार्वती ने किया था, सावित्री ने किया था, दमयन्ती ने किया था। कम से कम मैं इस बात को ज़ोर देकर कहूँगा कि प्रेम में ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं, कशमकश नहीं, जाति-पाँति नहीं; यह हृदय अथवा आत्मा की एक चिनगारी है, जो चाहे जिसे भस्मीभूत कर दे। शेक्सपियर ने इसी बात को कितनी सुन्दरता से कहा है—"Who has ever loved that loved not at first sight"—अर्थात्, आज तक किसने प्रेम किया जिसके हृदय में चार आँखें होते ही प्रेम की उत्पत्ति नहीं हो गई? इतिहास इसका साक्षी है, नाम गिनाने की आवश्यकता नहीं। सभी युवक-हृदय जानते हैं कि आज तक जितने आदर्श-प्रेमी हो गए हैं, सभी पलक लगते न लगते एक दूसरे के हो गए, ऐसे हुए कि द्वेषी संसार उनका विच्छेद न कर सका, दुष्ट काल भी जिन्हें जुदा न कर सका, वे अनन्त की गोद में रहे, एक ही होकर रहे। हृदय फड़क उठता है, दमयन्ती बिना इन्द्रियों के उत्तेजित हुए ही मुग्ध हो गई, केवल राजहंस की प्रशंसा ही ने उसकी आत्मा की वीणा को प्रणोदित कर दिया, उसकी प्रसुप्त प्रेम-रागिनियों को जगा दिया। नल-दमयन्ती का सम्मिलन ही नहीं, सम्मिश्रण

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हो गया। दान्ते (Dante) ने बियट्रीस (Beatrice) को अपने जीवन भर में एक ही बार, एक ही क्षण के लिए देखा था, पर उसका सारा जीवन बियट्रीसमय हो गया और उसके प्रस्फुटित हृदय की अलौकिक मधुरिमा उसी लावण्यमयी की कोमल क्षणिक स्मृति की अर्चना करती रही। यही प्रेम है, इसी में जीवन का सौरभ है। इसे कोर्टशिप ला नहीं सकती, माता-पिता की संरक्षकता पा नहीं सकती, ब्राह्मणों की गणना उगा नहीं सकती! सुतरां विवाह का मूल-मन्त्र प्रेम, देश, काल, धर्म तथा जाति-पाँति से परे है। इसका नियम अबाधित है, अपरिहार्य है, चाहिए केवल हृदय को तोलने की शक्ति, साफ़-साफ़ देखने की शक्ति।

यदि इसी भव्य और उदात्त नींव पर विवाह-भवन बनाया जाय, तो इसके सुन्दर और सुखकर होने की सम्भावना है। उसी अवस्था में आजकल की पुस्तकों द्वारा प्रेमकला की शिक्षा की आवश्यकता न होगी, क्योंकि प्रेम वह कला है, जिसे प्रकृति स्वयं अपने जीवों को सिखा कर भेजती है; यह आत्मा की वह परम कमनीय तथा सूक्ष्म ज्योत्स्ना है जिसे कोई भी कलाविद या वैज्ञानिक सिखा नहीं सकता। माता अपने बच्चे को प्यार करने के लिए सिखाई नहीं जा सकती; भाई को अपने बहिन को प्यार करना सिखाया नहीं जाता, उसी प्रकार पति-पत्नी का परस्पर स्नेह सिखाया नहीं जा सकता। यह बाह्य कारवाइयों से सम्बन्ध नहीं रखता, इसका सम्बन्ध है किसी अगोचर अन्तर्तम तार से, जिसे प्रेमालु हृदय ही अनुभव कर सकते हैं, हृदयङ्गम कर सकते हैं, पर बजा नहीं सकते।

आजकल के कितने ही लेखों और गल्पों में पढ़ा है, नवयुवतियों को नाज़-नख़रे, नोंक-झोंक और कामुकता को जगाने वाले चोंचले करने की शिक्षा दी गई है। इन लेखकों के मत में नवयुवतियों की लज्जाशीलता ही पुरुषों को वेश्यावृत्ति की ओर ले जाती है। पर मेरा उनसे कहना है कि अपने छिछोरपने को वे सुन्दर घरों में न ले जायँ, प्रेमपूर्णा कुलवतियों को वेश्या न बनाएँ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वेश्याओं को लोगों को लुभाने के लिए अपने शतशः सुकुमार भावों का प्रदर्शन करना पड़ता है, क्योंकि वे प्रेम से रिक्त हैं। अतएव अपने को आकर्षक बनाना उनके लिए अनिवार्य हो जाता है। पर जिन्हें एक बार भी प्रेम की दिव्य सुरभि का अनुभव हो चुका है, वे जानते हैं कि वाराङ्गनाओं के इन भावों में कोई सार नहीं, उनके नाज़-नख़रों में कोई सुधा नहीं, उनके भ्रूकुटि-सञ्चालन में कोई स्वाद नहीं। वे काग़ज़ के फूलों के समान हैं, मिट्टी के फलों के समान हैं। उन लेखकों को युवकों की प्रकृति सुधारना चाहिए, न कि निष्पाप, निष्कलङ्क हृदयों को पङ्कनद की ओर ढकेलना! क्या स्त्रियों को ही केवल पुरुषों की वासनाओं की पूर्ति करनी चाहिए वा पुरुषों को भी स्त्रियों की प्रकृतिजनित चेष्टाओं का आदर करना चाहिए? मैं तो समझता हूँ इन बाहरी साधनों का कोई प्रयोजन ही नहीं। यदि विवाह पारस्परिक प्रेम के आधार पर स्थापित किया जाय, तब तो एक दूसरे के दृष्टिपात से ही, नहीं-नहीं स्मृतिमात्र से हीं दोनों में एक नवीन शक्ति सञ्चरित हो जायगी; तभी रमणियों का आनन्द-स्रोत होना, शक्ति का उद्गम-स्थल होना सार्थक है। फिर रही परस्पर लुभाने की बात; मुझे हँसी आती है जब इसे भी सिखाने का लोग अधिकार दिखाते हैं और प्रकृति को भी वे कृत्रिम बनाने की चेष्टा करते हैं। जिस समय दो प्रेमाकुल हृदयों का सङ्गम होता है, उस समय उनके सुन्दर नृत्य को, उनके आनन्द-व्यथित बुदबुदों को, अधर-पल्लवों के अनन्त बार सम्मिलन को, उनके स्नेह-सने नेत्रों के मधुर गान को प्रकृति के सिवा कुशल से कुशल कौन नटवर सिखला सकता है? हाँ, जब दो हृदयों का स्रोत दो भिन्न-भिन्न ओर प्रवाहित हो रहा है, तो निस्सन्देह उन्हें मिलाने के लिए कृत्रिम नाज़-नख़रों के नाले की आवश्यकता होती है। पर विवाह, विवाह नहीं रह जाता, केवल उद्दण्ड पाशविक वासनाओं की तृप्ति का एक साधन-मात्र रह जाता है!

सुतरां यह स्पष्ट है कि हमारे समाज में संशोधन की नहीं, क्रान्ति की आवश्यकता है। कोई अपने अङ्गों को काट कर सुखी नहीं हो सकता। स्त्री-समुदाय को कुचल कर हम भी उत्थान की आशा नहीं कर सकते। हमें उन्हें शिक्षित करना होगा और उनको विकाश के लिए पूर्ण अवसर देना होगा, ताकि उनका जीवन-पुष्प मुकुलित होकर ही न रह जाय, वरन् पूर्णरूप से प्रस्फुटित होकर अपने सौन्दर्य से, सौरभ से, आलोक से, इस धरणी को स्वर्गभूमि बना दे। उचित शिक्षा होने ही से

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कुरीतियाँ क्रमशः शिथिल होती जायँगी और स्त्री-पुरुष का परस्पर सम्बन्ध भी अधिकाधिक स्नेहास्पद होता जायगा। इङ्गलैण्ड के जगद्विख्यात् नाट्यकार बरनर्ड शॉ ने अपने नाटकों द्वारा यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि स्त्री-पुरुष के बलात् आकर्षण में प्रेम का लेश मात्र भी नहीं है; यह प्रकृति की युक्ति है, जिससे वह अपने को जीती-जागती रख सके, और अपनी संख्या बढ़ा सके; पर मैं कहूँगा कि यह प्रकृतिवाद केवल आधा सत्य है, क्योंकि इस सबसे परे "एकोऽहंद्वितीयो नास्ति" की भावना, उस परम एकत्व की वेदना जो) शिव-पार्वती के अर्द्धाङ्गी रूप में दिखलाया गया है) रह-रह कर कभी स्वप्नवत्, तो कभी नीरव हाहाकार की भाँति हमारे हृदयों में उठा करती है। हाँ, कितने ही इसे सुनी-अनसुनी कर देते हैं, पर कितने इस अनपेक्षित, सुदूर, उस पार की ध्वनि से विह्वल हो उठते हैं और लाख प्रयत्न करने पर भी उसकी रेख मिटा नहीं सकते।

पर आजकल के वाध्य-प्रेम में कोई सार नहीं। प्रत्येक विवाहित पुरुष और स्त्री इस बात से परिचित है। पति-पत्नी के प्रेम का नाट्य होता है; दोनों एक दूसरे को प्यार करने का भास मात्र करते हैं, पर वास्तव में प्यार नहीं करते। मैं नहीं कहता कि सबों की यही दशा है, पर बहुतों की है, इसमें संशय नहीं। जिन्होंने 'चन्द्रशेखर' 'हृदय की परख' और 'हृदय की प्यास' पढ़ा है, वे जानते हैं कि सच्चे प्यार और प्यार के भास में कितना दारुण युद्ध होता है। यह युद्ध चलता रहेगा अवश्य, पर हमारा कर्तव्य है कि इन युद्धों की संख्या और भीषणता कम करने की चेष्टा करें। और यह तभी सम्भव है जब हम स्वच्छ, स्वतन्त्र प्रेम के पूर्ण विकाश को अवसर दें। बिना इसके जीवन मरुभूमि है, श्मशान है, और इसी के सम्मोहन प्रकाश में संसार के काँटे फूल होंगे, इसी की प्राणान्तक धूमराशि जीवनदायिनी ज्योत्स्ना बन जायगी।

क्या हमारे युवक निष्पक्ष हो इसका मनन करेंगे?

आना

[रचयिता—श्रीमती महादेवी जी वर्मा]

(१)

जो मुखरित कर जाती थी,
मेरा नीरव आवाहन।
मैंने दुर्बल प्राणों की,
वह आज सुला दी धड़कन॥

(२)

थिरकन अपनी पुतली की—
भारी पलकों में बाँधी।
निस्पन्द पड़ी हैं आँखें—
बरसाने वाली आँधी॥

(३)

जिसके निष्फल जीवन ने,
जल-जल कर देखीं राहें।
निर्वाण हुआ है देखो,
वह दीप लुटा कर चाहें॥

(४)

निर्घोष घटाओं में छिप,
तड़पन चपला की सोती।
झञ्झा के उन्मादों में—
घुलती जाती बेहोशी।

(५)

करुणामय को भाता है,
तम के परदों में आना।
हे नभ की दीपावलियो,
तुम पल भर को बुझ जाना॥

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सौन्दर्य

[ले० श्री० चन्द्रगुप्त जी वार्ष्णेय, बी० एस्-सी०]

प्रकृति की लीला विचित्र है। उसके गूढ़ रहस्यों का उद्-घाटन करना, तथा विकट उलझनों को सुलझाना मानवी शक्ति से परे है। अनेक स्थलों में हमको केवल कल्पना के आश्रित होना पड़ता है। सौन्दर्य भी एक ऐसा ही जटिल विषय है। कहने को तो हम वस्तुओं को सुन्दर अथवा कुरूप कह जाते हैं, परन्तु हममें से अधिकांश इस बात से अनभिज्ञ हैं कि सुन्दरता की कुञ्जी स्वयं हमारे हृदय में ही है। यह कुञ्जी हमारे ही मस्तिष्क के साँचे में ढली है, अतएव प्रत्येक ताले को खोलने के लिए उपयुक्त नहीं है। दूसरों को सुन्दर प्रतीत होने वाली वस्तुएँ हमको भी सदा वैसी नहीं प्रतीत होतीं। ऐसा क्यों होता है? तथा सुन्दर वस्तुओं की ओर हमारा चित्त स्वतः ही क्यों आकर्षित होने लगता है? इन्हीं विषयों की मीमांसा करने के अभिप्राय से, हमने प्रस्तुत लेख में, सौन्दर्य की परिभाषा एवं परिपाटी की कुछ मनोवैज्ञानिक व्याख्या पाठकों के सम्मुख रखने की चेष्टा की है। आशा है कि यदि और कुछ नहीं तो इसके द्वारा पाठकों की विचार-शक्ति को मनन करने के लिए एक नूतन विषय अवश्य उपस्थित हो जायगा।

इन्द्रधनुष सुन्दर है; वीणा-निनाद सुन्दर है; अरुणोदय की लाली से संयुक्त उषाकाल भी सुन्दर है; ऐसा क्यों है? इन्द्रधनुष नयनाभिराम है, वीणा की झङ्कार कर्णेन्द्रियों को रुचिकर है एवं प्रभात का समय हृदय का समुत्फुल्लकारी है। कहने का तात्पर्य यह है कि वस्तुओं की सुन्दरता हमारी ज्ञानेन्द्रियों के अनुभव पर ही निर्भर है। प्रत्येक सुन्दर वस्तु किसी न किसी ज्ञानेन्द्रिय को एक विशेष प्रकार का आनन्द प्रदान कर, अन्त में हृदय के आह्लाद का कारण होती है। किन्तु सुन्दरता का यह सिद्धान्त, गणित के सिद्धान्तों की भाँति विश्वव्यापी एवं अपरिवर्तनशील नहीं है। सुन्दरता मानसिक विषय है, अर्थात् इसकी कसौटी मस्तिष्क है। भिन्न-भिन्न प्रकृति के मनुष्यों के मस्तिष्क का गठन भिन्न-भिन्न प्रकार का होना अनिवार्य है, अतएव सौन्दर्य की कसौटी एक सी न होने के कारण 'अमुक वस्तु सबको प्रिय है' ऐसा नहीं कहा जा सकता। सौन्दर्य किसी वस्तु-विशेष का अन्तर्हित गुण नहीं है, वह तो हमारा किसी वस्तु को विचार में लाने का प्रकार मात्र है। दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि सुन्दरता कोई ऐसी कार्यकारिणी शक्ति नहीं है जो प्रत्येक हृदय-पटल पर प्रभाव उत्पन्न कर सके, वरञ्च वह तो स्वयं हमारी कार्यकारिणी एवं कल्पना-मूलक विचार-शक्ति का परिणाम है। सुन्दर वस्तुओं के अवलोकन से भावुकों के हृदय में विकार अवश्य उत्पन्न होता है, परन्तु इस विकार का सञ्चालन तथा उसकी रचना पूर्णतया मस्तिष्क के ही अधीन है।

व्यक्तित्व, देश, काल तथा परिस्थिति के अनुसार सौन्दर्य का आदर्श भी बदलता रहता है। एक वस्तु यदि किसी को प्रिय है तो दूसरे को अप्रिय। इन्द्रधनुष, वीणा-वाद्य तथा उषाकाल सबको ही सुन्दर नहीं प्रतीत होते। ग्रीस के कुशल कारीगरों द्वारा निर्मित पत्थर की मूर्तियाँ, सुप्रसिद्ध चित्रकार रविवर्मा की अत्युत्कृष्ट चित्रकारी अथवा शरत्पूर्णिमा की ज्योत्स्नामयी रात्रि में सुधांशु की पीयूषवर्षिणी कलाओं से शुभ्र स्फटिक के समान दीप्तिमान ताजमहल, एक नीरस हृदय में सौन्दर्यानुभव की तरङ्ग नहीं उत्पन्न कर सकते। इसका कारण यह नहीं कि उस व्यक्ति की ज्ञानेन्द्रियाँ निश्चेष्ट हैं, वरन् यह कहना चाहिए कि उसका मस्तिष्क इन वस्तुओं एवं कतिपय आदर्श-कल्पनाओं के सम्बन्ध निर्धारित करने में असमर्थ है। इन्हीं वस्तुओं को एक बुद्धिमान् कल्पना के सूत्र में आबद्ध कर हृदय का हार बना लेता है।

सङ्गीत के विषय में भी ऐसा ही कहा जा सकता

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। श्रीयुत विष्णु दिगम्बर जैसे सङ्गीत कलाविद् का गान भी बहुतेरों को कर्णकटु प्रतीत होता है। इसमें उनकी कर्णेन्द्रियों का कोई दोष नहीं है। हमारे देश की भील, सन्थाल, इत्यादि जङ्गली जातियों में प्रचलित राग सुशिक्षित सङ्गीतानुरागियों को अवश्य अरुचिकर होंगे। पर सम्भव है कि जिस गान का श्रवणामृत पान कर आधुनिक श्रोता मन्त्र-मुग्ध हो जाते हैं, वही कालान्तर में जङ्गली की उपाधि से विभूषित कर दिया जाय। अस्तु—

इससे सिद्ध हुआ कि सौन्दर्य वस्तुओं का ऐसा गुण नहीं है जो उनमें अन्तरङ्ग एवं स्थायी हो। सुन्दरता केवल एक मुद्रा है, जो द्रष्टा अथवा श्रोता अपनी इच्छानुरूप वस्तु पर अङ्कित कर देता है। हमने अपने हृदय में जो आदर्श स्थापित कर लिया है, उससे सामञ्जस्य रखने वाली प्रत्येक वस्तु हमें सुन्दर भासित होती है। अर्थात् कल्पित तथा समक्ष उपस्थित वस्तुओं का एकीकरण ही हमारा सौन्दर्य-ज्ञान है। इसी एकीकरण के अभाव से हम अनेक वस्तुओं को उदासीनता तथा घृणा की दृष्टि से देखने को बाध्य हो जाते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बाल्यावस्था में हम जिन वस्तुओं की ओर आकर्षित होते हैं, वे ही कालान्तर में हमें अग्राह्य हो जाती हैं। इसी प्रकार युवावस्था में साधारण दृष्टिगोचर होने वाली वस्तुएँ प्रौढ़ावस्था में सुन्दर प्रतीत होने लगती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारी प्रियता का मुकुट विभिन्न वस्तुओं को अर्पण होता रहता है। जाति, देश, काल इत्यादि व्यक्तियों की ही रुचि के अधीन हैं, अतएव इनमें भी सौन्दर्यादर्श तदनुरूप परिवर्तित होता रहता है। उदाहरणार्थ, अफ्रिका के हबशी इस सम्बन्ध में जैसी अभिरुचि रखते हैं, उससे सभ्य देशवासी कदापि सहमत नहीं हो सकते।

उपरोक्त प्रमाणों पर विचार करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि सुन्दरता का कोई निश्चित रूप न तो है, और न हो सकता है। मनुष्य की मानसिक शक्ति अपरिमित एवं अस्थिर होने के कारण, सौन्दर्य का आदर्श किसी नियम अथवा सिद्धान्त के अन्तर्गत नहीं हो सकता। हम सांसारिक तथा काल्पनिक पदार्थों की तुलना कर, दोनों में निकटतम सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा किया करते हैं। मानसिक विकास के साथ-साथ कल्पना-क्षेत्र भी विस्तीर्ण एवं परिमार्जित होता जाता है, अतएव पूर्व-निर्धारित सम्बन्ध कुछ ही समय में विशृङ्खल हो जाते हैं। दृष्टिकोण में परिवर्तन हो जाने के कारण वस्तुएँ नवीन रूप में दिखलाई पड़ने लगती हैं। फल यह होता है कि पूर्वोक्त प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करने के लिए पुनः नूतन वस्तुओं की ओर चित्त का झुकाव होता है। एवं सौन्दर्यादर्श नित्य इसी प्रकार स्थानान्तरित होता रहता है। यदि हम एक वायुयान में बैठकर अथवा अन्य किसी प्रकार ऊँचे उठने लगते हैं, तो क्रमशः नीचे की वस्तुएँ हमारी दृष्टि से पतित होती जाती हैं, तथा ऊपर की वस्तुएँ हमारा ध्यान आकृष्ट करने लगती हैं। इसी प्रकार शिक्षा के प्रभाव से आदर्श का तल समुन्नत हो जाने के कारण, जो वस्तुएँ पहले सुन्दर प्रतीत होती थीं वे हेय हो जाती हैं, तथा जो वस्तुएँ पहले हृदयग्राही नहीं थीं उनमें ही, अब अनेक सूक्ष्मताएँ दीख पड़ने से, सौन्दर्य के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। यह बात उदाहरण से और भी स्पष्ट हो जायगी। हबशी चपटी नासिका, मोटे-मोटे ओष्ठ, कटि-पर्यन्त लटकते हुए उरोज, तथा कज्जल-वर्ण शरीर को ही स्त्री-जाति के सौन्दर्य की पराकाष्ठा समझता है। प्रत्येक युवती की वह अपने काल्पनिक चित्र से तुलना कर, तथा पूर्व-कथित अङ्गों को अनिन्द्य सुन्दरी मान, अपनी प्रेम-पात्री नियत करता है। दैवयोग से यदि वही हबशी किसी सभ्य देश में जाकर निवास करने लगे, तो भिन्न परिस्थिति एवं शिक्षा के प्रभाव से उसकी मानसिक अवस्था अवश्य बदल जायगी। प्रारम्भ में तो तद्देशीय स्त्रियाँ उसे सौन्दर्य-विहीन ही देख पड़ेंगी, परन्तु कुछ समय पश्चात् मोटे ओष्ठाधर, चपटी नाक इत्यादि उसके लिए सौन्दर्य-द्योतक नहीं रहेंगे। जिस स्त्री को वह पहले रूपराशि-सम्पन्न समझता था, उसी को अब अवज्ञा की दृष्टि से देखने लगेगा। बस, मनुष्य-मात्र की यही अवस्था है। जलवायु, परिस्थिति, आचार-व्यवहार, शिक्षा इत्यादि के कारण विभिन्न जाति के मनुष्यों की प्रवृत्तियाँ भी भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं, अतएव जैसी वस्तुएँ एक जाति को प्रिय हों वैसी अन्य देश-वासियों को बहुधा साधारण अथवा अप्रिय प्रतीत होती हैं।

यह बात अनेक उदाहरणों द्वारा सिद्ध की जा सकती है कि वास्तव में सौन्दर्य केवल एक मानसिक कर्म है,

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किसी वस्तु का गुण नहीं। हिमालय की हिमाच्छादित एवं गगनस्पर्शी चोटियाँ एक दूर देश से आए हुए पथिक का हृदय अनिर्वचनीय आनन्दोल्लास से परिपूर्ण कर देती हैं। इसके विपरीत उन्हीं के मध्य में जीवन व्यतीत करने वालों के हृदय में उन्हें देख कर सौन्दर्य के भाव किञ्चित् मात्र भी नहीं जाग्रत होते। सम्भव है कि भय अथवा बन्धन के विचार उन्हें अधीर कर दें। भय इस कारण कि अकस्मात् हिम की नदी आकर उनको कष्ट न पहुँचावे, तथा बन्धन इस कारण कि उनको परित्याग करके वे अन्यत्र जा भी नहीं सकते। परन्तु पथिक को उनमें एवं अपने कल्पित आदर्श में कतिपय सम्बन्ध अनुभव होने लगते हैं जिनके कारण वे शिखर उसे सुन्दर दृष्टिगोचर होते हैं। हिम-मुकुट-विभूषित, आकाश-चुम्बित तथा उन्नत-मस्तक गिरि-शृङ्ग उसे तत्काल अलभ्य, अव्यक्त, अलौकिक, अपरिवर्तनशील एवं परम पुनीत जान पड़ते हैं। उनकी रचना अव्यक्त, एवं पदार्थ तथा रूप अपरिवर्त्तनशील ज्ञात होता है। वे अमित उँचाई तथा विस्तार होने से अलभ्य एवं अलौकिक; तथा तारागण-खचित गगन-मण्डल से आवृत्त रहने के कारण परम पुनीत मालूम होते हैं। पथिक, उपरोक्त सर्व गुणों की समष्टि रूप, उन हिमगिरि शृङ्गों को निज सौन्दर्य-मन्दिर में प्रतिष्ठित करता है। किन्तु यह मन्दिर तो उसी का निर्माण किया हुआ है। सुन्दरता पर्वत-शृङ्गों में निहित नहीं है, वरन् स्वयं उसके हृदय में तथा उसके मस्तिष्क में है। उसने कल्पना के दिव्य रङ्ग से रञ्जित कर इनको अपने लिए सुन्दर बना लिया है। इस कल्पना के अभाव में यही गिर-शिखर केवल जड़वत् प्रतीत होते हैं, अतएव इनको देख कर एक गँवार के हृदय में श्रम, असुविधा, भय इत्यादि के भाव उदय होना स्वाभाविक ही है।

इसी प्रकार जिस समय भगवान् भुवन-भास्कर अपनी दैनिक यात्रा से क्लान्त हो अस्ताचल की ओर अग्रसर होते हैं, तथा उनकी प्रिया पश्चिम दिशा अपने प्रियतम का आगमन जान उनके स्वागत के लिए अपूर्व शृङ्गार धारण करती है, उस समय की अवर्णनीय शोभा से कौन सा भावुक मुग्ध न होगा? तेजोमय दिवस एवं अन्धकार-पूर्ण रात्रि का सहमिलन, विविध वर्णों का दैवी सङ्घटन तथा दिग्दर्शन, पक्षिगण का सुमधुर कलरव, इत्यादि विविध प्रभावोत्पादक घटनाओं का सन्निपात इस दृश्य को एक अनूठी छटा प्रदान कर मनोमोहक बना देता है। हमारा जीवन क्षणभङ्गुर, परिवर्त्तनमय एवं ईश्वराधीन है, जब यही सादृश्य हम सन्ध्या-काल की प्राकृतिक घटनाओं में पाते हैं, तो इस नैसर्गिक दृश्य की शोभा और भी अनुपम हो जाती है। प्रकृति के रहस्यों की तुलना अपने जीवन के रहस्यों से करना मनुष्य का स्वभाव है। इसी कारण, असाधारण सौन्दर्य का जो प्रभाव हमारे अन्तस्तल पर पड़ता है, उसमें सदैव विषाद की कुछ मात्रा मिश्रित होकर उस प्रभाव को अधिक कार्यक्षम बना देती है। सुन्दर वस्तु के दर्शन-मात्र से हमको उस वस्तु की, संसार की तथा अपनी अनित्यता बोध होने लगती है, जिससे हमारे हृदय-सागर में वैराग्य की एक लहर आलोड़ित होकर प्रत्यक्ष रूप में हमारे चित्त के विषाद का कारण होती है। किन्तु उल्लिखित सम्बन्ध न खोज सकने के कारण एक अशिक्षित व्यक्ति पर इन घटनाओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, और सूर्यास्त का दृश्य उसे तनिक भी सुन्दर प्रतीत न होगा। हाँ, ऋतु-ज्ञान के निमित्त यदि उसकी दृष्टि आकाश की ओर उठ जाय तो कोई आश्चर्य नहीं।

स्त्री-जाति के सौन्दर्य की भी ऐसी ही विवेचना की जा सकती है। समग्र भारत में सुन्दरता के लिए विख्यात होने पर भी यह सम्भव नहीं कि अफ्रिका, पापुआ अथवा जापान के अधिवासी, एक भारतीय सुन्दरी के सौन्दर्य की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करें। इसी प्रकार यदि इन देशों की कोई तरुणी इधर पदार्पण करे तो उसका भी यही हाल होगा। परन्तु फिर भी वे सब की सब सुन्दरी हैं; इस कारण नहीं कि सौन्दर्य-गुण उनमें स्वभावतः समाविष्ट है, वरन् इस कारण कि वे निज-निज देश-वासियों के सौन्दर्यादर्श से निकटतम सादृश्य रखती हैं। भारतीय, अफ्रिकन, पापुअन तथा जापानी यौवन के रूप की जैसी कल्पना करते हैं, इन स्त्रियों में से किसी एक को उसके अनुरूप पाकर सौन्दर्य की पुष्पाञ्जलि उसकी भेंट कर देते हैं। हम कह आए हैं कि हिमालय तथा सूर्यास्त की शोभा से हमारा हृदय विषादयुक्त हो जाता है। एक सौन्दर्य-सम्पन्न युवती के दर्शन से भी विषाद के भाव उसी प्रकार जाग्रत होते हैं। कारण स्पष्ट है। जो आदर्श-मूर्ति हमारी कल्पना के सिंहासन पर सुशोभित है, वह पारब्र

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किक है, अर्थात् हम उसे क्षणभङ्गर तथा परिवर्तनशील नहीं समझते। परन्तु यौवन अल्पकालिक एवं अस्थिर है, अतएव एक युवती के दर्शन से जनित हृदय की अवस्था में विषाद का कुछ सम्मिश्रण अवश्यम्भावी है। यह विषाद इस विचार से उत्पन्न होता है कि सभी सांसारिक पदार्थों के समान यौवन भी अनित्य एवं निस्सार है।

अतएव हम पुनः इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि सौन्दर्य किसी वस्तु का ऐसा आन्तरिक गुण नहीं है, जैसा मिश्री में माधुर्य अथवा फूल में सुगन्ध। यदि हम किसी वस्तु को सुन्दर सम्बोधन करते हैं तो इसका यह अर्थ नहीं है कि हमारे देखने से पूर्व उस वस्तु में कोई ऐसा सर्वमान्य तथा अविनाशी लक्षण अन्तर्हित था, जिसके कारण वह केवल हमको ही नहीं, बल्कि सारे जगत् को सुन्दर प्रतीत होती। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक नहीं कि हमको सुन्दर प्रतीत होने वाली सम्पूर्ण वस्तुओं में कुछ समानता हो। जिस प्रकार सारे संसार की मीठी वस्तुओं में मिठास पाया जाता है, ऐसा ही कोई एक गुण सर्व-सुन्दर वस्तुओं में मिलना असम्भव है। हिमालय पर्वत, सन्ध्या का सुहावना समय, तथा एक सौन्दर्यमयी कामिनी; इन तीनों में किसी प्रकार की तुलना नहीं है, किन्तु एक भावुक के लिए यह तीनों ही सुन्दर हैं। वस्तुएँ गोलाई होने के कारण गोल, स्वाद के कारण स्वादिष्ट, कठोरता के कारण कठोर इत्यादि, कहलाती हैं; परन्तु यदि इसी प्रकार का कोई निश्चित गुण अथवा नियम प्रत्येक सुन्दर वस्तु में ढूँढ़ निकालने की चेष्टा की जाय तो वह निष्फल होगी। प्रथम तो भिन्न-भिन्न मानसिक प्रवृत्तियों के कारण व्यक्तिगत आदर्श ही असमान है; दूसरे एक व्यक्ति प्रत्येक वस्तु के आदर्श रूप की कल्पना करता है, अतएव सौन्दर्य की परिपाटी का एक ही नियम के वशवर्त्ती होना अस्वाभाविक है।

वस्तुओं को सुन्दर दर्शाने वाली मानसिक क्रिया में यदि कोई समतत्व है, तो केवल यह है कि वह सदा वैयक्तिक रुचि के अनुसार आदर्श की कल्पना किया करती है। यदि किसी भौतिक पदार्थ में कल्पित आदर्श के कुछ भी चिन्ह लक्षित हो जायँ तो वह उसी को सुन्दर मान लेती है। कल्पित आदर्श एवं लक्षित वस्तु में जितना निकट सम्बन्ध होगा उतनी ही सुन्दर वह प्रतीत होगी। वस्तुओं के सौन्दर्य की कक्षा इसी सिद्धान्त पर निर्भर है। संसार में अनेक रूपसी हैं, परन्तु कल्पित मूर्त्ति से तुलना करने पर जान पड़ता है कि कोई अधिक है, कोई न्यून। आदर्श से प्रत्येक अङ्ग में सादृश्य रखने वाली वस्तु जगत में असम्भव है। आदर्श एवं वास्तविक के मध्य में, उनको पृथक् करने वाला, एक अगम्य सागर सदा विराजमान रहेगा। यदि कोई सांसारिक वस्तु आदर्श के तुल्य हो जाय तो आदर्श की महिमा ही नष्ट हो जाय। हमारा ध्येय अपरिमित तथा अव्यक्त है। हम अपने आदर्श में अलौकिक गुणों का समावेश देखते हैं। परन्तु पार्थिव पदार्थ परिमित होने के कारण अलौकिक नहीं हो सकते; अतएव आदर्श के साथ वास्तविक की तुलना करते समय चित्त में विषाद, दया अथवा वियोग के भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। सायङ्काल तथा यौवन की छवि अल्पकालिक हैं, अतएव हमारे हृदय में इनके प्रति दया का भाव उमड़ कर हमारे आकर्षित होने का मुख्य साधन बन जाता है। हिमाचल कल्पान्त-पर्यन्त इसी रूप में रहेगा, परन्तु हमारा शरीर शीघ्र ही पञ्चतत्व को प्राप्त हो जायगा; इस प्रकार के विचार उसकी शोभा को द्विगुणित कर देते हैं। इस प्रकार उक्त तीनों दृश्य चित्त में एक अव्यक्त क्षोभ को जन्म देते हैं। प्रथम दो की क्षणभङ्गुरता पर हम दयार्द्र हो जाते हैं, एवं तीसरी के दर्शन से हमें स्वयं अपनी अवस्था पर खेद होने लगता है।

हमारी सौन्दर्योपासना-प्रवृत्ति अथवा सौन्दर्यानुराग का कारण जानना अब कठिन नहीं है। यदि कोई बालक बाज़ार में सुन्दर खिलौना देख पाता है, तो घर आकर माता-पिता से उसे ला देने का आग्रह करता है। मान लीजिए कि उसके माता-पिता वह खिलौना एक दिन पश्चात् देने की प्रतिज्ञा करते हैं। जब तक वह खिलौना बालक के पास न आ जाय, तब तक उसे धैर्य नहीं होता। खिलौना के प्राप्त हो जाने पर बालक को जैसी हार्दिक प्रसन्नता होती है, ठीक उसी प्रकार का आनन्द हमें किसी सुन्दर वस्तु के मिल जाने से होता है। यदि वह सुन्दर वस्तु हमसे विलग हो जाय तो विवशता वश हमारे हृदय में वैसी ही वेदना होती है, जैसी बालक के हृदय में उसका खिलौना बलात् छिन जाने पर। इस अपार विश्व में क्या हम बालकों के समान नहीं हैं? मानस-मन्दिर में प्रतिष्ठा पाने योग्य

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जो आदर्श हमने कल्पित कर रक्खा है, उसे मूर्तिमान पाकर भी क्या हमें सुख न होगा ? अस्तु—

जिस प्रकार बालक सर्प की चमकती हुई देह से आकृष्ट होकर निशङ्क हो उसे पकड़ने की चेष्टा करता है, इसी प्रकार हम समझते हैं कि सुन्दर वस्तुओं से हमें किसी प्रकार की हानि पहुँचना असम्भव है। एक सुन्दर स्त्री अथवा पुरुष यदि कोई गुरुतर अपराध भी करे तो हम तुरन्त उसे क्षमा प्रदान करने को तत्पर हो जाते हैं। भगवान् विष्णु ने इसी सौन्दर्य से दानवों को वशीभूत कर अमृत का घट छीन लिया था। कहना न होगा कि संसार के सारे मस्तिष्कयुक्त प्राणी सौन्दर्योपासक हैं। नृत्य करता हुआ मयूर मयूरिनियों को उस प्रकार लुभा सकता है, जिस प्रकार मनुष्यों को। अपने हृदय के आराध्य-देव को मूर्तिमान पाकर हम उसकी उपासना करते हैं, उससे प्रेम करते हैं, उसके सब अपराध क्षमा करते हैं; बस यही हमारी सौन्दर्योपासना है—यही हमारा सच्चा सौन्दर्यानुराग है।

एक बात रह गई है। उसे कहे बिना यह निबन्ध पूर्ण होता नहीं प्रतीत होता। अब तक हमने वस्तुओं के केवल बाह्य सौन्दर्य की व्याख्या की है। परन्तु वस्तुओं का आन्तरिक सौन्दर्य इससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। यह संसार माया से परिपूर्ण है, अतएव यहाँ की अनेक वस्तुओं का बहिरङ्ग उनके अन्तरङ्ग के अनुरूप नहीं है। प्रकृति ने मणि-भूषित, सुचिक्कण देह वाले सर्प को विषधर बनाया है, तथा कठिन, कुरूप नारियल के गर्भ में मधुर गिरी उत्पन्न की है। अतएव प्रियदर्शन वस्तुएँ भी कभी-कभी हमारे लिए हानिप्रद सिद्ध हो जाती हैं। मनुष्य-मात्र का आन्तरिक सौन्दर्य हृदय की शुद्धता, पवित्रता एवं स्थिरता में है। रूप में सुन्दर न होने पर भी, हृदय का प्रकाश मनुष्य को एक अपूर्व सौन्दर्य-ज्योति से आलोकित कर देता है। यदि किसी सुन्दर देह में पवित्र हृदय का निवास हो तो कहना ही क्या है। फिर तो तुलसीदास जी के शब्दों में—

सुन्दरता कहँ सुन्दर करई।
छबि गृह दीप-शिखा जनु बरई॥

परन्तु इसके विपरीत कलुषित हृदय वाला मनुष्य सौन्दर्य-राशि होने पर भी हमारी घृणा का पात्र होने के योग्य है। गोसाईं जी ने ठीक ही कहा है—

मन मलीन तन सुन्दर कैसे।
विषरस-भरा कनक-घट जैसे॥

अतएव मनुष्य-जीवन में हृदयगत सौन्दर्य का होना परमावश्यक है। बाह्य सौन्दर्य के अभाव में आन्तरिक सौन्दर्य उसका स्थानापन्न हो सकता है, परन्तु आन्तरिक सौन्दर्य के अभाव की पूर्ति बाह्य सुन्दरता द्वारा नहीं हो सकती। हमको वस्तुओं का ग्रहण अथवा परित्याग केवल उनके बाह्य रूप के ही अनुसार करना उचित नहीं है। हमारे ध्येय ऐसे उच्च बनने चाहिएँ कि हम केवल सर्वाङ्ग सुन्दर वस्तुओं की ओर आकृष्ट हों, बाह्य रूप के साथ-साथ आन्तरिक रूप की भी परीक्षा करना हमें इष्ट हो; अन्यथा हमारा निर्वाचन समुचित न होगा। बाह्य सौन्दर्य की तीव्र धारा में तिनके की भाँति न बह कर, हमको सदैव यह ध्यान में रखना चाहिए कि—

इक बाहर, इक भीतरे, इक मृदु दुहुँ दिसि पूर।
ईस रचे जग त्रिविध नर, बेर, बदाम, अँगूर॥

बेर, बदाम, तथा अङ्गूर के उदाहरण से पाठक हमारा अभिप्राय भली प्रकार समझ गए होंगे, अतएव हम भी अपना लेख यहीं समाप्त करते हैं।

एक व्यक्ति ने अपने कञ्जूस भाई से कुछ रुपया उधार माँगा। कञ्जूस भाई बोला—मैं छः रुपया सैकड़ा सूद लूँगा।

वह व्यक्ति बोला—छः रुपया सैकड़ा! ऐसा अन्धेर मत कीजिए। भला जो हमारे स्वर्गीय पिता स्वर्ग से यह बात देखेंगे तो उन्हें कितना दुख होगा।

कञ्जूस—जहाँ पर वह हैं वहाँ से देखने पर उन्हें छः तीन ही दिखाई देगा।

हिन्दुस्तान से लौटकर एक अंगरेज़ परिवार विलायत गया। वहाँ बच्चा खिलाने के लिए एक अंगरेज़ दाया रक्खी गई। दाया ने बच्चे की माता से कहा—बच्चा मेरे पास नहीं रहता, रोता है।

बच्चे की माता बोली—ठीक है, हिन्दुस्तान में जो दाया इसे खिलाया करती थी वह काली थी। अच्छा तू अपने मुँह पर थोड़ी जूते की काली पॉलिश मल ले।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह

[लेखक—"पागल"]

दूसरा खण्ड

७

ता रा के पत्र ने मेरी उत्सुकता पर ऐसा बाँध बाँध दिया है कि मैं डॉक्टर साहब को सामने पाकर भी उनसे उसके सम्बन्ध में कुछ भी पूछताछ न कर सका। परन्तु भीतर ही भीतर मेरी आत्मा उसका हाल जानने के लिए अकुला रही थी, जिसके कारण अन्य किसी विषय पर बातचीत करने में मेरा जी न लगता था। फिर भी सन्तोषानन्द ने किसी न किसी तरह घुमा-फिरा कर मुझे जहानारा की कहानी कहने के लिए बाध्य ही कर दिया और मैं विवश होकर कहने लगा।

अच्छा सुनिए। जहानारा के पास मैंने अपना ख़त तो भेज दिया, मगर बाद को मैं बहुत डरा कि ऐसा न हो कि कहीं वह नाराज़ होकर इसकी शिकायत पिता जी के कानों तक पहुँचा दे। इसी चिन्ता में मुझे रात भर नींद न पड़ी। ईश्वर से मनाता रहा कि वह पत्र उसे न मिले और कमरे में झाड़ू देने वाला उसे रद्दी समझ कर बुहार ले जाय। मगर दूसरे दिन दोपहर को जब मैं अपने मकान के सामने एक तितली पकड़ने के लिए उसके पीछे दबे पैरों चुपके-चुपके क़दम बढ़ा रहा था कि इतने में एक आदमी मेरे सामने आकर बोला—यहाँ कोई अलिन्द रहता है?

मैं—हाँ, मेरा नाम है। क्यों?

वह—तुम्हीं हो? अच्छा, मेरे साथ आओ।

जब वह मुझे लेकर जहानारा की कोठी के हाते के अन्दर घुसा, तब तो मेरे होश उड़ गए। सुन्दरता निरखने का शौक़ चूल्हे में गया। समझ लिया कि यह उसी ख़त का नतीजा है और अब मेरी ख़ैरियत नहीं है। मगर करता तो क्या करता? मैं कुछ ऐसा हक्का-बक्का हो रहा था कि उस वक़्त मुझसे भागते भी न बन पड़ा।

जब मेरे होश कुछ ठिकाने हुए तो देखा कि सामने एक मख़मली कोच पर जहानारा बैठी हुई है और पास ही मैं खड़ा हूँ। हम दोनों के सिवाय कमरे में उस वक़्त और कोई न था। उसने मुझे बड़े ग़ौर से सर से पैर तक देखा। उसके बाद जेब से मेरा वही ख़त निकाल कर मेरे सामने फेंक कर बोली—यह हरकत तुमने की है?

उसकी आवाज़ में रुखाई होते हुए भी कितना माधुर्य था, कितनी मिठास थी कि मैं मस्त होकर उसकी झनकार ही सुनता रह गया। मेरी कला की प्यास जाग्रत हो गई। डर एकाएक मेरे दिल से छू-मन्तर हो गया। मेरी पहली दृष्टि में लड़कपन की घबराहट थी, जिसके कारण जिस तरह किसी अपराधी को उसको दण्ड देने वाली सर्वशक्तिशालिनी महारानी प्रतीत होती है, उसी तरह वह मुझे दिखाई पड़ी थी। मैं सहम गया था, मगर अब मेरी कला की दृष्टि खुल जाने से मैं उसे इस तरह निडर होकर क्या, बल्कि बड़े चाव से देख रहा था, जिस तरह कोई उत्तम चित्रकार अपने आदर्श मॉडल (Model) को उत्सुक नेत्रों से निरखता है।

जहानारा—बोलो, यह हरकत तुमने की है?

मैं—हाँ, हुई तो मुझी से है।

जहानारा ने त्योरी चढ़ा कर कहा—क्यों?

मैं—यह मुझसे पूछने की बात नहीं है।

जहानारा—तब किससे पूछूँ?

मेज़ पर एक आइना रक्खा हुआ था। मैंने उसे लपक कर उठा लिया और उसे उसके सामने करके कहा—इससे पूछिए।

जहानारा एकाएक अपनी कोच पर से उछल पड़ी। उसके चेहरे पर से रुखाई एकदम उड़ गई। और अब वह अपनी मुस्कराहट को किसी तरह भी न रोक सकी।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वह हँसती हुई बोली—उफ़ ओ! अभी से तुम्हारा यह हाल है। ख़ैर! बैठ जाओ। तुम तो बड़े दिलचस्प मालूम होते हो। हाँ, बताओ, क्या सचमुच तुम मेरा चित्र खींचना चाहते हो?

मैं—नहीं तो लिखता क्यों?

जहानारा—मगर क्यों?

मैं—ताकि आपको हर वक़्त देख सकूँ।

उसने मुस्कराकर सर झुका लिया। फिर मुझे कनखियों से देख कर कहा—"कै आमदी कै पीर शुदी?" भला चित्र बनाना भी जानते हो?

मैं—कोशिश करके देख लूँ, तब हाँ या नहीं कह सकता हूँ। पहले कैसे बताऊँ?

उसने हँस कर पूछा—अगर कोशिश करने पर भी नहीं बना सके तो इसकी क्या सज़ा होगी?

मैं—फिर मुझसे आप दुबारा बनवाइए। बार-बार बनवाइए।

वह खिलखिला कर हँस पड़ी।

जहानारा—भई वाह! ग़ज़ब की चाल चलते हो। दाँव हारने में भी बाज़ी हाथ से नहीं जाने देते। मगर क्या तुम सचमुच चित्रकार हो? अगर हो तो तुमने इतनी छोटी उम्र में यह मुश्किल हुनर किस तरह सीख लिया?

मैं—हुनर जानने के लिए सच्चा शौक़ चाहिए, उम्र की लम्बाई नहीं। मैं भला अभी अपने को किस तरह चित्रकार कह सकता हूँ? अभी तक तो मुझे कभी कोई उत्तम चित्र बनाने का अवसर ही नहीं मिला। हाँ, अगर आप मुझ पर कृपा करें और मैं अपनी कोशिश में कामयाबी हासिल कर सकूँ तो शायद मैं अपने को चित्रकार कहने का साहस कर सकूँगा।

उसका चेहरा एकाएक गम्भीर हो गया। कुछ देर तक वह मुझे एक अजीब निगाह से देखती रही। उसके बाद मुस्करा कर बोली—अच्छी बात है, मैं तुम्हारे लिए 'तख़्ती-ए-मश्क़' बनूँगी। जब तुम इस बात पर तुले बैठे हो तो मैं भी तुम्हें नाउम्मीद नहीं करना चाहती। कब से बनाओगे?

मैं—चित्र खींचने का सामान पिता जी से रुपए माँग कर मँगवा लूँ तब, क्योंकि मैं हाल ही में यहाँ आया हूँ। मेरे पास अभी कुछ है नहीं।

जहानारा—अच्छा, कल इस वक़्त तुम अपने मकान पर ही रहना, कहीं जाना मत।

दूसरे दिन दोपहर को मैं फिर जहानारा के सामने लाया गया। उस समय वहाँ पर चित्रकारी के सामान जितने भी हो सकते हैं, सब मौजूद मिले। उनमें से अब भी मेरे पास बहुत-कुछ हैं। सच तो यह है कि उसी की बदौलत मैं चित्रकार हुआ और उसी की दी हुई चीज़ों से मैंने पहले-पहल अपनी चित्रशाला की स्थापना की।

सन्तोषानन्द—मैं समझता हूँ, तुमने उसका चित्र खींचने में ज़रूर ही कामयाबी हासिल की होगी?

मैं—हाँ, डॉक्टर, सौभाग्य से मैं इस काम में पूरे तौर से सफल हुआ। यों तो मनमाने चित्र चुपके-चुपके मैं खींचा ही करता था। मगर चित्रकार बन के चित्र खींचने का वह मेरा पहला ही उद्योग था। इसी से मैं उस समय बहुत घबराया हुआ था। मगर मेरे सच्चे उत्साह ने मेरा बेड़ा किसी तरह पार लगा दिया, और तब से मैं चित्रकार मशहूर हो गया।

सन्तोषानन्द—सच्चा शौक़ कभी बेकार नहीं जाता। हाँ, तो क्या उसी दिन से तुमने उसका चित्र खींचना शुरू कर दिया?

मैं—नहीं, उस दिन तो वह बात-बात पर हँसती ही रही। जैसा भाव मैं उसकी छवि में दिखलाना चाहता था वैसा वह अपनी सूरत पर झलका ही न सकी। क्योंकि जब वह हँसना बन्द करती थी तो वह एकदम गम्भीर हो जाती थी। इसी लिए मैं उस दिन रूठ कर चला आया।

सन्तोषानन्द—अरे! तुम उससे रूठने भी लगे? जिसको सलाम करने के लिए बड़े-बड़े नवाब अपना अहोभाग्य समझते थे। यह साहस तुम्हें कैसे हुआ भाई?

मैं—साहस दिलाने ही से साहस उत्पन्न होता है। मुमकिन है, उसी ने मुझे इस बात के लिए हिम्मत दिलाई हो या यह मेरा लड़कपन हो। क्योंकि रूठना-मचलना तो नित्य ही होता था। कभी वह रूठती थी और कभी मैं।

सन्तोषानन्द—जब तुम रूठते थे तो भला वह भी कभी तुम्हें मनाती थी?

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मैं—हमेशा। वरना मैं रूठता ही क्यों ?

सन्तोषानन्द—ठीक कहते हो। गोकि कोई इस बात का ख़्याल करके जान-बूझ कर नहीं रूठता, फिर भी उसके दिल के भीतर यह आशा गुप्त रूप से ज़रूर होती है, जो उसे मचलने के लिए उभारती है। हाँ, पहले-पहल उसने तुम्हें किस तरह मनाया ?

मैं—मैं तीसरे दिन उसी वक्त पर बुलाया गया। जहानारा मुँह फेरे हुए कुछ पढ़ रही थी। मेरी आहट पाते ही उसने मुझे देखा और बड़े तपाक से मुस्करा कर कहा—ओहो ! तुम आ गए। × × × खड़े क्यों हो, आओ बैठो।

इतना कह कर उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और ले जाकर अपने साथ अपनी कोच पर बिठा लिया। सामने एक छोटी सी मेज़ पर तश्तरियों में कुछ फल चुने हुए थे।

जहानारा—लो, पहले कुछ नाश्ता कर लो, तब आगे कोई बातचीत हो।

मैं—मुझे तो भूख नहीं है। क्षमा कीजिए।

जहानारा—वाह ! फल खाने में भूख की क्या ज़रूरत ?

मैं—मगर मैं बिना भूख के कुछ खाता नहीं।

जहानारा—तुम्हें न सही, मुझे तो भूख लगी है। कम से कम मुझी को मदद दो।

मैं—बेहतर है, लीजिए फलों को छीले देता हूँ।

जहानारा—यहीं तक नहीं, बल्कि उनको ख़ुद खाओ भी !

मैं—इसके लिए माफ़ी चाहता हूँ।

जहानारा—जी नहीं ; यह नहीं होगा। खाना पड़ेगा। क्या कुछ छुआछूत का ख़्याल है ? अगर यह हो भी तब भी मैं तुम्हें ज़बरदस्ती खिलाऊँगी; और अपने ही हाथ से। देखूँ, तुम कैसे नहीं खाते हो।

इतना कह कर उसने एक केला मेरे मुँह में ठूँस दिया। लड़कपन में बदला लेने की बड़ी इच्छा होती है। इसलिए मैंने भी नारङ्गी की एक फाँक लेकर उसे खिलाना चाहा। उसने मेरा हाथ हटा दिया। मेरी इच्छा और तेज़ हो चली और मैं ज़बरदस्ती करने लगा। वह कोच से उठ कर भागी। मैंने दौड़ कर उसे पकड़ा और उसकी गर्दन में हाथ डाल दिया। उसकी ठुड्डी पकड़ कर उसका मुँह ऊपर किया और दूसरे हाथ से उसे नारङ्गी खिला दी। उसी वक्त हमारी-उसकी निगाहें चार हुईं। उसकी दृष्टि में एक अद्भुत आकर्षण था। चितवन में एक अपूर्व मादकता थी। उसकी सूरत एक विलक्षण ज्योति से दमक रही थी। मेरा दिल बड़े ज़ोरों से धड़क उठा। मेरे हृदय में एक नई अभिलाषा उत्पन्न हुई। उसे मैं किसी तरह भी रोक नहीं सका। बल्कि उसी के आवेश में मैं कुछ ऐसा उन्मत्त हो गया कि मैंने तड़ाक से उसका मुख चूम लिया।

सन्तोषानन्द—अरे ! यहाँ तक ?

मैं—ठहरो डॉक्टर ! इस वक्त बड़ी पुरानी याद उभर उठी है। इसे अब किसी तरह कह लेने दो। हम दोनों उस वक्त आपे में नहीं थे। एक दूसरे के बाहुपाश में आप से आप बँध गए थे। एकाएक जहानारा बिजली की तरह छटक कर इस बन्धन से निकली और झुँझला कर बोली—उफ़ ! तुमने यह क्या किया ? तुमने मेरी रही-सही ज़िन्दगी में भी आग लगा दी। जाओ, तुमसे अब तस्वीर नहीं खिचाऊँगी। तुम बड़े ख़राब हो।

मैं उसकी बातों का अर्थ समझ न सका। बस इतना जाना कि वह मुझसे नाराज़ हो गई। अब मुझे होश हुआ और अनुभव किया कि मुझसे पागलपन में क्या हो गया। मैं डर, लज्जा और पश्चात्ताप से वहीं पर गड़ गया और थर-थर काँपने लगा। माफ़ी माँगने के लिए मेरे मुँह से बोल भी न फूटा। जहानारा लड़खड़ाती हुई अपनी कोच पर जा गिरी और बड़ी देर तक अपना मुँह छिपाए चुप बैठी रही। मेरी आँखों से पश्चात्ताप के आँसू निकल पड़े।

मुझे हिलता-डोलता न पाकर उसने सर उठा कर मेरी तरफ़ देखा और पूछा—क्यों, खड़े क्यों हो ? अरे ! रोते हो ? क्यों ?

मैंने नीची नज़र किए लड़खड़ाती हुई आवाज़ में कहा—जो सज़ा देनी हो, दीजिए ; मगर हाथ जोड़ता हूँ, नाराज़ न होइए। मुझे ख़ुद ही नहीं मालूम कि मुझसे कैसे यह अपराध हो गया।

कोई उत्तर न पाकर मैंने डरते-डरते निगाह उठाई। देखा कि उसकी भी आँखें डबडबाई हुई हैं और सूरत से घोर चिन्ता टपक रही है। अब तो मुझसे नहीं रहा

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गया। मैं दौड़ कर उसके सामने घुटने टेक कर बैठ गया और उसके घुटनों पर अपना सिर रख के बोला—हाय! मैं नहीं जानता था कि आपको इतना रञ्ज है। ईश्वर के लिए मुझे माफ़ कीजिए। नहीं, मैं माफ़ी नहीं चाहता। मुझे कड़ी से कड़ी सज़ा देकर अपना दुख हल्का कीजिए।

उसने एक हाथ से मेरा सर उठा कर कहा—सज़ा चाहते हो तो सज़ा दूँगी। मगर पहले इन फलों को खाकर मेरी तस्वीर तो बनाना शुरू करो।

मैं—नहीं, मुझे पहले सज़ा चाहिए।

जहानारा—अच्छा तो यह लो।

यह कह कर उसने मुझे शर्माई हुई निगाहों से देखा और मेरे गाल पर एक हल्की सी चपत लगा कर मुस्करा पड़ी। बस, मुझे भी मुस्कराहट आ गई और मैं हँसता हुआ उठ कर चित्र बनाने की तैयारी करने लगा।

८

थोड़ी देर चुप रहने के बाद डॉक्टर साहब के आग्रह से मुझे जहानारा की कहानी फिर शुरू करनी पड़ी। मैंने बहुत-कुछ टालने की कोशिश की, मगर उनके सवालात के आगे मेरा कुछ बस न चला, और मैंने ठण्डी आह खींच कर यों कहना आरम्भ किया :—

आप पूछते हैं कि जहानारा कौन थी? यह मैं नहीं जानता। बस इतना जानता हूँ कि वह साक्षात् देवी थी। जितना ही मैं उससे मिलता था उतनी ही अधिक मेरी श्रद्धा उसके लिए बढ़ती थी। चित्र बनाते-बनाते जब कभी उसकी ओर ताकता था और उसकी निगाहों में वही आकर्षण और वही छलकती हुई मादकता पाता था तो मैं एक अजीब लालसा से छट-पटाने लगता था, जिससे बेताब होकर कभी तूलिका फेंक कर कमरे में टहलता था और कभी सर पकड़ कर बैठ जाता था। वह घबरा कर पूछती थी 'क्या हुआ?' तब मैं बहाना कर देता था कि मेरा सिर दुख रहा है। उस वक़्त वह मुझे कोच पर ज़बरदस्ती लिटा देती थी और मेरा सर अपनी गोद में लेकर दबाने लगती थी। हाय! वह मुझे कितना मानती थी! मैं बता नहीं सकता डॉक्टर!

मैंने बहुत जी लगा कर उसका चित्र खींचा था। तीन दिन तक उस पर उसकी नज़र नहीं पड़ने दी। वहाँ से चलते समय मैं उस पर पर्दा डाल कर उसे तागे से बाँध देता था, और उसे खोल कर देखने के लिए अपनी क़सम दिला देता था। चौथे दिन उसकी तस्वीर की निगाहों में भी वही बात पैदा होगई जो मुझे उन्मत्त कर देती थी। फिर क्या था, वह छवि एक अलौकिक आभा से दमक उठी। उस वक़्त मैं अपनी सफलता की ख़ुशी किसी तरह भी सँभाल न सका। झट ताली बजा कर चिल्ला उठा कि मार लिया है।

जहानारा तस्वीर देखने के लिए व्याकुल होगई। उसको अपनी तरफ़ आते हुए देख कर मैं भी उसको रोकने के लिए खड़ा होगया।

जहानारा—अब तो मैं आज तुम्हारी कारीगरी ज़रूर देखूँगी, चाहे जो हो।

मैं—आज नहीं, कल। अभी थोड़ी सी कसर है।

जहानारा—हाथ जोड़ती हूँ।

मैं—मैं भी हाथ जोड़ता हूँ। बस एक दिन और सब्र करो।

"जान गई। तुम तस्वीर-वस्वीर कुछ नहीं खींच रहे हो। ख़ाली सामने बिठाल कर मुझे उल्लू बना रहे हो।"—जहानारा ने कुछ रुखाई से कहा।

मेरे दिल पर चोट सी लगी। मैंने उसी तरह जवाब दिया—अच्छा, तो फिर आज ही देख लीजिए, आइए।

वह रुष्ट होकर बोली—नहीं देखूँगी। वहाँ कुछ होगा भी। जब तुम्हारे ऐसे छोकरे तस्वीर बना सकेंगे तो दुनिया के और मुसौविर फिर क्या करेंगे?

मेरे बदन में आग लग गई। मैंने झट 'स्टैण्ड' को घुमा कर उसकी तरफ़ कर दिया। उसकी नज़र जैसे ही उस पर पड़ी, वह ताज्जुब में चीख़ उठी, और दौड़ कर मुझसे लिपट गई। मगर मैं निर्जीव पुतली की भाँति सर झुकाए ज्यों का त्यों खड़ा ही रहा। कमरे के बाहर लोगों के आने की आहट मालूम हुई। वह मुझे छोड़ कर तुरन्त अलग होगई। वह उस वक़्त मारे ख़ुशी के दीवानी हो रही थी और उसके चेहरे पर आनन्द की दमक और आँखों से हर्ष की धारा बरस रही थी। मैनेजर ने द्वार खटखटा कर बाहर ही से पूछा—ख़ैरियत तो है, आप चिल्लाईं क्यों?

उत्तर में उसने कहा—अन्दर आइए!

तुरन्त ही थिएटर के कर्मचारियों से कमरा भर गया

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और वाह ! वाह ! की ध्वनि गूँज उठी। सब लोग चित्र देखने में लगे हुए थे और मैं चुपके से कमरे के बाहर हो गया।

इसके दूसरे दिन पिता जी स्नान करके नहीं लौटे। मेरा दिल न जाने क्यों आपसे आप घबराने लगा। मुझसे न रहा गया। मैं दौड़ कर नदी पर गया। गङ्गा के घाट पर भीड़ लगी हुई थी। मालूम हुआ कि कोई आदमी डूब गया है और उसके कपड़े सीढ़ियों पर रक्खे हुए हैं। कपड़ों को पहचानते ही मैं मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

सन्तोषानन्द—ठहरो ! आओ ज़रा टहल आवें।

मैं—डॉक्टर, तुम मेरे आँसुओं का ख़्याल न करो। मैं दुःख झेलते-झेलते ख़ूब मँझ गया हूँ। घबराने की कोई बात नहीं है।

सन्तोषानन्द—नहीं। शाम हो चली है। इस वक़्त बैठना ठीक भी नहीं।

ख़ैर, ज़रा घूम आने से मेरा शोक कुछ हल्का हुआ और आवाज़ भी साफ़ होगई, और बातचीत का फिर वही सिलसिला शुरू हुआ।

सन्तोषानन्द—तुम्हारे रिश्तेदारों में से क्या कोई ऐसा न था, जो उस वक़्त तुम्हारे सिर पर हाथ रख सकता ?

मैं—रिश्तेदार किसके नहीं होते ? मगर यह लोग अच्छे दिनों के लिए होते हैं। बुरे दिनों में तो कोई कम्बख़्त आँख उठा कर देखता भी नहीं। यही तो और भी मुसीबत थी कि पिता जी की आँख बन्द होते ही मैं इस भवसागर में बिना एक तिनके के सहारे के ऊबने-डूबने लगा। जो कुछ पूँजी थी वह अशर्फ़ियों में थी और उन्हें पिता जी सदैव अपने कमरबन्द में रखते थे। उनकी लाश के साथ वे भी लापता हो गईं। उस परिवार में माँ को छोड़ कर दो विधवा चची और एक विधवा फूफी भी पिता की मुहताज थीं। घर में झम्मी कौड़ी भी न थी कि जिससे चबेना ही पर कुछ दिन गुज़र हो सके। मैंने पढ़ने-लिखने में भी अपने चित्रकारी के शौक़ के आगे कुछ ध्यान नहीं दिया था कि जिसकी बदौलत कहीं नौकरी की कुछ उम्मीद करता। मकान का किराया अलग चढ़ा हुआ था।

सन्तोषानन्द—ऐसे गाढ़े वक़्त क्या जहानारा ने भी कोई सहायता नहीं की ?

मैं—सहायता ? अरे ! उसी ने तो हम लोगों की प्राण-रक्षा की, नहीं तो हम लोग कभी मर-मिट गए होते। उसे जैसे ही हमारे दुर्भाग्य की सूचना मिली, वह दौड़ी हुई हमारे यहाँ आई। तीन दिन लगातार तमाशा करने नहीं गई। चौबीसो घण्टे यहीं रह कर उसने घर सँभाला। हम लोग तो सब मरे हुए मुर्दा थे ! उसी ने ढाढ़स देकर, उत्साह दिला कर, घर का ख़र्च चला कर हम लोगों को जिलाया, उसी ने मुझे चित्रकार बना कर प्रसिद्ध किया और चित्रकारी से मुझे अपनी स्वतन्त्र जीविका चलाने की राह दिखाई। वरना इस देश में कला को भला कौन पूछता है ? यहाँ तो यह केवल मनोविनोद की सामग्री समझी जाती है। जीविका के लिए यहाँ बस नौकरी है, और उसके लिए बी० ए० और एम० ए० की डिग्रियों की ज़रूरत थी ! और मेरे पास तो इन्ट्रेन्स की भी सार्टीफ़िकेट न थी। मैं करता तो क्या करता ?

सन्तोषानन्द—मुझे उससे ऐसी ही उम्मीद थी, तभी पूछा था। हाँ, तुमने फिर वह चित्र पूरा किया ?

मैं—हाँ, पाँच-छः दिन के बाद मैनेजर की ज़िद करने से किसी तरह पूरा कर दिया। क्योंकि तमाशे के विज्ञापन के लिए उसके कई फ़ोटो लेकर देश के सभी बड़े-बड़े समाचार-पत्रों में प्रकाशनार्थ भेजे जाने वाले थे। जहानारा स्वयं एक बड़ी विख्यात ऐक्ट्रेस थी। उसका चित्र छपते ही मेरा भी नाम उसके साथ प्रसिद्ध हो गया। फिर तो कई जगह से चित्र की माँग आने लगी और मेरा इस तरह गुज़र-बसर होने लगा। उन्हीं दिनों वह कम्पनी बड़ी धूम-धाम से एक नया तमाशा तैयार कर रही थी। उसके सभी पर्दे बम्बई से आ चुके थे। मगर जहानारा ने केवल मुझे सहायता देने के लिए अपने पार्ट में कुछ परिवर्तन कर दिया, जिसके कारण एक नए पर्दे की ज़रूरत पड़ गई। तमाशा सातवें दिन होने वाला था। इतना समय न था कि बम्बई से नया पर्दा बनवा कर मँगवाया जाय। इसलिए उसके बनाने का काम मुझे सौंपा गया और मैंने भी रात-दिन जान लड़ा कर वक़्त पर उसे तैयार कर दिया। मैनेजर उससे इतना ख़ुश हुआ कि मुझे स्थायी रूप से सौ रुपए माहवार पर नौकर रखना चाहा। मैंने भी उसे ख़ुशी-ख़ुशी स्वीकार कर लेने का इरादा किया।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मगर जहानारा ने न जाने कौन सी खुरपेंच लगाई कि मेरी मनोकामना सफल न हुई।

सन्तोषानन्द—ओह! मैं समझ गया। वह तुमसे भागना चाहती थी।

मैं—हाँ, ऐसी ही कुछ बात थी। इसी से मेरी तबीयत उससे कुछ खटक गई।

सन्तोषानन्द—क्यों?

मैं—क्योंकि मुझे तो न जाने उन दिनों क्या हो गया था कि मैं हर वक्त उसके देखने के लिए बेचैन रहता था। हर सायत बस उसी के सामने बैठा रहना चाहता था। और मुझे उसके साथ रहने का मौक़ा भी ईश्वर ने दिया तो उसी ने भाँजी मार दी। यहीं तक नहीं, बल्कि जब-जब मैं उसके पास जाता था, वह कोई न कोई बहाना करके मेरे पास से चल देती थी। मेरे यहाँ जब आती तब सीधे औरतों में घुस जाती थी। इससे जाना कि उसे मेरी परवाह तनिक भी नहीं है। और मैं जल मरा।

सन्तोषानन्द—मूर्ख हो। वह तुम्हें हद से ज़्यादा चाहती थी—इतना कि वह तुम्हारे जीवन की राह में काँटा बनना नहीं गवारा कर सकी। इसी से तुमसे भागती थी।

मैं—काँटा बनना कैसा?

सन्तोषानन्द—आप ही मालूम हो जायगा। आगे कहो तो।

मैं—ख़ैर! इसका कारण कुछ भी हो, मगर मैंने उसके व्यवहार को अपनी लड़कपन की बुद्धि के अनुसार ऐसा ही समझा और उससे कुछ चिढ़ा हुआ रहने लगा। इसी तरह ढाई महीने बीत गए, और कम्पनी दूसरे दिन यहाँ से कूच करने को तैयार हुई। ख़बर पाते ही मैं एकाएक न जाने क्यों तड़प उठा। अपनी बेचैनी सँभाल न सका। सीधे उसके पास दौड़ा। वह हाथ पर गाल रक्खे घोर चिन्ता की मूर्ति बनी हुई थी। आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी।

मैंने जाते ही बेताब होकर पूछा—जहानारा! जहानारा! क्या तुम जा रही हो?

उसका चेहरा खिल उठा। उसकी आँखों में एक अजीब तृष्णा की झलक दिखाई दी। मगर उसने तुरन्त ही अपना मुह फेर कर गम्भीर भाव धारण कर लिया, और आँसू पोंछ कर बोली—तो फिर × × × हाँ, तुम्हारी तस्वीर की उजरत अभी तक नहीं दी है। बोलो, क्या लोगे?

मैं—उजरत में तुमने तो मेरी जीविका दी। इससे बढ़ कर दुनिया में भला पुरस्कार क्या हो सकता है?

जहानारा—यह तो तुम्हारी क़िस्मत और मिहनत ने दिया। मुझसे जो कुछ लेना चाहते हो, कहो!

मैं—अगर तुम मुझे कुछ देना ही चाहती हो तो अपने साथ मुझे चलने की आज्ञा दो। बस, इसके सिवाय और मुझे कुछ नहीं चाहिए।

जहानारा—ग़ैर मुमकिन है।

मैं—हाय! जहानारा, तुम्हें किस तरह बतलाऊँ कि मुझे तुम्हारे बिछुड़ने का कितना कष्ट हो रहा है।

वह मुँह फेर कर रुँधे स्वर में बोली—उफ़! यह न कहो। × × × इसके सिवाय तुम और क्या चाहते हो? बोलो, बोलो!

मृत्यु की यन्त्रणा से तड़पने वाला जब आरोग्यता से एकदम निराश हो जाता है, तब वह क्षणिक शान्ति ही पाना अपना अहोभाग्य समझता है। इसलिए मैंने लड़खड़ा कर कहा—अच्छा, तो फिर मुझे एक बार वही अपराध करने दो, जो पहले दिन मुझसे अनजाने हो गया था।

यह कह कर मैंने अपने दोनों हाथ फैलाए। उसे हृदय से लगाकर चुम्बन करने के लिए लपका। वैसे ही वह खड़ी हो गई और बीच ही में मेरे हाथों को पकड़ कर समेट दिया, और उन्हें अपनी मुट्ठी में कस कर दबा लिया। फिर तुरन्त ही उन्हें झटक कर बोली—नहीं-नहीं। हाय! जाओ भी, लड़कपन मत करो। उफ़! जाओ!

इतना कह कर बिजली की तरह वह ख़ुद ही कमरे से भाग गई, और मैं अपना-सा मुँह लेकर रह गया।

* * *

रात के ढाई बजे थे। मैं अपने मकान के बाहर बरामदे में बिस्तर पर करवट बदल रहा था। उस रात को थिएटर का आख़िरी तमाशा था। थिएटर के कुछ कर्मचारी उसी रात को साढ़े चार बजे की गाड़ी से यहाँ से रवाना होने वाले थे। मैं जहानारा से इतना जला हुआ था कि उससे फिर पूछने भी न गया कि वह

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किस गाड़ी से जायगी। फिर भी मेरी तबीयत उसके लिए छटपटा रही थी। मेरा दिल इसी शङ्का से धड़क रहा था कि कहीं वह भी न आज ही चली जाय। यह ख़्याल मेरे कलेजे में तीर की तरह ज्यों-ज्यों चुभने लगा, त्यों-त्यों उसे एक बार फिर देखने की लालसा मुझे बुरी तरह सताने लगी। तमाशे से ऐक्टर लौटने लगे। जहानारा की भी मोटर आ गई। जी में आया, उसके फाटक पर दौड़ जाऊँ। मगर वह ख़ुद ही मेरे मकान की तरफ़ आती हुई दिखाई दी। दिल में ठान लिया कि चाहे कुछ हो, मगर आज मैं उसे अपने कलेजे के भीतर छिपा लूँगा। बला से वह नाराज़ हो जाय, परवा नहीं। उसे इनकार करने या भागने का मौक़ा ही न दूँगा।

ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ रही, थी त्यों-त्यों मेरा दिल बड़े ज़ोरों से धड़क रहा था। वह बिलकुल ही मेरे पास आ गई, मैं चारपाई पर उठ बैठा। दूसरे ही क्षण मैं झपट कर उससे चिमट जाता कि इतने में द्वार खोल कर भीतर से कम्बख़्त नौकरानी न जाने क्यों निकल पड़ी। जहानारा कतरा के मेरे मकान में घुस गई।

वह भीतर मेरे घर की औरतों से मिल रही थी और मैं बाहर तकिए में मुँह छिपाए रो रहा था। कुढ़-कुढ़ कर मन ही मन कह रहा था कि देखो उसे बूढ़ी स्त्रियों की मुहब्बत है, मेरी नहीं। अगर खड़ी-खड़ी मुझसे दो बातें कर लेती तो उसका क्या बिगड़ता? क्या नौकरानी उसे बात करने से मना कर देती? नहीं, वह मुझे जलाना चाहती है और इसी लिए दिखला रही है कि मुझे तुम्हारी परवा नहीं है। अच्छा जाओ, मैं भी अब मुँह छिपाए पड़ा रहूँगा और तुमसे नहीं बोलूँगा। तुम्हें चलते समय सलाम भी नहीं करूँगा। जाओ, चली जाओ।

सन्तोषानन्द—यह तुम्हारी मूर्खता थी, जो तुमने उसके बारे में ऐसा ख़्याल किया। वह तुम पर मरती थी, तुम पर जान देती थी। वह तुम्हीं से मिलने आई थी। अगर तुम्हारे घर की स्त्रियों से उसे मुहब्बत थी, तो बस तुम्हारे ही कारण।

मैं—मुमकिन है। मगर मैं अपने ही विश्वास पर अटल रहा। थोड़ी देर के बाद मुझे मालूम हुआ कि कोई मेरी मसहरी हटा कर मेरी बग़ल में बैठ गया। मेरे कान में एक सुरीली आवाज़ पड़ी—अलिन्द! अलिन्द! क्या जुदाई की घड़ी भी मुझसे न बोलोगे? क्या अपनी उजरत भी लेना भूल गए?

इसके बाद न जाने कैसे हम दोनों बाहुपाश में एक-दम गुथ गए, और दोनों के ओंठ एक-दूसरे से चिपक गए। परन्तु हाय! आँख झपकते ही वह स्वर्गीय स्वप्न अलोप हो गया। हवास कुछ ठिकाने हुए तो जाना कि मैं बिस्तरे पर अकेला सिर धुन रहा हूँ और जहानारा के फाटक से एक मोटर स्टेशन वाली सड़क पर गरजती हुई जा रही है। मेरे मुँह से बेअख़्तियार 'आह' निकल पड़ी और मैं कलेजा थाम कर बैठ गया।

सुबह को तकिए के नीचे एक लिफ़ाफ़ा मिला। उसमें सौ-सौ रुपए के पाँच नोट थे और एक ख़त भी था। वही पाँच सौ रुपए मैं अब तक बचाए हुए हूँ। हज़ार मुसीबतों में भी उसमें का एक पैसा नहीं ख़र्च किया।

सन्तोषानन्द—और वह ख़त?

मैं—शायद वह भी कहीं रक्खा हो। हाँ, याद आया।

मैंने आलमारी का एक गुप्त ख़ाना खोला और उसमें से वह ख़त निकाल कर डॉक्टर साहब के हाथ में दे दिया।

(क्रमशः)

(Copyright)

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्म-समाज

[ले० श्री० कन्हैयालाल जी शास्त्री, विशारद]

भारतवर्ष अत्यन्त प्राचीन देश है और यहाँ की प्राचीन सभ्यता अब तक नष्ट नहीं होने पाई है। निस्सन्देह उसमें अनेक परिवर्तन हुए, लेकिन बीज वही पुराना है। परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तन करते रहने से उसका नाश नहीं हुआ। प्राचीन सनातन वैदिक हिन्दू धर्म के सिद्धान्त इतने व्यापक थे कि उसके दायरे के भीतर हर प्रकार के विचार रखने वालों के लिए जगह थी। प्रत्येक धर्म के साथ आचार-सम्बन्धी नियम भी लगे रहते हैं और यही नियम उस धर्म के मानने वालों की सामाजिक रीति-रिवाज और आपस के व्यवहार के रूप में प्रकट होते हैं।

हिन्दुओं के आचार-सम्बन्धी नियम—सामाजिक रीति-रस्म—भी काफ़ी उदारता के साथ बनाए गए थे और परिस्थिति के अनुसार उनमें भी बराबर परिवर्तन होता आया था। किन्तु कई कारणों से यह परिवर्तन एकाएक रुक गया और उसी समय से हिन्दू-धर्म और समाज का ह्रास होने लगा। उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में हमारी अवनति चरम-सीमा तक पहुँच चुकी थी। बहुत दिनों तक तो हम अपने प्राचीन गौरव के मद में अपनी गिरती हुई अवस्था को पहचान ही न सके। हम यही राग अलापा करते थे कि हमारा प्राचीन गौरव ऐसा ऊँचा था और हमारे पूर्व-पुरुष ऐसे विद्वान् और प्रतिभाशाली थे कि दुनिया में उनका कोई सानी न था। उस समय हम यह नहीं समझ रहे थे कि हमारे पूर्व-पुरुष कितने ही ऊँचे रहे हों, लेकिन अब तो हम गिर चुके हैं। यदि कोई हमें गिरा हुआ कहता था तो हम उसका यही अर्थ लगाते थे कि हमारे पूर्वज भी गिरे हुए थे, क्योंकि अज्ञान के कारण हमारा यह ख़याल था कि हमारा वर्तमान जीवन और रहन-सहन हमारे पूर्वजों के ही अनुसार है। हम यह भूल गए थे कि हमारी प्राचीन सभ्यता क्या थी। हममें जो अनेक प्रकार की निन्दनीय कुरीतियाँ आ गई थीं, उन्हें ही हमने अपनी प्राचीन सभ्यता का आवश्यक अङ्ग समझ रक्खा था। जब किसी समाज का मानसिक विकास रुक जाता है, तब वह धर्म के वास्तविक तत्वों को भूल जाता है। उचित और अनुचित का विवेचन करने की शक्ति उसमें नहीं रह जाती। पुरानी बातों को वह इस प्रकार पकड़ लेता है, जैसे अबोध बालक अपने किसी आत्मीय के मृत शरीर को मोहवश पकड़े रहता है। साधना के बाह्य अङ्ग का आन्तरिक उद्देश्य नष्ट हो जाने से अनेक प्रकार की कुप्रथाएँ प्रचलित हो जाती हैं और तरह-तरह के अनाचार दृष्टिगोचर होते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में हमारे सामाजिक रीति-रिवाजों में भयानक कुरीतियाँ उत्पन्न हो गई थीं। हमारे सामाजिक नियम अपने ऊँचे आदर्श और लक्ष्य से हट कर हृदयहीन बाहरी आडम्बर मात्र रह गए थे। परिणाम-स्वरूप अनमेल-विवाह, विधवाओं की करुणाजनक अवस्था, सती की क्रूर प्रथा, तिलक-दहेज़ की हृदयहीनता, कुलीन ब्राह्मणों की बहुविवाह-प्रथा और अनेक दूसरी बुराइयाँ समाज को जर्जरित कर रही थीं। धार्मिक विचारों में भी ऐसा ही विचारहीन परिवर्त्तन हो गया था। हमारे प्राचीन धर्म-ग्रन्थों और दर्शन-शास्त्रों में ईश्वर-सम्बन्धी ऊँचे विचारों के रहते हुए भी, उनकी जानकारी न होने के कारण हम अन्धकार में पड़े हुए थे और नाना प्रकार के देवी-देवताओं और भूत-प्रेतों की पूजा हमारे देश में प्रचलित थी। सर्वशक्तिमान एक ईश्वर का विचार मानों उस समय हम लोगों के बीच था ही नहीं। जिस समय हम ऐसे अन्धकार की गोद में पड़े हुए थे, उसी समय देश में अङ्गरेज़ी शिक्षा का प्रचार प्रारम्भ हुआ। अङ्गरेज़ी शिक्षा द्वारा यूरोपीय समाज और ईसाई-धर्म से हमारा सम्पर्क हुआ। उस समय हमने अपनी तत्कालीन गिरी हुई अवस्था से यूरोपियन समाज और ईसाई-धर्म की तुलना की तो हमें मालूम हुआ कि उनके सिद्धान्त और उनके जीवन का आदर्श हमसे कहीं ऊँचा है। स्मरण रहे कि हम अज्ञानवश अपनी तत्कालीन पतित अवस्था और तत्वहीन ऊपरी आडम्बरों को ही अपने धार्मिक

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

सिद्धान्तों का व्यावहारिक रूप समझ रहे थे। नतीजा यह हुआ कि अङ्गरेज़ी शिक्षित समाज यूरोपियन समाज और ईसाई-धर्म की ओर झुका; उसी में सत्य का अंश देख कर ज़ोरों से उसे अपनाने लगा। अङ्गरेज़ों की सभी बातें अच्छी समझी जाने लगीं, लोग अङ्गरेज़ी रीति-रिवाज में रहने और ईसाई-धर्म स्वीकार करने में ही अपना गौरव समझने लगे। यह प्रवाह उसी अवस्था में रुक सकता था जब लोगों को—शिक्षित समाज को—यह विश्वास हो जाता कि हमारे जीवन और धर्म का आदर्श ईसाई-सम्प्रदाय के आदर्श से छोटा नहीं है। और यह विश्वास हिन्दू-धर्म के प्राचीन ऊँचे आदर्श को सच्चे रूप में सामने रखने से ही हो सकता था।

इस समय हमारे प्राचीन विचारों को नए प्रकार से समझाने वालों की आवश्यकता थी और यह महान् कार्य राजा राममोहन राय ने किया। यों तो ब्रिटिश-काल में एक ईश्वर की आराधना का मत रामचरन और रामवल्लभ नामक व्यक्तियों ने भी क्रमशः 'रामसनेही' और 'राम-वल्लभी' मतों के नाम से चलाया था, लेकिन अङ्गरेज़ी शिक्षा के समागम में रहते हुए शिक्षितों के बीच में अपने मत का प्रचार करने वाला ब्रह्म-समाज ही पहला मत था।

जिस समय ब्रह्म-समाज की स्थापना हुई, उस समय वह हिन्दू-समाज के एक धार्मिक सम्प्रदाय के समान था। वह केवल एक ईश्वर को मानता था और उसका विश्वास था कि ईश्वर सर्वव्यापी है और वह किसी भी वस्तु में विशेष रूप से उपस्थित नहीं रहता—सर्वत्र समान रूप से व्याप्त है। इस कारण यह समाज मूर्तिपूजा का विरोधी है। आगे चल कर जब देश में समाज-सुधार का कार्य बढ़ चला, तब ब्रह्म-समाज के लोग ही उसके भी अगुवा थे और उन्होंने ब्रह्म-समाज के उद्देश्यों में समाज-सुधार का कार्य भी रक्खा। इसी मार्ग पर आगे चल कर भारतवर्षीय ब्रह्म-समाज अथवा नवविधान और साधारण ब्रह्म-समाज के रूप में उसका विकास हुआ। इस समय तक प्राचीन हिन्दू-धर्मग्रन्थों की बहुत-कुछ खोज हो चुकी थी और शिक्षित समाज ने यह देख लिया था कि उसमें भी एक ईश्वर की आराधना है और उस प्राचीन वैदिक हिन्दू-धर्म का आदर्श बहुत व्यापक है। इस समय ब्रह्म-समाज का धार्मिक अङ्ग शिथिल पड़ गया और वह मुख्यतया हिन्दू-धर्म का एक सामाजिक सम्प्रदाय हो गया है।

ब्रह्म-समाज के संस्थापक राजा राममोहन राय का जन्म हुगली ज़िला अन्तर्गत राधानगर में २२ वीं मई, सन् १७७२ ईसवी को हुआ था। आपके पिता मुर्शिदाबाद के नवाब की मातहती में एक छोटे ज़मींदार थे। उस समय की प्रथा के अनुसार अरबी और फ़ारसी की शिक्षा पाने के लिए राममोहन पटने भेजे गए। वहाँ उन्होंने क़ुरान और सूफ़ियों के ग्रन्थों को पढ़ा। सूफ़ियों का मत उन्हें बहुत पसन्द आया। वहाँ से लौट कर घर पर वे मूर्ति-पूजा के ख़िलाफ़ लेख लिखा करते थे। उनके पिता को यह बात बहुत नापसन्द थी। उन्होंने कई बार राममोहन को ऐसे लेख लिखने से मना किया और उनके विचार भी पलटने चाहे, पर इसका कुछ भी असर नहीं हुआ। अन्त में उन्होंने राममोहन को घर से निकाल दिया। उत्साही राममोहन घर से निकल कर हिमालय की यात्रा करते हुए तिब्बत पहुँचे। वहाँ बौद्ध-धर्म का अध्ययन किया और लौटने पर चार वर्षों तक काशी में रह कर संस्कृत ग्रन्थों का भी ख़ूब अनुशीलन किया। इसके बाद उनके पिता ने उन्हें घर आने की इजाज़त दे दी। घर आकर आपने फ़ारसी में "तोहफ़तुल-मुवाहदीन" (अर्थात् एक ईश्वर के मानने वालों को उपहार) नामक पुस्तक लिखी। आपने कुछ काल तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नौकरी भी की थी और उसी समय अङ्गरेज़ी भी पढ़ी थी। नौकरी के दिनों में काम से लदे रहने पर भी आप धर्मग्रन्थों के अध्ययन के लिए समय निकाल लिया करते थे। सन् १८१४ ईसवी से आप कलकत्ते में रहने लगे। यहीं से पहले-पहल आपने वेदान्त का अनुवाद प्रकाशित कराया और एक 'आत्मीय सभा' स्थापित की। इस सभा में धार्मिक विषयों का विचार और प्रचार होता था। सन् १८१९ ईसवी में यह सभा टूट गई। राममोहन राय ने उपनिषदों का अर्थ करके उन्हें प्रकाशित करना प्रारम्भ किया और मूर्तिपूजा के विरोध में कई परचे लिखे। इससे कट्टर मूर्ति-पूजक हिन्दू आपके विरोधी हो गए। सन् १८२० ईसवी में आपने ईसामसीह के नैतिक और दार्शनिक उपदेशों का एक संग्रह प्रकाशित कराया। इससे हिन्दुओं का विरोध और बढ़ा। ईसाई भी बिगड़े; क्योंकि इस संग्रह में

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ईसामसीह के सम्बन्ध में कही जाने वाली चमत्कारिक बातें नहीं लिखी गई थीं । ईसाइयों ने ट्रिनिटी (Trinity) के सिद्धान्त पर बहस चलाया और इस बहस में राजा राममोहन राय ने बहुत विद्वत्ता के साथ ट्रिनिटी का खण्डन करके ईश्वर की एकता साबित की। उनके इस कार्य का ऐडम नामक एक नवागत अङ्गरेज़ पर बड़ा असर पड़ा और वे यूनिटेरियन चर्च (Unitarian Church) में शरीक हो गए। यूनिटेरियनों का सिद्धान्त राजा साहब के सिद्धान्त से बहुत-कुछ मिलता-जुलता था। इसलिए राजा साहब भी ऐडम के साथ उनकी प्रार्थना में शरीक होते थे। यूनिटेरियनों का एक सङ्घ बना, पर आगे चल कर वह टूट गया।

ब्रह्म-समाज की स्थापना के मूल कारणों के सम्बन्ध में दो प्रकार की बातें कही जाती हैं। कुछ लोगों का तो कहना है कि यूनिटेरियनों का सङ्घ टूट जाने पर इसकी आवश्यकता प्रतीत हुई। दूसरे लोगों का कहना है कि एक दिन जब राजा साहब यूनिटेरियनों की प्रार्थना से लौट रहे थे, तब उनके सहकारी ताराचन्द चक्रवर्ती और चन्द्रशेखर देव ने कहा कि हमें एक ऐसा समाज स्थापित करना चाहिए, जिसमें पूर्णतया हमारे ही सिद्धान्तों के अनुसार प्रार्थना हुआ करे। अन्त में २० अगस्त, सन् १८२८ ईसवी को ब्रह्म-समाज की स्थापना हुई। प्रति शनिवार को समाज की बैठक हुआ करती थी, जिसके आरम्भ में दो तेलगू ब्राह्मण किनारे के कमरे से वेदपाठ किया करते थे। इस कमरे के दरवाज़ों पर परदा लगा रहता था। वेदपाठ के बाद उत्सवानन्द विद्यावागीश उपनिषद् के मन्त्र पढ़ते थे और पीछे से रामचन्द्र विद्यावागीश बँङ्गला में उसका अर्थ करते थे, तत्पश्चात् आपका एक उपदेश भी होता था।

सन् १८३० ईसवी में राजा राममोहन राय ने इङ्गलैण्ड की यात्रा की और २७ सितम्बर, सन् १८३३ ईसवी को ब्रिस्टल में आपका स्वर्गवास हो गया! राजा साहब की इङ्गलैण्ड-यात्रा के पश्चात् द्वारकानाथ ठाकुर और रामचन्द्र विद्यावागीश ब्रह्म-समाज का काम सँभालते रहे। सन् १८४१ ईसवी से महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर भी समाज में आ मिले। इस समय तक समाज के वेदपाठ वाले कमरे में अब्राह्मणों के प्रवेश करने की मनाही थी। इसी लिए उस कमरे के दरवाज़े पर परदा पड़ा रहता था और अब्राह्मण लोग दूसरे कमरे में बैठते थे। महर्षि ने देखा कि यह समाज के सिद्धान्तों के प्रतिकूल होता है। आपने इस भेदभाव को उठा दिया। समाज के लिए कुछ नियम और सदस्यों के लिए प्रतिज्ञाएँ बनाई गईं। सन् १८४३ ईसवी में सब से पहली बार नियमानुसार ब्रह्म-समाज के सदस्य दीक्षित किए गए। रामचन्द्र विद्यावागीश आचार्य बनाए गए और देवेन्द्रनाथ तथा उनके बीस साथियों ने दीक्षा ली। समाज की ओर से अक्षयकुमार दत्त के सम्पादकत्व में 'तत्वबोधिनी पत्रिका' प्रकाशित होने लगी। इसमें ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राजेन्द्रलाल मित्र आदि विद्वानों के लेख छपते थे। इस पत्रिका द्वारा समाज का प्रचार-कार्य बहुत बढ़ा। बङ्गला भाषा की भी उन्नति होने लगी। महर्षि ने राजनारायण बोस की सहायता से उपनिषदों का अङ्गरेज़ी भाषा में अनुवाद प्रकाशित कराना प्रारम्भ किया। संस्कृत भाषा और उपनिषदों की शिक्षा देने का भी समाज की ओर से प्रबन्ध किया गया। अभी तक ब्राह्मणों का कोई एक धर्म-ग्रन्थ न था। अपने विश्वास के अनुसार वे एक ईश्वर की उपासना किया करते थे। ईश्वर की उपासना के कई मन्त्र महर्षि ने उपनिषदों से निकाले थे। अब उन्होंने 'ब्राह्म-धर्म' नामक पुस्तक का सङ्कलन किया। इसके दो भाग थे—एक में आचार आदि के सम्बन्ध में नियम और दूसरे में धार्मिक विश्वास। यह ग्रन्थ महाभारत, वेद और उपनिषदों के आधार पर बनाया गया। इन ग्रन्थों में जो बातें इनके मत से मिलने वाली थीं, उन्हें तो इन्होंने ले लिया था और शेष बातें छोड़ दी थीं। वेदों को ये लोग ईश्वरीय ग्रन्थ नहीं मानते। ब्राह्म-धर्म में ईश्वर और मनुष्य का सम्बन्ध पूज्य और पूजक का है।

इस स्थान पर इस बात पर विचार करने की आवश्यकता है कि इस समय ब्राह्म-धर्म का हिन्दू-धर्म से क्या सम्बन्ध था। हिन्दुओं में और इनमें इतना भेद तो स्पष्ट ही है कि ये मूर्तिपूजा के बिलकुल विरोधी थे। केवल एक ईश्वर को मानते थे, उसके अवतारों में विश्वास नहीं करते थे और संसार की किसी भी वस्तु में उसका विशेष रूप से उपस्थित रहना भी नहीं मानते थे। हिन्दुओं के सामाजिक कार्यों से भी इनके सामाजिक कार्यों में इसी विश्वास के अनुसार भेद था। सामाजिक कृत्यों में जहाँ-

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

जहाँ मूर्तिपूजा होती थी उसे ब्राह्म लोग नहीं मानते थे। इसीलिए महर्षि ने श्राद्ध इत्यादि के लिए ऐसे नियम बनाए थे जिनमें मूर्तिपूजा नहीं होती थी। महर्षि देवेन्द्रनाथ प्रतिवर्ष दुर्गा-पूजा के अवसर पर अपने घर के बाहर चले जाया करते थे, और थोड़े दिनों के पश्चात् तो उन्होंने यह पूजा-पाठ अपने घर से बिलकुल ही उठा दिया। अपने पिता की मृत्यु पर महर्षि ने अपनी नई विधि से उनकी श्राद्ध-क्रिया की, जिसमें मूर्तिपूजा का अंश निकाल दिया गया था। इस कारण से उनके जाति वालों ने उन्हें जाति से निकाल दिया।

इस समय तक ब्रह्म-समाज केवल अपने धार्मिक विश्वास के कारण ही तत्कालीन हिन्दू-समाज से भिन्नता रखता था। ब्रह्म-समाजियों के समस्त सामाजिक रीति-रिवाज हिन्दुओं के से थे, केवल मूर्ति-पूजा ही वे नहीं करते थे। महर्षि देवेन्द्रनाथ ही अब तक ब्रह्म-समाज के प्रधान सञ्चालक थे और ये ब्रह्म-समाज को हिन्दू-समाज का ही अङ्ग समझते थे। ब्रह्म-समाज के द्वारा समाज-सुधार का काम भी हो रहा था। पर महर्षि इस काम में बहुत आगे नहीं बढ़ना चाहते थे। सन् १८५७ ईसवी में केशवचन्द्र सेन ने समाज में प्रवेश किया। इनके साथ अनेक युवकों ने भी दीक्षा ली। अब ब्रह्म-समाज द्वारा समाज-सुधार का कार्य भी बड़ी तत्परता के साथ होने लगा। केशवचन्द्र सेन के साथ नवयुवकों का जो दल आया था, वह बड़ा ही उत्साही था। इसे समाज के केवल ईश्वर-सम्बन्धी सिद्धान्त को मानने और उसका प्रचार करने मात्र से ही सन्तोष नहीं होता था। यह दल हिन्दुओं की समस्त सामाजिक कुरीतियों को दूर करना अपना कर्तव्य समझता था, और इस दल के युवक यह भी समझते थे कि अपने में से इन कुरीतियों को दूर किए बिना हम ब्रह्म-समाजी कहला ही नहीं सकते। सन् १८५९ ईसवी में एक ब्राह्म-स्कूल खोला गया। इसमें ब्राह्मों के आचार-विचार पर बङ्गला और अङ्गरेज़ी में प्रति सप्ताह व्याख्यान होते थे। आगे चल कर सङ्गत्-सभाएँ स्थापित हुईं, जिनमें सब लोग एकत्रित होकर भगवत्-प्रार्थना करते और अध्ययन किया करते थे। इन लोगों ने बाइबल और थीयोडोर पार्कर, प्रोफ़ेसर नडिमैन, मिस कोबे आदि के ग्रन्थों को पढ़ा। सर डबल्यू० हेमिल्टन और विक्टर कज़िन के दार्शनिक ग्रन्थों का भी ये अध्ययन किया करते थे। इससे इनमें बड़ा उत्साह आया। ग्रन्थों का अध्ययन करते समय ये पुलकित हो जाया करते थे। सङ्गत में जाने से माता-पिता अथवा अन्य लोग, कितना ही क्यों न मना करें, पर ये लोग नहीं मानते थे। इससे नवयुवकों के आचरण में बड़ा सुधार हुआ। इन लोगों ने जात-पाँत का विभेद छोड़ दिया। जनेऊ को भेद-भाव का परिचायक समझ कर त्याग दिया। जिन त्योहारों में मूर्ति-पूजा होती थी उनके उत्सवों में शरीक नहीं होते थे। वेश्या का नाच न देखने और मद्यपान न करने की इन लोगों ने प्रतिज्ञाएँ कीं। इनमें इतना सेवा-भाव और उत्साह था कि ये समाज के कल्याण के लिए अपनी जान न्योछावर कर देने के लिए तैयार रहते थे, सत्य पर हमेशा दृढ़ रहते थे, कोई झूठ बात मुँह से न निकल जाय, या कोई झूठी प्रतिज्ञा न कर बैठें—इस भय से ये सदा 'मैं इस बात की चेष्टा करूँगा' 'मेरा यह विचार है'—इत्यादि प्रकार से बोला करते थे। ईश्वर की प्रार्थना में ये अपने पापों के लिए दुःख प्रकट करते और उनसे छुटकारा पाने के लिए विनती करते थे। यह बात इनमें ईसाई-धर्म के संसर्ग से आई थी। महर्षि देवेन्द्रनाथ की प्रार्थनाओं में ये बातें न थीं, उनमें आनन्द का भाव था।

इन्हीं दिनों विजयकृष्ण गोस्वामी और उनके अन्य मित्र ब्रह्म-समाज में शरीक हुए। महर्षि देवेन्द्रनाथ की दूसरी लड़की सुकुमारी का ब्याह और केशवचन्द्र सेन के लड़के करुणचन्द्र का जातकर्म नई पद्धति के अनुसार हुआ। केशवचन्द्र के नातेदारों ने भी उन्हें छोड़ दिया। लेकिन समाज-सुधार का काम तेज़ी से आगे बढ़ चला। केशवचन्द्र सेन के अनुयायी नवयुवकों ने जात-पाँत का बन्धन तो तोड़ ही डाला था, अपने में से एक का विवाह उन लोगों ने नीच कहाने वाली जाति की एक लड़की से कर दिया। फिर ब्राह्म-रीति से एक विधवा का भी विवाह करा दिया। इनके इन सब कार्यों से पुराने ख़्याल के हिन्दू क्रोध के मारे जले जाते थे। इन कार्यों में शरीक होने वाले नवयुवक घरों से निकाले जाने लगे, उन्हें कई तरह की यन्त्रणाएँ दी जाने लगीं; लेकिन इस सब से उनके उत्साह की वृद्धि ही होती रही। महर्षि देवेन्द्रनाथ भी इन लोगों के कार्यों से पूरी तरह

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बङ्गाल के प्रसिद्ध समाज-सुधारक तथा ब्रह्मसमाज के प्रवर्त्तक

स्वर्गीय राजा राममोहन राय

FINE ART PRINTING
COTTAGE
ALLAHABAD

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eG

प्रणय-पथ में निराशा के मार्मिक प्रतिघातों से उत्पन्न मानव-हृदय की कल्पनाएँ और उनका चिन्ता-लोक के अस्फुट साम्राज्य में विलीन हो जाना। हृदय के अन्तः-प्रदेश में प्रणय का उद्भव, उसका विकाश और उसकी अविरत आराधना की अनन्त तथा अविच्छिन्न साधना में मनुष्य कहाँ तक अपने जीवन के सारे सुखों की आहुति कर सकता है, यह इस पुस्तक में पढ़िए।

लेखक—'एक निर्वासित ग्रेजुएट'

नायक और नायिका के पत्रों के रूप में यह एक

दुःखान्त कहानी है

आशा-निराशा, सुख-दुख, साधन-उत्सर्ग एवं उच्चतम आराधना का सात्विक चित्र पुस्तक पढ़ते ही कल्पना की सजीव प्रतिमा में चारों ओर दीख पड़ने लगता है। इस पुस्तक में व्यक्त वाणी की अनुपम विलीनता एवं अव्यक्त स्वरों के उच्चतम सङ्गीत का एक हृदयग्राही मिश्रण है। छपाई-सफ़ाई दर्शनीय हुई है।

सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३) स्थायी ग्राहकों से २।)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय
इलाहाबाद

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सहमत न थे। वे चाहते थे कि ब्राह्मों को केवल अपने धार्मिक सिद्धान्त का प्रचार करना चाहिए और सामाजिक रीति-रिवाज को लोगों की व्यक्तिगत राय पर छोड़ देना चाहिए। इन्हीं दिनों विजयकृष्ण गोस्वामी ने उन्हें लिखा कि भेदभाव का परिचायक जनेऊ पहनने वालों को समाज का उपाचार्य न बनाइए। पत्र पाकर महर्षि बड़े असमञ्जस में पड़ गए। वे जनेऊ पहनने या न पहनने के प्रश्न को ब्रह्म-समाज के सिद्धान्त से सम्बद्ध नहीं समझते थे। आख़िर इन लोगों के सन्तोष के लिए उन्होंने अपनी इच्छा के ख़िलाफ़ जनेऊधारियों को उपाचार्य पद से अलग करने का निश्चय किया। लेकिन बीच ही में एक ऐसी घटना हो गई, जिससे यह निश्चय कार्य-रूप में परिणत न हो सका। समाज की प्रबन्ध-समिति से भी केशवचन्द्र के पक्ष के लोग अलग कर दिए गए। "तत्वबोधिनी पत्रिका" का सम्पादन-कार्य भी इन लोगों के हाथ से ले लिया गया। अब इस दल के लोगों ने 'धर्म-तत्व' नामक दूसरा पत्र निकाला। केशवचन्द्र का विचार महर्षि से मिल कर काम करने का था, लेकिन साथ ही वे नवयुवकों को भी नाराज़ करना नहीं चाहते थे, इसलिए वे नवयुवकों के साथ ही रहे। जब इस नए दल का प्रचार-कार्य बढ़ा, तब बम्बई और मद्रास प्रान्त से भी व्याख्यानों के लिए बुलावे आए और केशवचन्द्र ने उन प्रान्तों का दौरा किया। फल-स्वरूप बम्बई में प्रार्थना-समाज और मद्रास में वेद-समाज की स्थापना हुई।

२३ जुलाई, सन् १८६५ को इस नवयुवक-दल की ओर से महर्षि देवेन्द्रनाथ के पास एक पत्र भेज कर प्रार्थना की गई कि या तो ऐसे लोगों को उपाचार्य बनाइए जो जातिभेद-परिचायक जनेऊ न पहनते हों या किसी दूसरे दिन उपासना के लिए हमें समाज का भवन दिया कीजिए। इसी समय से ब्रह्म-समाज में फूट पैदा हुई। महर्षि ने इस पत्र का उत्तर देते हुए लिखा कि—'जनेऊधारियों को उपाचार्य न बनाने की प्रार्थना स्वीकार नहीं की जा सकती, क्योंकि वे और आप लोग दोनों ही एक ईश्वर की उपासना के प्रश्न को प्रधान रूप से सामने रख कर समाज में शरीक हुए थे। इसके सिद्धान्तों के प्रचार के लिए आपने और उन्होंने समान रूप से कष्ट सहे हैं। इस समय यदि सामाजिक प्रश्न पर उनके विचार बहुत आगे नहीं बढ़े हुए हैं और ब्रह्म-समाज के मुख्य सिद्धान्त को वे उसी प्रकार मानते हैं, तो मैं उन्हें अलग नहीं कर सकता। समाज का भवन प्रार्थना के लिए आप लोगों को दूसरे दिना देना भी उचित नहीं है, इससे आपस की फूट बढ़ेगी।' महर्षि का यह उत्तर पाकर इन लोगों ने ११ नवम्बर, सन् १८६६ को ब्राह्मों की एक सभा की और 'भारतवर्षीय ब्रह्म-समाज' के नाम से अपनी एक अलग संस्था स्थापित की। जो लोग समाज-सुधार के काम में बहुत आगे बढ़े हुए थे वे सब इसमें शरीक हो गए। अब महर्षि ने अपने समाज का नाम 'आदि ब्रह्म-समाज' रक्खा। समाज-सुधार के प्रश्न को समाज का आवश्यक कार्य न समझते हुए उसे लोगों की इच्छा पर छोड़ देने का विचार रखने वाले लोग महर्षि के साथ आदि-ब्रह्मसमाज में रहे। इस समय से ब्रह्म-समाज दो भागों में विभक्त हो गया। इन दोनों में केवल सामाजिक प्रश्नों पर मतभेद था। महर्षि ब्रह्म-समाज को हिन्दू-समाज का ही एक अङ्ग समझते थे और उसका मुख्य कार्य धार्मिक ही मानते थे। आदि ब्रह्म-समाज की स्थिति बाबू राजनारायण बोस के निम्न-लिखित लेख से स्पष्ट हो जाती है—"यद्यपि ब्राह्म-धर्म एक सार्वभौम धर्म है, किन्तु इसे सार्वभौमिक रूप प्रदान करना असम्भव है। भिन्न-भिन्न देशों में उसका भिन्न-भिन्न रूप हो जायगा, इसी लिए आदि-समाज ने अपने सिद्धान्तों का हिन्दुओं में प्रचार करने के लिए हिन्दू-रूप धारण किया और हिन्दुओं के अनेक रीति-रिवाजों को भी स्वीकार कर लिया है। समाज-सुधार के कार्य को वह लोगों के व्यक्तिगत विचार पर छोड़ देता है। वह इसकी अपेक्षा मूर्तिपूजा छोड़ने और आचरण की पवित्रता पर अधिक ज़ोर देता है।" भारतवर्षीय ब्रह्म-समाज वाले समाज-सुधार के काम को भी ब्रह्म-समाज का उतना ही महत्वपूर्ण अङ्ग समझते थे, जितना मूर्तिपूजा के त्याग को। दोनों समाजों में यही अन्तर था।

भारतवर्षीय ब्रह्म-समाज के नवयुवक उत्साह के साथ समाज-सुधार के काम में आगे बढ़े। ये अक्सर ऐसे भी कार्य कर बैठते थे, जिसे केशवचन्द्र बहुत नापसन्द करते थे। समाज-सुधार के नए जोश में बहुत लोग अपनी पत्नी सहित स्टेशनों पर अङ्गरेज़ों के साथ बैठ कर

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri

भोजन किया करते थे। स्त्रियों के लिए एक नए प्रकार की पोशाक बनवाई थी, जो आधी अङ्गरेज़ी और आधी हिन्दोस्तानी तरीक़े की थी। ये लोग अपनी स्त्रियों को यही अद्भुत पोशाक पहना कर उन्हें साथ ले घूमने निकलते थे। इससे देखने वाले और ख़ास कर बच्चे बहुत हँसा करते थे, लेकिन अपनी धुन में ये किसी की परवा नहीं करते थे। यह सब काम ये सच्चे दिल से समाज के लिए कल्याणकारी समझ कर ही करते थे। प्रचार के काम में इन लोगों ने बहुत कष्ट सहे। विजयकृष्ण गोस्वामी के कहने से इन लोगों ने अपने समाज में भी वैष्णवों के समान सङ्कीर्तन जारी किया। २२ अक्टूबर, १८६७ को भारतवर्षीय ब्रह्म-समाज की दूसरी बैठक हुई। पहली बैठक में भी प्रबन्ध के लिए कोई समिति नहीं बनाई गई थी और इस बार भी न कोई समिति बनी और न कोई नियम बना। ईश्वर को तो सभापति बनाया और केशवचन्द्र सेन मन्त्री बने। सङ्कीर्तन के प्रवेश के बाद लोग केशवचन्द्र की पूजा करने लगे। लेकिन उन्होंने मना कर दिया। १८७० ईसवी में केशवचन्द्र इङ्गलैण्ड गए और वहाँ से लौट कर उन्होंने एक 'इण्डियन रिफ़ॉर्म एसोसिएशन' बनाया और इसके द्वारा ग़रीबों की सहायता, स्त्री-शिक्षा, मादक द्रव्य-निषेध और सस्ते दाम में ग्रन्थों के प्रकाशन का काम करने लगे।

सन् १८६८ में यह प्रश्न उठा कि ब्राह्म-पद्धति के विवाह जायज़ हैं या नहीं। भारत-सरकार के क़ानून-सदस्य ने कहा कि वे विवाह क़ानून से जायज़ नहीं हैं। इस पर भारतवर्षीय ब्रह्म-समाज वालों ने उसे जायज़ क़रार दिलाने के लिए भारत-सरकार से एक क़ानून बनवाना चाहा, लेकिन आदि ब्रह्म-समाज वालों ने इसका विरोध किया। उनका कहना था कि हमारी विवाह-पद्धति में हिन्दुओं की पद्धति से कोई फ़र्क़ नहीं है। इनके विरोध से उस क़ानून का नाम 'ब्राह्मो-मैरिज ऐक्ट' न होकर 'सिविल मैरिज ऐक्ट' हुआ। आगे चल कर भारतवर्षीय ब्रह्म-समाज में भी फूट के लक्षण दिखाई देने लगे। न तो इसकी कोई नियमावली थी और न कोई प्रबन्ध-समिति। ईश्वर की अध्यक्षता में केशवचन्द्र सेन अपनी इच्छानुसार इसका सञ्चालन करते थे। यह बात बहुतों को नापसन्द थी। समाज-सुधार के प्रश्न पर भी कुछ लोग बहुत बढ़े हुए ख़्याल के थे और केशवचन्द्र उनसे सहमत न होते थे। इन लोगों ने चाहा कि प्रार्थना के समय स्त्री-पुरुष सब एक साथ बैठा करें, पर केशवचन्द्र इस बात पर राज़ी नहीं हुए। लेकिन इन लोगों ने भी नहीं माना और अपने समस्त कुटुम्ब वालों को साथ लेकर बैठते थे। स्त्रियों की शिक्षा के सम्बन्ध में भी केशवचन्द्र के विचार इन लोगों से मिलते न थे। वे स्त्रियों को गणित, विज्ञान, दर्शन आदि विषयों की शिक्षा देना नहीं चाहते थे—केवल गृहकार्य की शिक्षा पर्याप्त समझते थे। लेकिन ऐसे लोग भी इस समाज में थे, जो ऊँची से ऊँची शिक्षा स्त्रियों को दिलाना चाहते थे। इन लोगों ने हिन्दू-महिला-विद्यालय स्थापित किया। बहुत दिनों तक यह बङ्ग-महिला-विद्यालय के नाम से चलता रहा और आगे ड्रिङ्कवाटर बेथ्यून के कॉलेज में मिला दिया गया। कुछ लोगों का यह विचार था कि केशवचन्द्र यह समझते हैं कि ईश्वर का उन्हें आदेश हुआ करता है और इसलिए वे चाहते हैं कि सब लोग उनकी बातों को ज्यों की त्यों मान लिया करें। इस विचार से भी लोग उनसे असन्तुष्ट थे, और अन्त में कूचबिहार वाले विवाह का प्रश्न ऐसा उठा, जिससे कि असन्तुष्ट होने वालों को मौक़ा मिला और साधारण ब्रह्म-समाज के नाम से उन्होंने अपनी एक अलग संस्था क़ायम कर ली।

कूचबिहार के महाराज नाबालिग़ होने के कारण अङ्गरेज़ अफ़सरों की देख-रेख में रहा करते थे। इन अभिभावकों ने उनका विवाह केशवचन्द्र की लड़की से करना चाहा। महाराज की अवस्था उस समय १६ वर्ष से कम थी और केशवचन्द्र की कन्या भी १४ वर्ष से कम की थी। ब्राह्म-पद्धति के अनुसार इतनी अवस्था में (अर्थात् लड़कों का १६ और लड़कियों का १४ बरस से कम उमर में) विवाह नहीं हो सकता था। केशवचन्द्र को यह विश्वास दिलाया गया था कि इस विवाह में मूर्तिपूजा न होगी। अन्त में कई कारणों से वे विवाह पर राज़ी हो गए। कहते हैं कि इस विवाह के लिए उन्हें ईश्वर का आदेश भी मिला था। अस्तु—

विवाह हुआ और उसमें कई बातें केशवचन्द्र की इच्छा के विरुद्ध हुईं। कहा जाता है कि उन्हें इसमें धोखा दिया गया। आख़िर इनके विरोधियों ने १५ मई, सन् १८७८ ईसवी को एक सभा करके निम्न-लिखित प्रस्ताव द्वारा साधारण ब्रह्म-समाज की स्थापना की:—

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"ब्रह्म-समाज में नियमानुसार सङ्गठन के अभाव पर यह सभा दुःख प्रकट करती है और इससे उत्पन्न होने वाली अनेक प्रकार की कठिनाइयों को दूर करने तथा भारतवर्ष में एक ईश्वरवाद के प्रचार-कार्य में समस्त ब्रह्म-समाज के विचारों का प्रतिनिधित्व और सहयोग प्राप्त करने के विचार से एक समाज की स्थापना करती है, जिसका नाम 'साधारण ब्रह्म-समाज' होगा।"

अब ब्रह्म-समाज तीन भागों में विभक्त हो गया। उत्साही कार्यकर्ताओं के इस प्रकार निकल जाने का केशवचन्द्र के मन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वे उदास रहने लगे। आगे परमहंस रामकृष्ण से उनकी भेंट हुई और हिन्दू-धर्म तथा मूर्ति-पूजा सम्बन्धी उनके विचारों में बड़ा परिवर्तन हुआ। उनका ईश्वर-सम्बन्धी सिद्धान्त बहुत उदार हो गया। सन् १८८० के 'सण्डे-मिरर' नामक पत्र में आपने इस प्रकार लिखा था—"हिन्दुओं की मूर्ति-पूजा सर्वथा उपेक्षणीय या त्याज्य नहीं है। ईश्वर की विभूतियों की साकार उपासना ही मूर्तिपूजा है। इसमें से रूप-रङ्ग निकाल देने पर जो रह जाता है, वही स्वर्गीय विधान है। एक ईश्वरवादी मूर्ति को तो त्याग देता है, परन्तु जिन भावनाओं से वह मूर्ति बनी है, उन्हें नहीं छोड़ सकता। हिन्दू लोग जिन मूर्तियों की पूजा करते हैं, उनमें से प्रत्येक मूर्ति ईश्वर की एक विभूति का परिचायक है और उसे एक नाम दे दिया गया है। नवविधान में विश्वास करने वाला व्यक्ति उस परमात्मा की उपासना करता है, जिसमें हिन्दुओं की तैंतीस कोटि देवताओं की विभूतियाँ हैं।" सन् १८८१ ईसवी में केशवचन्द्र ने भारतवर्षीय ब्रह्म-समाज का नाम 'नवविधान' रक्खा। आगे चल कर इसकी ओर से अधिक काम नहीं हुआ। ८ जनवरी, १८८४ ईसवी को केशवचन्द्र सेन का देहान्त हो गया। उनकी मृत्यु के बाद इसमें और भी शिथिलता आ गई। इस बात पर झगड़ा चला कि केशवचन्द्र के बाद अब उपासना के समय वेदी पर दूसरा व्यक्ति बैठ सकता है या नहीं? बहुत झगड़े के बाद निश्चय हुआ कि उपासना करने वाला वेदी पर तो बैठ सकता है, पर जिस ग़लीचे पर केशवचन्द्र बैठते थे उस पर वह नहीं बैठेगा। समाज में नियमावली का अभाव ही साधारण ब्रह्म-समाज की स्थापना के आसन्न कारणों में मुख्य था। अतः साधारण ब्रह्म-समाज ने पहले ही से अपने नियम बना लिए थे, अतः इसका काम सङ्गठित रूप से चलने लगा। इस समाज की ओर से स्त्री-शिक्षा का कार्य विशेष रूप से हुआ। प्रचार-कार्य करने के लिए विद्वान् लोग बाहर भेजे गए। पण्डित शिवनारायण अग्निहोत्री पञ्जाब में प्रचार करते रहे। आगे साधारण ब्रह्म-समाज के लोगों से मतभेद हो जाने के कारण, उन्होंने इससे अपना सम्बन्ध तोड़ लिया और सन् १८८७ ईसवी में देव-समाज की स्थापना की। इस समाज में शिवनारायण देवगुरु कहे जाते हैं।

सन् १८६४ ईसवी में केशवचन्द्र ने जब दक्षिण की यात्रा की थी, तब मद्रास में वेद-समाज की स्थापना हुई थी। इसके सिद्धान्त ब्रह्म-समाज से मिलते-जुलते थे। १८६९ में श्रीधरालू नायडू इसके मन्त्री बनाए गए। आगे चल कर उन्होंने इसका नाम 'दक्षिण भारतीय ब्रह्म-समाज' रक्खा। श्रीधरालू नायडू बड़े उत्साही और सच्चे कार्यकर्ता थे। ग़रीबी में बहुत कष्ट सह कर वे काम करते थे, पर अपने दुःखों को अपने मित्रों पर भी प्रकट नहीं करते थे। आजकल दक्षिण भारत में ब्रह्म-समाज की और भी शाखाएँ हैं। बम्बई में १८६७ ईसवी में प्रार्थना-समाज की स्थापना हुई थी। उस प्रान्त में भी इसकी कई शाखाएँ हैं। इनके धार्मिक सिद्धान्त तो ब्राह्मों के ही समान हैं, पर सामाजिक रीति-रिवाजों में ये हिन्दू ही हैं। शादी-विवाह तथा अन्य कार्यों में इन्होंने जात-पाँत का बन्धन नहीं तोड़ा, उसे हिन्दुओं की भाँति ही मानते हैं।

ब्रह्म-समाज की स्थापना और उसके विकास का यही संक्षिप्त वृत्तान्त है। इसके द्वारा हिन्दू-शास्त्रों और हिन्दू-सभ्यता का नए सिरे से प्रचार प्रारम्भ हुआ। देश की हीनावस्था के बाद ब्रह्म-समाज जाग्रति के प्रकाश की पहली किरण था। अङ्गरेज़ी शिक्षा के प्रचार से आरम्भ में जो बुराइयाँ उत्पन्न हुई थीं, वे ब्रह्म-समाज के प्रचार से दूर हुईं। ईसाई-धर्म और यूरोपियन समाज की ओर शिक्षित-समाज झुक रहा था। पर ब्रह्म-समाज ने यह दिखला दिया कि हिन्दू-धर्म और समाज का आदर्श बहुत ऊँचा है और इसे हेय समझ कर दूसरी ओर झुकना अपनी अज्ञानता है। ब्रह्म-समाज की स्थापना के बाद शिक्षित समाज के लोगों का ईसाई होना बन्द हो गया। ब्रह्म-समाज पूरी तरह से हिन्दू-समाज का एक अङ्ग है।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

आरम्भ में जब तक इसने एक ईश्वरवाद के प्रचार को ही अपना मुख्य कार्य बनाया था, तब तक यह समाज हिन्दू-समाज का एक धार्मिक सम्प्रदाय था। पर आगे भारतवर्षीय ब्रह्म-समाज की स्थापना के बाद इसका सामाजिक कार्य प्रधान हो गया और धर्म के सम्बन्ध में इसकी यह धारणा होने लगी कि हिन्दू-धर्म के ईश्वर-सम्बन्धी सिद्धान्त इतने उदार और व्यापक हैं कि ब्रह्म-समाज भी उसके अन्तर्गत आ जाता है। इस प्रकार विकास के उत्तरकाल में ब्रह्म-समाज हिन्दू-धर्म का एक सामाजिक अङ्ग हो गया।

चन्द्र

[रचयिता—श्री० रमाशङ्कर जी मिश्र 'श्रीपति']

(१)

हृदय में भर कर नव-उल्लास,
नील-नभ की मञ्जूषा खोल,
सुधाकर ! आते क्यों, निर्व्याज—
लुटाने अपनी निधि अनमोल ?

(२)

मधुरिमा से मिश्रित हे चन्द्र !
सरसता के हो तुम आगार।
कोकिला के अन्तर-उन्माद,
कुञ्ज गिरि कानन के शृङ्गार॥

(३)

सुधा-लहरों के अगणित जाल,
बिछा देते सुषमा-भण्डार।
विश्व-रञ्जन ममता की मूर्त्ति,
प्रकृति के तुम हो नव उपहार॥

(४)

यन्त्रणा कर देते तुम दूर,
सृष्टि के निखरे यौवन-फूल।
रजत-किरणों का लख नव-रूप,
स्वप्न-सा जग जाता है भूल॥

(५)

जगमगा जाती जग में ज्योति,
चकोरों में उठता उल्लास।
पपीहा भी पा जाता शान्ति,
कुमुदगण कर उठते मृदु-हास॥

(६)

विधायक हो शोभा के धाम,
मनोभावों के मञ्जुल तार।
काव्य सरिता के हो हिम-शृङ्ग,
अतुल निधि के तुम कोष अपार॥

(७)

कलित वसुधा करती कल्लोल,
विभव का तनता सुखद वितान।
अमरता का पाकर पीयूष,
अमर बन करते कवि गुणगान॥

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हमारे धर्मगुरु

[ले० श्री० वासुदेवप्रसाद जी मिश्र, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

"चाँद" के पाठकों का ध्यान एक नवीन, किन्तु रोमाञ्चकारी घटना की ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ, जो सम्भवतः उन्हें न मालूम होगी, और साथ ही यह भी बतलाना चाहता हूँ कि हिन्दू-धर्म के भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में नैतिक उच्छृङ्खलता का अभाव नहीं हो रहा है, प्रत्युत उसकी अधिकता ही होती जाती है। आप यह न सोचिए कि मैं एक उदाहरण मात्र लेकर सर्वव्यापी निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न कर रहा हूँ। नहीं, ऐसा कदापि नहीं है। आपको मेरे वाक्यों की पुष्टि भारत के किसी भी प्रान्त के देशी भाषा के समाचार-पत्रों में मिलेगी, चाहे वे गुजराती के हों, चाहे बङ्गला अथवा तामिल-तेलगू के। तब आपको मालूम पड़ेगा कि मैं अत्युक्ति-मय शब्दों का प्रयोग नहीं कर रहा हूँ। मैं जिस घटना का वर्णन कर रहा हूँ, उसने तो गुजरात प्रान्त भर में हलचल मचा दी है और इस पर बम्बई के अधगोरे पत्र "टाइम्स ऑफ़ इण्डिया" ने हिन्दुस्तान के धार्मिक पूज्यपादों की अच्छी खिल्ली उड़ाई है।

गुजरात के अहमदाबाद नामक नगर में एक विशाल जैन-मन्दिर है। उसमें श्रीजयविजय जी नाम से प्रसिद्ध एक जैन-यती रहते थे। आपने अब संयम का परि-त्याग कर असंयम धारण किया है और अपने धार्मिक जीवन की भी इति-श्री कर डाली है। तदनुसार एक सुन्दरी जैन-विधवा से आपका विवाह भी सानन्द तथा सकुशल—कुछ विरोध के रहते हुए भी—सम्पन्न हो गया है। इतना ही करके आप शान्त न रहे—यदि रहते तो आपके विवाह का समाचार तो खींच-खाँच कर प्रकाशित हो ही जाता और 'चाँद'-जैसा कोई समाज-सुधारक पत्र आपके कार्य की आलोचना भी करता। तब न तो हमें आपकी स्पष्टवादिता पर अपने विचारों को प्रकट करने का सुअवसर मिलता और न एक आधुनिक मुनिवर के वैवाहिक-प्रतिज्ञा-बन्धन में जकड़ने का कारण ही। मुनिजी ने विवाह-संस्कार की समाप्ति होने पर तुरन्त एक वक्तव्य प्रकाशित करा डाला और उसमें अपने सत्कार्य का समर्थन भी किया तथा उसके कारण भी समझा दिए। बेचारे चेलों के समुदाय पर, जो आपको आदर्श-चरित्र महात्मा मानते थे, जो अनभ्र वज्रपात इससे हुआ, उससे आपका सरोकार ही क्या? आप कहते हैं—"पिता जी की मृत्यु के अनन्तर जब मैं षोडश-वर्षीय बालक मात्र था, मैंने अपने सम्प्रदाय के अनुसार 'दीक्षा' ले ली। तदनन्तर १३ वर्ष पर्यन्त तो पूर्ण-रूपेण ब्रह्मचर्यव्रत का पालन किया" किन्तु यह अधःपतन कैसे हुआ—इस महान् परिवर्त्तन का कारण भी उन्हीं के शब्दों में ध्यान से सुनिए—"जब मेरे समान यतियों को विशाल भवनों में रहना आवश्यकीय हो जाता है—उनमें रहना ही पड़ता है—जब उदर-तृप्ति के अर्थ सुस्वादु, चटपटा मसालों से भरा हुआ, गर्म भोजन ही दिया जाता है; जब अनन्य सुन्दरी नव-युवतियों का संसर्ग जनसमूह के प्रत्यक्ष व एकान्त में होता ही रहता है—और इन सबसे जब एक जैन साधु का मानसिक व शारीरिक अधःपात दिन पर दिन होना अवश्यम्भावी है—तब आश्चर्य तो तभी करना चाहिए था कि जब काम का उद्दाम प्रवाह मुझे बलात् बहा न ले जाता।" किन्तु यह आश्चर्य करने का अवसर 'चाँद' के पाठकों को दुर्भाग्यवश न मिला। बेचारे जयविजयजी सांसारिक मोह-पाश में बँध ही तो गए और एक अत्यन्त सुन्दरी विधवा को, जो भक्ति-भाव प्रदर्शित करने आपकी सेवा में उपस्थित हुआ करती थी, ले ही डूबे!

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि आपने विवाह अन्त में किया क्यों? सन्यास के वस्त्र धारण करने पर गृहस्था-श्रम आपको क्यों आकर्षक प्रतीत हुआ? उत्तर वही है, जो बरसों से हमारे कानों में सुनाई पड़ता आ रहा है—वही उत्तर, जो मठों के मठाधीश, तीर्थों के पण्डे, पुण्य-क्षेत्रों के पुरोहित—यदि झूठ बोल कर आत्मा का हनन न करें—देंगे, वही कारण है आपके भी विवाह करने

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri

का। दीक्षा तो ली—दीक्षा-सम्पन्न मुनिवर तो हो गए—किन्तु परिस्थिति का प्रवाह रोकने की क्षमता न आई। मानव-प्रकृति स्वभावतया दुर्बल है—वह इतनी शक्ति-सम्पन्ना साधारणतया नहीं रहती है कि मोह से परिपूरित वातावरण में स्थिर रह सके, यह सभी लोग जानते हैं और स्वीकार करते हैं। हम उन महात्माओं के सम्मुख श्रद्धा-भक्ति समन्वित हृदय से नत-मस्तक होने में आगा-पीछा नहीं करते जो परब्रह्म परमात्मा का चिन्तन शुद्ध-चित्त और पापरहित आत्मा से करते हैं। किन्तु क्या हम समर्थ रामदास, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, महर्षि दयानन्द, और स्वामी विवेकानन्द ऐसे यती साधु प्रत्येक मन्दिर में, प्रत्येक तीर्थ में और गङ्गातट की प्रत्येक कुटिया में पाते हैं? यदि पाते ही, तो क्यों आज ऐसे विचार होते? खेद तो यही है कि हमारे ही गुरु—हमारे ही पुरोहित—हमारे ही उपदेशक—हमारे ही स्वर्ग के ठेकेदार—हमें पाप-कूप में गिराने वाले हैं!! हमारे जय-विजय जी के परितापमय शब्द—यदि वे सत्य ही ऐसे पश्चात्तापमय हृदय से निकले हुए हैं—इन्हीं भावों के द्योतक हैं। 'गोविन्द-भवनों' की कमी नहीं है, वे तो चारों ओर भरे पड़े हैं! कमी है तो उनके प्रकट करने वालों की, उन्हें प्रकाश दिखलाने वालों की—उनकी नारकीय अर्द्ध-रात्रीय लीलाओं को नग्न-स्वरूप में हम लोगों के सामने लाने वालों की!! परिताप का विषय तो यही है कि जानते हुए भी हम लोग अनजान-से बने रहते हैं। दुर्गुण के लीला-स्थल, पाप-गृहों को हम परमात्मा के भक्तों का भक्ति-वास समझते हैं—उन्हें अपना परम हित मानते हैं। अन्त में अपनी ही स्त्रियों का धर्म नाश करके, प्रयत्न करते हैं इन्हीं बातों को गुप्त रखने का कि हमारी अपकीर्त्ति न हो और मिस मेयो जैसी लेखिकाएँ हमारे धर्म की खिल्ली न उड़ा सकें!

यती और मुनि जैन-सम्प्रदाय ही में नहीं हैं, उन्हीं के "दीक्षा-गुरु" नहीं हैं, उन्हीं के पूज्य नेता धर्म-कर्म के स्थानों में नहीं हैं—हमारे भी साधु-सन्त, गुरु-स्वामी, महन्त-संन्यासी हैं, हम भी अपने पूजा-स्थलों में बिना पुजारियों की सहायता के और उनको भेंट चढ़ाए भली-भाँति पूजा नहीं कर पाते; हमारे भी मन्दिर-प्रवेश का "डङ्का" ज़ोर से घण्टा बजा कर यही लोग करते हैं, हमारे भी गङ्गा-स्नान बिना पण्डों की सहायता के नहीं होते हैं, हमें भी इन्हें दान और दक्षिणा देना आवश्यक है और हम यह भी देखते हैं कि ये हमें इसके लिए कितना तङ्ग करते हैं। हमारे घरों की देवियाँ भी बिना पण्डितों की सहायता के अपने व्रत नहीं कर सकतीं और उनकी समाप्ति पर पूजा-पाठ, "हरतालिका-कथा" और "सत्यनारायण-कथा" के निमित्त पण्डितों को, जिनमें से अधिकांश संस्कृत के ज्ञान से पूर्णतया वञ्चित रहते हैं, बुलाया करती हैं।

किन्तु भला हो मुनिवर का, जो इतनी दयार्द्र प्रकृति के थे। आपके हृदय में दया का स्रोत उमड़ आया—उन अनाथ, धनहीना ललनाओं के वास्ते, जो संसार में पद-पद पर सङ्कट का सामना करती हैं। उस स्रोत के उमड़ आने पर क्या हुआ? उन्हीं के शब्दों में सुनिए—"मैंने महीनों तक पलकों पर पलकें नहीं रक्खीं। मैं जाग-जाग कर यही सोचता रहा कि क्या करूँ—विवाह ही अपना कर डालूँ (और उस ललना का पुनर्विवाह?) अथवा साधु ही बना रह कर "मुनिवर" कहलाता रहूँ। अन्त में मैंने एक निष्कर्ष निकाला। वह निष्कर्ष यह था कि गर्हित से गर्हित कुकर्मों को छिप-छिप कर करने—परदे के पीछे, जनसमूह से दूर, एकान्त में निशिदिवा पाप-पङ्क में रत रहने की अपेक्षा विधवा का पुनर्विवाह और अपना विवाह ही कर डालना श्रेयस्कर है।" तदनन्तर मुनिवर ने खुल्लम-खुल्ला यही किया और इसका शुभ-समाचार तथा एक विधवा के त्राण की सुखदायिनी वार्त्ता पत्रों में प्रकाशित भी हो गई। संन्यास तो एक कोने में धर दिया गया और एक जैन मुनिवर का एक जैन नवयुवती ललना के साथ यह पाणिग्रहण-संस्कार विगत नवम्बर मास में सम्पन्न हो गया।

पाठको, आइए पहले मुनिवर जयविजयजी को एक बार हृदय से इस स्पष्टवादिता पर बधाई तो दे ही दें। क्योंकि साधुगण तो इस प्रकार से स्वयं अपनी पोल खोल कर न तो अपनी आलोचना ही कराते हैं, न अपने सम्प्रदाय पर लोगों को छिद्रपात का अवसर ही देते हैं। फिर बताइए कि जब कभी ऐसे पुजारियों और पण्डितों, पण्डों और साधुओं की लीला हमारे कानों तक पहुँचती है, तब हम लोगों के रोंगटे, यह वृत्तान्त सुन कर खड़े होते हैं या नहीं? जब वही पाप-कथा हमारी ही

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

माताओं-बहिनों और कुल-स्त्रियों के ऊपर आप-बीती के रूप में प्रकट होती है, तब वह घृणास्पद, करुणापूर्ण और वीभत्स हो जाती है या नहीं ? यहाँ पर मैं यह भी बताना चाहता हूँ कि हम लोगों की 'गुरुडम-लीला' अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी है। यदि सदाचारी और सम्मान्य गुरु हों तो हमें कुछ भी कहना नहीं है, परन्तु उनमें से अधिकांश तो हैं "नारि मुई घर सम्पति नासी, मूड़ मुड़ाय भए सन्यासी" की श्रेणी के। यदि आप इनसे स्वयं परिचित होना चाहें तो अपने ही प्रान्त के शहरों, गाँवों और देहातों में जाइए और देखिए। आप देखेंगे, जीवन-यापन के अन्य साधन न पाकर, स्त्री की मृत्यु के बाद अथवा इसी प्रकार के कारण उपस्थित होने पर अनेक पाखण्डी गेरुआ वस्त्र धारण कर वीतराग सन्यासी का स्वाँग रचते हैं और प्रायः इसी विचार में मग्न रहते हैं कि कब कोई आँख का अन्धा चेला अपनी स्त्रियों को हमें सौंपता है अथवा कब कोई भक्ति की भूखी, वचनामृत की प्यासी ललना हमें अपनाती है। यह लीला युक्त-प्रदेश में ही अधिक है और इस प्रकार के आडम्बर से रहने वाले, सुख के उपासक, धनी-मानी परिवारों को चेले बनाने के इच्छुक, चेले-चेलियों की भक्ति के प्यासे, उनके धर्म-कर्म के ठेकेदार और अवसर पाने पर उनसे रास-लीला रच कर उनके लिए और अपने लिए 'स्वर्ग में सीट' रिज़र्व कराने वाले ज़्यादातर वही हैं। सबसे लज्जा और ग्लानि का विषय तो यह है कि पढ़े-लिखे, सभ्य और सुशिक्षित, ज़मींदार और साहूकार आदि इन्हीं पर लट्टू रहते हैं और इन रागी 'गुरुदेवों' के इशारों पर प्राण तक देने को तैयार रहते हैं।

मैंने स्वयं प्रयाग के अर्ध-कुम्भी मेले में ऐसे साधुओं की और नागा लोगों की पूजा सम्मान्य और सुशिक्षित घरों की स्त्रियों को करते और धन की ढेरी उनके सामने रखते देखा है।

किन्तु प्रश्न यह है कि इसके लिए ज़िम्मेदार कौन है ? हम या हमारी स्त्रियाँ, या ये लोग ? ज़िम्मेदार हमी हैं, जो अपनी स्त्रियों को अशिक्षिता रखते हैं और स्वयं सब जानते हुए भी भोले-भाले अनजान-से बने रहते हैं। हमारी शिक्षा, हमारी दीक्षा, हमार स्वाभिमान आदि के उपस्थित रहते भी हम आँखों के अन्धे इनकी कपट-लीला के शिकार होते हैं और अपना सर्वस्व, अपनी धरोहर इनके चरणों पर रखकर अपने को धन्य समझते हैं। यदि ऐसा न होता तो तारकेश्वर के महन्त की नारकीय लीला, गोविन्द-भवन तथा साईंखेड़ा के कलियुगी कृष्ण धर्म की आड़ में समाज पर ऐसे भयङ्कर अत्याचार कदापि न कर सकते थे। सच तो यह है कि आज हमारी बहू-बेटियों की इज़्ज़त-आबरू तथा उनका पतिव्रत इस प्रकार के धूर्तों की कृपा पर सर्वथा अवलम्बित है।

पाठको, आप इन बातों पर मनन कीजिए, विचार कीजिए और देखिए कि 'जयविजयजी' की स्पष्टवादिता और 'गोविन्द-भवन' का भण्डाफोड़ कुछ अर्थ रखता है या नहीं ? यदि रखता है तो उन्हें ध्यान में रख कर कार्य कीजिए और यह निश्चय कर लीजिए कि गङ्गा-स्नान के बिना ही रहना, ऐसी डुबकियों से भला है जिनके लेने के लिए हमें इतना अधिक मूल्य देना पड़ता है। और ऐसे मन्दिरों, मठों और "गुरुदेवों" की कुटियों में कथामृत-पान और चरण-रजावलुण्ठन की अपेक्षा उनके बिना ही रहना लाखों बार भला है। ईश्वर भी सत् का सहायक और असत् का विरोधी है—वह भी सीधे और सच्चे मन द्वारा की गई सेवा और भक्ति का भूखा है। असत् भावों से प्रेरित और कुमार्गी धर्म के ठेकेदारों के माध्यम द्वारा ऐसा पापाचार करना उस सर्व-शक्तिमान परमात्मा का अभीष्ट कदापि नहीं हो सकता, यदि ऐसी बात नहीं है तो वह अनीश्वर है, ईश्वर नहीं।

हर्ष की बात है कि 'चाँद' इन प्रचलित पाखण्डों के विरुद्ध प्रयत्न कर रहा है। वह हिन्दू-जाति की कुसंस्थाओं के आमूल उन्मूलन के लिए एक महान् और सजीव आन्दोलन हाथ में ले चुका है। पढ़ी-लिखी, सभ्य और सुसंस्कृत जनता का पवित्र कर्तव्य है कि ऐसे कार्य में उसका हाथ बटावे और कूप-मण्डूकत्व और अन्ध-विश्वास को दूर करने में सहायक हो। 'चाँद' तभी समाज के अन्धकार को दूर कर भगवान् अंशुमाली की सुसंस्कृतिमयी ज्योति के प्रकाश को दृष्टिगोचर करा सकेगा।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

भारतवर्ष में बाल-मृत्यु

[ले० डॉक्टर रामदयाल कपूर, एम० बी० बी० एस०]

किसी वर्ष में जितने बच्चे पैदा होते हैं, उनमें से प्रत्येक हज़ार के पीछे जितने बच्चे एक वर्ष की आयु पूर्ण करने से पहले ही मर जाते हैं उस संख्या को उस वर्ष की बाल-मृत्यु-संख्या कहा जाता है।

भारतवर्ष में प्रति वर्ष जितने बच्चे पैदा होते हैं, उनमें से एक तिहाई मृत्यु का ग्रास बनते हैं, अर्थात् प्रत्येक तीन में से एक मर जाता है और बम्बई जैसे शहरों में तो लगभग आधे मर जाते हैं, जैसा कि निम्न-लिखित चित्र-पट से स्पष्ट होगा। सन् १९२१ की भारत-वर्ष की जनसंख्या-रिपोर्ट से विदित होता है कि भारत-वर्ष में प्रति वर्ष कुल जनमृत्यु-संख्या का पाँचवाँ भाग पाँच वर्ष तक की आयु के बच्चे होते हैं, और इन बच्चों में से भी पाँचवाँ भाग वे बच्चे होते हैं जिनकी आयु एक वर्ष से कम होती है। इस रिपोर्ट से यह भी ज्ञात होता है कि इनमें से बहुत से बच्चे जन्म के पश्चात् एक सप्ताह अथवा एक मास के अन्दर ही मर जाते हैं। प्रत्येक हज़ार बच्चों में से ८०३ लड़के और ७०१ कन्याएँ मृता-वस्था (Still births) में ही पैदा होती हैं और यह संख्या इङ्गलैण्ड की अपेक्षा दुगनी है। इङ्गलैण्ड की अपेक्षा भारत-वर्ष की कुल बाल-मृत्यु-संख्या भी लगभग दुगुनी है।

निम्नलिखित तालिका से पता लग जायगा कि भिन्न-भिन्न देशों में बाल-मृत्यु-संख्या कितनी है :—

रूस	...	२४५	इटली	...	१५३
हँगरी	...	२०४	बेलजियम	...	१४१
जेमैका	...	१९१	फ्रांन्स	...	१२६
लङ्का	...	१८९	अमेरिका	...	१२४
प्रशिया	...	१६८	इङ्गलैण्ड	...	११७
जापान	...	१५६	स्विज़रलैण्ड	...	११५
सरविया	...	१५४	स्कॉटलैण्ड	...	११२
डेनमार्क	...	१०८	ऑस्ट्रेलिया	...	७८
आयरलैण्ड	...	९४	नॉरवे	...	७०
स्वीडन	...	७८	न्युज़ीलैण्ड	...	७०

सन् १८८१ से बहुत से देशों की बाल-मृत्यु-संख्या घटती जा रही है। सन् १८८१ से १८८५ तक और सन् १९०० से १९१० तक फ्रान्स में २४·६, इङ्गलैण्ड में १५·८, स्विज़रलैण्ड में ३२·७, डेनमार्क में २०, तथा ऑस्ट्रेलिया में ३७·६ प्रति सैकड़ा बाल-मृत्यु-संख्या में न्यूनता हुई।

सन् १९११ से १९२१ तक कुल भारतवर्ष में तथा उसके भिन्न-भिन्न प्रान्तों में बाल-मृत्यु-संख्या निम्न प्रकार रही। सन् १९१८ में इन्फ्लुयेन्ज़ा रोग फैल जाने के कारण बाल-मृत्यु-संख्या में भी विशेष वृद्धि हुई।

प्रान्त का नाम	दस वर्ष की औसत (सन् १९१८ को छोड़ कर)		सन् १९१८	
	लड़के	लड़कियाँ	लड़के	लड़कियाँ
कुल भारतवर्ष	२११	१९९	२७४	२६०
आसाम	२१०	१८९	२२६	२०७
बङ्गाल	२१४	२००	२३५	२२०
बिहार-उड़ीसा	१८९	२७७	२३८	२२५
बम्बई	२००	१८६	२९३	२८०
ब्रह्मा	२३०	१०६	२८९	२६३
मध्यप्रान्त-बरार	२७४	२४३	४१९	३७९
मद्रास	१९४	१७७	२३७	२२३
पश्चिमोत्तर प्रान्त	१७८	१७४	२४३	२२४
पञ्जाब	२०३	२०२	२६१	२६४
संयुक्त-प्रान्त	२२९	२१९	३०८	२९८

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भारतवर्ष के कुछ बड़े-बड़े शहरों की बाल-मृत्यु-संख्या इस प्रकार है :—

बम्बई	...	...	५५६
नागपुर	...	...	४२०
कलकत्ता	...	...	३८६
रङ्गून	...	...	३०३
मद्रास	...	...	२८२
कराँची	...	...	२४६
देहली	...	...	२३३

बाल-मृत्यु के निम्न कारण होते हैं, जिनमें से कुछ भारतवर्ष में विशेष रूप से विद्यमान हैं। इन कारणों में से आधे के लगभग ऐसे कारण हैं, जिन्हें हटाया जा सकता है।

प्रसव के पूर्व के (Antenatal) कारण

१—मद्यपान, राजयक्ष्मा, गर्भाक्षेपरोग (Eclampsia), अभिघातज रक्तस्राव (Accidental Haemorrhaoge), अपरावरोध (Placenta Praevia), फिरङ्गरोग (Syphilis), वृक्कशोथ (Nephritis) आदि माता के रोग।

२—भिन्न-भिन्न कारणों से गर्भस्राव तथा गर्भपात। (भारतवर्ष में विधवा-विवाह प्रचलित न होने के कारण विधवाओं में तथा अनेक अविवाहिता कन्याओं में भी गर्भपात बड़ी संख्या में होता है।)

३—भ्रूण (गर्भस्थ बालक) सम्बन्धी विकार तथा रोग।

४—कारख़ानों में विवाहिता तथा गर्भिणी स्त्रियों से श्रम करवाना।

५—देश की ग़रीबी।

६—परदा आदि कुप्रथाएँ, जिनसे माता का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है।

७—स्वास्थ्य की दृष्टि से ख़राब घरों में निवास। निवास-स्थान के आस-पास गन्दगी का एकत्रित रहना। एक ही घर में अनुचित संख्या में सारे कुटुम्ब का रहना। अन्य पुराने ढङ्ग के ख़राब व्यवहार।

८—गर्भिणी को ठीक आहार न मिलना, अर्थात् जिसमें 'विटामीन' हों, जैसे फल, शाक, दूध, घी, मक्खन, अण्डे आदि। यह स्मरण रखना चाहिए कि बनस्पति घी में विटामीन का अभाव होता है।

९—गर्भावस्था-सम्बन्धी नियमों का ज्ञान न होना।

१०—अविद्या। भारतवर्ष में अविद्या ही एक मूल कारण है, जिससे स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियम जनता में नहीं फैल सकते। सन् १९२१ की जन-संख्या-रिपोर्ट को पढ़ने से पता चलता है कि पाँच वर्ष तथा इससे अधिक आयु के पुरुष १३.९ फ़ी सैकड़ा तथा स्त्रियाँ २.१ फ़ी सैकड़ा पढ़-लिख सकती हैं, और भिन्न-भिन्न आयु के जितने पुरुष शिक्षित हैं, वह निम्नलिखित चित्र-पट से स्पष्ट हो जायगा :—

आयु			शिक्षित पुरुष	
५—१०	वर्ष	...	२.९	फ़ी सैकड़ा
१०—१५	,,	...	११	,,
१५—२०	,,	...	१७.४	,,
२० से ऊपर		...	१७.१	,,

शहरों में तो कुछ लोग पढ़ते ही हैं, परन्तु ग्रामों का हाल शोचनीय है (यह स्मरण रहे कि भारतवर्ष के अधिकांश लोग ग्रामीण हैं)। खेती करने के लिए तो बालकों को शिक्षा देने की वह आवश्यकता ही क्यों समझेंगे और जो कोई पढ़ता भी है वह सरकारी नौकरी की लालच से। स्त्रियों को शिक्षा न देने के तीन कारण हैं। पुराने ढङ्ग के लोग लड़कियों को शिक्षा देना पाप समझते हैं। माताएँ कहती हैं कि लड़की को पढ़ कर कोई दफ़्तर तो खोलना नहीं है और यदि कन्या वर्ण-माला के अक्षरों को पहचानने लग गई है, तो बस यही पर्याप्त है। ख़त तो लिखने लायक़ हो गई। दूसरा कारण परदा है, जिससे स्त्री-शिक्षा में बाधा पड़ती है। और तीसरा कारण बाल-विवाह है। जब तक लड़की माता-पिता के घर रहती है, उसका थोड़ा-बहुत पढ़-लिख लेना सम्भव है, परन्तु शीघ्र ही विवाह हो जाने के कारण उसे विद्यालय छोड़ना पड़ता है। प्रायः विवाह होने से बहुत पहले ही पढ़ाई छुड़वा दी जाती है, यह समझ कर कि लड़की युवती हो गई है, उसे घर से बाहर न निकलना चाहिए।

११—बाल-विवाह। सन् १९२१ की जन-संख्या-रिपोर्ट से पता चलता है कि भारतवर्ष में प्रत्येक हज़ार स्त्रियों में पाँच वर्ष तक की आयु की ११, पाँच से दस वर्ष तक की ८८, दस से पन्द्रह तक की ३८२, और पन्द्रह से बीस तक की ७७१ स्त्रियाँ विवाहिता थीं।

यह स्मरण रखना चाहिए कि माता के स्वास्थ्य का

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

प्रभाव सन्तान पर अवश्यमेव पड़ता है। यदि माता का स्वास्थ्य अच्छा न होगा तो हृष्ट-पुष्ट बालक की आशा हम कैसे रख सकते हैं? कन्या का शरीर अभी भली प्रकार परिपक्व भी नहीं होता कि उसे गृहस्थी की बेड़ियों में जकड़ दिया जाता है। विवाह के पश्चात् विचार-रहित पति की अधिक विषय-वासना के कारण उस कन्या के शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ता है। उसके नाज़ुक शरीर पर गर्भावस्था तथा प्रसव और उसके पश्चात् शिशुपालन का भार, जिन्हें वह अभी सहन करने योग्य नहीं होती, डाल दिया जाता है। बार-बार और विशेषतः थोड़े-थोड़े अन्तरों पर गर्भधारण करने से उसका शरीर और भी निर्बल हो जाता है। कई बार गर्भपात हो जाने से भी शरीर पर अनिष्ट प्रभाव पड़ता है। सन्तानोत्पादन ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए, न केवल यही आवश्यक है कि जननेन्द्रियों की वृद्धि पूर्णतया हो चुकी हो, बल्कि शरीर भी पुष्ट होना अत्यावश्यक है। छोटी आयु में ही बच्चा पैदा हो जाने से नवजात शिशु को भी माता का दुग्ध उचित परिमाण में नहीं मिलता। कुछ लोग कहेंगे कि गर्म देशों में ठण्डे देशों की अपेक्षा कन्याएँ जल्दी युवावस्था को प्राप्त होती हैं, इसलिए उनका विवाह शीघ्र हो जाना चाहिए। इङ्गलैण्ड आदि अन्य देशों में कन्याएँ कम से कम १८ वर्ष की आयु तक अविवाहिता रहती हैं। यदि भारतवर्ष की गर्मी को ध्यान में रख कर इस आयु में से दो वर्ष घटा दिए जायँ तो भी १६ वर्ष होते हैं। यह न्यून से न्यून आयु है, जिसमें भारतवर्ष में कन्याओं को विवाह करना चाहिए। ऐसा करने से भारतवर्ष की स्त्रियों तथा बालकों के स्वास्थ्य में अपरिमित लाभ हो सकता है।

बाल-विवाह का एक और दुष्परिणाम यह है कि यदि पति की मृत्यु हो जावे तो पुनर्विवाह न होने के कारण उस कन्या को आजीवन दुःख के सागर में ग़ोते लगाने पड़ते हैं और जैसा कि पहले कहा जा चुका है, व्यभिचार तथा उसके द्वारा गर्भपात और बाल-मृत्यु की संख्याओं में बड़ी भारी वृद्धि होती है। निम्न-चित्रपट से भारतवर्ष तथा इङ्गलैण्ड की भिन्न-भिन्न आयु की विधवाओं की प्रत्येक १,००० स्त्रियों में संख्या का पता चलता है :—

विधवाओं की आयु	भारतवर्ष, १९२१	इङ्गलैण्ड, १९११
सब आयु की ...	१७५ ...	७३·२
०—५ वर्ष की ...	·७ ...	०
५—१० ,, ...	४·५ ...	०
१०—१५ ,, ...	१६·८ ...	०
१५—२० ,, ...	४१·४ ...	०
२०—२५ ,, ...	७१·५ ...	१·५

प्रसवोत्तर (Post-natal) कारण

१—अविवाहिता तथा विधवा स्त्रियों के बालकों की भली प्रकार देख-भाल न हो सकना या ऐसे बालकों की किसी प्रकार हत्या कर देना।

२—बाल-रोग विशेषतः अतिसार, प्रवाहिका (Dysentery), क्षीणता (Marasmus), संक्रामक रोग, तथा स्तम्भ रोग (Tetanus neonatorum)। माता का स्वास्थ्य अच्छा न हो तो बालक जन्म से ही निर्बल होता है और उपरोक्त सभी रोग उस पर शीघ्रता से आक्रमण करते हैं।

३—शिशुपालन, दुग्ध-पान, तथा बालक को वस्त्र पहनाने आदि के नियमों का माता को भली प्रकार ज्ञान न होना।

४—बालक-सम्बन्धी जन्म के रोग तथा मूढ़-गर्भ। प्रसव के समय बालक को चोट लग जाना। किसी कारण से बालक की नाल के कटे हुए सिरे से अत्यधिक रक्तस्राव होना। प्रसव के समय प्रसूतिका को उचित सहायता न मिलना।

५—स्वास्थ्य की दृष्टि से सूतिकागार का ठीक न होना। साधारणतः पुराने ढङ्ग के लोग प्रसव के लिए ऐसा कमरा नियत करते हैं जो अँधेरा हो, जिसमें वायु तथा प्रकाश न आ सके और जो कभी भी न बरता गया हो।

६—पुराने ढङ्ग की मूर्ख तथा अनाड़ी दाइयाँ, जिन्हें स्वच्छता तथा कृमिहीनता (Asepsis) का लेशमात्र भी ध्यान नहीं होता और यदि प्रसव के समय कोई विकार हो तो न वह उसकी उचित चिकित्सा ही कर सकती हैं।

बाल-मृत्यु को भारतवर्ष में कम करने के लिए निम्न-लिखित प्रतिरोधक उपायों का अवलम्बन करना परमावश्यक है:—

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रसवप्राक्-उपाय

१—गर्भपूर्णता तक गर्भिणी की देख-भाल विशेषतः पाण्डु रोग (Anœmia), गर्भाक्षेप रोग, फिरङ्ग रोग, अनुचित परिश्रम आदि के लिए। पहलौठी स्त्री को यदि रजस्राव दो मास तक बन्द रहे तो उसकी पूर्णतया परीक्षा करवा लेना चाहिए और यदि गर्भाशय-सम्बन्धी कोई विकार हो तो उसकी उचित चिकित्सा करवाना चाहिए, जिससे बाद में कोई कष्ट न हो। प्रत्येक गर्भिणी के साधारण स्वास्थ्य का निरीक्षण भी करवाना चाहिए कि वह गर्भावस्था तथा प्रसव और उसके उपरान्त का कष्ट सहन कर सकेगी कि नहीं। गर्भकाल के पिछले महीनों में एक बार गर्भिणी के (विशेषतः पहलौठी के) कूल्हे का माप देखना चाहिए और यह भी पता लगाना चाहिए कि भ्रूण की स्थिति ठीक है। प्रत्येक गर्भिणी की मूत्र-परीक्षा पहले पाँच महीनों में एक-एक महीने के पश्चात् और पिछले महीनों में दो-दो सप्ताह के पश्चात् अवश्य करानी चाहिए, जिससे एलब्यूमिनमेह (Albuminuria) आदि गर्भाक्षेप के पूर्व लक्षणों का शीघ्र ही पता लग जाय और उसका प्रतिरोध किया जा सके।

२—गर्भस्राव तथा गर्भपात की उचित चिकित्सा।

३—स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों का प्रचार और शिशुपालन-सम्बन्धी नियमों का ज्ञान।

४—थोड़े-थोड़े समय के पश्चात् गर्भधारण न करना तथा चिरकाल तक बालक को स्तनपान न कराते रहना।

५—गर्भिणी को उचित भोजन देना, जिसमें 'विटामीन' तथा खटिक (calcium) की मात्रा अधिक पाई जाती हो, विशेषतः शाक, फल, दूध, मधु, घी आदि। गर्भावस्था-सम्बन्धी नियमों का पालन करना।

६—गर्भ-विज्ञान-सम्बन्धी प्रचार, व्याख्यान आदि।

प्रसव-सम्बन्धी (Natal) उपाय

१—सूतिकागार का स्वास्थ्य की दृष्टि से ठीक होना।

२—अनाड़ी और अशिक्षिता दाइयों के स्थान में (जिनके हाथों में सदियों से भारतवर्ष की प्रसूतिकाओं तथा बालकों के जीवन सौंपे जाते रहे हैं) कृमिहीनता के सिद्धान्तों को समझने वाली सुशिक्षिता दाइयों का तैयार करना। प्रसव के समय कृमिहीनता न रखना ही एकमात्र कारण है, जिससे अनेक माताओं को प्रसूत-ज्वर तथा अनेक बच्चों को स्तम्भ-रोग हो जाता है और वे चल बसते हैं।

प्रसवोत्तर (Post-natal) उपाय

१—बालक को उचित रीति से वायु-सेवन कराना, नहलाना, वस्त्र पहनाना और आहार देना।

२—गृह की स्वच्छता तथा माता और बालक की शारीरिक स्वच्छता।

३—बाल-रोगों की उचित चिकित्सा।

उपरोक्त उपायों के ज्ञान को जनता में फैलाने से ही भारतवर्ष की बाल-मृत्यु-संख्या में कमी होने की सम्भावना है तथा आगामी माताओं एवं सन्तान का उद्धार सम्भव है।

सजल प्रतीक्षा

[रचयिता—कुमारी गङ्गादेवी जी भार्गव "छलना"]

(१)

सकुचित हो धारण करती जब—
कमलिनि ओस-अश्रु दो चार।
आकर निज कर से है पीछा—
करता उसका प्राणाधार॥

(२)

मैं तो विकल विसुध हो अविरल—
बहा रही हूँ अश्रु-प्रवाह।
क्यों न हृदय-वल्लभ आकर तब—
हरते हो नयनों की दाह?

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eG

मधुर पराजय

[ले० श्री० जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज']

विमला अपने बाप की इकलौती बेटी थी और मैं था अपने बाप का इकलौता बेटा। सामाजिक और धार्मिक मामलों में हम दोनों एक ही तरह के थे, मगर हम दोनों के बाप थे दो तरह के। उसके पिता जी स्त्री-शिक्षा और विलायत-यात्रा के पूरे पक्षपाती थे; मेरे बाबू जी स्त्री-शिक्षा की बात तो भला किसी तरह सुन भी लेते थे, किन्तु विलायत-यात्रा का नाम ही उनके तन-बदन में आग लगा देता था। यह वह आग होती थी, जिसकी विकराल ज्वाला में अपनी तड़पती हुई धर्म-भावनाओं को देख कर वे विकल हो उठते थे—उनकी सारी शान्ति, सारी सहिष्णुता, सारी स्थिरता इस तरह काँपने लगती थीं मानों किसी ने उनका आधार ही छिन्न-भिन्न कर दिया हो। उनकी समझ से विलायत जाने का साफ़-साफ़ मतलब अपने जाति-धर्म से च्युत होना था, अपने देव-दुर्लभ ब्राह्मणत्व से जन्म-जन्मान्तर के लिए हाथ धो बैठना था, अपने चिर-अर्जित पुण्य की राशि में पाप के दहकते हुए अङ्गारे फेंक देना था! उधर विमला के बाप, स्वयं एक प्रतिष्ठित वंश के शुद्ध सनातनी ब्राह्मण होते हुए भी, विदेश-यात्रा को शिक्षा का एक प्रधान अङ्ग मानते थे। उनका विश्वास था कि इसके बिना बीसवीं सदी का कोई भी स्त्री-पुरुष अपने युग-धर्म की पुकार का समुचित उत्तर दे ही नहीं सकता। मेरे बाबू जी शास्त्रीय धर्मों के आगे युग-धर्म का कोई अस्तित्व ही नहीं मानते थे। विमला के पिता जी शास्त्रीय धर्मों पर आस्था रखते हुए भी परम्परागत रूढ़ियों के घोर विरोधी, युग-धर्म के पवित्र उपासक और देश की पुकार का सच्चा मर्म समझने वाले थे। यही कारण था कि विमला के लिए इङ्गलैण्ड जाकर ऊँची शिक्षा पाने का मार्ग जितना सुगम था, मेरे लिए उतना ही दुर्गम।

बचपन से हम दोनों एक ही साथ लिखते-पढ़ते आ रहे थे, कभी पल भर को भी साथ नहीं छूटा था। केवल घर ही दो जगह थे, रहना अधिकतर एक ही जगह होता था। जीवन की उन बेहोश घड़ियों को बेच कर न जाने कितनी उमङ्गें बटोरी गई थीं, कितनी बड़ी-बड़ी आशाएँ मोल ली गई थीं! होश आते ही वे सब की सब बिखरती और टूटती हुई नज़र आने लगीं! उसके दिल का हाल तो नहीं बता सकता, हाँ, अपने दिल की बेचैनी मैं अभी तक नहीं भूल सका हूँ और उसे कभी भूलूँगा भी नहीं। वह बेचैनी, वह तड़प मेरे जीवन की एक दुलारी निधि है। उसे अपने कलेजे से बाहर निकालने को जी नहीं चाहता। वेदना ही एक ऐसी वस्तु है, जिसे मनुष्य भूल कर भी नहीं भूल सकता। फिर मैं ही कैसे अपनी उस पवित्र पीड़ा को भूल जाऊँ? कैसे भूल जाऊँ कलेजे की उस मीठी-मीठी कसक को, निराशा के उस मुस्कराते हुए व्यङ्ग को, बिछोह की उन मदमाती घड़ियों को? मुझे याद है—हाँ, ख़ूब अच्छी तरह याद है—उस दिन जब आँखों में प्यार की नदी बहा कर विमला ने मुझसे कहा था—"अब तो मैं जा ही रही हूँ विजय! पता नहीं ये दिन फिर कब तक लौटेंगे! चलो, फुलवारी में बैठ कर तुम्हारी कविताएँ तो सुनी जायँ" तब मैं उसे अपनी कविताएँ सुनाने के बदले फूट-फूट कर रो पड़ा था। 'पता नहीं ये दिन फिर कब तक लौटेंगे' सुनने का भी कभी अवसर आएगा, इसकी कल्पना ही नहीं की थी। सुख की मदिरा उँडेलने वाला मन भला दुख का हलाहल क्यों छूने जाता? जिसके साथ मुस्कराते हुए शैशव की सन्ध्या बिताई है, उसी के साथ बिलखते हुए यौवन का प्रभात नहीं बिता सकूँगा, यह सोचने की छुट्टी ही किसे रहती है? निराशा का यह करुण सङ्गीत, आने वाले वियोग-दुख का यह विह्वल सन्देश सुनने के लिए मैं अपने को अच्छी तरह से तैयार नहीं कर सका था। इसी लिए इन कातर शब्दों की चोट मेरे लिए उस समय और भी असह्य हो उठी! मैं किसी तरह भी अपने रुदन-वेग को न रोक सका।

बेचारी विमला भी मेरे साथ रो रही थी, लेकिन मेरी

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तरह अधीरता की आँधी उठा कर, आँसू की झड़ी बरसा कर नहीं; वह रो रही थी अपनी वेदना की गहराई में छिप कर, आँसू की एक-एक बूँद को सन्ताप की ज्वाला से सुखाती हुई! मैं रोकर रो रहा था, वह बिना रोए रो रही थी। मेरी आँखों में पानी था, उसके कलेजे में आग थी। बस, इतना ही फ़र्क़ था, नहीं तो रो हम दोनों ही रहे थे।

अन्त में उसी ने कहा—इस तरह अधीर होने से कोई लाभ तो है नहीं विजय, फिर क्यों अपने मन को पीड़ा पहुँचा रहे हो? मैं भगवान् की इच्छा के आगे अपना सिर झुका चुकी हूँ। तुम भी क्या ऐसा ही नहीं कर सकते?

"नहीं विमला! मैं ऐसा नहीं कर सकता।"—रूमाल से अपने आँसू पोंछते हुए मैंने उत्तर दिया।

"क्यों?"

"मेरे भगवान् हैं ही नहीं, इसीलिए।"

"हैं ही नहीं, यह मत कहो।" विमला गम्भीरता-पूर्वक मुझे समझाने लगी—"वे तुम्हारे साथ हैं, किन्तु तुम उन्हें इसलिए नहीं देख रहे हो कि तुम्हारी आँखें किसी दूसरी वस्तु पर हैं। जब जीवन किसी अभाव की उपासना करने लगता है, तभी उसकी भगवान् से भेंट होती है, तभी वह उनकी व्यक्त सत्ता का स्पर्श कर सकता है। इसी लिए जीवन को अभावमय हो जाने का अवसर देना उसे पूर्णता की ओर ले जाना है। प्रत्येक अभाव को परमात्मा की दी हुई भीख समझ कर अङ्गीकार कर लेना ही, उनकी इच्छा के आगे सिर झुकाना और अपने को उनके योग्य बनाना है।"

सच कहता हूँ, उस समय उसकी ये तत्व-भरी बातें मेरी समझ में बिलकुल नहीं आईं। आज जितना ही इन पर विचार करता हूँ, उतना ही मेरा हृदय गद्गद हो उठता है। उस समय जीवन के इन गूढ़ मन्त्रों पर न तो विचार करने की क्षमता थी, न छुट्टी। मैं मन ही मन झुँझला उठा। मुझे ये बातें बड़ी ही रूखी लगीं। बात असल यह थी कि उस समय मैं अपने और विमला के बीच किसी और की सत्ता स्वीकार करना चाहता ही नहीं था। यौवन का नशा भगवान् ही नहीं, भगवान् के पुरखाओं तक की परवा नहीं करता। और मैं उस समय उसी नशे में चूर-चूर हो रहा था। जानता ही नहीं था कि जीवन में 'अभाव' का भी कोई हिस्सा है, और उस हिस्से का बटवारा करने के लिए स्वयं परमात्मा को कष्ट उठाना पड़ता है। इसीलिए मैं झुँझला कर बोला—मैं 'उनके' योग्य नहीं बनना चाहता और न अपने जीवन को पूर्णता की ओर ले जाना चाहता हूँ। अब यह जिधर चाहे, जाय। मैं इसकी धारा का अवरोध करने में असमर्थ हूँ। जिस चीज़ को आज तक जी-जान से चाहता आ रहा हूँ, जिसे जन्म-जन्मान्तर तक चाहता रहूँगा, उसके अभाव में अब किसी और वस्तु की चाह नहीं करूँगा। मुझे अब और कुछ नहीं चाहिए। मैं तुम्हारी एक आज्ञा चाहता हूँ। कहो, दोगी?

अपनी अन्तिम बात तक पहुँचते-पहुँचते मेरा गला आँसुओं में उलझ गया। वाणी काँपने लगी, हृदय धड़कने लगा। मेरी सारी झुँझलाहट वेदना की चञ्चल धारा में बह गई!

उसने अपने काँपते हुए अधरों पर सजल मुस्कान की एक हलकी-सी रेखा नचाकर कहा—पागल, तुम्हें इस समय आज्ञा की कौन सी ज़रूरत आ पड़ी?

हाय! उसकी उस क्षीण हँसी में जीवन की इतनी करुणा बिलख रही थी, उसके उस 'पागल' सम्बोधन में दुलार भरे अपनेपन की इतनी अतुल वैभव-राशि छिपी हुई थी कि मुझसे उस समय और कुछ नहीं कहते बना। उसके उत्तर ने मुझे निरुत्तर बना दिया।

मुझे चुप देख कर उसने पूछा—विजय, तुम क्या चाहते हो, कहो न?

मैंने बड़े कष्ट से उत्तर दिया—आज्ञा।

"किस बात की?"

"तुम्हारे साथ इङ्गलैण्ड जाकर पढ़ने की।"

"अपने पिता जी की मर्ज़ी के ख़िलाफ़?"

"हाँ, अब भी अगर वे राज़ी न हो सकें।"

"नहीं, हरगिज़ नहीं; तुम्हें मैं ऐसा करने से रोकना चाहती हूँ विजय!" उसने दृढ़ता से मेरा विरोध किया—"तुम मेरे साथ वहाँ तक नहीं चल रहे हो और वहाँ से मेरे लौटने तक और भी न जानें कितनी बातें उलट-पुलट हो जायँगी, यह सोच कर मुझे कितना दुःख हो रहा है, मैं बता नहीं सकती। तुम्हारे वहाँ ले चलने की जितनी कोशिशें हो सकती थीं, मेरे बाबू जी ने कीं। मगर भगवान् शायद हम दोनों को जीवन भर एक दूसरे से अलग

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

ही रखना चाहते हैं। इसीलिए बचपन से आज तक साथ रह कर भी आज मैं तुमसे दूर चली जा रही हूँ। यही कारण है कि मेरे बाबू जी के बार-बार अनुरोध करने पर भी, इतना समझाने-बुझाने पर भी तुम्हारे बाबू जी इस बात पर राज़ी नहीं हो रहे हैं कि तुम मेरे साथ इङ्ग-लैण्ड चलो। उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि विलायत से वापस आने पर वे तुम्हें हमारी छाया में भी नहीं आने देंगे, हमें जाति से अलग कर देंगे। मैं जानती हूँ, इसमें उनका रत्ती-भर दोष नहीं है। यह समाज का दोष है, जिसने ऐसी-ऐसी अन्धी रूढ़ियाँ पाल रक्खी हैं। ऐसी हालत में मैं तुम्हें अपने पिता का अपमान करने को नहीं कह सकती, हरगिज़ इस बात को पसन्द नहीं कर सकती कि तुम उनकी इच्छा पर विजय प्राप्त किए बिना ही वह काम कर बैठो, जिससे लोग तुम्हें घृणा की दृष्टि से देखने लग जायँ। मेरे बाबू जी भी इसे पसन्द नहीं करते। इससे तुम्हारे चरित्र पर धब्बा लगेगा और यह हमारे लिए सब से बड़े दुख की बात होगी।"

विमला की माँ बचपन में ही चल बसी थीं। उसने अपने पिता की छाती के नीचे माता का विराट् हृदय पा लिया था। उसके पिता ने उसके लिए फ़क़ीरी अख़्तियार कर ली थी। वही उनकी एक निधि थी, जिसे वे प्राणों की तरह पाल रहे थे। स्वाभाविक ही था कि उसके हृदय में पितृ-भक्ति की इतनी ऊँची तरङ्गें उठें। बड़े-बूढ़ों का आदर करना मुझे उसी ने सिखाया था। इस बात में वह मुझसे कहीं बढ़ी-चढ़ी थी। किन्तु इस समय उसकी यह आदर्शवादिता मुझे अच्छी नहीं लगी। भला अपने उस पिता की इच्छा पर मैं कैसे विजय प्राप्त कर सकता था जो जाति, बिरादरी, समाज और धर्म की रूढ़ियों के नाम पर मेरी सुकुमार से सुकुमार भावनाएँ कुचल देना सदैव अपना पहला कर्तव्य समझते थे। उसे क्या पता था कि रूढ़ियों के पुजारी किसी के हृदय का आदर करना जानते ही नहीं! उसे इसका अनुभव ही कब हुआ था कि सबके पिता सदैव पिता ही की तरह पेश नहीं आते, कभी-कभी वे वह काम भी कर गुज़रते हैं, जो बड़े-बड़े दुश्मनों के किए भी नहीं होता! ऐसे पिताओं की इच्छा पर विजय प्राप्त करना आग की चिनगारियों का चुम्बन करने से भी बढ़ कर है। यह बात विमला कभी जान ही नहीं सकती थी और मुझे उन दिनों पल-पल पर इसी एक बात का अनुभव हो रहा था। मेरे लिए यह एक ऐसा कठोर सत्य है, जिसे स्वीकार करते हुए आज भी मेरी छाती फटी जाती है। मगर मैं इसे अस्वीकार नहीं कर सकता। उस समय भी मैं इसे विमला के आगे अस्वीकार नहीं कर सका। मेरी आँखों में विवशता के आँसू उमड़ आए। मैंने कातर स्वर में व्यङ्ग किया—थोड़ी देर के लिए तुम 'विमला' से 'विजय' हो जाओ, तब शायद जान सकोगी कि मेरी क्या स्थिति है।

इस बार उसकी भी आँखें भर आईं। उसने कहा—तुम्हारी स्थिति का स्पर्श करने के लिए मुझे तुम्हारी आँखें नहीं चाहिए विजय! मेरी आँखों में जितनी ज्योति है, इनमें वस्तु-परख की जितनी शक्ति है, वह सब तुम्हीं से तो पा सकी हूँ! तुम्हारी वेदना का मर्म जानने के लिए मुझे 'विजय' बनने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी—मेरे तो रोम-रोम में 'विजय' रमा हुआ है! 'अस्तित्व-लय' के बाद भी क्या कभी 'अस्तित्व-विनिमय' हुआ करता है? मैं तुम्हारी स्थिति पर मन ही मन रो रही हूँ, मगर यह कभी नहीं कहूँगी कि मेरे प्रेम के कारण अथवा ऊँची शिक्षा पाने की लालसा से तुम अपने माँ-बाप का अनादर करो। अपनी सारी आकांक्षाओं में आग लगा कर, अपनी समस्त आशाओं की हत्या करके भी अगर तुम अपने माँ-बाप से 'अपनेपन' की भीख पाते रहोगे तो मैं इसे ही अच्छा समझूँगी। उनकी इच्छा पर विजय पाने के लिए तुम्हें तपस्या करनी पड़ेगी, और उस कठिन तपस्या का समय तुम्हारे आगे आ गया है।

इतनी मर्म-भरी बातों के बाद मैं और क्या कहता, चुप हो रहा। मगर बार-बार पोंछते रहने पर भी मेरी आँखें बरसात की नदियाँ ही बनी रहीं।

उसने फिर कहा—तुम्हारी यह दशा देख कर तो अब यही जी चाहता है कि मैं भी न जाऊँ। मगर बाबू जी जहाज़ का टिकट ख़रीद चुके हैं, इसीलिए उनसे कुछ कहते नहीं बनता।

अभी तक मेरे मन में यही कामना थी कि क्या ही अच्छा हो, अगर विमला भी न जाय, मगर उसकी ये विवशता-भरी बातें सुनते ही मेरी यह स्वार्थ-कामना इस तरह भाग गई, जिस तरह प्रेम का प्रकाश पड़ते ही हृदय की सारी कालिमा निकल भागती है। मेरे

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्तःकरण में एक नई ज्योति जग गई। मैं बोल उठा—नहीं, मेरे लिए तुम्हारे रुकने की ज़रूरत नहीं है विमला! तुम जाओ, न जाओगी तो मुझे और भी कष्ट होगा। मैं वही करने की चेष्टा करूँगा जिसे तुम मेरे लिए उचित समझती हो। अभी मैं भगवान् के योग्य नहीं हूँ, इसलिए उनकी इच्छा पहचानना मेरे लिए कठिन है। हाँ, तुम्हारी इच्छा के आगे मेरा मस्तक सदैव झुका रहेगा। ऊँचे आदर्शों का अनुकरण बहुत ही कठिन है, किन्तु उनकी उपासना बहुत ही सरल। मैं उपासना से शुरू करता हूँ, वहाँ तक पहुँचने या न पहुँचने की बात नहीं जानता।

इस बार मेरी आँखों में आँसू नहीं थे, वाणी में सचाई का सौन्दर्य और हृदय की दृढ़ता थी। विमला की आदर्शवादिता के भीतर अब मुझे एक दुर्लभ सौन्दर्य दिखाई पड़ा। कुछ ही देर पहले जो घूँटें कड़वी मालूम हो रही थीं, वे ही अब अमृत की बूँदें बन गईं। विमला—मेरी प्यारी विमला—मुझे पहले की अपेक्षा सहस्र गुना अधिक सुन्दरी मालूम होने लगी।

मेरी बातें सुन कर उसने कहा—ऐसा करके तुम मेरे प्रेम का आदर करोगे। मगर यह तो बताओ, अब तुम्हारा क्या करने का विचार है? एम० ए० में नाम नहीं लिखाओगे?

"नहीं" मैंने सिर हिला कर मौन भाषा में जवाब दिया।

"क्यों?"

"अब पढ़ने की छुट्टी ही कहाँ मिलेगी?"

"क्यों, बैठे-बैठे करोगे क्या?"

"सामाजिक रूढ़ियों के विध्वंस की चिन्तना"—कहते हुए एक बार फिर मेरी आँखें डबडबा आईं!

विमला ने करुण स्वर में कहा—देखो विजय, फिर तुम पागलों की तरह रोने लगे! क्या तुम समझते हो तुम्हारे ये आँसू मेरे कलेजे पर कोई असर ही नहीं पैदा करते?

मैं सँभल गया। ऐसे ही ऐसे मौक़ों पर सच्चा प्रेम शासक का काम कर जाता है। वह हमें एक हलकी-सी ठोकर देकर बड़ी-बड़ी ठोकरों से बचा लेता है।

मैंने कहा—कल तुम्हारा जहाज़ कब खुलेगा?

उसने कहा—साढ़े दस बजे सवेरे।

मैंने कहा—अच्छा, तो लो अभी जाता हूँ।

उसने धीरे से सिर हिला दिया, जिसका अर्थ था 'जाओ।'

२

वहाँ से लौट कर ज्योंही अपने आँगन में पैर रक्खा, त्योंही बाबू जी से भेंट हो गई। वे आँगन से कहीं बाहर जा रहे थे। मुझे देखते ही रुक गए और व्यङ्ग करते हुए बोले—कहिए, चारों ओर घूम-घूम कर सबसे कह आए कि नहीं, कि आपका बाप आदमी नहीं, पिशाच है!

मेरे समूचे शरीर में आग भभक उठी। यह एक ऐसी बात थी, जिसने मेरी साधारण मनुष्यता पर आक्रमण किया। मैंने सतेज होकर उत्तर दिया—क्या आप समझते हैं कि मैं आपके बारे में यही धारणा रखता हूँ?

"इसमें समझने-बूझने की क्या बात है!" उन्होंने कहा—"यह तो तुम्हारी एक-एक बात से पता चलता है। शीशा लेकर देखो तो सही, इस समय तुम्हारी आँखें गुस्से के मारे कैसी लाल हो रही हैं? और क्या तुमने हरदयाल पण्डित से इसी तरह की बातें नहीं की हैं? उनके सामने तुमने अपने बाप को पिशाच नहीं कहा है?"

पण्डित हरदयाल चौबे का नाम सुन कर मैं तो जल बुझा। पण्डित जी हमारे मुहल्ले के उन चुने हुए लोगों में से थे, जो धर्म और पुण्य के नाम पर दिन-रात अधर्म और पाप ही किया करते हैं। पाप और पाखण्ड ही जिनकी जीवन-वृत्ति हो, ऐसे लोग अगर झूठ न बोलें, घर-घर में, बाप-बेटे में, पति-पत्नी में फूट का बीज बोना न जानें, तो भला उनकी रोटी का क्या प्रबन्ध हो! कुछ लोग पाप की कमाई खाकर जीते हैं। मगर चौबे जी उन लोगों में से थे, जिनका पेट केवल पाप ही से भर जाता है।

मैंने क्रोध में काँपते हुए कहा—जिसे आप पण्डित समझ कर पूजते हैं, उसे मेरे सामने ले आइए तो मैं उसकी बोटी-बोटी काट कर अलग कर दूँ। जो आदमी इतना सफ़ेद झूठ बोलता है, उसकी बातों पर भी आप विश्वास कर लेते हैं, इसका मुझे अफ़सोस है।

इसके आगे बाबू जी इस विषय पर और कुछ नहीं बोल सके। कदाचित् उन्हें मेरी सतेज और निर्भीक वाणी ने विश्वास दिला दिया कि बात बिलकुल झूठी है। और

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri

सचमुच इस बात की कोई बुनियाद भी नहीं थी। बाबू जी की ओर से मेरा मन मैला ज़रूर हो गया था, मगर मैंने किसी के आगे उसे इस रूप में प्रकट नहीं किया था। मैं समझ गया कि वह हरदयाल पण्डित मेरे इस मनोमालिन्य से अनुचित लाभ उठा रहा है। मन ही मन मैं उस भयानक आदमी से डरा भी बहुत। क्या पता, ऐसे लोग कब क्या कर बैठें!

ख़ैर, बाबू जी उस समय चुपचाप आँगन से बाहर निकल गए और मैं अपने कमरे में जाकर उदास भाव से बैठ रहा।

माँ ने आकर कहा—बेटा! तुम कुछ दिनों के लिए नानी के घर चले जाओ। हवा-पानी बदल आओ, तबीयत ठीक हो जायगी।

मैंने आँखों में आँसू भर कर कहा—माँ! मेरा मन इस समय स्वर्ग में भी नहीं लगेगा। मैं अभागा हूँ।

मेरी माँ ने खींच कर मुझे कलेजे से लगा लिया। उनकी आँखों से प्यार का अमृत टपक रहा था। उन्होंने रुँधे हुए स्वर में कहा—तुम इतने अधीर क्यों हो रहे हो बेटा? तुम्हारा मन लगाने के लिए मैं अपने प्राणों की बाज़ी लगा दूँगी। स्वर्ग जाकर मन लगाने की बात तुम्हारे दुश्मनों के मन में भी न समाए। वह आदमी के लिए नहीं बनाया गया है। मेरी इस गोद में भी क्या तुम्हारा मन नहीं लग सकेगा बेटा?

माता की गोद में सिर गाड़ कर मैं बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोने लगा। माँ मुझे चूम-चूम कर चुप कराने लगी और मैं उसका प्यार पी-पीकर रोने लगा। रोते ही रोते मेरे मुँह से निकल गया—माँ! मैं तेरा नालायक़ बेटा हूँ। बाबू जी मेरे हृदय के साथ अत्याचार कर रहे हैं।

"जानती हूँ बेटा!" मेरी माँ ने जवाब दिया—"उनकी ओर से मैं इसका प्रायश्चित्त करूँगी। लेकिन अभी नहीं। तुम्हें अगर मेरे ऊपर विश्वास हो तो, मेरे लिए, तुम कुछ दिनों के वास्ते अपने हृदय को पत्थर बना लो। हाँ, बेटा! तब तक उसे इतना कठोर बना लो कि उसके ऊपर गिरने वाला प्रत्येक अत्याचार चूर-चूर होकर बिखर जाय। क्या तुम ऐसा कर सकोगे बेटा?"

"कर सकूँगा माँ!" मैंने उनके चरण छूकर कहा—"तुम आशीर्वाद दे दोगी, तभी कर सकूँगा। मेरा हृदय इस समय जर्जर हो रहा है।"

माँ ने मुझे उठा कर गले लगा लिया और प्यार से कहा—चलो, हाथ-मुँह धोकर कुछ खा लो।

मैं अस्वीकार नहीं कर सका। खाकर आया और बिस्तरे पर पड़ रहा। न जानें चुपके से कब नींद आ गई। आँखें खुलीं तो देखा सूर्य की किरणें मेरे कमरे में नाच रही थीं।

माँ ने कहा—जाओ बेटा! नहा-धोकर उन लोगों से मिल आओ। वहाँ से अभी एक आदमी आया था।

मैं नहा-धोकर वहाँ पहुँचा तो देखता हूँ, मेरे बाबू जी भी वहाँ मौजूद हैं। वे उन लोगों से मिलने के लिए नहीं गए थे, इसलिए गए थे कि कहीं मैं भी उन्हीं लोगों के साथ चुपचाप जहाज़ पर न जा बैठूँ! वैसी अवस्था में वे क्या करते, पता नहीं! मैं क्षोभ और ग्लानि के मारे मर-सा गया। विमला के पिता जी ने मुझे दौड़ कर गले लगा लिया और मेरे बाबू जी की ओर देखते हुए करुण-स्वर में कहा—देखना भाई, मेरे बचुआ को समझने में भूल मत करना। इसे मैंने बहुत ज़्यादा प्यार करके बिगाड़ दिया है। तुम इसे सुधारने की कोशिश मत करना। यह तुम्हारे वंश का दीपक है, इसे हवा के झोंके से न बचाओगे तो पछताना पड़ेगा। इतना इसलिए कह रहा हूँ कि तुम मेरे मित्र हो, भाई हो, तुम्हें इतना कहने का मुझे अधिकार है।

मेरे बाबू जी सिर झुका कर ये बातें सुनते तो रहे, पर उन्हें ये अच्छी नहीं लग रही थीं। मेरे प्रति विमला के पिता का इतना प्यार उन्हें काटे जा रहा था।

विमला आई और उसने कहा—बाबू जी! समय हो गया है, अब चलना चाहिए न?

सब लोग वहाँ से उठे और साथ ही साथ स्टेशन तक आए। यहाँ से रेल द्वारा बन्दरगाह तक पहुँचना था। विमला ने मेरे बाबू जी के चरणों पर सिर रख दिया और मैंने देखा, बाबू जी की आँखों से आँसू की दो-चार बूँदें टपक पड़ीं। विमला के बाबू जी ने उन्हें छाती से लगा कर कहा—"भाई, मेरा कहा-सुना माफ़ करना!" उस समय न जानें कौन सी चोट खाकर मेरे बाबू जी रो पड़े।

विमला ने मेरी ओर एक बार सजल आँखों से देखा और गाड़ी पर जा बैठी। उसके बाबू जी ने गाड़ी पर चढ़ते हुए मेरा हाथ चूम कर कहा—चिट्ठी-पत्री बराबर लिखते रहना बेटा! अच्छी तरह से रहना।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मैंने गाड़ी पर चढ़ने की चेष्टा करते हुए कहा—चलिए, मैं बन्दरगाह तक पहुँचा आऊँ।

"वहाँ जाकर क्या करोगे"—कह कर उसी समय बाबू जी ने मेरा हाथ पकड़कर मुझे पटरी से नीचे खींच लिया। गाड़ी खुल गई। मैं चक्कर खाकर वहीं गिर पड़ा।

३

इङ्गलैण्ड पहुँचते ही विमला ने पत्र भेजा। उसमें सिर्फ़ इतना ही लिखा था—"बाबू जी रास्ते ही में बीमार पड़ गए। अब भी इनकी तबीयत अच्छी नहीं है।

मैं ख़बर पाकर काँप उठा! बेचारी विमला अकेली ही किस तरह उनकी सेवा-शुश्रूषा कर सकती होगी। परदेश का मामला है। न कोई जान, न पहचान। किस तरह उसकी कोई मदद करता होगा? इन बातों को सोच-सोच कर मेरा मन विकल हो रहा था। अब मेरा शरीर यहाँ था और प्राण विमला के पास। यही चाहता था, किसी तरह उड़ कर उसके पास जा पहुँचूँ। चिन्ता ने धीरे-धीरे मेरे शरीर में घर कर लिया। मैं देखते ही देखते अधमुआ-सा, बीमार-सा होगया। मेरे पिता जी मेरी अवस्था पर कुढ़ते थे और माँ मुझे देख कर मन ही मन रोया करती थी। पिता जी इसलिए कुढ़ते थे कि मैं वकालत क्यों नहीं पढ़ता, इस तरह घर पर बेकार क्यों बैठा रहता हूँ। उनकी समझ में मेरी बेकारी ही मुझे बीमार बनाए जा रही थी। और माँ? हाय! उस तपस्विनी को भला मेरी बेकारी क्यों अखरती? वह तो इसलिए रो रही थी कि उसे मेरी बीमारी का कारण मालूम था, फिर भी वह उसका इलाज नहीं कर पाती थी। उसके फूल में एक कीड़ा घुस आया था, जिसे उसने घुसते देखा था, पर अब निकालने का साधन उसके पास नहीं था। और था भी तो वह उसे काम में नहीं ला सकती थी।

धीरे-धीरे इसी तरह दिन बीतने लगे। मेरा जीवन मुझे भार-सा मालूम होने लगा।

एक दिन मैं ज्योंही आँगन से बाहर निकल रहा था, ड्योढ़ी पर तार का चपरासी नज़र आया। मैं किसी भावी आशङ्का से काँप उठा। तार खोलकर पढ़ा तो भय ठीक ही निकला। तार लन्दन से आया था। विमला ने लिख भेजा था—बाबू जी मुझे अकेली छोड़ कर चल बसे। अब मेरे चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार है।

तार के अन्तिम शब्द तक पहुँचते ही मैं धड़ाम से गिर पड़ा। आँखें खुलीं तो माँ को अपने पास ही पाया। मुझे तार की बात याद हो आई और मैं माता की गोद में सिर रखकर रोने लगा।

माँ ने वेदना-विह्वल स्वर में मुझे सान्त्वना दी—भगवान् की यही इच्छा थी बेटा, कोई इसमें कर ही क्या सकता है?

मैंने अधीर होकर कहा—माँ, अब मैं विमला को एक बार देखे बिना बच नहीं सकूँगा।

माँ ने समझाया—उसे तार दे दो, वह घर लौट आवे।

मैंने कहा—वह लौट नहीं सकती माँ, नहीं तो मैं उसे बुलाने से बाज़ नहीं आता।

मेरी माँ कुछ बोलना ही चाहती थी कि बाबू जी कमरे में घुस आए और बोले—देख लिया न विलायत जाने का परिणाम। ऐसी जगह जाकर मरे कि जहाँ कोई जलाने वाला भी नहीं मिला। धर्म-विरुद्ध आचरण करने का यही फल मिलता है।

मैं अपने क्रोध को न रोक सका। बोल उठा—आप अपने धर्म को लेकर इस समय मेरे सामने से हट जाइए। जिस मित्र का आपके सिर पर मनों उपकार लदा हुआ है, उसी की मृत्यु पर आप इस तरह की टीका-टिप्पणी करते हैं, यह मैं सह नहीं सकता। जाइए, हरदयाल चौबे के ही आगे आपको इन बातों पर दाद मिलेगी। मुझे इस प्रकार की धर्म-चर्चा से नफ़रत है।

"तो अब तुम इस लायक़ हो गए कि मुझे घर से निकाल बाहर करो!"—कह कर बाबू जी भूखे शेर की तरह मुझ पर टूट पड़े। बीच में मेरी माँ न पड़ जातीं तो शायद खा ही डालते।

मैं भी उनके व्यवहारों से आजिज़ आ गया था। बिना कोई शील-सङ्कोच दिखाए ही कह उठा—तो क्या आप चाहते हैं कि मैं ही यहाँ से चला जाऊँ?

"जाओ चाहे मरो, मुझे तुम्हारी सूरत से घृणा हो गई है।"

इस बार मेरे बदले मेरी माँ ने उत्तर दिया। माँ के आगे उसके बेटे को कोई मरने को कहे, तो वह प्रलय मचा देती है। उसने क्रोध-कम्पित स्वर में कहा—यह मर जायगा तो फिर घृणा किसकी सूरत से करोगे?

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri G

दुनिया भर के लोगों को तो तुम सदैव प्यार ही की निगाह से देखते रहते हो; कोई ऐसी भी तो सूरत रहे जिससे और कुछ नहीं तो तुम्हें घृणा ही हुआ करे।

इस संयत-व्यङ्ग का मर्म समझ कर पिता जी कुछ झेंप-से गए। फिर भी उन्होंने कहा—तुम्हीं ने तो इसे सिर चढ़ा रक्खा है, तभी तो इस तरह की बातें करते उसे शर्म नहीं आती। मैंने क्या कहा, जो तुम इस तरह लाल-पीली हुई जा रही हो?

माँ ने उसी तरह अश्रु-भरे शब्दों में, किन्तु गम्भीरता से जवाब दिया—मैंने इसे सिर इसलिए चढ़ा रक्खा है कि यह लात से रौंदने की चीज़ नहीं है। इसकी हया-शर्म में तो तुमने आग लगा दी। और भी कभी इसके मुँह से इस तरह की बातें सुनते थे? देखती हूँ, जब कभी आँगन में आते हो, इसे एक ठेंस लगाए बिना नहीं जाते। मालूम होता है, इसको मार ही कर तुम्हारे धर्म की प्यास बुझेगी!

"तो क्या इसे विधर्मी हो जाने दूँ?"

"मैं नहीं जानती विधर्मी होना किसे कहते हैं!" मेरी माँ ने जवाब दिया—"हाँ, इतना जानती हूँ कि जो विलायत जाता है, वह आदमी से जानवर होकर नहीं लौटता। न वह ऐसा ही होकर लौटता है कि हम उसे छू न सकें। विजय अगर विलायत से विधर्मी होकर भी लौटेगा तो मैं उसे अपना ही बेटा मानूँगी, वह मेरे लिए कुछ और नहीं हो जायगा। जिस तरह तुम धर्म के नाम पर अपने इकलौते पुत्र का बलिदान कर सकते हो, उसी तरह मैं अपने इकलौते पुत्र के लिए महान् से महान् धर्म को ठुकरा सकती हूँ।"

"पुत्र के लिए महान् से महान् धर्म को ठुकराओगी क्यों नहीं!" दाँत पीस कर मेरे बाबू जी ने कहा—"तुम भी दो अक्षर लिखना-पढ़ना जो सीख गई हो! अच्छी बात है। जाओ, जो करना चाहो, करो। सिर पर पड़ेगा, तब रोओगी।"

"हाँ, सिर पर पड़ेगा तब देख लूँगी!" माँ ने वीरता और दर्प के साथ जवाब दिया—"जाओ, तुम अपना धर्म बचाओ, मैं अपने पुत्र को बचाऊँगी।"

बाबू जी ग़ुस्से के मारे कमरे से बाहर निकल गए। आज पहले ही पहल मैंने अपनी माँ का तेज देखा। पहली ही बार मुझे मालूम हुआ कि उसके हृदय के भाव कितने व्यापक, कितने मधुर और कितने बलवान् हैं। मेरी आँखों से आनन्द की धारा बह चली। माँ ने आँचल से मेरे आँसू पोंछ कर कहा—बेटा, अब तुम निश्चिन्त हो जाओ। मैं तुम्हें दो हज़ार रुपए देती हूँ। जाओ, ख़ुशी से विलायत हो आओ। मैं बरस-दो बरस तक, यह सुन-सुन कर कि तुम अच्छी तरह से हो, तुम्हारा वियोग-दुख सह लूँगी; मगर अपनी आँखों के सामने तुम्हारी यह अवस्था अब मुझसे देखी न जायगी। चूल्हे में जाय धरम और भाड़ में जायँ समाज के लोग, मुझे इनसे कुछ मतलब नहीं। मेरे समाज और धरम तुम्हीं हो। जाओ, सुख से लौट आओ।

माँ का यह त्याग और साहस देख कर मैं दङ्ग रह गया। इतनी दूर तक वह मेरे लिए त्याग कर सकती है, इसका मुझे गुमान भी नहीं था। मैंने पुलकित होकर पूछा—तुम रुपए कहाँ से दोगी माँ?

"रुपए?" मेरी माँ ने हँस कर कहा—"बहू के लिए मैंने गहने बनवाने को रुपए बटोर रक्खे हैं कि नहीं? उन्हीं में से तब तक उधार ले लूँगी।"

मैं लजा गया। साथ ही मेरे चेहरे की प्रसन्नता उद्दीप्त हो उठी। सहसा मेरे हृदय में माता के इस अपूर्व त्याग की एक मीठी-सी ठेंस लगी और मैं थोड़ी देर तक मौन रहने के बाद बोल उठा—नहीं माँ, अब मैं नहीं जाऊँगा।

"नहीं, बेटा! अब तुम्हें ज़रूर जाना पड़ेगा। आज मैं तुम्हारे बाप की ओर से प्रायश्चित्त करके बैठी हूँ। आरम्भ ही में विघ्न मत उपस्थित करो।"

"मेरे वहाँ जाने से तुम्हें अपार कष्ट होगा माँ!"

"मैं उसे सबसे बड़ा सुख समझूँगी बेटा!"

"माँ" कह कर मैं एक बार फिर रो पड़ा। यह मेरे आनन्द और उल्लास का रोना था!

"बेटा!" कह कर माँ ने मुझे छाती से लगा लिया। वह आँचल से कभी मेरा और कभी अपना आँसू पोंछने लगी।

उसके तीसरे ही दिन उसने मुझे प्रेमपूर्वक बिदा किया।

४

विमला को मैंने अपने आने की सूचना नहीं दी थी। एकाएक मुझे अपने सामने देख वह कुछ देर तक होश

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ली खड़ी रही। फिर तो दौड़ कर मेरे गले से चिपक गई और लगी फूट-फूट कर रोने। जीवन में पहली ही दफ़ा मैंने उसे इतनी कातरता से रोते देखा था। बेचारी विदेश में आकर अनाथिनी हो गई थी। रुपए-पैसे की तो कमी नहीं थी, कमी थी स्वजनों की। अपने बाप की वह लाड़िली बेटी थी। उनका वियोग-दुःख उसके लिए असह्य था। साधारणतः उसे रोने की आदत ही नहीं थी। दुःखों को दबा देना उसे ख़ूब आता था। लेकिन इस बार उसका सारा धैर्य जाता रहा। यह ऐसी दारुण चोट थी, जिसका असर उसके मर्मस्थल पर हुआ। वह बहुत ही दुबली-पतली और बीमार-सी हो गई थी। करुणा की वह जीती-जागती प्रतिमा जब मुझसे लिपट कर उस तरह रोने लगी, तब मैं उसे किसी तरह भी चुप नहीं कर सका। चुप करता भी कैसे? यहाँ ख़ुद ही रोने से फ़ुरसत नहीं थी। पेट भर रो लेने के बाद जब दोनों शान्त होकर बैठ गए, तब उसने कहा—बाबू जी मरते दम तक केवल तुम्हीं को याद करते रहे।

"और मैं अभागा सब दिन तो उनके साथ रहा," आँसू पोंछते हुए मैंने कहा—"सिर्फ़ उसी समय उनके दर्शन नहीं नसीब हुए, जब वे मुझे बार-बार याद कर रहे होंगे।"

"हाँ, रह-रह कर नाम लिया करते थे।"

"उन्हें हो क्या गया था?"

"ज्वर चढ़ आया था। पहले तो वह साधारण रहा, फिर एकाएक ऐसा बढ़ा कि उन्हें समाप्त करके ही उतरा। वह ज्वर नहीं, काल था।"

"तुम्हारे और सब प्रबन्ध तो ठीक हैं न? किसी तरह की तकलीफ़ तो नहीं है?"

"और सब बातें ठीक हैं। अच्छा, तुम अपना तो बताओ, इतने दुबले-पतले क्यों हो गए हो? यहाँ आने के लिए सत्याग्रह ठान रक्खा था क्या?"

"हाँ, बात तो कुछ ऐसी ही थी," मैंने माथा खुजलाते हुए जवाब दिया—"लेकिन अभी तो यात्रा का थका-माँदा हूँ। शायद इसीसे कुछ चेहरा उतर गया हो।"

"आख़िर, तुम यहाँ आ कैसे गए?"

"माँ की कृपा से और तुम्हारे × × ×"

"ज़रूर तुम अपने पिता जी को रुष्ट करके आए होगे"—उसने मेरी बात पूरी होने के पहले ही अपना अनुमान बता दिया।

"पिता जी से इस सम्बन्ध में मेरी कोई बातचीत ही नहीं हुई" मैंने उत्तर दिया—"मुझे तो माँ ने तुम्हारे स्नेहवश यहाँ भेजा है।"

इस बार वह अत्यन्त पुलकित होकर बोली—अच्छा किया, तुम किसी तरह आ तो गए। बाबू जी के अभाव में मुझे सारी दुनियाँ ही सूनी मालूम होने लगी थी। आज उसमें अब कुछ देख रही हूँ; और उसे देखते हुए मेरे जीवन का स्वाद भी कुछ मीठा होने लगा है। मेरा जी इतना उचट गया था कि अगर तुम न आ जाते तो शायद मैं यहाँ से शीघ्र ही स्वदेश लौट जाती। अब चलो, दोनों जने मिल कर ख़ूब पढ़ेंगे।

"मगर तुम्हारा स्वास्थ्य बहुत गिर गया है!" मैंने स्नेह-कातर स्वर में कहा—"कुछ अधिक विश्राम करने की आवश्यकता है।"

"अच्छा चलो, पहले तुम्हें जल-पान तो करा दूँ, नहीं तो कहोगे केवल बातों ही से सत्कार कर रही है!"—कह कर वह मुझे जल-पान वाले कमरे में ले गई।

बहुत दिनों बाद उस दिन हम दोनों ने एक ही साथ बैठ कर जल-पान किया। वह जीवन की एक अनमोल मधुरता थी, जिसकी स्मृति आज उससे भी अधिक मीठी मालूम हो रही है।

५

पूरे तीन साल बाद हम लोग, सारे यूरोप की यात्रा समाप्त करके, स्वदेश लौट आए। आँगन में पैर रखते ही माँ ने हम दोनों को एक साथ ही गले लगा लिया। विमला उसी समय बिदा होकर अपने घर चली गई। मैं अपने यहाँ रह गया। विमला के आगे समाज का कोई बन्धन नहीं था, क्योंकि वह अकेली ही थी। मगर मैं अपने घर में कैसे रह सकता था? समूची बिरादरी में मेरे आने का शोर मच गया। मेरे बाबू जी के प्राण सङ्कट में पड़ गए।

जब मैंने पैर छूकर उन्हें प्रणाम किया, तब उनकी आँखें तो ज़रूर सजल हो आईं, लेकिन हृदय पर समाज का आतङ्क पूर्ण-रूप से छाया ही रहा।

उन्होंने क्षुब्ध होकर पूछा—रहने का कहाँ विचार किया है?

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

अभी मैंने पैर की धूल तक नहीं झाड़ी थी और मेरे कलेजे में प्रश्न का यह तीखा शूल चुभा दिया गया। मैं अपने आँगन में खड़ा था, और मेरे पिता जी मुझसे पूछ रहे थे कि मैंने रहने का कहाँ निश्चय किया है। मानों उस घर में रहने से मैं इनकार कर रहा था। क्षोभ के मारे मैं चुपचाप खड़ा रहा।

बाबू जी ने कहा—इस तरह चुप्पी साधने से तो काम चलेगा नहीं। समाज और धर्म का मामला है। अपने रहने का स्थान ठीक कर लो।

मैंने कहा—अभी चला जाऊँ ?

बाबू जी—यह मैं कहाँ कह रहा हूँ !

"आख़िर आपके कहने का मतलब तो यही है न !" मैंने नम्रता से पूछा—"कि मैं आपके साथ नहीं रह सकता ?"

"यह तो मैं तुमसे विलायत जाने के बहुत ही पहले कह चुका हूँ !" बाबू जी ने कहा—"विधर्मी के साथ रह कर मैं अपना लोक-परलोक तो न बिगाड़ सकूँगा।"

"मगर मैं विधर्मी तो हुआ नहीं हूँ !"

"दुनिया जानती है कि विलायत जाकर किसी की जात-पाँत नहीं बची रहती। पता नहीं, तुम्हीं कैसे इतने पाक-साफ़ रह गए !"

"अगर यही बात है, तब तो सचमुच मैं इस समाज को प्रणाम करता हूँ—लीजिए मैं चला !" कह कर मैंने क़दम बढ़ाया ही था कि मेरी माँ ने दौड़ कर मेरा हाथ पकड़ लिया।

मैंने सजल स्वर में कहा—मुझे जाने दो माँ ! मैं प्रति दिन तुम्हारे चरण छू जाया करूँगा। बाबू जी को मेरी छाया से भी क्लेश पहुँचने लगा है, क्योंकि उनकी समझ में मैं विधर्मी हो गया हूँ।

"मगर इस घर में मेरा भी तो कुछ अधिकार है बेटा !" मेरी माँ ने गम्भीरता से कहा—"इसके आधे हिस्से में हम दोनों माँ-बेटे रहेंगे और आधा हिस्सा तुम्हारे धर्मप्राण बाबू जी का रहेगा। उनके हिस्से में धर्म है, मेरे हिस्से में पुत्र।"

वही हुआ। माँ ने सचमुच आँगन के दो हिस्से करवा दिए। बीचोबीच एक लम्बी दीवार खड़ी कर दी गई।

यह सब तो हुआ; लेकिन मुझे यह अच्छा नहीं मालूम होता था। मेरी माँ को वहाँ अनेक कष्ट थे। मुहल्ले वालों ने पण्डित हरदयाल चौबे की कृपा से मेरी माँ को आग-पानी तक देना भी बन्द कर दिया था। एक तरह से मुझे लोग अछूत ही समझने लगे थे। मैं अपना और अपनी माँ का यह अपमान नहीं सह सका। एक दिन विमला मेरी माँ से मिलने आई। उसे भी इन बातों का पता चल गया था। मैंने भी चर्चा छेड़ दी। उसने कहा—मेरा तो समूचा घर ख़ाली ही पड़ा रहता है। वहाँ क्या सुविधा नहीं होगी ?

मैंने भाव-भरी दृष्टि से माँ की ओर देखा। उसने कहा—क्यों बेटा ! वहीं चलोगे ?

मैंने कहा—हाँ माँ ! इस नरक से दूर ही हट कर रहने में सुख है। यहाँ तो मनुष्यता का कोई नाम-निशान भी नहीं दिखाई पड़ता। चलो, वहीं शान्ति और स्वच्छन्दता से रहेंगे।

शाम को हम लोग विमला के घर में पहुँच गए। अपना घर छोड़ते समय मेरी माँ फूट-फूट कर रोई। मगर उसका मूल्य ही क्या था ? मुझे भी वह घर छोड़ते हुए कम दुख नहीं हुआ, किन्तु मैं रोया नहीं। रोकर ही क्या करता ? उसे तो बाबू जी जान-बूझ कर मसान बनाने पर तुले हुए थे !

६

"तुमने भी कुछ सुना है बेटा ?"—मेरी माँ ने घर आते ही उस दिन बड़ी उत्सुकता से पूछा।

"नहीं माँ ! क्या कोई नई बात है ?"—मैंने जवाब दिया।

"सुनती हूँ, तुम्हारे बाबू जी तुम्हारे लिए नई अम्माँ ले आए हैं।"

"क्या ?"—मैंने आश्चर्य से चौंक कर पूछा।

"तुम्हारे बाबू जी ने दूसरा विवाह कर लिया है।"

"दूसरा विवाह कर लिया ?"

"हाँ, सुनती तो हूँ !"—कह कर मेरी माँ उदास हो गई।

मैं उसी समय इस बात का पता लगाने को चल पड़ा। वहाँ पहुँच कर देखता हूँ, दरवाज़े पर बैठ कर पण्डित हरदयाल जी चौबे मेरे बाबू जी के साथ ख़ूब हँस-हँस कर बातें कर रहे हैं और पान चबा रहे हैं।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुझे देखते ही बाबू जी की आँखें नीची होगईं। चौबे जी की भी सुर्ख़ी जाती रही।

मैंने बाबू जी के चरण छुए और लाल धोती देख कर उनसे, बिना किसी सङ्कोच के, साहसपूर्वक पूछा—क्या मैं नई अम्माँ जी को एक बार देख सकता हूँ?

मेरे बाबू जी के माथे पर पसीना आगया। वे तो कुछ जवाब दे नहीं सके, बीच ही में बोल उठे पण्डित हरदयाल चौबे। उन्होंने दाँत निपोड़ कर हँसते हुए कहा—भला अम्माँ को देखने के लिए बाप से पूछने की क्या ज़रूरत है? यह बात विलायत से सीख कर आए हैं क्या बाबू जी?

मेरे शरीर में आग लग गई। मैंने कहा—विलायत में तो आप जैसे बेहूदे रहते नहीं, जो ये बातें सिखा सकें। इन्हें तो आप ही लोगों की कृपा से सीख सकूँगा।

मैंने जान-बूझ कर उसे गाली दी। मुझे मालूम हो गया था कि उसी शैतान ने बाबू जी को विवाह के लिए उत्तेजित किया और अन्त में उसे पूरा ही कराके छोड़ा। मुझे मालूम था कि मुहल्ले भर में जितने अनर्थ होते हैं, उन सबका सूत्रपात करने वाला वही पाखण्डी ब्राह्मण है। इसीलिए मैंने इस प्रकार के अशिष्ट शब्दों का प्रयोग किया कि वह गालियाँ खाकर गालियाँ बकने लगे और मैं उसे भरपूर पीट कर अपने दिल की आग बुझा सकूँ। पर निशाना ठीक बैठा नहीं। बातों में पूरी गरमी नहीं आ पाई। उसने कहा—ज़रा सँभल कर बातें करना सीखो।

मैंने कहा—सँभल कर बातें करना सीखूँ? और तुम्हारे लिए? चुपचाप सामने से हट जाओ, नहीं तो पुलिस के हवाले किए जाओगे; मैं जानता हूँ दिन-रात तुम कौन-कौन से काम किया करते हो! ख़बरदार, जो फिर कभी मैंने इस दरवाज़े पर तेरी सूरत देखी तो होश ठिकाने कर दूँगा।

पुलिस का नाम मैंने योंही ले लिया था। पर उसी भय से वह कुछ और न बोल सका। भीगी बिल्ली की तरह वहाँ से चुपचाप चला गया। उसे मालूम हो गया कि मैं उसकी सारी करतूतों से वाक़िफ़ हूँ। इस बात ने उसे और भी दहला दिया। पापी अपने पापों से नहीं, पापों की पोल खुलने से डरते हैं।

बाबू जी उसी तरह सिर झुकाए बैठे थे। मैंने अब अपने क्रोध के भावों को बलपूर्वक दबाते हुए, यथाशक्ति अपनी बातों में नम्रता लाते हुए, उनसे पूछा—आपको यह क्या सूझी?

बाबू जी ने कहा—आख़िर, घर-गिरस्ती सँभालने के लिए मैं दूसरा कौन सा उपाय करता?

"क्यों? मेरी माँ क्या मर गई थी?"

"मेरे लिए सभी मर गए।"

"तो आप ही क्यों जीते रहे? कहीं चुल्लू भर पानी नहीं मिला?"

बाबू जी ने सतेज होकर कहा—हट जाओ मेरे सामने से, नहीं तो अनर्थ कर डालूँगा। मुझे गालियाँ देने आए हो? तुमसे क्या मतलब? मेरा जो मन चाहेगा, करूँगा। किसी से कुछ कहने जाता हूँ? विवाह नहीं करता तो क्या संन्यासी बन कर घर-द्वार छोड़ देता?

"अच्छी बात है" कहकर मैंने दोनों हाथ जोड़ते हुए उनसे निवेदन किया—"मुझसे बड़ी भूल हो गई, क्षमा कीजिएगा। आपने बहुत ही अच्छा किया। पण्डित हरदयाल जीते रहेंगे तो आपको इस तरह के यश की कमी न रहेगी।"

"जब अपना आदमी दग़ा दे तो दूसरों की भी छाँह न पकड़ें, यह कैसे हो सकता है?" मेरे बाबू जी ने जवाब दिया—"हरदयाल की कृपा न होती तो आज अपने हाथ से भोजन बनाने का भी कष्ट दूर नहीं होता। तुमसे तो मेरे लिए वही अच्छा है, और कुछ नहीं तो अपने आदमी की तरह हमेशा हिला-मिला तो रहता है।"

बाबू जी की इस औंधी बुद्धि पर मुझे दया आ गई। मैं सचमुच रो पड़ा। उनसे केवल इतना ही कह कर चल दिया—भगवान् ही आपकी रक्षा करें।

वहाँ से चला तो, पर मेरे क़दम आगे नहीं बढ़ते थे। यही सोच रहा था कि किस तरह माँ के आगे मैं यह कठोर सत्य उपस्थित कर सकूँगा? किस तरह उसे बता सकूँगा कि सचमुच मेरे पचपन वर्ष के बूढ़े बाप ने एक बालिका के साथ ब्याह किया है? क्षोभ, ग्लानि, सन्ताप और रोष के मारे मैं व्याकुल हो उठा। उस समय यही इच्छा हुई कि अपने को किसी ऐसी जगह में जाकर छिपा दूँ, जहाँ मुझे कोई देख न सके! धरती के भीतर समा जाने की आवश्यकता जीवन में पहले-पहल उसी दिन हुई!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

माँ के पास पहुँच कर मैं कुछ बोल न सका। मुझे देखते ही वह सारी बातें समझ गई। उस समय उसके आँसू नहीं बरसे, एक अद्भुत् शान्ति और गम्भीरता की ज्योति से उसका समस्त मुख-मण्डल जगमगा उठा।

७

आख़िर वह दिन भी आ ही गया। मेरी माँ ने विमला के साथ मेरा ब्याह कर दिया। वह एक गर्ल्स कॉलेज की प्रधान अध्यापिका हो गई और मैं हो गया एक कॉलेज में अङ्गरेज़ी साहित्य का प्रधान प्रोफ़ेसर। बड़े सुख से समय बीतने लगा।

सुख की सारी महत्ता ही चली जाय, अगर उसके भीतर किसी दुख का प्रवेश न हो। हम लोगों के सुख में भी एक दुःख था। और वह यही कि कभी-कभी मेरी माँ बहुत ही उदास हो जाया करती थी। उसे रह-रह कर बाबू जी की दुरवस्था पर दया आती थी। मैं स्वयं कभी-कभी उनकी बात सोच कर बहुत ही विकल हो उठता था। मगर न मैं ही कुछ कर सकता था, न मेरी माँ ही।

इसी तरह दिन बीतते-बीतते समूचा साल ख़तम हो गया। एक दिन मैं कॉलेज जाने की तैयारी कर ही रहा था कि इतने में माँ ने आकर कहा—उधर से एक आदमी आया था, सुनती हूँ, बड़ी-बड़ी बातें हो गई हैं। ज़रा देख आओगे?

मैंने घबरा कर पूछा—किधर से आदमी आया था? बाबू जी के मुहल्ले की ओर से?

"हाँ, सुनती हूँ, तुम्हारी नई अम्माँ उनके घर से निकल भागीं और वे खाट पर पड़े हैं।"

मैंने कलेजा थाम कर पूछा—यह कब?

माँ ने उतावली के साथ कहा—जाओ, ज़रा पता तो लगाओ कि बात क्या है।

मैं उसी दम बाबू जी के घर पहुँचा। वहाँ जाकर देखा तो वे हैज़े का शिकार बन कर बेतरह तड़प रहे हैं। उनके चारों ओर गन्दगी पड़ी थी। मालूम होता था, वे रात ही से इसी तरह पड़े हुए थे। कोई देखने-भालने वाला नहीं, कोई सेवा-शुश्रूषा करने वाला नहीं। मैंने जल्दी से डॉक्टर बुलाया और उनकी चिकित्सा शुरू करवाई। स्वयं उनके कमरे और बिस्तरे की गन्दगी धोई। उनकी दवा-दारू का पूरा प्रबन्ध करके मैं उन्हीं के पास बैठ गया। दिन भर मैं उनकी सेवा में लगा रहा। सन्ध्या-समय जब मेरी माँ और विमला पहुँच गईं, तब मैं इस बात का पता लगाने चला कि आख़िर वे (मेरी नई अम्माँ) गईं कहाँ। उनका मायका वहाँ से दो-तीन मील पर था। वहाँ से भी आदमी लौट आया और बोला कि वे वहाँ नहीं गई हैं।

अब मेरे हृदय में धड़कन शुरू हो गई। मैं समझ गया कि वे केवल बाबू जी की बीमारी के ही डर से नहीं भागी हैं, उनके भागने का मतलब कुछ और है। मैंने मुहल्ले में घूम कर पता लगाया तो मालूम हुआ कि मेरे बाबू जी के परम प्रिय मित्र पं० हरदयाल चौबे भी ग़ायब हैं। न जानें क्यों मुझे दृढ़ विश्वास हो गया कि इस शैतानी का कारण भी वही है! और सचमुच बात भी ठीक निकली। उसी दिन से किसी ने उनकी सूरत नहीं देखी और न अभी तक मेरी उन नई अम्माँ का ही पता चला।

दो दिन तक तो बाबू जी में बातें करने की ताक़त नहीं थी। तीसरे दिन उन्होंने धीरे-धीरे बोलना शुरू किया। उनकी बातों से मालूम होता था कि वे भीतर ही भीतर अपनी करनी पर बहुत ही लज्जित और दुखित थे।

मेरी माँ उनकी बातों का कोई जवाब नहीं देती थी। उनका काम मौन-भाव से दिन-रात सेवा करना था। मैं। कभी-कभी उनसे बातचीत कर लेता था और विमला उनके पास से कभी हटती ही नहीं थी।

भरपूर सेवा-शुश्रूषा करते हुए पूरे दस दिन बीते, तब कहीं जाकर बाबू जी खाट पर से उठे।

जब वे चलने-फिरने लगे, तब एक-एक करके हम लोग अपनी जगह लौट गए। जाते समय बाबू जी ने किसी से भी कुछ नहीं कहा। बीमारी से उठने के बाद वे बहुत ही गम्भीर हो गए थे। आपदाओं की ज्वाला मनुष्य के हृदय का सारा मल जला देती है। बाबू जी को देखने से यही मालूम होता था।

८

वहाँ से लौटने के दो ही तीन दिन बाद क़रीब दस बजे का वक़्त था। रविवार के कारण छुट्टी थी ही। मैं निश्चिन्त होकर विमला के साथ बातें कर रहा था।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसी समय सहसा बाबू जी की आवाज़ सुन कर चौंक उठा! वे कातर वाणी में किसी से कह रहे थे—मेरा अपराध क्षमा करो, मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया है।

कमरे से झाँक कर देखा तो बाहर बरामदे में बाबू जी मेरी माँ के चरणों पर झुके हुए थे और माँ उन्हें दोनों हाथों से पकड़ कर उठा रही थी। मैं उसी जगह खड़ा रह गया, आगे नहीं बढ़ा।

बाबू जी ने फिर कहा—मुझे क्षमा न करोगी?

इस बार मेरी माँ उनके चरणों पर गिर पड़ी और रोती हुई बोली—माफ़ी तो मुझे माँगनी है। मैंने तुम्हें न जाने कितने कष्ट पहुँचाए।

बाबू जी ने मेरी माँ को उठाते हुए कहा—तुमने मेरी आँखें खोल दीं, मैं अन्धा हो गया था!

माँ ने कहा—बीती बातें भूल जाओ। मैं तुम्हारी दासी हूँ, कहो क्या आज्ञा देते हो?

"हिम्मत तो नहीं होती" बाबू जी ने कहा—"मगर मान जाओ, तो यही कहता हूँ कि अब सब लोग वहीं चल कर रहो।"

"यह बात अपने बेटे-पतोहू से कहो"—कह कर माँ उन्हें मेरे कमरे की ओर लाने लगी। मेरी छाती धक्-धक् करने लगी।

बाबू जी लपकते हुए आकर मेरे गले से लग गए और स्नेह-गद्गद स्वर में बोले—बेटा! बहू जी से कहो, मुझे माफ़ कर दें—मैं तुमसे नहीं, उन्हीं से माफ़ी माँगना चाहता हूँ।

इसी समय विमला भी निकल आई और अपने ससुर के पैरों पर गिर पड़ी। थोड़ी देर के लिए वहाँ स्नेह और करुणा की धारा उमड़ पड़ी। वह धारा कितनी निर्मल थी, कितनी पवित्र!

बाबू जी ने आनन्द-गद्गद स्वर में कहा—इस बुड्ढे को कुछ खिला दो बहू! आज दो शाम से कुछ खाने को नहीं मिला है।

विमला दौड़ कर रसोई-घर में चली गई। थोड़ी ही देर में हम दोनों भी वहीं जाकर बैठ गए। बहुत दिनों बाद बाबू जी के साथ बैठ कर भोजन करने का सौभाग्य मिला था। मैं आनन्द-विभोर हो गया।

मेरी माँ की ख़ुशी का ठिकाना नहीं था। उसने बाबू जी से दिल्लगी करते हुए कहा—देखा, अन्त में किसकी विजय हुई!

बाबू जी ने जवाब दिया—लेकिन सच कहना, तुम्हारी विजय भी क्या उतनी ही मधुर है जितनी मेरी यह पराजय?

हम सब लोग एक साथ ही हँस पड़े।

दरिद्रता

[रचयिता—श्री० गुरुसहाय जी 'विरक्त']

(१)

शोक-सन्ताप की सगी नानी,
दासता की प्रसिद्ध है माता।
निन्द्य कुविचार की बहिन है यह,
छल-कपट से घनिष्ठ है नाता॥

(२)

दोष हैं जो मनुष्य-जीवन के,
खान सबकी दरिद्रता ही है।
दुःख, अज्ञान या पतन, अवनति,
जान सब की दरिद्रता ही है॥

(३)

वास इसका जहाँ कहीं होता;
ह्रास होते न देर लगती है।
मान-सम्मान भस्म होता सब;
आग इसकी जहाँ सुलगती है॥

(४)

मोड़ कर मुँह सदाचरण से यह,
पाठ कुविचार का पढ़ाती है।
शीश पर विज्ञ सृष्टि-रत्नों के—
भूत धूर्त्तत्व का चढ़ाती है॥

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

(५)

दास इसने बना लिया जिसको,
लोक-परलोक सब नसाती है।
हा ! बना के ग़ुलाम ग़ैरों का;
नाम संसार से मिटाती है॥

(६)

नाथ ! जिसको किया धनी तुमने,
है उसी का सफल यहाँ जीवन।
किन्तु उसका कहाँ ठिकाना है—
जो कि संसार में हुआ निर्धन !!

(७)

जन्म लेकर निधन पिता के घर,
उच्च शिक्षा न पुत्र पाता है।
यों अपढ़ मूर्ख बन भला जग में,
ठोकरें वह कहाँ न खाता है?

(८)

पास जिसके न एक पाई हो,
व्योंत वाणिज्य का करे कैसे?
हाथ पर हाथ धर अपाहिज-सा,
ज़िन्दगी के न दिन भरे कैसे?

(९)

हर बना, तो फटा पुराना पुर,
पुर लिया तो बिगड़ गई रस्सी।
दीन जन किस तरह करें खेती,
एक ही बैल में लगें अस्सी?

(१०)

कौन सा काम कर कमाए धन,
गाँठ में है टका नहीं जिसके।
क्यों न बैठा रहे टका सा वह,
क्यों न मर जाय पड़ियाँ घिस के !!

(११)

दीन जब पेट से विवश होते,
दासता दूसरों की करते हैं।
लोटते पैर पर हिलाते दुम,
श्वान-सेवा में जन्म भरते हैं !!

(१२)

है कहाँ पर गुज़र ग़रीबों का,
स्वामि-कटु-वाक्य तोड़ते मन हैं।
निन्द्य से निन्द्य काम करने में,
हो विवश दीन जोड़ते मन हैं॥

(१३)

हैं चुराते कहीं किसी का धन,
हैं कहीं हाय ! प्राण ही हरते।
अन्न बिन हो रहे क्षुधातुर जो—
कौन सा पाप नर नहीं करते?

(१४)

रोटियों पर कहीं विधर्मी हो,
वंश का नाम ही मिटाते हैं।
पेट की आग शान्त करने को—
पुत्र तक हाय ! भून खाते हैं !!

(१५)

नित्य ही यों अधर्म कर-कर के,
पाप का हैं घड़ा भरा करते।
पेट ख़ाली रहे न, इस धुन में—
कब किसी पाप-कर्म से डरते?

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री महालक्ष्मी

और

वसन्त-विहार

के जो सर्वप्रिय सुन्दर तिरङ्गे चित्र 'चाँद' में प्रकाशित हो चुके हैं, ग्राहकों के अनुरोध से इन्हें बड़े साइज़ में भी छपाया गया है। इन चित्रों का साइज़—

१५×२०

है। ८० पाउण्ड के बढ़िया काग़ज़ पर छपे हैं। मूल्य फ़ी कॉपी ।।।) ; डाक-व्यय १ से ६ कॉपी तक ।।।) थोक व्यापारियों के लिए ख़ास रियायत की जायगी। चित्र इतने सुन्दर छपे हैं कि फ्रेम लगा, जिस कमरे में लगा दीजिए, उसी की शोभा बढ़ जायगी।

मँगाने का पता :—

'चाँद' कार्यालय, २८ एल्गिन रोड,

इलाहाबाद

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta

प्रकाशित हो गया ! प्रकाशित हो गया !!

हृदय में एक बार ही क्रान्ति उत्पन्न करने वाला मौलिक सामाजिक उपन्यास

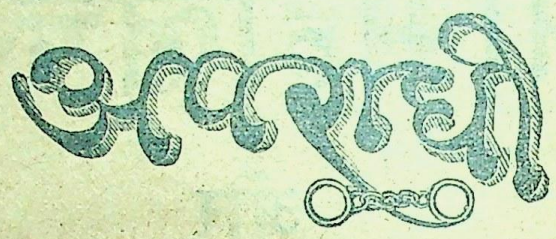

[ले० श्री० यदुनन्दनप्रसाद जी श्रीवास्तव]

G. P. Srivastava, B. A., LL. B., *writes from Gonda.*

I happened to read your publication—Sri Jadunandan Prasad Srivastava's "APRADHI." Though a fiction, yet it is teeming with bitter realities. The author has cleverly depicted 'Human frailties' 'Social weaknesses' & 'Circumstantial effects' in their true colour with touches of psychological truths, which are of greater importance indeed.

सच जानिए, अपराधी बड़ा क्रान्तिकारी उपन्यास है। इसे पढ़कर आप एक बार टॉल्सटॉय के "रिज़रेक्शन" विक्टर ह्यूगो के "लॉ मिज़रेबुल" इबसन के "डॉल्स हाउस" गोस्ट और ब्रियो का "डैमेज्ड गुड्स" या "मेटरनिटी" के आनन्द का अनुभव करेंगे। किसी अच्छे उपन्यास की उत्तमता पात्रों के चरित्र-चित्रण पर सर्वथा अवलम्बित होती है, उपन्यास नहीं,

यह सामाजिक कुरीतियों और अत्याचारों का जनाज़ा है !!

सच्चरित्र, ईश्वर-भक्त विधवा बालिका सरला का आदर्श-जीवन, उसकी पारलौकिक तल्लीनता, बाद को व्यभिचारी पुरुषों की कुदृष्टि, सरला का बलपूर्वक पतित किया जाना, अन्त को उसका वेश्या हो जाना, यह सब ऐसे दृश्य समुपस्थित किए गए हैं, जिन्हें पढ़कर आँखों से आँसुओं की धारा बह निकलती है। इधर सरला के वृद्ध चचा का षोड़शी बालिका गिरिजा से विवाह कर नरकलोक की यात्रा करना और गिरिजा का स्वाभाविक पतन के गह्वर में गिरना, कम करुणाजनक दृश्य नहीं है। रमानाथ नामक एक समाज-सुधारक नवयुवक के प्रयत्न पढ़कर नवयुवकों तथा नवयुवतियों की छाती एक बार फूल उठेगी !! प्रत्येक उपन्यास-प्रेमी तथा समाज-सुधार के पक्षपाती को यह पुस्तक पढ़कर लाभ उठाना चाहिए। छपाई-सफ़ाई सुन्दर, समस्त कपड़े की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २॥) रु०; स्थायी तथा 'चाँद' के ग्राहकों से १॥।=); डाक-व्यय अलग पुस्तक पर रङ्गीन Protecting Cover भी चढ़ा है !

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सफल माता

[लेखिका—श्रीमती सुशीला देवी जी निगम, बी० ए०]

आज हमारे अभागे देश में शिशुओं की मृत्यु-संख्या अपनी चरम-सीमा तक पहुँच चुकी है। अन्य कारणों में माताओं की अनभिज्ञता, शिक्षा की कमी तथा शिशु-पालन-सम्बन्धी साहित्य का अभाव प्रमुख कारण हैं।

प्रस्तुत पुस्तक भारतीय की गृहों एक मात्र मङ्गल-कामना से प्रेरित होकर सैकड़ों अङ्गरेज़ी, हिन्दी, बङ्गला, उर्दू, मराठी, गुजराती तथा फ्रेञ्च पुस्तकों को पढ़कर लिखी गई है, कैसी भी अनपढ़ माता एक बार इस पुस्तक को पढ़कर अपना उत्तर-दायित्व समझ सकती है।

गर्भावस्था से लेकर ९-१० वर्ष के बालक-बालिकाओं की देख-भाल किस तरह करनी चाहिए, उन्हें बीमारियों से किस प्रकार बचाया जा सकता है, बिना कष्ट हुए दाँत किस प्रकार निकल सकते हैं, रोग होने पर क्या और किस प्रकार इलाज और शुश्रूषा करनी चाहिए, बालकों को कैसे वस्त्र पहनाने चाहिए, उन्हें कैसा, कितना और कब आहार देना चाहिए, दूध किस प्रकार पिलाना चाहिए आदि-आदि प्रत्येक आवश्यक बातों पर बहुत उत्तमता और सरल बोल-चाल की भाषा में प्रकाश डाला गया है।

'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

यदि आपको अपने बच्चे प्यारे हैं, यदि आप उन्हें रोग और मृत्यु से बचाना चाहते हैं, तो इस पुस्तक को स्वयं पढ़िए और गृह देवियों को अवश्य पढ़ाइए, परमात्मा आपका मङ्गल करेंगे।

सुन्दर छपी हुई सचित्र Protecting Cover सहित सजिल्द पुस्तक का मूल्य लागत-मात्र केवल २) रु०; 'चाँद' तथा पुस्तक-माला के स्थायी ग्राहकों से १॥) मात्र!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शान्ता

इस पुस्तक में देश-भक्ति और समाज-सेवा का सजीव वर्णन किया गया है। देश की वर्त्तमान अवस्था में हमें कौन-कौन सामाजिक सुधार करने की परमावश्यकता है; और वे सुधार किस प्रकार किए जा सकते हैं, आदि आवश्यक एवं उपयोगी विषयों का लेखक ने बड़ी योग्यता के साथ दिग्दर्शन कराया है। शान्ता और गङ्गाराम का शुद्ध और आदर्श-प्रेम देखकर हृदय गद्गद हो जाता है। साथ ही साथ हिन्दू-समाज के अत्याचार और षड्यन्त्र से शान्ता का उद्धार देखकर उसके साहस, धैर्य और स्वार्थ-त्याग की प्रशंसा करते ही बनती है। मूल्य केवल लागत-मात्र ॥) बारह आने है; स्थायी ग्राहकों के लिए ॥-); पुस्तक दूसरी बार छपकर तैयार है।

घरेलू चिकित्सा

[ले० अनेक सुविख्यात डॉक्टर, वैद्य और हकीम]

'चाँद' के प्रत्येक अङ्क में बड़े-बड़े नामी डॉक्टरों, वैद्यों और अनुभवी बड़े-बूढ़ों द्वारा लिखे गए हज़ारों अनमोल नुस्ख़े प्रकाशित हुए हैं, जिनसे सर्व-साधारण का बहुत-कुछ मङ्गल हुआ है, और जनता ने इन नुस्ख़ों की सचाई तथा इनके प्रयोग से होने वाले लाभ की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। इनके द्वारा आए-दिन डॉक्टरों की भेंट किए जाने वाले सैकड़ों रुपए बचाए जा सकते हैं। इस महत्वपूर्ण पुस्तक की एक प्रति प्रत्येक सद्गृहस्थ को अपने यहाँ रखनी चाहिए। छपाई-सफ़ाई अत्युत्तम और सुन्दर। मोटे चिकने काग़ज़ पर छपी हुई पुस्तक का मूल्य केवल ॥) रक्खा गया है। स्थायी ग्राहकों से ॥-) मात्र!

स्थायी ग्राहकों को हमारे यहाँ की प्रकाशित सभी पुस्तकें, केवल प्रचार की दृष्टि से, पौने मूल्य में ही दी जाती हैं, इसे स्मरण रखिए!

उमासुन्दरी

[ले० श्रीमती शैलकुमारी देवी]

इस पुस्तक में पुरुष-समाज की विषय-वासना, अन्याय तथा भारतीय रमणियों के स्वार्थ-त्याग और पातिव्रत्य का ऐसा सुन्दर और मनोहर वर्णन किया गया है कि पढ़ते ही बनता है। सुन्दरी सुशीला का अपने पति सतीश पर अगाध प्रेम एवं विश्वास, उसके विपरीत सतीश बाबू का उमासुन्दरी नामक युवती पर मुग्ध हो जाना; उमासुन्दरी का अनुचित सम्बन्ध होते हुए भी सतीश को कुमार्ग से बचाना और उपदेश देकर उसे सन्मार्ग पर लाना आदि सुन्दर और शिक्षाप्रद घटनाओं को पढ़कर हृदय उमड़ पड़ता है। इतना ही नहीं, इसमें हिन्दू-समाज की स्वार्थपरता, काम-लोलुपता, विषय-वासना तथा अनेक कुरीतियों का हृदय-विदारक वर्णन किया गया है। छपाई-सफ़ाई सब सुन्दर है। मूल्य केवल ॥) आने है; स्थायी ग्राहकों के लिए ॥-); दूसरी बार पुस्तक छपकर तैयार है!

गौरी-शङ्कर

आदर्श-भावों से भरा हुआ यह सामाजिक उपन्यास है। शङ्कर के प्रति गौरी का आदर्श-प्रेम सर्वथा प्रशंसनीय है। बालिका गौरी को धूर्तों ने किस प्रकार तङ्ग किया, बेचारी बालिका ने किस प्रकार कष्टों को चीरकर अपना मार्ग साफ़ किया, अन्त में चन्द्रकला नाम की एक वेश्या ने उसकी कैसी सच्ची सहायता की और उसका विवाह अन्त में शङ्कर के साथ कराया। यह सब बातें ऐसी हैं, जिनसे भारतीय स्त्री-समाज का मुखोज्ज्वल होता है। यह उपन्यास निश्चय ही समाज में एक आदर्श उपस्थित करेगा। छपाई-सफ़ाई सभी बहुत साफ़ और सुन्दर है। एक बार अवश्य पढ़िए। पुस्तक दूसरी बार छपकर तैयार है। मूल्य केवल ॥); स्थायी ग्राहकों से ॥-) मात्र!

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दाम्पत्य जीवन

[लेखिका—श्रीमती सुशीलादेवी जी निगम, बी० ए०]

जिन महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डाला गया है, उनमें से कुछ ये हैं :—

(१) सहगमन (२) ब्रह्मचर्य (३) विवाह (४) आदर्श-विवाह (५) गर्भाशय में जल-सञ्चय (६) योनि-प्रदाह (७) योनि की खुजली (८) स्वप्न-दोष (९) डिम्ब-कोष के रोग (१०) कामोन्माद (११) मूत्राशय (१२) जननेन्द्रिय (१३) नपुंसकत्व (१४) अति-मैथुन (१५) शयन-गृह कैसा होना चाहिए ? (१६) सन्तान-बुद्धि-निग्रह (१७) गर्भ के पूर्व माता-पिता का प्रभाव (१८) मनचाही सन्तान उत्पन्न करना (१९) गर्भ पर तात्कालिक परिस्थिति का असर (२०) गर्भ के समय दम्पति का व्यवहार (२१) यौवन के उतार पर स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध (२२) रबर-कैप का प्रयोग (२३) माता का उत्तरदायित्व आदि-आदि सैकड़ों महत्वपूर्ण विषयों पर—उन विषयों पर, जिनके सम्बन्ध में जानकारी न होने के कारण हज़ारों युवक-युवतियाँ बुरी सोसाइटी में पड़कर अपना जीवन नष्ट कर लेती हैं—उन महत्वपूर्ण विषयों पर, जिनकी अनभिज्ञता के कारण अधिकांश भारतीय गृह नरक की अग्नि में जल रहे हैं; उन महत्वपूर्ण विषयों पर, जिनको न जानने के कारण स्त्री पुरुष से और पुरुष स्त्री से असन्तुष्ट रहते हैं—भरपूर प्रकाश डाला गया है। हमें आशा है, देशवासी इस महत्वपूर्ण पुस्तक से लाभ उठाएँगे। पृष्ठ-संख्या लगभग ३५०, तिरङ्गे Protecting Cover सहित सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २॥) रु०; 'चाँद' तथा पुस्तक-माला के स्थायी ग्राहकों से १॥।=) मात्र! पुस्तक सचित्र है !!

☞ केवल विवाहित स्त्री-पुरुष ही पुस्तक मँगावें !

चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

इस पुस्तक के सम्बन्ध में प्रकाशक के नाते हम केवल इतना ही कहना काफ़ी समझते हैं कि ऐसे नाज़ुक विषय पर इतनी सुन्दर, सरल और प्रामाणिक पुस्तक हिन्दी में अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। इसकी सुयोग्य लेखिका ने काम-विज्ञान (Sexual Science) संबन्धी अनेक अङ्गरेज़ी, हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी तथा गुजराती भाषा की पुस्तकें मनन करके इस कार्य में हाथ लगाया है। जिन अनेक पुस्तकों से सहायता ली गई है, उनमें से कुछ मूल्यवान् और प्रामाणिक पुस्तकों के नाम ये हैं :—

(1) Motherhood and the Relationship of the Sexes by *C. Gasquoine Hartley* (2) Confidential Talks with Husband & Wife by *Layman B. Sperry* (3) Youth's secret conflict by *Walter M. Gallichan* (4) The Threshold of Motherhood by *R. Douglas Howat* (5) Radiant Motherhood (6) Married Love and (7) Wise Parenthood by *Dr. Marie Stopes*

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जननी जीवन

स्त्रियों के लिए अनमोल पुस्तक

पुस्तक की उपयोगिता नाम ही से प्रकट है। इसके सुयोग्य लेखक ने यह पुस्तक लिखकर महिला-जाति के साथ जो उपकार किया है, वह भारतीय महिलाएँ सदा स्मरण रक्खेंगी। घर-गृहस्थी से सम्बन्ध रखने वाली प्रायः प्रत्येक बातों का वर्णन पति-पत्नी के सम्वाद-रूप में किया गया है। लेखक की इस दूरदर्शिता से पुस्तक इतनी रोचक हो गई है कि इसे एक बार उठाकर छोड़ने की इच्छा नहीं होती। पुस्तक पढ़ने से "गागर में सागर" वाली लोकोक्ति का परिचय मिलता है।

इस छोटी-सी सूची को देखकर ही आप पुस्तक की उपादेयता का अनुमान लगा सकते हैं। इस पुस्तक की एक प्रति प्रत्येक सद्गृहस्थ के घर में होनी चाहिए। साफ़ और सुन्दर मोटे काग़ज़ पर छपी हुई इस परमोपयोगी सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १।); स्थायी ग्राहकों से ।।≡) मात्र! पुस्तक तीसरी बार छपकर तैयार है!

'चाँद' कार्यालय,
इलाहाबाद

६,००० प्रतियाँ हाथोंहाथ बिक चुकी हैं!

इस छोटी सी पुस्तक में कुल २० अध्याय हैं, जिनके शीर्षक ये हैं :—

(१) अच्छी माता
(२) आलस्य और विलासिता
(३) परिश्रम
(४) प्रसूतिका स्त्री का भोजन
(५) आमोद-प्रमोद
(६) माता और धाय
(७) बच्चों को दूध पिलाना
(८) दूध छुड़ाना
(९) गर्भवती या भावी माता
(१०) दूध के विषय में माता की सावधानी
(११) मल-मूत्र के विषय में माता की जानकारी
(१२) बच्चों की नींद
(१३) शिशु-पालन
(१४) पुत्र और कन्या के साथ माता का सम्बन्ध
(१५) माता का स्नेह
(१६) माता का सांसारिक ज्ञान
(१७) आदर्श माता
(१८) सन्तान को माता का शिक्षा-दान
(१९) माता की सेवा-शुश्रूषा
(२०) माता की पूजा

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

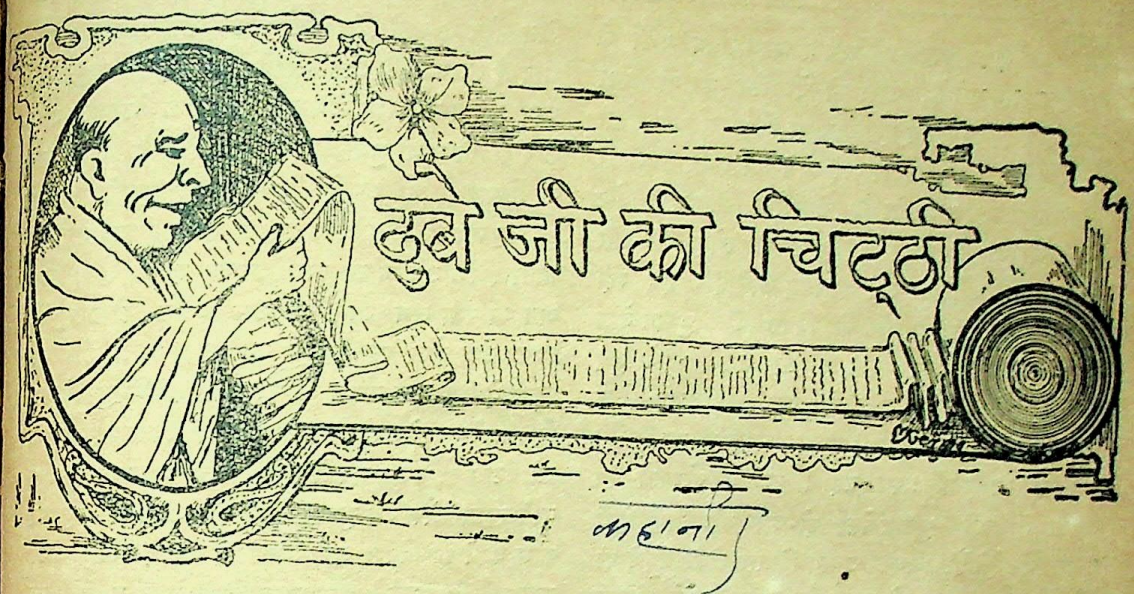

अजी सम्पादक जी महाराज,

जयराम जी की !

क्षमा कीजिएगा, इस बार चिट्ठी भेजने में कुछ विलम्ब हो गया। इसका कारण मेरी सुस्ती या आलस्य नहीं है। बात यह थी कि मैं म्यूनिसिपल-चुनाव की चपेट में आ गया था। यद्यपि इस बार मैंने यह निश्चय कर लिया था कि इस बला से बचा रहूँगा—न किसी का समर्थन करूँगा न किसी का विरोध, परन्तु यार लोगों को यह कब सहन हो सकता था। वे ऐसे पञ्जे झाड़ के पीछे पड़े कि पिण्ड छुड़ाना असम्भव हो गया। भाई, कहने को तो चुनाव जनता के वोट पर होता है; पर जनता सच्चे और शुद्ध हृदय से किसे वोट देती है, इसका पता लगाना घास के गट्ठे में से सूई ढूँढ़ निकालने के समान है। ओफ़ ओह ! कितनी धाँधली होती है, कितना अनुचित ढङ्ग अख़्तियार किया जाता है कि मैं बयान नहीं कर सकता। आपने राजनैतिक नेता, धार्मिक नेता इत्यादि का नाम तो सुना होगा, पर अब कुछ दिनों से १००८ वोटयुक्त (वोट—श्री) श्रीमान् चुनाव-नेता का प्रादुर्भाव हुआ है। यह चुनाव-नेता वे लोग हैं, जिनकी दाल राजनीति में नहीं गलती, जो अन्य किसी बात के नेता बनने की योग्यता नहीं रखते—या फिर जिन्हें केवल उन लोगों को चुनवाना होता है, जो उनके मित्र हैं और उनसे वादा करा लेते हैं कि वह अमुक पार्टी की नीति के अनुसार काम करेंगे। ऐसे नेताओं का नेतापन केवल चुनाव के समय में चमकता है। कुछ लोग ऐसे हैं जो केवल इसलिए चुनाव-नेता बनने का प्रयत्न करते हैं, जिसमें उम्मदीवार उनकी ख़ुशामद करें—उनके यहाँ ज़रा चहल-पहल रहे—चार आदमी आते-जाते रहें। लोग समझें कि हाँ यह भी कोई आदमी हैं। और क्या, यह ठाठ हैं। ये लोग ठेके पर चुनाव लड़ते हैं। कैसा ही उम्मीदवार हो, किसी भी योग्यता का हो—किसी चुनाव-नेता को ठेका मिल जाय, बस समझ लीजिए कि वह रुपए में बारह आने भर हो गया। कुछ लोग चुनाव के कार्य के विशेषज्ञ समझे जाते हैं और इस कार्य के लिए दूर-दूर तक बुलाए जाते हैं। इन लोगों ने चुनाव लड़ना भी एक कला बना रक्खा है। जी ! मामूली बात नहीं है। कुछ दिनों में कदाचित् इस कला पर पुस्तकें भी लिखी जायँ ! यद्यपि यह बात विशेषज्ञों के लिए कुछ हानिकारक होगी ; क्योंकि उनके रहस्यों का उद्घाटन होगा।

अब ये विशेषज्ञ लोग किस प्रकार चुनाव लड़ते हैं, इसका भी कुछ वर्णन सुन लीजिए। यद्यपि मैं इन लोगों के पूरे हथकण्डे नहीं समझ पाया हूँ, परन्तु जहाँ तक मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ है उतना बताता हूँ। सब से पहले चुनाव-नेता की दृष्टि चेयरमैन के चुनाव पर जाती है। इस बार कौन चेयरमैन होना चाहिए।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिस व्यक्ति को वह अपने अथवा अपनी प्रिय पार्टी के अनुकूल समझते हैं, उसी को चेयरमैन बनाना स्थिर करते हैं। इसके पश्चात् इस बात का सिंहावलोकन होता है कि जितने उम्मीदवार खड़े होने वाले हैं, उनमें से कौन-कौन अमुक व्यक्ति की चेयरमैनी के पक्ष में वोट देगा। जो व्यक्ति पक्ष में होते हैं, उनको छोड़ कर और अन्य सब उम्मीदवार रद्दी कर दिए जाते हैं। इन रद्दी किए हुए उम्मीदवारों के विपक्ष में चुनाव-नेता ऐसा उम्मीदवार खड़ा करता है, जो उनके सोचे हुए चेयरमैन के पक्ष में वोट दे। यह उम्मीदवार किस योग्यता का है, इस बात की परवा कम की जाती है। योग्यता का कोई प्रश्न नहीं। क्योंकि योग्यता-हीन व्यक्ति में भी चुनाव-नेता दो-चार योग्यताएँ ऐसी उत्पन्न कर देते हैं, जिनका जवाब चिराग़ लेकर ढूँढ़ने पर भी मिलना असम्भव हो जाता है। और अपने विपक्षी योग्य से योग्य व्यक्ति में भी दो-चार बातें ऐसी ढूँढ़ निकालते हैं कि उनसे अधिक बुरी बात की मिसाल ढूँढ़ निकालना टेढ़ी खीर हो जाती है। उम्मीदवार स्थिर हो जाने पर उनके पक्ष में जनता की सहानुभूति प्राप्त करने और विपक्षी उम्मीदवार के प्रति जनता के हृदय में विरोध-भाव उत्पन्न करने की चेष्टा की जाती है। इस कार्य में ही सारी कला अन्तर्हित है। पक्ष के उम्मीदवारों के समस्त पुण्य-कार्य ढूँढ़-ढूँढ़ कर निकाले जाते हैं और उन्हें जनता के सम्मुख रक्खा जाता है, और विपक्षी उम्मीदवार के सारी आयु के पापों की सूची तैयार की जाती है और उन्हें जनता के कानों तक पहुँचाया जाता है। ये बातें जैसी की तैसी नहीं, वरन् यथेष्ट वृहदाकार (Enlarged) बना कर रक्खी जाती हैं। इस प्रकार चुनाव, जनता का चुनाव नहीं, वरन् चुनाव-नेताओं का चुनाव बन जाता है। जनता बेचारी चुनाव-नेताओं के अनुसार कार्य करने पर मजबूर की जाती है। All is fair in love and war की अङ्गरेज़ी कहावत के अनुसार चुनाव-नेता कार्य करते हैं। झूठे वादे करना, सुबह जो कहा है, शाम को उसके प्रतिकूल हो जाना, किसी से कुछ कहना और किसी से कुछ, अन्त तक लोगों को भ्रम में डाले रहना, झूठा प्रचार करना, उम्मीदवारों को बदनाम करना, उम्मीदवारों के पक्ष अथवा विपक्ष में नाजायज़ दबाव डलवाना इत्यादि कोई ऐसा काम नहीं है, जो ये नेता लोग न करते हों। कोई वोटर श्याम को अच्छा आदमी समझता है और उसको वोट देना चाहता है, परन्तु चुनाव-नेता राम के पक्ष में हैं तो उक्त वोटर को श्याम के पापों की गाथा सुनाई जाती है और राम के पुण्यों का हिसाब-किताब। यदि वोटर महाशय इससे राह पर आ गए तब तो ठीक, अन्यथा इस बात का पता लगाया जाता है कि उक्त वोटर पर किसका दबाव है। इस बात का पता लग जाने पर उस व्यक्ति को क़ाबू में लाकर उक्त वोटर पर दबाव डलवाया जाता है। इस प्रकार ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी जाती है कि चुनाव का दिन आने तक बेचारा वोटर अपनी सारी अक़्ल और समझ खो बैठता है, उसे अपनी बुद्धि और समझ पर विश्वास नहीं रहता और वह चुनाव-नेता की नीति के अनुसार काम करने पर विवश हो जाता है। यदि कोई वोटर कहता है कि हम तो अमुक व्यक्ति को वोट देने का वादा कर चुके हैं, तो चुनाव-नेता या उनका कोई अनुचर उस वोटर को यह सुझाता है कि ऐसे वादे का पूरा करना आवश्यक नहीं है। चुनाव में वादों और वचनों का कोई मूल्य नहीं। यदि किसी के वचन या वादे का मूल्य है तो वह केवल चुनाव-नेता या उनके पक्ष वालों का। उनके वादे—यदि उनका पूरा करना ठीक समझा जाता है—पत्थर की लीक हैं। वे कैसे टाले जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त यदि कोई वचन देता है तो वह उसी प्रकार मूल्यहीन है, जिस प्रकार कि एक बच्चे की बातें होती हैं।

किसी बात को उलट-पलट कर देना चुनाव-नेता के बाएँ हाथ का खेल है। कल शाम तक जो उम्मीदवार बड़ा अच्छा था, वह यदि चुनाव-नेता चाहता है, तो दूसरे दिन सुबह से ही बड़ा ख़राब आदमी बन जाता है!

कल तक जिसकी प्रशंसा के पुल बाँधे जाते थे, आज उसकी बुराइयों के खाते खोले जा रहे हैं। कल शाम तक जिसने समस्त आयु अच्छे ही अच्छे काम किए, आज उसने अपनी उम्र में एक भी शुभ कार्य नहीं किया। अथवा कल तक जो बड़ा ख़राब आदमी था, आज वह भलाई की मूर्ति हो जाता है। ये सब कार्य ज़बानी प्रचार-कार्य अथवा नोटिसों और पर्चों के द्वारा होते हैं। और आनन्द यह है कि गन्दी बातों से श्रीमान् नेता जी महाराज अलग रहते हैं। कल तक एक आदमी जिसकी

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रशंसा कर रहा था, वह चुप कर दिया जाता है और एक दूसरा आदमी खड़ा कर दिया जाता है, जो उस आदमी की बुराइयों का बखान करना आरम्भ कर देता है। जनता बेचारी कल तक जिसकी तारीफ़ें सुन रही थी, आज उसकी बुराइयाँ सुन कर अपनी बुद्धि खो बैठती है। चुनाव की भाषा में इसका नाम हवा बाँधना और हवा बिगाड़ना है! तारीफ़ें करके हवा बाँधना, बुराइयाँ करके हवा बिगाड़ना, यही इसका अर्थ है। जनता अधिकतर भेड़ियाधसान की प्रकृति की होती है। दस आदमी जिसे अच्छा कहने लगें उसे वह भी अच्छा समझने पर मजबूर होती है, और बुरा कहते हैं तो बुरा। इस कार्य के लिए ऐसे-ऐसे गन्दे और अश्लील नोटिस निकाले जाते हैं कि देखकर घृणा होती है। और तारीफ़ यह है कि चुनाव-नेता महोदय इस गन्दगी के मध्य में उसी प्रकार रहते हैं, जिस प्रकार जल में कमल! क्या मजाल जो उनकी ओर कोई उँगली उठा दे। यदि कोई कहता भी है कि अमुक नोटिस बड़ा गन्दा निकला तो नेता महाशय मुँह बना कर कहते हैं—"वाकई बड़ा गन्दा निकला। क्या करें, अमुक व्यक्ति यह सब कर रहा है, हमारे समझाने से मानता नहीं।" चलिए, नेता महोदय तो दूध के धोए बन कर अलग होगए। हालाँकि होता सब उन्हीं के इशारे पर है।

वोट पड़ने के दिन भी इन नेताओं की कला देखने योग्य होती है। जिस व्यक्ति को मरे वर्ष भर हो चुका है, उसका वोट डलवा देना इनके बाएँ हाथ का खेल है। एक ही व्यक्ति से तीन-तीन, चार-चार बार वोट डलवा देना इनके लिए साधारण बात है। अपने ही किसी गुर्गे द्वारा विपक्षी के पक्ष में जाली वोट डलवा कर उसे पकड़वा देना और इस प्रकार विपक्षी को बदनाम कर देना अथवा चुनाव-भाषा में 'हवा बिगाड़ देना' इनकी कला का एक बहुत छोटा नमूना है। कहाँ तक कहूँ—इन लोगों की महिमा अपरम्पार है। यदि इनका खड़ा किया हुआ उम्मीदवार जीत गया तब तो उसका सारा श्रेय नेता साहब को मिलता है और जो हार गया तो कार्यकर्त्ताओं के मत्थे जाती है। अमुक ने अमुक कार्य नहीं किया, अमुक ने सुस्ती की, अमुक ने यह ग़लती की—इस प्रकार कह कर उस मामले को रफ़ा-दफ़ा कर दिया जाता है और नेता महाशय सर्वथा निर्दोष तथा निर्विकार सिद्ध हो जाते हैं। जीते हुए विपक्षी उम्मीदवार से नेता महाशय एकान्त में मिलकर कहते हैं—"भई, कुछ कारणों से मैं प्रकट में तुम्हारा विरोध करता रहा, पर भीतर से मैंने तुम्हारे लिए ही चेष्टा की।" इस प्रकार उसे भी उल्लू बना कर अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया जाता है। कोई हारे या कोई जीते, नेता महोदय की हर तरह चाँदी है। चित भी उन्हीं की और पट भी उन्हीं की। इन सब कार्यों में नेताओं की एक कौड़ी भी ख़र्च नहीं होती, उल्टे यदि वह चाहते हैं तो उनको और उनके अनुचरों को कुछ लाभ हो जाता है।

लोग समझते हैं कि जनता ने चुना; परन्तु दरअसल वे चुने हुए होते हैं नेता महोदय के। जनता बेचारी मुफ़्त में बेवक़ूफ़ बना कर छोड़ दी जाती है।

सम्पादक जी! कहाँ तक लिखूँ। इन नेताओं के हथकण्डे लिखने में एक पुस्तक तैयार हो सकती है।

भवदीय,

—विजयानन्द (दुबेजी)

पुतली

[रचयिता—श्री० गङ्गाचरण जी दीक्षित, एम० ए०]

स्फटिक मणि पर नीलम की गोली है कि छाया पड़ी उस पर तेरे दग्ध उर की।
कुन्द-कलियों का है मलिन्द रस चूस रहा, किंवा गोल बीच कांलो गेंद कामसुर की॥
खञ्जन के कर बीच विषपूर्ण प्याली है कि छोड़ी हुई काली गोली हरिणी के उर की।
आँख की है पुतली कि झाड़ी बरूनी के बीच, शोभती रसीली छवि अतिशय पुहुप की॥

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

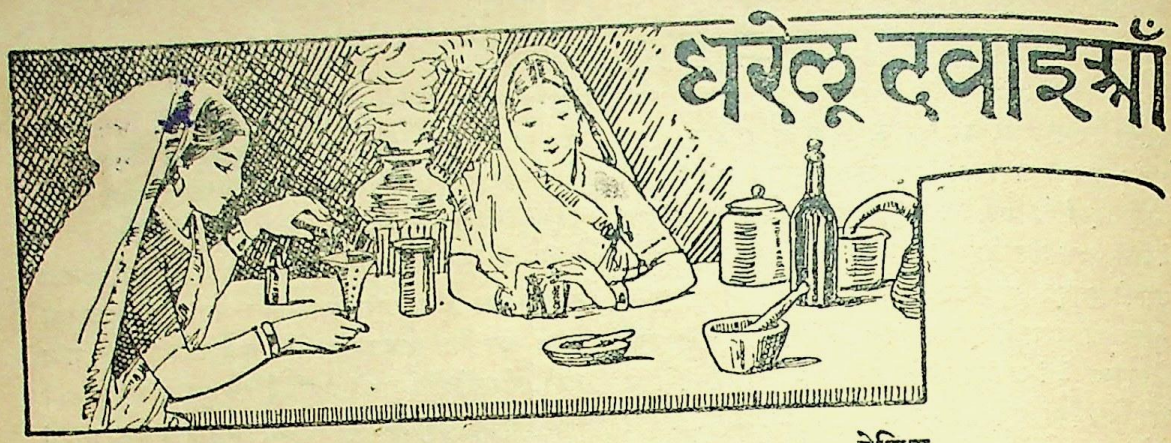

प्रदर की हुक्मी दवा

अड़ूसे का रस, गिलोय का रस और शहद, सबको एक-एक तोला मिला कर प्रति दिन सुबह और शाम सेवन करने से २१ दिन में बहुत पुराना तथा असाध्य प्रदर भी दूर हो जाता है।

दूसरी दवा

विधारा पाँच तोला, असगन्ध ५ तोला, पठानी-लोध ५ तोला, इन सबको कूट-पीस और कपड़छान कर चूर्ण बनावे और छः छः माशे गाय के दूध के साथ सात दिन तक सायं-प्रातः सेवन करे। इससे श्वेत-प्रदर नष्ट हो जाता है। ये औषधियाँ परीक्षित हैं।

—वृन्दा

* * *

दमा

अजवायन देशी १ तोला, ज़ीरा सफ़ेद १ तोला, काला नमक १ तोला, क़तीरा १ तोला, बबूल का ताज़ा छिलका १ तोला, अनार का छिलका २ तोला, मुलहठी ३ तोला, इन सब चीज़ों को कूट-कपड़छान करके पानी में खरल कर चना बराबर गोली बना कर सुखा ले। सुबह, शाम और दोपहर को दो-दो गोली खाने से दमा आराम हो जायगा।

* * *

बवासीर

सूखा जिमीकन्द ८ भाग, चीते की छाल ४ भाग, हरड़ ५ भाग, सोंठ ५ भाग, मिर्च पीपर २ भाग, गुड़ १४ भाग, इन सबों की चार-चार आने भर गोली बना कर व्यवहार में लावे। गोले पीलू के फलों के खाने से भी बवासीर दूर हो जाती है।

पेचिश

मड़ोर-फली १ तोला, बेल की गिरी २ तोला, राल १ तोला, इन्द्रजौ १ तोला, और ईसफ़गोल की भूसी १ तोला, सबको पीस तथा कपड़छान करके एक आना भर चूर्ण दही के साथ सेवन करने से पेचिश दूर हो जाती है।

पथ्य—दही, चावल और उसमें भुना हुआ ज़ीरा और काला नमक डाल कर खाना चाहिए।

* * *

अतिसार

बबूल की छाल का रस शहद में डाल कर पिलाने से ७ प्रकार के अतिसार दूर हो जाते हैं। कटीलका को शहद के साथ पिलाने अथवा तुलसी के पत्तों को काली मिर्च के साथ पीने से भी आराम होता है।

* * *

ख़ूनी बवासीर

चिरायता, लाल चन्दन, जवासा और नागरमोथा, हरेक को आधा-आधा तोला लेकर आध सेर पानी में औटावे। जब ३ छटाँक पानी रह जाय तो उतार कर शहद मिला कर पिलाने से ख़ूनी बवासीर दूर हो जाती है।

* * *

पेट-शूल

मैनफल, कुटकी, काँजी सबको पीस कर कुछ गर्म कर नाभी पर लेप करने से पेट का शूल आराम हो जाता है।

* * *

आँख उठना

आँख कैसी ही क्यों न उठी हो, देवीचन्दन का लेप लगाने से १ दिन में अच्छी हो जाती है।

—पार्वती

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट—
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

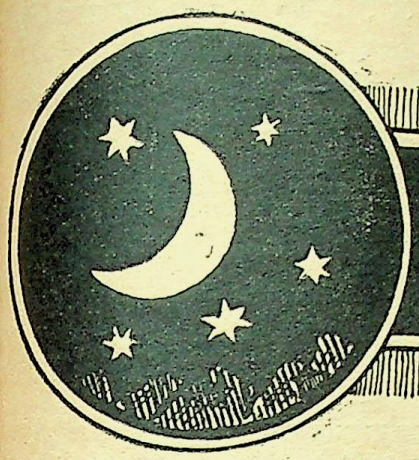

विविध विषय

सामाजिक रूढ़ि की आवश्यकता है या नहीं ?

हिन्दू-शास्त्रों में रूढ़ि का महत्व शास्त्रों से भी अधिक माना गया है। "शास्त्राद्रूढ़िर्बलीयसी" अर्थात् शास्त्र की अपेक्षा परम्परागत व्यवहार अधिक बलवान होता है। इसी के समान एक और उक्ति है—"यद्यपि शास्त्र सुसिद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयं नाकारणीयम्।" अब विचारना यही है कि शास्त्र रूढ़ि से पृथक् होता है अथवा उस पर आश्रित होता है ?

शास्त्र प्रायः नियम, धार्मिक पुस्तक की आज्ञा एवं विज्ञान-विशेष के लिए प्रयुक्त होता है। शास्त्र वस्तुतः रूढ़ि-समूह का अवलोकन कर अनुपयुक्तों के त्याग और उपयुक्तों के ग्रहण के लिए विद्वानों का विचार-दर्शन अथवा आज्ञा है। उदाहरणार्थ यदि समाज में विवाह-विषय पर अन्यान्य प्रथाएँ प्रचलित हों तो शास्त्र उनके लिए एक नियमित प्रथा की आज्ञा देगा। निस्सन्देह बहुत सी रूढ़ियाँ ऐसी भी हैं, जिनका उद्गम केवल शास्त्रों से ही हुआ है, पर वे रूढ़ियाँ एक प्रकार से शास्त्र द्वारा नियमित प्रथाओं में से ही हैं।

इन नियमित प्रथाओं को प्रचलित करने वाले शास्त्र, साधारण व्यक्ति-विशेष द्वारा निर्मित नहीं होते। आर्य-जाति ने इन नियमों के लिए श्रुति एवं स्मृतियों को ही स्वतः प्रमाण माना है।

स्मृतियों में यद्यपि विचारशील व्यक्तियों को एकाध स्थानों पर स्वार्थपूर्ण अथवा कठिन नियम बुरी तरह खटकते हैं, तथापि इससे स्मृतियों के महत्व में न्यूनता नहीं आ सकती। ये नियम, सम्भव है और विद्वानों ने सिद्ध भी कर दिया हो, प्राचीन ऋषियों के नहीं, अपितु अर्वाचीन सङ्कुचित विचार के विभिन्न व्यक्तियों द्वारा प्रक्षिप्त किए गए हैं। इन नियमों का समाज पर प्रभाव अवश्य भयङ्कर हुआ, पर इसका दोष स्मृतिकारों को नहीं, यह दोष उन विचारहीन व्यक्तियों का है, जो अपने स्वतन्त्र विचारों को सर्वथा तिलाञ्जलि दे, उनके अन्ध-अनुयायी बन बैठे।

शास्त्र प्राचीन विद्वानों का अनुभव है। वह अमान्य नहीं, परन्तु इसका यह भी तात्पर्य नहीं है कि हम अपना स्वतन्त्र अनुभव करें ही नहीं। उपर्युक्त विवेचना से यह सिद्ध हो गया कि शास्त्र रूढ़ि पर आश्रित होकर भी स्वतन्त्र हैं। यह स्वतन्त्र-सत्ता मेरी समझ में रूढ़ि से निर्बल नहीं हो सकती। 'शास्त्राद्रूढ़िर्बलीयसी' आदि वचनों के कहने वाले रूढ़ि के गुलाम थे। यह विचार उन लोगों का है जो मानव-जाति में नवीनता को देखना नहीं चाहते अथवा उसके सड़े-गले पत्तों को भी फेंकना नहीं चाहते। सभी रूढ़ियों के लिए यह नियम लागू नहीं हो सकता। प्रत्येक रूढ़ि विचारशील पूर्व-पुरुषों द्वारा प्रचलित नहीं की गई है। हम सदा सुनते हैं कि "साहब, यह स्त्रियों का शास्त्र है।" दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यही होता है—"हमारी समझ में न आने पर भी स्त्रियों ने जैसी प्रथा चला दी है, वह उनके द्वारा प्रचलित होती ही रहेगी।" ऐसे ही अन्य अनेक उदाहरणों से यह सिद्ध होता

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है कि अपने घरों में विनाशकारी प्रथा के चलने और उसका परिणाम भलीभाँति समझने पर भी हम उसको रोकने का उपाय नहीं करते और अन्त में वही शास्त्रीय आज्ञा अथवा पूर्व-पुरुषों द्वारा सम्मानित सनातन-धर्म बन जाता है। यदि देखा जाय तो हमारे समाज की अधिक रूढ़ियों का उद्गम-स्थान मूर्खता में मिलेगा। अतः ऐसी रूढ़ियाँ शास्त्र की आज्ञा अथवा विचारशील विद्वानों द्वारा बनाए हुए नवीन नियमों की अपेक्षा अधिक बलवान् नहीं हो सकतीं।

सामाजिक सङ्गठन रूढ़ि पर आश्रित अवश्य है, पर विभिन्न प्रकार के सङ्गठनों के लिए विभिन्न रूढ़ियों की रचना होती है, अतः रूढ़ि के स्थान में 'दृढ़ नियमों' का मानना हमारे लिए विशेष हितकर होगा। यह कोई नहीं कह सकता कि मनुष्य-समाज का सङ्गठन सदा इसी रूप में रहेगा, जिसमें वह वर्तमान है। मनुष्य प्रत्येक कार्य में नवीनता का आविर्भाव करता है। प्रणाली में परिवर्तन होता ही रहता है। आज वही शिक्षा नहीं है, जो प्राचीन काल में थी। अतः यह सर्वथा सिद्ध है कि सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता के साथ-साथ रूढ़ियों में भी परिवर्तन अवश्य ही होगा।

पर प्राचीनता के प्रेमी इसको सुनते ही आह भरते हैं। हम उनको भी आश्वासन देते हैं कि प्रत्येक रूढ़ि का लोप हो नहीं सकता। जो सिद्धान्त सत्य पर आश्रित हैं वे सदा अक्षुण्ण रहेंगे। सत्य सिद्धान्तों में भी क्रान्तिकारक अवश्य एक बार परिवर्तन करते हैं, पर भटक कर अन्त में उनको भी उनका आश्रय लेना ही होता है। जो रूढ़ियाँ प्राकृतिक नियमों पर आश्रित हैं वे समाज में अवश्य रहनी चाहिए और रहेंगी। और जो मनुष्यों के विशेष-विशेष सङ्घ में स्थापित हो गई हैं, वे न रहनी चाहिए और न अन्त में रहेंगी। उनके हटने में जो विलम्ब हो रहा है, वह प्राकृतिक एवं समाज-हितकारक है। नीति का वचन है—"असमीक्ष्य परं स्थानं न पूर्वमायतनं त्यजेत्।" अर्थात् दूसरे स्थान का प्रबन्ध किए बिना पहले स्थान को न छोड़े। अतः जब तक प्राचीन के स्थान में उत्तम नवीन उत्पन्न न हो तब तक बीच में लटकने की अपेक्षा प्राचीन को अवश्य सुरक्षित रखना चाहिए। अतः निष्कर्ष यही है कि जो रूढ़ियाँ स्वास्थ्यप्रद तथा प्राकृतिक हों, वे समाज में अवश्य रक्खी जायँ और जो अनावश्यक हों, उनका तुरन्त अन्त होना चाहिए।

—विद्याधर शास्त्री, बी० ए०

* * *

जर्मन स्त्रियाँ

फ्रान्स में माता-पिता अपनी पुत्रियों को अच्छी तरह ब्याह कर सुखी गृहस्थ बना देने की बड़ी चिन्ता रखते हैं। पुत्री पैदा होते ही वह उसके दहेज के लिए रुपया जमा करने लग जाते हैं। और जब लड़की विवाह के योग्य हुई तो उसको अच्छा-सा वर ढूँढ़ कर विवाह देते हैं। वर इत्यादि ढूँढ़ने में वह बहुत होशियारी करते हैं और अपनी पुत्रियों को सुखी बनाने के लिए बड़ा त्याग भी। फ्रान्सीसी माता-पिता कोई बात भाग्य पर नहीं छोड़ते। इङ्गलैण्ड में माता-पिता ऐसी परवा नहीं करते। वे यह उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य भाग्य पर छोड़ कर बैठ जाते हैं। लड़कियाँ अपने आप ही पति खोजती-फिरती हैं। अगर कोई पति मिल गया तो अच्छा ही है और यदि न मिला तो न सही; परन्तु माता-पिता को इस विषय में अधिक चिन्ता नहीं होती। अगर किसी अभागिनी लड़की में इतनी होशियारी या योग्यता नहीं है कि वह अपना पति ढूँढ़ ले, तो बस उस बेचारी का जीवन ही नष्ट हो जाता है। उसे रोटियों के लाले पड़ जाते हैं और कमाने की फ़िक्र में वह इधर से उधर काम ढूँढ़ती फिरती है। बेचारी को संसार का कोई अनुभव तो होता नहीं, इसलिए हर जगह ठोकरें खाती है और बड़े दुख सहती है।

जर्मनी में स्त्रियों की न फ्रान्स की सी दशा है और न इङ्गलैण्ड की सी—मध्यवर्ती समझिए। पुराने समय से जर्मन लोग अपनी स्त्रियों की अधिक परवा करते आए हैं। पुराने समय ही से जर्मनी में ऐसे आश्रम चले आते हैं, जिनमें लोगों ने अपनी जागीरें लगा दी हैं और जहाँ अनाथ स्त्रियों तथा बच्चों इत्यादि का पालन-पोषण होता है। कुछ आश्रम ऐसे हैं जो केवल विशेष परिवारों के स्त्री-बच्चों के लिए ही हैं। क्योंकि उन्हीं के पुरुखों ने उन आश्रमों को, केवल इस विचार से स्थापित किया था कि उनके परिवार की लड़कियों में से यदि

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कोई विवाह न करेगी या विधवा हो जायगी तो उनके और उनके बाल-बच्चों के भरण-पोषण का काम इन आश्रमों से चलता रहेगा। इन आश्रमों में बड़ी-बड़ी जागीरें लगी हुई हैं और इनमें रहने वाली स्त्रियों को कोई बुरी नज़र से नहीं देखता, और न उन स्त्रियों को इन आश्रमों में रहने में कोई सङ्कोच या लज्जा ही होती है। इन आश्रमों से बड़ा काम निकलता है और स्त्रियों की बहुत कठिनाइयाँ, तथा भूखी और बेरोज़गार फिरने से जिन-जिन दुष्कर्मों की सम्भावना है, वह सब से बच जाती हैं।

जर्मनी के लोगों का यह विश्वास है कि स्त्रियों का कार्य घर की देख-भाल और सँभाल करना ही है। जर्मन चाहते हैं कि उनकी स्त्रियाँ आदर्श गृहिणी बनें और इसी लिए उन्होंने स्त्रियों की शिक्षा के लिए बहुत सी संस्थाएँ खोल रक्खी हैं। जर्मन दूरदर्शी होते हैं और चूँकि उन्हें मालूम है कि उनके देश में ऐसी स्त्रियों की काफ़ी संख्या है और आगे भी रहेगी, जिनके घर है न बार और कोई मनुष्य भी हाथ बँटाने वाला नहीं; इसलिए जर्मन लोग अपनी स्त्रियों को इस योग्य भी बना देना चाहते हैं कि समय पड़ने पर उन्हें किसी का मुँह ताकना न पड़े और अपनी रोटी वे आप कमा सकें। महारानी फ़्रेडरिक ने इसी कारण डॉक्टर ए० लैते की इसी उद्देश्य से स्थापित की हुई लैते-वेरीन संस्था की शुरू से ही ख़ूब सहायता की। इस संस्था में स्त्रियों को गृह-कार्य तथा अपने गुज़ारे के लिए और कुछ उद्योग-धन्धों की शिक्षा दी जाती है। सीना-पिरोना, कपड़ा धोना और खाना पकाना इत्यादि से लेकर, दफ़्तरों में काम करने तक की सारी शिक्षा यहाँ दी जाती है, जिससे कि जो गृहिणी बन कर रहें, वह गृह-कार्यों में दक्ष हों और जिन्हें अपनी रोटी स्वयं कमानी पड़े, वह अच्छी तरह कमा भी सकें।

जर्मन स्त्रियाँ अब पहले से बहुत अधिक स्वतन्त्र और स्वावलम्बिनी हो गई हैं। जो विवाह नहीं करती हैं, वे कुँवारे मनुष्यों की भाँति रोज़गार-धन्धे करके अपना निर्वाह करती हैं और क्लबों में जाती हैं। अब ऐसे बहुत से क्लब जर्मनी के शहरों में बन गए हैं। कहाँ तो पुराने मनुष्यों के बनवाए हुए, स्त्रियों के पालन-पोषण के लिए वे ही आश्रम थे और कहाँ अब आज-कल की स्त्रियों के, अपनी रक्षा के लिए स्वयं बनाए हुए क्लब। आकाश-पाताल का अन्तर हो गया है। अब जर्मनी की स्त्रियाँ केवल अबला ही नहीं रहीं, वे अपने पैरों पर खड़ी होकर अपनी रक्षा आप कर सकती हैं। पहले मनुष्य उनकी मदद करते थे, अब वह अपनी मदद अपने आप करने का प्रयत्न करती हैं।

जर्मनी में रहने वाले यहूदियों में अब भी यही प्रथा चली आती है कि माता-पिता अपनी लड़कियों के लिए वर खोज कर विवाह ठहरा लेते हैं; परन्तु अब पढ़ी-लिखी लड़कियाँ इसका विरोध करने लगी हैं और अपना वर स्वयम् चुनने पर ही ज़ोर देती हैं। इतना ही नहीं, वर चुनने में वह अब अपने माता-पिता की तरह इस बात की अधिक चिन्ता नहीं करतीं कि वर मालदार है या नहीं। ऐसी यहूदी लड़कियाँ, जो ज़्यादा धर्म इत्यादि के झगड़ों में नहीं पड़तीं, धड़ाधड़ ईसाइयों से भी विवाह करने लगी हैं। ईसाइयों में लड़कियाँ अपना विवाह स्वयं ही वर ढूँढ़ कर करती हैं।

जर्मनी में स्त्रियों की संख्या मनुष्यों से बहुत अधिक है, इस कारण बहुत सी ग़रीब और बदसूरत लड़कियाँ अविवाहिता रह जाती हैं। कुछ पढ़ी-लिखी औरतों ने आन्दोलन उठाया है कि हर स्त्री को सन्तानोत्पत्ति का अधिकार है; परन्तु इसका इलाज इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है कि एक आदमी कई स्त्रियों से विवाह करे। परन्तु यह बात स्त्रियों को पसन्द नहीं है और वह कहती हैं कि मनुष्य अपनी स्वार्थपरता के कारण ऐसी दलीलें पेश करते हैं। ऐसी अवस्था के जो परिणाम होते हैं, वे जर्मनी में भी हैं। नाजायज़ औलाद होती हैं। वहाँ की दयालु और सुशिक्षित सुधारक स्त्रियों ने इन अभागिनी माताओं की रक्षा करने का बीड़ा उठाया है। जर्मनी की लड़कियाँ अब पुरानी सीधी-सादी छोकरियाँ नहीं रहीं। वे उपन्यास पढ़ती हैं, थियेटर और सिनेमाओं में जाती हैं और नई-नई रीति और नीति चलाने का प्रयत्न करती हैं। कुछ कहती हैं कि विवाह की प्रथा ही बहुत बुरी है। इसका समूल नाश कर देना चाहिए। बिना विवाह ही के, हम क्यों न जिससे जब तक चाहें, सम्बन्ध रक्खें? एक लड़की ने चाची को लिख भेजा कि—"प्रिय चाची! तुम यह जान कर बहुत प्रसन्न होगी कि मैं अपने प्रियतम से शीघ्र

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosh

ही सम्बन्ध कर लेने वाली हूँ। हम दोनों मिल कर तब तक आनन्द से रहेंगे, जब तक कि हममें से एक दूसरे से असन्तुष्ट न हो जाय। मेरी प्रार्थना है कि आप मुझे इस मेरे आनन्दपूर्ण कार्य पर बधाई दें।" एक अन्य सुशिक्षिता रमणी का कहना है कि मेरे पास एक लड़की ने अपनी मौलिक कविताओं की एक किताब भेजी, जो इतनी वाहियात थी कि प्रकाशित होने के बिलकुल अयोग्य थी। फिर भी मैं उस लड़की को ख़ूब अच्छी तरह जानती हूँ और कह सकती हूँ कि वह बिलकुल भोली-भाली है और कुछ समझती-बूझती नहीं, केवल सुधार के जोश में मतवाली होकर अण्ड-बण्ड बे समझे-बूझे बकती है। कुछ वाहियात तसवीरें देखती-फिरती है। एक ने तो एक सार्वजनिक व्याख्यान में प्लेटो के सिद्धान्तों की दुहाई दी और यहाँ तक कह डाला कि लड़कियों को कपड़े उतार कर कसरत करना चाहिए। इनमें कुछ लड़कियाँ पुरुष-जाति ही से घृणा करती हैं और कुछ स्त्री-जाति के भले के लिए यह उपदेश देती फिरती हैं कि जिससे जी चाहे प्रेम करो; परन्तु कोई पुरुष का अधिकार अपने ऊपर क़ायम रखने को राज़ी नहीं हैं। जो बिदुषियाँ जर्मनी में स्त्री-जाति को उठाने का कार्य कर रही हैं, वह इन सब बातों का कारण पुरुष का स्त्रियों पर बहुत दिनों का ज़ुल्म बतलाती हैं। उनका विचार है कि पुरुषों ने स्त्रियों को जो बुरी तरह दबा रक्खा था, उसी के विरुद्ध स्त्रियाँ क्रान्तिकारी आन्दोलन कर रही हैं। उनकी ये अण्ड-बण्ड बातें कूड़ा-करकट हैं और कुछ दिनों में आप से आप ही बन्द हो जायँगी। ये देवियाँ इन बातों को बहुत बुरा और स्त्री-जाति की उन्नति में बाधक तथा हानिकारक समझती हैं।

जर्मन गृहिणियाँ संसार की आदर्श गृहिणियों में से हैं। बड़ी मिहनती, सब काम-काज अपने हाथ से करने वाली। बच्चों का पालन-पोषण और देख-रेख सब स्वयं ही करती हैं। नौकरों के भरोसे काम छोड़ कर नहीं बैठी रहतीं, बल्कि नौकर बहुत कम रखती हैं, और यदि एक आध रख भी लिया, तो केवल अपने काम में हाथ बटाने के लिए रख लेती हैं; खाना या तो स्वयम् बनाती हैं या यदि नौकर से बनवाती हैं तो अपने सामने बनवाती हैं। इस बात की बहुत चिन्ता रखती हैं कि घर के बच्चों और पति इत्यादि किसी को कोई ख़राब पकी हुई चीज़ न पहुँच जाय। खाना बनाने में भी ऐसी चतुरता दिखाती हैं कि कभी कोई चीज़ नहीं बिगड़ती और न व्यर्थ जाती है। उन्हें कभी विश्वास ही नहीं होता कि नौकर बिना उनकी देख-भाल के अच्छा खाना बना सकता है। वे सीने-पिरोने और बिनने के काम में भी बड़ी दक्ष होती हैं और हर वस्तु को घर में सँभाल कर रखती हैं। मेज़, कुर्सियाँ, अलमारियाँ सब ऐसी सुन्दरता से सजाती हैं कि देख कर अचम्भा होता है। अगर कुछ मिनट के लिए भी बिनना बन्द करना होगा तो भी बहुत सँभाल कर और कपड़े को तह करके सामान बिनने की टोकरी में उसे रक्खेंगी। कोई चीज़ इधर-उधर घर में पड़ी नहीं मिलेगी। जो किताब पढ़ रही होंगी, वही बाहर होगी और सब अलमारी में बन्द रहेंगी। तमाम घर के रूमाल, पर्दे और कपड़े भी वे अपने ही हाथों धोती हैं। सप्ताह में एक बार सारे कपड़े धो डालती हैं और उस रोज़ अधिक से अधिक एक मज़दूरनी को मदद के लिए रख लेती हैं। कपड़े इतने साफ़ धोती हैं कि दस दफ़े नए पानी से बिला किसी कपड़े को धोए उन्हें चैन ही नहीं पड़ता। उनके धोए हुए स्वच्छ पर्दों को दीवारों पर लटकते हुए और रूमालों को मेज़ पर पड़े हुए देख कर आँखों में चकाचौंध हो जाती है। बाज़ार से यदि अधिक सामान ख़रीदना हो तो नौकर पर वे कभी विश्वास न करके स्वयम् ख़रीदने जाती हैं। तात्पर्य यह कि हर समय कुछ न कुछ करती ही रहती हैं, और न केवल घर का काम बहुत थोड़े ख़र्च में चला कर अपने पति का रुपया बचाती हैं, बल्कि घर को ऐसा सुन्दर और रमणीक बनाए रखती हैं कि रसोई-घर में चम्मच तक बड़े-बड़े सुन्दर लाल-पीले फ़ीतों में बाँध कर, लटका कर रखती हैं। रसोई-घर के काम में चम्मचों की बार-बार आवश्यकता पड़ती ही है। परन्तु फिर भी वह ऐसी सफ़ाई से काम करती हैं कि कोई फ़ीता मैला या किसी पर दाग़ आपको ढूँढ़ने पर न मिलेगा।

जर्मनी के लोग बहुत तड़के उठ कर काम-काज में लग जाते हैं, इसलिए गृहिणियों को भी बहुत सवेरे ही चाय-पानी तैयार करना पड़ता है, परन्तु वह सेवा में ऐसी तत्पर रहती हैं कि कभी उनके पति बिला चाय-पानी के अपने काम पर नहीं जाने पाते। जर्मन स्त्रियों

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्यंग चित्रावली

[होली के भड़ुए]

होली के भड़ुए माँ-बहिनों को रास्ते में पाकर आपे से बाहर हो गए हैं, गालियाँ गा-गाकर
होली के पवित्र त्योहार को कलङ्कित कर अपनी कुरुचि का परिचय दे रहे हैं।
इनकी सन्तान पर इस अश्लीलता का क्या प्रभाव पड़ेगा—
सो इन्हीं भड़ुओं से पूछिए !!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

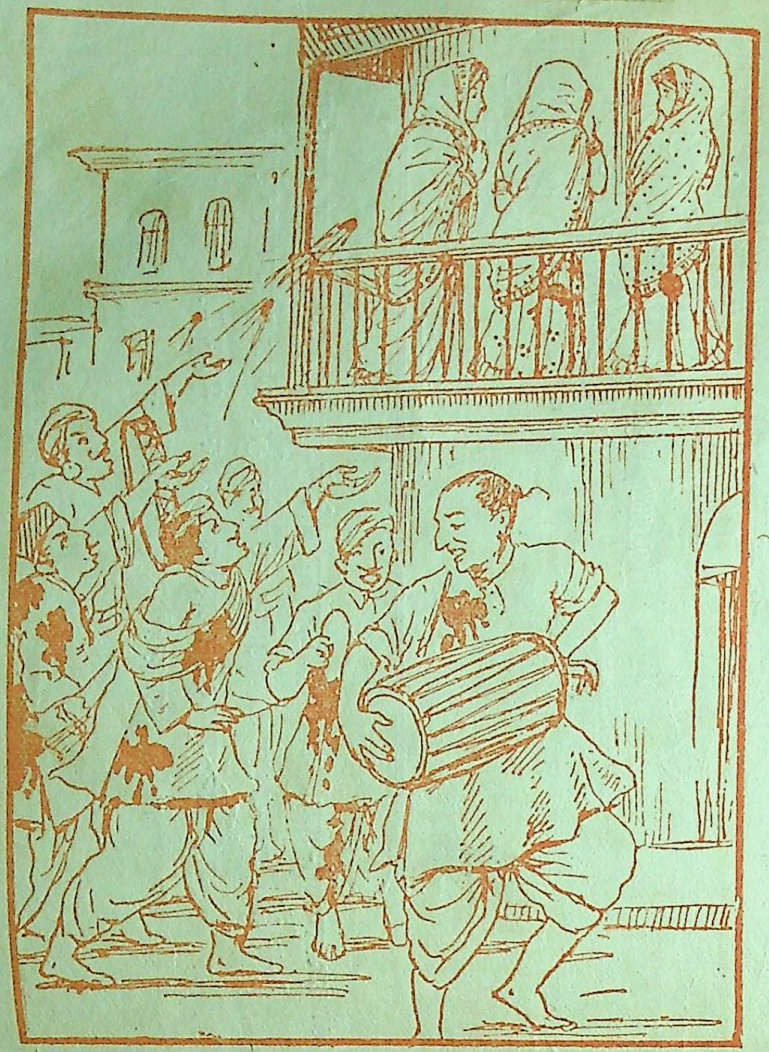

अपने ही घरों के बारजे पर स्त्रियों को देख कर होली के भड़ुए कीचड़ उछाल रहे हैं और अश्लील गालियाँ गा रहे हैं !

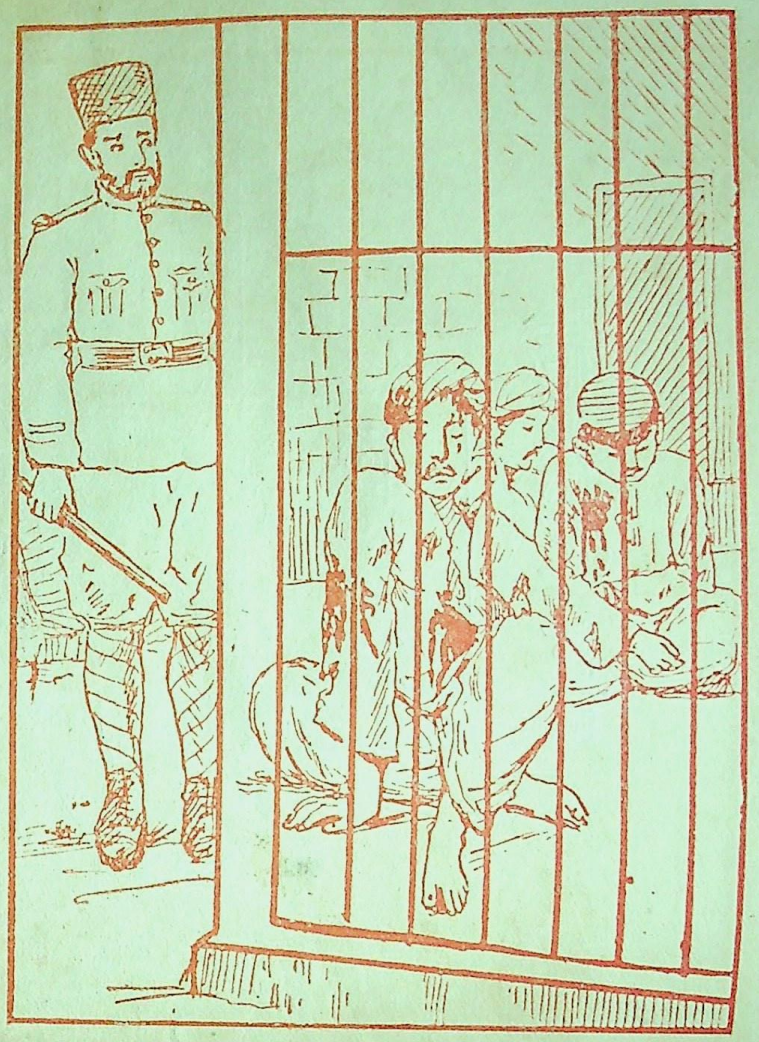

नशे में बदमस्त होने के कारण होली के भड़ुए पुलिस द्वारा गिरफ़्तार किए गए हैं !

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होली के भद्दुए राह-चलते भलेमानुसों पर कीच उछाल कर उत्सव मना रहे हैं !

कीच उछालने के कारण झगड़ा हो गया—मार-पीट हो रही है !!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

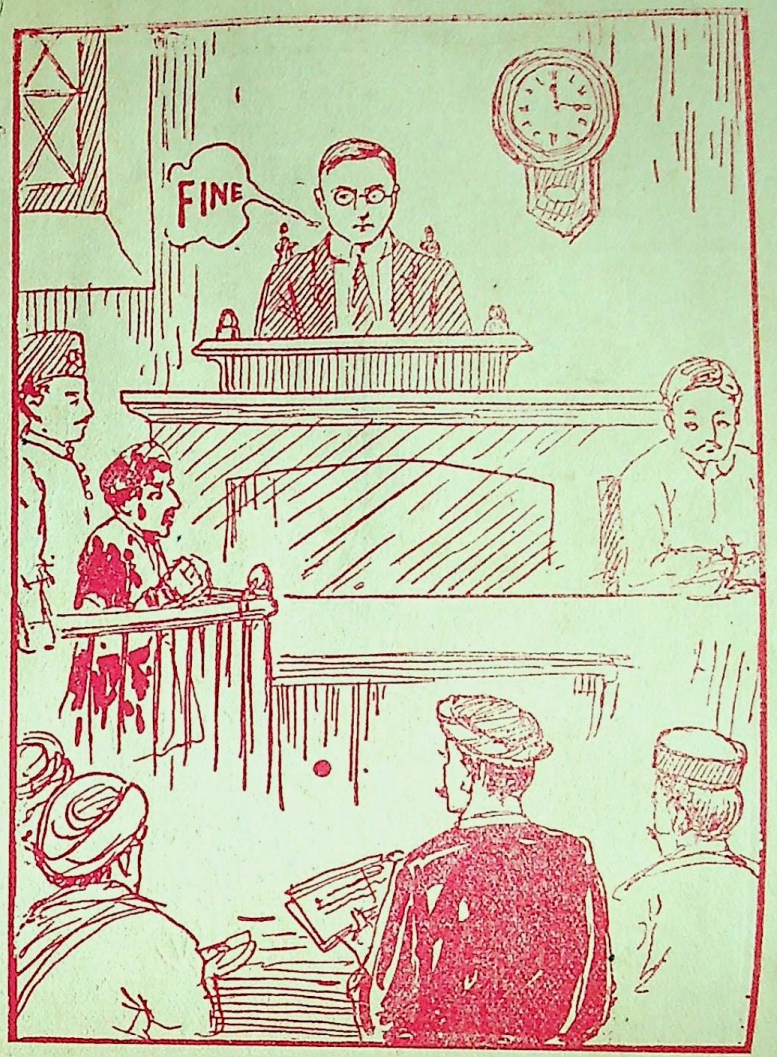

सड़क पर दङ्गा करने का समुचित पुरस्कार मिल गया—शुक्र है, जुर्माना देकर ही जान बच गई !!

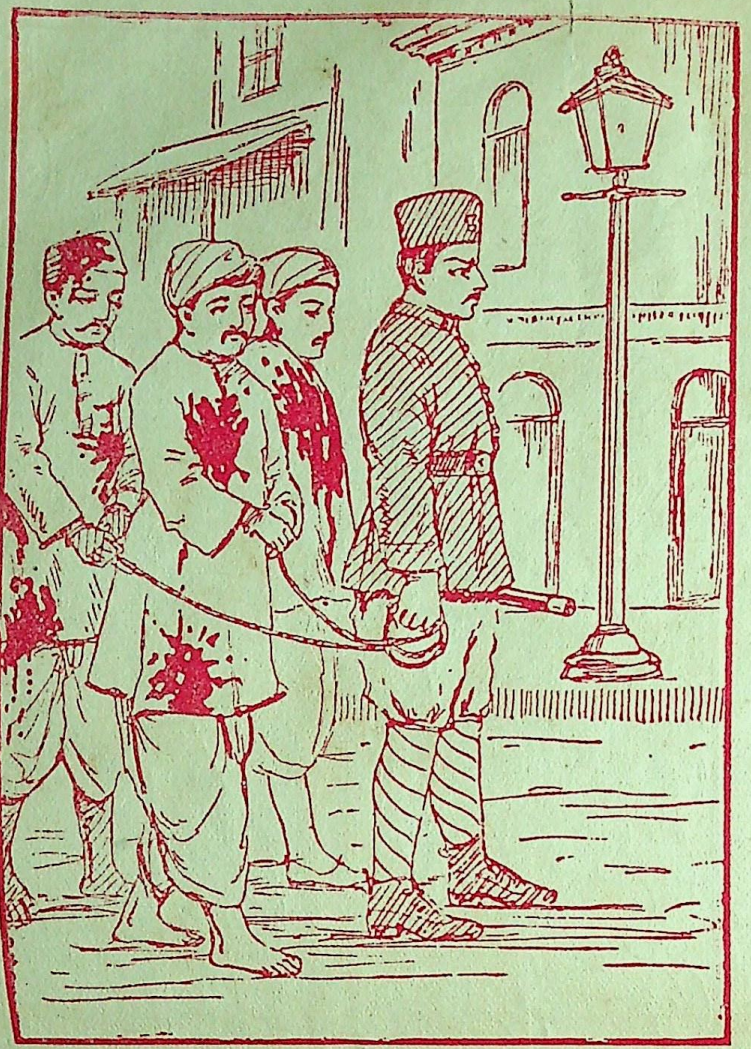

झगड़ा करने के कारण होली के भड़ुए गिरफ़्तार होकर आम सड़क पर से पुरस्कार पाने जा रहे हैं !

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में पति-सेवा का आदर्श बहुत दिनों से चला आया है और उनके देश के बड़े-बड़े मनुष्य, गेटे आदि सदा उनको यही उपदेश करते आए हैं। वे सेवा में ही अपना मोक्ष समझती हैं और बड़ी लगन से गृहस्थी का काम चलाती हैं। धन्य हैं वे घर, जिनमें ऐसी गृहिणियाँ हों। वास्तव में ये ही गृह-लक्ष्मियाँ कहलाने योग्य हैं। जर्मन माताएँ मिहनती और दक्ष हैं, तभी तो उन्होंने ऐसे पुत्र पैदा करके जर्मन जाति को ऐसा दक्ष बना दिया जिन्होंने संसार के कान खड़े कर दिए हैं। माताएँ जो चाहें, कर सकती हैं। वह जातियों के अधःपतन और उत्थान की जड़ हैं। उन्हीं के हाथ में देश के उत्थान की कुञ्जी है।

—(प्रोफ़ेसर) चन्द्रभाल जौहरी, बी० ए०

* * *

पूरब और पश्चिम

यूरोप के नौजवानों से जब हम अपने यहाँ के नव-युवकों को मिलाते हैं, तो उनमें और इनमें बड़ा अन्तर देखने में आता है। यूरोप में कोई ऐसी बात नहीं है, जो आगे बढ़ने से उन्हें रोक सके, बल्कि हर एक बात सामाजिक, मज़हबी तथा घरेलू सब इस ढब से रक्खी गई है कि उनको अपनी तरक़्क़ी करने में बाधा डालना तो दूर रहा, बल्कि हर तरह का आराम पहुँचाती है। इतनी सुविधाएँ उनको दी जाती हैं कि ऐसी हालत में जो उन्होंने कुछ किया तो उसकी कोई तारीफ़ नहीं, न करने की निन्दा अलबत्ता है। मुहल्ले-मुहल्ले सस्ते से सस्ता स्कूल तथा मिश्भरी हैं, पाँच-सात वर्ष हुए कि माँ-बाप ने बिलकुल उनकी मोह और ममता छोड़, बोर्डिङ्ग-हॉउस के सुपुर्द कर दिया। हमारे यहाँ का बारह और चौबीस वर्ष का ब्रह्मचर्य केवल क़िस्से-कहानियों की भाँति भले ही सुना कीजिए, किन्तु कर्त्तव्यता में वास्तविक ब्रह्मचर्य वहीं देखा जाता है। जब तक किसी विषय के पूर्ण विद्वान् न हो जायँगे, विद्याभ्यास की ओर से विमुख न होंगे और न तब तक गृहस्थाश्रम के कामों में प्रवृत्त होंगे। समाज तथा मज़हब की पाबन्दी यहाँ तक कम है कि एक मोची का लड़का भी पादरी हो सकता है और पादरी के कुल में उत्पन्न व्यक्ति भी बढ़ई, लोहार या मोची तक का काम करने में शर्म न मानेगा। वे पृथ्वी के किसी हिस्से में जहाँ चाहें, वहाँ जा सकते हैं, न उनके मज़हब में किसी तरह का फ़र्क़ आएगा, न जात-पाँत बिगड़ेगी। बाल-विवाह की कौन कहे, पूरी जवानी पर पहुँच कर भी ज़बरदस्ती ब्याह देने में माँ-बाप का कुछ भी अख़्तियार नहीं, किसी तरह की क़ैद नहीं। जिस किसी को गृहस्थी करने की इच्छा हो, ब्याह कर बन्धन में पड़े, नहीं तो जन्मभर स्वच्छन्द रहे। हमारे यहाँ सनकादिक तथा भीष्म सरीखे दो-एक हुए, जिनके आबाल ब्रह्मचर्य का गुन अब तक हम गा रहे हैं। यहाँ तक उनकी इज़्ज़त करते हैं कि नित्य के तर्पण तक में उन्हें भरती कर रक्खा है। वहाँ ऐसे-ऐसे हज़ारों निकलेंगे जो दारा-परिग्रह से विमुख रह, ऐसे-ऐसे अद्भुत काम अपने देश तथा जाति की भलाई के लिए कर गए और करते जाते हैं कि हमारे देश में होते तो अवश्य देवांश या अवतार माने जाते। अस्तु—

अब दूसरी ओर चलिए। सबसे पहले हमारे यहाँ बच्चा उत्पन्न होने के लिए घर का सबसे निकृष्ट और गन्दा स्थान चुन लिया जाता है, जहाँ न कभी सूर्य का दर्शन हो सकता है, न उत्तम वायु ही मिल सकती है, जिसके कारण सौ में सत्तर-अस्सी फ़ीसदी बच्चे काल के कलेवर में ग्रसित होते हैं, मरते-खपते किसी तरह बचे भी तो साल-छः महीना घर के बाहर ही नहीं निकल पाते, सुन्दर वायु सेवन को कौन कहे? इसी तरह पाँच-छः वर्ष तक तो कुछ बात ही नहीं है, जोग-टोना के डर से तो कहीं आ-जा ही नहीं सकते। प्रायः सम्प्रदाय के अनुसार पाँचवें वर्ष मुण्डन होने के बाद, जब झालर न रहे तब, लड़का इस लायक़ समझा जाता है कि अब बाहर निकलने-पैठने में जोग-टोना का भय जाता रहा। इसके पहले उसे निरा "नारीकवच" होकर रहना पड़ता है। अनपढ़ी माँ और मूर्ख स्त्रियों के बीच रह कर ऐसी-ऐसी बोल-चाल और ऐसी-ऐसी आदतें सीखा करता है कि उसकी प्रशंसा ही नहीं करते बनता। नजर, जोग, टोना और झाड़-फूँक का रोग हिन्दुस्तान में जैसे सौ वर्ष पहले था वैसे ही अब भी मौजूद है, और इस देश के हर एक कोने में व्याप्त है। हमारे एक मित्र हैं, जो सुशिक्षित और अच्छे वकील हैं; उनकी जाति में यह प्रथा है कि पुत्र उत्पन्न होने पर उसको भूत-प्रेतादि बाहरी

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यन्त्रणाओं से बचाने तथा चिरञ्जीवी होने के लिए गरम लोहे से माथे में दाग़ देते हैं। कुल-प्रथानुसार उनका नवजात शिशु माथे में दाग़ दिया गया। छः महीने बाद जब वह बच्चा अपने ननिहाल गया, तो उन्होंने भी अपने कुल-प्रथानुसार और प्रेम-वशीभूत होकर उसको दाग़ना उचित समझा। पर चूँकि वह बच्चा माथे पर पहले ही से दाग़ा जा चुका था, ठीक जगह न पाई गई। इसलिए उसके पीछे की गर्दन लोहे से दाग़ दी गई, जिसके कारण उसकी आँखें बैठ गईं। बहुत दवा किए जाने पर अब उसकी आँख में कुछ-कुछ रोशनी आ चली है! स्मरण रहे कि इस बच्चे के नाना साहब कोई मामूली आदमी नहीं हैं, ख़ाली एक नामी वकील ही नहीं, वरन् लेजिस-लेटिव एसेम्बली के एक प्रधान मेम्बर हैं। अस्तु—

इसके उपरान्त स्कूल में भेजने और तालीम देने की फ़िक्र माँ-बाप को पीछे होती है, ब्याह की पहले। दूसरे 'ज्वाइण्ट फ़ैमिली' कुल कुटुम्ब का एक ही साथ में रहना ऐसी भारी विपत्ति है, जिसे हम बाल-विवाह से किसी अंश में कम न कहेंगे। यह और भी हमारे नौजवानों को उभड़ने नहीं देती। जिस बेचारे ने बहुत-कुछ ज़ोर मार कर अपने घराने की बात और इज़्ज़त बना रक्खा, उसने मानों बड़ा काम किया; घर का दीपक और सपूत कहलाया। हिन्दुस्तान और विलायत में सपूती की परिभाषा ही बिलकुल भिन्न है। विलायत में जिसने केवल अपना पेट पाल लिया अथवा अपने कुल या घराने की प्रतिष्ठा बना रक्खी, वह एक सामान्य मनुष्य कहलाएगा, सपूती के दफ़्तर में उसका नाम तभी दर्ज किया जायगा जब वह अपने देश या जाति की भलाई का कुछ काम कर चुका हो। इसके लिए शुरू से ही तैयारी की जाती है और हर तरह से इस काम के लिए मौक़ा दिया जाता है। हम पहले ही लिख आए हैं कि माँ-बाप पहले ब्याह की फ़िक्र कर पीछे लड़कों को स्कूल भेजते हैं। स्कूल या कॉलेज से निकलते ही पूरा सामान गृहस्थी का मौजूद रहता है। सिवा इसके पग-पग में धर्मच्युति, जाति-पाँति का बन्धन, उनके नए उत्साह और नए हौसलों पर पुराने लोगों की तानाज़नी और विरोध, लड़की-लड़के, माँ-बाप और स्त्री के भरण-पोषण की फ़िक्र, सपरिवार मिल कर रहने की झञ्झट तथा पुराने क़ायदों की पाबन्दी आदि का सामना करना पड़ता है। इसमें ज़रा सी स्वच्छन्दता और आज़ादगी को दख़ल दिया गया कि बदनामी हुई। फिर समाज तथा भाई-बिरादरी में हेठी होते देर नहीं लगती! सब दुःख एक ओर और यह एक ओर कि पढ़े-लिखे, सुशिक्षित एवं अनेक विद्याओं में पारङ्गत, तत्वदर्शी होकर भी उन्हीं अपढ़, दुराग्रही, मूर्ख, पुराने खूसट बुड्ढों की राय की पाबन्दी होना और उनकी हाँ में हाँ मिलाना!! बहुत से सामाजिक बन्धन ऐसे हैं कि जिनकी बुनियाद न कहीं हिन्दू-धर्म के किसी ग्रन्थों में है, न उनसे किसी तरह के दीनी या दुनियावी फ़ायदे ही हैं। पर चलन चल पड़ी है, इसलिए लाचार होकर उन्हें मानना ही पड़ता है। वर्षों तक स्कूल और कॉलेजों में नित्य की हाज़िरी से बड़ी से बड़ी डिगरी हासिल कर, बुद्धिसागर बन बैठना एक ओर और घर की पुरखिन पुरानी बुढ़िया की अक़्ल एक ओर! तुमने अक़्ल का जौहर निकाल कर तालीम, हिक्मत और सुशिक्षा का सर्वस्व मथ कर एक बात ईजाद करना चाहा, परन्तु सत्तर बरस की डोकरी को नापसन्द आया और वह नाक-भौं सिकोड़ कर "चल मुए" कह डाँट बैठी; तुम भीतर ही भीतर मसोस कर अपना-सा मुँह लिए चुप हो बैठ रहे। तुम क्या, तुम्हारे प्रोफ़ेसरों की भी कहाँ इतनी हिम्मत कि हमारी पुरखिन बुढ़ियाओं से बाद-विवाद में पार पा सकें। इतने-इतने विघ्नों की राशियों को चूर-चूर कर और अपने नवाभ्युत्थान में बाधा डालने वाले कठिनाई के दुरूह पहाड़ों को पार कर भी नई उमङ्ग और नए हौसले वाले हमारे नवयुवक आगे बढ़ते ही जाते हैं, यह कोई मामूली बात नहीं है। वह प्रोत्साहन, वे सुविधाएँ, जो अन्य देश के नवयुवकों को उनके देश वालों से मिलती हैं, उतनी कहीं इन बेचारे देश के होन-हार बच्चों को मिलें तो यह कहना कि "क्या संसार में इनके सामने कोई ठहर सकेगा" अतिशयोक्ति न समझा जायगा।

दूसरा रोड़ा जो हमारी तरक़्क़ी के रास्ते में अड़ा है, वह हमारी भारत-ललनाओं की दशा है। अपना तन-मन जला कर और सर्वस्व सुख से हाथ धोकर कुल की मर्याद निबाहना, हमारे यहाँ की आर्य-कुलकामिनी ही जानती हैं। यूरोप की सुशिक्षित रमणी सौ बार जन्म लेकर भी ऐसा नहीं कर सकती। गोल्डस्मिथ

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपने एक हास्य-प्रधान लेख में लिखते हैं—"मैंने एक बार क़ब्रिस्तान की सैर करता हुआ एक कोने में जाकर देखा तो एक नवयुवती सुन्दरी क़ब्र पर कोमल कर-कमलों से पङ्खा झल रही है। मेरे जी में इस समय अनेक भाव उदय हुए। मन में कहने लगा, सच्चा प्रेम इसी का नाम है। पास जा सलाम कर बोला—'निस्सन्देह आपका प्रेम संसार में एक उदाहरण होने के योग्य है। परलोक में इस मृतक की आत्मा को क्यों न सन्तोष हुआ होगा, जिसके लिए आप अपने कर-कमलों को इतना श्रम दे रही हैं।' वह बोली—'इसके सन्तोष से मुझे अब क्या मिलेगा, अब यह फिर से जी सकता ही नहीं, मुझे तो अपने सन्तोष की पड़ी है। समाज में प्रचलित रीति के अनुसार जब तक यह क़ब्र न सूखेगी, तब तक मैं अपने ऊपर से इस रण्डापे का बोझ नहीं टाल सकती। इसीलिए पङ्खा झल रही हूँ कि जितनी ही जल्द यह क़ब्र सूखेगी, उतनी ही जल्द मेरा सोहाग फिर से जगेगा।' मुझे इस सुन्दरी की बात सुन ताज्जुब हुआ। भीतर से तो इसकी व्यर्थ चेष्टा पर अत्यन्त क्रोध आया, पर ऊपर से हँस कर उससे विदा हो, मैंने घर की राह ली।"

यह क़िस्सा गोल्डस्मिथ की एक कल्पना-मात्र है। किन्तु इसमें भी कुछ सन्देह नहीं कि वहाँ स्त्रियों में स्वतन्त्रता इस दर्जे तक पहुँची हुई है कि गोल्डस्मिथ का इस ढङ्ग से स्वतन्त्रता का चित्र उतार कर हँसी उड़ाना बिलकुल ठीक है। भारतीय ललनाओं में कुलटाएँ भी इतना साहस करने का साहस न करेंगी, जितना कि वहाँ अच्छे-अच्छे घरानों की कुलाङ्गनाएँ करती हैं। हमारी ललनाएँ पढ़ी-लिखी नहीं होतीं, पर धैर्य और सहनशीलता में पृथ्वी भर की स्त्रियों के बीच एक उदाहरण हैं। पुरुषों में शुद्ध चरित्र और पवित्र आचरण ढूँढ़ा चाहो तो सौ में पञ्चानवे अत्यन्त निकृष्ट और पतित पाए जायँगे, जिनके गुप्त या प्रकट चरित्र पर घृणा होती है। पर आर्य-ललनाओं में सौ में कदाचित् पाँच ही ऐसी होंगी, जिनके चरित्र को हम दूषित कहने का साहस कर सकेंगे* और पञ्चानवे ऐसी होंगी जो सौन्दर्य में साक्षात् सची-सी होकर भी भक्तमनसाहत, सीधेपन और सरल-भाव में मानो भवानी की मूर्त्ति हैं, कुलीनता की नाक, लज्जा की खान, श्रद्धा, दया और शान्ति की मूर्त्ति, घर की सर्वस्व सम्पत्ति! हमारी गृहेश्वरी भारत की इस गिरी दशा में भी क़ौम का ज़ेवर और आर्य-जाति का शृङ्गार हैं। हम अपनी सती-सच्चरित्र अबलाओं का जितना अभिमान करें, सब थोड़ा है; विशेष कर ऐसी दशा में जब हम अपनी अशिक्षित कुलाङ्गनाओं का यूरोप की सुशिक्षित रमणी-जनों के साथ मिलान करते हैं। साहब बहादुर हज़ार रुपए भी लावें तो मेम साहबा के एक गौन में उड़ जाते देर न लगेगी। साहब एक-एक पैसे की किफ़ायत करते हैं, पर मेम साहब को अपने फ़ैशन की सजावट में सैकड़ों फूक देते आह नहीं आती। साहब एक कोने में पड़े भिनभिनाया करते हैं और मेम साहब अपनी चञ्चलता और चुलबुलेपन के कारण बँगले भर में कूदती-फिरती हैं! साहब मेम साहब की चरण-सेवा में हरदम हाज़िर रह कर भी ज़रा सा चूके कि उनकी ख़ातिर-शिकनी होते देर नहीं। वहीं हमारी स्त्रियाँ पर-कटे पखेरू की भाँति घर-रूपी पिंजरे में बन्द होकर, रूखा-सूखा भोजन और मोटा-झोटा कपड़ा मात्र से सतीत्व पालन करते हुए बैठी रहती हैं। बाहर बाबू साहब अपने सुख और आराम के लिए सैकड़ों रुपए बहा देते हैं, नई-नई कलियों के रस का स्वाद लेते हुए डोलते फिरते हैं! इधर हमारी गृहेश्वरियों को उनके पतित पति कभी धोखे से भी एक बार निहार दें तो इतने ही से वे निहाल हो जाती हैं! धन्य है इनके धैर्य और सहनशीलता को!! देश की दुर्गति के बहुत से कारणों में स्त्रियों की ओर से मर्दों का निरपेक्ष होना भी एक कारण है। मनु महाराज लिख गए हैं—

यामयो यानि गेहानि शपन्त्य प्रति पूजिताः।
तानि कृत्या हतानीव विनश्यन्ति समन्ततः॥

भली-भाँति आदर न पाकर, स्त्रियाँ जिस घर को शाप देती हैं, वह घर कृत्याहत के समान सब ओर से नष्ट हो जाता है। सच है, असंख्य घराने इन्हीं स्त्रियों की निरपेक्षता के कारण निर्वंशी हो गए। सैकड़ों यहाँ नक क्षतिग्रस्त हो, दैन्य और दरिद्रता के अखाड़े बन गए कि कौड़ी-कौड़ी को मुहताज होकर भूखों मर रहे हैं। निस्सन्देह

---

* हम लेखक महोदय को विश्वास दिलाना चाहते हैं कि औसत के हिसाब से सौ में एक भी ऐसी महिला न मिलेगी।
—स० 'चाँद'

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ये कुलाङ्गना बधूजन लक्ष्मी का रूप हैं। अङ्गरेज़ जो इनकी ख़ातिरदारी करते हैं और हर तरह से इन्हें प्रसन्न रखना चाहते हैं, उसका फल प्रत्यक्ष देखा जाता है कि दिन-दिन उनकी श्रीवृद्धि चौगुनी होती जाती है। हम लोगों ने, जो सब तरह से इन्हें हीन कर दिया और दुर्गति में रक्खा, उसका फल भी प्रत्यक्ष है। आर्य-ललनाओं की दशा का परिवर्त्तन हम तरक़्क़ी की पहली सीढ़ी कहेंगे। कभी सम्भव नहीं कि समाज-संशोधन को छोड़ कर हम कभी आगे बढ़ सकें। स्त्रियाँ यदि निरङ्कुश और स्वतन्त्र होना चाहें तो नदी की तरह कुल-रूपी कगारे को दम में ढहा कर दूर फेंक सकती हैं। यह उन्हीं की कृपा और भलमनसाहत है जो भीतर-भीतर अपना कुलाङ्गनापन निबाहती हुई हमें बाहर इस लायक़ बनाए हुए हैं कि हम आज भी जीवित समझे जाते हैं। भविष्य में कब तक जीवित रह सकेंगे, इसका उत्तर समय देगा।

—जनार्दन भट्ट, एम० ए०

* * *

शारदा बिल और मिथिला

यह देश के सौभाग्योदय का प्रकट लक्षण है कि हमारे सामने 'शारदा-बिल' जैसा उपयोगी बिल उपस्थित हुआ है। यह निश्चित ही है कि इसकी जननी आवश्यकता हुई है, किन्तु फिर भी समुन्नत इङ्गलैण्ड में जिस प्रकार अब तक प्रोटेस्टैण्टिज़्म (Protestantism) के आधिपत्य में भी निरन्तर पराभव की लहरों को सहते हुएभी, अब तक पुरातन मत कैथोलिज़्म (Catholism) निःशेष न हो पाया, उसी प्रकार इस अभागे देश में भी अत्यन्त सङ्कुचित मत के लोग भरपूर—भरपूर क्या, आधे से अधिक हैं। यों तो मताधिक्य के कारण ही कोई मत देश में आदृत होकर अपना सम्बन्ध जताता है, किन्तु यहाँ की राग-रागिणी ख़ासी बेसुरी है। सुधार के किसी भी विषय पर मिथ्यारूप सनातन-धर्म के परिपन्थी हो-हल्ला मचाए रहते हैं। तात्पर्य यह कि आज शारदा-बिल के विरोधी हैं तो इसी श्रेणी के लोग। भाग्य की बात है कि देश में अधिक सज्जन इसके प्रतिपक्षी नहीं दिखाई पड़ते, और कमिटी द्वारा संशुद्ध बिल को सहर्ष अपनाने में बहुतेरे अपनी भलाई ही देखते हैं।

किन्तु शोक की बात है कि सभ्य, उदार, दयाशील और विवेकी समाज जिस प्लेटफ़ॉर्म पर से दोनों हाथ उठा, इस बिल को अपनाने के लिए एकत्रित हुए हैं, वहाँ यह पवित्र, जानकी माता का जनन-देश और समाज नहीं दिखलाई पड़ता। यह बिल स्त्रियों के हित का है, तिस पर भी यहाँ लोग अपनी कन्याओं, जानकियों की भलाई के लिए प्रबन्ध न कर, बाहर से किए उद्योग के पथ को कण्टकाकीर्ण करने में अस्त-व्यस्त हैं! यह विवेक-सङ्कीर्णता के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है?

एसेम्बली के सदस्य रायसाहब हरविलास जी शारदा ने २६ मार्च को अपने बिल के सम्बन्ध में एक उपयुक्त तथा उपयोगी भाषण दिया। आप समस्त देशवासियों से इसके सम्बन्ध में सहानुभूति और अनुमति की आशा करते हैं। हमारी अन्तरात्मा भी कह रही है कि सफलता भावी मालूम पड़ती है, किन्तु लज्जा की बात है कि प्रगट या अप्रगट रूप से इस समाज के कुछ लोग विरोध के परिपन्थी दिखाई पड़ रहे हैं। अतएव जिन विषयों को लेकर वे अकड़ना चाहते हैं, मैं उन्हें आपके सम्मुख रखता हूँ। मैं भी इसी समाज का हूँ, और इसकी कठिनाइयों को जानता हूँ। अस्तु—

यह देश बहुत-कुछ पहले से ही बाल-विवाह करने-कराने का आदी रहा है। आप यह जान कर आश्चर्य करेंगे कि यहाँ शादी ५ वर्ष से कम उम्र तक की लड़की और भले घर में ८-९ वर्ष के बालकों की साधारणतः हो जाया करती थी। लेन-देन का बाज़ार गर्म होने के कारण, कुछ पिता-पितामह के अनुरोध के कारण और कुछ देखा-देखी के कारण ऐसा हुआ करता है; फलतः बधुओं में से लगभग ५० प्रतिशत कुसमय विधवा हो जाती हैं। बहुत नहीं, किन्तु कुछ-कुछ इस ओर स्वतः सुधार हुआ है और उपहास सह कर ही कोई ऐसा करता है। मैं शर्तिया कहूँगा कि पहले ७ से ९ वर्ष तक की कन्याओं का पाणिग्रहण हो जाया करता था, किन्तु वही बढ़ कर अब साधारणतः १० से १३ वर्ष तक पहुँच चुका है। पञ्जी की सङ्कीर्णता के कारण इससे आधों की शादी अक्सर हुआ करती है। अतः ऐसा कहना कि १३ वर्ष या इससे कम वय वाली कन्या का विवाह करना मिथिला में नई रीति चलाना है, एकदम

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निर्मूल होगा। दूसरी बात धर्म की आड़ में आप यदि इसके विरोधी हैं, तो घर-घर १३-१४ वर्ष तक की कन्या विवाही हुई हैं; उनके माता-पिता को धार्मिक दण्ड क्या आपने दिया? साथ-साथ इस बढ़ती हुई बाल-विधवाओं की संख्या को रोकने, उनके विधर्मी होने के भय को मिटाने का इस बिल के अतिरिक्त दूसरा साधन ही क्या हो सकता है? अतएव विरोध का कोई कारण ही नहीं है।

गत मैथिल-महासभा के अवसर पर मैंने देखा कि यदि विधवा-विवाह का प्रश्न उठता तो सभा तुरन्त भङ्ग हो जाती, विवाद के पश्चात् मार-पीट तक की नौबत आ जाती, पर एक सहृदय वक्ता के प्रभावशाली भाषण के पश्चात्, जिन्होंने बतलाया कि विधवाओं का समादर कर यत्नपूर्वक उन्हें रखना चाहिए, साथ ही विधवाओं की संख्या को रोकने का एकमात्र दृढ़ साधन यह है कि बाल-विवाह को रोक दिया जाय—मैंने देखा, सभा पर इस भाषण का उपयुक्त प्रभाव पड़ा और जनता ने विधवाओं की दयनीय दशा से सहानुभूति प्रगट की। जब स्थिति यह है—थोड़े से उद्योग और परिश्रम से जब हम बहुमत को अपने पक्ष में कर सकते हैं तो क्या कारण है कि बाल-विवाह के रोकने के यन्त्र 'शारदा-बिल' को आप गिरा देने के उद्योग में तत्पर हों? मैं नहीं समझता कि मिथिला के महाराजाधिराज कभी भी इस बिल का विरोध करेंगे, जिसका एकमात्र तात्पर्य बालविवाह रोकना है। सच तो यह है कि इसके विरोध करने से यह सूचित होता है कि विरोधी लोग बाल-विवाह तथा बाल-विवाह-जनित विधवा-संख्या-वृद्धि के परम पृष्ठपोषक हैं।

शारदा-बिल का अभिप्राय है बालक-बालिकाओं के सहवास को रोकना। विरोधियों का कहना है कि यहाँ सहवास का अवसर तब तक नहीं दिया जाता, जब तक रजोदर्शन न हो ले, जिसकी पुष्टि का प्रमाण द्विरागमन (गौना) है, जो विवाह के दूसरे, तीसरे या पाँचवें साल किया जाता है। किन्तु मैं कहूँगा कि यह प्रवञ्चना मात्र है, बातों की ठगी है। अपनी अन्तरात्मा से पूछिए तो कितने विवाहित पुरुष इस रोक पर अमल करने वाले मिलेंगे। द्विरागमन के पूर्व ही कई बार वर का आना-जाना होता है; फल-स्वरूप बहुतों को मैके में सन्तान भी हो जाया करती है, जिसके अगणित प्रमाण हैं। अतएव ये दलीलें आधार-रहित हैं।

विरोध होना तो स्वाभाविक ही है, वह भी इस अभागे देश में और विशेषतः इस अभागे प्रान्त में, किन्तु हमें विरोध का कारण जानना चाहिए। अकारण विरोध कदापि नहीं करना चाहिए और इस प्रकार के विरोधियों से सहानुभूति भी न रखनी चाहिए। विरोध-सूचक कोई प्रस्ताव किसी ख़ास व्यक्ति के कहने से ही मान लेना भूल है। किसी के बहकाने में आना, सिफ़ारिश को सुनना, इस पवित्र विषय में अपनी ही अबोध कन्याओं के प्रति निष्ठुरता करना है। काउन्सिल के सदस्यों, भावशाली लोगों और अन्य समिति-सङ्गठनों को उचित है कि वे इस बिल के प्रति अपनी-अपनी सहानुभूति भेज कर अपना कर्त्तव्य पालन करें।

मैं फिर भी कहूँगा, और सभी सहृदय मैथिलों से कहूँगा कि जिस प्रकार गड़े हुए काँटे को निकालने में काँटों ही की सहायता आवश्यक होती है, काँटे को निकालने के समय क्षणिक पीड़ा तो अवश्य होती है, किन्तु चिरकाल के लिए वह पीड़ा चली जाती है, क्षणिक सुख के कारण हाथ मल-मल कर रोना नहीं पड़ता। बिल के विरोध करने से, इसे हानि पहुँचाने से हानि होगी तो उन अबोध बच्चियों की, जिनका उत्तरदायित्व आपके सिर है। जहाँ बालिकाएँ अपनी इच्छा से विवाह नहीं करतीं, किन्तु उनके माता-पिता चाहें तो उनको गर्त्त में फेंक दें, या सुख-समृद्धि सौभाग्य पर बिठा दें, सारांश यह कि इन समयानुकूल विषयों का विरोध करना पातक होगा। यदि उन बालिकाओं की भलाई सोचिए, और बिल की भलाई देखिए तो आपका हृदय एक बार ही इसका समर्थन करने लगेगा। इस समय धर्म के नाम पर सङ्कीर्ण विचारों के झोंके में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं। साथ-साथ विवाह-वय की वृद्धि, जो प्रायः हो ही चुकी है, होने से कोई शास्त्रोक्त धार्मिक पतन भी नहीं है; तब तो विरोध का कोई कारण ही नहीं दिखाई देता। हाँ, थोड़े से धनी जनों को अखरेगा अवश्य, क्योंकि उनके बड़े पुत्र या बड़ी कन्या का विवाह इस वयस में न हुआ था।

हमें आशा है कि सम्पूर्ण मैथिल-समाज एक स्वर से

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

हर्ष-आदर-सूचक इस बिल का स्वागत करेगा और अपनी कर्त्तव्य-परायणता दिखलाएगा।*

—कालीकुमार दास, मैथिली-वाचस्पति

* * *

फ़ीजी द्वीप में कन्याओं की दुर्दशा

फ़ीजी द्वीप में लगभग सैंतालीस वर्ष हुए कि भारतवर्ष से एक भयङ्कर प्रथा के कारण भारतीय नर-नारियों का आगमन हुआ। इस दुखदाई कुली-प्रथा ने मानव-जीवन और धार्मिक तथा सामाजिक दशा को रसातल पहुँचा कर ही दम लिया। हम अविद्या के घोर अन्धकार में अपने नैतिक जीवन का भी संहार कर चुके हैं। माता-पिता छोटे-छोटे बालक-बालिकाओं का विवाह कर देते हैं। इस अनमेल-विवाह ने हलचल मचा रक्खा है। अधिकांश एक दूसरे को पसन्द नहीं करते और एक दूसरे के विरुद्ध हो जाते हैं। कुछ कॉलर-नेकटाई वाले नवयुवक कहते हैं कि हम इस काली कन्या को पसन्द नहीं करते, हमारा विवाह हमारी नादानी में माता-पिता ने किया है। हमारा बस न था, हमने पराधीन होकर विवाह किया। हमको विवाह की ख़बर ही नहीं थी। इसके प्रतिकूल कुछ कन्याएँ अपने विवाहित पति को त्याग कर दूसरों को अपना पति बना लेती हैं! इस अत्याचार के पाप के भागी उनके माता-पिता हैं; क्योंकि अविद्या के घोर अन्धकार में पड़ कर वे यह पाप की कमाई कमा रहे हैं। अधिकांश नर-नारियों की यह दशा है कि अपनी कन्याओं के लिए अनेक वर चुनते हैं और घर में लाकर उनसे काम कराते हैं। इन घर वाले दामादों से ग़ुलाम भी कुछ स्वतन्त्र रहते हैं। कन्या के लालच में पड़ कर वे अपना सब कुछ स्वाहा कर देते हैं और फिर धक्का देकर निकाले जाते हैं। कन्या के माता-पिता किसी गाँठ के अन्धे को पहले ही से तजवीज़ कर रखते हैं और ये वर महाशय इस फ़िराक़ में पहले ही से रहते हैं कि अमुक वर किसी सूरत से निकाला जाय तो कन्या को मैं बरूँ, लेकिन यह नहीं सोचते कि पहले वर की अपेक्षा मुझे अधिक दुख झेलना पड़ेगा। आँख के अन्धे गाँठ के पूरे जब सब स्वाहा कर देते हैं तो तिरस्कार और धक्का देकर निकाले जाते हैं। फिर तीसरे वर तैयार हो जाते हैं। इसी प्रकार एक कन्या का लालच देकर माता-पिता बहुतों को वर बना कर ठगते हैं। इस प्रकार का व्यापार लोगों ने कर रक्खा है। इनकी सामाजिक और धार्मिक दशा बहुत ही शोचनीय है। अधिकांश नर-नारियों का परमात्मा पर कुछ विश्वास ही नहीं है, किसी का विश्वास झण्डे पर है, किसी का पत्थर पर, किसी का वृक्ष पर, किसी का कालीमाई पर, किसी का मीरा नागोड़ पर, किसी का गङ्गा-माँ पर, किसी का भूत-चुड़ैलों पर, और किसी का क़ब्र और ताज़ियों पर! ये लोग इन्हें मुक्ति का मार्ग समझने लगे हैं! कुछ रोज़ यही दशा रही तो हिन्दू-समाज का नामोनिशान मिट जायगा, क्योंकि बेचारी कन्याएँ अपने माता-पिता ही के आचरण पर चल रही हैं। यदि पति से अनमेल होने पर या माता-पिता के बहकावट में पड़ कर कन्या ने पति को त्याग दिया तो फिर वकील द्वारा विवाहित पति अदालत का दरवाज़ा खटखटाता है और वकीलों की ख़ूब मुट्ठी गर्म होती है।

अब विचारिए कि किस प्रकार धन और धर्म दोनों ही स्वाहा होते हैं। इस दशा पर आँसू बहाने के सिवाय और मैं क्या कर सकता हूँ? अब मैं अपना फ़र्ज़ समझ कर भारतवर्ष की समस्त हिन्दू-महासभाओं और आर्य-

* मिथिला अभी बहुत सी रूढ़ियों और कट्टरताओं का केन्द्र बना है। बीसवीं शताब्दी के नए युग की आवाज़ अभी वहाँ तक पहुँची ही नहीं है! मैथिल लोग जागृति के नाम पर घबराते-से हैं। कुछ दिन हुए हमने यहाँ की एकाध कुरीतियों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया था, जिसके कारण आज मिथिला के बहुत से लोग हमसे अत्यन्त रुष्ट हो गए हैं। किन्तु खेद तो इस बात का है कि इन रुष्ट हुए व्यक्तियों में कई सुशिक्षित नवयुवक भी शरीक हैं। हमें इस रूष्टता पर ज़रा भी खेद नहीं है, क्योंकि हमारी अन्तरात्मा कह रही है कि हम मैथिल-समाज के शुभचिन्तक हैं। और हमने जो कुछ भी इस समाज के सम्बन्ध में लिखा है, वह उसकी भलाई की दृष्टि से—द्वेष-भाव से नहीं। हमारी सचाई का सुबूत भविष्य देगा।

—स० 'चाँद'

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रतिनिधि सभाओं तथा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि-सभा से सविनय प्रार्थना और अपील करता हूँ कि फ़ीजी द्वीप और अन्य उपनिवेशों में अपने-अपने उपदेशक तथा अध्यापक-अध्यापिकाओं को भेज कर अविद्या का अन्धकार मिटावें और विद्या का प्रकाश करें। जब अपने बीस लाख प्रवासी भाई-बहिनों को गले लगाएँगे, तभी भारत का कल्याण होगा। हर एक धर्मवीर युवक और युवती को कमर कस कर युद्ध-क्षेत्र में उतर पड़ना चाहिए और प्रवासी भारतीयों के उद्धार के लिए बीड़ा उठाना चाहिए। मैं फ़ीजी के नवयुवकों से भी प्रार्थना करता हूँ कि उनको अपने कर्तव्य पर ध्यान देना चाहिए। उनकी नसों में ऋषि-मुनियों का ख़ून वर्तमान है और वे अपने प्यारे भाइयों के लिए बहुत-कुछ कर सकते हैं। यदि वे कमर कस कर तैयार हो जायँ और अपने भाई-बहिनों को सुमार्ग पर ले आवें तो फ़ीजी का भविष्य सदा के लिए उज्ज्वल हो जाय।

—बी० एल० हीरालाल सेठ

* * *

पिलानी-दिग्दर्शन

अभी कुछ दिन हुए मुझे अपने मित्र पण्डित राम-गोपाल जी शास्त्री रिसर्च स्कॉलर और प्रोफ़ेसर, डी० ए० वी० कॉलेज, लाहौर के साथ सुप्रसिद्ध दानवीर बिड़ला-बन्धुओं की जन्मभूमि पिलानी देखने का सुअवसर एवं सौभाग्य प्राप्त हुआ था। श्रीमान् बिड़ला जी की ओर से यहाँ पर भी दान का स्रोत बहाया जा रहा है, और स्थानीय जनता के लाभ के लिए कन्या-पाठशाला, अछूत-पाठशाला, दो संस्कृत-पाठशालाएँ और पब्लिक पुस्तकालय के अतिरिक्त मैंने यहाँ पर बिड़ला-हाई[illegible] गत चार वर्षों की [illegible] मैं चकित-सा रह गया, कि [illegible] अल्प-काल में ऐसी अपूर्व उन्नति [illegible] म तो क्या, समस्त राजपूताना भर के किसी [illegible] हाईस्कूल या कॉलेज में ही हुई हो। बड़ी ख़ुशी [illegible] तो यह है कि इस संस्था के अधिकारी और अध्यापकगण अपने विद्यार्थियों को केवल पुस्तकों की शिक्षा-मात्र देना ही अपना मुख्य ध्येय नहीं समझते, बल्कि वे इस संस्था के प्रत्येक विद्यार्थी को नीरोगी, हृष्ट-पुष्ट, ब्रह्मचारी, सदाचारी, धार्मिक भाव-सम्पन्न, निडर नागरिक और प्राणिमात्र का सच्चा सेवक बनाना अपना परम कर्तव्य समझते हैं। इसी कारण धर्म-शिक्षा, डिबेटिङ्ग क्लब, बाल-बोधनी सभा, विद्यार्थियों के बोर्ड के अतिरिक्त व्यायाम के लिए फुटबॉल, हॉकी, क्रिकेट, पिङ्ग-पॉङ्ग, वॉली-बाल, और बैडमिण्टन खेलों का भी विशेष रीति से प्रबन्ध किया गया है। साल भर में कम से कम एक या दो धार्मिक और शिक्षाप्रद नाटकों के खेलने का भी प्रबन्ध है।

यह संस्था इलाहाबाद-बोर्ड से सम्बन्धित है, और स्कूल के सञ्चालकों का खुला हाथ होने के कारण बड़े-बड़े योग्य और अनुभवी अध्यापक इस समय अध्यापन का कार्य सञ्चालन कर रहे हैं। इसलिए पढ़ाई एक ही नम्बर की हो रही है; और परीक्षा-फल भी बहुत ही अच्छा और सन्तोषजनक रहता है। हाईस्कूल की परीक्षाओं के लिए यहाँ के विद्यार्थी गत दो वर्ष से ही परीक्षाओं में सम्मिलित हो रहे हैं। पहले साल आठ विद्यार्थी पञ्जाब-विश्वविद्यालय में प्राइवेट तौर से बैठे थे, उनमें से आठों ही पास हो गए—चार तो फ़र्स्ट डिवीज़न में और बाक़ी चार सेकेण्ड डिवीज़न में। आठ ही विद्यार्थी पिछले साल पहले ही पहले इलाहाबाद-बोर्ड की हाईस्कूल-परीक्षा में बैठे थे, उनमें से पाँच उत्तीर्ण हुए। केवल यही नहीं, बल्कि जयपुर स्टेट की एङ्गलो अपर-प्राइमरी और मिडिल-परीक्षाओं के फल भी गत चार वर्षों से क्रमशः ७३ और ८२ प्रति शत रहे हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ के कई विद्यार्थी इन्हीं दोनों परीक्षाओं में प्रति वर्ष फ़र्स्ट डिवीज़न में पास होने और स्कॉलरशिप-परीक्षा में उत्तीर्ण होने के साथ-साथ किसी-किसी वर्ष जयपुर स्टेट भर में फ़र्स्ट भी आए हैं और अच्छी-अच्छी पोज़ीशन भी प्राप्त की हैं।

इनके अतिरिक्त हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा, मध्यमा, आराइज़-नवीसी, मुनीमी इत्यादि परीक्षाओं का यहाँ पर केन्द्र भी है, और हिन्दी-मिडिल पास विद्यार्थियों को तीन ही वर्षों के भीतर एन्ट्रेन्स की परीक्षाओं में भेजने का प्रबन्ध भी विशेष रीति से किया गया है। स्कूल के अवैतनिक सुपरिन्टेन्डेण्ट साहब मिस्टर सीताराम जी खेमका, बी० ए० तथा स्कूल की मैनेजिङ्ग कमेटी और स्कूल के हेड-मास्टर साहब यहाँ के सुप्रबन्ध

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

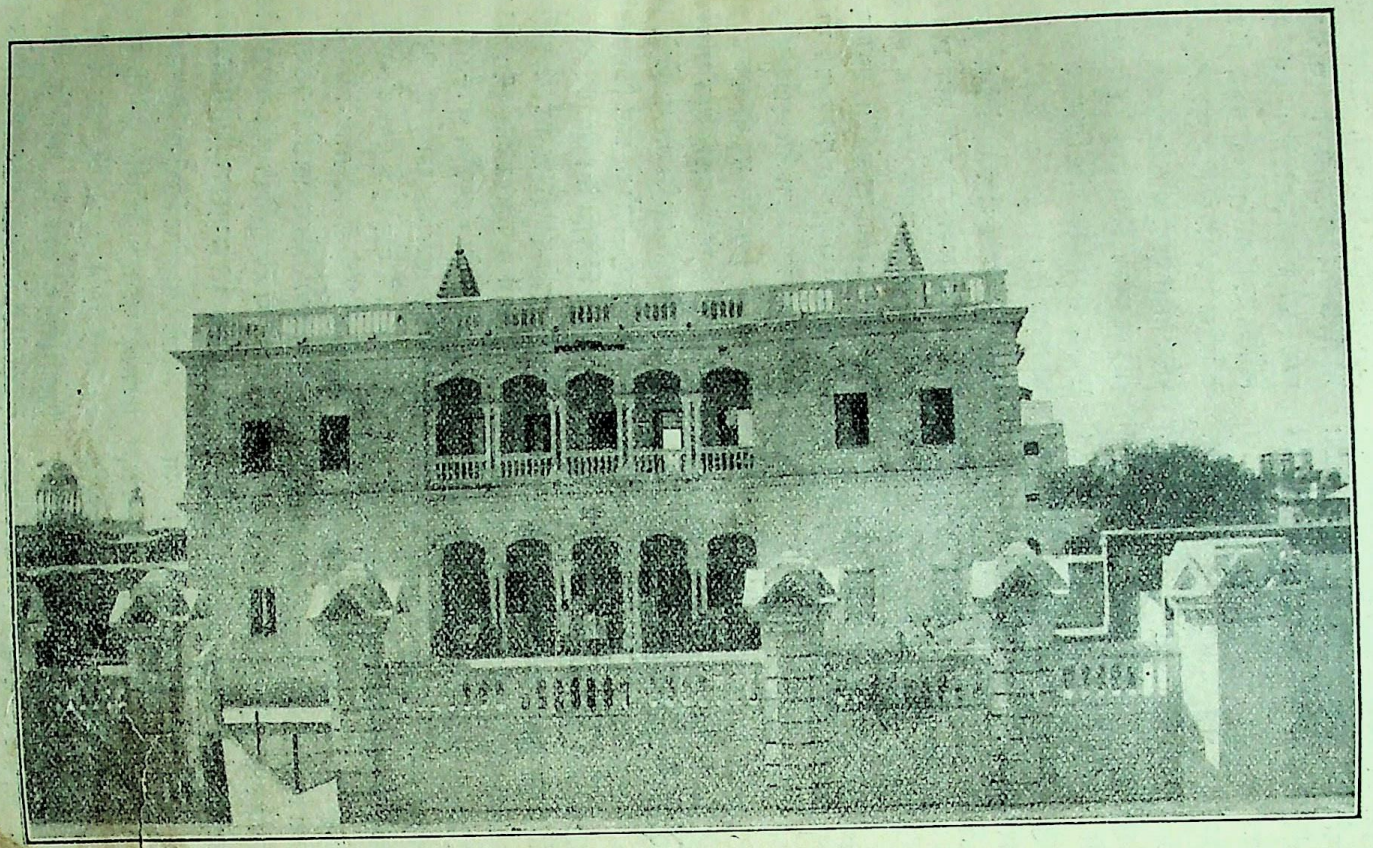

बिड़ला-हाईस्कूल, पिलानी

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

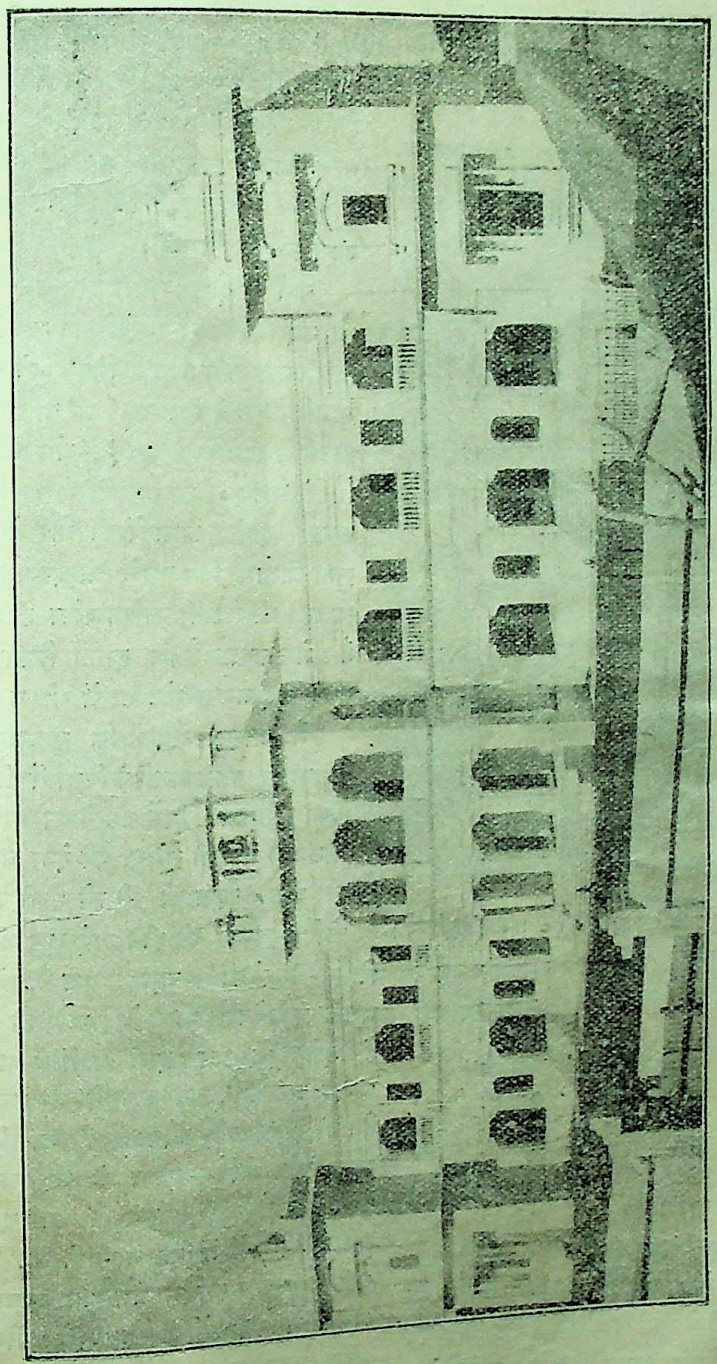

बिड़ला-बोर्डिङ्ग-हाउस, पिलानी

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri G

के लिए विशेष बधाई के पात्र हैं। इन्होंने बड़ी कृपा करके एफ़० ए० कोर्स की प्राइवेट पढ़ाई के लिए यहाँ के और बाहर के विद्यार्थियों के लिए हर प्रकार की सुविधाएँ कर रक्खी हैं।

कुमारी गुलाब बाई मुकुन्दराव, बी० ए० (ऑनर्स)

आप बम्बई के एक्ज़ीक्यूटिव इञ्जीनियर रायबहादुर मुकुन्द रामचन्द्रराव की पौत्री और होलकर की जूनियर महारानी इन्दिरा बाई की बहिन लगती हैं। आपने गत वर्ष बम्बई विश्व-विद्यालय से अंगरेज़ी में ऑनर्स के साथ बी० ए० की परीक्षा पास की है। इन दिनों आप बम्बई के विलसन कॉलेज में अंगरेज़ी पढ़ाती हैं। कॉलेज की फ़ेलो नियुक्त होने वाली आप सर्व-प्रथम हिन्दू महिला-रत्न हैं।

यहाँ पर एक स्काउट-संस्था भी है, जोकि बैडन पाउल बॉय-स्काउट लोकल ऐसोसिएशन (Boy-scout Local Association) **पिलानी के नाम से प्रसिद्ध है। उसके विषय में विशेष न कह कर, केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि आपको जयपुर स्टेट के प्रेज़िडेण्ट मिस्टर रैनॉल्ड साहब के भाषण से, जोकि उन्होंने तारीख़ ३१ जनवरी, सन् १९२७** को यहाँ के छात्रावास का उद्घाटन करते हुए दिया था, इसकी महत्ता का पता चल जायगा। उन्होंने कहा था कि पिलानी की बॉय-स्काउट संस्था की आम कार्य-प्रणाली का मुझ पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इसने इतनी उन्नति कर ली है कि मेरे विचार से पिलानी के स्काउट ट्रूप्स का नम्बर जयपुर रियासत भर में सबसे प्रथम होना चाहिए। मेरी इच्छा है कि भविष्य में यहाँ के स्काउट्स ख़ूब उन्नति करें।

यहाँ का दो मञ्ज़िला छात्रावास (बोर्डिङ्ग-हाउस) भी उदार बिड़ला-बन्धुओं की महती कृपा से हिन्दू-विश्वविद्यालय, बनारस के बिड़ला-होस्टल के ही बिल्कुल मुक़ाबिले का है। प्रसन्नता की बात है कि इस बोर्डिङ्ग-हाउस में रहने वाले अनेक निर्धन और अनाथ विद्यार्थियों को ३५० रुपए मासिक की छात्र-वृत्तियाँ इस स्कूल के दानी सञ्चालकों की ओर से दी जा रही हैं। सुना जाता है कि इसके अन्दर पानी के नल और बिजली की रोशनी का भी शीघ्र ही प्रबन्ध होने वाला है। मेरा ख़्याल है कि इतना विशाल बोर्डिङ्ग-हाउस तो शायद जयपुर स्टेट भर में भी न होगा।

मैं आशा करता हूँ कि युक्तप्रान्त, पञ्जाब, राजपूताना तथा अन्य प्रान्तों के विद्यार्थी भी इस संस्था द्वारा विद्या प्राप्त करके लाभ उठाने का भरपूर प्रयत्न करेंगे। मैं उनको यह भी सूचित कर देना चाहता हूँ कि यहाँ पर न तो स्कूल की ही फ़ीस ली जाती है और न बोर्डिङ्ग-हाउस की ही। हाईस्कूल की परीक्षा तक के लिए कॉमर्स का अच्छा प्रबन्ध है, और खाने-पीने का समस्त ख़र्च केवल बारह-तेरह रुपए ही प्रति मास पड़ते हैं। इलेक्ट्रिक इञ्जन द्वारा कुओं से पानी निकालने का अच्छा प्रबन्ध है, अतएव पानी का ज़रा भी कष्ट नहीं है। हॉस्पिटल और औषधालयों का भी पूर्ण प्रबन्ध है। स्कूल और बोर्डिङ्ग-हाउस के विशाल-भवन बस्ती से बाहर स्वच्छ खुली हवा में हैं, और यहाँ के अध्यापकों तथा विद्यार्थियों में इस गए-बीते युग में भी अभी तक वही सच्चा और हार्दिक प्रेम पाया जाता है, जो प्राचीन समय में गुरुकुलों के ब्रह्मचारी और आचार्यों में हुआ करता था।

—चाँदकरण शारदा, बी० ए०, एल्०-एल्० बी०

* * *

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्त्रियों की लूट

हिन्दुस्तान इतना विस्तृत देश है कि उसके सम्बन्ध में कोई एक सिद्धान्त सर्वत्र एकसा उपयुक्त नहीं हो सकता। अगर कहा जाय कि भारतवर्ष में स्त्रियों की लूट होती है तो देश में कुछ प्रान्त ऐसे भी निकल आएँगे जहाँ यह कथन सत्य सिद्ध नहीं हो सकेगा। किन्तु उत्तरीय भारत में यदि हम कहें कि स्त्रियों की लूट होती है तो अत्युक्ति हरगिज़ न होगी।

इस विषय को अच्छी तरह समझ सकने के लिए हमें पहले अपनी क़ौम के दो-चार विशेष गुणों या अवगुणों को समझ लेना चाहिए। हमारा विचार है कि हिन्दुस्तान की जनता प्राचीन समय में चाहे संयमी और ब्रह्मचारियों की सेना क्यों न रही हो, आजकल कामातुरता में किसी देश से कम नहीं है। सम्भव है, कुछ पाठक हमारे इस कथन से चकित या क्रुद्ध हों और कहें कि वाह, जिस क़ौम ने भीष्म-से बाल-ब्रह्मचारी पैदा किए, जो क़ौम ऋषि-मुनियों के दिव्य चरित्र से पवित्र हो चुकी है, उसके सम्बन्ध में तुम ऐसा कहते हो? किन्तु हम अपने कथन को प्रमाणित कर सकते हैं और ज़ोरदार दलीलों से प्रमाणित करेंगे।

हम यह मानते हैं कि हमारा प्राचीन इतिहास और हमारा धार्मिक साहित्य संयम और पवित्रता की गाथाओं और उपदेशों से परिपूर्ण है। हमें उस पर अभिमान है और हम उसे अपने जातीय गौरव का कारण मानते हैं, किन्तु हम यह भी कहते हैं कि प्राचीन और अर्वाचीन भारत में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। हम मानते हैं कि जिस समय रामचन्द्र का राज्य था या जिस समय महाभारत युद्ध हुआ था, भारतीय विशेष रूप से संयमी एवं पवित्र चरित्र के मनुष्य हुआ करते थे, किन्तु आजकल भारतवासियों की ऐसी प्रवृत्तियाँ नहीं रहीं। हम लोग उन पवित्र-चरित्र लोगों के वंशज हैं, किन्तु वैसे ही, जैसे कोई गाँव का टटुवा या ख़च्चर अरबी घोड़े का वंशज है। शकल एक सी होगी; पैर, मुह उसी क़िस्म के हैं, किन्तु कृत्य बिलकुल भिन्न!

कामातुरता हिन्दुस्तानी बच्चा अपनी बाल्यावस्था में ही विशेष रूप से सीख जाता है। हिन्दुस्तान की जातियाँ इस क़िस्म की हैं, हिन्दुस्तान का मज़ाक़ इस क़िस्म का है कि बच्चा सड़क पर चलते हुए, पिता के पास कमरे में बैठे हुए, या माता के साथ किसी रिश्तेदार के यहाँ जाकर, मज़ाक़ में या अन्य अवसरों पर गालियाँ सुनकर दो-चार शब्द ऐसे सीख लेता है जिसका मतलब, जिसका महत्व समझने की उसके मन को बहुत

कुमारी मन्दाकिनी पण्डित

हाल ही में होने वाली गुजरात-कॉलेज की हड़ताल में काम करने वाली महिला-छात्रों की आप नेत्री थीं, जिन्हें प्रिन्सिपल शिराज़ ने छात्रवृत्ति छीन लेने की धमकी तक दी थी। पर तब भी आप अपने सिद्धान्त पर अटल रहीं।

जल्द आवश्यकता प्रतीत होने लगती है! हिन्दुस्तानी समाज की आबोहवा में पल कर काम-चेष्टा को बालक अपने लिए एक अभिमान की बात समझने लगता है। दरिद्रता-वश हिन्दुस्तानियों में अन्य विषयों, जैसे, कान के लिए गान, नाक के लिए सुगन्धित वस्तु, जिह्वा के लिए

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वादिष्ट पकवान आदि के लिए ज़्यादातर चस्का नहीं होता, किन्तु काम का विषय ग़रीब-अमीर समान रूप से उपयोग कर सकता है और इसीलिए इसका विशेष प्रचार है। आप रेल में चलते हुए रेल की पटरी के

सौ० सरस्वती बाई ओवलेकर

आप बम्बई-प्रान्त की थाना-निवासी महाराष्ट्र महिला हैं, जिनके बनाए हुए खद्दर के चित्र कलकत्ता-कांग्रेस की प्रदर्शिनी में दिखलाए गए थे। इन सभी चित्रों में, जिनमें से एक महात्मा गाँधी जी का भी था, बेल-बूटे तथा फूल-पत्तियाँ सभी खद्दर की ही बनी थीं। जनता ने इन्हें बहुत पसन्द किया, आपको पारितोषिक भी मिला था।

चौराहों पर खड़े हुए बालकों को देखेंगे कि वह अपने हाथ से कामुक चेष्टाएँ करते हैं। आप रेल पर चढ़े हुए अपने साथी मुसाफ़िरों को देखिए, रेल की पटरी के आस-पास खड़ी हुई औरतों को वह किस प्रेम से बुलाते हैं। रेल के एवं पब्लिक पाख़ानों में, एकान्त स्थानों में, पुरानी इमारतों की दीवारों पर हिन्दुस्तानी अक्सर अपने हृदय की सबसे प्रिय बात—कामातुरता से परिपूर्ण गालियाँ—लिख देते हैं। आप जितना ही इस विषय पर विचार करेंगे, उतना ही पता चलेगा कि हिन्दुस्तानी बालकों की प्रवृत्ति बहुत ही कम अवस्था से ही कामपूर्ण हो जाती है। आजकल के समाज में सबसे ज़्यादा प्रिय यही विषय है भी!

हमारे यहाँ के मज़ाक़, हमारे यहाँ की आपस की बातचीत, सभी में कामातुरता की अधिकता पाई जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दुस्तान में मुस्लिम-समाज हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक कामासक्त है। किन्तु हिन्दू लोग भी इस मामले में दूध के धोए नहीं कहे जा सकते। जो लोग लखनऊ में रहे हैं या लखनऊ के समाज की बातचीत से वाक़िफ़ हैं, वे अच्छी तरह जानते हैं कि वहाँ बात-बात में कैसा मज़ाक़ होता है और हर एक मज़ाक़ कितनी कामातुरता से परिपूर्ण होता है। एक वाक्य मुँह से नहीं निकल सकता, जिसमें कामासक्ति के अर्थ न पहनाए जा सकें!

इन सब बातों के कहने का मतलब यह है कि भारतीय समाज—विशेष कर उत्तर-भारत का समाज विशेष रूप से विषयासक्त है। इन प्रदेशों में परदे की प्रथा की वजह से मनुष्यों का मन स्त्रियों को देख कर ख़ामख़्वाह के लिए विचलित होने लगता है। दक्षिण में, जहाँ स्त्री और पुरुष बाज़ार में साथ-साथ टहलते हुए दिखलाई देते हैं, परदा न होने के कारण जहाँ की स्त्रियाँ निडर हो, बाज़ारों में, दूकानों पर फिरती हुई नज़र आती हैं, वहाँ स्त्रियों को देखते-देखते पुरुषों की निगाह इतनी भर गई है कि किसी स्त्री को सड़क पर जाते हुए देख कर किसी को आश्चर्य या कुतूहल नहीं होता। उत्तरीय भारत की दशा बिलकुल भिन्न है। यहाँ पर स्त्रियों से पुरुषों का बहुत कम संसर्ग होता है, इस-लिए जब कभी किसी सड़क पर कोई स्त्री दिखाई पड़ी कि आस-पास के लोग एकदम उसको घूरने लगते हैं। उत्तरीय भारत का आदमी जब बम्बई या दक्षिण के किसी और नगर में जाता है, तो उसे पता चलता है कि वह कितना पतित है। रास्ते में जहाँ कहीं कोई स्त्री उसे नज़र पड़ी, वह उसे बिना घूरे नहीं मानता। इसकी

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वजह यही है कि बाल्यकाल से उत्तरीय भारत के रहने वाले का मन स्त्रियों का संसर्ग न होने से विशेष रूप से कलुषित रहता है।

उत्तरीय भारत में इसलिए स्त्रियों के लूट का मुख्य कारण यहाँ की सामाजिक अवस्था है। दूसरी बात, जिसकी वजह से स्त्रियों की लूट सम्भव होती है, स्वयं स्त्रियों की अपनी ट्रेनिङ्ग है। लड़कियाँ लड़कपन से ही गुड़ियों की तरह पाली जाती हैं। परदे में बन्द करके उनके हृदय में इतना भय भर दिया जाता है कि खुली हुई सड़क पर अकेले चलना या रास्ता भूल जाने पर किसी से रास्ता पूछ कर अपने घर चले आना उनके लिए बिलकुल असम्भव-सा हो जाता है। खुली सड़क पर पहुँचते ही हिन्दोस्तानी स्त्री हक्का-बक्का हो जाती है। अगर एक मर्द ज़रा-सा भी डाँट दे तो वह डर कर काँपने लगती है। इसलिए अगर कभी भाग्यवश वह ऐसी परिस्थिति में पड़ गई जहाँ उसे दो-एक गुण्डे-बदमाशों से मुक़ाबला करना हुआ, तो वहाँ वह भयभीत होकर तुरन्त ही आत्मसमर्पण कर देती है। लूट का यह दूसरा बड़ा कारण है। इसके अलावा स्त्रियों के प्रति सम्मान का भाव हिन्दोस्तान में बिलकुल नहीं है। हिन्दुस्तानी अपनी माता की पूजा कर लेगा, मगर अन्य अबला की किसी प्रकार की भी सहायता करने को तैयार न होगा। पाठकों ने देखा होगा कि अक्सर अपनी स्त्री के सिर पर सेरों बोझ लाद देते हैं और स्वयं ख़ाली हाथ चलते हुए दिखाई देते हैं। रेलगाड़ियों में अगर जगह की कमी हुई तो पुरुष लोग अपनी जगह पर मज़े में बैठे रहेंगे और स्त्रियाँ या तो खड़ी रहेंगी या ज़मीन पर बैठेंगी। टिकट लेते समय औरतों को धक्का देकर लोग पीछे कर देते हैं और ख़ुद टिकट ले आते हैं। कहने का मतलब यह कि लोगों में स्त्रियों के प्रति सम्मान के भाव ही नहीं पाए जाते। इसलिए अगर किसी स्त्री पर कोई आफ़त आती है, तो आस-पास के लोग उसकी रक्षा करने में अपना गौरव नहीं समझते। लोग देखते रहते हैं कि एक अबला के साथ एक दूसरा आदमी मज़ाक़ कर रहा है या उसको कुमार्ग पर ले जाने की प्रेरणा दे रहा है; लोग देखते रहते हैं कि अमुक बड़ा आदमी किसी दरिद्र की कन्या को कुमार्ग पर ले जाने वाला है—वे ऐसी अवस्था में स्त्रियों का आर्त्तनाद भी सुनते हैं, किन्तु यह अपना कर्त्तव्य नहीं समझते कि अबलाओं की रक्षा में प्राण दे दें। यह तीसरा कारण है, जिसकी वजह से स्त्रियों की लूट सम्भव होती है।

कुछ प्रान्तों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या कम है। हर एक पुरुष इसलिए विवाहित नहीं होता। आजीवन ब्रह्मचर्य व्यतीत न कर सकने के कारण ये क्वाँरे लोग स्त्रियाँ प्राप्त करने के लिए अनेक उचित-अनुचित

श्रीमती सुनीतिदेवी मित्र

आप हाल ही में लखनऊ म्युनिसिपेलिटी की सदस्या निर्वाचित हुई हैं। लखनऊ में म्युनिसिपल-कमिश्नर होने वाली आप सर्व-प्रथम महिला हैं।

मार्गों का ग्रहण करते हैं। स्त्री प्राप्त करने का एक तरीक़ा यह भी है कि धोखे से या प्रलोभन देकर या ज़बरदस्ती उन्हें उठा ले जायँ। बीसवीं सदी के भारत के लिए यह कितनी लज्जा की बात है?

—शीतलासहाय, बी० ए०

* * *

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हमारी दान-शैली

दीयते हि यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं विदुः॥

—हितोपदेशः

प्रत्येक प्राणी अपनी-अपनी रुचि और स्थिति के अनुसार दान करने का इच्छुक होता है, पर दान वही सफल होता है जो देश, काल और पात्र को विचार कर दिया जाय। हिन्दू-समाज बहुत गिरी हुई दशा में है। जातीय जीवन का उत्साह और उत्कर्ष तो

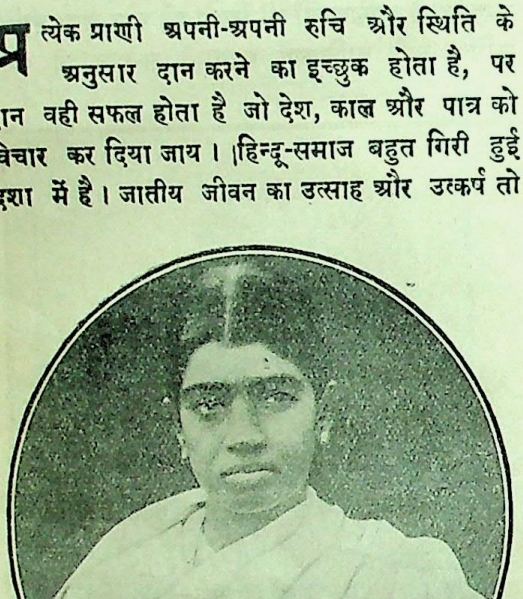

सौ० सी० सञ्जीवराव

आप सरकार की ओर से विज़गापट्टम डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सदस्या नियुक्त की गई हैं।

इस समाज में दृष्टिगोचर ही नहीं होते। कुरीतियों की इतनी भरमार है; अन्धकार का ऐसा अविच्छिन्न राज्य है, पोप-लीला का ऐसा प्रचार है कि देखा नहीं जाता। प्रत्येक जाति-हितैषी का हृदय इन बातों को देख कर दग्ध हो उठना स्वाभाविक है। कुरीतियों और अन्ध-विश्वासों के परिणाम-स्वरूप हमारा धन—जिसको हम सुकर्मों में लगा कर विशेष उपकार कर सकते हैं, उचित कार्यों में उपयुक्त नहीं होता! पुण्यशील कार्यों में व्यवहृत न होकर धन का दुरुपयोग, जैसा कि आगे बताया जायगा—नाच्यालयों और वेश्यालयों आदि में होता है! हमारा कर्तव्य है कि हम ऐसे धन को कुसंस्कारों से बचाने का भरसक उद्योग करें।

वर्तमान काल का हिन्दू-दान निम्न-विभागों में विभक्त हो सकता है :—

(१) तीर्थादिकों के पण्डों को।
(२) जाति और कुल के पुरोहितों को।
(३) देवालयों को।
(४) ब्राह्मण-समाज को।

तीर्थादिकों के पण्डों को दान देने में जो-जो बुराइयाँ दृष्टिगोचर होती हैं, वह प्रायः किसी से छिपी नहीं हैं। यदि आपको परले सिरे के वेश्यागामी ढूँढ़ना हो तो आपको पण्डा-समाज में सरलतापूर्वक मिल सकेंगे; यदि आप राजा नल सरीखे ज्वारी देखना चाहें तो वह भी इसी श्रेणी में मिल जायँगे! मदिरा और मांस का सेवन तो साधारण बात सी हो रही है! तिस पर भी अधिकांश पण्डे अपने यजमान की गृहिणी पर आँख उठाए बग़ैर नहीं छोड़ते! संयोग पाते ही अबलाओं का सतीत्व हरण कर लेना इन लोगों के लिए एक साधारण-सी बात है! यदि कोई इस पर अविश्वास करे तो मेरे पास इन बातों के प्रमाण मौजूद हैं। जब हम लोगों की गाढ़ी कमाई का दुरुपयोग यहाँ तक होता है, तब ज़रा विचारने की बात है कि यह दान कहाँ तक सात्विक और जायज़ हो सकता है।

जाति और कुल के महारथी पुरोहितों का भी किन्हीं-किन्हीं अंशों में यथावत् हाल है। इस दान का यह परिणाम हुआ है कि पुरोहितों का एक समुदाय बन गया है, जिसका काम है शुभ और अशुभ सभी कार्यों में ठेकेदारों की भाँति कर उगाहना और उस धन को गाँजा, भाँग, चण्डू इत्यादि सुकृत्यों में सदुपयोग करना! रुपयों का खुला हुआ सोता देख कर इन लोगों ने विद्या-र्जन करना त्याग रक्खा है! इनकी सन्तान भी इन्हीं का अनुकरण कर निरक्षर भट्टाचार्य रहती है! इस तरह से हमारा दान न केवल मादक वस्तुओं के प्रचार में सहा-यक होता है, वरञ्च विद्यान्धकार का भी प्रसार करता है! यह भी क्या दान है? यह भी क्या पुण्य है? यदि किसी जीवित प्राणी को कुएँ में ढकेल देना पुण्य हो सकता है; यदि विद्या के प्रचार में बाधा डाल, मनुष्यों

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को मूर्ख बनाए रखना किसी अच्छे उद्देश्य में शुमार है तो निस्सन्देह हम ऐसे दान को भी सात्विक और उपयोगी कह सकते हैं! यह दान नहीं, देश के करोड़ों भूखों मरते हुए भाइयों के प्रति असीम निर्दयता है! परमात्मा के सामने हमें इसका उत्तरदायी होना पड़ेगा!

हमारे हिन्दू-देवालयों में आज-दिन लाखों रुपयों की सम्पत्ति लगी हुई है, जिनका उपयोग मूर्ति के रखवारे पुजारीगणों के पालन-पोषण में होता है! श्री ठाकुर जी महाराज सहस्रों रुपए के आभूषणों से सुसज्जित रहते हैं! लाखों के मूल्य के देवालय बने हुए हैं, जिनमें मूर्तियाँ स्थापित हैं; और निरन्तर नवीन निर्माण होते ही जाते हैं! क्या कोई भी विचारशील पुरुष इस धन को धन का सदुपयोग कहेगा! क्या यह दान देश, काल और पात्र को विचार कर दिया जाता है? इसका निर्णय मैं पाठक-वर्ग पर ही छोड़ता हूँ?

ब्राह्मण-समाज ही दान लेने का पात्र है, यह व्यर्थ की धारणा हमारे सैकड़ों हिन्दू-भाइयों में आज दिन मौजूद है! पुरानी लकीर के फ़क़ीर तो एक धन-सम्पत्तिशाली ब्राह्मण को दान देना अच्छा समझेंगे, बनिस्बत एक दीन-हीन, क्षुधातुर, कातर माँगने वाले के, जो दाता को हृदय से आशीश देता हुआ चला जायगा! विशेषतः हमारी माता और बहिनें तो अपना छुआ हुआ सामान ब्राह्मण के सिवा और किसी को देती ही नहीं! दान देते समय जाति और वंश का विचार रखना ठीक नहीं! हमारी माताएँ और बहिनें यदि विवेक से काम लेंगी, तो उनको समझने में कठिनता न होगी कि हमारे दान का उपयुक्त पात्र कौन है—एक दीन-हीन कातर मँगता अथवा धनाढ्य ब्रह्मदेव?

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि आख़िर दान किसको दिया जाय, जिसमें दान का सदुपयोग देश, काल और पात्र के अनुसार हो सके? हाँ! इसके लिए दुखी-दरिद्रियों से भरे, शिक्षा-रहित भारतवर्ष में बहुत से साधन हैं; उदाहरण के लिए :—

(१) बालिका-विद्यालयों का निर्माण।

(२) पुस्तकालय और वाचनालयों की नगरों और गाँवों में स्थापना।

(३) विधवा-आश्रमों और अनाथालयों को सहायता, इत्यादि, इत्यादि।

महापुरुष नेपोलियन कहा करता था कि किसी देश को उन्नतिशील बनने के लिए जितनी आवश्यकता योग्य माताओं की है, उतनी किसी अन्य वस्तु की नहीं। यदि आप दान करने के इच्छुक हैं तो सर्व-प्रथम अपनी समस्त शक्तियों को बालिकाओं की शिक्षा की ओर लगा दीजिए, क्योंकि यही बालिकाएँ आगामी सन्तान की जननी

श्रीमती एम० के० रामानुजुलु

आप गुन्तूर (मद्रास) म्युनिसिपेलिटी की सर्व-प्रथम महिला-सदस्या हैं।

होंगी! बच्चे माता के प्रतिविम्ब होते हैं। सुशिक्षित और सद्विचार वाली माता अपने बच्चे को वैसा ही बनाने की चेष्टा करती है। जननी आदि गुरु है—उसकी शिक्षा बालक के जन्मकाल ही से प्रारम्भ हो जाती है! दस गुरु भी पाँच वर्ष की अवस्था के बाद उतने समय में उतनी शिक्षा नहीं दे सकते, जितनी कि माता बच्चे को बाल्यकाल में दे डालती है। अभी थोड़े दिन हुए, 'मॉडर्न रिव्यु'

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में एक छोटी सी सच्ची कहानी छपी थी ! इटली की एक महिला अपने पञ्च वर्षीय लड़के को लेकर एक गिरजे के पादरी के पास गई और पूछा कि किस दिन से मैं इसकी शिक्षा आरम्भ कराऊँ, क्योंकि इसकी अवस्था अब पाँच वर्ष की हो चुकी है।

पादरी साहब ने जवाब दिया कि माता ! तुमने इस बालक की शिक्षा के सर्वोत्तम पाँच वर्ष तो खो दिए, अब जब चाहो तब आरम्भ करा सकती हो ! माँ की आँखें खुलीं और वह उसी दिन से उसे शिक्षा देने लगी ! कहने का अर्थ यह है कि यदि हमारी बहिनें शिक्षित होंगी, तो सन्तान का मूर्ख रहना कठिन हो जायगा। बालिकाओं की शिक्षा बालकों की शिक्षा से भी अधिक महत्व रखती है और इससे अधिक उपयुक्त साधन दान देने का हमारे सामने दूसरा नहीं।

मैसूर के वेज़लियन मिशन-स्कूल के शिक्षक-गण

बीच में वहाँ की प्रिन्सिपल मिस मैरथा हडसन बैठी हैं। आपने आजीवन अविवाहिता रहकर ४१ वर्ष तक केवल अध्यापन का पुनीत कार्य किया है। ४१ वर्ष की सेवा के बाद विश्राम लेने के अभिप्राय से हाल ही में आपने पद त्याग किया है।

पुस्तकालयों की उपयोगिता के विषय में अधिक कहना पाठकों के अमूल्य समय को नष्ट करना है ! हमारे ५६ फ़ी सदी देशवासियों की आर्थिक दशा अच्छी नहीं—इतनी भी पर्याप्त नहीं है कि वे दोनों समय भर-पेट भोजन तक कर सकें। करोड़ों भारतीय एक ही समय के भोजन पर सन्तोष करते हैं। फिर यह कहाँ तक सम्भव है कि आर्थिक दशा का यह हाल होते हुए वे समाचार-पत्रों और पुस्तकों इत्यादि के लिए व्यय कर सकने में समर्थ हों ? अतएव देश के धनी-समुदाय का यह कर्तव्य है कि अपने भाइयों की ज्ञान-वृद्धि के लिए—उस ज्ञानवृद्धि द्वारा अपनी जाति और अपने देश की उन्नति के लिए स्थान-स्थान पर पुस्तकालय और वाचनालय खुलवा दें, जिससे मध्यम परिस्थिति के हमारे भाई उससे लाभान्वित हों।

पुस्तकालयों में पाठकों को भिन्न-भिन्न जातियों और भाषा के महारथियों से वार्तालाप करने का संयोग मिलता है। पुस्तकालयों में एक साथ कवि, दार्शनिक, इतिहासज्ञ, साहित्य-सेवी, गणितज्ञ इत्यादि विद्वानों से पुस्तक-रूप में साक्षात् होता है। विश्व के साहित्य में कैसे-कैसे अनूठे रत्न पड़े हुए हैं, यह हमको पुस्तकालय की ही कोठरियों में दिखलाई पड़ता है। शेक्सपियर और कालिदास के ऐसे सिद्ध-हस्त नाट्याचार्य; मिल्टन और सूरदास के ऐसे प्रतिभाशाली जन्मान्ध कवि; होरेस विल्सन और वेदव्यास ऐसे साहित्य-सेवी; महामना न्यूटन ऐसे गणितज्ञ, गैरीबाल्डी और प्रताप के ऐसे देश पर मर-मिटने वाले पुनीत चरित्र; चाणक्य और विदुर ऐसे नीतिज्ञ—यह सब वहाँ एक ठौर सुलभता से प्राप्त हो सकते हैं! ज्ञान-विज्ञान की वृद्धि का मार्ग केवल पुस्तकें हैं—पुस्तकें जो संसार के सुप्रसिद्ध और मननशील मस्तिष्कों की उपज हैं।

पुस्तकालयों के साथ ही साथ वाचनालयों की भी बड़ी आवश्यकता है। संसार की वर्तमान प्रगति क्या है, कहाँ शान्ति है, कहाँ युद्ध हो रहा है, कौन संसार का सबसे बड़ा महापुरुष, शान्ति-रक्षक अथवा विद्वान् है, क्या-क्या नए-नए आविष्कार हो रहे हैं, इत्यादि उपयोगी बातें हमको समाचार-पत्र ही बतलावेंगे।

पुस्तकालयों और वाचनालयों से हमारे जातीय

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जीवन के उत्थान में अपूर्व सहायता मिल सकने की सम्भावना है। अतएव जिन धनी-मानी पुरुषों की दान देने की सदिच्छा हो वे नगर-नगर और गाँव-गाँव में अच्छे-अच्छे पुस्तकालय तथा वाचनालय खुलवाएँ। इससे उनके धन का सदुपयोग होगा और समाज की उन्नति।

समाज को क्या अधिकार है जो बेचारी विधवाओं को, असीम कष्टमय जीवन बिताने को मजबूर किया जाता है? किस युक्ति से यह सिद्ध किया जा सकता है कि पुरुष तो बालपन से वृद्धावस्था तक जितने चाहे विवाह कर ले; यहाँ तक कि एक ही समय दो-दो, तीन-तीन स्त्रियाँ रक्खे और उनका चलन ठीक समझा जाय, परन्तु यदि स्त्री एक पति से विवाह हो चुकने के पश्चात् विधवा हो जाय तो शेष जीवन अपने मृत-पति की स्मृति में समर्पित कर दे—वही पति जो यदि जीता होता तो स्वेच्छानुसार न जाने कितनी पत्नियाँ करके उस स्त्री की छाती पर होरे दलता! यह कहाँ का न्याय है कि स्त्री तो पातिव्रत्य-धर्म के पालन में, पति की चिन्ता में, अपने को भस्मीभूत कर दे, किन्तु पति अपनी स्त्री को पैर की जूती के समान समझे! जिनके हृदय इस प्रकार के भावों से प्रेरित हो, सन्तप्त हो चुके हैं, उनको विधवाओं का आर्तनाद असह्य जान पड़ेगा। विवाह के मामले में स्त्रियों को वही समता के अधिकार होने चाहिएँ, जो पुरुषों को। विधवा-आश्रम खोलने का ध्येय यह नहीं होना चाहिए कि षोडश-वर्षीया बालिकाओं को आजन्म ब्रह्मचर्य-व्रत के पालन की शिक्षा दें, जिन्होंने अछूते कुसुम की तरह जीवन के आनन्द का अनुभव ही नहीं किया है; उन्हें विरक्ति की शिक्षा देना सम्भव नहीं, वरन् ध्येय होना चाहिए समाज द्वारा पीड़ित बहिनों की सहायता कर, उन्हें किसी सुपात्र के हाथों सौंप देना। इस कार्य में धन के व्यय के साथ ही साथ समाज के कोपानल में भुन जाने का खटका है। विधवा-विवाह के पृष्ठ-पोषक और उसके उत्साही कार्यकर्ता हो जाने के कारण तथा ऐसे विधवा-आश्रम निर्माण करने से भले ही समाज के कीटाणु इसको बुरी दृष्टि से देखें, पर यह बात निर्विवाद है कि इसकी आवश्यकता है और वह धन, जो इस कार्य में लगाया जायगा, एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति करेगा।

देश के शतशः होनहार अनाथ बच्चे प्रति वर्ष ईसाइयों और मुसलमानों के शिकार हो जाते हैं! "बुभुक्षितः किं न करोति पापं" के अनुसार मैं उन बच्चों के माँ-बाप अथवा स्वयं बच्चों पर इसका दोषारोपण करने को तैयार नहीं। इन बच्चों की रक्षा का भार हिन्दू-समाज को अपने ऊपर ले लेना आवश्यक है। अगर हमारी जाति इन बच्चों की रक्षा न करेगी तो वह समय

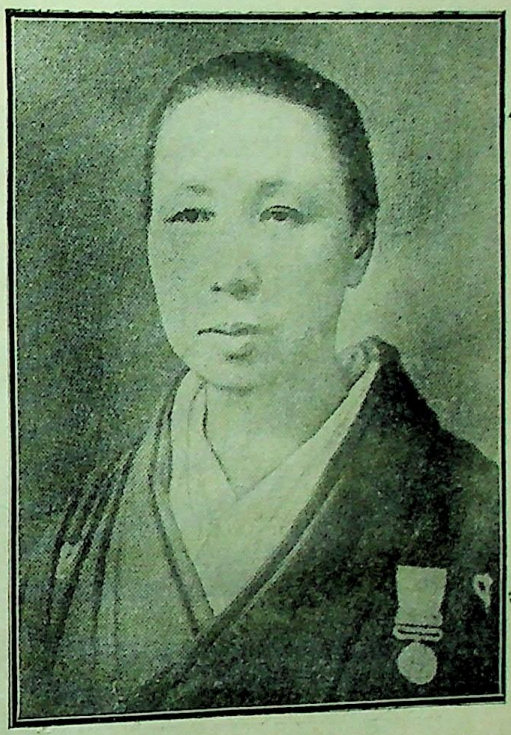

विधवा जापानी महिला मिसेज़ योने सुज़ुकी

आप इस समय संसार भर में सब से धनाढ्य महिला समझी जाती हैं। आपके कारबार में लाखों आदमी काम करते हैं। संसार के सभी देशों में सुज़ुकी कम्पनी की शाखाएँ हैं। कहा जाता है कि इन्हें स्वयं अपनी पूरी सम्पत्ति का अन्दाज़ा तक नहीं है। महायुद्ध के दिनों में ये एक साधारण ठेकेदार का काम करती थीं। आप सामाजिक बन्धनों को तोड़ कर ही यह सारी सम्पत्ति कमा सकी हैं।

शीघ्र आएगा जब सारी जाति का नाश हो जायगा! इस भाँति रक्षा के नाते अभी इस दुर्दिन के प्रभात में ही चेत जाना अच्छा है। अनाथालयों के कार्य में बड़े धन की आवश्यकता है। बच्चों का लालन-पालन, भोजन-वस्त्र और शिक्षा का प्रबन्ध इत्यादि सभी अनाथालय पर

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निर्भर है ! क्या हमारे देश के धनाढ्य कहाने वाले लाला और सेठ लोग इस ओर दृष्टिपात करने की कृपा करेंगे ?

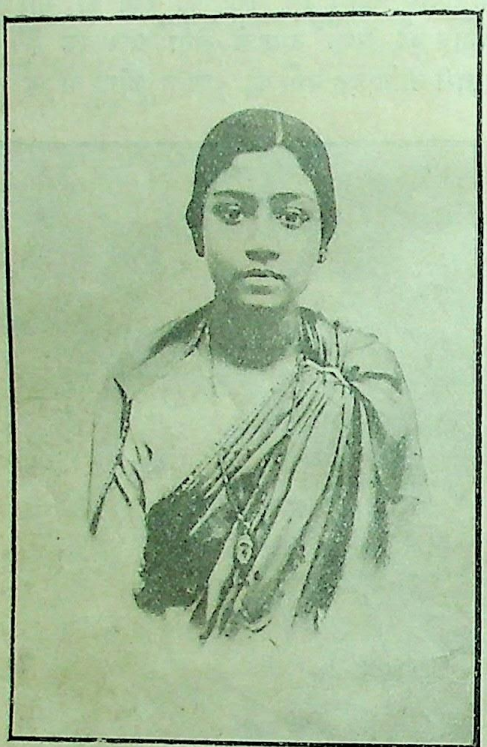

कुमारी एस० श्रीनिवास गुरु

आप पालमकोटा (मद्रास) के स्कूलों की सब-असिस्टेण्ट इन्स्पेक्ट्रेस हैं। मद्रास-सरकार ने आपकी सेवाओं से प्रसन्न होकर टिनावेली की ज़िला-शिक्षा-समिति की सदस्या नियुक्त किया है।

यदि हमारी दानशैली का झुकाव इन सत्कर्मों की ओर होने लगे तभी उसको हम "देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं विदुः" के अनुसार ठीक कह सकते हैं !!

—शिवनारायण टण्डन

* * *

तमादी ख़ान्दान

इस परिवर्तनशील संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो समय के फेर में पड़ कर बदलती न हो। किसी-किसी वस्तु के सम्बन्ध में तो परिवर्त्तन का वेग इतना प्रबल होता है कि कुछ ही दिनों बाद परिवर्त्तित वस्तु की पहिचान भी कठिनता से हो पाती है। यह हर आदमी के अनुभव की बात है कि जो प्रथा पचीस-पचास वर्ष पूर्व अच्छी समझी जाती थी, वह आज बुरी समझी जा रही है और ठीक इसके विपरीत, जो प्रथा पहले बुरी समझी जाती थी, वह आज अच्छी समझी जा रही है। प्रथा के बदलने के साथ-साथ उस प्रथा के अनुसार चलने वाले लोग भी समाज में अच्छे से बुरे और बुरे से अच्छे समझे जाने लगते हैं। पर समाज की व्यावहारिक दशा में इस पिछले परिवर्त्तन के स्वीकार होने में अपेक्षाकृत बहुत आगा-पीछा किया जाता है जिससे समाज की प्रगति में अड़चनें पैदा होती हैं। इसी कारण जिस समाज को स्वभावतः किसी सुधार में १० वर्ष पहले अग्रसर होना चाहिए था, वह पिछड़ा हुआ दीखता है, और जिस समाज को सामाजिक प्रतिष्ठा की सीढ़ी पर दस क़दम नीचे गिर जाना चाहिए था, वह ऊपर ही बैठा रह जाता है। यह मन्द गति समाज के पङ्गु होने का लक्षण है। क्रान्तिकारी समाजों में ऐसी अस्वाभाविक बातें नहीं पाई जाती हैं। भारतवर्ष में इधर कई शताब्दियों से कोई व्यापक क्रान्ति नहीं हुई है। परन्तु इस समय सारे संसार में क्रान्ति ही क्रान्ति दृष्टिगोचर हो रही है। ऐसी आशा की जाती है कि भारतवर्ष भी इस सर्वतोमुखी क्रान्ति से सब प्रकार का लाभ उठावेगा।

मैंने बहुधा अपने वकील मित्रों को किन्हीं-किन्हीं पुराने वकीलों और मुख़्तारों के विषय में यह कहते सुना है कि अमुक तमादी वकील हैं, अमुक तमादी मुख़्तार हैं। पूछने पर इसका आशय उन्होंने यह बतलाया कि पिछले समय उन लोगों की अपने पेशे में ख़ूब चलती थी, पर अब उन्हें कोई पूछता भी नहीं है।

उपर्युक्त तात्पर्य की सदृशता पर मैंने तमादी ख़ान्दान शब्द का भी प्रयोग करना सोचा है। 'चाँद' के विज्ञ पाठक-पाठिकाओं को इस बात का अनुभव होगा कि इस देश में हर जाति और हर वर्ण में कुछ ऐसे परिवार हैं, जो चिरकाल से किन्हीं विशेष गुणों के कारण अपने समाज में ख़ान्दानी अथवा कुलीन समझे जाते आ रहे हैं। वे विशेष गुण भिन्न-भिन्न दलों के लिए भिन्न-भिन्न रहे होंगे। सम्भव है, ब्राह्मणों में विद्या, सदाचार, कर्म-काण्डिता तथा सादगी आदि गुणों के कारण कुछ लोग

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कुलीन समझे जाने लगे होंगे। क्षत्रियों में रणचातुरी, शूरता, गोब्राह्मण-पालकता, वैश्यों में कृषि और वाणिज्य-कुशलता और शूद्रों में द्विजाति-सेवा-दक्षता के कारण आरम्भ में लोग कुलीन समझे जाते होंगे। पर पीछे चल कर सब समाजों में धनाढ्यता भी कुलीनता का एक प्रधान कारण हो गई और इस देश में ज्यों-ज्यों पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव बढ़ता गया, त्यों-त्यों धन ही एकमात्र समाज में प्रतिष्ठा का कारण होता गया। फलतः आज इस देश में सर्वत्र धनिक लोग आदर के पात्र हो रहे हैं, चाहे उनमें लाखों दुर्गुण क्यों न भरे हों। विद्वत्ता और सच्चरित्रता का गौरव अपेक्षाकृत बहुत ही कम हो गया है। अस्तु—

जो लोग पहले से कुलीन कहलाते चले आ रहे थे, उनमें से सौ में नब्बे आजकल बड़ी हीन दशा में हैं। उनकी यह दुर्दशा अनेक कारणों से हुई होगी। प्रथम तो जिन गुणों के कारण उनकी कुलीनता थी, वे गुण या तो उनसे विदा हो गए होंगे अथवा समय के फेर से वे गुण वर्तमान समय में गुण न समझे जाकर दुर्गुण समझे जाने लगे होंगे और समय के विरुद्ध उन बातों में चिपके रहने से उनकी सारी शक्ति स्वभावतः नष्ट हो गई होगी। ऐसे लोगों की एकमात्र बची हुई पूँजी अब अपने बाप-दादों के गुण और बड़प्पन का बखान ही रह गई है। इसी के सहारे वे यत्र-तत्र अपने कुल का नाम बेच कर पेट पाल रहे हैं। समय के पीछे पड़े रहने से वे सर्वथा अकर्मण्य हो गए हैं। उनमें न किसी काम का हुनर है और न कोई ज़िम्मेदारी निबाहने का ढङ्ग। हाँ, अब भी उनका मन और जीभ वश में नहीं है। पास में फूटी कौड़ी भी नहीं, पर साँझ-सबेरे ऐशो-आराम का स्वप्न देखा ही करते हैं। कहीं से कुछ रुपए हाथ पड़ गए तो षट्रस भोजन की तैयारी हुए बिना नहीं रहती। ये लोग समाज के भार-स्वरूप हैं। इनसे किसी की चाकरी भी नहीं पार लगती। ये दिन-रात अपने भाग्य के लिए ही झक मारते रहते हैं। इनसे कोई विवाह-सम्बन्ध भी ख़ुशी से नहीं करना चाहता। इनकी बेटियों से ब्याह करना क्या है, अपने ऊपर जान-बूझ कर एक बला लादना है। क्योंकि जब इनके दिन अच्छे थे, तब इनके घरों में दास-दासियाँ ही घर के सारे काम करती थीं, अतः ऐसे घरों की लड़कियाँ स्वभावतः गृहस्थी के साधारण कामों में अल्हड़ रहा करती हैं। न उन्हें काम करने का ढङ्ग रहता है और न काम में उनका जी लगता है। उल्टे वे निकम्मी लड़कियाँ अपने गए-गुज़रे पीहर के बड़प्पन का बेतुका राग अलाप कर परिवार के लोगों का दिल जलाया करती हैं और घर की हर बात में छिद्र

श्रीमती रङ्गनायकी अम्मल

आपको मद्रास-सरकार ने गोदावरी की ज़िला-शिक्षा-समिति की सदस्या नियुक्त किया है।

निकाला करती हैं। इस मनोवृत्ति का जैसा बुरा परिणाम होता है, पाठक-पाठिकाएँ स्वयं अनुमान कर सकते हैं। बङ्गाल के कुलीन और मिथिला के बिकौआ ब्राह्मण इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। २० वर्ष पूर्व तक ये लोग बीस-बीस विवाह करते थे!! ××× इतर ब्राह्मण अपनी-अपनी कन्याओं को इन कुलीन बिकौआ महाशयों के गले मढ़ना अपना गौरव समझते थे। ये अभागी कन्याएँ आजन्म पीहर में ही ज़िन्दगी बिताती थीं और

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दामाद महाशय साँड़ की तरह साल भर एक ससुराल से दूसरी ससुराल में विचरण करके मौज का स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करते थे! अब उनके पाप का घड़ा भर गया और वे दर-दर के भिखारी हो रहे हैं। अब उन्हें कोई पूछता भी नहीं। एक विवाह भी होना अब उनके लिए दुर्लभ है; ये हुए तमादी ख़ान्दान नम्बर एक!

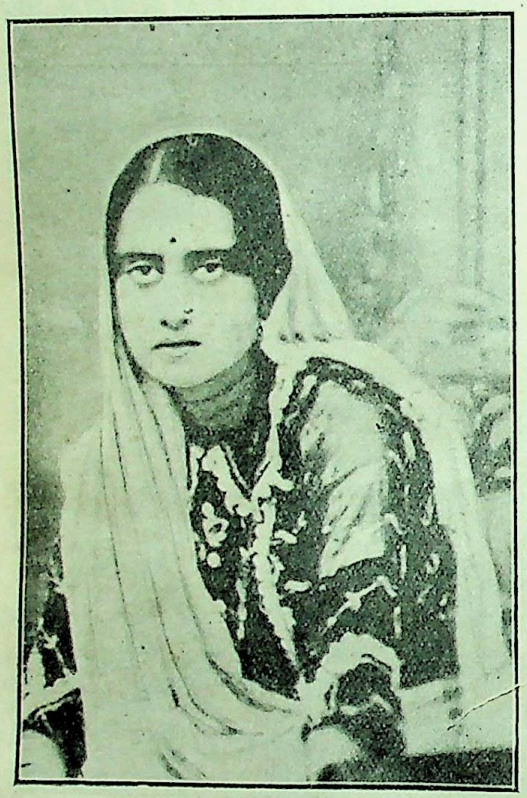

कुमारी चन्द्रकान्ता डोशी, बी० ए०

आपने इसी वर्ष दर्शन-शास्त्र (Philosophy) जैसा गहन विषय लेकर बी० ए० पास किया है। आप काठियावाड़ की दूसरी महिला-ग्रेजुएट हैं। आप स्वर्गीय एम्० एन० डोशी बैरिस्टरकी पुत्री हैं। आपके पिता राजकोट रियासत के दीवान थे।

यह हाल तो उन तमादी ख़ान्दान के लोगों का है, जिनके पास से लक्ष्मी बिदा हो चुकी हैं, और जिनकी संख्या लड़कों का विवाह न होने के कारण बड़े वेग से दिन-प्रतिदिन घट रही है। यदि भगवान् ने चाहा तो शीघ्र ही देश इस भार से मुक्त हो जायगा। इन सत-युगी वैशाख-नन्दनों की स्मृति शेष होने के दिन अब इने-गिने प्रतीत होते हैं। पर अधिक भार तो वे कुलीन लोग हैं, जिनके पास अभी तक कुछ धन शेष रह गया है। जिसके बल पर उन्होंने अभी २०-२५ वर्षों तक अपनी बेढङ्गी चाल से इस दुनिया में चहल-क़दमी करने का ठेका ले रक्खा है। जिन गुणों के कारण ये बड़े गिने गए थे, वे तो इनसे बिदा हो ही चुके हैं। आजकल इनमें संसार के सारे दुर्गुण भरे हुए हैं, इनके हर एक व्यवहार में आप मिथ्यापन पाइएगा। इनका आहार मिथ्या, इनका विहार मिथ्या और इनका सारा बर्त्ताव मक्कारी और ढकोसलों से भरा हुआ है, सिर से पाँव तक तामसिकता व्यापी हुई है, सात्विकता का कहीं नाम नहीं है!!

डींग हाँकने और आत्मश्लाघा में ये अपना सानी नहीं रखते। अपने बड़प्पन के मुक़ाबले अपने समाज के इतर लोगों को नीचातिनीच बतलाने में ये अपना गौरव और अपने हाथ से काम करने में अपनी मानहानि समझते हैं। बहुतों को तो नौकर ही धोती भी पहिनाते हैं; इनके सारे काम दास-दासियाँ ही करते हैं, जिनकी संख्या आवश्यकता से अत्यधिक रहा करती है। दासों के परिवार कुल-क्रमागत इनके आश्रम में दी हुई जागीर में बसे हुए हैं। कहीं-कहीं दासियों के साथ व्यभिचार भी किया जाता है, क्योंकि इस तमादी ख़ान्दान के लोगों में अधिकतर लोग मूर्ख और चरित्र-भ्रष्ट ही पाए जाते हैं। कितने तो खुले तौर से शराबी और वेश्यागामी हैं। इनकी दिनचर्या यही रहा करती है कि प्रातःकाल दिन चढ़े आठ-नौ बजे बिस्तर से उठते हैं। जिन्हें तम्बाकू पीने की आदत है, वे एक-आध घण्टा सटक की शोभा बढ़ा कर नित्य-कर्म में लग जाते हैं। कोई-कोई नौकरों पर रोब जमा कर अपने जीते रहने का सुबूत देकर स्नान-भोजन में प्रवृत्त होते हैं। स्नान के पहले घण्टों तक उनके कोमल शरीर पर कई नौकर तेल मलते हैं। इनमें बहुत से ढोंगी धार्मिक भी होते हैं, जो घण्टों तक बड़े आडम्बर के साथ पूजा करने में लगे रहते हैं। पूछा जाय तो एक भी मन्त्र का शुद्ध उच्चारण उनके मुख से होना सम्भव नहीं। पर उनसे कौन पूछ सकता है? उनके दरबार में पण्डित भी रहा करते हैं, जो बाबू साहब की हाँ में हाँ मिलाना और उन्हें 'धर्मावतार' बतलाना ही अपनी रोज़ी के लिए काफ़ी समझते हैं। हाँ, कभी-कभी बाबू साहब की जन्म-

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कुण्डली देख कर उसमें के अशुभ योगों के बतलाने में वे नहीं चूकते, जिनकी शान्ति करने में उन्हें कुछ हाथ लगे बिना नहीं रहता। इधर तो अगले साल महाजन के तमस्सुक की मियाद पूरी होने को है और वह सारी जायदाद नीलाम कराने वाला है; और उधर बाबू साहब कुण्डली के ज़ोर पर सारे संसार का राज्य पाने का मनसूबा बाँध रहे हैं। अस्तु—

नित्य-कर्म, स्नान तथा भोजन के बाद जो समय बचता है, उसे दिन में सोकर अथवा यारों के साथ चौपर-शतरञ्ज, ताश और गञ्जीफ़ा खेलने में बिताते हैं। ये समय पर कभी भोजन नहीं करते, दिन-रात में बहुधा ये तीसरे पहर ही भोजन करते हैं। घास की तरह सदा पान और ज़र्दा चबाते हैं। इस मिथ्या आहार-विहार का स्वास्थ्य पर जो परिणाम होना चाहिए वही होता है। इनमें बहुतों की तोंद फूली रहती है। पर सब के सब रोगों के अड्डे बने रहते हैं।

स्त्रियाँ भी प्रदर, गुल्म आदि नाना रोगों से ग्रस्त रहा करती हैं। फलतः एक-एक पुरुष के तीन-तीन, चार-चार विवाह करने पर भी निस्सन्तान होना साधारण-सी बात हो गई है। सन्तान उत्पन्न नहीं होती, सो बात नहीं है, परन्तु रुग्ण माता-पिता के रजोवीर्य से उत्पन्न सन्तान गर्भ में अथवा शैशव काल में ही प्रायः काल-कवलित हो जाती है। डॉक्टर-वैद्य और ओझा-गुणी भी अपने क़दम से इनके घरों को सदा सरसब्ज़ करते रहते हैं। इन्हें तो रुपए से काम। आख़िर मूर्खों का रुपया जायगा किस काम में?

ये हुए तमादी ख़ान्दान नम्बर दो। इन्हें संसार की स्थिति की कोई ख़बर नहीं। इनका संसार तो अपने मुसाहिबों से घिरा हुआ अपने दरबार तक ही रहता है। ये ख़ुशामदी मुसाहिब दिन को रात और रात का दिन बना कर बाबू साहब को ख़ुश किए रहते हैं।

ये लोग समाज-सुधार अथवा देश के उत्थान में भारी बाधक हैं। अभी तक समाज में उनकी मिथ्या प्रतिष्ठा है। उनके रहन-सहन को लोग अभी अपने लिए अनुकरणीय समझ रहे हैं। परदे की सत्यानाशी प्रथा का मज़बूत क़िला इन्हीं पुराने गए-गुज़रे लोगों के घर है। छोटी-छोटी बच्चियाँ भी चहार-दीवारी से बाहर पैर नहीं रख सकतीं। जितनी कड़ाई से जो परदा रखता है, उतना ही ख़ान्दानी वह समझा जाता है! समाज के इतर लोगों के घर जाना ये लोग अपनी शान के ख़िलाफ़ समझते हैं। समाज में बड़े-छोटे का भेद अधिकाधिक बढ़ा कर क़ायम रखना ये अपने जीवन का ध्येय समझे हुए हैं। इनके पड़ोस के किसी साधारण परिवार का जब कोई नवयुवक कुछ पढ़-लिख कर आगे बढ़ता है तब ये ईर्ष्या से जलते हैं और हर प्रकार उसके मार्ग में रोड़े अटकाना ये अपना कर्त्तव्य समझते हैं। सामाजिक क्षेत्र में काम करने वालों का इनके साथ प्रायः सङ्घर्ष हुआ करता है, और इनके व्यवहार का उन्हें कटु-अनुभव भी होता है। ऐशो-आराम और बन्धु-विरोध के कारण मुक़दमे-बाज़ी में भी इनका बहुत धन व्यर्थ ख़र्च होता है। इन कर्त्तव्यहीन, अकर्मण्य बाबुओं द्वारा नौकरशाही और ख़ास कर पुलिस को जनता के ऊपर धाँधली करने का बड़ा सुभीता है। समय बे-समय लाट और कमिश्नर आदि को अभिनन्दन-पत्र देने में चालाक लोग इन्हें अपना हथियार बनाकर अपना मतलब गाँठते हैं। संक्षेप में मतलब यह कि देश और समाज में अब इनकी कोई उपयोगिता नहीं रह गई है। ये सब प्रकार से भार हो रहे हैं और जितना शीघ्र इनका ख़ात्मा हो जाय, देश के लिए कल्याणकारक होगा। यद्यपि २०-२५ वर्षों में आप से आप इनका अस्तित्व मिट जायगा, पर देश के सुधार में एक-एक दिन का विलम्ब असह्य हो रहा है। अतः जनता का परम कर्त्तव्य है कि मिथ्यापन से भरे हुए इनके आचरणों का अनुकरण न करके समय के साथ चलने वाले विचारशील लोगों का अनुकरण करे। रूस और इटली आदि देशों में प्रचलित साम्यवाद का जब भारत के सम्बन्ध में स्मरण होता है, तब भारत के लिए इसकी उपयोगिता के विषय में सन्देह रखते हुए भी, देश के इन व्यर्थ और रुग्ण अङ्गों को काट कर फेंकने के लिए, उत्कण्ठा के साथ इसके आगमन की प्रतीक्षा कौन देश-हितैषी नहीं करता?

—रामनिरीक्षणसिंह, एम० ए०, काव्यतीर्थ

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[ले० श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

[गताङ्क से आगे]

लतखोरी लाल

द्रौपदी ने भी अपनी लाज की रक्षा के लिए कृष्ण जी को इतनी जल्दी-जल्दी और इतनी बार न पुकारा होगा, जितनी शीघ्रता से और जितनी दफ़े गुण्डों के बीच में इक्के पर बैठा हुआ मैं ईश्वर की गुहार लगा रहा था। इस मामले में मैं बिलकुल हिसाब की लिखावट के क़ायदे पर चल रहा था। क्योंकि अगर एक दफ़े दहाई के स्थान पर उनका नाम लेता था तो दूसरी बार सिफ़र की जगह पर उन्हें याद करता था। इस तरह से दो दफ़े में दस तो तीन दफ़े में पूरे एक सैकड़े पर छलाँग मार देता था। तभी उन्होंने मेरी विनती भी इतनी जल्दी सुन ली और मेरे उद्धार के लिए झट एक कण्ठीधारी वृद्ध धर्मात्मा मेरे रास्ते में न जाने कहाँ से टपका दिया। उसने आते ही इक्केवान को डाँट बताई और गुण्डे इक्के पर से कूद-कूद कर एकदम हुर्र हो गए।

मैं मूँछों पर ताव देता हुआ—नहीं, नहीं, घूँघट सँभालता हुआ उतरा और ईश्वर को बड़ा लम्बा-चौड़ा धन्यवाद दिया—इसलिए कि उन्होंने बुड्ढों को पैदा करके दुनिया का सचमुच बड़ा उपकार किया, वरना जवानों के मारे यह न बचती। ये लोग कभी के इसे चर गए होते। इसी लिए तो जवानी दीवानी कही जाती है।

वृद्ध महाशय पग-पग पर सीताराम-सीताराम करते चले और मैं भी जिस तरह से विलायती पिल्ला देशी कुत्तों के डर के मारे दुम सिकोड़े अपने मालिक के क़दमों से मिला चलता है, उसी तरह उनके पीछे हो लिया। फिर तो वह मेरे धर्म-पिता और मैं उनकी धर्म-पुत्री बन गया। और मैं उन्हें बाबा और वह मुझे बड़े दुलार से बेटी कहने लगे।

वह एक मकान के तीसरे मञ्ज़िल पर रहते थे। इसलिए वहीं जाकर मुझको भी रहना पड़ा। ऐसे वृद्ध और भलेमानुस रक्षक पाकर मैं भला उनका साथ किस तरह छोड़ सकता था? अगर वह मुझे अपने मकान में आश्रय न भी देते तो भी मैं उनके पैरों पर रो-रोकर उनकी शरण में रहने को कहता। मगर सौभाग्य से इस बात की नौबत ही नहीं आई। वह बेचारे ख़ुद ही मुझे बड़े आग्रह से अपनी रक्षा में रखने को तत्पर हो गए।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्यों न हों ? दुनिया ख़राब होने पर भी परोपकारी लोग मिल ही जाते हैं। वरना दुखियों का बेड़ा कौन पार लगावे, इसलिए उनकी शरण पाकर मैं निहाल हो गया।

उस मञ्ज़िल में रहने के लिए सिर्फ़ एक ही कमरा था। उसके आगे एक छोटा-सा बरामदा था, जिसमें चूल्हा देख कर जाना कि वह रसोई-घर का काम देता है। उसके बाद थोड़ी सी खुली जगह थी। उसी में दो छोटी-छोटी कोठरियाँ थीं, जिनमें से एक ग़ुसलख़ाना और दूसरा टट्टी-घर ऐसा दिखलाई पड़ा। मुझे दाढ़ी बनाने और रूप सँवारने के लिए रोज़ ही एकान्त की ज़रूरत थी, जिसके लिए ग़ुसलख़ाना बहुत ही ठीक मालूम हुआ। यह सब देख-भाल कर मैंने दिल में ठान लिया कि मेरे बाबा अब अगर मुझे निकालेंगे भी तो मैं यहाँ से न निकलूँगा।

कमरे में दो चारपाइयाँ थीं। एक पर तो थकावट के मारे मैं ख़ूब सिकुड़ कर सो गया। मेरे बाबा बड़े धर्मात्मा और पुजारी थे। बिना साढ़े पन्द्रह हज़ार राम-नाम जपे सोते न थे। इसलिए वह बड़ी सी माला लेकर आँख बन्द किए हरिनाम भजने लगे। मेरी चारपाई न जानें क्यों चरमरा उठी और मेरी आँख खुल गई। देखा कि मेरे बाबा मेरे पायताने बैठे हैं। मैंने तुरन्त अपनी टाँगें खींच लीं।

बाबा—काहे बिटिया ? नींद नहीं पड़ती ? सो रहो मुन्ना !

मैं—मगर आप तो जाग रहे हैं।

बाबा—यह बात है ? अच्छा, तो लो मैं भी सोये जाता हूँ।

यह कह कर वह मेरी ही बग़ल में लुढ़क गए। अब मुझे मालूम हुआ कि यह चारपाई उनकी थी और इस पर ग़लती से मैं लेट गया था। इसी ग़लती को बेचारे ने मुझे इस सुन्दर तरकीब से जतलाई। वरना वह मेरा हाथ खींच के उठा सकते थे और हुक्म देते कि जा उस पर लेट। मगर नहीं, वह तो करुणा के रूप थे। भला उनसे कहीं ऐसा बेतुकापन हो सकता था ?

मैं एक ही छलाँग में चारपाई के नीचे आ गया। वैसे ही वे भी हड़बड़ा के उठ बैठे और घबड़ा के बोले—अरे ! क्या हुआ, क्या ?

मैं—कुछ नहीं।

बाबा—तब कहाँ जाती हो ?

मैं—माफ़ कीजिए, मुझे मालूम न था कि आप इस चारपाई पर सोते हैं। मैं उस पर जाता—अरे ! जाती हूँ।

बाबा—मगर-मगर-मगर उसमें बहुत खटमल हैं। इसी पर सो रहो बेटी।

जब तक वह 'मगर-मगर' करते रहे, तब तक मैं दूसरी चारपाई पर लेट गया। पर उनकी परोपकारी आत्मा की सच्चे दिल से मैं तारीफ़ करने लगा, क्योंकि बेचारे मुझे खटमलों की तकलीफ़ से बचाने की ख़ातिर अपने साथ सुलाने का कष्ट तक गवारा करने को तैयार हो गए। क्यों न हों, अगर कोई किसी पर भलाई करे तो इस तरह करे। ईश्वर ऐसे पुण्यात्माओं को स्वर्ग में फ़र्स्ट क्लास कम्पार्टमेण्ट दे।

मेरी तकलीफ़ का अनुमान करके उन्हें नींद न पड़ी। इसलिए वह ख़ुद उठ कर मेरे पास आए और बड़े लाड़-प्यार से बोले—बेटी, तुम तो नाहक़ ज़िद करती हो। भला खटमलों के मारे तुम्हें नींद कैसे पड़ेगी ? अच्छा, ठहरो मैं तुम्हारे पैर दाब दूँ। ताकि किसी तरह तुम्हारी आँख तो लगे। नहीं तो मुझे चैन न आएगा।

यह कहकर वह मेरी टाँगें दबाने लगे। मैंने उनका हाथ पकड़ कर मना किया—राम ! राम ! आप यह क्या कर रहे हैं।

बाबा—बेटी ! अतिथि की सेवा करना परम धर्म है। धर्म पालन करने का ऐसा सुअवसर पाकर अगर छोड़ दूँगा तो नरक में भी मुझे स्थान न मिलेगा।

उफ़ ओ ! धर्म का इतना ख़्याल भला इस कलजुग के ज़माने में किस मर्दूद को हो सकता है ? यह मेरी तक़दीर की ख़ूबी थी, जो मुझे यह सज्जन मिले। आदमी काहे को—वह मुझे साक्षात् देवता जान पड़े। फिर ऐसे धर्मात्मा से पैर दबवाना मुझे कैसे अच्छा मालूम हो सकता था ? उस पर डर यह भी तो था कि उनके पास ज़्यादा देर तक रहने से कहीं मेरा भण्डा न फूट जाय। इसलिए मैं जल्दी से दूर खिसका, और हाथ जोड़ कर बोला—मगर आप ऐसे बुज़ुर्ग से पैर दबवा कर मैं तो नरक में चली जाऊँगी।

बाबा—नहीं बेटी, तुम ऐसी सुन्दरियाँ वहाँ नहीं जा सकतीं। अगर जाने लगें तो वह नरक ही फिर काहे

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को रहे, स्वर्ग न हो जाय। इसलिए हाथ जोड़ता हूँ, मुझे अतिथि-सेवा करने दो। अब बुढ़ापे में मेरा धर्म न बिगाड़ो।

बड़े धपले में जान पड़ गई। चौंक कर खिसकने में मेरा नक़ली बाल ज़रा सरक गया। मेरे प्राण सूख गए। जल्दी से घूँघट काढ़ के मैं चारपाई पर से कूदा। इस उचक-फाँद में कम्बख़्त चोली भी ढीली हो गई। अब भला मैं उन्हें धर्म पालन करने का अवसर किस तरह दे सकता था? इसके लिए उनके नरक जाने का मुझे अफ़सोस तो ज़रूर था—मगर करता क्या? विवश होकर मुझे उनके पास से दूर भागना पड़ा। इस भगदड़ में ताक़ से चिराग़ गिर पड़ा और कमरा बिलकुल अन्धकारमय हो गया।

(क्रमशः)

(Copyright)

सिन्दूर

[रचयिता—श्री० मृसिंह पाठक जी 'अमर' विशारद]

(१)

हे सौभाग्य-सहोदर गुणयुत,
लाल रङ्ग धारी गुणवान्।
सुन्दर, मनहर सुषमायुत, मृदु,
शोभाशाली सुभग महान्॥

(२)

ललना के सौभाग्य-चिन्ह हो,
युवती-जन का सच्चा प्यार।
अचल सुहाग भरा है तुममें,
रमणी सर्व-श्रेष्ठ शृङ्गार॥

(३)

तेरे सिर से मिट जाने से,
आशङ्का होती तत्काल।
तेरे बिना दीख पड़ता है,
राज्य विधवपन का विकराल॥

(४)

ब्याह-काल में जब 'वर' तुमको,
कन्या के सिर पर देते।
कैसे भाव निरन्तर उठते,
प्रेमपूर्ण मन कर देते॥

(५)

काले-काले केश पास में,
रहते सदा परम छविमान।
सतियों के सारे क्लेशों का,
तुम्हें देख होता अवसान॥

(६)

हो सुहाग की वस्तु मनोहर,
रमणी करती प्यार अपार।
तुममें अन्तर्हित है कैसा,
विमल भाव नूतन शृङ्गार॥

(७)

भारत-ललना के मृदु सहचर,
सजे रहो सिर पर सब काल।
भाग्यवती वे रहें निरन्तर,
होती रहें सदैव निहाल॥

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर्तव्य-पालन

[ले० श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]

छः

महीने हुए, मैं हरद्वार गया था। वहाँ मैं अपने एक मित्र के मकान पर ठहरा। मुझे साधु-सन्तों से मिलने का बहुत शौक़ है। मैंने अपने मित्र से पूछा—कहो भई, यहाँ कोई अच्छे महात्मा भी हैं?

मेरे मित्र ने हँस कर कहा—क्यों, महात्माओं से मिलने का शौक़ क्यों चर्राया?

मैंने कहा—तुम तो जानते हो कि मुझे यह पुराना शौक़ है और मैं महात्माओं की तलाश में रहता हूँ।

"हाँ, पर आज तक कोई तुम्हें मिला भी?"

"मिले तो बहुत, पर अभी तक कोई ऐसा न मिला जिससे मिल कर चित्त प्रसन्न होता।"

"तुम कैसा महात्मा चाहते हो?"

"अब यह मैं कैसे बताऊँ। महात्मा होना चाहिए। महात्मा के जो अर्थ हैं—महात्मा की जो परिभाषा है—वैसा होना चाहिए। सीधा-सच्चा आदमी हो, ढोंगी न हो।"

मेरे मित्र ने गम्भीर होकर कहा—ऋषिकेश में एक नए साधु आए हैं। वह अच्छे आदमी मालूम होते हैं। पहले वह पुलीस में सब-इन्सपेक्टर थे, पर उन्होंने पुलीस की नौकरी छोड़ कर संन्यास ले लिया। उन्होंने पुलीस की नौकरी क्यों छोड़ी और संन्यास क्यों लिया, इसका कारण किसी को नहीं मालूम। दो-एक आदमियों ने उनसे पूछा भी; पर उन्होंने केवल हँस कर टाल दिया, किसी को बताया नहीं। तुम्हारी इच्छा हो तो उनसे मिल लो।

मैंने कहा—मैं उनसे अवश्य मिलूँगा और उनके संन्यास लेने का कारण भी पूछूँगा।

"वह बतावेंगे नहीं।"

"अवश्य बतावेंगे।"

"यदि तुम उनसे पूछ लो तो मैं तुम्हें कुछ इनाम दूँ।"

"अच्छा स्वीकार है। यही सही, बोलो क्या दोगे?"

"मिठाई खिलाऊँगा।"

"वाह! इतना बड़ा काम करूँगा और इनाम में केवल मिठाई! मिठाई तो मैं रोज़ ही खाता हूँ।"

"उस मिठाई की बात ही दूसरी होगी।"

मैंने कहा—ख़ैर, यह तो सब मज़ाक़ की बातें हैं, मैं उनसे अवश्य मिलूँगा।

"अच्छी बात है, कब मिलोगे?"

"जिस दिन तुम्हें अवकाश हो।"

"तो क्या मुझे भी चलना पड़ेगा?"

"अवश्य!"

"अच्छी बात है, तो परसों चलो।"

"किस समय?"

"सवेरे ही चलेंगे, दूसरे दिन लौट आवेंगे।"

मैंने इसे स्वीकार किया।

नियत दिन आने पर हम लोग प्रातःकाल ही एक ताँगा लेकर ऋषिकेश की ओर चले। बारह बजे दिन के लगभग हम लोग ऋषिकेश पहुँए गए। वहाँ पहुँच कर पहले तो स्नान किया। तत्पश्चात् भोजन करके महात्मा से मिलने के लिए चले। उत्तर दिशा की ओर पहाड़ के बिलकुल नीचे एक फूस की झोपड़ी थी। इसी झोपड़ी में उक्त महात्मा जी रहते थे। जिस समय हम उनके पास पहुँचे, वह दो-तीन आदमियों से बातें कर रहे थे। हम दोनों उन्हें प्रणाम करके चुपचाप एक ओर बैठ गए। जब अन्य व्यक्ति चले गए और केवल हम ही दोनों रह गए तो उन महात्मा ने हमारी ओर देखकर कहा—कहिए, आप लोग कहाँ से आए हैं?

मैंने उत्तर दिया—यह मेरे मित्र तो हरद्वार ही में रहते हैं और मैं लखनऊ से आया हूँ।

महात्मा मुस्करा कर बोले—इधर घूमने-फिरने आए होंगे?

मैंने कहा—आया तो मैं हरद्वार तक ही था; पर आपका नाम सुन कर मुझे यहाँ भी आना पड़ा।

"मेरा नाम सुनकर!"

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"जी हाँ।"

"मैं तो ऐसा आदमी नहीं हूँ, जो मेरा नाम ऐसा विख्यात हो।"

"हमारे लिए तो आप ऐसे ही हैं।"

"आप क्या करते हैं?"

मैंने पूर्व-निश्चय के अनुसार उत्तर दिया—मैं पुलीस-ट्रेनिङ्ग में हूँ।

पुलीस-ट्रेनिङ्ग का नाम सुनते ही उनका मुख गम्भीर हो गया। कुछ क्षणों तक सोचने के पश्चात् उन्होंने कहा—क्यों, आपको कोई अन्य व्यवसाय न सूझा। पुलीस-ट्रेनिङ्ग में क्यों गए?

"माता-पिता की इच्छा ऐसी ही थी।"

महात्मा ने कहा—यदि आप मेरी सलाह मानें, तो पुलीस की नौकरी कदापि न करें।

"क्यों?"

"इसका कारण है। मैं स्वयम् पुलीस में था और पुलीस की नौकरी में मुझे जो अनुभव हुए हैं, उनके बल पर मैं आपसे कहता हूँ कि आप पुलीस में नौकरी करने की इच्छा छोड़ दें। पुलीस में सहृदय आदमी का काम नहीं है। उसमें वही आदमी निभ सकता है जो हृदयहीन हो।"

"सम्भव है, आपका कथन ठीक हो, पर पुलीस के सभी व्यक्ति हृदयहीन नहीं होते।"

"जो नहीं होते वह उसमें अधिक दिन नहीं टिकते। टिकते वही हैं जिनका हृदय पत्थर का होता है।"

"जहाँ कर्त्तव्य-पालन का प्रश्न होता है, वहाँ मनुष्य को हृदयहीन बनना ही पड़ता है।"

"निस्सन्देह! इसी लिए तो मैं कहता हूँ कि उसमें सहृदय का काम नहीं है।"

"कर्त्तव्य-पालन तो कोई बुरी बात नहीं है।"

"कर्त्तव्य-पालन शब्द कहने-सुनने में तो बड़ा सीधा और सच्चा शब्द है—ऐसा शब्द, जिसके विरुद्ध कुछ कहा ही नहीं जा सकता। पर अनुभव में ऐसे अवसर आ जाते हैं, जब कर्त्तव्य-पालन बहुत ही घृणित मालूम पड़ता है।"

"क्या आप इसका कोई उदाहरण दे सकते हैं?"

"उदाहरण एक नहीं, बीसों हैं!"

"कृपया कोई बताइए।"

महात्मा जी मौन होकर कुछ देर सोचते रहे, तत्पश्चात् एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर बोले—मैं एक अपना निज का अनुभव आपको सुनाता हूँ। यद्यपि मैं वह बात किसी को बताना नहीं चाहता था और न आज तक मैंने किसी को बताई, पर अब प्रसङ्ग ऐसा आगया है कि बिना बताए नहीं बनता, इसलिए बताता हूँ। सुनिए:—

२

मैंने पन्द्रह वर्ष तक पुलीस में नौकरी की है। मैं अनेक स्थानों में रहा और बड़े-बड़े विचित्र मामले देखे, पर एक मामला मेरे साथ ऐसा हुआ कि उसी दिन से मुझे पुलीस की नौकरी से घृणा होगई और मैंने पुलीस की नौकरी छोड़ दी। उस घटना से मुझे केवल पुलीस की नौकरी से ही नहीं, वरन् संसार से ही अरुचि होगई। मैं सन् ××× में ××× ज़िले के सुन्दरपुर थाने में तैनात था। एक रोज़ मुझे रिपोर्ट मिली कि चन्दनपुर ग्राम में एक अहीर की हत्या होगई है। मैं तुरन्त घटना-स्थल पर पहुँचा और तहक़ीक़ात आरम्भ कर दी। तहक़ीक़ात से मुझे पता लगा कि हत्या के दिन से गाँव का एक अहीर ग़ायब है। उसका नाम कालका है। मुझे यह भी मालूम हुआ कि जिसकी हत्या हुई है, उसकी स्त्री पन्द्रह रोज़ पहले कुएँ में गिर कर मर गई थी। मुझे उसके कुएँ में गिरने की रिपोर्ट मिली थी। उस समय गाँव वालों ने यह कहा था कि वह स्त्री कुएँ पर पानी भरने गई थी और पैर फिसल जाने पर कुएँ में गिर पड़ी। मैंने यही बात रोज़नामचे में दर्ज कराकर मामले को छोड़ दिया था।

दो दिन तक तहक़ीक़ात करने पर मुझे पता लगा कि जो अहीर गाँव से ग़ायब है, वह मृत व्यक्ति की स्वर्गीय पत्नी से स्वयम् विवाह करना चाहता था। पर स्त्री के पिता ने उससे विवाह न करके, मृत-व्यक्ति के साथ उसका विवाह किया था, क्योंकि वह अधिक मालदार था। इससे मैंने निष्कर्ष निकाला कि इस हत्या में भागे हुए कालका का कुछ न कुछ हाथ अवश्य है, इसलिए सबसे पहले मैंने कालका की तलाश आरम्भ की। मैंने आस-पास के थानों में कालका का हुलिया इत्यादि सब भेज दिया और उसकी तलाश रखने के लिए सबको आदेश दे दिया।

हत्या के पश्चात् पन्द्रह दिन व्यतीत हो गए; पर कालका का कुछ भी पता न चला। अब मुझे बड़ी

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चिन्ता हुई कि मेरे रहते हुए ख़ूनी साफ़ निकल गया। मैंने भी प्रतिज्ञा की कि चाहे जो हो, मैं उसका पता लगा कर ही छोड़ूँगा। इसके लिए मैंने आस-पास के गाँवों के चौकीदारों पर सख़्ती करना आरम्भ किया, जिसमें वह इस सम्बन्ध में पूरा प्रयत्न करें।

लगभग बीस दिन व्यतीत होने के पश्चात् थाने में एक गाँव का चौकीदार आया और उसने रिपोर्ट दी कि उसके गाँव के पास जङ्गल में दो मुसाफ़िरों को एक व्यक्ति ने लूट लिया और जङ्गल में घुस गया। मैंने उस चौकीदार से पूछा—वह मुसाफ़िर कहाँ हैं?

चौकीदार ने कहा—उनमें का एक आदमी मेरे साथ रिपोर्ट लिखवाने आया है।

मैंने उस आदमी को बुलवाया और उससे डाकू का हुलिया पूछा। उसने जो कुछ बताया, उससे मुझे विश्वास हो गया कि वह डाकू अन्य कोई नहीं, वरन् वही कालका है, जिसकी मुझे तलाश है।

मैं उसी समय तीन-चार कॉन्सटेबिलों को लेकर बताए हुए स्थान की ओर चल दिया। वहाँ पहुँच कर पहले मैंने उस स्थान को देखा, जहाँ मुसाफ़िर लूटे गए थे और फिर जिस ओर मुसाफ़िरों ने डाकू को जाते देखा था, उसी ओर प्रस्थान किया।

जङ्गल बड़ा बीहड़ था, अतएव मैंने अपना घोड़ा तो चौकीदार के हाथ वापस कर दिया और पैदल ही आगे की ओर बढ़ा। लगभग एक मील चलने पर मैंने एक स्थान पर आग के चिन्ह पाए। ऐसा मालूम होता था कि उस स्थान पर किसी ने रात काटी है और भोजन बना कर खाया है। यह देखकर मुझे विश्वास हो गया कि कालका इसी जङ्गल में है। अतएव उसके पैरों के चिन्ह देखते हुए हम लोग आगे बढ़े। लगभग दो मील पर फिर वैसे ही चिन्ह मिले। इसी प्रकार हम लोग दिन भर चले। रात हो जाने पर हम एक स्थान पर ठहर गए और वहीं रात काटी, प्रातःकाल फिर चले। इसी प्रकार हम दो दिन तक उसका पीछा करते रहे। हम लोगों को यह ज्ञान नहीं था कि हम लोग बस्ती से कितनी दूर हैं और किस ओर हैं। हमारे चारों ओर घना जङ्गल था। तीसरे दिन कॉन्सटेबिलों ने कहा—"सरकार, पता नहीं वह किधर हो, इस तरह कब तक मारे-मारे फिरेंगे? हमारी तो सलाह यह है कि लौट चलिए।" परन्तु मुझे विश्वास था कि यदि कालका का पीछा छोड़ दिया गया तो फिर उसका मिलना कठिन हो जायगा, अतएव मैंने उनसे स्पष्ट कह दिया कि जब तक मैं कालका को गिरफ़्तार न कर लूँगा, तब तक वापस न जाऊँगा। इस पर कॉन्सटेबिल बहुत बड़बड़ाए, पर उन्हें मेरी आज्ञा माननी पड़ी।

तीसरे दिन रात के समय जब हम लोग आग जलाए बैठे हुए थे, एक कॉन्सटेबिल हठात् बोल उठा—"यह आग कहाँ जल रही है।" हम सब लोगों ने चौंक कर उस ओर देखा। हमारे स्थान से लगभग दो-तीन फ़र्लांङ्ग की दूरी पर आग जल रही थी। मैं तुरन्त उठ खड़ा हुआ। मैंने कहा—निश्चय, यह आग कालका के स्थान पर है। मैं चुपचाप दबे पैरों उस आग की ओर बढ़ा। मेरे पीछे-पीछे कॉन्सटेबिल भी चले। मैंने अपना पिस्तौल निकाल कर हाथ में ले लिया। हम लोग धीरे-धीरे जा रहे थे। रास्ते में एक नाला पड़ा। मैं उसके किनारे-किनारे जा रहा था कि हठात् मेरा पैर फिसला और मैं नाले में गिरते-गिरते बच गया; पर मेरा पिस्तौल मेरे हाथ से छूट कर नाले में जा गिरा। अँधेरे में उसका मिलना असम्भव हो गया। कुछ देर तक उसकी तलाश की; पर वह नहीं मिला। तब हम लोग उसकी तलाश छोड़ कर आगे बढ़े। अब हमारे पास कॉन्सटेबिलों के डण्डे के अतिरिक्त और कोई हथियार नहीं रह गया। यह देख कर मुझे चिन्ता हुई; परन्तु फिर यह सोचकर सन्तोष हुआ कि वह अकेला है और हम चार आदमी हैं—उसके पास भी अधिक से अधिक केवल एक लाठी ही होगी। यह सोच कर मैं आगे बढ़ता गया।

जब वह स्थान थोड़ी दूर रह गया, तो हमने देखा कि एक आदमी आग के पास सिर झुकाए बैठा है। हठात् एक कॉन्सटेबिल का पैर एक सूखी लकड़ी पर पड़ गया और उसके टूटने का शब्द इतने ज़ोर से हुआ कि उस व्यक्ति ने चौंक कर देखा। उसने हमें देख लिया, क्योंकि वह एकदम उठ कर भागा और अँधेरे में ग़ायब हो गया। मैंने कॉन्सटेबिल को उसकी असावधानी पर बहुत डाँटा; पर वास्तव में वह बेचारा निरपराध था, अँधेरे में उसे क्या पता कि उसका पैर कहाँ पड़ता है। हम लोग उस स्थान पर, जहाँ वह व्यक्ति बैठा था, पहुँच कर वहीं रुक गए।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosh

मैंने सोचा कि इस समय अँधेरे में उसका मिलना असम्भव है, अतएव रात इसी स्थान पार काट कर सवेरे फिर उसकी तलाश करना चाहिए। प्रातःकाल होने पर हम लोग आगे बढ़े। एक कॉन्सटेबिल ने कहा कि रात भर में वह न जाने कितनी दूर निकल गया होगा, परन्तु मुझे यह आशा नहीं थी। मैं जानता था कि ऐसे जङ्गल में आदमी रात में चल ही नहीं सकता। वह अवश्य रात भर कहीं आस-पास छिपा रहा होगा।

हम लोग थोड़ी ही दूर चले होंगे कि एक वृक्ष के नीचे से जाते हुए मेरी दृष्टि दैवयोग से ऊपर उठ गई। मैंने देखा कि एक आदमी उस वृक्ष पर चढ़ा बैठा है। मैंने उसे देखते ही समझ लिया कि हो न हो यह वही है। मैंने उससे कहा—"बस, अब तुम्हारी भागने की कोशिश बेकार है—चुपचाप उतर आओ।" परन्तु उसने मेरी बात पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। यह देख कर मैंने कॉन्सटेबिलों को हुक्म दिया कि वृक्ष पर चढ़ जाओ और उसे पकड़ लो। मेरे आज्ञानुसार कॉन्सटेबिलों ने वृक्ष पर चढ़ना आरम्भ किया। यह देख कर कालका ने अपनी कमर से एक कुल्हाड़ी निकाल कर अपने हाथ में ले ली और कहा—जो मेरे पास आएगा, मैं इस कुल्हाड़ी से उसका सिर फाड़ दूँगा।

यह देख कर कॉन्सटेबिल उतर आए और बोले—सरकार, उसके हाथ में कुल्हाड़ी है, हम नहीं जायँगे।

मैंने भी सोचा कि कालका ख़ूनी है। उसके लिए दूसरा ख़ून कर देना कोई बड़ी बात नहीं। इसलिए बेचारे कॉन्सटेबिलों की जान क्यों ख़तरे में डाली जाय। मैंने कहा—अच्छा, इसी पेड़ के नीचे डेरा डाल दो। देखें यह कब तक ऊपर चढ़ा बैठा रहता है।

हम लोग उसी पेड़ के नीचे बैठ गए। कालका भी इतना हठी निकला कि एक दिन और एक रात पेड़ से नहीं उतरा। दूसरे दिन दोपहर के समय उसने पहले ऊपर से कुल्हाड़ी फेंक दी और फिर स्वयं उतरने लगा। हम लोग उठ कर खड़े हो गए और ज्योंही उसने नीचे भूमि पर पैर रक्खा त्योंही उसे गिरफ़्तार कर लिया। उसने पहले तो पीने के लिए पानी माँगा। पानी उसे दिया गया। पानी पीकर वह बोला—"मैंने तीन दिन से एक दाना भी मुँह में नहीं डाला। भूख के मारे मैं मरा जा रहा हूँ।" हम लोगों के पास भुने चने थे, वही उसे दिए गए।

अब सुनिए। उसको हथकड़ी लगाने के लिए जो कहा गया तो कॉन्सटेबिल अपनी जेबें टटोल कर बोला—सरकार हथकड़ी तो थाने में ही रह गई।

मुझे उस समय बड़ा क्रोध आया। मैंने कॉन्सटेबिलों को बुरा-भला कहना आरम्भ किया। यह देख कर कालका बोला—सरकार, आप हथकड़ी के लिए इतनी चिन्ता क्यों करते हैं। मैं अब भागूँगा नहीं। आपके साथ चुपचाप चला चलूँगा। मैं अहीर हूँ और गऊ माता की क़सम खाकर कहता हूँ कि मैं कभी नहीं भागूँगा, आप बेफ़िक्र रहिए।

मैंने ध्यानपूर्वक देखा। उसके मुख का भाव देख कर मुझे विश्वास हो गया कि वह सच कहता है। मैंने उसे बिलकुल स्वतन्त्र रक्खा—रस्सी से भी नहीं बँधवाया, यद्यपि एक कॉन्सटेबिल के पास एक छोटी रस्सी थी, जिससे उसके हाथ बाँधे जा सकते थे, परन्तु मुझे उसकी बात पर विश्वास था।

उसके सावधान होने पर मैंने उससे पूछा—क्यों कालका, तुमने उस अहीर का ख़ून किया?

कालका बोला—हाँ सरकार, मैंने ख़ून किया।

मैंने पूछा—क्यों?

इसके उत्तर में उसने कहना आरम्भ किया :—

३

"सरकार, जिसका ख़ून मैंने किया, उसका नाम लछमन था। किसी समय में मेरी उसकी मित्रता थी। हमारे गाँव में रुकिया नाम की एक अहीर की लड़की थी। मैं उसे जी-जान से चाहता था। वह भी मुझे बहुत चाहती थी। हम दोनों यही स्वप्न देखा करते थे कि एक दिन हमारा विवाह होगा, पर ईश्वर को यह मञ्ज़ूर नहीं था। उसके बाप ने लछमन से कुछ रुपए लेकर रुकिया का ब्याह उसके साथ कर दिया। मैं बहुत दुखी हुआ, पर क्या कर सकता था। थोड़े दिनों पश्चात् लछमन ने उसे मारना-पीटना आरम्भ किया। ज़रा-ज़रा सी बात पर बड़ी बेदर्दी से पीटता था। एक दिन रुकिया मुझे रास्ते में मिली और मुझे देख कर रोने लगी। मैंने उससे रोने का कारण पूछा तो उसने मुझे अपनी पीठ खोल कर दिखाई। उसकी पीठ पर डण्डों के काले-काले चिह्न पड़े हुए थे। यह देख कर मेरा कलेजा हिल गया।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिसके लिए मैं अपने प्राण तक दे सकता था, उसकी यह दशा! मैंने उसको धैर्य देकर घर भेजा और सीधा लछमन के पास पहुँचा। मैंने उससे कहा—लछमन! तुम मेरे मित्र थे, यद्यपि अब मैं तुम्हें मित्र की दृष्टि से नहीं देखता। रुक्किया को मैं जी-जान से चाहता हूँ, यह तुम जानते हो, पर ईश्वर ने वह रत्न तुम्हारे भाग्य में लिखा था; इसलिए मैं कलेजा मसोस कर चुप हो रहा। लेकिन तुमने उस रत्न की परख नहीं की—तुम उसे इस बेदर्दी से पीटते हो। याद रखना, अब जो कभी तुमने उस पर फूल की छड़ी भी उठाई तो मैं तुम्हें मार कर गाड़ दूँगा। यह मैं जानता हूँ कि वह मेरी नहीं, तुम्हारी चीज़ है; पर मेरा हृदय उसी के साथ है, इसलिए सावधान रहना।

यह कह कर मैं चला आया। इसके एक हफ़्ते बाद एक दिन लछमन ने फिर उसे पीटा। इसका नतीजा यह हुआ कि रुक्किया पानी भरने के बहाने गई और उसने कुएँ में कूद कर अपने प्राण दे दिए।

मैंने कालका की ओर आश्चर्य से देख कर कहा—अच्छा तो वह स्वयं कुएँ में कूदी थी?

कालका ने कहा—जी सरकार!

"पर गाँव वाले तो कहते थे कि पैर फिसल गया।"

"ऐसा न कहते तो आप लोग तङ्ग करते; इसीलिए सबने यह कह दिया था।"

"अच्छा फिर?"

"मैं उस समय अपने ननिहाल गया हुआ था, पन्द्रह रोज़ बाद लौटने पर मुझे यह ख़बर मिली कि लछमन ने रुक्किया को पीटा था, सो उसने कुएँ में कूद कर जान दे दी। यह सुनते ही मेरा ख़ून खौलने लगा। मैं रञ्ज और क्रोध से पागल हो गया। मैंने कुल्हाड़ी उठाई और सीधा चरागाह में पहुँचा—वहाँ लछमन अपने जानवर चरा रहा था! मैंने उसके सामने पहुँच कर कहा—"क्यों लछमन, तुमने रुक्किया के प्राण ले लिए! अब होशियार हो जाओ, मैं तुम्हारी जान लेने आया हूँ। मैंने तुम्हें मना किया था; पर तुमने उसे हँसी समझा। अब आज तुम्हें पता लगेगा कि वह कैसी हँसी थी।" यह सुन कर लछमन मुझे गालियाँ देने लगा। सरकार, वह यदि तनिक सा भी अफ़सोस प्रकट करता तो शायद मैं उसकी जान न लेता; पर वह उल्टा मुझे गालियाँ देने लगा। यह देख कर मैं क्रोध के मारे अन्धा हो गया और मैंने कुल्हाड़ी से उसका सिर फाड़ डाला। उसके भूमि पर गिरते ही मैं वहाँ से लम्बा हुआ और सीधा इस जङ्गल की ओर आया। यहाँ आकर मैं दो दिन यहीं छिपा रहा। जब भूख से व्याकुल हो गया तो एक दिन सड़क पर पहुँचा और दो मुसाफ़िरों को लूट कर मैंने खाने का सामान जुटाया और उससे गुज़र करता रहा, उसके बाद आप आए। आगे जो कुछ हुआ, वह आप जानते ही हैं।"

कालका का यह बयान सुनकर मैं बहुत प्रभावित हुआ। उसी समय से मैंने उसे एक साधारण ख़ूनी की दृष्टि से देखना छोड़ दिया। मुझे उसके साथ सहानुभूति उत्पन्न हो गई। हम लोग कालका को लेकर चले। रास्ते में हमें कैसी-कैसी मुसीबतें झेलनी पड़ीं, इसका बयान नहीं किया जा सकता! हम लोग रास्ता भूल गए, कालका ने हमें रास्ता बताया। यदि वह रास्ता न बताता तो शायद हम उसी जङ्गल में भटक कर मर जाते, क्योंकि हमारे पास खाने का सामान सब ख़त्म हो गया था। रात को हम लोग सो रहते थे, कालका कुल्हाड़ी लिए पहरा दिया करता था। क्या कभी आपने सुना है कि कोई क़ैदी अपने गिरफ़्तार करने वालों की रक्षा करे? एक दिन एक काले सर्प से कालका ने मुझे बचाया। यदि कालका दौड़ कर उसे न मार देता तो वह निश्चय मुझे काट खाता और मेरा अन्त उसी जङ्गल में हो जाता। कालका यदि चाहता तो एक बार नहीं, सौ बार भाग खड़ा हो सकता था—और ऐसी दशा में, जब कि हम उसका पीछा भी नहीं कर सकते थे; पर वह अपनी ज़बान का पाबन्द था। उसने जो कुछ कहा था उससे कहीं अधिक कर दिखाया।

ज्यों-ज्यों थाना निकट आता था, मेरे हृदय में एक ग्लानि का जन्म होता जा रहा था। "मैं ऐसे सच्चे और बहादुर आदमी को फाँसी पर लटकाने के वास्ते लिए जा रहा हूँ।" यह विचार रह-रह कर मेरे हृदय में उठता था। यदि कालका चाहता तो हम सबको वहीं ख़त्म करके चल देता—"ऐसे आदमी को मैं फाँसी के तख़्ते की भेंट देने के लिए लिए जा रहा हूँ।" उसी समय से मुझे पुलीस के महकमें से घृणा सी होने लगी।

(शेष मैटर ७९१ पृष्ठ पर देखिए)

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri G...

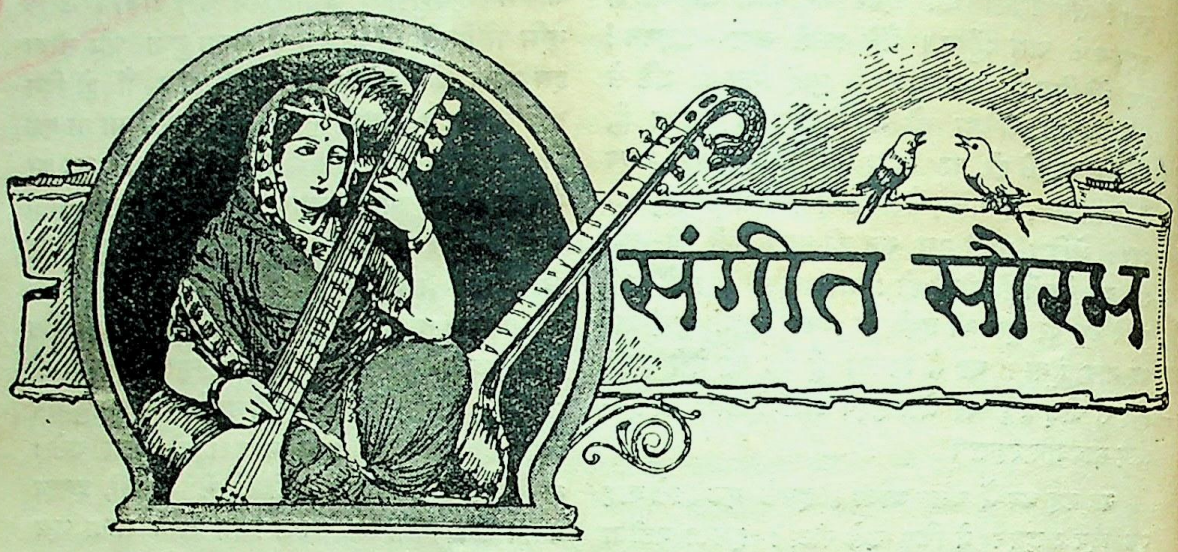

[सम्पादक तथा स्वर-लिपि-कार—श्री० किरणकुमार मुखो-पाध्याय (नीलू बाबू)]

राग केदारा दादरा

(मात्रा ६)

[शब्दकार—अज्ञात]

स्थायी—दीनन दुख हरत देव,
सन्तन हितकारी।

अन्तरा—ध्रुव के सर छत्र देत,
प्रह्लाद को तार लेत,
भक्तन हित बाँधो सेत,
लङ्कापुर जारी॥

स्थायी

×		०		×				०			
नि	स	म	ग	म	प	म	प	ध	प	म	म
दी	ई	न	न	दु	ख	ह	र	त	दे	ए	व
०				त		त			त		
स	—	ध	प	म	प	मप	धस	निध	मप	धप	म
सं	—	त	न	हि	त	काआ	आआ	आअ	आ	आ	री

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्तरा

प	प	सं	—	सं	रें	सं	—	सं	सं	रें	सं
ध्रु	व	के	—	स	र	छ	—	त्र	दे	प	त
सं	नि	ध	—	सं	रें	सं	नि	ध	प	म	म
प्र	ल	हा	—	द	को	ता	आ	र	ले	प	त
म	—	म	म	प	प	ध	नि	ध	प	म	प
भ	—	क्त	न	हि	त	बाँ	आँ	धो	से	प	त
सं	—	रें	सं	नि	ध	मप	धप	मग	मरे	सरे	स
लं	—	का	आ	पु	री	जाअ	आ	आ	आ	आ	री

नोट :—इस राग में दोनों मध्यम और बाक़ी शुद्ध स्वर लगते हैं, कभी दोनों निषाद भी लगते हैं।

[७८९ पृष्ठ का शेषांश]

निश्चित समय पर कालका का विचार हुआ। उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया और उसे फाँसी का दण्ड दिया गया। मैंने उसकी भलमनसाहत का समस्त वृत्तान्त भी कोर्ट के सामने पेश किया; परन्तु उस पर कुछ भी ध्यान न दिया गया। बस, उसी दिन से मुझे पुलीस-विभाग से घृणा हो गई और मैंने इस्तीफ़ा दे दिया। इस्तीफ़ा देने के पश्चात् मैं कुछ दिन घर पर रहा, परन्तु मुझे कालका की याद नहीं भूलती थी। मेरे हृदय में यह धारणा उत्पन्न हो गई कि मैंने उसे गिरफ़्तार करके अच्छा नहीं किया। घर पर मेरा जी नहीं लगा, इसलिए मैं यहाँ चला आया। अब यहाँ कुछ दिन रहकर जब चित्त ठिकाने आ जायगा तो चला जाऊँगा।"

मैंने कहा—वास्तव में बड़ी विचित्र बात है। ऐसे आदमी को तो साफ़ छोड़ देना चाहिए था।

भूतपूर्व थानेदार साहब बोले—न्याय तो यह बात नहीं देखता—वह तो जीव के बदले जीव चाहता है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि आप पुलीस-विभाग में जाने का इरादा कदापि न करें।

मैंने कहा—क्षमा कीजिए, मैंने आपका वृत्तान्त जानने के लिए ही यह कहा था—मैं पुलीस-ट्रेनिङ्ग में कदापि नहीं हूँ।

थानेदार साहब हँसकर बोले—अच्छा! तब तो आपने मुझे अच्छा चकमा दिया। ख़ैर, जब आप इतने उत्सुक थे कि उसके लिए झूठ तक बोले तो मुझे भी आपको अपना यह वृत्तान्त सुनाने का अफ़सोस नहीं है।

हारमोनियम बजा कर सङ्गीत सीखने के लिए नीलू बाबू की

शिक्षक सङ्गीत-सार-संग्रह

प्रथम भाग १।) द्वितीय भाग १॥), डाक-ख़र्च अलग देकर मँगा लीजिए—

पता—मैनेजर 'चाँद' कार्यालय, २८ एडमॉन्सटन रोड, इलाहाबाद

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosh

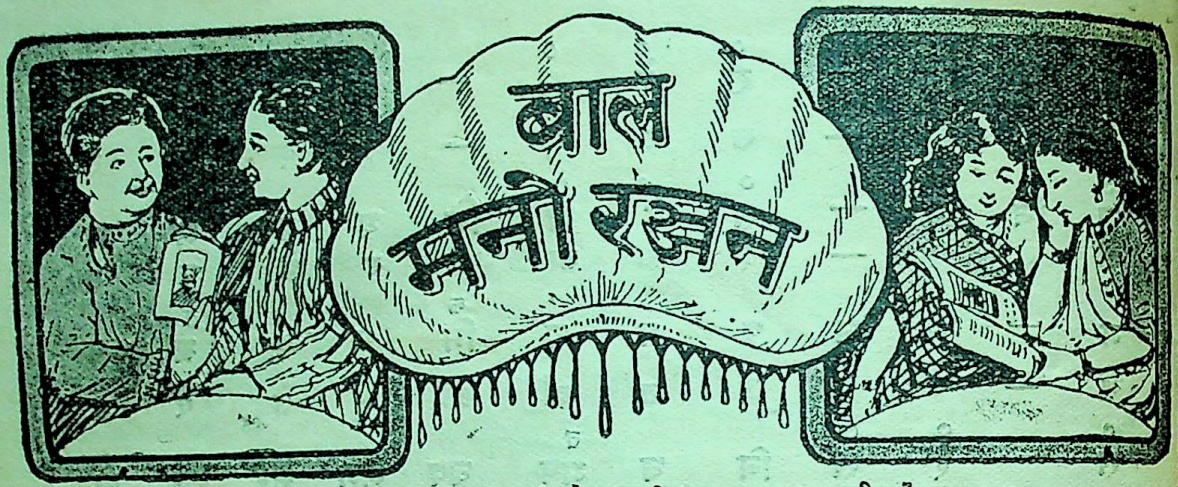

[ले० श्री० हनुमानप्रसाद जी गोयल, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

वैटिकान

ईसाई-धर्म में रोमन-कैथोलिक सम्प्रदाय के सबसे बड़े पादरी, जिन्हें पोप कहते हैं, इटली के रोम नगर में रहते हैं। इनका निवास-स्थान 'वैटिकान' नामक महल में है, जो संसार भर में सबसे बड़ा प्रासाद है। इस मकान में कम से कम एक सहस्र बड़े-बड़े कमरे और हॉल हैं और यह लगभग १४ एकड़ ज़मीन पर बना है। इसके गिरजाघर, अजायबघर एवं पुस्तकालय विद्या और कलाकौशल के अक्षय-भण्डार हैं।

* * *

चीन की दीवार

यह विचित्र दीवार चीन के उत्तर-पश्चिमीय सरहद पर १,३०० मील लम्बी बनी है। इसे क़रीब दो हज़ार वर्ष हुए चीनियों ने तातारियों के हमलों से अपनी रक्षा करने के लिए बनाया था। चीन की राजधानी पीकिन में यह दीवार लगभग ४० फ़ीट ऊँची है और चौड़ी भी इतनी है कि दो गाड़ियाँ इसके ऊपर बराबर से एक साथ चल सकती हैं। किन्तु अन्य स्थानों में इसकी उँचाई बहुत कम है, यहाँ तक कि २० फ़ीट से भी कम है और चौड़ाई भी अधिक नहीं है। बीच-बीच में ख़ाली स्थान भी छूट गए हैं, जो आधी या चौथाई मील तक लम्बे हैं; किन्तु फिर भी यह संसार की सबसे लम्बी विचित्र और ऐतिहासिक दीवार है, जिसे देखने के लिए लोग दूर-दूर से आया करते हैं।

* * *

ताजमहल

यह अद्वितीय और शानदार इमारत आगरा शहर में मुग़ल बादशाहों की शक्ति और महानता का स्मरण करा रही है। इसे शाहजहाँ ने अपनी प्यारी बेगम मुम्ताज़महल की मृत्यु पर उसके स्मृति-स्वरूप बनवाया था। इसके भीतर शाहजहाँ और उनकी बेगम दोनों ही की क़बरें हैं। आज तक संसार में ऐसी ख़ूबसूरत इमारत कहीं नहीं बनी। यह आदि से अन्त तक ख़ालिस सफ़ेद सङ्गमर्मर की बनी है। इसकी तमाम दीवारों पर भाँति-भाँति की सुन्दर चित्रकारी के काम हैं, जिनमें बहुमूल्य जवाहरात भी जड़े थे, जो अब शायद निकाल लिए गए हैं। इसमें एक और उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसका रूप-रङ्ग अब भी वैसा ही ताज़ा और चमकदार है, जैसा कि वह आरम्भ में था। समय का प्रभाव इस पर बिलकुल नहीं पड़ा है।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस अपूर्व इमारत के बनाने में लगभग तीन करोड़ रुपए व्यय हुए थे और क़रीब २०,००० कारीगरों को बीस वर्ष तक काम करना पड़ा था। इसे देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते हैं; और देख कर आश्चर्य करते हैं। जितने फ़ोटो आज तक इस इमारत के लिए जा चुके हैं, उतने शायद संसार में किसी के भी नहीं लिए गए, किन्तु फ़ोटो अथवा चित्र द्वारा इसकी सुन्दरता एवं महानता का अनुमान करना कठिन है। उजाली रात में जिस समय चन्द्रमा की शुभ्र किरणें इसके सफ़ेद सङ्गमर्मर पर पड़ती हैं, तो उस पर एक दैवी सुन्दरता आ जाती है।

* * *

कैटाकूम्स अर्थात् रोम की सुरङ्ग

ये सुरङ्गें रोम नगर से दो-तीन मील की दूरी पर मीलों लम्बी चली गई हैं। प्राचीन काल में इनमें मुर्दे गाड़े जाते थे और यहीं पर ईसाई लोग आरम्भ में विधर्मी शासकों के अत्याचारों से बचने के लिए अपनी पूजा-प्रार्थना भी करते थे। इसका भीतरी दृश्य बड़ा प्रभावोत्पादक है। लम्बी-लम्बी सुरङ्गों के भीतर क़तार की क़तार, जहाँ तक आँखें जाती हैं, प्राचीन ईसाइयों की क़बरें ही दीख पड़ती हैं। प्रत्येक क़ब्र के पत्थर पर छोटे-मोटे लेख भी खुदे हुए हैं।

* * *

स्वतन्त्रता की मूर्ति

यह मूर्ति संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के न्यूयार्क नगर के समीप बेडलो नाम के एक छोटे से टापू पर खड़ी की गई है, जहाँ यह अपनी ओर आने वाले जहाज़ों पर से दूर ही से दीखने लगती है। इसकी उँचाई १५१ फ़ीट है और केवल मूर्ति ही का वज़न १०० टन है। जिस पर यह मूर्ति खड़ी है, उस चबूतरे का मूल्य ७०,००० पाउण्ड अर्थात् क़रीब साढ़े दस लाख रुपए हैं, और मूर्ति का मूल्य भी ५०,००० पाउण्ड अर्थात् क़रीब साढ़े सात लाख रुपए हैं। इस मूर्ति के एक हाथ में मशाल है, जो मीलों की दूरी से दिखाई पड़ता है। यह मूर्ति सन् १८८३ में फ़्रान्स द्वारा अमेरिका को भेंट-स्वरूप दी गई थी। इसका निर्माता फ़्रान्स का आँगस्ट बथौल्डी (Auguste Bartholdi) नामक शिल्पकार था। संसार में यह मूर्ति अपने ढङ्ग की सब से ऊँची है। इसे Statue of Liberty कहते हैं।

* * *

दुनिया की सबसे ऊँची मीनार

यह मीनार पेरिस नगर में १५० गज़ लम्बे-चौड़े एक चबूतरे पर खड़ी है। इसकी ऊँचाई लगभग १,००० फ़ीट के है। इसका निर्माता गस्टेव ईफ़ेल (Gustave Eiffel) नामक मनुष्य था, जिसके नाम पर ही इस मीनार का भी नाम ईफ़ेल मीनार (Eiffel Tower) रक्खा गया। इसकी बुनियाद सन् १८८७ में पड़ी थी और सन् १८८९ में यह बन कर तैयार हो गई।

यह मीनार निरी लोहे की बनी है और इसमें तीन मञ्ज़िलें हैं। पहली मञ्ज़िल १९० फ़ीट, दूसरी ३८० फ़ीट, और तीसरी ९०५ फ़ीट, ज़मीन से ऊँची है। इस तीसरी मीनार पर एक काँच का सायबान है, जिसके नीचे सैकड़ों मनुष्य एक साथ बैठ सकते हैं। मीनार की बिलकुल चोटी के ऊपर बिजली की एक रोशनी रहती है, जो क़रीब ५० मील के इर्द-गिर्द से दिखाई पड़ती है। दूसरी और तीसरी मञ्ज़िलों में खाने-पीने के लिए बड़े-बड़े कमरे हैं और मीनार के नीचे भी एक नाटक-घर और एक भोजनालय है।

* * *

संसार का सबसे बड़ा घण्टा

यह घण्टा रूस देश के मॉस्को नामक नगर में है और इसे "ज़ारकोलोकोल" (Czar Kolokol) कहते हैं। कहा जाता है कि यह सन् १६५३ ई० में बना था। सन् १७३७ ई० में अग्नि-प्रकोप के

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

कारण यह घण्टा ज़मीन पर गिर कर चटख़ गया और सौ वर्ष तक उसी स्थान पर ज्यों का त्यों पड़ा रहा। अन्त में सन् १८३७ में इसके नीचे की ज़मीन खोद कर वहाँ एक गिरजाघर तैयार किया गया और यह घण्टा उसी गिरजाघर का गुम्बज़ बन गया।

इसके अतिरिक्त एक दूसरा घण्टा भी, जो अब तक बजने वाले घण्टों में सबसे बड़ा गिना जाता है, इसी मॉस्को नगर में है। इसका नाम New Bell अर्थात् 'नवीन घण्टा' है। यह सन् १८१७ में बना था और इसका वज़न १२५ टन है। यह इस नगर के एक मीनार में टँगा है। संसार के और भी बड़े-बड़े घण्टे रूस ही देश में अधिकतर पाए जाते हैं।

* * *

संसार का सबसे लम्बा पुल

यह स्कॉटलैण्ड के डण्डी शहर में 'टे' नामक नदी के ऊपर बना है। इसकी लम्बाई १०,००० फ़ीट से भी अधिक है। इसके सम्बन्ध में एक बड़ी करुण कथा है। वस्तुतः इसके पहले इसी स्थान पर एक दूसरा पुल था, जो सर टॉमस बाउश के द्वारा बनाया गया था। सन् १८७९ में एक दिन आँधी के ज़ोर से इसका क़रीब ३,००० फ़ीट लम्बा एक टुकड़ा निकल गया और एक भरी हुई पैसेञ्जर गाड़ी, जो उसी समय उस पर से जा रही थी, नीचे नदी में जा गिरी, जिससे क़रीब ८० मनुष्य डूब गए। इस घटना का असर उस पुल के निर्माता पर इतना पड़ा कि उसकी भी शीघ्र ही मृत्यु हो गई। उसके बाद यह नया पुल सन् १८८७ में खोला गया।

* * *

सबसे भारी पुल

इसका नाम "फ़ोर्थब्रिज" (Forth Bridge) हैं और यह सन् १८८२-८९ में बृटिश टापू में फ़ोर्थ की खाड़ी के ऊपर बनाया गया था। यह पुल यद्यपि लम्बाई में 'टे' के पुल से कुछ कम है अर्थात् केवल ८,२९० फ़ीट लम्बा है, किन्तु भारी और बड़ा उससे कहीं अधिक है। इसका निर्माण जॉन फ़ाउलर तथा सर बेञ्जिमिन बेकर नाम के दो प्रसिद्ध इञ्जीनियरों ने किया था और इसे तैयार करने के लिए ४,००० मनुष्यों की ७ वर्ष तक आवश्यकता पड़ी थी।

* * *

पीपे का सबसे लम्बा पुल

कलकत्ते का पन्टून ब्रिज संसार भर में पीपे का सबसे लम्बा पुल है। यह हुगली नदी के ऊपर बना है।

दुख की राह में—

[रचयिता—श्री० रामलोचन जी शर्मा 'कण्टक']

(१)

चिन्ता-विरह-वेदना-आशा—
पथ के पथिक धन्य हैं धन्य।
सञ्जीवन की सीख सीखते—
हैं जिनके कर्मों से अन्य।

(२)

अग्नि-कुण्ड में तप कर जैसे—
पाता कनक अग्नि सी कान्ति।
यह पथ पथिक पार कर वैसे—
पाते सकल काम्य सुख शान्ति।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महात्मा थेल्स को प्रत्येक शिक्षित समाज जानता है। वे 'ग्रीस देश के दर्शन शास्त्र' (Greek Philosophy) के जन्मदाता और 'सप्त पण्डितों' में सर्वश्रेष्ठ थे। उनका जन्म सातवीं शताब्दी (B. C.) में हुआ था। वे अपने भाग्य को तीन बातों के लिए सराहते थे—पहली यह कि उनका जन्म मनुष्य-श्रेणी में हुआ था, दूसरी यह कि वे पुरुष थे और तीसरी यह कि वे ग्रीसवासी थे। उनकी उक्तियाँ बड़ी ही सरल और चित्तरञ्जक हैं :—

१—तुम अपने आपको पहचानो।

२—बाचालता मूर्खता का एक लक्षण है।

३—संसार से अधिक सुन्दर कोई वस्तु नहीं है।

४—सबसे विस्तृत वस्तु स्थान है, क्योंकि यह सर्व पदार्थों का आधार है।

५—सबसे बलवान् वस्तु आवश्यकता है।

६—सबसे बुद्धिमान् वस्तु समय है, क्योंकि सब चीज़ों का आविष्कार और निर्माण यही करता है।

७—परमेश्वर सब प्राणियों से पुराना है, क्योंकि वह अनादि है।

८—मन सबों से तीव्रगामी है, क्योंकि वह क्षण-भर में सम्पूर्ण संसार में भ्रमण कर लेता है।

९—दुष्टों के पाप-कर्म का छिपना तो दूर रहे, उनका मनोगत-विचार भी परमात्मा से नहीं छिप सकता।

१०—छल-कपट से धनी होने का यत्न न करो।

११—विद्यमान और अनुपस्थित मित्रों को समान दृष्टि से देखो।

१२—दूसरों को उपदेश देने से बढ़ कर सहल काम संसार में दूसरा कोई नहीं है।

१३—शरीर को भूषित करने में अधिक समय नष्ट न करो, अपनी-अपनी बुद्धि को अलंकृत करने की चेष्टा करो।

१४—मनुष्य अपनी विपत्ति को धैर्यपूर्वक सह सकता है, यदि उसका शत्रु उससे भी बुरी दशा में हो।

१५—मनुष्य अकपट और शुद्ध भाव से जीवन व्यतीत कर सकता है, यदि वह उन कर्मों को न करे, जिनके करने से वह दूसरों की निन्दा करता है।

१६—जो नीरोग, धनी, विद्वान् और बुद्धिमान् है, वही इस संसार में सुखी है।

१७—माता-पिता को अपनी सन्तान से उसी प्रकार के व्यवहार की प्रतीक्षा करनी चाहिए, जैसा कि उन्होंने अपने माता-पिता के साथ किया है।

* * *

दूसरे महापुरुष 'मारकस ऑरेलियस अनटोनियस' हैं। इनका जन्म सन् १२१ ए० डी० में हुआ था। इनकी प्रगाढ़ विद्वत्ता और कीर्त्ति विद्वानों से छिपी नहीं

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

है। इनका एक-एक उपदेश स्वर्णाक्षरों में लिख कर गले का हार बनाने योग्य है। उनमें से कुछ यहाँ पर पाठकों के सम्मुख उपस्थित किए जाते हैं :—

१—अपने आदर्श को सदा उच्च रक्खो और उसकी सिद्धि के लिए तन-मन से लीन रहो।

२—किसी के गुणों की प्रशंसा करने में अपना समय व्यर्थ नष्ट न करो, उसके गुणों को अपनाने का प्रयत्न करो।

३—मनुष्य का जन्म एक दूसरे की सहायता करने के लिए हुआ है। इसलिए संसार का सुधार करो या जिस दशा में वह है, उसी दशा में अपना जीवन निर्वाह करो।

४—अपने शरीर को एक अन्तरीप समझो, जिसमें समुद्र की लहरें दिन-रात टकराया करती हैं, लेकिन तब भी वह अपने स्थान को नहीं छोड़ता। इसी प्रकार जितनी आपत्तियाँ तुम पर आवें, सबों को वीरता के साथ सहन करो और उनसे विचलित न हो।

५—अपनी बुराइयों को न छोड़ कर, दूसरों के दोषों से बचने का प्रयास करना मूर्खता है।

६—सदाचारी होना हमारा धर्म है। मैं मरकत मणि हूँ। संसार जो कुछ करना चाहे करे, जो कुछ कहना चाहे कहे, किन्तु मैं मृत्यु तक मरकत ही रहूँगा, अपना रङ्ग कभी नहीं छोड़ूँगा।

—लक्ष्मीप्रसाद द्विवेदी

* * *

जब मैं प्रेम से परमेश्वर की लीला गाता हूँ, तब वे मङ्गल-कीर्ति पूज्यपाद मेरे हृदय में ऐसे शीघ्र दर्शन देते हैं, जैसे किसी के बुलाने से कोई शीघ्र आ जाय।

—भगवान नारद

पाप-चित्त वाले दूसरों के दुर्गुण खोजने में जैसे तत्पर रहते हैं, वैसे उनके कल्याणकारी गुणों के लिए नहीं रहते।

—महात्मा विदुर

जितनी प्रिय वस्तुएँ हैं, उनमें आत्मा ही प्रधान है और भगवान् हरि ही सब में आत्मा-रूप से स्थित हैं, अतः उनसे बढ़ कर प्रिय वस्तु और कौन हो सकती है।

—भगवान् नारद

चन्द्रमा और हिमालय पर्वत भी इतने शीतल नहीं, कदली-वृक्ष और चन्दन भी इतने शीतल नहीं, जितना तृष्णा-रहित चित्त शीतल रहता है।

—भगवान् वशिष्ठ

जो स्थिर-चित्त पुरुष कर्म-फल की इच्छा छोड़ कर काम करता है, उसे परम शान्ति मिलती है। परन्तु जो स्थिर-चित्त नहीं है और फलों की कामना में मन लगाए हुए काम करता है, वह कर्म-बन्धन में बँध जाता है।

—भगवत्गीता

छोटे से छोटे काम को भी तुच्छ दृष्टि से नहीं देखना चाहिए।

—स्वामी विवेकानन्द

नियम और संस्थाएँ मनुष्यों के लिए हैं, मनुष्य नियमों और संस्थाओं के लिए नहीं है।

—स्वामी राम

जो पवित्र हैं वे ही हर्षपूर्ण हैं। पाप-इच्छा से लड़ने में अशान्ति और दुख है, परन्तु सत्य की परिपूर्णता और सत्य के मार्ग में स्थायी हर्ष और आनन्द है।

—जेम्स ऐलन

वही जाति अधिक बलवती होती है, जिसमें आत्म-निर्भरता का गुण हो।

—विलियम जॉर्ज गार्डन

कोई भी वस्तु निरर्थक और तुच्छ नहीं है, वह अपनी स्थिति में सर्वोत्कृष्ट है।

—लॉङ्ग फ़ेलो

शान्ति के साथ सोओ और सानन्द उठो।

—शेक्सपियर

महत् कार्यों की मृत्यु नहीं हो सकती। वे सूर्य और चन्द्र के साथ अपने प्रकाश को नित नवीन करते रहते हैं।

—टेनिसन

मित्रता स्वयं एक पवित्र बन्धन है। विपत्ति से वह अधिक पावन हो जाती है।

—ड्राइडन

मित्रता दैवी देन है और मनुष्यों के लिए अत्यन्त बहुमूल्य वरदान है।

—डिसरायली

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सब पर प्रेम करो, थोड़े पर विश्वास करो, किसी को हानि न पहुँचाओ।

—शेक्सपियर

उदार हृदयी बनने के पहले मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह न्यायी बने।

—डीकेन्स

जो भली-भाँति रहता है, उसके लिए प्रत्येक प्रकार का जीवन अच्छा है।

—जॉन्सन

पवित्र रहो, सत्य बोलो, भूल सुधारो।

—टेनिसन

यदि मनुष्य सीखना चाहे तो उसे उसकी प्रत्येक भूल कुछ न कुछ शिक्षा दे सकती है!

—डीकेन्स

वर्ष बीत रहा है, बीतने दो। असत्य की झङ्कार बन्द करके सत्य की झङ्कार प्रारम्भ करो।

—टेनिसन

सदैव धूप ही बनी रहेगी, ऐसी आशा मत करो। सदैव बादल ही घिरे रहेंगे, मत डरो।

—बर्न्स

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न देखा कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझ-सा बुरा न कोय॥

—कबीर

धनि रहीम जल कूप को, लघु जन पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत् पियासो जाय॥

—रहीम

जड़ चेतन गुण दोष मय, विश्व कीन्ह करतार।
सन्त हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार॥

—तुलसी

—बालकृष्णभट्ट

(सङ्कलनकर्ता)

नाविक का गान

[रचयिता—श्री० हरीन्द्रनाथ जी चट्टोपाध्याय]

(१)

तरुण अरुण में रञ्जित धरणी,
नभ लोचन हैं लाल!
मृदु समीर में नाचे तरणी,
नदी बजावे ताल!!

(२)

चले धरा के बन्धन तोड़,
छाया चुम्बित तट को छोड़!
नव प्रभात लाली के सन्मुख,
चढ़ा हुआ है पाल!!

(३)

हमें नहीं है धन की आस,
है स्वच्छन्द हमारा हास!
रिझा नहीं सकता है हमको,
जग-माया का जाल!!

(४)

शोक-नदी में देह-तरी को,
तैराना तुम विधि से सीखो!
जलद कटेंगे दिन क्यों उनको,
भला रहे हो टाल!!

(५)

चलो लिए कर में पतवार,
दिन रहते कर बेड़ा पार!
देखो आता है दुःख-दायक,
धूसर सन्ध्या-काल!!

CC-O: Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosh

अन्धी बालिका की करामात

मिस ग्रीन (Miss. Green) नाम्नी लन्दन की एक अन्धी बालिका शॉर्टहैण्ड लिखने में बड़ी प्रसिद्ध है। अन्धी होने पर भी यह लड़की प्रति मिनिट १६० शब्दों के हिसाब से लिख सकती है और प्रति मिनिट ८० शब्द टाईप कर सकती है। अन्धों के नेशनल इन्स्टीट्यूट तथा मिनिस्टरी ऑफ़ हेल्थ आदि कई संस्थाओं में वह कार्य भी कर चुकी है। अब उसने स्वयं अपना निजी व्यवसाय आरम्भ किया है। ईश्वर की देन ही तो है।

* * *

माता का उत्सर्ग

मदुरा की एक स्त्री शकुन्तलाबाई के लड़के की आँखें चेचक में जाती रही थीं। स्त्री को विश्वास हो गया कि यदि वह देवी के सम्मुख स्वयं अपने को बलिदान कर दे तो पुत्र की आँखें अच्छी हो जायँगी। बस, पुत्र के कल्याण के लिए अपने को माता ने मिट्टी के तेल से भस्म कर डाला और पुत्र के नाम एक चिट्ठी लिख कर वहीं रख दी, जिसमें लिखा था—"मैं रेणु देवी को अपनी बलि देती हूँ। देवी कृपा कर तुम्हारी आँखों को ज्योति दें।" अन्धविश्वास की पराकाष्ठा तो अवश्य है, पर स्पष्ट उदाहरण है कि माता सन्तान के लिए कितना त्याग कर सकती है। कहा भी है—"कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।"

* * *

अग्रवाल-महिला का पुनर्विवाह

गत १३ फ़रवरी को काशी के शीतला गली में रहने वाले श्री० बजरङ्गदास जी अग्रवाल का विवाह श्रीमती मुन्नीदेवी अग्रवाल से, जो बाल-विधवा थीं, बड़े समारोह से दारानगर आर्य-कन्या-पाठशाला में सम्पन्न हुआ। काशी की अग्रवाल-जाति में होने वाला यह पहला विधवा-विवाह है। हम वर-बधू को इस शुभ अवसर पर बधाई देते हैं।

* * *

स्त्रियों को उत्तराधिकार

१२ फ़रवरी की बैठक में बड़ी व्यवस्थापिका सभा ने हिन्दू-उत्तराधिकार सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार किया। एसेम्बली तथा राज्यपरिषद् में इस आशय का बिल एक बार पहले स्वीकृत हो चुका था, जिसका आशय है, उत्तराधिकार के क़ानून में यह संशोधन करना कि जायदाद की उत्तराधिकारिणी लड़की, लड़के की लड़की, बहिन तथा बहिन की लड़की भी हो सके। यह जान कर समाज-सुधारकों को सन्तोष होगा कि यह प्रस्ताव बहुमत से इस बार स्वीकृत हो गया। सरकारी मेम्बर तो उदासीन ही रहे, किन्तु महामना मालवीय जी ने इस बिल का खुला विरोध करके अपनी अनुचित कट्टरता का निन्दनीय परिचय दिया, इस बात का हमें कम खेद नहीं है।

* * *

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गुजराती स्त्री-मण्डल, बम्बई

इस नाम की एक संस्था सन् १९०३ ई० में बम्बई में स्थापित हुई थी और तब से आज तक इसने आशातीत उन्नति की है। प्रारम्भ में इसकी अवस्था शोचनीय अवश्य थी, पर आजकल इसकी १६०० महिला-सदस्या हैं। गुजरात, कच्छ तथा काठियावाड़ की कोई भी गुजराती भाषा-भाषी हिन्दू-महिला इसकी सदस्या हो सकती है। संस्था का उद्देश्य सदस्याओं में घनिष्ट सामाजिक संसर्ग तथा जाग्रति उत्पन्न करना है और इसकी पूर्ति के लिए समय-समय पर भोज, व्याख्यान तथा वार्षिकोत्सव होते रहते हैं। सर्व-साधारण के लिए व्याख्यानों के अतिरिक्त संस्था की ओर से निःशुल्क शिक्षा का भी प्रबन्ध है और इसीलिए एक पृथक् वाचनालय तथा पुस्तकालय है, जिनमें स्त्रियों को कुछ चन्दा भी नहीं देना पड़ता। इस मण्डल की कई शाखाएँ भी हैं, जिनकी सहायता से प्रचार-कार्य में बड़ी सुगमता होती है।

हमारे प्रान्त में भी सामाजिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी ऐसे कार्य करने के लिए ऐसे स्त्री-मण्डलों की बड़ी आवश्यकता है। क्या उत्साही महिलाएँ इस ओर ध्यान देंगी?

* * *

अछूत-कॉन्फ्रेन्स, मद्रास

पाठकों को जानकर हर्ष होगा कि गत ९ फ़रवरी को प्रान्तीय अछूत-कॉन्फ्रेन्स का दूसरा अधिवेशन बड़े समारोह से सम्पन्न हुआ। सभानेत्री का आसन कुमारी ज्योतिर्मयी गङ्गूली, एम० ए० ने ग्रहण किया था। सर ए० पी० पेट्रो ने इस अधिवेशन का उद्घाटन किया। उपस्थिति बड़ी सन्तोषजनक थी। अनेक विद्वानों और विदुषी महिलाओं के सारगर्भित व्याख्यान हुए। सभानेत्री महोदया का व्याख्यान बड़ा ओजस्वी और प्रभावशाली हुआ। आपने कहा, छुआछूत का भेद एक प्रकार का विषैला सामाजिक कोढ़ है, जो भीतर ही भीतर हमारी जाति को नष्ट कर रहा है; और यदि शीघ्र ही इसका इलाज नहीं किया गया तो हमारी मृत्यु निश्चित है। देशवासियों से उन्होंने अछूतों को गले लगाने की अपील आर्द्र नेत्रों से की। परमात्मा हम ग़ुलामों को सद्बुद्धि दें, जिससे हम अछूतों पर किए गए अपने अत्याचारों का प्रायश्चित्त कर सकें।

* * *

बिहारी महिलाओं का सौभाग्य

बड़ी प्रसन्नता की बात है कि बिहार-व्यवस्थापिका सभा ने इस बार की बैठक में बिहारी महिलाओं को मताधिकार का प्रस्ताव पास कर अपनी सुधार-प्रियता का परिचय दिया है। अब वहाँ की स्त्रियाँ निर्वाचन-कार्य में वोट दे सकेंगी।

* * *

३०० स्त्रियों का ख़ून

सहयोगी "ऑब्ज़रवर" में एक बड़ी रोमाञ्चकारी घटना प्रकाशित हुई है। आज का पूर्वीय सोवियट रूस किसी समय इस्लामी मुल्लाओं का कट्टर गढ़ था। बीसवीं सदी के सुधारान्दोलन ने स्वभावतः ऐसे जहालत के केन्द्रों में खलबली मचा दी है। बड़े-बड़े प्रयत्नों के बाद बहुविवाह तथा स्त्रियों के ख़रीद-फ़रोख़्त का अमानुषिक व्यवसाय बन्द हो सका है। इस समय बहुत सी तातारी बालिकाएँ उच्च शिक्षा पा रही हैं। बुख़ारा में—जहाँ के निवासियों का विश्वास था कि स्त्रियों में आत्मा नहीं होती—स्वयं स्त्रियाँ अपने सुधारात्मक आन्दोलन में बड़े उत्साह से भाग ले रही हैं। मध्य एशिया की सेन्ट्रेल कम्युनिस्ट पार्टी अब परदा की कुप्रथा के विरुद्ध बड़ा प्रभावशाली आन्दोलन उठा रही है। इस आन्दोलन का प्रभाव भी अच्छा पड़ा। लगभग सभी स्त्रियों ने परदे फाड़ कर अपने शुभ-चिन्तकों का उत्साह बढ़ाया, किन्तु केवल अजबेकिस्तान नाम के शहर में—जहाँ मुल्लावाद का विशेष केन्द्र है—लगभग ३०० स्त्रियों का, केवल इस अपराध के कारण ख़ून कर डाला गया कि उन्होंने परदा-प्रथा का परित्याग कर दिया था। कुछ स्त्रियों को तो जाहिल पतियों ने स्वयं मार डाला, शेष को मुल्लाओं ने अथवा बिरादरी के उन्मत्त रूढ़ि के पोषकों ने! किन्तु इन क़ुर्बानियों का प्रभाव अच्छा पड़ा। स्त्रियों में एक बार ही क्रान्ति की भावना उदय हो गई है। हमें खेद केवल इतना है कि न्याय-दृष्टि से, जब कि ऐसे जाहिल मुल्लाओं का ख़ून होना चाहिए था, ख़ून हुआ निरपराध महिलाओं का। पर हम बहिनों को विश्वास दिलाना चाहते हैं कि बलिदान किसी भी देश अथवा जाति में व्यर्थ नहीं गए हैं, इसका फल प्रत्यक्ष होता है, और सदा होता है कल्याणकारी!

*

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट—
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मारवाड़ियों की नाक

वर्द्धा की एक प्रतिष्ठित मारवाड़ी-अग्रवाल घराने की रामीबाई नामक स्त्री का, ६-७ मास हुए, स्वजातीय मनीराम नामक एक धूर्त से अनुचित सम्बन्ध हो गया था। फल-स्वरूप एक कन्या उत्पन्न हुई, जो लम्बी नाक की भय के कारण मार डाली गई, और कपड़े में लपेट कर एक तालाब में फेंक दी गई, जैसा कि प्रायः होता है। पुलिस ने इस मामले की कमाल की जाँच की और ये लोग पकड़े गए। गत सप्ताह वर्द्धा के दौरा जज ने अभियुक्तों को दोषी पाकर रामीबाई को एक वर्ष सादी क़ैद और २ हज़ार जुर्माना तथा मनीराम को २ वर्ष की कड़ी क़ैद और एक हज़ार रुपयों का दण्ड दिया है! हम विधवाओं के पुनर्विवाह की आवश्यकता के सम्बन्ध में वकालत न कर, उन मारवाड़ी-भाइयों का ध्यान विशेष रूप से इस लज्जापूर्ण घटना की ओर आकर्षित करना चाहते हैं, जिन्होंने 'अबलाओं का इन्साफ़' शीर्षक पुस्तक के विरुद्ध ज़मीन-आसमान एक कर डाला था। गोविन्द-भवन के भयानक भण्डाफोड़ के बाद यह दूसरी घटना है जो प्रकाश में आई है। न जाने नित्य इस प्रकार के कितने काण्ड प्रत्येक बड़े शहर में घटते रहते हैं और फिर भी अधिकांश मारवाड़ी समाज विधवा-विवाह का विरोधी है !!

* * *

सतीत्व का मूल्य

अफ़ग़ानिस्तान के डाकू-अमीर बच्चासक्का ने शाही घराने की दो राजकुमारियों से ज़बरदस्ती शादी करना चाहा था। वे इस पर राज़ी न हुईं तो उन्हें पकड़ कर वह अपने महल में ले आया और उनकी मरज़ी के विरुद्ध उनसे निकाह करना चाहा। निकाह की सब तैयारियाँ ठीक थीं, पर अपने सतीत्व-धर्म की पक्की दोनों राजकुमारियों ने महल में पहुँचते ही आत्मघात कर लिया! बच्चासक्का जैसे अत्याचारी की प्रणय-पात्री होने की अपेक्षा प्राण देना ही उन्होंने श्रेयस्कर समझा। पाशविक शक्ति अफ़ग़ानिस्तान के ऊपर भले ही क्षणिक विजय प्राप्त कर ले, पर रमणी-हृदय पर वह कदापि विजय नहीं पा सकती।

मालदार बीबी की तलाश

नॉटिङ्घम (इङ्गलैण्ड) के मि० विलियम बालजेक नाम के एक सौभाग्यशाली व्यक्ति ने हाल ही में अपनी १०७ वीं वर्ष-गाँठ बड़ी धूम-धाम से मनाई है। इस अवसर पर नॉटिङ्घम के लॉर्ड-मेयर ने इन्हें कई चीज़ें भेंट कर उन्हें बधाई दी। एक पत्र-प्रतिनिधि से बातचीत करते हुए मि० विलियम ने कहा कि मेरी आन्तरिक इच्छा एक मालदार बीबी से शादी करने की है, क्योंकि मेरी आमदनी केवल १० शिलिङ्ग प्रति सप्ताह है। यदि कोई मालदार बीबी मिल जाय तो शेष जीवन बड़े आनन्द से कट सकता है। हम जानते हैं कि यह समाचार पढ़ कर इस देश के खूसट बूढ़े भी करवटें बदलने लगेंगे, किन्तु एक बात स्मरण रखनी चाहिए, मि० विलियम ने अपना पहला विवाह ७६ वर्ष की आयु में किया था। इसके पहले वे पूर्ण ब्रह्मचारी थे। इस समय मि० विलियम में इतनी शक्ति है कि वे दो पहलवानों के गले पकड़कर उन्हें लड़ा सकते हैं। डॉक्टरों का कहना है कि मि० विलियम अभी बहुत वर्ष जिएँगे।

* * *

एक मारवाड़ी ब्राह्मण का उन्माद

रामगढ़ के एक मारवाड़ी ब्राह्मण अपनी पहली स्त्री के जीवित रहते हुए विवाह करने का प्रयत्न कर रहे हैं। बहाने के लिए यह ख़बर उड़ा दी गई है कि मेरी स्त्री मर गई। उधर बेचारी अनाथ स्त्री फूट-फूट कर रो रही है। कुत्सित वासनाओं में सने हुए इन प्राणियों ने तो विवाह को मिट्टी के खिलौनों का सौदा ही समझ रक्खा है। सच बात तो यह है कि ऐसी कितनी ही घटनाएँ हमारे समाज में प्रतिदिन घटा करती हैं तो बिरले ही समाचार अख़बारों में छप पाते हैं।

* * *

स्थान-परिवर्तन की सूचना

१५ मार्च तक वर्तमान कोठी से 'चाँद' कार्यालय तथा प्रेस अपने निजी भवन (चन्द्रलोक) में चला जायगा, इसलिए पाठकों से प्रार्थना है कि भविष्य में २८ नम्बर एडमॉन्सटन रोड (28, Edmonstone Road) के पते से पत्र-व्यवहार करें। यह कोठी ठीक जिसमें पहले कार्यालय था उसके पीछे वाली सड़क पर है।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Regd. No. A–1154

वर्ष ७, खण्ड १] अप्रैल, १९२९ [संख्या ६, पूर्ण संख्या ७८

वार्षिक चन्दा ६॥)
छः माही ३॥)

PRINTED AT
THE FINE ART PRINTING COTTAGE, ALLAHABAD

विदेश का चन्दा ८॥)
इस अङ्क का मूल्य ॥)

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रणय-पथ में निराशा के मार्मिक प्रतिघातों से उत्पन्न मानव-हृदय की कल्पनाएँ और उनका चिन्ता-लोक के अस्फुट साम्राज्य में विलीन हो जाना, हृदय के अन्तः-प्रदेश में प्रणय का उद्भव, उसका विकाश और उसकी अविरत आराधना की अनन्त तथा अविच्छिन्न साधना में मनुष्य कहाँ तक अपने जीवन के सारे सुखों की आहुति कर सकता है, यह इस पुस्तक में पढ़िए।

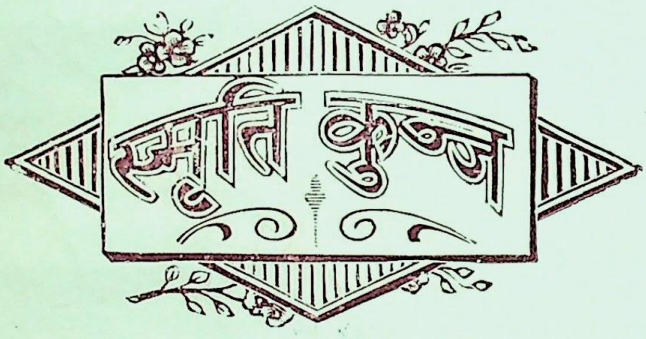

लेखक—'एक निर्वासित ग्रेजुएट'

नायक और नायिका के पत्रों के रूप में यह एक

दुःखान्त कहानी है

आशा-निराशा, सुख-दुख, साधन-उत्सर्ग एवं उच्चतम आराधना का सात्विक चित्र पुस्तक पढ़ते ही कल्पना की सजीव प्रतिमा में चारों ओर दीख पड़ने लगता है। इस पुस्तक में व्यक्त वाणी की अनुपम विलीनता एवं अव्यक्त स्वरों के उच्चतम सङ्गीत का एक हृदयग्राही मिश्रण है। छपाई-सफ़ाई दर्शनीय हुई है।

सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३); स्थायी ग्राहकों से २।)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय
इलाहाबाद

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शुक्ल और सोफ़िया

अर्थात्

पूर्व और पश्चिम

[ले० ठाकुर कल्याणसिंह जी शेखावत, बी० ए०]

इस पुस्तक में पूर्व और पश्चिम का आदर्श, दोनों की तुलना, मनुष्य-जीवन के लिए भारत की प्राचीन मर्यादा का सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होना, भारत की वर्तमान सामाजिक कुरीतियाँ तथा उनका भयङ्कर परिणाम, यूरोप की विलास-प्रियता और उससे उत्पन्न होने वाली अशान्ति का वर्णन बड़े ही मनोहर ढङ्ग से किया गया है। पुस्तक की भाषा अत्यन्त सरल और मुहावरेदार है।

इङ्गलैण्ड की सोफ़िया नामक एक अनाथ बालिका का भारत के प्रति अगाध प्रेम एवं श्रद्धा, चिकित्सा-कार्य द्वारा उसका भारतीय जनता की निस्स्वार्थ-सेवा करना, डॉक्टर चन्द्रस्वरूप शुक्ल तथा उनकी धर्मपत्नी फूलकुमारी से सोफ़िया का घनिष्ट प्रेम, फूलकुमारी की मृत्यु के बाद शुक्ल और सोफ़िया का प्रणय, एक दूसरे को अपना हृदय समर्पण करना, किन्तु सामाजिक रूढ़ियों के भय एवं पिता के अनुरोध से बाध्य होकर शुक्ल का दूसरी स्त्री से पाणिग्रहण करना, फल-स्वरूप दोनों का निराशा एवं आन्तरिक दुख से व्यथित होना और अन्त में संन्यास लेकर दोनों का तन, मन, धन से देश-सेवा करना ऐसी मनोरञ्जक कहानी है कि पढ़ते ही तबीयत फड़क उठती है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २॥) स्थायी ग्राहकों से १॥।=)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय
इलाहाबाद

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

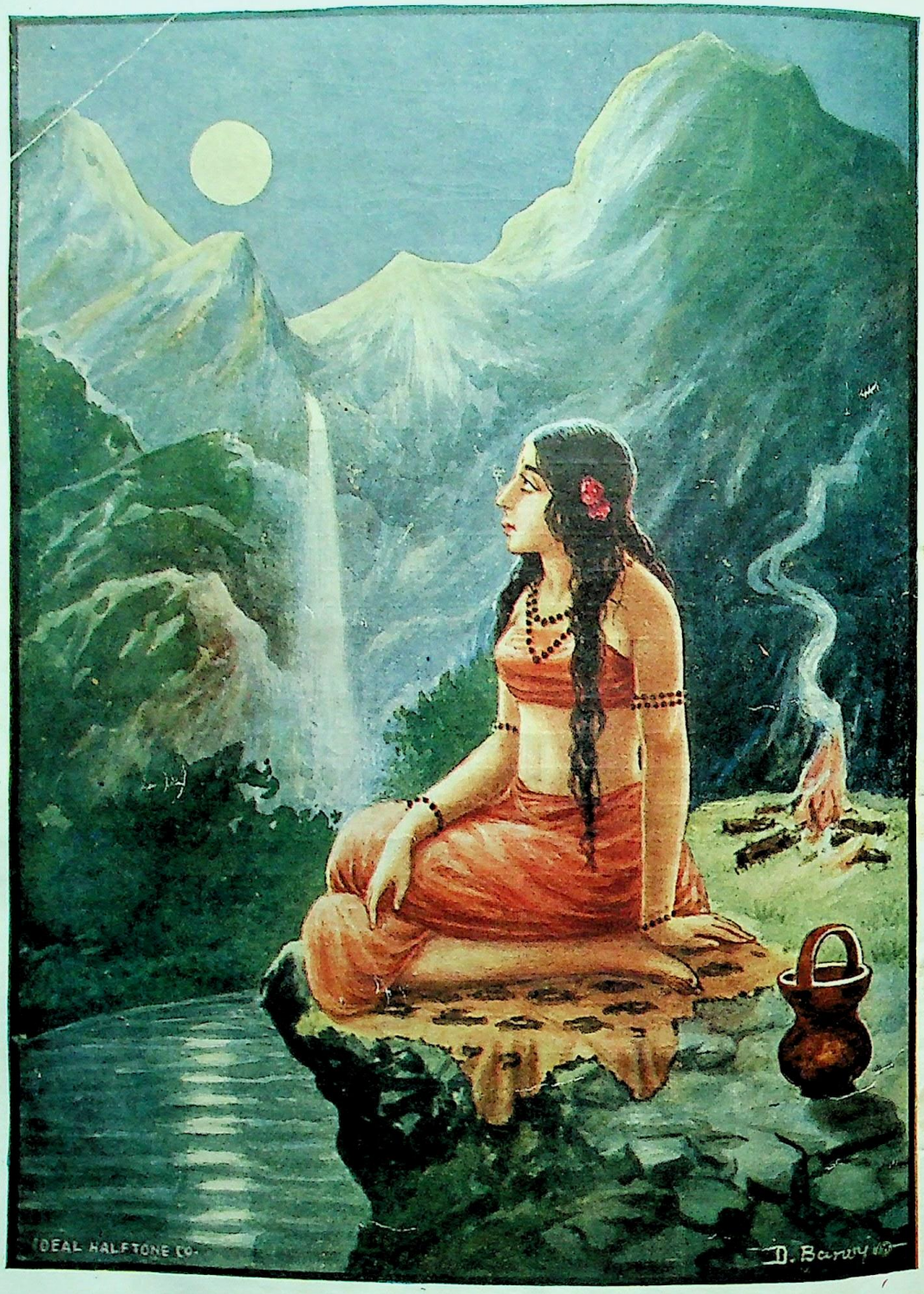

तरुण तपस्विनी

चर्म-चक्षु तो देख रहे हैं, शोभा विशद प्रकृति की शान्त।
खोज रहे हैं मूर्त्ति कौन सी, मानस के लोचन उद्भ्रान्त॥

ART PRINTING CO. ALLAHABAD LINE BLOCK

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

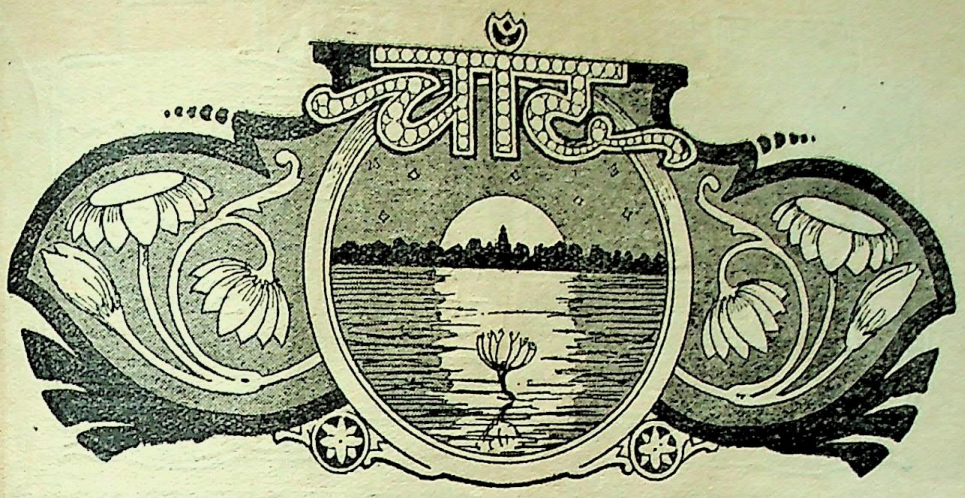

Highly appreciated and recommended for use in Schools and Libraries by
Directors of Public Instruction, Punjab, Central Provinces and
Berar, United Provinces and Kashmir State etc., etc.

वर्ष ७ खण्ड १ | अप्रैल, १९२९ | संख्या ६ पूर्ण संख्या ७८

अवलम्ब

डॉ० राम स्वरूप आर्य, विजनौर
की स्मृति में सादर भेंट—
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

[रचयिता—श्री० रमाशङ्कर जी मिश्र 'श्रीपति']

(१)

किस अञ्चल की चञ्चल छाया—
मन-मानस पर मञ्जुल भाव—
स्निग्ध ज्योत्स्ना से सञ्चारित—
करती कैसी नूतन चाव!

(२)

कलित कामना के कुञ्जों में—
कौन सुनाता सुख-सन्देश;
आशा-हत होने पर निष्ठुर—
कौन कठिन देता है क्लेश?

(३)

कहाँ अन्तरित हो जाता है—
टकरा कर मम करुण-कलाप;
नवल-कल्पना के उपवन में—
उच्छ्वासों का कैसा ताप!

(४)

अन्तर्वेधी ज्वालाओं में—
जल कर झुलस रहे हैं प्राण;
ढूँढ़ फिरे उद्गम-कानन में—
दावानल से मिला न त्राण।

(५)

इस उद्भ्रान्त पथिक के तुम हो—
एक-मात्र प्रियवर! आधार;
सूना पथ तुम बिन जीवन भी—
सूने स्वर्ग सौख्य संसार!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosh

सम्पादकीय विचार

चाँद

अप्रैल, १९२९

शीर्षक-हीन

प्राचीन काल के समस्त संसार में, विशेष कर प्राचीन भारत में जातियों अथवा देशों के इतिहास लिखने की प्रथा प्रचलित नहीं थी, प्राचीन भारत का कोई सिलसिलेवार प्रामाणिक इतिहास के न मिलने का यही एक-मात्र कारण है। उस समय की प्रथा यह थी कि विद्वान् लोग तारीख़वार कोई इतिहास न लिख कर, कल्पित अथवा अर्द्ध-ऐतिहासिक कथाओं द्वारा अपने समय के उच्च से उच्च नैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक आदर्शों को चित्रित कर देना ही पर्याप्त समझते थे—वे नामवरी के भूखे भी नहीं थे और न तारीख़ और सिलसिलेवार इतिहास लिखने के पक्ष में ही थे। यही कारण है कि प्राचीन भारत का कोई क्रमबद्ध इतिहास हमें नहीं मिलता और जिज्ञासुओं को पौराणिक कथाओं, प्राचीन साहित्य तथा परम्परागत गाथाओं की शरण लेनी पड़ती है। भारत के प्राचीन साहित्य से तिथियों का ठीक-ठीक पता न चलने का भी यही कारण है। महाभारत और रामायण जैसे महान् ग्रन्थों से भी हमारी इसी धारणा की पुष्टि होती है। इसका कारण यह न समझना चाहिए कि हमारे पूर्वज मूर्ख थे अथवा उनमें ऐसा करने की क्षमता नहीं थी, वरन् वे इसे आवश्यक ही नहीं समझते थे। आने वाली पीढ़ियों को इसकी आवश्यकता होगी—वे इस बात की कल्पना भी नहीं कर सके थे। अस्तु—

वर्तमान इतिहास-कला अर्वाचीन अन्तर्राष्ट्रीय मानसिक स्थिति का एक विशेष परिणाम है अथवा यों कहिए, पाश्चात्य राजनीति अथवा कूटनीति का एक मुख्य अङ्ग है। इतिहास लिखने और उसे सुरक्षित रखने की जितनी आवश्यकता आज प्रतीत होती है, उतनी प्राचीन काल में नहीं हुई थी। इसका कारण है। इतिहास का अधिकतर सम्बन्ध अपने समय की राजनैतिक अवस्था से होता है और यह स्वाभाविक ही है कि कोई भी लेखक, अपनी मानवीय दुर्बलताओं के कारण, अपनी राजनैतिक अवस्था की ओर से सर्वथा पक्षपात-शून्य नहीं हो सकता। ईसा की ११ वीं शताब्दी में सुप्रसिद्ध मुसलमान इतिहास-लेखक अलबेरूनी ने इतिहास-कला की बड़ी सुन्दर वैज्ञानिक विवेचना की है और इतिहास के विद्यार्थियों को इतिहास-लेखक की स्वाभाविक प्रवृत्तियों से उत्पन्न होने वाली अनेक भ्रान्तियों की ओर से सावधान भी किया है।

समस्त ब्रह्माण्ड का इतिहास उलट कर देख लीजिए, उनके प्रत्येक पृष्ठ से हमारी इस धारणा की पुष्टि होती है। जब कभी एक जाति दूसरी जाति पर

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विजय प्राप्त करती है तो शासक जाति के लेखकों का लक्ष्य एक ओर अपनी रचनाओं द्वारा अपनी जाति के लोगों में देश-भक्ति, वीरता, आत्म-विश्वास और साहस का भरना होता है, दूसरी ओर उनका लक्ष्य होता है शासित जाति के इन्हीं सद्गुणों की अवहेलना करना, उसके पूर्वजों को तुच्छ तथा हेय प्रमाणित करना और उसकी कमज़ोरियों को तिल का ताड़ बनाकर संसार के सामने रखना! शासकों की इन चालों का प्रभाव शासित जाति पर न पड़ता हो सो बात नहीं है, शासकों के लिए इसका इच्छित परिणाम होता है। कुछ ही पीढ़ियों के बाद—शनैः शनैः शासित जाति इन्हीं बनावटी और झूठे इतिहासों पर विश्वास करने लगती है। उसे स्वभावतः अपने साहित्य से अरुचि, अपने पूर्वजों से घृणा और अपनी क़ौम से ग्लानि होने लगती है। परिणाम यह होता है कि शासकों की निकृष्ट से निकृष्ट चाल शासित जाति की पथ-प्रदर्शक बन जाती है और सदा के लिए उसकी वीरता, साहस, आचार-व्यवहार और आत्म-सम्मान का लोप हो जाता है—संसार का इतिहास इस बात का साक्षी है। रोमन लोग जब किसी देश को विजय करते थे तो उस देश की भाषा और साहित्य को यथाशक्ति दबा कर उसके स्थान पर रोमन भाषा, रोमन साहित्य और रोमन आचार-विचार के प्रचार का प्रयत्न करते थे। इसी प्रकार के अन्य अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। सारांश यह कि जो बात संसार की शासक जातियों के लिए सत्य है वह अङ्गरेज़ी शासन के लिए अपवाद नहीं हो सकती। आजकल हमारे स्कूल और कॉलेजों में पढ़ाई जाने वाली पाठ्य पुस्तकें और विशेषकर इतिहास, इसी लक्ष्य को सामने रख कर लिखे जाते हैं। इतिहास के सम्बन्ध में हमारी ही यह धारणा हो, सो बात नहीं है, अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने भी इतिहास को साहित्य का सबसे पापपूर्ण और निकृष्टतम अङ्ग स्वीकार किया है। सुप्रसिद्ध फ्रान्सीसी विद्वान् हरवे (M. Herve) लिखता है :—

". . . History, so far, has been the most immoral and perverting branch of literature. It exalts greed and wholesale murder when greedy and murderous lusts are satisfied in the name of nations. Fraud is taken as evidence of clever diplomacy. What is counted immoral down below is held admirable in the court and on thrones . ."

अर्थात्—"इतिहास अब तक साहित्य का सबसे अधिक पापमय और भ्रष्टकारी शाखा रहा है। जब कभी जातियों के नाम पर धन-लोलुपता और रक्त-पिपासा को तृप्त किया जाता है, इतिहास इस प्रकार की लोलुपता और अंधाधुन्द हत्या को सराहनीय ठहराता है। इतिहास की दृष्टि में छल और कपट को चतुर-राजनीति का प्रमाण माना जाता है। जो वस्तु साधारण मनुष्यों में पाप समझी जाती है, वह राजदरबारों में और राज-सिंहासनों पर प्रशंसनीय मानी जाती है।"

सुप्रसिद्ध इतिहास-लेखक लैकी अपने Rationalism in Europe नामक ग्रन्थ में लिखता है :—

"The object of the politician is expediency . . a dis-interested love of truth can hardly co-exist with a strong political spirit. In all countries where the habits of thought have been mainly formed by political life, we may discover a disposition to make expediency the test of truth"

अर्थात्—"सत्य का निस्स्वार्थ प्रेम और प्रबल राजनैतिक प्रवृत्ति दोनों साथ-साथ नहीं चल सकतीं। उन समस्त देशों में, जहाँ के लोगों का मानसिक स्वभाव अधिकतर राजनैतिक जीवन के आधार पर बना हो, हमें यह दिखाई देता है कि लोग अपनी स्वार्थ-सिद्धि को ही सत्य की कसौटी बना बैठते हैं।"

सुप्रसिद्ध अङ्गरेज़ तत्ववेत्ता हरबर्ट स्पेन्सर ने एक स्थान पर लिखा है कि फ्रान्स का एक बादशाह जब इतिहास की कोई पुस्तक पढ़ना चाहता था तो अपने पुस्तकाध्यक्ष से कहता था—"मेरे झूठ बोलने वाले को ले आओ" हरबर्ट स्पेन्सर ने इसी प्रकार के उदाहरण देकर अपनी Facts and Comments नामक सुप्रसिद्ध पुस्तक में लिखा है :—

"Beyond account of kings' reign of battles and of incidents named in the chronicles of all nations concerned, we have nothing to depend on but treaties made to be broken, despatches of corrupt and lying officials, gossiping letters of courtiers and so forth. How from these materials shall we distil the truth?"

अर्थात्—"राजाओं के शासन-कालों, लड़ाइयों और इस तरह की घटनाओं के वृत्तान्तों के अतिरिक्त, जोकि समस्त वर्तमान राष्ट्रों के इतिहास में मिलती हैं, हमें सिवा

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

उन सन्धियों के, जो तोड़ने ही के अभिप्राय से की जाती हैं, उन सरकारी पत्रों के जो बेईमान और झूठे कर्मचारियों द्वारा लिखे जाते हैं, उन गप्पों से भरे हुए पत्रों के, जो दरबारियों के लिखे होते हैं, और इसी तरह की अन्य सामग्री के, कोई ऐसी बात नहीं मिलती जिस पर हम विश्वास कर सकें। इस तरह की सामग्री से हम सत्य को अलग कैसे कर सकते हैं × × ×"

कप्तान कनिङ्घम के "सिक्खों के इतिहास" नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ के उस संस्करण के विज्ञापन में, जो सन् १८५३ में प्रकाशित हुआ था, पीटर कनिङ्घम महोदय लिखते हैं :—

"The printed materials for the recent History of India are not of that character, on which historians can rely. State Papers, presented to the people by both Houses of Parliament have been altered to suit the temporary views of political warfare, or abridged out of mistaken regard to the tender feelings of survivors"

अर्थात्—"हाल के भारत के इतिहास के लिए जो प्रकाशित सामग्री मिलती है, वह इस प्रकार की नहीं है, जिस पर कोई इतिहास-लेखक विश्वास कर सके। पार्लामेण्ट के दोनों भागों—हाउस ऑफ़ कॉमन्स और हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स द्वारा जो सरकारी उल्लेख जनता के सामने उपस्थित किए जाते हैं, उनमें राजनैतिक दलबन्दी की क्षणिक दृष्टि से उलट-फेर हुई है, अथवा इस ग़लत ख़्याल से कि लोगों के भावों को आघात न पहुँचे, उनमें काट-छाँट की गई है।"

सुप्रसिद्ध इतिहास-लेखक सर जॉन के, जो इङ्गलैण्ड के राजनैतिक और गुप्त-विभाग के मन्त्री रह चुके थे, एक स्थान पर लिखते हैं :—

"The character and career of Alexander Burnes have both been mis-represented in those collections of State Papers which are supposed to furnish the best materials of history but which are often only one-sided compilations of garbled documents—counterfiets, which the ministerial stamp forces into currency, de frauding a present generation, and handing down to prosterity a chain of dangerous lies."*

* History of the Afghan War by Kaye, vol. ii p. 13.

अर्थात्—"पार्लामेण्ट के सरकारी काग़ज़ों के संग्रह में अलेक्ज़ेण्डर बर्न्स का चरित्र और जीवनी—दोनों को ग़लत बयान किया गया है। समझा जाता है कि पार्लामेण्ट के काग़ज़ इतिहास के लिए सबसे अच्छी सामग्री हैं, किन्तु वास्तव में ये सरकारी काग़ज़ प्रायः केवल काट-छाँट की हुई दस्तावेज़ों और जाली काग़ज़ों का ऐसा एकतर्फ़ा संग्रह होता है, जिसे राज-मन्त्रियों की मोहर सच्चा कह कर चला देती है, जिससे मौजूदा नसल के लोग धोखे में आ जाते हैं, और भावी नसलों को भयङ्कर झूठों का एक सिलसिला उत्तराधिकार में मिलता है।"

सुप्रसिद्ध इतिहास-लेखक फ्रीमैन का स्पष्ट शब्दों में कहना है कि सरकारी एलानों, पत्रों और राजनैतिक दस्तावेज़ों का सारा क्षेत्र "झूठ का मनोवाञ्छित क्षेत्र" है। एक स्थान पर आपने लिखा है :—

". . . Here we are in the very chosen region of lies. . . yet they are instructive lies; they are lies told by people who know the truth; truth may even, by various processes be got out of the lies; but it will not be got out of them by the process of beleiving them. He is of child-like simplicity indeed who beleives every royal proclamation or the preamble of every Act of Parliament, as telling us, not only what certain august persons did, but the motives which led them to do it . . ."

अर्थात्—"× × × तथापि ये झूठ शिक्षाप्रद झूठ हैं—यह उन लोगों के कहे हुए झूठ हैं, जो सचाई से परिचित हैं। कई तरह के उपायों से झूठ के अन्दर से भी सचाई का निष्कर्ष किया जाना सम्भव है, किन्तु इन झूठों पर विश्वास करके इनसे सचाई का पता नहीं लगाया जा सकता। वास्तव में वह मनुष्य बालक की तरह भोला है, जो प्रत्येक शाही एलान (Proclamation) अथवा पार्लामेण्ट के प्रत्येक एक्ट की भूमिका पर विश्वास करता हो, और उनसे यह अन्दाज़ा लगाता हो कि अमुक-अमुक बड़े लोगों ने क्या-क्या किया और उसके करने में उनकी क्या नीयत थी।"

सुप्रसिद्ध यूरोपियन विद्वान् ग्रैटन का अपने एक इतिहास में, इतिहासों की खिल्ली उड़ाते हुए, स्पष्ट शब्दों में कहना है :—

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"There are many statements of history which it is immaterial to substantiate or disprove. Splendid pictures of public virtue have often produced their good if once received as fact. But when private character is at stake every conscientious writer or reader will cherish his "Historic doubts", when he reflects in the facility with which calumny is sent abroad; the avidity with which it is received, and the careless ease with which men credit what it costs little to invent and propagate, but requires an age of trouble, and an almost impossible conjuction of opportunities effectually to refute."*

अर्थात्—"इतिहास में अनेक बातें ऐसी लिखी मिलती हैं, जिनको साबित करने या जिनका खण्डन करने का कोई विशेष मूल्य नहीं है। सार्वजनिक सदाचार के इस तरह के उज्ज्वल (किन्तु असत्य) चित्र इतिहास में मिलते हैं, जिन्हें यदि एक बार लोगों ने सच्चा मान लिया है तो प्रायः उनसे भला ही हुआ है, किन्तु जब किसी न्यायी अथवा जाति के निजी चरित्र पर कलङ्क लगाए जाते हैं और जब हम यह देखते हैं कि कितनी आसानी से झूठे कलङ्कों का प्रचार किया जाता है, कितने कौतूहल के साथ लोग उन्हें पढ़ते और सुनते हैं, और जिन बातों को गढ़ लेने या फैलाने में कुछ भी ख़र्च नहीं होता, किन्तु जिनका पूरी तरह खण्डन करने में आजीवन परिश्रम और इस प्रकार की परिस्थिति की आवश्यकता होती है, जिसका मिलना लगभग असम्भव हो जाता है, और उन पर लोग सहज ही में और बेपरवाही के साथ विश्वास कर लेते हैं, तो प्रत्येक विवेकी लेखक या पाठक का इस तरह 'इतिहास पर सन्देह' करना स्वाभाविक ही है।"

सारांश यह कि प्रचलित इतिहासों की भ्रान्ति के सम्बन्ध में जो कतिपय विद्वानों की सम्मतियाँ ऊपर दी गई हैं, उनसे स्पष्ट है कि आजकल जितने भी इतिहास स्कूल और कॉलेजों में हमें पढ़ाए गए हैं और आज हमारे बच्चों को पढ़ाए जा रहे हैं, उनमें से अधिकांश हमारे वर्त्तमान शासकों की मनोवृत्ति और उनकी राजनैतिक अभिलाषाओं के परिचायक हैं, यह एक ऐसा सर्व-सिद्ध सत्य है कि इस सम्बन्ध में विशेष प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं।

इस उन्नति और विकास के युग में हमारे समक्ष किसी भी भाषा का एक भी प्रामाणिक इतिहास न होना भारतवासियों के लिए बड़े लज्जा की बात थी। केवल इसी सदुद्देश्य की पूर्त्ति के लिए "भारत में अङ्गरेज़ी राज्य" नामक लगभग २१०० पृष्ठों का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ-रत्न, जिसकी चर्चा पाठकगण पिछले दो वर्षों से सुन रहे थे, हाल ही में प्रकाशित हुआ था और प्रकाशित होते ही युक्तप्रान्तीय सरकार द्वारा कोकेन की पुड़ियों की तरह २४ घण्टों के भीतर ज़ब्त कर लिया गया! ज़ब्ती का पूरा विवरण देने के पहले इस इतिहास के निर्माण तथा निर्माणकर्ता के सम्बन्ध में कुछ पंक्तियाँ लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है। अस्तु—

अनेक प्रामाणिक पुस्तकों, इतिहासों तथा स्वयं जाँच-पड़ताल कर पिछले ४ वर्षों के कठिन परिश्रम के बाद इसके सुयोग्य लेखक—महात्मा सुन्दरलाल जी ने इस पुस्तक का निर्माण कर पाया था। अधिकांश भारतवासी कर्मयोगी सुन्दरलाल जी की विद्वत्ता और उनके स्वार्थ-त्याग से भली-भाँति परिचित हैं। 'कर्मयोगी' और साप्ताहिक तथा दैनिक 'भविष्य' जैसे प्रभावशाली पत्रों के प्रतिभाशाली सम्पादक का परिचय हिन्दी-संसार को कराना, लेखक का अपमान करना होगा। महात्मा सुन्दरलाल जी राष्ट्रीयता के उस सच्चे स्वरूप के उपासकों में से हैं जिनकी भित्ति पर हमारे भावी राष्ट्र का निर्माण होगा। तात्पर्य यह कि एक ऐसे ज़िम्मेदार व्यक्ति की लेखनी द्वारा लिखी गई पुस्तक कितनी प्रामाणिक हो सकती है, पाठकगण इस बात की सहज ही कल्पना कर सकते हैं। पुस्तक के प्रमाण के लिए इसके सुयोग्य लेखक को जिन-जिन पुस्तकों को टटोलना पड़ा है, उनमें से कुछ का विवरण नीचे दिया जा रहा है!

वर्त्तमान पुस्तक मुख्यतः मेजर बामनदास बसु, आई० एम० एस० की सुप्रसिद्ध पुस्तक "दि राईज़ ऑफ़ दि क्रिश्चियन पावर इन इण्डिया" पर अवलम्बित है, किन्तु इसके अलावा अन्य कई प्रामाणिक पुस्तकों से भी सहायता ली गई है, जिनमें से मुख्य ये हैं :—

(१) कन्सॉलिडेशन ऑफ़ दि क्रिश्चियन पावर इन इण्डिया।

* Grattan's History of Netherlands, vol. ii, p. 242.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(२) रुइन ऑफ़ इण्डियन ट्रेड एण्ड इण्डस्ट्रीज़

(३) एजुकेशन इन इण्डिया अण्डर दि ईस्ट इण्डिया कम्पनी।

पुस्तक में सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉक्टर ताराचन्द, एम० ए०, डी० फ़िल के अप्रकाशित निबन्ध 'दि इन्फ़्लुएन्स ऑफ़ इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर' (The influence of Islam on Indian culture) का भी पूरा-पूरा उपयोग किया गया है। इनके अलावा लगभग सभी सुप्रसिद्ध अङ्गरेज़ विद्वानों के इतिहास का मनन और उपयोग किया गया है, जिसकी सूची इतनी विस्तृत है कि इस परिमित स्थान पर उसका प्रकाशित करना सम्भव नहीं है। इतिहास में जो भी बात लिखी गई है, नीचे उसका प्रमाण दे दिया गया है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के ज़माने में, सन् ५७ के विप्लव में तथा अङ्गरेज़ी शासन के आरम्भ में भारत-वासियों पर जो-जो अत्याचार और विश्वासघात किए गए हैं तथा जो-जो अन्याय हुए हैं, और प्रसङ्गवश जहाँ-जहाँ इन अप्रिय घटनाओं का उल्लेख किया गया है, उस-उस स्थान पर इस बात का ध्यान रक्खा गया है कि प्रामाणिक यूरोपियन इतिहासकारों के ही प्रमाण, ठीक उन्हीं के शब्दों में दिए जावें और उन अङ्गरेज़ी उद्धरणों का अनुवाद भी बहुत फूँक-फूँक कर किया गया है। इतिहास सर्वथा द्वेष-रहित, पक्षपात-रहित और केवल इतिहास की दृष्टि से ही लिखा गया था—"राजनैतिक प्रोपेगण्डा" की दृष्टि से नहीं। हम इस बात का भी पाठकों को विश्वास दिलाते हैं कि समस्त पुस्तक में कहीं भी बम बनाने के नुस्ख़े नहीं दिए गए हैं और न हिंसा के लिए किसी को प्रोत्साहित किया गया है। पुस्तक में कम्युनिज़्म की कहीं चर्चा तक नहीं है। जहाँ कहीं भी नृशंस हत्याओं की चर्चा आई है, पुस्तक के सुयोग्य लेखक ने उस पर रोष और पश्चात्ताप प्रकट किया है, चाहे हिंसा करने वाला अङ्गरेज़ हो, हिन्दू हो अथवा मुसलमान। सुयोग्य लेखक ने समस्त पुस्तक में प्राणिमात्र को एक दृष्टि से देखा है। अस्तु—

पुस्तक में लगभग ८० तिरङ्गे, चौरङ्गे और एकरङ्गे चित्र, नक़्शे तथा मान-चित्र भी दिए गए थे। प्रत्येक चित्र के सम्बन्ध में इस बात का ध्यान रक्खा गया था कि कोई भी चित्र फ़र्ज़ी अथवा झूठा न हो। जहाँ ज़रा भी सन्देह हुआ है, वहीं सैकड़ों रुपए व्यय कर अपना ख़ास प्रतिनिधि भेजा गया, फ़ोटोग्राफ़र भेजे गए, ख़ास-ख़ास लोगों से चित्रों की सत्यता की तस्दीक़ कराई गई और तब कहीं वह चित्र दिया गया था। अनेक प्रतिष्ठित सरकारी कर्मचारियों ने इस मामले में हमारी पूर्ण सहायता की थी। चित्रों आदि के संग्रह में श्री० वासुदेवराव सूबेदार, सागर; श्री० वी० जी० जोशी, पूना; डॉक्टर सुहरावर्दी, कलकत्ता; टीपू सुलतान के पर-प्रपौत्र शहज़ादे हलीमुज्ज़माँ; श्री० बहादुरसिंह जी सिङ्घी, कलकत्ता; ज्ञानी हीरासिंह जी सम्पादक फुलवाड़ी, अमृतसर; श्री० नरेन्द्रदेव जी, आचार्य काशी-विद्यापीठ; पण्डित गोकुल-चन्द जी दीक्षित, सम्पादक 'स्टेट-गज़ट' भरतपुर; बाबू रामानन्द जी चट्टोपाध्याय, सम्पादक 'मॉडर्न रिव्यु' कलकत्ता; डॉक्टर सीताराम जी क्यूरेटर सेन्ट्रेल म्यूज़ियम लाहौर; मिस्टर एफ़० हैरिङ्गटन, एफ़० आर० ए० एस०, क्यूरेटर विक्टोरिया मेमोरियल, कलकत्ता तथा श्री० अमूल्यचरण विद्याभूषण, मन्त्री बङ्ग-साहित्य-परिषद्, कलकत्ता के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

'भारत में अङ्गरेज़ी राज्य' की सामग्री एकत्रित करने में समस्त भारत के सैकड़ों बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वानों, नेताओं तथा इतिहासज्ञों ने यथाशक्ति सहायता प्रदान कर लेखक को सदा उत्साहित किया था। हैदरअली और टीपू सुल्तान के सम्बन्ध की जो अलभ्य तथा नई सामग्री इस इतिहास में प्रकाशित हुई थी, वह हमें प्राप्त हुई थी मैसूर-विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार श्री० बी० एम० श्रीकान्तिया, एम० ए० बी० एल् और मैसूर के पुरातत्व-विभाग के विद्वान् डाइरेक्टर डॉक्टर आर० शामा शास्त्री से। इन पंक्तियों को देशवासियों के समक्ष उपस्थित करने से हमारा अभिप्राय केवल इस इतिहास की महानता का प्रदर्शन करना मात्र है, जिसे युक्तप्रान्तीय सरकार ने टेलीफ़ोन से आज्ञा देकर प्रकाशित होने के केवल २४ घण्टों के भीतर ही ज़ब्त कर, ब्रिटिश शासन को कलङ्कित किया है। अब हम पाठकों के मनोरञ्जन के लिए इस महान् ग्रन्थ की नाटकीय ज़ब्ती के सम्बन्ध में कुछ पंक्तियाँ लिख कर, अपने कर्त्तव्य का पालन करेंगे। अस्तु—

पाठकों को स्मरण होगा, पिछले दो वर्षों से इस पुस्तक का विज्ञापन 'चाँद' में तथा लगभग सभी प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में निकल रहा था। 'फाँसी-अङ्क' में १२ पृष्ठों

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का एक विस्तृत विज्ञापन भी प्रकाशित हुआ था, जिसमें १०-१२ अध्यायों के विषय नमूने के तौर पर प्रकाशित किए गए थे। यह विज्ञापन १५,००० की विशाल संख्या में प्रकाशित हुआ था, जिसमें से १०,००० तो 'चाँद' के 'फाँसी-अङ्क' के पाठ्य-पृष्ठों में सिला था और ५,००० एजेण्टों द्वारा सर्व-साधारण में वितीर्ण किया गया था। यह बात आज से छै मास पूर्व की है, किन्तु हमारी सरकार बहादुर ने इस पर कोई आपत्ति नहीं की। एक बात और भी स्मरण रखने की है, इस विज्ञापन में पुस्तक के प्रकाशित होने की अवधि ३० नवम्बर तक नियत की गई थी, किन्तु अनेक कारणों से पुस्तक समय पर प्रकाशित न हो सकी। १८ मार्च को क़रीब ४ बजे शाम के, पहली बार पुस्तक डाकख़ाने भेजी गई! १९ मार्च की शाम को सी० आई० डी० के एक दारोग़ा साहब इन पंक्तियों के लेखक के पास पधारे। उनका कहना था कि कल—अर्थात् २० तारीख़ को प्रातःकाल १० बजे पुलिस-सुपरिन्टेण्डेण्ट साहब ने आपको एक बहुत ज़रूरी काम के लिए बुलाया है। २० तारीख़ को पुलिस-सुपरिन्टेण्डेण्ट से भेंट हुई। उन्होंने हमारे सामने संयुक्त-प्रान्तीय सरकार के चीफ़ सेक्रेटरी कुँवर जगदीशप्रसाद जी का हस्ताक्षरित एक पत्र रख दिया, जो स्थानीय कलक्टर के पास भेजा गया था। उस पत्र की तारीख़ सम्भवतः १६ या १८ मार्च थी और आशय यह था कि 'भारत में अङ्गरेज़ी राज्य' का जो १२ पेजी विज्ञापन ६ मास पूर्व प्रकाशित हुआ था (जिसकी चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं) संयुक्त-प्रान्तीय सरकार द्वारा ज़ब्त कर लिया गया। कलक्टर के नाम यह भी आज्ञा थी कि इन पंक्तियों के लेखक को बुला कर इस बात की चेतावनी दे दी जाय कि यदि 'भारत में अङ्गरेज़ी राज्य' नामक पुस्तक 'चाँद' कार्यालय से प्रकाशित हुई और प्रकाशित होने पर यदि वह आपत्तिजनक पाई गई तो सम्भवतः युक्त-प्रान्तीय सरकार को बाध्य होकर भारतीय दण्ड-विधान की धारा १२४-अ के अनुसार प्रकाशक के विरुद्ध मुक़दमा चलाना पड़ेगा! इस स्थान पर दो बातें स्मरण रखने की हैं—एक तो यह कि जो विज्ञापन ज़ब्त हुआ वह आज से ६ मास पूर्व प्रकाशित हो चुका था। उस विज्ञापन की ज़ब्ती की सूचना २० मार्च को दी जाती है और दूसरी बात यह कि जिस पुस्तक के न प्रकाशित करने के लिए अब चेतावनी दी जाती है, वह १८ मार्च की शाम को प्रकाशित हो चुकी थी। सुपरिन्टेन्डेण्ट पुलिस ने मित्र-भाव से हमें यह परामर्श दिया कि इस पुस्तक की जो कॉपियाँ डाकख़ाने भेजी जा चुकी हैं, वह तो चली ही गईं, लेकिन "मित्र-भाव से मेरी यह सलाह है कि भविष्य में एक भी कॉपी आप बाहर न भेजें, न किसी को बेचें। कम से कम तीन रोज़ की मुझे मोहलत दें। मैं अपना आदमी आपके साथ ही मोटर में भेजे देता हूँ, इसके हाथ दो कॉपियाँ मुझे भेज दीजिए। मैं तीन रोज़ के भीतर ही किसी कर्मचारी से पढ़वा कर आपको बतला दूँगा कि पुस्तक प्रचार करने योग्य है या नहीं।" इस ग़ैर-क़ानूनी आज्ञा का, हालाँकि यह मित्र-भाव से दी गई थी, पालन करना हमारे लिए सम्भव नहीं था।

हमने उन्हें स्थिति समझाने का यथाशक्ति प्रयत्न किया, उन्हें बतलाया गया कि इस पुस्तक के प्रकाशन में लगभग २५ हज़ार रौप्य मुद्राएँ अब तक व्यय हो चुकी हैं, और जो चेतावनी जनाब दे रहे हैं वह अर्थ-शून्य है। यह तो ठीक ऐसा कहना है कि यदि तुम चोरी करते हुए पकड़े जाओगे तो सरकार तुम्हें भारतीय दण्ड-विधान की ३८० वीं धारा के अनुसार दण्ड देगी! हमने उन्हें इस बात का विश्वास दिलाया कि इस पुस्तक में ऐसी कोई भी बात नहीं है, जिस पर सरकार आपत्ति कर सके, यह केवल एक इतिहास की पुस्तक है। यदि इसी बात का भय होता कि पुस्तक आपत्तिजनक है और सरकार इसे ज़ब्त कर लेगी तो हम क्या, कोई भी विचारशील प्रकाशक २५ हज़ार रुपए तथा वर्षों इस प्रकार का परिश्रम करने का साहस न किए होता। सुपरिन्टेण्डेण्ट-पुलिस की समझ में उस समय हमारी यह युक्ति कुछ-कुछ आगई थी, उन्होंने और भी कई बातें पुस्तक के सम्बन्ध में पूछीं। कुछ का उत्तर उन्हें दिया गया, कुछ का इन्कार किया गया और शेष बातों का उत्तर कार्यालय से पूछ कर लिखने का वचन देकर इन पंक्तियों का लेखक लौट आया। उसी दिन शाम को मालूम हुआ कि डाकख़ाने में भेजे हुए कुल पार्सल और वी० पी० स्थानीय पुलिस के आदेशानुसार रोक ली गई हैं! हमारे हृदय पर उस समय क्या बीती होगी, यह कल्पना का विषय है—लिखने का नहीं !!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हमने पोस्टमास्टर जनरल को एक विस्तृत तार देकर उनसे रोकने का कारण पूछा—जिसका उत्तर पाने का सौभाग्य हमें आज तक नहीं हुआ। इस तार की नक़ल गवर्नर-जनरल से लेकर स्थानीय पोस्ट-मास्टर तक के पास—सभी हाकिमों और अफ़सरों की सेवा में भेजी गई और उनसे इन्साफ़ की भिक्षा माँगी गई। यह गड़बड़ी देखकर इन पंक्तियों का लेखक स्वयं २१ तारीख़ की रात को लखनऊ के लिए रवाना हुआ। उसका उद्देश था युक्त-प्रान्तीय सरकार के चीफ़ सेक्रेटरी तथा होम मेम्बर से मिलकर, उनका ध्यान इस नादिरशाही की ओर आकर्षित करे। लेखक २२ तारीख़ के सुबह ६ बजे की ट्रेन से लखनऊ पहुँचा, और ८ बजे के क़रीब चीफ़ सेक्रेटरी कुँवर जगदीशप्रसाद जी की कोठी पर गया, लेकिन चीफ़ सेक्रेटरी महोदय ने कोठी पर मिलने से इन्कार किया और काउन्सिल में ११ बजे आने की आज्ञा दी। हताश होकर हम होम-मेम्बर नवाब छत्तारी साहब की कोठी पर पहुँचे। क़रीब एक घण्टे तक बातें हुईं। मालूम यह हुआ कि पुस्तक की ज़ब्ती की आज्ञा इलाहाबाद भेजी जा चुकी है! क़िस्मत ठोक कर इन पंक्तियों का लेखक वहाँ से भी लौटा। ११॥ बजे के क़रीब कुँवर साहब से काउन्सिल में साक्षात् हुआ। हमें पुस्तक के ज़ब्त होने का इतना मलाल नहीं है, जितना कुँवर साहब के दुर्व्यवहार का। उन्होंने हमसे ठीक वैसा ही व्यवहार किया, जैसा वे किसी नौकरी की तलाश में जाने वाले व्यक्ति से करते। हमें प्रान्तीय गवर्नर तक से घण्टों मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, पर इस प्रकार की ज़िल्लत हमें कभी नहीं उठानी पड़ी। चूँकि लेखक इस प्रकार के व्यवहार का आदी नहीं था, इसलिए वास्तव में कुँवर साहब का दुर्व्यवहार उसे बहुत अखर गया! एक साधारण हिन्दोस्तानी के लिए ऐसा प्रतिष्ठित पद प्राप्त कर गर्व का होना स्वाभाविक ही है, किन्तु कुँवर साहब का साहबी ठाठ आकाश से बातें करने वाला था। इस स्थान पर सरकारी होम-मेम्बर नवाब साहब छत्तारी की प्रशंसा किए बिना हम नहीं रह सकते। आपका व्यक्तिगत व्यवहार बड़ा प्रशंसनीय था। ख़ैर, कुँवर साहब ने मिलते ही एक साथ दो जुमले कह डाले—पहला था "आपने व्यर्थ ही यहाँ आने का कष्ट किया, सरकारी आज्ञा तो शायद इलाहाबाद पहुँच गई होगी।" आपका दूसरा जुमला था—"जो तार आपने गवर्नर के नाम भेजा था वह बहुत कड़ा था।" हमारा उत्तर एक ही जुमले का था—"तार के मज़मून के लिए मुझे खेद नहीं है। आपको मेरे आने से जो कष्ट हुआ हो उसके लिए क्षमा चाहता हूँ।" सारांश यह कि लखनऊ जाने का एक यही परिणाम हुआ कि हमने अपनी उस 'गवर्नमेण्ट' का, जो सारे प्रान्त पर शासन करती है, सच्चा स्वरूप देख लिया!

अन्य बहुत सी बातें हैं, जिनकी सविस्तार चर्चा हम आगामी अङ्क में करेंगे। इस ज़ब्ती के सिलसिले में सारी कारवाई का संक्षिप्त विवरण अन्यत्र अङ्गरेज़ी में प्रकाशित हो रहा है, इस स्थान पर हम केवल पाठकों से यही स्मरण रखने की आशा करते हैं कि २१०० पृष्ठों की यह पुस्तक १८ मार्च की शाम को प्रकाशित हुई, २० मार्च के दोपहर को इसके सम्बन्ध में हमें चेतावनी दी गई, उसी रोज़ डाकख़ाने द्वारा भेजी गई वी० पी० तथा पार्सल रोक लिए गए और उसी रोज़ दोपहर को प्रान्तीय सरकार के लिए सुपरिन्टेन्डेण्ट-पुलिस ने हमसे दो कॉपियाँ ख़रीदीं, जो २१ तारीख़ को प्रातःकाल की गाड़ी से लखनऊ पहुँची होंगी (क्योंकि और कोई गाड़ी लखनऊ के लिए नहीं थी) और शायद उसी रोज़ ज़ब्ती की आज्ञा निकाल दी गई, क्योंकि २२ तारीख़ के प्रातःकाल क़रीब ९ बजे के हमें होम-मेम्बर महोदय से पता लग गया था कि पुस्तक ज़ब्त कर ली गई है। निष्कर्ष यह निकला कि २१ तारीख़ की रात ही को आज्ञा-पत्र रवाना हो चुका था, क्योंकि चीफ़ सेक्रेटरी महोदय का हमसे २२ तारीख़ को ११½ बजे कहना था कि सरकारी आज्ञा इलाहाबाद पहुँच चुकी होगी! पुस्तक किस समय पढ़ी गई, किसने पढ़ी, किसने अनुवाद किया, किसने और कब क़ानूनी राय दी और किस समय ज़ब्ती की आज्ञा निकाली गई—आज सारा देश यह पहेली सुलझाने का प्रयत्न कर रहा है, पर किसी की बुद्धि काम नहीं करती!!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रायश्चित्त

[ले० श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]

पण्डित भिखारीलाल के द्वार पर आज बड़ी धूमधाम है। अनेक प्रकार के बाजे तथा बैण्ड इत्यादि बज रहे हैं। ताँगों, गाड़ियों तथा मोटरों का ताँता बँधा हुआ है। इस धूमधाम का कारण यह है कि आज पण्डित भिखारीलाल के इकलौते पुत्र बाँकेविहारी लाल अपनी पत्नी का गौना लाए हैं।

पण्डित भिखारीलाल नगर के प्रतिष्ठित रईसों में हैं। आपके पास प्रचुर सम्पत्ति है। पण्डित जी की वयस इस समय ४५ वर्ष के लगभग है। पण्डित जी के बाँकेविहारी के अतिरिक्त और कोई सन्तान नहीं, अतएव पण्डित जी अपने पुत्र को प्राणों से अधिक प्यार करते हैं।

बाँकेविहारी का विवाह उस समय हुआ था, जब उसकी वयस केवल दस वर्ष की थी। इस समय उसकी वयस बीस वर्ष के लगभग है। पण्डित जी ने प्रण किया था कि वह बाँकेविहारी की पत्नी का गौना उस समय लेंगे जब वह बी० ए० में पहुँच जायगा। इस वर्ष बाँकेविहारी बी० ए० की अन्तिम कक्षा में पहुँच गया है, अतएव पण्डित जी ने बड़ी धूमधाम से गौने की रस्म को सम्पूर्ण किया।

आज पण्डित जी और उनकी अर्द्धांङ्गिनी के हर्ष तथा आनन्द का ठिकाना नहीं। वर्षों की दबी हुई अभिलाषा आज पूरी हुई, मुद्दतों के अरमान आज खुल कर निकले। पण्डित जी ने इसके उपलक्ष में अपने इष्ट-मित्रों को अभूतपूर्व भोज दिया। यद्यपि उन्होंने विवाह में भी यथेष्ट धूमधाम की थी, परन्तु उन लोगों का, जिन्होंने विवाह भी देखा था, कहना है कि ऐसी शान की दावत विवाह में भी नहीं हुई थी। परन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी बाँकेविहारी के मुख पर आनन्द की रेखा नहीं। इस बात को बाँकेविहारी के दो-चार मित्रों के अतिरिक्त और कोई न ताड़ सका। भोज के पश्चात् बाँकेविहारी के विशाल तथा सुसज्जित कमरे में उनकी मित्र-मण्डली एकत्र हुई। एक ने बाँकेविहारी से कहा—मित्र, हमारी ओर से तुम्हें बधाई है।

बाँकेविहारी ने शुष्क मुस्कान के साथ कहा—इस बधाई के लिए मेरी ओर से आपको धन्यवाद है।

दूसरा बोल उठा—चाँद-सूरज की जोड़ी बरक़रार! सलामतियाँ रहें!

बाँकेविहारी ने हँसते हुए कहा—साईं बाबा, आगे देखो, हाथ ख़ाली नहीं है।

मित्रों ने इस पर अट्टहास्य किया। एक बोला—इस घनश्याम को कभी बात करने का सलीक़ा न आएगा।

घनश्याम ने अप्रतिभ होकर कहा—क्यों जनाब, मैंने कौन सी ऐसी बात कही? मैंने तो केवल आशीर्वाद दिया है।

इस पर पुनः सब हँस पड़े। एक बोल उठा—आप आशीर्वाद देने के अधिकारी कब से हुए? ईश्वर झूठ न बुलावे, आप बाँकेविहारी से साल-छः महीने छोटे ही होंगे!

दूसरा—जी हाँ, और आशीर्वाद भी इस तरह देते हैं, मानों भीख माँगने निकले हैं।

इसी प्रकार थोड़ी देर तक हँसी-मज़ाक़ होता रहा। मित्र-मण्डली में से एक ने दूसरे के कान में कहा—यार, बाँकेविहारी के चेहरे पर कुछ उदासी है। इसका क्या कारण है? आज तो वह दिन है कि इनका चेहरा ख़ुशी के मारे दमकना चाहिए। जान पड़ता है, पत्नी इन्हें पसन्द नहीं आई।

"यही बात होगी, इसके अतिरिक्त और कोई कारण हो ही नहीं सकता।"

"परन्तु हमने तो सुना है कि इनकी पत्नी बहुत रूपवती है।"

"रूपवती होते हुए भी नापसन्द हो सकती है। अपनी-अपनी रुचि ही तो है।"

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"इसका कारण इनसे पूछना तो चाहिए।"

"इस समय मौक़ा नहीं है, फिर किसी समय पूछेंगे।"

इसी समय एक ने कमरे में लगे हुए क्लॉक की ओर देख कर कहा—अरे यारो, नौ बज रहे हैं—अब इनका पिण्ड छोड़ो, खाना खा चुके—अब क्यों धरना दिए बैठे हो। आज कौन दिन है, यह भी पता है?

दूसरा बोला—हाँ, बात तो ठीक है। अब अपने-अपने घर चलो। आज इनकी सोहाग-रात है—बेचारे बेचैन होंगे।

इतना सुनते ही सब उठ खड़े हुए। बाँकेविहारी बोले—बैठो, अभी कौन जल्दी है।

एक बोला—हाँ, ऊपर से यह कह रहे हो, मन में सोच रहे होगे कि ये कम्बख़्त किसी तरह टलें।

बाँकेविहारी—कदापि नहीं, ऐसा कभी मत सोचना, मुझे सच्चा आनन्द आप लोगों में बैठ कर ही मिलता है।

"हाँ इस समय सम्भव है आपकी भावना ऐसी ही हो; परन्तु कल भी यह भावना रहेगी, इसमें हम लोगों को सन्देह है।"

बाँकेविहारी ने मुस्करा कर कहा—कल भी कुछ दूर नहीं है। देख लेना।

"हाँ, कहते तो ठीक हो। कल का दिन तो बहुत ही निकट है। आज की रात तो आपको अत्यन्त छोटी प्रतीत होगी।"

एक क्षण के लिए बाँकेविहारी का मुख मलीन हो गया, परन्तु तुरन्त ही वह मुस्करा कर बोले—बड़े शरीर हो। प्रत्येक बात के अर्थ लगा लेते हो।

"मनुष्य संसार में जन्म लेकर चार चीज़ों के फेर में रहता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। सो भाई साहब, हम लोग इस समय 'अर्थ' के चक्कर में हैं और तुम—अर्थ के आगे क्या है—ज़रा बताना तो।"

बाँकेविहारी—अच्छा अब आप लोग तशरीफ़ ले जायँ—बहुत हो चुका।

"देखा, आख़िर मन की बात उगल ही दी। चलो यारो, अब तो साफ़-साफ़ कह दिया गया। हाँ, अगर धक्के खाकर निकलने की इच्छा हो तो बात दूसरी है।

इसके पश्चात् सब लोग बिदा हुए और बाँकेविहारी अकेले रह गए।

२

उपर्युक्त घटना को तीन वर्ष व्यतीत हो गए। दोपहर का समय है, बाँकेविहारी लाल की माता खुली छत पर धूप में बैठी हैं। उनके समीप उनकी तीन-चार सखी-सहेलियाँ बैठी हैं। इधर-उधर की गप-शप हो रही है। हठात् एक स्त्री बोल उठी—हाँ, यह तो बताओ, बहू के कुछ लड़का-बाला होने वाला है?

बाँकेविहारी की माता एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर बोलीं—न कहीं, मुझे तो जान पड़ता है, बहू के लड़का होगा ही नहीं। यह सुनते ही सबने एक साथ मुँह फाड़ दिया और बोलीं—क्या ऐसी बात है?

"मुझे तो ऐसा ही जान पड़ता है। तीन बरस हो गए, यह तो सोचो।"

"हाँ, यही तो मैं सोचती हूँ। तीन बरस में तो हमारे दो लड़के हो गए थे।"

"यह बाँकेविहारी गौना होने के साल भर पीछे ही हुआ था।"

"हाँ, यह तो होता ही है। एकाध बरस बीतते तो देखा है, पर ऐसा कहीं नहीं देखा कि तीन-तीन बरस बीत जायँ और कुछ न हो।"

"मुझे तो बहू बाँझ मालूम पड़ती है।"

"हाय, भगवान् न करे! ऐसी असुभ बात मुँह से न निकालो।"

"असुभ हो चाहे सुभ, जो सच्ची बात है वह तो कहनी ही पड़ेगी।"

"हे भगवान्, जो यह सच्ची बात है तो फिर क्या होगा?"

"बाँके का दूसरा ब्याह होगा—और क्या होगा। मैं साल-छः महीने और देखती हूँ—इसके उपरान्त दूसरा ब्याह करूँगी।"

"हाँ बहू, जब ऐसी बात है तो करना ही पड़ेगा। औलाद ही के लिए तो सब कुछ किया जाता है।"

"यही बात है। वैसे तो बहू में कोई ऐब नहीं, रङ्ग-रूप अच्छा है, पढ़ी-लिखी भी है, घर-गृहस्थी का काम भी कर लेती है, पर यह बड़ा भारी ऐब है।"

"अरे यह तो ऐसा ऐब है कि सारे गुनों पर पानी फेर देता है। बताओ जब लड़का ही न होगा तो × × ×!"

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"राम! राम! तब किस काम की—वह चाहे सोने की हो।"

"और ऊपर से देखने में कोई रोग नहीं, दोख नहीं। महीना भी ठीक समय पर हो जाता है—सारी बातें हैं, पर लड़का नहीं होता।"

"ऐसी औरतें होती हैं—मेरी मामी में भी यही बात थी। उनके भी सब बातें ठीक थीं, पर बाल-बच्चा नहीं होता था। डॉक्टरों को दिखाया, उन्होंने भी कोई ऐब नहीं बताया। आख़िर जब बहुत मजबूर हो गए तो उन्होंने दूसरा ब्याह किया।"

"तो इस दूसरी से कोई बाल-बच्चा हुआ?

"अभी ब्याह हुए दिन ही कितने हुए—छः महीने तो हुए ही हैं।"

बाँकेविहारी की माता 'हूँ' कह कर मौन हो गई। थोड़ी देर चुप रहने के पश्चात् उन्होंने पुनः सिर उठा कर कहा—हमने भी अपनी बहू को एक मेम को दिखाया था। उसने भी कोई बात नहीं बताई। यही कहा कि पेट में कोई गाँठ-वाँठ नहीं है, न महीने का कोई दोस है। इसीलिए मैं अभी चुप बैठी हूँ कि सायत साल-छः महीने में हो जाय। बाजी औरतों के देर में होता है।

"हाँ होता है। अच्छी बात है, साल भर और देख लो।"

"बड़ी अभिलाख थी कि बहू आवेगी, पोता होगा, पर वह सब कुछ भी न हुआ।"

"सो तो होगा ही, राम जी बाँके को चिरजीव रक्खें। इससे न होगा दूसरी से होगा। पर बहू, मेरी एक बात मानना, अधिक दिन न देखना, साल भर में कुछ जान न पड़े तो ब्याह कर देना। काहे से कि तुम्हारी भी और उमर हो गई, नाती-पोतों का सुख देखने की तो यही उमर है।"

"हाँ और क्या, साल दो साल में हो जाय तो यह आस भी रहेगी कि पोते का सादी-ब्याह भी देख लूँगी और जो चार-छः बरस न हुआ तो फिर इसकी भी उम्मीद न रहेगी—मैं कुछ जनम भर तो बैठी न रहूँगी। चालीस बरस की उमर तो हो ही गई, बहुत जिऊँगी तो दस-बारह बरस और जिऊँगी।"

"अधिक उमर होजाने में नाती-पोतों का सुख देखने को नहीं मिलता। हमारे पड़ोस में एक कायस्थ रहते हैं। उनके लड़के के लड़का हुआ—उनकी उमर पचास के क़रीब थी—लड़का होने के दो बरस बाद चल बसे—बेचारे पोते का सुख न देख पाए। तो बहू, ऐसा हुआ भी तो किस काम का। होना तो वही है कि उसका सुख देखो, अपने सामने ब्याह-सादी करो और भगवान् की दया हो तो पड़पोते का मुँह भी देख लो—कोई बड़ी बात थोड़ी ही है; पर यह तभी हो सकता है जब सब काम बखत पर होते चले जायँ। बखत पिछड़ जाने से फिर यह सब कुछ न हो सकेगा।"

बाँकेविहारी की माता के हृदय पर इस "बखत पर सब काम" होने की बात का बड़ा प्रभाव पड़ा। उनकी समझ में भी यह बात आगई कि वास्तव में बखत पर सब काम होंगे तभी उन्हें नाती-पोतों का सुख प्राप्त होगा।

बखत पर सब काम होने का अर्थ उनकी समझ में यह था कि जब वह चाहें तब पोता हो जाय और जब उनकी इच्छा हो तब पड़पोता अवतार धारण कर ले। यदि उनकी कार्य-सूची के अनुसार पोते-पड़पोते नहीं होते तो सब काम बे-बखत होना समझा जायगा। अब उनके पेट में और खलबली मची; क्योंकि पहले उन्होंने इस बात पर ध्यान नहीं दिया था कि जितनी ही जल्दी पोता होगा उतनी ही शीघ्र पड़पोते का मुख देखने की सम्भावना रहेगी।

अब आज से उन्हें एक-एक दिन एक-एक वर्ष के समान प्रतीत होने लगा।

३

देखते-देखते दस मास और व्यतीत होगए। ये दस मास बाँकेविहारी की माता ने कैसे व्यतीत किए, यह बात या तो संसार में वह जानती हैं या फिर ईश्वर। हम केवल इतना कह सकते हैं कि प्रत्येक मास वह यह आशा करती थीं कि इस महीने से बहू का मासिक धर्म बन्द हो जायगा। परन्तु जब महीने के अन्त में बहू का रजोदर्शन हो जाता तो वह निराशा के गर्त्त में जा पड़ती थीं। उस समय उन्हें बहू पर बड़ा क्रोध आता था कि इसे क्यों मासिक धर्म हो जाता है। उन्हें कभी-कभी यह सन्देह भी होने लगता था कि कहीं बहू उन्हें चिढ़ाने के लिए तो मासिक धर्म नहीं बुला लेती। अपना यह सन्देह उन्होंने अपनी एक सखी पर प्रकट भी किया था। उन्होंने कहा—कहीं ऐसा

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तो नहीं कि बहू कोई दवा खा लेती हो जिससे गर्भ न रहे।

सखी ने आँखें विस्फारित करके कहा—अरे नहीं, ऐसा भला क्या करती होगी—क्या उसे लड़का होने का चाव न होगा ?

"अरे आजकल की लड़कियाँ बड़ी छत्तीसी होती हैं। सास-ससुर को दुख देने के लिए और इसलिए भी कि लड़का होने में कष्ट होगा, लड़के को पालना-पोसना पड़ेगा, खसम के पास उठने-बैठने की दिक़्क़त रहेगी, बनाव-सिंगार में कमी पड़ जायगी—ऐसा कर लेती हैं।"

"हाँ, यह भी तुम्हारा कहना ठीक है—ऐसा होता हो तो क्या ताज्जुब है। सुना है, मेमें ऐसा ही करती हैं। वह इसलिए लड़का नहीं पैदा करतीं कि लड़का होने से उनका रूप और जोबन बिगड़ जायगा।"

"यही तो मैं भी कहती हूँ और मैं कहती क्या हूँ। जरूर ऐसी ही बात है, नहीं तो जब कोई रोग-दोख नहीं है तब फिर लड़का क्यों न हो।"

"ठीक बात है!"

इस वार्त्तालाप के पश्चात् उनकी यह धारणा हो गई कि या तो बहू निपट वन्ध्या है और या फिर वह कोई दवा खा लेती है जिससे गर्भ नहीं रहता। ये दोनों बातें ऐसी थीं, जिससे उन्हें बहू पर क्रोध आता था। यदि वह बाँझ है तो यह भी क्रोध उत्पन्न करने वाली बात है और यदि वह जान करके गर्भ धारण नहीं करती तो यह ऐसा अपराध है जो सर्वथा अक्षम्य है।

अन्त में जब उनकी नियुक्त की हुई साल भर की मियाद के दसवें मास में भी उचित समय पर बहू ने अपने मासिक धर्म से सास को ख़तरे का सिगनल दिखाया तो सास देवी का धैर्य छूट गया। उन्होंने दाँत पीस कर कहा—यह सारी बदमाशी इसी छत्तीसी की है। अच्छा रह तो जा, मैंने भी तुझे जन्म भर न रुलाया तो मेरा नाम नहीं।

उसी दिन उन्होंने रात में अपने पति से सारा कच्चा चिट्ठा जड़ा और उनसे यह प्रार्थना की कि वह शीघ्रातिशीघ्र लड़के का दूसरा ब्याह करें।

पं० भिखारीलाल बोले—पर पहले इसका निश्चय हो जाना चाहिए कि बहू बाँझ है।

पत्नी ने कहा—इसका निश्चय मैंने कर लिया है।

"कैसे ?"

"बाँझ न होती तो अब तक लड़का ज़रूर हो जाता।"

"यह तो कोई बात नहीं। ऐसा भी होता है कि स्त्रियाँ बाँझ नहीं होतीं, परन्तु फिर भी उनके लड़के बहुत देर में होते हैं।"

"तो उनको कोई रोग होता है। उनके महीने में गड़बड़ी होती है। इसका तो महीना-वहीना सब ठीक होता है।"

"तो अभी जल्दी क्या है। साल दो साल और देख लो।"

"हे भगवान्! अब क्या सारी उमर यही देखते बीतेगी। आजकल जिन्दगी का कोई ठिकाना नहीं है। इससे सब काम बखत पर होना चाहिए। चार-छः बरस बाद हुआ भी तो क्या होगा। कब वह बड़ा होगा, कब उसका ब्याह होगा। हम तुम कुछ अमृत पीकर तो बैठे नहीं हैं।"

"ओफ़ ओह! तुम तो बड़ा लम्बा-चौड़ा हिसाब लगाए बैठी हो।"

"मैं क्या लगाए बैठी हूँ, सभी लगाते हैं। ऐसा कौन है जो पोतों-पड़पोतों का मुँह देखना न चाहेगा।"

"यह तो सब ठीक है; पर यह अपने वश की बात थोड़े ही है।"

"है क्यों नहीं ? जो ढङ्ग से काम करो तो बस की बात है, बेढङ्गेपन से करो तो नहीं है।"

"एक बेर बहू का इलाज-विलाज करके तो देख लो।"

"इलाज होगा काहे का—उसे कोई रोग हो तो उसका इलाज किया जाय। जब कोई रोग ही नहीं, तो इलाज किस बात का हो।"

"सोच लो। बहू भी कोई मामूली घर की लड़की नहीं है—वे भी बड़े आदमी हैं। वे दूसरा ब्याह करने देंगे ?"

"क्यों न करने देंगे! जब उनकी लड़की किसी काम की ही नहीं है तो फिर क्या किया जाय। ब्याह ख़ाली

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सूरत देखने के लिए तो किया ही नहीं जाता—ब्याह तो लड़के-बाले होने के लिए ही किया जाता है।"

"यह सब ठीक है, परन्तु पहले इसका पूर्णरूप से निश्चय हो जाना चाहिए कि वह बन्ध्या है।"

"अब और कैसे निश्चय होगा। बाँझ न होती तो अब तक कम से कम दो बच्चे हो गए होते।"

"हाँ, यह तो ठीक है।"

"तो बस फिर अब देखना-सुनना क्या है।

"अच्छी बात है—सोचूँगा।"

"सोचना-वोचना अब कुछ नहीं, कहीं ब्याह की बातचीत लगाओ।"

इस प्रकार श्रीमती जी ने पति को पुत्र का दूसरा विवाह करने के लिए उद्यत कर लिया।

पण्डित जी ने सोचा कि कहीं दूसरी जगह विवाह की बातचीत लगाने के पहले अपने वर्तमान समधी को सूचना दे देना चाहिए। अतएव उन्होंने उसी दिन उन्हें एक पत्र लिखा—

बन्धुवर!

मुझे आपको यह सूचना देते हुए बहुत ही दुख होता है कि आपकी कन्या बन्ध्या प्रमाणित हुई है। ऐसी दशा में मेरा यह कर्त्तव्य है कि मैं अपने लड़के का दूसरा विवाह कर लूँ। आप जानते हैं कि विवाह का मुख्य उद्देश सन्तानोत्पत्ति है—अतएव सन्तानोत्पत्ति के लिए दूसरा विवाह करना अत्यन्त आवश्यक है। आशा है, आप इस बात को दृष्टि में रखकर हमारे इस कार्य को अनुचित न समझेंगे।

आपका,
भिखारीलाल

यह पत्र भेजने के चार दिन पश्चात् ही बाँकेविहारी का साला अपने पिता का एक पत्र लिए हुए आ पहुँचा। भिखारीलाल ने पत्र पढ़ा। वह इस प्रकार था:—

प्रिय पण्डित जी, सादर नमस्कार!

आपका पत्र मिला। पढ़कर बड़ा ही आश्चर्य और दुख हुआ। यदि वास्तव में वैसी बात है, जैसा आपने लिखा है, तब तो हमें भी यह कहना पड़ेगा कि आप अपने लड़के का दूसरा विवाह अवश्य कर लें; परन्तु मुझे विश्वास नहीं होता कि मेरी लड़की वन्ध्या है। अतएव आप उसे मेरे यहाँ भेजने की कृपा करें। एक बेर मैं उसकी परीक्षा कराके अपनी तुष्टि कर लूँ, तदुपरान्त आपको लड़के का दूसरा विवाह करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है। विधना के विधान को कौन मेट सकता है।

आपका

.....

भिखारीलाल ने बहू को उसके भाई के साथ भेज दिया।

४

बाँकेविहारी की पत्नी को अपने मायके गए हुए एक मास व्यतीत हो गया। इधर पण्डित भिखारीलाल बाँकेविहारी का दूसरा विवाह करने के लिए इधर-उधर बातचीत करने लगे। क्रमशः यह समाचार बाँकेविहारी को भी मिला कि उसके पिता उसका दूसरा विवाह करने की चेष्टा में हैं। अतएव वह उसी दिन पिता से मिल कर बोला—पिता जी, मैंने सुना है आप मेरा दूसरा विवाह करने की बात सोच रहे हैं?

"हाँ, सोच तो रहा हूँ।"

"क्यों?"

"इसलिए कि तेरी बहू वन्ध्या है।

"वन्ध्या है?"

"हाँ!"

"यह आपको कैसे मालूम हुआ?"

"किसी भी तरह मालूम हुआ हो, पर बात ठीक है।"

"वन्ध्या है तो हुआ करे।"

"तो मेरा वंश कैसे चलेगा?"

बाँकेविहारी यह बात सुन कर थोड़ी देर तक मौन रहा। तदुपरान्त बोला—परन्तु मैं तो विवाह करना नहीं चाहता।

"तेरे न चाहने से क्या होगा। होगा तो वही जो मैं चाहूँगा।"

"यदि मैं विवाह न करूँ तो?"

"यदि तुझे मेरे यहाँ रहना है तो तुझे विवाह करना पड़ेगा।"

"ऐसी बात है?"

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"हाँ ऐसी बात है।"

"अच्छी बात है, जो आपकी इच्छा हो, कीजिए।"

यह कहकर बाँकेविहारी पिता के सामने से चला गया।

दूसरे दिन शाम को नौकर ने पण्डित भिखारीलाल को एक बन्द लिफ़ाफ़ा लाकर दिया। पण्डित जी ने पूछा—किसने दिया है?

नौकर ने कहा—छोटे बाबू ने।

"वह कहाँ हैं?"

"अपने कमरे में बैठे हैं।"

'हूँ' कह कर पण्डित जी ने लिफ़ाफ़ा खोला। पत्र इस प्रकार था :—

पूज्य पिता जी!

आप समझते हैं कि मेरी पत्नी में कोई दोष है इसलिए उसके सन्तान नहीं होती; परन्तु वास्तव में दोष उसमें नहीं, मुझमें है। मैं इस योग्य ही नहीं हूँ कि सन्तान उत्पन्न कर सकूँ। सन्तान उत्पन्न करना तो दूर की बात है, मैं इस योग्य भी नहीं हूँ कि स्त्री के पास जा सकूँ। कदाचित् आप इसका कारण पूँछेंगे। कारण वही है, जो बहुधा हुआ करता है। मैंने अपने हाथों ही अपना सत्यानाश किया है। मैं स्कूल तथा कॉलेज में ऐसे लड़के की सङ्गत में फँस गया जो स्वयम् तो नष्ट होते ही हैं, अपने मित्रों को भी नष्ट करते हैं। उनके परिणाम-स्वरूप मैं बिलकुल निकम्मा हो गया। गौने के पूर्व ही मेरा सर्वनाश हो चुका था। सुहागरात को मैंने अपनी पत्नी से अपने सिर पर हाथ रखाकर इस बात की शपथ कराई थी कि वह मेरी इस अशक्तता का ज़िक्र किसी से न करे। उस बेचारी ने उसे पूर्णतया निबाहा। आज पाँच वर्ष के लगभग हो गए—उसने किसी से भी यह बात नहीं कही—यदि वह कहती हो कम से कम वह बात माता जी के कानों तक तो अवश्य ही पहुँचती।

मैं उस समय से बराबर अपना इलाज करा रहा हूँ; पर कोई फल नहीं निकला। कल जब आपने सन्तान न होने की बात कही तो मैं पुनः अपने डॉक्टर से मिला और उनसे अपने लिए पूछा कि क्या मैं कभी इस योग्य हो जाऊँगा कि सन्तान उत्पन्न कर सकूँ। डॉक्टर ने मुझे बतलाया कि यदि मैं इस योग्य हो भी गया कि स्त्री के पास जा सकूँ तो भी इस योग्य कभी भी न हो सकूँगा कि सन्तानोत्पादन कर सकूँ। डॉक्टर का कहना है कि मेरा वीर्य इतना बिगड़ गया है कि उसमें सन्तानोत्पत्ति की शक्ति रह ही नहीं गई। अतएव ऐसी दशा में जब कि मैं न अपनी पत्नी को सुखी बना सकता हूँ और न आपका वंश चला सकता हूँ, मेरा जीवन व्यर्थ है। इससे तो यही अच्छा है कि मैं इस जीवन का अन्त कर दूँ। ईश्वर ने मुझे ऐसा स्त्री-रत्न दिया था कि यदि मैं स्वस्थ होता तो मेरे समान शायद् ही कोई सुखी होता, परन्तु अब इस दशा में मेरे समान कदाचित् ही कोई दुखी हो। अब मुझसे यह दुख नहीं सहा जाता।

अन्त में मैं आप से एक अन्तिम प्रार्थना करता हूँ—वह यह कि आप चेष्टा करके मेरी पत्नी का विधवा-विवाह करा दें। वह अक्षत-योनि है और आजकल विधवा-विवाह होने लगे हैं—अतएव ऐसी दशा में इस कार्य में कोई विशेष कठिनाई नहीं पड़ेगी। यदि आप ऐसा कर देंगे तो मेरी आत्मा को शान्ति मिलेगी। क्योंकि मेरे पापों के लिए वह बेचारी क्यों जन्म भर दुख भोगे? यदि मैं जीता रहता तो वह विवाह कर सकने के लिए स्वतन्त्र न होती, क्योंकि मेरे जीते जी वह क़ानूनन दूसरा विवाह नहीं कर सकती थी—यदि ऐसा क़ानून होता तो मैं कदाचित् आत्म-हत्या न करता और उसका दूसरा विवाह करा देता; परन्तु जब यह सम्भव नहीं तो उसे मुक्त करने के लिए केवल यही उपाय है कि मैं संसार में न रहूँ। आशा है, आप मेरी यह अन्तिम प्रार्थना अवश्य पूरी करेंगे।

"मेरे अपराध क्षमा × × ×।" भिखारी लाल यहीं तक पढ़ पाए थे कि बाँकेविहारी के कमरे से 'धड़ाम' से पिस्तौल छूटने का शब्द हुआ। भिखारीलाल 'हाय बेटा' कह कर उठे और कमरे की ओर दौड़ पड़े; परन्तु दो ही क़दम पर लड़खड़ा कर गिरे और बेहोश हो गए!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हमारी आधुनिक शिक्षा

[ले० पं० रामाज्ञा जी द्विवेदी, एम० ए० (ऑनर्स)]

आजकल की शिक्षा के सम्बन्ध में यदि किसी को अपनी सम्मति निश्चित करना हो तो उसे चाहिए कि शाम को जाकर कॉलेज के नवयुवकों के झुण्ड में एकाएक घुस पड़े। यदि वह बूढ़ा है तो जाते ही नई रोशनी वाले नवजवान लोग उसको बेवकूफ़ बनाना शुरू कर देंगे और अगर कहीं वह अपनी अवस्था का हुआ तब भी वे लोग उसकी हँसी उड़ाए बिना न रहेंगे। सौभाग्यवश यदि कहीं यह आतिथ्य प्राप्त करने का अवसर न मिले और आप छिपे ही छिपे उनके पीछे-पीछे चलते रहें तो आपको उनके विनोद तथा रुचि का भी नमूना मिल जायगा। आपस में ऐसे-ऐसे भद्दे मज़ाक़ होंगे कि आप दङ्ग रह जायँगे; आप सोचने लगेंगे कि सचमुच देश के नवयुवक क्या इसी प्रकार की शिक्षा पाकर संसार और जाति की सेवा करने जा रहे हैं? इसका यह कारण भी नहीं कि इन विद्यार्थियों का जीवन बड़ा सुखमय तथा स्वास्थ्यपूर्ण है और मारे आह्लाद के उन्हें और कुछ सूझता ही नहीं। ऐसा भी नहीं है, यदि आप उनके मुखमण्डल की ओर दृष्टि डालें तो कान्तिहीन पीले-पीले चेहरे दिखाई पड़ेंगे। सारा शरीर बरसात के मेढकों की भाँति पीला, हाथ-पैर सूखे लकड़ी से और आँखें प्रभाहीन! इस प्रकार न तो उनकी शारीरिक दशा अच्छी है और न मानसिक। धर्म तथा चरित्र का प्रश्न तो अलग रहा, ये बेचारे आगे चलकर अपनी जीविका भी तो नहीं कमा सकते। किसी न किसी प्रकार माता-पिता तीस-चालीस रुपए प्रति मास भेज देते हैं, पर ग्रेजुएट होने पर तो इतना भी कठिनता से मिलने की आशा है। अस्तु—

मिल्टन ने एक स्थल पर लिखा है कि सच्ची शिक्षा वह है, जिसकी सहायता से मनुष्य अपना तथा समाज का प्रत्येक कार्य उत्तरदायित्व एवं कौशल के साथ सम्पादन कर सके। पर समाज की सेवा तो दूर रही, आजकल के शिक्षित युवक तो अपनी ही सेवा करने में असमर्थ रहते हैं। न तो उनका मस्तिष्क ही विकसित होने पाता है और न शरीर ही। कविवर रवीन्द्रनाथ जी ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि 'The genius of our boys is crushed between the book leaves." अर्थात् हमारे विद्यार्थियों की प्रतिभा पुस्तकों के पन्नों में मसल दी जाती है। बात बिलकुल ठीक है और पढ़-लिख कर निकलने पर प्रायः लोगों के विषय में वही कहावत चरितार्थ होने लगती है कि "धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का।" रही उन पुस्तकों की बात, जिनके पन्नों में प्रतिभा का पानी सूख कर लुप्त हो जाता है, वह भी ऐसी होती हैं जो न दीन के काम की, न दुनिया के! इतिहास सिखाता है कि हमारे पूर्वज मूर्ख थे और सदा दूसरों की ठोकरें खाते रहे। तभी तो सभी प्राचीन बातों को हम लोग ढोंग और पुराने लोगों को मूर्खातिमूर्ख समझने लग गए हैं। हमारे लिए जो कुछ है, पाश्चात्य शिक्षा में और पाश्चात्य सभ्यता में है—उसकी तीव्र रोशनी से हमारी आँखें ऐसी चकाचौंध में पड़ गई हैं कि उनके सामने कुछ और ठहरता ही नहीं!

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि हमने पाश्चात्य सभ्यता का सभी कुछ सीख लिया है। यह समझना भारी भूल होगी, क्योंकि हमने अब तक तो केवल उसके प्रलोभनों और उसकी कमज़ोरियों पर ही ध्यान दिया है—या यों कहिए कि उनकी ही ओर हमारा ध्यान खींच कर किया गया है। पाश्चात्य सभ्यता ने हमारे युवकों को न तो यूरोप की मुस्तैदी सिखाई है और न वहाँ की सी देश-सेवा; उन्होंने तो सीखा है अकड़ कर चलना, डपट कर बोलना—यद्यपि डपटने भर को आवाज़ में ज़ोर भले ही न हो—और अपने छोटे से छोटे काम भी नौकरों के ऊपर छोड़ देना। सब से बड़ा भ्रम जो शिक्षित समाज में पैदा हो गया है और जिसके कारण हमारी दरिद्रता बढ़ती जा रही है, यह है कि हमारे रहन-सहन का स्टैण्डर्ड (Standard

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

of life) बढ़ना ही सभ्यता का द्योतक है। यही समझ कर प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति अपने खाने-पीने, चलने-फिरने का स्टैण्डर्ड बढ़ाने की ही फ़िक्र में रहता है। पैदल चलना अथवा धोती पहन कर बाहर निकलना सभ्यता के विरुद्ध समझा जाता है और अनावश्यक प्रयत्न इस बात का किया जाता है कि संसार समझने लग जाय कि हम अधिक सुखी हो रहे हैं, पर वास्तविक दशा क्या है ? पढ़े-लिखे लोग अपने हाथ से कोई काम करना नहीं चाहते, सभी ऑफ़िस में बैठकर कुर्सी तोड़ना चाहते हैं, चाहे वहाँ का वेतन परिश्रम करके मज़दूरी करने से कम ही क्यों न हो। इसी भावना में पड़ कर ग्रेजुएट लोग मोटर हाँक कर अथवा दूकान खोल कर १००) मासिक पैदा करना पसन्द नहीं करते, दफ़्तर में क्लर्क बनकर ४०) भले ही ज्यों-त्यों कमा कर ख़ुश रहेंगे। इसी का दूसरा नाम है "बाबूपन" जिसके मारे समाज की मिट्टी पलीद हो रही है। सभी पढ़-लिख कर नौकरी ही करना चाहते हैं और सरकारी नौकरी कुल मिलाकर मुश्किल से इतनी हैं कि सैकड़े पीछे एक आदमी को जगह मिल सके! स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी से किसी ने कहा था कि शिक्षित लोगों में इतनी बेकारी वैसे ही बढ़ रही है, आपके स्नातक गुरुकुल से निकल कर क्या करेंगे ? उन्होंने उत्तर दिया कि हमारे विद्यार्थी क्या सरकारी नौकरी के लिए थोड़े ही लालायित हैं। इस दृष्टि से गुरुकुलों ने देश का बड़ा उपकार किया है, क्योंकि वहाँ से लौटकर नवयुवक अपने बूते पर कुछ न कुछ तो करते ही हैं, नौकरी के पीछे तो मारे-मारे नहीं फिरते।

यह हाल तो हमारे शिक्षित युवकों का अभी हो रहा है जब देश में पढ़े-लिखों की संख्या ५ प्रति सैकड़ा से भी कम है, कहीं जापान अथवा अमेरिका की भाँति देश का प्रत्येक स्त्री-पुरुष शिक्षित होता तो न जाने क्या हो जाता। इस सम्बन्ध में अमेरिका वालों का कार्य हमारे लिए अनुकरणीय है। वहाँ तो डिग्रीधारी लोग भी खेतों में अपने हाथ से काम करने में नहीं शरमाते। और शरमाएँ क्यों ? वहाँ तो खेती कराने वाले ही लखपती और करोड़पती हैं। ठीक इसका उलटा भारत-वर्ष में है, जहाँ बेचारे किसान जानवरों की तरह गाढ़े पसीने की कमाई करने पर भी भरपेट खाने को नहीं पाते! दूसरी बात यह है कि हमारी शिक्षा बिलकुल एकाङ्गी है। देहात के पढ़े-लिखे बेचारे शहरों में आकर बेवक़ूफ़ बन जाते हैं और उधर शहरों के रहने वालों को गेहूँ के पेड़ पहचानने में भी कठिनता होती है। देहात तथा शहर वालों में परस्पर कोई भी सहानुभूति नहीं। और हो भी क्योंकर ? इसके साधन भी तो नहीं हैं।

इङ्गलैण्ड आदि देशों में Children's country Holiday फ़ण्ड तथा सोसाइटी स्थापित हैं, जिनका मुख्य काम लन्दन ऐसे बड़े शहरों के बालक-बालिकाओं को देहात का पूरा ज्ञान करा देना है, किन्तु अपने देश के अध्यापक सिवा लड़कों को ठोंक-पीट कर पाठ याद करा देने के और कुछ जानते ही नहीं। किया भी क्या जाय ? यहाँ तो शिक्षा का ध्येय ही घोंट-घाँट कर परीक्षाएँ पास कर लेना है। एक अङ्गरेज़ सज्जन ने, जो बहुत दिनों तक भारत के सूबों में शिक्षा के डाइरेक्टर थे, इस देश की शिक्षा-पद्धति पर एक महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी है, जिसमें आपने प्राचीन गुरुओं के आदर्शों का उल्लेख करते हुए आजकल के अध्यापकों की दुर्दशा का वर्णन किया है। उनके कार्यों के विषय में आप कहते हैं :—

"The master enmeshed in the net-work of our Indian System works with Code in hand XXX There are "returns" to be submitted periodically, regulations to be followed, examinations in which a percentage of passes is to be obtained, and an inspector, more regular in his visitations than famine or plague, who in the course of a few minutes must be convinced that no rule has been broken and that something practical has been done."

अर्थात्—आजकल के अध्यापक नियमों के जाल में घिरे हुए 'कोड' सामने रख कर पढ़ाते हैं। बेचारों को समय-समय पर रिपोर्ट भेजना, नियमों के अनुसार चलना और ऐसे इम्तहान लेना रहता है, जिनमें सैकड़ा पीछे कुछ निश्चित संख्या का पास होना बाध्य है। और इन सब पर तुर्रा यह कि अकाल अथवा ताऊन से भी अधिक नियमित रूप से एक इन्सपेक्टर साहब भी आते हैं। ये दस-पाँच मिनट के ही निरीक्षण से तुरन्त जान जाते हैं कि हाँ, कोई नियम भङ्ग नहीं हुआ है और कुछ न कुछ काम की बात ही पढ़ाई गई है।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शिक्षा-पद्धति की मैशौनरी के इस वास्तविक विवरण के पश्चात् आप ठीक ही कहते हैं कि—

"It is hard to imagine a Thring, Arnold or Sanderson thrown up by such a system. It will not produce a Sankara, Kabir or Tagore in India ××× The man who is noticed is the "window-dresser" well-versed in the rules and the personal idiosyncrasies of the inspector, and regarding his pupils as units in a percentage Scheme rather than as living personalities."*

भावार्थ यह है कि इस शिक्षा-पद्धति में थ्रिङ्ग, अरनॉल्ड अथवा सैण्डर्सन ऐसे लोगों का होना कल्पना में भी असम्भव है। इसीलिए भारतवर्ष में शङ्कर, कबीर अथवा टैगोर ऐसे विद्वानों की सृष्टि नहीं हो सकती। ऐसी शिक्षा से दिखावटी लोग ही तैयार किए जाते हैं जो क़ायदे-क़ानूनों के अतिरिक्त इन्सपेक्टरों की व्यक्तिगत झक तथा सनक से परिचित रहते हैं और जिनके लिए विद्यार्थी बेचारे जीवित प्राणी नहीं, सैकड़े की गिनती पूरी करने के लिए संख्या मात्र का काम करते हैं।

लेखक ने आधुनिक स्कूलों का कैसा सच्चा चित्र खींचा है। इस प्रणाली के प्रवर्तक लॉर्ड मैकॉले ने भारतवर्ष का जो अनिष्ट किया है वह इतिहास पर चढ़ाई करने वाली किसी सेना ने नहीं। सन् १८५४ के शिक्षा-सम्बन्धी डिसपैच में ही उस कूटनीतिज्ञ ने ऐसी प्रणाली के परिणामों की कल्पना कर ली थी। उसने स्पष्ट लिखा था कि हमें अब ऐसे शिक्षित भारतीयों की आवश्यकता है, जो रूप-रङ्ग में हिन्दुस्तानी, पर दिल व दिमाग़ में पूरे अङ्गरेज़ हों। फल इसका यह हुआ कि आज हम लोग न तो हिन्दुस्तानी ही रहे और न पूरे अङ्गरेज़ ही बन पाए। जहाँ हममें परतन्त्रता-पीड़ित जाति के सभी दुर्गुण आ गए हैं वहाँ हमने अपने भाग्य-विधाताओं के केवल बाह्य आडम्बरों की ही नक़ल करना सीखा है। बात यह है कि ग़ुलामी की बेड़ी में जकड़ी हुई जाति का दृष्टिकोण ही बदल जाता है, न तो उसमें अपने देश की प्राचीन परिपाटी का ज्ञान रह जाता है और न अपने धर्म की परवा। यही हाल भारतवर्ष का भी हुआ। जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी के ज़माने में इधर-उधर अङ्गरेज़ी स्कूल स्थापित होने लगे, तो इनके सञ्चालकों का उद्देश्य लॉर्ड मैकॉले के निर्देश किए हुए मार्ग पर चलना मात्र था। इनमें से अधिकांश संस्थाएँ तो पादरियों की देख-रेख में थीं, जिनका मुख्य ध्येय अपने धर्म का प्रचार करना था। देश में आज भी कितने ही मिशन-स्कूल हैं, जिनमें बाइबिल पढ़ना तथा ईसाई प्रार्थनाओं में उपस्थित होना सब के लिए आवश्यक रहता है—चाहे वे हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, अथवा पारसी, कोई भी हों! धार्मिक कट्टरता का यह अङ्ग अङ्गरेज़ों और ईसाइयों में सराहनीय है, पर हमारी हिन्दू-संस्थाओं का क्या हाल है? वहाँ तो धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन होता ही नहीं। हाँ, प्रार्थना की रसम भले ही अदा हो जाती है, उसमें भी न कोई पद्धति रहती है और न सब लोग उपस्थित ही रहने की परवा करते हैं। अध्यापक स्वयं उसकी हँसी उड़ाते हैं और विद्यार्थी तो बेगार समझ कर उसमें जाते ही नहीं!

धार्मिक-शिक्षा को हम लोगों ने आकर्षक बनाना सीखा ही नहीं है। इसीलिए या तो वह होती ही नहीं या जहाँ होती है, पण्डित्यपूर्ण उपदेश का रूप धारण कर लेती है। इस विषय में हमें पादरियों से बहुत-कुछ सीखना है, क्योंकि उनमें रहन-सहन की उदारता तथा धार्मिक कट्टरता का अच्छा समावेश पाया जाता है। ठीक इसका उलटा हमारे समाज का हाल है—हमारे पढ़े-लिखे लोग या तो नितान्त पुराने ढर्रे के कट्टर होते हैं अथवा पूरे निरीश्वरवादी साहब। पहली श्रेणी वालों की एक तो संख्या बहुत कम है, दूसरे दिन-दिन उनकी आवश्यकता भी कम होती जा रही है। बीसवीं शताब्दी के लिए तो ये लोग एकदम अनुपयुक्त सिद्ध हो चुके हैं और इसीलिए अपनी अर्वाचीन शिक्षा से कुछ लाभ नहीं उठा पाते। रही दूसरी श्रेणी वालों की बात, ये लोग हिन्दू-धर्म के उतने ही पक्षपाती अथवा अनुयायी कहे जा सकते हैं, जितने किसी और धर्म के। इनके लिए प्राचीन बातें सभी ढोंग होती हैं और अर्वाचीन सार्व-भौमिकता (Cosmopolitanism) के आवेश में इतने निमग्न रहते हैं कि सामाजिक बन्धन इनको किसी बात से रोक ही नहीं सकता। खेद तो यह है कि इस प्रकार का जीवन उनका तभी से बन जाता है, जब ये ऊँची कक्षाओं के विद्यार्थी रहते हैं। फल यह होता है कि प्रथम श्रेणी

* "The Education of India" by Arthur Mayhew, C. I. E. (Faber & Guyer, London), 1926.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वाले लोग तो घोंटू और मनहूस हो जाते हैं ; जिन्हें सामाजिक धन्धों से कुछ प्रयोजन ही नहीं रह जाता और इसके प्रतिकूल दूसरी कोटि के लोग नितान्त सामाजिक प्राणी बन जाते हैं। उनके लिए विद्योपार्जन अथवा किसी विषय का ज्ञान प्राप्त करना इतना आवश्यक नहीं, जितना भले आदमियों में उठना-बैठना, समाज की दृष्टि में सभ्य (Cultured) हो जाना अथवा सिनेमा-थिएटर जाना। उन्हें तो ज्यों-त्यों करके डिग्री मिल जाना चाहिए, क्योंकि उनकी आँखों में डिग्री ही का अधिक गौरव है, वही सभ्यता अथवा ज्ञान की सर्वस्वीकृत मुहर है। उनके लिए तो—और उनके लिए ही क्यों, आजकल सभी विद्यार्थियों के लिए—गृहस्थ जीवन और विद्यार्थी-जीवन में तो कुछ भेद ही नहीं रहता। खाने-पीने, रहन-सहन तथा शौक़ और फ़ैशन में आजकल के विद्यार्थी उतने ही स्वतन्त्र हैं जितने और लोग। हम यह नहीं कहते कि जैसा मनु ने लिखा है, आजकल के विद्यार्थी हजामत न बनवाएँ, जूता अथवा माला आदि न पहनें अथवा तेल-फुलेल न लगावें—क्योंकि बड़े-बड़े नगरों में रह कर इन दिनों यह सम्भव ही नहीं है—पर हाँ, यह भी अनुचित सीमा है कि दिन भर में कई सूट बदले जायँ, रोज़ घण्टा भर हजामत में गुज़रे और नित्य सिनेमा में पैसे ख़राब किए जायँ। मैं तो कितने ही कॉलेज के छात्रों को जानता हूँ, जो महीने में बीस-पचीस रुपए थिएटर के पीछे ख़र्च करते और काले से गोरे हो जाने के लिए रोज़ बहुत सा समय मल-मल कर साबुन लगाने और आईना देखने में ही नष्ट करते हैं! इन बेचारों की समझ में यह नहीं आता कि सच्चा सौन्दर्य हृष्ट-पुष्ट शरीर और सरल जीवन में है, महीने में दस-बारह रुपए स्नो-क्रीम, पॉमेड, हेज़लीन आदि में ख़र्च करने से ही यह बाज़ार में मोल नहीं मिल जाता। पैदल चलना इनके लिए शान के ख़िलाफ़ है, चाहे साइकिल पर दौड़ते-दौड़ते रोगी भले ही हो जायँ।* शान ही नहीं, इनमें स्त्री-सुलभ लज्जा की भी मात्रा बहुत आ जाती है और शायद ही किसी को आप धूप में नङ्गे बदन बैठे देख सकें। बन्द कमरों में नहाना और जहाँ तक हो सके शरीर का प्रत्येक अङ्ग कपड़ों से ढका रखना—यह तो शिक्षितों के शरीर-विज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्तों में से है। उन्हें शायद यह नहीं मालूम कि कलकत्ता-विश्वविद्यालय के कमीशन में सर माइकेल सैडलर जब सर आशुतोष मुकर्जी के यहाँ परामर्श करने आया करते, तो मुकर्जी महोदय कभी-कभी यों ही धूप में नङ्गे बदन चौकी पर बैठे-बैठे नौकरों से कड़ुवा तेल मलवाते थे। उधर सर माइकेल कुर्सी पर बैठते और दूसरी ओर सर आशुतोष बैठे घण्टों तेल सुखाते रहते—इसी प्रकार दोनों विद्वानों में वाद-विवाद चलता रहता!

इतना ही नहीं, हमारे नवयुवकों में अपनी मातृ-भाषा, अपने देश और अपने पूर्वजों के प्रति घृणा सी उत्पन्न हो जाती है। हम यह नहीं कहते कि वे लकीर के फ़क़ीर बने रहें अथवा "तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणाः क्षारं जलं कापुरुषाः पिवन्ति" वाला उदाहरण अनुकरण करें, पर क्या यह लज्जा की बात नहीं है कि शिक्षितों को हिन्दी बोलने अथवा हिन्दुस्तानी तिथियों और महीनों के याद रखने में शरम लगती है। अधिकतः तो ये लोग पिता को 'फ़ादर' माता को 'मदर' बहिन को 'सिस्टर' और स्त्री को 'वाइफ़' ही कहेंगे, चाहे बातचीत हिन्दी में ही करते हों। ये सब शब्द "प्राइवेट" समझे जाते हैं और सभी प्राइवेट बातों को अङ्गरेज़ी में कहना भी इनकी अनावश्यक शान (False dignity) में शामिल है। शान के इसी भाव के कारण पढ़े-लिखों में पाखण्ड भी आ जाता है, उदाहरण के लिए विद्यार्थियों को यह दिखाने में आनन्द आता है कि वे कभी पढ़ते नहीं, योंही प्रतिभा के बल पास हो जाते हैं (चाहे सबसे लुक-छिप कर रात को भले ही रटते हों) अथवा जितना धनी लोग उन्हें समझते हैं, उससे वे कहीं ज़्यादा मालदार हैं। जहाँ पहले विद्यार्थियों की शान परिश्रम से पढ़ने और सीधे-सादे रहने में थी, वहाँ अब कम पढ़ने और अलबेला बन कर घूमने-फिरने में है। इसका मुख्य कारण बड़े-बड़े नगरों में रह कर पाश्चात्य सभ्यता तथा विलासितापूर्ण समाज के प्रलोभनों की चकाचौंध में पड़ जाना होता है। इसीलिए तो प्राचीन काल के गुरुकुल शहरों से दूर प्रकृति की स्वतन्त्र क्रीड़ा-स्थली में रक्खे जाते थे, जहाँ विकासमान मानव-हृदय को इन प्रलोभनों के सामना करने का अवसर ही नहीं मिलता था। काशी-विश्वविद्यालय की स्थापना शहर से दूर अवश्य हुई है, पर वहाँ भी छात्रों को महलों में रहने

* वास्तव में साइकिल का अधिक प्रयोग करने वाले कितने ही लोगों को गठिया, फ़ीलपाँव तथा नपुंसकत्व तक की शिकायत हो गई है।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का अवसर दिया जाता है, जिसका फल यह होता है कि वे अपने गाँवों में लौट कर वहाँ के जीवन से असन्तोष तथा घृणा प्रगट करने लगते हैं। यही प्रश्न बहुत दिन पहले, जब विश्वविद्यालय के भव्य भवन बन रहे थे, एक सज्जन ने मालवीय जी से पूछा था। पर पण्डित जी ने उत्तर दिया—"नहीं, मैं तो समझता हूँ कि इन महलों में रहकर जब छात्र अपने गाँवों में जायँगे तो वहाँ भी अपने लिए महल बनवाने का प्रयत्न करेंगे।" इस उत्तर में मालवीय जी के आदर्शवाद की पराकाष्ठा भले ही हो, पर हम तो नहीं जानते, कितने छात्रों ने वहाँ से जाकर इस आशीर्वाद को सफल करने का प्रयत्न किया है।

दूसरा भीषण रोग, जो हमारे शिक्षित नवयुवकों में प्रचण्ड रूप से बढ़ रहा है, कुत्सित तथा अस्वाभाविक प्रेम है, जिसका विवरण देना भी बड़ा लज्जाजनक है। इस ओर जनता का विशेष ध्यान 'उग्र' जी की एकाध क्रान्तिकारी कहानियों और 'प्रताप' की टिप्पणियों ने आकर्षित किया है। इन बातों का रहस्योद्घाटन करना यद्यपि बड़ा रोमाञ्चकारी है और 'विशाल-भारत' ऐसे पत्रों को बुरा भले ही लगे, पर जितनी ही जल्दी समाज इन भयावह एवं संक्रामक रोगों से परिचित हो जाय उतना ही कल्याण होगा। अस्वाभाविक प्रेम की यह भीषण लहर बढ़ती ही जा रही है और इसके मुख्य दो कारण जान पड़ते हैं। एक तो है धार्मिक शिक्षा का अभाव और दूसरा स्त्री-शिक्षा के अभाव के कारण हमारे वैवाहिक जीवन में असन्तोष की वृद्धि। हमारे युवक नाज़ुक ही नहीं, नज़ाकत-पसन्द भी होने लगे हैं; चलने-फिरने, बैठने-उठने और बात-चीत करने में भी वे तर्ज़-अदा स्वयं दिखाते और दूसरों में भी देखना चाहते हैं। पर जब वे विवाहित होकर अनपढ़ स्त्रियों के गले मढ़ दिए जाते हैं और उनसे स्वभावतः नज़ाकत व अदा की यह प्यास जब नहीं बुझ पाती तो वे उसे अस्वाभाविक रूप से तृप्त करते हैं। होस्टलों में एक ओर तो इस प्रकार की चोंचलेबाज़ियाँ हों और दूसरी ओर हम अच्छे खाने, अच्छे पहनने वाले, शौक़ से रहने वाले नवयुवकों से ब्रह्मचारी बने रहने की आशा रक्खें—भला यह कैसे हो सकता है? नए जोश, नए ख़ून, नई उमङ्गों वाले ये जवान, जिन्हें स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध की कुछ भी सिद्धान्तपूर्ण शिक्षा नहीं मिली रहती और जो बुरी सङ्गत के कुप्रभाव से बचाए भी नहीं जाते, भला कैसे अस्वाभाविक लतों के पञ्जे में न पड़ जायँ! मुझे तो दो-चार उदाहरण इस प्रकार के कुत्सित प्रेम के ज्ञात हैं, जिनमें होनहार भावुक जवानों ने आत्म-हत्या तक कर डाली है। इनमें एकाध तो ग्रेजुएट भी थे! इस प्रकार की विभीषिकाओं से तो बालविवाह ही अच्छा। क्योंकि यदि मनुष्य को जीवन का अन्त करना है तो अस्वाभाविक रीति से चरित्र-भ्रष्ट होने से तो स्वाभाविक कुरीतियों का ही शिकार बनना अच्छा है। इस बढ़ते हुए संक्रामक रोग की रुकावट तब तक न होगी, जब तक एक तरफ़ तो पारिवारिक जीवन का पलड़ा बराबर करने के लिए स्त्री-पुरुषों में बराबर शिक्षा और दूसरी ओर स्कूलों तथा कॉलेजों के छात्रों के जीवन में सरलता और दृढ़ता का प्रचार न किया जायगा।

यदि ऐसा न हो सका तो ऐसी शिक्षा से तो मैं अशिक्षित ही रहना अच्छा समझता हूँ। और बातों की तरह शिक्षा में भी "नीम हकीम ख़तरे जान" वाली कहावत पूर्णतः चरितार्थ होती है। थोड़े दिन हुए, मैं एक सरकारी पदाधिकारी से बातें कर रहा था, जो एक बड़े विभाग के अध्यक्ष हैं और हिन्दुस्तानी हैं। मैंने पूछा कि आपके काम में शिक्षित समाज से तो सहायता मिलती होगी? पर इन सिविलियन महानुभाव ने स्पष्ट कह दिया "We don't want education; we want un-education" अर्थात् हमें शिक्षा की नहीं, अशिक्षा की आवश्यकता है। हमारा विचार है कि शिक्षितों की यह नज़ाकत बहुत-कुछ कम हो जाय, यदि सैनिक शिक्षा (Military Training) सबके लिए बाध्य कर दी जाय। इससे शिक्षित जीवन में रुखाई और सिपाहीपन आ जायगा, जो चोंचलेपूर्ण नज़ाकत तथा नाज़-नख़रों से लाख दर्जे अच्छा है। पर मिलिटरी ट्रेनिङ्ग के नाम से ही सरकार घबरा जाती है और प्रान्तीय कॉउन्सिलों में कई बार प्रस्ताव आने पर भी अभी इस ओर कुछ किया नहीं जा रहा है। क्योंकि शिक्षा-सम्बन्धी इस प्रस्ताव को नौकरशाही के कर्मचारी राजनैतिक हस्तक्षेप समझने लगते हैं। इस रोग की एक और दवा शायद स्त्री-पुरुषों को साथ-साथ पढ़ाने से भी हो जाय, पर इस विषय पर मैं आगे चल कर कुछ कहूँगा।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपरोक्त सभी मानसिक, शारीरिक तथा नैतिक दुर्बलताओं के कारण ही तो हमारे नवयुवक आगे चल कर जीवन में कुछ कर नहीं सकते। पञ्जाब-गवर्नमेण्ट ने कुछ दिन पूर्व पढ़े-लिखों की बेकारी की समस्या सुलझाने के लिए एक कमेटी नियुक्त की थी। उसके एक सदस्य सर जॉर्ज एण्डर्सन ने मैट्रिकुलेशन पास युवकों की दशा वर्णन करते हुए कहा था :—"A derelict, a wanderer on the face of the earth, unemployed because he is unemployable" अर्थात् वे निकम्मे संसार में मारे-मारे फिरते हैं और उन्हें काम इसलिए नहीं मिलता कि वे काम करने योग्य होते ही नहीं। बात सर्वथा ठीक है और यही नहीं, जैसा कि कमेटी ने निश्चित किया था, "Not only does the present system of education produce nothing but clerks, but XXX it renders the unfortunate recipients of education unfit to follow even their ancestral occupations." भावार्थ यह कि इस प्रकार की शिक्षा केवल क्लर्क ही नहीं तैयार करती, बल्कि पढ़ने वालों को ऐसा बना देती है कि वे अपने बाप-दादों का पेशा भी नहीं कर सकते। कमिटी ने आँकड़ों द्वारा यह भी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि डॉक्टरी, वकालत तथा नौकरी के सभी विभाग ठसाठस भर गए हैं, परन्तु विद्यार्थियों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है और उधर वकील बैरिस्टर भी दिन-दिन असंख्य होते जा रहे हैं।

कहीं-कहीं मुक़दमों में कमी अलबत्ता आ गई है। शिक्षितों की यह दशा बहुत दयनीय है और इसकी दो ही औषधियाँ जान पड़ती हैं। एक तो यह कि उच्च शिक्षा के लिए केवल उन्हीं लोगों को भरती किया जाय जो इतने प्रतिभावान् हों कि देश तथा समाज की सेवा कर सकें और दूसरी यह कि कृषि, इञ्जीनियरी आदि पेशेवाली (Vocational Teaching) शिक्षा का अधिक प्रचार हो। साधारण लोगों के लिए यह बहुत है कि वे थोड़ी-बहुत काम चलाने भर की अङ्गरेज़ी जान लें, फिर अपने काम-धन्धे की बातें सीखें। पञ्जाब की इस कमिटी ने तो यह प्रस्ताव किया है कि उच्च-शिक्षा इतनी असाध्य बना दी जाय कि साधारण लोग उसमें जा ही न सकें, पर इस तरह तो केवल धनाढ्य ही उससे लाभ उठा सकेंगे। होना यह चाहिए कि जो आगे चल कर अपने विचार, बल तथा मस्तिष्क से कुछ मौलिक कार्य कर सकें, वे तो ऊँची डिग्रियाँ भले ही प्राप्त करें, पर जनसाधारण में शिक्षा की मात्रा अधिक करने का प्रयत्न हो। आजकल हमारा ध्येय यह हो गया है कि सभी ग्रेजुएट हो जायँ और जीवन का अधिक भाग डिग्रियों के ही पीछे बिता दें। इसमें समय भी अधिक लगता है और काम भी कम होता है, जिसका एक कारण यह भी है कि मातृभाषा द्वारा शिक्षा नहीं दी जाती। जापान के ऊँचे-ऊँचे कर्मचारियों के लिए भी थोड़ी-बहुत काम-चलाऊ अङ्गरेज़ी जानना आवश्यक होता है, पर अधिकतः वहाँ का काम मातृभाषा में ही होता है। वहाँ १८६९ ई० में शिक्षा अनिवार्य की गई थी और आज प्रत्येक जापानी स्त्री-पुरुष शिक्षित है।

सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा का आदर्श भी यही है कि देश का प्रत्येक साधारण मनुष्य (Average man) आधुनिक जीवन-निर्वाह के काम की सभी बातें जाने। हमारे देश और यूरोप अमेरिका में विशेष अन्तर यही है कि एक ओर तो हमारे सर्वश्रेष्ठ ग्रेजुएट वहाँ के डिग्रीधारियों के बराबर जानते हैं, परन्तु दूसरी ओर यहाँ का साधारण हिन्दुस्तानी वहाँ के मामूली नागरिक के बराबर क्या, उसका आधा भी नहीं जानता। इसीलिए हमारी राष्ट्रीय आवश्यकता यह है कि देश का प्रत्येक लड़का-लड़की अपनी भाषा जान कर कुछ न कुछ अपने बूते करना सीख जाय। इसी उद्देश्य से माननीय गोखले महोदय ने १९११ ई० में अनिवार्य प्राइमरी शिक्षा-बिल (Compulsory Primary Education Bill) बड़ी व्यवस्थापिका सभा में पेश किया था, पर भला सरकार उसे कब पास होने देती? उसका उद्देश्य तो कलकत्ता-युनिवर्सिटी कमीशन बैठा कर विश्वविद्यालयों की संख्या बढ़ाना था। यद्यपि देश भर के विश्वविद्यालयों की यह बढ़ी हुई संख्या भी अभी १६ ही है (और इङ्गलैण्ड में जो लगभग संयुक्त-प्रान्त के बराबर है, १५ विश्वविद्यालय हैं) तथापि देश को आजकल बड़े-बड़े कॉलेजों और विश्वविद्यालयों की आवश्यकता नहीं, बल्कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष के पढ़े होने की आवश्यकता है, जिससे राष्ट्र और समाज की सामूहिक उपयोगिता अधिक हो। इङ्गलैण्ड आदि पाश्चात्य देशों में तो छोटे-छोटे बच्चों के स्कूलों पर जितना ध्यान दिया

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जाता है और व्यय किया जाता है उतना तो भारतवर्ष की सारी शिक्षा पर नहीं होता। बच्चों के दाँतों की सफ़ाई का निरीक्षण करने के लिए वहाँ पृथक् टूथ-ब्रश समितियाँ (Tooth-Brush Societies) स्थापित हैं। इसी से अनुमान हो सकता है कि वहाँ के स्कूलों में बच्चों की कितनी देख-रेख की जाती है। अपने यहाँ तो बेचारे बच्चे बासी भात खाकर पाठशाला जाते हैं, जहाँ फटे-पुराने टाट के टुकड़े ज़मीन पर बिछे मिल जायँ तो बड़ी ग़नीमत! इधर कुछ म्युनिसिपैलिटियों में बाध्य शिक्षा का क्रम अलबत्ता जारी हो रहा है, पर इतने बड़े देश में एकाध शहरों में ऐसा करने से होता क्या है?

स्त्री-शिक्षा

अब रही स्त्री-शिक्षा की बात, उसमें भी वही दुर्गुण हैं, जिनका उल्लेख मैं ऊपर कर चुका हूँ। बल्कि लड़कों की शिक्षा की अपेक्षा लड़कियों की शिक्षा की और भी दुर्दशा है। इस सम्बन्ध में सब से अच्छी दशा ब्रह्म प्रान्त की है, जहाँ बुद्ध-धर्मानुसार स्त्रियों का भी पढ़ना-लिखना आवश्यक है। एक तो ऐसे स्कूलों और कॉलेजों की ही संख्या इनी-गिनी है, जहाँ लड़कियाँ आदर्श क्या, टूटी-फूटी भाषा की भी शिक्षा प्राप्त कर सकें। दूसरे यदि संस्थाएँ हैं भी तो योग्य महिला अध्यापिकाएँ नहीं मिलतीं, और सब से बड़ी अड़चन तो हमारी सामाजिक कुरीतियाँ हैं, जिनके कारण १०-१२ वर्ष की अवस्था से ही कन्याओं को पठन-पाठन को तिलाञ्जलि देकर गृहस्थी का भार उठाना पड़ जाता है। नेपोलियन से किसी ने पूछा कि अच्छे राष्ट्र के लिए सब से अधिक आवश्यक क्या है? उस दूरदर्शी राष्ट्र-विधाता ने संक्षेप में उत्तर दिया "Good Mothres" अर्थात् अच्छी माताएँ। परन्तु हमारे यहाँ की कन्याएँ तो जब मानसिक अथवा शारीरिक किसी दृष्टि से भी मातृत्व भार सहन करने के लिए उपयुक्त नहीं रहतीं तभी माताएँ बना दी जाती हैं!

एक बात और है, जिसके कारण स्त्री-शिक्षा के मार्ग में बड़ी बाधा उपस्थित होती है। जो स्त्रियाँ पढ़-लिख गई हैं उनमें से अधिकांश ने पढ़े-लिखे पुरुषों की भाँति समाज के सम्मुख अपनी उपयोगिता से शिक्षा का अच्छा आदर्श उपस्थित नहीं किया है। इसीलिए लोग समझने लग गए हैं कि स्त्रियों की शिक्षा में व्यर्थ रुपए फेंक कर उन्हें हर प्रकार अनपढ़ी स्त्रियों से भी निकम्मी बना देना है। बहुत हद तक इस विचार में कुछ सचाई भी है, क्योंकि मैं देखता हूँ कि आजकल की शिक्षा से एक तो स्त्रियाँ बहुत नाज़ुक-मिज़ाज और शौक़ीन हो जाती हैं, जिससे वे गृहस्थी का भार उठाने में असमर्थ होती हैं और दूसरे उनका रहन-सहन स्वभावतः इतना ख़र्चीला हो जाता है कि जब तक उन्हें कोई नौकरी न मिल जाय, साधारण रूप से उनका जीवन दुखःमय हो जाता है। बहुधा यह भी देखा गया है कि शिक्षा के गर्व से वे अनपढ़ स्त्रियों में मिलती-जुलती भी नहीं और बड़ी-बूढ़ियों की तो बात भी नहीं सुनतीं। इन्हीं सब कारणों से हमारे देश में स्त्री-शिक्षा का प्रचार बहुत धीरे-धीरे हो रहा है। यह बात अवश्य है कि जब तक यह शिक्षा समाज के लिए 'हौवा' बनी रहेगी तब तक पढ़ी-लिखी औरतों में ये दुर्गुण मिलते रहेंगे और ज्यों-ज्यों इसका प्रचार होगा त्यों-त्यों शिक्षा का गर्व भी मिटता जायगा और स्त्रियों में सेवा तथा आज्ञाकारिता का पुराना भाव विकसित हो उठेगा, पर इसमें सन्देह नहीं कि जिस प्रकार की शिक्षा इन दिनों लड़कियों को दी जाती है, उससे तो देश का अधिक उपकार नहीं हो रहा है। उससे प्रायः वे यूरोप की नक़ल करना सीख जाती हैं और अपने को शृङ्गार तथा सौन्दर्य की पुतली ही बनाने में बहुत सा समय तथा ध्यान लगाती हैं। भला जिन कन्याओं का आदर्श कला तथा विज्ञान सीख कर गार्हस्थ्य जीवन एवं समाज को सुखमय बनाने के स्थान में अपने को परियाँ बना कर घर भर पर रोब जमाना ही है और जो आदर्श-माता के जीवन को दुःख तथा झञ्झट समझ कर आजीवन कुमारी ही रहना पसन्द करती हों, उनकी शिक्षा से तो देश को कोई लाभ होने की आशा नहीं। हम एक ऐसी महिला ग्रेजुएट को जानते हैं जो बेचारी बहुत दुबली-पतली होने के कारण कुछ काम नहीं कर सकतीं और जिन्हें बहुत दिनों तक बच्चे ही नहीं होते थे। एकाध बच्चे हुए भी तो उनके लिए श्रीमती जी को अङ्गरेज़ डॉक्टरों की मदद लेनी पड़ी, जिसके लिए पति महोदय को प्रति बार लगभग ५००) ख़र्च करना पड़ा। फिर बच्चे को दूध पिलाने के लिए इन्हें स्वाभाविक दूध ही न निकला और इसके लिए अलग दाई रखनी पड़ी। पतिदेव बेचारे २५०) से भी कम मासिक वेतन पाते हैं, पर

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosh

ग्रेजुएट पत्नी को न तो बच्चे को गोद में लेने का सौभाग्य होता है, न उसे नहलाने-धुलाने और न दूध पिलाने का—सब के लिए दाई नौकर हैं। डॉक्टरों का तथा श्रीमती के ठाठ-बाट का ख़र्च अलग रहा, ये दो जनों के लिए भोजन भी नहीं बना पातीं, उसके लिए एक अलग नौकर है। यदि कहिए कि ये पतिदेव की पढ़ाई-लिखाई में कुछ सहायता करती हों, सो भी नहीं। और मैं तो इन लोगों के साथ तीन वर्ष रहा, पर इन ग्रेजुएट श्रीमती को पर्दे का इतना शौक़ कि इतने दिनों में एक बार भी मैं उन्हें अच्छी तरह न देख सका, क्योंकि जब कभी इन्हें बाहर टहलने भी जाना होता, धीरे से खिड़की के पास ताँगा मँगातीं और चल देतीं!

ऐसी ग्रेजुएट पत्नियों से तो अनपढ़ स्त्रियाँ ही अच्छी हैं, जो अपनी गृहस्थी की देख-रेख स्वयं करके पति का रुपया तो नहीं फूँकतीं। वे स्वयं हृष्ट-पुष्ट भी रहती हैं, क्योंकि घर का काम-काज करती रहती हैं, उनके बच्चे अपनी माता का दूध पीकर स्वस्थ रहते हैं और डॉक्टरों तथा नौकरों का रुपया बचता है। उनकी रहन-सहन में भी विशेष ख़र्च नहीं होता। इसका कारण क्या है? यही कि पढ़ने-लिखने का अर्थ आजकल यह समझा जाता है कि अपना कोई काम अपने हाथ न करे, किताबों का कीड़ा बना रहे, अच्छा खाए और अच्छा ही पहने। रही खाने-पीने की बात, उसकी भी दशा यह है कि इन लोगों की धारणा होती है कि दुबली रहने से अधिक सुन्दर लगेंगी, अतएव खाना ही कम खाती हैं, यों चाहे व्रत अथवा उपवास करने से भले ही नाक-भौं सिकोड़ें। हमें तो एक गर्ल्स कॉलेज के छात्रालय का हाल मालूम है, जहाँ लड़कियों में परस्पर कम खाने की प्रतिद्वन्द्विता होती रहती है!

हम यह नहीं कहते कि सभी अशिक्षित स्त्रियों का स्वास्थ्य अच्छा ही रहता है, पर हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि आधुनिक स्त्री-शिक्षा से सिवाय जूते, मोज़े और सफ़ेद कपड़े पहनने के, न तो मानसिक विचार परिपक्व होते हैं, न चरित्र-सङ्गठन; और जो कुछ स्वाभाविक शारीरिक स्वास्थ्य रहता भी है उसे भी नज़ाकत और ख़ूबसूरती की झूठी तलाश में वे गँवा बैठती हैं। हम यह नहीं कहते कि परदे के कारण अनेक रोग तथा दुर्गुण नहीं फैल रहे हैं, पर साथ ही साथ यह भी कहना पड़ता है कि किताबों की कीड़ा होकर और स्वतन्त्रता की लहर में आकर स्त्रियाँ सभी पुरानी बातों को ढोंग समझ कर अपनी मनमानी ही करने पर तुली रहती हैं और अन्त में हानि उठाती हैं। उन्हें दिनचर्या तथा ऋतुचर्या की भी ठीक-ठीक शिक्षा नहीं दी जाती। जो पुरानी चाल की स्त्रियाँ अपने ही ढङ्ग पर बहुत-कुछ जानती हैं, उनकी बात तो ये मानने की नहीं, उलटे अपनी अक़्ल सभी जगह लड़ाती हैं। सन्तानोत्पत्ति तथा स्त्री-पुरुष सम्बन्धी बातों से तो वे शर्म के मारे अनभिज्ञ ही रह जाती हैं और इसी से आगे चल कर बाल-बच्चों का पालन-पोषण उनसे करते ही नहीं बनता। उदाहरण के लिए यदि बूढ़ी अपढ़ स्त्रियाँ ऋतुस्राव के दिनों में चलने-फिरने से रोकती हैं तो ये ढोंग समझ कर, उन दिनों अवश्य ही दौड़-धूप मचाए रहती हैं, जिसका फल अतीव अनिष्टकारी होता है। अतएव शारीरिक सङ्गठन के ऊपर स्त्री-शिक्षा के विधायकों का विशेष ध्यान होना चाहिए, पर यह स्मरण रहे कि हमें स्त्रियों से न तो सरकस में काम लेना है और न फ़ौज में। जैसा श्रीमती सरोजिनी नायडू ने कहा है *"To me the home is most important. It is woman's natural sphere" घर की देख-रेख ही स्त्री के लिए स्वाभाविक तथा सर्वप्रधान क्षेत्र है और उसी के लिए उपयोगी बनाना स्त्री-शिक्षा का ध्येय होना चाहिए।† एक अङ्गरेज़ी कवि ने भी लिखा है—

"Nothing lovelier can be found for woman than to study household good."

अर्थात्—गार्हस्थ्य-कल्याण से सुन्दर और दूसरा विषय स्त्री के अध्ययन के लिए हो ही नहीं सकता।

यह ठीक है कि आजकल वे मैजिस्ट्रेट, वकील तथा काउन्सिलों की सदस्या भी हो रही हैं, पर उनका मुख्य कार्य गृहस्थी की रक्षा करना और उसे सुचारु रूप से चलाना ही है। क्योंकि थोड़ी देर के लिए कल्पना

†उत्तर रामचरित-नाटक में भी कविवर भवभूति ने आदर्श पत्नी का वर्णन 'इमम् गेहे लक्ष्मा' कहकर किया है।

* किन्तु बड़ा कटु-अनुभव प्राप्त करने के बाद देवी जी को यह धारणा हुई है।

—स० 'चाँद'

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर लिया जाय कि यदि समाज की दशा ऐसी हो जाय कि सभी बराबर धनी रहें और कोई किसी को अपना नौकर न रखना चाहे तो प्रत्येक पुरुष को कमाना और प्रत्येक स्त्री को घर का काम-काज सँभालना पड़ेगा। इसी आदर्श अवस्था के लिए तैयार रखना ही शिक्षा का उद्देश होना चाहिए। इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध विद्वान् रस्किन ने अपने एक ग्रन्थ में स्त्री-शिक्षा की अच्छी विवेचना की है और इस एक वाक्य में ही उनका सारा तात्पर्य भरा है—It is not the object of education to turn the woman into a dictionary" अर्थात् स्त्रियों को कोष बना देना शिक्षा का उद्देश नहीं है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि स्त्री के जीवन का लक्ष्य ज्ञान अथवा कर्म नहीं, भावना, सहायता तथा प्रोत्साहन है, उसके लिए विज्ञान-वेत्ता अथवा राजनीतिज्ञ होना उतना आवश्यक नहीं, जितना थके-माँदे अपरिचित राहियों की भूख-प्यास जानने और मिटाने के लिए सहानुभूति रखना। इस प्रकार की पारस्परिक तितिक्षा तथा सहानुभूति स्त्री-पुरुषों में अधिक होगी, यदि प्रारम्भिक अवस्था में लड़के-लड़कियाँ साथ-साथ पढ़ाए जायँ और उन्हें कुछ दिन तक एक ही कोर्स भी पढ़ाया जाय। परन्तु आजकल तो विद्या के केन्द्र विश्वविद्यालयों में भी ऐसे पुराने ढर्रे के लोग वर्त्तमान हैं कि थोड़े ही दिन पूर्व प्रयाग-विश्वविद्यालय के वाइस-चैंसलर ने इस आशय की एक आज्ञा निकाली थी कि वहाँ पढ़ने वाली लड़कियाँ उनसे कदापि न मिलें! स्त्रियाँ क्या अछूतों से भी नीच हो गईं! भला जब बड़े-बड़े धुरन्धर शिक्षा-प्रवर्तक महारथियों के ऐसे विचार हैं तो फिर स्त्री-शिक्षा का उन्नतिशील विकास कैसे होगा? वही कहावत याद आती है—"कहैं कबीर असमानै फाटा, कैसे सीवै दरजी?"

महाकवि वर्डस्वर्थ ने अपनी कल्पित आदर्श बालिका लूसी की शिक्षा का यह स्वप्न देखा था, जिसमें प्रकृति की इस प्रकार सहायता ली गई थी—

"The floating clouds their state shall lend
To her; for her the willow bend;
Nor shall she fail to see
Even in the motion of the storm
Grace that shall mould the maiden's form
By silent sympathy."

अर्थात् उड़ते हुए बादलों से उसे कान्ति मिलेगी, सभी उसके सम्मुख सिर झुका देंगे; और मूक सहानुभूति द्वारा आँधी की चाल से भी उसे वह सौन्दर्य प्राप्त होगा जिससे उसका अङ्ग-अङ्ग सुसङ्गठित हो जायगा। इन शब्दों में स्वतन्त्रता की गूँज है, कोमलता तथा सहृदयता है और प्रकृति की शक्ति तथा सहायता की ज्योति है। इसीलिए हमारे यहाँ स्त्री को प्रकृति-रूपिणी माना गया है, इसी से वह शक्ति तथा दुर्गा होते हुए भी सरस्वती तथा लक्ष्मी भी है और इसी से उसमें सीता के धैर्य, राधा की चञ्चलता, गङ्गा के गौरव एवं पार्वती की पुण्य तपस्या का आरोपण भी किया जाता है। ऐसे आदर्शों की पूर्त्ति के लिए प्राचीन तथा अर्वाचीन एवं पूर्वीय तथा पश्चिमीय सभ्यता के निष्कर्ष का ही अनुगमन कल्याण-कारी होगा। जो कुछ हमारे देश, धर्म, साहित्य तथा सभ्यता में सर्वश्रेष्ठ है, उसे अपने युवकों और युवतियों के सम्मुख नवीन रूप में रखना होगा। जब तक युवकों के सम्मुख युधिष्ठिर, भीम, राम तथा कृष्ण के आदर्श न रहेंगे और जब तक देश की कन्याएँ सीता, सावित्री, पार्वती तथा कुन्ती आदि पञ्च कन्याओं के पवित्र उदाहरणों से उत्साहित एवं उल्लसित न होंगी, तब तक न उनमें शारीरिक शक्ति आएगी, न चरित्र-बल बढ़ेगा और न उनके मानसिक विचारों की ही उन्नति हो सकेगी। और सबसे बड़ी बात यह है कि जब तक इन सभी बातों के सुचारु समावेश के अतिरिक्त प्रत्येक घर एक छोटी-मोटी पाठशाला न बन जाय और प्रत्येक माता अपनी सन्तान के लिए आदर्श गुरु न हो जाय तब तक हम लोगों में न तो किसी प्रकार की स्फूर्त्ति आएगी और न आधुनिक प्रलोभनों पर विजय प्राप्त करने की सच्ची शक्ति!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समाज में स्त्री का दर्जा

[ले० पं० हृषीकेश जी शर्मा, विशारद]

कुछ पता नहीं, एक अनन्त अनादि काल से पुरुष स्त्री को 'अबला' के नाम से पुकारता चला आ रहा है। जो रण-रङ्ग में जाकर युद्ध करती थी, बड़े-बड़े धुरन्धर ब्रह्मवादियों की सभा में निर्भय होकर ब्रह्म-विद्या विषय पर ज़ोर-शोर से शास्त्रार्थ करती थी, जिसने अपने गहन राज-नीति-पाण्डित्य के बल से विशाल राज्यों का शासन-शकट सञ्चालन कर अपनी योग्यता प्रमाणित की, उस स्त्री का समाज में कितना नीचा दर्जा बतलाया गया है, उस पर कैसी स्वार्थपूर्ण नीचता से आक्रमण किया गया है और किया जाता है, इस पर जब मैं वास्तविक विचार करने लगता हूँ तो हृदय असह्य वेदना से छटपटाने लगता हैं। माता, पुत्री, भगिनी और भार्या के रूप में इस संसार में सञ्चरण करने वाली इस महिमामयी महिला के स्वरूप को स्वार्थी पुरुष ने अब तक ठीक-ठीक पहचाना नहीं है। सैकड़ों वर्षों से हमारे अन्दर यह कुसंस्कार जड़ पकड़े हुए है कि स्त्री पुरुष से कम दर्जे का प्राणी है। न केवल हमारे ही यहाँ, संसार के सभी समाजों, सभी जातियों और सभी धर्मों में स्त्री के बारे में अनेक भ्रमात्मक धारणाएँ भरी पड़ी हैं।

जब हम हिन्दू-धर्म के ग्रन्थ टटोलते हैं, तो वहाँ स्त्री को अत्यन्त अधम, पाप की प्रतिमा, मलिन, अनृतवादिनी (झूठ बोलने वाली) और विश्वास न करने योग्य ठह-राया है। कुटिल क्रूर कवियों ने नारी-निन्दा के वर्णन में अपनी कल-मुँही क़लम तोड़ दी है। नारी को उन धूर्तों ने कलह की मूर्त्ति, अपवित्रता का भण्डार, संक्रामक रोग, विषधर भयङ्कर भुजङ्ग, रात में डाकिनी और दिन में शैतान की शहज़ादी वर्णन किया है। प्रमाण के लिए नीचे संस्कृत-श्लोकों के कुछ टुकड़े दे देना ही मेरी समझ से काफ़ी है—'विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु × × ×' 'स्त्रियो हि अकरुणाः क्रूराः' 'स्त्रीषु न रागः कार्यः' 'नार्थः समाश्रित-जनं हि कलङ्कयन्ति' 'विचित्र चरित्राः स्त्रियः' 'स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं' 'स्त्रियो हि मूलं निधनस्य पुंसः' 'स्त्रियो हि मूलं नरकस्य पुंसः।' इत्यादि-इत्यादि। इन सब का सारांश यही है कि भाइयो, स्त्रियों से सावधान रहना, उनका कभी भरोसा मत करो, उनके सम्पर्क मात्र से धवल-दूध का धुला हुआ पुरुष कलङ्कित हो जाता है। स्त्री का चरित्र विचित्र होता है, पुरुष के सर्वनाश का कारण वही है और पुरुष को नरक में ढकेलने वाली भी वही है। स्त्री-रूप में इस यन्त्र (मैशीन) को इस संसार में धर्म-ध्वन्सार्थ किसने बनाया (स्त्री-यन्त्र केन लोके × × × धर्म नाशाय सृष्टम्?) यदि हज़ार जीभ वाला और सौ वर्ष की उम्र वाला मनुष्य अपना सारा काम-धन्धा छोड़ कर स्त्री के दोष वर्णन करने बैठ जाय तो शायद ही उससे पूरा पड़े। (यस्य जिह्वासहस्रं स्यात् जीवेत् साग्रशतञ्च यः अनन्यकर्मा स्त्री दोषान् सोप्यनुक्त्वा लयं व्रजेत्।) इस प्रकार स्त्री पर कठोर कराल-करवाल चला कर पुरुष कहता है—'नारी प्रत्यक्ष राक्षसी।' एक कथानक में कहा गया है कि स्त्री स्वभाव से ही बुद्धि-विहीन होती है और वह शैतान का शस्त्र (हथियार) है। इसलिए स्त्री-जाति के भाग्य-विधाताओं ने 'न स्त्री स्वातन्त्र्य मर्हति' का काला क़ानून बना कर घोषणा कर दी कि स्त्री को स्वतन्त्रता का कोई अधिकार नहीं। वह ग़ुलाम है—ग़ुलाम से भी बदतर है। मानव-धर्मशास्त्र के ग्रेट ग्राण्ड फ़ादर मनु महाराज 'मनुस्मृति' के आठवें अध्याय के ४१६वें श्लोक में * स्त्री को ग़ुलामों की श्रेणी में रखकर, उसका जन्म-सिद्ध साम्पत्तिक अधिकार छीन लेते हैं। वे कहते हैं कि स्त्री, पुत्र और दास का धन पर कोई अधिकार नहीं। अब ज़रा आगे चल कर देखिए, बेचारी अबला औरत की तक़दीर का कैसा अच्छा फ़ैसला किया जाता है। 'जो मनुष्य किसी से कुछ ऋण ले और उसे बिना चुकाए ही मर जाय तो वह दूसरे जन्म में ग़ुलाम, नौकर, स्त्री अथवा पशु-योनि में जन्म लेकर अपने ऋणदाता मालिक के घर में उस ऋण को चुकाने

* भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एव अधनाः स्मृताः।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के लिए आता है।' कदाचित् इसी के आधार पर संस्कृत-व्याकरण के उस सूत्र की तरह, जिसमें कुत्ता, युवक और इन्द्र को एक श्रेणी में ला बिठलाया गया है† रामचरित-मानस के रचयिता, हिन्दी-भाषा सुन्दरी के सौभाग्य-सिन्दूर सन्त-शिरोमणि तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में बड़ी बेदर्दी के साथ स्त्रियों के ऊपर अपना हाथ साफ़ किया है—

ढोल गँवार शूद्र पशु नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी॥
नारि-स्वभाव सत्य कवि कहई।
अवगुण आठ सदा उर रहई॥
साहस अनृत चपलता माया।
भय अविवेक अशौच अदाया॥

इन चौपाइयों का अर्थ बतला कर मैं पाठक-पाठिकाओं का समय व्यर्थ ही नष्ट नहीं करना चाहता। ऊपर जो कुछ कहा गया है वह तो हमारे समाज की मनोवृत्ति (Mentality) का नमूना है। स्वार्थी पुरुषों की नीचता और अन्याय के कारण नारी अपने भाग्य का स्वयं निर्णय नहीं करने पाई है और न उसे आत्म-दशा के विश्लेषणार्थ विचार-स्वातन्त्र्य का मौक़ा ही मिल सका है। जिस समय भारतवर्ष सभी बातों में पूर्णत्व के सर्वोच्च शिखर पर चढ़ा हुआ था, उस तेजोमय, विज्ञानमय और मनोमय स्वतन्त्र वैदिक युग में स्त्री पुरुष की बराबरी का दावा रखती थी। पुरुष स्त्री के साथ समानता का सद्व्यवहार करता था। उस आर्य-युग में स्त्रियों के सब बातों में बराबर-बराबर अधिकार थे। वे पुरुषों की तरह विदुषी होती थीं। योग्यता में वे मर्दों से किसी तरह पिछड़ती न थीं। युद्ध में हार कर कर्त्तव्य-शून्य बैठे हुए निरुत्साही पुरुष को वीर-रस के सने उपदेश-वचन सुनाकर फिर से युद्धक्षेत्र में उसे भेज, उसके कण्ठ में विजय-लक्ष्मी के द्वारा वरमाला पहनवाती थीं। आप कहीं से कोई प्रमाण भी दिखला दीजिए, जिसमें अपने आत्म-बल पर किसी पुरुष ने अपनी स्त्री को मृत्यु के मुँह से बचाया हो! राजा अज (दशरथ के पिता) अपनी प्राण-प्यारी इन्दुमती को न कुछ पुष्प-माला की चोट से न बचा सके, अकाल ही में उस सुकुमार राज-रमणी को इस संसार से प्रस्थान कर देना पड़ा! उधर अबला स्त्री अपने मृत-पुरुष को अपने पवित्र आत्म-बल से मृत्यु-देवता यमराज से द्वन्द्व युद्ध कर, उन्हें लाचार करके, मौत के मुँह से छुड़ा लाती है। उसके सतीत्व-तेज के सामने भगवान् भुवन-भास्कर को हम सिटपिटाते हुए देखते हैं। वह उस युग में उथल-पुथल मचाती हुई दिखाई पड़ती है। ऋषि-कन्याएँ और ऋषि-पत्नियाँ वेदों की ऋचाएँ रचती हैं। दो-ढाई हज़ार वर्ष पूर्व ही की बात है, दिग्विजयी जगद्गुरु शङ्कराचार्य और मण्डन मिश्र के संसार-प्रसिद्ध शास्त्रार्थ में जय-पराजय का निर्णय करने के लिए मिश्र जी की अर्द्धाङ्गिनी उभय-भारती को हम न्यायाधीश के सिंहासन पर विराजमान देखते हैं। बालकों की तरह बालिकाओं का भी उपनयन-संस्कार होता है। वे आचार्य के समीप वेद-वेदाङ्गों का स्वाध्याय कर सकती हैं। इच्छानुसार हम उन्हें साहित्य, दर्शन, विज्ञान आदि की शिक्षा प्राप्त करते हुए पाते हैं। उस समय मोक्ष-प्राप्ति की कामना से स्त्री को आजीवन ब्रह्मचारिणी रह कर ब्रह्म-जिज्ञासा के मार्ग में कोई रुकावट न थी। वर्त्तमान काल में उनके यह सब बर्थ-राईट (जन्मसिद्ध अधिकार) पुरुषों ने ज़बरदस्ती छीन लिए हैं। आज हमारी बहू-बेटियाँ वेद-वेदाङ्गों का अध्ययन नहीं कर सकतीं। उनको 'स्त्री-शूद्र-द्विज-बन्धूनां त्रयी न श्रुति गोचरा' के पिनल-कोड से शूद्र की कोटि में रखकर वेद-विद्या के अधिकार से वञ्चित कर दिया गया है। केवल विवाह को छोड़कर, उनके समस्त धार्मिक संस्कार बन्द करा दिए गए हैं। इस समय तो वे यहाँ तक पराधीन हैं कि अपनी इच्छा से कोई कार्य भी नहीं करने पातीं। पुरुष का अङ्कुश हमेशा उनकी गर्दन पर चुभता रहता है।

योगियों, मुनियों और तपसियों का व्रत भङ्ग कर वैकुण्ठ-धाम का प्रवेश-द्वार उनके लिए बन्द करा देने का इलज़ाम स्त्री के पल्ले पड़ा है। श्री वृषभानु-कुमारी व्रजेश्वरी राधा के बिना कृष्ण का, पवित्र सतीत्व की तेजस्विनी प्रतिमा, रूप-गुण-शील में अप्रतिम अवधेश्वरी जनक-नन्दिनी सीता के बिना राम का, दैत्य-दर्प-दलिनी-दशभुजा दुर्गा आदिशक्ति गिरिराज-कुमारी पार्वती के बिना भोले बाबा भूतनाथ का और वेदमाता गायत्री के बिना वैदिक धर्म का अस्तित्व तक न स्वीकार करने वाले हमारे धार्मिक समाज में ध्यान-समाधि के साधक योगिजनों

† 'श्व-युव-मघोनामतद्धिते।' श्वानं युवानं मघवान माह।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को स्त्री से सा योजन (४०० मील) दूर रहने की सख़्त हिदायत कर दी गई है। तभी उन्हें मोक्ष-लाभ होगा। नहीं तो वे योग-भ्रष्ट होकर इधर-उधर भटकेंगे !! हमारे शास्त्रों में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि अपरिणीता (अविवाहिता) स्त्री को स्वर्ग के कम्पाउण्ड में घुसने की मनाही है। स्त्री चाहे जितनी योग्य हो, शिक्षिता हो और हो शिष्टाचार परायण, परन्तु बिना पति-देवता के उसकी गति नहीं। 'असंस्कृतायाः कन्यायाः कुतो लोकास्तवानघे' अर्थात् जिसकी शादी नहीं होती, उसे परलोक नहीं मिलता। पुरुष चाहे जैसा नीति-भ्रष्ट हो, दुराचारी, वेश्यागामी, निर्धन, क्रोधी, रोगी, दुर्बल, बूढ़ा, अपाहिज या जाहिल-जट्ट (निरक्षर भट्टाचार्य) क्यों न हो, तो भी वह स्त्री का मोक्षदाता कहा गया है। पुरुष चाहे जो कुकर्म करे, उससे कुछ अपराध हो जाय, तो वह उन्हें नाक-भौं चढ़ाकर छिपाने की चेष्टा करता है, परन्तु असहाय अबला के अल्प अपराध भी कारागार के क़ैदी की तरह उसके भाल-पट पर लिखे जाते हैं *। कहीं भूल से भी भर्ता का भार्या से भद्दा सा अपमान हो जाय तो वह सहस्र-युग पर्यन्त नरक भोगती है। मेरी समझ में, इस पोच अभिशाप से तो हज़ार दर्जे आजीवन कालेपानी की सज़ा कहीं अच्छी है ! पुरुष तो दुराचार करके मूँछ उमेठ कर साफ़-साफ़ बच निकलता है और बेचारी अबला को कठोर यातना से अपमानित होना पड़ता है !

हिन्दू-विधवाओं पर नित्य-प्रति होने वाले राक्षसी अत्याचारों की एक लिस्ट तैयार की जाय तो महाभारत की तरह एक भारी पोथा बन सकता है। मुल्क के ८० फ़ी सदी मर्द निठल्ले बैठे रहते हैं, हुक़्क़ा गुड़गुड़ाते हैं, शराब पीते हैं या इसी तरह का कोई जुआ-चोरी का काम करते हैं। स्त्री बीमार हो, अशक्त हो, उसे परिवार भर के लिए खाना पकाना चाहिए। घर भर के कपड़े-लत्ते धोना चाहिए। रातों-रात जागकर बीमार की सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिए। भट्टी की भभक के सामने वह बेचारी अपना कलेजा ईंधन के साथ-साथ झोंकती रहे, काले-कलूटे, चिकने दर्जनों भाँडे-बर्तन माँजे, जूठन खावे, घर-द्वार साफ़ रक्खे और अन्त में जाकर उच्छृङ्खल, अविचारी, असंयमी पुरुष की पशु-वृत्ति का शिकार बनकर बेमौत मरे ! आप भले ही मिस मेयो को मनहूस ठहराने के लिए उसकी 'मदर-इण्डिया' का मुँह-तोड़ उत्तर लिखने में अपनी एड़ी-चोटी का पसीना एक कर दें, इससे कुछ होना-जाना नहीं। यह असन्तोष, यह अविश्वास और यह पीड़ा बढ़ती ही जायगी। इससे विधवाओं की दशा नहीं सुधर सकेगी। हिन्दू-विधवा, वह भी बाल-विधवा या युवती-विधवा, अपनी मूक-वेदना, विरह, अपमान, वासना और यौवन की उमङ्गों की प्रचण्ड अग्नि में अहर्निश धक्-धक् जलती रहती हैं ! इधर हमारे समाज में अधेड़ और साठ-साठ बरस के पोपले मुँह वाले बुड्ढे कोमल कन्याओं से विवाह करने के लिए सजे-सिंगरे दुलहे बने बैठे रहते हैं !! समाज में पुत्र के जन्म पर धूमधाम से उत्सव मनाया जाता है और जो सयानी होने पर पुरुष-हृदय के उन्माद को हरेगी, दुःखी परिवार के आँसू पोंछेगी और असार संसार को 'जङ्गल में मङ्गल' के रूप में बदल देने की शक्ति जिसे प्रकृति माता ने दे रक्खी है, जो सौन्दर्य, माधुर्य, सहिष्णुता और सुख की निर्झर हो, उस कन्या—स्त्री—के जन्म-समय हमारे परिवार में मातम मनाया जाता है। अफ़सोस !!! हम इस 'कन्याप्येवं पालनीया शिक्षणीया-तियत्नः' आर्ष वचन को क्यों भूल गए ?

ऊपर मैंने जो कुछ लिखा है, वह हमारे सनातन हिन्दू-धर्म और हिन्दू-समाज की वर्तमान परिस्थिति को बतलाने के लिए भात में सीत को टटोलने की तरह पर्याप्त है। अब चलिए, ज़रा संसार के दो-चार प्रसिद्ध और मुख्य धर्मों और समाजों की जाँच-पड़ताल भी कर डालें।

ईसाई धर्म (मसीही मज़हब) सेवा, त्याग, बलिदान और विश्व-प्रेम का धर्म कहलाता है। वहाँ भी स्वर्ग से पुरुष का अधःपतन कराने का कलङ्क बेचारी स्त्री के मत्थे मढ़ दिया गया है। ईसाइयों ने स्त्री के पैरों में निन्दा की बेड़ी यह कह कर पहनाई कि स्त्री ने ही इस दुनिया में पाप की बुनियाद डाली। कैसा अन्धेर है !

बौद्ध-धर्म में, भगवान् बुद्ध के सिद्धान्तों के प्रचार के लिए जब 'विश्व-सङ्घ' का निर्माण हुआ, तब आरम्भ में स्त्रियों को उसमें शामिल नहीं किया गया। बुद्धदेव ने

* इसका एकमात्र कारण यही है कि अनादि काल से धार्मिक-ग्रन्थों के रचयिता पुरुष ही हुए हैं। स्त्री का निर्माण किया हुआ एक भी धर्म-ग्रन्थ हमें ढूँढने से नहीं मिलता। इस एक-तरफ़ा डिगरी का यही कारण है।—सं० 'चाँद'

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपने प्रचारकों से कहा था—'कामिनी और कञ्चन पुरुष के चित्त को अधिक खींचने वाले हैं।' एक स्थल पर वे कहते हैं—'स्त्रियों से मिलते समय सावधानी और संयम से काम लो। यदि कोई स्त्री तुम्हारे सामने आ जाय तो उससे बात मत करो, अपना चित्त अचल रक्खो।'

अहिंसा-धर्म प्रधान जैन-धर्म में भी, जब मनुष्य अगणित कुकर्म करता है, तब दूसरे जन्म में उसे स्त्री-योनि में जन्म लेना पड़ता है। अबला स्त्री को यह सार्टिफ़िकेट देकर जैन-धर्म के तीर्थङ्करों ने बेचारी अबला के लिए स्वर्ग की सड़क बन्द कर देने को 'सेफ़्टी बिल' पहले ही से पास करके रख छोड़ा है!

मैं मुस्लिम-समाज और इस्लाम का थोड़ा सा हाल देकर विस्तार के भय से इस लेख को कुछ ही पंक्तियों में समाप्त कर दूँगा। इस धर्म के प्रचारक हज़रत मुहम्मद साहब थे। वे अपने को ख़ुदा का फ़रिश्ता समझते थे। उन्होंने अपने तईं पैग़म्बर या ईश्वर का दूत घोषित किया था। लोग कहा करते हैं कि हज़रत साहब बड़े उदार, बड़े दयालु थे। पर मेरी नाक़िस समझ में साथ ही साथ वे कट्टर और बेरहम भी थे। उन्होंने कई औरतों से, जब जैसा मौक़ा मिला, शादी की। एक ख़ुदाई नूर का, सच्चे धर्म-सुधारक का, अनेक स्त्रियों से ब्याह करना आश्चर्य में डालता है! हज़रत मुहम्मद साहब फ़र्माते हैं—'औरतों की इज़्ज़त करो।' वे स्त्री को ईश्वर की सृष्टि में सर्वोत्तम, अमूल्य, अद्भुत कारीगरी और जगत् की जननी समझते थे। उसी मुस्लिम-समाज में आज औरत का दर्जा मर्द के पैर की जूती के बराबर भी नहीं है। मुस्लिम-महिला का जीवन अपमान, दीनता, हीनता, कुशिक्षा, दुख और दारिद्र्य का जीवन है। वह सदियों से बुज़दिली का बुरक़ा ओढ़े हुए है! घर में उसकी कोई आबरू नहीं। वह बासी रोटी के टुकड़े खाकर, फटे-पुराने मैले कपड़े पहने गन्दे घरों में ज़िन्दगी गुज़ारती है!!

परदा और अशिक्षा के घनघोर अन्धकार में गिर कर वह अपने शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास से हाथ धो बैठी हैं। क्या मजाल, जो परदे से बाहर झाँकने के लिए वह अपना सिर बुरक़े से बाहर ऊँचा तो उठावें!

यदि आप शिक्षित हैं, समाज-सुधार का दम भरते हैं और स्त्रियों की दुर्दशा से आपको ज़रा भी हमदर्दी है तो कुछ कीजिए, वह भी ठोस! जिससे ग़ारत भारत का कल्याण हो।

संयोग और वियोग

[रचयिता—श्री० सोहनलाल जी द्विवेदी]

(१)

इस निर्धन के धन जब मेरी—
पर्णकुटी में आते हो।
अपने एक अनूप रूप में,
सारा विश्व दिखाते हो॥

(२)

जब जाते हो नाथ छोड़,
मैं एकाकी रह जाती हूँ।
अखिल जगत के कण-कण में तब,
मैं तुमको ही पाती हूँ॥

(३)

कौन दुखद संयोग कहेगा,
पर है सुखद वियोग मुझे।
परिमित प्रेम अपरिमित होता,
लखती हूँ सब ठौर तुझे॥

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समाज का अग्निकुण्ड

[ले० अध्यापक ज़हूरबख़्श जी 'हिन्दी-कोविद']

एक वेश्या की आत्म-कथा

थोड़ी देर बाद मैंने हीरा से कहा—"हीरा ! वास्तव में तुम्हारी कहानी में हृदय के फफोले छिपे हुए हैं। समाज ने तुम पर पैशाचिक अत्याचार किया है ! उसी के पाप से तुम्हारी जैसी विचारवान् रमणियाँ विवश हो वेश्या-वृत्ति स्वीकार कर लेती हैं। ख़ैर ! क्या तुम्हें अपनी उन माँ जी की भी कथा मालूम है ? वे क्यों वेश्या हो गई थीं ? जानती हो तो कृपा कर सुनाओ।"

हीरा बोली—"हाँ, जानती हूँ ! उनकी कथा में मेरी कथा से भी अधिक विवशता और करुणा भरी हुई है। उससे आपको मालूम होगा कि हिन्दू-विधवा का जीवन कैसा कण्टकाकीर्ण है। वह लाख चाहे, तो भी सिवा मरने के उसके पास सतीत्व-रक्षा का अन्य साधन नहीं है ! और मरना—प्राणों का मोह त्यागना—सरल काम नहीं। वह अपनी रक्षा के लिए कितनी ही रोती-चीख़ती रहे, पर उसकी करुण-पुकार वायुमण्डल में ही गूँज कर रह जाती है; बहरे समाज को वह आर्त्त-क्रन्दन नहीं सुनाई देता ! वह रोती है—बिलबिलाती है, पर समाज उसकी ओर फूटी आँखों भी नहीं देखता। पर जहाँ विधवा से तनिक भी अपराध हुआ, तहाँ समाज मानो फड़फड़ा कर जाग उठता है। फिर तो वह विधवा के पीछे इस तरह हाथ धोकर पड़ जाता है कि बेचारी को जहन्नुम में भी जगह मिलना दुश्वार हो जाता है। वास्तव में माँ जी के हृदय में भी वही अग्नि सुलग रही थी, जो आज मुझे तिल-तिल करके जला रही है। मैं वेश्या-वृत्ति स्वीकार नहीं करती थी, तब उन्होंने आँखों में आँसू भर कर मुझसे कहा था—"बेटी, मैं जानती हूँ कि स्त्री का वेश्या हो जाना, स्त्रीत्व को आग में झोंक देना है ! पर हम अभागिनियों के लिए इसके सिवा जीवन व्यतीत करने का दूसरा मार्ग भी तो नहीं है ! मैं जानती हूँ कि वेश्या-वृत्ति घोर पाप है ! पर इसमें हमारा और समाज का कितना पाप है—इसका विचार परमात्मा के न्यायी दरबार में ही होगा ! तब तक स्त्रीत्व को पाप की वेदी पर बलिदान करती जाओ—परमात्मा के इस वास-स्थान में बराबर पाप की ज्वाला प्रज्वलित करती जाओ ! एक दिन अवश्य ही इस भीषण अग्नि-ज्वाला से प्रभु तिलमिला उठेंगे। तब हमारा न सही—अन्य विधवाओं का तो कल्याण होगा। जब समाज का घट आकण्ठ पापपूर्ण हो जायगा, तभी धर्म का, तभी हमारा उत्थान होगा ! वेश्या-वृत्ति पाप नहीं—धर्म की ज्योति जाग्रत करने के लिए तप-पूर्ण साधना है।" हम दोनों ही दुखियारी थीं, इसलिए हमारे हृदय एक दूसरी के प्रति सहानुभूति नहीं, प्रेमपूर्ण थे, माँ जी मेरी प्रसन्नता के लिए सदा तत्पर रहती थीं। इसी से उन्होंने अपनी लाञ्छनापूर्ण कथा सुना दी थी। पहले तो वे टाल-मटोल करती रहीं, पर एक दिन मेरे विशेष आग्रह पर बोलीं—

"बेटी, तुम मेरी कथा सुनने के लिए आतुर हो रही हो, पर उसमें न कोई नूतनता है, न कोई अनोखापन ! है केवल वही निर्मल सामाजिक अत्याचार, स्त्री-जाति पर भीषण कुठाराघात और अश्रु-प्रवाह की हाहाकार-ध्वनि !

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वह एक प्रकार से तुम्हारे ही आत्म-रुदन की प्रतिध्वनि है। पर तुम नहीं मानती, तो सुनाती हूँ। मेरा जन्म एक बहुत ही प्रतिष्ठित और कुलीन ब्राह्मण-कुल में हुआ था। माता-पिता की मैं बड़ी ही दुलारी थी। मुझ पर माता का जितना स्नेह था, पिता का स्नेह उससे कम नहीं था। घर सम्पत्ति से भरा-पुरा था, माता-पिता का अनन्त दुलार था, इसलिए मेरे दिन तितलियों की नाईं बड़े ही उल्लास से व्यतीत होते थे। जब मैं ग्यारह बरस की हुई, तब मेरे विवाह की तैयारी हुई। आनन्द का स्रोत उमड़ उठा—वह विशाल हवेली, पुलक के आवेग से खिलखिला उठी। हज़ारों रुपए निछावर होगए। इस प्रकार बड़ी धूमधाम से मेरे वैधव्य को निमन्त्रण दिया गया।

एक बरस बाद ही वैधव्य अपनी रुद्र-मूर्ति लिए आ पहुँचा और उसके साथ आए उसके हृदय-सखा—दुःख, शोक, सन्ताप, उत्पीड़न, तिरस्कार, लाञ्छन, रोदन, आदि! दैत्यों की वह भयानक मण्डली मुझ पर तो कुछ प्रभाव न डाल सकी, पर माता-पिता ने अश्रु-अर्घ्य से उसका स्वागत-पूजन किया! घर हाहाकार-ध्वनि से ध्वनित हो उठा। माता माथा पीट-पीट कर रोने लगी! पिता जी कटे हुए वृक्ष के समान गिर पड़े। मेरे सौभाग्य-दुर्भाग्य की आलोचना अश्रु-विन्दुओं के अक्षरों से लिखी जाने लगी। जब शोक का प्रथम आवेग कम हुआ, तब पिता जी रुद्ध कण्ठ से माता से बोले—बेटी की सौभाग्य-नौका दुःख के अतल-तल में सदा के लिए विलीन होगई है। उसका उद्धार करने में हम सर्वथा असमर्थ हैं। ईश्वर की इच्छा पर किसका वश है? बेटी के भाग्य में यही लिखा था, तब कोई क्या करेगा? अब इस प्रकार विलाप करने से क्या लाभ है? बीते हुए समय और मरे हुए आदमी को कौन लौटा सकता है? इसलिए अब धीरज और शान्ति का ही सहारा लेना पड़ेगा। आज से बेटी को सत्य, धर्म और तप की शिक्षा देनी पड़ेगी। शास्त्रकारों ने विधवा के लिए जो व्यवस्था निश्चित कर दी है, बेटी को उसका पालन करने के सर्वथा योग्य बनाना पड़ेगा। इसी से उसका कल्याण होगा—उसके दोनों लोक बनेंगे और कुल-मर्यादा की रक्षा होगी! हम ब्राह्मण हैं, हमें तो शास्त्र-विधान की रक्षा करनी ही पड़ेगी। जब तक हम हैं, तब तक तो कोई चिन्ता नहीं, बेटी सुख से रहेगी ही, भविष्य की बात भगवान् के हाथ है।

माँ बोली—सब जानती हूँ। जैसा कहोगे वैसा ही करूँगी।

पिता जी धर्म-शास्त्रों के पूर्ण ज्ञाता थे। उस दिन से वे मेरे गुरु हुए। मैं अबोध बालिका उनके सामने विधवा-धर्म की शुष्क शिक्षा प्राप्त करने लगी! इसके साथ ही मुझे धर्म-कर्म की शिक्षा भी दी जाती थी। और माता इस बात की देख-रेख करती थी कि पिता मुझे जो पाठ देते हैं, मैं उसे भली-भाँति याद करती हूँ या नहीं—उस पर मनन करती हूँ या नहीं। इस प्रकार माता-पिता के धर्म-राज्य में बड़े सुख और शान्ति से बाल्यावस्था बीत रही थी। आयु-वृद्धि के साथ ही मेरी वृत्तियाँ भी सात्विक होती जाती थीं। क्रमशः मैंने कैशोर अवस्था में पैर रक्खा। शरीर में अलस मन्थर गति से गम्भीरता का उद्भव होने लगा। बाल-सुलभ चञ्चलता दिन-दिन विस्मृति की ओर अग्रसर होने लगी। और इसके साथ ही मेरी धर्म-शिक्षा भी प्रौढ़ रूप धारण करने लगी।

हाय! ऐसे ही शान्त समय में, मेरे दुर्भाग्याकाश में, एक दिन अचानक भयानक धूमकेतु का उदय हुआ। माता-पिता चेष्टा करने पर भी उसके संहारकारी प्रभाव से मुझे मुक्त न कर सके। नारी का—और विशेषकर विधवा का भाग्य अग्नि का प्रबल पुञ्ज है, उसे कोमल वस्त्र में बाँधने का साहस कौन कर सकता है! नारी एक धरोहर है, जब उसके विधाता चाहेंगे, तभी वह लौटा देनी पड़ेगी। मैं भी अब तक माता-पिता के यहाँ धरोहर थी, अब मेरे अपने स्थान पर लौटने का समय आगया; क्योंकि अब मैं बालिका न थी, युवती हो रही थी। एक दिन मुझे लेने के लिए मेरा जेठ आ पहुँचा। अज्ञात-भय की आशङ्का से मैं उद्वेलित हो उठी। जेठ ने पिता जी से कहा—कृपा कर बहू को भेज दीजिए।

पिता जी ने उससे कहा—मेरी बेटी सौभाग्यहीन हो चुकी है। जैसी वहाँ रही वैसी यहाँ।

वह बोला—इससे क्या, जहाँ की वस्तु हो उसका वहीं रहना अच्छा है। और स्यानी लड़की का तो अपने घर में रहना और भी आवश्यक है। क्या मेरे भाई का देहान्त हो गया, तो बहू अब ससुराल का

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुँह भी न देखेगी ? हम अपनी स्यानी बहू को अब यहाँ नहीं रख सकते, पिता जी की यही राय है।

पिता जी ने बहुत टाल-मटोल की, पर जेठ न माना। तब क्या करते, मुझे बिदा करने की तैयारियाँ करने लगे।

मैं रोती-कलपती बिदा हुई। पिता ने जेठ से कहा—इस अभागिनी पर दया रखिए। यह अब आपके ही आश्रित है। और क्या कहूँ।

उसने उत्तर दिया—आप इस बात से निश्चिन्त रहिए। आपकी बेटी के पेट का पानी भी न डुलेगा। जैसी यह आपकी बेटी है, वैसी ही मेरी!

हाय! समाज में बेटी के रोते-बिलखते माता-पिता को नित्य ही इसी प्रकार के कितने आश्वासन दिए जाते हैं। पर लोग बेटी को घर में लाए नहीं कि अपने वचनों को उसी प्रकार भूल जाते हैं, जैसे सिर से उतरा हुआ केश। ससुराल में बहू का स्थान क्या है? वह दासी से भी निकृष्ट है—वह अपमान और तिरस्कार की सजीव मूर्ति है, और इसलिए ससुराल वाले उससे आन्तरिक घृणा करते हैं। उसके साथ ऐसा ही व्यवहार किया जाता है, जैसा एक नादान बच्चा मिट्टी के उस खिलौने के साथ करता है, जो उसे बिलकुल पसन्द नहीं होता। वह उसे उठाता है और लापरवाही से यहाँ-वहाँ पटकता है, पर उसके दिल में कुछ भी दर्द नहीं होता! ससुराल वह भीषण अग्नि-कुण्ड है, जिसमें बधू के शरीर की—हृदय की तिल-तिल करके आहुतियाँ दी जाती हैं! बधिक पशु को बध-स्थान में ले जाता है! वहाँ का बीभत्स एवं भीषण दृश्य देख कर मूक पशु तक की आत्मा सिहर उठती है और वह 'वाँ-वाँ' करके वहाँ चीत्कार कर उठता है। पर बधिक मुस्कराते-मुस्कराते छुरी उठा लेता है! परन्तु ससुराल में बधुओं की स्थिति इससे भी शोचनीय है। बधिक तो एक बार ही दीन-हीन पशु को धार के घाट उतार देता है! पर आह! बधुओं के रोम-रोम पर रह-रह कर अत्याचार की तीक्ष्ण छुरी की परीक्षा की जाती है! ऐसी ही ससुराल में मेरा दुर्भाग्य मुझे लिए जा रहा था! कण्ठ रुद्ध था, आँखों में अश्रु थे, हृदय में निराशा की निस्तब्धता छा रही थी। बाहर गाड़ी की गड़गड़ाहट हो रही थी। मैं सोचती थी, काश गाड़ी विरुद्ध दिशा में चलने लगती और मैं उड़ कर माता-पिता के स्नेहमय राज्य में जा पहुँचती!

ख़ैर, मैं ससुराल पहुँची! लाजवन्ती के पौधे जैसी वस्त्रों में सिमट कर एक ओर खड़ी हो रही। इतने में ही एक स्त्री आई, उसने मेरा घूँघट हटा दिया! मैंने उसकी ओर देखा, उसके तेवर चढ़े हुए थे, आँखों में क्रूरता की झलक थी। मैं भयभीत हो गई। मैंने पुनः घूँघट खींच लिया। इतने में ही वह जेठ की ओर देख कर बोली—'क्या यह वही डाकिनी है, जो गँठजोड़ा होते ही मेरे लाल को चट कर गई?' सास के इन शब्दों ने मेरे हृदय पर लकीर खींच दी! मैंने मन ही मन भगवान् से प्रार्थना की—"हे दयामय! यहाँ मुझे पैर रखते देर नहीं हुई कि मेरे हृदय में तीर चुभाए जाने लगे! अब इस दुखिनी की लाज तुम्हारे ही हाथ है! तुम्हीं इसकी रक्षा करना!" पर दुखियों का करुण-क्रन्दन भगवान् भी नहीं सुनते! बेटी, ससुराल में मुझ पर कैसी क्या बीती—उसका क्या वर्णन करूँ; उन दिनों की याद आते ही आज भी कलेजा काँप उठता है! एक बात हो तो कहूँ भी—सैकड़ों को कहाँ तक कहूँ! माता-पिता के यहाँ चैन की बंशी बजाई थी, घर-गृहस्थी के धन्धे सीखे नहीं थे—यहाँ आते ही गृहस्थी का सारा बोझ पटक दिया गया। पर दुर्भाग्य जो-जो कराता था, वही निर्जीव यन्त्र के समान करती थी! कितना ही अच्छा काम करती—कितनी ही शीघ्रता से करती; तो भी दुर्वचन सुनने पड़ते; तो भी तिरस्कार सहना ही पड़ता, इतने पर भी पेट काटा जाता! सास कहती—विधवा को भर-पेट भोजन की क्या आवश्यकता? पेट भर भोजन मिलेगा तो आकाश सिर पर उठा लेगी! ससुर जी 'ठीक है' कहकर उसकी सम्मति का समर्थन करते! बुढ़िया सास दिन भर बनाव-चुनाव में लगी रहती, पर मेरे कपड़ों से गन्ध निकला करती! एक दिन मैंने अपनी धोती धो डाली, बस सास बिगड़ उठी, बोली—यह साफ़ धोती किस छैला को दिखावेगी! इसके बाद उसने मारते-मारते मुझे बेदम कर दिया! एक दिन दाल में कुछ नमक अधिक पड़ गया, बस सास गरजती हुई उठी, उसने जलती हुई लकड़ी उठा कर मेरे हाथ जला दिए! जहाँ मेरे दिन हास्य की गोद में रँगरेलियाँ करते हुए बीतते वहीं दुर्भाग्य से मैं अग्निमयी शय्या पर रक्त के आँसू बहाती हुई, कलप-कलप कर सुहाग की रात बिताती थी!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस प्रकार मृत्यु के नाम की माला जपती हुई मैं जीवन-पथ पर अग्रसर होती जा रही थी! शरीर में अस्थि-कङ्काल मात्र शेष रह गया। परन्तु फिर भी मृत्यु न आई! दुर्भाग्य-रेखा आगे-आगे सरिता के समान विस्तीर्ण होती जा रही थी! मानो भगवान की कोप-दृष्टि मेरे उतने त्रास से—उतनी दुर्दशा से अब भी शान्त न हो सकी थी! एक दिन मेरी जीवन-नौका सर्वनाश के भीषण भँवर में जा फँसी—जहाँ से आज तक उसका उद्धार न हो सका—वह मुझे पाप के अतल-तल में ले डूबी। मेरी सास मेरी जेठानी को बहुत चाहती थी। सास की दया से और पति के प्यार से वह घर की रानी हो रही थी। वह मुझ पर भी सदय-दृष्टि रखती थी। कभी-कभी उसकी दया से मेरे सङ्कट में कुछ कमी हो जाती थी। परन्तु जिसकी यहाँ चाह है, वहाँ भी उसकी चाह है। एक बार वह बीमार हुई, किन्तु दवा-दारू करने पर भी मृत्यु के सर्वग्रासी मुख से उसका उद्धार न हो सका। उसकी मृत्यु के कुछ दिन बाद मुझ पर जेठ की सदय-दृष्टि हुई! जब तक जेठानी जीती रही, तब तक वह मेरे पिता को दिया हुआ वचन भूला रहा! पर जेठानी के मरते ही मानों उसे अपने वचन की याद हो आई! अब वह शनैः शनैः मेरा पक्ष लेने लगा। एक दिन उसने माता से स्पष्टतया कह दिया—"माँ, मैं देख रहा हूँ कि जब से बहू आई है, तब से तुम अकारण ही उस पर अत्याचार करती आ रही हो! वह स्वयं ही दुखी है, तब उसे और सताने की क्या आवश्यकता! मैंने तुमसे कई बार कहा भी, पर तुम नहीं मानतीं! मुझसे रात-दिन की यह हाय-साँसें नहीं सुनी जातीं! यदि तुम फिर इसे सताओगी तो अच्छा न होगा! मैं यह घर-द्वार छोड़ कर कहीं जा रहूँगा!"

अपने एकमात्र पुत्र की यह धमकी सुनकर सास भयभीत हो गई! उसी दिन से मेरे त्रास का अन्त हो गया।

हिन्दू-घरों में बहू को ससुर, जेठ आदि गुरुजनों के सामने लज्जा की मूर्त्ति बन कर रहना पड़ता है। उनके सामने बहू बोल नहीं सकती, घूँघट नहीं उठा सकती, न उनसे बातें ही कर सकती है। मुझे भी इस नियम का पालन करना पड़ता था। परन्तु जेठ क्रमशः इस नियम को भङ्ग कर रहा था। वह अपनी माता से मेरा पक्ष लेकर ही नहीं रह गया, अवसर पाते ही वह मुझसे भी पूछता था कि तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं है; किसी वस्तु की आवश्यकता तो नहीं है? उसकी इस सहृदयता का—इस दया-दृष्टि का—मुझ पर बड़ा ही प्रभाव पड़ा। मैं उसे देवता समझने लगी! क्रमशः उसके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ने लगी। इतना ही नहीं, मेरी लज्जा भी बहुत-कुछ दूर हो गई, मैं उससे कुछ-कुछ बातें भी करने लगी। परन्तु मेरे हृदय में कोई वासना नहीं थी, कोई पाप नहीं था। मैं उसे बड़े ही भक्ति-भाव से देखती थी! यही मेरी बड़ी भूल हुई। आह! कहीं मैं अपनी भूल समझ जाती। पुरुष कहा करते हैं—ज़ोर देकर कहा करते हैं, स्त्रियाँ छलना की मोहिनी मूर्त्तियाँ हैं! परन्तु सच तो यह है कि यह आरोप पूर्णतया उन्हीं पर घटित होता है! वे ही स्त्रियों के सामने छलना का मोहन रूप लेकर आते हैं, उसके सामने सहानुभूति की सलोनी मूर्त्ति लेकर खड़े हो जाते हैं; और तब? तब मीठी-मीठी बातें करके उसके हृदय में प्रवेश कर जाते हैं। फिर अवसर पाते ही ठगों की नाईं उसे बिलकुल ठग लेते हैं। जहाँ देखो, कहीं स्त्रियों ने पुरुषों को नहीं ठगा—पुरुषों ने ही अपनी माया का जाल बिछा कर, स्नेह, दया, सहानुभूति और उपकार के कण छिटका कर नारियों को फँसाया है, और बाद में अपनी वासना की वेदी पर उन्हें बलिदान कर दिया है! इतने पर भी पुरुष स्त्रियों को मायाविनी, वासना-विह्वला और दग़ेबाज़ कह कर अपने काले कृत्यों पर परदा डालते हैं, स्त्रियों पर घृणा की फटकार करते हैं! यही मेरे जेठ ने मेरे साथ किया!!

एक दिन की बात है। ससुर घर पर नहीं थे, सास मुहल्ले में एक जगह बुलौवे में चली गई थीं। घर में अकेली मैं ही थी। रात के कोई दस बजे होंगे। इसी समय बाहर से जेठ आया। मैं उसे भोजन करा, अपने कमरे में चली गई। अभी मुझे बिस्तर पर लेटे आध घण्टा भी न हुआ था कि जेठ आ पहुँचा। उसे देखते ही मैं घबरा कर एक ओर खड़ी हो गई। वह मेरी ओर बड़ी ही सतृष्ण दृष्टि से देख रहा था। मैं और भी डर गई और बाहर जाने की चेष्टा करने लगी; पर वह रोक कर बोला—"चन्दन, डरती क्यों हो! बैठ जाओ! डरने की कोई बात नहीं है!" उसकी वाणी में एक विचित्र प्रकार का कम्पन था।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आशङ्का से मेरा हृदय धड़कने लगा। मैंने उससे पूछा—"आप इतनी रात गए मेरे कमरे में क्यों आए हैं? मेरे लिए क्या आज्ञा है?"

उसने मुस्करा कर कहा—"चन्दन, इतना क्यों डरती हो! आज तक मुझसे तुम्हारी भलाई के सिवा हानि नहीं हुई, फिर भी इतना डर! बैठ जाओ। अब भी मुझसे तुम्हारी भलाई ही होगी!" मैं बैठ गई, तब वह कुछ ठहर कर बोला—"चन्दन! तुम्हारी दशा देख मुझे बड़ी दया आती है। तुम्हारे यह यौवन के दिन, और यह सूना अग्निमय बिस्तर! कैसे तुम्हारी रातें कटती होंगी?" मानो किसी ने मेरी छाती में बरछी मार दी। जेठ का अभिप्राय समझने में मैं पीछे न रही। मैंने सरोष उससे कहा—तो आप मुझे क्या करने को कहते हैं?

वह कुटिल हँसी हँस कर बोला—शायद तुमने मेरा मतलब नहीं समझा। तुम विरहिणी, मैं विरही! आओ दोनों मिल कर, इस धधकती हुई आग को स्नेह-सलिल से शीतल कर डालें।

यह सुनते ही मेरी रोषाग्नि भड़क उड़ी। जैसे सारे शरीर में बिजली दौड़ उठी हो। आँखों से अग्नि-स्फुलिङ्ग प्रगट होने लगे। मैंने कड़क कर उत्तर दिया—तुम मेरे जेठ हो! पिता के तुल्य जेठ हो। उस दिन तुमने मेरे पिता से कहा था—यह मेरी बहू नहीं, बेटी है! आज उसी बेटी को अपने वासनामय कलुषित हृदय से लगाओगे। उस दिन का वह हृदय कहाँ है? उस दिन की वह वाणी कहाँ है?

परन्तु कामार्त्त आदमी को शील-सङ्कोच, लज्जा, मर्यादा और धर्म-अधर्म का विवेक नहीं रहता। वह—"चन्दन! अब तो नहीं सहा जाता, तुम्हारी इस पुष्प-जैसी देह को भुजाओं में कस लेने के लिए यह हृदय तड़प रहा है। इस नीति और धर्म के पचड़े को आग में झोंक दो!" कहता हुआ आगे को बढ़ा! मैं मारे भय के काँप उठी। दूसरे ही क्षण मैंने अपने सारे सुप्त साहस को अपनी भुजाओं में समेट लिया! मैंने उससे कहा—"अच्छी बात है, बढ़ो आगे, मैं सहज ही तुम्हें अपना धन न लूटने दूँगी। हे पाप के मोहन-रूप बढ़ो आगे।" एक बार तो वह ठिठका, पर शीघ्र ही मुझ पर झपटा! इसके बाद मेरी-उसकी हाथापाई होने लगी। जब उसने देखा कि मैं इस तरह उसके वश में नहीं आने की, तब उसने वह ब्रह्मास्त्र छोड़ा जिसका लक्ष्य बहुधा नहीं चूकता। बोला—अच्छा चन्दन! प्रातःकाल होते ही देखना! तुम्हारा भाग्य घास के समूह की नाईं धधक उठेगा! मैं कहूँगा, मैंने इस पापिनी को पर-पुरुष के साथ पकड़ा है! जानती हो, तब क्या होगा?

मैं हताश होकर बैठ गई, इस आघात से मेरा साहस शीशे की नाईं चूर्ण-विचूर्ण हो गया! तब मैं उस नर-पशु के आगे कितनी ही रोई-गाई, पर व्यर्थ! मेरी वह अमूल्यनिधि लुट गई! जाते समय वह कह गया—प्रिय, तुम इस शरीर की प्राण हो! किसी बात की चिन्ता न करना। तुम पर मैं इस घर को, इस घर की सम्पत्ति को और अपने आपको निछावर कर दूँगा! पर मिलने में आना-कानी न करना। बस!

मैंने वह रात्रि बड़े कष्ट से बिताई! राम-राम करके प्रातःकाल हुआ। सोचा, सास को सब हाल सुना दूँ। शायद ये मेरी रक्षा करेंगी। उन्हें मैंने रोकर सब हाल सुनाया और उनके पैरों पर सिर धर कर कहा—माँ, मेरे नारी-धर्म की रक्षा करो। पर परिणाम बिलकुल विरुद्ध हुआ। वह बिगड़ कर बोली—"हतभागिन, वह रात-दिन तेरा पक्ष लेता है, उसी पर यह तोहमत! और किसी से आँखें लड़ा ली होंगी और क्या? अब अपना ऐब ढाँकने के लिए मेरे बेटे को सानती है।"

मैंने समझ लिया, जब परमात्मा की दृष्टि टेढ़ी है, जब मेरा भाग्य ही खोटा है, तब मैं क्या करूँगी। जो-जो दुर्भाग्य में बदा होगा, भोगूँगी—किसी तरह तो दिन कटें।

अब जेठ का हौसला और भी बढ़ गया। क्रमशः लज्जा, धर्म और नीति के विचारों ने भी मेरा त्याग कर दिया। उद्दाम-वासना की उत्ताल तरङ्गें हृदय-सरोवर में लहराने लगीं। आकुल अतृप्ति ने मुझे जेठ पर पूर्णतया बलिदान कर दिया। जब तक अग्नि हवा का साथ नहीं करती, तभी तक उसकी ज्वाला प्रचण्ड नहीं होती—इसमें मेरा क्या अपराध था। मैंने तो अपने धर्म को बचाने की पूर्ण चेष्टा की थी। अस्तु। अब जेठ मेरा—मेरे हृदय का सर्वस्व हो गया। जिसने मेरा सर्वनाश किया था, वही मेरा सबसे प्रिय और मूल्यवान पदार्थ

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हो गया। हम लोगों के दिन बड़े ही आनन्द से दम्पति के समान बीतने लगे। जब मैंने सास से अपनी रक्षा की प्रार्थना की थी, तब उन्होंने मुझे वक्र दृष्टि से देखा था। अब हमारा हाल देख वे स्वयं और ससुर भी हमारी रक्षा करना चाहते थे! पर आत्म-तृप्ति की साधना में कौन उनकी परवा करता था। अस्तु!

इसके लगभग एक बरस बाद मैंने गर्भ-धारण किया। किसी बात का डर था नहीं, सास-ससुर को भेद मालूम था ही, और जेठ मुझ पर प्राण देता था! मेरी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। सन्तान का प्यारा मुखड़ा देखने की सुखमय आशा ने मुझे पुलकित कर दिया। आनन्द-विभोर हो मैंने जेठ को यह समाचार सुनाया। वह भी सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ। दूसरे दिन वह एक दवा लाया। बोला—'इसे पी लो! बच्चा ख़ूब हृष्ट-पुष्ट होगा।' बिना कुछ सोच-विचार के मैंने दवा पी ली। रात होते-होते पेट में भयङ्कर पीड़ा होने लगी। सवेरा होते ही गर्भपात हो गया। मुझे जेठ पर सन्देह हुआ। जब मैंने उससे कहा, तब वह बोला—"पागल तो नहीं हो गई! मुझे किस साले का डर है! मैं तो आप ही सन्तान का मुख देखने के लिए आतुर हो रहा हूँ! गर्भ गिरने से मुझे जो रञ्ज हुआ, मैं ही जानता हूँ! ऊपर से तुम ये जली-कटी बातें करती हो। कहीं अकेली-दुकेली गई होगी, बला पीछे पड़ गई होगी। और क्या!" उस दिन मैं अकेली नदी नहाने गई थी। जेठ की बात कण्ठ उतर गई!

थोड़े दिन बाद फिर गर्भ-स्थिति हुई। परन्तु इस बार किसी अज्ञात भय की आशङ्का से मैंने बात प्रकाशित न की। जब गर्भ के सब लक्षण प्रकट होने लगे, तब जेठ को आप ही मालूम हो गया। उसने कुछ अप्रसन्न होकर कहा—"छिः! ऐसी बात भी छिपानी चाहिए। मुझे मालूम हो जाता, तो तुम्हारे सुख-सुभीते के कितने प्रबन्ध न करता! ख़ैर, अब घर के काम-धाम अधिक न किया करो!"

फिर पुष्टई की दवाइयाँ आईं और मैं उनका सेवन करने लगी। औषधि-प्रयोग से दिन-दिन मेरा स्वास्थ्य गिरने लगा। पेट में हमेशा पीड़ा होती रहती। जब मैं उससे कहती, तो वह मुस्करा कर उत्तर देता—"इन दवाइयों में यही तो असर है, बच्चा ख़ूब हृष्ट-पुष्ट होता है। हाँ, गर्भिणी की तबीयत अवश्य कुछ बिगड़ी रहती है। पर इससे कुछ विशेष हानि नहीं, प्रसव के बाद स्थिति फिर ज्यों की त्यों हो जाती है।" परन्तु धीरे-धीरे मेरा स्वास्थ्य बहुत ही गिर गया।

तब एक दिन जेठ ने मुझसे कहा—देखता हूँ, तुम दिन-दिन निर्बल होती जाती हो, यह तो विशेष चिन्ता की बात है। मैंने आज वैद्य जी से चर्चा की थी। उन्होंने जल-वायु परिवर्तन करने की सम्मति दी है। मेरी भी यही राय है। मैं तुम्हें तीर्थ-यात्रा कराने ले चलूँगा। इससे जल-वायु भी बदल जायगा, देव-दर्शन हो जायँगे और तुम्हारी तबीयत भी ठीक हो जायगी। बोलो, तुम्हारी क्या इच्छा है?

तीर्थ-यात्रा और देव-दर्शन की आकांक्षा से हिन्दू-नारी सहज ही उत्फुल्ल हो उठती है! मैं उसकी बातों में आ गई। एक दिन हम दोनों हँसते-हँसते रेल पर सवार हुए। तीर्थराज प्रयाग में पहुँचे। त्रिवेणी-सङ्गम में नौका-विहार किया; क़िले की पाताल-पुरी में प्रवेश कर, भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं और अक्षयवट के दर्शन किए! इससे मन में बड़ा आह्लाद हुआ। शरीर हलका जान पड़ा। फिर हम लोग पाप-विनाशिनी, बाबा विश्वनाथ की लीलाभूमि काशीपुरी में पहुँचे। धर्मशाला में एक छोटा सा कोठा भाड़े पर ले, डेरा जमाया।

उस दिन हम दोनों दिन भर पवित्र स्थानों का दर्शन करते फिरे। मेरा कृश शरीर क्लान्त हो उठा। सन्ध्या होते ही डेरे पर लौटे। ब्यालू कर जो मैं बिस्तर पर लेटी, तो तन-बदन की सुध न रही। ठीक सवेरे मेरी आँख खुली तो क्या देखती हूँ कि मैं धरती पर पड़ी हुई हूँ, कोठे में कोई नहीं है! मेरी छाती धक् से हो गई! वे कहाँ गए? सब सामान कहाँ गया? यही सब सोचती-विचारती मैं उठ खड़ी हुई और कमरे से बाहर निकल कर उस पिशाच को ढूँढ़ने लगी। पर वह वहाँ कहाँ था? धर्मशाला वालों से यहाँ-वहाँ ठहरे हुए यात्रियों से मैंने उसके विषय में बहुत पूछ-ताँछ की, पर किसी ने कुछ ठीक उत्तर नहीं दिया। तो क्या वह मुझे छोड़ कर चला गया? चला ही गया है। सुना था, कई लोग अपने घर की पापिष्ट स्त्रियों को तीर्थ-स्थानों में छोड़ आते हैं। वह भी मुझे यहीं छोड़ने के विचार से साथ ले आया था। आज मुझे अपनी स्थिति का बोध हुआ। मैं

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भी पापिनी हूँ, मैंने जेठ के साथ अपने पवित्र सतीत्व को भ्रष्ट किया है! उसी पाप का दण्ड देने के लिए परमात्मा ने मेरी कुक्षि में गर्भ की स्थिति की थी। तब उसने दवा के मिस गर्भ को पतित कर दिया था। इस बार बहुत दवा खिलाने पर भी जब वह गर्भ-नाश न कर सका, तब मीठी-मीठी बातें करके मुझे यहाँ ले आया; और अपनी, अपने वंश की मर्यादा रखने के लिए मुझ कलङ्किनी को यहाँ—जहाँ मेरा कोई सगा नहीं है, छोड़ कर चला गया। हा! पुरुष-जाति कैसी स्वार्थिनी है! जब तक उसकी विषय-वासना की तृप्ति होती रही—जब तक उसे किसी प्रकार का खटका नहीं रहा, तब तक मैं उसकी प्राणेश्वरी, उसके गृह की गृहलक्ष्मी रही! और ज्योंही उसने देखा कि अब पाप का भण्डाफोड़ हुआ चाहता है, अब यश-प्रतिष्ठा की शुभ्रता में कलङ्क की कालिमा लगना चाहती है, त्योंही उसने मुझे उच्च-पद से उठा कर इतनी दूर, इस वीराने देश के दयाशून्य प्राङ्गण में फेंक दिया! हा! अब मेरा क्या होगा? कौन मेरी इस डूबती हुई नौका को पार लगावेगा? मैं निराश होकर बैठ रही। आँखों से आँसू बहने लगे! परन्तु अन्तःक्षोभ की तीव्र-ज्वाला में वे शीघ्र ही सूख गए। मैं हताश हो, उद्देश्य-विहीन पागल की नाईं काशी की गलियों में चक्कर लगाने लगी!!

गर्भावस्था थी, एक-एक क़दम रखना दूभर हो रहा था। गाँठ में पैसा नहीं था; भूख की ज्वाला, विलम्ब के झकोरे खाकर उग्र-रूप धारण करती जाती थी। तो भी मैं फिरकी के समान इधर-उधर फिरती ही रही। सन्ध्या होते-होते मैं गङ्गा-तीर पर आ पहुँची और घाट के एक कोने पर बैठ रही। शीतल और सुगन्धित पवन ने मानों थकावट हर ली, शोक-सन्तप्त मस्तिष्क शीतल हो गया। मैं अपनी दशा पर विचार करने लगी, माता-पिता की सुखमय गोद में कैसे स्नेह के साथ मेरा पालन-पोषण हुआ। उनके वैभव-विलसित विशाल कक्ष में मैंने चिड़ियों की नाईं चहकते हुए बचपन के हँसते हुए दिन बिताए। पुनः माता-पिता ने मुस्कराते-मुस्कराते एक बालक के साथ मेरा विवाह क्या कर दिया, मेरे भाग्य में आग लगा दी। फिर उन्हीं की गोद में मुझे पवित्र और सात्विक जीवन की शिक्षा प्राप्त हुई। इसके बाद मेरे विषम भाग्य-चक्र ने पलटा खाया! जेठ आया पिता बन कर, और पश्चात् पति बन कर, मानों उसने मेरी दुर्भाग्य-ज्वाला को और भी प्रज्वलित कर दिया! आज माता-पिता की उस पवित्र शिक्षा को वासना की वेदी पर बलिदान कर, उनकी प्रतिष्ठा को कालिमा से कलुषित कर, पाप-विमोचिनी गङ्गा के तीर यह पाप की गठरी लेकर बैठी हुई हूँ! आज मैं अनाथिनी हूँ, एक-एक टुकड़े की मोहताज हूँ—अब यह संसार मेरे लिए शून्य है! अब इस दुनियाँ में मेरा कौन है? पाप, सन्ताप, अन्तर्ज्वाला और क्षुधा की दाह इस शरीर को भस्मसात् किए डालती है! कलङ्किनी का साथ कौन देगा! केवल कलङ्क—पर इस ज्वालामय कलङ्क की प्रचण्ड आँच कब तक सह सकूँगी। यह सब सोचते-सोचते मेरा मस्तिष्क एकबारगी धू-धू करती हुई अग्नि से भी अधिक उत्तप्त हो उठा! बस, केवल इस उत्तप्त जीवन को मृत्यु के शीतल सलिल से धोने पर ही शान्ति मिल सकती है। बस, मैं घाट से उठ कर एक निराले स्थान पर जा पहुँची। आह! प्राणों की ममता भी कैसी कठिन होती है! मेरी आँखें भर आईं! मैं अपने चारों ओर देखने लगी। पर निराशा मेरे चारों ओर मण्डल बाँध कर नृत्य कर रही थी, और बीच में हा-हा करके हँस उठती थी! उसकी वह भयानक मूर्ति देख मेरा जी बैठ गया! सामने अशरण-शरण की दया की पवित्र धारा गङ्गा के रूप में, अपनी कल-कल ध्वनि से, प्रभु की असीम करुणा का यश गान कर रही थी! हृदय को ढाढ़स बँधा। "तब माँ गङ्गे! तुम्हीं अपनी शीतल गोद में इस दुखियारी को थोड़ा सा स्थान दो! तुम तो जगत्-तारिणी हो! क्या पापी, क्या पुण्यात्मा—सभी तुम्हारे स्नेह-सिक्त अञ्चल में स्थान पाते हैं! तब क्या मुझे तुम्हारे स्नेह-सलिल का एक बिन्दु भी प्राप्त न होगा? नहीं माँ, अब मैं तुम्हारी इस अग्नि-नाशिनी गोद का आश्रय त्याग, इस कोलाहलमय संसार में न जाऊँगी।" कहते-कहते मैं गङ्गा के अञ्चल में कूद पड़ी! चपाके की ध्वनि से गङ्गा के दोनों तीर गूँज उठे। मैं गङ्गा की तरङ्गों में लीन हो गई।

परन्तु नहीं, उसी दिन मुझे अनुभव हुआ कि पापियों के लिए देवताओं का विशाल हृदय भी दया-शून्य ही है। गङ्गा की अनन्त तरङ्ग-मालाएँ, अपने अन्तस्तल में मुझे विराम न दे सकीं! गङ्गा का उदर मेरा पाप-प्रज्वलित शरीर लीन करने में असमर्थ रहा, उसने मुझे उछाल कर ऊपर कर दिया। उसी समय किसी

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ज़बर्दस्त हाथ ने ज़ोर से मेरी चुटिया पकड़ ली। वह मुझे तीर की ओर खींचने लगा। आह! मुझ अभागिनी के भाग्य में मौत भी नहीं लिखी थी! अब मेरी और क्या गति होगी! मारे भय और विषम उत्ताप के मैं चेतना-शून्य हो गई। चेत आने पर मैंने देखा कि मैं अस्पताल में पड़ी हुई हूँ। फिर प्राणों का मोह उत्पन्न हुआ। पुलिस के पूछने पर मैंने कह दिया—"अपने प्राण सभी को प्यारे होते हैं। पति के साथ तीर्थयात्रा करने आई थी। यहाँ उनका साथ छूट गया। मैं भूखी-प्यासी दिन भर उन्हें ढूँढ़ती फिरी। सन्ध्या को उन्हें ही गङ्गा-तीर पर ढूँढ़ रही थी। निर्बलता के मारे पैर उठाना भारी हो रहा था। फिसल कर गङ्गा में जा गिरी, इसमें मेरा क्या अपराध।" पुलिस को मेरी कथा पर विश्वास हो गया। उसने मुझे घर लौटा देने का उचित प्रबन्ध कर दिया! इसी का नाम भाग्य की लीला है! अपने जीवन को और भी दग्ध करने के लिए—पाप-पङ्क के विषम दलदल में फँसने के लिए—मैं मृत्यु के कराल-मुख से निकल आई।

मुझे देखते ही मानों घर पर बिजली गिर पड़ी। सबने उदासी से मुँह लटका लिए। मेरे क्रोध की धारा उमड़ उठी। निर्भय होकर सब से लड़ी और जेठ को ख़ूब आड़े हाथों लिया। पर इससे क्या होता था, मुझ पर पहले से भी अधिक अत्याचार होने लगे, और मैं बड़े साहस से उनका सामना करने लगी। किसी प्रकार जीवन के दिन तो बिताने थे! क्रमशः वह दिन भी आया। मैं प्रसव-पीड़ा से छटपटाने लगी। मेरी वह पीड़ा—वह सिसकियाँ सब लोग मूक-मूर्ति के समान देख-सुन रहे थे! मैंने उससे कितनी ही बार गिड़गिड़ा कर कहा—"हाय! मैं तुम्हारी प्राणेश्वरी हूँ! इसी दिन के लिए तुमने मेरी दीन-दुनिया में आग लगाई थी। तुम्हारी सन्तान का बोझ लिए मैं आकुल हो रही हूँ और तुम देख रहे हो! क्या तुम्हें तनिक भी दया नहीं आती।"

बड़ी कठिनाई से—बड़े विलम्ब से एक दाई आई। प्रसव हुआ, मैं मारे पीड़ा के बेहोश हो गई। चेत आने पर क्या देखती हूँ कि मेरे सामने एक सुन्दर बालक पड़ा हुआ है। पर वह न हाथ-पैर हिलाता है, न 'कहाँ-कहाँ' की कलित किलकारियाँ मारता है! मेरी आँखें भर आईं, हाय! कितने कष्ट से बालक सामने आया, पर साथ ही मृत्यु लेता आया। मुझे एकदम सन्देह हुआ कि बालक ज़बर्दस्ती निर्जीव कर दिया गया है! जो मेरा सतीत्व नष्ट कर सकते हैं, जो मुझे परदेश में कुत्ते की मौत मरने के लिए अपवित्र वस्तु के समान फेंक सकते हैं, उनसे क्या नहीं हो सकता! मैंने कहा—"मेरे इस नन्हें से कलेजे को किसने मसल दिया? यह तुम्हारे कुल की सजीव कलङ्क-पताका थी, तुम्हीं ने अपनी नाक ऊँची रखने के लिए छिन्न-भिन्न कर दिया है! मैं तो शोर मचाऊँगी!" यह कहना था कि सारा घर मेरे चरणों पर आ गिरा। सास हाथ जोड़ कर बोली—"बहू! दया करो, ऐसा न कहो! बाहर के लोग सुनेंगे तो हमारी मौत हो जायगी। घर भर फाँसी पर टाँग दिया जायगा।" जेठ बोला—"हमें फाँसी पर चढ़वा कर तुम्हें क्या मिलेगा? हम रहेंगे तो तुम्हारा कुछ ठिकाना तो रहेगा। जैसा तुम कहोगी, वैसा ही करेंगे, पर हमारी जान बचाओ।"

मैंने सोचा—ये लोग ठीक ही कहते हैं! अब इनके सिवा हमारा कौन है! अच्छे हैं तो, बुरे हैं तो, अब रहना तो इन्हीं के साथ है। जब ये ही न रहेंगे, तब सचमुच इस लम्बे-चौड़े संसार में मुझे तिल भर भी स्थान न मिलेगा! मैं ख़ून का घूँट पीकर रह गई! हाय! इस मिट्टी के लोंदे की चिन्ता के लिए क्या नहीं करना पड़ता? छाती पर पत्थर रखना पड़ता है, अपने ही सामने अपने स्नेह की अशेष सम्पत्ति का, अपने कलेजे के टुकड़े का सर्वनाश भी देखना पड़ता है। मेरी ख़ूब सेवा होने लगी। जब देखो तब सास और जेठ, दोनों मेरी इच्छा की बाट जोह रहे हैं। ऐसा सम्मान मैंने कभी न पाया था। मेरे हृदय का घाव सूख गया।

परन्तु यह शान्ति विप्लवकारी भूकम्प आने के प्रथम सन्नाटे जैसी थी! एक दिन—लगभग डेढ़ महीने बाद जेठ मुझसे बोला—अब इस घर में तुम्हारे लिए तिल भर भी स्थान नहीं है! आज ही घर ख़ाली कर दो, जहाँ तुम्हारा जी चाहे, चली जाओ!

मैंने आश्चर्य-चकित होकर पूछा—क्यों? उस दिन क्या कहते थे?

वह बोला—क्योंकि तुमने मेरे कुल में अमिट कलङ्क लगा दिया है। समाज में हमारा माथा नीचा हो गया है! हम समाज में नक्कू बन कर नहीं रह सकते! उस दिन की बातें भूल जाओ!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मारे क्रोध के मेरा शरीर भन्ना उठा। बिगड़ कर बोली—"मैंने तुम्हारे कुल में कलङ्क लगाया है, और तुम बिलकुल निरपराध हो?" मेरा गला रुँध गया।

वह—हम पुरुष हैं। ऐसी बातों से हम अपराधी नहीं होते। यदि हम ऐसे कार्यों से कलङ्कित होने लगें तो पुरुष ही न कहलावें। पर स्त्रियों के लिए यह बात नहीं है। उनकी मर्यादा में जहाँ ज़रा सा धब्बा लगा कि वह जीवन भर पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त के आँसुओं से धोने पर भी फीका नहीं पड़ता। अब इस हुज्जत से कोई लाभ नहीं।

मैंने बड़ी दीनता से कहा—जब ऐसा ही था, तब तुमने क्यों मेरा धर्म बिगाड़ा था? मैं तुमसे क्या चाहती हूँ? मुझे घर के एक कोने में दासी के समान पड़ी रहने दो! जब मैं तुम्हारे साथ बरबाद हुई, तब क्या इतनी दया भी न करोगे?

उसने कहा—ऐसी दया लेकर मैं क्या करूँगा? मैं चाहता हूँ कि तुम पर दया करूँ, पर समाज नहीं चाहता और मैं समाज की तिरछी चितवन नहीं सह सकता।

मैंने बिगड़ कर कहा—अच्छा, तुम निकालो मुझे, मैं भी तुम्हारा सारा भण्डा फोड़ दूँगी।

वह हँस कर बोला—शौक़ से! मैं तुम्हारी धमकी की परवा नहीं करता।

आख़िर मैंने बहुत शिर नीचा किया कि किसी तरह इज़्ज़त लिए घर में पड़ी रहूँ, पर उन पिशाचों ने नाक में दम कर दी। मैं दो दिन तक निराहार पड़ी रही, पर उन्हें मुझ पर दया न आई। तब मैं घर से बाहर निकली। पास-पड़ोस के लोगों को मैंने जेठ की पाप-कथा रत्ती-रत्ती करके सुनाई, सबके आगे रोई-गिड़गिड़ाई, पर कोई मेरे दुर्दिन में आड़े न आया, उल्टे सभी ने मेरी दिल्लगी उड़ाई, मेरे नाम पर थूका और मुझे गालियाँ दीं! सारा संसार मेरा शत्रु था, मैं किसकी गोद में अपना अश्रु-सिक्त मुँह छिपा जलते हुए हृदय को शान्त करती! माता-पिता के यहाँ जाती तो वे भी मुझे अपनी छाया न पड़ने देते। निराशा का अञ्चल पकड़ मैं आगे बढ़ी। उस समय रात्रि हो चुकी थी, आकाश में काले-काले बादल घिर आए। देखते ही देखते अर्राटे से पानी बरसने लगा। मैं सड़क पर खड़ी हुई भीग रही थी। चारों ओर निगाहें आश्रय को ढूँढ़ रही थीं। इसी समय सामने के घर में से एक अधेड़ स्त्री ने मुझे बुलाया। मैं लपक कर उसकी दालान में जा पहुँची। उसने मुझसे पूछा—बेटी, तुम कौन हो! देखने में तो भले घर की बहू-बेटी जान पड़ती हो। यहाँ पानी में क्यों भीग रही थी?

मेरा हृदय उमड़ उठा, आँखों से अश्रु-धारा बहने लगी। वह बड़े ही स्नेह से—बड़ी ही सहानुभूति से मेरा हाल पूछने लगी! उसकी मधु-मिश्रित वाणी ने मेरा हृदय हर लिया, मैंने उसके सामने अपना सारा भेद खोल दिया।

वह मेरी बलाएँ लेकर बोली—पागल हुई हो बेटी! दुखी हों तुम्हारे शत्रु, तुम अभागिनी नहीं हो। देखना, कल ही सुख तुम्हारे पैरों पर लोटता फिरेगा।

इसके बाद उसने मेरे कपड़े बदलवाए और मेरे सामने फल और मिठाई से भरी हुई थाली ला रक्खी! भूख के मारे सारा शरीर व्याकुल हो रहा था, ऊपर से उसने अपने प्रेममय व्यवहार से आत्म-विस्मृत कर दिया। मैं उसकी जाति-पाँति पूछे बिना ही भोजन करने लगी। उसने क्रमशः मुझे अपनी मुट्ठी में कर लिया, तब मुझसे गाना-बजाना सीखने का आग्रह किया। हाय! मेरा दुर्भाग्य मुझे कहाँ ले आया, अब मुझे भी घृणित वेश्या-वृत्ति का पल्ला पकड़ना पड़ेगा! मन अन्तःक्षोभ की ज्वाला से दग्ध होने लगा, आत्मा मुझे आप ही विताड़ित करने लगी। पर इस पापी पेट की ज्वाला शान्त करने के लिए उपाय क्या था? इस अधम शरीर के विश्राम के लिए संसार में दो हाथ धरती तक का तो अभाव था! बड़े कष्ट से, आँखों में तीव्र अग्नि-स्फुलिङ्ग सञ्चित करके मैंने उसका प्रस्ताव स्वीकृत किया। आह! उस दिन वे अग्नि-स्फुलिङ्ग कहीं इस जीवित समाज-चिता को ज्वाल-माल बन कर घेर लेते, और यह छटपटा-छटपटा कर प्राण-त्याग करती और मैं अट्टहास का भैरव-नाद करती हुई वह बीभत्स दृश्य देख पाती, तो हृदय की कसक निकल जाती। हाँ, तो मैं वेश्या बन गई, प्रसिद्ध वेश्या बन गई। विलास मेरे चरणों तले लोटने लगा। पर हृदय की वह जलन आज तक शान्त न हुई, यद्यपि उसमें अब वह तीव्रता नहीं है, जो वेश्या बनने के पूर्व थी!"

बाबू साहब, यही मेरी आश्रयदात्री माँ जी की करुण-कथा है। हम क्या करें, हम तो वेश्या नहीं बनना चाहतीं। नीच से नीच, कुरूप से कुरूप मनुष्य हमारे

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यौवन के साथ क्रीड़ा करते हैं, मुस्कराते हुए शरीर के भीतर हमारा हृदय घोर हाहाकार करके विलख उठता है, पर समाज की ओर दृष्टि जाते ही हम 'हाय' करके रह जाती हैं! यदि आप हमारे ज्वालामय जीवन से दग्ध होते हैं, तो इस पाप के मूल पर ही घोर प्रहार कीजिए! नहीं तो एक दिन हमारी आहें भीषण चिनगारी बन, इस प्रचण्डता से धधक उठेंगी, जिससे आपका यह धर्म-प्राण भारत और आपका यह पवित्र समाज तृण-समूह के समान भस्मसात् हो जायगा!

मैं 'हाय हिन्दू-समाज' कह कर रह गया!!

हिन्दुओ! सावधान!!

[रचयिता—श्री० देवीप्रसाद जी गुप्त "कुसुमाकर" बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

(१)

इस हिन्दू-समाज में जब तक,
विधवाएँ दुख पावेंगी।
हमसे वे अपमानित होंगी,
जीवन घृणित बितावेंगी।

(२)

जब तक हम मतलबी रहेंगे,
उनकी बात न बूझेंगे।
हमको उन्हें सुखी करने के—
समुचित यत्न न सूझेंगे।

(३)

अपनी कलुषित इच्छाओं का,
उनको लक्ष्य बनावेंगे।
जब तक हम उनको कुमार्ग पर,
अपने साथ चलावेंगे।

(४)

सदाचार का दुनिया को हम,
झूठा स्वाँग दिखावेंगे।
उन पर दोषारोपण करके,
उलटा उन्हें सतावेंगे।

(५)

अथवा भ्रूणों की हत्याएँ,
होंगे हम करने वाले।
या पापों का बोझ उन्हीं के—
सिर पर सब धरने वाले।

(६)

करने वाले उन्हें निराश्रित,
उनको ठुकराने वाले।
अन्य धर्म में होंगे उनको,
बरबस पहुँचाने वाले।

(७)

एक बार भटकीं यदि वे तो,
उनको मार भगाने में।
अथवा ईसाई-यवनों की,
गिनती नित्य बढ़ाने में।

(८)

यदि हम इस हिन्दू-समाज को,
श्रेष्ठ इसी में लेखेंगे।
निश्चय है मरणोन्मुख इसको—
हुई शीघ्र हम देखेंगे!

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट—
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह

[लेखक—'पागल']

तृतीय खण्ड

अलिन्द ने जैसे ही मुझे जहानारा का पत्र दिया, वैसे ही एक आदमी मुझे पुकारता हुआ अजब बदहवासी के साथ कमरे में घुस आया और आते ही बोला—अरे डॉक्टर साहब! जल्दी चलिए, नहीं बड़ा अनर्थ हो जायगा।

आदमी जाना-पहचाना हुआ था। मगर उसे एकाएक यहाँ देख कर मुझे ताज्जुब हुआ।

मैं—तुम यहाँ कैसे पहुँचे?

वह—आपके घर पर गया था। वहाँ पता मिला कि आप यहीं होंगे। मगर उठिए और इसी दम चले चलिए, जो कुछ पूछना हो, रास्ते में पूछ लीजिएगा।

मैं फ़ौरन बाहर आकर उसके साथ ताँगे पर बैठ गया। मगर अलिन्द और जहानारा के ख़्याल में मैं इतना महो था कि मैं उस आदमी से पूछना भूल गया कि क्यों वह मुझे इस तरह बुलाए लिए जा रहा है। मैं सोच रहा था कि जहानारा सचमुच इसे बहुत प्यार करती थी। इसकी थाह इसी से मिलती है कि उसने इसको सामाजिक घृणा से बचाने के लिए इसी की भलाई के ख़्याल से अपने कलेजे का ख़ून किया और अपने हृदय पर पत्थर रख कर इससे दूर भागी। मगर इस अन्धे ने उसके प्रेम पर नाहक़ शक करके इतनी सच्ची प्रीति पर लात मार दी। रमणी-हृदय का इतना गहरा अनुराग विरले ही किसी भाग्यशाली को नसीब होता है। और जब इसकी किसी पर कृपा होती है, तब यह इस संसार को उसके लिए स्वर्ग से भी बढ़ कर बना देता है। मगर अफ़सोस, इसके शक और नासमझी ने इस सौभाग्य को इससे छीन लिया। उसी का नतीजा यह अब भुगत रहा है। यदि इसका वह प्रेम इसके हृदय में कुछ भी जीता रहता तो यह सरोज के नयन-बाणों का शिकार होकर आज के दिन इस बुरी तरह नहीं तड़प सकता था। क्योंकि जब एक रङ्ग ख़ूब गहरा चढ़ा रहता है, तब उस पर दूसरा रङ्ग लाख उद्योग करने पर भी अपनी चमक नहीं दिखला सकता। हाँ, निराशा और विश्वासघात की स्याही उस पक्के रङ्ग को अलबत्ता चौपट कर सकती है। मगर तब तो उस पर कोई भी रङ्ग चढ़ाना और भी असम्भव हो जाता है। इसीलिए मेरी तारा वाली युक्ति ने अपना कुछ काम नहीं किया। सोचे हुए था कि इस तरह उसे आर्थिक सहायता पहुँचा सकूँगा, क्योंकि यों वह किसी भी उपाय से रुपए न ले सकेगा और साथ ही तारा की सुन्दरता का प्रभाव उस पर डाल कर उसके हृदय को अपने स्थान से धीरे-धीरे सरका दूँगा। मगर अफ़सोस, उसके रोम-रोम में तो सरोज इस अटल रूप से बसी हुई है कि तारा क्या, अगर संसार भर की सुन्दरता एकत्रित होकर कोई मूर्त्ति बन भी जाय तो भी उसका ज़ोर इस पर कुछ भी नहीं चल सकता। इसकी यह साबित-क़दमी ही मेरे छक्के छुड़ाए दे रही है। ख़ैर, फिर भी मैं अभी हिम्मत नहीं हारता। मानसिक वेदनाओं और मनोवैज्ञानिक समस्याओं का इतना ज्ञान होने पर भी क्या मुझे इस मामले में हताश होना पड़ेगा? आशा तो नहीं है।

जहानारा का भी हाल मुझे बड़े अच्छे समय पर मालूम हुआ। जो बात मैं उसके सम्बन्ध में जानना चाहता था, ठीक उसी के अनुकूल साबित हुई। इसीलिए मैं उसके विषय में उससे खोद-खोद कर पूछता था। मैं उसे दुनिया के पर्दे से ढूँढ़ निकालूँगा। अगर वह मुझे मिल जाय तो मेरी मुश्किल बहुत-कुछ आसान हो जायगी, जो काम तारा से न हो सका वह इससे अवश्य पूरा हो सकता है। क्योंकि इसके लिए अलिन्द का लड़कपन में हृदय धड़क चुका है। अब उसके लिए इसका दिल कितना ही सर्द हो जाने पर भी आँच देने

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से फिर वही धड़कन उसमें पैदा हो सकती है। यह बात ज़रूर है कि अब जहानारा की अवस्था ढल गई होगी और उसकी आकर्षण शक्तियों में शिथिलता आ गई होगी। फिर भी कोई हर्ज नहीं। प्रेम का नशा चढ़ जाने पर जवानी-बुढ़ापा, रूप-कुरूप, गुण-अवगुण कुछ भी सुझाई नहीं देता। बस, दिल लग जाने की बात है, फिर तो भद्दी से भद्दी चीज़ भी सुन्दरता की खान बन जाती है। उसके आगे परी भी आँखों पर नहीं चढ़ सकती।

मगर क्या जहानारा के हृदय में अब भी इसके लिए कुछ प्रेम होगा? यह सोचना बेकार है। वह थिएटर की नर्त्तकी होने पर भी एक उच्च और विशाल स्वभाव की रमणी है। ऐसी महिलाओं के हृदय में एक दफ़ा सत्य-प्रेम का अङ्कुर उग कर फिर कभी नष्ट नहीं होता। चाहे उस पर कितना ही वज्र क्यों न पड़े? ऐसी ही स्त्रियाँ अपने हृदय-देव के लिए समय पड़ने पर अपने प्राण तक निछावर कर देती हैं, ओछी प्रकृति वाली नहीं। जहानारा भी ऐसी ही देवियों में एक है। मैं उसके हृदय को अच्छी तरह से पहचान गया हूँ। वह अलिन्द को बड़े ही सच्चे दिल से चाहती थी। वह इसके लिए सब कुछ कर सकती थी और अब भी कर सकती है। वह इसी के जीवन-मार्ग को आसान बनाने के लिए इसके रास्ते से ख़ुद हट गई। अगर उसे मालूम होता कि उसकी रक्षा के बिना इसकी ऐसी दुर्दशा होगी तो वह कदापि इससे अलग न होती। उसका हृदय कभी उसे ऐसा करने ही नहीं दे सकता था। मैं उसे ढूँढूँगा और ज़रूर ढूँढूँगा। मगर उसे कहाँ पाऊँ?

अगर जहानारा न मिली तो एक दफ़ा फिर तारा की सहायता लूँगा। वह मेरे एहसानों से लदी है। उस पर मेरा हर तरह का दबाव है। वह मेरा कहना कभी टाल नहीं सकती। वह मेरी ख़ातिर आँख मूँदे कुँए में भी गिर सकती है। जब उसे प्लेग हुआ था और कोई डॉक्टर डर के मारे उसके पास फटकता न था, तब मैंने ही उसके साथ चौबीसों घण्टे रह कर उसकी सेवा की थी। कोरे कर्त्तव्य के ही ख़्याल से नहीं, बल्कि उसके भोलेपन में कुछ अजीब आकर्षण था कि ऐसी छूत की बीमारी में भी अपने को उससे दूर नहीं हटा पाता था। उसके बाद उस पर निमोनिया का हमला हुआ और वह मौत के पञ्जे में जकड़ गई। उस वक़्त भी ईश्वर ने उसके अच्छा होने का यश मुझी को दिया। मगर तारा का भविष्य सोच कर मैं काँप उठता था। उसकी माँ को देखकर मेरा कलेजा दहल उठता था। दिल में ईश्वर के अन्याय को धिक्कारता था कि तूने ऐसी राक्षसी के हाथ में ऐसा अनमोल रत्न क्यों दिया। मेरा मन उसके बाल्य-स्वभाव से मुग्ध होकर, बारम्बार मुझसे यही कहता था कि जिस तरह भी मुमकिन हो, इसके भविष्य को सुधारो। इसे कीचड़ों में रौंदे जाने से बचाओ। इसे एक आदर्श देवी बनाओ। सौभाग्यवश मेरे उपकारों से मेरा अधिकार उस पर एक निजी जन की तरह हो गया। यहाँ तक कि एक दिन उसकी माँ उसे लिए हुए मेरे मकान पर पहुँची और बोली—डॉक्टर साहब, आपने इसकी जान दो दफ़े बचाई है। इसलिए यह जान आपकी है। जब यह किसी लायक़ होगी तो इसे आप अपनी दासी ही समझिएगा। तभी हम लोग उऋण हो सकते हैं।

यह अवसर चूकने का नहीं था। मैंने उसी वक़्त तारा का हाथ अपने हाथ में लिया और उसे अपने साथ गाड़ी पर बैठाल कर कन्या-पाठशाला ले गया और उसे 'बोर्डिङ्ग-हाउस' में भर्ती करा के उसकी देख-रेख और उसकी पढ़ाई के ख़र्चे की सब ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। मेरी इस बात से तारा की माँ को ताज्जुब हुआ, मगर वह कुछ बोल न सकी। बाद को कई दफ़े उसने उसकी शिक्षा में अड़चन डालने की कोशिश की, मगर हर बार मैं रुपयों के ज़ोर से उसकी माँ को दबाता रहा। अब ईश्वर की कृपा से तारा भी अपना भला-बुरा समझने लगी। इसलिए वह मेरी तरफ़ हो गई है। अब उस पर उसकी माँ के दाँव चल जाने का कुछ अधिक खटका नहीं है। फिर भी वह उसकी माँ ही है। कुछ न कुछ अन्देशा उसकी तरफ़ से रहता ही है। इसी ख़याल से मुझे हर दम यही फ़िक्र लगी रहती है कि तारा का किसी उचित पात्र से अति शीघ्र विवाह करके इस खटके की जड़ ही मिटा दूँ। मगर उचित पात्र मिले कहाँ? उस पर मुसीबत यह कि तारा की कविताओं में उसके दिमाग़ की सूक्ष्मता, भावों की गहराई और ख़्यालात की ऊँचाई इतना अधिक पाता हूँ कि उसे किसी भी साधारण व्यक्ति से सन्तोष नहीं हो सकता। क्योंकि जिस गुण की स्त्री होती है, यदि उस

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गुण में उसका पति बढ़-चढ़ कर न हो तो उसके साथ उस स्त्री का जीवन कभी सुखमय नहीं हो सकता। अलिन्द को भावों का अथाह समुद्र पाकर मेरे दिल में यह आशा अवश्य उत्पन्न हुई थी कि अगर किसी तरकीब से इसके भावों की लहर को तारा की तरफ़ मोड़ सकूँ तो एक ही उपाय में दोनों के जीवन को आनन्दित कर दूँगा। इसीलिए मैंने तारा को इसके पास चित्र खिंचाने के लिए भेजा था और उसके कमरे में मैं अपना वह 'पॉकेट-बुक' जिस पर अलिन्द की जीवनी लिखने के लिए मैं घटनाओं को नोट करता था, अमदन छोड़ आया था, ताकि उसे पढ़ कर वह अलिन्द को पहले ही से ख़ूब अच्छी तरह समझ जाय। परन्तु इस साक्षात् का परिणाम कुछ न हुआ। क्योंकि इधर अलिन्द को सरोज के ध्यान में वैसा ही अटल पाता हूँ और उधर तारा भी जैसे पहले चिन्तित रहती थी वैसे अब भी है। इसमें कोई भेद नहीं मालूम होता। ख़ैर! तो भी आशा बड़ी चीज़ है और उद्योग करना मनुष्य का धर्म है।

मैं ऐसे ही विचारों में लीन था। मुझे तन-बदन की कुछ भी सुधि न रही। मुझे होश हुआ जब मैं रोगी की शय्या के पास पहुँच गया। देखा कि तारा चारपाई पर बिलकुल मृतवत् पड़ी है। उस वक़्त मैं डॉक्टर होकर भी अपने को सँभाल न सका; बल्कि चीख़ कर उसी के ऊपर गिर पड़ा।

(क्रमशः)

(Copyright)

प्रस्थान

[रचयिता—श्रीमती शकुन्तला देवी जी गुप्त, हिन्दी-प्रभाकर]

(१)

रणभेरी बज उठी प्रिये तू!
करती क्या अभिनव शृङ्गार।
तुझ मुग्धा की कलित कुञ्ज पर,
बरस रहे रिपु के अङ्गार॥

(२)

बिदा! बिदा दे!! रण-प्राङ्गण में,
विजय-ध्वजा फहराने की।
चिर-सञ्चित उलझे उमङ्ग के—
तारों के सुलझाने की॥

(३)

यौवन के विकसित प्रभात में,
करने दे शुभ सङ्गर-साज।
रुण्ड-मुण्ड की आहुतियों से,
भर दूँ बलिवेदी को आज॥

(४)

तप्त रुधिर से सींची जाकर,
रखती जो वीरों की आन।
शूर-उर्वरा उस वेदी पर,
करने दे अपना बलिदान॥

(५)

मलिन वेष क्यों? साश्रु-नेत्र क्यों?
तेरे उर में क्यों कम्पन?
भावी के कल्पित चित्रों का,
क्यों लेती है आलम्बन?

(६)

प्राणों का क्या मोह धूल में—
जिनका होना है अवसान।
राष्ट्र-देव पर यदि चढ़ जावे,
यश होता है प्राप्त महान॥

(७)

उग्र अग्नि-धारा से जाकर,
युद्ध-भूमि नहलाने दे।
प्रलय प्रचण्ड अस्त्र-शस्त्रों से,
अरि-अनीक विचलाने दे॥

(८)

नहीं कामना कुसुम-माल की,
वीर कवच पहना देना।
खड्ग हाथ दे आँख मूँद कर,
प्रिये! सहर्ष बिदा देना॥

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चिन्तिता

कोई देख न ले, इसका डर, रहता था अब तक मन में !
वह भी भूल गया, सुध-बुध नहीं रह गई अब तन में !!

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

छप गई ! प्रकाशित हो गई !!

नवीन संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण !

८३६ प्रकार की खाद्य चीज़ों का बनाना सिखाने वाली अनमोल पुस्तक !

पाक-चन्द्रिका

[ले० स्वर्गीय पं० मणिराम जी शर्मा]

सम्पादिका—श्रीमती विद्यावती जी सहगल

इस पुस्तक में प्रत्येक प्रकार के अन्न तथा मसालों के गुण-अवगुण बतलाने के अलावा पाक-सम्बन्धी शायद ही कोई चीज़ ऐसी रह गई हो, जिसका सविस्तार वर्णन इस वृहत् पुस्तिका में न दिया गया हो, प्रत्येक चीज़ के बनाने की विधि इतनी सविस्तार और सरल भाषा में दी गई है कि थोड़ी पढ़ी-लिखी कन्याएँ भी इनसे भरपूर लाभ उठा सकती हैं। चाहे जो पदार्थ बनाना हो, पुस्तक सामने रखकर आसानी से तैयार किया जा सकता है। दाल, चावल, रोटी, पुलाव, मीठे-नमकीन चावल, भाँति-भाँति की सब्ज़ियाँ, सब प्रकार की मिठाइयाँ, नमकीन, बँगला मिठाई, पकवान, सैकड़ों तरह की चटनी, अचार, रायते, मुरब्बे अर्थात् प्रत्येक तरह के खाद्य पदार्थ बनाने की विधि का इस पुस्तक में सविस्तार रूप से वर्णन किया गया है। प्रत्येक तरह के मसालों का अन्दाज़ साफ़ तौर से लिखा गया है, ताकि पाठिकाओं को कोई भी बात किसी से पूछनी न पड़े। ऐसी उपयोगी और इतनी बड़ी पुस्तक

पाक-शिक्षा

पर अब तक हिन्दी क्या, किसी भी भाषा में नहीं लिखी गई है। आमतौर से देखिए, घरों में एक ही प्रकार का खाना मिलता है। स्त्रियाँ मजबूर हैं; बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों से बेचारी जो सीख पाती हैं, उसी को जन्मभर पीटती रहती हैं। बहुत से पतिदेवता अपनी स्त्री से इसीलिए असन्तुष्ट रहते हैं कि वह बेचारी नई-नई चीज़ें बनाकर उनके रसना की तृप्ति नहीं कर सकती ! इन्हीं अभावों को दृष्टि में रखकर हमने यह वृहत् पुस्तक प्रकाशित की है। हमें आशा है, पाठक-पाठिकाएँ इससे समुचित लाभ उठाएँगे। सर्व-साधारण की पहुँच से बाहर न हो जाय, इसीलिए पुस्तक का मूल्य ५) रु० से घटाकर केवल ४) रु० रक्खा गया है। उस पर भी स्थायी ग्राहकों को ३) रु० में ही दी जायगी। शादी-विवाह के अवसर पर बहू-बेटियों को उपहार देने योग्य अमूल्य पुस्तक है।

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिन्दू-लॉ में स्त्रियों के अधिकार

[ले० श्री० भोलालाल दास जी, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

हिन्दू-लॉ—उसका प्रयोग और उद्गम

हिन्दू-लॉ क्या है? इस विषय को जानने के लिए इन दोनों शब्दों की व्याख्या जानना आवश्यक है। 'हिन्दू' शब्द मुसलमानी और 'लॉ' शब्द अङ्गरेज़ी भाषा का है। हिन्दू शब्द की व्याख्या आगे चल कर "हिन्दू स्त्रियाँ कौन हैं?" इस सम्बन्ध में की जायगी, तब तक 'लॉ' शब्द का तात्पर्य बतलाना आवश्यक है। अङ्गरेज़ी में इसका अर्थ है क़ानून, जिसका कोई भी ठीक पर्याय संस्कृत में नहीं है, सुतरां हिन्दी-भाषा में क़ानून ही इसका प्रचलित पर्याय है। किन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि प्राचीन भारतीय आर्यों के कोई क़ानून थे ही नहीं। उनके क़ानून अवश्य थे, परन्तु वे धर्म से पृथक् नहीं थे। पाश्चात्य देशों में ईश्वर, जीव और संसार के विषय में किसी विशेष प्रकार का विश्वास रखना तथा उसी के अनुसार प्रार्थना आदि करना धर्म माना जाता है, परन्तु हिन्दू-समाज में अब भी सारे कर्तव्यों पर धार्मिक रङ्ग चढ़ा हुआ है। यद्यपि उन देशों में भी पहले क़ानून धर्मग्रन्थों में आबद्ध था, तथापि सभ्यता की बढ़ती, विज्ञान का विकाश और मानव-जीवन की समस्या जटिलतर हो जाने से वहाँ क़ानून को धर्म से पृथक् कर दिया गया है। भारतवर्ष के लिए यह बात लागू नहीं। किसी अतीत काल में केवल वेद ही भारतीय आर्यों के क़ानून थे। वेद ईश्वर-प्रणीत होने के कारण स्वतः प्रमाण थे और उनकी आज्ञाओं में किसी को तर्क करने का अधिकार नहीं था। अभिप्राय यह है कि वेदों की आज्ञा ही किसी समय क़ानून थी, जिसमें गड़बड़ी की सम्भावना देखते ही महर्षि जैमिनि ने मीमांसा-शास्त्र की रचना की। इस शास्त्र का एक-मात्र अभिप्राय यही था कि वेदों की प्रामाणिकता अक्षुण्ण रहे। वेदों में मानव-समाज से सम्बन्ध रखने वाले सभी विषयों का विधान था, अतः प्राचीन आर्यों के सारे कर्तव्य 'धर्म' शब्द के अन्तर्गत सन्निविष्ट थे। इसके पश्चात् जब स्मृतियों में भिन्न-भिन्न कर्तव्यों का विस्तार के साथ व्याख्यान किया गया तो उन्हें धर्मशास्त्र का नाम दिया गया, इससे भी यही विदित होता है कि हिन्दुओं के लिए क़ानून की कल्पना कभी धर्म से पृथक् नहीं हो सकती। परन्तु न तो धर्म ही क़ानून का पर्याय हो सकता और न धर्मशास्त्र ही क़ानून-ग्रन्थ कहे जा सकते हैं। धर्म बहुत व्यापक शब्द है, जिसमें क़ानून अन्तर्हित हो सकता है, परन्तु वह उसका समानार्थक नहीं हो सकता। अस्तु—

पहले क़ानून का स्वरूप चाहे जो कुछ रहा हो, आजकल उसका स्वरूप यही है कि वह न्यायालयों में व्यवहृत होता हो तथा उसके सञ्चालनार्थ राजकीय दण्ड अथवा शक्ति का अवलम्ब हो। सुतरां वे ही क़ानून आधुनिक हैं, जिनके अनुसार आजकल न्यायकर्त्तागण विवादों (मामलों) का निर्णय करते हैं एवं जिसका समर्थन देश की सरकार करती है। एक शब्द में यों कहना चाहिए कि अङ्गरेज़ी भारत की सरकारी व्यवस्था ही प्रचलित क़ानून है। इनके दो विभाग हैं, दीवानी (Civil) और फ़ौजदारी (Criminal), जिनका प्रयोग क्रमशः इन दो प्रकार के न्यायालयों में होता है। अब सरकारी कर सम्बन्धी क़ानून (Law of Revenue) का तीसरा भाग भी प्रायः विलग हो गया है, किन्तु इसे हम मोटे तौर पर दीवानी क़ानून के अन्तर्गत कर सकते हैं। अङ्गरेज़ी शासन के पहले इन क़ानूनों की जो कुछ व्यवस्था थी, वह अब नहीं रही, क्योंकि अङ्गरेज़ी सरकार ने धीरे-धीरे सभी विषयों की व्यवस्था नए सिरे से की है। उदाहरण के लिए हिन्दू-राजत्वकाल में किसी अपराध के लिए ब्राह्मणों को कुछ दण्ड था तो क्षत्रियों के लिए कुछ दूसरा ही दण्ड था। वैश्य और शूद्रों के लिए भी दूसरी ही दूसरी व्यवस्था थी, परन्तु आजकल न केवल हिन्दू-जाति के भिन्न-भिन्न वर्णों के लिए, प्रत्युत हिन्दू, मुसलमान, पारसी, क्रिस्तान आदि समस्त अङ्गरेज़ी प्रजा के लिए एक ही दण्ड का विधान है। इस प्रकार

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समस्त क़ानून अङ्गरेज़ों ने बदल डाले हैं, केवल एक दीवानी क़ानून ही ऐसा है, जिसके कुछ अंशों को उन्होंने पूर्ववत् रक्खा है।

इसको सर्वथा बदलना भी असम्भव था। इस देश के अधिकांश वासी हिन्दू और मुसलमान हैं और दोनों के लिए क़ानून धर्म का अङ्ग है, इसलिए इनके क़ानून को सर्वथा बदल देने से धर्म का परिवर्त्तन होता। अङ्गरेज़ी सरकार जब हिन्दू-धर्म या मुसलमान-धर्म को नहीं बना सकती तो इनके क़ानून को भी नहीं बना सकती। इसलिए अङ्गरेज़ों ने इस विषय में बहुत सोच-समझ कर परिवर्त्तन किए हैं। जिन विषयों पर धार्मिक रङ्ग नाम-मात्र था, जिनके बदलने में हिन्दू या मुसलमानों की सामाजिक अवस्था में वैसी कोई आपत्ति नहीं आती थी, उनको तो उन्होंने या तो सर्वथा बदल डाला अथवा कुछ हेर-फेर कर दिया, किन्तु कुछ विषयों को उन्होंने पूर्ववत् रखना ही अच्छा समझा। अतः सन् १७८३ ई० में ही उन्होंने ऐक्ट ४ के अनुसार यह निश्चय किया कि विवाह, उत्तराधिकार, धार्मिक संस्था आदि कई विषयों में देशी प्रजाओं की प्राचीन प्रथा स्थिर रक्खी जाय। सुतरां मोटे तौर पर हिन्दू और मुसलमानों के लिए क्रमशः "हिन्दू-लॉ" और "मोहमडन-लॉ" की सृष्टि हुई।

अब देखना चाहिए कि हिन्दू-लॉ क्या है? हिन्दू-लॉ दीवानी क़ानून का वह अंश है, जिसके अनुसार अङ्गरेज़ी न्यायालयों में हिन्दुओं के निम्न-लिखित विषयों का निर्णय होता है :—

(१) विवाह (Marriage)
(२) दत्तक (गोद लेना) (Adoption)
(३) संयुक्त परिवार की व्यवस्था (Joint-family Systeme)
(४) धार्मिक संस्था (Religious and Charitable Institutions)
(५) संरक्षणता (Guardianship)
(६) वसीयतनामा (Wills) और दान (Gifts)
(७) विभाग (Partition)
(८) उत्तराधिकार (Succession) और
(९) स्त्री-धन इत्यादि

उपरोक्त कुल विषयों में हमारे धर्म-शास्त्रों की ही नीति पूर्णतया नहीं मानी गई है, प्रत्युत उसमें या तो कितने परिवर्त्तन किए गए हैं, अथवा नए-नए क़ानूनों की सृष्टि उनके आधार पर की गई है। सन् १८५० ई० में धार्मिक स्वतन्त्रता का क़ानून (Freedom of Religion Act) पास करके प्राचीन शास्त्रीय नीति में यह परिवर्त्तन उपस्थित किया गया कि जो हिन्दू विधर्मी हो जाय वह अपने उत्तराधिकारादि से वञ्चित नहीं होगा। शास्त्रों की यह व्यवस्था थी कि विधर्मी होने से किसी व्यक्ति को, न केवल अपने उत्तराधिकारादि से वञ्चित होना पड़ता था, प्रत्युत उसे अपने स्वतन्त्र धन से भी हाथ धोना पड़ता था, किन्तु उपरोक्त क़ानून के पास होने से धर्म परिवर्तन करने में यह सब बाधा नहीं रही। उसी प्रकार सन् १८५६ ई० में हिन्दू-विधवा-पुनर्विवाह क़ानून (Hindu Widow's Remarriage Act) पास करके यह परिवर्त्तन उपस्थित किया गया कि जिन विधवाओं की इच्छा हो, वे अपना पुनर्विवाह करें तथा उनके ऐसा करने से उन्हें या उनकी सन्तान को दूषित नहीं माना जायगा, किन्तु इस विषय में हमारे धर्म-शास्त्रों की भी आज्ञाएँ हैं, जैसा हम आगे देखेंगे। फिर सन् १८७० ई० में हिन्दू वसीयत-क़ानून (Hindu Wills Act) पास करके अङ्गरेज़ों ने अपनी हिन्दू-प्रजा को यह अधिकार प्रदान किया कि बिल द्वारा वह अपनी सम्पत्ति का इच्छानुसार वितरण कर सकती है। इसकी चर्चा मात्र भी हिन्दू-शास्त्रों में नहीं है, किन्तु इङ्गलैण्ड की देखा-देखी यह विषय हिन्दू-लॉ में ठूँस दिया गया। इसके अतिरिक्त ईसाई होने की दशा में पहले के विवाह को तोड़ देने की व्यवस्था की गई, जो हिन्दू-लॉ में प्रकारान्तर से विवाहोच्छेद (Divorce) की रीति उपस्थित करती है। यही नहीं, सम्पत्ति-परिवर्त्तन (Transfer of Property), अवयस्कता (Minority) और संरक्षणता (Guardianship) आदि विषयों में भी भिन्न-भिन्न क़ानूनों को पास करके अङ्गरेज़ी सरकार ने प्राचीन हिन्दू-व्यवस्था में अनेकानेक परिवर्त्तन उपस्थित किए हैं।

जिन विषयों में किसी नए क़ानून के द्वारा कोई परिवर्त्तन उपस्थित नहीं किया गया, वे भी एकान्त पूर्ववत् नहीं रहने पाए। कारण यह है कि अङ्गरेज़ों ने जिस समय इस देश की शासन-व्यवस्था अपने हाथ में ली, उस समय न तो उन्हें हमारे धर्म-शास्त्रों का कोई ज्ञान था और न उनका कोई अनुवाद ही हुआ था। इसलिए

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिन विषयों में उन्हें शास्त्रीय व्यवस्थाओं के अनुकूल न्याय करना पड़ता था, उन विषयों के निर्णय के लिए उन्हें पण्डितों की सहायता लेनी पड़ती थी, किन्तु धीरे-धीरे उनकी व्यवस्थाओं में कई दोष घुस गए और एक ही विषय पर वे लोग कभी 'हाँ' और कभी 'नहीं' करने लगे, इसलिए उनकी सम्मतियों में कई अव्यवस्था उत्पन्न हो गई और न्यायालयों ने उनकी सम्मति लेना भी छोड़ दिया। दूसरी बात यह थी कि जब धीरे-धीरे कई धर्म-ग्रन्थों का अङ्गरेज़ी भाषा में अनुवाद हो गया एवं पण्डितों की राय नहीं ली जाने लगी तो अङ्गरेज़ी न्यायाधीशों ने और भी कुछ का कुछ समझ लिया। एक तो अब तक भी अनेक ग्रन्थ अप्रकाशित पड़े हैं, अनुवादित होने को कौन पूछे? दूसरा यह कि उन दिनों जो थोड़ा-बहुत अनुवाद हुआ, वह कतिपय अंशों में अशुद्ध था और न्याय-कर्त्ताओं को इन्हीं आंशिक और अशुद्ध अनुवादों के आधार पर अपनी सम्मति स्थिर करनी पड़ी, जिससे हिन्दू-शास्त्रों के प्रति उनकी श्रद्धा होते हुए भी, अनेक पाश्चात्य विचार अनायास हिन्दू-लॉ में घुस पड़े। तीसरी बात यह है कि अपनी-अपनी बुद्धि की प्रखरता से क़ानूनज्ञों को किसी वचन की व्याख्या करने में सब देश और समय में स्वतन्त्रता रहती है। आगे चल कर हम देखेंगे कि हमारे धर्म-शास्त्रों के टीकाकारों ने भी इसी बल पर कितने नए परिवर्त्तन प्राचीन क़ानूनों में उपस्थित किए हैं। इसलिए अङ्गरेज़ी जजों ने भी कुछ दूर तक ऐसा किया है और इन सबका परिणाम यही हुआ है कि न्यायालयों के प्रयोगानुसार हिन्दू-लॉ का प्राचीन रूप बहुत-कुछ बदल गया है। ये विषय यद्यपि मूलतः हिन्दू-धर्मग्रन्थों से ही आए हैं, तथापि उनका प्रयोग वर्त्तमान न्यायालयों ने जिस प्रकार किया है अथवा वे कर रहे हैं, वैसा ही हिन्दू-लॉ का आधुनिक रूप समझना चाहिए। इसलिए संक्षेप में अब हम यह कह सकते हैं कि हिन्दू-लॉ उस क़ानून का नाम है जिसका निर्माण हिन्दुओं के कितने ही विषयों के विवेचन के लिए अङ्गरेज़ी सरकार ने हिन्दू-धर्मशास्त्रों, अपने नए क़ानूनों और निर्णयों (फ़ैसलों) के आधार पर किया है तथा जिसका प्रयोग अङ्गरेज़ी न्यायालयों में होता है और जिसका पोषण अङ्गरेज़ी सरकार कर रही है।

हिन्दू-लॉ सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ अङ्गरेज़ी में प्रकाशित हो गए हैं एवं होते जाते हैं, जिनकी सहायता से क़ानून के उस अंश का ज्ञान होना सुलभ है, परन्तु अङ्गरेज़ी विद्या सुलभ नहीं है, इसलिए सर्व-साधारण को इसका ज्ञान होना सम्भव नहीं। तब उस क़ानून में स्त्रियों का अधिकार क्या है, इसके पीछे कौन सिर-पच्ची करता है। फिर भी हिन्दू-स्त्रियों की इन दिनों जैसी दुरवस्था है, वह किसी से छिपी नहीं है। उनके क़ानूनी अधिकार शास्त्रों के नैतिक वचनों (Moral Injunctions) के कारण जैसे विकृत हो गए हैं, प्रायः हिन्दू-लॉ का कोई अंश वैसा विकृत नहीं हुआ है और आजकल न्यायालयों में जितने मामले आते हैं उनमें से अधिकांश 'शौहरी' और 'दुख़तरी' याने स्त्री-स्वत्व-सम्बन्धी ही विवाद रहते हैं, इससे स्पष्ट है कि अङ्गरेज़ी न्यायालय में उनके स्वत्वों की ठीक व्यवस्था अब तक नहीं हो पाई है। इसके प्रतिकूल इतिहास इस विषय को प्रमाणित करता है कि संसार में हिन्दू-सभ्यता ही सबसे प्राचीन और उन्नत थी। वह किसी प्रकार स्त्रियों को दासी बना कर इतनी उच्चता को नहीं पहुँची होगी। इसलिए इस विषय का अन्वेषण हमारी राष्ट्रभाषा के लिए गौरव की बात है। अस्तु—

हिन्दू-लॉ का प्रयोग

हिन्दू-स्त्रियाँ कौन हैं?—हिन्दू लॉ क्या है, इसको जान लेने पर यह प्रश्न सहज ही में उठता है कि हिन्दू-स्त्रियाँ कौन हैं? दूसरे शब्दों में यह प्रश्न होता है कि किन स्त्रियों के लिए हिन्दू-लॉ का प्रयोग होता है? 'हिन्दू' शब्द हमारे किसी भी धर्म-ग्रन्थ में व्यवहृत नहीं हुआ है। वेदों से लेकर पुराण पर्यन्त 'आर्य' अथवा 'भारतीय' शब्द का ही प्रयोग है। कितने व्यक्तियों ने इस शब्द को संस्कृत की व्युत्पत्ति दी है, किन्तु यह शब्द वास्तव में विदेशी है। मुसलमान लोग जब भारतवर्ष में पश्चिम से लूट-मार के लिए आने लगे तो उन्हीं ने पहले-पहल इस देश को हिन्द और इस देश के निवासियों को हिन्दू कहना आरम्भ किया। इसका कारण यह था कि सिन्धु नदी के इस पार ही उन दिनों इस देश का विस्तार था और मुसलमानों ने सिन्धु का अपभ्रंश करके हिन्द या हिन्दू नाम रक्खा। इससे स्पष्ट है कि मूलतः हिन्दू शब्द किसी धर्म का बोधक नहीं है, प्रत्युत उस समय की सम्पूर्ण भारतीय जनता का बोधक है। किन्तु धीरे-धीरे जब मुसलमानों की संख्या इस देश में

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बढ़ती गई तो हिन्दू शब्द में धर्म का भी भाव आने लगा और आजकल तो प्राचीन आर्यों का धर्म भी हिन्दू-धर्म ही कहा जाता है। हिन्दुस्तान में रहने के कारण हम मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि सभी को हिन्दू कह सकते हैं, किन्तु धार्मिक भाव के कारण इस शब्द की व्याप्ति सङ्कुचित हो गई है और इस सङ्कुचित अर्थ में यह बतलाना कठिन है कि हिन्दू कौन है? जब हिन्दू-धर्म की व्याख्या ही टेढ़ी है तो उसके अनुयायी को ढूँढ़ निकालना और भी कठिन है। इसी कारण हिन्दू-लॉ में इस विषय के विवाद प्रायः उठते रहते हैं और न्यायालयों को बहुधा इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन हो जाता है कि अमुक व्यक्ति हिन्दू है या नहीं, इसके लिए हिन्दू-लॉ का प्रयोग होगा या नहीं। इन झगड़ों की मीमांसा हाल ही में पटना-हाईकोर्ट के जस्टिस ज्वालाप्रसाद जी ने राम-प्रगास सिंह बनाम दहन बीबी वाले मामले में (5 P. L. T. 203) बड़ी ही योग्यता से की है, जिसका अभिप्राय यह है कि हिन्दू-लॉ का प्रयोग उन सभी भारतवासियों के लिए होना उचित है, जो मुसलमान नहीं हैं अथवा जिन्होंने अपना वैयक्तिक क़ानून (Pesonal Law) किसी दूसरे क़ानून को नहीं स्वीकार किया है। इससे स्पष्ट है कि उनके विचार में भी हिन्दू शब्द से सम्पूर्ण भारतवासी विवक्षित हैं, किन्तु मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि समाजों को छोड़ कर, हम इस निर्णय की चर्चा आगे चल कर करेंगे। अब बतलाना यह चाहिए कि हिन्दू-स्त्रियाँ कौन हैं। इस विषय में अङ्गरेज़ी न्यायालयों के निर्णयों से ये नियम उपलब्ध होते हैं, वे स्त्रियाँ हिन्दू हैं :—

(क) जो जन्म और धर्म दोनों से हिन्दू हैं।* अर्थात् जिन्होंने हिन्दू-घर में जन्म लिया है एवं हिन्दू-धर्म का परित्याग नहीं किया है।†

व्याख्या—उपरोक्त निर्णयों से स्पष्ट है कि उन स्त्रियों के लिए हिन्दू-लॉ का प्रयोग नहीं किया जा सकता, जो जन्म से हिन्दू नहीं हैं अथवा जन्म लेकर भी जिन्होंने हिन्दू-धर्म का परित्याग कर दिया है। हिन्दू-धर्म की यह विशेषता है कि वह अवलम्बन-मात्र से किसी का धर्म नहीं हो सकता। यदि कोई ईसाई अथवा मुसलमान वेद, पुराण और धर्मशास्त्रादि हिन्दू-धर्मग्रन्थों को मानने लगे, हिन्दुओं के समान रहने लगे, तो वह हिन्दू नहीं माना जायगा, क्योंकि जन्म तो उसका हिन्दू माता-पिता से नहीं हुआ। अन्यान्य धर्म में यह बात नहीं है। जन्म चाहे किसी परिवार में हुआ हो, यदि वह उस धर्म को मानता हो तो आनन्द-पूर्वक मुसलमान या ईसाई माना जायगा। किन्तु हिन्दुओं में भी शुद्धि आदि के आन्दोलन से इस नियम में बहुत बड़े परिवर्त्तन की सम्भावना है। हाल के एक विवाद * में प्रीवी काउन्सिल के समक्ष भी यह प्रश्न उपस्थित हुआ। किसी क्षत्री ने अपना सम्बन्ध एक मुसलमान-स्त्री से कर लिया था और उससे उसको एक अवैध बालक (Illegitimate son) हुआ। यह लड़का हिन्दू की भाँति रह आया था और मूर्तिपूजा आदि को भी मानता था। इसने अपना विवाह एक क्षत्री-कन्या से किया और उससे एक लड़का हुआ। प्रश्न यही था कि यह लड़का हिन्दू माना जाय अथवा नहीं? कारण यह था कि इसका पिता यद्यपि हिन्दुओं की भाँति रह आया था, तथापि वह जन्म से हिन्दू नहीं था। उसकी माता मुसलमान थी। प्रीवी काउन्सिल ने इस प्रश्न का कुछ भी निर्णय उक्त विवाद में नहीं किया, इससे स्पष्ट है कि यह विवाद अभी तक विवादास्पद है। किन्तु एक दूसरे मामले † में प्रीवी काउन्सिल ने यह निर्णय किया है कि हिन्दू शब्द के अन्तर्गत ऐसे भी व्यक्ति सम्मिलित हैं, जो हिन्दू बनाए गए हैं। हिन्दू-धर्म में प्रायश्चित्त का विधान है, अतः जो हिन्दू विधर्मी होकर प्रायश्चित्त द्वारा अपने धर्म में लौट आता है वह तथा विधर्मी रहने की दशा में उसकी जो सन्तानें उत्पन्न हुई हैं, प्रायश्चित्त के पश्चात् हिन्दू हो जाती हैं और उनके लिए हिन्दू-लॉ का प्रयोग होता है। ‡ इसके अतिरिक्त जिसने हिन्दू-घर में जन्म लिया है तथा हिन्दू-धर्म का सर्वथा त्याग नहीं किया है, वरन् कुछ खान-पान और आचार-व्यवहारादि में परिवर्त्तन कर लिया है अथवा ब्रह्म-समाज मत को धारण कर लिया है, वह भी अहिन्दू नहीं है। § कहने का अभिप्राय यह कि हिन्दू होने के लिए किसी स्त्री को कट्टर हिन्दू होने की अनिवार्यता नहीं

* 9 M. I. A. 199-243.
† 31 Cal, 11, 33; 30 I. A. 249; 19 Bom. 783, 788.
* 36 All. 101, 115-116.
† 43 All. 525, 533, 48 I. A. 381, 385.
‡ 30 Cal. 999.
§ 31 Cal. 11, 30 I. A. 249.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है, विशेषतः हिन्दू-स्त्रियों का प्रधान धर्म उनकी पतिपरायणता ही सदा से चला आया है। जो स्त्री व्यभिचारिणी होती है, वह चाहे अन्यान्य प्रकार से कैसी ही कट्टर हिन्दू क्यों न हो, पत्नीत्व से गिर जाती है तथा उसके बहुत से अधिकार जाते रहते हैं, जिसका वर्णन व्यभिचार सम्बन्धी लेख में किसी आगामी अङ्क में किया जायगा। फिर भी व्यभिचार मात्र से कोई स्त्री अहिन्दू नहीं मानी जायगी, जब तक कि वह पूर्ण पतित न हो जाय।

(ख) ऐसी स्त्रियाँ जो हिन्दू-माता-पिता की अवैध सन्तान हैं।*

व्याख्या—हिन्दुओं में बहुत प्राचीन काल से "अवरुद्ध स्त्री" अथवा रखेली आदि रखने की प्रथा है, जिनके कितने नाम धर्मशास्त्रों में दीख पड़ते हैं। किसी स्त्री से शास्त्रानुसार विवाह करके जो सन्तान उत्पन्न की जाती है वह वैध सन्तान है, किन्तु इस प्रकार शास्त्र-मर्यादा को तिरस्कार करके व्यभिचारादि से जो सन्तान उत्पन्न होती है वह अवैध होती है। इन अवैध सन्तानों में केवल वे ही हिन्दू मानी जायँगी, जिनके माता-पिता दोनों हिन्दू हैं। यदि इनमें से कोई अहिन्दू है तो सन्तान चाहे वैध ही क्यों न हो, अहिन्दू समझी जायगी। इसका एक अपवाद यह है कि यदि पिता ईसाई और माता हिन्दू हो तो वह अवैध सन्तान भी हिन्दू मानी जायगी—हाँ, वह सन्तान हिन्दू की भाँति पाली गई हो, अन्यथा वह हिन्दू नहीं होगी।† इसके अतिरिक्त शुद्ध हिन्दू-सन्तान की भाँति ऐसे पिता-पुत्र में सहाधिकार (Co-parcenership) नहीं हो सकता है।

(ग) जैन, सिक्ख, आर्यसमाज, और बौद्ध स्त्रियाँ भी हिन्दू हैं, क्योंकि इन सम्प्रदायों में क़ानून का कोई पृथक् ग्रन्थ नहीं है, अतः इनका शासन हिन्दू-लॉ से ही होता है—हाँ, यदि व्यवहारों में कोई पृथकता आ गई हो तो उसका भी ध्यान रक्खा जायगा।‡

व्याख्या—ये सम्प्रदाय वास्तव में हिन्दू-धर्म के ही अङ्ग हैं, अतः यदि उनके व्यवहारों में कोई पृथकता न आई हो तो हिन्दू-लॉ का प्रयोग होगा, अन्यथा उनके परम्परागत व्यवहारों का मान रहेगा। इन सम्प्रदायों के अतिरिक्त और भी कितने छोटे-मोटे सम्प्रदाय हैं, जिनके लिए हिन्दू-लॉ का प्रयोग होता है। इस विषय में केवल यही बात सर्वदा स्मरण रखना चाहिए कि वह सम्प्रदाय हिन्दू-धर्म की ही शाखा हो।

(घ) इनके अतिरिक्त ऐसी बहुत सी जातियाँ हैं, जिनका उत्तराधिकार मात्र हिन्दू-लॉ के अनुसार शासित होता है। उनके नाम हैं ख़ोजा, मैमन, बम्बई प्रान्त के कामाथी, कच के मैमन लोग, अमृतसर के त्रकान, और आसाम के कोच, अतः इन जातियों की स्त्रियों के लिए भी केवल उत्तराधिकार में हिन्दू-लॉ का प्रयोग होता है। व्याख्या की आवश्यकता नहीं है।

(ङ) नायकिन, तवायफ़ और वेश्याओं के लिए भी हिन्दू-लॉ का प्रयोग होता है, क्योंकि ये स्त्रियाँ तब तक हिन्दू हैं जब तक उन्होंने हिन्दू-धर्म का पूर्णतया त्याग नहीं किया है अथवा किसी दूसरे क़ानून को नहीं अपनाया है। केवल 'तवायफ़' कही जाने के कारण- अथवा मुसलमानी नाम से पुकारी जाने के कारण या गाने-बजाने आदि को अपनी आजीविका बना लेने के कारण कोई स्त्री अहिन्दू नहीं हो सकती। वेश्याएँ हिन्दू-समाज की आवश्यक बाधा हैं। उनके विचाराचार चाहे हिन्दुओं के अनुकूल न भी हों, तथापि यदि वे मुसलमानी नहीं हो गई हैं अथवा किसी दूसरे क़ानून को उन्होंने नहीं अपनाया है तो उनके उत्तराधिकार का शासन भी हिन्दू-लॉ से होगा। (5 P. L. J. 203)

इस विषय को और भी स्पष्ट करने के लिए यह बतलाना आवश्यक है कि 'कौन स्त्रियाँ हिन्दू नहीं हैं? दूसरे शब्दों में किन स्त्रियों के लिए हिन्दू-लॉ का प्रयोग नहीं हो सकता। इनमें ये स्त्रियाँ सम्मिलित हैं :—

(क) हिन्दू पिता और ईसाई माता से उत्पन्न स्त्रियाँ, जिनका पालन भी ईसाई की भाँति हुआ है* और हिन्दू पिता तथा मुसलमान माता की अवैध कन्याएँ† भी हिन्दू-स्त्रियों में परिगणित नहीं हो

* 18 Cal. 264.
† 8 M. I. A. 420.
‡ 1 All. 688, 5 I. A. 87; 4 Cal. 744, 6 I. A. 15; 25 C. W. N. 273, 275; 37 I. A. 93; 8 Bom. 432, 45 Bom. 754, 757, etc. etc.

* 27 Mad. 13.
† 2 Lah. 243-248.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सकतीं, क्योंकि ये न तो जन्म से और न ग्रहण से हिन्दू हैं।

(ख) ऐसी स्त्रियाँ, जो ईसाई हो गई हैं। देशी ईसाइयों में बहुधा यह बात देखी जाती है कि ये लोग ईसाई होने के पश्चात् भी हिन्दुओं की भाँति एकत्र रहते हैं। इन लोगों में हिन्दू-लॉ के अनुसार संयुक्त परिवार का नियम लागू होगा या नहीं ? मद्रास-हाईकोर्ट के अनुसार इस प्रश्न का उत्तर निषेधात्मक है *, किन्तु बम्बई-हाईकोर्ट के अनुसार निश्चयात्मक है।†

(ग) ऐसी स्त्रियाँ, जो अन्य किसी धर्म में जन्मी हों या जिन्होंने किसी दूसरे धर्म को ग्रहण कर लिया है एवं जिनका प्रायश्चित्त या तो हुआ ही नहीं है अथवा हो ही नहीं सकता।

टिप्पणी—बौद्ध, जैन, सिक्ख, आर्य-समाज, और ब्रह्म-समाज आदि सम्प्रदायों की स्त्रियाँ हिन्दू स्त्रियाँ हैं, यह पहले ही बतलाया गया है। एक बात और भी स्मरण रखना चाहिए कि हिन्दुओं में ब्राह्मणादि चार वर्णों का जो विभाग है उसका बन्धन यद्यपि अङ्गरेज़ी क़ानूनों ने बहुत-कुछ ढीला कर दिया है, तथापि उसकी छाया अब भी हिन्दू-लॉ के कतिपय अंशों में दीख पड़ती है।

हिन्दू-लॉ वैयक्तिक है अथवा स्थानीय ? यह दोनों है। स्थानीय इसलिए कि कोई हिन्दू जिस प्रान्त का वासी है उसी प्रान्त के क़ानूनी सम्प्रदाय से शासित होता है‡ और वैयक्तिक इसलिए कि यदि कोई हिन्दू अपने प्रान्त को छोड़ दूसरे प्रान्त में जा बसता तो वह उस नए प्रान्त के क़ानूनी सम्प्रदाय से शासित नहीं होता, वरन् अपने पुराने ही प्रान्त के क़ानून से शासित होता है। यह अनुमान किया जाता है कि वह व्यक्ति अपने प्रान्त का क़ानून अपने साथ लाया है, किन्तु यह अनुमान उस समय कट जाता है जब कि यह प्रमाणित होता है कि उस व्यक्ति ने इस प्रान्त में आकर इसी स्थान के क़ानून को अपनाया है एवं अपने प्रान्त के क़ानून का त्याग कर दिया है।* किन्तु ऐसा करने के पूर्व तक उस व्यक्ति के लिए अपने ही प्रान्त का क़ानून लागू रहेगा और प्रान्त त्यागने के पीछे भी उसके प्रान्त में क़ानून का जो कुछ परिवर्त्तन हुआ रहेगा वह भी लागू होगा। किन्तु व्यवहार या प्रथाओं में जो कुछ परिवर्त्तन हुआ रहेगा वह उसके लिए लागू नहीं हो सकता है।† उदाहरण के लिए दायभाग क़ानून बङ्गाल का स्थानीय क़ानून है, क्योंकि वहाँ के अधिवासियों के लिए लागू है, परन्तु यह वैयक्तिक भी है, क्योंकि कोई बङ्गाली जब दूसरे प्रान्त में जाकर बस जाता है तो उसके लिए दायभाग क़ानून ही प्रयुक्त होता है।

टिप्पणी—आगे चल कर हम देखेंगे कि प्रान्त-भेद से हिन्दू-लॉ की कई शाखाएँ अथवा सम्प्रदाय हैं, जिनका प्रयोग उन्हीं-उन्हीं प्रान्तों में होता है अथवा उनसे शासित होने वाले व्यक्ति जब दूसरे प्रान्तों में जा बसते हैं तो अन्य प्रान्तों में भी उनके लिए लागू होता है।‡

(क्रमशः)

(Copyright)

* 10 Mad. 69.
† 31 Bom. 25 ; 40 Cal. 407-418.
‡ 20 Cal. 409.

* 29 Cal. 433, 29 I. A. 82; 12 M. I. A. 81; 31 All. 477 etc.
† 47 I. A. 213, 48 Cal. 30.
‡ लेखक की अप्रकाशित पुस्तक से

—स० 'चाँद'

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

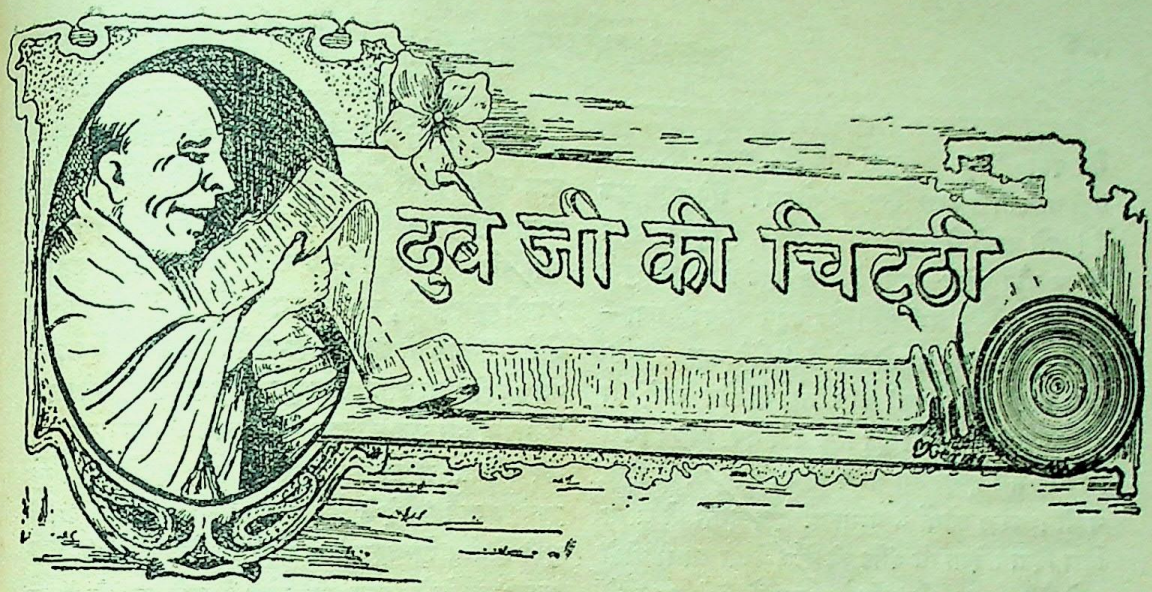

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

आप कभी कान्यकुब्जों की बारात में गए हैं ? यदि कभी जाने का अवसर न मिला हो तो एक बार ज़बरदस्ती किसी बारात के साथ लग जाइए—फिर आनन्द देखिए। ऐसी बारात भी न देखी होगी। परन्तु इतना ध्यान रहे कि ठेठ कुलीन कान्यकुब्ज की बारात हो ! एक बात का ध्यान और रखिएगा—बारात में जाने के दो-चार दिन पूर्व इतना अधिक भोजन कीजिएगा कि अजीर्ण हो जाय। इससे आपको यह लाभ होगा कि जितने दिन आप बारात में रहेंगे, उतने दिनों में अजीर्ण पच जायगा और आप पुनः ताज़ादम हो जायँगे। लोग कहते हैं कि ब्याह-बारातों में अजीर्ण हो जाता है, पर कान्यकुब्जों की बारात में महीनों का अजीर्ण भी ऐसा भागता है जैसे गधे के सिर से सींग ! मुझे तो जब कभी बदहज़मी अथवा अजीर्ण की शिकायत होती है तो मैं किसी कान्यकुब्ज की बारात में जाने का डौल लगाता हूँ, क्योंकि घर में परहेज़ हो नहीं सकता—कान्यकुब्जों की बारात में आदि से लेकर अन्त तक परहेज़ ही परहेज़ है। और यदि परहेज़ न करो तो दस्त लग जाएँ—उससे भी लाभ ही है, अजीर्ण प्रत्येक दशा में ग़ायब हो जायगा—यह मैं दावे के साथ कह सकता हूँ। अब मैं आपको अपना एक बारात का अनुभव सुनाता हूँ, उससे आप समझ जायँगे।

सर्दी का मौसम था। शाम के पाँच बजे बारात जनवासे पहुँची। वहाँ पहुँचते ही पुकार हुई—"आइए ठण्ढाई पीजिए !" मैं चकराया कि यह सर्दी का मौसम और ठण्ढाई ! मेरे एक साथी बोले—"चलो दुबे जी, ठण्ढाई पियो।" मैंने कहा—"क्षमा कीजिए, मुझे न्यूमोनिया का शौक़ ज़रा कम है।" वह बोले—"न्यूमोनिया कैसा ?" मैंने उत्तर दिया—"इस सर्दी में आप शरबत पीने को कहते हैं !" वह बोले—"ओः आपका यह मतलब है। आप घबराइए नहीं, उसमें भाँग भी पड़ी है, इससे सर्दी नहीं करेगी।" मैंने कहा—"भाँग से तो मैं नहीं डरता, परन्तु शरबत से तो कलेजा काँपता है। दूसरे एक तो योंही सफ़र का नशा सवार है, उस पर आप कहते हैं कि भाँग पियो। ख़ासे रहे !" ख़ैर साहब, सब लोगों ने ठण्ढाई पी। उनके लिए ठण्ढाई के घड़े अमृत के घड़े थे। एक पर एक गिरा पड़ता था। ठण्ढाई पीकर यार लोगों ने तमाखू फाँकी—फटाफट के शब्द से जनवासा गूँज गया। तमाखू फाँक कर शौच गए।

रात में नौ बजे के लगभग द्वाराचार हुआ। वहाँ से लौट कर जनवासे में आए। अब मैं इस फ़िक्र में था कि कुछ खाने-पीने की बातचीत हो, परन्तु वहाँ तमाम दुनिया भर की बातें तो होती रहीं, पर भोजन का ज़िक्र बिलकुल ग़ायब ! कुछ लोग तो ताश खेलने में जुट गए और कुछ लम्बी तान कर सो रहे। मैंने सोचा, शायद इनके यहाँ आज भोजन करना मना हो। अतएव मैं भी सब्र करके लेट रहा और थोड़ी देर में सो गया। रात के बारह बजे के लगभग एकदम से हल्ला मचा—'आ गया ! आ गया !' मैं चौंक कर उठ बैठा और सोचने लगा, क्या आ गया ? पानी आ गया या भूचाल आ गया। एक से

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मैंने पूछा—"क्या आ गया भाई ?" उन्होंने मुस्कराकर बड़ी प्रसन्नता से उत्तर दिया—"भोजन !" मैंने कहा, शुक्र है ! बाजे वालों से कहो बाजा बजावें। परन्तु इस समय भोजन कौन करेगा—क्षुधा देवी का हार्ट फ़ेल हो चुका है। वह बोले—"अजी अभी कौन बहुत समय हो गया—अभी केवल बारह ही तो बजे हैं।" मैंने कहा—"बलिहारी आपके इस 'केवल' की। तो दो-तीन घण्टे और ठहर जाइए 'केवल' की छूत मिट जाय तब भोजन किया जाय।" मेरी इच्छा उस समय भोजन करने की बिलकुल न थी ; परन्तु लोगों ने न माना, ज़बरदस्ती ले जाकर बिठा दिया। देखा तो पंक्ति की पंक्ति केवल आधी धोती ओढ़े बैठी थर-थर काँप रही है। एक मैं ही ऐसा था जो कपड़े पहने बैठा था। इसलिए लोग मेरी ओर वक्र दृष्टि से देख रहे थे। मेरे अगल-बगल जो बैठे थे, वे मुझे कपड़े पहने देख ज़रा और हट कर बैठे। मैं सोचने लगा, यह लोग मुझे क्या भङ्गी समझते हैं—आख़िर मामला क्या है। ख़ैर, पत्तल डाली गई और उस पर दो-दो पूरियाँ और दो-तीन तरह का साग रक्खा गया और एक-एक चुटकी नमक। मैंने पूरी देखी तो पास बैठे महाशय से कहा—"आप लोग पूरी भी कपड़े उतार कर खाते हैं, यह क्यों ?" वह बोले—"हम क्या कोरी-चमार हैं जो कपड़े पहने खायँ।" मैंने कहा तो धोती भी उतार डालिए। आख़िर धोती भी तो कपड़ा ही है।" वह बोले—"धोती की बात दूसरी है।" मैंने कहा—"अच्छा साहब, दूसरी सही, बल्कि मेरी ओर से तीसरी सही। परन्तु यही धोती पहने आप शौच गए थे और यही धोती पहने अब आप भोजन कर रहे हैं—यह कौन सी बात है—चौथी या पाँचवीं ? आपका कुर्ता, जो आपने इस समय तिरस्कृत कर दिया है, मेरी समझ में, अधिक शुद्ध है, क्योंकि शौच जाते समय उसे आपने उतार दिया था। अच्छा होता, यदि आप धोती उतार डालते और कुरता पहने रहते।" यह सुनते ही उन्होंने मेरी ओर घूर कर देखा, मानों खा जायँगे। मैंने कहा—"श्रीमान्, यह दृष्टि आप मेरी ओर न डालकर, पत्तल की ओर डालें तो अधिक अच्छा है।" इसी समय किसी ने हाँक लगाई "हाँ 'नमो नारायण' कीजिए।" यह सुनते ही सबने भोजन करना आरम्भ किया। मैंने जो पूरी उठा कर तोड़नी चाही तो वह क्रीप-सोल्ल की तरह बढ़ने लगी। इसका कारण यह था कि एक तो मैदे की पूरियाँ, दूसरे उनमें मोयन का नाम नहीं—तीसरे कम सिकी हुईं, चौथे बर्फ़ की तरह ठण्ढी। ख़ैर, एक कौर तोड़ कर साग के साथ खाया तो पता लगा कि साग में नमक नहीं। मैंने चिल्लाकर कहा—"अजी सुनिए तो, साग में नमक नहीं है।" एक महाशय बोले—"नमक तो पत्तल में रक्खा है। हम लोगों में साग में नमक नहीं डाला जाता, साग छूत हो जाता है।" मैंने कहा—"भगवान् इस छूत की छूत से बचावें।" सम्पादक जी, मैंने कठिनता से आधी पूरी खाई होगी, इतने में ही मुँह दुखने लगा। 'लोहे के चने चबाना' वाली कहावत आपने सुनी होगी। कान्यकुब्जों के यहाँ की मैदे की पूरी, जिसे 'लुचुई' कहते हैं, खाना भी लोहे के चने चबाने से कुछ यों ही कम है। मैंने एक महाशय से पूछा—"क्यों भई, आटे की पूरी नहीं बनी ?" वह बोले—"आटे की पूरी भला मैदे की पूरी के सामने क्या टिक सकती है।" मैंने अपनी पत्तल की ओर देख कर कहा—"सच कहते हो। आटे की पूरी होती तो अब तक पेट में पहुँच गई होती, मैदे की पूरियाँ होने के कारण ये पत्तल पर टिकी हुई हैं।" यार लोगों ने ख़ूब हत्थे लगाए। परन्तु भोजन करने में जाड़े के मारे सब कर्म हो गए। एक साहब उठ कर हाथ धोते हुए बोले—"जाड़े में भोजन करना भी एक मुसीबत है।" मैंने कहा—"कैसी कुछ, भगवान् जाड़ों में अन्नाभाव रक्खे तो अच्छा है—यह मुसीबत तो न झेलना पड़े।" ईश्वर बचावे इन बुद्धि के शत्रुओं से ! रात के बारह बजे कड़कड़ाती सर्दी में लिहाफ़ के अन्दर से उठ कर नङ्ग-धड़ङ्ग भोजन करें और फिर कहें कि भोजन करना मुसीबत है ! दो-चार आदमियों ने, जो वृद्ध होने के कारण जाड़े से इस प्रकार काँपते थे जैसे गाय क़साई से, इसी मारे भोजन नहीं किया कि कपड़े उतारने पड़ेंगे, चुपचाप रज़ाई के अन्दर पड़े ख़ून का घूँट पीते रहे !

दूसरे दिन सवेरे उठते ही पहले गहरी छनी। इसके पश्चात् कुछ मिठाई खा-खाकर लोग अपनी-अपनी धुन में मस्त होगए। मैं भी एक टुकड़ी में सम्मिलित होकर ताश खेलने लगा। ताश खेलते-खेलते बारह बज गए। बारह बजे के पश्चात् एक महाशय आकर बोले—"सब जिनिस तैयार है, आप लोग भोजन बनाइए।" मैंने चौंक कर कहा—"क्या अपने हाथ से ठोंकना-खाना पड़ेगा ?" वह महाशय बड़े गर्व से बोले—"जी ! कनौजियों की

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बारात है कि दिल्लगी।" मैंने कहा—"ठीक है! दिल्लगी तो इस बारात से कोसों दूर है। यहाँ तो पूरा जीवन-संग्राम मालूम पड़ता है। परन्तु मैं तो खाना नहीं बनाऊँगा।" वह बोले—"तो मिठाई और खा लीजिए या किसी की रसोई में शामिल हो जाइए।" मैंने अपने एक साथी से पूछा—"क्यों उस्ताद, हमें शामिल करोगे?" वह बोले—"हाँ, हाँ, ख़ुशी से! हाँ जी, तो दूनी जिनिस भिजवाइए। अभी चुटकियों में भोजन तैयार होता है।"

थोड़ी देर पश्चात् बाहर निकल कर देखा तो जनवासा बिलकुल तपोभूमि दिखाई पड़ा। जगह-जगह चूल्हे दहक रहे थे और ऋषि-सन्तानें स्वयम्पाक में जुटी हुई थीं। जिसे भोजन बनाना सीखना हो वह कान्यकुब्जों की बारातें एटेण्ड करे। मैंने सोचा, यह बारात है या बनजारों का पड़ाव।

उचित समय पर भोजन तैयार हुआ। मैं कपड़े उतार कर जा बैठा! थाली परोस कर सामने रक्खी गई। रोटियाँ या तो कच्ची थीं या जली हुई। चावल जो बनाए गए थे वे केवल श्वेत होने के कारण तो चावल जान पड़ते थे, अन्यथा उनमें और दलिए में कोई अन्तर न था! दाल में नमक इतना था कि उससे केवल चटनी का काम लिया जा सकता था। एक साग था आलू-गोभी का, सो गोभी और आलू परस्पर असहयोग किए बैठे थे। हाँ, घी निस्सन्देह अधिक था और साथ में शक्कर भी। मैं तो दो-चार कौर खाकर ही छक गया। मेरे साथी ने पूछा—"खाते क्यों नहीं।" मैंने कहा—"बस, जीवन के लिए इतना काफ़ी है।" उन्होंने कहा—"अजी खाओ, क्या मज़ाक़ करते हो। घी और ले लो, ख़ूब घी खाओ—बारातों में तो घी खाने का मज़ा ही है।" मैंने कहा—"अगर ऐसा ही घी खिलाना हो तो एक नाल मँगा लो—जितना घी पिलाओगे, पी जाऊँगा। वैसे तो खाना कठिन है।" वह मुस्करा कर बोले—"चावल और शक्कर के साथ खाओ।" मैंने कहा—"क्षमा करो, घी भी मिक़दार से ही खाया जाता है—मुझे जुलाब तो लेना नहीं है। जुलाब के लिए घी पीना फ़िज़ूल-ख़र्ची है—अरंडी का तेल ही काफ़ी है।"

हराम का घी जो मिला तो बहुत लोग अनाप-शनाप खा गए। परिणाम यह हुआ कि पोंकने लगे। चलिए, वे लोग तो साल भर के लिए शुद्ध हो गए। एक महाशय से, जो चार बेर पाख़ाने जा चुके थे और पाँचवीं दफ़ा के लिए बड़ी तत्परता से लोटे और पानी की खोज कर रहे थे, मैंने पूछा—"आज आप कई दफ़ा पाख़ाने गए—क्या कारण है?" वह मुँह बना कर बोले—"यहाँ का पानी ख़राब मालूम होता है—पेट बिगड़ गया।" मैंने कहा—"जी हाँ, कहीं-कहीं का पानी बिलकुल कास्टर ऑयल का काम करता है। चलो, यह भी अच्छा है—पेट साफ़ हो जायगा।"

भात वाले दिन मेरी भी इच्छा हुई कि जाकर देखूँ कि इन लोगों के भात अर्थात् कच्ची में कैसा क्या होता है। कच्ची की प्रतीक्षा में मैं कच्ची खा गया। प्रतीक्षा करते-करते रात के बारह बज गए। बारह बजे के निकट बेटी वाले के यहाँ से बुलावा आया। लोग पड़-पड़ के सो रहे थे। उन्हें उठाने और तैयार करने में एक घण्टा लग गया। एक बजे के निकट बेटी वाले के यहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँचते सब फिर सङ्ग-धड़ङ्ग हुए। मैंने भी कोट-वोट उतार डाला, केवल ऊनी स्वेटर रहने दिया। कट्टर कनौजियों ने तो ऊनी स्वेटर का तिरस्कार भी कर दिया था। ख़ैर साहब, जाकर बैठे। पत्तलें डाली गईं। एक आदमी आया और एक दोना रखकर चला गया। अब दस मिनिट के लिए फिर सन्नाटा। दस मिनिट पश्चात् फिर एक दोना रख कर सून घसीट ली गई। मैंने पूछा—"क्यों जनाब, परोसने में इतनी देर क्यों?" वह बोले—"ऐसा ही दस्तूर है।" इसी प्रकार दस-दस मिनिट पश्चात् एक-एक दोना आता रहा। दोनों को जो देखा तो दोना तो इतना बड़ा कि पाव भर चीज़ आ जाय, परन्तु उसमें एक सालिग्राम की बटिया ऐसी धरी है। किसी में एक बैंगनी-सी विराजमान है। इसी प्रकार पत्तल चारों ओर दोनों से घिर गई। इसके पश्चात् दाल, भात, रोटी परोसी गई। एक महाशय आकर सबकी पत्तलें देखने लगे कि कोई चीज़ रह तो नहीं गई। हठात् वह बोले—"अरे ख़रिका तो आया ही नहीं, ख़रिका लाओ।" मैं चकराया कि खाना तो अभी खाया ही नहीं और दाँत खोदने के लिए ख़रिका अभी से मँगाया जा रहा है। मैंने कहा—"पत्तल में काफ़ी ख़रिके लगे हैं, आप कष्ट न कीजिए।" यह सुनकर वह हँस पड़े। बोले—"यह ख़रिका नहीं।" इतने

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ही में खरिके का दोना आया तो मालूम हुआ कि खरिका एक खाद्य पदार्थ का नाम है। हाँ, मैं यह लिखना भूल गया कि मुझे बिलकुल अलग-थलग भङ्गी की भाँति बिठाया गया था और जहाँ मैं बैठा था वहाँ मैं ही मैं था! पत्तल डालने के पूरे डेढ़ घण्टे पश्चात् भोजन हुआ। इधर भोजन आरम्भ हुआ, उधर स्त्रियों ने 'ऊँ, ऊँ' करना आरम्भ किया। मैं चौंक पड़ा, परन्तु फिर सोचा, गा रही हैं, परन्तु यह उत्सुकता उत्पन्न हुई कि यदि यह इनका गाना है तो भगवान् जाने रोना कैसा होता होगा!

बहुत सी चीज़ें होने के कारण उनमें अच्छी-बुरी सब थीं, इस कारण भोजन से कोई ख़ास शिकायत न थी। परन्तु उस समय तीन बजने के लगभग था—खाया क्या जाता। एक बात और थी, परोसने वाले मुँह से नहीं बोलते थे—इशारों से पूछते थे!!

भोजन करके जो चले तो लोग बातें करने लगे—"काहे भइया, पारुस में तो कोई डेढ़ घण्टा लगा।" दूसरा बोला—"फिर? कोई मामूली आदमी थोड़ा ही हैं। देखा नहीं, दस दुनइयाँ थीं।" अब मेरी समझ में आया कि परोसने में जितना अधिक समय लगे और दोने जितने अधिक हों, उतना ही खाना बढ़िया समझा जाता है! ख़ैर, दोनों की अधिकता की बात तो कुछ समझ में आती है, परन्तु परोसने में देर होने की बात समझ में नहीं आती। यदि एक-एक दोना लाने में दस-दस मिनिट की अपेक्षा पन्द्रह मिनिट लगाए जाते तो परोसने में दो-ढाई घण्टे लग जाते; परन्तु इससे खाने में क्या बढ़ियापन आ जाता, यह कनौजिया भाई ही बता सकते हैं। इस जाङ्गलूपन का भी कोई ठिकाना है।

जनवासे में आकर देखा तो एक महाशय बैठे पूरियाँ तल रहे थे। मैंने पूछा—"अरे! आप भोजन करने क्यों नहीं गए?" वह बोले—"हम लड़के वाले के मान्य हैं, हम बेटी वाले के यहाँ नहीं खा सकते।" मैंने कहा—"तो फिर शाम से ही खा-पी लेते।" वह बोले—"इसी समय बना लिया, ज़रा सो गए थे, इससे देर हो गई।" ओफ़ ओह! कुछ ठिकाना है। उनके लिए रात के तीन बजे उठ कर भोजन बनाना-खाना एक साधारण बात थी। मैंने सोचा यह तो अजायब-घर में रखने योग्य आदमी है!!

सम्पादक जी, इस प्रकार आधा पेट खा-खाकर तीन दिन काटे। लौटते हुए स्टेशन पर अपने को तौला तो डेढ़ पाउण्ड कम हो गया था। घर लौट कर जो आया तो लल्ला की महतारी सूरत देख कर बोली—"क्या आप बीमार होगए थे? दुबले हो गए हो।" मैंने कहा—"मैं बिलकुल अच्छा हूँ। ख़ूब खुल कर भूख लगने लगी है। शरीर हल्का मालूम होता है, पाचन-शक्ति तीव्र हो गई है। इस समय कुछ खिलाओ, नहीं तो तुम्हें ही कच्चा खा जाऊँगा।"

सम्पादक जी, कभी अजीर्ण की शिकायत हो तो किसी कान्यकुब्ज की बारात में चले जाइएगा, सब ठीक हो जायगा।

भवदीय,

विजयानन्द (दुबेजी)

सुवर्णमयी कमला

[रचयिता—श्री० 'जटा']

सिर सोहे किरीट सुवर्णमयी, मणि माणिक केरि छटा छहरै।
अलकावलि शुभ्र सुवर्णमयी, सुथरी विथरी बिहरै लहरै॥
दुति दीपति देह सुवर्णमयी, पट पीत सुवर्णमयी फहरै।
बरसावत स्वर्णमयी सुप्रभा, कमला कमलों पै किलोल करै॥

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गोस्वामी तुलसीदास और स्त्री-जाति

(आलोचना)

[ले० श्री० शोभाराम जी 'धेनुसेवक']

जनवरी सन् १९२९ के 'चाँद' में श्री० रजनीकान्त जी शास्त्री, बी० ए०, बी० एल० का "गोस्वामी तुलसीदास और स्त्री-जाति" शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसमें शास्त्री जी ने 'रामचरित-मानस' की कुछ चौपाइयों के आधार पर ऐसा विचार स्थिर किया है कि गोस्वामी तुलसीदास जी को स्त्री-जाति से ख़ास चिढ़ थी और जहाँ गोस्वामी जी को 'नारी-निन्दा' का मौक़ा मिला है, वे चूके नहीं हैं। हमारी धारणा है कि शास्त्री जी ने गोस्वामी जी की इस ख़ास चिढ़ के कारण को जानने का प्रयत्न नहीं किया। यदि अपना मत स्थिर करने के पूर्व शास्त्री जी कारण की खोज करते तो मेरा दृढ़ विश्वास है कि उनके मन में गोस्वामी जी पर इस प्रकार दोषारोपण करने का विचार तक न उठता। शास्त्री जी का आक्षेप कहाँ तक सत्य है? क्या वास्तव में गोस्वामी जी मातृ-जाति के द्वेषी थे, अथवा उनके दोष-सूचक वाक्यों का कुछ और ही तात्पर्य है? वर्त्तमान लेख का विषय इसी का विवेचन करना है। अस्तु—

शास्त्री जी ने जो आक्षेप गोस्वामी जी पर किए हैं, उनका उत्तर 'रामचरित-मानस' को एक बार आद्योपान्त पढ़ जाने से अनायास ही मिल जाता है। रामायण में मुझे एक-दो नहीं, अनेक स्थलों पर ऐसे प्रकरण मिलते हैं जिनमें मातृ-जाति की गौरव-गाथा मुक्त-कण्ठ से गाई गई है। गृह-देवियों की धर्मनिष्ठा, विद्या, बुद्धि, चतुरता पर कवि ने नमस्कार-पूर्वक अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित की है। महिला-समाज को पुरुष-समाज से किसी दशा में भी नीचे नहीं गिरने दिया है। इतना ही नहीं, कहीं-कहीं तो उन्हें पुरुष-समाज से बहुत ऊँचा उठा दिया गया है। उन सब स्थलों को देखे बिना ग्रन्थकार को दोषी बता देना मेरे तुच्छ विचार में यथार्थ आलोचना नहीं कही जा सकती। शास्त्री जी मुझे क्षमा करेंगे, यदि मैं यह कहूँ कि यह तो दोषों का उद्घाटन मात्र है गुणों पर पर्दा डाल कर। अस्तु, शास्त्री जी के लेख से 'चाँद' के विशाल परिवार में ग़लत-फ़हमी न फैलने पावे, इसी भावना से ये पंक्तियाँ लिखी जा रही हैं। इनके लिखने का उद्देश्य शास्त्री जी पर आक्रमण करना नहीं है। शास्त्री जी ने अपने प्रारम्भिक वक्तव्य में कहा है कि "रामचरित-मानस की सर्वप्रियता उसकी यथार्थ आलोचना में बाधा उपस्थित करती है।" मैं शास्त्री जी से नम्र निवेदन करूँगा कि इस 'सर्व-प्रियता' ने यथार्थ आलोचना में न कभी रोक-थाम की, न करेगी। इतना अवश्य है कि वह "पै न पिए पय रुधिर प्रिय, लगी धेनु थन जोंक" वाले दोष-दर्शियों के लिए अङ्कुश का कार्य करती है, और वह आवश्यक भी है। यथार्थ आलोचना करने वाले सत्समालोचकों के लिए गोस्वामी जी ने स्वयम् ही इतने व्यापक अधिकार दे रक्खे हैं, जितने शायद ही किसी दूसरे ग्रन्थकार ने न दिए होंगे। देखिए—

जो अनीति कछु भाषौं भाई।
तो मोहि बरजहु भय बिसराई॥

—उ० कां०

करहु मनोहर मति अनुसारी।
सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी॥

—बा० कां०

शास्त्री जी का गोस्वामी तुलसीदास जी पर दूसरा ऐतराज़ यह है कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने 'रामचरित-मानस' को 'नाना पुराण निगमागम सम्मत' बता कर भी इसमें शास्त्र-विरुद्ध बातें लिख दी हैं। ऐसी बातें खोजने से बहुत मिल सकती हैं, यह हो सकता है। परन्तु मेरा पूर्ण विश्वास है कि रामायण के विषय को आदि से अन्त तक मनन करने से और पूर्वा पर प्रसङ्ग का ध्यान रखने से उन सब शङ्काओं का समाधान भी

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शास्त्रानुकूल हो जायगा। शास्त्री जी के दूसरे आक्षेप ये हैं :—

(१) गोस्वामी जी ने स्त्री-जाति के विषय में जो सम्मति दी है, उससे कोई भी विद्वान् शायद ही सहमत हो।

(२) आप स्त्री-जाति में दोष ही दोष देखते हैं—गुण एक भी नहीं। और

(३) जब-जब आपको स्त्रियों की निन्दा का मौक़ा मिलता है, तब-तब आप उस मौक़े से नहीं चूकते।

अपने कथन को पुष्ट करने के लिए शास्त्री जी ने आरण्य, सुन्दर तथा लङ्का-काण्ड की तीन-चार चौपाईयाँ उद्धृत की हैं।

"सहज अपावन नारि" आरण्य-काण्ड के इस प्रसिद्ध सोरठे का सिर्फ़ एक चरण उद्धृत कर गोस्वामी जी को दोषी ठहराना सर्वथा अनुचित है। इस आक्षेप का उत्तर तो सोरठे के शेष तीन चरणों में ही मिल जाता है। पूरा सोरठा इस प्रकार है :—

सहज अपावन नारि,*पति सेवत शुभगति लहहिं
यश गावत श्रुति चार, अजहुँ तुलसि का हरिहि प्रिय

—आ० का०

मैं अनुरोध करता हूँ, शास्त्री जी इस बात पर विचार करें कि उस "सहज अपावन नारि" का चारों वेदों द्वारा यशोगान कराने की क्या आवश्यकता है? और उस अपावन नारि को गोस्वामी जी ने अपने आराध्य देव श्रीहरि के मस्तक पर तुलसी बनाकर क्यों बैठा दिया? उसे नीचे क्यों नहीं ढकेल दिया। वे तो आपके मत से 'स्त्री-दोषी' थे, फिर क्या कारण है जो उन्होंने अपनी ख़ास चिढ़ को दबा कर नारी-जाति को ईश्वर-पूज्य तक बना डाला? गोस्वामी जी मातृ-जाति पर कितनी उत्कृष्ट भक्ति रखते थे, इसके लिए दूसरे प्रमाण की आवश्यकता नहीं—यही सोरठा पर्याप्त है।

ढोल गँवार शूद्र पशु नारी।
सकल ताड़ना के अधिकारी॥

—सु० का०

नारि स्वभाव सत्य कवि कहहीं।
अवगुण आठ सदा उर रहहीं॥
साहस अनृत चपलता माया।
भय अविवेक अशौच अदाया॥

—ल० का०

भ्राता पिता पुत्र उर गारी।
पुरुष मनोहर निरखत नारी॥

—आ० का०

इन वाक्यों से गोस्वामी जी का उद्देश समस्त स्त्री-जाति को कलङ्कित करने का नहीं है, उन्होंने तो जहाँ जैसा प्रसङ्ग उपस्थित हुआ है, परिस्थिति के अनुकूल वहाँ वैसा वर्णन किया है। जहाँ स्त्री उनको मर्यादा का उलङ्घन करती हुई दिखलाई दी है, वहाँ उन्होंने उस स्त्री को अवश्य फटकार बतलाई है—जो उस अवस्था के अनुसार उचित ही था। और ऐसा करके गोस्वामी जी ने समाज का कोई अपराध नहीं किया, उल्टा समाज को उच्छृङ्खलता से बचाया है। ऐसी दशा में सभी विचारशील सज्जन गोस्वामी जी की नीति से सहमत होंगे। यदि गोस्वामी जी को स्त्री-जाति से ख़ास चिढ़ रहती तो वे फिर नारी-समाज के उत्कर्ष पर एक शब्द भी न लिखते। पर ऐसा नहीं है। उन्होंने प्रसङ्ग उपस्थित होने पर स्थान-स्थान पर गृहदेवियों का गौरव-गान भी किया है, जिसका उल्लेख मैं आगे करूँगा। रही दोष वर्णन की बात, सो गोस्वामी जी नारी-समाज में ही क्यों, विश्व भर में दोष और गुण दोनों ही देखते हैं। यथा—

जड़ चेतन गुण दोषमय, विश्व कीन्ह करतार।
सन्त हंस गुण गहहि पय, परिहरि वारि विकार॥

कहहिं सन्त मुनि वेद पुराना।
विधि प्रपञ्च गुण अवगुण साना॥

—बा० का०

---

* हमारा विचार है कि इन पंक्तियों द्वारा गोस्वामी जी का उद्देश्य पातिव्रत्य की महत्ता का निदर्शन मात्र है। उनका तात्पर्य यह है कि यदि कोई स्त्री किसी भी भाँति से अपवित्र हो गई हो तो भी वह पति-सेवा द्वारा शुभगति प्राप्त कर सकती है। कुशल कवि ने पातिव्रत्य-धर्म की उत्कृष्टता दिखाने के लिए ही 'सहज' शब्द का प्रयोग किया है।

—स० 'चाँद'

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निम्न-लिखित उद्धरणों को देखकर मुझे इस बात पर इतना ज़ोर देने का और फिर कोई कारण नहीं रहता कि गोस्वामी जी स्त्री-जाति के ही निन्दक थे।

इन्द्र की निन्दा—

काक समान पाक रिपुरीती।
छली मलीन कतहुँ न प्रतीती॥

—अयो० का०

चन्द्रमा की निन्दा—

कोक शोकप्रद पङ्कज द्रोही।
अवगुण बहुत चन्द्रमा तोही॥

ब्रह्मा की निन्दा—

विधि न सकेऊ सह मोर दुलारा।
नीच बीच जननी मिस पारा॥

अपने इष्टदेव विष्णु की निन्दा—

असुर सुरा विष शङ्करहिं, आप रमा मणि चार।
स्वारथ साधक कुटिल तुम, सदा कपट व्यवहार॥

इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि गोस्वामी जी इन्द्र, चन्द्रमा, ब्रह्मा और विष्णु के द्वेषी थे अथवा इन्हें इन्द्र, चन्द्रमा, ब्रह्मा तथा विष्णु से ख़ास चिढ़ थी। हाँ, हम उस अवस्था में कवि को किसी का द्वेषी ठहरा सकते हैं, जब कि वह उसके विरुद्ध ही विरुद्ध लिखता रहे और प्रसङ्ग उपस्थित होने पर भी उसके वास्तविक गुणों का वर्णन न करे। यदि वह दोष दर्शाने के पश्चात् प्रसङ्ग उपस्थित होने पर गुणों का भी दर्शन कराता है, तो वह केवल छिद्रान्वेषी नहीं कहा जा सकता। गोस्वामी जी तो इन्द्र और विष्णु तक को कुपथ पर जाते देख कर उन्हें खरी-खरी सुनाने में नहीं हिचकते। और जब वह उनमें गुणों को देखते हैं तो उनकी सराहना से भी मुँह नहीं मोड़ते। यह है समालोचक कवि की यथार्थ आलोचना। ऊपर के चार पात्रों में जब कवि को गुणों का दर्शन हुआ तो निस्सङ्कोच भाव से उनकी सराहना की। देखिए—

इन्द्र के लिए—

देव सकल सुरपतिहिं सिहाहीं।
अाज पुरन्दर सम कोऊ नाहीं॥

चन्द्रमा के लिए—

पूरब दिशि गिरि गुहा निवासी।
परम प्रताप तेज बल रासी॥
मत्त नाग तम कुम्भ विदारी।
शशि केशरी गगन बनचारी॥

ब्रह्मा के लिए—

बन्दौं विधिपद रेनु भवसागर जिन कीन्ह यह।
सन्त सुधा शशि धेनु, प्रगटे खल विष वारुणी॥

विष्णु के लिए—

दूषण रहित सकल गुण राशी।
श्रीपति पुर बैकुण्ठ निवासी॥

ठीक इसी प्रकार जहाँ गोस्वामी जी ने स्त्रियों में ग़लती देखी, उन्हें मार्ग पर लाने के सदुद्देश्य से उनकी निन्दा की और जब उनको सन्मार्ग पर देखा, उनकी प्रशंसा में भी कमी नहीं की। गोस्वामी जी ने आदर्श-पतित पुरुष-समाज के साथ ही कौन सी रिआयत की है?—

सुर नर मुनि सब की यह रीती।
स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥

—कि० का०

यहाँ पुरुष-समाज को ही स्वार्थी बताया है।

डिगै न शम्भु शरासन कैसे।
कामी बचन सती मन जैसे॥

—बा० का०

देखिए पुरुष-समाज की कामुकता का नङ्गा नाच और सती के मन की अचलता।

कुलवन्त निकारहिं नारि सती।
गृह आवहिं चेरिहिं चोर गती॥

—उ० का०

उन पतित पुरुषों की, जो अपनी गृहदेवियों को त्याग कर गली-गली झाँकते फिरते हैं, इससे अधिक क्या निन्दा की जा सकती है?

सब अनुचरी कहौ प्रण मोरा।
एक बार विलोक मम ओरा॥

—सु० का०

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसमें पुरुष-समाज की निर्बलता और सती की वन्दनीय दृढ़ता का कितना उत्तम चित्र खींचा गया है !

मूढ़ तोहिं अतिशय अभिमाना।
नारि सिखावन सुनेसि न काना॥

—कि० का०

गोस्वामी जी तो स्त्री को पुरुष का पथ-प्रदर्शक बताते हैं और यह भी कहते हैं कि उसकी सम्मति का अनादर करने से पुरुष का नाश होता है।

इसी प्रकार के और भी कई वाक्य उद्धृत किए जा सकते हैं, जिनमें पुरुष-समाज के पतन पर उसकी कड़ी आलोचना की गई है और महिला-समाज के उत्कर्ष पर उनका यशोगान किया गया है। गोस्वामी जी आचार-भ्रष्टता के विरोधी थे। उन्होंने सदाचार-हीन पुरुष-स्त्री दोनों ही की पक्षपात छोड़ कर निन्दा की है। व्यभिचार का समर्थन, संसार में न तो कभी हुआ, न कभी होगा। ऐसी अवस्था में "सहज अपावन नारि" को उद्धृत कर यह कह देना कि वे स्त्री-जाति को ही अपवित्र मानते थे, उनके साथ अन्याय करना होगा। उनकी स्थिति निम्न-लिखित उद्धरणों से पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है:—

पति वञ्चक परपति रति करई।
रौरव नर्क कलप शत परई॥
क्षण सुख लागि जन्म शत कोटी।
दुख न समझ तेहि सम कोउ खोटी॥

—आ० का०

शोचिय पुनि पति वञ्चक नारी।
कुटिल कलह प्रिय इच्छाचारी॥
सेवक शठ नृप कृपण कुनारी।
कपटी मित्र शूल सम चारी॥

—आ० का०

लोभी लम्पट लोलुप चारा।
जे ताकहिं परधन पर दारा॥
पाउँ मैं तिनकी गति घोरा।
जो जननी यह सम्मत मोरा॥

—अ० का०

पर द्रोही पर दार रत, पर धन पर अपवाद।
ते नर पाँवर पाप मय, देह धरे मनुजाद॥

पर तिय लम्पट कपट सयाने।
मोह द्रोह ममता लपटाने॥
ते अभेद वादी ज्ञानी नर।
देखा मैं चरित्र कलियुग कर॥
कलप-कलप भर इक-इक नरका।
परहिं जे दूषहिं श्रुति कर तरका॥

—उ० का०

काहुहिं सुमति कि खल सँग जामी।
शुभ गति पाव कि परतिय गामी॥

—उ० का०

और फिर दूसरी ओर हम यह भी देखते हैं कि रामायण में उन स्थलों की भी कमी नहीं है, जहाँ गोस्वामी जी ने सती देवियों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। देखिए—

पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ।
सुयश धवल जग कहि सब कोऊ॥
जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी।
गवन कीन्ह विधि अण्ड करोरी॥
गङ्ग अवनि थल तीन बड़ेरे।
यह किय साधु समाज घनेरे॥

—अ० का०

धन्य सो देश जहाँ सुरसरि।
"धन्य नारि" पतिव्रत अनुसरि॥

—उ० का०

इतने प्रमाणों के रहते हुए गोस्वामी जी को लाञ्छन लगाना, और यह कहना कि वे स्त्री-जाति को 'स्वभाव से अपवित्र' मानते थे, सत्य की हत्या करना और सरासर अन्याय करना नहीं तो क्या है ? रामायण में यदि हमें

ढोल गँवार शूद्र पशु नारी।
यह सब ताड़न के अधिकारी॥

मिलता है, तो—

अनुज बधू भगिनी सुत नारी।
सुन शठ ये कन्या सम चारी॥
इन्हें कुदृष्टि विलोकिय जोई।
ताहि बधे कछु पाप न होई॥

भी मिलता है। जिस प्रकार से दण्ड का विधान दुराचारी

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुरुष के लिए किया गया है, उसी प्रकार की ताड़ना दुराचारी स्त्रियों के लिए की गई है। सती-साध्वी को ताड़ना देना उचित है, यह तो साधारण बुद्धि का मनुष्य भी न कहेगा, फिर गोस्वामी जी को अपराधी ठहराना तो सूर्य पर धूल फेंकने की भाँति विफल-चेष्टा ही सिद्ध होगी। सूर्पणखा की नाक काटने के प्रसङ्ग में जो "पुरुष मनोहर निरखत नारी" इत्यादि कहा है, वह भी सूर्पणखा सरीखी कुलटा नारियों के लिए ही है, जो अधेड़ से भी गई बीती होकर पुत्र के समान राम से अपनी काम-पिपासा ज़बरदस्ती शान्त कराना चाहती हैं, न कि "मध्यम पर पति देखहिं कैसे, भ्राता पिता पुत्र निज जैसे" वाली स्त्रियों के लिए। सूर्पणखा की बेहयाई को देखते हुए गोस्वामी जी को हम किसी प्रकार दोषी कह नहीं सकते। यह वाक्य कुलटा के प्रसङ्ग में कहे गए हैं। यदि हम यह कहें कि यह सारी महिला-जाति पर लागू होते हैं, तो हम अपनी ही अविवेक-बुद्धि और अविचारशीलता का परिचय देते हैं।

ऊपर जो कुछ कहा जा चुका है, उससे इस कथन की सत्यता कि "गोस्वामी जी स्त्री-जाति में दोष ही दोष देखते हैं—गुण एक भी नहीं" अच्छी तरह प्रकट हो जाती है। अब इस उद्धरण पर विचार कजिए—

वृद्ध रोगवश जड़ धन हीना।
अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किय अपमाना।
नारि पाव यमपुर दुख नाना॥

—रा० का०

अर्थ स्पष्ट है। सीधे-सादे अर्थ की तोड़-मड़ोर करना कहाँ का न्याय है? सीता जी से अनुसूया देवी कहती हैं—'यदि पति रोगवश वृद्ध सा हो जावे या वृद्ध हो गया हो तो भी अर्द्धाङ्गिनी उसकी विवशता के लिए शक्तिहीन पति का अपमान न करे। पतिदेव समझ कर उसकी पूजा करे।' इसमें कौन सी कड़वी घूँट बेचारी छोकरियों के गले उतारी गई है। पुरुष का पक्षपात तो तब होता यदि इसमें यह कहा गया होता कि वह अभी विवाहित होकर आई हो अथवा छोकरी हो। विवाह और दाम्पत्य जीवन के सम्बन्ध में भारतीय आदर्श पुरुष-स्त्री दोनों ही के सामने एक है। रामायण में इसका इतना स्पष्ट विवेचन है कि उसको अध्ययन करने के पश्चात् गोस्वामी जी के स्त्री-जाति विषयक विचारों के लिए किसी भी प्रकार के सन्देह को अपने हृदय में स्थान देना असम्भव हो जाता है। देखिए—

एकै धर्म एक व्रत नेमा।
काय, वचन, मन पति-पद प्रेमा॥
एक नारि व्रत रत सब झारी।
ते मन वच क्रम पति हितकारी॥
मोहिं अतिशय प्रतीत मन केरी।
जेहि सपनेहु पर नारि न हेरी॥

इतने पर भी यदि किसी महानुभाव को "वृद्ध रोगवश जड़....." में बुढ़ऊ बाबा की सिफ़ारिश की गन्ध आवे तो मैं उनके सामने निम्न-लिखित छन्द को रखकर उनसे करबद्ध हो, प्रार्थना करूँगा कि वे इसे भी सूँघ देखें :—

कस कीन्ह वर बौराह बिधि,
जेहि तुमहिं सुन्दरता दई।
जो फल चहिय सुर तरुहि सों,
वरवश बबुरहिं लागई॥
तुम सहित गिरि तें गिरों,
जल निधि में गिरों पावक जरों।
घर जाहु अपयश होय जग,
जीवित विवाह नाहीं करों॥

—रा० का०

यहाँ तो सत्याग्रह के साथ-साथ जीवन की भी बाज़ी लगा दी गई है। और कितनी ज़ोरदार आवाज़ में—पुरुष ने नहीं, कन्या की माता ने उसका खुल्लम-खुल्ला विरोध किया है। इसके अतिरिक्त—

जो घर वर कुल होय अनूपा।
करिय विवाह सुता अनुरूपा॥
नतु कन्या बरु रहे कुँवारी।
कन्त उमा मम प्राण पियारी॥

—रा० का०

को देखते हुए किसका साहस होगा कि गोस्वामी जी पर दोषारोपण कर सके।

यह कथन भी कि "गोस्वामी जी स्त्री-जाति में विद्या न देख कर, मूर्खता ही देखते हैं" उतना ही असत्य और भ्रमात्मक है। रामचरित-मानस के पाठक

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जानते होंगे कि रामायण में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की विद्वत्ता का कहीं अधिक वर्णन है।

बालकाण्ड में पार्वती जी की विद्वत्ता पर सात महर्षियों का निरुत्तर होकर उन्हें शिर झुकाना, जनकपुर की युवतियों की विद्वत्तापूर्ण बातचीत। अयोध्याकाण्ड में मन्थरा की कूट राजनीतिज्ञता, कैकेयी की दूरदर्शिता, बन जाने के लिए सीता जी का पाण्डित्यपूर्ण अमर-भाषण, सुमित्रा का लक्ष्मण को उपदेश, चित्रकूट में जनक तथा दशरथ की राजमहिषियों की दर्शन-शास्त्र की चर्चा। आरण्यकाण्ड में अनुसूया का सीता को संसार-प्रसिद्ध उपदेश, शूर्पणखा की रावण को राजनीति की शिक्षा किष्किन्धाकाण्ड में तारा का बालि को हितोपदेश, स्वयं-प्रभा की बानरों को सान्त्वना व शक्ति-प्रदर्शन। सुन्दर काण्ड में त्रिजटा की विवेक-पूर्ण भविष्य-वाणी, सीता की रावण को फटकार और लङ्का-काण्ड में मन्दोदरी का रावण को विद्वत्तापूर्ण आदेश, × × ×यह सब इस बात के प्रमाण हैं कि तुलसीदास जी स्त्रियों में विद्या भी देखते थे। इतना ही नहीं, गोस्वामी जी के विचार से भील-किरातों की स्त्रियाँ भी सुन्दर कल्पनाएँ कर सकती थीं। देखिए—

इनहिं देखि विधि मन अनुरागा।
पटतर योग बनावन लागा॥
कीन्ह बहुत श्रम एक न आए।
तेहि ईर्ष्या बन आन दुराए॥

—अ० का०

कितनी दूर की सूझ है?

निपट निरङ्कुश निठुर निशङ्क।
जेहि शशि कीन्ह सरुज सकलङ्क॥
रूख कलप तरु सागर खारा।
तेहि पठए बन राजकुमारा॥

—अ० का०

कल्पना की कोमलता का तो अनुभव कीजिए।

सुनिय सुधा देखिए गरल, सब करतूत कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सुकृत मराल॥

—अ० का०

यह है विधि-विधान की तात्विक समालोचना। सीधे-सादे शब्दों में दार्शनिक मर्म है।

अब देखिए, गोस्वामी जी की स्त्री-जाति के प्रति सहानुभूति और हितैषिता और अनुभव कीजिए उनके उच्च भावों को—

कत विधि सृजी नारि जग माहीं।
पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं॥

—बा० का०

महिलाओं की पराधीनता पर कितनी समवेदना प्रकट की गई है?

शम्भु कीन्ह संग्राम अपारा।
दनुज महाबल मरे न मारा॥
परम सती असुराधिप नारी।
तेहि बल ताहि न जितहिं पुरारी॥

—बा० का०

यह गोस्वामी जी की सती के लिए श्रद्धाञ्जलि है।

को प्रभु सँग मोहिं चितवन हारा।
सिंह बधुहिं जिमि शशक सियारा॥

—अ० का०

देखिए वीरबाला की निर्भीकता!

बन्दौं कौशिल्या दिशि प्राची।
कीरति जासु सकल जग माची॥
तुम गुरु विप्र धेनु सुर सेवी।
तस पुनीति कौशिल्या देवी॥
सुकृती तुम समान जग माहीं।
भयऊ न है कोऊ होबऊ नाहीं॥

—बा० का०

इसमें मनुजी के "यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" का भाव है।

इस प्रकार के और भी बहुत से उद्धरण दिए जा सकते हैं, जिनमें गोस्वामी जी ने गृहदेवियों की उत्कृष्टता दिखाने में अपनी असीम उदारता का परिचय दिया है।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देवर और भावज--व्यंग चित्रावली

[तब और अब]

(१)

मन पवित्र है तब भी लक्ष्मण चलते हैं मूँदे लोचन।
भ्रातृ, भ्रातृ-जाया सुभक्ति से पूरित है प्रति शोणित-कण !!
पद-चिन्हों पर श्रीसीता के पड़ न जायँ पग है यह ध्यान।
धन्य-धन्य आदर्श अनुज वह, धन्य बड़ों का वह सम्मान !!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(२)

दिखलाता है चित्र बुरा यों देवर भावज को, क्या जान ?
दूषित भाव उठाना है यह, अथवा है उसका अपमान !
भाई का मुख देख दूसरी ओर, किया अच्छा उद्योग !
इससे बढ़ कर हो सकता है, क्या शुभ-अवसर का उपयोग ?

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(३)

मग्न ज्ञान-चर्चा में लख कर, भाई-भावज को गम्भीर !
उनकी कुटी बुहार रहे हैं सुख पूर्वक श्री लक्ष्मण धीर !!
सोच रहे उनके जीवन के, विविध रहस्यों को तल्लीन !
उठते हैं मन में समोद, बहु-सेवा के सदुपाय नवीन !!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(४)

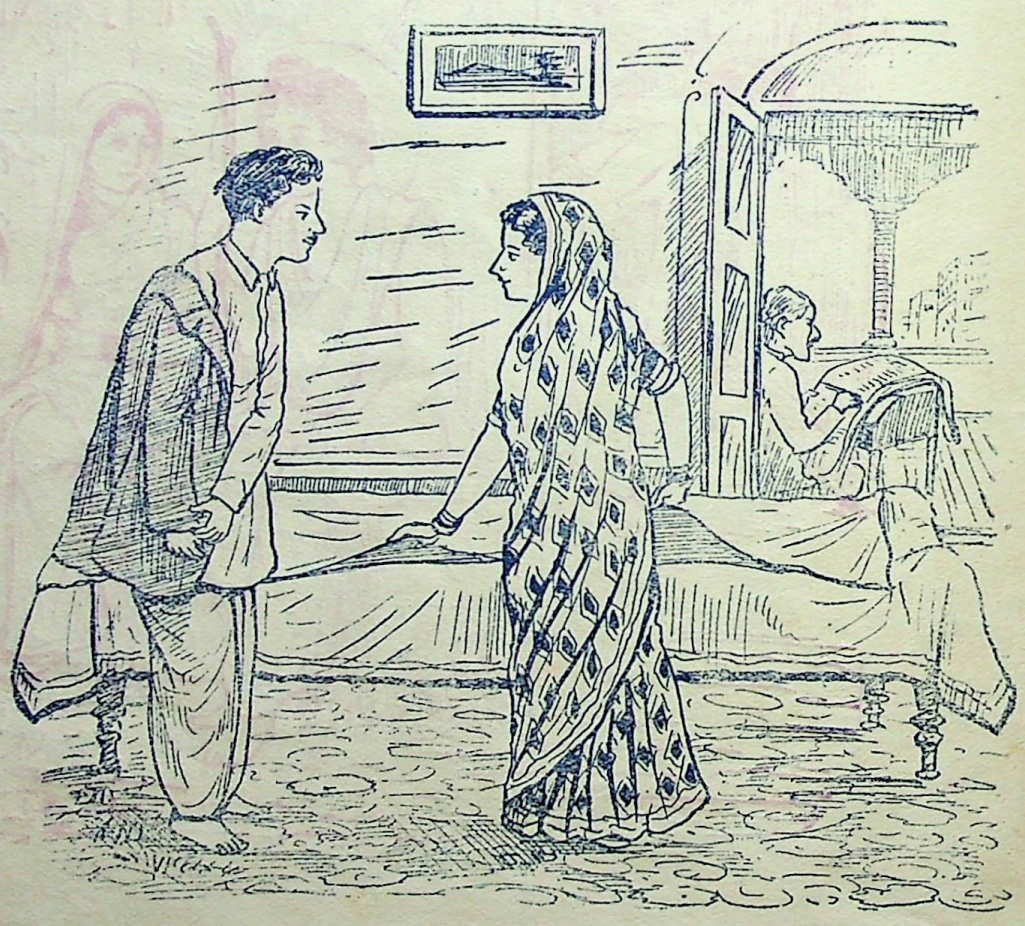

कहता है देवर भावज से, नहीं हुआ छोटा सा काम !
बिस्तर योंही पड़ा हुआ है—इसीलिए औरत बदनाम !!
बैठी रहती है बस घर में, गप्प लड़ाती बस दिन-रात !
हुआ नाक में दम है तुझसे—फिर न कभी हो ऐसी बात !!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(५)

गए राम, सुख से करते हैं, माता की रक्षा लक्ष्मन !
और हो रहा है मन ही मन, भ्राता के गुण का कीर्तन !!
शील-सिन्धु हैं कर सकते हैं, मुख सीता की ओर नहीं !
उनका-सा क्या अनुज जगत में, मिल सकता है और कहीं

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(६)

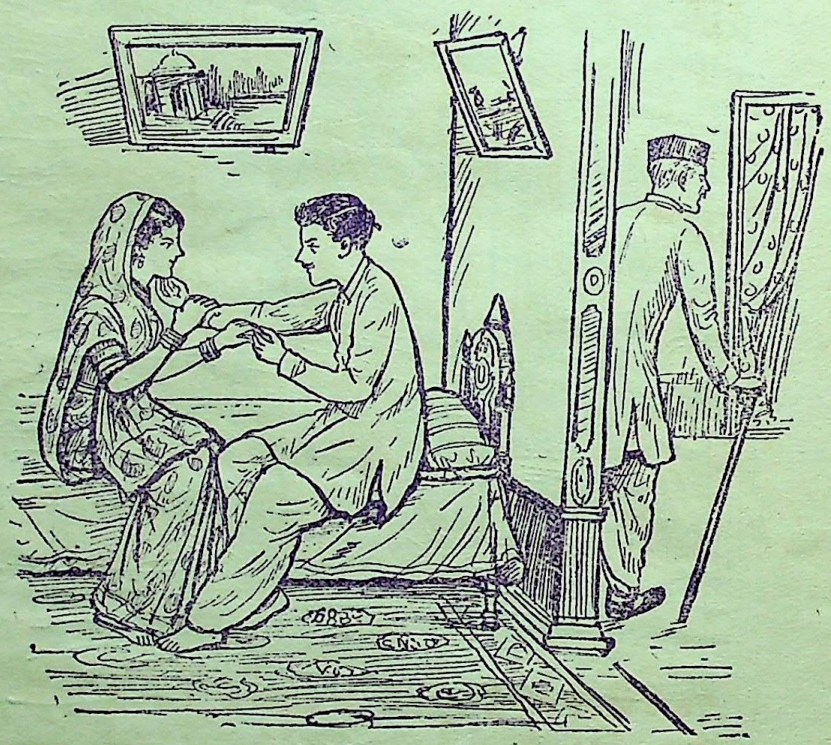

भाई घर से बाहर निकले—बस फिर हुआ अनुज का राज !
कहा काम छोड़ो भावज से, बैठो यहाँ सजा कर साज !!
'आधी भावज आधी पत्नी' का प्रसिद्ध ही है व्यवहार !
और नहीं तो कर-स्पर्श का चिबुक-स्पर्श का है अधिकार !!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(७)

राम पूछते हैं लक्ष्मण से निज नैनों में जल भर कर!
'सीता का ही कुण्डल है यह?' तब देते लक्ष्मण उत्तर—
"कुण्डल को कैसे पहचानूँ—कैसे कोई आभूषन!
नूपुर को ही देख सके हैं, इस पद-सेवक के लोचन।"*

---

* कुण्डलं नैवजानामि, नैव जानामि भूषणम्।
नूपुर एव जानामि नित्य पादाभिवन्दनात्॥

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(८)

किन्तु आजकल के समाज के प्रति गृह में बस है यह हाल !
भाभ गूँथते, देवर गिनते भावज के सब सिर के बाल !!

* * *

करो प्रचार न कामुकता का रख कर ऐसे रीति-रिवाज !
नहीं अन्यथा कभी चलेगा उन्नति-पथ पर बृहत् समाज !!

—आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मानसिक व्यभिचार

[ले० श्री० देवकीनन्दन जी 'विभव']

" Nature is made better by no mean
But Nature makes that mean...
This is an art,
Which does mend Nature, change it rather, but
The art itself is nature "

—*Shakespeare.*

प्रकृति की नाट्यशाला के दो अभिनेता हैं—स्त्री और पुरुष। प्रकृति ने अपने सृष्टि-सञ्चालन के महान् कार्य के लिए इन दो विशाल शक्तियों में चुम्बक के सदृश एक आश्चर्यमयी शक्ति को जन्म दिया है। प्रकृति इस आकर्षण से दो कार्य लेती है (१) प्रजनन (२) मानव-जीवन का विकास। जब समाज का वर्तमान सङ्गठन नहीं हुआ था, जब तक मानव-मस्तिष्क ने अपनी रक्षा के सिद्धान्त पर नैतिक नियम नहीं बनाए थे, उस समय इस पारस्परिक आकर्षण का प्रायः एक-मात्र उपयोग प्रजनन-सम्बन्धी कार्य ही था। उस समय मानव-प्रकृति के श्रेष्ठ गुणों का अवतरण नहीं हुआ था, इसलिए दूसरा मन्तव्य अपने बहुत ही सूक्ष्म रूप में था। उस समय वहशी और असभ्य जातियों में स्वच्छन्द सम्बन्ध, बहुपत्नित्व तथा बहुपतित्व प्रथाएँ प्रचलित थीं और जिन जातियों में सभ्यता की रश्मियों का प्रवेश नहीं हुआ है, वहाँ अब भी ये सब प्रथाएँ पाई जाती हैं। असभ्य जातियों में स्त्री और पुरुष का सहयोग केवल शारीरिक था और शारीरिक आकर्षण ही एक दूसरे को इकट्ठा करने का साधन था। इस नियम में भी एक बाधा थी, वह था पुरुषों का स्त्रियों से अधिक शारीरिक बल। जिस पुरुष में अधिक शक्ति होती थी वही जिस स्त्री को चाहता, रख सकता था। इस तरह एक बलवान् मनुष्य के पास सैकड़ों और हज़ारों ही सुन्दर युवतियाँ इकट्ठा हो जाती थीं और यदि कोई उससे अधिक बलवान आ भिड़ता था तो वह उसके धन और भूमि के साथ-साथ इन स्त्रियों को भी छीन कर अपना माल बना लेता था। प्रसिद्ध इतिहास-लेखक हेराडोट्स एक प्राचीन लिबियन जाति के विषय में कहता है—

" With whom the custom obtains of bringing all women about to become brides before the king, that he may choose such as are agreeable to him"

एक दूसरी जाति की बाबत वह कहता है—

When a Nasamonian man takes his first wife, the custom is for the bride to have sexual relations during the first night, with each of the guests. Each one afterwards gives her a present which he has brought from home"

इसी तरह कुछ दक्षिणी अमेरिकन इण्डियनों में मुखिया अथवा वैद्य को एक नव-विवाहिता वधू के साथ प्रथम रात व्यतीत करने का अधिकार प्राप्त है। कुछ ऐस्कीमो जातियों में भी यह प्रथा प्रचलित है। यही क्यों, भारतवर्ष के भी कुछ लोगों में किसी समय वर से पहले सोहागरात के लिए ब्राह्मणों को बुलाया जाता था!

कहने का तात्पर्य यह है कि स्त्रियों की शारीरिक कम-ज़ोरी ने आदि काल से ही उन पर पुरुषों का दासत्व लाद दिया। और पुरुष उन पर उसी तरह आधिपत्य समझने लगे जिस तरह अपनी भूमि, बैल और नाज पर समझते थे। उस समय मनुष्य ने स्त्री और पुरुष के पारस्परिक मानसिक सहयोग को नहीं समझा था, उस समय पुरुष स्त्री को केवल अपनी कामुकता शान्त करने का साधन समझता था। जिस तरह भूमि और नाज का उपयोग उसकी क्षुधा-शान्ति के लिए था, उसी तरह स्त्री उसकी काम-पिपासा को तृप्त करने का एक साधन मात्र थी। जिस तरह एक बलवान् मनुष्य भूमि और नाज का अधिक भाग अपने अधिकार में कर सकता था, उसी तरह वह अपना अधिकार समझता था कि झुण्ड की झुण्ड स्त्रियाँ इकट्ठी करके अपने उपयोग में रख सके। उस समय उसके इस अधिकार को नीचा समझने के लिए कोई नैतिक या सामाजिक बाधा नहीं थी—यह उसका जन्मसिद्ध अधिकार था और इस अधिकार का उपयोग वह अपने लिए अत्यन्त आवश्यक समझता था!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसका प्रयोग हम सामूहिक विवाह में भी देखते हैं। उस समय झुण्ड के झुण्ड फिरने वाले लोग अपने उपयोग के लिए कुछ स्त्रियाँ रख लेते थे और किसी समय, किसी पुरुष का किसी भी स्त्री से शारीरिक सम्बन्ध हो सकता था, इसमें कोई बाधा नहीं थी।

मनुष्य के मस्तिष्क का ज्यों-ज्यों विकास हुआ, त्यों-त्यों उसे अपने शारीरिक सहयोग के फल-स्वरूप उत्पन्न हुई सन्तान से अपने सम्बन्ध का अनुभव होने लगा और उनमें मातृत्व और पितृत्व के भाव उत्पन्न हुए। सन्तान के मोह ने मनुष्य की स्वच्छन्द प्रवृत्ति पर पहली बार आघात किया और उसे गृह-जीवन और स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सहयोग के स्थायी होने की आवश्यकता दिखलाई देने लगी। अब पुरुष और स्त्री में मानसिक सहयोग, जो अभी गौणावस्था में था, जाग्रत होने लगा, मनुष्य को मालूम हुआ कि हमारा सम्बन्ध प्रजनन के अतिरिक्त कुछ और भी है। इन विचारों को धीरे-धीरे विकास मिलता गया और हम जो विभिन्न नैतिक और सामाजिक नियम देखते हैं, वह इसी विकास के फल हैं।

समाज के वर्तमान सङ्गठन के कारण हम उक्त प्रथाओं को असभ्य और हेय समझने लगे हैं और समय के अनुभव ने हमें सिखला दिया है कि समाज का और हमारा कल्याण इसी में है कि स्त्री-पुरुष का यह सम्बन्ध अधिक चिरस्थायी हो। समाज में व्यभिचार के प्रति हम जो विरोध देखते हैं, उसका भी कारण यही है। हम यह कह सकते हैं कि स्त्री-पुरुष के प्रत्यक्ष सम्बन्ध में उस समय से संसार ने बहुत उन्नति की है, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे हृदय भी उतने ही उन्नत हो गए हैं। इसमें सन्देह नहीं, हमारे शरीर सामाजिक बन्धन में जकड़ कर कुछ नियमों के पालन करने के लिए विवश किए गए हैं, परन्तु हमारे हृदय आज भी बेक़ाबू हैं, हमारे मानसिक विचार अब भी स्वच्छन्द काम-वासना के विषाक्त वायुमण्डल में साँस लेते हुए दिखलाई पड़ते हैं। स्त्री-पुरुषों के हृदय अब भी उतने ही अपवित्र हैं और एक दूसरे को देखते ही चञ्चल हो जाते हैं। हममें से जिन्होंने किसी तरह अपने को कायिक व्यभिचार से बचा रक्खा है, उनके भी मस्तिष्क मानसिक व्यभिचार के कीड़ों से विषाक्त हो चुके हैं। इनमें से अनेक, परिस्थिति की सहायता से कायिक व्यभिचार से बचे रहते हैं, पर मानसिक व्यभिचार तो उनके सदाचार को भी खोखला कर चुका है और कौन कह सकता है कि व्यभिचार की अनुकूल परिस्थिति में भी उनके सदाचार की यह बालू की दीवार क़ायम रह सकेगी?

एक युवक के भीतर एक युवती के देखते ही अमुक प्रकार के भावों का उठना स्वाभाविक है, यह हममें से बहुत से लोगों की धारणा हो गई है। यही क्यों, कुछ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि यदि एक युवक या युवती के हृदय में एक दूसरे को देखने या मिलने-जुलने से ऐसे भावों की प्रेरणा नहीं होती तो यह किसी रोग का चिन्ह है। उन लोगों की समझ में यह नहीं आता कि युवक और युवतियाँ बिना अपने आचरण को हाथ से खोए हुए, स्वच्छ और उच्च भावों के आधार पर एक दूसरे से मिल-जुल सकते हैं। वर्तमान परिस्थिति में यह समझ में आना भी कठिन है। एक हिन्दू-युवती अगर बाज़ार से होकर निकल जाती है तो तहलक़ा मच जाता है, दूकानदार अपना काम छोड़-छोड़ कर उधर ही घूरने लगते हैं, बहुत से लोगों को खाँसी और खखारने का दौरा शुरू हो जाता है। यही क्यों, यदि कोई श्रीमती जी शिक्षित समुदाय के पास होकर गुज़र जायँ तो युनिवर्सिटी के हमारे अनेक डिग्रीधारी युवकों के भी हृदय मचल उठते हैं। उनके नेत्रों को लक़वा मार जाता है और आँख की पुतली स्थिर हो जाती है। कितने उनमें से आहें भरने और कितने ठण्डी साँसें लेने लगते हैं! इस प्रवृत्ति का अन्त यहीं नहीं हो जाता, परन्तु हम जब इसे उन लोगों के बीच में भी, जो समाज-सुधार की पताका उठाए हुए हैं, काम करते हुए देखते हैं, तो हमें बड़ा दुःख होता है। मैं अपने एक मित्र के पास गया—आप विद्वान् हैं, एक पत्र के सम्पादक हैं, आदर्शवादी हैं और स्त्री-समाज के अधिकारों की रक्षा के लिए क्रान्तिकारी लेख लिख सकते हैं। समय सायङ्काल का था और उनका आसन उनकी छत पर ही जमा हुआ था। इधर-उधर की बातचीत होने के बाद मेरे उन प्रतिष्ठित मित्र ने मेरी पीठ पर थपकी देते हुए कहा—"देखते हो! सामने क्या है?" मैंने देखा तो सामने के मकान का एक जँगला खुला हुआ दिखाई दिया, और एक नवयुवती बैठी हुई आकाश में पक्षियों को उड़ते हुए देख रही थी। सम्भव है, उधर

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ध्यान होने से और हमें न देखने के कारण उसने अपने बालों की ओर ध्यान न दिया हो और वे तनिक खुल गए हों। मैंने सम्मान से अपने नेत्र नीचे कर लिए। मेरे मित्र बोले 'कुछ समझे ?' मैंने कहा 'मैं तो कोई विशेष बात नहीं समझ सका, रहस्य क्या है ?' इस पर उन्होंने एक विशेष आकृति से हँसते हुए कहा—अजब घोंघा-बसन्त हो ! ××× उधर हमें ठहाका मार कर हँसते देख उस बहिन का ध्यान हमारी ओर आकर्षित हुआ, बेचारी घबरा कर उठी और उसने तुरन्त जँगला बन्द कर दिया। बाद को मुझे मालूम हुआ कि अब वह बहिन कभी उधर नहीं आती और न अब वह जँगले का द्वार ही खुलता है। पुरुष-समाज की अनुदारता ने, सम्भव है, उस बहिन के स्वच्छ हवा में साँस लेने के उस अन्तिम साधन को भी छीन लिया हो ! क्या हम लोग इतने कापुरुष हो गए हैं ? क्या हमारा मस्तिष्क इतना विपाक्त हो गया है ? क्या हम इतने पतित हो गए हैं !!

हम भारतवासियों का कुछ ऐसा विचार हो गया है कि अन्य दूसरे देश आचरण-हीन हैं और हमारा स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी सङ्गठन आदर्श है। हम यदि यह भी मान लें कि यूरोप और अमेरिका में हमारे देश से अधिक व्यभिचार है, तब भी एक बात तो हमें स्वीकार करनी ही पड़ेगी कि वहाँ के पुरुषों के हृदय में स्त्री-समाज के प्रति साधारण व्यवहार में अधिक उच्च विचार मौजूद हैं और वे स्त्री-समाज का सम्मान करना जानते हैं। एक स्त्री के आने पर पुरुषों का उसके लिए मार्ग छोड़ देना, उसके साथ अत्यन्त नम्रता से बात करना, उसकी कोई चीज़ गिर जाने पर सभ्यता से उसे उठा कर दे देना आदि नियम ऐसे हैं, जिनकी केवल प्रशंसा ही की जा सकती है। और हमारे समाज में ? कई वर्ष हुए मैं 'प्रेम' पत्र का सम्पादन करने के लिए वृन्दावन में रहता था। वहाँ हिंडोलों के दिनों में भारी भीड़ होती है। मैं भी तमाशा देखने के लिए निकला। वहाँ एक प्रतिष्ठित व्यक्ति—एक उच्च सरकारी कर्मचारी—भी अपनी दो नवयुवती लड़कियों को दो चपरासियों के साथ लेकर आए हुए थे। रास्ता खचा-खच भरा हुआ था, चपरासी आदमियों को इधर-उधर करके रास्ता बनाने लगे। पीछे से युवकों की एक मण्डली आई—सभी शिक्षित और सभ्य प्रतीत होते थे। ये लोग आते ही धक्कम-धुक्का में योग देने लगे। इस रेल-पेल में वह सज्जन और उनके चपरासी आगे निकल गए और लड़कियाँ युवक-मण्डली में पड़ गईं। मनुष्य की पाशविक प्रकृति का ताण्डव-नृत्य ! राक्षसी प्रवृत्ति का उग्र हास्य ! ओह ! मेरा ख़ून उबलने लगा। एक युवक हँसते-हँसते उन नवयुवतियों को दूसरी ओर ढकेल देता था, दूसरे युवक फिर इस ओर ढकेल देते थे ××× नवयुवतियों के भयभीत नेत्र याचनापूर्ण थे, परन्तु उन्हें कोई सहायता देने वाला नहीं था। दोनों ओर दुकानों और छत्तों पर खड़ा हुआ दर्शकमण्डल कौतूहल से हँस रहा था। समाज के इस नग्न नृत्य पर उनके हृदय में न शोक था, न नेत्रों में लज्जा। मेरा रक्त उबल पड़ा, क्रोध ने मेरी आँखें बन्द कर दीं—मैं भीड़ में कूद पड़ा। समाज की यह वीभत्सता मैंने इस धार्मिक उत्सव में सभी जगह पाई, मन्दिरों की सीढ़ियों पर देव-दर्शन के लिए इकट्ठी हुई भीड़-भाड़ में—सभी जगह यह पाशविक प्रवृत्ति काम कर रही थी !

किसी पर्व के दिन घाटों पर स्नान करती हुई स्त्रियों को देखने के लिए इकट्ठे हुए नवयुवकों को देखिए। दशाश्वमेध घाट, काशी में मैंने एक ऐसे ही युवक-मण्डल को हास्य करते हुए देखा। मालूम हुआ कि वे एक आदर्श विश्वविद्यालय के विद्यार्थी हैं। दुःख भी हुआ और क्रोध भी हुआ। मानसिक व्यभिचार—स्त्रियों के सम्बन्ध में पतित से पतित बातें करना ही—हम लोगों के लिए हास्य और आमोद-प्रमोद का साधन रह गया है। वे सोचते हैं कि यदि इन बातों से दिल ख़ुश हो और जब तक इन्हें कार्य-रूप में परिणत न किया जाय तब तक इनसे हानि ही क्या है ? पर वायुमण्डल के दूषित करने में समाज के आचरण पर, परोक्ष रीति से पड़ने वाले भयङ्कर परिणाम को अगर वे वहीं समझ पाते ? यदि वे समझ पाते कि मस्तिष्क और शरीर के प्रत्येक तन्तु का क्या सम्बन्ध है ? विलियम जे फीलिङ्ग का मत है—

"Indulgence in erotic thought and conversation tends to increase the seminal secretion, which must be released either by night emission, masturbation or coitus."

अर्थात्—कामुक विचारों तथा इस प्रकार के वार्तालाप में लिप्त रहने से वीर्यपात की अधिक प्रवृत्ति

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होती है और वीर्य का स्खलन आवश्यक हो जाता है, चाहे वह स्वप्न-दोष द्वारा हो, हस्त-क्रिया द्वारा हो अथवा मैथुन द्वारा। इसके परिणाम-स्वरूप देश के नवयुवकों में स्वप्न-दोष, हस्त-मैथुन आदि रोगों को हम बढ़ते हुए पाते हैं। कितने ही लज्जाशील विद्यार्थियों ने मुझसे कहा है कि उनका मस्तिष्क काम नहीं देता, उनकी शक्तियाँ तितर-बितर हो चुकी हैं, वे किसी भी कार्य को एकाग्रता से नहीं कर सकते, उन्हें अनुभव होता है मानों इस संसार में आनन्द कोई चीज़ ही नहीं है; उन्हें मालूम होता है मानों जीवन-युद्ध उन्हें पीसे डाल रहा है। युवावस्था में जब शरीर की शक्तियों का विकास होता है, जब समुद्र की उत्ताल तरङ्गों की तरह उनके रक्त में जीवन होना चाहिए, जब उनकी चाल में चञ्चलता होनी चाहिए, तब यह बेसुरा राग क्यों? अधिक छान-बीन करने पर मालूम हुआ है कि अप्राकृतिक मैथुन, हस्त-क्रिया और स्वप्न-दोष आदि ने उनके विकास को रोक दिया है, कली खिलने से पहले ही मुरझा चुकी है, बीज में जमने से पहले ही घुन लग चुका है। मालूम हुआ कि कितनों को तो एक राति में दो-दो और तीन-तीन बार तक स्वप्न-दोष हो जाता है। वे समझते हैं, यह कोई शारीरिक रोग है, जिसकी चिकित्सा वे स्वयं नहीं कर सकते। उनको क्या पता कि यह मस्तिष्क का रोग है जिसकी चिकित्सा स्वयं उनके अतिरिक्त आयुर्वेद के धुरन्धर से धुरन्धर विद्वान् भी नहीं कर सकते! क्या भारतीय समाज की फुलवाड़ी इन घुने हुए बीजों के बल पर ही खिलेगी?

शताब्दियों से सामाजिक व्यभिचार के भिन्न-भिन्न रूपों के विरुद्ध भिन्न-भिन्न प्रकार का आन्दोलन होता रहा है, पर किसी न किसी रूप में यह कीड़े अपना कार्य करते ही रहे हैं और यह समझ लिया गया है कि जब तक मनुष्य की प्रकृति ऐसी ही रहेगी तब तक व्यभिचार भी किसी न किसी रूप में अपना पञ्जा जमाए ही रहेगा। देश में व्यभिचार के गुप्त अड्डों और वेश्याओं की खुल्लमखुल्ला दूकानों को शासन और नैतिक प्रभाव से तोड़ने का आन्दोलन जन्म ले चुका है। यूरोप और अमेरिका में ऐसे आन्दोलन का सङ्गठन हुए वर्षों हो चुके हैं और वह जो कुछ अब तक कर सके हैं वह यही है कि उन्होंने व्यभिचार का रूप बदल दिया है—व्यभिचार को नष्ट नहीं कर सके। हमारी शक्तियाँ जब तक बुराई को जड़ से निकाल डालने की ओर कार्य नहीं करतीं, तब तक ऊपरी काँट-छाँट से अधिक लाभ नहीं हो सकता। झरने को स्वच्छ बनाने के लिए उसके स्रोत की ओर ही हमें अधिक ध्यान देना चाहिए।

अब संसार के बड़े-बड़े सामाजिक नेता इस बात का अनुभव करने लगे हैं कि हमें एक बहुत बड़ी सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता है—ऐसी क्रान्ति, जो हमारी वर्त्तमान स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी धारणाओं में युगान्तर उत्पन्न कर दे। जब तक हमारे मस्तिष्क स्वच्छ नहीं होते, जब तक पुरुष और स्त्री एक दूसरे को पवित्र और स्वच्छ भावों से देखने के आदी नहीं होते, तब तक वर्तमान स्थिति में कोई वास्तविक सुधार नहीं हो सकता। नवीन सन्तति के मस्तिष्क को नवीन भावों द्वारा स्वच्छ किया जाय, यही सबसे बड़ा आगामी आन्दोलन होना चाहिए।

अनेक प्राणिशास्त्र के विशारद (Biologists) इस बात को मानने लगे हैं कि स्त्री-पुरुष के भेद का कारण प्रजनन—उत्पत्ति—नहीं है, अब भी अधिकांश जीवों (Organisms) में नर-मादा जैसा कोई भी भेद नहीं है, फिर भी उनमें सृष्टि की उत्पत्ति का कार्य बड़ी उदारता से होता है। जिन जीवों में बिना नर-मादा के भेद के ही उत्पत्ति का कार्य होता है, उनमें विकास का सिद्धान्त काम नहीं करता, उनमें तो पूर्वजीव की तरह विभाग (Division) से ही नया जीव उत्पन्न हो जाता है। तो फिर सृष्टि के सञ्चालन में स्त्री-पुरुष के भेद के अस्तित्व का क्या उद्देश्य है? प्राणि-शास्त्रज्ञ विद्वान् वुड कहते हैं—

"Sex is a device for keeping up a difference of potential energy in life, by securing variation"

यह विषय भिन्न है, जिसकी विवेचना हम किसी अन्य लेख में करेंगे। हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि हमने जो यह समझ रक्खा है स्त्री-पुरुष के अस्तित्व का मूल कारण प्रजनन है, यह भ्रम है। स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सहयोग का मुख्य कार्य जीवन का विकास है।

हम घोषणा करके यह बात बतला देना चाहते हैं कि यह ग़लत है कि एक युवक के हृदय में एक युवती के देखने, स्पर्श करने या बैठने-उठने से एक विशेष प्रकार

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक है, विधि का विधान है, जिसमें हमारा कोई हाथ ही नहीं है। हमारा यही भ्रम है, जो हमारे सामाजिक सङ्गठन को पद-पद पर गिरा रहा है। हम छोटे लड़के-लड़कियों को आपस में खेलते देखते हैं, परन्तु उनमें एक दूसरे के प्रति यह भाव क्यों नहीं उत्पन्न होते? माता, बहिन एवं पुत्री के प्रति भी देखने, बात करने या स्पर्श करने से हममें उन भावों का प्रवेश नहीं होता, पर अनेक जातियों में जिनमें सभ्यता की रश्मियों ने प्रवेश नहीं किया है, अब भी भाई-बहिन, यहाँ तक कि पिता-पुत्री तक का सम्बन्ध प्रचलित है। परन्तु मनुष्य के मानसिक विकाश के साथ उसके आन्तरिक हृदय में इस भ्रान्ति के विरुद्ध भी क्रान्ति प्रारम्भ हो गई और संसार की कुछ स्त्रियों—माता, बहिन, पुत्री आदि—के प्रति हृदय में कभी ऐसे भाव उत्पन्न होने नहीं देती। यही नहीं, जिनके हृदय अधिक पवित्र हो गए, उन्होंने यह भी घोषणा की कि संसार की अन्य स्त्रियों के प्रति हमारे हृदय में वही भाव होने चाहिए, जो अपनी माता, बहिन या पुत्री के प्रति होते हैं।

इस सिद्धान्त को अधिक विशाल और उदार बनाने की आवश्यकता है। यदि हम अपनी बहिन या पुत्री के सौन्दर्य, बातचीत तथा स्पर्श का आनन्द बिना हृदय में कुवासनाओं के उत्पन्न हुए प्राप्त कर सकते हैं, तो अन्य स्त्रियों के प्रति हमारे ऐसे ही व्यवहार में क्या बाधा हो सकती है? यह बात वर्तमान वातावरण में तो कुछ विचित्र-सी अवश्य मालूम होती है। यदि स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध के वर्तमान सिद्धान्त को भी मान लिया जाय तो उससे भी यह सिद्ध नहीं होता कि स्त्री-पुरुष के परस्पर मिलने-जुलने से ही मानसिक विकारों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। जिस तरह काठ में आग होते हुए भी हम यह नहीं कह सकते कि उसमें सदैव भस्म करने की प्रवृत्ति मौजूद है, उसी तरह स्त्री-पुरुषों में काम-सम्बन्धी आकर्षण होते हुए भी यह प्राकृतिक नहीं हो सकता कि पुरुष भेड़िए की तरह स्त्री को निगल जाने के लिए सदैव प्रस्तुत रहे। मनुष्य आरम्भ से ही अपनी माता, बहिनों और पुत्रियों के प्रति पवित्र मानसिक प्रवृत्ति को जन्म देता है और अपने को उसी के अनुसार सोचने, विचारने और कार्य करने का आदी बना लेता है। परन्तु दूसरी स्त्रियों के प्रति वह इससे एक भिन्न ही विचार-कोण से कार्य लेता है, जिसे वह हृदय की सब से भीतरी तह में प्राकृतिक समझने लगता है।

हमारा समाज ही हमारी इस प्रकृति का पोषण कर रहा है। जहाँ एक लड़की आठ-दस साल की हुई, उसे अन्य लड़कों को अपने भाई से भिन्न दृष्टि से देखने की शिक्षा दी जाती है। उसके मार्ग में दीवारें खड़ी की जाती हैं और उसके ऊपर बार-बार इस शिक्षा का बोझ लादा जाता है कि अपने भाइयों के अतिरिक्त अन्य लड़कों के साथ उठना-बैठना, बातचीत करना अनुचित है। ज्यों-ज्यों बालक और बालिकाओं की अवस्था अधिक होती जाती है, उनके बीच की यह खाई बढ़ती जाती है और वे समझने लगते हैं कि उनका एक-दूसरे की ओर देखना भी एक ऐसी चीज़ है जिसे समाज अनुचित समझता है। पर समाज का यह नियम तो उसके ध्येय को ही नष्ट करता है। मानव-समाज की प्रकृति ही है कि जिस चीज़ को उससे जितनी ही छिपाई जाती है, उसे उसको देखने का उतना ही अधिक कौतूहल होता है। यहीं से हमारे समाज में गुप्त-व्यभिचार की प्रवृत्ति का जन्म हो जाता है।

हमारे समाज में एक नवयुवक का एक नवयुवती की ओर देखना तथा बात करना किसी विशेष मन्तव्य से ख़ाली नहीं समझा जाता। ऐसे किसी पवित्र से पवित्र संसर्ग को भी हम अविश्वास की दृष्टि से देखने के आदी बन गए हैं। हमने समाज के स्त्री और पुरुष दो बिलकुल भिन्न-भिन्न टुकड़े कर दिए हैं, जिन्हें हमारे अविश्वास और मानसिक प्रवृत्ति की भयङ्कर खाई ने सदैव अलग-अलग कर रक्खा है। यह प्रकृति के मूल नियमों की अवहेलना और मानव-जीवन के विकास में बहुत बड़ा रोड़ा है। हमारे जीवन का विकास स्त्री और पुरुष दोनों के प्राकृतिक और पवित्र संसर्ग से ही हो सकता है। स्त्री के कुछ प्राकृतिक गुण ऐसे हैं, जिनका पुरुषों में अभाव है और पुरुषों के कुछ गुण ऐसे हैं जिनका सहयोग स्त्रियों के लिए बहुत आवश्यक है। स्त्रियों के सौन्दर्य, कोमलता, भावुकता, सरलता, सहानुभूति आदि गुण और पुरुषों के बल, बुद्धि, धैर्य और साहस—इन दोनों धाराओं के मिलने पर ही हमारे जीवन का विकास सम्भव है। लेकिन हमारे समाज ने इन दोनों धाराओं को एक विचित्र भ्रान्ति के आधार पर अलग-

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अलग बहाने की चेष्टा की गई है, जिसका परिणाम हम वर्तमान सामाजिक अधःपतन में देखते हैं।

समाज की इस प्रवृत्ति ने ही स्त्रियों को भोग-विलास की सामग्री मात्र बना दिया है। पुरुष तो ऐसा समझते ही हैं, पर सबसे लज्जा की बात तो यह है कि स्त्रियाँ भी अपने को इससे अधिक नहीं समझतीं। पुरुषों के प्रति यह दासत्व उनकी प्रकृति में ही ढाल दिया गया है, उन्होंने इस बात को कभी नहीं समझा कि शारीरिक सहयोग के साथ-साथ उनका कार्य मानसिक सहयोग भी है। उनके शरीर के सञ्चालन की चाभी पुरुषों का मस्तिष्क है। विचार करना तो केवल पुरुष-समाज के लिए है, स्त्रियों के लिए रह गया है आज्ञापालन मात्र। इसलिए पुरुष और स्त्री के संसर्ग का आधार केवल प्रजनन-सम्बन्धी ही रह जाता है। यही कारण है कि स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध हमारे लिए अविश्वास से ख़ाली नहीं होता। हम स्वभावतः ही ऐसे संसर्ग में पवित्रता का सर्वथा अभाव समझने लगते हैं।

स्त्री-समाज की इस समय सबसे बड़ी माँग यह होनी चाहिए कि उन्हें मनुष्य पहले समझा जाय और स्त्री बाद को। जब तक 'स्त्री' शब्द के साथ ही अमुक विशेष प्रकार के भावों का यह विशेषण लगा हुआ है, तब तक स्त्री-समाज के लिए सुधार और अधिकार की कोई भी बात करना नितान्त ढोंग है—यह स्त्री-समाज का सबसे बड़ा अपमान है। ऐसेम्बली और काउन्सिल की सारी जगहें स्त्री-समाज के हाथ में आ जायँ, वकालत और डॉक्टरी पर स्त्री-समाज का क़ब्ज़ा हो जाय, परन्तु जब तक स्त्री-समाज के प्रति इन भावों में क्रान्ति नहीं होती तब तक यह सब बातें कुछ अधिक महत्व नहीं प्राप्त कर सकतीं!

प्रणयाकर्षण

[रचयिता—श्री० सियावरशरण जी]

(१)

तरुण-अरुण कर भूषण सज्जित,
उषा-प्रेयसी की मुसकान!
किसी भविष्य-मिलन-मन्दिर में,
खींच रही कवि! तेरा ध्यान!!

(२)

हृदय-सरित की तरल तरङ्गें,
बहती जाती हैं उस ओर!
जहाँ प्रणय-सागर लहराता—
मिलता जिसका कहीं न छोर!!

(३)

भावमयी वीणे! गाती जा—
हाँ! गाती जा वह सङ्गीत!
जड़-जङ्गम भी झूम-झूम कर—
गाने लगें प्रणय का गीत!!

(४)

प्रणयी! तब तुम भी स्वागत में,
अपना हृदय बिछा देना!
स्वर्ण-सुरभि संयोग प्राप्त कर,
जीवन सफल बना लेना!!

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ताऊन या मरी

[ले० श्रीमती हुक्मादेवी जी छात्रा]

मिजन्य अर्थात् विषैले छूत वाले रोगों में प्लेग का आसन सबसे ऊँचा है। इसका इतिहास आगे चल कर बताया जायगा, परन्तु गत २०-२५ वर्षों से तो यह संहारक रोग भारतवर्ष को जन-शून्य करने की बहुत बड़ी चेष्टा कर रहा है। यद्यपि यह रोग पहले भी इस देश में कई बार हो चुका है, तथापि सर्व-साधारण मनुष्य इसका नाम भी नहीं जानते थे। इसी कारण इसके आते ही जन-समुदाय में भाँति-भाँति के तर्क-वितर्क उठे। कोई कहता था यह ईश्वर का कोप है, कोई कहता यह तो सरकार ने प्रजा के प्राण-नाश करने के अर्थ नवीन रोग भेजा है और कोई कहता था यह देवताओं का कोप है, इसकी शान्ति के लिए यज्ञ करना चाहिए और बलि आदि देनी चाहिए। इन्हीं अनेक प्रकार की शङ्काओं के वशीभूत होकर जन-साधारण ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार कार्य किया और कितने ही स्थानों में तो लड़ाई-झगड़े, और बड़े-बड़े बखेड़े भी हो गए। इसका फल वही हुआ जो उपद्रवों का होता है। यह सब हो चुकने के पश्चात् जब गम्भीर दृष्टि से विचार किया गया तो यह सिद्ध हुआ कि यह एक भयङ्कर प्राणनाशक छूत का रोग है। खोज करने से इसका पता चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट आदि आयुर्वैदिक ग्रन्थों और पुराणों में भी पाया गया। मुसलमानी समय के तुज़ुक-जहाँगीरी ग्रन्थ में भी इसके प्रकोप होने का वर्णन मिला।

ईसा के ४३० वर्ष पूर्व सबसे प्रथम यह रोग एथेन्स नगर में हुआ था। वहाँ से चल कर मिश्र देश में पहुँचा। छठीं शताब्दी में मिश्र से यूरोप में पहुँचा। सन् १६६७ ई० में इसने इङ्गलैण्ड पर आक्रमण किया। इसके पश्चात् सन् १८४० ई० में यह क़ुस्तुन्तुनिया में जा पहुँचा। सन् १३४५ ई० में यह भयानक प्राणनाशक रोग हमारे भारतवर्ष में भी आ विराजा था। और इस प्रकार १५६० ई० के लगभग इसका प्रकोप पवित्र तीर्थ काशी में हुआ। सन् १६१८ ई० में जहाँगीर के समय में काशी और आगरे में इसने ख़ूब धूम मचाई। रामायण के लेखक श्री० गोस्वामी तुलसीदास जी के समय में भी यह काशी नगर में विराजमान था। सन् १८१४ ई० में इसका दौरा कच्छ तथा सन् १८२५ ई० में कुमायूँ प्रान्त में पहुँच गया। फिर सन् १८३७ से १८८४ तक हाँसी तथा हिसार का दौरा करता हुआ अपने दलबल सहित सन् १८९६ ई० में बम्बई जैसे विशाल नगर में आकर इसने डेरा जमा लिया।

उस समय से आज पर्यन्त इसने भारतवर्ष का पीछा नहीं छोड़ा और न वर्ष दो वर्ष का अवकाश ही दिया। बराबर भारतीयों के प्राणों की आहुति ले रहा है। ऊपर के इतिहास से यह भ्रम दूर हो सकता है कि यह रोग नया है और सरकार का ही फैलाया हुआ है। यह जन-संहारक रोग हमारा पुराना शत्रु है और वर्त्तमान भारत को नष्ट करने पर इसने कमर कस ली है।

यह लिखा ही जा चुका है कि सन् १८९६ ई० में यह रोग बम्बई नगर में फैला। इसके होने का कारण यह बतलाया जाता है कि सन् १८९५ ई० के अक्तूबर मास में बहुत से सामान से लदा हुआ एक तिजारती जहाज़ हाँगकाँग से बम्बई आया। उस जहाज़ का कुछ सामान यहाँ पर उतारा गया। उसी सामान के गट्ठों में प्लेग के कई चूहे मरे हुए निकले। इसका कुछ ज्ञान न होने के कारण मनुष्यों ने उन चूहों को साधारण जान कर इधर-उधर फेंक दिया। बस, उनका असावधानी से इधर-उधर फेंकना ही इस महा भयङ्कर रोग के फैलने का कारण हुआ। जब वहाँ पर यह रोग फैला तो मनुष्यों ने बड़ी व्याकुलता से अन्य स्थानों को भागना प्रारम्भ किया। फल यह हुआ कि ये मनुष्य जहाँ-जहाँ गए वहाँ-वहाँ रोग फैलता गया। पहले तो रेल के न होने से मनुष्यों को यात्रा करने में बहुत समय लगता था। इस कारण रोग के फैलने में भी बड़ा

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समय लगा। परन्तु वर्तमान समय में रेल जैसी शीघ्र-गामिनी सवारी होने के कारण इसके फैलने में कुछ भी समय नहीं लगा। आज बम्बई में आया तो कल पूना पहुँचा, वहाँ पहुँच कर परसों कलकत्ते की यात्रा की और इसी प्रकार सम्पूर्ण देश में फैल गया। सन् १८९६ ई० से सन् १९०८ ई० तक ६० लाख के लगभग मनुष्य इस भयङ्कर शत्रु के गाल में चले गए। सन् १९०४-७ का प्लेग बड़े ही भयानक रूप में प्रकट हुआ था। मनुष्यों के शव लकड़ियों की भाँति ठेलों में भर-भर कर फेंके गए, चारों ओर हृदय चीरने वाला गगन-भेदी हाहाकार होता था। झोंपड़े, महल, मुहल्ले, गाँव और नगर के नगर जन-शून्य स्मशान होगए।

विशेष विद्वानों ने खोज करके यह पता लगाया है कि उत्तरीय अफ़रीका के लिबिया नामक प्रदेश में ४०-४५ इञ्च नीचे भूमि में एक प्रकार के विषैले कृमि पाए जाते हैं। वह आकार में इतने छोटे होते हैं कि साधारण दृष्टि से मनुष्य उनको देख नहीं सकता अर्थात् ये सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र (दूरबीन) द्वारा ही देखे जाते हैं। ख़ूबी यह है कि इतने सूक्ष्म होने पर भी वह ऐसे दुखदायी होते हैं!

यह कृमि चूहों से बहुत प्रेम करते हैं; वैसे तो वह बन्दर, गिलहरी आदि जीवों से भी मित्रता रखते हैं, परन्तु चूहों से उनका विशेष प्रेम है। चूहे भी ज़मीन के भीतर घर बना कर रहते हैं और वह भी, अतः यह कीड़े चूहों के साथ मिल जाते हैं। तत्पश्चात् ये विषैले कृमि उनके शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। फिर वही चूहे प्लेगी चूहे बनकर बाहर आते हैं और कीड़ों के विषैले प्रभाव से तुरन्त मर जाते हैं। उनके शरीर से निकल कर वह कृमि मनुष्यों के शरीर में चले जाते हैं और उनको अपने चङ्गुल में फँसा लेते हैं।

इस कारण प्लेग के कृमि ही इसके प्रधान कारण माने जाते हैं। इधर चूहों से गृहस्थी का बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। जहाँ गृहस्थ रहते हैं वहाँ अन्न भी अवश्य होता है और अन्न-राशि में चूहे अवश्य रहते हैं। प्लेग के चूहे जहाँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचते हैं, बस प्लेग भी उनके साथ उसी स्थान पर पहुँच जाता है। इस प्रकार यह रोग एक घर में होते ही शीघ्र ही आस-पास के घरों को आक्रान्त कर लेता है।

इन कृमियों का आकार ऐसा होता है, जैसे दो सरसों के बीच में लगा हुआ एक पतला डोरा। यह आकार सूक्ष्म-दर्शक-यन्त्र द्वारा भली प्रकार देखा जा सकता है। यह कृमि इतने सूक्ष्म होते हैं कि एक बाल की जड़ में कई कृमि रह सकते हैं। एक भले-चङ्गे स्वस्थ मनुष्य के प्राण-नाश करने के लिए एक कृमि पर्याप्त होता है। जब कोई मनुष्य प्लेग से रोगाक्रान्त होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तो उसके शव में एक कृमि से एक हज़ार तक उत्पन्न हो जाते हैं। इतनी अधिक संख्या में इनका विस्तार हो सकता है!

कुछ वर्ष पूर्व इनकी जन्मभूमि मिश्र, श्याम और लिबिया आदि देश माने जाते थे, परन्तु हमारे दुर्भाग्य से अब भारतवर्ष ही इनकी जन्मभूमि बन गई है। इनकी प्रकृति है कि ये कीचड़ वाले, सीले, ठण्डे स्थानों, घृणित एवं अपवित्र पदार्थों से अधिक प्रेम करते हैं। इस कारण ऐसे स्थानों में पहुँच कर इनकी बराबर वृद्धि होती जाती है। ऐसे स्थानों में तो यह बड़े बलिष्ठ हो जाते हैं, परन्तु गरम स्थानों में गर्मी से व्याकुल होकर शीघ्र ही मर जाते हैं। जब किसी मनुष्य को यह रोग होता है तो पहले प्लेग-ग्रन्थि (प्लेग की गाँठ) में एक ही दो कृमि होते हैं, फिर धीरे-धीरे एक ही दो दिन के अन्दर असंख्य हो जाते हैं।

एक विज्ञान-वेत्ता डॉक्टर महोदय ने इनकी वृद्धि के निरीक्षण का यह उपाय बतलाया है कि एक गिलास में थोड़ा सा शोरवा लेकर कुछ गिनती के प्लेग-कृमि उसमें छोड़ दो और ऊपर से थोड़ा घी उसी गिलास में डाल दो। दूसरे दिन देखने से अगणित कृमि उसमें फिरते हुए दिखाई पड़ेंगे। यह ऊपर लिखा ही जा चुका है कि यह कृमि चूहों को बहुत पसन्द करते हैं; चूहे इनको इतने पसन्द हैं कि यदि एक चूहे के रक्त में एक कृमि पहुँच जाय तो उससे बढ़ कर एक सौ तक हो जाते हैं।

जब किसी चूहे के शरीर में एक भी कृमि पहुँचता है तो रक्त में विष फैलने के कारण वह मर जाता है, किन्तु उसके मरने से प्लेग-कृमि के जीवन की कुछ हानि नहीं होती, वरन् एक से सहस्रों की उत्पत्ति हो जाती है, और वही कृमि अन्य चूहों के शरीर में प्रवेश कर परम्परागत विष फैलाते हुए, मनुष्य-समाज को नष्ट-भ्रष्ट करने में समर्थ होते हैं। जिस मनुष्य का रक्त विशेष प्रकार का होता है और इन कृमियों को रुचिकर नहीं होता,

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाग्य की प्रबलता से उसको मुक्ति मिल जाती है, वह इस रोग का ग्रास नहीं बनता। अन्यथा इनके शरीर में प्रविष्ट होते ही मनुष्य का सारा रक्त प्लेग-विष से दूषित हो जाता है। इस रोग के मनुष्य-शरीर में प्रवेश करने के दो कारण माने गए हैं।

(१) आन्तरिक कारण—जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है, कृमि चाहे किसी प्रकार से मनुष्य के शरीर में पहुँचें, परन्तु उनके पहुँचते ही वह रोगी हो जाता है, और प्लेग के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। इसके अतिरिक्त प्लेग-रोगी की साँस, उसकी पीब, वस्त्र तथा छुए हुए अन्य सामानों द्वारा भी प्लेग का विष स्वस्थ मनुष्य के शरीर में पहुँच कर उसे रोगाक्रान्त कर देता है।

(२) वाह्य कारण—बहुत समय तक बिना वस्त्र पहने या नङ्गे पाँव फिरना, अन्नराशि के निकट रहना, प्लेग के मरे चूहे को हाथ से उठा कर फेंकना, प्लेग-रोगी के समीप रहना, उसे स्पर्श करना, जिस घर में प्लेग हो चुका हो उसमें रहना, इस रोग से मरे मनुष्य का शव उठाना, अधिक समय तक भूखा रहना, गन्दे या सील वाले घर में रहना, और अन्यान्य इस रोग को फैलाने वाले प्रत्यक्ष कारण हैं।

घरों के अन्दर चूहों का मरना इस रोग की सूचना है। इस कारण चूहों को मरते देख अवश्य ही घर छोड़ देना चाहिए, अन्यथा इस रोग के पञ्जे में फँसे बिना मनुष्य रह नहीं सकता। जब यह रोग बहुत भीषणता के साथ फैलता है तो चारों ओर बड़ा कोलाहल मच जाता है और कितने ही कोमल हृदय के भोले-भाले मनुष्य तो भयभीत होकर ही रोगी हो जाते हैं। सन् १९०४ और १९०७ में जब भयानक प्लेग का प्रकोप हुआ था तो कितने ही मनुष्यों की इस प्रकार भयातुर होकर ही मृत्यु हो गई थी। यह मैंने स्वयं देखा था।

इस रोग के लक्षणों को पाँच भागों में विभक्त कर सकते हैं।

(१) साधारण नियम यह है कि विषैले कृमियों के शरीर में प्रवेश करने के उपरान्त दो दिन से सात दिन तक और किसी-किसी रोगी को दो-तीन सप्ताह तक कोई मुख्य लक्षण प्रगट नहीं होते। परन्तु जब रोग की प्रबलता होती है, तो दो-तीन दिन क्या, २-४ घण्टों में ही दशा भयङ्कर हो जाती है।

(२) इस श्रेणी में हाथ, पैर और मस्तक में पीड़ा होती है और इतना कष्ट होता है कि रोगी सहन नहीं कर सकता। जिस स्थान पर प्लेग की गाँठ (गिल्टी) निकलने वाली होती है, वहाँ पर कुछ-कुछ पीड़ा जान पड़ती है। रोगी के चित्त में एक प्रकार की व्याकुलता, ज्वराक्रान्त होने पर अरुचि, शरीर में शिथिलता, इन्द्रियों में निर्बलता तथा सारे शरीर और हृदय में एक प्रकार की पीड़ा होने लगती है। कभी तो दस्त होते हैं और कभी वमन। दो दिन तक यह लक्षण रहने के उपरान्त फिर गले, बग़ल या जाँघ में गिल्टी निकल आती है। कभी-कभी उपरोक्त लक्षणों से प्रकट होने के पूर्व ही ज्वर १०३-१०४ डिगरी तक बढ़ जाता है और कभी-कभी लक्षण प्रकट होने के पीछे बढ़ता है। नाड़ी का स्पन्दन अधिक होने लगता है; मल उदर में सूख कर गाँठ बाँध लेता है। प्यास अधिक लगती है, मूर्च्छा आती है, नेत्र लाल हो जाते हैं; कोई-कोई रोगी तो ज्वर चढ़ते ही अचेत हो जाते हैं, परन्तु प्रायः धीरे-धीरे संज्ञा-हीन होते हैं, ज्वर ऐसी भयङ्करता से आता है मानों शरीर को भस्म कर देगा और रात-दिन एक-सा ही बना रहता है।

(३) बग़ल, जाँघ तथा गले में, जहाँ पर भी गिल्टी निकलती है, गिल्टी उभड़ आती है और उसमें दर्द उत्पन्न हो जाता है। गिल्टी देखने में बत्तख़ के अण्डे की तरह, गोले आकार की या चिपटी, स्पर्श करने में गर्म, तनी हुई एवं लाल रंग की होती है। इस श्रेणी में किसी-किसी रोगी को काले दस्त, लाल रङ्ग का मूत्र और रुधिर का वमन भी होता है। यदि उपरोक्त सभी लक्षण प्रकट हो जायँ तो रोग असाध्य समझना चाहिए। किसी-किसी रोगी को प्रचण्ड ज्वर चढ़ कर गिल्टी निकलने पर २-४ घण्टे में ही मृत्यु हो जाती है। इस श्रेणी में ज्वर प्रायः १०५-१०६ डिगरी तक रहता है, नाड़ी शीघ्रता से स्पन्दन करती है। हृदय की गति अनियमित, शीघ्र तथा निर्बल हो जाती है। रोगी अचेत पड़ा रहता है या बहुत बुलाया जाय तो केवल हाँ-हाँ कर देता है। नेत्र रक्त-वर्ण के हो जाते हैं। मुखमण्डल भयानक प्रतीत होता है, जीभ बाहर निकालने से काँपती रहती है। यह सब लक्षण होने

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पर जिस प्रकार का प्लेग-ज्वर होता है, वैसा ही परिणाम होता है, अर्थात् यदि "न्यूमानिक प्लेग" होता है तो फेफड़े में शोथ, "ब्यूबानिक प्लेग" होता है तो गाँठों का निकलना, "कॉलरिक प्लेग" हुआ तो वमन, विरेचन आदि विसूचिका के लक्षण भली भाँति प्रकट हो जाते हैं। किसी-किसी रोगी को श्रेणी-क्रम से लक्षण प्रकट नहीं होते। गाँठ निकलने भी नहीं पाती, रोगी प्रारम्भ से ही अचेत होता और शीघ्र ही मर जाता है। किसी-किसी रोगी को सुना है, भयङ्कर ज्वर होकर गाँठ प्रकट हुई और घण्टे-दो घण्टे में ही बेचारा काल के गाल में चला गया।

(४) यदि रोगी बचने वाला होता है, तो उस श्रेणी में आरोग्य होने के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं, मुख पर प्रकाश और नेत्रों के सन्मुख उजाला हो जाता है। ज्वर घट जाता है, गिल्टी या तो बैठ जाती है या पक जाने पर उसमें पीब पड़ जाती है, जो कई महीने में अच्छी होती है। भोजन में रुचि होने लगती है, मल पीले रङ्ग का और कुछ पतला होता है, मुख का रङ्ग बदल जाता है, शरीर में स्वस्थता का अनुभव होता है, केवल दुर्बलता प्रतीत होती है। तत्-पश्चात् धीरे-धीरे स्वास्थ्य-लाभ हो जाता है। कोई-कोई रोगी प्लेग के पञ्जे से तो छूट जाता है, परन्तु बाद को दुर्बलता में ही चल बसता है।

(१) ब्यूबानिक प्लेग—जब किसी मनुष्य को यह प्लेग होने वाला होता है तो कण्ठ, जाँघ या बग़लों में गिल्टी निकल आती है। किसी-किसी रोगी के मुख के भीतर भी गिल्टी निकलती देखी गई है। यदि इस प्रकार का प्लेग और लक्षणों से मिला हुआ हो तो सौ में से तीस-पैंतीस रोगियों के आरोग्य होने की आशा हो सकती है।

(२) कॉलरिक प्लेग—जब किसी रोगी को यह प्लेग होता है तो विसूचिका अर्थात् हैज़े के लक्षण होते हैं। यदि केवल यही प्लेग हो तो काला-पीला रुधिर का वमन, मल पतला, काले रङ्ग का दुर्गन्धपूर्ण होता है और हिचकियाँ आती हैं। यदि इसके साथ ऊपर कहा हुआ गिल्टी वाला प्लेग भी हो तो दोनों के मिश्रित लक्षण होते हैं। इस प्लेग का प्रकोप होने पर सौ रोगियों में से बीस-पचीस के बचने की सम्भावना है।

एक प्रकार का भयङ्कर शूल करने वाला प्लेग भी होता है। इसका प्रकोप होने पर रोगी के हृदय में पसलियों के चारों ओर बड़ा भारी कष्टदायक शूल होता है। उसके कारण तत्क्षण मृत्यु हो जाती है। इसका प्रकोप होने पर सौ में से पन्द्रह-सोलह रोगियों के निरोग होने का अनुमान हो सकता है।

(४) न्यूमानिक प्लेग—जब किसी मनुष्य को यह प्लेग होने वाला होता है तो फेफड़ों में सूजन होकर न्यूमोनिया (सन्निपात ज्वर) के सब लक्षण प्रकट होते हैं। इससे रुग्ण होने वाले सौ में से दस-पन्द्रह रोगियों के बचने का अनुमान किया जाता है।

(५) कार्डिक प्लेग—जब किसी मनुष्य पर इसका प्रकोप होता है तो उसके मस्तक में विकार उत्पन्न हो जाता है, तदनन्तर उन्माद के लक्षण प्रकट होते हैं। रोगी कुछ-कुछ बकता रहता है, और भयङ्कर ख़र्राटे लेकर सोता भी रहता है एवं परिचारकों को ख़ूब भयभीत करता है। इसके चङ्गुल में फँसने पर सौ में से दस-पन्द्रह या बीस रोगियों के बचने का अनुमान किया जाता है।

(६) सेप्टिसामिक अर्थात् सड़ने वाला प्लेग—इसका प्रकोप होने पर रोगी की गिल्टियाँ और सारा शरीर भीतर ही भीतर सड़ जाता है। यहाँ तक भयङ्कर दशा हो जाती है कि किसी-किसी रोगी में शरीर के जीवितावस्था में ही कृमि उत्पन्न हो जाते हैं। मृत्यु होने पर ऐसे रोगी के शव में असंख्य प्लेग-कृमि होते हैं, क्योंकि लिखा जा चुका है कि यह कृमि दुर्गन्ध में अधिक उत्पन्न होते हैं। निरोग मनुष्य जब ऐसे रोगी के शव को स्पर्श करते हैं, तो उसका भाप लगने से ही वह रोगी हो जाते हैं और इसी प्रकार इसका भयङ्कर परिणाम फैलने लगता है। इसके चङ्गुल में फँसने पर कठिनाई से सौ में से चार-पाँच रोगियों के आरोग्य होने का अनुमान किया जाता है।

(७) भयकारक प्लेग—जब किसी स्थान पर प्लेग बहुत अधिक फैला रहता है तो इधर-उधर का हाहाकार सुन कर दुर्बल हृदय के मनुष्य भयभीत होकर प्लेग से रुग्ण हो जाते हैं और उपरोक्त भेदों में से किसी एक के लक्षण उनके शरीर में प्रकट होते तथा व्यर्थ में ही अमूल्य जीवन नष्ट हो जाता है। भय दूर करके यदि उचित चिकित्सा की जाय तो इससे सौ में से अस्सी-नब्बे तक रोगियों के अच्छे होने की सम्भावना की जाती है।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इनके अतिरिक्त और भी कितने ही प्रकार के प्लेग होते हैं। जिसमें जिस रोग के लक्षण मुख्यता प्रकट हों, उसको उसी प्रकार का प्लेग कहते हैं, जैसे टाइफ़ॉइड प्लेग इत्यादि।

रोग की अवधि—प्लेग की कोई नियत अवधि नहीं है। हाँ, वैसे २ दिन से ७ दिन तक रोग रहता है। कोई-कोई रोगी दो-दो, चार-चार दिन पड़े रहते हैं, परन्तु कोई दो-दो, चार-चार घण्टे में ही चल देते हैं। कारण यह है कि जितनी भयङ्करता से रोग प्रकट होता है, रोगी उतना ही शीघ्र मर जाता है। चिकित्सा करने वाला ठीक निदान भी नहीं कर सकता और रोगी मृत्यु के मुख में चला जाता है।

रोग का परिणाम—यह सर्व-साधारण में भी प्रसिद्ध है कि यह रोग बड़ा भयानक है और इसका परिणाम प्रायः बुरा होता है। परन्तु यदि इसके साथ कोई अन्य रोग सम्मिलित न हुआ हो, दुर्बलता अधिक न हो, गाँठ पक गई हो, ज्वर कम हो, हृदय में विकृति उत्पन्न न हुई हो, तो आरोग्य होने की आशा रहती है।

यदि गाँठें गले, मुख या कनपटी पर निकलें, विसूचिका के चिन्ह दृष्टि पड़ें, रोगी अचेत हो, ज्वर १०४ से १०६-१०७ डिग्री तक बढ़ जाय, तो परिणाम अच्छा नहीं होता। यदि गले या मुख के भीतर की गिल्टी में शोथ हो जाय तो अवश्य मृत्यु हो जाती है। बग़ल और जाँघ की गिल्टियाँ प्रायः अच्छी भी हो जाती हैं। सड़ने वाला प्लेग बड़ा भयानक एवं मारक होता है और फेफड़े में सूजन उत्पन्न करने वाला तो अत्यन्त कष्टदायक और मृत्युकारक ही है। सारांश यह है कि जितने भेद ऊपर लिखे गए हैं, वह लगभग सभी दुखदायी और मारक हैं, केवल एक भय से उत्पन्न होने वाला सुख-साध्य है।

रोग का निदान—प्रारम्भ में जब कोई रुग्ण होता है तो प्रायः निदान करने में भ्रम हो जाता है और इस रोग को चिकित्सक काला ज्वर समझ लेता है, परन्तु यह स्मरण रखना उचित है कि इसमें और काले ज्वर में यह भेद है। इसमें त्वचा पर किसी प्रकार के दाने नहीं निकलते, बल्कि बग़ल, गले या जाँघ में गिल्टी प्रकट होती और उसमें सूजन होती है। रोग प्रकट होने पर २४ घण्टे से लगाकर ३ दिन के अन्दर प्रायः मृत्यु हो जाती है। काले ज्वर में यह लक्षण नहीं होते।

प्लेग से बचने के उपाय—जब घरों में चूहे मरने लगें और प्लेग प्रारम्भ हो जाय तो यह उचित है कि उस स्थान को छोड़कर, दूसरे स्वस्थ स्थान या बाग़ अथवा जङ्गल में निवास करे। यदि ऐसा न कर सके तो इस बात का पूर्ण ध्यान रक्खे कि जिस घर में रहे वह ऐसा हो जहाँ सूर्य का प्रकाश और शुद्ध वायु भली-भाँति पहुँच सके। यदि घर पक्का हो तो उसको चूने से, यदि कच्चा हो तो मिट्टी, गोबर आदि से ख़ूब अच्छी तरह पुतवा दे।

पाख़ाने आदि भली प्रकार शुद्ध रक्खे और उनमें कृमि-मारक औषधियों से मिला जल डलवा दिया करे। अङ्गरेज़ी औषधियों में कारबोलिक एसिड, या परमैगनेट ऑफ़ पोटाश पानी में मिला कर प्रयोग करे और देशी औषधियों में हीराकसीस आदि का प्रयोग करे। सूर्योदय होते ही घरों के द्वार खोल देना उचित है और सूर्यास्त होने पर साधारण खिड़कियाँ खुली रखकर दरवाज़े बन्द कर दे। यदि किसी मकान की भूमि गीली हो तो उस पर अग्नि जलावे या चूना फैला दे। गन्धक, गूगुल, धूप, लोहबान और नीम के पत्ते मिला कर इसका चूर्ण अग्नि पर डाले, इसके धुएँ से वायु शुद्ध होती है। यदि सम्भव हो तो क़लई के अन्दर थोड़ा सङ्खिया डालकर दीवारों को पुतवा दे। घर के आस-पास कूड़ा-करकट बिलकुल जमा न होने दे। कोई वस्तु जो बाहर से आवे उसे धूप में रखकर या गर्म करके शुद्ध होने पर प्रयोग करे। खान-पान तथा अन्य व्यवहार में आने वाली अन्य वस्तुएँ, जहाँ प्लेग हो रहा हो वहाँ से कदापि न मँगावे। सदैव ऊपर और हवादार स्थान में रहे और सोए। हमारे पूर्वज ऋषि-महर्षि छुआछूत के रोगों को बहुत अच्छी तरह समझते थे। इसी कारण उन्होंने ऐसे अमूल्य उपदेश अपने अनुपम आयुर्वैदिक ग्रन्थों में लिखे हैं, जिन पर आचरण करने से मनुष्य का कल्याण हो सकता है। उन्हीं आयुर्वेद के उपदेशों का थोड़ा-सा वर्णन इस स्थान पर उपयोगी समझ कर किया गया है। नङ्गे पाँव घर से बाहर न जाय। जब घर में आवे तो जूता चौखट से बाहर ही

(शेष मैटर ८७८ पृष्ठ के दूसरे कॉलम में देखिए)

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[ले० श्री० जो० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

लतखोरी लाल

हमारे बाबा अँधेरे में रात भर इधर-उधर टटोलते ही रहे। ईश्वर जाने मुझे ढूँढ़ रहे थे या दिया-सलाई! ख़ैर, दियासलाई का हाल वह जानें, मगर कम से कम मैं तो उन्हें नहीं मिला। क्योंकि मैं निहायत इतमीनान से चारपाई के नीचे लेटा हुआ था, जहाँ उनकी या उनकी अक्ल—किसी की भी पहुँच नहीं हुई। और इसी तरह पड़े-पड़े कुछ-कुछ सो भी गया।

कब तक सोया, यह पता नहीं। आँख खुली तो मालूम हुआ कि वह सचमुच मुझी को ढूँढ़ रहे हैं। मगर क्यों, इसका समझना ज़रा टेढ़ी खीर थी। क्योंकि अव्वल तो वह धर्मात्मा, दूसरे वृद्ध, तीसरे मेरे धर्म-पिता, चौथे वह ख़ुद मुझे पुत्री कह चुके हैं और पाँचवें मैं असलियत में औरत ज़ात भी नहीं। ख़ैर! कुछ भी हो, वह अब भी कमरे के भीतर कोल्हू के बैल की तरह चक्कर लगाते थे और मेरे लिए आसमान-ज़मीन एक किए देते थे। ख़ैरियत इतनी ही थी कि दियासलाई का ख़्याल उन्हें सूझा ही नहीं। बस वह हाथ फैलाए हुए कभी किसी चीज़ से टकरा कर 'हाय बाप!' करते और कभी मुझे न पाकर 'हाय प्यारी!' कहते। और यहाँ 'प्यारी' के शब्द से प्यारी का दम सूखा जा रहा था। क्योंकि बकरी की माँ बेचारी कब तक ख़ैर मनाए?

"कहाँ हो, किधर हो, ज़रा बोल दो, तुम्हें मेरी क़सम, कुछ तो ज़बान हिलाओ, कल तुम्हें लड्डू खिलाऊँगा, रेशम की साड़ी ला दूँगा, पैर के पाजेब बनवा दूँगा, मेरी लाड़ो, अब तो बोलो, देखो बहुत परेशान न करो, नहीं तो हाँ, धत्तेरे की यह किस चीज़ की ठोकर लगी। हाय बाप रे बाप!" ऐसे ही जुमलों की अमृत-वर्षा होने लगी। मैंने झट अपने कानों में उँगली डाल ली, ताकि कहीं ऐसा न हो कि इसकी बौछार में मेरे स्त्रीपन का सतीत्व पिघल जाय। क्योंकि यह होती ही है ऐसी नाज़क चीज़; न जाने किस वक्त और किसके सामने यह दग़ा दे जाय, कुछ ठीक नहीं है। यद्यपि मेरी श्रीमती जी ने इसका लोहा मनाने में कोई कसर उठा नहीं रक्खी है। यहाँ तक कि मेरे सब्र तक के छक्के छुड़ा दिए और इस बदनसीब दिल के तो अक्षर-पक्षर ही सब ढीले कर दिए। फिर भी मैं इस पाखण्ड को पाखण्ड ही कहूँगा। क्योंकि जो जिसको जितना ज़्यादा मानता है, उसी पर उसकी शान

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उतनी ही ज़्यादा बघारी जाती है। स्त्रियाँ अपने पतिगीरी के ग़ुलाम बस इसीलिए तो रखती ही हैं कि उन पर वह इसकी धाक ख़ूब जमा सकें। अगर हमारी श्रीमती जी इस मामले में दो-चार हाथ सभों से बढ़ गईं तो क्या? यह मेरी ज़रूरत से ज़्यादा उन्हें प्यार करने की सज़ा है। वह ज़िन्दगी भर मेरे तड़पने का तमाशा देखना चाहती हैं। और कोई बात नहीं है। तभी उनकी यह धाँधली है—वह भी सिर्फ़ मेरे ही लिए, क्योंकि बेचारे मर्द अपनी औरतों की निगाहों में जैसे होते हैं, वही लोग जानती होंगी। खरी बात कहने से क्या फ़ायदा? मगर कम से कम मैं अपने बारे में ख़ुद ही ख़ूब जानता हूँ और दावे से कह सकता हूँ कि मैं अपनी श्रीमती जी की निगाहों में सबसे छोटा नहीं, सबसे बड़ा उल्लू हूँ। तब क्यों न वह मुझे ज़िन्दगी भर उल्लू बनाती रहें, दूसरा कोई उनकी उँगलियों पर नाचने वाला मुझ-सा बढ़ कर कहाँ मिल सकता है? इसीलिए भई, किसी के लाख समझाने पर भी मैं राई को पर्वत नहीं समझ सकता। मैं तो इस ढकोसले को काँच की चिमनी ही कहूँगा। देखने में सख़्त ज़रूर, पर चिटख़ जाने का हरदम अन्देशा, चाहे श्रीमती जी या उनकी बिरादरी वाली सब मेरी इस बात से बिगड़ ही क्यों न जायँ। इसीलिए मैंने अपने स्त्रीपन के सतीत्व की मज़बूती पर एतबार न करके, अपने कान और कसके बन्द कर लिए, ताकि पेट के भीतर गरमी पहुँच जाने से यह ताव न खा जायँ। फिर तो जिस तरह श्रीमती जी मेरे रोने-चिल्लाने, तड़पने और छटपटाने पर कुछ भी पसीजना नहीं जानतीं, उसी तरह मैंने भी बड़े महाशय के 'लाड़ो-दुलारो' पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और चुपचाप दम साधे पड़ा रहा।

एकाएक बूढ़े को दियासलाई की याद आई, क्योंकि मेरी उँगलियाँ ज़रा ढीली होते ही दियासलाई का शब्द उसकी बड़बड़ाहट में मुझे सुनाई पड़ा। मेरे हाथ-पाँव फूल गए। मगर इस ख़्याल से ज़रा मुझे तसल्ली हुई कि सवा पाँच फ़िट का मैं उन्हें नहीं मिल सका तो डेढ़ इञ्च की दियासलाई उन्हें इस अँधेरे में भला कब मिल सकती है? मगर वह टटोलते हुए सीढ़ी के दरवाज़े पर पहुँचे और उसे खोल कर चट सीढ़ियों पर हो रहे। मैं समझ गया कि हज़रत बाहर से कहीं रोशनी का बन्दोबस्त करने गए हैं। मैं मारे घबड़ाहट के चार-पाई के नीचे सिकुड़ गया। आख़िर अक़्ल ने मेरी मदद की और मैं भी वहाँ से निकल भागने के इरादे से दरवाज़े पर पहुँचा। मगर हाय! हाय! सब मनसूबे चौपट हो गए। दरवाज़ा बाहर से बन्द मिला। मैं चकरा कर वहीं बैठ गया!

बाहर दो आदमियों की कनफुसकियाँ सुनाई पड़ीं। मेरे कान खड़े हो गए। रात की गहराई में उनकी बात-चीत धीमी होने पर भी कानों में घुसने लगी। उनमें से एक मेरे धर्म-पिता की आवाज़ थी।

"कैसे नहीं क़ाबू में आती? नए आदमी के सामने औरतों में थोड़ी-बहुत झिझक तो होती ही है। भला यह भी कोई घबड़ाने की बात है।"

"नहीं भाई, यह बात नहीं है। चिराग़ बुझ जाने से उसे छिप जाने का मौक़ा मिल गया।"

"और अब तक आप ढूँढ़ते ही रहे? वाह रे उल्लू! यार, तुम बुड्ढे हो गए, मगर अब तक तुम्हें तमीज़ न आई। आख़िर हो तो बाम्हन। तुम्हारे बुढ़ापे की आड़ में शिकार फँसाने के लिए हम लोगों ने तुम्हें अपने काम में शरीक कर लिया था, मगर यह नहीं मालूम था कि इतने दिनों साथ रह कर भी तुम निरे गावदी के गावदी रहोगे।"

"गावदी कैसे कहते हो? तुम लोग जिस वक़्त उसे एक्के पर बिठाले ला रहे थे, उस वक़्त क्या मैंने कड़क कर तुम लोगों को नहीं डाँटा था और इस तरह उस पर एतबार जमा कर अपने साथ उसे यहाँ नहीं ले आया?"

"यह तो तुम कई दफ़े हम लोगों के सिखाने-पढ़ाने पर कर चुके हो, जिसमें मुहल्ले वालों को ख़बर न हो। इसलिए इस दफ़े भी किया तो कौन सा बड़ा कमाल किया? मगर असल मौक़े पर तो गधापन करके उसे भड़का दिया। अब कई दिन लगेंगे तो कहीं वह रास्ते पर आएगी। मैं सोचे हुए था कि आज ही उसे अपनों में मिला कर कल से गाहकों के सामने पेश करूँगा। दोनों औरतें, जो नीचे वाली कोठरी में हैं, अब पुरानी पड़ गईं। गाहक उनको पूछते तक नहीं। जो आता है वह नई ही की तलाश में। और इधर सेवासमिति वालों के मारे ऐसा नाक में दम है कि शिकार फँसने नहीं पाता। मुद्दतों के बाद ईश्वर ने एक

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नई चिड़िया भेजी भी तो तुमने अपने उल्लूपन से सब चौपट कर दिया। अब दो-तीन दिन तक क्या ख़ाक फाँकोगे? आमदनी का देख तो रहे हो क्या हाल है। उस पर मकान का किराया अलग चढ़ा हुआ है।"

"तो ख़फ़ा क्यों होते हो? मैंने उसे भगा तो दिया ही नहीं। वह अब भी पिंजड़े में बन्द है।"

"भगाया नहीं, न सही। मगर भड़का तो दिया, यह क्या कम बेवक़ूफ़ी हुई? अब वह चौकन्नी होगई। नाकों चने चबवाएगी। बहुत मुमकिन है कि तुम्हें देखते ही वह अब चिल्ला पड़े, फिर न जाने कौन सी आफ़त आए। क्योंकि मुहल्ले वाले भी हम लोगों के गुस पेशे की कुछ-कुछ भनक पागए हैं। इसी लिए हमारे उस्ताद कहा करते थे कि बेटा, औरत पर जब वार करे तब चूके नहीं, चाहे जो हो; वरना फिर वह हमेशा के लिए उसके हाथ से गई।"

"मैं भी तो उसके चिल्लाने के ही डर से मुलायमियत से उससे पेश आ रहा था। बीच ही में चिराग़ बुझ जाय तो इसमें मेरा क्या क़सूर?"

"वाह बे बुड्ढे। जा चूड़ियाँ पहन ले। इतनी उमर होगई और तुझे इतना भी नहीं मालूम कि सुपारी चुटकियों से चूर होती है या हथौड़े से। औरत भी कहीं मुलायमियत से क़ाबू में आती है। चले थे साले मुलायमियत से पेश आने। रह गए अपना-सा मुँह लेकर। और रोज़गार बिगाड़ा अलग। यहाँ एक से एक बदमाश और पाज़ी औरतों से पाला पड़ चुका है, जो पहले शेर की तरह ग़ुर्राती थीं। यहीं तक नहीं, बल्कि मेरे बाज़ू और उँगलियाँ दाँतों से एकदम चबा तक डाले हैं। मगर बाद को वही ऐसी भीगी बिल्ली बन गईं कि मेरे तलवे चाटने लगीं। उनसे हज़ारों रुपए कमाए और उनसे पिण्ड छुड़ाना मुश्किल होगया। और क्या? ये लोग भी तो उसी से राज़ी होती हैं, जो उन्हें राज़ी करने का ढङ्ग जानता है और हिम्मत रखता है × × ×।"

इतना सुनते-सुनते मेरा तो समूचा दम निकल गया। आगे कुछ सुनने की ताब ही न रही। मैं बीच ही में "हाय! बाप रे बाप" कहने के बदले "हाय! श्रीमती जी! हाय! श्रीमती जी!" करके चिल्लाने लगा और ढाहें मार-मार कर रोने लगा। क्योंकि दिमाग़ में तो हर वक्त श्रीमती जी बसी रहती हैं और ज़बान की नोक पर सदा उन्हीं का नाम धरा रहता है, तब भला 'बाप' का नाम किस तरह मुँह से निकले?

(क्रमशः)

(Copyright)

* * *

(८७५ पृष्ठ का शेषांश)

उतार दे। बाहर के कपड़े उतार कर दूसरे वस्त्र पहिन कर खाना-पीना करे। शरीर की शुद्धि का ख़ूब ध्यान रक्खे। नित्य गर्म जल से स्नान करे, शरीर में तैल मर्दन करे और पाँव के तलुओं में अवश्य तैल लगावे। वस्त्र धुले हुए (शुद्ध और ऋतु के अनुसार) ऊनी या रेशमी पहिने। इधर-उधर गन्दे स्थानों में न फिरे और अपने बालकों को भी न जाने दे। भूमि पर न सोवे। आटा, दाल आदि और अन्य भोजन की सामग्री सुरक्षित और ढक कर रक्खे। भोजन गर्म, घृत-युक्त, सुपाच्य और ताज़ा खावे, बासी वस्तुएँ कदापि न खावे। सदैव नियत समय पर खावे। उपवास न करे। दूध, चाय आदि जो कुछ पीवे, गरमा-गरम पीवे। कुएँ का ताज़ा जल या उबाला हुआ जल कपूर या फिटकिरी डाल कर शुद्ध करके पीवे, बहुत ठण्डी, वातकारक या अजीर्ण करने वाली वस्तु न खावे। यदि घर के अन्दर चूहे मरे हुए मिलें तो उन्हें चिमटे से उठाकर एक हाँड़ी में बन्द करके गाँव या मोहल्ले से बाहर ले जाकर जला दे। जहाँ से चूहे उठावे उस स्थान को कृमिनाशक घोल से धो दे या उस पर अग्नि जला दे। मदिरा हानिकारक है, बिना चिकित्सक की आज्ञा के इसका व्यवहार न करे। शोक, चिन्ता तथा भय से दूर रहे। बन, उपवन और सुन्दर मनोहर वाटिकाओं में भ्रमण करे। दिन में न सोवे, परन्तु रात्रि में भली प्रकार निद्रा ले। सदा प्रसन्न रहे और अन्य इष्ट-मित्र तथा पारिवारिक जनों को भी प्रसन्न रक्खे। मृत्यु के समाचार सुन कर भय न करे। कपूर या नेपथलीन का टुकड़ा प्लेग के दिनों में अपने पास अवश्य ही रक्खे। बड़ी सावधानी के साथ अनुभवी विद्वान डॉक्टर की शीघ्रातिशीघ्र चिकित्सा करावे, शिथिलता कदापि न करे।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[सम्पादक तथा स्वर-लिपि-कार—श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय (नीलू बाबू)]

तराना बेहाग—तीन ताल

(मात्रा १६)

[शब्दकार—अज्ञात]

स्थायी—ना दिर दिर दानि, तदानि तोम् तनन तोम-तोम तननननन
देरेना देरेना, दीम् तदीम् तान देरे तदारे ओदेदानि

अन्तरा—नादिर दिर तननननन तुम दिर दिर दिर दिर दिर दानि, नादिर दिर दिर
तननन दीम् तननन दीम्, दीम तननननन तदारे ओदेदानि तघलां धिट
नगतिट किटितक तघलां तक धा, तघलां तक धा तघलां तक धा, तदारेदानि ॥

स्थायी

०				१				० ×			०	३			
स	ग	म	प	प	ध	प	प	स	—	—	स	नि	ध	प	—
ना	दिर	दिर	दा	नि	त	दा	नि	तो	—	म	त	न	न	तो	म
प	—	ग	म	ग	रे	ग	ग	प	ध	ग	म	ग	रे	स	—
तो	म	त	न	न	न	न	न	दे	रे	ना	दे	रे	ना	दी	म
रे	स	—	प	प	र	नि	स	म	ग	—	म	ग	रे	नि	स
त	दी	म्	ता	० आ	न	० दे	रे	त	दा	—	रे	ओ	दे	० दा	नि

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्तरा

प	नि	नि	रे॰	सं॰	नि	ध	प	ग	म	ग	रे	स	रे	नि॰	स
ना	दिर	दिर	त	न	न	न	न	तुम	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दा॰	नि
प	प	नि	नि	सं॰	सं॰	सं॰	सं॰	नि	—	सं॰	सं॰	सं॰	सं॰	ग॰	—
ना	दिर	दिर	दिर	त	न	न	न	दी	म	त	न	न	न	दी	म
म॰	म॰	ग॰	रे॰	सं॰	नि	ध	प	म	ग	—	म	ग	रे	नि॰	स
दी	इम	त	न	न	न	न	न	त	दा	—	रे	ओ	दे	दा॰	नि
सं॰	ग॰	—	म	ग॰	प॰	म॰	ग॰	सं॰	ग॰	—	रे॰	सं॰	—	प	प
त	ध	लां	धिट	नग्	तिट्	किट्	तक्	तक्	ध	लां	तक्	धा	—	तक्	धा
—	रे॰	सं॰	—	प	प	—	ध	ग	—	म	ग	रे॰	नि॰	स	—
लां	तक्	धा	—	तक्	ध	लां	तक्	धा	—	त	दा	रे	दा	नि	—

एक अमेरिकन करोड़पति लण्डन की सैर करने आया। लण्डन का चिड़ियाघर देखकर उसके दो बालक मचल गए। अतएव वह चिड़ियाघर के संरक्षक के पास जाकर बोला—मेरे बच्चों को तुम्हारा चिड़ियाघर बहुत पसन्द आगया है। यदि तुम इसे बेचना चाहो तो मैं ख़रीदने को तैयार हूँ।

संरक्षक ने अमेरिकन को सिर से पैर तक देखकर किञ्चित् मुस्कराते हुए कहा—चिड़ियाघर बेचा तो नहीं जा सकता, परन्तु यदि आपके बच्चे चिड़ियाघर को इतना पसन्द करते हैं तो मैं इतना कर सकता हूँ कि उन्हें चिड़ियाघर के लिए ख़रीद लूँ।

"आज अभागा घनश्याम दुनिया से कूच कर गया।"

"अभागा वह मिट्टी छू लेता था तो सोना हो जाता था। दूकान का बीमा कराते ही दूकान में आग लग गई, उसमें उसे करारी रक़म मिली। जिस दिन दुर्घटना के लिए अपना बीमा कराया उसके सातवें दिन ही टाँग टूट गई, उसमें रुपए वसूल किए। अब जब कि उसने अपना जान-बीमा कराया था तो स्वयम् ही चल दिया, इसमें भी उसे ख़ूब रुपए मिलेंगे—यह तो दशा है, फिर भी तुम उसे अभागा कहते हो?"

हारमोनियम बजा कर सङ्गीत सीखने के लिए नीलू बाबू की

शिक्षक सङ्गीत-सार-संग्रह

प्रथम भाग १।) द्वितीय भाग १॥), डाक-ख़र्च अलग देकर मँगा लीजिए—

पता—मैनेजर 'चाँद' कार्यालय, २८ एडमॉन्सटन रोड, इलाहाबाद

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लोकमत

आज

इस पत्र ने निर्भयता और योग्यता के साथ समाज-सेवा की है। 'चाँद' के समाज-विषयक बहुत आगे बढ़े हुए मतों का समर्थन कभी-कभी हम स्वयम् नहीं कर सकते, पर उसके साहस और परिश्रम की प्रशंसा करते हैं। इसमें लेख प्रायः विचारपूर्ण और विचारोत्तेजक हुआ करते हैं। आज हिन्दुओं में इसी का अभाव है। स्वतन्त्र विचार से हिन्दू दूर भागते हैं। इससे स्वतन्त्र विचार की शक्ति भी उनमें कम हो गई है। सामाजिक अधःपात का यह बड़ा भारी कारण है। दूसरे के विचार से अपना काम चलाने वाला और दूसरे की अञ्जलि से पानी पीने वाला एक ही श्रेणी का जीव है। प्राचीन आचार्यों का आदर करना चाहिए, उनके सिद्धान्तों को मानना भी चाहिए, पर अपनी बुद्धि को बेच न डालना चाहिए। कोई विषय विचारार्थ उपस्थित किया जाय, प्रमाण केवल आप्त-वाक्य! हमारे मत से तो यह आप्त-वाक्यों का दुरुपयोग है। 'चाँद' ने सामाजिक विषयों में जिस स्वतन्त्र विचार को उत्तेजन दिया है, उससे देश का कल्याण हुए बिना न रहेगा। उसके मत बिलकुल भ्रान्त हो सकते हैं, समाज के लिए विनाशक भी हो सकते हैं, पर उससे उत्पन्न होने वाले स्वतन्त्र विचार से समाज का मङ्गल ही होगा; भुस से गेहूँ अलग हो जायगा, सत्य और असत्य का तथा मङ्गल और अमङ्गल का निबटारा हो जायगा। 'चाँद' ने बहुत घाटा उठाया है। इस बार उसने सहायतार्थ अपील की है। हमें आशा है कि स्वतन्त्र विचार के पक्षपाती हिन्दू-सज्जन यथाशक्ति उसकी सहायता करेंगे!

हिन्दी (अफ्रीका)

यह पत्र अपने ढङ्ग का एक ही है और इसके जोड़ का स्त्रियोपयोगी पत्र भारत में दूसरा नहीं है। इसके सम्पादक श्री० रामरखसिंह जी सहगल ने इस पत्र को निकाल कर भारतीय महिलाओं का जो उपकार किया है, वह स्तुत्य है!

कर्मवीर

'चाँद' की छपाई और काग़ज़ आदि बाह्याङ्ग के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। धीरे-धीरे 'चाँद' शब्द छपाई की सुन्दरता की गारण्टी के लिए प्रचलित होता जा रहा है! इस अङ्क के प्रकाशन में सञ्चालकों को प्रचुर धन व्यय करना पड़ा है। हम आशा करते हैं कि हिन्दी-पाठक 'चाँद' सञ्चालकों की सेवा की क़द्र करेंगे।

तरुण-राजस्थान

समाज-सुधार-प्रेमी साक्षर मनुष्य से छिपा न होगा कि 'चाँद' के विद्वान् एवं परिश्रमी सम्पादक साधारण अङ्कों में ही सुबोध पाठ्य सामग्री देते रहते हैं, तिस पर समय-समय पर विशेषाङ्क निकाल कर तो वे और भी सोने में सुगन्धि की कहावत चरितार्थ करते रहते हैं। हिन्दी के पत्रों में अपने अल्प जीवन में, जितने विशेषाङ्क 'चाँद' ने अपने पाठकों को दिए हैं, उतने किसी अन्य पत्र ने नहीं दिए; और विशेषता यह है कि प्रायः सब अङ्क एक से एक बढ़िया रहे हैं।

देश

'चाँद' हिन्दी-संसार में मासिक पत्रिका के रूप में अवतीर्ण होकर स्त्री-जाति की जो सेवा कर रहा है, वह किसी भी हिन्दी-प्रेमी से छिपी नहीं है। स्त्री-जाति की सेवा के अतिरिक्त समय-समय पर भिन्न-भिन्न विषयों पर प्रकाश डालने के लिए इसके कई एक विशेषाङ्क निकल चुके हैं, जिनसे देश, समाज और हिन्दू-जाति को बड़ा ही लाभ पहुँचा है।

अर्जुन

सहयोगी 'चाँद' दिनोंदिन उन्नति कर रहा है। सहयोगी के रङ्ग-रूप ने 'सरस्वती' और 'माधुरी' के दिल में हलचल पैदा कर दी है।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

माधुरी

सहयोगी 'चाँद' के लिए विशेषाङ्कों का निकालना मामूली बात हो गई है। अपने जीवन के ५५ अङ्कों में वह १० विशेषाङ्क प्रकाशित कर चुका है। मई का अङ्क 'अछूताङ्क' है। यह उत्साह हिन्दी-पत्रिकाओं में ही नहीं, भारतवर्ष की अन्य भाषाओं में भी नहीं देखने में आता। 'चाँद' ने इसी उत्साह की बदौलत हिन्दी-जगत् में वह स्थान प्राप्त कर लिया है, जो हिन्दी-भाषा के लिए ही नहीं, किसी भी भारतीय भाषा के लिए गौरव की बात है।

सूर्य

श्री० रामरखसिंह जी स्त्री-सुधार के अनन्य प्रेमी हैं। आप अपनी मासिक पत्रिका 'चाँद' से स्त्री-समाज का जो हित कर रहे हैं, वह स्त्री-सुधार के इतिहास में अजर-अमर रहेगा। आप साधारण ग्रामीण स्त्रियों से लेकर वेश्याओं तक का उद्धार करना चाहते हैं। भारतवर्ष के हिन्दी-जगत् में सहगल जी ही एक ऐसे व्यक्ति हैं, जो बिना हो-हल्ला मचाए स्त्री-समाज में क्रान्ति और जाग्रति उत्पन्न कर रहे हैं। हिन्दी-प्रेमियों से हमारा साग्रह अनुरोध है कि वे 'चाँद' को अपनाकर श्री० सहगल जी को इस स्तुत्य कार्य में यथाशक्ति सहायता दें!

मारवाड़ी-अग्रवाल

पत्रिका में यह पढ़ कर हमें अत्यन्त वेदना हुई कि इस विद्वान् युगल जोड़ी को अब तक लगभग ८,०००) रु० का घाटा सहना पड़ा है। भारत में अब भी ऐसे-ऐसे देशभक्त और समाज-सेवी धनी-मानी व्यक्ति हैं, जो चाहें तो इस देशोपकारी पत्रिका के सञ्चालकों का बोझ सहज ही में उतार सकते हैं। हम उनका ध्यान इस ओर आकर्षित करते हुए मारवाड़ी-अग्रवाल के प्रत्येक पाठकों से अनुरोध करते हैं कि वे 'चाँद' के ग्राहक स्वयं बनें तथा अपने इष्ट-मित्रों को बनाकर इसे आर्थिक कष्ट से मुक्त करें × × ×।

आर्य

इलाहाबाद का 'चाँद' मासिक पत्र विशेषाङ्कों के कारण हिन्दी समाचार-पत्र-जगत् में विशेष स्थान प्राप्त कर चुका है!

वर्तमान

प्रयाग के प्रिय-दर्शक सहयोगी 'चाँद' का गौरव और विमल छटा उत्तरोत्तर बढ़ रही है। महिलाओं के लिए इस पत्र की उपयोगिता अब सर्व-सम्मति से सिद्ध हो चुकी है। पञ्जाब, बिहार, मध्य-प्रान्त, संयुक्त-प्रान्त के तथा काश्मीर-राज्य के शिक्षा-विभागों के डाइरेक्टरों ने अपने प्रान्तीय स्कूलों के लिए इस पत्र की सिफ़ारिश की है। पत्र के सर्वाङ्ग सुन्दर होने में कोई सन्देह नहीं है। हम सहयोगी की हृदय से उन्नति चाहते हैं।

मतवाला

सरस्वती, मनोरमा और 'चाँद' के विशेषाङ्क इस समय हमारे सामने हैं। प्रयाग के इन तीनों मासिक पत्रों के विशेषाङ्क बड़े सुन्दर हुए हैं, सच पूछिए तो तीनों में पहला नम्बर 'चाँद' का है। नाम भी प्यार के क़ाबिल, रूप भी वैसा ही; गुण भी उतना ही।

भ्रमर

'चाँद' का स्थान सचमुच बहुत ऊँचा है। सम्पादन और छपाई दोनों ही दृष्टि से 'चाँद' का प्रत्येक अङ्क अद्वितीय रहता आया है। 'चाँद' के सम्पादक और सञ्चालक जिस मनोयोग और योग्यता से 'चाँद' निकाल रहे हैं उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। किन्तु दुख है कि 'चाँद' को पाठकों और पाठिकाओं की ओर से जैसी सहायता मिलनी चाहिए वैसी नहीं मिलती। हमें विश्वस्त सूत्र से मालूम हुआ है कि 'चाँद' के सञ्चालक भारी घाटा उठा रहे हैं।

हिन्दू-पञ्च

'चाँद' मासिक पत्र हिन्दी-आकाश में 'चाँद' है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। इसके द्वारा हिन्दी-साहित्य और हिन्दू-समाज की जो सेवा अब तक हुई है और हो रही है, वह वर्णनातीत है। इसने समय-समय पर हिन्दू-समाज के प्रत्येक आवश्यक विषय पर पूर्ण प्रकाश डालने के लिए विशेषाङ्क निकाल कर एक अद्वितीय कार्य किया है और उसके लिए 'चाँद' के सञ्चालक तथा सम्पादक धन्यवाद के पात्र हैं।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CURRENT OPINIONS

The **Amrit Bazar Patrika** says:

Had there been such magazine, in Bengalee, Urdu, Marathi, Telegu, etc., a great service would surely have been rendered in the cause of our poor helpless children. *We sincerely thank the Editor of this magazine for his genuine services.*

In a word, we have been extremely pleased by its perusal and wish it all success in its useful career.

***

The **Servant** says:

The magazine stands for progressive social reform and is largely devoted to the welfare of our women-folk. The articles published in it are of great merit and its get-up has left nothing to be desired.

It may be rightly called a women's magazine and deserves patronage at the hands of the Hindi-reading public.

***

The **Indian Daily Telegraph** says:

We have received the first number of the fourth volume of CHAND. It is ably edited and deserves much encouragement from the Hindi public. Its language is simple and chaste. The Magazine stands for progressive social reform and it mainly deals with important social problems, which our women will do well to read. In the current magazine the editor contributes a striking article on child-marriage in which he graphically describes the evil-effect of early marriage. Two other equally important articles are on Temperance and Cruelty to Animals. The magazine gives enough reading matter. Besides it contains good many essays written by well-known authors. It also gives attractive pictures.

The **Leader** says:

The February (1929) number of the *Chand* fully maintains its reputation for fearless criticism of social injustice and bold advocacy of reform. Its columns are always full of interesting articles poems and stories. Hindi may well be proud of possessing a high class magazine like *Chand.*

***

The **Patriot** says:

We commend this journal to the Hindi-reading public with the hope that they will extend their patronage to this useful *journal, which, we are sorry to learn, has been kept up at a considerable pecuniary loss to the promoters of the enterprise.*

***

The **Tribune** says:

The Magazine is neatly printed on good white paper and in get-up and elegance is all that the most fashionable lady may desire. It has been aptly described as an emporium of ladies own literature and we have no hesitation in recommending it to our readers and its use in schools, colleges and public reading-rooms will go a long way in furthering the cause of Hindi in this Province.

***

The **Sunday Times** says:

The CHAND is perhaps the only vernacular magazine of its kind in India. Its fine get-up, neat printing, thoughtful contributions and beautiful illustrations compel the reader to speak highly of the journal. It is no exaggeration, we believe, to say that the CHAND occupies foremost place among the journals published in this country. We extend our hearty congratulations to the editor and wish the journal a long and useful career.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Sooraj Karan Sarda, Esq., M. A., LL. B., Vakil High Court, writes from Ajmer :

××× I much appreciate the excellent get-up of the Magazine which I also find containing able and interesting articles on important subject of Social Reform. ××× Kindly enlist my name as a subscriber of the paper which you may send per V. P. P. All the back numbers of the first year may also be sent along with this × × ×.

***

Sirdar Gobind Singh Saheb, M. A., B. T., Assistant District Inspector of Schools, Fazilka (Punjab) says :

It gives me great pleasure to certify that the Hindi monthly the CHAND is a very useful organ of its kind. It stands for the advocacy of the highest ideals of India and for the betterment of the depressed classes and women of India. I shall always try, let me assure you Sir, to push its circulation among my friends and circle of influence. I wish it all success.

***

Rai Saheb Pt. Raghuber Prasad Dwivedi, B. A., writes from Jubbulpore :

××× I highly appreciate your successful efforts in bringing out such an excellent high class monthly in Hindi regularly every month × × ×. CHAND is cater for readers of all classes, all ages, both the sexes and different tastes and is *spledidly printed, illustrated and got up.* The notes and articles are varied in interest and highly informing, some of them are also humorous.

This may be called high praise, but it is fully deserving.

***

Lala Kannomal Saheb, M.A., Civil Judge, Dholpur, in a recent letter to Mr. Saigal says :

The CHAND is becoming more and more popular every month. The CHAND *has achieved an unique position among the Hindi Journals of the day and I doubt not but that it will soon command a very wide circulation which it deserves.* There is no other paper like it for our women. Your editorial skill is remarkable ; your self-sacrifice for it is commendable and your enterprising spirit, in spite of the constant loss you are suffering is irrepressible, for which you deserve every praise.

Mr. M. M. Verma, M.A., formerly Assistant Private Secretary to H. H. The Maharaja of Bikaner State, now the Director of Education writes to Mr. R. Saigal :

××× but I would gladly hasten to tell you how favourably I am impressed to your CHAND. It not only fulfils a long-felt want but fulfils it so well. It has many attractive features ; not the least of which is that your able wife has succeeded in obtaining so many Indian lady writers for it. I hope, if there is any public spirit in our provinces, your journal will be widely supported and it will not be a source of financial embarassment to you I sincerely wish your venture every success.

***

Mr. G. P. Srivastava, B. A., LL. B., writes :

. . . The CHAND is no doubt an ably edited paper and it deserves every encouragement. The reading matter in it is also ample and worth reading. May God grant it a long and healthy life ×××. Our orthodox, hypocrite and good for-nothing Society requires continually a true exposition of its evil for its betterment, as is done. I hope it will have a wholesome effect in the public. You really deserve sincere congratulations not only from our much oppressed female class, but also from the real well-wishers of our Nation. May God help you in your endeavours. Your *Pravasi Ank* is only excellent.

***

Mr. C. M. Bhatt, Dewan to His Highness The Maharanaji Shri Shri Bhawani Singh Ji Saheb Bahadur of Danta-Bhawanghad State, writes in a recent letter to the editor :

His Highness appreciates your efforts in the cause of female education ; we fully endorse the views and the sentiments expressed in your magazine —the CHAND—on the subject of the emancipation of the women of India, should be spread broadcast wherever Hindi language is spoken. Your laudable efforts, to sound a loud note of warning to rouse the sleeping conscience of our great nation deserve indeed all appreciations they claim.

His Highness had been plessed to subscribe 12 (twelve) copies of the CHAND from the next month. I wish your magazine may flourish and that it may enjoy this annuity-long.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट—
जयश्री देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

'चाँद' के आगामी जातीय विशेषाङ्क

मुख-पृष्ठ पर पाठकों ने 'चाँद' के विशेषाङ्कों की सूचना और सूची पढ़ी होगी। हम विश्वास करते हैं कि 'चाँद' के लक्षावधि पाठक हमारी इस योजना का अभिनन्दन करेंगे। यद्यपि हम यह जानते हैं कि लगातार विशेषाङ्कों का—ऐसे विषयों पर जिन्हें शायद किसी ही पत्रिका ने छूने का साहस किया हो—प्रकाशन करना वास्तव में बड़ा कठिन है—लोहे के चने चबाना है। परन्तु जो पुरुष मृत्यु तक परिश्रम और सिपहगिरी पर कटिबद्ध है, वह तो कठिनाइयों को वधू की तरह वरेगा ही।

जातीय विशेषाङ्कों की ओर हमारा ध्यान जाने का कारण है। एक जाति के लोग दूसरी जाति से और एक प्रान्त के निवासी दूसरे प्रान्त के निवासियों के सामाजिक जीवन से परिचित नहीं हैं। किन-किन जातियों में क्या-क्या अच्छाइयाँ तथा कौन-कौन सी बुराइयाँ प्रविष्ट हैं, वे नहीं जानते। फल यह होता है कि एक देश के निवासी होते हुए भी प्रत्येक जाति अपने को दूसरे लोक का जीव समझने लगती है। साथ ही इन विशेषाङ्कों के प्रकाशन द्वारा हम यह भी दिखलाना चाहते हैं कि किस-किस जाति में किस-किस प्रकार की कुरीतियाँ प्रचलित हैं, जो उनका रक्त शोषण कर उन्हें रसातल की ओर अग्रसर कर रही हैं। हम जानते हैं, यह कार्य बहुत अप्रिय है और रूढ़ि के उपासक गालियों से इन विशेषाङ्कों का स्वागत करेंगे, पर इसके लिए हमें विशेष चिन्ता नहीं है। ऐसी जातियों तथा समाजों के प्रति हमारे हृदय में घृणा नहीं, वरन् दया का भाव उदय होता है। हम जानते हैं, सामूहिक रूप से हमारा वर्त्तमान समाज रुग्णावस्था में है और यह स्वाभाविक ही है—मरने वाला रोगी कड़वी दवा से घृणा करता है—उससे दूर भागता है, पर "कड़वी भेषज बिन पिए, मिटै न तन की ताप"। शुभचिन्तकों का धर्म है कि कड़वी दवा रोगी के गले के नीचे, जैसे भी हो उतार दी जाय, फल चाहे कुछ भी हो। हम ठीक इसी नीति का अवलम्बन करना चाहते हैं, परमात्मा हममें शक्ति दे कि हम अपने इस अनुष्ठान को सुचारु रूप से निबाह सकें।

वह समय लद गया जब हम अपने पूर्वजों का गुण-गान करके ही तृप्त रहते थे और इसी को सब सुधारों का मूल-मन्त्र समझते थे, किन्तु यह हमारी भूल थी और वह भयङ्कर भूल थी जिसने इस बुरी तरह हमें लथेड़ा और लथेड़ रही है। हमको स्मरण रखना चाहिए कि सच्ची उन्नति अपनी बुराइयों के ज्ञान से होती है, प्रशंसा से नहीं। 'चाँद' की नीति भी यही रही है और शायद रहे भी यही। हमारा यह निश्चित-विश्वास है कि स्पष्ट-वादी शत्रु खुशामदी मित्र से हज़ार दर्जे—लाख दर्जे—अच्छा होता है। अस्तु—

सभी जाति और सभी प्रदेश के स्त्री-पुरुष 'चाँद' के ग्राहक-अनुग्राहक हैं। 'चाँद' सदैव उनके अतिप्रिय बन्धु की तरह उनकी सेवा और मनोरञ्जन करता रहा है। अब 'चाँद' प्रत्येक जाति की ऐसी सेवा करना चाहता है, जिसका वह अपने ऊपर ऋण समझता है। अभी केवल कुछ जातियों के विशेषाङ्क निकाले जायँगे। पाठक यदि हमारे इस प्रयास को पसन्द करेंगे, तो हम भविष्य

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में लगभग सभी भारतीय प्रमुख जातियों के नाम से विशेषाङ्क निकालने का प्रयत्न करेंगे, जो वास्तव में साहित्य की एक बड़ी और अनोखी वस्तु होगी। इन सभी अङ्कों के सम्पादन का भार आचार्य श्रीचतुरसेन शास्त्री ने ग्रहण करके हमारी चिन्ताओं को बहुत कम कर दिया है। आप जैसे धुरन्धर लेखक के हाथ से ये विशेषाङ्क हिन्दी-संसार में ऐसे बेजोड़ निकलेंगे, जैसा कि पाठक उनसे आशा करते हैं। आगामी नवम्बर का पहला विशेषाङ्क "मारवाड़ी-अङ्क" होगा। इसकी पृष्ठ-संख्या ३०० के लगभग और चित्र-संख्या १५० के लगभग होगी। जब से 'अबलाओं का इन्साफ़' इस संस्था से प्रकाशित हुआ है, तब से कुछ मारवाड़ी-भाइयों ने हम पर रोष प्रकट किया है। इस अङ्क को प्रकाशित करके हम यह दिखाना चाहते हैं कि हम मारवाड़ी-समाज के कितने मित्र, हितैषी, प्रशंसक और समवेदना के भावों से परिपूर्ण हैं। 'अबलाओं का इन्साफ़' जैसी पुस्तक का प्रकाशन हमारे हृदय में धधकती हुई उस ज्वाला की एक लपट है, जो प्रत्येक ग़ैरत वाले मर्द के हृदय में अपनी सगी बहिन-बेटी को पशु की तरह मरते और जीवित रहते देखकर जलती रहती है। हम इस अङ्क को प्रकाशित करके यह प्रकट किया चाहते हैं कि विशाल मारवाड़ी-समाज धन, सम्पत्ति, मर्यादा, योग्यता, जन-बल और परिस्थिति में भारत भर की बड़ी जातियों की अग्रपंक्तियों में बैठने के योग्य है। हम इस अङ्क के द्वारा उससे यह भी कहना चाहते हैं कि वह प्रगति में फिसड्डी न रहे। तिजोरी की लक्ष्मी तो है ही, गृहलक्ष्मी की सच्ची पूजा करे, ऊँचा उठे, जिए और भारत का उद्धार अपने सम्पन्न हाथों से करे। मारवाड़ी-समाज भारत के बाज़ारों का स्वामी है—वह अपनी इस बपौती के अधिकार को मुठमर्दी से कहीं गँवा न दे। जहाँ पृथ्वी की जातियाँ हवा में उड़कर विश्व विजय करने की ठान रही हैं, वहाँ यह प्रबल, धर्मात्मा एवं सम्पन्न जाति आत्मबोध प्राप्त करे।

इस विशेषाङ्क में भारतवर्ष के जीवित और स्वर्गवासी बड़े-बड़े मारवाड़ी व्यापारियों, विद्वानों, पण्डितों, राजाओं, राजनैतिकों, कलाविज्ञों के चित्र, चरित्र और उनकी कुछ स्मृति रहेगी। हम 'चाँद' के प्रत्येक पाठक-पाठिकाओं से प्रार्थना करते हैं कि वे ऐसे चित्र और चरित्र, प्राचीन कारीगरी के दस्ती चित्र, कविता, लेख और अपने यहाँ की रीति-रस्म आदि पर चित्र तथा लेख भेजकर अनुगृहीत करें। इस अङ्क के लिए निम्नलिखित विषयों पर लेख आने चाहिएँ :—

ऐसे चित्र और फ़ोटो भेजिए—प्रसिद्ध चित्रकारों की क़लम के पुराने चित्र। स्टेशनों पर मारवाड़ी पुरुष-स्त्रियों की यात्राओं के ख़ास-ख़ास दृश्यों के चित्र, मारवाड़-प्रान्त भर की भिन्न-भिन्न जाति-व्यवसाय के स्त्री-पुरुषों, स्थानों पदार्थों आदि के चित्र। ख़ास-ख़ास व्यापारी राजाओं, विद्वानों के चित्र, आदि-आदि। मारवाड़ी-समाज की यात्राओं, तीर्थ के मेलों या सामाजिक जीवन पर चित्रों के लिए तीन इनाम दिए जायँगे। प्रथम श्रेणी का इनाम एक स्वर्ण-पदक। दूसरा इनाम एक चाँदी का गिलास। तीसरा इनाम एक घड़ी। इनाम पाने वाले व्यक्तियों के चित्र और परिचय भी छापे जायँगे, परन्तु इस अङ्क के लिए सभी लेख १५ अगस्त तक और चित्र १५ जुलाई तक आ जाने चाहिएँ। 'फाँसी-अङ्क' के लिए आए हुए लगभग १२ आना महत्वपूर्ण लेख और चित्र केवल समय पर न आने के कारण रह गए। पाठक इसका ख़्याल रक्खें कि "का वर्षा जब कृषी सुखाने।"

दूसरा विशेषाङ्क "भारतवर्ष-अङ्क" 'मारवाड़ी-अङ्क' के बाद शीघ्र ही प्रकाशित होगा। इसकी पृष्ठ-संख्या ३०० से अधिक तथा चित्र-संख्या भी २०० से ऊपर रहेगी। यह अङ्क अत्यन्त महत्वपूर्ण होगा। इसमें भारतवर्ष भर की प्रान्तवार उपज, खनिज, व्यापार, पूँजी, राज्य-सत्ता, जनबल, जातियाँ, प्रदेश, समाज, धर्म आदि सभी विषयों का संग्रह होगा। इसे पढ़ने पर आज के भारत की साम्पत्तिक, सामाजिक, और राजनैतिक परिस्थिति का पूर्ण ज्ञान हो जायगा।

चित्रों में काश्मीर, नैनीताल, मसूरी, दार्जिलिङ्ग, नीलगिरी आदि के मनोरम इकरङ्गे और बहुरङ्गे चित्र, भारत भर के तीर्थों के चित्र, प्रसिद्ध स्त्री-पुरुषों के चित्र, प्रत्येक प्रान्त की वेश-भूषा, खान-पान, खाद्य, रीति-रस्म आदि के चित्र रहेंगे। इस अङ्क की लेख तथा चित्र-सूची एवं विस्तृत योजना किसी अगले अङ्क में प्रकाशित की जायगी।

"जातीय विशेषाङ्कों" में यथासम्भव इस बात की चेष्टा की जायगी कि जिस-जिस जाति के लिए वे विशेषाङ्क हों, उस जाति के सम्बन्ध की यावतीत ज्ञातव्य

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बातों का उनमें समावेश रहे। उस जाति की जन-संख्या, प्रमुख स्त्री-पुरुषों के चित्र-चरित्र, उसका व्यापार, सम्पत्ति, परिस्थिति, कुरीति, आदि-आदि सभी आवश्यक बातें रहेंगी।

'चाँद' के प्रत्येक पाठक-पाठिकाओं से हमारा अनुरोध है कि वह इन विशेषाङ्कों को सफल बनाने में पूरी-पूरी हमारी सहायता करें, क्योंकि बिना उनके सहयोग और सहायता के इन अङ्कों का सफल होना सर्वथा असम्भव है। लेख और चित्रों को तत्काल भेज दीजिए, जिससे ब्लॉक बनने लगें। जिस जाति के विशेषाङ्क का अधिक मैटर हमारे पास सर्व-प्रथम एकत्रित होगा, उसी जाति का विशेषाङ्क शीघ्र प्रकाशित होगा। इन जातीय विशेषाङ्कों से सम्बन्ध रखने वाले लेख, कविताएँ और चित्रादि आचार्य श्रीचतुरसेन शास्त्री, चाँदनी चौक, दिल्ली के पते से भेजना चाहिए।

* * *

बालविवाह-बिल और सरकार

कलकत्ते के सामाजिक परिषद् के सभापति श्रीयुत जयकर जी ने समाज-सुधार के विषय में सरकार की जिस उदासीनता की चर्चा अपने भाषण में की थी तथा वर्तमान सरकार के विषय में जो हमारी निश्चित धारणा है, उसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण बड़ी व्यवस्थापिका सभा में बालविवाह-बिल पर बहस होते समय मिला है। समाज-सुधारकों के मार्ग में सरकार किस प्रकार रोड़े अटका देती है और कितने परोक्ष रूप से चाहती है कि भीतर ही भीतर घुन लग कर हमारा समाज तहस-नहस हो जाय, इसका ज्वलन्त प्रमाण सभी को दिखाई पड़ गया है। श्रीयुत हरविलास शारदा जी के तीन वर्ष के किए-कराए परिश्रम पर पानी फिर गया, और सरकार के अनेक बार आश्वासन दिलाते रहने पर भी, इस अन्तिम अवस्था में जाकर भी बाल-विवाह-बिल सच तो यह है, मिट्टी में मिल गया!

शारदा जी का प्रस्ताव था कि १४ वर्ष के पूर्व लड़कियों और १८ वर्ष के पूर्व लड़कों का विवाह क़ानून द्वारा रोका जाय; इसे देश की लगभग सभी ज़िम्मेदार सभा-सोसाइटियों ने स्वीकार कर लिया था। यहाँ तक कि महिलाओं—मारवाड़ी-समाज की महिलाओं तक ने जगह-जगह सभाएँ करके इस उपयोगी बिल का अनुमोदन किया था। केवल मद्रास-हाईकोर्ट को छोड़ कर शेष सभी हाईकोर्टों ने इस बिल के पक्ष में सम्मति दे दी थी, मद्रास-काउन्सिल ने भी इसके पक्ष में निर्णय दिया था; पर सरकार की कूटनीति ने इस कल्याणकारी

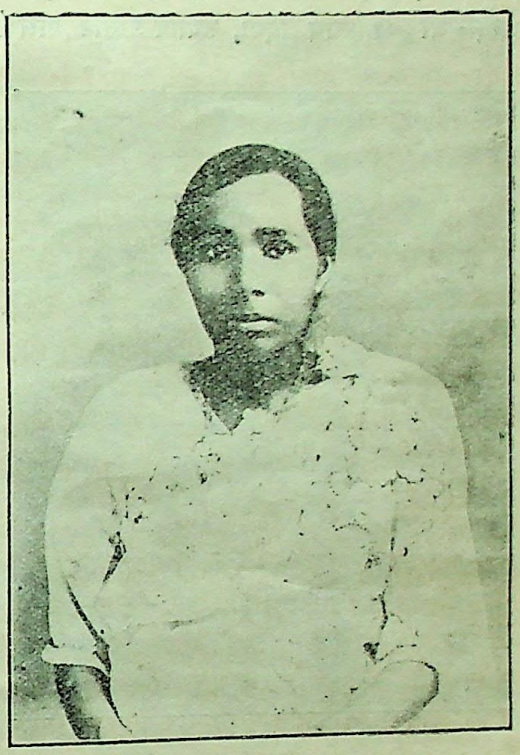

मिस ई० सैमुअल

आप ट्रावनकोर की महिला-रत्न हैं, जिन्हें राज्य की ओर से उच्च कोटि की डॉक्टरी शिक्षा प्राप्त करने के लिए इंगलैण्ड भेजा गया था। हाल ही में आप सम्मान-सहित अपना अध्ययन समाप्त कर भारत लौटी हैं। आप ट्रावनकोर की महिलाओं की सेवा करेंगी।

बिल का पलड़ा एक बार ही उलट दिया; और सो भी कितनी चालाकी से! ऐसे अवसर पर, जब किसी को भी इसकी ख़बर न थी और न कोई इस चाल के लिए तैयार ही था, सरकार का प्रोत्साहन पाकर श्रीयुत एम० के० आचार्य ने यह प्रस्ताव किया कि जब तक सहवास-वय-समिति अपनी रिपोर्ट प्रकाशित न कर दे, तब तक

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह बिल स्थगित रक्खा जाय। पर सच पूछा जाय तो, जैसा शारदा जी का कहना है, सहवास-वय-समिति की रिपोर्ट के पहले ही इस बिल पर मत ले लेना चाहिए था, उसके पीछे नहीं। अस्तु, सरकार तो यह चाहती ही थी, उधर आचार्य महोदय का यह प्रस्ताव करना था कि सरकारी तथा अर्द्ध-सरकारी सदस्य—सभी एक ओर हो गए और यद्यपि ग़ैर-सरकारी सदस्यों ने शारदा जी का साथ दिया, तथापि प्रस्ताव पास हो

श्रीमती दादीबा मेहता

आप अहमदनगर के दौरा-जज की धर्मपत्नी हैं। हाल ही में आप गर्ल्स गाइड एसोसिएशन अहमदनगर की प्रधाना नियुक्त हुई हैं।

ही गया। अपनी लज्जा को छिपाने के लिए सरकार ने दो यूरोपियन सदस्यों को बिल के पक्ष में वोट देने के लिए तैयार कर रक्खा था, पर यह चाल किसी से छिपी न रह सकी—क़लई खुल ही गई!

कई महिलाएँ भी उपस्थित थीं और बिल की सहायता के लिए बड़ा प्रयत्न कर रही थीं, पर सरकारी हथकण्डों के आगे बेचारियों को हताश होना पड़ा! इन हथकण्डों का अर्थ यही था कि यह बिल दो-तीन वर्ष और स्थगित रक्खा जाय, क्योंकि व्यवस्थापिका सभा की अन्तिम बैठक थोड़े ही दिन बाद होगी, पर उसमें इस बिल की कोई कारवाई न हो सकेगी और तब तक शायद सहवास-वय-समिति की रिपोर्ट भी न प्रकाशित हो सके। इस बीच में न जाने कितने युवक-युवतियों का जीवन नष्ट हो जायगा, और फिर यह कौन जानता है कि इतने समय पश्चात् यह बिल पास ही होगा? तब तक कोई और चाल निकाली जा सकती है या सहवास-वय-समिति की रिपोर्ट ही, जिस पर बिल की सफलता निर्भर है, कुछ और की और हो सकती है!

सहायता का वादा करके मौक़ा पड़ने पर इस प्रकार पीठ दिखा देना सरकार के लिए यद्यपि कोई नई बात नहीं, पर है अतीव लज्जापूर्ण। सरकार की इस कूट-नीति पर श्री० हरविलास शारदा तथा अन्यान्य समाज-सुधार के पक्षपाती सदस्यों को क्रोध आना सर्वथा स्वाभाविक ही था। शारदा जी ने तो आपे से बाहर होकर कहा कि यदि मैं जानता कि ऐसा नीचतापूर्ण धोखा दिया जायगा तो मैं यह बिल पेश ही न करता। सर पुरुषोत्तमदास जी ने व्यङ्गपूर्ण शब्दों में सरकारी नीति की खिल्ली उड़ाते हुए इतना ही कह कर सन्तोष कर लिया कि "हमारी सरकार सचमुच चाहती है कि देश में बाल-विवाह होते रहें—और ज़ोरों से हों।" हम सर पुरुषोत्तमदास जी को बतलाना चाहते हैं कि इसके अलावा भी हमारी सरकार बहुत सी बातें चाहती है—और चाहे भी क्यों नहीं, अभागे भारतीय जितने ही अशिक्षित, जितने ही मूर्ख और जितने ही अव्यवस्थित तथा असङ्गठित रहेंगे—वे जितने ही कमज़ोर रहेंगे, उतना ही ब्रिटिश शासन का पट्टा सुदृढ़ होता जायगा। बात बिलकुल स्वाभाविक है, विदेशी शासन के अधीन शासक तथा शासित—दोनों के हित परस्पर विरोधी होते हैं! अस्तु—

शारदा महोदय के बाल-विवाह-बिल के गिर जाने का अथवा टाल दिए जाने का हमें उतना खेद नहीं है—क्योंकि यह हमारी निश्चित-धारणा थी कि ऐसा उपयोगी बिल हमारी सरकार आसानी से पास न होने देगी—खेद हमें इस बात का है कि इस बिल के गिर जाने से पुरानी टकसाल के बूढ़ों का हौसला बहुत-कुछ बढ़ जायगा। रूढ़ि के पृष्ठ-पोषकों को सरकार की यह विनाशकारी चाल 'धर्म-रक्षा' का पहाड़ दिखाई देगी

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha.

और ब्रिटिश सरकार को वे देश का सच्चा शुभचिन्तक और धार्मिक मामलों में वे अपना अभिन्न सहायक समझने लगेंगे। परमात्मा इस घातक मनोवृत्ति से देश की रक्षा करें।

* * *

अखिल भारतीय क्षत्रिय-महासभा

विगत कॉङ्ग्रेस-सप्ताह में क्षत्रिय-महासभा की भी बैठक प्रतापनगर, दरभङ्गा में बड़े समारोह के साथ समाप्त हुई थी। इस अवसर पर दो देशी रियासतों—सैलाना तथा खिलचीपुर के महाराजे भी उपस्थित थे। इस महासभा में इतना समारोह पहले कभी नहीं हुआ था और कहा जाता है कि इस बैठक में लगभग ४० हज़ार जनता उपस्थित थी। जो भी हो, इस बार के अधिवेशन में कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए थे। अनेक सामाजिक अवसरों पर व्यर्थ व्यय करने, बारातों में वेश्याओं के नाच कराने, शादियों में दहेज़ लेने आदि कुरीतियों का विरोध किया गया। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह तथा अनमेल-विवाहों को तुरन्त रोकने का जनता से अनुरोध किया गया और कहा गया कि यदि क्षत्रियों में अब भी कन्या-बध होता है तो यह अत्यन्त अमानुषिक है और इसे जड़ से मिटा देने के लिए तुरन्त व्यवस्था की जाय। 'चाँद' के किसी आगामी अङ्क में हम इस जाति की इस नृशंसता की सविस्तार चर्चा करेंगे। अस्तु—

ये सब प्रस्ताव तो अवश्य सराहनीय हैं, ख़ास कर जबकि क्षत्रिय-समाज समाज-सुधार के विषय में बहुत धीमी गति से अग्रसर हो रहा है, पर एक प्रस्ताव का अर्थ हमारी समझ में नहीं आया; वह यह था कि एक ही गाँव में लड़के-लड़कियों का विवाह करना अतीव प्रशंसनीय है! यदि इस प्रकार के विवाह बराबर होते रहे तो भावी सन्तान बड़े ही सङ्कुचित विचारों की उत्पन्न होगी और थोड़े ही दिनों में समाज की रही-सही प्रतिभा भी कुण्ठित हो जायगी। सामाजिक तथा वैज्ञानिक—दोनों ही दृष्टि से यह प्रणाली दूषित है। जहाँ तक सम्भव हो, वर-कन्या भिन्न-भिन्न जाति तथा स्थानों के हों तो सन्तति अच्छी होती है। जितना ही भेद उनके रहन-सहन के वातावरण में होता है, उतनी ही अच्छी भावी सन्तान की संस्कृति होगी। आश्चर्य यही है कि जब एक ओर संसार भर में सर्वत्र अन्तर्जातीय खान-पान तथा विवाह-सम्बन्ध के लिए प्रयत्न हो रहे हैं, तो दूसरी ओर क्षत्रिय-समाज इस प्रकार के एक ही गाँव में विवाह करने के निरर्थक प्रस्ताव पास करके अपनी सङ्कुचित प्रवृत्ति और कूप-मण्डूकता का परिचय दे रहा है!

* * *

हिन्दू-उत्तराधिकार बिल

राज्य-परिषद् के संशोधन करने के बाद बड़ी व्यवस्थापिका सभा ने अब की बैठक में हिन्दू-उत्तराधिकार-बिल पास किया है, जिसके अनुसार जिनके

श्रीमती सीवान जानकी अम्मल

आप हाल ही में श्रीरंगम (मद्रास) की ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट नियुक्त हुई हैं। ट्रिचनोपाली ज़िले में यह सम्मान पाने वाली आप सर्व-प्रथम महिला-रत्न हैं।

हिस्सेदार न हों और जो वसीयतनामा न लिख कर मरे हों, उनके उत्तराधिकारी लड़के की लड़की, लड़की की

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लड़की, बहिन और बहिन का लड़का—इसी क्रम से पिता के बाद और चचा के पहले माने जायँगे। यद्यपि कई नेताओं ने इसके अरुचिकर होने के कारण इसका विरोध किया, तथापि इस बिल के पास हो जाने से स्त्रियों की आर्थिक कठिनाइयों में बहुत-कुछ कमी हो जायगी, इसमें सन्देह नहीं। जैसा श्री० जयकर महोदय ने कहा है—"हिन्दू-उत्तराधिकार का नियम ईसा के जन्म के सदियों पहले बना था, जब कि पुरुष लोग योद्धा थे और आर्य-संस्कृति के प्रचारक तथा संरक्षक थे। इसी से सम्पत्ति में उनका अधिक अधिकार माना गया था। कि प्रकृति ने अपने खिलवाड़ में एक को स्त्री बना दिया है। यह बिल इस खिलवाड़ के कारण की जाने वाली ग़लती का सुधार करना चाहता है। यह बिल क्रान्तिकारी नहीं है; क्योंकि इसमें लड़कियों के लड़कों के पहले ६४ हक़दारों का अधिकार माना गया है।"

यह सर्वथा ठीक भी है, क्योंकि मनुष्य के अन्तिम दिनों में उसके निकट सम्बन्धी ही उसकी सहायता तथा सेवा करते हैं। इस अवस्था में उन्हें दूर के सम्बन्धियों की अपेक्षा अधिक हक़ मिलना सर्वथा

मध्य-प्रान्तीय महिला

शिक्षा-सम्मेलन में सम्मिलित महिलाओं का ग्रप। बीच में लेडी बटलर और सम्मेलन की प्रधाना मिसेज़ बैरामजी बैठी हैं।

वेदों में उत्तराधिकार का कुछ भी उल्लेख नहीं है। वैदिक कर्मकाण्ड सम्बन्धी एक ग्रन्थ में लिखा है कि स्त्रियाँ सोमरस नहीं पाएँगी, उसे केवल पुरुष ही पीने पाएँगे, ताकि वे भली भाँति लड़ सकें। हिन्दू-उत्तराधिकार-क़ानून के बनाने वालों ने इसी सिद्धान्त से स्त्रियों का बहिष्कार कर दिया था। परन्तु आज की स्थिति ऐसी है—जैसाकि सर शङ्करन नायर ने राज्यपरिषद् में कहा था, कि ३३२ सम्बन्धियों के बाद कन्याओं का हक़ आता है! ये सब दूर-दूर के सम्बन्धी लड़की के लड़कों से बढ़कर हक़दार केवल इसी कारण बने हैं स्वाभाविक ही है। बीच में एक सदस्य ने यह संशोधन भी पेश किया था कि इस बिल के पास हो जाने के २५ वर्ष बाद तक पुराना क़ानून ही बरता जाय। पर यह रद कर दिया गया और राज्यपरिषद् द्वारा संशोधित बिल ही पास किया गया। व्यवस्थापिका सभा को हिन्दू-जाति के सिर से स्त्री-पुरुषों में इस असमता के कलङ्क को मिटा देने के लिए हम बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि इस बिल से समाज का कल्याण होगा।

* * *

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नायक-कन्या-संरक्षण बिल

कुमायूँ की पहाड़ियों में नायक जाति के लोग रहते हैं जो प्रायः बर्बर सभ्यता के अनुयायी हैं। उनमें कई कुत्सित प्रथाएँ प्रचलित हैं, पर सबसे घृणित कन्याओं के व्यापार की प्रथा है। नायकों में छोटी उम्र से ही लड़कियों को व्यभिचार की बाज़ाब्ता शिक्षा दी जाती है और इस प्रकार बलात् उन्हें नरक की ज्वाला में ढकेल दिया जाता है! ये लोग निरपराध भोली-भाली कन्याओं को या तो धनिकों के हाथ बेच डालते हैं या सरे-बाज़ार बाज़ारू चीज़ों की तरह इनका सौदा करते हैं। इसका फल यह हुआ है कि अलमोड़ा, गढ़वाल तथा नैनीताल आदि पहाड़ी स्थानों के अतिरिक्त सभी बड़े-बड़े नगरों में अधिकांश नायक जाति की वेश्याएँ पाई जाती हैं। उधर और प्रान्तों में अपने कुत्सित कर्तव्यों का जाल फैलाने वाले लोग यहाँ भी पहुँच जाते हैं और ग़रीबों को बहका कर छोटी-छोटी लड़कियों को ख़रीद लिया करते हैं। ये लोग इन्हें ले जाकर दूर-दूर स्थानों में बेचते और इनसे वेश्या-वृत्ति कराते हैं!

सुधारकों का ध्यान बहुत दिनों से इस ओर आकर्षित है, पर नायकों को स्वयं इस प्रथा के मिटाने में हिचकिचाहट होती है। क्योंकि प्रश्न जीविका का है!! वे सैकड़ों वर्षों से इस सौदे से ही जीवन व्यतीत करते आ रहे हैं और यह स्वाभाविक ही है—पेट पर लात खाना कौन स्वीकार करेगा? वे चाहते हैं कि और कुछ परिश्रम न करके, लड़कियों की बिक्री से ही मौज उड़ाया करें। एकाध लड़कियों के विवाह हाल ही में आर्यसमाज की सेवा-समितियों द्वारा कराए गए हैं, पर नायक जाति के लोग इससे बिगड़ गए थे और अपने पैशाचिक व्यापार में और भी उत्साह से लग गए थे!

हर्ष का विषय है कि युक्त-प्रान्तीय काउन्सिल की गत बैठक में पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त ने नायक-कन्या-संरक्षण बिल (Naik Girls Protection Bill) पेश किया था और उसकी अन्तिम काररवाई भी होगई। चौधरी धर्मवीरसिंह ने बहस होते समय कहा कि नाबालिग़ लड़कियों की अवस्था १८ वर्ष से २० वर्ष कर दी जाय और नायकों से प्रार्थना की जाय कि ऐसी लड़कियों के लिए वे अनाथालय खोलने में सहायता दें, पर ये दोनों प्रस्ताव गिर गए। बाबू भगवतीसहाय जी ने कहा कि इन्हें पढ़ने-लिखने तथा नाचने-गाने की शिक्षा देने का प्रबन्ध भी किया जाय। अस्तु—

इस बिल में विधान है कि यदि किसी मैजिस्ट्रेट को सन्देह हो कि १८ वर्ष से छोटी किसी लड़की को बेचने

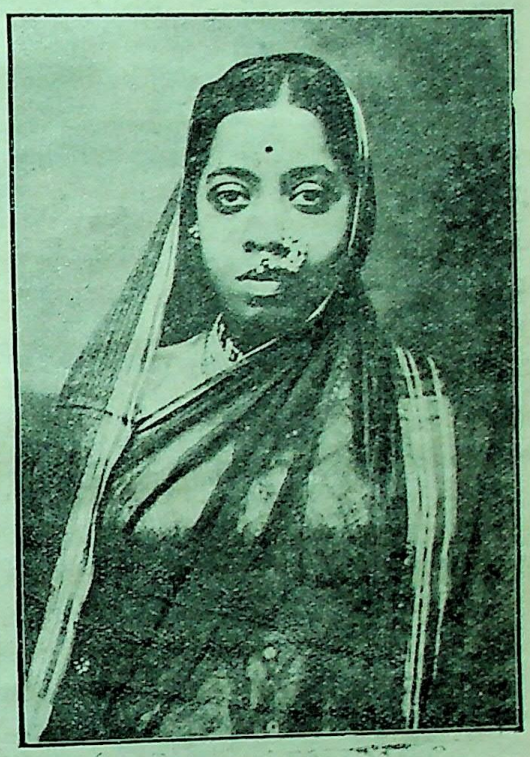

श्रीमती विद्यालङ्कृति रङ्गूबाई

आप बेलगाम (बम्बई-प्रान्त) के महाराष्ट्र फ़ार्मेसी की अध्यक्षा और ज़िला स्कूल-बोर्ड की सदस्या हैं। हाल ही में आप बेलगाम-म्यूनिसिपैलिटी की सदस्या भी निर्वाचित हुई हैं। समस्त महाराष्ट्र और करनाटक में म्यूनिसिपैलिटी की सदस्या होने वाली आप सर्व-प्रथम महिला-रत्न हैं।

का उद्योग हो रहा है, तो वह उसे किसी अनाथालय में रोक सकता है अथवा किसी उत्तरदायी पुरुष के पास रख सकता है। इस प्रकार की काररवाई से यह व्यापार बन्द अवश्य होगा, पर जब तक ऐसी लड़कियों के लिए प्रबन्ध करके अनाथालय न खोले जायँगे तथा जब तक अन्तर्जातीय विवाह का प्रचार न किया जायगा, तब तक केवल

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मैजिस्ट्रेटों को ऐसा करने का अधिकार देने से ही कुछ न हो सकेगा। अवस्था की क़ैद की बात भी हमारी समझ में नहीं आई। यदि १८ वर्ष से कम की ही बात है तो बहुधा लोग झूठ ही कह दिया करेंगे कि लड़की की उम्र १८ वर्ष है। बेचने वालों को पहले तो घोर दण्ड देने की व्यवस्था होनी चाहिए दूसरे, सुधारकों को नायक जाति में शिक्षा तथा सद्भावों का प्रचार करना चाहिए। तथापि हम पन्त जी को ऐसे उपयोगी बिल के पेश करने के लिए उन्हें बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि कमायूँ प्रान्त के समाज-सुधार-प्रेमी लोग इस नारकीय व्यभिचार का अन्त करने के लिए कोई उपयोग उठा न रक्खेंगे।

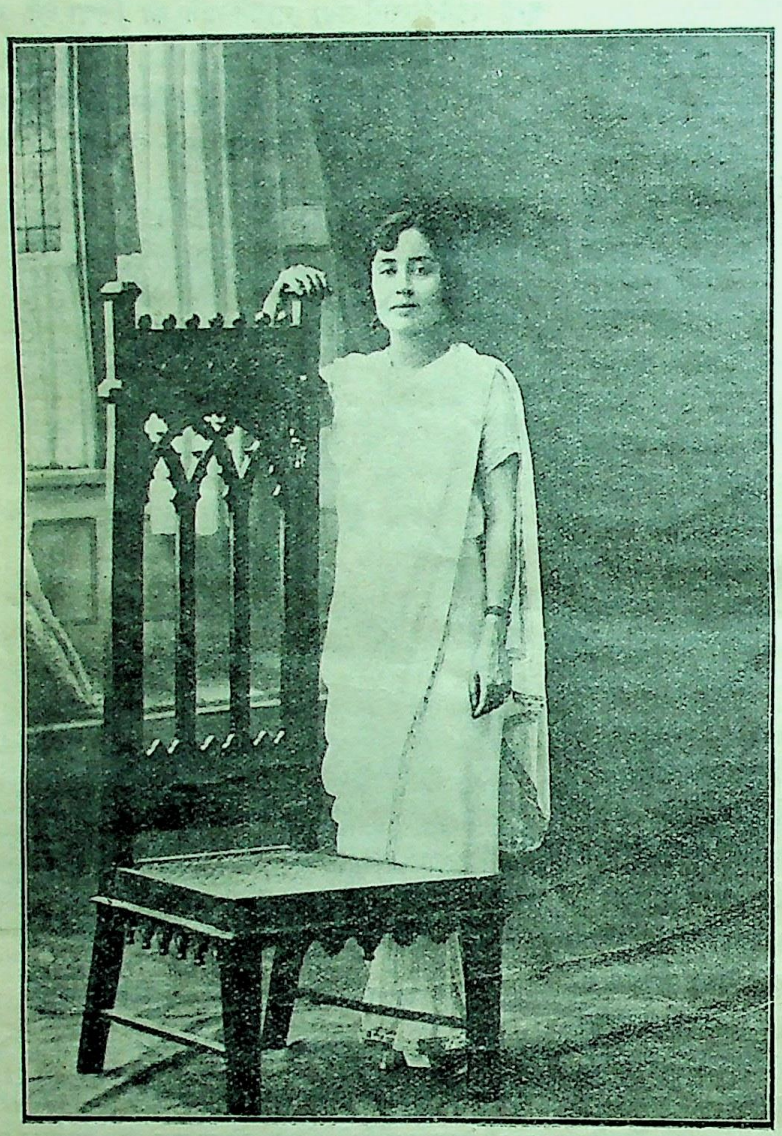

मण्डी की आदर्श महारानी साहबा श्रीमती ललितकुमारी देवा

जिनकी अध्यक्षता में अखिल भारतवर्षीय महिला-कॉन्फ्रेंस का विराट् अधिवेशन पटना में हुआ था। यह आपका हाल ही का लिया हुआ चित्र है।

*

लन्दन में स्त्रियों की विराट् सभा

ब्रिटिश कॉमनवेल्थ लीग की अध्यक्षता में कुछ दिन हुए लन्दन में एक सभा हुई थी, जिसकी सभानेत्री भारत के हाई कमिश्नर सर अतुल चटर्जी की धर्मपत्नी थीं। इस सभा में श्रीमती मारग्रीट कज़िन्स ने भारतीय स्त्रियों की उन्नति पर जो भाषण दिया वह बहुत गवेषणापूर्ण था। आपने कहा कि भारतवर्ष की राजनैतिक तथा सामाजिक सभी घटनाओं का स्त्री-समाज पर बड़ा प्रभाव पड़ रहा है। उदाहरण के लिए आपने बतलाया कि पाँच वर्ष पूर्व स्त्रियाँ मैजिस्ट्रेट नहीं हो सकती थीं और श्रीमती कज़िन्स स्वयं सर्व-प्रथम महिला-मैजिस्ट्रेट बनाई गई थीं। पर इस समय देश भर में तीस स्त्रियाँ मैजिस्ट्रेट का काम कर रही हैं, आठ प्रान्तीय काउन्सिलों की सदस्य हैं और पचास म्युनिसिपुल तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आदि की मेम्बर हैं। बहुत सी क़ानून में प्रविष्ट हुई हैं, कुछ डॉक्टर तथा नर्स का काम कर रही हैं और कितनी ही अध्यापिका हैं।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आपने यह भी कहा कि कुछ दिन पूर्व स्त्रियों के वोट के अधिकार वाले प्रश्न पर भारत-सरकार ने बड़ी उदासीनता दिखाई थी, पर अधिकार मिल जाने पर स्त्रियों ने अपने वोटों का उपयोग बड़ी तत्परता तथा उत्साहपूर्वक किया था। मद्रास शहर में तो ७० फ़ी सदी महिलाओं ने अपने वोट दिए थे। पर्दानशीन स्त्रियों तक ने इस आन्दोलन में बड़ा उत्साह प्रदर्शित किया था। मद्रास-काउन्सिल में तो विवाह की अवस्था १६ वर्ष निश्चित करते हुए एक प्रस्ताव पास हुआ है और मालाबार तथा मद्रास-प्रान्त में स्त्रियाँ भी बहुत स्वतन्त्र हैं। देशी रियासतों में तो बहुधा विवाहावस्था के लिए अलग क़ानून हैं, पर ब्रिटिश भारत में इसके लिए कोई नियम नहीं—कारण यह है कि सरकार सुधार की राह में रोड़े अटकाती रहती है। आपने इसका एक स्पष्ट उदाहरण देते हुए कहा कि गत वर्ष मैं दिल्ली में महिलाओं की एक बड़ी सभा में गई थी। वहाँ से एक डेलीगेशन बड़ी व्यवस्थापिका सभा की बैठक देखने गया, क्योंकि उन दिनों वहाँ सर हरिसिंह गौड़ का सहवास-स्वीकृति वाला बिल पेश था, जिसमें स्त्री के सहवास की अवस्था १३ से १४ वर्ष बढ़ा देने का प्रस्ताव था। वहाँ सभों ने होम मेम्बर क्रेरार साहब को कहते सुना कि सरकार इस बिल का विरोध करेगी। और सचमुच सरकार ने ऐसा विरोध किया कि यदि लाला लाजपतराय ने उसे फिर से घुमाने का प्रस्ताव न किया होता तो वह बिल एकदम गिर ही गया था।

श्रीमती कज़िन्स ने अन्त में कहा कि मुख्य सुधार स्त्रियों की शिक्षा तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धी हैं, जिनमें अभी उन्नति करने की बहुत अधिक गुञ्जाइश है। इसके लिए बहुत सी महिलाओं की आवश्यकता है, जो शिक्षकों तथा डॉक्टरों का काम करने के लिए तैयार हों, क्योंकि अधिकांश विधवाएँ ही अभी तक यह काम करती रही हैं। सच्चे सुधार के लिए होना यह चाहिए कि पढ़ी-लिखी विवाहिता महिलाएँ यह काम करें जिससे लड़कियों को उनके आदर्श से प्रोत्साहन मिले। आपने ठीक ही कहा कि शिक्षा के लिए और अधिक रुपयों की आवश्यकता है, और भारतीय सरकार को इस ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। पर श्रीमती जी भूलती हैं कि भारतीय सरकार पुलिस और फ़ौज के लिए स्वयं रोती रहती है—नमक तक पर कर लगा कर यह ख़र्च सुचारु रूप से, जैसा कि सरकार चाहती है, नहीं चलता, फिर स्त्रियों की जाग्रति के लिए व्यय करने के लिए धन कहाँ से आवे? भारतीय स्त्रियों में शिक्षा-प्रचार तथा जाग्रति का जो भयङ्कर परिणाम होगा, हमारी सरकार उसे ख़ूब जानती है। वह भूलने की बात नहीं है जब १५ जून, सन् १८५३ को पार्लिमेण्ट की सिलेक्ट कमिटी के सामने गवाही देते हुए कम्पनी के एक डाइरेक्टर ने स्पष्ट शब्दों में कहा था :—

× × × We had just lost America from our folly, in having allowed the establishment of schools and colleges, and that it would not do for us to repeat the same act of folly in regard to India"*

अर्थात्—× × ×हम लोग अपनी इसी मूर्खता के कारण अमेरिका हाथ से खो बैठे हैं, क्योंकि हमने उस देश में स्कूल और कॉलेज क़ायम हो जाने दिए, अब भारत के विषय में हमारा उसी मूर्खता को दोहराना उचित नहीं है× × ×"

* * *

जैन-समाज की नींद

इस शीर्षक का एक लम्बा लेख वर्धा से प्रकाशित होने वाले 'सनातन जैन' पत्र में छपा है, जिसमें जैन-समाज की कुछ कुरीतियों का उल्लेख करके उनके निर्मूलनार्थ जनता से अपील की गई है। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, अनमेल-विवाह आदि दुर्गुणों के अतिरिक्त इनके यहाँ भी दहेज-प्रथा तथा विधवाओं की वृद्धि के कारण बड़े-बड़े अत्याचार हो रहे हैं। उसी लेख में एक सज्जन द्वारा कही हुई एकाध सच्ची घटनाओं का भी वर्णन है, जिनसे जैन-समाज के पतन का भयङ्कर दृश्य प्रत्यक्ष हो जाता है। कन्या-विक्रय की भी एक कथा उसमें छपी है, जिससे पता चलता है कि एक लोभी

* T. C. Marshman, in his evidence before the Select Committee of the House of Lords appointed to enquire into the affairs of the East India Company, 15th June, 1833.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पिता ने कई हज़ार लेकर अपनी कन्या का विवाह एक बूढ़े सज्जन से तय किया और जब देखा कि और रुपए वसूल हो सकते हैं तो उन्हें धमकी देकर कहा कि मैंने लड़की की शादी दूसरे से ठीक कर ली है, आप हज़ार रुपए और दें तो विवाह करूँ। बेचारे ने रुपए दिए, पर जब विवाह के दिन भाँवरें पड़ने लगीं तो धन-लोलुप पिता ने फिर लालच फैलाई, एक हज़ार रुपए और लेकर ही पिण्ड छोड़ा। बेचारे ने ऋण लेकर रुपए दिए थे, मारे चिन्ता के थोड़े ही दिन बाद लड़की को विधवा छोड़, चल बसा। अब युवती-विधवा पिता के नाम रो-रोकर विपत्ति काट रही है!

दूसरी कथा खण्डेलवाल जाति की एक विधवा की है, जिससे जान पड़ता है कि बड़े-बड़े धनी घरों में ये अभागी स्त्रियाँ रोटी बनाने के काम पर रक्खी जाती हैं और फिर इनसे प्रायः अनुचित सम्बन्ध कर लिया जाता है और गर्भ रह जाने पर बेचारियों को धता बता दिया जाता है! फिर ये बेचारी या तो वेश्याएँ बन जाती हैं अथवा ईसाइयों या मुसलमानों का शिकार होकर जीवन बिताती हैं। जैन लोगों की संख्या लगभग १२ लाख है और इस समाज में बहुत से धनाढ्य लोग भी हैं। क्या इन लोगों की दृष्टि अपने समाज की इन कुरीतियों की ओर न जायगी और जाग्रति के इस युग में भी वे क्या अपना सारा धर्म इसी में समझे बैठे रहेंगे कि 'अहिंसा परमो धर्मः' और कपड़े से नाक-मुँह बाँध कर चलना-फिरना चाहिए इत्यादि?

जैनियों में अभी कट्टरता का ढोंग बहुत है—कोई दिन डूबने के बाद भोजन ही नहीं करता तो कोई चिराग़ नहीं जलाता; कोई मुँह पर कपड़ा बाँधे रहता है तो कोई छान कर पानी पीना ही धर्म-शास्त्र का सार समझता है। हम उन जैनी भाइयों से अपील करते हैं, जो धर्म के सच्चे स्वरूप को पहचानते हैं और समाज के विकास के सिद्धान्तों से भली-भाँति परिचित हैं। उन्हें चाहिए कि वे अपने सहधर्मियों की आँखें खोल कर उनमें आधुनिक सङ्गठन-शक्ति तथा सामाजिक जीवन पैदा करें तथा इस लज्जापूर्ण कलङ्क से अपने समाज को बचावें।

* * *

कलकत्ता-काँङ्ग्रेस की व्यायाम-प्रदर्शिनी

बड़े हर्ष की बात है कि काँङ्ग्रेस ने राष्ट्रीय उत्थान के लिए शारीरिक सङ्गठन की महत्ता कलकत्ते में काँङ्ग्रेस के अवसर पर एक व्यायाम-प्रदर्शिनी आयोजित करके स्वीकार की है। यों तो प्रदर्शिनी का एक अलग विभाग ही था, पर उसका सबसे महत्वपूर्ण अङ्ग शायद व्यायाम-प्रदर्शन ही था। अमरावती के हनुमान-व्यायाम-मण्डल ने इसका सङ्गठन किया था और इन लोगों को निमन्त्रित करने में काँङ्ग्रेस को बहुत व्यय भी करना पड़ा था। एक लम्बा-चौड़ा अखाड़ा बनाया गया था, जिसमें २० हज़ार आदमी आ सकते थे। प्रदर्शिनी २६ और २७ दिसम्बर को हुई थी। इसके उद्घाटन के दिन सङ्गीत के साथ-साथ लाठी-ड्रिल हुआ; फिर रोमन रिङ्ग, माल-खम्भ आदि अन्यान्य खेल हुए। भाला, तलवार, लाठी, लेज़िम तथा कटार आदि अस्त्र-शस्त्रों द्वारा हमला करना और अपनी रक्षा भी करना इस मण्डल ने नवयुवकों को ख़ूब सिखाया है। सङ्गठन, तैयारी तथा वैज्ञानिक प्रणाली की दृष्टि से इनका कार्य किसी भी यूरोपियन ड्रिल से घट कर नहीं है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इसके सभी कार्यकर्त्ता पेशेवाले पहलवान नहीं, पढ़े-लिखे प्रतिष्ठित सज्जन भी अच्छी संख्या में सम्मिलि हैं। मण्डल के सभापति डॉक्टर पटवर्द्धन हैं, जिन्होंने स्वयं एक मोटी लोहे की ज़ञ्जीर तोड़ी और बीस हॉर्स-पावर की मोटर रोकी। यह सब देखकर दर्शकवृन्द दङ्ग रह गए।

यों तो सब मिलाकर ३० से अधिक खेल दिखाए गए, पर सबसे बढ़िया खड्ग-युद्ध था, जिसमें दोनों ओर से बारह-बारह नवयुवक तलवार लिए बड़ी सावधानी और चतुरता से लड़े। सञ्चालक, वैद्य तथा श्रीयुत पेंढारकर में तलवार की नक़ली लड़ाई भी हुई। इन दोनों युद्धों में जब युवक लोग बीच-बीच में "हर हर महादेव" कह कर चिल्लाते थे तो मरहठा वीरों की वीरता-पूर्ण पुरानी लड़ाइयों का दृश्य सम्मुख उपस्थित हो जाता था। मशाल लेकर ड्रिल करना, जलती बनैठी तथा जलती लाठियों द्वारा ड्रिल करना भी बहुत जोशीले तथा अद्भुत खेलों में से थे।

देश में पढ़े-लिखे युवकों की ऐसी व्यायाम-शालाओं

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की बहुत ही आवश्यकता है। खेद की बात है कि इन देशी खेलों को हमारे शिक्षित नवयुवक घृणा की दृष्टि से देखने लगे हैं। उन्हें पाश्चात्य सभ्यता की सभी बातों के साथ-साथ पाश्चात्य खेल भी यहाँ तक भाने लग गए हैं कि अपने देश के व्यायामों के वे नाम भी नहीं जानते। इस सम्बन्ध की एक ही दो अच्छी संस्थाएँ हैं, जो आगामी पीढ़ी के शारीरिक सङ्गठन में कुछ वास्तविक सहायता कर रही हैं। इस प्रकार की एक व्यायाम-शाला बड़ौदा में है, जिसके संस्थापक प्रोफ़ेसर माणिकराव जी हैं, महाराष्ट्र में वे सराहनीय कार्य कर रहे हैं।

हर्ष का विषय है कि अमरावती के उपरोक्त व्यायाम-मण्डल के आजीवन सदस्य श्रीयुत देशपाण्डे हिन्दू महा-सभा की ओर से संयुक्तप्रान्त में शारीरिक सङ्गठन सम्बन्धी शिक्षा का प्रचार करने के लिए नियुक्त किए गए हैं। आपने अपना भ्रमण प्रारम्भ कर दिया है। आशा है, जनता इनके व्याख्यानों और कार्यात्मक विचारों से लाभ उठाएगी।

हम इस शरीर-सङ्गठन समस्या की ओर देशवासियों का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं। "शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनं" के अनुसार जब तक देश की शारीरिक अव-स्था ठीक नहीं हो जायगी, तब तक धर्म अथवा समाज का कोई भी सुधार सफल न हो सकेगा।

* * *

नोबल-पुरस्कार और स्त्री-लेखिकाएँ

बड़े हर्ष का विषय है कि धीरे-धीरे महिलाएँ साहित्यिक क्षेत्र में भी अग्रसर होती जा रही हैं। कोई समय था जब कि यूरोप-निवासियों का विश्वास था कि स्त्रियाँ आत्माहीन होती हैं, और आज वह समय आ गया है कि महिलाएँ नोबल-पुरस्कार ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान के योग्य समझी जाने लगी हैं। इस सम्बन्ध में पाठकों को स्मरण होगा कि १९२६ ई० का पुरस्कार इटली की प्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका श्रीमती ग्रेजिया डेलेड्डा को मिला था। सन् १९२८ का पुरस्कार भी एक महिला-लेखिका को मिला है। इनका नाम है सिग्रिड अनसेट और आजकल ये नॉरवे की सर्व-श्रेष्ठ लेखिका मानी जाती हैं।

जिस प्रकार डेलेड्डा को यह पुरस्कार महिला-हृदय के तत्वपूर्ण चित्रण के लिए मिला था, वैसे ही श्रीमती अनसेट को भी यह सम्मान अपने देश के किसानों के जीवन के विवेचन के लिए दिया गया है। इनकी सर्वोत्तम पुस्तकें "जेनी" (Jenny) तथा "ग्रोथ ऑफ़ दी सॉयल" (Growth of the Soil) हैं। इनके पिता बड़े अच्छे इतिहासज्ञ थे और इनके छुटपन में ही उनका स्वर्गवास हो गया था। इस समय आपकी अवस्था ४६ वर्ष की है और यद्यपि संसार के साहित्यिकों में आपका इतना नाम है, तथापि इन्हें अपने बच्चों से जितना प्रेम है उतना और किसी से भी नहीं। पुरस्कार मिलने के बाद ही समाचार-पत्रों के सम्वाददाता लोग इनके पास पहुँचे और तरह-तरह की बातें पूछने लगे। इन्होंने सबको फटकार बत-लाई और कहा, "मुझे अभी फ़ुरसत नहीं, मैं अपने बच्चों को सुलाने जा रही हूँ। पुरस्कार पाने से मुझे प्रसन्नता अवश्य हुई है, पर वह उसके बराबर कदापि नहीं है जो मुझे शान्तिपूर्वक अपने बच्चों के साथ रहने में मिलती है।" यह सुन कर सभी बेचारे धीरे से लौट गए।

इस बात से हमारी शिक्षित बहिनों को उपदेश ग्रहण करना चाहिए। हमारे देश की पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ प्रायः उपन्यास के अध्ययन में ही मग्न रहती हैं और न घर के कार-बार सँभाल सकती हैं, न अपने बच्चों की देख-भाल ही कर सकती हैं। यह बातें उन्हें तुच्छ और बेगार सी जान पड़ती हैं। पर सच्ची शिक्षा का आदर्श तो वह है जिसे श्रीमती अनसेट ने संसार के समक्ष उप-स्थित किया है।

बीस वर्ष पहले यह पुरस्कार स्वीडन की प्रसिद्ध लेखिका सेल्मा लेजरलॉफ़ को मिला था। बस, आज तक साहित्य में इन्हीं तीन महिलाओं को यह पुरस्कार पाने का गौरव प्राप्त हुआ है। वैज्ञानिक क्षेत्र में तो आज तक यह पुरस्कार केवल एक महिला को ही दिया गया है। उनका नाम मैडम कुरी था, जिन्होंने अपने पति प्रोफ़ेसर कुरी के साथ बड़ा परिश्रम करके रेडियम ऐसे बहुमूल्य पदार्थ की खोज की थी।

इस स्थान पर पाठकों को इस विख्यात पुरस्कार के सम्बन्ध में कुछ बतला देना अनावश्यक न होगा। इसके संस्थापक थे स्वीडन के डॉक्टर नोबेल, जो वहाँ के बड़े विख्यात वैज्ञानिक थे। अपने अन्तिम दिनों में

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन्हें यह विश्वास हो गया कि विज्ञान द्वारा संसार की बड़ी हानि हुई है। अतः अपनी विल (वसीयत) में इन्होंने कई लाख रुपए संसार में शान्ति तथा साहित्य के प्रचारार्थ छोड़े, जिसकी आय से प्रति वर्ष ८००० पाउण्ड का पुरस्कार दिया जाता है। विज्ञान के लिए भी एक अलग पुरस्कार है, और एक है उस व्यक्ति के लिए जिसने अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति स्थापित करने में सराहनीय कार्य किया हो।

पुरस्कार का निर्णय प्रति वर्ष जाड़ों में होता है और जिसे यह मिलता है वह आवश्यकतानुसार व्याख्यान देने के लिए भी बुलाया जाता है। पुरस्कार के साथ-साथ एक पदक स्वीडन के महाराज के हाथ से मिलता है। पुरस्कार पाने वालों के लिए किसी प्रकार की बाधा नहीं है। प्रत्येक देश, धर्म तथा जाति के विद्वान् इसके अधिकारी हैं। हाँ, संसार के कई ऐसे देश हैं जहाँ के विद्वानों को अभी तक यह गौरव प्राप्त ही नहीं हुआ है, जैसे रूस तथा जापान। पर इस निर्णय में किसी प्रकार का पक्षपात नहीं रहता, प्रत्युत इस बात का प्रयत्न किया जाता है कि छोटे-छोटे राष्ट्रों को अधिक प्रोत्साहन दिया जाय। पुरस्कार प्रायः किसी विशेष पुस्तक पर नहीं, विद्वानों की सभी रचनाओं पर एकत्र विचार करके दिया जाता है।

क्या हम आशा करें कि भविष्य में यह गौरव किसी भारतीय महिला को प्राप्त होगा ?

* * *

कविता की चोरी

मेरठ से श्रीयुत विश्वम्भरसहाय जी 'प्रेमी' ने एक पत्र लिखकर हमें सूचित करने की कृपा की है कि 'चाँद' के अक्तूबर, १९२८ वाले अङ्क के पृष्ठ ६३२ पर छपी हुई श्री०कामेश्वर शर्मा 'कमल' की 'दुर्भाग्य' शीर्षक कविता मेरठ से प्रकाशित होने वाली 'ललिता' के, फ़रवरी १९२० के अङ्क में छपी श्रीयुत हृदयनाथ जी सप्रू, बी० ए० की इसी नाम की कविता की नक़ल है। 'ललिता' की वह प्रति तो हमारे देखने में नहीं आई, पर 'प्रेमी' जी ने उसके मुख-पृष्ठ पर आठ वर्ष पूर्व प्रकाशित इस कविता की जो प्रतिलिपि भेजी है उससे 'चाँद' वाली कविता एकाध शब्दों को छोड़ कर, अक्षरशः मिलती है। हमें बहुत खेद है कि एक बार प्रकाशित कविता हमारी पत्रिका में पुनः प्रकाशित हो गई, पर पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि पत्र-सम्पादकों को इतनी पुरानी कविताओं का स्मरण और पता कैसे रह सकता है ? कवियों को इस घृणित प्रयत्न से दूर रहना चाहिए। हमें बहुत दुख है कि शर्मा जी ने केवल 'कवि' कहलाने की धुन में दूसरे की कविता उड़ाकर अपना और हमारा मस्तक इस प्रकार जनता के सम्मुख नीचा कराया है। साथ ही हम 'प्रेमी' जी को इस सूचना के लिए उन्हें धन्यवाद देते हैं और लेखकों तथा पाठकों से प्रार्थना करते हैं कि वे भविष्य में हमें ऐसी भद्दी ग़लतियों से सदा बचाते रहें।

हिन्दी में इस समय इतनी पत्र-पत्रिकाएँ निकलती हैं और कवियों की ऐसी भीषण बाढ़ आ गई है कि साहित्य की रुचि बढ़ती देख कर एक ओर तो हर्ष होता है और दूसरी ओर ऐसे कृत्यों को देख कर घोर परिताप ! महत्वाकांक्षी कविजनों को तुलसीदास जी की ये पंक्तियाँ स्मरण करके ऐसी दुश्चेष्टा से मुँह मोड़ना चाहिए—

"तुलसी जे कीरति चहहिं,
पर कीरति को खोय।
तिनके मुँह मसि लागि है,
मुयेहु न मिटि है धोय।"

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

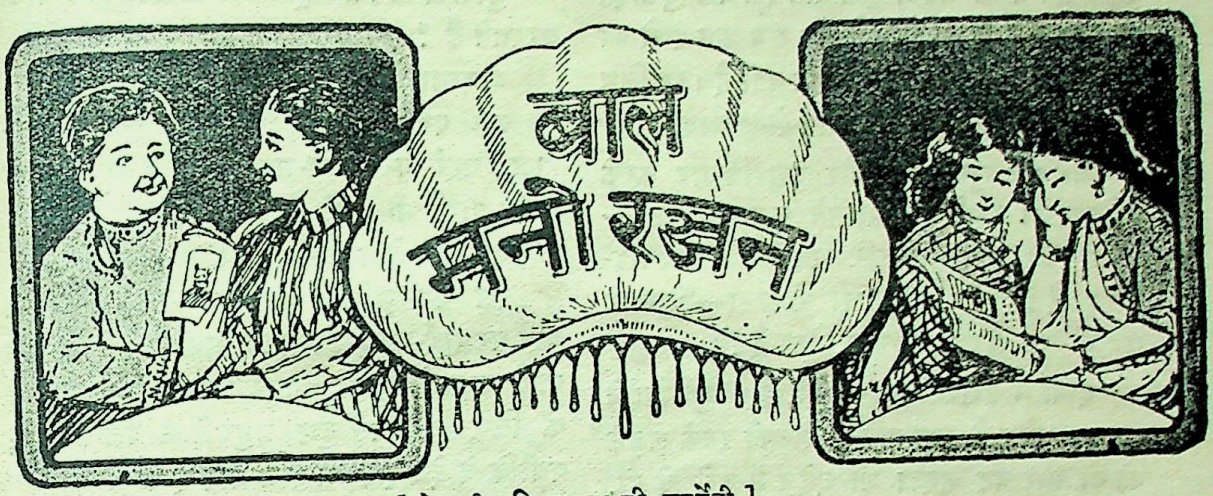

[ले० श्री० शिवसहाय जी चतुर्वेदी]

सिकन्दर बादशाह और किसान

सिकन्दर यूनान देश का बादशाह था। वह बड़ा बहादुर था। उसने एशिया महाद्वीप को जीतने के लिए आज से लगभग २२५२ वर्ष पूर्व चढ़ाई प्रारम्भ की थी। वह अनेक देशों को जीतता हुआ भारतवर्ष की सीमा के पास एक ऐसे प्रदेश में जा पहुँचा, जो घोर जङ्गल से परिपूर्ण था और जहाँ के लोग किसी तरह का लड़ाई-झगड़ा और अन्याय करना बिलकुल पसन्द नहीं करते थे।

इस प्रदेश में पहुँच कर बादशाह ने एक किसान की झोपड़ी में प्रवेश किया। वह किसान उस ग्राम का मुखिया था। उसने बादशाह का ख़ूब आदर-सत्कार किया और उसे एक ऊँचे आसन पर बिठाया। फिर उस किसान ने एक चाँदी की थाली में खजूर, अञ्जीर, सेब, नासपाती आदि फल रख कर तथा उन पर सोने के वर्क़ चढ़ा कर बादशाह के सामने उपस्थित किए। बादशाह देख कर चकित हो गया। उसने किसान से पूछा—क्या तुम रोज़ इतना सोना खाते हो?

उसने उत्तर दिया—नहीं महाराज, मैं सोना नहीं खाता हूँ। परन्तु मैंने सुना है कि महाराज का शुभागमन इधर सुवर्ण के लिए हुआ है, इसलिए यह भेंट महाराज के सम्मुख उपस्थित की है। आप इसे ग्रहण कीजिए।

सिकन्दर ने उत्तर दिया—नहीं, नहीं, मैं यहाँ धन-सम्पत्ति लूटने नहीं आया हूँ—मैं तुम लोगों के रीति-रिवाज देखने के लिए आया हूँ।

इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि उसी समय दो मनुष्य अपनी पञ्चायत लेकर आए। उस किसान से, जो उस गाँव का मुखिया था, एक आदमी ने कहा—मैंने इस मनुष्य से एक खेत मोल लिया है। उस खेत में मुझे एक मोहरों से भरा हुआ हण्डा मिला है। वह हण्डा मेरा नहीं है, क्योंकि मैंने सिर्फ़ खेत मोल लिया है, हण्डा नहीं लिया। मैं उस हण्डे को इसे देता हूँ, परन्तु यह नहीं लेता है। कृपा कर आप इसे समझा दीजिए।

इतना सुन कर मुखिया ने दूसरे मनुष्य से पूछा—तुम्हारा क्या कहना है?

उसने उत्तर दिया—मेरा केवल यह कहना है कि इसका किसी तरह इन्साफ़ होना चाहिए। मैंने अपना खेत जब इसे बेचा था तब यह शर्त नहीं हुई थी कि खेत की अमुक-अमुक वस्तु ही बेचो

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जाती है। मैं तो अपना कुल खेत इसे बेच चुका हूँ, इसलिए खेत में जो कुछ है वह सब अब इसी का है, उस पर मेरा कोई अधिकार नहीं है। इसलिए महाराज, मैं उस हण्डे को नहीं लेना चाहता।

यह सब सुन कर और कुछ विचार करके मुखिया ने फ़र्यादी को सामने बुला कर कहा—"क्यों जी, क्या तुम्हारे एक लड़का विवाह-योग्य है?" और प्रतिवादी से कहा—"तुम्हारे घर भी एक लड़की विवाह-योग्य है?"

दोनों ने उत्तर दिया—"हाँ, है।" मुखिया ने कहा—"ठीक है, तुम अपनी लड़की इनके लड़के को दो और वह हण्डा भी दहेज़ में उसे दे दो, झगड़ा मिटा।" यह सुन कर दोनों गृहस्थ सन्तुष्ट होकर और किसान को 'राम-राम' करके चले गए।

पञ्चायत के इस फ़ैसले को सुनकर सिकन्दर बादशाह को बहुत आश्चर्य हुआ। उसकी मुख-मुद्रा देखकर मुखिया ने पूछा—क्यों महाराज! क्या मुझसे कुछ चूक हो गई है?

बादशाह ने कहा—नहीं, तुमसे कुछ चूक नहीं हुई है, सब ठीक हुआ है। परन्तु मुझे तुम्हारे न्याय को देखकर बहुत अचम्भा हो रहा है!

मुखिया ने कहा—महाराज! इसमें अचम्भे की क्या बात है? जो उचित समझ पड़ा वही किया है। महाराज के देश में इस पञ्चायत का कैसा निर्णय हुआ होता, कृपा कर मुझे सुनाइए?

सिकन्दर ने उत्तर दिया—सच बतलाऊँ, हमारे देश में ये दोनों—वादी प्रतिवादी—पकड़ कर जेल में ठूँस दिए जाते और हण्डा सरकारी ख़ज़ाने में जमा कर लिया जाता।

मुखिया अपने मुँह पर उँगली रखकर आश्चर्य के साथ बादशाह की ओर देखने लगा। उसने पूछा—क्यों महाराज, क्या आपके देश में सूर्य-चन्द्र उदित होते हैं?

उत्तर मिला—होते हैं।

मुखिया ने फिर पूछा—क्या वहाँ मेघ पानी बरसाते हैं?

बादशाह ने कहा—हाँ, बरसाते हैं।

इस पर मुखिया ने फिर पूछा—क्या महाराज, वहाँ पर साग-भाजी खाकर रहने वाले ग़रीब प्राणी भी बसते हैं?

बादशाह ने कहा—बहुत।

इस पर मुखिया ने कहा—तो ठीक है। वहाँ पर सूर्य-चन्द्र जो अपना प्रकाश देते हैं, मेघ पानी बरसाते हैं, वह उन सीधे-सादे ग़रीब लोगों के लिए ही, ऐसे दुष्ट मनुष्यों के लिए नहीं; क्योंकि वे देव-कृपा के पात्र नहीं हैं।

* * *

शिक्षा का प्रभाव

प्राचीन काल में गुरु-गृह में जाकर विद्या पढ़ने की प्रथा थी। इसी प्रथा के अनुसार विन्ध्याचल पर्वत के निकट किसी नगर में एक विद्वान् ब्राह्मण के पास आस-पास के ग्रामों के बहुत से विद्यार्थी पढ़ा करते थे। उनमें से एक विद्यार्थी बड़ा आलसी था, यद्यपि उसकी बुद्धि बिलकुल मन्द नहीं थी, परन्तु उद्योग के नाम से उसका माथा ठनकता था। गुरु ने उसे बहुत-कुछ समझाया, परन्तु जब उसका कुछ फल नहीं हुआ, तब गुरु ने उसे किसी दूसरी रीति से समझाने का विचार किया। एक दिन गुरु जी अपने उस आलसी शिष्य को साथ लेकर नगर के बाहर निकले। कुछ समय में वे दोनों जङ्गल में एक गड्ढे के पास पहुँचे। उस गड्ढे में गँदला पानी भरा हुआ था। उसमें कीड़े पड़ गए थे। चारों ओर दुर्गन्ध फैल रही थी। उस गड्ढे के पास जाकर गुरु ने कहा—वत्स! आओ इस जगह बैठ कर कुछ विश्राम करें।

यह देख विद्यार्थी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने गुरु जी से कहा—यह क्या? ऐसी

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मैली जगह में बैठने से आपको दुर्गन्ध नहीं आती ?

गुरु ने कहा—वत्स, तेरा कहना सच है। यह जगह सचमुच मैली और दुर्गन्ध-युक्त है। ऐसा ही आलसी लोगों का हृदय होता है। उनके पास कोई नहीं बैठना चाहता।

इसके पश्चात् वे दोनों गुरु-शिष्य आगे चले। कुछ दूर चलने पर उन्हें एक बड़ा मैदान मिला। उसमें बहुत से जङ्गली कटीले झाड़ लगे हुए थे, इस कारण अच्छे फल-फूलों वाले वृक्षों का वहाँ अभाव था। उस जगह खड़े होकर गुरु ने विद्यार्थी से कहा—देखो, यह ज़मीन खेती के योग्य और उपजाऊ मालूम पड़ती है, परन्तु इसकी ओर किसी परिश्रमी मनुष्य की दृष्टि न पड़ने से यह अभी तक इस हीन दशा में पड़ी हुई है। पड़ती रहने के कारण सारी ज़मीन जङ्गली कटीले झाड़ों से भर गई है। बहुत से साँपों के रहने के बाँबी बन गए हैं। तुमने पहले जो गड्ढा देखा था वह आलसियों का अन्तःकरण था और यह मैदान उनका चरित्र है। अन्तःकरण के अनुसार ही चरित्र हुआ करते हैं।

यह सुन विद्यार्थी चौंक उठा और लज्जित होकर कहने लगा—गुरु जी, मैं समझ गया, अब आगे कहने की आवश्यकता नहीं है। वह गड्ढा और यह मैदान मेरे ही हृदय और चरित्र का चित्र है।

गुरु ने कहा—वत्स! इस दृष्टान्त का तेरे ऊपर असर पड़ा है, यह देख कर मुझे बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ है। अच्छा चलो, कुछ दूर और चलें।

कुछ दूर चलने पर एक सुन्दर फल-फूलों से लदा हुआ बग़ीचा मिला। उसकी सुगन्ध चारों ओर फैल रही थी। नाना प्रकार के रङ्ग-विरङ्गे सुन्दर पक्षी बग़ीचे के मधुर फलों को खाकर चहक रहे थे। फलों के बोझ से वृक्षों की डालियाँ झुक रही थीं। सब जगह बिलकुल साफ़ थी। शीतल, मन्द वायु बग़ीचे के फूलों से सुवासित होकर बह रही थी। इस बग़ीचे को देखकर गुरु-शिष्य दोनों को आनन्द हुआ। शिष्य की प्रसन्न-मुद्रा देखकर गुरु ने कहा—"वत्स! तुमने तीन स्थान देखे हैं, उनमें यह स्थान बहुत मनोहर मालूम हुआ, क्योंकि इस जगह मनुष्य का हाथ लगा है। ऐसा ही हाथ यदि उस मैदान पर लगाया जाता, उसके साथ परिश्रम किया जाता तो वह मैदान भी कुछ कम-ज़्यादा इसी के समान आनन्ददायी बन जाता। इस दृष्टान्त से तू उद्योग का महत्व समझ सकता है। जैसे ज़मीन ईश्वर की दी हुई है, वैसे ही बुद्धि भी ईश्वरदत्त है, उसका यथायोग्य उपयोग करना अपने हाथ में है। जङ्गली कटीले झाड़ अपने आप उगते हैं, उन्हें लगाना नहीं पड़ा; परन्तु फल-फूलों के वृक्षों को लगाना पड़ता है—उनके साथ मिहनत करनी पड़ती है। मन बेकार हुआ कि बुरे विचार आप ही आप मन में घर करने लगते हैं; उन्हें सीखने के लिए विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। परन्तु सद्गुणों के सीखने और विद्याध्ययन करने के लिए परिश्रम करना पड़ता है। जब अन्तःकरण में विद्या का प्रकाश फैल जाता है और सद्गुणों का बीज बोया जाता है, तब बुरे विचारों के लिए वहाँ बिलकुल स्थान नहीं रहता।

उस दिन से वह विद्यार्थी कुछ का कुछ हो गया। थोड़े ही समय में वह दूसरे सब विद्यार्थियों से आगे निकल गया। सच है, तुलसीदास जी ने कहा है—

शठ सुधरहिं सत्सङ्गति पाई।
पारस परसि कुधातु सुहाई॥
× × ×
मज्जन फल देखिय तत्काला।
काक होहि पिक बकहु मराला॥

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बच्चों की बदहज़मी

२ लौंग, २ इलायची, चने बराबर हींग और १५-२० पत्तियाँ पोदीने की लेकर आध सेर पानी में पकावे। जब आधा पानी बाक़ी रह जाय, तब उतार ले। बदहज़मी के कारण यदि दस्त और क़ै आ रहे हों, तो एक वक़्त में दो चम्मच इसे पिलावे, अवश्य लाभ होगा।

* * *

आँख दुखना

इमली की कुछ पत्तियों का रस निकाल कर उसमें थोड़ी सी फिटकिरी, गेहूँ बराबर अफ़ीम और रसौत मिलाकर लोहे के बर्तन में पका कर, आँखों पर लेप करने तथा सलाई द्वारा लगाने से उनका दुखना बन्द हो जाता है।

* * *

बिच्छू के काटने पर

यदि बिच्छू काटे तो शीघ्र ही उसे मार कर जिस अङ्ग पर उसने काटा हो, उसे वहाँ रगड़ देना चाहिए। यद्यपि यह उपाय घृणित है, किन्तु बहुत शीघ्र लाभ पहुँचाता है।

—कौशलकुमारी गुप्ता

* * *

मूत्रावरोध

ककड़ी के बीज, सेंधानमक, त्रिफला—इन सबों को समान लेकर चूर्ण कर डाले। इसे गुनगुने पानी के साथ खाने से मूत्रावरोध दूर होता है।

सब प्रकार से प्रमेह

पलास के फूल १ तोला, चीनी आधा तोला, दोनों को पीस कर पीने से सब प्रकार का प्रमेह अच्छा होता है। हल्दी की बुकनी और आँवले का रस भी विशेष उपकारी होता है।

—पार्वती

* * *

केले के गुण

१—अग्नि से जले हुए स्थान पर केले की पुल्टिस बाँधनी चाहिए, इससे बहुत ठण्डक पहुँचती है।

२—जिस बच्चे को मात्रा से अधिक अफ़ीम दे दी गई हो, उसे केले की छाल और पत्ते का रस देना चाहिए।

३—इसके वृक्ष का रस सुँघाने से नक्सीर बन्द हो जाती है।

४—इसके फल को घी में तल कर काली मिर्च के साथ खाने से खाँसी जाती रहती है।

* * *

आग से जलने पर

अग्नि से जले हुए या ख़ाली दाने निकले हुए स्थान पर चूने का पानी और अलसी का तेल बराबर मिलाकर लगाना चाहिए। दोनों को ऐसा मिलावे कि एक रूप हो जायँ। यदि अलसी का तेल न मिले तो तिल का उपयोग कर सकते हैं।

—विद्यावती सरीन

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Entirely Original Proceedings of PROSCRIPTION of a most Authentic History Covering over 2,100 Solid Pages

Bharat men Angrezi Rajya

BY

SUNDER LAL

PUBLISHED by the "Chand" Office on 18th March 1929
WITHHELD in the Post Office long before Proscription
PROSCRIBED on 22nd March 1929

BRIEF OF THE CASE

1. A most authentic Historical Book entitled *Bharat men Angrezi Rajya* (British Rule in India) written by Mr. Sunder Lal and assisted by hundreds of best literary giants and historians covering over 2,100 pages in two volumes was extensively advertised some 8 months back. A special advertisement of 12 pages crown 8vo giving brief of some of the chapters too was published over six months back. No notice of niether advertisement nor that of the Book was taken so far by the Government.

2. 15,000 Copies of 12 pages advertisement, referred to above, were printed. Out of this 10,000 were stitched in 10,000 copies of *Phansi* Number of the CHAND. This *Phansi Ank* of the CHAND was proscribed by the Government in December so this will be seen that this 12 pages advertisement was stitched in the Reading matter and the remaining 5,000 copies of the advertisement were either distributed or used by the Agents; but till the 20th of March 1929 no notice was taken by the Government.

3. In this advertisement the Book (*Bharat men Angrezi Rajya*) was advertised to be out of the Press by the 30th of November 1928. But could not come out on account of perssure of work till 18th of March 1929.

4. The Book ultimately came out of the press on the afternoon of the 18th March 1929.

5. On the night of the 19th March 1929 a C. I. D. Inspector came to Mr. R. Saigal and said that the Superintendent of Police wanted to meet him in person at 10 o'clock on the 20th morning for something 'very very urgent.'

6. Mr. Saigal went to see the S. P. and was shown a letter of the Chief Secretary to the U. P. Government (addressed to the District Magistrate and sent to the S. P. for disposal) in original dated between 16th and 18th March 1929, a copy of the letter was refused so no exact wording can be quoted but the purport is very well remembered. So far Mr. Saigal remembers it was thus :

"All copies of the advertisement of the Book BHARAT MEN ANGREZI RAJ published at the Fine Art Printing Cottage by R. Saigal has been proscribed by the Governor in Council as per notification attached herewith.

Please inform R. Saigal that if he publishes this Book he will be doing so at his responsibility and that if on publication the Book is found ACTIONABLE the Government will consider his prosecution under Section 124/A of the I. P. C."

7. Between 18th and 20th of March 1929 about 1,300 V. Ps. were posted in the General Post Office. On the after-noon of the 20th it was discovered that under instructions of the

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

D. I. G. of the C. I. D. all V. Ps. and Parcels were withheld. How many were passed of, nobody knows it.

8. A telegram was sent to the Post Master General United Provinces, Lucknow and copies of the same were sent to all important officials upto the Governor-General in India by the Publishers.

9. For the first time the Superintendent of Police purchased 2 copies on the after-noon of the 20th March thru his orderly. There was no train for Lucknow. It did not either go by air. *The copy must have reached the officials on the evening of the 21st March and proscription order is dated 22nd of March 1929.*

10. While conversing with the Superintendent of Police on the 20th of March Mr. Saigal particularly requested him to have the entire Book translated into English by competant lawyers of Allahabad or outside and that Mr. Saigal can go out of his way to pay all expenses but let the Book be throughly examined before doing things in hurry. But no attention was paid even to such a modest request.

11. On the afternoon of the 23rd, 3 Sub-Inspectors came with a warrant of search from the Collector and seized 8 sets complete, 12 copies of 1st Volume only (complete) 3 copies of 1st Volume (unbound) and 6 copies of the Index.

12. A little before the search Mr. Saigal asked by Phone the S. P. to allow him to retain 7 sets of the Book—5 for lawyers who will argue the case, 1 for the publisher and 1 for the office file to which he agreed. But the C. I. D. Inspector who came with the warrant of search said he has been particularly asked by the Superintendent of Police at the time of leaving his Bungalow to take possession particularly of those 7 sets Mr. Saigal wanted to retain for his own use.

COMMUNICATIONS

March 20th
1929.

Dear Mr. Measures,

With reference to the conversation we had and the letter of the Chief Secretary to the Government U. P. shown to me by you at your Bungalow this noon, I have to say that I have noted its contents with grave concern.

The advertisement of the Book entitled *Bharat men Angrezi Rajya* was printed and published by me some six months back. It was stitched with the *Phansi Ank* which has already been proscribed by the U. P. Government and all copies with me were duly submitted to the District Magistrate. On enquiry I find that only two copies were found in the drawers of one of the office clerks and I hasten to submit the same herewith. To the best of my knowledge no stray copies are found in the office.

Regarding the main Book I need only say that it contains a little over 2,000 pages and is published in two bulky volumes with a separate Index, as you must have seen for yourself, by the two sets already sent to you just now thru your orderly. This Book is based mainly on Major B. D. Basu's (Retired I. M. S.) Book—"The Rise of Christian Power In India"—A book which was recommended for study for M. A. students by the Allahabad University. It is extensively documented and the authorities drawn upon are mainly European and English authorities and State Papers. Besides, wherever the author has expressed his own views, he stands for complete tolerance and non-violence—irrespective of color, caste or creed. I would particularly request you to have the "Foreword" (foregoing 200 pages) translated and examine it as a severest critic and see for yourself the trend of the whole book and the object it stands for. Under these

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

circumstances it was impossible for a publisher to think that there would be the remotest likelihood of such an innocent publication being proscribed by the Government. No publisher would have lightly taken a risk of investing over Rs. 25,000/- (Twenty-five thousand) in such a publication. The advertisement referred to in the letter of the Chief Secretary to the U. P. Government shown to me by you was published over six months ago, in which *Bharat men Angrezi Rajya* was advertised to be ready by the end of November last, but still no indication of the view, *now taken by the Government*, was imparted to me till this late hour.

Now the position is this. 2,000 copies of this Book were printed of this first edition. As I told you the book was extensively advertised during the last two years and orders procured. I find from the report of the office that the book was published on the afternoon of the 18th current and that most of the books have been disposed off. In view of the investment and with my views regarding this publication, stated above and explained to you in detail during our conversation this noon, it is not possible to do anything. At this stage to stop its printing and publication is an act of physical impossiblity.

I have the fullest confidence that if and when the Book will be impartially examined, it would be found to be an extremely grave and responsible publication and no question about its offending any law will arise. I may, by the way inform you, that not only the author, but hundreds of best educationists and historians of India are behind this publication and that it has been published with the fullest responsibility I could command.

Very truly yours,
(Sd.) R. SAIGAL.

P. H. Measures, Esq.,
Supdt. of Police.
Allahabad.

(Enclosure : 2 Advertisements)

20th March,
1929.

The Superintendent of Police,
Allahabad.

Sir,

It is a very serious thing I am going to put before you. You requested me on phone last-night to meet you at 10 o'clock this morning. I went to you quite in time but you were away and turned up at about 11-30. I have been waiting all along for you. Our conversation ended long after 12 noon when I came back, took my meals and went to see a friend of mine I had promised.

At about 2 o'clock, during my absence, a man appeared in plain clothings before the Manager and wanted to have all copies of advertisement of *Bharat men Angrezi Rajya* from him. He wanted proof—enquired if he had an authority from the high officials * and that to give proofs if he belonged to the police department. Upon this the man, I am told became wild and talked silly things posing himself to be the 'Government' himself. I enquired you on phone this evening to which you said you did not send anybody for this purpose and that he must have been some lunatic. It was fortunate I was not here otherwise I am afraid something serious would have happened.

Perhaps you know, like any officer, it is not my business to go in details of the working of the office. It required time to consult the records of the office and give you a detailed information

* This complaint was sent to the D.I.G. of the C.I.D. for disposal and when we met, Mr. Williamson D. I. G. of the C. I. D. very definitely told me that he particularly gave the Inspector a letter addressed to me requesting for only one copy of the advertisement for his files. This letter was not produced, for reasons best known to the C. I. D. officer. On inquiry I further found out that his name was S. I. Radhey Lal and the D. I. G. not only apologized for his recklessness but assured me to take up this case very seriously.

(Sd.) R. Saigal.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

you asked for. I would have certainly supplied you with the informations and the proscribed leaflets of advertisment I had. The so called Sub-Inspector had no business to come and disturb the working of my office.

One thing I must make quite clear to you, I care for my prosecution neither a little nor a jot if I am at wrong, but I do care for my self-respect over and above every temptation of the world and so you are requested to instruct your subordinates to be more reasonable in future and not to disturb me or my office unless they have any orders in writing.

As such things have happened twice during a very short time, it is hoped you will make enquiries into the most undersirable conduct of the so-called C. I. D. Inspectors and impress upon them the seriousness of their responsibilities in future.

Very truly yours,
(Sd.) R. SAIGAL.

P. H. Measures Esq.,
Supdt. of Police,
Allahabad.

Superintendent of Police,
Allahabad
21-3-1929.

Dear Sir,

Your letter of yesterday, complaining of the conduct of a S. I. has been passed on to the C. I. D. as from enquiries I find that the officer in question was a C. I. D. officer, and not subordinate to me.

Yours truly,
(Sd.) P. H. Measures.

20th March,
1929.

The Distt. Magistrate,
Allahabad.

Sir,

I had been requested by the Supdt. of Police to call upon him this morning. I have been shown a letter by him from the Chief Secretary to the U. P. Government addressed to you and sent to him for disposal.

The contents of the letter as I remember, was that the advertisement of the Book entitled *Bharat men Angrezi Rajya* was found objectionable and that the Government has confiscated all copies of it. It was further mentioned in the letter that I should be informed that if the Book is published *and if it was found actionable by the Government*, they will prosecute me under Section 124/A of the I. P. C. I wanted a copy of this letter but the Supdt. of Police told me that I shall get this thru you. I have not received it so far and shall feel highly obliged if you kindly send me the same (a copy of it) so that I may chalk out my policy and further action.

One thing more. So far I am aware of, the Book entitled *Bharat men Angrezi Rajya* by Mahatma Sunder Lal published by me has not been proscribed by the Govt. uptil this moment but I am reliably informed that under instructions of the Supdt. of Police all copies of the Book posted today have been held over by the General Post Office and that telegrams have been issued to all Post Offices to stop its delivery till further instructions. I stood stunned at this rediculous news. I wonder if it is true. But if it be so, I would beg you to quote me the authority of so doing.

You can well imagine my position. Had the book been found so dangerous as this, in all fairness a regular proceeding should have been chalked out and I ought to have been informed of it. I would have at once stopped sending further copies and all that I had would have been submitted to you in the ordinary course. It would have saved me, *besides other losses hundreds of rupees worth postage I had to pay for.*

If my information is correct, and I have no reason to disbelieve it, I have no other option

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

left, but to challenge the most indiscriminate proceedings and sue the Crown for the loss I have sustained on this account.

Will you please drop me a line to say how the matter stands and much oblige.

Please treat this as URGENT.

Yours very truly,
(Sd.) R. SAIGAL.

Confidential

No. 683 D. 21, 3, 1929.
Collector's Bungalow,
Allahabad, March 21, 1929,

To
The Manager,
CHAND Allahabad.
Sir,

Your letter of 20th instant.

I enclose herewith a copy of notification No. 827/VIII-37, dated March 15, 1929, proscribing the advertisement, to which you refer. I regret I cannot furnish you with copies of correpondence between Government and myself, but, if you wish to see me, I can explain the message, which Government wish to be conveyed to you. I understand, however, that Mr. Measures, the Superintendent of Police, has already made clear to you the purport of the Government letter.

Yours faithfully,
(Illegible) Dobbs, I. C. S.,
Collector,
Allahabad.

Copy of Government, United Provinces, Police Department Notification No. 827/VIII-37, dated March 15, 1929.

In exercise of the power conferred by Section 99 A of the Code of Criminal Procedure, 1898 (Act V of 1898), the Governor in Council hereby declares to be forfeited to His Majesty every copy of the advertisement in Hindi of a Hindi book entitled *Bharat men Angrezi Rajya* (English Rule in India) by Sunder Lal, printed and published by R. Saigal at the Fine Art Printing Cottage, 28, Elgin Road, Allahabad, on the ground that the said advertisement contains matter the publication of which is punishable under section 124-A of the Indian Penal Code.

By order of the Governor in Council,

(Sd.) Jagdish Prasad,
Chief Secretary to Government,
United Provinces,

True Copy.

(Illegible) Dobbs
21. III 29.

The following is the copy of the telegram sent to the Post Master General, U. P. Lucknow and copies sent to: (1) The Private Secretary to the Governor-General in India (2) The Private Secretary to His Excellency the Governor of the United Provinces (3) The Chief Secretary to the Government United Provinces (4) The Inspector General of Police U. P. (5) The Inspector General of Police C. I. D., U. P. (6) The Commissioner Allahabad Division, Allahabad (7) The District Magistrate Allahabad (8) The Superintendent of Police, Allahabad and (9) The Post Master Allahabad.

COPY OF TELEGRAM DATED 21st MARCH 1929.

We were informed yesterday by the Police Superintendent that our one leaflet being advertisement of a book entitled *Bharat men Angrezi Rajya* published six months ago has only been proscribed by Government and not the book Stop To Our surprise we find that all our postings of BHARAT MEN ANGREZI RAJYA has been withheld yesterday at the General Post Offic and telegrams issued to others stopping

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

delivery Stop Such a responsible Historical publication assisted by best educationists of India and abroad costing twentyfive thousands nett and published *for the first time only on the evening of eighteenth current should be dealt with like Cocaine* is simply preposterous Stop We challange the legality of this unlawful and most undesirable porceedings in the absence of definite orders from high officials Stop Kindly mend your wrong before it is too late otherwise we feel compelled to take any such legal action or actions to protect our interest as publishers as suggested by our councils Stop Awaiting your immediate decision.

CHAND.

C. I. D., U. P.
Allahabad,
22-3-29.

Dear Sir,

I have just received a communication to the effect that the book BHARAT MEN ANGREZI RAJYA has been proscribed. *Formal orders are on their way.*

I promised to let you know as soon as possible. I rely on you now not to try to dispose of any more of the copies.

Yours truly,
(Sd.) H. WILLIAMSON.

R. Saigal, Esq.,
Chand Press,
Allahabad.

27th March,
1929.

Dear Sir,

Your letter of 22nd. I thank you so much for posting me quite early. The last sentence of your letter has immensely pained me. Since I gave you my gentlemanly promise and assured you that not a single copy of the Book was either sold, sent or transmitted by post, rail or air after 21st so there was no occasion for you to write these lines.

In the end I assure once more that I am not one of those you generally deal with. My word is honour and what I will promise I will stick to the last of my life.

Very truly yours,
(Sd.) R. SAIGAL.

H. Williamson, Esq.
D. I. G. of the C. I. D.
Allahabad.

No. 472-D.

From Kunwar Jagdish Prasad,
C. I. E., O. B. E., I. C. S.
Chief Secretary to Government,
United Provinces,

To
The Chand Office,
Allahabad.

Dated Lucknow the March 22, 1929

Sir,

Department Police

I am directed to acknowledge receipt of your telegram dated March 21, 1929, addressed to His Excellency the Governor, regarding the book entitled "Bharat men Angrezi Rajya." I am to say that this book has been proscribed by Notification No. 936 VIII-37, dated March 22, 1929, a copy of which is enclosed.

I have the honour to be,
Sir,
Your most obedient Servant
(Sd.) Jagdish Prasad
Cheif Secretay.

Enc: One.

GOVERNMENT, UNITED PROVINCES.

No. 936/VIII-37
Police Department.
Dated March 22, 1929.

Notification.
Miscellaneous.

In exercise of the power conferred by Section 99-A of the Code of Criminal Procedure, 1898 (Act V of 1898), the Governor in Council

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

hereby declares to be forfeited to His Majesty every copy of the Hindi book in two volumes entitled "Bharat men Angrezi Rajya" (English Rule in India), written by Sundar Lal, published by the Chand Karyalaya, Allahabad, and printed by R. Saigal at the Fine Art Printing Cottage, Allahabad, on the ground that the said book contains matter the publication of which is punishable under Section 124-A of the Indian Penal Code:

By order of the Governor in Council,
(Sd.) Jagdish Prasad.
Chief Secretary to Government, U. P.

True Copy:
(Sd.) Illegible.
Superintendent,
Police Department,
U. P. Civil Secretariat.

23rd March, 1929.

The Superintendent of Police,
Allahabad.
Dear Sir,

With reference to our telephonic conversation I hasten to return herewith the following copies of BHARAT MEN ANGREZI RAJYA proscribed by U. P. Government and orders communicated to me by the Chief Secretary to U. P. Government in his letter No. 472/D dated 22nd current.

With your knowledge and permission I am retaining 7 sets of this Book—5 for my Lawyers, who will argue the case in the High Court, one for myself and one for office record.

Rest of the copies have aleady been disposed off and whatever are withheld in the Post Office, I do not know.

13 Copies *Bharat men Angrezi Rajya* 1st Volume (Bound up)

1 Copy BHARAT MEN ANGREZI RAJYA 2nd Volume (Bound up)

3 Copies BHARAT MEN ANGREZI RAJYA 1st Volume (Unbound which were in process of binding)

Very truly yours,
(Sd.) R SAIGAL.

P. S. Since the above was typed out Sub-Inspectors Hadi, Kedar Nath Khanna and Altaf Husain came for search with a warrant from the Collector, Sub-Inspector Khanna now says that you have asked him to bring even the seven sets I spoke about. So these are also sent herewith.

O. H. M. S.

D. O. No. G-28-29 Supdt. of Police,
Allahabad,
March 25, 1929.

To
R. Saigal, Esq.,
The Proprietor,
The CHAND Press,
Allahabed.
Dear Sir,

With reference to your letter of March 22, and to our previous telephonic conversation regarding retention by you of some copies of the book entitled BHARAT MEN ANGREZI RAJYA for the use of your legal advisors, I write to inform you that I asked the District Magistrate for his orders on the subject, and he has told me that he considers that three copies should be sufficient for your requirements. I am therefore sending you three bound copies of Volume I of the book, and two bound copies of Volume II. I regret that I am unable to send you the third copy of Volume II, but as only eight copies of this Volume were handed over by you, and *Government has asked for 6 copies* you will understand that I am only able to supply two at present. If, however, I get any more copy of this Volume, I shall send you one copy more.

Yours faithfully,
(Sd.) P. H. MEASURES

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

No G-577

27th March
1929.

The Superintendent of Police,
Allahabad.

Dear Sir,

I thank you so much for your D. O. No. G28-29 of the 25th current. I am also obliged to you for the three copies of 1st Volume and two copies of the 2nd Volume of the Book 'Bharat men Angrezi Rajya' (all signed by you) which you have been good enough to send me. But I may assure you that these copies will not suffice. I have engaged five most prominent lawyers of India and a copy of the Book has to be sent to each of these. 3 or 4 copies will be required for rendering into english and naturally myself and the author will require a copy each for preparing grounds of appeal and making the case clear to the lawyers. It will be so kind of you kindly to inform the position to the District Magistrate and if he agrees you can open some of the parcels withheld in the Post Office in my presence and let me have the required number of copies-of course you will sign upon each copy to be quite sure of the fact that the copies are required and used for conducting the case only.

The one copy of the 2nd Volume in the meanwhile, may kindly be sent to complete my 3 sets. One thing more. The Index of the Book is not proscribed by the Government but still Sub-Inspector Khanna took away when he came for search. I also require six copies of the Index to facilitate my Councils' task.

A very early compliance is requested.

Very truly yours,
(Sd.) R. Saigal.

No. G-579

27th March,
1929.

The Supdt. of Police,
Allahabad.

Dear Sir,

On the 22nd of this month I enquired on phone the number of parcels of BHARAT MEN ANGREZI RAJYA withheld in the Post Office before proscription, you were good enough to say that you did not know the figure and that you will inform me of it after making enquiries from the Post Office—But so far I have heard nothing from you.

As the Book is now proscribed, will you be so good as to give me the exact figure of the Parcels that are withheld in the Post Office and much oblige ?

So far I could guess all the parcels are withheld on suspicion and probably the contents are not known either to you or the Post Office ; I am afraid by doing so many other parcels which have no copies of this proscribed Book must have been detained as the posting was mixed. Hundreds of parcels go every day from my office and so naturally I am anxious that my business may not suffer on this account and so the request.

Very truly yours,
(Sd.) R. SAIGAL.

O. H. M. S.

No. G-28-29. Superintendent of Police.,

Allahabad dated the 28th March, 1929

The proprietor,
The Chand Press,
Allahabad.

Dear Sir,

I will reply to your letters Nos. G/577 and G/579 together

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

No. 1 G/577. 142 packets supposed to contain copies of the proscribed book have been taken from the Post Office. Some of these packets contain more than one set of the book. As regards the last paragraph of your letter, I am perfectly prepared to let you see the packets at my house at any time which may be convenient to both of us, so that you may satisfy yourself that no parcel containing books other than that proscribed has been delayed in reaching its destination.

No. 2 G/579. I am sending you herewith one copy of the 2nd Volume of the proscribed book to complete your 3 sets. If you require more than 3 sets for the purpose of your appeal, you should put in an application to the District Magistrate in the ordinary way asking that the number of copies which you say you require should be handed over to you. The copies of the Index which were taken from you by Sub-Inspector Kedar Nath Khanna have already been sent to the District Magistrate.

Yours truly,
(Sd.) P. H. MEASURES.

S. S. D.
Encl. 1 copy,
of the 2nd Volume.

PRESS OPINIONS

The Leader :

× × × The demoralisation of men in authority is proceeding apace for lack not only of responsibility but also of superior control. And as a result distrust of Government deepens and the gulf goes on widening. With how little wisdom is India being governed, and how provokingly !

× × × The Governor in Council may be certain that he will hear a great deal about this latest transaction of his. We have no doubt the whole of the educated community will be indignant at this act of outrageous hardship and injustice and will give their deep sympathy to Mr. Saigal.

The Pioneer :

One of the fundamental principles on which the rule of any country must be cunducted is that of justice—justice as between races, religions, castes and classes. It has been the proud boast of the British regime in India that this principle has been scrupulously adhered to and that the highest form of British impartiality has characterised the administration. Unfortunately there are some of us a triffle better informed than the blind supporters of the present regime, some of us to whom the reception of odd fragments of knowledge causes the greatest disturbance ; some of us who feel it our duty to strive by exposure to make the wider and nobler claim a consistant reality. Within the last two or 3 days an example of this inconsistant justice has came to our notice, and we make no apology for resiting the circumstances of the case. ××× we understand also certain severe questions will be asked as to why the guardians of law and order were so dilatory in discovering the existences of tames, the publication of which they thought likly to bring the British regime in India tumbling to the ground××× comment on this is unnecessary, and we make the legal defenders of the publisher of BHARAT MEN ANGREZI RAJYA a free present of one of the most amazingly inconsistant examples of one-side thinking with which it has been our privelege to come into contact.

* * *

Latest information reveals that addresses have been obtained from the Post Office by the Government and houses are searched and raided in different cities and copies snatched from those who received their copy by V. P. P. despatched in the first lot on March 18th which probably escaped the eyes of the local officials.

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

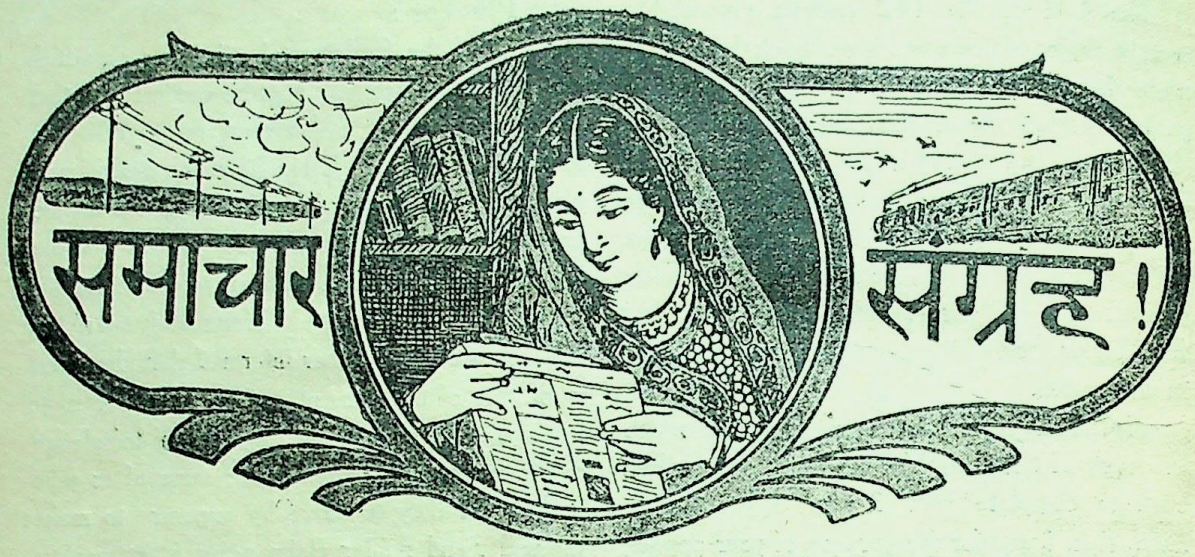

मातृ-मन्दिर

हमें इस बात की बड़ी प्रसन्नता है कि विगत फ़रवरी के 'चाँद' में हमने प्रयाग में मातृ-मन्दिर की स्थापना के लिए जो अपील की थी, उस पर देशवासियों ने उचित ध्यान दिया है। 'भारत में अङ्गरेज़ी राज्य' की ज़ब्ती हो जाने के कारण हम इस बार इस ओर विशेष ध्यान नहीं दे सके। अनेक महत्वपूर्ण पत्र हमारे पास इस सम्बन्ध में आए हैं। इन सभों की चर्चा हम आगामी अङ्क में करेंगे। इस स्थान पर धन्यवाद सहित उन सज्जनों और देवियों का ही उल्लेख करना चाहते हैं, जिन्होंने वचन अथवा दान भेजने की कृपा की है। अस्तु—

फ़रवरी के 'चाँद' में १३,२००) रु० के जो वचन हमें मिले थे उसका उल्लेख हो चुका है। इसके बाद हमें श्री० नारायणसिंह जी बघेल, गोपीगञ्ज, बनारस स्टेट ने ५००) रु० अपनी धर्मपत्नी श्रीमती सोहाग वंशी कुँअरि के नाम से मातृ-मन्दिर में एक कमरा बनवाने के लिए दान देने का वचन दिया है और निम्नलिखित सज्जनों ने नक़द रुपए भेजने की कृपा की है :—

१—श्री० रघुराजशरण अवस्थी मु० और पो० परबना वाया सुल्तानगञ्ज ज़िला भागलपुर ५) रु०

२—श्री० बी० एन० ज़नवार चिखाली वाला अमरावती (सी० पी) ... ... २) रु०

३—श्री० पं० प्यारेलाल झा, नैनीताल ... ७॥।-)

४—मेसर्स गोपीनाथ हरिप्रसाद रुदौली (बाराबङ्की) १०)

५—श्री० सूर्यपालसिंह जी, एच० जी० विङ्ग ७वीं राजपूत रैजिमैण्ट, बन्नू ... ... ५०) रु०

६—श्री० जयनारायण बर्मन के० आर० मेसर्स जीवनराम गणेशदास ३ क्रॉस स्ट्रीट, कलकत्ता २५) रु०

जोड़ ९९॥।-)

इसके अतिरिक्त अन्य सज्जनों और देवियों के भी अनेक पत्र आए हैं जिनमें उन्होंने यथाशक्ति संस्था की सहायता करने का वचन दिया है, आगामी अङ्क में इनकी चर्चा की जायगी। हमें आशा है, अन्य दानी सज्जन शीघ्र ही इस ओर ध्यान देकर अपने औचित्य का पालन करेंगे।

—रामरखसिंह सहगल,
नियोजक
मातृ-मन्दिर, इलाहाबाद

* * *

पाश्चात्य देशों में तिलाक़-प्रथा का ढोंग

अमेरिका और यूरोप में तिलाक़ की प्रथा हास्य-जनक श्रेणी तक पहुँच गई है। अभी तक तो यही था कि एक मिनट में सैकड़ों मुक़दमे तिलाक़ के फ़ैसल

OC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होते थे, पर अब तो वहाँ के लोगों—और विशेष कर स्त्रियों ने तलाक़ को मज़ाक़ सिद्ध कर दिया है। कोई स्त्री अपना पति इसलिए छोड़ना चाहती है कि वह रोज़ उसके साथ सिनेमा नहीं देखने जाता तो दूसरी यह बहाना बताती है कि उसे रेशमी मोज़े पहनने को नहीं मिलते! अभी हाल में एक स्त्री ने अदालत में कहा है कि मेरा पति मुझे चूमता ही नहीं!! इसके उत्तर में जज ने कहा कि न चूमना प्रेम की कमी का द्योतक नहीं है और इसलिए अर्ज़ी नामन्ज़ूर की जाती है!!!

जहाँ भारतवर्ष में एक पुरुष कई विवाह कर लेता है और स्त्रियाँ बेचारी चूँ भी नहीं करतीं वहाँ पाश्चात्य मेमें साल भर में दर्जनों शौहर बदल डालती हैं! अब एक नया गुल खिला है, विवाह की एक नई प्रणाली चलाई जा रही है जिसे—Experimental marriage—अर्थात् "आज़माइशी शादी" कहते हैं। स्त्री-पुरुष एकत्र रहकर एक दूसरे के स्वभाव से परिचित होते हैं और थोड़े दिनों बाद यदि दोनों में नहीं पटती तो शादी रद्द हो जाती है। हमारी समझ में तो यह एक नया रोग उत्पन्न हो गया है। बहुत से लोग तो ऐसे निकलेंगे जो जीवन भर शादी की आज़माइश ही किया करेंगे! इस प्रकार पाश्चात्य जीवन अत्यन्त अव्यवस्थित तथा विशृङ्खल हो जायगा, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं!

* * *

जापानी स्त्रियों की उन्नति

जापान, अमेरिका तथा अन्यान्य स्वतन्त्र देशों की स्त्रियाँ किस प्रकार उन्नति कर रही हैं, भारत की स्त्रियाँ घर-बैठे इसकी कल्पना भी नहीं कर सकतीं। जापानी स्त्रियों में तो स्वतन्त्र होने की प्रवृत्ति बढ़ती ही जा रही है। अपने पैरों खड़े होना ही उन्होंने अपने जीवन का ध्येय बना लिया है, यहाँ तक कि वे पुरुषों की कमाई भी खाना नहीं पसन्द करतीं। पढ़ी-लिखी तो दफ़्तरों में क्लर्क और टाईपिस्ट, नर्स, डॉक्टर, अध्यापिका तथा सम्पादिका का काम करती हैं और कितनी ही चित्र बना कर तथा नाटकों में अभिनय कर के रुपया कमा लेती हैं। बहुत सी एक और नया पेशा निकाल रही हैं। वे बड़े-बड़े भोजों और जलसों में जा कर जनता का मनोरञ्जन करती और अपनी मज़दूरी लेती हैं।

जापानी स्त्रियों को अभी मताधिकार नहीं प्राप्त है, इस लिए वे उसी सज्जन की पार्लामेण्ट में जाने के लिए सहायता करती हैं जो वहाँ जाकर स्त्रियों को अधिकार दिलावे। यहाँ की शिक्षा दो प्रकार से दी जाती है—एक तो पुराने ढङ्ग की और दूसरी नवीन। नए स्कूलों में पाश्चात्य रहन-सहन सिखाया जाता है और यहाँ की पढ़ी हुई युवतियाँ यूरोप की लड़कियों की तरह रहती हैं। वैसे ही कपड़े पहनती और अधिकतः सिर के बाल भी कटवाती हैं, एकाध तो पुरुषों के साथ नाचने भी लगी हैं—यद्यपि नाचने की कला जापान में बहुत प्राचीन है।

यहाँ बहुत सी सभाएँ भी केवल स्त्रियों के लिए हैं। एक है "पैट्रियोटिक लेडीज़ एसोसियेशन" (Patriotic Ladies Association) जो २८ वर्ष से स्थापित है और जिसके अधिवेशनों में स्वयं जापान की महारानी भी आती हैं। दूसरी सभा "लेडीज़ सोसाइटी" (Ladies Society) नाम की है जो है तो नई, पर इसकी सदस्याओं की संख्या ३० लाख है। अभी थोड़े ही दिन से स्त्रियों को राजनैतिक स्वतन्त्रता दिलाने के उद्देश्य से एक और नई सभा खोली गई है, जिसका नाम है "जापान फ़ेडरेशन ऑफ़ यङ्ग विमेन एसोसियेशन" (Japan Federation of Young Women Association.)

* * *

बलात्कार का दण्ड

प्रयाग-हाईकोर्ट में अभी-अभी एक अपील ख़ारिज हुई है जिसमें अभियुक्त गनपत जैनी को आगरे के जज ने सोनार जाति की एक दश वर्षीया विवाहित लड़की से बलात्कार करने के अपराध में बीस बेंत, १००) जुर्माना तथा चार वर्ष का कठोर कारावास दण्ड दिया था। गनपत की उम्र ३० वर्ष की थी और कई साल हुए उसने अपनी दूकान में इस लड़की को धोखे से ले जाकर इससे बलात्कार किया। लड़की के ससुराल वालों को यह बात मालूम हुई तो वे उसका गौना ही ले जाने को राज़ी न हुए। लड़की के घर उसकी विधवा माँ को छोड़ कर और कोई नहीं है जो जीवन भर इसे अपने सिर रक्खे। इसलिए लड़की ने, जिसका नाम बतासो है, दीवानी में १०,०००) का अलग हरजाने और मान-हानि का दावा किया। मुक़दमा बहुत दिनों तक चला

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट-
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

और अन्त में जज ने ३,०००) हरजाने का बतासो को दिलाया, क्योंकि जिस जाति की वह थी उसमें पुनर्विवाह भी नहीं हो सकता और उसे जन्म भर अपनी माँ के पास रहना पड़ेगा।

अदालत से ३,०००) ही सतीत्व का मूल्य नियत हुआ, यह पढ़कर हमें क्लेश हुआ। हम तो समझते हैं, इस प्रकार के पैशाचिक पापों का सदा के लिए गला घोंट देने के लिए इनका और भी कठोर-दण्ड विधान होना चाहिए—जैसा नैपाल आदि देशों में होता है। नहीं तो गुण्डे जुर्मानों को सदाचार तथा सतीत्व का मूल्य समझ कर इस प्रकार के पाप के सौदे से बाज़ न आवेंगे और इजलास के फ़ैसलों को खिलवाड़ समझने लगेंगे।

इससे भी घोर बलात्कार की दूसरी अपील कुछ दिनों पहले ही हाईकोर्ट से ख़ारिज हुई थी जिसमें फ़तेहपुर ज़िले के मुहम्मद अहमद नामक एक मुसलमान-गुण्डे ने सात वर्ष की एक गड़रिए की लड़की से व्यभिचार किया था। यह लड़की अपने भाई बहिन के साथ भेड़ चराते समय जामुन खाने गई थी, वहाँ से इस मुसलमान ने उसे भगा कर यह पाप-कर्म किया। जब छोटी लड़की बेहोश हो गई तो वह उसे छोड़ कर चम्पत हो गया। मुक़दमा चलने पर सेशन जज ने उसे १५ कोड़े और तीन वर्ष की सख़्त क़ैद की सज़ा दी थी, जो हमारे विचार से बहुत ही कम है। हाईकोर्ट ने अपील ख़ारिज करके तो अच्छा ही किया, पर और भी अच्छा होता यदि यह सज़ा बढ़ा दी जाती, क्योंकि ऐसे घृणित और निर्दयतापूर्ण व्यभिचारों के लिए जितना ही दण्ड दिया जाय, थोड़ा है।

* * *

युक्त-प्रान्तीय सामाजिक परिषद्

युक्त-प्रान्तीय सामाजिक परिषद् का अधिवेशन इस बार २१ मार्च को लखनऊ में होना निश्चित हुआ है। सभानेत्री चुनी गई हैं श्रीमती उमा नेहरू महोदया। कार्यकारिणी सभा का प्रोग्राम तथा अब तक की रिपोर्टों को देखने से पता चलता है कि अनेक अधिवेशनों की अपेक्षा यह अधिवेशन विशेष महत्वपूर्ण होगा। पहली विशेषता तो यह है कि इस बार केवल लखनऊ शहर की लगभग १०० महिलाओं ने स्वागतकारिणी सभा (Reception Committee) की सदस्या बन कर अपने औचित्य का पालन किया है। दूसरी विशेषता यह है कि प्रतिनिधियों (Delegates) में इस बार लगभग आधी स्त्रियाँ हैं। सामाजिक सुधार की अभिरुचि का इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है? इस बार की कॉन्फ्रेन्स में परदा करने वाली स्त्रियों के लिए कोई विशेष प्रबन्ध इसलिए नहीं किया गया है कि उपस्थित महिलाएँ परदा करेंगी, ऐसी आशा नहीं है। तीसरी विशेषता यह है कि सदा की भाँति इस बार प्रीति-भोज अन्तर्जातीय (Inter-Communal) होगा—जातीय नहीं। हम हृदय से इस अधिवेशन की सफलता चाहते हैं।

* * *

विश्वभारती में स्त्रियों का कॉलेज

कवि-सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर की प्रसिद्ध शिक्षण-संस्था 'विश्वभारती' में हाल ही में स्त्रियों का एक कॉलेज खोला गया है। इसमें गृह-प्रबन्ध, पाक-विद्या, रोगियों की सेवा, सीने का काम आदि की शिक्षा बड़े उत्तम ढङ्ग से दी जाती है। प्रसिद्ध चित्रकार श्री० नन्दलाल बोस और श्री० एस० एन० कर ने चित्र-कला सिखाने का प्रबन्ध अपने हाथों में लिया है। संगीत-शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया है।

* * *

स्त्री-शिक्षा के लिए दान

मैसूर के पुराने चीफ़ जज श्री० चन्द्रेश्वर ऐयर ने स्त्री-शिक्षा के लिए एक बड़ा ही स्तुत्य कार्य किया है। उन्होंने स्त्रियों में शिक्षा-प्रचार के लिए 'महिला-सेवा-समाज' को २५ हज़ार रुपयों का दान दिया है। यह कोष उनकी पत्नी के नाम से रहेगा जिनका हाल ही में दिल्ली में स्वर्गवास हुआ है।

* * *

महिलाओं के लिए पार्क

बनारस म्युनिसिपल बोर्ड महिलाओं के लिए एक पार्क बनवाने का सराहनीय प्रयत्न कर रही है। उसने अपनी हाल ही की बैठक में सूत टोले में लैण्ड एक्विज़िशन क़ानून के अनुसार ज़मीन लेने के लिए ७,०००) रु० मञ्जूर किए हैं।

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पृ० ५२९ महादेवी वर्मा, श्रीवास्तव

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

-CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha